|| श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ||

# श्री चैतन्यभागवत

## आदिखण्ड

व्यासावतार, महाकवि—

### श्रील वृन्दावनदास ठाकुर विरचित

अनुवादक—

श्रीमाध्वगौड़ेश्वराचार्य, गोस्वामी श्रीराधाचरणदास जी विद्यावागीश तथा वृन्दावनशतक के अनुपम सरसवक्ता, परमरसिक, गुरुनिष्ठ गौराङ्गदास बाबा महाराज के अनुगत गिडोह निवासी पण्डित रामलालजी

संशोधक—

झाडुमण्डल (वृन्दावन) निवासी महन्त राधाचरणदास जी के अनुगत प्रियाचरणशरणदासजी

अर्थ सहायक—

गौराङ्गग्रन्थप्रकाशन मन्दिर

|| श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ||

# श्री चैतन्यभागवत

## आदिखण्ड

व्यासावतार, महाकवि—

### श्रीलवृन्दावनदास ठाकुर विरचित

अनुवादक—

श्रीमाध्वगौड़ेश्वराचार्य, गोस्वामी श्रीराधाचरणदास जी विद्यावागीश तथा वृन्दावनशतक के अनुपम सरसवक्ता, परमरसिक, गुरुनिष्ठ गौराङ्गदास बाबा महाराज के अनुगत गिडोह निवासी पण्डित रामलालजी

संशोधक—

झाडुमण्डल (वृन्दावन) निवासी महन्त राधाचरणदास जी के अनुगत प्रियाचरणशरणदासजी

अर्थ सहायक—

गौराङ्गग्रन्थप्रकाशन मन्दिर

श्रीचैतन्यभागवत ग्रन्थ के रचयिता

# श्रीलठाकुर वृन्दावनदास

जिनकी अद्भुतमयी लेखनी से निःसृत भगवान् श्रीगौरांग महाप्रभु के चरित्र की अमृतधारा जगत् के विशेष करके बंगभूमि के पापी, तापी जीवों की ज्वाला यन्त्रणा को निर्वापित करके महान् आनन्दसागर में डुबा देती है, उन श्रीलठाकुर वृन्दावनदास महोदय को वैष्णव समाज कौन नहीं जानता है ? बंगदेश के साहित्य कानन के कलकंठ कोकिल स्वरूप, चैतन्यभागवत के रचयिता, आदिकवि, श्रीव्यासावतार, श्रीमन्प्रभुवर नित्यानन्द के प्रेमोन्मत्त, श्रीवृन्दावनदास ठाकुर गौड़ीय वैष्णव समाज में विशेष परिचित हैं।

इस चैतन्य भागवत के पदों से जाना जाता है कि श्रीवासपण्डित तथा उनके भ्राता श्रीरामपंडित श्रीहट्ट ( पूर्व बंग में ) से किसी समय विद्याध्ययन अथवा गङ्गातटवास के लिये श्रीधाम नवद्वीप में आकर निवास करने लगे थे। आजकल वाराणसी क्षेत्र जिस प्रकार संस्कृत साहित्य के पठन-पाठन में भारतवर्ष में प्रधान केन्द्र बना हुआ है, ठीक उसी प्रकार उस समय श्रीधाम नवद्वीप समस्त भारतवर्ष के विद्या का प्रधान केन्द्र था। पश्चात् श्रीवासपण्डित के श्रीपति तथा श्रीनिधि नामक दो सहोदर भी श्रीहट्ट छोड़कर नवद्वीप में अपने भ्राता के साथ निवास करने लगे। श्रीवास एवं श्रीराम दोनों बड़े भारी पण्डित थे। दोनों ने महाप्रभु के द्वारा प्रचारित वैष्णव धर्म का आचार्यत्व लाभ किया। महाप्रभु के साथ श्रीवासपण्डित की समग्र बङ्गभूमि में बड़ी मान्यता है। पञ्चतत्वस्वरूप में एक श्रीवासपण्डित भी हैं। आज भी बङ्गदेश में वैष्णव समाज के द्वारा घर-घर में पञ्चतत्वस्वरूप की पूजा प्रचलित है। आप श्रीदेवर्षि मुनिराज नारदजी के अवतार माने जाते हैं, उन श्रीवासपण्डित की एक भ्रातृकन्या थी, जिसका नाम नारायणी था। वह नितान्त बाल्य अवस्था से ही श्रीहट्ट त्याग कर नवद्वीप में श्रीवासपण्डित के घर पर एक साथ रहने लगी। नारायणी एक सामान्य नारी नहीं थी, वह गौरांगदेव के परिकर में एक अग्रगन्या के रूप में मानी जाती थी। श्रीकविकर्णपुर महोदय ने श्रीगौरगणोद्देशदीपिका ग्रन्थ में महाप्रभु लीला के परिकरों के पूर्वावतार का परिचय देते हुए नारायणीदेवी के पूर्व जन्म का इस प्रकार निर्णय दिया है कि--

"अम्बिकायाः स्वसा यासीन्नाम्ना श्रीलकिलिम्बिका। कृष्णोच्छिष्टं प्रभुञ्जाना सेयं नारायणी मता ॥"

अर्थात् ब्रजलीला में अम्बिका की भगिनी किलिम्बिका प्रसिद्धा थी, वह सर्वदा श्रीकृष्ण के अधरामृत का भोजन करती थी। अब गौरांगलीला में वह नारायनी मानी गई है एवं पूर्वलीला की भाँति इस लीला में भी महाप्रभु के अधरामृत का भोजन किया करती थी। इस ग्रन्थ में स्वयं वृन्दावनदास ठाकुर ने लिखा है कि--

> सर्वभूत अन्तर्यामी श्री गौरांग चाँद। आज्ञा कैल नारायणि ! कृष्ण बलि काँद ॥
> चारिवत्सरेर सेइ उन्मत्त चरित। हा कृष्ण बलिया कान्द पड़िल भूमित ॥
> अश्रु वहि पड़े धारा पृथिवीर तले। परिपूर्ण हैल स्थल नयनेर जले ॥

अर्थात् सर्वभूत में निवास करने वाले अन्तर्यामी प्रभु ने नारायणी को आज्ञा की कि नारायणि ! कृष्ण कहकर रोओ, उस समय उसकी अवस्था चार वर्ष की थी। वह बालिका "हा कृष्ण" कहती हुई उन्मत्त होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी, उसके नयनों से अश्रुधाराएँ बहने लगीं जो समस्त शरीर को भिगाकर पृथ्वी पर बहने लगीं। वह स्थल नयन जल से परिपूर्ण हो गया।

वृन्दावनदास ठाकुर ने इस ग्रन्थ में और भी लिखा है कि—

भोजनेर अवशेष जतेक आछिल । नारायणी पुण्यवती ताहा से पाइल ॥
श्रीवासेर भ्रातृ सुता बालिका अज्ञान । ताहारे भोजनशेष प्रभु करे दान ॥

महाप्रभु ने महाप्रकाश के उपरान्त नारायणी को जब अपना अधरामृत प्रसाद अर्पण किया उस समय वह चार वर्ष की बालिका है । उस समय महाप्रभु यौवनलीला में प्रवृत्त थे तथा उनकी अवस्था प्रायः अठारह वर्ष की होगी । महाप्रभु ने जब सन्यास लिया तब उस समय नारायणी की अवस्था दस वर्ष की होगी । नारायणी का किस समय कौन के साथ किस ग्राम में विवाह हुआ इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है महाप्रभु के सन्यास के पश्चात् नारायणी का विवाह हुआ था, ऐसा स्वाभाविक अनुमान किया जाता है । महाप्रभु के सन्यास लेने के पश्चात् श्रीवास तथा श्रीराम दोनों कुमारहट्ट में जाकर रहने लगे एवं श्रीपति, श्रीनिधि ने नवद्वीप में ही निवास किया । श्रीजाह्नवा ठकुरानी जिस समय ठाकुर नरोत्तम महाशय के द्वारा निमन्त्रित होकर नवद्वीप से खेतरि महोत्सव में उपस्थित हुईं थी, उस समय सङ्ग में श्रीपति-श्रीनिधि दोनों ~~भ्राता~~ उनके साथ गये थे । अनुमान किया जाता है कि श्रीवासपण्डित के नवद्वीप छोड़ने के समय नारायणी के विवाह का समय आ गया था एवं उसका मामगाछी के निकटवर्ती किसी ग्राम में विवाह हुआ था । यह मामगाछी ग्राम नवद्वीप के अन्तर्गत, गङ्गा के पश्चिम तट पर मौजूद है । भक्तिरत्नाकर में इसे मोद द्रुमद्वीप नाम करके कहा गया है, उस ग्राम में वासुदेवदत्त की एक विग्रह सेवा है । कहा जाता है नारायणी देवी ने उस सेवा का भार ग्रहण किया था तथा उस ग्राम में बहुत दिन निवास करने लगी थी । आपातत: वह सेवा नारायणी नाम से चली । जब नारायणी गर्भवती रही, उस समय वह विधवा हो गई तथा आपने सुविधा के लिये वासुदेवदत्त की ठाकुरवाड़ी में प्रबन्ध कार्य में नियुक्त हुईं । वासुदेवदत्त का निवास स्थान कांचड़ापाड़ा था, जो शिवानन्द की घर के समीप है, प्रभु की नवद्वीप लीला के समय उनके समीप रहने के लिये वासुदेवदत्त ने मामगाछी ग्राम में उस सेवा को प्रकट किया था । पश्चात् नवद्वीप में रहने की सुविधा न देखकर श्रीवासपण्डित के साथ बन्धुता होने के कारण उनकी भ्रातृतनया नारायणी को सेवा का भार समर्पण किया ।

उन श्रीनारायणीदेवी के पवित्र गर्भ में इस चैतन्य भागवत के रचयिता श्रीलवृन्दावनदास ठाकुर ने जन्म ग्रहण किया था । श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी चैतन्यचरितामृत में कहा है कि—

नारायणी चैतन्येर उच्छिष्टभाजन । तार गर्भे जन्मिला श्रीदास वृन्दावन ॥

मामगाछी में श्रीनारायणी देवी का सेवापाट प्रत्यक्ष विराजमान है, वहाँ से पाँच छः कोस दूर में पश्चिम देनुड ग्राम में वृन्दावनदासजी की पाटवाड़ी मौजूद है ।

बाल्यकाल में वृन्दावनदास ठाकुर उनकी जननी नारायणी के साथ मामगाछी के ठाकुरवाड़ी में अवस्थान करते थे । वहाँ ही आपने प्रारम्भिक विद्या के पठन पाठन के उपरान्त संस्कृत-विद्या का अध्ययन किया । मामगाछी नवद्वीप का अंश विशेष होने के कारण वहाँ संस्कृतविद्या का पठन-पाठन अत्यधिक रूप में होता था तथा वहाँ बड़े-बड़े विद्वान ब्राह्मण निवास करते थे । यह ग्राम विशारदभट्टाचार्य्य एवं देवानन्द-पण्डितादि के निवास ग्राम के निकट हैं ।

वृन्दावनदासजी जब विद्वान हुए उस समय महाप्रभु के अप्रकट होने का समय उपस्थित हो गया था । महाप्रभु के सन्यास लेने के तीन-चार वर्ष के पीछे वृन्दावनदास ठाकुर का जन्म है अतएव महाप्रभु के

लीलासंवरण के समय इनकी अवस्था बीस वर्ष से अधिक नहीं थी । उस समय महाप्रभु के आदेशानुसार श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु गौड़देश में प्रेम प्रचारकार्य में तत्पर थे । इस ग्रन्थ से जाना जाता है कि श्री नित्यानन्दप्रभु ने महाप्रभु के निकट नीलाचल से विदा होकर अपने पार्षदगण के साथ पहले पानीहाटी ग्राम में पश्चात् सप्तग्राम में कुछ दिन प्रेम प्रचार करके उपरान्त नवद्वीप में आकर हिरण्यगोवर्द्धन के गृह में निवास करने लगे । वहाँ निवास करते हुए नाना स्थान में प्रेम प्रचार किया तथा शचीमाता को आश्वासन दिया । उनका प्रचार कार्य्य इस प्रकार वर्णित है—

भ्रमे नित्यानन्द सर्व पार्षदेर संगे । प्रति ग्रामे ग्रामे भ्रमे कीर्त्तनेर रंगे ॥
खाना चाँना बड़गाछि आर दोगाछिया । गंगार ओपार कभु जायेन कुलिया ॥
विशेष सुकृति अति बड़गाछि ग्राम । नित्यानन्द स्वरूपेर विहारेर स्थान ॥

श्रीधाम नवद्वीप में रहकर नित्यानन्दप्रभु के प्रत्येक ग्राम में मनोहर प्रेम प्रचार के शेष दिनों में कविवर वृन्दावनदास ने उनका संग लाभ किया । वह भी अधिक दिवस नहीं रहा क्यों कि महाप्रभु के लीलासंवरण के अल्पदिन उपरान्त श्रीनित्यानन्दप्रभु एवं श्रीअद्वैतप्रभु दोनों अन्तर्द्धान होगये । वृन्दावनदासजी नित्यानन्दप्रभु के अन्तिम कृपापात्र रहे ।

"सर्वशेष भृत्य तान वृन्दावनदास । अवशेष पात्र नारायणी गर्भजात ॥"

(चैतन्यभागवत पञ्चम अध्याय शेष में)

नित्यानन्दप्रभु के अन्तर्द्धान के पश्चात् ठाकुर वृन्दावनदास बहुत दिनों तक पृथ्वी पर प्रकट रहे । क्यों कि वे जान्हवागोस्वामिनी के साथ निमन्त्रित होकर ठाकुर नरोत्तम महाशय के द्वारा आयोजित खेतरी उत्सव में गये थे ।

वृन्दावनदासठाकुर सर्वशास्त्र पण्डित एवं महान् कविश्रेष्ठ थे यह उनके द्वारा विरचित इस चैतन्यभागवत से जाना जाता है । कविराजगोस्वामी ने अपने चैतन्यचरितामृत ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर लिखा है कि –

कृष्णलीला भागवते कहे वेदव्यास । चैतन्यलीलार व्यास वृन्दावनदास ॥
वृन्दावनदास कैल चैतन्यमंगल । जाहार श्रवणे नाशे सर्व अमंगल ॥
चैतन्य निताइर याते जानिये महिमा । जाते जानि कृष्णभक्ति सिद्धान्तेर सीमा ॥
भागवते जत भक्ति सिद्धान्तेर सार । लिखियाछेन इहा जानि करिया उद्गार ॥
मनुष्य रचिते नारे ऐछे ग्रन्थ धन्य । वृन्दावनदास मुखे वक्ता श्रीचैतन्य ॥
वृन्दावनदास पदे कोटि नमस्कार । ऐछे ग्रन्थ करि तिहो तारिला संसार ॥

अन्यत्र भी कहा है—

वृन्दावनदासेर पादपद्म करि ध्यान । ताँर आज्ञा लैया लिखि जाहाते कल्याण ॥
चैतन्य लीलाते व्यास वृन्दावनदास । ताँर कृपा विने अन्ये ना हय प्रकाश ॥

अन्यत्र लिखा है—

वृन्दावनदास प्रथम जे लीला वर्णिल । सेइ सब लीलार आमि सूत्रपात कैल ॥
ताँर त्यक्त अवशेष संक्षेपे कहिल । लीलार बाहुल्ये ग्रन्थ तथापि बाड़िल ॥
नित्यानन्द कृपापात्र वृन्दावनदास । चैतन्य लीलाय तेंहो हय आदिव्यास ॥

कविकर्णपूर महोदय ने अपने "गौरगणोद्देशदीपिका" में इनके बारे में ऐसा कहा है

वेदव्यासो य एवासीद्दासवृन्दावनोऽधुना । सखा यः कुसुमापीडः कार्यतस्तं समाविशत् ॥
अर्थात् जो द्वापर में वेदव्यास थे वे गौरांगलीला में वृन्दावनदास होकर प्रकट हुए एवं व्रज में जो कुसुमापीड नामक श्रीकृष्ण के सखा रहे अब वे ही गौरांगलीला में किसी कार्य वश वृन्दावनदासजी में आविष्ट हुए हैं। वृन्दावनदास ठाकुर ने पहले अपने चैतन्यभागवत नामक इस ग्रन्थ का चैतन्यमंगल नाम रक्खा था, कविराजगोस्वामी के चैतन्यचरितामृत की रचना के समय वह चैतन्यमंगल नाम से प्रसिद्ध था, पहले चैतन्यमंगल में उस समय के प्रचलित अन्यान्य कवियों के अन्यान्य गीतिकाव्य के गीतों का समावेश था पश्चात् वृन्दावन के पण्डित वैष्णव समाज ने इस ग्रन्थ को अपने पाठ के योग्य बनाने के लिये उन सब अन्यान्य गीति काव्यों को इससे पृथक कर दिया तथा इसको चैतन्यभागवत नाम से प्रसिद्ध किया। ऐसा भी कहा जाता है कि लोचनदासठाकुर के द्वारा विरचित "चैतन्यमंगल" को देखकर स्वयं वृन्दावनदासठाकुर ने अपने चैतन्यमंगल ग्रन्थ के नाम को परिवर्त्तन कर चैतन्यभागवत नाम रक्खा। "चैतन्यभागवत" के शेषांश की रचना के समय वे नित्यानन्द प्रभु में इस प्रकार भावावेश में डूबे हुए थे कि-महाप्रभु की लीला अधिक न लिख सकें वरं श्रीनित्यानन्द प्रभु की लीला महिमा वर्णन में ही अत्यधिक यत्नशील हुए। उनके विवाह होने का किसी ग्रन्थ में उल्लेख नहीं है। इस से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे ठाकुर नरोत्तमदासजी की भाँति आकुमार ब्रह्मचारी थे तथा अल्पवयस से वे "मामुगाछी" में निवास करते थे। वहाँ सारंग-मुरारी के संग बल से उनको नित्यानन्द प्रभु के संग का सुख मिला तथा उनके कृपापात्र बने थे। कुछ दिन नित्यानन्द प्रभु के साथ वे भक्ति प्रचार में प्रवृत्त रहे, एवं अन्त में किसी कायस्थ भक्त की सहायता से देनुड ग्राम में शेषजीवन पर्यन्त निवास किया, वहाँ ही उनकी पाटवाडी थी, जिसे कि वहाँ के महन्तगण बहुत दिनों से सुरक्षित रूप में परिचालित करते आ रहे हैं। वहाँ वृन्दावनदासठाकुर के द्वारा स्वहस्तलिखित चैतन्यभागवत की मूल पोथी मौजूद है। उनके द्वारा विरचित चैतन्य भागवत के अतिरिक्त कुछ पृथक् रचित पद भी मिलते हैं। इसके अतिरिक्त उनका कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं मिलता है। उनके ग्रन्थ का रचनाकाल निश्चय रूप से निर्द्धारित करना असम्भव है। इस में नाना मत भेद है। किसी के मत में ग्रन्थ का रचनाकाल १४७० शक तथा किसी के मत में १४५७ शक एवं अन्य किसी के मत में १४६७ शक है। रामगति न्यायरत्न, अच्युत एवं दिनेश बाबू दोनों, अम्बिकाचरण ने क्रम से इस प्रकार रचनाकाल का उल्लेख किया है। वृन्दावनदासजी के तिरोभाव का निश्चय समय भी निर्णीत नहीं हो सकता है। अच्युत बाबू एवं दिनेश बाबू कहते हैं कि १५११ शक कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा तिथि उनके तिरोभाव का दिवस है।

इन महानुभाव ने गौडेश्वर सम्प्रदाय तथा समस्त महाप्रभु चैतन्यदेव के चरित्र के श्रवणेच्छु प्रेमी सज्जनों को इस अमूल्य चैतन्य भागवत नामक ग्रन्थ महारत्न का अर्पण कर जो महान् उपकार किया उस से भक्त समाज उनका चिर ऋणि रहेगा। अलमति विस्तरेण।

निवेदक—

प्रकाशक—**कृष्णदास,**

कुसुम सरोवर वाले।

# महाप्रभु के अवतीर्ण होने का

## उपक्रम

अखिलेश,लीला पुरुषोत्तम,गोलोक बिहारी श्रीहरि निज नित्य धाम गोलोक में अपने माता-पिता-सखा-प्रेयसी आदि परिकरों के साथ अनादि काल से लीला करते हुए भी वहाँ किसी अभिलषित वस्तु की अपूर्त्ति के वश अतृप्त हो उसकी पूर्ति तथा साथ ही साथ ब्रह्माण्ड जीवों को निज दर्शनामृत दान के द्वारा कृतार्थ करने के लिये इच्छुक हो निज अचिन्त्य महाशक्ति के द्वारा इस ब्रह्माण्ड में निज परम प्रिय व्रजभूमि को प्राकट्य करा कर उन्हीं परिकरों के साथ जन्मादि नाना लीलाओं से अपने चिर अभिलषित उस वाञ्छा की पूर्त्ति करने लगे। यह तो ऐश्वर्य-गौरवादि गन्ध रहित केवल शुद्ध माधुर्य्य का खेल था, जो कि शुद्ध-माधुर्य्य की आधार रूप व्रजभूमि में ही पूर्ति हो सकती थी। इस सरस व्रज समुद्र के लीला-तरंग विलासों में आकर भगवान् श्रीगोविन्द भी अपने को खो देते थे अर्थात् उनकी भगवत्ता "वर्षाकालीन घन-घटा में विलीन सूर्य्य किरणावली की भाँति, त्रिवेणी प्रवाह में गुप्त सरस्वती की भाँति, अज्ञ निरक्षर पत्नी के निकट निरुत्तर षट्दर्शन के महान् पण्डित की भाँति, निज सुकुमारी पत्नी के आगे निस्तेज महा धनुर्द्धारी योद्धा की भाँति, कमलकोष में काष्ठादि भेदन कारी शक्तिहीन भ्रमर की भाँति, अपने माता के समक्ष अवनत मस्तक महा साम्राज्य का अधीश्वर की भाँति" व्रज माधुर्य्य सागर में डूब जाती थी। कभी आप विशुद्ध वात्सल्यमयी माता श्रीयशोदा के भय से भीत होकर हा हा खाते, कभी भागते, कभी काँपते वा रो जाते थे। कभी क्रीडा प्रसंग में श्रीदाम-सुदामादि सखा गण से हार कर उन सबको कन्धे पर चढ़ाते थे, कभी प्रियतमा श्रीराधिका के विरह में आकर रोते, हँसते, वा स्तम्भ के समान जड़ हो जाते थे और अपने को प्रलयकालीन कोटि सूर्य्य किरणों से भी अधिक तपायमान समझते थे। भगवान् राम भी अपनी सर्वज्ञता को भूल कर श्री सीतादेवी के विरह में अज्ञ की तरह ढूढ़ते हुए वन-वन फिरे थे। ब्रह्माजी के द्वारा गोवत्सादि हरण के समय श्रीकृष्ण ने भी अज्ञ की तरह उन्हें ढूढ़ा था। व्रजलीला में आकर सर्व सामर्थ-वान् भगवान् की ऐश्वर्य्यादिक विभूतियाँ ढक जाती थीं, केवल शुद्ध माधुर्य ही रह जाता। उस समय उनकी समस्त चेष्टाएँ शुद्ध माधुर्य्यमयी होती। वे सर्वज्ञ होने पर भी अज्ञ की तरह, व्यापक होते हुए भी परिच्छिन्न हो जाते थे।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम श्रीगोविन्द ने व्रजभूमि में प्रकट होकर विविध लीलाएें की थीं किन्तु वहाँ भी वाञ्छापूर्त्ति का कोई अभाव पुनः प्रतीत होने लगा, वह यह था कि राधाप्रेम का सरस आस्वादन किस प्रकार हो? आप व्रजभूमि में यथेष्ट विहार के द्वारा जीव जगत् को कृतार्थ करते हुए जन दृष्टि से पुनः अदृश्य हो उस इच्छा के साथ गोलोक में पधारे। कुछ समय पश्चात् आपने एक दिन मन में यह सोचा कि-लीला पुरुषोत्तम स्वयं मैंने व्रज में परिकरों के साथ अवतीर्ण होकर नाना लीलाओं के द्वारा प्रेमरस का आस्वादन किया तथा आनुषंगिक से अचिन्त्य शक्ति के द्वारा मुझ में विद्यमान नाना विष्णु आदिक स्वरूप के द्वारा युगधर्म्म रक्षादि का समाधान भी किया है। जिससे त्रिजगत् कृतार्थ होकर माधुर्य्यरस का सरस पात्र बने। परन्तु वहाँ भी मेरी किसी स्वकीय महान् अभिलषनीय वस्तु की पूर्त्ति न हो सकी। यह राधिका का निःसीम महान् भावरत्न मुझे भिखारी बनाकर व्याकुल कर रहा। श्रीराधा का प्रेम कैसा है? उसमें कैसा माधुर्य्य है?, तथा मुझे देखकर श्रीराधिका किस प्रकार सुख में विभोर हो जाती है? मेरी तीन प्रकार की यह इच्छाऐं व्रज में पूर्त्ति न हो सकी। इसलिये अव्यवधान इस कलि के

पहिले चरण में मेरा करुणामय, पीतवर्ण, सरस, महान् अवतार होगा जिससे मैं राधा प्रेम का आस्वादन करने में समर्थ होऊँगा तथा जीव मात्र में परम दुर्लभ महान् प्रेमधन का वितरण भी करूँगा; अतः अब की बार इस दुर्लभ प्रेमरस का आस्वादन सबको कराऊँगा। किशोरी प्रेम भंडार को उघाड़कर जिसे किसी ने किसी भी अवतार में नहीं दिया था उसे पात्र-अपात्र-देय-अदेय आदिक विचार न करता हुआ बिना मूल्य वितरण करूँगा। अब के बार अस्त्र-शस्त्रों के द्वारा मारने के बदले मार खा कर प्रेम दूँगा, प्रेमवन्या में जगत् को बहा दूँगा। एक बात और भी है कि युगधर्म्म रक्षादि तो युगावतार से हो सकता है, क्यों कि यह युगावतार का समय है। नाम संकीर्त्तन के द्वारा भक्ति प्रवर्त्तन इस कलिकाल का धर्म है। यह तो युगावतार के द्वारा भी हो सकता है, परन्तु हम को तो दुर्ल्लभ प्रेमधन भी वितरण करना है जो युगावतार की शक्ति में नहीं है तथा दोनों अवतार एक ही समय में प्रकट भी नहीं हो सकते। अतः युगावतार को अपने में लेकर मैं नन्दनन्दन श्यामसुन्दर बाहिर राधाकान्ति से अपने को ढक कर तथा भीतर राधा भाव विभावित होकर मनोहर गौरांग रूप से सुरधुनी तट श्रीनवद्वीप धाम में सपरिकर अवतीर्ण होऊँगा। स्वयं राधाभाव चाखूँगा व सबको प्रेमधन चखाऊँगा तथा सर्वत्र नाम संकीर्त्तन प्रचार द्वारा भक्ति का प्रवर्त्तन करूँगा।

महाप्रभु श्रीगौरांगदेव के अवतीर्ण होने का कथासार ( प्रथमोपक्रम ) श्रीचैतन्यमंगलग्रन्थ तथा 'जैमिनीभारत' के आधार पर:-द्वापर युग की बात है,एक समय देवर्षि नारद पृथ्वी भ्रमण करते हुए द्वारका पधारे। कराल कलिकालरूप विषम व्याल से डँसे हुए जीवों की दशा देख मुनिराज का कोमल हृदय व्याकुल होने लगा। आपने सोचा कि हाय! करुणा के सागर, कमल-नयन कंसारि श्रीकृष्ण के करुणा के पात्र प्रिय जीव गण अपने कर्त्तव्य रूप प्रभु कैंकर्य्य को भूल कर माया के लपट में पड़ कर काम क्रोधादि के कवल में आकर प्राकृत रूप रस गन्धादि में उन्मत्त हो रहे हैं। जिससे सदा सर्वदा चौरासी लक्षयोनि रूप भवरंग के मञ्च में आकर सुख दुःख रूप स्वर्ग नरक के क्लेशों को भोग रहे हैं। अहो! वर्णाश्रमादिक धर्म्म समूह कलुषित होते जा रहे हैं। ब्राह्मणगण तो नाम मात्र से ही केवल सूत्रधारी रह गये। वीर्य्य शून्य होकर क्षत्रियों ने केवल कामिनी कला को ही परम सुख रूप मान लिया, वैश्यगण तो बौद्ध प्राय हो कर स्त्री-पुत्र उदर भरण को ही परम श्रेयः रूप मानने लगे, शूद्र विद्या के अभिमान में आकर तीनों वर्णों का सेवा छोड़ गुरु बन कर उपदेश करने लगे। सर्वत्र पाखण्डियों की डंके की चोट विजय प्राप्त हो रही है। लोग समूह तो प्रभु का भजन छोड़ कर बहिर्मुख हो कामिनी काञ्चन का ही भजन करने लगे।

अहो! मनुष्य कमलनयन भगवान् कमलाकान्त के मनोहर चरण कमल की कोमल अतसी पुष्प कलिकाओं की सरस पूजा छोड़ भयंकर रूपधारी भूत, प्रेत, पिशाच, दैत्य, दानवादि तथा रजः तमोगुणी देवताओं की अनेक प्रकार अमेध्य अस्पृश्य रजः तमः गुण द्रव्यों से पूजा करते हैं, शान्ति निकेतन देवस्थान पशुओं की शोणितधारा से भरा जा रहा है। जग पवित्रकारी भगवान् की कोमल मधुर नामावली का गान छोड़ अनेक प्रकार के प्रहसन, नाटक वारांगना नृत्य-गानादि में उन्मत्त हो रहे हैं। अहो सब कोई-सुधासागर तुलसी मिश्रित भगवद् निवेदित महाप्रसाद ग्रहण के सुख को छोड़ नाना प्रकार दुर्भक्ष्य, अशुचि, आमिषादि भोजी हो गये। परद्रोह,परनिन्दा,परवञ्चकता,पर स्त्री हरणादि विधर्म्म समूह मनुष्यों में पराकाष्ठा पर्य्यन्त पहुँच गये हैं। अहो! भगवद् प्रसन्नकारी पर गति को देने वाली रामनवमी, कृष्णाष्टमी, एकादशी आदि व्रतों को छोड़ तामसिक व्रतों का प्रवर्त्तन हो रहा है। हाय! सर्वत्र दंभ का एकच्छत्र राज्य हो रहा है।

पापियों ने पापों में बड़ी बड़ी ही शोषक था, पतितकर्ता हो गये हैं सर्वत्र अधर्मादि मात्सर्य के साथ कलिमहाराज की विजयध्वजा फहरी रही है (यह सब चन्द्रोदयनाटक में वर्णित है)। हे करुणा वरुणालय प्रभो! इस विकराल कलिकाल के कठिन पंजों से जीवों की उन्मुक्ति के लिये आप ही एक मात्र परम अवलम्ब हैं, क्यों कि आप ही तो असहाय जीवों के एक मात्र गतिदायक हैं, अन्धे की लकड़ी हैं, रंक के धन हैं, रोगी की दिव्यौषधि हैं, प्यासे को दिव्यामृत हैं, भूखे को दिव्य भोजन हैं। मुनि-ऋषियों ने इस अथाह भवसागर में आप के चरण कमल को ही नावरूप माना है तथा आप के दिव्यातिदिव्य नामामृत को ही परम कल्याण रूप कहा है। यदि आप कहें कि "मैंने तो जीवों के हितार्थ विविध अवतारों में विविध चेष्टाओं के द्वारा कर्म्म-योग, ज्ञान-योग, भक्ति-योग आदि नाना धर्मों को सिखाया, उससे यदि जीवों की दशा न सुधरी तो मैं लाचार हूँ। तो भी हे करुणामय प्रभु! करुणा परवश आप को इस प्रकार कहना क्या उचित है? क्यों कि आपकी अघटन-घटना पटीयसी निज शक्ति सब कुछ करने में समर्थ है। आपने अब तक अपने प्रिय जीवों को "माता बालक" न्याय से बाह्य वस्तुओं से ही भुला कर निज निर्भयतर गोद सुख के सरस अनुभव तथा ब्रह्म दुर्ल्लभ निज प्रेम रूप दुग्धामृत पान से वञ्चित रक्खा है।

जब तक जीव प्रेम धन से धनी नहीं है अर्थात् उससे वञ्चित है तब तक वह रंक है भयभीत है, दुःखी है, आवागमन पर है तथा माया का शिकार है। यद्यपि आपने कृष्णावतार में राधिकादि प्रेयसीवर्ग, पिता मातादि गुरू वर्ग व श्रीदाम-सुदामादि सखावर्गों को लेकर निज परमप्रिय व्रजभूमि में विविध प्रकार की लीला विलास द्वारा प्रेम का सरस आस्वादन किया साथ ही व्रज के पशु, पक्षी, वृक्ष लतादि को भी निज सौन्दर्य, माधुर्य्य, लावण्यादि से हुलसाया था तथापि वह सब एक सीमा के भीतर ही था। व्रज परकोटा के बाहिर न था। हे प्रभो अब तो व्रज परकोटा के बाहिर उस महाप्रेम धन को उधाड़ कर जगत में बाँटना होगा। करुणा के महास्रोत को जीव जगत् में बहाना होगा, प्रेम महासागर में जगत् को डुबाना होगा। हे प्रभु श्रीकृष्ण! इस कारुण्याधिक्य के कारण आपको सब कोई महाप्रभु नाम से पुकारेंगे। अब तक तो आपने जीवों के विविध प्रकार के नृत्य गीत तमाशा देखे तथा स्वयं विविध प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से दुष्टों को दमन करके उन्हें मोक्ष प्रदान किया किन्तु अब की बार तो आपको सब के आगे नाचना गाना होगा। शस्त्रास्त्र धारण के स्थान पर हाथ जोड़ कर विनीत हो प्रेम महाधन वितरण करना होगा। अधिक तो क्या मार देने के बदले कहीं कहीं मार भी खाना होगी। इस प्रकार विविध चिन्तायें करते हुए करुणा भाराक्रान्त श्रीनारदजी वीणा झँकार करते करते द्वारका के लिये चल दिये। उधर श्रीद्वारिकानाथ निज परमप्रिया सत्यभामाजू के महल में रात्रि बिताकर प्रभात समय श्रीरुक्मिणी देवी के भवन में पधारे वहाँ श्रीदेवीजी ने मित्रवृन्दा, नग्नजिता, सुशीला, सुबलादि सहचरी गणों के साथ प्राणनाथ के मंगलार्थ नाना प्रकार के पूर्णघट, घृतप्रदीपों की स्थापना पहिले से ही कर रखी थीं। अब विविध सुगंधि युक्त शीतल जल से प्राणनाथ के पाद प्रक्षालन कर पुष्पों से सज्जित शय्या पर बैठा कर प्रियतम के मनोहर चरण युगलों को अपने हृदय पर धारण कर अनुराग से देखती हुई रोने लगीं। जब प्रियतम ने विस्मित होकर इसका निगूढ़ कारण पूँछा तो देवीजी ने रोते हुए कहा कि हे प्राणनाथ! आपका शुभागमन से मैं कृतार्थ हो गयी। आप मेरे परमप्रिय तथा प्राणों से भी अधिक हैं। किन्तु हे हृदयेश! आप के इन श्रीचरणों को मैं आप से भी अधिक समझती हूँ केवल इन चरणकमलों के मकरन्द रस पानार्थ ही ब्रह्मादिक देवता भी सब कुछ परित्याग कर प्रलोभित रहते हैं।

तथा इन मनोहर चरण कमलों की प्राप्ति के लिये सर्वस्व परित्याग कर नारदादि मुनिगण पथ के भिखारी बने हुए हैं। इन चरणकमलों के मकरन्द रस के आस्वादन के लिये स्वयं आप भी तो चाहते हैं। सुना है कि बाल्यकाल में आप इन चरणों को करारविन्द से मुखारविन्द में रख कर "इसमें क्या स्वाद है—मुनिगण पीयूषरस को छोड़ किस कारण से इस चरणकमल के मकरन्द रस के पानार्थ व्याकुल हैं—मैं भी यह जानना चाहता हूँ" एतदर्थ इन्हें चूसते थे। इस जगत् में जो कुछ वस्तु विद्यमान है सो सब आपके गोचर है परन्तु केवल आप अपने चरण-कमलों के प्रेमरस को नहीं ही जानते, इस प्रकार से परम मनोहर श्रीरुक्मिणी जी की यह अभूतपूर्व बातों को सुन कर प्रियतम अति विस्मित होते हुए "फिर कहो फिर कहो" यह बारम्बार कहने लगे। श्रीदेवी फिर कहने लगीं कि हे प्रियतम! मैं जिस लिये रो रही हूँ सो आप नहीं जानते हैं। आपके श्रीचरणकमलों में क्या बल है उनमें क्या शक्ति है उनका क्या अनुभव है सो सब आप जानने में असमर्थ हैं।

क्योंकि जिसका चरण है वह उसे नहीं जानता है। आपके यह चरणकमल अत्यन्त दुर्लभ हैं इसी कारण से मैं रोदन कर रही हूँ। प्रिय! आपके इन चरणकमलों का गंध जिस दिशा की सीमा पर्यन्त जाता है वहाँ के समस्त जीव जरा मृत्यु को प्राप्त नहीं होते। जो आपके पदकमल मकरन्दरस का पान करता है, उसका दिवानिशि परमानन्द से बीतता है। जो आपके चरण-कमलों में निरन्तर अनुराग के साथ मग्न रहता है, उसका चरण भी बड़ा भाग्य से उदय होता है। आप तो सबके ठाकुर हैं। इस संसार में आपका ठाकुर कौन हो सकता है। इन सब बातों को केवल एक मात्र राधिकाजी ही जानती हैं। आप का प्रेम कैसा है और उसमें क्या बल है तथा किस प्रकार उसका आस्वादन होता है उस आस्वादन में क्या सुख है, इन बातों को आप नहीं जान सकते हैं। उस प्रेम का आस्वादन सर्वतोभावेन श्रीराधिकाजी ही करती हैं। भक्तगण उस परम मनोहर राधाभाव के यत् किंचित् आनुगत्य से आप आनन्दसागर को जानने में समर्थ होते हैं। ब्रह्मादिक देवता जिन लक्ष्मी के चरण-कमलों की कृपा को प्राप्त नहीं होते हैं, वह लक्ष्मीदेवी तो परम अनुराग के साथ निरन्तर आपकी चरण-कमल सेवा को चाहती हैं। लक्ष्मी में तो स्वसुख ही देखने में आता है। परन्तु श्रीराधा प्रेम सदा सर्वदा आपके ही सुख को चाहता है। इस प्रेम का चरम अनुभव एक मात्र राधिकाजी ही करती हैं। अहो! राधा सौभाग्य की कोई सीमा नहीं है, जगत् वशकारी आप राधा प्रेम में बँधे हुए हैं। अभी भी आप राधानाम का निरन्तर जाप करते हैं। शयन के समय स्वप्न में भी आप राधा-राधा रटते हैं, इसका हमने यथेष्ट अनुभव किया है। अभी भी देखिये राधिका नाम लेने से आपका नेत्र कमल छल-छल हो रहा है। यह उस राधा प्रेम का पराक्रम है। हे प्राणाधार! उस चरण-कमलों के विच्छेद के भय से मेरा प्राण व्याकुल हो रहा है। इस प्रकार प्रिया के वचन सुनकर श्रीद्वारकेन्द्र ने कुछ लज्जित होकर उनके मुख कमल देखते हुए तथा उनके चिबुक धारण कर कहा कि हे जीवनाधारे मेरा ऐसा ही विचार है। बलवान् राधा प्रेम ने मुझे उन्मत्त कर रखा है, मैं उस प्रेम का चिर ऋणी हूँ। उस ऋण को ( लघु ) हलका करने के लिये ( अथवा उस राधा प्रेम को चाखने के लिये ) मेरा एक मधुर अवतार होगा। जिससे मैं उस राधा प्रेम का क्या बल है उसे समझ सकूँ। ब्रज में उसका आस्वादन नहीं हो सका था। क्योंकि मैं तो प्रेम का विषय था। जिसका प्रेम वह स्वयं किस प्रकार आस्वादन करे। देवि! रोदन मत करो। मेरे उस मधुर अवतार में आप सबका भी प्रवेश होगा।

अब के अवतार में प्रेमधन आस्वादन कराने में किसी को वंचित नहीं करूँगा। आप तो मेरी साक्षात् हृदयेश्वरी हो। आप सब से मैं एक क्षण के लिये भी अलग नहीं हूँ। अनन्तर उसी समय में मुनि-

राज नारद जी का आगमन हुआ। ये कुछ चिन्तित थे। प्रभु ने चिन्ता का कारण पूछा। तब मुनिराज ने कहा प्रभो आप तो सब ही जानते हैं मैं अधिक क्या कहूँ। जीवों की दशा बहुत शोचनीय हो रही है। उन का उद्धार किस प्रकार होगा। अब श्रीकृष्ण ने हँस कर कहा कि हे मुनिराज ! क्या तुम समस्त बातों को भूल गये हो ? हाँ मैं भी आज रुक्मिणीजी के समक्ष प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि मैं एक मधुर अवतार धारण कर प्रेमसुख का आस्वादन करूँगा एवं सबको कराऊँगा। इस प्रकार कथोपकथन के उपरान्त श्रीनारद जी प्रसन्न होकर अपने गन्तव्य स्थान के लिये चल दिये।

दूसरा उपक्रम-चैतन्यचरितामृतादिक ग्रन्थ के आधार पर—

( २ ) हरिर्दृष्ट्वा गोष्ठे मुकुरगतमात्मानमतुलं, स्वमाधुर्यं राधाप्रियतरसखीवाप्तुमभितः ॥
अहो गौडे जातः प्रभुरपरगौरैकतनुभाग् , शचीसूनुः किं मे नयनसरणीं यास्यति पुनः ॥

( श्री श्रीरघुनाथदासगोस्वामिपाद )

एक दिवस व्रजगोष्ठ के आँगन में वात्सल्यमयी माता श्रीयशोदाजी के विविध लालन से लालित, तथा उनके द्वारा विविध माला, चन्दन, गन्ध, वनोचित विविध अलंकारों से सुसज्जित लाल श्रीकृष्ण भोजन के उपरान्त गोचारण के लिये श्रीदाम, सुदाम, वसुदाम, रक्षक, पत्रकादि सखा-दास गणों के साथ वन को जा रहे थे। आप अनेक प्रकार की वनमाला पहिरे हुए थे। अलकावली में जुही की माला लिपटी हुई थी। जमुना की कोमल मृत्तिका और हरिचन्दन के तिलक से मस्तक सुशोभित था। मुखचन्द्र कोटि शरत् पूर्णचन्द्र की शोभा को तिरस्कार करता था। नयन युगल-प्रेयसीगण के अनुराग से ईषत् लालिमा एवं चञ्चलायमान थे, मानो लावण्य सुधा सागर में अनुराग पवन से चंचल दो नीलकमल खिले हों। जवा-कुसुम लालिमा को तुच्छ करने वाले होंठ ताम्बूल राग से रञ्जित थे। अधर, बिम्बफल रक्तिमा की निन्दा करते हुए शोभायमान थे। वात्सल्यमयी माता किन्तु कोटि, अनन्त, अर्बुद प्राणों से भी प्रिय निज-पुत्र धन के कल्याणार्थ अनेकानेक मङ्गलचेष्टा करती रहती थीं। उस आँगन में चारुचन्द्रमा नामक कृष्ण का प्रियदर्पण भी रखा था। माता के द्वारा गोचारण वेश से सुसज्जित आपने उस दर्पण में अपना मुखार-विन्द देखा तथा परम विस्मय को प्राप्त हुए। केवल विस्मय को ही प्राप्त नहीं हुए अपितु विचार सागर की नाना तरंगों में गोता खाने लगे। आपने मन में विचार किया कि मैं तो सौन्दर्य्य का पारावार रहित सागर हूँ, माधुर्य्य का असीम भूर्य्य हूँ, लावण्य की विशाल परिधि हूँ, शोभा का सार साम्राज्य हूँ। गुण समूह की गंभीर खान हूँ। मेरी सुन्दरता से चराचर त्रिजगत लुब्ध है-मुग्ध है, प्रकृति भावापन्न है। अधिक तु मेरी ही विलास रूप वासुदेव मूर्त्ति भी हृदय में लुब्ध है। मैं स्वयं भी अपने रूप पर मुग्ध हूँ। क्या मेरे रूप की कोई सीमा है ? यद्यपि मैं त्रिजगत् आकर्षण कारी कृष्ण हूँ तो भी राधिका के गुणों से आकर्षित हूँ। मैं तो रसराज हूँ परन्तु राधिका के महाभाव से जड़ा हुआ हूँ। मैं श्यामतमाल हूँ किन्तु राधिका कनकवेली से लिपटा हुआ हूँ। मैं सौन्दर्य्य का सागर हूँ श्रीराधिका किन्तु मेरे मन के विविध भाव तरङ्गों को उछालने के लिये सुधा परिपूर्ण पूर्णिमा का दिव्य चन्द्र है। मैं दिव्यकिशोर हूँ श्रीराधा दिव्य किशोरी है, मैं शक्तिमान हूँ परन्तु आल्हादिनी शक्ति राधिका की भाव-शक्ति समूह से निरन्तर आल्हादित हूँ। मैं दिव्यरत्नराशि हूँ किन्तु राधा कि भाव कसौटी से कसा हुआ हूँ। मैं श्याममेघ हूँ परन्तु विद्युत् रूप राधिका की अङ्ग कान्ति से ढका हुआ हूँ। हाय ! मैं तो निरन्तर राधा भाव से भावित हृदय हूँ। मेरे आगे, पीछे, दायें, बायें, ऊपर, नीचे सर्वत्र श्रीराधिका ही स्फूर्ति हो रही है। मेरा वनगमन तो केवल राधा के दर्शनार्थ ही होता है। अहो राधा का यह विशाल भाव मुझे पद पद में मोहित कर रहा है मैं उससे अस

मर्द हो जाता हूँ । मैं इस विषय में [illegible] हूँ । [illegible]
भी इस महान् [illegible] वर्णन करते [illegible] भी [illegible]
रही । अहो ! राधिका [illegible] को देख [illegible]
नवीन मेघ को देख मेरा [illegible] हो [illegible]
मेघ के कारण [illegible]
मेरे दर्शन के समय [illegible]
के लिये प्रार्थना करती है । मेरे [illegible]
से परत्व [illegible] बराबर हो जाता है । [illegible]
[illegible] हूँ, इस अद्भुत आस्वादन की प्राप्ति के लिये मैं [illegible] हूँ । [illegible]
परम सुख को अनुभव करने के लिये मैं आतुर हूँ । हाय ! [illegible]
पूर्ण करूँगा ?

यह परम राधाप्रेम किस प्रकार का है ? तथा इस में [illegible]
श्रीराधिका किस प्रकार सुख में विभोर हो जाती है—[illegible]
लिये मैं कुतूहल हूँ । हाय ! किन्तु यह सब तो मेरे लिये [illegible] हूँ
और श्रीराधिका आश्रय है । [illegible]
कि इस सिद्धान्त में दोनों विरोध धर्मी हैं । यदि मैं [illegible] तो मैं विषय कहाँ
ठहरूँगा ? यद्यपि मैं अघटन घटना पटीयसी निज परमा शक्ति से सब कुछ करने में समर्थ हूँ किन्तु यहाँ पर
असमर्थ हूँ इसकी पूर्ति के लिये किसी अनिर्वचनीय उपाय का अवलम्बन करना होगा [illegible]
कान्ति का आश्रय ही यहाँ एक मात्र परम उपाय है । श्रीराधा के भाव से मुझे [illegible]
कान्ति से अपने को ढकना भी होगा । तब तो मैं गौरवर्ण का हो जाऊँगा [illegible]
राधा भाव आस्वादन के लिये मेरा जो गौरवर्ण अवतार होगा यह तो [illegible] होगा । [illegible]
ही मेरी अभिलषित तीनों वस्तुओं की पूर्त्ति होगी जो ब्रज में न हो सकी । [illegible]
कान्ति को ले राधा बन कर अपने ही आप का आस्वादन करूँगा, आप ही [illegible]
नाचूँगा, गाऊँगा, जिस प्रकार श्रीराधा मेरे आस्वादन के लिये करता है [illegible]
कर भाव-समुद्र श्रीव्रजराजकुमार धैर्य धारण कर हस्तारविन्द में मुरली [illegible]

तीसरा उपक्रम—कापिलतन्त्र व स्वप्नविलास ग्रन्थ के आधार पर—

एक दिन निधुवन में रात्रि के शेष भाग में कृष्ण-प्राणा श्रीराधिका [illegible] स्वप्न
देखा तथा चौंकि भी उठी । आपका अधरबिम्ब काँपने लगा । आप प्राण कोटि से भी [illegible] प्राणा-
धार श्रीकृष्ण को मृदु मन्द स्वर से जगाने लगीं । श्रीकृष्ण भी अपने पीताम्बर को सँभाल कर [illegible]
अपने भुजों को प्रिया के गले में लपटाय कर मन्दहास्य करते हुए बैठ गये । अनन्तर श्रीराधिका कहने लगीं
कि हे प्रियतम हे प्राणवल्लभ, हे प्राणाधार ! आज मैंने एक अद्भुत स्वप्न देखा है । हृदय उल्लासकारिणी
कालिन्दी के तुल्य एक मनोहर नदी देखी है । वहाँ भी जमुना के बराबर पुलिन [illegible] था । जिस प्रकार
इस वृन्दावन के जमुना पुलिन में गोपांगनागण के साथ आपका हमारा नाना प्रकार रासादि नृत्यविलास
हुआ करता है ठीक उसी प्रकार वहाँ भी अद्भुत नृत्य-विलास होते देखा । किन्तु उस नृत्य-विलास में कुछ
विचित्रता थी । जिसमें मृदङ्गादि वाद्य-समूह बजते थे । हे प्राणनाथ ! और भी अद्भुत देखा कि विद्युत् के

आप कब अवतार लोगे ? गुरुदेव माधवेन्द्रपुरी पादने "शीघ्र ही आपके प्राकट्य होने की सूचना" दी थी वह समय कब आवेगा ? इस प्रकार प्रार्थना करते हुए निरन्तर गंगाजल-तुलसीदल का प्रदान करते थे। कभी कभी "शीघ्र ही कृष्ण को लाकर तुम सबको गोचरीभूत कराता हूँ" इस प्रकार हुङ्कार करते हुए भक्तों को सान्त्वना देते थे, अथवा कभी करुणास्वर से रोदन करते थे। इधर गोलोकविहारी व्रजनाथ उनके हुङ्कार से कम्पित होने लगे। उनके सुदृढ़ सिंहासन डुलायमान होने लगा। वे अब स्थिर न रह सके, क्यों कि लीला विलास के साथी परिकरगण तो यत्र तत्र धरा में अवतीर्ण हो गये थे। राधा भाव से विभावित और राधिका कान्ति से ढक कर राधा के गौरांग रूप हो गये। गोलोक व व्रजभूमि छोड़कर आप नवद्वीप धाम में शीघ्र ही प्रगट हुए। श्रीहरि का गौराङ्ग स्वरूप में अवतीर्ण होना एक महान् अद्भुत बात थी। इस विषय में महानुभावों ने बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है—

राइ अङ्ग छटाय उदित भेल दश दिश श्याम भेल गौर आकार।
गौर भेल सखीगण गौर निकुंज वन राई रूपे चौदिके पाथार ॥
गौर भेल सुक सारी गौर भ्रमर भ्रमरी गौर पाखि डाके डाले डाले।
गौर कोकिलगण गौर भेल वृंदावन गौर तरु गौर फल फुले ॥
गौर जमुनाजल गौर भेल जलचर गौर सरस चक्रवाक।
गौर आकाश देखि गौर चाँद तार साखी गौर तारा वेडि लाख लाख ॥
गौर अवनी हेल गौरमय सब भेल राई रूपे चौदिक झाँपित।
नरोत्तमदास कय, अपरूप रूप नय दुहुँ तनु एकइ मिलित ॥

अस्तु जिन महापुरुष की प्रेरणा से यह श्रीचैतन्य भागवत का प्रकाशन करने में हम प्रवृत्त हुए हैं, उन करुण हृदय, प्रेममय स्वरूप, संकीर्तन प्रचारक, श्रीगुरुदेव बाबाजि महाराज के साक्षात् विद्यमान में इस ग्रन्थ को उनके हस्त-कमलों में अर्पित नहीं करने पाये। तो भी नित्यधाम में विराजमान उन महापुरुष के उद्देश्य में इस ग्रन्थरत्न का समर्पण करके हम अपने को कृत्य-कृत्य समझते हैं। खेद की बात यह है कि जिन महोदय के ऊपर इस चैतन्यभागवत को हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित कराने के लिये श्रीगुरुदेव बाबाजी महाराज के द्वारा सौंपा गया था, वे महोदय हमारे बड़े गुरु-भ्राता, सर्वदा भजनानन्द में विभोर, श्रीवृन्दावनशतक की अनुपम सरस व्याख्या करने वाले, श्रीयुक्त गौरांगदासजी महाराज भी गुरुदेव बाबाजी महाराज के साथ ही अपने नित्यधाम को पधार गये।

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज की प्रेरणा से तथा पूज्य श्रीगौरांगदास जी महाराज के उपदेश-शिक्षा अनुसार उन्हीं के अनुगत नन्दग्राम के निकटस्थ गिडोह ग्राम निवासी पण्डित रामलालजी ने इस "चैतन्यभागवत" का समग्र अनुवाद कर बहुत दिन पूर्व ही रक्खा था। श्रीगुरुगौरांग की पुनीत कृपा से इसके प्रकाशन में हम अब समर्थ हुए हैं।

कृष्णदास,
( कुसुमसरोवर वाले )
मथुरा

रथयात्रा दिवस
सं०-२०१५

# श्री चैतन्य-भागवत

## आदि खण्ड (प्रथम अध्याय)

आजानुलम्बितभुजौ कनकावदातौ, सङ्कीर्तनैकपितरौ कमलायताक्षौ ।
विश्वम्भरौ द्विजवरौ युगधर्मपालौ, वन्दे जगत्प्रियकरौ करुणावतारौ ॥१॥

नमस्त्रिकालसत्याय जगन्नाथसुताय च ।
सभृत्याय स-पुत्राय सकलत्राय ते नमः ॥ २ ॥

( श्री मुरारि गुप्तस्य श्लोकाः )

अवतीर्णौ स्वकारुण्यौ परिच्छिन्नौ सदीश्वरौ ।
श्रीकृष्णचैतन्य-नित्यानन्दौ द्वौ भ्रातरौ भजे ॥ ३ ॥

स जयति विशुद्धविक्रमः कनकाभः कमलायतेक्षणः ।
वरजानुविलम्बि-सद्भुजो बहुधा-भक्ति-रसाभि-नर्त्तकः ॥ ४ ॥

जयति जयति देवः कृष्णचैतन्यचन्द्रो, जयति जयति कीर्त्तिस्तस्य नित्या पवित्रा ।
जयति जयति भृत्यस्तस्य विश्वेशमूर्त्ते, जयति जयति नृत्यं तस्य सर्व-प्रियाणाम् ॥५॥

आद्ये श्रीचैतन्य-प्रिय-गोष्ठीर चरणे । अशेष प्रकारे मोर दण्ड-परणामे ॥१॥
तबे वन्दों श्रीकृष्ण-चैतन्य महेश्वर । नवद्वीपे अवतार नाम विश्वम्भर ॥२॥

---

अनुवाद—जिनकी भुज युग आजानुलम्बित, जिनका श्री अङ्ग सुवर्ण सदृश उज्ज्वल और कमनीय, जिनके नयन-द्वय कमलदल सदृश विस्तीर्ण, जो श्री हरिनाम संकीर्त्तन के एक मात्र पिता (जन्म दाता), विश्व संसार के भरण पोषण कर्त्ता, युग धर्म पालक, जगत् के प्रियकारी, ब्राह्मणों के मुकुटमणि एवं करुणावतार हैं, मैं इन दोनों श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभु की वन्दना करता हूँ ॥१॥ हे नाथ विश्वम्भर ! आप त्रिकाल सत्य हैं, श्रीजगन्नाथ मिश्र के पुत्र हैं । मैं भृत्य, पुत्र (वात्सल्य पात्र) एवं कलत्र के सहित आपको नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥ करुणा उपादान से देह संगठित होने के कारण कारुण्य ही जिनका एक मात्र स्वरूप है, परिच्छिन्न से प्रतीयमान होकर भी जो दोनों सत् स्वरूप एवं ईश्वर हैं, मैं जगत् में अवतीर्ण उन श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु एवं श्रीनित्यानन्द प्रभु दोनों भ्राताओं के भजन करता हूँ ॥ ३ ॥ इस तृतीय श्लोक के आगे छापे के ग्रन्थ में एक श्लोक और अधिक मिलता है । जो अपरिमित विशुद्ध विक्रमशाली, स्वर्णकान्ति विशिष्ट, कमल दल लोचन, अति सुन्दर आजानुलम्बित षड्भुज युक्त एवं जो भक्तिरस मग्न होकर अभिनव नृत्य करते हैं, उन श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की जय हो ॥ ४ ॥ लीलामय श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्र की जय हो, उनकी नित्य पवित्र कीर्त्ति की जय हो, जय हो, उस निखिल विश्व के ईश्वर के भृत्य वर्ग की जय हो, जय हो और उन प्रिय वर्ग के नृत्य की जय हो, जय हो ॥ ५ ॥ अनुवाद—प्रथम श्रीकृष्णचैतन्य प्रिय-परिवार के चरणों में मेरी अशेष प्रकार से दण्डवत् प्रणाम है ॥१॥ तदनन्तर श्रीकृष्णचैतन्य महेश्वर की वन्दना करता

'आमार भक्तेर पूजा आमा हैते बड़' सेइ प्रभु वेदे भागवते कैला दढ़ ॥३॥

तथाहि-भा० ११।१९।२१ 'मद्भक्त पूजाऽभ्यधिका' ॥

एतेके करिल आगे भक्तेर वन्दन । अतएव आछे कार्य सिद्धिर लक्षण ॥४॥

इष्ट देव वन्दों मोर नित्यानन्द राय । चैतन्य-कीर्त्तन स्फुरे जाँहार कृपाय ॥५॥

सहस्र-वदन वन्दों प्रभु बलराम । जाँहार सहस्रमुख कृष्ण-जशो धाम ॥६॥

जे प्रभु चैतन्य-जश सहस्रेक मुखे । गाइते आछेन प्रभु संकर्षण रूपे ॥७॥

महा रत्न थुइ जेन महाप्रिय स्थाने । जशो रत्न भाण्डार श्री अनन्त वदने ॥८॥

अतएव आगे बलरामेर स्तवन । करिले से मुखे स्फुरे चैतन्य कीर्त्तन ॥९॥

सहस्रेक फणाधर प्रभु बलराम । जतेक करये प्रभु सकल उद्दाम ॥१०॥

हलधर महाप्रभु प्रकाण्ड शरीर । चैतन्य चन्द्रेर रसे मत्त महा धीर ॥११॥

ततोधिक चैतन्येर प्रिय नाहि आर । निरवधि सेइ देहे करेन विहार ॥१२॥

ताँहान चरित्र जेबा जने शुने गाय । श्रीकृष्ण चैतन्य ताँर परम सहाय ॥१३॥

महा प्रीत हन ताँने महेश पार्वती । जिह्वाय स्फुरये ताँर शुद्धा सरस्वती ॥१४॥

पार्वती-प्रभृति नवार्बुद नारी लैया । सङ्कर्षण पूजे शिव उपासक हइया ॥१५॥

पञ्चम स्कन्धेर एइ भागवत कथा । सर्व वैष्णवेर वन्द्य बलराम गाथा ॥१६॥

---

हूँ जोकि श्रीविश्वम्भर नाम धारण से श्रीनवद्वीप में अवतीर्ण हुए ॥२॥ 'मेरे भक्त की पूजा मुझसे बड़ी है' यह बात प्रभु ने वेद एवं भागवत में दृढ़ की है ॥ ३ ॥ 'मेरे भक्त की पूजा मुझ से अधिक है' ॥ इसलिये पहले भक्त की वन्दना की है,अतएव यह कार्य-सिद्धि का लक्षण है ॥४॥ पश्चात् अपने इष्टदेव श्रीनित्यानन्द-राय प्रभु की वन्दना करता हूँ, जिनकी कृपा से श्रीचैतन्यचन्द्र के नाम,रूप, गुण एवं लीला कीर्त्तन की स्फूर्ति होती है ॥ ५ ॥ ( अभिन्न नित्यानन्द ) सहस्र वदन प्रभु बलराम की वन्दना करता हूँ, जिनके सहस्रों मुख श्रीकृष्ण-यश के निवास स्थान हैं । अतएव भाण्डार स्वरूप हैं ॥६॥ जो प्रभु श्रीसंकर्षण रूप धारण कर अपने सहस्र मुख से श्रीचैतन्यचन्द्र का यश गा रहे हैं ॥ ७ ॥ जिस प्रकार महारत्नों को अपने प्रिय के पास रक्खा जाता है उसी प्रकार से यश रत्न-भाण्डार श्रीअनन्त के वदन में रक्खा है ॥ ८ ॥ अतएव प्रथम प्रभु बल-राम का स्तव करने से स्तवनकारी के मुख में श्रीचैतन्यचन्द्र की स्फूर्ति होती है ॥ ९ ॥ सहस्र फणधारी प्रभु बलराम हैं,श्रीअनन्त रूप में आप जो कुछ करते हैं,सब प्रेमोन्मद से पूर्ण हैं अतएव वे विधि-निषेध के अतीत है ॥ १० ॥ श्री हलधर महाप्रभु विशाल स्वरूप हैं, श्रीचैतन्यचन्द्र के रस में मत्त एवं महाधीर हैं ॥ ११ ॥ उनसे अधिक श्रीचैतन्यचन्द्र का और कोई प्रिय नहीं है, आप निरन्तर उस देह में विहार करते हैं ॥ १२ ॥ जो कोई उनके चरित्र श्रवण एवं गान करते हैं,उनकी श्रीकृष्णचैतन्य परम सहायता करते हैं ॥१३॥ उनके प्रति महेश पार्वती जी महान् प्रीति करते हैं एवं उसकी जिह्वा पर श्रीसरस्वतीजी की स्फूर्ति होती है॥१४॥ श्रीशिव-जी भी पार्वती आदि नौ अरब नारियों के साथ भक्ति-पूर्वक श्रीसङ्कर्षणजी की पूजा करते हैं ॥१५॥ यह कथा श्रीभागवत के पञ्चम स्कन्ध में वर्णित है । श्रीबलरामजी की कथा सर्व वैष्णववृन्द द्वारा वन्दनीय है ॥१६॥

ताँन रास-क्रीड़ा-कथा परम-उदार। वृन्दावने गोपी सने करिला विहार ॥१७॥
दुइ मास बसन्त माधव-मधु-नामे। बलराम रास-क्रीड़ा कहये पुराणे ॥१८॥
सेइ सकल श्लोक एइ शुन भागवते। श्री शुक कहेन शुने राजा परीक्षिते ॥१९॥

तथाहि ( भा० १०।६५।१७-१८-२१-२२ )

द्वौ मासौ तत्र चावात्सीन्मधुं माधवमेव च। रामः क्षपासु भगवान् गोपीनां रतिमावहन् ॥२०॥
पूर्णचन्द्रकलामृष्टे कौमुदी-गन्ध-वायुना। यमुनोपवने रेमे सेविते स्त्रीगणैर्वृतः ॥ २१ ॥
उपगीयमानो गन्धर्वैर्वनिताशोभिमण्डले। रेमे करेणुयूथेशो माहेन्द्र इव वारणः ॥ २२ ॥
नेदुर्दुन्दुभयो व्योम्नि ववृषुः कुसुमैर्मुदा। गन्धर्वा मुनयो रामं तद्वीर्यैरीडिरे तदा ॥ २३ ॥

जे स्त्री सङ्ग मुनिगणे करेन निन्दन। तानाओ रामेर रासे करेन स्तवन ॥२४॥
जाँर रासे देवे आसि पुष्प वृष्टि करे। देवे जाने भेद नाहि कृष्ण हलधरे ॥२५॥
चारि वेदे गुप्त बलरामेर चरित। आमि कि बलिब सब पुराणे विदित ॥२६॥
मूर्ख दोषे केहो केहो ना देखि पुराण। बलराम-रासक्रीड़ा करे अप्रमाण ॥२७॥
एक ठाँइ दुइ भाइ गोपिका-समाजे। करिलेन रास-क्रीड़ा वृन्दावन माँझे ॥२८॥

( तथाहि भा० १०।३४।२० से २३ )

कदाचिदथ गोविन्दो रामश्चाद्भुतविक्रमः। विजह्रतुर्वने रात्र्यां मध्यगौ व्रज-योषिताम् ॥२९॥

---

उनकी परम सुन्दर रास-क्रीड़ा है जिसमें कि जिन्होंने श्रीवृन्दावन में गोपियों के साथ विहार किया है ॥१७॥ वसन्त ऋतु के मधु-माधव (चैत्र-वैशाख) नामक दो महीने में रासक्रीड़ा हुई। बलरामजी की उस रास-क्रीड़ा का पुराण वर्णन करते हैं ॥१८॥ (प्रमाण के लिये) श्रीमद्भागवत पुराण में से उस विहार के ये श्लोक सुनिये, जिनको श्रीशुकदेव जी ने वर्णन किया है और राजा परीक्षित ने सुना है ॥ १९ ॥ भगवान् श्रीराम ( बलराम ) निशा-काल में गोपीजन के सङ्ग रति-केलि का विस्तार करते हुए, चैत्र व वैशाख दोनों महीने श्रीवृन्दावन में निवास करने लगे ॥२०॥ श्री बलराम पूर्णचन्द्र की किरण जाल से और कुमुद गंधयुक्त वायु सेवित श्रीयमुनाजी के उपवन में स्त्रीगणों से परिवृत होकर रमण करने लगे ॥२१॥ हस्तिनी दलपति इन्द्रहस्ती ऐरावत जैसे अनुरागवती युवतीगणों से सुशोभित मण्डल के बीच में अवस्थित होकर रमण करने लगे। उस समय गन्धर्व समूह उनके गुणगान में प्रवृत्त हुए ॥ २२ ॥ उस समय आकाश में ध्वनि होने लगी, गन्धर्वगण आनंदित होकर पुष्प वर्षा करने लगे, मुनिजन पराक्रम माहात्म्य कीर्त्तन करते हुए श्रीराम के स्तव करने लगे ॥२३॥ जो मुनिजन जिस स्त्री सङ्ग करने वाली की निन्दा करते हैं, वही मुनिजन बलरामजी के उसी ( वनिताओं से शोभा प्राप्त ) विहार की स्तुति करते हैं ॥ २४ ॥ देवताओं की दृष्टि में कृष्ण और बलराम में कोई भेद नहीं है, जिनके रास में देवतागण आकर पुष्प वृष्टि करते हैं ॥ २५ ॥ श्री बलराम जी का चरित्र चारों वेदों का गुप्त धन है, इसको मैं ही क्या कहता हूँ, सब पुराणों में प्रसिद्ध है ॥ २६ ॥ परन्तु मूर्खता दोष के कारण कोई-कोई मनुष्य पुराण अध्ययन न करके बलरामजी की रास-क्रीड़ा को असत्य मानते हैं ॥२७॥ दोनों भाई ( कृष्ण-बलराम ) श्रीवृन्दावन के एक ही स्थान पर गोपवनिताओं के मण्डल में रास-विहार करते हैं ॥२८॥ " हे राजन्! एक समय महान् विक्रमी श्रीकृष्ण एवं श्री बलराम उन वनिताओं के मध्यगत होकर

उपगीयमानौ ललितं स्त्रीरत्नैर्बद्धसौहृदैः । स्वलंकृतानुलिप्ताङ्गौ स्रग्विणौ विरजोऽम्बरौ ॥३०॥
निशामुखं मानयन्तावुदितोडुप-तारकम् । मल्लिका-गन्ध-मत्तालि-जुष्टं कुमुद-वायुना ॥३१॥
जगतुः सर्व्वभूतानां मनः श्रवण-मङ्गलं । तौ कल्पयन्तौ युगपत् स्वर-मण्डल-मूर्च्छितम् ॥३२॥

भागवत शुनि जार रामे नहे प्रीत । विष्णु वैष्णवेर पथे से जन वर्ज्जित ॥ ३३ ॥
भागवत जे ना माने से जवन सम । तार शास्ता आछे जन्मे जन्मे प्रभु जम ॥३४॥
एवे केहो केहो नपुंसक वेशे नाचे । वले बलराम रास कोन शास्त्रे आछे ॥ ३५ ॥
कोनो पापी शास्त्र देखिलेओ नाहि माने । एक अर्थ अन्य अर्थ करिया बाखाने ॥३६॥
चैतन्य चन्द्रेर प्रिय-विग्रह बलाइ । तान-स्थाने अपराधे मरे सर्व ठाँइ ॥ ३७ ॥
मूर्त्ति भेद आपने हयेन प्रभु दास । से सब लक्षण अवतारेइ प्रकाश ॥ ३८ ॥
सखा, भाइ, व्यजन, शयन, आवाहन । गृह, छत्र, वस्त्र, जत भूषण आसन ॥३९॥
आपने सकल रूपे सेवेन आपने । जारे अनुग्रह करे, पाइ सेइ जने ॥ ४० ॥

तथाहि यामुनमुनि-विरचितस्तोत्रे (४० नम्बर) अथवा अनन्तसंहितायां धरणीशेषसम्वादे—

"निवास-शय्यासनपादुकांशुकोपधानवर्षातपवारणादिभिः ।
शरीरभेदैस्तव शेषतां गतै, र्यथोचितं शेष इतीरितो जनैः ॥"

---

निशा काल में वन में विहार करते हैं ॥ २९ ॥ वे सब स्त्री-रत्न, बद्ध सौहृद होकर, ललित स्वर से, उन दोनों के गुण-गान करने लगीं । वे दोनों भाई सुन्दर रूप से अलंकृत एवं दोनों के बाहु चन्दन से अनुलिप्त थे और गलदेश में माला एवं कटितट में निर्मल वसन पहने हुए थे ॥ ३० ॥ हे राजन् ! उसी निशा के प्रारम्भ में चन्द्र एवं तारका निकर उदित हुए थे, मल्लिका पुष्प के सौरभ से अलिकुल मत्त होकर मँडराते थे और कुमुद संसर्गी पवन मन्द-मन्द प्रवाहित होती थी, अतएव राम एवं कृष्ण निज मङ्गल विहार में उन सभी के सत्कार करने लगे ॥ ३१ ॥ तत्पश्चात् दोनों मिलकर अन्य जनों के असाध्य होने पर भी, एक बार में ही स्वर मण्डल मूर्च्छना रचना कर जिस प्रकार से मन और श्रवण का मङ्गल होता है उसी प्रकार से गाने लगते हैं ॥३२॥ जो व्यक्ति भागवत सुनकर भी श्रीबलरामजी के प्रति प्रीति-भाव न रक्खे वह विष्णु एवं वैष्णवों के पथ से भ्रष्ट है ॥ ३३ ॥ और जो भागवत को नहीं मानता है, वह यवन सदृश है जन्म-जन्म में उसका दण्ड विधान उसके प्रभु यमराज द्वारा होता है ॥ ३३ ॥ अब भी कोई-कोई व्यक्ति हिजड़े के वेश में नाचता है ( हिजड़ा जिस तरह रति-रस को न जानकर भी लोगों के मुख से सुनकर भाव प्रदर्शित करता है, उसी प्रकार वह आदमी भी शास्त्र मर्म को न जानकर कहता फिरता है कि बलराम की रास-क्रीड़ा तो कहीं नहीं लिखी इत्यादि ) और कहता है कि "बलराम का रास किस शास्त्र में है ?" ॥ ३४ ॥ कोई-कोई पापीजन तो शास्त्र देखकर भी नहीं मानते हैं, वे एक अर्थ का दूसरा अर्थ करके वर्णन करते हैं ॥ ३५ ॥ श्री बलरामजी ( श्री नित्यानन्द ) श्रीचैतन्यचन्द्रजी की प्रिय-विग्रह हैं, इनके निकट अपराधी होकर वे सर्वत्र ही दुःख पाकर मरते हैं ॥ ३६-३७ ॥ प्रभु (श्रीचैतन्यचन्द्र) दूसरी मूर्त्ति धारण कर आपही दास बन गये हैं, इस (दास-मूर्त्ति) के सब लक्षण अवतार में ही प्रकाश पा रहे हैं ॥ ३८ ॥ आप ( श्रीनित्यानन्द ) सखा, भाई, व्यजन, शय्या, वाहन, गृह, छत्र, वस्त्र, सम्पूर्ण भूषण, आसन इन सब रूपों से अपनी ( श्रीचैतन्य-चन्द्र की ) सेवा करते हैं, आप ( श्रीनित्यानन्द ) जिसके ऊपर अनुग्रह करते हैं वही इस ( तत्त्व ) को समझ सकता है ॥ ३९-४० ॥

अनन्तेर अंशे श्रीगरुड़ महाबली । लीलाय वहेन कृष्ण हइ कुतुहली ॥ ४१ ॥
कि ब्रह्मा, कि शिव, कि सनकादि-कुमार । व्यास, शुक, नारदादि 'भक्त'नाम जाँर ॥४२॥
सभार पूजित श्रीअनन्त महाशय । सहस्र-बदन प्रभु भक्ति-रसमय ॥ ४३ ॥
आदिदेव महायोगी ईश्वर वैष्णव । महिमार अन्त इहा ना जानये सब ॥ ४४ ॥
सेवन शुनिला एबे शुनो ठाकुराल । आत्म-तन्त्रे जेन मते वैसेन पाताल ॥ ४५ ॥
श्रीनारद गोसाञि तुम्बुरु करि संगे । जे यश गायेन ब्रह्मा स्थाने श्लोक बन्धे ॥४६॥

तथाहि ( भा० ५-२५ । ६ से १३ )

उत्पत्ति-स्थिति-लय-हेतवोऽस्य कल्पाः, सत्त्वाद्याः प्रकृतिगुणा यदीक्षयासन् ।
यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकमात्मन् , नानाधात् कथमुह वेद तस्य वर्त्म ॥ ४७ ॥
मूर्तिं नः पुरुकृपया बभार सत्त्वं, संशुद्धं सदसदिदं विभाति यत्र ।
यल्लीलां मृगपतिराददेऽनवद्यामादातुं स्वजनमनांस्युदारवीर्य्यः ॥ ४८ ॥
यन्नाम श्रुतमनुकीर्त्तयेदकस्मात् , आर्त्तो वा यदि पतितः प्रलम्भनाद्वा ।
हन्त्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं, कं शेषाद्भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः ॥ ४९ ॥

---

हे श्रीशेषजी ! आपको शेष नाम से पुकारना यथोचित ही है, क्योंकि आपने वास-स्थान, शय्या, आसन, पादुका, वस्त्र, तकिया एवं छत्र आदि रूप से दूसरा शरीर धारण कर, प्रभु की सेवा के समस्त उपकरणों का शेष ( अन्त ) कर दिया है ॥४०॥ श्री अनन्तदेव ( शेष ) जी के अंश महाबली श्रीगरुड़ भी आनन्दयुक्त होकर अनायास ( खेल ) में ही श्रीकृष्ण को यत्र-तत्र वहन करते हैं ॥ ४१ ॥ क्या ब्रह्मा, क्या शिव, क्या सनकादि चारों कुमार, क्या व्यास, क्या शुकदेव, क्या नारद आदि जो 'भक्त' नामधारी हैं ॥ ४२ ॥ भक्ति-रसमय महाशय, सहस्र बदनयुक्त प्रभु श्रीअनन्तदेव उन ( ब्रह्मा-शिवादि ) सबके पूजित हैं ॥ ४३ ॥ आप आदिदेव हैं, महायोगी हैं, ईश्वर हैं, विष्णुभक्त हैं और महिमा की परावधि हैं। इन सब बातों को सब लोग नहीं जानते हैं ॥ ४४ ॥ हे श्रोतागण ! आपने अब तक श्रीअनन्तदेव का सेवकत्व सुना, अब प्रभुत्व सुनिये ( जिसके द्वारा आपको मालूम पड़ेगा कि ) आप कैसे आत्म-तन्त्र भाव से पाताल में विराज रहे हैं ॥ ४५ ॥ जिनके यश को श्रीनारद गोस्वामी श्लोकों द्वारा तुम्बुरु नामक गन्धर्व पति को साथ लेकर श्रीब्रह्मा जी की सभामें गाते हैं ॥ ४६ ॥ यथा— इस जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं लय के कारण स्वरूप सत्त्वादि गुन त्रय, जिनके कटाक्ष मात्र से अपने-अपने कार्य में समर्थ हुए हैं, जिनका स्वरूप अनादि एवं अनन्त है। जो एक मात्र वस्तु स्वरूप होकर भी अपने में नाना कार्य प्रपञ्च का विधान किये हैं उन ब्रह्मरूपी भगवान का तत्त्वको लोग कैसे जान सकते हैं ॥ ॥ ४७ ॥ और जिनमें सत् असत् वस्तु समूह प्रकाश पाते हैं, जो उदार वीर्य प्रभु अस्मदादि भक्तजन के प्रति अतिशय कृपाको प्रकाश कर, शुद्ध सत्व मूर्त्ति को धारण किये है, निज आत्मीय-जनों के मन को वश करने के लिये, जिनसे सर्व मङ्गलमय लीला पराक्रम महा बलवान् सिंह भी पढ़ा है ॥ ४८ ॥ और जिनके मङ्गलमय स्वरूप नाम,दूसरों के मुख से श्रवण कर, पीड़ित एवं पतित-जन भी, यदि अकस्मात् अथवा परिहास क्रम से भी एक बार उच्चारण करें, तो उस व्यक्ति से भी अन्य प्राणियों के अशेष कलुष सद्य विनष्ट होते हैं और उच्चारण करने वाले मनुष्य जो स्वयं शुद्ध होते हैं, इसके बारे में और कहना ही क्या है ? अतएव मुमुक्षु जन इस भगवान् को छोड़कर और किसका आश्रय ग्रहण

मूर्द्धन्यर्पितमणुवत सहस्र मूर्द्धनो, भूगोल सगिरि सरित्-समुद्र सत्त्वम् ।
आनन्त्यादविमित-विक्रमस्य भूम्नः, को वीर्य्याण्यपि गणयेत् सहस्रजिह्वः ॥ ५० ॥
एवं प्रभावो भगवाननन्तो, दुरन्तवीर्य्योरुगुणानुभावः ।
मूले रसायाः स्थित आत्मतन्त्रो, यो लीलया क्ष्मां स्थितये बिभर्त्ति ॥ ५१ ॥

सृष्टि, स्थिति, प्रलय सत्त्वादि जत गुन । जाँर दृष्टिपाते हय, जाय पुनः पुन ॥ ५२ ॥
अद्वितीय रूप, सत्य, अनादि, महत्त्व । तथापि अनन्त हये, के बुझे से तत्त्व ॥ ५३ ॥
शुद्ध-सत्त्व-मूर्त्ति प्रभु धरे करुणाये । जे विग्रहे सभार प्रकाश सुलीलाये ॥ ५४ ॥
जाँहार तरङ्ग शिखि सिंह महाबली । निज-जन मनोरञ्जे हइ कुतुहली ॥ ५५ ॥
जे अनन्त नामेर श्रवण-सङ्कीर्त्तने । जे ते मते केने नाहि बोले जेते जने ॥ ५६ ॥
अशेष जन्मेर बन्ध छिण्डे सेइ क्षणे । अतएव वैष्णव ना छाड़े कभु ताने ॥ ५७ ॥
शेष बइ संसारेर गति नाहि आर । अनन्तेर नामे सर्व्व जीवेर उद्धार ॥ ५८ ॥
अनन्ता पृथिवी, गिरि-समुद्र-सहिते । जे प्रभु धरये शिरे, पालन करिते ॥ ५९ ॥
सहस्र फणार एक फणे बिन्दु जेन । अनन्त विक्रम, ना जानये आछे हेन ॥ ६० ॥

---

करेंगे ॥ ४९ ॥ अहो ! जिनके सहस्र मस्तक हैं और उनमें से एक मस्तक के ऊपर नदी, सागर, गिरि एवं प्राणियों के सहित यह निखिल भूमण्डल स्थित है और अनन्त वीर्य होने से तो प्रभु अपरिमित हैं, ऐसा कौन व्यक्ति है जो सहस्र जिह्वा लाभ करके भी उस महाकाय, बहुरूप, महावीर्य परमेश्वर के वीर्य की गणना कर सके ? ॥५०॥ अहो ! भगवान् अनन्तदेव का ऐसा प्रभाव है कि उनके बल और अनुभव का अन्त नहीं है, किन्तु आप ऐसे होकर भी इस पृथ्वी के नीचे अवस्थित होकर, लोक स्थिति के लिये इसको धारण किये हुए हैं, उनका आधार कोई भी नहीं है, आप ही अपने आधार स्वरूप हैं ॥ ५१ ॥ जिनकी दृष्टिपात मात्र से बारम्बार सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय होती है,सत्त्व आदि सर्व गुण, कार्य-कारिता एवं विराम को प्राप्त होते हैं तथा जो अद्वितीय रूप, सत्य, अनादि और सर्व महत्ता के आधार हैं, फिर वही प्रभु अनन्त रूप को क्यों धारण किये हुए हैं ? इस तत्त्व को कौन जानता है ?॥५२-५३॥वह प्रभु करुणा करके शुद्ध सत्त्व मूर्त्तिको धारण किये हुए हैं और सुलीलावश उनके शरीर में सत्-असत् वस्तु समूह प्रकाश पाते हैं ॥ ५४ ॥ महा बलवान सिंह भी जिनको लीला-तरङ्ग को सीखकर आनन्द पूर्वक आत्मीय जनों का मनोरञ्जन करता है ॥५५॥ जिन श्रीअनन्तदेव का नाम ( दूसरों के मुख से ) श्रवण कर, कीर्त्तन ( उच्चारण ) करने से, चाहे उसे कैसा भी ( रोगी व पतित आदि ) मनुष्य किसी भी प्रकार (अकस्मात् व परिहासादि से) क्यों न उच्चारण करे ॥ ५६ ॥ उच्चारण करने वाले के द्वारा अन्य जनों के भी अशेष जन्मों के बन्धन सद्य विनष्ट होते हैं। इसीलिये वैष्णव जन श्रीअनन्तदेव का आश्रय नहीं त्यागते हैं ॥ ५७ ॥ श्री 'शेष' जी के सिवाय इस संसार का और कोई रक्षक नहीं है। श्री 'शेष' जी के नाम से सब जीवों का उद्धार होता है ॥५८॥ वे प्रभु अपने सहस्र फणों में से एक फण के ऊपर गिरि एवं समुद्र सहित यह निखिल भूमण्डल, पालन करने के लिये धारण किये हुए हैं ॥ ५९ ॥ अनन्त विक्रम प्रभु ( शेषजी ) सहस्र फणों में एक फण के ऊपर धारण कर उसको बिन्दु की तरह भी अनुभव नहीं करते हैं ॥ ६० ॥ वे आदिदेव, महीधर श्रीशेषजी अपने सहस्र मुखों

सहस्र बदने कृष्ण-जश निरन्तर । गाइते आछेन आदि-देव, महीधर ॥ ६१ ॥

* श्रीरागः *

कि ओरे राम गोपाले वाद लागियाछे ।
ब्रह्मा रुद्र सुर सिद्ध, मुनीश्वर, आनन्दे देखिछे ॥ ध्रु० ॥

गायेन अनन्त, श्रीजशेर नाहि अन्त । जय भंग कारु नाहि दोंहे बलवन्त ॥ ६२ ॥
अद्यापिह शेष-देव सहस्र-श्रीमुखे । गायेन चैतन्य-जश अन्त नाहि देखे ॥ ६३ ॥
लाग बलि जाय वेगे सिन्धु तरिवारे । जशेर सिन्धु नादेय कूल अधिक अधिक बाढ़े ।६४।

तथाहि ( भा० २।७।४० ) नारदं प्रति ब्रह्म-वाक्यं—

नान्तं विदाम्यहममी मुनयोऽग्रजास्ते, मायाबलस्य पुरुषस्य कुतोऽवरं ये ।
गायन् गुणान् दशशतानन आदिदेवः शेषोऽधुनापि समवस्यति नास्य पारम् ॥६५॥

पालन निमित्त हेन प्रभु रसातले । आछे महाशक्ति-धर निज कुतूहले ॥६६॥
ब्रह्मार सभाय गिया नारद आपने । एइ गुण गायेन तुम्बुरु-बीणा-सने ॥६७॥
ब्रह्मादि विह्वल एइ जशेर श्रवणे । इहा गाइ नारद पूजित सर्व स्थाने ॥६८॥
कहिलाङ एइ किछु अनन्त प्रभाव । हेन प्रभु नित्यानन्दे कर अनुराग ॥६९॥

---

से निरन्तर कृष्ण-यश गा रहे हैं ॥ ६१ ॥ अरे भाई देखो ! अनन्तदेव से अभिन्न श्रीबलराम और श्रीगोपालजी में कैसी होड़ा-होड़ी लग रही है,जिसको ब्रह्मा व शिवादि देवगण एवं सिद्ध, मुनीश्वर आनन्द पूर्वक देखते हैं। ( यहाँ दो पक्ष हैं प्रथम पक्ष—श्रीअनन्तदेव, द्वितीय पक्ष—श्रीप्रभु का अनन्त यश ) श्रीअनन्तदेव गान करते हैं, उधर प्रभु के श्रीयश का अन्त नहीं है, दोनों पक्ष ही बलशाली हैं, किसी की हार एवं जीत नहीं होती है ॥६२॥आज तक भी श्रीशेषदेव अपने सहस्रों मुख से श्रीचैतन्य-यश गाते हैं,लेकिन अन्त होता हुआ नहीं देखते हैं ॥६३॥ शेषजी श्रीचैतन्यचन्द्र के यश सिन्धु को पार करने के लिये वेग पूर्वक चलते हैं, परन्तु यशसिन्धु अधिकाधिक बढ़ता ही जाता है और पार वालों को किनारे पर नहीं आने देता है ॥ ६४ ॥ हे नारद ! उस पुरुष की माया के बल का अन्त मैं नहीं जानता हूँ और तुम्हारे अग्रज सनकादि मुनिगण भी नहीं जानते हैं एवं आदिदेव 'शेष' जी सहस्र बदनों से उनके गुण-गान करते हुए आज पर्यन्त भी पार नहीं पाते हैं। तब फिर अन्य की तो बात ही क्या है ॥ ६५ ॥ परम शक्तिशाली ऐसे प्रभु (शेषजी) जगत की रक्षा के लिये आनन्द पूर्वक रसातल में विराजित हैं ॥ ६६ ॥ इसी गुण को स्वयं नारदजी ने ब्रह्मा की सभा में जाकर तुम्बुरु एवं वीणायन्त्र के साथ गान किया है ॥ ६७ ॥ इस ( श्रीबलराम मूल स्वरूप के तत्त्व श्रीअनन्तदेव के ) यश को गाने के कारण ही श्रीनारदजी सब जगह पूजे जाते हैं और इस यश को श्रवण करके ब्रह्मादि भी विभोर रहते हैं ॥ ६८ ॥ यह श्रीअनन्तदेव का कुछ प्रभाव ( यश ) कहा, हे भाइयो ! ऐसे श्रीनित्यानन्द प्रभु से अनुराग कीजिये ॥ ६९ ॥ जो संसार से पार होकर, भक्ति-सागर में डूबना चाहे उसको अवश्य श्रीनित्यानन्द चन्द्र का भजन करना चाहिए ॥ ७० ॥ श्रीग्रन्थकार कहते हैं—श्रीवैष्णवों के चरण में मेरा यही निवेदन है कि मुझको प्रत्येक जन्म में ( सर्वदा ) श्रीबलराम ( श्रीनित्यानन्द ) प्रभु ( स्वामी ) मिलें ॥ ७१ ॥ जिस प्रकार द्विज, विप्र, ब्राह्मण में नाम मात्र का भेद है, उसी प्रकार श्रीनित्यानन्द, श्रीअन-

संसारेर पार हइ भक्तिर सागरे । जे डूबिब से भजुक निताइ चाँदेरे ॥७०॥
वैष्णवेर पाये मोर एइ मनस्काम । जन्मे जन्मे प्रभु मोर हउ बलराम ॥७१॥
द्विज, विप्र, ब्राह्मण जेहेन नाम भेद । एइ मत नित्यानन्द, अनन्त, बलदेव ॥७२॥
अन्तर्यामी नित्यानन्द बलिला कौतुके । चैतन्य-चरित्र किछु लिखिते पुस्तके ॥७३॥
चैतन्य-चरित स्फुरे शेषेर कृपाय । जशेर भाण्डार वैसे शेषेर जिह्वाय ॥७४॥
अतएव जशोमय-विग्रह अनन्त । गाइल ताहान किछु पाद पद्म द्वन्द ॥७५॥
चैतन्य चन्द्रेर पुण्य श्रवण चरित । भक्त प्रसादे से स्फुरे जानिह निश्चित ॥७६॥
वेद-गुह्य चैतन्य-चरित केवा जाने । ताहा लिखि, जाहा शुनियाछि भक्त-स्थाने ॥७७॥
चैतन्य कथार आदि अन्त नाहि देखि । ताहान कृपाय जे बोलायेन ताहा लेखि ॥७८॥
काष्ठेर पुतली जेन कुहके नाचाय । एइमत गौरचन्द्र मोरे जे बोलाय ॥ ७९ ॥
सर्व वैष्णवेर पाये मोर नमस्कार । इथे अपराध किछु नहुक आमार ॥ ८० ॥
मन दिया शुन भाइ श्रीचैतन्य कथा । भक्त संगे जे जे लीला कैला जथा तथा ॥८१॥
त्रिविध चैतन्य लीला आनन्देर धाम । आदिखण्ड, मध्यखंड, शेषखंड नाम ॥८२॥
आदिखंडे प्रधानतः विद्यार विलास । मध्यखंडे चैतन्येर कीर्त्तन प्रकाश ॥ ८३ ॥
शेषखंडे सन्यासी रूपे नीलाचले स्थिति । नित्यानन्द-स्थाने समर्पिया गौड़-क्षिति ॥८४॥

---

न्तदेव और श्रीबलराम में नाम मात्र का भेद है ॥ ७२ ॥ श्रीग्रन्थकार कहते हैं—अन्तर्यामी श्रीनित्यानन्द प्रभु कौतुक पूर्वक मुझ से, कुछ 'चैतन्य-चरित्र' पुस्तक में लिखने के लिये बोले ॥ ७३ ॥ श्रीशेषजी की कृपा से 'चैतन्य-चरित्र' स्फूर्त्ति पाता है क्योंकि 'चैतन्य-चरित्र' का भाण्डार श्रीशेषजी की जिह्वा पर अधिष्ठित है ॥ ७४ ॥ और इसी से आप श्रीअनन्तदेव 'चैतन्य-चरित्र' के यश की मूर्त्ति ( शरीर ) हैं । इसीलिये (चैतन्य-चरित्र गाने के लिये) मैंने प्रथम इनके चरणारविन्द युगल की थोड़ी सी महिमा गान की है ॥७५॥ पुण्य-श्रवण स्वरूप श्री 'चैतन्य-चरित्र' भक्त की कृपा से ही स्फुरित होता है, यह निश्चय समझिये ॥७६॥ 'चैतन्य-चरित्र' जो वेद गुह्य है उसको कौन जानता है । मैंने जो कुछ भक्तों से सुना है वह लिखता हूँ॥७७॥ श्री 'चैतन्य-चरित्र' का आदि, अन्त कुछ नहीं मुझे सूझ रहा है वे कृपा करके जो कहलवा रहे हैं वही लिखता हूँ ॥ ७८ ॥ जिस प्रकार परवश होकर काठ की पुतली जादू से नाचती है उसी प्रकार श्रीगौरचन्द्र या श्रीनित्यानन्द मेरे द्वारा जो बुलवाते हैं उसी को मैं लिखता हूँ ॥ ७९ ॥ इस उक्ति को कोई 'गर्वमयी' न समझे । इसलिये श्रीग्रन्थकार प्रसंग के बीच में ही कहते हैं-मैं सर्व वैष्णववृन्द के चरणों में प्रणाम करता हूँ, इसमें मेरा कुछ अपराध न लीजिये ॥ ८० ॥ वह श्री 'चैतन्य-चरित्र' मन देकर सुनिये, जिसमें प्रभु ने जहाँ-जहाँ भक्तों के संग जो-जो लीला की हैं ॥ ८१ ॥ वह आनन्द-धाम श्री चैतन्य-चरित्र तीन भागों में विभक्त है, यथा—आदिखण्ड, मध्यखण्ड और शेषखण्ड ॥८२॥ आदिखण्ड में प्रधानतया श्रीगौरचन्द्र का विद्या-विलास और मध्यखण्ड में 'कीर्त्तन-प्रकाश' का वर्णन है॥८३॥शेषखण्ड में नित्यानन्दजी को गौड़-देश समर्पण करके प्रभु ( श्रीगौरचन्द्र ) की सन्यासी रूप से नीलाचल ( जगन्नाथपुरी ) में अवस्थिति है ८४

नवद्वीपे आछे जगन्नाथ मिश्रवर । बसुदेव प्राय तेहों स्वधर्मे तत्पर ॥ ८५ ॥
तान पत्नी शची-नाम महा पतिव्रता । द्वितीय देवकी जेन सेइ जगन्माता ॥ ८६ ॥
तान गर्भे अवतीर्ण हैला नारायण । श्रीकृष्णचैतन्य नाम संसार-भूषण ॥ ८७ ॥
आदिखण्डे फाल्गुनी पूर्णिमा शुभ दिने । अवतीर्ण हैला प्रभु निशाय ग्रहणे ।.८८॥
हरि-नाम मंगल उठिल चतुर्द्दिगे । जन्मिला ईश्वर सङ्कीर्त्तन करि आगे ॥ ८९ ॥
आदिखण्डे शिशुरूपे अनेक प्रकाश । पिता माता प्रति देखाइला गुप्त वास ॥ ९० ॥
आदिखंडे ध्वज, वज्र अंकुश, पताका । गृह माझे अपूर्व देखिला पिता-माता ॥९१॥
आदिखंडे प्रभुरे हरियाछिला चोरे । चोर भाण्डाइया प्रभु आइलेन घरे ॥ ९२ ॥
आदिखण्डे जगदीश हिरण्येर घरे । नैवेद्य खाइला प्रभु श्रीहरिवासरे ॥ ९३ ॥
आदिखण्डे शिशु छले करिया क्रन्दन । बोलाइला सर्व्व मुखे श्रीहरि-कीर्त्तन ॥ ९४ ॥
आदिखण्डे लोक वर्ज्य हाण्डीर आसने । वसिया मायेरे तत्त्व कहिला आख्याने ॥९५॥
आदिखण्डे गौरांगेर चाञ्चल्य अपार । शिशु-गण संगे जेन गोकुलविहार ॥ ९६ ॥
आदिखण्डे करिलेन आरम्भ पढ़िते । अल्पे अध्यापक हैला सकल शास्त्रेते ।' ९७ ॥
आदिखंडे जगन्नाथ मिश्र-परलोक । विश्वरूप-सन्यास शचीर दुइ शोक ॥ ९८ ॥
आदिखंडे विद्या विलासेर महारम्भ । पाषण्डी देखये जेन मूर्त्ति मन्त दम्भ ॥ ९९ ॥

---

( आदिखण्ड की कथा में ) श्रीनवद्वीप में 'श्रीजगन्नाथ मिश्र' नाम के एक विप्रवर हैं, जो श्रीवसुदेव की तरह स्वधर्म परायण हैं ॥ ८५ ॥ उनकी 'शची' नाम की पत्नी है जो महापति-व्रता हैं । वह जगत् माता श्री-देवकी का मानो दूसरा शरीर है ॥ ८६ ॥ उनके गर्भ से संसार के भूषण श्रीकृष्णचैतन्य नाम से 'नारायण' प्रकट हुए ॥ ८७ ॥ जो फालगुनी पूर्णिमा के शुभ दिन की रात्रि के ग्रहण समय में अवतीर्ण हुए ॥ ८८ ॥ ईश्वर ( श्रीगौरचन्द्र ) सङ्कीर्त्तन को सामने कर अवतीर्ण हुए इसलिये पहिले चारों दिशाओं में 'हरि' नाम की मङ्गल ध्वनि हुई ॥ ८९ ॥ आदिखण्ड में प्रभु के शिशु रूप से अनेक प्रकाश हैं, आपने जिनमें माता-पिता को अपने अप्रकट धाम भी दिखाये ॥ ९० ॥ आदिखण्ड में पिता-माता ने घर में अपूर्व ध्वज, वज्र, अंकुश और पताका के चिह्न देखे ॥ ९१ ॥ आदिखण्ड में चोर प्रभु को हरण करके ले जाते हैं, परन्तु प्रभु चोरों को भुलावा देकर घर ही लौट आते हैं ॥ ९२ ॥ आदिखण्ड में प्रभु ने 'जगदीश' एवं 'हिरण्य' नामक भक्तों के घर श्रीहरिवासर ( श्रीएकादशी ) के दिन नैवेद्य भोजन किये हैं ॥ ९३ ॥ आदिखण्ड में बालकोचित रुदन का छल करके प्रभु ने सबके मुख में 'श्रीहरि' नाम कीर्त्तन कराया ॥९४॥ आदिखण्ड में लोक-वर्ज्य ( सदाचार-विरुद्ध ) हाण्डी के आसन पर बैठकर माताजी को प्रसङ्ग विस्तार पूर्वक तत्त्व कहा ॥९५॥ आदिखण्ड में शिशुओं के साथ श्रीकृष्ण के गोकुलबिहारी की भाँति श्रीगौरचन्द्र की अपार, चाञ्चल्यमयी लीला का वर्णन है ॥ ९६ ॥ आदिखंडमें प्रभु ने विद्या-पढ़ना आरम्भ किये हैं, जिससे अल्पकाल में ही सर्व शास्त्रों के अध्यापक हो जाते हैं ॥ ९७ ॥ आदिखण्ड में 'जगन्नाथ मिश्र का परलोक गमन' एवं 'विश्वरूप का सन्यास लेना' शची मा के इन दोनों शोकोंका वर्णन है॥९८॥आदिखण्ड में जब कि प्रभुने विद्या-विलास का

आदिखण्डे सकल पढ़ुयागन मेलि जाह्नवीर तरंगे निभर जल केलि ॥ १०० ॥
आदिखण्डे गौरांगेर सर्व शास्त्रे जय। त्रिभुवने हेन नाहि जे सन्मुख हय ॥ १०१ ॥
आदिखण्डे बङ्गदेशे प्रभुर गमन। प्राच्य-भूमि तीर्थ हैल पाइ श्रीचरण ॥ १०२ ॥
आदिखण्डे पूर्व-परिग्रहेर विजय। शेषे राज पण्डितेर कन्या परिणय ॥ १०३ ॥
आदिखण्डे वायु-देह-मान्द्य करि छल। प्रकाशिला प्रेम भक्ति-विकार सकल ॥ १०४ ॥
आदिखण्डे सकल भक्तेरे शान्ति दिया। आपने भ्रमेन महा पण्डित हइया ॥ १०५ ॥
आदिखण्डे दिव्य-परिधान-दिव्य-सुख। आनन्दे भासेन शची देखि चाँद मुख ॥१०६॥
आदिखण्डे गौरांगेर दिग्विजयि जय। शेषे करिलेन तार सर्व-बन्धक्षय ॥ १०७ ॥
आदिखण्डे सकल भक्तेरे मोह दिया। सेइ खाने प्रभु भ्रमे सबारे भाण्डिया ॥१०८॥
आदि खण्डे गया गेला विश्वम्भरराय। ईश्वर पुरीरे कृपा करिला जथाय ॥ १०९ ॥
आदि खण्डे आछे कत अनन्त विलास। किछु शेषे वर्णिवेन महामुनि व्यास ॥११०॥
बाल्य-लीला आदि करि जतेक प्रकाश। गयार अवधि आदि-खण्डेर विलास ॥१११॥
मध्यखण्डे विदित हइला गौर सिंह। चिनिलेन जत सब चरणेर भृङ्ग ॥ ११२ ॥

---

महारम्भ किया है उस समय पाखण्डी लोग आपको इस प्रकार देखते हैं, जैसे साक्षात् दम्भ की मूर्ति हो ॥ ९९ ॥ आदिखण्ड में प्रभु ने सब विद्यार्थियों के साथ उन्मत्त होकर श्रीजाह्नवी की तरङ्गों में क्रीड़ा की है ॥ १०० ॥ आदिखण्ड में प्रभु ने सर्व शास्त्रों में विजय पाई है, उस समय कोई भी ऐसा नहीं था जो ( शास्त्रार्थ करने के लिये ) प्रभु के सामने आसके ॥ १०१ ॥ आदिखण्ड में प्रभु वंगदेश गये हैं, उन श्रीचरणों को पाकर वह पूर्व देश तीर्थ बन गया ॥ १०२ ॥ आदिखण्ड में प्रथम परिणीता पत्नी के विजय (नित्य-धाम-गमन ) एवं तत्पश्चात् श्री 'सनातन राज-पण्डित' की कन्या के साथ परिणय है ॥ १०३ ॥ आदिखण्ड में प्रभु ने अपनी देह में वायु-प्रकोप का छल करके प्रेम-भक्ति के सम्पूर्ण विकारों का प्रकाश किया है॥१०४॥ आदिखण्ड में सब भक्तों को शान्ति देकर आप महापण्डित होकर भ्रमण ( विचरण ) करते हैं ॥ १०५ ॥ आदिखण्ड में प्रभु के दिव्य वस्त्रादिक परिधान व दिव्य-सुख भोग एवं प्रभु के चन्द्र मुख को देखकर शची मा का आनन्द में बह जाना वर्णित है ॥ १०६ ॥ आदिखण्ड में श्रीगौर सुन्दर ने दिग्विजयी को जीत कर पश्चात् उसके सर्व बन्धन नष्ट किये हैं ॥ १०७ ॥ आदिखण्ड में प्रभु ने सम्पूर्ण भक्तों को मोह में डालकर उन्हें भुलावा देकर उसके पास ही भ्रमण किया है ॥ १०८ ॥ आदिखण्डमें 'श्रीविश्वम्भरराय' गया गये है जहाँ पर कि ईश्वरपुरी के प्रति कृपा की है ॥ १०९ ॥ आदिखण्ड में और कितने ही अनन्त विलास हैं, कुछ समय पश्चात् उनको महामुनि-व्यास-शक्ति-सम्पन्न (श्रीकृष्णदास कविराज आदि महात्मागण) वर्णन करेंगे ॥ ११० ॥ प्रभु ने बाल्य-लीला से प्रारम्भ करके गया से प्रत्यागमन पर्यन्त जितने चरित्र प्रकाशित किये हैं, वह सब 'आदिखण्ड विलास' ( चरित्र ) है ॥ १११ ॥ अब मध्यखण्ड के सूत्र बतलाते हैं—मध्यखण्ड में श्रीगौरसिंह ने अपना स्वरूप प्रकाशित किया और आपके चरण-कमल के जितने भृङ्गरूपी भक्त थे, उन

मध्यखण्डे अद्वैतादि-श्रीवासेर घरे । व्यक्तहैला वसि विष्णु-खट्टार उपरे ॥ ११३

मध्यखण्डे नित्यानन्द सङ्गे दरशन । एक ठाञि दुइभाइ करिला कीर्त्तन ॥ ११४ ॥

मध्यखण्डे षड्भुज देखिला नित्यानन्द । मध्यखण्डे अद्वैत देखिला विश्व-अङ्ग ॥ ११५ ॥

नित्यानन्द व्यास पूजा कहि मध्यखण्डे । जे प्रभुरे निन्दा करे पापिष्ठ पाषण्डे ॥११६॥

मध्यखण्डे हलधर हैला गौर चन्द्र । हस्ते हल मुसल दिलेन नित्यानन्द ॥ ११७ ॥

मध्यखण्डे दुइ-अति-पातकि- मोचन । 'जगाइ' 'माधाइ' नाम विख्यात भुवन ॥ ११८ ॥

मध्यखण्डे कृष्ण-राम, चैतन्य-निताइ । श्याम शुक्ल रूप देखिलेन शची 'आइ' ॥११९॥

मध्यखण्डे चैतन्येर महा परकाश । सात प्रहरिया भाव ऐश्वर्य्य-विलास ॥ १२० ॥

सेइ दिन अमायाय कहिलेन कथा । जे जे सेवकेर जन्म छिल जथा जथा ॥ १२१ ॥

मध्यखण्डे वैकुण्ठेर नाथ नारायण । नगरे नगरे कैला आपने कीर्त्तन ॥ १२२ ॥

मध्यखण्डे काजिर भाङ्गिया घर द्वार । निज शक्ति प्रकाशिया कीर्त्तन अपार ॥ १२३ ॥

पलाइल काजि प्रभु गौराङ्गेर डरे । स्वच्छन्दे कीर्त्तन करे नगरे नगरे ॥ १२४ ॥

मध्यखण्डे महाप्रभु वराह हइया । निज तत्त्व मुरारिरे कहिला गर्ज्जिया ॥ १२५ ॥

मध्यखंडे मुरारि स्कन्धे आरोहण । चतुर्भुज हैया कैला अंगने भ्रमण ॥१२६॥

---

सबने आपको पहिचाना ॥ ११२ ॥ मध्यखण्ड में प्रभु ने श्रीवास पण्डित के घर में विष्णु सिंहासन पर बैठ-कर श्रीअद्वैत आचार्य आदि भक्तों को अपना ऐश्वर्य्य दिखलाया है ॥ ११३ ॥ मध्यखण्ड में श्रीनित्यानन्द प्रभु के साथ मिलन हुआ है और दोनों भाइयों ने एक साथ कीर्त्तन किया है ॥ ११४ ॥ मध्यखण्ड में श्री-नित्यानन्द ने श्री गौरचन्द्र को षड्भुज रूप में देखा है और श्रीअद्वैत आचार्य ने प्रभु को विराट् रूपसे देखा है ॥ ११५ ॥ मध्यखण्डमें श्रीनित्यानन्द की व्यास-पूजा कही है। पापी व पाखण्डी-जन जिन प्रभु की निन्दा करते हैं उनके वर्णन है ॥११६॥मध्यखण्ड में जब श्रीगौरचन्द्र श्रीबलराम-भाव में भावित हुए हैं, तब श्रीनित्यानन्द प्रभु ने उनको हाथ में हल व मूपल दिये हैं ॥११७॥ मध्यखण्ड में भुवन-विख्यात 'जगाइ' 'माधाइ' नामक दो अति पातकियों का उद्धार हुआ है ॥ ११८ ॥ मध्यखण्ड में श्रीशचीमा ने कृष्ण व बलराम रूपसे गौरचन्द्र व नित्यानन्द देखे हैं,फिर श्याम (राम) एवं शुक्ल (लक्ष्मण) रूप से देखे हैं॥११९॥ मध्यखण्ड में श्रीगौरचन्द्र का महा प्रकाश है उस ऐश्वर्य-विलास को सात प्रहरिया (जो सात पहर तक रहा) से भी बोलते हैं ॥ १२० ॥ उसी दिन प्रभु ने जिस-जिस सेवक का जहाँ-जहाँ जन्म स्थान था उन सबको उन (स्थानों) का स्पष्ट रूप से कहकर अनुभव कराया है ॥१२१॥ मध्यखण्ड में वैकुण्ठनाथ श्रीनारायण (श्री-गौरचन्द्र) ने स्वयं नवद्वीप के घर-घर में कीर्त्तन कराया है ॥ १२२ ॥ मध्यखण्ड में प्रभुके भक्तों ने काजी का घर-द्वार नष्ट किया है एवं प्रभु ने अपनी शक्ति का प्रकाशन करते हुए अपार कीर्त्तन कराया है ॥१२३। श्रीगौरचन्द्र प्रभु के डर से काजी भाग जाता है और फिर स्वतन्त्रता पूर्वक मुहल्ले में कीर्त्तन होने लगा है ॥ १२४ ॥ मध्यखण्ड में महाप्रभु जी श्रीवराह रूप धारण कर गर्ज्जना करते हुए अपना तत्त्व मुरारि गुप्त से कहते हैं ॥ १२५ ॥ मध्यखण्ड में श्रीगौरचन्द्र ने चतुर्भुज रूप से श्रीमुरारि गुप्त के कन्धे पर आरोहन

मध्यखंडे शुक्लाम्बरेर तन्डुल भोजन । मध्यखंडे नाना काच हैला नारायण ॥१२७॥
मध्यखंडे गौरचन्द्र रुक्मिणीर वेशे । नाचिलेन स्तन पिले जत सब दासे ॥१२८॥
मध्यखण्डे मुकुन्देर दण्ड संग दोषे । शेषे अनुग्रह कैला परम सन्तोषे ॥१२९॥
मध्यखण्डे महाप्रभु निशाये कीर्त्तन । वत्सरेक नवद्वीपे कैला अनुक्षण ॥ १३० ॥
मध्यखण्डे नित्यानन्द-अद्वैते कौतुक । अज्ञजने बुझे जेन कलह-स्वरूप ॥१३१ ॥
मध्यखण्डे जननीर लक्ष्ये भगवान् । वैष्णवापराध कराइला सावधान ॥१३२॥
मध्यखण्डे सकल वैष्णव जने जने । सभे वर पाइलेन करिया स्तवने ॥१३३॥
मध्यखण्डे प्रसाद पाइला हरिदास । श्रीधरेर जलपान कारुण्यप्रकाश ॥१३४॥
मध्यखण्डे सकल वैष्णव करि संगे । प्रति निशा जाह्नवीते जलकेलि रंगे ॥१३५॥
मध्यखण्डे गौरचन्द्र नित्यानन्द संगे । अद्वैतेर गृहे गियाछिला कोनरंगे ॥१३६॥
मध्यखण्डे-अद्वैतेरे करि बहु-दण्ड । शेषे अनुग्रह कैला परम प्रचण्ड ॥१३७॥
मध्यखण्डे चैतन्य निताइ कृष्ण-राम । जानिला मुरारि गुप्त महा भाग्यवान् ॥१३८॥
मध्यखण्डे दुइ भाइ चैतन्य-निताइ । नाचिलेन श्रीवास अंगने एक ठाँइ ॥१३९॥
मध्यखण्डे श्रीवासेर-मृत-पुत्र मुखे । जीव तत्त्व कहाइया घुचाइल दुःखे ॥१४०॥

---

कर आँगन में भ्रमण किया है ॥ १२६ ॥ मध्यखण्ड में प्रभु ने शुक्लाम्बर भक्त के चाँवल भोजन किये हैं और प्रभु ने भक्तों के साथ कौन-कौनसा पहनाव पहनेगा इसकी व्यवस्था की है ॥ १२७ ॥ मध्यखण्ड में श्री-गौरचन्द्र ने श्रीरुक्मिणी वेश से नृत्य किया है और श्रीविश्वम्भर जी ने मातृ-भाव से सब भक्तों को स्तन पिलाये हैं ॥ १२८ ॥ मध्यखण्ड में प्रभु ने मुकुन्द को सङ्ग-दोष के कारण दण्ड दिया है, पश्चात् परम स-न्तुष्ट होकर अनुग्रह किया है ॥ १२९ ॥ मध्यखण्ड में श्रीमहाप्रभु जी ने एक वर्ष तक निरन्तर रात्रि में भक्तोंके साथ कीर्त्तन किया है ॥ १३० ॥ मध्यखण्ड में श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीअद्वैत प्रभु का आनन्द-मय कलह वर्णित है, जिसको मूर्ख मनुष्य केवल कलह स्वरूप समझते हैं ॥ १३१ ॥ मध्यखण्ड में भगवान् श्रीविश्वम्भर निज जननी को लक्ष्य करके सबको वैष्णव अपराध से सावधान करते हैं ॥ १३२ ॥ मध्यखण्ड में सब वैष्णववृन्द प्रभु की पृथक् २ स्तुति करके वर प्राप्त किये हैं ॥ १३३ ॥ मध्यखण्ड में श्रीहरिदास-ठाकुर ने कृपा लाभ की है । श्रीधर के जल-पान प्रसंग में प्रभु का कारुण्य प्रकाश वर्णित है ॥१३४॥मध्यखंड मे श्रीगौरचन्द्र के सब वैष्णवों को साथ लेकर प्रति रात्रि जलकेलि रंग वर्णित है ॥ १३५ ॥ मध्यखण्ड में श्रीगौरचन्द्र श्रीनित्यानन्द को साथ लेकर कोई एक रंग दिखलाने के लिये श्रीअद्वैत आचार्य के घर गये ॥१३६॥मध्यखण्डमें श्रीविश्वम्भर ने श्रीअद्वैत को बहुत दण्ड देकर पश्चात् अत्यन्त अनुग्रह किया है१३७। मध्यखण्ड में महा भाग्यवान् मुरारिगुप्त ने श्रीचैतन्यचन्द्र व श्रीनिताइ को श्रीकृष्ण व श्रीबलराम जाना ॥१३८॥मध्यखण्ड में श्रीचैतन्य व श्रीनिताइ दोनों भाइयों ने एक साथ श्रीवास आँगन में नृत्य किया है।१३९। मध्यखंड में प्रभु ने श्रीवास के मृत-पुत्र के मुख से जीवतत्त्व कहलवाकर सबके दुःखों को दूर किया है॥१४०॥

चैतन्येर अनुग्रहे श्रीवास पण्डित। पासरिला पुत्र-शोक सभारे विदित ॥ १४१ ॥
मध्यखण्डे गङ्गाये पड़िला क्रुद्ध हैया। नित्यानन्द हरिदास आनिला तुलिया ॥ १४२ ॥
मध्यखण्डे चैतन्येर अवशेष पात्र। ब्रह्मार दुर्लभ नारायणी पाइला मात्र ॥ १४३ ॥
मध्यखण्डे सब जीव उद्धार कारणे। सन्यास करिते प्रभु करिला गमने ॥ १४४ ॥
कीर्त्तन करिया आदि, अवधि सन्यास। एइ हैते कहि मध्यखण्डेर विलास ॥ १४५ ॥
मध्यखण्डे आछे आर कत कोटि लीला। वेद व्यास वर्णिवेन से सकल खेला ॥१४६॥
शेषखण्डे विश्वम्भर करिला सन्यास। 'श्रीकृष्णचैतन्य' नाम तवे परकाश ॥ १४७ ॥
शेषखण्डे शुनि प्रभुर शिखार मुण्डन। बिस्तर करिला प्रभु अद्वैत क्रन्दन ॥ १४८ ॥
शेषखण्डे शची-दुःख अकथ्य कथन। चैतन्य प्रभावे सभार रहिल जीवन ॥ १४९ ॥
शेषखण्डे सन्यास करिया गौरचन्द्र। चलिलेन नीलाचले भक्त-गोष्ठी सङ्ग ॥ १५० ॥
शेषखण्डे नित्यानंद चैतन्येर दण्ड। भाङ्गिलेन मत्तसिंह परम प्रचण्ड ॥ १५१ ॥
शेषखण्डे गौरचंद्र गिया नीलाचले। आपने लुकाइ रहिलेन कुतूहले ॥ १५२ ॥
सार्वभौम प्रति आगे करि परिहास। शेषे सार्वभौमेरे षड्भुज प्रकाश ॥ १५३ ॥
शेषखण्डे प्रतापरुद्रेरे परित्राण। काशी मिश्र गृहेते करिला अधिष्ठान ॥ १५४ ॥
दामोदर स्वरूप, परमानंद पुरी। शेषखण्डे एइ दुइ संगे अधिकारी ॥ १५५ ॥

---

सबके सामने श्रीवास पण्डित श्रीगौरचन्द्र की कृपा से पुत्र-शोक को भूल गये हैं ॥ १४१ ॥ मध्यखण्डमें प्रभु क्रोधित होकर श्रीगङ्गा में पड़ जाते हैं और श्रीनित्यानन्द व श्रीहरिदास उठाकर लाये हैं ॥ १४२ ॥ मध्य-खण्ड में श्रीचैतन्यचन्द्र के अधरामृत का पात्र जो कि ब्रह्मा को भी दुर्लभ है, केवल नारायणी ने पाया है ॥१४३॥ मध्यखण्ड में प्रभु ने सब जीवों के उद्धार करने के लिये सन्यास लेने के लिये गमन किया है ।१४४। कीर्त्तन से प्रारम्भ करके सन्यास हेतु गमन तक मध्यखण्ड के विलास हैं ॥ १४५ ॥ मध्यखण्ड में और कितनी ही कोटि लीला हैं, वह सब खेल (लीला) वेद व्यास-शक्ति-सम्पन्न (महत्पुरुष) वर्णन करेंगे ॥१४६॥ शेषखण्ड में विश्वम्भर ने सन्यास लिया है, उस समय आपका 'श्रीकृष्णचैतन्य' नाम हुआ है ॥ १४७ ॥ शेषखण्ड में अद्वैत प्रभु ने श्रीविश्वम्भर प्रभु के शिखा-मुण्डन को सुनकर प्रचुर क्रन्दन किया है ॥ १४८ ॥ शेषखंड में श्रीशची मा का अकथनीय दुःख वर्णित है,उन सब के जीवन की रक्षा केवल श्रीचैतन्य के प्रभाव से हुई थी ॥१४९॥ शेषखण्ड में श्रीगौरचन्द्र सन्यासी बनकर भक्त-गोष्ठी के साथ नीलाचल गये हैं ॥१५०॥ शेषखण्ड में सिंह सदृश अत्यन्त मत्त श्रीनित्यानन्द ने श्रीचैतन्य का दण्ड ( डण्डा ) तोड़ा है ॥ १५१ ॥ शेषखण्ड में श्रीगौरचन्द्र नीलाचल ( श्रीजगन्नाथपुरी ) में जाकर कौतूहल करने के लिये अपने को छिपाकर रखते हैं ॥ १५२ ॥ प्रभु ने प्रथम सार्वभौम प्रति परिहास किया है; पश्चात् उसको षड्भुज रूप दिखलाया है ॥१५३॥ शेषखण्ड में प्रभु ने 'प्रतापरुद्र का उद्धार' एवं 'काशी मिश्र के घर में अधिष्ठान' किया है ।१५४। शेषखण्ड में श्रीस्वरूप दामोदर व श्रीपरमानन्दपुरी यह दोनों अधिकारी प्रभु के साथ रहे हैं ॥ १५५ ॥ शेष-

शेषखण्डे प्रभु पुन आइला गौड़देशे। मथुरा देखिब करि आनंद विशेषे ॥ १५६ ॥
आसिया रहिला विद्या वाचस्पतिर घरे। तबे आइलेन प्रभु कुलिया नगरे ॥ १५७ ॥
अनंत अर्बुद लोक गेला देखिबारे। शेषखण्डे सर्व जीव पाइला उद्धारे ॥ १५८ ॥
शेषखण्डे मधुपुरी देखिते चलिला। कथोदूर गिया प्रभु निवृत्त हइला ॥१५९॥
शेषखण्डे पुन आइलेन नीलाचले। निरंतर भक्त संगे कृष्ण कोलाहले ॥ १६० ॥
गौड़देशे नित्यानंद स्वरूपे पाठाञा। रहिलेन नीलाचले कथो जन लैया ॥१६१॥
शेषखण्डे रथेर सन्मुखे भक्त-संगे। आपने करिला नृत्य आपनार रंगे ॥ १६२ ॥
शेषखण्डे सेतुबंधे गेला गौरराय। झारिखण्ड दिया पुन गेला मथुराय ॥ १६३ ॥
शेषखण्डे रामानंदरायेर उद्धार। शेषखण्डे मथुराय अनेक विहार ॥ १६४ ॥
शेषखंडे श्रीगौर सुंदर महाशय। दबीर खासेरे प्रभु दिला परिचय ॥ १६५ ॥
प्रभु चिनि दुइ भाइर बंध विमोचन। शेषे नाम थुइलेन 'रूप' 'सनातन' ॥ १६६ ॥
शेषखण्डे गौरचंद्र गेला वाराणसी। ना पाइल देखा जत निंदुक सन्यासी ॥ १६७ ॥
शेषखण्डे पुन नीलाचले आगमन। अहर्निश करिलेन हरि सङ्कीर्त्तन ॥ १६८ ॥
शेषखंडे नित्यानंद कथोक दिवसे। करिलेन पृथिवीर पर्य्यटन रसे ॥ १६९ ॥
अनंत चरित्र केहो बुझिते ना पारे। चरणे नूपुर सर्व्व-मथुरा विहरे ॥ १७० ॥

खण्ड में प्रभु ने मथुरा दर्शन करने की इच्छा करके विशेष आनन्दित होकर फिर गौड़ देश ( नवद्वीप ) में आगमन किया है ॥ १५६ ॥ वहाँ आकर विद्या-वाचस्पति के घर रहे हैं, फिर वहाँ से प्रभु कुलिया नगर आये हैं ॥ १५७ ॥ वहाँ आपके दर्शन करने के लिये अनन्त अर्व लोग गये हैं,इसी प्रकार शेषखण्ड में अन्य सब जीवों ने भी उद्धार पाये हैं ॥ १५८ ॥ शेषखण्ड में फिर वहाँ से मथुरा दर्शन करने चले हैं, परन्तु कुछ दूर जाकर लौट आये हैं ॥ १५९ ॥ शेषखण्ड में फिर लौटकर नीलाचल में आये हैं, जिसमें 'कृष्ण' कोलाहल ( कथा-कीर्त्तन-आनन्द ) के साथ निरन्तर भक्तसङ्ग रहा है ॥ १६० ॥ प्रभु श्रीनित्यानन्द स्वरूप को गौड़-देश में भेजकर आप कुछ जन लेकर नीलाचल में रहे हैं ॥ १६१ ॥ शेषखण्ड में स्वयं प्रभु ने भक्तवृन्द के साथ रथ के सामने अपने ही रङ्ग का ( निराला ) नृत्य किया है ॥ १६२ ॥ शेषखण्ड में श्रीगौरचन्द्र सेतु-बन्ध गये हैं और झारिखण्ड ( वन-पथ ) के रास्ते से फिर मथुरा गये हैं ॥ १६३ ॥ शेषखण्ड में 'रामानन्द 'राय' का उद्धार' है और 'मथुरा के अनेक विहार हैं ॥ १६४ ॥ शेषखण्ड में प्रभु श्रीगौरसुन्दर महाशयजी 'दबीर-खास' श्रीरूप को अपना परिचय दिया है ॥१६५॥ अपने प्रभु को पहिचानकर दोनों ('रूप' व 'शाकर मल्लिक' ) भाइयों के बन्धन नष्ट हुए हैं, पश्चात् प्रभु ने उनके 'रूप', 'सनातन' नाम रक्खे हैं ॥ १६६ ॥ शेषखण्ड में श्रीगौरचन्द्र वाराणसी ( काशी ) गये हैं, परन्तु जितने निन्दक सन्यासी थे, उन्होंने आपके दर्शन नहीं पाये हैं ॥ १६७ ॥ शेषखण्ड में प्रभु फिर नीलाचल आये हैं, जहाँ पर कि आपने अहर्निशि हरि-संकीर्त्तन किये हैं ॥ १६८ ॥ शेषखण्ड में श्रीनित्यानन्द ने कुछ दिन आनन्द पूर्वक पृथ्वी का पर्यटन किया

शेषखण्डे नित्यानन्द 'पाणि-हाटी'-ग्रामे। चैतन्य आज्ञाय भक्ति करिलेन दाने ॥१७१॥
शेषखण्डे नित्यानन्द महामल्ल-राय। वणिकादि उद्धारिला परम-कृपाय ॥ १७२ ॥
शेषखण्डे गौरचंद्र महा-महेश्वर। नीलाचले वास अष्टादश संवत्सर ॥ १७३ ॥
शेषखण्डे चैतन्येर अनंत विलास। विस्तरिया वर्णिते आछेन वेदव्यास ॥ १७४ ॥
जे ते मते चैतन्येर गाइते महिमा। नित्यानंद-प्रीत बड़ तार नाहि सीमा ॥ १७५ ॥
धरणीधरेन्द्र नित्यानंदेर चरण। देह प्रभु गौरचंद्र आमारे शरण ॥ १७६ ॥
एइ जे कहिल सूत्र संक्षेप करिया। तीनखण्ड आरम्भिव इहाइ गाइया ॥ १७७ ॥
आदिखण्ड कथा भाइ! शुन एक चिते। श्रीचैतन्य अवतीर्ण हैल जेन मते ॥ १७८ ॥
चिंतिया चैतन्य चाँदेर चरण कमल। वृन्दावनदास गान श्रीचैतन्य-मङ्गल ॥१७९॥

## द्वितीय अध्याय

जय जय महाप्रभु श्रीगौर सुन्दर। जय जगन्नाथ-पुत्र महामहेश्वर ॥ १ ॥
जय नित्यानन्द गदाधरेर जीवन। जय जय अद्वैतादि-भक्तेर शरण ॥ २ ॥
भक्त-गोष्ठी सहित गौराङ्ग जय जय। शुनिले चैतन्य-कथा भक्ति लभ्य हय ॥ ३ ॥

---

है ॥ १६९ ॥ श्रीअनन्तदेव ( श्रीनित्यानन्द प्रभु ) के चरित्रों को कोई नहीं समझ सकता। आपने चरणों में नूपुर धारण करके सम्पूर्ण मथुरा में विहार ( विचरण ) किया, लेकिन तब भी कोई देख न पाया ॥१७०॥ शेषखण्ड में श्रीनित्यानन्द ने श्रीचैतन्य की आज्ञा से 'पानिहाटी' ग्राम में भक्ति प्रदान की है ॥ १७१ ॥ शेषखण्ड में महामल्ल शिरोमणि श्रीनित्यानन्द ने परम कृपा पूर्वक वणिक आदि का उद्धार किया है ॥ १७२ ॥ शेषखण्ड में महा महेश्वर श्रीगौरचन्द्र ने अठारह वर्ष नीलाचल में वास किया है ॥ १७३ ॥ शेषखण्ड में श्रीचैतन्यचन्द्र के अनन्त विलास हैं, जिनको विस्तृत रूप से वेद-व्यास जी (लीला की नित्यता हेतु) नित्य ही वर्णन कर रहे हैं ॥ १७४ ॥ जिस प्रकार से भी हो श्रीचैतन्यचन्द्र की महिमा गान करने से, गाने वाले के ऊपर श्रीनित्यानंद बड़ी प्रीति करते हैं, जिसकी कोई सीमा नहीं है ॥ १७५ ॥ हे श्रीगौरचंद्र! मुझको धरणी धरेन्द्र श्रीनित्यानंद के चरणों की शरण प्रदान कीजिये ॥ १७६ ॥ यह जो मैंने संक्षेप से 'सूत्र' कहे हैं, इन्हीं के आधार पर इनको विस्तृत करके तीनों खण्डों की लीला आरम्भ करूँगा ॥ १७७ ॥ हे भाइयो! अब आदिखण्ड की कथा प्रारम्भ करता हूँ, जिसमें कि जिस प्रकार से श्रीचैतन्यचंद्र अवतीर्ण हुए हैं, वह एकाग्र चित्त से सुनिये ॥१७८॥ श्रीचैतन्यचंद्र के चरण-कमल चिंतवन करके वृन्दावनदास श्रीचैतन्य-मङ्गल गाते हैं।

इति श्रीचैतन्य-भागवत आदिखण्डे लीला सूत्र वर्णनं नाम प्रथमोऽध्याय ॥ १७९ ॥

हे महाप्रभु श्रीगौरसुन्दर! आपकी जय हो, जय हो। हे महामहेश्वर! हे जगन्नाथ-पुत्र आपकी जय हो, जय हो ॥ १ ॥ हे श्रीनित्यानन्द और गदाधर के जीवन आधार! आपकी जय हो जय हो, हे अद्वैत आदि भक्तों को शरण-दायक प्रभु आपकी जय हो, जय हो ॥ २ ॥ हे श्रीगौरचन्द्र! भक्त-गोष्ठी के सहित

पुनः भक्त संगे प्रभुपदे नमस्कार। स्फुरुक जिह्वाय गौरचन्द्र अवतार ॥ ४ ॥
जय जय श्रीकरुणासिन्धु गौरचन्द्र। जय जय श्रीसेवा-विग्रह नित्यानन्द ॥ ५ ॥
अविज्ञात दुइ भाइ आर जत भक्त। तथापि कृपाय तत्त्व करेन सुव्यक्त ॥ ६ ॥
ब्रह्मादिर स्फूर्त्ति हय कृष्णेर कृपाय। सर्व शास्त्रे, वेदे, भागवते एइ गाय ॥ ७ ॥

तथाहि ( भा० २।४।२२ )—

"प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्वताऽजस्य सतीं स्मृतिं हृदि।
स्वलक्षणा प्रादुरभूत् किलास्यतः स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम्" ॥ ८ ॥

पूर्वे ब्रह्मा जन्मिलेन नाभि पद्म हैते। तथापिह शक्ति नाहि किछुइ देखिते ॥ ९ ॥
तबे जबे सर्व-भावे लइला शरण। तबे प्रभु कृपाय दिलेन दरशन ॥ १० ॥
तबे कृष्णकृपाय स्फुरिला सरस्वती। तबे से जानिला सर्व-तत्त्व तार स्थिति ॥ ११ ॥
हेन कृष्णचन्द्र दुर्ज्ञेय अवतार। तान कृपा विने कार शक्ति जानिबार ॥ १२ ॥
अचिन्त्य अगम्य कृष्ण-अवतार-लीला। सेइ ब्रह्मा भागवते आपने कहिला ॥ १३ ॥

तथाहि ( भा० १०।१४।२१ )—

"को वेत्ति भूमन्! भगवन्! परात्मन्! योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम्।
क्व वा कथं वा कति वा कदेति विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम्" ॥ १४ ॥

---

आपकी जय हो, जय हो। श्रीचैतन्यदेव की कथा सुनने से भक्ति प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ हे प्रभु! भक्तों के सहित आपको नमस्कार करता हूँ! ताकि सब की कृपा से मेरी जिह्वा में श्रीगौरचन्द्र अवतार की लीला स्फुरित हो ॥ ४ ॥ हे करुणासिन्धु श्रीगौरचन्द्र! आपकी जय हो। हे सेवा-विग्रह श्रीनित्यानन्द! आपकी जय हो, जय हो ॥ ५ ॥ यद्यपि दोनों भाई ( श्रीचैतन्य व श्रीनिताइ ) और सम्पूर्ण भक्तों का 'तत्त्व' गुप्त है तब भी वे कृपा करके अपने तत्त्व को सुप्रकाशित कर देते हैं ॥ ६ ॥ 'श्रीकृष्ण की कृपा से ही ब्रह्मादि को स्फूर्ति होती है' यही ( तत्त्व ) सर्व शास्त्र, वेद एवं श्रीमद्भागवत गाती है ॥ ७ ॥ कल्प के प्रारम्भ में ब्रह्मा जी के हृदय में, सृष्टि-विषयक-स्मृति का विस्तार करते हुए, जिन्होंने निज प्रेरिता वेदरूपा सरस्वती को, ब्रह्मा जी के वदन से प्रादुर्भूत कराया ( प्रकट में इतना ही प्रयोजन है ) वह ज्ञान प्रदाताओं में श्रेष्ठ भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ८ ॥ सृष्टि के प्रारम्भ में श्रीब्रह्मा जी श्रीमन्नारायण के नाभि-कमल से प्रकट हुए तब भी वह अपने में किञ्चित मात्र देखने की शक्ति नहीं पाते हैं ॥ ९ ॥ तब उन्होंने जब सर्व-भाव से प्रभु की शरण ली तो प्रभु ने कृपा करके उनको दर्शन दिये ॥ १० ॥ तत्पश्चात् श्रीकृष्ण की कृपा से सरस्वतीजी स्फूर्त्ति होती हैं तब उन्होंने सर्व तत्त्व एवं उसकी स्थिति जानी ॥ ११ ॥ ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र को अवतार के चरित्रों का समझ में आना परम दुष्कर है, उनकी कृपा के बिना जानने की किसकी शक्ति है? ॥ १२ ॥ श्रीकृष्ण-अवतार की लीला अचिन्त्य एवं अगम्य है, यही बात 'ब्रह्मा जी स्वयं' श्रीमद्भागवत में कहते हैं ॥ १३ ॥ अहो! हे अपरिच्छिन्न! हे सर्वैश्वर्य युक्त! हे परमात्मन्! हे सर्वान्तर्यामिन्! हे योगेश्वर! इस त्रिलोकी के बीच में ऐसा कौन है जोकि आपकी लीला को समझ सकता है? कौन जानता है कि आप कहाँ किस प्रकार

कौन हेतु कृष्णचन्द्र करे अवतार । कार शक्ति आछे तत्त्व जानिते ताँहार ॥ १५ ॥
तथापि श्रीभागवते गीताय जे कहे । ताहा लिखि, जे निमित्ते अवतार हये ॥ १६ ॥

तथाहि ( गी० ४।७।८ ) अर्जुनं प्रति भगवद्वाक्यं-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानि र्भवति भारत ! अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥१७॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम । धर्म्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥१८॥

धर्म्म-पराभव हय जखने जखने । अधर्म्मेर प्रबलता बाढ़े दिने दिने ॥ १९ ॥
साधु जन रक्षा, दुष्ट विनाश कारणे । ब्रह्मा आदि प्रभुर पाय करेन विज्ञापने ॥ २० ॥
तबे प्रभु युग-धर्म्म स्थापन करिते । साङ्गोपांगे अवतीर्ण हन पृथिवीते ॥ २१ ॥
कलिजुगे धर्म्म हय हरि-सङ्कीर्त्तन । एतदर्थे अवतीर्ण श्रीशचीनन्दन ॥ २२ ॥
एइ कहे भागवते सर्व तत्त्व-सार । कीर्त्तन निमित्त गौरचन्द्र अवतार ॥ २३ ॥

तथाहि ( भा० ११।५।३१ व ३२ )

इति द्वापर उर्व्वीश ! स्तुवन्ति जगदीश्वरम् । नाना तन्त्र विधानेन कलावपि तथा शृणु ॥२४॥
कृष्ण वर्णंत्विषाऽकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम् । यज्ञैः सङ्कीर्त्तन-प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥२५॥

कलिजुगे सर्व-धर्म्म हरि सङ्कीर्त्तन । सब प्रकाशिलेन श्रीचैतन्य-नारायण ॥ २६ ॥
कलिजुगे सङ्कीर्त्तन धर्म पालिबारे । अवतीर्ण हैला प्रभु सर्व परिकरे ॥ २७ ॥

---

से कितनी एवं कब अपनी योगमाया को विस्तार कर क्रीड़ा करते हो ? ॥ १४ ॥ 'श्रीकृष्णचन्द्र किस लिये अवतार लेते हैं' ? इस बात का तत्त्व जानने की शक्ति किसमें है ? ॥ १५ ॥ तब भी श्रीमद्भागवत एवं श्री गीताजी जो कहती हैं, वह लिखता हूँ । जिस कारण से कि अवतार होता है ॥ १६ ॥ हे अर्जुन ! जब-जब धर्म की ग्लानि और अधर्म का अभ्युत्थान होता है तब तब मैं अपने को सृजन करता हूँ ॥ १७ ॥ साधुओं के परित्राण, असाधुओं के विनाश एवं धर्म संस्थापन के लिये मैं युग-युग में आविर्भूत होता हूँ ॥ १८ ॥ जब-जब धर्म की अवनति होती है और दिन प्रतिदिन अधर्म की प्रबलता होती है ॥ १९ ॥ उस समय ब्रह्मा जी आदि देवगण साधुओं की रक्षा और दुष्टों के विनाश करने के लिये प्रभु के चरणों में निवेदन करते है ॥ २० ॥ तब प्रभु युग-धर्म स्थापन करने के लिये अङ्ग, उपाङ्ग सहित पृथ्वी पर अवतीर्ण होते हैं ॥ २१ ॥ ( युग-धर्म के नियम से ) कलियुग में हरि-संकीर्त्तन धर्म है, इसी को स्थापन करने के लिये श्रीशचीनन्दन अवतीर्ण हुए ॥२२॥ श्रीमद्भागवत् भी सर्व तत्त्व-सार यही तत्त्व वर्णन करती हैं, कि श्रीगौरचन्द्र कीर्त्तन-धर्म संस्थापन के लिये अवतीर्ण होते हैं ॥ २३ ॥ ( जैसे ) श्रीकरभाजनजी कहते हैं कि-हे राजन् ! द्वापर युग के मनुष्य इस प्रकार से श्री भगवान् का स्तव करते हैं और कलियुग में अवतीर्ण होकर जिस प्रकार नाना तन्त्र विधान से आप पूजित होते हैं वह सुनिये ॥ २४ ॥ जिस द्वापर युग में भगवान् श्रीमन् नन्द-नन्दन कृष्ण अवतार लेते हैं उसके परवर्त्ती कलियुग में भगवान् श्रीगौरसुन्दर भी अवतार लेते हैं, जो निरन्तर 'कृष्ण' 'कृष्ण' दो वर्ण उच्चारण करते हैं एवं गौर कान्ति, अङ्ग, उपाङ्ग अस्त्र पार्षद से युक्त होते हैं ( उस समय ) सुमेधा जन जिनकी अर्च्चना श्रीसङ्कीर्त्तन प्रधान यज्ञ द्वारा किया करते हैं ॥ २५ ॥ कलियुग में उसके 'सब धर्म एवं ( सबका सार ) श्रीहरि सङ्कीर्त्तन' ये सब श्रीचैतन्य-नारायण ने प्रकाशित किये ॥२६॥

महा जय जय ध्वनि पुष्प वरिषण । संगोपे देवतागणे कैलेन तखन ॥ ४३ ॥
सेइ दिन हैते राढ़-मण्डल सकल । पुनः पुन बाढ़िते लागिल सुमंगल ॥ ४४ ॥
तिरोते परमानन्द पुरीर प्रकाश । नीलाचले जाँर संगे एकत्रे विलास ॥ ४५ ॥
गङ्गातीर पुण्यस्थान सकल थाकिते । वैष्णव जन्मये केन शोच्य देशेते ? ॥ ४६ ॥
आपने हइला अवतीर्ण गङ्गातीरे । सङ्गेर पार्षद केने जन्मायेन दूरे ? ॥ ४७ ॥
जे जे देश गंगा हरिनाम विवर्ज्जित । जे देशे पाण्डव नाहि गेला कदाचित ॥ ४८ ॥
से सब जीवेरे कृष्ण वत्सल हइया । महा भक्त सब जन्मायेन आज्ञा दिया ॥ ४६ ॥
संसार तारिते श्रीचैतन्य अवतार । आपने श्रीमुखे करियाछेन अङ्गीकार ॥ ५० ॥
शोच्यदेशे, शोच्य कुले, आपन समान । जन्माइया वैष्णव सभारे करे त्राण ॥ ५१ ॥
जे देशे जे कुले वैष्णव अवतरे । ताहार प्रभावे लक्ष जोजन निस्तरे ॥ ५२ ॥
जे स्थाने वैष्णवगण करेन विजय । सेइ स्थान हय अति पुण्यतीर्थमय ॥ ५३ ॥
अतएव सर्व्व देशे निजभक्त गण । अवतीर्ण कैला श्रीचैतन्य-नारायण ॥ ५४ ॥
नाना स्थाने अवतीर्ण हैला भक्त गण । नवद्वीपे आसि सभार हइल मिलन ॥ ५५ ॥
नवद्वीपे हइब प्रभुर अवतार । अतएव नवद्वीपे मिलन सभार ॥ ५६ ॥
नवद्वीप हेन ग्राम त्रिभुवने नाञि । जाँहि अवतीर्ण हैला चैतन्य गोसाञि ॥ ५७ ॥

---

राम राढ़देश में अवतीर्ण हुए ॥ ४२ ॥ उस समय देव-गण ने अलक्षित होकर महान् जय जय ध्वनि एवं पुष्प वर्षा की ॥ ४३ ॥ उसी दिन से सकल राढ़देश में दिन प्रतिदिन सुमङ्गल वृद्धि पाने लगा था ॥ ४४ ॥ तिरहुत में श्री परमानन्दपुरी ने जन्म लिया जिसके साथ प्रभु का नीलाचल में एकान्त विलास रहा ॥ ४५ ॥ यहाँ पर श्रीग्रन्थकार स्वयं प्रश्न उठाते हैं कि–गंगातीर व अन्य सकल पुण्य स्थान रहते हुए भी वैष्णवों ने अपवित्र देशों में क्यों जन्म लिये ? ॥ ४६ ॥ जबकि प्रभु स्वयं गंगा किनारे में अवतीर्ण हुए तो फिर अपने संग के पार्षद क्यों दूर देशों में जन्माये ? ॥ ४७ ॥ अब स्वयं ही उत्तर देते हैं-जो देश गंगा एवं 'श्रीहरि' नाम से वञ्चित थे एवं जिन देशों में पाण्डव कभी नहीं गये थे ॥ ४८ ॥ उन देशों के सब जीवों पर करुणा करके प्रभु ने आज्ञा देकर अपने सब प्रिय भक्त वहाँ जन्माये ॥ ४६ ॥ 'श्रीचैतन्य अवतार संसार का उद्धार करने के लिये हुआ है' । यह बात प्रभुने स्वयं अपने श्रीमुख से अङ्गीकार की है ॥ ५० ॥ अपवित्र देश और अपवित्र कुल में अपने समान वैष्णवों का जन्म कराके आप उन देशों के सब जीवों का उद्धार करते हैं ।५१। जिस देश में एवं जिस कुल में वैष्णव जन्म लेता है उसके प्रभाव से लाख योजन तक के जीवों का उद्धार हो जाता है ॥ ५२ ॥ वैष्णवगण जिस स्थान पर गमन करते हैं वह स्थान अति पुण्यमय तीर्थ बन जाता है ॥ ५३ ॥ इसीलिये श्रीचैतन्य-नारायण ने अपने भक्त-वृन्द उन सब देशों में अवतीर्ण किये ॥ ५४ ॥ भक्तगण नाना स्थानों पर अवतीर्ण हुए और सब का नवद्वीप में आकर मिलन हुआ ॥ ५५ ॥ वे सब भक्तवृन्द जानते हैं कि नवद्वीप में प्रभु का अवतार होगा इसलिये सब का सम्मिलन नवद्वीप में हुआ ॥ ५६ ॥ श्री नवद्वीप

अवतरिबेन प्रभु जानिया विधाता । सकल सम्पूर्ण करि थुइलेन तथा ॥ ५८ ॥
नवद्वीप सम्पत्ति के वर्णिबारे पारे । एक गंगा घाटे लक्ष लोक स्नान करे ॥ ५९ ॥
त्रिविध वयसे एक जाति लक्ष लक्ष । सरस्वती दृष्टिपाते सबे महा दक्ष ॥ ६० ॥
सबे महा-अध्यापक करि गर्व्व धरे । बालकेओ भट्टाचार्य्य-सने कक्षा करे ॥ ६१ ॥
नानादेश हइते लोक नवद्वीपे जाय । नवद्वीपे पढ़िले से विद्या-रस पाय ॥ ६२ ॥
अतएव पढ़ुयार नाहि समुच्चय । लक्ष कोटि अध्यापक नाहिक निर्णय ॥ ६३ ॥
रमा-दृष्टिपाते सर्व लोक सुखे वसे । व्यर्थ काल जाय मात्र व्यवहार-रसे ॥ ६४ ॥
कृष्णनाम भक्ति शून्य सकल संसार । प्रथम कलिते हैल भविष्य आचार ॥ ६५ ॥
धर्म्म कर्म्म लोक सबे एइ मात्र जाने । मङ्गल चण्डीर गीते करे जागरणे ॥ ६६ ॥
दम्भ करि विषहरि पूजे कोन जने । पुत्तलि करये केहो दिया बहुधने ॥ ६७ ॥
धन नष्ट करे पुत्र कन्यार बिभाय । एइमत जगतेर व्यर्थ काल जाय ॥ ६८ ॥
जेबा भट्टाचार्य्य, चक्रवर्ती, मिश्रसब । ताहाराओ ना जानये ग्रन्थ अनुभव ॥ ६९ ॥
शास्त्र पढ़ाइया सबे एइ कर्म करे । श्रोतार सहिते जम-पाशे बन्धि मरे ॥ ७० ॥
ना बाखाने जुग-धर्म कृष्णेर कीर्त्तन । दोष बहि गुण कारो ना करे कथन ॥ ७१ ॥

---

ऐसा धाम त्रिभुवन में नहीं है जहाँ पर कि श्रीचैतन्य प्रभु प्रकट हुए ॥ ५७ ॥ विधाता ने यह जानकर कि 'नवद्वीप में प्रभु अवतार लेंगे' उसको सब प्रकार से भरपूर कर दिया था ॥ ५८ ॥ नवद्वीप की ( धन-धान्य ) सम्पत्ति का कौन वर्णन कर सकता है जहाँ पर कि एक-एक घाट पर लाख-लाख मनुष्य स्नान करते हैं ॥ ५९ ॥ एक-एक जाति में त्रिविध ( बाल्य, कौमार, पौगण्ड, कैशोर आदि ) आयुओं के लाखों-लाखों मनुष्य हैं जो सरस्वतीजी की कृपा से शास्त्रों में महा निपुण हैं ॥ ६० ॥ सभी अध्यापक होने का दावा रखते हैं और तो क्या बालक भी (अन्य जगह) भट्टाचार्य से मुकाबिला करने को तैयार रहता है ६१। लोग नाना देशों से पढ़ने के लिये नवद्वीप में आते हैं। जो नवद्वीप में पढ़ लेता है, वह परम विद्यारस को पा लेता है ॥ ६२ ॥ इसी कारण से छात्रों की यहाँ कोई संख्या नहीं है अध्यापक भी लाखों एवं करोड़ों हैं यह भी कोई निश्चित संख्या नहीं है ॥ ६३ ॥ श्रीलक्ष्मीजी की कृपा से सब लोग सुख पूर्वक रहते हैं, परन्तु उनका समय केवल व्यवहार-रस में ही व्यतीत होता है ॥ ६४ ॥ सम्पूर्ण लोग कृष्ण नाम एवं कृष्ण-भक्ति से शून्य हैं यहाँ तक कि कलियुग के मध्य और अन्त में होने वाला अनाचार प्रथम कलि में ही फैल गया है ॥ ६५ ॥ सब लोग इसी को धर्म एवं कर्म जानते हैं कि-मंगल चण्डी के गीत गाते हुए रात्रि-जागरण हो ॥ ६६ ॥ कोई २ आदमी दम्भपूर्वक मनसा देवी की पूजा करते हैं और कोई २ बहुतसा धन लगाकर उसकी पुत्तलि ( मूर्ति ) बनवाते हैं ॥ ६७ ॥ ( प्रायः सभी ) पुत्र एवं कन्या के विवाह में धन नष्ट करते हैं, इसी प्रकार जगत के सब लोगों का समय व्यर्थ जाता है ॥ ६८ ॥ जो भट्टाचार्य, चक्रवर्ती एवं मिश्र उपाधिधारी हैं वह भी ग्रन्थ का अनुभव नहीं जानते हैं ॥ ६९ ॥ वह शास्त्र पढ़ने वाले होकर भी यही ( उपर्युक्त ) कर्म करते हैं, जिससे वह श्रोताओं के साथ यम पाश में बँधकर मरते हैं ॥७०॥ वह लोग ' कलियुग में 'श्रीकृष्ण-

जेवा सब विरक्त तपस्वी अभिमानी । ता सभार मुखेओ नाहिक हरि-ध्वनि ॥ ७२ ॥
अति बड़ सुकृति से स्नानेर समय । 'गोविंद' 'पुण्डरीकाक्ष' नाम उच्चारय ॥७३॥
गीता भागवत जे जे जने वा पड़ाय । भक्तिर व्याख्यान नाहि ताहार जिह्वाय ॥७४॥
एइमत विष्णु माया मोहित संसार । देखि भक्त सब दुःख भावेन अपार ॥ ७५ ॥
केमते ए सब जीव पाइब उद्धार । विषय सुखेते सब मजिल संसार ॥ ७६ ॥
बलिलेओ केहो नाहि लय कृष्ण-नाम । निरवधि विद्या कुल करये व्याख्यान ॥७७॥
स्व कार्ज करेन सब भागवत गण । कृष्णपूजा, गंगा स्नान, कृष्णेर कथन ॥७८॥
सबे मेलि जगतेरे करे आशीर्वाद । शीघ्र कृष्ण-चन्द्र कर सभारे प्रसाद ॥ ७९ ॥
सेइ नवद्वीपे वैसे वैष्णवाग्रगण्य । अद्वैत आचार्ज नाम सर्व लोके धन्य ॥ ८० ॥
ज्ञान भक्ति वैराग्येर गुरु मुख्यतर । कृष्ण भक्ति बखानिते जे हेन शङ्कर ॥ ८१ ॥
त्रिभुवने आछे जत शास्त्र परचार । सर्वत्र वाखाने कृष्ण-पद-भक्ति सार ॥ ८२ ॥
तुलसी मञ्जरी सहित गंगा जले । निरवधि सेवे कृष्ण महा कुतूहले ॥ ८३ ॥
हुङ्कार करये कृष्ण आवेशेर तेजे । जे ध्वनि ब्रह्माण्ड भेदि वैकुण्ठेते बाजे ॥ ८४ ॥
जे प्रेमेर हुङ्कार शुनिया कृष्ण नाथ । भक्ति वशे आपनेइ हइला साक्षात ॥ ८५ ॥
अतएव अद्वैत वैष्णव अग्र-गण्य । निखिल ब्रह्माण्डे जाँर भक्ति जोग धन्य ॥ ८६ ॥

---

कीर्तन करना' धर्म है" यह वर्णन नहीं करते हैं और किसी के दोषों के सिवाय गुण वर्णन नहीं करते है ॥ ७१ ॥ और जो लोग विरक्त एवं तपस्वी होने का दावा रखते हैं उन के मुख पर भी 'श्रीहरि' नाम की नहीं रटन देखी जाती है ॥ ७२ ॥ कोई २ जो अत्यन्त पुण्यवान् हैं वह केवल स्नान करते समय 'गोविन्द' 'पुण्डरीकाक्ष' आदि नाम उच्चारण करते हैं ॥ ७३ ॥ और जो आदमी गीता एवं श्रीभागवत पढ़ाते हैं, उनकी भी वाणी से भक्ति की व्याख्या सुनने में नहीं आती है ॥ ७४ ॥ इस प्रकार संसार को विष्णु माया से मोहित देखकर सब भक्तगण मन में अपार दुःखी होकर सोचते हैं कि– ॥ ७५ ॥ इन सब जीवों का उद्धार किस प्रकार होगा ? सब संसार विषय-सुख में लिप्त हो रहा है ॥ ७६ ॥ कहने से भी कोई 'कृष्ण' नाम नहीं लेता है, निरन्तर यह लोग विद्या एवं कुल की ही चर्चा करते रहते हैं ॥ ७७ ॥ सब भक्तगण स्व-कार्य कृष्ण पूजा, गङ्गा स्नान और कृष्ण-कथा-कीर्तन आदि करते हैं ॥ ७८ ॥ यह सब मिलकर जगत के प्रति आशीर्वाद करते हुए कहते हैं कि–हे कृष्णचन्द्र ! इन सबके ऊपर शीघ्र कृपा कीजिये ॥ ७९ ॥ उसी नवद्वीप में वैष्णवों में अग्रगण्य, सर्व लोक पूजित, ज्ञान-भक्ति एवं वैराग्य के मुख्यतर गुरु, कृष्ण-भक्ति की व्याख्या करने में जैसे शङ्कर श्रीअद्वैत आचार्यजी रहते हैं ॥ ८०–८१ ॥ त्रिभुवन में जितने शास्त्र प्रचारित हैं उन सब में से वह सर्वत्र यह व्याख्या करते हैं कि–"कृष्ण-पद-भक्ति सार है" ॥ ८२ ॥ वे निरन्तर महा आनन्द पूर्वक गंगा जल के साथ तुलसी मञ्जरी से श्रीकृष्ण पूजा करते हैं ॥ ८३ ॥ जो श्रीकृष्ण–आवेश के तेज से हुङ्कार करते हैं तो उसकी ध्वनि ब्रह्माण्ड को चीरती हुई वैकुण्ठ तक बजती है ॥ ८४ ॥ जिस प्रेम की हुङ्कार को सुनकर भक्ति के वश होकर प्रभु श्रीकृष्ण स्वयं अवतीर्ण हुए ॥ ८५ ॥ इसी कारण से श्रीअ-

एइमत अद्वैत वैसेन नदीयाय । भक्ति शून्य सर्व लोक देखि दुःख पाय ॥८७॥
सकल संसार मत्त व्यवहार रसे । कृष्णपूजा, कृष्ण भक्ति कारो नाहि वासे ॥ ८८ ॥
वाशुली पूजये केहो नाना उपहारे । मद्य मांस दिया केहो यक्ष पूजा करे ॥ ८९ ॥
निरवधि नृत्य गीत वाद्य-कोलाहले । ना शुने कृष्णेर नाम परम मङ्गले ॥ ९० ॥
कृष्ण-शून्य मङ्गले देवेर नाहि सुख । विशेषे अद्वैत बड़ पाय मने दुःख ॥ ९१ ॥
स्वभावे अद्वैत बड़ कारुण्य हृदय । जीवेर निस्तार चिन्ते हइया सदय ॥ ९२ ॥
मोर प्रभु आसि यदि करे अवतार । तबे हय ए सकल जीवेर उद्धार ॥ ९३ ॥
तबे त 'अद्वैतसिंह' आमार बड़ाइ । वैकुण्ठ वल्लभ यदि देखाङ् एथाइ ॥ ९४ ॥
आनिञा वैकुण्ठनाथ साक्षात् करिया । नाचिब गाइब सर्व जीव उद्धारिया ॥ ९५ ॥
निरवधि एइमत संकल्प करिया । सेवेन श्रीकृष्णचन्द्र एक चित्त हइया ॥ ९६ ॥
अद्वैतेर कारणे चैतन्य अवतार । सेइ प्रभु कहिया आछेन बार बार ॥ ९७ ॥
सेइ नवद्वीपे वैसे पण्डित श्रीवास । याँहार मन्दिरे हैल चैतन्य-विलास ॥ ९८ ॥
सर्व काल चारि-भाइ गाय कृष्ण नाम । त्रिकाल करये कृष्ण-पूजा गङ्गा-स्नान ॥९९॥
निगूढ़ आर अनेक वैसे नदीयाय । पूर्व्वे जन्मिला सबे ईश्वर-आज्ञाय ॥ १०० ॥

ई तात्पर्य पण्डितों में प्रथम गणनीय हैं कि जिनकी भक्ति योग सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में धन्य ( सराहनीय, कृष्ण मङ्गलकारी ) है ॥ ८६ ॥ इस प्रकार श्रीअद्वैत नवद्वीप में रहते हैं और संसार को भक्ति-शून्य देखकर दुःखी रहते हैं ॥ ८७ ॥ सब संसार व्यवहार रस में मग्न हो रहा है, कृष्ण-पूजा और कृष्ण-भक्ति में कोई प्रेम नहीं करता है ॥ ८८ ॥ कोई नाना प्रकारों द्वारा वाशुली ( विशालाक्षी देवी ) की पूजा करता है और कोई मद्य व मांस देकर यक्ष की पूजा करता है ॥ ८९ ॥ निरन्तर वाद्य, गान और नाचों के कोलाहल के आगे परम-मङ्गलकारी 'श्रीकृष्ण' नाम को कोई नहीं सुनता है ॥ ९० ॥ श्रीकृष्ण विरहित उत्सवों में देवताओं को सुख नहीं होता है और विशेषकर श्रीअद्वैत आचार्य तो मन में बड़ा दुःख पाते हैं ॥ ९१ ॥ श्रीअद्वैताचार्य स्वभाव से ही बड़े करुण (दयावान्) हृदय हैं। आप दयायुक्त होकर जीवों के उद्धार के लिये उपाय सोचते हैं कि— ॥ ९२ ॥ यदि मेरे प्रभु आकर अवतार लें तो इन सब जीवों का उद्धार हो जाय ॥ ९३ ॥ मेरे अद्वैत-सिंह नाम की गौरव-रक्षा तो है यदि मैं वैकुण्ठ वल्लभ श्रीकृष्ण को यहीं दिखाऊँ ॥ ९४ ॥ मैं वैकुण्ठ-नाथ को वहाँ से यहाँ प्रकट कराके सब जीवों का उद्धार करके (उल्लास से) नाचूँगा और गाऊँगा ॥९५॥ इस प्रकार श्रीअद्वैताचार्य संकल्प करके एकाग्र चित्त से निरन्तर श्रीकृष्णचन्द्र की सेवा करते हैं ॥ ९६ ॥ और 'श्रीअद्वैत ने ही श्रीचैतन्य अवतीर्ण कराये हैं' यही बात प्रभु ( श्रीगौरचन्द्र ) ने भी अपने मुख से बारम्बार कही है ॥ ९७ ॥ उसी नवद्वीप में श्रीवास पण्डित रहते हैं, जिन के घर में श्रीचैतन्य-विलास हुआ ॥ ९८ ॥ श्रीवास पण्डित अपने और तीन भाइयों के साथ दिन रात 'कृष्ण' नाम गाते हैं और प्रातःकाल मध्याह्न व सन्ध्या को श्रीगङ्गा स्नान एवं श्रीकृष्ण पूजा करते हैं ॥ ९९ ॥ और अनेक छिपे हुए, नवद्वीप में रहते हैं जो श्रीकृष्ण की आज्ञा से श्रीगौरचन्द्र से पहिले ही अवतीर्ण हुए ॥ १०० ॥ जैसे श्रीचन्द्रशेखर, श्री-

श्रीचन्द्रशेखर, जगदीश, गोपीनाथ। श्रीमान्, मुरारि, श्रीगरुड़, गङ्गादास ॥१०१॥
एके एके बलिते हय पुस्तक-बिस्तार। कथार प्रस्तावे नाम लइब जानि जार ॥१०२॥
सभेइ स्वधर्म्म-पर सभेइ उदार। कृष्णभक्ति बहि ना जानये आर ॥ १०३ ॥
सभे करे सभारे बान्धवे व्यवहार। केहो कारो ना जानेन निज अवतार ॥ १०४ ॥
विष्णु भक्ति-शून्य देखि सकल संसार। अन्तरे दहये बड़ चित्त सभाकार ॥ १०५ ॥
कृष्ण कथा शुनिबेक हेन नाहि जन। आपना आपनि सभे करेन कीर्त्तन ॥ १०६ ॥
दुइ चारि दण्ड थाकि अद्वैत-सभाय। कृष्ण कथा प्रसंगे सभार दुःख जाय ॥ १०७ ॥
दग्ध देखे सकल संसार भक्त गण। आलापेर स्थान नाहि करेन क्रन्दन ॥ १०८ ॥
सकल वैष्णव मेलि आपनि अद्वैते। प्राणी मात्र कारे केहो नारे बुझाइते ॥ १०९ ॥
दुःख भावि अद्वैत करेन उपवास। सकल वैष्णव गण छाड़े दीर्घश्वास ॥ ११० ॥
केने वा कृष्णेर नृत्य केने वा कीर्त्तन। कारे वा वैष्णव बलि, किबा सङ्कीर्त्तन ॥१११॥
किछु नाहि जाने लोक धन पुत्र रसे। सकल पाषण्ड मेलि वैष्णवेरे हासे ॥ ११२॥
चारि भाइ श्रीवास मिलिया निजघरे। निशा हइले हरिनाम गाय उच्च स्वरे ॥११३॥
शुनिञा पाषण्डी बले हइल प्रमाद। ए ब्राह्मण करिबेक ग्रामेर-उत्साद ॥ ११४ ॥
महा तीव्र नरपति जबन इहार। ए आख्यान शुनिले प्रमाद नदीयार ॥ ११५ ॥

---

जगदीश पण्डित, श्रीगोपीनाथाचार्य, श्रीमान् पण्डित, श्रीमुरारि गुप्त, श्रीगरुड़ पण्डित और श्रीगङ्गादास पण्डित आदि ॥ १०१ ॥ प्रत्येक के नाम लिखने से पुस्तक बहुत बढ़ जायगी। इसलिये आगे कथा के प्रसंग पर, जिनके नाम मैं जानता हूँ, लिखूँगा ॥ १०२ ॥ यह सब स्वधर्म-परायण हैं, उदार हैं और कृष्ण-भक्ति के सिवाय और कुछ नहीं जानते हैं ॥ १०३ ॥ सब परस्पर बन्धु-भाव से व्यवहार करते हैं, परन्तु उनमें से कोई अपने एवं दूसरे के अवतार-तत्त्व को नहीं जानते हैं ॥ १०४ ॥ उन सब का अन्तर-हृदय सब संसार को विष्णु-भक्ति-रहित देखकर बड़ा जलता है ॥ १०५ ॥ उनको बाहर ऐसा कोई नहीं मिलता है जिसके पास जाकर कृष्ण-कथा सुनें, इसलिये वह भक्तगण आप ही कीर्त्तन करते हैं ॥ १०६ ॥ उनका जब दो-चार दण्ड समय श्रीअद्वैताचार्य की सभा में श्रीकृष्ण कथा-प्रसङ्ग में जाता है तब उनका सब दुःख दूर होता है ।१०७। भक्तगण सब संसार को दग्ध देखते हैं, वार्त्तालाप करने का भी कोई स्थान न देखकर (आन्तरिक दुःख से) रोते हैं ॥ १०८ ॥ आप श्रीअद्वैत प्रभु सब वैष्णवों के संग मिलकर भी उन सब बहिर्मुख प्राणियों को समझाने में असमर्थ होते हैं ॥ १०९ ॥ तब श्रीअद्वैत दुःखी होकर उपवास करते हैं और सब वैष्णवगण लम्बी स्वाँसें-(स्वासें) भरते हैं ॥ ११० ॥ लोग धन, पुत्र आदि के क्षणिक सुख में मस्त होकर वह कुछ भी नहीं जानते हैं कि-प्रेमोल्लास में नृत्य कैसा होता है, कीर्त्तन कैसा होता है, वैष्णव किसे कहते हैं और सङ्कीर्त्तन क्या है ॥ बल्कि सब पाखण्डी मिलकर वैष्णवों की हँसी और उड़ाते हैं ॥ १११-११२ ॥ श्री-श्रीवासादि चारों भाई मिलकर रात्रि होने पर अपने घर में उच्च कण्ठ से श्री 'हरि' नाम गान करते हैं ॥११३॥ उसको सुनकर पाखण्डी लोग कहते हैं कि 'अनर्थ होगया' यह ब्राह्मण गाँव का नाश करेगा ।११४।

ईश्वर आज्ञाय आगे श्रीअनन्तधाम । राढ़े अवतीर्ण हैला नित्यानन्द राम ॥ १३० ॥
माघ मासे शुक्ला त्रयोदशी शुभ दिने । पद्मावती गर्भे एकचाका नामे ग्रामे ॥१३१॥
हाड़ाइ पण्डित नामे शुद्ध विप्रराज । मूले सर्व्व पिता ताने करि पिता व्याज ॥१३२॥
कृपासिन्धु भक्तिदाता प्रभु बलराम । अवतीर्ण हैला धरि नित्यानन्द नाम ॥ १३३ ॥
महा जय जय ध्वनि पुष्प वरिषण । सङ्गोपे देवता-गण करिला तखन ॥ १३४ ॥
सेइ दिन हैते राढ़-मण्डल सकल । वाढ़िते लागिल पुनः पुन सुमङ्गल ॥ १३५ ॥
जे प्रभु पतित जन निस्तार करिते । अवधूत वेश-धरि भ्रमिला जगते ॥ १३६ ॥
अनन्तेर प्रकाश हइला हेन मते । एबे शुन कृष्ण अवतरिला जे मते ॥ १३७ ॥
नवद्वीपे आछे जगन्नाथ 'मिश्रवर' । वसुदेव-प्राय तेहों स्वधर्म्मे तत्पर ॥ १३८ ॥
उदार चरित्र तेहों ब्रह्मण्येर सीमा । हेन नाहि जाहा दिया करिब उपमा ॥ १३९ ॥
कि कश्यप, दशरथ, वसुदेव, नन्द । सर्व्वमय-तत्त्व जगन्नाथ मिश्र चन्द्र ॥१४०॥
तान पत्नी शची नाम महा पतिव्रता । मूर्त्तिमयी विष्णु भक्ति सेइ जगन्माता ॥१४१॥
बहु कन्या पुत्रेर हइल तिरोभाव । सभे एक पुत्र विश्व रूप महा भाग ॥ १४२ ॥
विश्वरूप मूर्त्ति जेन अभिन्न मदन । देखि हरषित दुइ ब्राह्मणी-ब्राह्मण ॥ १४३ ॥
जन्म हैते विश्वरूपेर हैला विरक्ति । शैशवेइ सकल शास्त्रेते हैल स्फूर्त्ति ॥ १४४ ॥

तैयारी करते हैं।१२९।।प्रभु की आज्ञा से पहले श्री अनन्तरूपधारी श्रीबलराम श्रीनित्यानन्द रूप मे राढ़ देश में जन्म लेते हैं ।१३०। माघ मास की शुक्ला त्रयोदशी के शुभ दिन में,श्रीपद्मावती के गर्भ से, एकचक्का ग्राम में ।।१३१।। आप सब के पिता होते हुए भी शुद्ध विप्रराज हाडाइ पण्डित को पिता बनाकर, कृपासिन्धु एवं भक्तिदाता प्रभु बलराम 'नित्यानन्द' नाम धारण कर,अवतीर्ण हुए।१३२-१३३।।उस समय देवगणने अलक्षित रूप से महा जय जय ध्वनि एवं फूलों की वर्षा की थी ।।१३४।। उसी दिन से सम्पूर्ण राढ़ देश में दिनोदिन सुमङ्गल की वृद्धि होने लगी थी ।। १३५ ।। जिन प्रभु ने पतित जनों का उद्धार करने के लिये अवधूत वेश धारण करके जगत में भ्रमण किया ।। १३६ ।। उन श्रीनित्यानन्द प्रभु का इस प्रकार अवतार हुआ, अब जिस प्रकार से श्रीकृष्ण अवतीर्ण हुए, वह सुनिये ।।१३७।। नवद्वीप में श्रीजगन्नाथ 'मिश्रवर' नाम की एक महापुरुष रहते हैं जोकि कृष्ण-पिता (वसुदेव) की भाँति स्वधर्म परायण हैं ।।१३८।। और उदार-चरित्र एवं ब्राह्मणोचित सम्पूर्ण गुणों की सीमा स्वरूपहैं,ऐसा कोई एक पुरुष नहीं है जिसको उनकी उपमा में ला सकूँ ।। १३९ ।। श्रीजगन्नाथ मिश्र तत्त्व से ( भगवान् अवतार के पितृकोटि ) श्रीकश्यप, श्रीदशरथ, श्रीवसुदेव, श्रीनन्द आदि सर्वमय हैं ।। १४० ।। उसकी महा पतिव्रता 'शची' नाम की पत्नी हैं, वे ही जगन्माता एवं मूर्त्तिमती विष्णुभक्ति हैं ।। १४१ ।। आपके कई कन्या एवं पुत्र अप्रकट हो गये हैं इस समय केवल एक महा भगवान् पुत्र श्रीविश्वरूप हैं ।। १४२ ।। श्रीविश्वरूप कैसी सुन्दर मूर्त्ति हैं मानों मदनदेव ही शोभित हैं, आपको देखकर दोनों ब्राह्मणी, ब्राह्मण ( माता, पिता ) प्रसन्न हो रहे हैं ।। १४३ ।। श्रीविश्वरूप को जन्म से ही विरक्ति हो गई थी और बालकपन में ही सब शास्त्र स्फूर्त्ति होने लगे थे ।। १४४ ।। इधर सब

धर्म्मे तिरोभाव हैले प्रभु अवतरे । भक्त सब दुःख पाय जानिञा अन्तरे ॥ १४६ ॥
तबे महा-प्रभु गौरचन्द्र भगवान् । शची जगन्नाथ देहे हैला अधिष्ठान ॥ १४७ ॥
जय जय ध्वनि हैल अनन्त वदने । स्वप्न प्राय जगन्नाथ-मिश्र शची शुने ॥ १४८ ॥
महातेज-मूर्त्ति हइलेन दुइ जने । तथापिह लखिते ना पारे अन्य जने ॥ १४९ ॥
अवतीर्ण्ण हइबेन ईश्वर जानिञा । ब्रह्मा शिव आदि स्तुति करेन आसिया ॥ १५० ॥
अति महा वेद-गोप्य ए सकल कथा । इहाते सन्देह किछु नाहिक सर्व्वथा ॥ १५१ ॥
भक्ति करि ब्रह्मादि देवेर शुन स्तुति । जे गोप्य श्रवणे हय कृष्णे रति मति ॥ १५२ ॥
जय जय महाप्रभु जनक सभार । जय जय सङ्कीर्त्तन हेतु अवतार ॥ १५३ ॥
जय जय वेद-धर्म-साधु-विप्र पाल । जय जय अभक्त मर्दन महा काल ॥ १५४ ॥
जय जय सर्व्व सत्य-मय कलेवर । जय जय इच्छा मय महा महेश्वर ॥ १५५ ॥
जे तुमि अनन्त कोटि ब्रह्माण्डेर वास । से तुमि श्रीशची-गर्भे करिला प्रकाश ॥ १५६ ॥
तोमार जे इच्छा, के बुझिते तार पात्र । सृष्टि, स्थिति, प्रलय तोमार लीला मात्र ॥१५७॥
सकल संसार जाँर इच्छाय संहरे । सेकि कंस-रावण वधिते वाक्ये नारे ॥ १५८ ॥

---

संसार विष्णुभक्ति से शून्य हो रहा है और कलि के प्रारम्भ में ही भविष्य (कलि के मध्य व अन्त भाग) के अनाचार फैलने लगे हैं ॥ १४५ ॥ धर्म का लोप होने पर प्रभु मन में यह जानकर कि मेरे भक्त दुःख पाते हैं, अवतार लेते हैं ॥१४६॥ उसी समय भगवान् श्रीगौरचन्द्र महाप्रभु श्रीशची एवं श्रीजगन्नाथ मिश्र की देह में अधिष्ठित होते हैं ॥ १४७ ॥ कभी श्रीअनन्तदेव के मुखों से 'जय-जय' ध्वनि होने लगती है, जिसको श्रीजगन्नाथ मिश्र एवं श्रीशची देवी स्वप्न की सी दशा में सुनते हैं ॥ १४८ ॥ दोनों जनों की मूर्ति महातेजमयी हो जाती है फिर भी अन्य लोग इस बात को लक्ष्य नहीं कर पाते हैं ॥ १४९ ॥ ब्रह्मा, शिव आदि, ईश्वर को प्रकट होने वाले समझ कर ( श्रीजगन्नाथ मिश्र के घर ) आकर ( प्रभु की ) स्तुति करते हैं ॥ १५० ॥ इसमें किसी प्रकार का कोई सन्देह नहीं है कि यह सब चरित्र अत्यन्त से भी वेद-गोप्य हैं ॥ १५१ ॥ ब्रह्मा आदि देवगण शुभ रूप से प्रभु की जो स्तुति करते हैं वह भक्ति-पूर्वक सुनिये, जिसके सुनने से श्रीकृष्ण के प्रति निष्ठा-बुद्धि हो जाती है ॥ १५२ ॥ हे महाप्रभु ! हे सबके पिता ! आपकी जय हो जय हो, हे सङ्कीर्त्तन हेतु अवतारधारी ! आपकी जय हो जय हो ॥ १५३ ॥ हे वेद, धर्म, साधु एवं विप्रों के पालक ! आपकी जय हो जय हो । हे अभक्तों के मर्दन करने के लिये महाकाल स्वरूप आपकी जय हो जय हो ॥ १५४ ॥ हे सत्य-मय सर्व अङ्ग ! आपकी जय हो जय हो, हे इच्छामय ! हे महा महेश्वर आपकी जय हो जय हो ॥ १५५ ॥ जो आप अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों के आधार स्थान हो वही आप श्रीशची के गर्भ में अधिष्ठित हो ॥ १५६ ॥ आपकी जो इच्छा है उसे कौन समझ सकता है ? सृष्टि, स्थिति, प्रलय करना तो आपके खेल मात्र हैं ॥ १५७ ॥ जिन आपकी इच्छा ही सम्पूर्ण संसार का नाश करने में समर्थ है वे आप

तथापिह दशरथ वसुदेव-घरे । अवतीर्ण हइया-वधिला ता सभारे ॥ १५९ ॥
एतेके के बुझे प्रभु तोमार कारण । आपनि से जान तुमि आपनार मन ॥ १६० ॥
तोमार आज्ञाय एक सेवके तोमार । अनन्त ब्रह्माण्ड पारे करिते उद्धार ॥ १६१ ॥
तथापिह तुमि से आपने अवतरि । सर्व्व धर्म्म बुझाओ पृथिवी धन्य करि ॥ १६२ ॥
सत्य जुगे तुमि प्रभु शुभ्र वर्ण धरि । तपो धर्म्म बुझाओ आपने तप करि ॥ १६३ ॥
कृष्णाजिन, दण्ड, कमण्डलु, जटा धरि । धर्म्म स्थाप ब्रह्मचारि रूपे अवतरि ॥ १६४ ॥
त्रेता जुगे हइया सुन्दर रक्त वर्ण । हइ जज्ञ पुरुष बुझाओ जज्ञ-धर्म्म ॥ १६५ ॥
स्रु क स्रु व हस्ते जज्ञ आपने करिया । सभारे लओयाओ जज्ञ जाज्ञिक हइया ॥१६६॥
दिव्य मेघ श्याम वर्ण हइया द्वापरे । पूजा धर्म्म बुझाओ आपने घरे घरे ॥१६७॥
पीत वास श्रीवत्सादि निज चिह्न धरि । पूजा कर महाराज रूपे अवतरि ॥ १६८ ॥
कलिजुगे विप्ररूपे धरि पीत वर्ण । बुझावारे वेद गोप्य सङ्कीर्त्तन-धर्म ॥ १६९ ॥
कतेक वा तोमार अनन्त अवतार । कार शक्ति आछे इहा संख्या करिवार ॥ १७० ॥
मत्स्य रूपे तुमि जले प्रलये विहर । कूर्म रूपे तुमि सब जीवेर आधार ॥ १७१ ॥
हयग्रीव रूपे कर वेदेर उद्धार । आदि दैत्य दुइ मधु कैटभ संहार ॥ १७२ ॥
श्रीवराह रूपे कर पृथिवी उद्धार । नरसिंह रूपे कर हिरण्य विदार ॥ १७३ ॥

---

क्या कंस व रावण का वाक्य द्वारा वध नहीं कर सकते थे ? ॥ १५८ ॥ फिर भी आपने श्रीवसुदेव व श्रीदशरथ के घर में जन्म लेकर उसका वध किया ॥ १५९ ॥ हे प्रभो ! आपके ऐसा करने का क्या कारण है ? इसे कौन जान सकता है ? अपने मन की बात केवल आप ही जानते हैं ॥१६०॥ आपकी आज्ञा से आपका एक ही सेवक अनन्त ब्रह्माण्डों का उद्धार कर सकता है ॥ १६१ ॥ फिर भी आप स्वयं ही अवतार लेकर पृथ्वी को धन्य करते हुए सब धर्मों का प्रचार करते हो ॥ १६२ ॥ हे प्रभो ! आप सत्य युग में शुक्ल वर्ण धारण करके स्वयं तप करते हुए इस युग के तप धर्म का प्रचार करते हो ॥ १६३ ॥ और ब्रह्मचारी रूप से अवतीर्ण होकर मृग चर्म्म, दण्ड, कमण्डल एवं जटाधारी होकर धर्म की स्थापना करते हो ॥ १६४ ॥ और त्रेता युग में सुन्दर रक्तवर्ण श्रीयज्ञ पुरुष नाम से आप यज्ञ-धर्म का प्रचार करते हो ॥ १६५ ॥ आप स्वयं याज्ञिक बनकर स्रु क्, स्रु वा ( यज्ञ कुण्ड में घी प्रक्षेपन के पात्र विशेष ) हाथ में लेकर यज्ञ करके सबसे यज्ञ कराते हो ॥ १६६ ॥ और द्वापर युग में आप दिव्य-श्याम-घन वर्ण से घर-घर में पूजा-धर्म का उपदेश करते हो ॥ १६७ ॥ और महाराज रूप से अवतीर्ण हुए पीताम्बर, श्रीवत्स आदि निज चिह्नों को धारण कर पूजा भी करते हो ॥ १६८ ॥ एवं कलियुग में आप वेदों के गुप्तधन श्रीहरिनाम संकीर्त्तन धर्म का प्रचार करने के लिये, पीतवर्ण धारण कर ब्राह्मण रूप से अवतीर्ण होते हो ॥ १६९ ॥ आपके कितने ही अनन्त अवतार हैं इनकी गणना करने की शक्ति किसमें है ? ॥ १७० ॥ आप प्रलय काल में मत्स्य रूप से जल में विचरण करते हो और कूर्म्म रूप से आपही सब जीवों के आधार हो ॥ १७१ ॥ आप श्रीहयग्रीव रूप से वेदों का उद्धार करते हैं तथा दोनों आदिदैत्य मधु एवं कैटभ का संहार करते हैं ॥ १७२ ॥ श्रीवराह रूप से

बलि छल आपने वामन रूप हइ । परशुराम रूपे कर निःक्षत्रिया मही ॥ १७४ ॥
रामचन्द्र रूपे कर रावण संहार । हलधर रूपे कर अनन्त विहार ॥ १७५ ॥
बुद्ध रूपे दया-धर्म करह प्रकाश । कल्की रूपे कर म्लेच्छ गणेर विनाश ॥ १७६ ॥
धन्वन्तरि रूपे कर अमृत प्रदान । हंस रूपे ब्रह्मादिरे कह तत्त्व ज्ञान ॥ १७७ ॥
श्रीनारद रूपे वीणा धरि कर गान । व्यास रूपे कर निज तत्त्वेर व्याख्यान ॥१७८॥
सर्व-लीला-लावण्य वैदग्धी करि सङ्गे । कृष्णरूपे गोकुले करिला बहु रङ्गे ॥१७९॥
एइ अवतारे भागवत रूप धरि । कीर्तन करिबा सर्व शक्ति परचारि ॥ १८० ॥
सङ्कीर्तने पूर्ण हैब सकल संसार । घरे घरे हैब प्रेम भक्ति परचार ॥ १८१ ॥
कि कहिब पृथिवीर आनन्द प्रकाश । तुमि नृत्य करिबे मिलिया सर्वदास ॥ १८२ ॥
जे तोमार पाद पद्म ध्यान नित्य करे । ता सभार प्रभावेइ अमङ्गल हरे ॥ १८३ ॥
पदतले खण्डे पृथिवीर अमङ्गल । दृष्टि मात्रे दश दिक हय सुनिर्मल ॥ १८४ ॥
बाहु तुलि नाचिते स्वर्गेर विघ्न नाश । हेन जश हेन नृत्य, हेन तोर दास ॥१८५॥

तथाहि पद्मपुराणे— पद्भ्यां भूमेर्दिशो दृग्भ्यां, दोर्भ्यां चामङ्गलं दिवः ।
बहुधोत्सार्यते राजन् कृष्णभक्तस्य नृत्यतः ॥ १८६ ॥

---

आप पृथ्वी का उद्धार करते हो और नृसिंह रूप में हिरण्यकशिपु दैत्य का निर्दलन करते हो ॥ १७३ ॥ आप अपूर्व श्रीवामन रूप धारण करके राजा 'बलि' को छलते हो और श्रीपरशुराम रूप से पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित करते हो ॥ १७४ ॥ और 'श्रीरामचन्द्र' रूप से रावण का वध करते हो एवं श्रीबलराम रूप से अनन्त-विहार करते हो ॥ १७५ ॥ श्री 'बुद्ध' रूप से आप 'दया' के धर्म का प्रचार करते हो और श्री 'कल्की' रूप से म्लेच्छगण का विनाश करते हो ॥ १७६ ॥ श्री 'धन्वन्तरि' रूप से आप अमृत प्रदान करते हो और श्रीहंस रूप से ब्रह्मा आदि को तत्त्व-ज्ञान का उपदेश करते हो ॥ १७७ ॥ श्रीनारद रूप से आप वीणा धारण करके अपने गुण आदि गान करते हो और श्रीव्यास रूप से अपने तत्त्व की व्याख्या करते हो ॥ १७८ ॥ समस्त लीला-माधुरी एवं रूप-माधुरी साथ लेकर श्रीकृष्ण रूप में आपने गोकुल ( व्रज ) में अनेक लीलाएँ की हैं ॥ १७९ ॥ अब इस अवतार में आप भक्त रूप से भक्ति के अङ्ग-प्रत्यंग का प्रचार करते हुए कीर्तन करेंगे ॥ १८० ॥ उस समय संसार संकीर्तन से भरपूर होगा और घर-घर में प्रेम-भक्ति देखने में आवेगी ॥ १८१ ॥ और जब आप अपने भक्तों के साथ नृत्य करेंगे, उस समय पृथ्वी जितनी आनन्द, उल्लासमयी होगी उसको हम क्या कहें ? ॥ १८२ ॥ जो जन आपके चरण-कमलों का नित्य ध्यान करते हैं, उन सबके प्रभाव से ही ( संसार के ) अमंगल दूर हो जाते हैं ॥ १८३ ॥ उनका पद-ताल से पृथ्वी का अमङ्गल नष्ट होता है और उनकी दृष्टि मात्र से दशों दिशाएँ पवित्र होती हैं ॥ १८४ ॥ उनके नृत्य अवसर में भुजा उठाने से स्वर्ग के विघ्न नाश होते हैं, हे प्रभो ! ऐसा उनका नृत्य है, ऐसी उनकी महिमा है एवं ऐसे आपके दास हैं ॥ १८५ ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्ण-भक्त जिस समय नृत्य करते हैं, उस समय बहु प्रकार से जगत् के अमंगल नष्ट होते हैं । उनके चरण पृथ्वी के, दोनों नेत्र सब दिशाओं के, एवं दोनों भुजायें स्वर्ग के अमङ्गल नाश करती हैं, इस प्रकार पद्मपुराण में कहा गया है ॥ १८६ ॥

से प्रभु आपने तुमि साक्षात् हइया । करिबा कीर्त्तन प्रेम भक्त-गोष्ठी लैया ॥ १८७ ॥
ए महिमा प्रभु बलिबारे कार शक्ति । तुमि बिलाइबा वेद-गोप्य विष्णु भक्ति ॥ १८८ ॥
मुक्ति दिया जे भक्ति राखह गोप्य करि । आमि सब जे निमित्ते अभिलाष करि ॥१८९॥
जगतेरे प्रभु तुमि दिबा हेन धन । तोमार कारुण्य सबे इहार कारण ॥ १९० ॥
जे तोमार नामे प्रभु सर्व्व जज्ञ पूर्ण । से तुमि हइबे नवद्वीपे अवतीर्ण ॥ १९१ ॥
एइ कृपा कर प्रभु हइया सदय । जेन आमा सभार देखिते भाग्य हय ॥ १९२ ॥
एत दिने गङ्गार पूरिल मनोरथ । तुमि कृपा करिबे जे चिर अभिमत ॥१९३॥
जे तोमारे जोगेश्वर सबे देखे ध्याने । से तुमि विदित हैबा नवद्वीप ग्रामे ॥१९४॥
नवद्वीप प्रतिओ थाकुक नमस्कार । शची-जगन्नाथ-गृहे जथा अवतार ॥ १९५ ॥
एइ मत ब्रह्मादि देवता प्रति दिने । गुप्त रहि ईश्वरेर करेन स्तवने ॥ १९६ ॥
शची गर्भे वैसे सर्व भुवनेरवास । फाल्गुनी पूर्णिमा आसि हइला प्रकाश ॥ १९७ ॥
अनन्त ब्रह्माण्डे जत आछे सुमङ्गल । सेइ पूर्णिमाय आसि मिलिला सकल ॥ १९८ ॥
सङ्कीर्त्तन सहित प्रभुर अवतार । ग्रहणेर छले ताहा करेन प्रचार ॥ १९९ ॥
ईश्वरेर कर्म्म बुझिबार शक्ति कार । चन्द्र आच्छादिल राहु ईश्वर-इच्छाय ॥ २०० ॥
सर्वे नवद्वीपे देखे हइल ग्रहण । उठिल मङ्गल ध्वनि श्री हरि कीर्त्तन ॥ २०१ ॥

---

नाश करती हैं ॥ १८६ ॥ उनके प्रभु आप अब स्वयं प्रकट होकर अपनी प्रिय भक्त-मण्डली को साथ लेकर कीर्त्तन करोगे ॥ १८७ ॥ तो हे प्रभो ! उनकी महिमा कौन वर्णन कर सकेगा और उस समय आप वेद-गोप्य श्रीकृष्ण-भक्ति वितरण करेंगे ॥ १८८ ॥ जिस भक्ति को आप मुक्ति देकर छिपाये रखते हो और जिसकी हम सब अभिलाषा करते हैं ॥ १८९ ॥ ऐसा वह भक्ति-धन आप केवल करुणा के वशीभूत होकर जन साधारण को देंगे ॥ १९० ॥ हे प्रभो ! जिन आपके नाम से सर्व यज्ञ पूर्ण होते हैं वही आप स्वयं श्री-नवद्वीप में अवतीर्ण होंगे ॥ १९१ ॥ हे प्रभो ! आप सदय होकर ऐसी कृपा कीजिये कि हम सबको दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हो । ॥ १९२ ॥ इतने दिनों में श्रीगङ्गादेवी का मनोरथ पूर्ण हुआ है, जिस कृपा की श्रीगङ्गा देवी को चिरकाल से अभिलाषा थी वह कृपा ( क्रीड़ा ) आप अब करेंगे ॥ १९३ ॥ जिन आपको समस्त योगेश्वर ध्यान से देखते हैं वही आप नवद्वीप ग्राम में प्रकट होंगे ॥ १९४ ॥ हमारा श्रीनवद्वीप धाम को भी नमस्कार है, जहाँ पर कि आप श्रीशची-जगन्नाथ के घर में अवतार ले रहे हो ॥ १९५ ॥ इसी प्रकार श्री-ब्रह्मा आदि देवगण प्रति दिन अलक्षित रूप से भगवान् की स्तुति करते हैं ॥ १९६ ॥ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के भाण्डार स्थान प्रभु श्रीशचीदेवी के गर्भ में विराजमान हैं और फाल्गुन मास की पूर्णिमा भी आई हुई है ॥ १९७ ॥ अनन्त ब्रह्माण्डों में जितने सुमंगल हैं वे सब पूर्णतः इसी पूर्णिमा में आकर मिल गये हैं ॥ १९८ ॥ प्रभु 'संकीर्त्तन' को साथ लेकर अवतीर्ण होते हैं और ग्रहण के बहाने से उसका प्रचार करते हैं ॥ १९९ ॥ ईश्वर के कर्मों ( लीलाओं ) के समझने की कौन में शक्ति है ? उन्हीं प्रभु की इच्छा से राहु ने चन्द्रमा को ढक लिया है ॥ २०० ॥ इसीलिये समस्त नवद्वीप में ग्रहण पड़ता हुआ दिखलाई देता है और

धानशी

जिनिआ रविकर, अंग मनोहर, नयने हेरइ ना पारि।
आयत लोचन, ईषत् बङ्किम, उपमा नाहिक विचारि ॥ध्रु०॥
(आजु) विजये गौरांग, अवनी मण्डले, चौदिगे शुनिआ उल्लास।
एक 'हरि-ध्वनि' आ ब्रह्म भरि शुनि, गौरांग चाँदेर परकाश ॥ १ ॥
चन्दने उज्ज्वल, वक्ष परिसर, दोलये ताँहा वनमाल।
चाँद सु शीतल, श्रीमुख मण्डल, आजानु बाहु विशाल ॥ २ ॥
देखिया चैतन्य, भुवने धन्य धन्य, उठये जय जय नाद।
कोइ नाचत आनन्दे गायत, कलि हैला हरिषे-विषाद ॥ ३ ॥
चारि वेद-शिर-मुकुट चैतन्य, पामर मूढ़ नाहि जाने।
श्रीचैतन्यचन्द्र, निताइ ठाकुर वृन्दावनदास ( तछु पदे ) गाने ॥ ४ ॥

पठमञ्जरी

प्रकाश हइला गौरचन्द्र। दश दिगे उठिल आनन्द ॥ध्रु०॥
रूप कोटि मदन जिनिआ। हासे निज कीर्त्तन शुनिया ॥ १ ॥
अति सुमधुर मुख आँखि। महाराज-चिन्ह सब देखि ॥ २ ॥
श्रीचरणे ध्वज वज्र शोभे। सब अंगे जन-मन लोभे ॥ ३ ॥
दूरे गेल सकल आपद। व्यक्त हैल सकल सम्पद ॥ ४ ॥
श्रीचैतन्य नित्यानन्द जान। वृन्दावनदास गुण गान ॥ ५ ॥

नट मङ्गल

चैतन्य अवतार, शुनिआ देवगणे, उठिल परम मङ्गलरे।

---

हर एवं ( प्रभा द्वारा ) सूर्य की किरणों को जीतने वाला है जो प्रभा की चकाचौंध के कारण भले प्रकार दिखलाई नहीं देता है। आपके नयन आयत ( बड़े-बड़े ) एवं किञ्चित् बङ्किम ( तिरछे ) हैं। ( आपके रूप की ) उपमा विचार करने से भी नहीं मिलती है। आज श्रीगौरचन्द्र अवनी मण्डल पर पधारे हैं, चारों ओर हर्षध्वनि सुनी जाती है, ब्रह्माण्ड भर में केवल एक 'हरि ध्वनि' गूँज रही है, अहो ! आज श्रीगौरचन्द्र प्रकाशित हुए हैं ॥ १ ॥ आपका वक्षस्थल विशाल एवं चन्दन लेपन द्वारा उज्ज्वलित है और वहीं वनमाल झूम रही है। श्रीमुख-मण्डल चन्द्रमा से भी अधिक सुशीतल है और आपके बाहु जानु पर्यन्त एवं विशाल हैं ॥ २ ॥ श्रीगौरचन्द्र को देखकर भुवन में 'धन्य हो' 'धन्य हो' 'जय हो' 'जय हो' की ध्वनि गूँज रही है, कोई नाच रहा है, कोई आनन्द से गान कर रहा है। 'कलि' हर्षित-विषादित हो रहा है ॥३॥ श्रीचैतन्यचन्द्र चारों वेदों के सिर-मुकुट ( सिर-ताज ) हैं, इस बात को पामर व मूर्ख जन नहीं जानते हैं। श्रीवृन्दावनदास श्रीचैतन्यचन्द्र व श्रीनित्यानन्द-ठाकुर के श्रीचरणों में उन्हीं के गुण-गान करते हैं ॥ ४ ॥ श्रीगौरचन्द्र प्रकट हुए हैं और दशों दिशाओं में आनन्द उमड़ पड़ा है, आपका रूप कोटि कामदेवों को जीतने वाला है, आप अपने नाम कीर्त्तन को सुन-सुन कर हँस रहे हैं ॥ १ ॥ आपका मुख एवं आँखें अत्यन्त सुन्दर व मधुर है, आपके श्रीअङ्ग में 'महाराज' के सब लक्षण दिखलाई देते हैं ॥२॥ श्रीचरणों में ध्वज और वज्र आदि के चिह्न सुशोभित हैं,आपका सम्पूर्ण अङ्ग ही भक्तों के मन को लुभा रहा है॥३॥उस समय सब विपत्ति दूर चली गई और सब सम्पत्ति उमड़ पड़ी हैं ॥ ४ ॥ श्रीवृन्दावनदास श्रीचैतन्य व श्रीनित्यानन्द को जानकर उनके गुण-गान करते हैं ॥ ५ ॥ देवगण श्रीचैतन्य-अवतार का मंगल समाचार सुनकर परम मंगलमयी

[illegible]

[illegible]

आनन्दे इन्द्रपुर, मंगल कोलाहल, साज साज बलि साजे रे।
बहुत पुण्य भाग्ये, चैतन्य परकाश, पाओल नवद्वीप माझे रे ॥१॥
अन्योन्ये आलिङ्गन, चुम्बन घन घन, लाज केहो नाहि मानये रे।
नदीया-पुरन्दर, जनम-उत्सवे, आपन पर नाहि जाने रे ॥२॥

---

विशाल ध्वनि कर रहे हैं और अद्वैत-नाद-धारी प्रभु का श्रीमुखचन्द्र देख कर आनन्द से विह्वल हो रहे हैं। अनन्त, ब्रह्मा और शिव आदि जितने देवता हैं वे सभी मनुष्य [illegible] उनके आनन्द में 'हरि' 'हरि' गा रहे हैं। परन्तु उनको कोई नहीं पहिचान सकता है ॥ १ ॥ सारे नवद्वीप में उच्च-स्वर से 'हरि' बोलते हुए दसों दिशाओं में दौड़ा-दौड़ी कर रहे हैं, एवं मनुष्य व देवता मिलकर एक स्थान पर केलि कर रहे हैं, इस प्रकार नवद्वीप आनन्द से भर गया है ॥ २ ॥ सब देवता श्रीशचीदेवी के आँगन में दण्डवत् प्रणाम कर रहे हैं, परन्तु ग्रहण के अन्धकार में किसी को दिखलाई नहीं दे रहे हैं। ऐसी श्रीचैतन्य प्रभु की लीला दुर्ज्ञेय है ( जानी नहीं जाती ) ॥ ३ ॥ उनमें से कोई तो स्तुति कर रहा है, कोई हाथ में छत्र धारण कर रहा है, कोई चँवर डुला रहा है, कोई परम हर्षित होकर पुष्प-वृष्टि कर रहा है, कोई नाच रहा है, कोई गाता है और कोई बजाता है ॥ ४ ॥ श्रीगौरचन्द्र अपनी सर्व शक्तियों के सहित आये हुए हैं, इस बारे में पाखण्डियों को कुछ भी खबर नहीं है। श्रीवृन्दावनदास जिनके प्रभु श्रीनित्यानन्द हैं श्रीकृष्णचैतन्य के गुण-गान करते हैं ॥ ५ ॥ देवगण दुन्दुभि और डिण्डिम बजा रहे हैं और मंगल-मय ध्वनि दे रहे हैं एवं मधुर और रसीले स्वर से गान गा रहे हैं। परस्पर कहते हैं कि—वेदों के भी अगोचर प्रभु से चलो आज भेंट करेंगे, देर करने की आवश्यकता नहीं है। इन्द्रपुर में आनन्द से मंगल कोलाहल हो रहा है। देवगण सजो-सजो कह कर सज रहे हैं और कहते जाते हैं कि अनेक पुण्य-अर्जित सौभाग्य से नवद्वीप में श्रीचैतन्यचन्द्र का जन्म देखने को मिला है ॥ १ ॥ ये परस्पर प्रिया, प्रियो लज्जा के परित्याग आलिङ्गन एवं चुम्बन कर रहे हैं तथा नवद्वीप-सुन्दर ( श्रीगौरचन्द्र ) के जन्म-उत्सव में अपने पराये को भूल गये हैं ॥ २ ॥

( गौराङ्ग सुन्दर )

ऐछन कौतुके, आइला नवद्वीपे, चौदिगे शुनि हरि नाम रे।
पाइया गोरा रस-विह्वोल परवश, चैतन्य जय जय गान रे ॥३॥
देखिल शची-गृहे, गौराङ्ग-सुन्दरे, एकत्र जैछे कोटि चाँद रे।
मानुष रूप धरि, ग्रहण छल करि, बोलये उच्च हरि नाम रे ॥४॥
सकल शक्ति-संगे, आइला गौरचन्द्र, पाषण्डी किछुइ ना जान रे।
श्रीचैतन्य नित्यानन्द, चाँद प्रभु जान, वृन्दावनदास रस गान रे ॥५॥

( एक पदी )

( प्रेम-धन-रतन पसार। देख गोरा चँदेर बाजार ॥१॥ )

हेन मते प्रभुर हइल अवतार। आगे हरि-सङ्कीर्त्तन करिया प्रचार ॥ २११ ॥
चतुर्दिगे धाय लोक ग्रहण देखिया। गङ्गा स्नाने 'हरि' बलि जायेन धाइया ॥ २१२ ॥
जार मुखे ए जन्मेओ नाहिक हरिनाम। से हो 'हरि' बलि धाय, करि गंगा-स्नान ॥२१३॥
दश दिगे पूर्ण हइ उठे हरि ध्वनि। अवतीर्ण हइ शुनि हासे द्विज मणि ॥ २१४ ॥
शची जगन्नाथ देखि पुत्रेर श्री मुख। दुइ जन हइलेन आनन्द-स्वरूप ॥ २१५ ॥
कि विधि करिब इहा किछुइ ना स्फुरे। आथे-व्यथे नारीगण जय कार पूरे ॥२१६॥
धाइया आइला सभे जत आप्त गण। आनन्द हइल जगन्नाथेर भवन ॥ २१७ ॥
शचीर जनक चक्रवर्त्ती नीलाम्बर। प्रति लग्ने अद्भुत देखेन विप्रवर ॥ २१८ ॥

---

इसी आनन्द से नवद्वीप में आते हैं जहाँ कि चारों ओर'हरि-नाम'सुनाई दे रहा है। इस श्रीगौर प्रेम-रस को पाकर विह्वलता के वश हो जाते हैं और'श्रीचैतन्यचन्द्र की जय हो' 'श्रीचैतन्यचन्द्र की जय हो'गाते हैं॥३॥ और श्रीशचीदेवी के घर में आकर श्रीगौराङ्ग सुन्दर को,जैसे कोटि-चन्द्रमा एकत्र हुए हैं उस प्रकार देखते हैं एवं आप सब मनुष्य रूप धारण करके ग्रहण को निमित्त-मात्र बनाकर उच्च 'हरि-नाम' बोल रहे हैं ॥ ४ ॥ श्रीगौरचन्द्र सम्पूर्ण शक्तियों को लेकर आये हुए हैं, लेकिन पाखण्डियों को इसकी कुछ भी खबर नहीं है। श्रीवृन्दावनदास श्रीचैतन्य व श्रीनित्यानन्द प्रभु का सेवक, लीला-रस गान करता है ॥ ५ ॥ श्रीगौरचन्द्र का बाजार देखिये जिसमें प्रेम-धन रूपी रत्न प्रसारित हैं॥१॥इस प्रकार आगे हरि-सङ्कीर्त्तन का प्रचार करते हुए अवतीर्ण हुए॥ २११ ॥ ग्रहण को देखकर लोग चारों ओर दौड़ा-दौड़ी कर रहे हैं और 'हरि' 'हरि' बोलते हुए गङ्गा-स्नान करने जा रहे हैं ॥२१२॥ पूर्व जन्मों की बात ही क्या—जिसने इस जन्म में भी कभी 'हरि-नाम' नहीं लिया है आज वह भी गङ्गा-स्नान करके 'हरि बोल' 'हरि बोल' कहता हुआ, दौड़ा हुआ चला जाता है ॥ २१३ ॥ श्रीहरि नाम की ध्वनि दशों दिशाओं से उमड़ी पड़ती है, जिसको अवतीर्ण हुए द्विज-मणि ( श्रीगौरचन्द्र ) सुन-सुन कर हँस रहे हैं ॥ २१४ ॥ पुत्र का श्रीमुख देखकर श्रीशची व श्रीजगन्नाथ 'मिश्र' दोनों जने आनन्द-स्वरूप बन गये हैं ॥ २१५ ॥ उनको 'इस समय हम क्या विधान करें' कुछ भी स्फूर्त्ति नहीं होरही है वहाँ एकत्रित स्त्रियाँ सब अस्त-व्यस्त होकर जय-जय कार की भरमार कर रही हैं।२१६। उसी समय श्रीजगन्नाथ मिश्र के जितने आत्मीय जन हैं वे सब शीघ्र गति से आते हैं, श्रीजगन्नाथ मिश्र के घर आनन्द हो रहा है ॥२१७। श्रीशची के पिता विप्रवर नीलाम्बर चक्रवर्त्ती ( ज्योतिष शास्त्र अनुयायी )

महाराज लक्षण सकल लग्ने करे । रूपदेखि चक्रवर्त्ती हइला विस्मये ॥ २१९ ॥
'विप्र-राजा गौड़े हइबेक' हेन आछे । विप्र बोले "सेइ बा जानिब पाछे" ॥ २२०
महा ज्योतिर्विद् विप्र सभार अग्रेते । लग्न अनुरूप कथा लागिला कहिते ॥ २२१ ॥
"लग्ने जत देखि एइ बालक महिमा । राजा हेन, बाक्ये तारे दिते नारि सीमा ॥२२२॥
बृहस्पति जिनिञा हइब विद्यावान् । अल्पेइ हइब सर्व्व गुणेर निधान" ॥ २२३ ॥
सेइ स्थाने विप्र रूपे एक महा जन । प्रभुर भविष्य कर्म्म करये कथन ॥ २२४ ॥
विप्र बोले "ए शिशु साक्षात् नारायण । इहा हैते सर्व्व धर्म्म हइब स्थापन ॥ २२५ ॥
इहा हैते हइबेक अपूर्व्व प्रचार । ए शिशु करिब सर्व्व जगत्-उद्धार ॥ २२६ ॥
ब्रह्मा, शिव, शुक जाहा वाञ्छे अनुक्षण । इहा हैते ताहा पाइबेक सर्व्व जन ॥ २२७ ॥
सर्व्व भूत दयालु, निर्व्वेद दरशने । सर्व्व जगतेर प्रीत हइब इहाने ॥ २२८ ॥
अन्येर कि दाय विष्णु-द्रोही जे जवन । ताहाराओ ए शिशुर भजिब चरण ॥ २२९ ॥
अनन्त ब्रह्माण्डे कीर्त्ति गाइब इहान । आदि विप्र ए शिशुरे करिब प्रणाम ॥ २३० ॥
भागवत धर्म्म-मय इहान शरीर । देव-द्विज-गुरु-पितृ-मातृ-भक्त धीर ॥ २३१ ॥
विष्णु जेन अवतरि लओयायेन धर्म्म । सेइ मत ए शिशु करिब सर्व्व कर्म्म ॥ २३२ ॥
लग्ने जत कहे शुभ लक्षण इहान । कार शक्ति आछे ताहा करिते आख्यान ॥ २३३ ॥

---

प्रति लग्न में आश्चर्य युक्त बात देखते हैं ॥ २१८ ॥ आपकी लग्न 'महाराज' के लक्षण प्रकट करती है। प्रभु के रूप को देखकर चक्रवर्त्ती जी विस्मित हो गए हैं ॥ २१९ ॥ ज्योतिष में ऐसा है कि—'गौड़ देश में विप्र राजा होगा' चक्रवर्ती जी विचार करते हैं "क्या यह वही है ? आगे सब मालूम पड़ जायगी" ॥ २२० ॥ ज्योतिष के महा-ज्ञाता विप्रवर श्रीनीलाम्बर चक्रवर्ती सभा के सामने लग्न के अनुसार फल कहने लगे कि— ॥ २२१ ॥ "लग्न के अनुसार इस बालक की जो महिमा दिखलाई देती है उसके आगे 'राजा होगा' वाक्य यह देना भी थोड़ा प्रतीत होता है ॥ २२२ ॥ और विद्या में बृहस्पति को भी जीतने वाला होगा एवं थोड़े ही समय में सर्व गुणों का भाण्डार होगा ॥२२३॥ उसी जगह विप्र रूपधारी एक महापुरुष प्रभु के भविष्य-कर्म वर्णन करते हैं ॥ २२४ ॥ विप्रदेव कहते हैं कि यह बालक साक्षात् नारायण है, इसके द्वारा सब धर्मों की स्थापना होगी ॥ २२५ ॥ इसके द्वारा अपूर्व प्रचार होगा, यह शिशु सब संसार का उद्धार करेगा ॥२२६॥ जिस वस्तु की श्रीब्रह्मा, श्रीशिव एवं श्रीशुकदेवजी निरन्तर इच्छा करते रहते हैं उस वस्तु को इस बालक से जन साधारण भी प्राप्त करेंगे ॥ २२७ ॥ इनका सर्व जीवों पर दयालुपन होगा और इनको देख कर लोग विषय-विरक्त होंगे एवं सम्पूर्ण संसार के मनुष्य इनसे प्रीति करेंगे ॥ २२८ ॥ और की तो क्या चले जो विष्णु-द्रोही यवन भी होगा वह भी इस बालक के चरणों का भजन करेगा ॥२२९॥ अनन्त ब्रह्माण्ड इसकी कीर्त्ति गावेगा और ब्रह्माजी व अन्यान्य देवगण इस बालक को प्रणाम करेंगे ॥२३०॥ इसका शरीर भागवत-धर्ममय है और यह देवता, ब्राह्मण, गुरु, पिता और माता का धीर भक्त होगा॥२३१॥ जिस प्रकार श्रीविष्णु भगवान् अवतीर्ण होकर आचरण करके धर्म कराते हैं उसी प्रकार यह बालक भी वे सर्व कर्म करेगा॥२३२॥ **लग्न इनके जितने शुभ लक्षण सूचित करती है उन सबको वर्णन करने की किसकी सामर्थ्य है ? ॥२३३॥**

धन्य तुमि मिश्र-पुरन्दर भाग्यवान । जार ए नन्दन तारे रहुक प्रणाम ॥ २३४ ॥
हेन कोष्ठी गणिलाङ् आमि भाग्यवान । श्री विश्वम्भर नाम हइब इहान ॥ २३५ ॥
इहाने वलिब लोक 'नवद्वीप-चन्द्र' । ए बालक जानिह केवल परानन्द ॥ २३६ ॥
हेन रसे पाछे हय दुःखेर प्रकाश । अतएव ना कहिला प्रभुर संन्यास ॥ २३७ ॥
शुनि जगन्नाथ मिश्र पुत्रेर आख्यान । आनन्दे विह्वल विप्रे दिते चाहे दान ॥२३८॥
किछु नाहि सुदरिद्र, तथापि आनन्दे । विप्रेर चरणधरि मिश्रचन्द्र कान्दे ॥ २३९ ॥
सेह विप्र कान्दे जगन्नाथ पाये धरि । आनन्दे सकल लोक बोले 'हरि' 'हरि' ॥२४०॥
दिव्य-कोष्ठी शुनि जत बान्धव सकल । जय जय दिया सभे करेन मङ्गल ॥ २४१ ॥
ततक्षण आइल सकल वाद्य कार । मृदङ्ग सानाञि, वंशी बाजये अपार ॥ २४२ ॥
देव स्त्रीये नर स्त्रीये नापारि चिनिते । देव नरे एकत्र हइल भालमते ॥ २४३ ॥
देवनारी सब हाते धान्य दूर्वा लैया । हासि देन प्रभु शिरे 'चिरायु' वलिया ॥२४४॥
चिरकाल पृथिवीते करह प्रकाश । अतएव चिरायु वलिया हैल हास ॥ २४५ ॥
अपूर्व्व सुन्दरी सब शचीदेवी देखे । वार्त्ता जिज्ञासिते कारो ना आइसे मुखे ॥ २४६ ॥
शचीर चरण धूलि लय देवी-गण । आनन्दे शचीर मुखे ना आइसे वचन ॥ २४७ ॥
कि आनन्द हइल से जगन्नाथ-घरे । वेदेते अनन्ते ताहा वर्णिते ना पारे ॥ २४८ ॥

---

हे भाग्यवान् श्रीमिश्र पुरन्दर ! आप धन्य हो, ( जिन आपका यह ऐसा ) पुत्र है–उन आपको मेरा प्रणाम ( स्वीकार ) हो ॥ २३४ ॥ मैं भी भाग्यवान् हूँ जो ऐसी जन्म-लग्न को विचारा। इनका नाम 'श्रीविश्वम्भर' होगा ॥२३५॥ इनको लोग 'नवद्वीपचन्द्र' नाम से भी पुकारेंगे, यह बालक केवल आनन्द की परावधि मूर्ति है ॥ २३६ ॥ ( विप्रवर ने मन में यह सोचकर कि इनके सन्यास को सुना देने से ) ऐसे आनन्द के समय में कहीं पीछे दुःख न आ जाय इस लिये प्रभु का सन्यास नहीं सुनाते हैं ॥ २३७ ॥ श्रीजगन्नाथ-मिश्र पुत्र का चरित्र सुनकर आनन्द में विभोर होकर उन विप्रदेव को दान देना चाहते हैं ॥ २३८ ॥ परन्तु घर में कुछ नहीं है । आप सुदरिद्र हैं तब भी आनन्द में मग्न हैं । मिश्रचन्द्र विप्र के चरण पकड़ कर रोते हैं॥२३९॥वह विप्र भी श्रीजगन्नाथ मिश्र के पाँव पकड़ कर रोता है । यह दृश्य देखकर सब लोग आनन्द से 'हरि बोल' 'हरि बोल' ध्वनि करते हैं ॥ २४० ॥ एवं सब बन्धु-बान्धव भी श्रीगौरचन्द्र की दिव्य-कोष्ठी को सुनकर जय-जय कार देते हुए आनन्द मना रहे हैं ॥२४१॥ उसी समय सब बाजे वाले आते हैं और मृदङ्ग,सानाञि और वंशी आदि असंख्य बाजे बजाने लगे ॥ २४२ ॥ वहाँ पर देवस्त्री व नरस्त्री पहिचानने में नहीं आती हैं और देवता व मनुष्य भी अच्छी प्रकार से मिले हुए हैं ॥ २४३ ॥ सब देव रमणियाँ हाथ में धान व दूब लेकर 'चिरायु रहो' कहकर हँसती हुई प्रभु के सिर पर देती हैं ॥ २४४ ॥ देव-रमणियों का मन्तव्य है कि–आप चिरकाल तक पृथ्वी पर लीला करें, इसीलिये 'चिरायु' कहकर हँसी ॥ २४५ ॥ श्रीशचीदेवी उन अपूर्व्व सुन्दरियों को देख रही हैं, परन्तु उनसे बात-चीत करने व पूछ ताछ करने की बात उनके एवं अन्य किसी के मुँह पर नहीं आती है ॥ २४६ ॥ देवीगण श्रीशचीदेवी की श्रीचरण धूलि मस्तक पर धारण करती है तब भी श्रीशचीदेवी के मुख से आनन्द में विभोर होने के कारण किसी भी प्रकार के वाक्य

न केवल शची-गृहे, सर्व्व नदीयाय । जे आनन्द हैल, ताहा कहन ना जाय ॥ २४९ ॥
कि नगरे कि चत्वरे, किबा गङ्गातीरे । निरवधि लोके 'हरि' 'हरि' ध्वनि करे ॥ २५० ॥
जन्म यात्रा महोत्सव निशाय ग्रहणे । आनन्दे करेन केहो मर्म्म नाहि जाने ॥ २५१ ॥
चैतन्येर जन्म यात्रा फाल्गुनी पूर्णिमा । ब्रह्मा आदि ए तिथिर करे आराधना ॥ २५२ ॥
परम पवित्र तिथि भक्ति स्वरूपिणी । जाँहि अवतीर्ण हइलेन द्विज मणि ॥ २५३ ॥
नित्यानन्द-जन्म माघ-शुक्ला त्रयोदशी । गौरचन्द्र-प्रकाश फाल्गुनी-पौर्णमासी ॥ २५४ ॥
सर्व्व यात्रा-मङ्गल ए दुइ पुण्य-तिथि । सर्व्व शुभ लग्न अधिष्ठान हय इथि ॥२५५॥
एतेके ए दुइ तिथि करिले सेवन । कृष्णभक्ति हय, खण्डे अविद्या बन्धन ॥२५६॥
ईश्वरेर जन्मतिथि जेहेन पवित्र । वैष्णवेरो सेइमत तिथिर-चरित्र ॥ २५७ ॥
गौरचन्द्र आविर्भाव शुने जेइ जने । कभो दुःख नाहि तार जन्मे वा मरणे ॥२५८॥
शुनिले चैतन्य-कथा भक्ति-फल धरे । जन्मे जन्मे चैतन्येर सङ्गे अवतरे ॥ २५९ ॥
आदि खण्ड-कथा बड़ शुनिते सुन्दर । जाँहि अवतीर्ण गौरचन्द्र महेश्वर ॥ २६० ॥
ए सब लीलार कभो नाहि परिच्छेद । 'आविर्भाव' 'तिरोभाव' मात्र कहे वेद ॥२६१॥
चैतन्य कथार आदि अन्त नाहि देखि । ताहान कृपाय जे बोलाय ताहा लिखि ॥ २६२ ॥

---

तृप्ति नहीं पा रहे हैं ॥२४७॥ इन श्रीजगन्नाथ मिश्र के घर आज क्या अपूर्व आनन्द हो रहा है कि जिसको श्रीशेषजी एवं वेद भी वर्णन करके पूर्ण नहीं कर सकते हैं ॥ २४८ ॥ केवल श्रीशची के घर में ही नहीं, बल्कि सर्व नवद्वीप में जो आनन्द हो रहा है, वह कहा नहीं जाता ॥२४९॥ क्या शहर में क्या चौराहों पर और क्या गङ्गा तीर, सर्वत्र ही लोग निरन्तर 'हरि-बोल' 'हरि-बोल' ध्वनि कर रहे हैं ॥ २५० ॥ सब लोग आनन्द पूर्वक ग्रहण की रात्रि में प्रभु का जन्म-यात्रा महोत्सव ही मना रहे हैं, परन्तु यह मर्म कोई जानता नहीं है ॥ २५१ ॥ श्रीचैतन्यचन्द्र की जन्म-यात्रा की तिथि फाल्गुन मास की पूर्णिमा है, इस तिथि की ब्रह्मा आदि देवगण भी आराधना करते हैं ॥ २५२ ॥ यह तिथि जिसमें कि श्रीगौरचन्द्र द्विज-मणि अवतीर्ण हुए हैं, परम पवित्र एवं ( सेवा भक्ति ) मोक्ष के देने वाली है ॥ २५३ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु की जन्म-तिथि माघ-शुक्ला त्रयोदशी है और श्रीगौरचन्द्र की जन्म-तिथि फाल्गुनी पूर्णिमा है ॥ २५४ ॥ यह दोनों पुण्य तिथियाँ सर्व यात्राओं की मंगल स्वरूपिणी हैं इनमें सर्व शुभ लग्न आकर निवास करते हैं ॥ २५५ ॥ अतएव इन दोनों तिथियों का सेवन करने से कृष्ण-भक्ति प्राप्त होती है और अविद्या के बन्धन टूट जाते हैं ॥ २५६ ॥ जिस प्रकार ईश्वर की जन्म-तिथि पवित्र है उसी प्रकार वैष्णवों की जन्म-तिथि भी महापवित्र होती है॥२५७ जो आदमी गौरचन्द्र के जन्म की लीला सुनता है उसके जीवन-काल में एवं मरण-काल में कभी दुःख नहीं होता है ॥२५८॥ श्रीचैतन्यचन्द्र की कथा सुनने वाला भक्ति-फल प्राप्त करता है और प्रभु के जन्म लेने पर भी जन्म धारण कर श्रीगौरचन्द्र के साथ अवतीर्ण होता है ॥२५९॥ हे बन्धुओ ! आदिखण्ड की कथा जिसमें कि महेश्वर श्रीगौरचन्द्र के अवतीर्ण होने का वर्णन है, सुनने में बड़ी सुन्दर (मधुर) है॥२६०॥ मूलतः श्रीभगवान् की इन सब लीलाओं का कभी विराम नहीं है, केवल आविर्भाव ( प्रकट रहना ) और तिरोभाव ( अप्रकट रहना ) मात्र हो रहा है, ऐसा वेद कहते हैं ॥२६१॥ श्रीचैतन्यचन्द्र की कथा का आदि एवं अन्त कुछ भी नहीं दिखलाई दे रहा है, प्रभु अपनी कृपा शक्ति द्वारा जो लिखवा रहे हैं वही लिख रहा हूँ ॥२६२॥

भक्त सङ्गे गौरचन्द्र-पदे नमस्कार। इथे अपराध किछु नहुक आमार ॥२५५॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द-चान्द जान। वृन्दावन-दास तछु पदयुगे गान ॥२५६॥

इति श्रीचैतन्यभागवते आदिखण्डे श्रीगौरचन्द्रस्य कोष्ठीगणनादिवर्णनं नाम-
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

## तृतीय अध्याय

जय जय कमल-नयान गौर चन्द्र। जय जय तोमार प्रेमेर भक्त वृन्द ॥१॥
हेन शुभ दृष्टि प्रभु कर आमायाय। अहर्निश चित्त जेन वसये तोमाय ॥२॥
हेन मते प्रकाश हइला गौर चन्द्र। शची गृहे दिने दिने बाढ़ये आनन्द ॥३॥
पुत्रेर श्री मुख देखि ब्राह्मणी ब्राह्मण। आनन्द सागरे दोंहे भासे अनुक्षण ॥४॥
भाइरे देखिया विश्वरूप भगवान। हासिया करेन कोले आनन्देर धाम ॥५॥
जत आप्तवर्ग आछे सर्व्व परिकरे। अहर्निश सभे थाकि बालक आवरे ॥६॥
विष्णु रक्षा केहो, केहो देवी रक्षा पढ़े। मन्त्र पढ़ि घर केहो चारि दिग बेढ़े ॥७॥
तावत कान्देन प्रभु कमल-लोचन। हरि नाम शुनिले रहेन ततक्षण ॥८॥
परम सङ्केत एइ सभे बुझिलेन। कान्दिलेइ'हरिनाम' सभेइ लयेन ॥९॥
सर्व्व लोके आवरिया थाके सर्व्वक्षण। कौतुक करये जे जे रसिक देवगण ॥१०॥
कोनो देव अलक्षिते गृहेते साम्भाये। छाया देखि सभे बोले "एइ चोरा जाये" ॥११॥

---

मैं भक्तों के सहित श्री गौरचन्द्र के चरणों में नमस्कार करता हूँ। ( आप कृपा करें कि ) इस लीला वर्णन में मेरा कोई अपराध न हो ॥२५५॥ श्रीकृष्णचैतन्य और श्रीनित्यानन्दचन्द्र को जानकर, वृन्दावनदास उनके पद युगलों की महिमा गा रहे हैं। द्वितीय अर्थ—श्रीकृष्ण चैतन्य एवं श्री प्रभु नित्यानन्द जिनके जान ( प्राण ) है, ऐसे श्री वृन्दावनदास उनके पद युगलों की महिमा गा रहे हैं ॥२५६॥

हे कमलनयन श्री गौरचन्द्र! आपकी जय हो, जय हो। आपके प्रेममय भक्त-वृन्द की जय हो, जय हो। हे प्रभो! मेरे प्रति ऐसी निष्कपट शुभ दृष्टि कीजिये, कि मेरा चित्त जैसे निशिदिन आपमें ही बसे ॥१।२॥ इस प्रकार श्री गौरचन्द्र प्रकट हुए। श्री शची देवी के घर में दिन प्रतिदिन अधिकाधिक आनन्द बढ़ता जाता है ॥३॥ ब्राह्मणी-ब्राह्मण ( श्रीशचीदेवी एवं श्री जगन्नाथ मिश्र ) दोनों पुत्र का श्रीमुख देखकर, निरन्तर आनन्द समुद्र में बहते जाते हैं ॥४॥ आनन्द के धाम श्री विश्वरूप भगवान् अपने छोटे भाई को देखकर, हँसते हुए, गोदी में लेते हैं ॥५॥ सर्व परिकर में जितने निज जन हैं, वह सब दिन-रात बालक को घेरे रहते हैं ॥६॥ उनमें से कोई 'विष्णु-रक्षा' और कोई 'देवी-रक्षा' मन्त्र पढ़ते हैं, कोई दिग-बन्धन मन्त्र पढ़कर घर के चारों ओर से घेरा डालते हैं ॥७॥ श्रीकमल-लोचन-प्रभु बहुत देर तक रोते हैं, किन्तु श्री हरिनाम सुनकर उसी समय चुप पड़ जाते हैं ॥८॥ इस परम सङ्केत को सबने समझ लिया, उनके रोते ही सभी 'श्री हरि-नाम' को लेते हैं ॥९॥ सब लोग हर समय प्रभु को घेर कर रहते हैं, कभी-कभी रसिक देवगण ऐसा कौतुक करते हैं ॥१०॥ कोई देवता अलक्षित रूप से घर में घुसता है, उसकी छाया को देखकर सब लोग कहते हैं, कि ( देखो ) यह

'नरसिंह' 'नरसिंह' केहो करे ध्वनि । अपराजितार स्तोत्र कारो मुखे शुनि ॥१२॥
नाना मंत्रे केहो दश दिग बन्ध करे । उठिल परम कलरव शची घरे ॥१३॥
प्रभु देखि गृहेर बाहिरे देव जाय । सभे बोले "एइ ज्ञान-हारिणी पलाय" ॥१४॥
केहो बले "धर धर एइ चोरा जाय । 'नृसिंह नृसिंह' केहो डाकये सदाय ॥१५॥
कोनो ओझा बोले "आजि एड़ाइलि भाल । ना जानिस नरसिंहेर प्रताप विशाल"॥१६॥
सेइ स्थाने थाकि देव हासे अलक्षिते । परिपूर्ण हइल मासेक एइमते ॥१७॥
'बालक-उत्थान-पर्व्वे' जत नारी गण । शची सङ्गे गङ्गास्थाने करिला गमन ॥१८॥
वाद्यगीत कोलाहले करि गङ्गास्नान । आगे गङ्गा पूजि तबे गेला षष्ठीस्थान ॥१९॥
यथाविधि पूजि सब देवेर-चरण । आइलेन गृहे परिपूर्ण नारी गण ॥२०॥
खइ, कला, तैल, सिन्दूर, गुया, पान । सभारे दिलेन 'आइ' करिया सम्मान ॥२१॥
बालकेरे आशिषिया सर्व्वे नारी गण । चलिलेन गृहे वन्दि 'आइर' चरण ॥२२॥
हेन मते वैसे प्रभु आपन लीलाय । के तारे जानिते पारे, यदि ना जानाय ॥२३॥
कराइते चाहे प्रभु आपन कीर्त्तन । एतदर्थे करे प्रभु सघने रोदन ॥२४॥
जत जत प्रबोध करये नारीगण । प्रभु पुनः पुन करि करये रोदन ॥२५॥
'हरि' 'हरि' बलि जदि डाके सर्व्व जने । तबे प्रभु हासि चाहे श्री चन्द्र वदने ॥२६॥
जानिला प्रभुर चित्त सर्व्व जने मेलि । सदाइ बोलेन 'हरि' दिया करतालि ॥२७॥

---

शिशु-चोर जा रहा है ॥११॥ तब कोई तो नृसिंह पुकारता है, और कोई अपराजिता देवी का मंत्र स्तोत्र पढ़ता है ॥१२॥ कोई अनेक प्रकार के मंत्र पढ़कर दसों दिशाओं को बांधता है; इस प्रकार श्री शची देवी के घर में परम कलरव होने लगा । प्रभु के दर्शन कर जब कोई देवता घर के बाहर आता है; तब सब कहते हैं, कि देखो यह 'बालक को हरने वाली (डाइन) भगी जा रही है'॥१३-१४॥सब बोलते हैं 'पकड़ो,पकड़ो,यह चोर चला जा रहा है;' और कोई लगातार 'नृसिंह नृसिंह' पुकारता है ॥१५॥ कोई सयाना (भूत प्रेत का इलाज करने वाला) देवता की छाया को भूत समझ कर कहता है कि—"आज तुम खूब बचे अरे मूढ़! तुम श्री नृसिंह जी के विशाल प्रताप को नहीं जानते हो" ॥१६॥ देवता यह सुन कर वहीं खड़ा हुआ अलक्षित होकर हँस रहा है; इसी प्रकार होते-होते एक महीना पूर्ण हो गया ॥ १७ ॥ बालक का उत्थान पर्व के समय सब स्त्रियाँ श्रीशची-देवी के साथ गङ्गा स्नान के लिये गईं ॥ १८ ॥ वाद्य-गीत के साथ गङ्गा स्नान करके, प्रथम श्रीगङ्गाजी की पूजा कर,फिर श्रीषष्ठी देवी के स्थान पर गईं॥१९॥यथाविधि सब देवताओं के चरण-पूजन करके,सब नारीगण घर लौट आईं॥२०॥घर में आकर श्रीशची माँ सबको सम्मान कर खील,केला,तेल,सिंदूर,सुपारी और पान देती हैं ॥२१॥ सर्व नारीगण बालक को आशीर्वाद देकर और श्रीशची माँ के चरण वन्दना कर, अपने-अपने घर को जाती हैं ॥२२॥ इस प्रकार लीलामय प्रभु अपनी लीला का विस्तार करते हुए, विराजमान हैं । वे यदि आप अपने को प्रकट न करें तो कौन जान सकता है॥२३॥श्रीप्रभु अपना नाम कीर्तन कराने को चाहते हैं; इसलिये बड़े जोर-जोर से प्रायशः रोदन करते हैं ॥२४॥ स्त्रीगण (चुप होने के लिये) जितना-जितना प्रबोध देती हैं प्रभु उसको न मान कर बारम्बार रोदन करते हैं ॥२५॥ यदि सर्व्वजन हरि-हरि करके बोलते हैं,तो प्रभु अपने श्री-चन्द्रमुख से हँसते हुए उनकी ओर निहारते हैं॥२६॥तब सब लोग प्रभु के मन की बात जानकर,परस्पर मिलकर

आनन्दे करेन सभे हरि-सङ्कीर्त्तन । हरि नामे पूर्ण हैल शचीर भवन ॥२८॥
एइ मते वैसे प्रभु जगन्नाथ-घरे । गुप्त भावे गोपालेर प्राय केलि करे ॥२६॥
जे समये जखन ना थाके केहो घरे । जे किछु थाकये घरे सकल विचारे ॥३०॥
विचारिया सकल फेलाय चारि भिते । सर्व्व घर भरे तैल, दुग्ध, घोल, घृते ॥३१॥
जननी आइसे हेन जानिञा आपने । शयने आछेन प्रभु करेन रोदने ॥३२॥
'हरि हरि' बलिया सान्त्वना करे माय । घरे देखे सब द्रव्य गड़ागड़ि जाय ॥३३॥
के फेलिल सर्व्वगृहे धान्य, चालु, मुद्ग । भाण्डेर सहित देखे भाङ्गा दधि दुग्ध ॥३४॥
सबे चारि-मासेर बालक आछे घरे । के फेलिल हेन केहो बुझिते ना पारे ॥३५॥
सब परिजन आसि मिलिल तथाय । मनुष्येर चिन्हमात्र केहो नाहि पाय ॥३६॥
केहो बोले 'दानव आसियाछिल घरे । रक्षा लागि शिशुरे नारिल लङ्घिबारे ॥३७॥
शिशु लङ्घिबारे ना पाइया क्रोधमने । अपचय करिया पलाइल निज स्थाने' ॥३८॥
मिश्र जगन्नाथ देखि चित्ते बड़ धन्द । दैव हेन जानि, किछु ना बलिल मन्द ॥३६॥
दैव-अपचय देखि दुइ जने चाहे । बालक देखिया कोन दुःख नाहि रहे ॥४० ।
एइमत प्रति दिन करेन कौतुक । 'नाम-करणेर' काल हइल सम्मुख ॥४१॥
नीलाम्बर-चक्रवर्त्ती-आदि विद्यावान । सर्व्व-बन्धु गणेर हइल उपस्थान ॥४२॥

---

हाथों से ताली बजाते हुए निरन्तर 'हरि-हरि' बोलते हैं। सब कोई आनन्द से हरि-सङ्कीर्त्तन करते हैं; इस प्रकार श्रीशची देवी का घर हरि-नाम से भर गया॥२७-२८॥इस प्रकार प्रभु श्रीजगन्नाथ मिश्र के घर में विराजते हैं;गुप्त भाव से नन्द-गोकुल में श्रीबाल-गोपाल की सी क्रीड़ा किया करते हैं॥२६॥जिस समय घर में कोई नहीं रहता है,उस समय प्रभु घर में जो कुछ सामान होता है, भली भाँति विचार लेते हैं ॥ ३० ॥ और फिर विचार के पश्चात् सब सामान को चारों ओर बिखेर देते हैं। तेल,दूध,छाछ और घी से सब भर जाताहै॥३१। यह समझ कर कि माताजी आ रही हैं, आप चुपचाप जाकर लोट जाते हैं और रोदन करना शुरू कर देते हैं ॥३२॥माताजी 'हरि-हरि' गाकर आपको चुप कराती हैं,पश्चात देखती हैं कि सब सामान घर में तितर-बितर हुआ पड़ा है ॥३३॥तब माताजी सोचती हैं कि—सब सामान घर में यह धान,चावल, मूँग किसने फैलाये ? टूटे हुए बर्तनों के सङ्ग फैले हुए दही, दूध को देखती हैं। केवल चार मास का बालक घरमें है,यह सब सामान किसने बिखेर दिया ? किसी को कुछ समझ में नहीं आता ॥ ३४-३५ ॥ इतने में सब कुटुम्बी लोग आ पहुँचे हैं और देखते हैं कि यहाँ पर कहीं मनुष्य के चिह्न मात्र भी नहीं हैं ॥ ३६ ॥ तब कोई कहता है कि—"घर में दानव आया था, लेकिन मन्त्र से रक्षित होने के कारण, इस बालक का कुछ अनिष्ट नहीं कर सका ॥३७॥ जब बालक का कुछ अनिष्ट नहीं कर सका, तब क्रोध में आकर यह अपचय ( नुकसान ) करके, अपने स्थान को भाग गया है ॥ ३८ ॥ श्रीजगन्नाथ मिश्र ऐसा देखकर चित्त में कुछ निश्चय नहीं कर पाते हैं; पीछे यह दैवी लीला है, ऐसे जानकर कुछ आक्षेप वचन नहीं कहते ॥ ३६ ॥ दैवी-उपद्रव को देखकर दोनों जन (माता-पिता ) परस्पर देखने लगे और बालक ऊपर दृष्टि पड़ते ही उनको किसी प्रकार का दुःख नहीं रहा ॥ ४० ॥ इस प्रकार के कौतुक ( प्रभु ) प्रति दिन करते हैं आगे नामकरण का समय आ पहुँचा ॥ ४१ ॥ ( नामकरण का समय जानकर) श्री नीलाम्बर चक्रवर्त्ती आदि सब विद्वान् बन्धुवर्ग श्री   [illegible] मिश्र के घर पधारे ४०

मिलिला विस्तर आसि पतिव्रतागण । लक्ष्मी-प्राय-दीप्ति सभे सिन्दूरभूषण ॥४३॥
नाम थुइवार सभे करे न विचार । स्त्रीगण बोलये एक, अन्ये बोले आर ॥४४॥
'इहान अनेक ज्येष्ठ कन्या पुत्र नाञि । शेष ये जन्मये तार नाम से निमाञि'* ॥४५॥
बोलेन विद्वान सब करिया विचार । एक नाम योग्य हय शुइते इहार ॥४६॥
ए शिशु जन्मिले-मात्र सर्व्व देशे देशे । दुर्भिक्ष घुचिल, वृष्टि पाइल कृषके ॥४७॥
जगत हइल सुस्थ इहान जनमे । पूर्व्वे येन पृथिवी धरिला नारायणे ॥४८॥
अतएव इहान श्री विश्वम्भर नाम । कुलदीप कोष्ठीतेओ लिखिल इहान ॥४९॥
'निमाञि' ये बलिलेन पतिव्रता गण । सेहो नाम द्वितीय डाकिब सर्व्वजन ॥५०॥
सर्व्वशुभक्षण नामकरण-समये । गीता, भागवत, वेद, ब्राह्मण पड़ये ॥५१॥
देवगणे नरगणे करये मङ्गल । हरिध्वनि, शङ्ख घन्टा बाजये सकल ॥५२॥
धान्य, पुँथि, खड़ि, स्वर्ण, रजतादि यत । धरिते आनिञा करिलेन उपनीत ॥५३॥
जगन्नाथ बोले शुन बाप विश्वम्भर । याहा चित्ते लय, ताहा धरह सत्वर ॥५४॥
सकल छाड़िया प्रभु श्रीशचीनन्दन । 'भागवत' धरिया दिलेन आलिङ्गन ॥५५॥
पतिव्रतागणे 'जय' देइ चारि भित । सभेइ बोलेन 'बड़ हइब पण्डित' ॥५६॥

---

अनेक पतिव्रता स्त्रियाँ आ मिलीं जो सब लक्ष्मी की सी दीप्तिमती थीं और सीमन्त में सिन्दूर देकर के आभूषिता थीं ॥ ४३ ॥ सब लोग नाम रखने का विचार करते हैं, स्त्रीगण कोई नाम बोलती हैं और अन्य लोग दूसरा नाम ॥ ४४ ॥ इनके ( श्री शची माता के ) इससे पहले अनेक पुत्र कन्याओं के तिरोभाव हो गये हैं; सबसे पीछे जन्म लेने से इस बालक का नाम निमाई होवे ॥ ४५ ॥ इसके पश्चात् सब विद्वान लोग विचार करते हैं कि इसका एक नाम रखना ठीक होगा ॥४६॥ इस बालक के जन्म लेते ही देश-देशों में दुर्भिक्ष दूर हो गया; कृषकों के लिये वर्षा हुई; जैसे कि पूर्व्वकाल में श्रीनारायण देव ने पृथ्वी को धारण ( पोषण ) किया था, इसी प्रकार इस बालक ने भी जन्म लेकर जगत् को सुखी किया है ( भरण किया है ) । अतएव इसका नाम है "श्रीविश्वम्भर" कुलदीप-कोष्ठी में भी इस नाम को लिख देते हैं । इन पतिव्रतागण ने जो 'निमाई' नाम धरा है, यह भी दूसरा नाम हो; इस नाम से सब लोग इनको बोलेंगे ॥ ४७-५० ॥ सर्वशुभक्षण में पुण्य नाम-करण के समय ब्राह्मण लोग गीता, भागवत एवं वेद-पाठ कर रहे हैं ॥ ५१ ॥ देवतागण एवं मनुष्यगण मङ्गल मना रहे हैं; हरिध्वनि हो रही है; शङ्ख व घण्टा आदि सब बज रहे हैं ॥ ५२ ॥ उस समय प्रभु से कोई एक वस्तु उठवाने ( स्पर्श ) के लिये श्रीजगन्नाथ मिश्र धान, पुस्तकें, खड़ियाँ, स्वर्ण, चाँदी आदि वस्तुयें प्रभु के सामने लाकर रख दिये हैं ॥ ५३ ॥ तब श्रीजगन्नाथ मिश्र जी कहते हैं कि—"हे वत्स ! विश्वम्भर सुनो, इन वस्तुओं में से जो तुमको अच्छी लगे, वह झट से पकड़ लेओ" ॥ ५४ ॥ प्रभु श्रीशचीनन्दन ने सब वस्तुओं को छोड़कर श्रीमद्भागवत जी को पकड़ कर आलिङ्गन किया ॥ ५५ ॥ पतिव्रतागण चारों ओर से जयकार देने लगीं; सब ही कहती हैं, कि—'यह बालक बड़ा पण्डित होगा' ॥ ५६ ॥ कोई कहते हैं, "कि यह

* 'निमाञि'—बङ्गाल प्रदेश में स्त्रियों के विचार हैं, कि-बालक का कड़ुआ नाम रखने से यमराज उसे शीघ्र नहीं लेते हैं, अर्थात् वह चिरंजीव रहता है । इसलिये जिनके पहिले के कुछ बच्चे मर जाते हैं, वे अपने बालक का कड़ुवी नाम धरते हैं ।

केहो बोले शिशु हैब परम वैष्णव । अल्पे सर्व्व शास्त्रेर जानिब अनुभव ॥५७॥
ये दिगे हासिया प्रभु चान विश्वम्भर । आनन्दे सिञ्चित हय तार कलेवर ॥५८॥
ये करये कोले, सेइ एड़िते ना जाने । देवेर दुर्ल्लभ कोले करे नारीगणे ॥५६॥
प्रभु येइ कान्दे, सेइ क्षणे नारीगण । हाथे तालि दिया करे हरि-सङ्कीर्त्तन ॥६०॥
शुनिआ नाचेन प्रभु कोलेर उपरे । विशेषे सकल नारी हरि-ध्वनि करे ॥६१॥
निरवधि सभार वदने हरिनाम । छले बोलायेन प्रभु, हेन इच्छा तान ॥६२॥
'तान इच्छा विना कोन कर्म्म सिद्ध नहे' । वेदे शास्त्रे भागवते एइ तत्त्व कहे ॥६३॥
एइमते कराइया निज-सङ्कीर्त्तन । दिने दिने वाढ़े प्रभु श्री शचीनन्दन ॥६४॥
जानु-गति चले प्रभु परम सुन्दर । कटिते किङ्किणी बाजे अति मनोहर ॥६५॥
परम निर्भये सर्व्व-अङ्गने विहरे । किवा अग्नि, सर्प, याहा देखे, ताहि धरे ॥६६॥
एक दिन एक सर्प बाड़ीते बेड़ाय । धरि लेन सर्प प्रभु बालक-लीलाय ॥६७॥
कुण्डली करिया सर्प रहिल वैठिया । ठाकुर थाकिला सर्प-उपरे शुइया ॥६८॥
आथे-व्यथे सभे देखि 'हाय हाय' करे । शुइया हासेन प्रभु सर्पेर उपरे ॥६९॥
'गरुड़-गरुड़' करि डाके सर्व्वजन । पिता-माता-आदि भये करये क्रन्दन ॥७०॥
प्रभुरे एड़िया सर्प पलाय तखन । पुनि धरिवारे यान श्रीशचीनन्दन ॥७१॥
धरिया आनिआ सभे करिलेन कोले । 'चिरजीवी हओ' करि नारीगण बोले ॥७२॥

---

बालक परम वैष्णव होगा । अल्पकाल में ही सर्व शास्त्रों के मर्म्म जानने वाला बनेगा"॥५७॥ प्रभु श्रीविश्वम्भर हँसते हुए जिसकी ओर देखते हैं, उसी का शरीर आनन्द से भीग जाता है ॥ ५८ ॥ जो कोई नारीगण श्री निमाई चाँद को गोदी में लेती हैं, वह फिर उतारना नहीं जानती;देवताओं के दुर्लभ धन को नारीगण गोदी मे लेती हैं ॥५९॥ प्रभु श्री निमाई चाँद ज्योंही रोवें त्योंही, नारीगण ताली बजाती हुईं श्रीहरि-सङ्कीर्त्तन ध्वनि करने लगती हैं ॥ ६० ॥ श्री हरि-सङ्कीर्त्तन को सुनकर प्रभु गोदी में ही बैठ कर नाचते हैं । ( उचकते है ) तब तो नारी-गण विशेष रूप से हरि-ध्वनि करती हैं ॥ ६१ ॥ श्री प्रभु क्रन्दन छल-से निरन्तर सबके मुख से श्री हरि-नाम लिवाते हैं, उनकी ऐसी ही इच्छा है ॥ ६२ ॥ उनकी इच्छा के बिना कोई कार्य सिद्ध नहीं होता है; वेद शास्त्र एवं श्री भागवत जी इस तत्त्व को बखान करते हैं ॥ ६३ ॥ इस प्रकार प्रभु श्री शचीनन्दन 'निज-नाम-सङ्कीर्तन' कराते हुए, दिन-दिन बड़े होने लगे ॥ ६४ ॥ अब परम सुन्दर श्रीप्रभु घुटुवन चलने लगे हैं; और चलते समय कटि में अति मनोहर किङ्कणी बजती है ॥ ६५ ॥ परम निर्भय होकर सर्व आँगन में घूमते हैं; और वहाँ क्या अग्नि, क्या सर्प, जो कुछ देखते हैं, उसी को पकड़ लेते हैं ॥ ६६ ॥ एक दिन एक सर्प घर में डोल रहा था, प्रभु ने उसको बाल-सुलभ खेल के अनुसार पकड़ लिया ॥ ६७ ॥ पकड़ते ही सर्प ने प्रभु के हाथ के चारों ओर कुण्डली मार ली । प्रभु भी सर्प के ऊपर सो गये ॥ ६८ ॥ प्रभु को सर्प के ऊपर सोते हुए देखकर, सब लोग घबड़ा कर 'हाय-हाय' करने लगे । इधर प्रभु सर्प के ऊपर सोते हुए हँस रहे हैं । सब लोग 'गरुड़-गरुड़' कहकर पुकारते हैं; और पिता-माता भयभीत होकर रोने लगते हैं ॥ ६९-७० ॥ तब सर्प प्रभु को छोड़कर भाग जाता है और श्रीशचीनन्दन फिर उसे पकड़ने के लिये जाते हैं ॥ ७१ ॥ सब प्रभु को वहाँ से पकड़ लाते हैं और गोदी में लेते हैं नारीगण 'चिरजीव हो' आशिर्वचन बोल रही हैं ७–

केहो रक्षा बान्धे, केहो पड़े स्वस्तिवाणी । केहो अङ्गे देइ विष्णु-पादोदक आनि ॥७३॥
केहो बोले 'बालकेर' पुनर्जन्म हैल' । केहो बोले 'जाति-सर्प तेञि ना लङ्घिल' ॥७४॥
हासे प्रभु गौरचन्द्र सभारे चाहिया । पुनःपुन जाय सर्पे आनिते धरिया ॥७५॥
भक्ति करि जे ए सब वेद-गोप्य शुने । संसार-भुजङ्ग तारे ना करे लङ्घने ॥७६॥
एइमत दिने दिने श्री शचीनन्दन । हाँटिया करेन प्रभु अङ्गने भ्रमण ॥७७॥
जिनिञा कन्दर्प-कोटि सर्व्वाङ्गेर रूप । चान्देर लागये साध देखिते से मुख ॥७८॥
सुवलित-मस्तके चाँचर भाल केश । कमल नयान येन गोपालेर वेश ॥७९॥
आजानु-लम्बित भुज, अरुण अधर । सकल-लक्षण-युत वक्ष-परिसर ॥८०॥
सहजे अरुण-गौर देह मनोहर । विशेष अंगुलि, कर, चरण सुन्दर ॥८१॥
बालक-स्वभावे प्रभु यबे चलि याय । रक्त पड़े हेन, देखि माये त्रास पाय ॥८२॥
देखि शची-जगन्नाथ बड़इ विस्मित । निर्धन तथापि दोंहे महा आनन्दित ॥८३॥
काणाकाणि करे दोंहे निर्जने वसिया । 'कोन महापुरुष वा जन्मिला आसिया ॥८४॥
हेन बुझि, संसार-दुःखेर हैल अन्त । जन्मिल आमार घरे हेन गुणवन्त ॥८५॥
एमन शिशुर रीति कभु नाहि शुनि । निरवधि नाचे हासे, शुनि हरिध्वनि ॥८६॥
तावत क्रन्दन करे, प्रबोध ना माने । बड़ करि 'हरिध्वनि' यावत ना शुने ॥८७॥

---

कोई प्रभु के हाथ में रक्षा-बन्धन बांधता है, कोई स्वस्तिवाचन करने लगता है, कोई श्री विष्णु-चरणामृत लाकर श्री अङ्ग के ऊपर छिड़क रहा है । कोई कह रहा है कि—"आज इस बालक का दूसरा जन्म हुआ है ।" कोई कह रहा है, "यह जाति सर्प है, इसीलिये कोई अनिष्ट नहीं किया" ॥ ७३-७४ ॥ प्रभु श्री गौरचन्द्र सब की ओर चाहते हुए हँसते हैं; और सर्प पकड़ने को बार-बार चलते हैं, ओर बारम्बार पकड़ लाते हैं ॥ ७५ ॥ जो कोई भक्तिपूर्वक यह सब वेद-गोप्य लीला को श्रवण करते हैं, संसार रूपी काल-सर्प उनको लङ्घन नहीं करेगा ॥ ७६ ॥ प्रभु श्री शचीनन्दन दिन-दिन इसी प्रकार लीला करते हुए, अब पाँव-पाँव चल कर आँगन में विचरने लगे ॥ ७७ ॥ आपके सर्व अङ्गों की रूप-माधुरी कोटि कामदेवों को जीतने वाली है । आपका वह श्रीमुख देखने के लिये चन्द्रमा भी लालायित होता है ॥ ७८ ॥ सुवलित मस्तक पर घुंघराले सुन्दर केश हैं, कमल-सदृश नेत्र हैं, वेष-भूषा श्री बाल-गोपाल की जैसी है, जानुपर्यन्त लम्बी भुजायें, और अधर अरुण हैं । सर्व शुभ लक्षणों से युक्त आयत वक्षस्थल है । मनोहर गौर वर्ण शरीर, सहज में ही अरुणाई लिये हुए है; तिस पर अँगुली, हाथ और श्रीचरण तो विशेष रूप से सुन्दर अरुण वर्ण हैं ॥७९-८०-८१॥ प्रभु बालक स्वभाव से जब चलते हैं, तब चरणों की ललाई की झलक देख कर मानों रक्त निकल पड़ा हो । यह जान कर माता डर जाती है ॥ ८२ ॥ यह देखकर श्रीशचीदेवी और श्री जगन्नाथ मिश्र दोनों बड़ा ही आश्चर्य मानते हैं । निर्धन होकर भी दोनों महासुखी हैं ॥ ८३ ॥ दोनों एकान्त में बैठ कर चुपचाप बात करते हैं—"हमारे घर में कोई महापुरुष तो प्रकट नहीं हुए ? ॥ ८४ ॥ ऐसा समझ पड़ता है, कि हमारे घर में ऐसे गुणवान के जन्म लेने से संसार के दुःखों का अन्त हो गया ॥८५॥ किसी बालक का ऐसा स्वभाव कभी सुनने में नहीं आया, जो कि श्री हरि-नाम की ध्वनि सुनकर निरन्तर नाचे और हँसे ॥ ८६ ॥ जब तक यह खूब जोर की हरि

उषाकाल हइते यतेक नारीगण । बालक वेढ़िया सभे करे सङ्कीर्त्तन ॥८८॥
'हरि' बलि नारीगणे देइ करतालि । नाचे गौरसुन्दर बालक कुतुहली ॥८९॥
गड़ागड़ि याय प्रभु धुलाय धूसर । हासि उठे जननीर कोलेर उपर ॥९०॥
हेन अङ्गभङ्गी करि नाचे गौरचन्द्र । देखिया सभार हय अतुल आनन्द ॥९१॥
हेन मते शिशु-भावे हरि-सङ्कीर्त्तन । करायेन प्रभु नाहि बुझे कोनो जन ॥९२॥
निरवधि धाय प्रभु कि घर बाहिरे । परम-चञ्चल-केहो धरिते ना पारे ॥९३॥
एकेश्वर बाड़ीर बाहिरे प्रभु याय । खइ, कला, सन्देश, या 'देखे ताइ' चाय ॥९४॥
देखिया प्रभुर रूप परम-मोहन । ये जने ना चिने, सेइ-देइ ततक्षण ॥९५॥
सभेइ सन्देश कला देयेन प्रभुरे । पाइया सन्तोषे प्रभु आइसेन घरे ॥९६॥
ये सकल स्त्रीगणे गायेन हरि- नाम । ता सभारे आनि सब करेन प्रदान ॥९७॥
बालकेर बुद्धि देखि हासे सर्व्व जन । हाथे तालि दिया 'हरि' बोले अनुक्षण ॥९८॥
कि विहाने, कि मध्यान्हे, कि रात्रि सन्ध्याय । निरवधि बाड़ीर बाहिरे प्रभु जाय ॥९९॥
निकटे वसये यत बन्धुवर्ग घरे । प्रतिदिन कौतुके आपने चुरि करे ॥१००॥
कारो घर दुग्ध पिये,कारो भात खाय । हाण्डी भाङ्गे,यार घरे किछुइ ना पाय १०१॥
यार घरे शिशु थाके, ताहारे कान्दाय । केहो देखिलेइ मात्र उठिया पलाय ॥१०२
दैवयोगे यदि केहो पारे धरिवारे । तबे तार पाये धरि करे परिहारे ॥१०३॥

ध्वनि नहीं सुन लेता, तब तक रोता ही रहता है; प्रबोध नहीं मानता, शान्त नहीं होता ॥ ८७ ॥ उषाकाल मे ही सब स्त्रियाँ बालक को घेर कर श्री हरिनाम संकीर्त्तन करती रहती हैं ॥ ८८ ॥ स्त्री सब तालियाँ बजाती हुई, 'हरि-हरि' बोलती हैं, और बालक श्रीगौरसुन्दर आनन्दित होकर नृत्य करते हैं ॥८९॥ प्रभु धूल में लोट-पोट होकर धूसर हो जाते हैं, और फिर हँस कर माता जी की गोद में जा विराजते हैं॥९०॥ श्रीगौरचन्द्र ऐसी अङ्ग-भंगी कर नाचते हैं, कि जिसको देखकर सब को अतुल आनन्द होता है ॥ ९१ ॥ इस प्रकार प्रभु बालक-भाव से श्री हरि-सङ्कीर्त्तन करा रहे हैं; इसको कोई नहीं समझ रहा है ॥ ९२ ॥ प्रभु क्या घर, क्या बाहर में निरन्तर दौड़ा-दौड़ी करते हैं; परम चञ्चल आपको कोई पकड़ नहीं पाता ॥ ९३ ॥ प्रभु अकेले ही घर से बाहर चले जाते हैं और खील, केला, सन्देश, ( मिठाई विशेष ) जो कुछ देखते हैं; वही माँगने लगते हैं ॥ ९४ ॥ प्रभु के परम मोहन रूप को देखकर, जो उन्हें नहीं पहचानता, वह भी उसी समय दे देता है ॥ ९५ ॥ सब लोग प्रभु को सन्देश, केला आदि दे देते हैं और प्रभु पाकर प्रसन्न मन से घर चले आते हैं ॥ ९६ ॥ जो स्त्रियाँ श्री हरिनाम गान करती हैं, उनको लाकर सब दे देते हैं ॥ ९७ ॥ बालक की ऐसी बुद्धि देखकर सब लोग हँसते हैं; और लगातार हाथ ताली बजाकर श्रीहरि-नाम बोलने लगते हैं ॥९८॥ प्रभु क्या प्रातःकाल, क्या दुपहर, क्या सन्ध्या, क्या रात्रि, सब समय ही निरन्तर घर से बाहर चले जाते हैं ॥ ९९ ॥ और आस-पास में जितने बन्धु-बान्धवों के घर हैं, उनमें प्रति दिन परम कौतुक से आप चोरी करते हैं ॥ १०० ॥ घरों में जाकर किसी का दूध पीते हैं, तो किसी का भात खाते हैं और जिसके घर में खाने को कुछ नहीं मिलता; उसकी हँडिया फोड़ देते हैं ॥ १०१ ॥ जिसके घर में अकेला बच्चा मिलता है, उसे रुला देते हैं, यदि किसी की दृष्टि में पड़ जाते हैं, तो उसी समय झट भाग जाते हैं ॥ १०२ दैवयोग से

परम व्याकुल हइलेन सर्व्व जने । जल विना येन हय मत्स्येर जीवने ॥११९॥
सभे सर्व्व भावे गेला गोविन्द शरण । प्रभु लैया याय चोर आपन भवन ॥१२०॥
वैष्णवी-मायाय चोर पथ नाहिं चिने । जगन्नाथ-घर आइल निज घर ज्ञाने ॥१२१॥
चोर देखे आइलाङ् निज मर्म्म स्थाने । अलङ्कार हरिते हइला सावधाने॥१२२॥
चोर बोले 'नाम बाप ! आइलाङ् घर' । प्रभु बोले 'हय हय नामाओ सत्वर ॥१२३॥
येखाने सकलगणे मिश्र-जगन्नाथ । विषाद भावेन सभे माथे दिया हाथ ॥१२४॥
मायामुग्ध चोर ठाकुरेर सेइ स्थाने । स्कन्ध हैते नामाइल निज-घर-ज्ञाने ॥१२५॥
नामिलेइ मात्र प्रभु गेला पितृकोले । महानन्द करि सभे 'हरि हरि' बोले ॥१२६॥
सभार हइल अनिर्व्वचनीय रङ्ग । प्राण आसि देहेर हइल येन सङ्ग ॥१२७॥
आपनार घर नहें, देखे दुइ चोरे । कोथा आसियाछि, किछु चिनिते ना पारे ॥१२८॥
गण्डगोले के काहारे अवधान करे । चारि-दिगे चाहि चोर पलाइल डरे ॥१२९॥
'परम अद्भुत' ! दुइ चोर मने गणे । चोर बोले 'भेल्कि वा दिल कोनो जने'॥१३०॥
चण्डी राखिलेन आजि बोले दुइ चोरे । सुस्थ हइ दुइ चोर कोलाकुलि करे ॥१३१॥
परमार्थे दुई चोर महाभाग्यवान् । नारायण यार स्कन्धे करिला उत्थान ॥१३२॥
एथा सर्व्वगणे मने करेन विचार । 'के आनिल देख, वस्त्र शिरे बान्धि तार' ॥१३३॥

---

आओ, पुकार रहे हैं और कोई-कोई ऊँचे स्वर से 'निमाई !' 'निमाई !' बोल रहे हैं ॥ ११८ ॥ सब लोग इस प्रकार परम व्याकुल हो रहे हैं; जिस प्रकार जल बिना मछली का जीवन ॥ ११९ ॥ सब लोक सब ओर से निराश होकर, श्रीगोविन्द के शरण में आये। उधर चोर प्रभु को अपने घर ले जा रहे हैं ॥ १२० ॥ [परन्तु] चोर विष्णु-माया से मोहित होने के कारण रास्ते को भूले हुए हैं, इसलिये अपना घर जानकर, श्रीजगन्नाथ मिश्र के घर आ जाते हैं। परन्तु चोर समझ रहे हैं, कि हम अपने अभीष्ट स्थान पर आ गये और विचार करते हैं कि अलंकारों को सावधानी से लेना होगा ॥ १२१-१२२ ॥ तब चोर बोले, हे वत्स ! उतरो हम घर आ गये; प्रभु ने भी कहा, 'हाँ ! हाँ !' शीघ्र उतारो ॥ १२३ ॥ श्री जगन्नाथ मिश्र सब आत्मीय जनों के साथ माथे पर हाथ धर के जिस स्थान पर शोकातुर बैठे हुए हैं; उसी स्थान पर माया मोहित चोरों ने अपना घर जान कर प्रभु को कन्धे पर से उतारा ॥ १२४-१२५ ॥ उतरते ही प्रभु पिता की गोदी में जा बैठे, सब लोग परम आनन्दित होकर 'हरि-हरि' बोलने लगे हैं ॥ १२६ ॥सबको अकथनीय आनन्द हुआ; मानों मृतक शरीर में प्राण आ गये हों ॥ १२७ ॥ ( अब ) दोनों चोर देखते हैं, कि—यह तो हमारा घर नहीं है। कहाँ आ गये ? कुछ समझ में नहीं आता ? ॥ १२८ ॥ हल्ला-गुल्ला में कौन किसका ध्यान रखता है। अवसर पाकर चोर चारों ओर देखकर, डर के मारे भाग गये ॥ १२९ ॥ पथ में दोनों चोर मन में विचार करते हैं, कि—"यह तो परम आश्चर्य की बात हुई", दोनों चोर फिर बोले—"किसी ने जादू तो नहीं कर दिया था" ॥ १३० ॥ दोनों चोर बोलते है, "आज चण्डी देवी ने हमको बचाया है"; फिर दोनों चोर प्रसन्न होकर परस्पर आलिङ्गन करते है ॥ १३१ ॥ परमार्थ पक्ष में दोनों चोर महाभाग्यवान् हैं, जिनके कन्धों पर श्रीनारायण ने आरोहण किया है ॥ १३२ ॥ इधर सब आत्मीयजन मन में विचार करते हैं, "देखो ! बालक को कौन लेकर आया है, लाओ

केहो बोले 'देखिलाङ् लोक दुइ जन । शिशु थुइ कोन दिगे करिला गमन' ॥१३४॥
'आमि आनिआछि' कोनो जन नाहि बोले । अद्भुत देखिया सबे पड़िलेन भोले ॥१३५॥
सबे जिज्ञासेन 'बाप ! कहत निमाञि । के तोमारे आनिल, पाइया कोन ठाञि ?' ॥१३६॥
प्रभु बोले 'आमि गियाछिलाङ गङ्गातीरे । पथ हाराइया आमि बेड़ाइ नगरे ॥१३७॥
'तबे दुइ जन आमा' कोलेत करिया । कोन पथे एइ-खाने थुइला आनिआ' ॥१३८॥
सबे कहे 'मिथ्या कभु नहे शास्त्रवाणी । देवे राखे शिशु, वृद्ध, अनाथ आपनि' ॥१३९॥
एइ मत विचार करेन सर्व्व जने । विष्णु-माया-मोहे, केहो तत्त्व नाहि जाने ॥१४०॥
एइमत रङ्ग करे वैकुण्ठेर राय । के तारे जानिते पारे, यदि ना जानाय ॥१४१॥
वेद गोप्य ए सब आख्यान येइ शुने । तार-दृढ़ भक्ति हय चैतन्य चरणे ॥१४२॥
हेन मते आछे प्रभु जगन्नाथ-घरे । अलक्षित बहुविध स्वप्रकाश करे ॥१४३॥
एक दिन डाकि बोले मिश्र-पुरन्दर । 'आमार पुस्तक आन बाप विश्वम्भर !' ॥१४४॥
बापेर वचन शुनि घरे धाइ याये । रुनुझुनु करिये नूपुर बाजे पाये ॥१४५॥
मिश्र 'बोले कोथा शुनि नूपुरेर ध्वनि' ? चतुर्दिगे चाय दुइ ब्राह्मण ब्राह्मणी ॥१४६॥
आमार पुत्रेर पाये नाहिक नूपुर । कोथाय बाजिल बाप नूपुर मधुर ॥१४७॥
'कि अद्भुत !' दुइ जने मने मने गणे । वचन ना स्फुरे दुइजनेर वदने ॥१४८॥

---

उनके शिर पर सम्मानसूचक वस्त्र बाँध दें" ॥१३३॥ कोई-कोई कहने लगे, कि—"हमने तो दो मनुष्यों को देखा है, जो बालक को यहाँ छोड़कर न मालूम किधर चले गये ?" ॥ १३४ ॥ कोई भी यह नहीं कहता है कि—"मैं इस बालक को लाया हूं ।" ऐसी अद्भुत बात देखकर, सब चक्कर में पड़े हुए हैं ॥१३५॥ सब लोग पूछने लगे कि—"वत्स निमाई ! कहो तो ! तुम्हें कौन लाया ? तुम उसे कहाँ मिले थे ?" ॥ १३६ ॥ प्रभु उत्तर देते हैं, कि "मैं श्री गङ्गातीर में गया था, रास्ता भूल कर नगर में फिरने लगा, उस समय दो आदमी मुझे गोदी में लेकर न मालूम किस रास्ते से यहाँ लाकर छोड़ गये हैं" ॥ १३७-१३८ ॥ यह सुनकर सब लोग कहते हैं, कि—"शास्त्र-वाणी कभी मिथ्या नहीं होती, बालक, वृद्ध और अनाथ की, स्वयं विधाता रक्षा करते हैं" ॥ १३९ ॥ सब लोग इसी भाँति तरह-तरह के विचार कर रहे हैं; श्री विष्णु माया से मोहित होने के कारण तत्त्व वस्तु को कोई नहीं जानता है ॥ १४० ॥ श्रीवैकुण्ठनाथ प्रभु, इस प्रकार रङ्गमयी अनेक लीला करते हैं, यदि वे आप अपने को न जनावें, तो उन्हें कौन जान सकता है ? ॥ १४१ ॥ जो कोई प्रभु की ये सब वेद निगूढ़ लीलाओं को श्रवण करेंगे, उनकी श्रीचैतन्यचन्द्र-चरणारविन्द में दृढ़ भक्तिलाभ होगी ॥ १४२ ॥ इस प्रकार प्रभु श्रीजगन्नाथ मिश्र के घर विराजमान हैं और अलक्षित रूप से बहुविध निज प्रकाश किया रहे हैं ॥ १४३ ॥ एक दिन श्रीजगन्नाथमिश्र-पुरन्दर ने श्री प्रभु को बुलाकर कहा—"वत्स विश्वम्भर ! मेरी पुस्तक तो ला दो ?" ॥ १४४ ॥ पिताजी के वचन सुनकर, प्रभु घर की ओर दौड़ कर जाते हैं और चरण-कमलों में नूपुर रुनझुन करके बजने लगे ॥ १४५ ॥ श्रीजगन्नाथ मिश्र बोले—"यह नूपुर ध्वनि कहाँ से आ रही है ?" दोनों ब्राह्मण और ब्राह्मणी ऐसे कहकर चारों ओर देखने लगे ॥ १४६ ॥ दोनों सोचते हैं कि—"हमारे पुत्र के पाँवों में तो नूपुर है नहीं, फिर यह नूपुर की मधुर ध्वनि कहाँ से आई ?" ॥ १४७ ॥ दोनों जन मन ही मन

सब गृहे देखे अपरूप पद चिन्ह ध्वज, बज्र, पताका, अङ्कुश भिन्न भिन्न १५०
आनन्दित दो हे देखि अपूर्व चरण। दो हे हैला पुलकित सजल नयन १५१
पाद पद्म देखि दोहे करे नमस्कार. दो हे बोले 'निस्तरनु, जन्म नाहि आर'. १५२.
मिश्र बोले 'शुन विश्वरूपेर जननि! घृत परमान्न गिया रान्धह आपनि ॥१५३॥
घरे जे आछेन दामोदर शालग्राम। पंचगव्ये सकाले कराव ताने स्नान ॥१५४॥
बुझिलाङ विहँ घरे बुलेन आपनि। अतएव शुनिलाङ नूपुरेर ध्वनि' ॥१५५॥
एइ मते दुइ जने परम-हरिषे। शालग्राम पूजा करे, प्रभु मने हासे ॥ १५६ ॥
आरो एक कथा शुन परम अद्भुत। ये रंग करिला प्रभु जगन्नाथ-सुत ॥१५७॥
परम सुकृत एक तैर्थिक ब्राह्मण। कृष्णेर उद्देशे करे तीर्थ-पर्य्यटन ॥१५८॥
षड़क्षर गोपाल-मन्त्रे करे उपासन। गोपाल-नैवेद्य विने ना करे भोजन ॥१५९॥
दैवे भाग्यवान् तीर्थ भ्रमिते भ्रमिते। आसिया मिलिला विप्र प्रभुर बाड़ीते ॥१६०॥
कण्ठे बालगोपाल भूषण शालग्राम। परम ब्रह्मण्य तेज अति अनुपाम ॥१६१॥
निरवधि मुखे विप्र 'कृष्ण कृष्ण' बोले। अन्तरे गोविन्द-रसे दुइ चक्षु ढुले ॥१६२॥
देखि जगन्नाथ मिश्र तेज से ताँहार। सम्भ्रमे उठिया करिलेन नमस्कार ॥१६३॥

---

विचार करते हैं, कि—"कैसी आश्चर्य की बात है?" और दोनों के मुख से किसी प्रकार वाक्य स्फूर्त्ति नहीं होती है ॥ १४८ ॥ प्रभु पुस्तक देकर खेलते २ चले जाते हैं। इधर माता-पिता घर के भीतर जाकर और एक आश्चर्य देखते हैं कि—सब घर में (अप्राकृत सुन्दर) पद-चिह्न बने हुए हैं और उनमें ध्वज, वज्र, अङ्कुश, पताका अलग-अलग दिखाई देते हैं ॥ १४९-१५० ॥ अपूर्व श्रीचरण-चिह्नों को देखकर दोनों जन आनन्दित हो गये—दोनों के श्री अङ्ग पुलकित हो गये एवं नयन अश्रु जल से भर गये ॥ १५१ ॥ दोनों ही श्री चरण चिह्नों को देखकर दण्डवत् प्रणाम करने लगे और कहने लगे कि—"(बस अब हमारा) निस्तार हो गया व दूसरा जन्म नहीं लेना पड़ेगा" ॥ १५२ ॥ फिर श्री जगन्नाथ मिश्र श्री शचीदेवी से बोले, "हे विश्वरूप की माँ! सुनो, तुम जाकर घी युक्त परमान्न (खीर) रसोई करो ॥ १५३ ॥ घर में जो दामोदर शालग्राम जी हैं, प्रातः ही उनको पञ्चगव्य, पञ्चामृत आदि से स्नान (अभिषेक) कराऊँगा ॥ १५४ ॥ मैंने समझ लिया कि वही शयन घर में फिरा करते हैं; इसी कारण नूपुर की ध्वनि सुनने में आई है" ॥ १५५ ॥ इस प्रकार दोनों परम प्रसन्नता से श्री शालिग्राम की पूजा करते हैं, यह देखकर प्रभु मन ही मन में हँसते हैं ॥ १५६ ॥ और एक उस परम अद्भुत कथा को सुनिये जो श्री जगन्नाथ-नन्दन ने परम विलक्षण रंग से किया ॥ १५७ ॥ एक परम पुण्यशाली तैर्थिक (तीर्थ भ्रमण करने वाला) ब्राह्मण श्री कृष्ण-प्रीति कामना कर (अथवा श्रीकृष्ण प्राप्ति के उद्देश्य से) तीर्थ पर्यटन किया करते थे ॥ १५८ ॥ आप षड़क्षर श्री गोपाल मन्त्र से श्रीभगवदुपासना करते थे व श्री गोपाल जी को निवेदित किये बिना कोई वस्तु भोजन नहीं करते थे ॥ १५९ ॥ दैवयोग से एक दिन वह भाग्यवान् ब्राह्मण तीर्थ भ्रमण करते-करते प्रभु के घर आ पहुँचे ॥ १६० ॥ आपके कण्ठ में भूषण स्वरूप श्री बाल-गोपाल शालिग्राम जी विराजमान हैं। आप परम ब्रह्मण्य तेजधारी अति अनुपम मूर्ति हैं ॥ १६१ ॥ निरन्तर मुख से 'कृष्ण-कृष्ण' बोल रहे हैं और अन्तर में गोविन्द रस से भरपूर

अतिथि-व्यभार-धर्म येन मत हय । सब करिलेन जगन्नाथ महाशय ॥२६४॥
आपने करिया तान पाद प्रक्षालन । वसिते दिलेन आनि उत्तम आसन ॥२६५॥
सुस्थ हइ वसिलेन यदि विप्रवर । तबे ताने मिश्र जिज्ञासिला कोथा घर ?' ॥२६६॥
विप्र बोले 'आमि उदासीन देशान्तरी । चित्तेर विक्षेपे मात्र पर्यटन करि' ॥२६७॥
प्रणति करिया मिश्र बोलेन वचन । 'जगतेर भाग्ये से तोमार पर्यटन ॥२६८॥
विशेषे आजि आमार परम सौभाग्य । आज्ञा देह रन्धनेर करि गिया कार्य' ॥२६९॥
विप्र बोले कर मिश्र ! ये इच्छा तोमार । हरिषे करिला मिश्र दिव्य उपहार ॥२७०॥
रन्धनेर स्थान उपस्करि भाल-मते । दिलेन सकल सज्ज रन्धन करिते ॥२७१॥
सन्तोषे ब्राह्मण-वर करिया रन्धन । वसिलेन कृष्णेरे करिते निवेदन ॥२७२॥
सर्वभूत-अन्तर्यामी श्री शचीनन्दन । मने आछे, विप्रेरे दिबेन दरशन ॥२७३॥
ध्यान मात्र करिते लागिला विप्रवर । सम्मुखे आइला प्रभु श्री गौरसुन्दर ॥२७४॥
धूलामय सर्व-अङ्ग मूर्ति दिगम्बर । अरुण-नयन-कर चरण-सुन्दर ॥२७५॥
हासिया विप्रेर अन्न लइया श्री करे । एक ग्रास खाइलेन, देखे विप्रवरे ॥२७६॥
'हाय हाय' करि भाग्यवन्त विप्र डाके । अन्न छुँइ करिलेक चञ्चल बालके ॥२७७॥
आसिया देखेन जगन्नाथ मिश्रवर । भात खाय हासे प्रभु श्री गौरसुन्दर ॥२७८॥

---

होने के कारण दोनों नयन भर-भरित हैं ॥ २६२ ॥ श्री जगन्नाथ मिश्र आप में यह तेज देखकर आदर और मर्यादा के सहित खड़े होकर पश्चात् आपको दण्डवत् प्रणाम किये ॥ २६३ ॥ और जिस प्रकार का अतिथि के साथ व्यवहार धर्म करना संगत है, श्री जगन्नाथ मिश्र उसी प्रकार से सब किया ॥ २६४ ॥ आप ने अपने हाथों से उनके पाद प्रक्षालन करके बैठने के लिये, उत्तम आसन बिछा दिया ॥२६५॥ जब विप्रवर सुस्थ होकर ( सुखपूर्वक ) आसन ग्रहण किये, तब श्री जगन्नाथ मिश्र आप से पूछे कि—"आपका निवास-स्थान कौन सी जगह है ?" तब विप्रवर कहते हैं कि—"(मिश्रजी) मैं तो एक उदासीन परदेशी हूँ, केवल चित्त के विक्षेप से भ्रमण करता रहता हूँ" ॥ २६६-२६७ ॥ श्री जगन्नाथ मिश्र जी विप्र को नमस्कार पूर्वक कहते हैं, "जगत वासियों के भाग्य से आपका यह पर्यटन है । विशेष रूप से आज हमारा परम सौभाग्य है । आज्ञा दीजिये, मैं जाकर रसोई का प्रबन्ध करूँ" ॥ २६८-२६९ ॥ विप्रवर उत्तर देते हैं, "मिश्र जी ! जो तुम्हारी इच्छा हो, कीजिये ।" तब श्री जगन्नाथ मिश्र जी सब दिव्य उपहार ( भोजन सामिग्री ) इकट्ठे किये ॥२७०॥ रसोई का स्थान भली भाँति शोधन करके, सर्व सामिग्री रसोई तैयार करने के लिये, विप्रवर को लाकर दिये ॥ २७१ ॥ ब्राह्मण—वर, आनन्दपूर्वक रसोई तैयार करके भोजन सामिग्री श्रीकृष्णचन्द्र को निवेदन करने के बैठे हैं ॥ २७२ ॥ सर्व भूत अन्तर्यामी भगवान श्री शचीनन्दन के मन में आई कि—'इस ब्राह्मण को दर्शन दूँ' ॥ २७३ ॥ विप्रवर, बैठकर ध्यान मात्र करने लगे, कि श्री गौरसुन्दर प्रभु सम्मुख आ गये ॥ २७४ ॥ सर्व अङ्ग धूल-धूसरित,दिगम्बर मूर्ति,अरुण नयन,सुन्दर-कर-चरण विशिष्ट, श्रीप्रभु हंसकर, अपने कर-कमल में विप्रवर द्वारा निवेदन किये हुये अन्न-भोग में से एक ग्रास उठाकर खा लिये; विप्रवर ने यह देख लिये ॥२७५-२७६॥ 'हाय हाय ! इस चञ्चल बालक ने अन्न अशुद्ध कर दिया', ऐसा कहकर भाग्यवन्त विप्र पुकारने लगे ॥२७७॥ विप्रवर की यह पुकार सुनकर श्रीजगन्नाथ मिश्र उसी स्थान पर आकर देखते हैं कि प्रभु गौरसुन्दर भात

क्रोधे मिश्र धाइया यायेन मारिवारे । सम्भ्रमें उठिया विप्र धरिलेन करे ।।१७६।।
विप्र बोले 'मिश्र ! तुमि बड़ देखि आर्य्य । कोन ज्ञान बालकेर मारिया कि कार्य ?।।१८०
भाल-मन्द-ज्ञान यार थाके मारि तारे । आमार शपथ यदि मारह उहारे' ।।१८१।।
दुःखे वसिलेन मिश्र हस्त दिया शिरे । माथा नाहि तोले मिश्र बचन ना स्फुरे ।।१८२।।
विप्र बोले 'मिश्र ! दुःख ना भाविह मने । ये दिने ये हैव, ताहा ईश्वर से जाने' ।।१८३।।
फल-मूल-आदि गृहे ये थाके तोमार । आनि देह आजि सेइ करिब आहार ।।१८४।।
मिश्र बोले 'मोरे यदि थाके भृत्य-ज्ञान । आर-बार पाक कर करिदेङ् स्थान' ।।१८५।।
गृहे आछे रन्धनेर सकल सम्भार । पुन पाक कर तबे सन्तोष सभार' ।।१८६।।
वलिते लागिला तबे इष्ट-बन्धुगण । 'आमा-सभा' चाहि तबे करह रन्धन ।।१८७।।
विप्र बोले 'येइ इच्छा तोमा' सभाकार । करिब रन्धन सर्व्वथाय पुनर्बार ।।१८८।।
हरिष हइला सभे विप्रेर वचने । स्थान उपस्करिलेन सभे ततक्षणे ।।१८९।।
रन्धनेर सज्ज आनि दिलेन तुरिते । चलिलेन विप्रवर रन्धन करिते ।।१९०।।
सभेइ बोलेन 'शिशु परमचञ्चल । आरवार पाछे नष्ट करये सकल ।।१९१।।
रन्धन भोजन विप्र करेन यावत । आर-बाड़ी लये शिशु राखह तावत' ।।१९२।।
तबे शचीदेवी पुत्र कोलेत करिया । चलिलेन आर बाड़ी प्रभुरे लइया ।।१९३।।

---

खा रहे हैं और हँस रहे हैं ।। १७८ ।। तब श्री जगन्नाथ मिश्र क्रुद्ध होकर बालक श्री गौरचन्द्र को मारने के लिये दौड़ते हैं, यह देखकर विप्रवर सम्भ्रम से उठकर हाथ पकड़ लेते हैं ।। १७९ ।। श्री विप्रवर उनसे कहते हैं कि–"हे मिश्रवर ! आप बहुत सरल, भोला दिखाई देते हो; बालक को किस बात का ज्ञान है ? मारने को क्या काम है, जिसको भले, बुरे का ज्ञान हो, उसको मारना चाहिये । आपको मेरी शपथ है, यदि आप उसे मारो" ।। १८०-१८१ ।। विप्रवर के इतना कहने पर श्री जगन्नाथ मिश्र दुःखी होकर, शिर पर हाथ रखकर बैठ जाते हैं । आप न तो शिर ही ऊपर उठाते हैं और न कुछ बोलते ही हैं ।। १८२ ।। यह देखकर विप्रवर बोले, "हे श्री मिश्रवर ! आप मन में दुख मत कीजिये । जिस दिन जो बात होने वाली है, उसे केवल ईश्वर ही जानते हैं" ।। १८३ ।। फल मूल आदि जो कुछ तुम्हारे घर में हो,लाओ, वही दे दो, आज मैं वही आहार करूँगा । मिश्रवर कहते है–'यदि आप मुझे अपना दास समझते हो, तो आप दुबारा रसोई कीजिये; मैं अभी स्थान संस्कार करवा देता हूँ' ।।१८४-१८५।। रसोई करने की सब सामिग्री घर में मौजूद है । आप जब दुबारा रसोई करेंगे, तब ही सबको सन्तोष होगा' ।। १८६ ।। उसी समय इष्ट-बन्धु-बान्धवगण भी कहने लगे, "इसलिये हम सब की ओर देखकर पुनर्बार रन्धन कीजिये' ।। १८७ ।। विप्रवर उत्तर देते हैं—'जैसी तुम लोगों की इच्छा है सोइ होगी । मैं निश्चय ही दुबारा रसोई करूँगा' ।। १८८ ।। विप्रवर की इस बात को सुनकर सब लोग प्रसन्न हुए और तुरन्त स्थान-संस्कार कर दिया ।। १८९ ।। शीघ्र ही रसोई करने की वस्तुयें लाकर दे दी; विप्रवर रसोई के लिये चले ।। १९० ।। सब लोग कहने लगे कि—'यह बालक परम चञ्चल है, कहीं फिर सब नष्ट न करदे, इसलिये जब तक ब्राह्मण रसोई एवं भोजन करें तब तक इसे लेकर किसी दूसरे के घर में रख दीजिये' ।। १९१-१९२ ।। यह सुनकर श्री शचीदेवी पुत्र को गोदी में लेकर, एक दूसरे के घर चली गई

सबे नारीगण बोले 'केने रे निमाञि । एमत करिया कि विप्रेर अन्न खाइ ?' ॥१९४॥
हासिया बोलेन प्रभु श्रीचन्द्र-वदने । 'आमार कि दोष, विप्र डाकिल आपने' ॥१९५॥
सबेइ बोलेन 'अये निमाञि डाकाति । कि करिबा, एबे ये तोमार गेल जाति ॥१९६॥
कोथाकार ब्राह्मण, कोन कुल, केबा चिने । तार भात खाइ जाति राखिबे केमने ?'॥१९७॥
हासिया कहेन 'प्रभु आमि ये गोयाल । ब्राह्मणेर अन्न आमि खाइ सर्व्व काल ॥१९८॥
ब्राह्मणेर अन्ने कि गोपेर जाति याय ? एत बलि हासिया सभारे प्रभु चाय ॥१९९॥
छले निज तत्त्व प्रभु करेन व्याख्यान । तथापि ना बुझे केहो, हेन माया तान ॥२००॥
सबेइ हासेन शुनि प्रभुर वचन । वक्ष हैते एडिते काहारो नाहि मन ॥२०१॥
हासिया चाहेन प्रभु ये जनार कोले । सेइ जन आनन्द-सागर-माझे डोले ॥२०२॥
सेइ विप्र पुनर्बार करिया रन्धन । लागिलेन ध्यानिया करिते निवेदन ॥२०३॥
ध्याने बालगोपाल भावेन विप्रवर । जानिलेन गौरचन्द्र चित्तेर ईश्वर ॥२०४॥
मोहिया सकल लोक अति अलक्षिते । आइलेन विप्र-स्थाने हासिते हासिते ॥२०५॥
अलक्षिते एक मुष्टि अन्न लइ करे । खाइया चलिला प्रभु देखे विप्रवरे ॥२०६॥
'हाय हाय' करिया उठिला विप्रवर । ठाकुर खाइया भात दिला एक रड़ ॥२०७॥
सम्भ्रमे उठिया मिश्र हाथे बाड़ि लैया । क्रोधे ठाकुरेर लइ याय धाओयाइया ॥२०८॥
महाभये प्रभु पलाइला एक घरे । क्रोधे मिश्र पाछे थाकि तर्ज्जे गर्ज्जे करे ॥२०९॥

---

॥ १९३ ॥ यहाँ सब नारीगण प्रभु से कहती हैं कि—'क्यों रे निमाई ! क्या इस प्रकार से किसी दूसरे ब्राह्मण का अन्न कोई खाया करता है ?' ॥ १९४ ॥ प्रभु श्रीगौरचन्द्र मुख से हँसते हुए उत्तर देते हैं—'इसमें मेरा क्या दोष है ? स्वयं ब्राह्मण ने ही तो मुझे बुलाया था ॥ १९५ ॥ फिर सब स्त्रियाँ कहती हैं—'अरे डाकू निमाई ! (न जाने तो) अब क्या करेगा ? तेरी जाति तो बिगड़ गई । कहाँ का ब्राह्मण ! किस कुल का ! कौन उन्हें पहिचाने ! (बतलाओ) उस का भात खाकर, जाति कैसे रहेगी ? ॥ १९६-१९७ ॥ तब प्रभु हँसकर उत्तर देते हैं—'मैं तो ग्वाला हूँ, ब्राह्मण का अन्न तो मैं सदा ही से खाता आया हूँ । क्या ब्राह्मण का अन्न खाने से गोप की जाति बिगड़ जाती है ?' इतना कहकर प्रभु हँसकर सब की ओर देखने लगे ॥ १९८-१९९ ॥ छल से प्रभु ने अपना तत्त्व वर्णन कर दिया तो भी कोई नहीं समझ सकी : यही आपकी माया है ॥ २०० ॥ सब नारीगण प्रभु की बातें सुनकर हँसती हैं और हृदय में से उतारने को किसी का भी मन नहीं चाहता ॥२०१॥ प्रभु हँसते हुए जिस किसी की गोदी में चले जाते हैं, वही आनन्द सागर में बहने लगती है ॥२०२॥ [इधर] वह ब्राह्मण दुबारा रसोई बनाकर बैठकर वह भोग प्रभु को निवेदन करने लगे ॥ २०३ ॥ विप्रवर ! मन में बाल-गोपाल का ध्यान कर रहे हैं, अन्तर्यामी श्री गौरचन्द्र प्रभु ने उनके मन की बात जान ली ॥ २०४ ॥ आप सब लोगों को मोह में डालकर अपने को अत्यन्त छिपाते हुए हँसते-हँसते ब्राह्मण के पास आ गये ॥ २०५ ॥ अलक्षित रूप से एक मुट्ठी अन्न हाथ में ले लेते हैं और खा कर चलने लगे कि विप्रवर ने देख लिया ॥ २०६ ॥ तब तो विप्रवर 'हाय-हाय' कर उठे; इधर प्रभु ने भात खाकर एक दौड़ लगाई ॥ २०७ ॥ श्री-मिश्रचन्द्र सम्भ्रम से उठकर हाथ में एक छड़ी लेकर क्रोधाविष्ट हो भी प्रभु के आगे-आगे भगाते ले जाते

मिश्र बोले 'आजि देख करोँ तोर कार्य्य। तोर मते परम अबुध आमि आर्य्य ॥२१०॥
हेन महाचोर शिशु कार घर आछे?' एत बलि क्रोधे मिश्र धाय प्रभु-पाछे ॥२११॥
सभे धरिलेन यत्न करिया मिश्रेरे। मिश्र बोले 'एइ आजि मारिब उहारे' ॥२१२॥
सभेइ बोलेन 'मिश्र'! तुमित उदार। उहारे मारिया कोन साधुत्व तोमार ॥२१३॥
भाल मन्द-ज्ञान नाहि उहार शरीरे। परम अबोध, जे एमन शिशु मारे ॥२१४॥
मारि लेइ कोन वा शिखिब हेन नय। स्वभावेइ शिशुर चञ्चल-मति हय' ॥२१५॥
आथे व्यथे आसि सेइ तैर्थिक ब्राह्मण। मिश्रेर धरिया हाथे बोलेन बचन ॥२१६॥
'बालकेर नाहि दोष शुन मिश्र-राय। ये दिने ये हैब, ताहा हइबारे चाय ॥२१७॥
आजि कृष्ण अन्न नाहि लिखेन आमारे। सबे एइ मर्म्मकथा कहिलूँ तोमारे' ॥२१८॥
दुःखे जगन्नाथ-मिश्र नाहि तोले मुख। माथा हेट करिया भावेन महा-दुःख ॥२१९॥
हेनइ समये विश्वरूप भगवान्। सेइ-स्थाने आइलेन महा-ज्योतिर्धाम ॥२२०॥
सर्व्व अङ्ग निरुपम लावण्येर सीमा। चतुर्द्दश-भुवनेओ नाहिक उपमा ॥२२१॥
स्कन्धे यज्ञसूत्र, ब्रह्मतेज मूर्त्तिमन्त। मूर्त्ति भेदे जन्मिला आपने नित्यानन्द ॥२२२॥
सर्व्व-शास्त्रेर अर्थ सदा स्फुरये जिह्वाय। कृष्णभक्ति-व्याख्या-मात्र करये सदाय ॥२२३॥
देखिया अपूर्व्व मूर्त्ति तैर्थिक ब्राह्मण। मुग्ध हइ एक-दृष्टे चाहे घने घन ॥२२४॥

---

है ॥ २०८ ॥ महा भयभीत होकर श्री प्रभु भागकर एक घर में घुस गये; क्रोधाविष्ट श्री मिश्रचन्द्र पीछे रह-कर तर्ज्जन-गर्ज्जन करने लगे ॥ २०९ ॥ श्री मिश्रचन्द्र कहते हैं, देख! आज मैं तेरा काम कैसा बनाता हूँ? तू यों जानता है कि तेरा पिता कुछ जानता ही नहीं। ऐसा महाचोर बालक किसके घर में हैं, ऐसा कहकर क्रोधाविष्ट श्री मिश्रचन्द्र प्रभु के पीछे २ दौड़ने लगे ॥ २१०-२११ ॥ सब लोग यत्नपूर्वक मिश्रचन्द्र को पकड़ लिये, मिश्रचन्द्र कहते हैं—'छोड़ दो मैं आज उसको मारूँगा' ॥ २१२ ॥ सब लोग कहते हैं, मिश्र जी! तुम तो बहुत भोले मालुम होते हो बालक को मारने में तुम्हारी कौन सी साधुता है? देखिये उसको तो भले-बुरे का ज्ञान नहीं है, ऐसे बालक को जो मारे वह परम अबोध (अज्ञानी) माना जाता है। मारने से ही वह कौन सा सीख जायगा; और देखो बालक तो स्वभाव से ही चञ्चल मति होते हैं ॥ २१३-२१५ ॥ इसी समय वह तीर्थिक ब्राह्मण बड़े सम्भ्रम से झटपट आकर; श्री जगन्नाथ मिश्र का हाथ पकड़ लेते हैं; और कहते हे कि ॥ २१६ ॥ "हे मिश्रकुल के राजा! सुनिये, इसमें बालक का कुछ भी दोष नहीं है; जिस दिन जो बात होने वाली है, वह घटेगी ही, होनी ही चाहिये। आज श्री कृष्ण ने मेरे भाग्य में अन्न नहीं लिखा है, सब की सार यह मेरी आन्तरिक बात है, मैंने आपसे कह दी" ॥ २१७-२१८ ॥ विप्रवर की यह बात सुनकर श्री जगन्नाथ मिश्र महान् दुःखी होकर मुख नहीं उठाते हैं। माथा नीचे कर अन्तर में महान् दुःख भोग कर रहे हैं ॥ २१९ ॥ ठीक ऐसे ही समय परम महातेजपुञ्ज कलेवर श्रीविश्वरूप (श्रीप्रभु के ज्येष्ठभ्राता) भगवान उस स्थान पर आ पहुँचे ॥ २२० ॥ आपके सर्वाङ्ग में जो निरुपम लावण्य की सीमा है, उसकी उपमा चौदह भुवनों में भी नहीं है ॥ २२१ ॥ मूर्त्तिमन्त ब्रह्म तेजस्वरूप आपके स्कन्ध देश में यज्ञोपवीत शो-भित है, आप श्रीप्रभु नित्यानन्द ही दूसरी मूर्त्ति धारण करके श्रीजगन्नाथ मिश्र के गृह में जन्म लिये हैं

 आपकी जिह्वा पर, सर्व शास्त्रों के अर्थ निरन्तर स्फूर्त्ति पाते हैं आप सदैव केवल श्री कृष्ण भक्ति

विप्र बोले 'कार पुत्र एइ महाशय ।?' सबेइ बोलेन 'एइ मिश्रेर तनय' ॥२२५॥
शुनिञा सन्तोषे विप्र कैला आलिङ्गन । 'धन्य पिता माता यार ए-हेन नन्दन' ॥२२६॥
विप्रेरे करिला विश्वरूप नमस्कार । वसिया कहेन कथा अमृतेर धार ॥२२७॥
'शुभ दिन तार महाभाग्येर उदय । तुमि-हेन अतिथि याहार गृहे रय ॥२२८॥
जगत शोधिते से तोमार पर्य्यटन । आत्मानन्दे पूर्ण हइ करह भ्रमण ॥२२९॥
भाग्य बड़, तुमि-हेन अतिथि आमार । अभाग्य वा कि कहिब, उपास तोमार ॥२३०॥
तुमि उपवास वा करिया यार घरे । सर्वथा ताहार अमङ्गल-फल धरे ॥२३१॥
हरिष पाइलूँ बड़ तोमार दर्शने । विषाद पाइलूँ बड़ ए सब श्रवणे' ॥२३२॥
विप्र बोले 'किछु दुःख ना भाविह मने । फल मूल किछु आमि करिब भोजने ॥२३३॥
वनवासी आमि, अन्न कोथाइ वा पाइ । प्राय आमि वने फल मूल मात्र खाइ ॥२३४॥
कदाचित कोन दिवसे वा खाइ अन्न । सेहो यदि अविरोधे हय उपसन्न ॥२३५॥
ये सन्तोष पाइलाङ तोमा दरशने । ताहातेइ कोटि कोटि करिलूँ भोजने ॥२३६॥
फल, मूल, नैवेद्य ये किछु थाके घरे । ताहा आन गिया आजि करिब आहारे' ॥२३७॥
उत्तर ना करे किछु मिश्र-जगन्नाथ । दुःख भावे मिश्र, शिरे दिया दुइ हाथ ॥२३८॥
विश्वरूप बोलेन 'बलिते वासि भय । सहजे करुणासिन्धु तुमि महाशय ! ॥२३९॥

---

की व्याख्या करते हैं ॥ २२३ ॥ आपकी अपूर्व मूर्ति को दर्शन कर, वह नैष्ठिक विप्रवर मोहित होकर बार-बार एकटक लगाकर देखने ॥ २२४ ॥ विप्रवर पूछते हैं कि—"यह महाशय किसके पुत्र हैं ?" लोग उत्तर देते हैं—"यह इन्हीं श्रीमिश्र जी के पुत्र हैं" ॥ २२५ ॥ सुनकर, विप्रवर प्रसन्न चित्त होकर, श्रीविश्वरूप का आलिङ्गन किये और कहने लगे कि—"वह माता-पिता धन्य हैं जिनका आप जैसा पुत्र है" ॥ २२६ ॥ श्री विश्वरूप जी ने विप्र को नमस्कार किया और बैठकर अमृत की धारा जैसी मीठी बातें करने लगे ॥ २२७ ॥ श्रीविश्वरूप जी कहते हैं कि—"महाराज" आप जैसे अतिथि जिसके घर आकर ठहरें, उसके शुभ दिन का उदय और महाभाग्य का उदय समझना चाहिये ॥२२८॥ आप जैसे महानुभावों का पर्यटन संसार को पवित्र करने के लिये होता है, आप आत्मानन्द से पूर्ण होकर भ्रमण करते हैं ॥ २२९ ॥ आप जैसे हमारे अतिथि हुए, यह हमारा परम सौभाग्य है। परन्तु दुर्भाग्य को भी क्या कहूँ, कि आप निराहार रह रहे हैं ॥ २३० ॥ आप जिसके घर बिना भोजन किये रहेंगे, उसका सर्व प्रकार से अमङ्गल फल ही लाभ होता है ॥ २३१ ॥ आपके दर्शन से तो मैं बड़ा आनन्दित हुआ हूँ, परन्तु यह सब वृत्तान्त सुनकर बड़ा ही दुःख पा रहा हूँ" ॥ २३२ ॥ अब विप्रवर कहते हैं कि—"(वत्स !) तुम मन में कुछ भी दुःख मत करो। मैं फलमूल आदि कुछ भोजन कर लूँगा ॥ २३३ ॥ मैं तो वनवासी हूँ, मुझे यहाँ अन्न कहाँ से मिलता है ? मैं तो वन में प्रायशः फल, मूल, मात्र ही खाया करता हूँ ॥ २३४ ॥ कदाचित किसी २ दिन अन्न भी खा लेता हूँ; वह भी यदि निर्विघ्न रूप से मिल जाय तो ॥ २३५ ॥ तुम्हारे दर्शन करके जो आनन्द मैंने पाया है, उसी से ही मैं कोटि-कोटि भोजन कर चुका ॥ २३६ ॥ फल, मूल एवं नैवेद्य आदि जो कुछ घर में हो, लाकर दे जाओ; आज वही भोजन करूँगा" ॥ २३७ ॥ श्री जगन्नाथ मिश्र कुछ बोलते नहीं हैं और आप दोनों हाथ सिर पर रख

परदुःखे कातर-स्वभावे साधुजन । परेर आनन्द से बाढ़ाय अनुक्षण ॥२४०॥
एतेके आपने यदि निरालस्य हैया । कृष्णेर नैवेद्य कर रन्धन करिया ॥२४१॥
तबे आजि आमार गोष्ठीर यत दुःख । सकल घुचये, पाइ परानन्द सुख' ॥२४२॥
विप्र बोले 'रन्धन करिलूँ दुइबार । तथापिह कृष्ण ना दिलेन खाइबार ॥२४३॥
तेञि बुझिलाम आजि नाहिक लिखन । कृष्ण-इच्छा नाहि, केने करह यतन ॥२४४॥
कोटि भक्ष्य द्रव्य यदि थाके निज घरे । कृष्ण आज्ञा हइले से खाइबारे पारे ॥२४५॥
ये दिने कृष्णेर जारे लिखन ना हय । कोटि यत्न करि तथापित सिद्ध नय ॥२४६॥
निशाओ प्रहर डेढ़ दुइओ वा याय । इहाते कि आर पाक करिते युयाय ॥२४७॥
अतएव आजि यत्न ना करिह आर । एइ मत किछु मात्र करिब आहार' ॥२४८॥
विश्वरूप बोलेन 'नाहिक किछु दोष । तुमि पाक करिले से समार सन्तोष' ॥२४९॥
एत बलि विश्वरूप धरिला चरण । साधिते लागिला सबे करिते रन्धन ॥२५०॥
विश्वरूप देखिया मोहित विप्रवर । 'करिब रन्धन' विप्र बलिला उत्तर ॥२५१॥
सन्तोषे सबेइ 'हरि' बलिते लागिला । स्थान उपस्कार सबे करिते लागिला ॥२५२॥
आथे-ब्यथे स्थान उपस्करि सर्व्व जने । रन्धनेर सामग्री आनिला सेइ क्षणे ॥२५३॥
चलिलेन विप्रवर करिते रन्धने । शिशु आवरिया रहिलेन सर्व्व जने ॥२५४॥

---

कर मन में विषादित हो रहे हैं ॥ २३८ ॥ अब श्री विश्वरूप भगवान् कहते हैं कि—"कहने में डर लगता है, (परन्तु) हे महाशय जी ! आप सहज में ही करुणासागर हो ॥ २३९ ॥ साधुजन स्वभाव से ही दूसरों के दुःख में दुःखी होते हैं और सदैव दूसरों का आनन्द बढ़ाया करते हैं ॥ २४० ॥ अतएव आप यदि आलस्य त्याग कर रसोई बनाकर श्रीकृष्ण भोग लगावें, तो हमारी गोष्ठी (आत्मीयजन) का सब दुःख जाता रहेगा, हम सब परानन्द सुख पायेंगे" ॥ २४१-२४२ ॥ विप्रवर उत्तर देते हैं कि—"मैंने दो बार रसोई की है, तब भी श्री कृष्ण की इच्छा से मुझको खाने को नहीं मिला ॥ २४३ ॥ इससे मालुम होता है कि आज भाग्य में भोजन नहीं लिखे हैं; जब श्री कृष्ण की इच्छा ही नहीं है, तो फिर क्यों यत्न (आग्रह) करते हो ॥२४४॥ यदि घर में खाने के करोड़ों पदार्थ भी रखे रहें, तब भी कृष्ण आज्ञा से ही कोई खा सकता है ॥ २४५ ॥ जिस दिन श्री कृष्ण ने जिसके लिये, जो बात नहीं लिखी है, फिर वह बात करोड़ों उपाय करने पर भी पूर्ण (सफल) नहीं हो सकती है ॥ २४६ ॥ रात्रि भी लगभग डेढ़ और शायद दो प्रहर चली गई है; अतएव ऐसे समय पर क्या और रसोई करना योग्य है ! इसलिये आज रसोई कराने के लिये और यत्न न कीजिये; ऐसे ही कुछ थोड़ा खा लूँगा" ॥ २४७-२४८ ॥ श्री विश्वरूप भगवान् कहते हैं—" (इस समय रसोई करने से) कोई दोष नहीं है, आपके रसोई करने से सब को सन्तोष होगा ।" इतना कहकर श्री विश्वरूप प्रभु, ब्राह्मण के चरण पकड़ लेते हैं । सब लोग भी विप्रवर से रसोई तैयार कर लेने की इच्छा प्रकट करने लगे ॥२४९-२५०॥ श्री विश्वरूप को देखकर विप्रवर मोहित हो रहे हैं, अतएव आप स्वीकार करते हैं कि—"(अच्छा) मैं रसोई बनाऊँगा" ॥ २५१ ॥ तब तो सब लोग आनन्दित होकर, हरिध्वनि करने लगे; और सब मिलकर स्थान का संस्कार करने लगे ॥ २५२ ॥ सब लोग सम्भ्रम के सङ्ग, झटपट, स्थान परिष्कार करके शीघ्र ही रसोई की

पलाइला ठाकुर आछेन येइ घरे । मिश्र बसिलेन तार माझार दुयारे ॥२५५॥
सभेइ बोलेन 'बान्ध बाहिर दुयार । बाहिर हइते येन नारि जाय आर' ॥२५६॥
मिश्र बोले 'भाल भाल एइ युक्ति हय' । बान्धिया दुयार सभे बाहिरे आछय ॥२५७॥
घरे थाकि स्त्रीगण बोलेन 'चिन्ता नाञि । निद्रा गेला, किछु आर ना जाने निमाञि' ॥२५८॥
एइ मते शिशु राखियाछे सर्व्वजन । विप्रेरे हइल कथोक्षणेके रन्धन ॥२५९॥
अन्न उपस्कार करि सुकृति ब्राह्मण । ध्याने बसि कृष्णेरे लागिला निवेदन ॥२६०॥
जानि लेन अन्तर्यामी श्रीशचीनन्दन । चित्ते आछे, विप्रेरे दिबेन दरशन ॥२६१॥
निद्रा-देवी सभारेइ ईश्वर-इच्छाय । मोहिलेन, सभेइ अचेष्ट निद्राय ॥२६२॥
ये स्थाने करेन विप्र अन्न-निवेदन । आइलेन सेइ-स्थाने श्रीशचीनन्दन ॥२६३॥
बालक देखिया विप्र करे 'हाय हाय' । सभे निद्रा याय, केहो शुनिते ना पाय ॥२६४॥
प्रभु बोले 'अये विप्र ! तुमित उदार । तुमि आमा डाकि आन कि दोष आमार ? ॥२६५॥
मोर मन्त्र जपि मोरे करह आह्वान । रहिते ना पारि आमि, आसि तोमा-स्थान ॥२६६॥
आमारे देखिते निरवधि भाव तुमि । अतएव तोमारे दिलाम देखा आमि' ॥२६७॥
सेइ क्षणे देखे विप्र परम अद्भुत । शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म अष्टभुज-रूप ॥२६८॥
एक हस्ते नवनीत, आर हस्ते खाय । आर दुइ हस्ते प्रभु मुरली-बाजाय ॥२६९॥

---

सामिग्री लाकर उपस्थित कर दिये ॥ २५३ ॥ विप्रवर भी रसोई के लिये चलते हैं, उधर सब लोग बालक 'निमाई' को घेर रखे हैं ॥ २५४ ॥ जिस घर में प्रभु भागकर छिपे हैं, उसी घर के नीचे दरवाजे पर श्री जगन्नाथ मिश्र जा बैठे हैं ॥ २५५ ॥ सब लोग कहने लगे—"बाहर से दरवाजा बाँध दीजिये, जिससे कि वह फिर बाहर न निकल सके" ॥ २५६ ॥ मिश्र जी कहते हैं—"ठीक है, यही युक्ति ठीक है।" फिर तो दरवाजा बाहर से बाँध के सब लोग बाहर आ गये ॥ २५७ ॥ भीतर घर में से स्त्रीगण बोलीं कि—"अब कोई चिन्ता नहीं है; निमाई तो सो गया है, अब उसे किसी बात की सुधि नहीं है" ॥ २५८ ॥ इस प्रकार सब लोग बालक की रखवाली कर रहे हैं, उधर कुछ समय में ही विप्रवर की भी रसोई बनकर तैयार हो गई है ॥ २५९ ॥ तब वह सुकृती ब्राह्मण, अन्न को सजाकर, बैठकर ध्यान द्वारा श्री कृष्ण को निवेदन करने लगे ॥२६०॥ अन्तर्यामी श्री शचीनन्दन प्रभु सब जान गये, आपके मन में आया कि इस विप्र को दर्शन दें ॥ २६१ ॥ श्री प्रभु की इच्छा से निद्रादेवी ने सब स्त्री, पुरुषों को मोहित कर दिया सबके सब अचेत नींद में सो रहे हैं ॥२६२॥ अब प्रभु श्रीशचीनन्दन जहाँ विप्र अन्न निवेदन कर रहे हैं, उसी ओर पर आ गये ॥ २६३ ॥ बालक को देखकर विप्र "हाय हाय" कर उठता है, परन्तु यहाँ तो सब सो रहे हैं, किसी ने सुना नहीं ॥ २६४ ॥ तब प्रभु बोले, हे विप्र ! तुम तो भोले हो, तुम ही तो मुझको बुलाकर लाते हो, फिर इसमें हमारा क्या दोष है ? ॥ २६५ ॥ तुम मेरा मन्त्र जप कर मुझे आवाहन करते हो, तो मुझसे रहा नहीं जाता है, तुम्हारे पास आ जाता हूँ॥२६६॥ तुम निरन्तर मेरे दरशन के लिये चिन्ता करते हो; इसीलिये मैं तुम्हें दिखाई दे गया हूँ ॥ २६७ ॥ उसी क्षण विप्रवर प्रभु को परम अद्भुत शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म सुशोभित चारों भुजा और एक हस्त में नवनीत-पिण्ड और दूसरे हस्त में भोजन करते हुए देखते हैं। बाकी और दोनों हाथों से श्रीप्रभु मुरली बजा रहे हैं विप्रवर इस

श्री वत्स कौस्तुभ वक्षे शोभे मणिहार । सर्व्व-अङ्गे देखे रत्नमय-अलङ्कार ॥२७०॥
नवगुञ्जा वेढ़ा शिखि-पुच्छ शोभे शिरे । चन्द्रमुखे अरुण-अधर शोभा करे ॥२७१॥
हासिया दोलाइ दुइ नयन-कमले । वैजयन्ती-माला दोले मकर-कुण्डल ॥२७२॥
चरणारविन्दे शोभे श्री रत्न-नूपुर । नखमणि-किरणे तिमिर गेल दूर ॥२७३॥
अपूर्व्व कदम्ब-वृक्ष देखे सेइ-खाने । वृन्दावन देखे, नाद करे पक्षिगणे ॥२७४॥
गोप गोपी गावी गन चतुर्दिगे देखे । यत ध्यान करे, ताइ देखे परतेके ॥२७५॥
अपूर्व्व ऐश्वर्य देखि सुकृति ब्राह्मण । आनन्दे मूर्च्छित हैया पड़िला तखन ॥२७६॥
करुणा-समुद्र प्रभु श्रीगौरसुन्दर । श्रीहस्ते दिलेन तान अङ्गेर उपर ॥२७७॥
श्री हस्त-परशे विप्र पाइला चेतन । आनन्दे हइला जड़ ना स्फुरे वचन ॥२७८॥
पुनःपुन मूर्च्छा विप्र याय भूमितले । पुन उठे पुन पड़े महा कुतुहले ॥२७९॥
कम्प, स्वेद, पुलके शरीर स्थिर नहे । नयनेर जल येन महानदी वहे ॥२८०॥
क्षणेके धरिया विप्र प्रभुर चरण । करिते लागिला उच्च करिया क्रन्दन ॥२८१॥
देखिया विप्रेर आर्त्ति श्रीगौरसुन्दर । हासिया विप्रेरे किछु करिला उत्तर ॥२८२॥
प्रभु बोले 'शुन शुन अये विप्रवर ! अनेक जन्मेर तुहि आमार किङ्कर ॥२८३॥
निरवधि भाव तुमि देखिते आमारे । अतएव आमि देखा दिलाङ तोमारे ॥२८४॥

---

प्रकार श्रीप्रभु को अष्टभुज स्वरूप में देखते हैं॥२६८-२६९॥और भी देखते हैं कि—श्रीवक्षस्थलपर श्रीवत्स चिह्न, कौस्तुभ मणि एवं अन्य मणियों के हार सुशोभित हैं,अन्य सब श्रीअङ्ग में रत्नमय आभूषण हैं ॥२७०॥ नवीन गुञ्जाओं की मालाओं से परिवेष्टित-मोर-पङ्ख सिर पर शोभा दे रहा है । श्रीचन्द्रवदन में अरुण अधर ओष्ठ शोभा को विस्तार कर रहे हैं ॥ २७१ ॥ मुस्कुराते हुए दोनों नयन कमलों को चला रहे हैं । गले में वैजयन्ती माला एवं कानों में मकराकृत कुण्डल झूल रहे हैं ॥ २७२ ॥ श्री चरण कमलों में श्री रत्न-नूपुर सुशोभित हैं, श्री नख रूपी मणियों से अन्धकार दूर भाग रहा है ॥ २७३ ॥ उस स्थान पर अपूर्व कदम्ब वृक्ष देख रहे हैं । श्री वृन्दावन देख रहे हैं, जहाँ पर पक्षीगण कोलाहल कर रहे हैं ॥ २७४ ॥ चारों ओर गोप, गोपी एवं गाभीगण को देख रहे हैं । जो ध्यान वे नित्य प्रति किया करते हैं, आज वह सब प्रत्यक्ष देख रहे हैं॥२७५॥ अब तो वह सुकृतिवान ब्राह्मण, प्रभु के ऐसे अपूर्व ऐश्वर्य को देखकर, आनन्द से मूर्च्छित होकर धरती में गिर पड़े ॥२७६॥ तब करुणासागर श्रीगौरसुन्दर प्रभु ने उनके शरीर पर अपना श्री हस्त अर्पण किया॥२७७॥ श्री हस्त स्पर्श से विप्रवर की चेतना हुई, पर आनन्द से जड़वत् बन गये हैं; कुछ बोला नहीं जाता ॥ २७८ ॥ विप्रवर बारम्बार मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं, महा आनन्द से विभोर होकर बारम्बार उठते हैं, और फिर गिरते हैं ॥ २७९ ॥ आपका शरीर कम्प, स्वेद, एवं रोमाञ्च के कारण स्थिर नहीं है; अश्रु धारा ऐसी झर रही है कि मानो महानदी बह रही हो ॥ २८० ॥ कछुक देर में विप्रवर प्रभु के श्री चरणों को पकड़ कर उच्च स्वर से रोदन करने लगे ॥ २८१ ॥ श्रीगौरसुन्दर विप्र की इस प्रकार की आर्त्ति देखकर, हँस कर उनसे कुछ कहने लगे ॥ २८२ ॥ श्रीप्रभु कहते हैं कि—हे विप्रवर ! सुनो-सुनो । तुम हमारे अनेक जन्म के दास हो ॥ २८३ ॥ तुम निरन्तर मेरे दरशन पाने की भावना करते रहे हो; इसीलिये मैंने आज तुम्हें दरशन

विप्रेर हुङ्कारे सभे पाइला चेतन । आपना, सम्बरि विप्र कैला आचमन ॥२००॥
निर्व्विघ्ने भोजन करिलेन विप्रवर । देखि सभे सन्तोष हइला बहुतर ॥२०१॥
सभारे कहिते मने चिन्तये ब्राह्मण । ईश्वर चिनिञा सभे पाउक मोचन ॥२०२॥
ब्रह्मा शिव जाहार निमित्त काम्य करे । हेन प्रभु अवतरि आछे विप्र घरे ॥२०३॥
से प्रभु रे लोक सब करे शिशु ज्ञान । कथा कहि सभेइ पाउक परित्राण' ॥२०४॥
प्रभु करियाछे निवारण एइ भये । आज्ञा-भङ्ग-भये विप्र कारे नाहि कहे ॥२०५॥
चिनिञा ईश्वर विप्र सेइ नवद्वीपे । रहिलेन गुप्त भावे ईश्वर समीपे ॥२०६॥
भिक्षा करि विप्रवर प्रति स्थाने स्थाने । ईश्वरेरे आसिया देखेन प्रति-दिने ॥२०७॥
वेद-गोप्य ए सकल महा चित्र कथा । इहार श्रवणे कृष्ण मिलये सर्व्वथा ॥२०८॥
आदिखण्ड कथा येन अमृत-श्रवण । याहे शिशु-रूपे क्रीड़ा करे नारायण ॥२०९॥
सर्व्व लोक-चूड़ामणि वैकुण्ठ-ईश्वर । लक्ष्मीकान्त सीताकान्त श्रीगौरसुन्दर ॥२१०॥
त्रेता-युगे हइया ये श्रीराम लक्ष्मण । नाना-मत लीला करि बधिला रावण ॥२११॥
हइया द्वापर-युगे कृष्ण सङ्कर्षण । नाना-मते करिलेन भूभार खण्डन ॥२१२॥
मुकुन्द अनन्त यारे सर्व्व वेदे कहे । श्रीचैतन्य नित्यानन्द सेइ सुनिश्चये ॥२१३॥

---

अपने को सँभाल कर ( अपना भाव गोपन करके ) आचमन करने लगे ॥ २०० ॥ वह सब लोग विप्रवर को निर्विघ्न भोजन कर चुके देखकर अतिशय आनन्दित हुए ॥२०१॥ वह ब्राह्मण बीती हुई इस घटना को सबसे कहने का मन में विचार करते हैं; मन ही मन सोचते हैं कि—"( मेरे कहने से ) इस बालक को ईश्वर जानकर सभी लोग उद्धार हो जायें ॥ २०२ ॥ जिन प्रभु के लिये ब्रह्मा, शिव आदि देवगण भी कितनी कामनायें करते हैं, वही प्रभु श्री जगन्नाथ मिश्र के घर में अवतीर्ण हुए हैं ॥ २०३ ॥ उन्हीं श्रीप्रभु को सब लोग बालक समझते हैं । मैं बीती हुई बातें कहूँ, जिससे सब लोगों का परित्राण हो जाय" ॥ २०४ ॥ श्रीप्रभु ने किसी से भी कहना निषेध किया है और कहने से श्री भगवदाज्ञा भङ्ग होगी, इस डर से विप्र ने किसी से कुछ भी नहीं कहा ॥ २०५ ॥ वह ब्राह्मण प्रभु को पहिचान कर उनके पास गुप्त भाव से उस नवद्वीप धाम में रहने लगे ॥ २०६ ॥ विप्रवर विभिन्न स्थानों से भिक्षा माँगकर निर्वाह करने लगे; और प्रतिदिन आकर ईश्वर दर्शन करने लगे ॥ २०७ ॥ यह सब महाविचित्र कथा वेद-गोप्य है । इसे श्रवण करने से अवश्य ही श्रीकृष्ण मिल जाते हैं ॥ २०८ ॥ आदिखण्ड की लीला जिसमें श्रीनारायणदेव बालक रूप से क्रीडा कर रहे हैं, मानो अमृत की झरना जैसी मधुर हैं ॥ २०९ ॥ श्रीगौरसुन्दर प्रभु सर्व लोक चूड़ामणि, वैकुण्ठ के ईश्वर, श्रीलक्ष्मीकान्त, श्री सीताकान्त आदि सर्व तत्त्वमय हैं ॥ २१० ॥ [ अत्र पूज्यपाद श्री ग्रन्थकार श्रीनित्यानन्द प्रभु तथा श्रीगौरसुन्दर के तत्त्व कुछ वर्णन करते हैं ] जिन्होंने त्रेता युग में श्रीराम एवं श्रीलक्ष्मण स्वरूप धारण कर अनेक प्रकार की लीलायें करके रावण का वध किया, द्वापर युग में जिन्होंने श्रीकृष्ण एवं श्रीबलराम होकर अनेक प्रकार से पृथ्वी का भार हरण किया और सर्व वेद जिनको श्री मुकुन्द एवं श्री अनन्त कहकर पुकारते हैं, वही श्रीचैतन्य एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र हैं यह सुनिश्चय है ( कोई भी संशय नहीं है ) ॥ २११ २१२
श्रीकृष्णचैतन्य एवं श्रीनित्यानन्द को जानकर श्रीवृन्दावनदास ठाकुर उन दोनों के श्री -माहात्म्य को

श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द चाँद जान । वृन्दावन-दास तछु पदयुगे गान ॥२१४॥

इति श्री आदिखण्डे नामकरण-चापल्यादि-वर्णनं नाम
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

## चतुर्थ अध्याय

हेन मते क्रीड़ा करे गौराङ्ग गोपाल । हाथे खड़ि दिवार हइल आसि काल ॥१॥
शुभ दिने शुभ क्षणे मिश्र-पुरन्दर । हाथे खड़ि पुत्रेर दिलेन विप्रवर ॥२॥
किछु शेषे मिलिया सकल बन्धुगण । कर्णवेध करिलेन श्रीचूड़ाकरण ॥३॥
दृष्टिमात्र सकल अक्षर लिखि जाय । परम विस्मित हइ सर्वगणे चाय ॥४॥
दिन दुइ तिने लिखिलेन सर्व फला । निरन्तर लिखेन कृष्णेर नाममाला ॥५॥
राम, कृष्ण, मुरारि, मुकुन्द, वनमाली । अहर्निशि लिखेन पड़ेन कुतूहली ॥६॥
शिशुगण-सङ्गे पड़े वैकुण्ठेर राय । परम-सुकृति सब देखे नदीयाय ॥७॥
कि माधुरी करि प्रभु 'क,ख,ग,घ' बोले । ताहा शुनि तेइ मात्र सर्व्व-जीव भोले ॥८॥
अद्भुत करेन क्रीड़ा श्री गौरसुन्दर । जखने ये चाहे सेइ परम दुष्कर ॥९॥
आकाशे उड़िया जाय पक्षि ताहा चाहे । ना पाइले कान्दिया धूलाय गड़ि जाये ॥१०॥
क्षणे चाहे आकाशेर चन्द्र तारागण । हाथ-पाओ आछाड़िया करये क्रन्दन ॥११॥
सान्त्वना करेन सबे करि निज कोले । स्थिर नहे विश्वम्भर 'देओ देओ' बोले ॥१२॥

---

कुछ गा रहे हैं—( द्वितीय अर्थ ) श्रीकृष्णचैतन्य एवं श्रीनित्यानन्द जिनके प्राण हैं ऐसे श्रीवृन्दावनदास ठाकुर उन दोनों के श्रीचरणारविन्द-माहात्म्य को कुछ गाकर सुना रहे हैं ॥ २१४ ॥

इस प्रकार श्रीगौराङ्ग-गोपाल क्रीड़ा करते हैं, इतने में आपके हाथ में खड़िया देने का ( विद्यारम्भ कराने का ) समय आ गया है, विप्रवर श्री जगन्नाथ मिश्र शुभ दिन और शुभ क्षण देखकर पुत्र के हाथ में लिखने के लिये खड़िया पकड़ा दी ॥ १-२ ॥ कुछ समय बाद बन्धु-बान्धवगणों ने मिलकर प्रभु का कर्णवेध एवं चूड़ाकरण का संस्कार किया ॥ ३ ॥ विद्यारम्भ में प्रभु केवल एक बार देखकर ही सब अक्षर लिख जाते हैं । सब आत्मीयजन परम आश्चर्य मान कर परस्पर देखते ही रह जाते हैं ॥ ४ ॥ दो तीन दिन में ही सब फला लिखने लगे, पश्चात् निरन्तर श्रीकृष्ण-नाममाला लिखते हैं ॥ ५ ॥ विनोदी प्रभु अब दिन रात, राम, कृष्ण, मुरारि, मुकुन्द, वनमाली आदि नामावली लिखते और पढ़ते हैं ॥ ६ ॥ श्री वैकुण्ठनाथ प्रभु, श्रीविश्वम्भरचन्द्र, बालकों के साथ पढ़ते हैं; जिसको नवद्वीप के सब परम पुण्यवान् लोग देखते हैं ॥ ७ ॥ प्रभु कैसी माधुरी के साथ 'क, ख, ग, घ' बोलते हैं कि—जिसको सुनते ही सब प्राणी मुग्ध हो जाते हैं ॥ ८ ॥ श्रीगौर-सुन्दर अद्भुत क्रीड़ा करते हैं । जब जो वस्तु चाहते हैं, उसे कहीं से लाकर देना परम दुष्कर हो जाता है ॥९॥ कभी कोई पक्षी,आकाश में उड़ता हुआ देखते हैं, तो उसी को मांगने लगते हैं और कहीं नहीं मिलने से रोते-रोते धूल में लोट-पोट होते हैं १० क्षण भर में के चन्द्रमा और माँगने लगते हैं और फिर हाथ-पैर पीटकर रोने लगते हैं ११ सब लोग अपनी गोदी में ले लेकर बहलाते हैं, परन्तु श्री-

सब एक मात्र आछे महा-प्रतिकार । हरिनाम शुनिले ना कान्दे प्रभु आर ॥१३॥
हाथे तालि दिया सभे बोले 'हरि हरि' । तखन सुस्थिर हय चाञ्चल्य पासरि ॥१४॥
बालकेर प्रीते सभे बोले हरिनाम । जगन्नाथ-गृह हैल श्रीवैकुण्ठ-धाम ॥१५॥
एक दिन सभे 'हरि' बोले अनुक्षण । तथापिह प्रभु पुन करेन क्रन्दन ॥१६॥
सभेइ बोलेन 'शुन बाप रे निमाञि ! भाल करि नाच एइ हरिनाम गाइ' ॥१७॥
ना शुने वचन कारो करये क्रन्दन । सभेइ बोलेन 'बाप ! कान्द कि कारण ?' ॥१८॥
सभे बोले 'बोल बाप ! कि इच्छा तोमार । सेइ द्रव्य आनि दिब ना कान्दह आर' ॥१९॥
प्रभु बोले 'यदि मोर प्राण-रक्षा चाह । तबे झट दुइ ब्राह्मणेर घरे जाह ॥२०॥
जगदीश पण्डित, हिरण्य भागवत । एइ दुइ स्थाने आमार आछे अभिमत ॥२१॥
एकादशी-उपवास आजि से दोँहार । विष्णु लागि करियाछे यत उपहार ॥२२॥
से सब नैवेद्य यदि खाइबारे पाञ । तबे मुञि सुस्थ हइ हाँटिया बेड़ाञ' ॥२३॥
असम्भव्य शुनिञा जननी करे खेद । हेन कथा कहे येइ नहे लोक वेद ॥२४॥
सभेइ हासेन शुनि शिशुर बचन । सभे बोले 'दिब बाप ! सम्बर क्रन्दन' ॥२५॥
परम-बैष्णव सेइ विप्र दुइ जन । जगन्नाथ-मिश्र-सहे अभेद-जीवन ॥२६॥

---

विश्वम्भरचन्द्र चुप नहीं होते हैं और लगातार 'ला दो-ला दो' ही कहते जाते हैं ॥ १२ ॥ प्रभु को चुप कराने का केवल एक ही परम उपाय है (वह है श्री हरिनाम कीर्त्तन)—प्रभु श्रीहरिनाम सुनने पर नहीं रोते हैं ॥१३॥ जिस समय सब लोग हाथों से ताली बजा बजा कर 'हरि-हरि' बोलने लगते हैं, उस समय प्रभु अपने को भूलकर बिलकुल चुप पड़ जाते हैं ॥ १४ ॥ बालक पर अत्यन्त प्रीति होने के कारण, उसको प्रसन्न करने के लिये सब स्त्री-पुरुष निरन्तर श्री हरिनाम बोलते हैं। इसलिये श्री जगन्नाथ मिश्र का घर श्रीवैकुण्ठधाम बन गया है ॥ १५ ॥ एक दिन प्रभु के मचल जाने पर सब लोग निरन्तर 'हरि-हरि' बोल रहे हैं, परन्तु तो भी प्रभु चुप नहीं होते; बारम्बार रोते ही रह जाते हैं ॥ १६ ॥ सब लोग कहते हैं कि—"अरे बेटा निमाई ! सुनो। यह देखो हम लोग श्री हरिनाम गाते हैं; तुम अपना अच्छा सा नाच तो दिखाओ" ॥ १७ ॥ [ परन्तु ] प्रभु किसी की बात नहीं सुनते हैं, रो ही रहे हैं, अब सब पूँछने लगे बेटा निमाई तुम किस लिये रोते हो ?" ॥ १८ ॥ सब लोग कहते हैं—"बतलाओ बेटा ! तुम्हारी क्या इच्छा है ? हम वही वस्तु तुम्हें लाकर देंगे। बस, अब मत रोओ" ॥१९॥ प्रभु ने कहा—"यदि तुम सब मेरी प्राण-रक्षा चाहते हो, तो शीघ्र ही दो ब्राह्मणों के घर जाओ—एक श्री जगदीश पण्डित तथा दूसरे श्री हिरण्य पण्डित—ये दोनों ही परम भागवत हैं। इन दोनों के स्थान में मेरा प्रयोजन है, आज उन दोनों का एकादशी उपवास है। उन्होंने श्रीविष्णु के भोग के लिये जो-जो द्रव्य बनाये हैं, वह सब नैवेद्य यदि खाने को मिले, तो मैं प्रसन्न होकर आनन्द से विचरण करूँगा" ॥ २०-२३ ॥ इस असम्भव बात को सुनकर माताजी खेद प्रकाश करती हैं; वे मन में सोचती है, कि—यह तो ऐसी बात कहता है, जो कि लोक में तथा वेद में कहीं भी नहीं है (अथवा जोकि लोक में कोई भी नहीं जानते हैं ) ॥ २४ ॥ बालक की बात सुनकर सभी हँसने लगे और कहने लगे—"बेटा विश्वम्भर तुम जो चाहते हो सोई ला देंगे, तुम रोना बन्द करो" २५ वे दोनों ब्राह्मण ( जगदीश एवं हिरण्य पण्डित )

जे प्रभुरे सर्व्व वेदे पुराणे बाखाने । हेन प्रभु खेले शचीदेवीर अङ्गने ॥४१॥
डुबिला चाञ्चल्य-रसे प्रभु विश्वम्भर । संहति चपल यत विप्र अनुचर ॥४२॥
सभार सहित गिया पड़े नाना-स्थाने । धरिया राखिते नाहि पारे कोन जने ॥४३॥
अन्य शिशु देखिले करये कुतूहल । सेहो परिहास करे बाजये कोन्दल ॥४४॥
प्रभुर बालक सब जिने प्रभु-बले । अन्य शिशुगण यत सब हारि चले ॥४५॥
धूलाय धूसर प्रभु श्रीगौरसुन्दर । लिखन-कालिर बिन्दु शोभे मनोहर ॥४६॥
पढ़िया शुनिजा सर्व्व-शिशुगण-सङ्गे । गङ्गास्नाने मध्यान्हे चलेन बहु रङ्गे ॥४७॥
मज्जिया गङ्गाय बिश्वम्भर कुतूहली । शिशुगण-सङ्गे करे जल फेलाफेलि ॥४८॥
नदियार सम्पत्ति वा के बलिते पारे । असंख्यात लोक एको-घाटे स्नान करे ॥४९॥
कतेक वा शान्त दान्त गृहस्थ सन्यासी । ना जानि कतेक शिशु मिले तहि आसि ५०॥
सभारे लइया प्रभु गङ्गाय साँतारे । क्षणे डुबे क्षणे भासे नाना क्रीड़ा करे ॥५१॥
जल-क्रीड़ा करे गौर सुन्दर-शरीर । सभार गायेते' लागे चरणेर नीर ॥५२॥
सभे माना करे तभो माना नाहि माने । धरिते ओ केहो नाहि पारे एक-स्थाने ॥५३॥
पुनःपुन सभारे कराय प्रभु स्नान । कारे छुँये, कारो अङ्गे कुल्लोल प्रदान ॥५४॥
ना पाइया प्रभुर नागाली बिप्रगणे । सभे चलिलेन तार जनकेर स्थाने ॥५५॥

---

जिस प्रभु की महा महिमा को सर्व वेद एवं पुराण वर्णन करते हैं, वही प्रभु श्रीशचीदेवी के आँगन में खेल रहे हैं ॥ ४१ ॥ प्रभु श्रीविश्वम्भर चाञ्चल्य रस में डूब गये हैं, सब चञ्चल विप्र-बालक सहचर रूप से आपके सङ्ग में हैं ॥ ४२ ॥ सब को साथ लेकर धूलि में गिरते-पड़ते अनेक स्थानों में खेलते हैं; कोई भी उनको पकड़ कर रख नहीं पाता ॥ ४३ ॥ जब कहीं अन्य बालकों की टोली देखते हैं, तब आप उनसे कौतुक करने लगते हैं; वे हँसी करने लगते हैं । इस प्रकार दोनों ओर से लड़ाई होने लगती है ॥४४॥ प्रभु के साथी सब बालक प्रभु के बल से जीत जाते हैं और अन्य बालकवृन्द सब हारकर चले जाते हैं ॥ ४५ ॥ श्रीगौरसुन्दर प्रभु धूल-धूसरित हो रहे हैं, ऊपर से लिखने की काली (स्याही) के बिन्दु समूह मनोहर शोभा को प्राप्त होरहे हैं॥४६॥ पढ़-लिखकर सब शिशुओं के सङ्ग रास्ते में अनेक प्रकार के कौतुक करते हुए, मध्याह्न काल में श्री गङ्गा-स्नान को जाते हैं ॥ ४७ ॥ कौतुकी श्रीविश्वम्भर देव श्रीगङ्गाजी में स्नान करते समय बालकों के साथ फेंका-फेंकी का खेल करते हैं ॥४८॥ श्री नवद्वीप की सम्पत्ति का भी कौन वर्णन कर सकता है ? एक २ घाट पर असंख्य लोग स्नान करते हैं ॥४९॥ कितने ही शान्त, दान्त, गृहस्थ, संन्यासी और न जाने कितने बालक स्नान करने के लिये गङ्गा-घाट पर आ मिलते हैं ॥ ५० ॥ सब बालकों को साथ लेकर प्रभु श्रीगङ्गाजी में तैरते हैं; कभी आप डुबकी लगाते हैं, कभी ऊपर आ जाते हैं, इस प्रकार की अनेक क्रीड़ा करते हैं ॥ ५१ ॥ सुन्दर-शरीर वाले श्रीगौरसुन्दर जलक्रीड़ा करते हैं; आपके चरणों के जल सब के शरीरों पर जा-जाकर पड़ता है ॥ ५२ ॥ उस समय सब लोग आपसे मना करते हैं, पर आप उनके मना करने पर भी कुछ ध्यान नहीं देते । कोई आपको पकड़ कर भी एक जगह नहीं रख सकता है ५३ प्रभु आप किसी को छूकर किसी के ऊपर कुल्ला कर, एक बार स्नान किये हुए को [illegible] स्नान कराते हैं ५४ विप्रगण प्रभु को न पकड़ पाकर सब मिल

परम बान्धव तुमि मिश्र जगन्नाथ । नित्य एइ मत करे, कहिल तोमात ॥७०॥
दुइ प्रहरे ओ नाहि उठे जल हैते । देह वा ताहार भाल थाकिब केमते" ॥७१॥
हेन-काले पार्श्ववर्त्ती यतेक बालिका । कोप-मने आइलेन शचीदेवी यथा ॥७२॥
शची सम्बोधिया सभे बोलेन वचन । "शुन ठाकुराणि ! निज पुत्रेर करण ॥७३॥
बसन करये चुरि, बोले बड़ मन्द । उत्तर करिले जल देय, करे द्वन्द्व ॥७४॥
ब्रत करिबारे यत आनि फुल फल । छड़ाइया फेले बल करिया सकल ॥७५॥
स्नान करि उठिले बालुका देइ अंगे । यतेक चपल शिशु, सेइ तार संगे ॥७६॥
अलक्षिते आसि कर्णे बोले बड़ बोल" । केहो बोले 'मोर मुखे दिलेक कुल्लोल'॥७७॥
ओकड़ार फूल देय केशेर भितरे' । केहो बोले 'मोरे चाहे विभा करिबारे ॥७८॥
प्रति दिन एइ मत करे व्यवहार । तोमार निमाञि किबा राजार कुमार ? ॥७९॥
पूरबे शुनिला येन नन्देर कुमार । सेइ मत सब करे निमाञि तोमार ॥८०॥
दुःखे बाप-मायेरे बलिब येइ दिने । ततक्षणे कोन्दल हइब तोमा सने ॥८१॥
निवारण कर झट आपन छाओयाल । नदीयाय हेन कर्म कभू नहे भाल' ॥८२॥
शुनिया हासेन महाप्रभुर जननी । सभा कोले करिया कहेन प्रिय-वाणी ॥८३॥
'निमाञि आइले आजि एड़िमु बान्धिया । आर येन उपद्रव नाहि करे गिया' ॥८४॥

---

हे जगन्नाथ मिश्र जी ! आप हमारे परम बान्धव हो; हम आपसे कह चुके आपका बालक नित्यप्रति इसी प्रकार का व्यवहार करता है ॥ ७० ॥ दो-दो प्रहर हो जाते हैं, पर वह जल से बाहर नहीं आता है, बतलाओ ! फिर उसका शरीर किस प्रकार ठीक रहेगा ?' ॥ ७१ ॥ इसी समय पड़ौस की सब बालिकायें मन में क्रोधित होकर श्रीशचीदेवी के पास आ पहुँची हैं ॥ ७२ ॥ वे सब श्री शचीदेवी को सम्बोधन करके कहती हैं कि—'हे ठकुरानी जी ! आप अपने पुत्र की करतूत सुनिये ॥ ७३ ॥ वह हमारे वस्त्र चुरा लेता है और हमसे बहुत बुरे शब्द कहता है । जब कुछ उत्तर देती हैं, तो हमारे ऊपर जल फेंकता है और लड़ता है ॥ ७४ ॥ हम व्रत करने के लिये जो फल-फूल ले जाती हैं, तुम्हारा पुत्र जबर्दस्ती से फेंक देता है ॥ ७५ ॥ जब हम स्नान करके आती हैं, तो वह हमारे शरीर पर बालू फेंकता है । जितने चञ्चल बालक हैं, वे सब उसके साथी हैं ॥ ७६ ॥ कभी छुपे-छुपे आकर कान में चिल्ला के कुछ कहता है ।' कोई कहती हैं कि—'आज वह मेरे मुँह पर कुल्ला कर गया ॥ ७७ ॥ हम सब के बालों में चिरचिटा के फल चिपटाय देता है' और कोई कहती हैं—'मेरे साथ विवाह करने को चाहता है ॥ ७८ ॥ वह प्रतिदिन इसी प्रकार के व्यवहार करता है, क्या आपका निमाई कोई राजा का कुँवर है ? ॥ ७९ ॥ पूर्वकाल में जैसे नन्द-नन्दन के व्यवहार जिस प्रकार सुने थे, तुम्हारा निमाई भी उसी प्रकार के सब व्यवहार करता है ॥ ८० ॥ तब दुःखी होकर जिस दिन हम अपने माँ-बाप से कह देंगी, उसी दिन तुम्हारे साथ झगड़ा खड़ा हो जावेगा ॥ ८१ ॥ आप शीघ्र ही अपने बालक को ऐसे कर्म करने से रोक लीजिये; इस नवद्वीप में ऐसा कर्म कभी भी अच्छा नहीं है' ॥ ८२ ॥ सुन कर श्री महाप्रभु की माताजी हँस पड़ती हैं और सबको गोदी में ले लेकर प्रिय वाणी से कहती हैं ॥ ८३ ॥ [ आप कहती हैं प्यारी बेटियो ! ] 'आज निमाई के घर आने पर मैं उसे बाँध कर छोड़ूँगी जिससे कि वह फिर कभी जाकर

चारि-दिगे चाहे मिश्र हाथे बाड़ि लैया । तर्ज्ज गर्ज्ज करे बड़ लाग ना पाइया ॥१००॥
कौतुके याहारा निवेदन कैल गिया । सेइ सब विप्र पुन बोलये आसिया ॥१०१॥
"भय पाइ विश्वम्भरु पलाइया घरे । घरे चल तुमि, किछु बोल पाछे तारे ॥१०२॥
आर-बार यदि आसि चपलता करे । आमराइ धरि दिब तोमार गोचरे ॥१०३॥
कौतुके से कथा कहिलाङ् तोमा' स्थाने । तोमा बहि भाग्यवान नाहि त्रिभुवने ॥१०४॥
से-हेन नन्दन यार गृह- माझे थाके । कि करिबे क्षुधा तृष्णा भोख रोग शोके ॥१०५॥
तुमि से सेविला सत्य प्रभुर चरण । तार महाभाग्य यार ए हेन नन्दन ॥१०६॥
कोटि अपराध यदि विश्वम्भर करे । तभु तारे थुइबाङ् हृदय-उपरे' ॥१०७॥
जन्मे जन्मे कृष्ण-भक्त एइ सब जन । ए सब उत्तम-बुद्धि इहार कारण ॥१०८॥
अतएव प्रभु निज सेवक सहिते । नाना-क्रीड़ा करे केहो ना पारे बुझिते ॥१०९॥
मिश्र बोले 'सेहो पुत्र तोमरा- सभार । यदि अपराध लह शपथ आमार' ॥११०॥
ता सभार संगे मिश्र करि कोलाकुलि । गृहे चलिलेन मिश्र हइ कुतूहली ॥१११॥
आर पथे घरे गेला प्रभु विश्वम्भर । हाथेते मोहन पुँथि येन शशधर ॥११२॥
लिखन-कालिर बिन्दु शोभे गौर अंगे । चम्पके लागिल येन चारिदिगे भृंगे ॥११३॥
'जननि !' वलिया प्रभु लागिला डाकिते । 'तैल देह' मोरे याङ् सिनान करिते ॥११४॥

---

वह तो यह सुनकर उसी रास्ते से घर चला गया, यह देखिये ! हम सब भी उसी की ही अपेक्षा में हैं ॥९९॥ श्री जगन्नाथ मिश्र जी हाथ में छड़ी लेकर चारों ओर दृष्टि डालते हैं;तथा उनका पता न पाकर बहुत तर्ज्जन-गर्ज्जन करने लगे ॥ १०० ॥ पहले जिन विप्रों ने विनोदार्थ श्रीमिश्र जी से जाकर प्रभु के अन्याय निवेदन किये थे, वही सब ब्राह्मण फिर आकर कहने लगे कि ॥ १०१ ॥ 'मिश्र जी ! विश्वम्भर तुम्हारे डर के मारे घर को भाग गया है; आप घर जाओ—उससे कुछ कहना नहीं ॥ १०२ ॥ अब दूसरे बार यदि वह चञ्चलता करेगा, तो हम ही पकड़ कर, तुम्हारे सामने उसे कर देंगे ॥१०३॥ हमने तो कौतुक से ही यह सब बात तुमसे कहीं थी, वास्तव में तो आपके सिवाय त्रिभुवन में कोई भाग्यवान् नहीं है ॥ १०४ ॥ उस जैसा पुत्र जिसके घर में हो, उसको भूख-प्यास, बुभुक्षा एवं रोग-शोक क्या कर सकते हैं ॥ १०५ ॥ सचमुच आपने ही प्रभु के श्री चरणों की सेवा की है; जिसका ऐसा पुत्र है, उसका महान् सौभाग्य है ॥ १०६ ॥ विश्वम्भर यदि कोटि अपराध भी करे, तो भी हम लोग हृदय पर धारण करेंगे अर्थात् हृदय से लगा रखेंगे ॥१०७॥ यह सब लोग जन्म-जन्मान्तर के श्रीकृष्ण-भक्त हैं; इसी कारण से ये सब ऐसी उत्तम बुद्धि वाले हैं ॥ १०८ ॥ अतएव प्रभु अपने निज सेवकों के साथ नाना प्रकार की क्रीड़ा करते हैं । परन्तु कोई भी समझ नहीं पाता है ॥ १०९ ॥ श्री मिश्र जी उनसे कहते हैं कि—'वह भी तुम सबका ही पुत्र है; यदि तुम सब उसका कुछ अपराध मानो, तो तुम्हें मेरी शपथ है' ॥ ११० ॥ फिर मिश्र जी उन सबको आलिङ्गन करके आनन्दित होते हुए घर चले गये ॥ १११ ॥ इधर एक दूसरे रास्ते से श्री विश्वम्भर प्रभु गङ्गा-तीर से घर आ गये; हाथ में सुन्दर पोथी लिये हुए हैं; मानों चन्द्र प्रकाशित हुआ हो । आपके गौर श्रीअङ्ग में लिखने की स्याही के बिन्दु ऐसे शोभित हो रहे हैं मानों चम्पा के फूल के चारों ओर भौंरे लगे हैं ॥ ११२-११३ ॥ प्रभु श्री विश्वम्भर घर आकर 'मैया ! मैया ' पुकारने लगे और कहने लगे कि 'मैया मुझे तेल दो, मैं स्नान करने जाऊँगा श्रीशचीदेवी

ये ये कहिलेन कथा सेहो मिथ्या नहे। तवे केने स्नान-चिन्ह किछु नाहि देहे ॥१३०॥
सेइ मत अङ्गे धूला, सेइ मत वेश। सेइ पुँथि, सेइ वस्त्र, सेइ मत केश ॥१३१॥
ए वुझि मनुष्य नहे श्री विश्वम्भर। माया-रूपे कृष्ण वा जन्मिला मोर घर ॥१३२॥
कोन महा-पुरुष वा किछुइ ना जानि। हेन मते चिन्तिते आइला द्विजमणि ॥१३३॥
पुत्र दरशनानन्दे घुचिल विचार। स्नेह-पूर्ण हैल दोँहे किछु नाहि आर ॥१३४॥
येइ दुइ प्रहर प्रभु याय पढ़िवारे। सेइ दुइ युग हइ थाके से दोंहारे ॥१३५॥
कोटि-रूपे कोटि मुखे वेदे यदि कहे। तभो ए दोँहार भाग्य नाहि समुच्चये ॥१३६॥
शची-जगन्नाथ-पाये' वहु नमस्कार। अनन्त-ब्रह्माण्डनाथ पुत्र रूपे याँर ॥१३७॥
एइ मत क्रीड़ा करे वैकुण्ठेर राय। वुझिते ना पारे केहो ताहार मायाय ॥१३८॥
श्री कृष्ण चैतन्य नित्यानन्दचाँद जान। वृन्दावन दास तछु पदयुगे गान ॥१३९॥

इति श्रीआदिखण्डे शैशवक्रीड़ावर्णनं नाम
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

## पञ्चम अध्याय

जय जय महा-महेश्वर गौरचन्द्र। जय जय विश्वम्भर, प्रिय भक्तवृन्द ॥१॥
जय जगन्नाथ-शचीपुत्र सर्व्व-प्राण। कृपादृष्ट्ये कर प्रभु सर्व्व-जीवे त्राण ॥२॥

---

श्रीशचीदेवी मन ही मन विचार कर रहे हैं कि-॥ १२९ ॥ 'जिस-जिसने जो-जो बातें कही हैं, वह भी झूँठी नहीं है; तब बालक के शरीर पर स्नान का कोई भी चिह्न क्यों नहीं है ? ॥ १३० ॥ पहिले जैसा ही शरीर धूल धूसरित है, वैसा ही वेश है, वैसे वही पोथी है, वही वस्त्र पहिने हुए हैं और वैसे ही केश हैं ॥ १३१ ॥ ऐसा विदित होता है कि श्री विश्वम्भर मनुष्य नहीं है, किंवा श्रीकृष्ण ही माया से ( गुप्तरूप से, रूप छिपाकर ) हमारे घर में अवतीर्ण हुए हैं अथवा यह कोई अन्य महापुरुष हैं, कुछ समझ में नहीं आता" इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि द्विजमणि श्रीगौरचन्द्र आ पहुँचे ॥ १३२-१३३ ॥ पुत्र दर्शन के आनन्द से उन दोनों की विचार-धारा टूट गई, वे दोनों स्नेह में डूब गये और कुछ नहीं रहा ॥ १३४ ॥ जिन दो प्रहरों के लिये प्रभु पढ़ने को चले जाते हैं, वे दोनों प्रहर दोनों के लिये दो युग की भाँति बीतते हैं ॥ १३५ ॥ वेद भी यदि करोड़ों प्रकार से, करोड़ों मुखों से, इन दोनों का ( श्रीशचीदेवी एवं श्री मिश्रचन्द्र का ) सौभाग्य वर्णन करें, तो भी उनके भाग्य की प्रशंसा सम्पूर्ण रूप से वर्णन नहीं कर सकते हैं ॥ १३६ ॥ मैं श्रीशचीदेवी एवं श्रीजगन्नाथ मिश्र दोनों के चरणों में अनेक नमस्कार करता हूँ। जिनके यहाँ असंख्य ब्रह्माण्डों के स्वामी पुत्र रूप में विराजमान हैं ॥ १३७ ॥ श्रीवैकुण्ठनाथ इस प्रकार की क्रीड़ा कर रहे हैं; आपकी माया के प्रभाव से कोई कुछ समझ नहीं सकता ॥ १३८ ॥ श्रीवृन्दावनदासजी, श्रीकृष्णचैतन्य एवं श्रीनित्यानन्द प्रभु को ( समझ कर ) जानकर उनके युगल चरणों की महिमा कुछ गा रहे हैं। दूसरे अर्थ—श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु तथा श्रीनित्यानन्दचन्द्र प्रभु जिनके प्राण हैं वह श्रीवृन्दावनदासजी उन दोनों के युगलचरणों का (यश) गान करते हैं ॥१३९॥

महामहेश्वर श्रीगौरचन्द्र की जय हो, जय हो श्री विश्वम्भर प्रभु के प्रिय भक्तवृन्द की जय हो जय

आर्य्या-तर्ज्जा पढ़े सब वैष्णव देखिया। 'यति, सती, तपस्वीओ याइब मरिया ॥१८॥
तारे बलि सुकृति, ये दोला घोड़ा चढ़े। दश बिश जन जार आगे पाछे नड़े ॥१९॥
एते ये गोसाञि भावे करह क्रन्दन। तबु त दारिद्य दुःख ना हय खण्डन ॥२०॥
घन घन 'हरि-हरि' बलि छाड़ डाक। क्रुद्ध हय गोसाञि शुनिले बड़ डाक ॥२१॥
एइ मत बोले कृष्ण-भक्ति-शून्य जने। शुनि महादुःख पाय भागवत गणे ॥२२॥
कोथाओ ना शुने केहो कृष्णेर कीर्त्तन। दग्ध देखे सकल संसार अनुक्षण ॥२३॥
दुःख बड़ पाय विश्वरूप भगवान। ना शुने अभीष्ट कृष्ण चन्द्रेर आख्यान ॥२४॥
गीता भागवत ये ये जने वा पढ़ाय। कृष्णभक्ति व्याख्या कारो ना आइसे जिह्वाय ॥२५॥
कुतर्क घुषिया सब-अध्यापक मरे। 'भक्ति' हेन नाम नाहि जानये संसारे ॥२६॥
अद्वैत-आचार्य्य-आदि यत भक्तगण। जीवेर कुमति देखि करये क्रन्दन ॥२७॥
दुःखे विश्वरूप प्रभु मने मने गणे। 'ना देखिब लोक मुख चलिबाङ बने' ॥२८॥
उषःकाले विश्वरूप करि गङ्गास्नान। अद्वैत-सभाय आसि हय उपस्थान ॥२९॥
सर्व्व-शास्त्रे बाखानेन कृष्ण-भक्ति सार। शुनिञा अद्वैत सुखे करेन हुङ्कार ॥३०॥
पूजा छाड़ि विश्वरूपे धरि करे कोले। आनन्दे वैष्णव सब 'हरि हरि' बोले ॥३१॥
कृष्णानन्दे भक्तगण करे सिंहनाद। कारो चित्ते आर नाहि स्फुरये विषाद ॥३२॥

---

पुत्र के मिथ्या रस में मतवाला हो रहा है, वैष्णव मात्र को देखते ही सभी उपहास करने लगते हैं ॥ १७ ॥ वे सब वैष्णव को देखकर श्लेष से भरी हुई पहेलियाँ पाठ करने लगते हैं और कहते हैं कि—'संन्यासी, सती, तपस्वी सभी तो एक दिन मरेंगे ॥ १८ ॥ पुण्यात्मा तो वह कहलाता है, जो पालकी में बैठकर अथवा घोड़े पर चढ़कर चलता है और दस, बीस मनुष्य उसके आगे-पीछे भगे चलते हैं ॥ १९ ॥ ये 'गोस्वामी' गण इतना तो क्रन्दन की ( रोने की ) भावना अभिव्यक्त करते हैं, परन्तु तो भी उन लोगों का दारिद्र्य-दुःख का नाश नहीं होता ॥ २० ॥ तुम जो बार-बार 'हरि-हरि' बोलकर चिल्लाते हो, ऐसे चिल्लाने से प्रभु क्रुद्ध हो जाते हैं ॥ २१ ॥ श्रीकृष्ण-भक्ति के शून्य-जन इसी प्रकार अनेक बातें कहते हैं,जिनको भव्य जन सुनकर महा दुःख पाते हैं ॥ २२ ॥ कहीं भी कोई श्रीकृष्ण कीर्त्तन होते हुए नहीं सुनता; वह सारे संसार को निरन्तर घोर बहिर्मुखता रूपी अनल में जलता हुआ देखते हैं ॥ २३ ॥ श्री विश्वरूप भगवान् अपने अभीष्ट श्रीकृष्ण-कथा नहीं सुनते हैं तो बड़े दुःखी होते हैं ॥ २४ ॥ जो-जो मनुष्य श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीमद्भागवत पाठ करते हैं उनमें से भी, किसी की जिह्वा पर, श्रीकृष्ण-भक्ति की व्याख्या नहीं आती है ॥ २५ ॥ सब अध्यापक केवल कुतर्क करके मर रहे हैं; संसार भक्ति का नाम भी नहीं जानता ॥ २६ ॥ श्री अद्वैताचार्य आदि जितने भक्त-वृन्द हैं, वे जीव की कुमति देखकर दुखी होते हैं ॥ २७ ॥ श्री विश्वरूप-प्रभु दुखी होकर मन ही मन विचार करते हैं कि—'मैं मनुष्यों का मुख नहीं देखूँगा। बन को चला जाऊँगा' ॥ २८ ॥ श्री विश्वरूपप्रभु ऊषाकाल में गङ्गा-स्नान करके, श्री अद्वैताचार्यजी की सभा में आकर उपस्थित होते हैं ॥ २९ ॥ आप सर्व शास्त्रों से यही व्याख्या करते हैं कि—श्रीकृष्ण-भक्ति ही सार है, इसे सुनकर श्रीअद्वैताचार्यजी आनन्द से हुङ्कार करते हैं ॥ ३० ॥ आप पूजा करना छोड़कर श्रीविश्वरूप प्रभु को उठाकर गोदी में लेते हैं; तथा सब वैष्णववृन्द

जन्म हैते प्रभुरे सकल गोपीगणे । निज पुत्र हइतेओ करेन स्नेह मने ॥४८॥
यद्यपि ईश्वर-बुद्धये ना जाने कृष्णेरे । स्वभावेइ पुत्र हैते बड़ स्नेह करे ॥४९॥
शुनिञा विस्मित बड़ राजा परीक्षित । शुक स्थाने जिज्ञासेन हय पुलकित ॥५०॥
'परम अद्भुत कथा कहिला गोसाञि । त्रिभुवने एमत कोथाओ शुनि नाञि ॥५१॥
निज पुत्र हैते पर-तनय-कृष्णेरे । कह देखि स्नेह हैल केमन प्रकारे' ? ॥५२॥
श्री शुक कहेन शुन राजा परीक्षित ! परमात्मा सर्व्व-देहे बल्लभ विदित ॥५३॥
आत्मा बिने पुत्र वा कलत्र बन्धु गण । गृह हैते बाहिर करये ततक्षण ॥५४॥
अतएव परमात्मा सभार जीवन । सेइ परमात्मा-एइ श्री नन्द-नन्दन ॥५५॥
अतएव परमात्मा-स्वभाव-कारणे । कृष्णेते अधिक स्नेह करे गोपीगणे ॥५६॥
एहो कथा भक्ति प्रति, अन्य प्रति नहें । अन्यथा जगते केहो, स्नेह ना करये ॥५७॥
'कंसादिरो आत्मा कृष्ण तबे हिंसे केने' ? पूर्व्व-अपराध आछे ताहार कारणे ॥५८॥
सहजे शर्करा मिष्ट सर्व्व जने जाने । केहो तिक्त वासे, जिह्वा-दोषेर कारणे ॥५९॥

---

इन्हीं श्रीगौरचन्द्र ने जब द्वापर युग में गोकुल में अवतार लिया था, तो यह ग्वाल-बालों के साथ घर-घर में क्रीड़ा करते हुए विचरते थे ॥ ४७ ॥ श्रीकृष्ण के जन्म से ही सब गोपिकायें उनके प्रति अपने मन में निज पुत्र से भी अधिक स्नेह करती थीं ॥ ४८ ॥ यद्यपि वे श्री कृष्ण को ईश्वर करके नहीं जानती थीं; तथापि स्वभाव से ही अपने पुत्र से भी अधिक स्नेह करती थीं ॥ ४९ ॥ इस बात को सुनकर श्री परीक्षित् महाराज बड़े विस्मित हुए; और पुलकित होकर श्रीशुकदेवजी से पूँछने लगे ॥ ५० ॥ "हे प्रभो ! यह तो आपने परम अनोखी बात कही है; मैंने तो इस प्रकार की बात त्रिभुवन में कहीं भी नहीं सुनी ॥ ५१ ॥ गोपियों के अपने पुत्र से भी अधिक स्नेह पर-पुत्र श्रीकृष्ण के प्रति किस प्रकार से हुआ ? वह कृपा करके कहिये" ॥ ५२ ॥ श्रीशुकदेवजी उत्तर देते हैं कि—"हे राजा परीक्षित् सुनिये, यह बात प्रसिद्ध है कि परमात्मा ही सब देहों का स्वामी है ॥ ५३ ॥ बिना आत्मा के शरीर को ( मृतक समझकर ) स्त्री, पुत्र एवं बन्धुगण तत्क्षण ही घर से बाहर कर देते हैं ॥ ५४ ॥ [ जीवात्मा परमात्मा का अंश होने के कारण वास्तविक प्रियता परमात्मा में ही अधिष्ठित है ] अतएव परमात्मा ही सबका जीवन है और वही परमात्मा यह श्रीनन्द-नन्दन हैं ॥ ५५ ॥ इसीलिये श्रीकृष्णचन्द्र में परमात्मा के स्वभाविक गुण होने के कारण गोपिकायें श्रीकृष्ण को अपने पुत्र से भी अधिक स्नेह करती हैं" ॥ ५६ ॥ [ यद्यपि परमात्मा श्री भगवान् से समधिक स्नेह करना जीव का स्वाभाविक धर्म है; तथापि केवल भक्तगण ही परमात्मा को, स्त्री-पुत्र आदि आत्मीय जन एवं अपने प्राण से भी अधिकतर प्रीति करते हैं, परन्तु जीव-साधारण-सम्बन्ध में यह बात नहीं है । यदि ऐसी होती तो सब संसार स्त्री, पुत्र, आत्मीय, स्वजनादि से ममता शून्य हो जाते ] अब यहाँ पर श्रीग्रन्थकार इसी सिद्धान्त को प्रकाश करते हैं कि—"यह बात भक्तों के सम्बन्ध में है; औरों के सम्बन्ध में नहीं । यदि औरों के सम्बन्ध में यही बात होती तो फिर संसार में किसी प्रकार का स्नेह व्यौहार नहीं होता" ॥ ५७ ॥ [ अब यहाँ प्रश्न उठता है कि यदि परमात्मा ही सबके प्रिय हैं तो ] कंस आदिक असुरों में भी तो परमात्मारूपी श्रीकृष्ण ही थे, फिर उन्होंने श्रीकृष्ण के प्रति हिंसा क्यों की ? इसका उत्तर देते हैं कि—पूर्व जन्म के अपराध के कारण उन्होंने हिंसा की ॥ ५८ ॥ और जैसे कि सब लोग जानते हैं कि—शर्करा ( मिश्री-सार ) स्वाभाविक ही मीठी होती

जिह्वार से दोष, शर्करार दोष नाञि । एइ मत सर्व सिद्ध चैतन्य गोसाञि ॥६०॥
एइ नवद्वीपे ते देखिल सर्व जने । तथापिह केहो ना जानिल भक्त बिने ॥६१॥
भक्तेर से चित्त प्रभु हरे सर्वथाय । विहरये नवद्वीपे वैकुण्ठेर राय ॥६२॥
मोहिया सभार चित्त प्रभु विश्वम्भर । अग्रज लैया चलिलेन निज घर ॥६३॥
मने मने चिन्तये अद्वैत महाशय । "प्राकृत मानुष कभु ए बालक नय" ॥६४॥
सर्व वैष्णवेर प्रति बलिला अद्वैते । कोनो वस्तु ए बालक जानिह निश्चिते ॥६५॥
प्रशंसिते लागिलेन सर्व भक्त-गण । अपूर्व शिशुर रूप लावण्य कथन ॥६६॥
नाम मात्र विश्वरूप चलिलेन घरे । पुन सेइ आइलेन अद्वैत मन्दिरे ॥६७॥
ना भाय संसार सुख विश्वरूप मने । निरवधि थाके कृष्ण-आनन्द-कीर्तने ॥६८॥
गृहे आइलेओ गृह व्यभार ना करे । निरवधि थाके विष्णु गृहेर भितरे ॥६९॥
विवाहेर उद्योग करये पिता माता । शुनि विश्वरूप बड़ मने पाय व्यथा ॥७०॥
'छाड़िब संसार' विश्वरूप मने भावे । चलिबाङ बने चिन्त्य एइ मने जागे ॥७१॥
ईश्वरेर चित्त वृत्ति ईश्वर से जाने । विश्वरूप संन्यास करिला कथो दिने ॥७२॥
जगते विदित नाम श्री शङ्करारण्य । चलिला अनन्त पथे वैष्णवाग्रगण्य ॥७३॥
चलिलेन यदि विश्वरूप महाशय । शची जगन्नाथेर दग्ध हइला हृदय ॥७४॥

---

है, परन्तु कोई उसको कटुक रूप में बोध करता है इसका क्या कारण है? इसका कारण है उसकी जिह्वा पर पित्त दोष है ॥ ५९ ॥ जिह्वा दूषित है, शर्करा का कोई दोष नहीं है इसी प्रकार श्रीचैतन्य-महाप्रभु भी सर्व सिद्ध हैं ॥ ६० ॥ इस नवद्वीप में ही सभी ने देखा श्रीशची के घर पर सब लोगों ने प्रभु को देखा है, परन्तु भक्तों के सिवाय अन्य किसी ने नहीं जाना ॥ ६१ ॥ वैकुण्ठनाथ प्रभु श्रीविश्वम्भर सर्व प्रकार से भक्त-वृन्द के मन को मोहित करके नवद्वीप में विचरते हैं ॥ ६२ ॥ वह श्रीविश्वम्भर प्रभु इन भक्तगण के चित्त को मोहित करके अपने बड़े भाई को लेकर अपने घर आते हैं ॥ ६३ ॥ इधर श्रीअद्वैताचार्य जी मन में विचार करते हैं कि—यह बालक प्राकृत (प्रकृति की वस्तुओं से गठित) मनुष्य कभी नहीं है ॥ ६४ ॥ तब श्री अद्वैताचार्य जी सर्व वैष्णवों के प्रति कहते हैं कि—इस बालक को निश्चय कोई (विशेष) वस्तु जानना ॥ ६५ ॥ तब सब भक्त-वृन्द भी बालक के अपूर्व रूप, लावण्य एवं बोली की प्रशंसा करने लगते हैं ॥ ६६ ॥ विश्वरूप-प्रभु नाम मात्र के लिये घर गये कि फिर श्रीअद्वैतप्रभु के घर आ जाते हैं ॥६७॥ श्रीविश्वरूप प्रभु को संसार-सुख अच्छा नहीं लगता है आप निरन्तर श्रीकृष्ण के आनन्दप्रद कीर्तन आदि में लगे रहते हैं ॥ ६८ ॥ घर आकर भी आप घर का काम-काज कुछ नहीं करते हैं, सब समय लगातार आप श्रीविष्णु-मन्दिर में रह जाते हैं ॥ ६९ ॥ आपके माता-पिता आपके विवाह की चेष्टा करते हैं, परन्तु आप अपने विवाह की बातें सुनकर मन में बड़ी व्यथा पाते हैं ॥ ७० ॥ आप मन में संसार छोड़ने का विचार करते हैं, नित्य प्रति आपके मन यही बात जगती है कि—मैं वन को जाऊँ ॥ ७१ ॥ ईश्वर की चित्त-वृत्ति को ईश्वर ही जानते हैं, कुछ दिन पश्चात् (इच्छा होने पर) श्रीविश्वरूप प्रभु संसार छोड़ देते हैं ॥ ७२ ॥ वैष्णवों में अग्रगण्य आप संसार को छोड़कर उस अनन्त(प्रभु सेवा)के पथमें चले जाते हैं अब आपका नाम जगत् प्रसिद्ध श्रीशङ्करारण्य

गोष्ठी सहे क्रन्दन करये उर्द्ध राय । भाइर विरहे मूर्च्छा गेला गौरराय ॥७५॥
से विरह वर्णिते वदने नाहि पारि । हइल क्रन्दनमय जगन्नाथपुरी ॥७६॥
विश्वरूप संन्यास देखिया भक्तगण । अद्वैतादि सभे बहु करिला क्रन्दन ॥७७॥
उत्तम मध्यम जे शुनिल नदीयाय । हेन नाहि, ये शुनिञा दुःख नाहि पाय ॥७८॥
जगन्नाथ शचीर विदीर्ण हय बुक । निरन्तर डाके 'विश्वरूप' 'विश्वरूप' ॥७९॥
पुत्र-शोके मिश्रचन्द्र हइला विह्वल । प्रबोधये यत बन्धु वान्धव सकल ॥८०॥
स्थिर हओ मिश्र ! केने दुःख भाव मने । सर्व्व गोष्ठी उद्धारिल सेइ महाजने ॥८१॥
गोष्ठीये पुरुष यार करये संन्यास । त्रिकोटि कुलेर हय श्रीवैकुण्ठे वास ॥८२॥
हेन कर्म्म करिलेन नन्दन तोमार । सफल हइल विद्या-सम्बन्ध ताहार ॥८३॥
आनन्द विशेष आरो करिते जुयाय । एत वलि सकले धरये हाथे पाय ॥८४॥
'एइ कुले भूषण तोमार विश्वम्भर । एइ पुत्र हइब तोमार वंशधर ॥८५॥
इहा हैते सर्व्व दुःख घुचिव तोमार । कोटि पुत्रे कि करिब, ए पुत्र याहार ॥८६॥
एइ मत सभे बुझायेन बन्धुगण । तथापि मिश्रेर दुःख ना हय खण्डन ॥८७॥
ये ते मते धैर्य्य करे मिश्र महाशय । विश्वरूप गुण स्मरि धैर्य पासरय ॥८८॥
मिश्र बोले 'एइ पुत्र रहिबेक घरे । इहाते प्रमाण मोर ना लय अन्तरे ॥८९॥

---

होता है॥७३॥जब श्रीविश्वरूप महाशय संन्यास लेकर चले गये हैं तबसे श्रीशचीदेवी एवं श्रीजगन्नाथ मिश्र के हृदय विरह से दग्ध हो गये ॥ ७४ ॥ वे दोनों स्वजन सहित ऊँचे स्वर से क्रन्दन करने लगे और प्रभु श्रीविश्वम्भरचन्द्र भी अपने भाई के विच्छेद से मूर्च्छित हो गये॥७५॥उस विरह का मुख से वर्णन नहीं हो सकता है, श्रीजगन्नाथ मिश्र की सम्पूर्ण नगरी क्रन्दनमय हो रही है ॥७६॥ श्रीअद्वैताचार्य आदि सब भक्तगणों ने श्रीविश्वरूप का संन्यास देखकर बहुत रोदन किया ॥७७॥ श्रीनवद्वीप में उत्तम,मध्यम श्रेणी के जिस किसी भी पुरुष-स्त्री ने श्रीविश्वरूप का संन्यास लेना सुना,उनमें कोई भी ऐसा नहीं था जो सुनकर दुःखी न हुआ हो॥७८॥ श्रीजगन्नाथमिश्र एवं श्रीशचीदेवी की छाती टुकड़े-टुकड़े होकर फटती थी। वे निरन्तर 'विश्वरूप ! विश्वरूप !' पुकार रहे थे ॥ ७९ ॥ जब मिश्रवरजी को पुत्र शोक में अधिक विह्वल होते हुए देखा तो आपके सब बन्धु-बान्धव आपको समझाने लगे कि—॥८०॥ हे मिश्रजी ! आप स्थिर हूजिये, मन में दुःख करने का कारण क्या है ? उस महापुरुष ने तो हमारी सम्पूर्ण गोष्ठी का उद्धार किया है ?॥८१॥जिस समुदाय (कुल)में से कोई पुरुष संन्यासी हो जाता है, उस गोष्ठी के तीन करोड़ कुलों का श्रीवैकुण्ठ में वास होता है ॥ ८२ ॥ आपके पुत्र ने भी ऐसा ही किया है, उसका विद्याध्ययन सफल हुआ ॥८३॥ ऐसे अवसर पर तो और आनन्द मनाना उचित है। इतना कहकर सब लोग श्रीजगन्नाथ मिश्र के हाथ और पाँव छूते हैं ॥८४॥ वे सब और कहने लगे कि—'तुम्हारा पुत्र विश्वम्भर इस कुल का भूषण है; यही पुत्र तुम्हारे वंश को चलाने वाला होगा। इसके रहते तुम्हारे सब दुःख नाश हो जायेंगे, जिसका ऐसा पुत्र है वह करोड़ों पुत्रों का क्या करेगा ॥ ८५-८६ ॥ सब बन्धुगणों ने इस प्रकार से समझाया परन्तु तो भी मिश्र जी का दुःख नाश नहीं होता है ॥ ८७ ॥ ज्यों-त्यों करके श्रीमिश्र महाशय धीरज धरते भी हैं परन्तु फिर श्रीविश्वरूप के गुण स्मरण होते ही धैर्य्य लोप हो जाता

दिलेन कृष्ण से पुत्र निलेन कृष्ण से । ये कृष्णचन्द्रेर इच्छा हइब सेइ से ॥९०॥
स्वतन्त्र जीवेर तिलार्द्धेको शक्ति नाञि । देहेन्द्रिय कृष्ण ! समर्पिलुँ तोमा ठाञि ॥९१॥
एइ रूपे ज्ञानयोगे मिश्र महा-धीर । अल्पे अल्पे चित्तवृत्ति करिलेन स्थिर ॥९२॥
हेन मते विश्वरूप हइला बाहिर । नित्यानन्द-स्वरूपेर अभेद शरीर ॥९३॥
ये शुनये विश्वरूप प्रभुर संन्यास । कृष्णभक्ति हय तार छिण्डे कर्म्म-फाँस ॥९४॥
विश्वरूप-संन्यास शुनिञा भक्तगण । हरिष-विषाद सभे करे अनुक्षण ॥९५॥
ये वा छिल स्थान कृष्ण-कथा कहिबार । ताहा कृष्ण हरिलेन आमा सभाकार ॥९६॥
आमराओ ना रहिब चलिजाब वने । ए पापिष्ठ-लोक-मुख ना देखि येखाने ॥९७॥
पाषण्डीर वाक्य ज्वाला सहिब 'वा' कत । निरन्तर असत्पथे सर्व्व लोक रत ॥९८॥
'कृष्ण' हेन नाम नाहि शुनि कारो मुखे । सकल संसार डुबि मरे मिथ्या सुखे ॥९९॥
बुझाइलेओ केहो कृष्ण-पथ नाहि लय । उलटिया आरो उपहास से करय ॥१००॥
कृष्ण भजि तोमार हइल कोन सुख ? । मागिया से खाओ, आरो बाड़े जत दुःख ॥१०१॥
जोग्य नहे एसब लोकेर सने वास । वने चलिबाङ बलि सभे छाड़े श्वास ॥१०२॥
प्रबोधेन सभारे अद्वैत महाशय । पाइबा परमानन्द सभेइ निश्चय ॥१०३॥
एवे बड़ वार्त्ताँ शुनि हृदये उल्लास । हेन बुझि 'कृष्णचन्द्र करिला प्रकाश' ॥१०४॥

---

है ॥ ८८ ॥ मिश्रजी कहते हैं कि—'यह पुत्र घर में रहेगा, इस विषय में प्रमाण का मेरा अन्तर ग्रहण नहीं करता ॥ ८९ ॥ श्रीकृष्ण ने यह पुत्र दिया था, श्रीकृष्ण ने ही उसे ले लिया । जो श्रीकृष्णचन्द्र की इच्छा है, वही होता है ॥ ९० ॥ जीव को तिलार्द्ध मात्र भी स्वतन्त्र शक्ति नहीं है । हे कृष्ण ! मैंने अपनी देह एवं सर्व इन्द्रियाँ आपको समर्पण कर दिये हैं' ॥ ९१ ॥ इस प्रकार ज्ञानयोग अवलम्बन कर महाधीर श्रीमिश्रजी ने धीरे-धीरे अपनी चित्त वृत्ति को स्थिर किया ॥ ९२ ॥ प्रभु श्रीनित्यानन्द-स्वरूप के अभेद शरीर, श्रीविश्वरूप प्रभु ने इस प्रकार संन्यास ले लिया ॥ ९३ ॥ जो कोई श्रीविश्वरूप प्रभु का संन्यास सुनता है, उसको श्रीकृष्ण भक्ति लाभ होती है और उसका कर्म-पाश छूट जाता है ॥ ९४ ॥ भक्तगण श्रीविश्वरूप का संन्यास सुनकर, निरन्तर हर्ष-विषाद दोनों का अवलम्बन कर रहे हैं ॥ ९५ ॥ [भक्तगण परस्पर कहते हैं कि] 'हम लोगों के कृष्ण-कथा कहने सुनने का जो एक आश्रय स्थान था, उसको श्रीकृष्ण ने हरण कर लिया । हम लोग भी यहाँ नहीं रहेंगे; वन को चले जायेंगे; जहाँ इन पापिष्ठ लोगों का मुख न देखना पड़े ॥ ९६-९७ ॥ पाखण्डियों की वाक्य-ज्वाला को अब और कितना सहन करेंगे ? ये सब लोग निरन्तर मिथ्या मार्ग में लगे हुए हैं ॥ ९८ ॥ [ भजन साधन की बात तो दूर रही ] इनमें से किसी के मुख से 'कृष्ण' ऐसा नाम भी सुनने में नहीं आता है । सब संसार मिथ्या सुख भोग में ही डूब कर मर रहा है ॥ ९९ ॥ समझाने से भी कोई कृष्ण-भजन-पथ ग्रहण नहीं करता; उल्टी और हँसी करते हैं कि—कृष्ण भजने से बतलाओ तुम्हें कौनसा सुख मिला; माँग कर खाते हो और आगे दुःख ही बढ़ता हुआ दिखलाई देता है' ॥ १००–१०१ ॥ इन सब लोगों के साथ रहना उचित नहीं 'वन में जायेंगे' । ऐसा कहकर सब भक्तवृन्द लम्बी साँसें ले रहे हैं ॥ १०२ ॥ श्रीअद्वैताचार्य महाशय सब भक्तवृन्द को समझाते हैं कि 'तुम सब लोग [ धीरज धारण करो ] निश्चय परमानन्द प्राप्त करोगे' ॥ १०३

सभे 'कृष्ण' गाओ गिया परम हरिषे । एथाइ देखिबा कृष्ण कथोक दिवसे ॥१०५॥
तोमा 'सभा' लइ इइब कृष्णेर विलास । तबे से अद्वैत हइ शुद्ध कृष्णदास ॥१०६॥
कदाचित याहा पाये शुक वा प्रह्लाद । 'तोमा सभार भृत्ये ओ से पाइब प्रसाद' ॥१०७॥
शुनि अद्वैतेरे अति-अमृत-वचन । परानन्दे 'हरि' बोले सर्व्व भक्तगण ॥१०८॥
'हरि' बलि भक्तगण करये हुङ्कार । सुखमय चित्तवृत्ति हइल सभार ।'१०६
शिशु-सङ्गे क्रीड़ा करे श्री गौरसुन्दर । हरि-ध्वनि शुनि याय बाड़ीर भितर ॥११०॥
'कि कार्य्य आइला बाप' ! बोले भक्तगणे । प्रभु बोले 'तोमरा डाकिले मोरे केने' ॥१११
एत बलि प्रभु शिशु-सङ्गे धाइ याय । तथापि ना जाने केहो प्रभुर मायाय ॥११२॥
ये अवधि विश्वरूप इहला बाहिर । तदवधि प्रभु किछु हइला सुस्थिर ॥११३॥
निरवधि थाके पिता मातार समीपे । दुःख पासरये येन जननी जनके ॥११४॥
खेला सम्बरिया प्रभु यत्न करि पढ़े । तिलार्द्धेको पुस्तक छाड़िया नाहि नड़े ॥११५॥
एक बार ये सूत्र पढ़िया प्रभु याय । आर-बार उलटिया सभारे ठेकाय ॥११६॥
देखिया अपूर्व्व बुद्धि सभेइ प्रशंसे । सभे बोले 'धन्य पिता-माता हेन वंशे' ॥११७॥
सन्तोषे कहेन सभे जगन्नाथ स्थाने । तुमित कृतार्थ मिश्र ! ए-हेन नन्दने ॥११८॥
एमत सुबुद्धि शिशु नाहि त्रिभुवने । बृहस्पति जिनिजा हइब अध्ययने ॥११९॥

---

इस समय में एक बड़ी प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ । ऐसा प्रतीत होता है कि—'श्रीकृष्ण ने [यहाँ ही कहीं] जन्म ले लिया है ॥ १०४ ॥ तुम सब परम हर्षयुक्त होकर 'श्रीकृष्ण-नाम' गान करते रहो । कुछ दिन पश्चात् यहाँ पर ही श्रीकृष्ण-दर्शन करोगे [ यह निश्चित है ] ॥ १०५ ॥ तुम सबको लेकर ही श्रीकृष्ण-विलास करेंगे [ जब ये सब बातें सत्य हो जायें ] तब मानना कि अद्वैत शुद्ध-कृष्ण-दास है ॥ १०६ ॥ जो कृपा श्रीशुकदेव जी ने एवं श्रीप्रह्लाद जी ने कदाचित् ही पाई हो; तुम्हारे सबके सेवक जन भी वह कृपा [ अनायास में ही ] प्राप्त करेंगे ॥ १०७ ॥ श्रीअद्वैताचार्य प्रभु के अति अमृतरूपी इस वचन को सुनकर सर्व भक्तगण परमानन्द सागर में डूबते हुए मङ्गल-हरि-ध्वनि करने लगे ॥ १०८ ॥ भक्तगण 'हरि-हरि' बोलकर हुङ्कार करने लगे, सब की चित्तवृत्ति सुखमय हो गई ॥ १०९ ॥ श्रीगौरसुन्दर बालकों के साथ खेल रहे थे; हरि-ध्वनि सुनकर श्री-अद्वैत प्रभु के घर के भीतर आ गये ॥ ११० ॥ आपको देखकर भक्तवृन्द बोले कि—"वत्स ! यहाँ पर कैसे आये" प्रभु बोले "तुम लोगों ने मुझे क्यों बुलाया ?" ॥ १११ ॥ इतना कहकर प्रभु बालकों के साथ भागकर चल दिये; तब भी कोई प्रभुमाया के कारण, उन्हें प्रभु करके नहीं जान पाया ॥ ११२ ॥ जब से श्रीविश्वरूप प्रभु घर छोड़कर गये, तब से श्रीप्रभु विश्वम्भरचन्द्र कुछ सुस्थिर हो गये ॥ ११३ ॥ निरन्तर श्रीमाता-पिता के निकट ही रहते हैं; जिससे वे सब दुःख भूल जाँय ॥ ११४ ॥ अब प्रभु खेल बन्द करके यत्नपूर्वक पढ़ने लगे किंचिन्मात्र समय भी पुस्तक छोड़कर कहीं नहीं जाते ॥ ११५ ॥ प्रभु एक बार जिस सूत्र को पढ़ लेते हैं, फिर उलट कर दुबारा उसकी व्याख्या करने में सबको निरुत्तर कर देते हैं ॥ ११६ ॥ उनकी ऐसी अपूर्व बुद्धि देख-कर सब लोग प्रशंसा करते हैं, और कहते हैं कि—"धन्य इनके पिता-माता और धन्य यह वंश जिसमें ऐसे पुत्र ने जन्म लिया है ॥ ११७ ॥ सब लोग प्रसन्न होकर श्रीजगन्नाथ मिश्र से कहते हैं कि 'मिश्रजी ऐसा

शुनि लय सर्व्व अर्थ आपने वाखाने । तान फाँकि वाखानिते नारे कोन जने ॥१२०॥
शुनिञा पुत्रेर गुण जननी हरिष । मिश्र पुन चित्ते बड़ हय विमरिष ॥१२१॥
शची प्रति बोले जगन्नाथ मिश्रवर । एहो पुत्र ना रहिब संसार-भितर ॥१२२॥
एइ मत विश्वरूप पड़ि सर्व्व शास्त्र । जानिल संसार सत्य नहे तिलमात्र ॥१२३॥
सर्व्व-शास्त्र-मर्म्म जानि विश्वरूप धीर । अनित्य संसार हैते हइला बाहिर ॥१२४॥
एहो यदि सर्व्व-शास्त्रे हैब ज्ञानवान । छाड़िबे संसार-सुख करिब पयान ॥१२५॥
एइ पुत्र सबे दुइ-जनेर जीवन । इहा ना देखिले दुइ-जनेर मरण ॥१२६॥
अतएव इहार पड़िया कार्य्य नाञि । मूर्ख हइ घरे मोर रहुक निमाञि ॥१२७॥
शची बोले 'मूर्ख हैले जीवेक केमने ? मूर्खेरे त कन्याओ ना दिब कोन जने' ॥१२८॥
मिश्र बोले 'तुमि त अबुध विप्रसुता ! हर्त्ता-कर्त्ता पिता कृष्ण सभार रक्षिता ॥१२९॥
जगत पोषण करे जगतेर नाथ । 'पाण्डित्ये पोषये' केबा कहिल तोमात ॥१३०॥
किबा मूर्ख, कि पण्डित, याहार येखाने । कन्या लिखियाछे कृष्ण, से हैब आपने ॥१३१॥
कुल-विद्या-आदि उपलक्षण सकल । सभारे पोषये कृष्ण, कृष्ण सर्व्व-बल ॥१३२॥
साक्षातेइ एइ केने ना देख आमात । पड़ियाओ आमार घरे केने नाहि भात ॥१३३॥
भालमते वर्ण उच्चारितेओ ये नारे । सहस्र पण्डित गिया देख तार द्वारे ॥१३४॥

---

पुत्र पाकर आप तो कृतार्थ हो। ऐसा सुबुद्धि बालक त्रिभुवन में नहीं है। यह बालक शिक्षा में श्रीबृहस्पतिजी का भी जीतने वाला होगा। एक बार सुनते ही सम्पूर्ण शब्दार्थ तथा भावार्थ की व्याख्या स्वयं ही कर देता है और इसकी फाँकी की व्याख्या कोई मनुष्य नहीं कर सकता है" ॥ ११८-१२० ॥ अपने पुत्र के गुण सुनकर जननी बहुत प्रसन्न होती हैं। किन्तु श्रीजगन्नाथ मिश्रजी बड़े खिन्न मन हो जाते हैं ॥ १२१ ॥ श्रीजगन्नाथ मिश्रवर श्रीशचीदेवी से कहते हैं कि—"यह पुत्र भी संसार में नहीं रहेगा। क्योंकि विश्वरूप ने भी इसी प्रकार सर्व्व शास्त्र पढ़कर जान लिया था कि—'संसार तिल मात्र भी सत्य नहीं है' ॥ १२२-१२३ ॥ यह धीर विश्वरूप सर्व शास्त्रों का मर्म जानकर यह अनित्य संसार से निकल गया [ इसी प्रकार ] यदि यह भी सम्पूर्ण शास्त्र का मर्मज्ञ हो जायगा तो संसार सुख को छोड़कर संन्यास धारण करके चल देगा ॥ १२४-१२५ ॥ यह पुत्र ही एक मात्र हम दोनों का जीवन है, इसको नहीं देखने से हम दोनों की मृत्यु अनिवार्य है। अतएव इसके पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं है, मेरा निमाई मूर्ख होकर ही घर में रहे" ॥ १२६-१२७ ॥ यह सुनकर श्रीशचीदेवी कहती हैं कि—"यह मूर्ख रहकर कैसे जीयेगा ? मूर्ख को तो कोई अपनी कन्या भी नहीं देगा" ॥ १२८ ॥ श्रीमिश्रचन्द्र कहते हैं कि—"हे विप्रसुते ! तुम तो अबोध हो। इस सृष्टि के हर्त्ता, कर्त्ता, एवं पिता श्रीकृष्ण सबकी रक्षा करने वाले हैं ॥ १२९ ॥ जगत् के नाथ श्रीकृष्ण जगत् का पालन करते हैं; यह तुमसे किसने कहा है कि—'जगत को पाण्डित्य ही पोषण करता है' ॥१३०॥ क्या मूर्ख और क्या पण्डित, जिसके लिये जहाँ से श्रीकृष्ण ने कन्या लिख रखी है, उसको वह आप ही मिल जायगी ॥ १३१ ॥ कुल, विद्या, आदि सब आनुषङ्गिक सम्मान की वस्तु हैं, वास्तव में श्रीकृष्ण सबका पोषण करते हैं और कृष्ण ही जगत् पोषण के लिये मूल बल [वस्तु] है। १३- प्रत्यक्ष यह हमको ही क्या न देखो, पढ़ लिखे होने पर भी हमारे

अतएव विद्या आदि ना करे पोषण । कृष्ण से सभारे करे पोषण पालन ॥१३५॥
'अनायासे मरण, जीवन दैन्य विने । कृष्ण सेबिले से हय, नहे विद्या धने ॥१३६॥
तथाहि:—"अनायासेन मरणं विना दैन्येन जीवनम् । अनाराधित-गोविन्द-चरणस्य कथं भवेत्" ॥१॥
कृष्ण कृपा विने नहे दुःखेर मोचन । थाकिल वा विद्या, कुल, कोटि कोटि धन ॥१३७
यार गृहे आछये सकल-उपभोग । तारे कृष्ण दियाछेन कोन एक रोग ॥१३८॥
किछु बिलसिते नारे, दुःखे पुड़ि मरे । यार नाहि, ताहा हैते दुःखी बलि तारे ॥१३९॥
एतेके जानिह, थाकिलेओ किछु नहे । यारे येन कृष्ण-आज्ञा, सेइ सत्य हये ॥१४०॥
एतेके ना कर चिन्ता पुत्र प्रति तुमि । 'कृष्ण पुषिबेन पुत्र' कहिलाङ आमि ॥१४१॥
यावत् शरीरे प्राण आछये आमार । तावत् तिलेक दुःख नाहिक उहार ॥१४२॥
आमार सभारे कृष्ण आछेन रक्षिता । किवा चिन्ता, तुमि यार माता पतिव्रता ॥१४३॥
'पढ़िया नाहिक कार्य' बलिल तोमारे । मूर्ख हइ पुत्र मोर रहु मात्र घरे ॥१४४॥
एत बलि पुत्रेरे डाकिला मिश्रवर । मिश्र बोले 'शुन बाप आमार उत्तर ॥१४५॥
आजि हैते आर पाठ नाहिक तोमार । इहाते अन्यथा कर, शपथ आमार ॥१४६॥
ये तोमार इच्छा बाप ! ताइ दिव आमि । गृहे वसि परम मङ्गले थाक तुमि' ॥१४७॥
एत बलि मिश्र चलिलेन कार्यान्तरे । पढ़िते ना पाय आर प्रभु विश्वम्भरे ॥१४८॥

---

घर में भात क्यों नहीं है ॥ १३३ ॥ जो कोई अच्छी प्रकार से वर्ण का शुद्ध उच्चारण भी नहीं कर सकता है उसके द्वार पर सहस्रों पण्डित जाकर देख लो ॥१३४॥ इससे प्रगट होता है कि कुल, विद्या आदि पालन नहीं करते, श्रीकृष्ण ही सबका पालन-पोषण करते हैं ॥ १३५ ॥ जिस व्यक्ति ने श्रीगोविन्द चरणारविन्द की आराधना नहीं की है उसकी सुखपूर्वक मृत्यु तथा जीवन सुखी कैसे हो सकता है' ॥ १ ॥ 'स्वच्छन्द मृत्यु और सुखमय जीवन श्रीकृष्ण की आराधना से ही होते हैं; विद्या एवं धन से नहीं ॥ १३६ ॥ श्रीकृष्ण कृपा के बिना दुःख की निवृत्ति नहीं होती, चाहे उत्तम कुल, विद्या और कोटि धन भी पास क्यों न हो ॥ १३७ ॥ देखो ! जिस किसी के घर में सर्व प्रकार की भोग सामिग्री बर्तमान हैं उसको श्रीकृष्ण ने कोई न कोई रोग दे रक्खा है ॥१३८॥ वह उसके कारण कुछ भोग नहीं कर सकता है । केवल दुःख की ज्वाला से जलकर मरता है । जिसके यहाँ कुछ भोग सामिग्री नहीं है उसकी अपेक्षा वह अधिक दुःखी कहलाता है ॥ १३९ ॥ इससे जानना चाहिये कि—धन आदि पास रहने से भी कुछ नहीं होता है । जिसके प्रति श्रीकृष्ण की जो आज्ञा होती है ( वास्तव में ) वही सत्य होती है । इसलिये तुम पुत्र के प्रति कोई चिन्ता मत करो; मैं तुमसे कहता हूँ कि—पुत्र का पालन-पोषण श्रीकृष्ण करेंगे ॥ १४०-१४१ ॥ जब तक हमारे शरीर में प्राण हैं, तब तक उसके लिये तिलमात्र भी दुःख नहीं ॥ १४२ ॥ हम सबकी रक्षा करने वाले श्रीकृष्ण हैं; जिस पुत्र की तुम जैसी पतिव्रता माता हो, उसके लिये फिर चिन्ता ही क्या है ? ॥ १४३ ॥ अतएव मैं तुमसे कहता हूँ कि—'उसके पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं हैं, बस ! मेरा पुत्र मूर्ख होकर ही केवल मात्र घर में रहा आवे ॥ १४४ ॥ इतना कहकर पुत्र श्रीविश्वम्भर को बुलाया और कहा कि—'हे वत्स ! मेरी एक बात सुनो ॥ १४५ ॥ आज से और तुम्हारा पढ़ना नहीं होगा । यदि तुम इसको अन्यथा करो तो तुमको मेरी शपथ है ॥ १४६ ॥ हे वत्स ! जिस वस्तु की तुम इच्छा करोगे वह मैं तुमको ला दूँगा, तुम परम मङ्गल से घर में ही बैठ रहो १४७

नित्य धर्म्म सनातन श्री गौराङ्ग-राय । ना लङ्घे जनक-वाक्य, पढ़िते ना याय ॥१४९॥
अन्तरे दुःखित प्रभु विद्यारस भङ्गे । पुन प्रभु उद्धत हइला शिशु-सङ्गे ॥१५०॥
किबा निज-गृहे प्रभु, किबा पर-घरे । याहा पाय, ताहा भाङ्गे, अपचय करे ॥१५१॥
निशा हइलेओ प्रभु ना आइसे घरे । सर्व्व-रात्रि-शिशु-सङ्गे नाना क्रीड़ा करे ॥१५२॥
कम्बले ढाकिया अङ्ग दुइ शिशु मेलि । वृष-प्राय हइया चलेन कुतूहली ॥१५३॥
यार बाड़ी कलावन देखि थाके दिने । रात्रि हैले वृष-रूपे भाङ्गये आपने ॥१५४॥
गरु ज्ञाने गृहस्थ करये 'हाय हाय' । जागिले गृहस्थ, शिशु-सङ्गे पलाय ॥१५५॥
कारो घरे द्वार दिया बान्धये बाहिरे । लघ्वी गुर्व्वी गृहस्थ करिते नाहि पारे ॥१५६॥
के बान्धिल दुयार करये 'हाय हाय' । जागिले गृहस्थ प्रभु उठिया पलाय ॥१५७॥
एइ मत दिनरात्रि त्रिदशेर राय । शिशुगण-सङ्गे क्रीड़ा करे सर्व्वदाय ॥१५८॥
यतेक चापल्य करे प्रभु विश्वम्भर । तथापिह मिश्र किछु ना करे उत्तर ॥१५९॥
एक दिन मिश्र चलिलेन कार्यान्तर । पढ़िते ना पाये प्रभु क्रोधित अन्तर ॥१६०॥
विष्णु-नैवेद्येर यत वर्ज्य-हाण्डीगण । वसिलेन प्रभु हाण्डी करिया आसन ॥१६१॥
ए बड़ निगूढ़ कथा शुन एक-मने । कृष्ण-भक्ति-सिद्धि हय इहार श्रवणे ॥१६२॥
वर्ज्य-हाण्डीगण सब करि सिंहासन । तथि वसि हासे गौर सुन्दर-वदन ॥१६३॥

---

इतना कहकर श्रीमिश्रजी दूसरे कार्य समाधान के लिये बाहर चले गये; श्रीविश्वम्भर प्रभु अब और पढ़ नहीं पाते हैं ॥ १४८ ॥ नित्य-धर्म सनातन-मूर्ति श्रीगौराङ्गराय पिताजी की आज्ञा का उल्लंघन भय से अब आप पढ़ने नहीं जाते ॥ १४९ ॥ विद्या-रस-भङ्ग होने के कारण प्रभु अन्तर में दुःखित हैं; अतएव वे बालकों के साथ मिलकर फिर उद्धत हो गये ॥ १५० ॥ क्या अपने घर और क्या दूसरों के, आप जो कुछ पाते हैं, उसे ही तोड़-फोड़ डालते हैं और नष्ट करते हैं ॥ १५१ ॥ रात्रि होने पर भी आप घर लौटकर नहीं आते, रात्रि भर बालकों के साथ अनेक प्रकार के खेल खेलते रहते हैं ॥ १५२ ॥ दो बालकों को एक साथ मिलाकर और (उनके) शरीर कम्बल से ढँककर बैल की तरह कौतुक वश आप चलते हैं ॥ १५३ ॥ दिन में जिसके घर में केले का बाग देख आते हैं, रात्रि होने पर वहाँ जाकर बैल बनकर सब तोड़-फोड़ डालते हैं ॥ १५४ ॥ घर के लोग गाय, बैल समझकर 'हाय-हाय' करते हैं। लोगों के जागने पर आप बालकों को साथ लेकर भाग जाते हैं ॥ १५५ ॥ किसी के घर के किवाड़ बन्द करके बाहर से लगा देते हैं, जिससे घर के लोग लघुशङ्का ( मूत्र त्याग ) एवं दीर्घशङ्का ( मल-त्याग ) भी नहीं करने पाते हैं ॥ १५६ ॥ तब वे भीतर से चिल्लाते हैं कि बाहर से किवाड़ किसने लगा दिया; प्रभु घर वालों के जगने पर भाग जाते हैं ॥ १५७ ॥ सर्व देवताओं के राजा श्रीविश्वम्भरचन्द्र प्रभु बालकों के साथ दिन रात इसी प्रकार की क्रीड़ा निरन्तर करते रहते हैं ॥ १५८ ॥ यद्यपि आप इतनी चाञ्चल्य प्रकाश कर रहे हैं, तथापि श्रीमिश्रजी आप से कुछ नहीं कहते हैं ॥ १५९ ॥ एक दिन जब कि श्रीजगन्नाथ मिश्र किसी कार्य वश बाहर चले गये, तब प्रभु पढ़ना छूट जाने के कारण मन में क्रोधित होकर श्रीठाकुरजी के भोग की रसोई करने के पश्चात् जो हँड़िया घूरे पर फेंक दी गई थीं, उन हँड़ियों **पर आसन लगाकर बैठ गये ॥ १६०-१६१ ॥ यह बड़ी निगूढ़ कथा है, इसका एकाग्र चित्त होकर सुनिये**

लागिल हाँड़ीर काली सर्व्व गौर अङ्गे । कनक पुतलि जेन लिखियाछे अङ्गे ॥१६४॥
शिशु गण जानाइल गिया शची स्थाने । निमाञि वसिया आछे हाँड़ीर आसने ॥१६५॥
माये आसि देखिया करेन हाय हाय । ए स्थानेते बाप वसिवारे ना जुयाय ॥१६६॥
वर्ज्य हाँड़ी इहा सब परशिले स्नान । एत दिने तोमार ए ना जन्मिल ज्ञान ? ॥१६७॥
प्रभु बोले तोरा मोरे ना दिस् पढ़िते । भद्राभद्र मूर्ख विप्रे जानिब केमते ॥१६८॥
मूर्ख आमि ना जानिये भाल मन्द स्थान । सर्वत्र आमार हय अद्वितीय ज्ञान ॥१६९॥
एत बलि हासे वर्ज्य हाँड़ीर आसने । दत्तात्रेय-भाव प्रभु हइला तखने ॥१७०॥
माये बोले तुमि जे बसिला मन्द-स्थाने । एबे तुमि पवित्र वा हइबा केमने ॥१७१॥
प्रभु बोले माता तुमि बड़ शिशु-मति । अपवित्र-स्थाने कभू मोर नहे स्थिति १७२॥
जथा मोर स्थिति सेइ सर्व्व पुण्यस्थान । गङ्गा आदि सर्व्व तीर्थ तहिँ अधिष्ठान ॥१७३॥
आमार से काल्पनिक शुचि वा अशुचि । स्रष्टार कि दोष आछे मने भाव बुझि ॥१७४॥
लोक-वेद मते जदि अशुद्ध वा हय । आमि परशिलेओ कि अशुद्धता रय ॥१७५॥
ए सब हाँड़ीते मूले नाहिक दूषण । तुमि जाते विष्णु लागि करिला रन्धन ॥१७६॥
विष्णुर रन्धन-स्थाली कभू दुष्ट नय । से हाँड़ी परशे आर स्थान शुद्ध हय ॥१७७॥

---

इसके श्रवण से कृष्ण-भक्ति सिद्धि होती है ।१६२। यह देखो परित्यक्त हाँड़ियों के सिंहासन पर बैठे हुए श्रीगौर-सुन्दर सुन्दर वदन हँस रहे हैं॥१६३॥आपके सर्व श्रीगौर अङ्ग में काली(हाँड़ियों की स्याही)के चिह्न इस प्रकार शोभित हैं, मानों स्वर्ण-पुतली के ऊपर किसी कारीगर ने चित्राङ्कन कर दिया हो ॥१६४॥ बालकों ने जाकर श्रीशचीदेवी से कह दिया कि—"मैया ! निमाई (झूँठी)हाँड़ियों के ऊपर आसन बनाकर बैठा हुआ है"॥१६५॥ माता जी ने आकर देखा और देखकर 'हाय-हाय' करने लगीं; तथा बोलीं—'मेरे लाल ! इस स्थान पर बैठना योग्य नहीं है । यह सब वर्जित, झूँठी हाँड़ी हैं, इनके छूने से स्नान करना पड़ता है । क्या अब तक भी इतने दिनों में भी तुम्हें यह ज्ञान नहीं हुआ ?' ॥ १६६-१६७ ॥ प्रभु कहते हैं—'तुम सब मुझे पढ़ने नहीं देते हो, कोई मूर्ख विप्र भला-बुरा कैसे जान सकता है ? मैं मूर्ख हूँ, भला-बुरा स्थान नहीं पहिचानता, मुझको सब स्थान एक से मालुम होते हैं अथवा ( सर्वत्र ही मुझे एक ब्रह्म-स्वरूप दिखलाई देते हैं ) ॥ १६८-१६९ ॥ प्रभु यह कहकर वर्ज्य हाँड़ियों के ऊपर बैठे हुए हँसने लगे । उस समय प्रभु दत्तात्रेय भाव में आविष्ट थे ॥ १७० ॥ श्रीमाता जी पूँछने लगीं—"बेटा तुम जो इस अपवित्र स्थान पर बैठे हो, बतलाओ अब तुम कैसे पवित्र होगे ॥ १७१ ॥ प्रभु कहते हैं कि—'माँ तुम तो बड़ी भोलीभाली हो; अपवित्र स्थान पर तो मैं कभी नहीं रहता ॥ १७२ ॥ जहाँ मैं वास करता हूँ वहीं सर्व पुण्यतीर्थ वास करते हैं वहीं श्रीगङ्गाजी आदि सब तीर्थ अधिष्ठित रहते हैं ॥ १७३ ॥ शुचि अथवा अशुचि यह सब हमारी कल्पना से उद्भूत हैं ( अर्थात् मैंने सृजन किया ) इसमें सृष्टि कर्ता ब्रह्माजी का क्या दोष है ? मन में विचार कर देखो ॥ १७४ ॥ लोक एवं वेद के मतानुसार भी यदि कोई वस्तु अशुद्ध भी हो, तो क्या वह मेरे स्पर्श कर लेने पर भी अशुद्ध रह सकती है ? ॥१७५॥ इन सब हाँड़ियों में जिनमें कि तुमने श्रीविष्णु के लिये रसोई तैयार की है, मूलतः (वास्तव में) कोई दोष नहीं है १७६ देखो ! श्रीविष्णु के लिये रन्धन का पात्र कभी अशुद्ध नहीं होता है ऐसे पात्र के

एतेके आमार वास नहे मन्द स्थाने । सबार शुद्धता मोर परश-कारणे ॥१७८॥
बाल्य भावे सर्व्व तत्त्व कहि प्रभु हासे । तथापि ना बुझे केहो तान माया वशे ॥१७९॥
सबेइ हासेन शुनि शिशुर वचन । 'स्नान आसि कर' शची बोलेन तखन ॥१८०॥
ना आइसेन प्रभु सेइ खाने थाकि आछे । शची बोले 'झाट आय' बापे जाने पाछे ॥१८१॥
प्रभु बोले 'जदि मोरे ना देह पढ़िते । तबे मुञि नाहि जाङ कहिलुँ तोमाते' ॥१८२॥
सबेइ भर्त्सेन ठाकुरेर जननीरे । सबे बोले केने नाहि देह पढ़िबारे ॥१८३॥
यत्न करि केहो निज बालक पढ़ाय । कत भाग्ये आपने पढ़िते शिशु चाय ॥१८४॥
कोन शत्रु हेन बुद्धि दिल वा तोमारे । घरे मूर्ख करि पुत्र राखिबार तरे ॥१८५॥
इहाते शिशुर दोष तिलार्द्धेको नाहि । सबेइ बोलेन बाप आइस निमाञि ॥१८६॥
आजि हैते तुमि जदि ना पाओ पढ़िते । तबे अपराध तुमि करिह भालमते ॥१८७॥
ना आइसे प्रभु सेइखाने थाकि हासे । सुकृति-सकल सुख-सिन्धु माझे भासे ॥१८८॥
आपने धरिया शिशु आनिला जननी । हासे गौरचन्द्र जेन इन्द्र नील मणि ॥१८९॥
तत्त्व कहिलेन प्रभु दत्तात्रेय भावे । ना बुझिल केहो विष्णुमायार प्रभावे ॥१९०॥
स्नान कराइला पुत्रे शची पुण्यवती । हेन काले आइलेन मिश्र महामति ॥१९१॥
मिश्र स्थाने शची सब कहिलेन कथा । पढ़िते ना पाय पुत्र मने भावे व्यथा ॥१९२॥

---

स्पर्श से तो स्थान ही पवित्र होता है ॥ १७७ ॥ अतएव अपवित्र स्थान पर मेरा वास नहीं है । मेरे स्पर्श के कारण सब शुद्ध हो जाते हैं ॥ १७८ ॥ इस प्रकार बालक भाव का आवरण लेकर सर्व तत्त्व प्रकाश करके प्रभु हँसते हैं । तथापि उनकी माया में मुग्ध होकर कोई समझ नहीं पाता ॥ १७९ ॥ बालक की बातें सुनकर सब हँस पड़े । तब श्रीशची माता बोलीं—'मेरे लाल ! आओ स्नान कर लो' ॥ १८० ॥ प्रभु नहीं आते हैं, कि—'जल्दी से आ जाओ नहीं तो तुम्हारे पिता को खबर पड़ जायगी ( तो क्रुद्ध होंगे—यह अर्थ ) ॥ १८१ ॥ प्रभु कहते हैं कि—'तुम यदि मुझे पढ़ने नहीं दोगे तो मैं यहाँ से नहीं उठूँगा, मैंने तुमसे (स्पष्ट) कह दिया' ॥ १८२ ॥ सब लोग श्रीमाताजी की भर्त्सना करने लगे और कहने लगे कि—'तुम बालक को पढ़ने क्यों नहीं देते हो ? ॥ १८३ ॥ देखो ! कोई तो कितनी ही चेष्टा करके अपने बालक को पढ़ाते हैं, तुम्हारा कितना भाग्य है कि—यह बालक आप ही पढ़ना चाहता है' ॥ १८४ ॥ अथवा पुत्र को मूर्ख रखकर घर में बैठाये रखने के लिये न जाने किस शत्रु ने तुमको ऐसी बुद्धि दी है ? ॥ १८५ ॥ इसमें बच्चे का तिलार्द्ध-मात्र भी दोष नहीं है । फिर सब लोग कहने लगे कि 'बेटा निमाई आओ ॥१८६॥ आज से यदि तुमको पढ़ने न जाने दिया जाय तो फिर तुम अच्छी तरह से ऊधम करना ॥ १८७ ॥ प्रभु आते नहीं हैं और वहीं पर बैठे हुए हँस रहे हैं, सकल पुण्यात्मा जन यह देख-देखकर सुख-समुद्र हिलोरें ले रहे हैं ॥ १८८ ॥ जननी श्रीशची माता स्वयं उनको पकड़ कर ले आईं, श्रीगौरचन्द्र इन्द्रनीलमणि बालकृष्ण की भाँति हँस रहे थे (काली छाप से शोभित श्रीगौरसुन्दर इन्द्रनीलमणि अर्थात् हँसते हुए बाल-गोपाल जैसे दिखाई देने लगे ॥१८९॥ प्रभु ने श्रीदत्तात्रेय भाव से तत्त्व वर्णन कर दिया; परन्तु विष्णुमाया के प्रभाव से कोई समझ नहीं पाया ॥ १९० ॥ पुण्यवती श्रीशचीदेवी ने पुत्र को स्नान करवाया उसी समय महामति श्रीजगन्नाथ मिश्र जी भी आ गये ॥१९१॥

सभेइ बोलेन मिश्र ! तुमि त उदार । कार बोले पुत्र नाहि देह पढ़िबार ? ॥१६३॥
ये करिब कृष्णचन्द्र सेइ सत्य हय । चिन्ता परिहरि देह पढ़िते निर्भय ॥१६४॥
भाग्य से बालक चाहे अपने पढ़िते । भाल-दिने यज्ञसूत्र देह भालमते ॥१६५॥
मिश्र बोले तोमरा परम बन्धुगण । तोमरा ये बोल, सेइ आमार बचन' ॥१६६॥
अलौकिक देखिया शिशुर सर्व्व कर्म्म । बिस्मय भावेन केहो नाहि जाने मर्म्म ॥१६७॥
मध्ये मध्ये कोन जन अति भाग्यवाने । पूर्व्वे कहि राखियाछे जगन्नाथस्थाने ॥१६८॥
'प्राकृत बालक कभु ए बालक नहे । यत्न करि ए बालक राखिह हृदये' ॥१६९॥
निरवधि गुप्त भावे प्रभु केलि करे । वैकुण्ठ-नायक द्विज-अङ्गने बिहरे ॥२००॥
पढ़िते पाइला प्रभु बापेर आदेशे । हइलेन महाप्रभु आनन्द बिशेषे ॥२०१॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान ॥२०२॥

इति श्रीआदिखण्डे श्रीविश्वरूप संन्यासादि वर्णनं
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

## षष्ठ अध्याय

जय जय कृपासिन्धु श्रीगौर सुन्दर । जय शची जगन्नाथ-गृह शशधर ॥१॥
जय जय नित्यानन्द-स्वरूपेर प्राण । जय जय सङ्कीर्त्तन-धर्म्मेर निधान ॥२॥

---

श्रीशचीदेवी ने श्रीजगन्नाथ मिश्र से सब बातें कह सुनाई और शेष में कहा कि–'पुत्र को पढ़ने को नहीं मिलता इसलिये वह मन में दुःख पाता है' ॥ १६२ ॥ इसके साथ ही अन्य सब लोग भी बोले कि–'मिश्रजी ! आप तो बहुत उदार हो; कहिये तो किसके कहने से अपने पुत्र को पढ़ने नहीं जाने देते ॥ १६३ ॥ जो श्रीकृष्णचन्द्र करेंगे सत्य २ वास्तव में होगा वही । आप चिन्ता छोड़कर पुत्र को निर्भयता से पढ़ने दीजिये ॥ १६४ ॥ कितने सौभाग्य की बात है कि–'बालक स्वयं ही पढ़ने का इच्छुक है । अब शुभ दिन में यथाविधि सुन्दर भाव से विश्वम्भर को यज्ञोपवीत भी दे दीजिये' ॥ १६५ ॥ श्रीमिश्र जी कहते हैं कि–'आप सब हमारे परम बन्धु हो; आप लोग जो कहते हैं, वह मुझे भी अभिप्रेत है" ॥ १६६ ॥ सब लोक बालक के सभी कर्म अलौकिक देखकर विस्मय के कारण रहस्य को नहीं जान पाते ॥ १६७ ॥ किसी-किसी अति भाग्यवान् पुरुष ने पहिले ही बीच २ में श्रीजगन्नाथ मिश्र से कह दिया था कि—"यह बालक कभी प्राकृत-बालक नहीं है; इस बालक को यत्नपूर्वक हृदय से लगाये रखना ॥ १६८-१६९ ॥ प्रभु निरन्तर गुप्त रूप से केलि करते थे, वैकुण्ठनायक भगवान् ब्राह्मण के आँगन में विहार कर रहे थे ॥ २०० ॥ अब प्रभु को पिताजी के आदेशानुसार पढ़ने की आज्ञा मिल गई, जिससे महाप्रभु श्रीगौरचन्द्र को विशेष आनन्द हुआ ॥ २०१ ॥ श्रीकृष्णचैतन्य एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र को जान ( समझ ) कर; वृन्दावनदास उनके युगल चरणों की महिमा का कुछ गान करते हैं ( श्रीकृष्णचैतन्य तथा श्रीनित्यानन्द प्रभु जिनके प्राण हैं, वह वृन्दावनदास उनके युगल चरणों का कुछ यहाँ गान करते हैं ॥ २०२ ॥

कृपासिन्धु श्रीगौरसुन्दर ! आपकी जय हो, जय हो । श्रीशचीदेवी एवं श्रीजगन्नाथ मिश्र के घर के चन्द्रमा आपकी जय हो । श्रीनित्यानन्द स्वरूप के प्राण,आपकी जय हो, जय हो । श्रीसङ्कीर्त्तन धर्म के आधार

यार यथा शक्ति भिक्षा सभेइ सन्तोषे । प्रभुर झूलिते दिया नारीगण हासे ॥१८॥
द्विजपत्नी रूप धरि ब्रह्माणी रुद्राणी । यत पतिव्रता मुनिवर्गेर गृहिणी ॥१९॥
श्री वामन-रूप प्रभुर देखिया सन्तोषे । सभेइ झूलिते भिक्षा दिया दिया हासे ॥२०॥
प्रभुओ करेन श्रीवामन रूप लीला । जीवेर उद्धार लागि ए सकल खेला ॥२१॥
जय जय श्री वामनरूप गौरचन्द्र । दान देह हृदये तोमार पद द्वन्द्व ॥२२॥
ये शुने प्रभुर यज्ञसूत्रेर ग्रहन । से पाय चैतन्यचन्द्र-चरणे-शरण ॥२३॥
हेन मते वैकुण्ठनायक शची घरे । वेदेर निगूढ़ नानामत क्रीड़ा करे ॥२४॥
घरे सर्व्वशास्त्रेर बुझिया समीहित । गोष्ठी-माझे प्रभुर पढ़िते हैल चित्त ॥२५॥
नवद्वीपे आछे अध्यापक-शिरोमणि । गङ्गादास-पण्डित ये हेन सान्दीपनि ॥२६॥
व्याकरण-शास्त्रेर एकान्त तत्त्ववित्त । ताँर ठाञि पढ़िते प्रभुर समीहित ॥२७॥
बुझिलेन पुत्रेर इङ्गित मिश्रवर । पुत्र-सङ्गे गेला गङ्गादास विप्रवर ॥२८॥
मिश्र देखि गङ्गादास सम्भ्रमे उठिला । आलिङ्गन करि एक-आसने बसिला ॥२९॥
मिश्र बोले 'पुत्र आमि दिल तोमा' स्थाने । पढ़ाइबा शुनाइबा सकल आपने' ॥३०॥
गंगादास बोले 'बड़ भाग्य से आमार । पाढ़ाइमु यत शक्ति आछये आमार' ॥३१॥
शिष्य देखि परम आनन्दे गंगादास । पुत्र-प्राय करिया राखिला निज-पाश ॥३२॥
यत व्याख्या गंगादास पण्डित करेन । सकृत् शुनिले मात्र ठाकुर धरेन ॥३३॥

---

कर अपने सब सेवकों के घर भिक्षा कर रहे थे ॥१७॥ सब स्त्रीगण अपनी २ शक्ति के अनुसार आनन्दपूर्वक प्रभु की झोली में भिक्षा दे देकर हँसने लगीं ॥ १८ ॥ ब्रह्मपत्नी श्रीसावित्री जी, शिवपत्नी श्रीपार्वतीजी एवं मुनिजनों की सब पतिव्रता स्त्रियाँ प्रभु के श्रीवामन रूप को देखकर आनन्दित होकर झोली में भिक्षा दे देकर हँस रही हैं ॥ १९-२० ॥ श्रीप्रभु ने भी श्रीवामन रूप की लीला की; यह सब लीलायें जीव उद्धार के लिये हैं ॥ २१ ॥ श्रीवामनरूपी श्रीगौरचन्द्र प्रभु ! आपकी जय हो, जय हो; [ कृपा करके ] अपने युगल चरण मेरे हृदय में दान दीजिये ॥२२॥ जो कोई स्त्री–पुरुष प्रभु के यज्ञोपवीत-धारण की कथा सुनेगा वह श्रीचैतन्यचन्द्र के चरणों में शरण पावेगा ॥ २३ ॥ इस प्रकार वैकुण्ठनाथ श्रीगौरसुन्दर, श्रीशची 'माँ' के घर में नाना प्रकार की वेद से गोप्य लीलायें कर रहे हैं ॥ २४ ॥ घर बैठे ही सर्व शास्त्रों का अभिप्राय जानकर श्रीप्रभु छात्र मण्डली में बैठकर पढ़ने की इच्छा करने लगे ॥२५॥ नवद्वीप में सान्दीपनि मुनि के अवतार अध्यापक-शिरोमणि, श्रीगंगादास पण्डित जी वास करते थे ॥ २६ ॥ आप व्याकरण शास्त्र के अद्वितीय तत्त्व-वेत्ता थे; प्रभु का अभिप्राय उनके निकट पढ़ने का हुआ ॥ २७ ॥ श्रीमिश्रवर जी अपने पुत्र के इस इङ्गित को समझ गये । आप पुत्र को साथ लेकर श्रीगंगादास पण्डित के घर गये ॥ २८ ॥ श्रीमिश्रजी को देखकर श्रीगंगादास जी हड़बड़ा कर खड़े हो गये और उनको आलिंगन करके दोनों एक ही आसन पर विराजमान होगये ॥२९॥ मिश्रजी कहते हैं कि—'मैं यह पुत्र आपको सौंपता हूँ; अब आप इसका सब प्रकार से पठन–श्रवन कराइये' ॥ ३० ॥ श्रीगंगादासजी कहते हैं—"यह तो मेरे लिये बड़े सौभाग्य की बात है, जहाँ तक मेरी शक्ति है, मैं (इसको) पढ़ाऊँगा" ॥ ३१ ॥ श्रीगंगादास जी मिश्र को देखकर परम आनन्दित हुए और पुत्र की तरह अपने

गुरु यतेक व्याख्या करेन खण्डन । पुनर्ब्बार सेइ व्याख्या करेन स्थापन ।।३४।।
सहस्र सहस्र शिष्य पड़े यत जने । हेन कारो शक्ति नाहि दिवारे दूषणे ।।३५।।
देखिया अद्भुत बुद्धि गुरु हरषित । सर्व्व-गोष्ठी श्रेष्ठ करि करिला पूजित ।।३६।।
यत पड़े गङ्गादास-पण्डितेर स्थाने । सभारेइ ठाकुर चालेन अनुक्षणे ।।३७।।
श्रीमुरारिगुप्त, श्रीकमलाकान्त नाम । कृष्णानन्द आदि यत गोष्ठीर प्रधान ।।३८।।
सभारे चालये प्रभु फाँकि जिज्ञासिया । शिशु-ज्ञाने केहो किछु ना बोले हासिया ।।३९।।
एइमत प्रतिदिन पड़िया शुनिञा । गङ्गास्नाने चले निज-वयस्य लइया ।।४०।।
पढ़ुयार अन्त नाहि नवद्वीप पुरे । पड़िया मध्याह्ने सभे गङ्गा स्नान करे ।।४१।।
एको अध्यापकेर सहस्र-शिष्यगन । अन्योन्ये कलह करेन अनुक्षण ।।४२।।
प्रथम वयस प्रभुर स्वभाव चञ्चल । पढ़ुयागणेर सङ्ग करेन कन्दल ।।४३।।
केहो बोले 'तोर गुरु कोन बुद्धि तार?' । केहो बोले 'देख एइ आमि शिष्य यार?'।।४४।।
एइमत अल्पे अल्पे हय गालागालि । तबे जल फेलाफेलि, तबे देन बालि ।।४५।।
तबे हय मारामारि, ये याहारे पारे । कर्द्दम फेलिया कारो गाये केहो मारे ।।४६।।
राजार दोहाइ दिया केहो कारे धरे । मारिया पलाय केहो गङ्गार ओ पारे ।।४७।।
एत हुड़ाहुड़ि करे पढ़ुया सकल । बालि-कादामय सब हय गङ्गा-जल ।।४८।।

---

पास रख लिया ॥ ३२ ॥ श्रीगंगादास पण्डित जितनी व्याख्या करते हैं, प्रभु एक बार सुनकर ही धारण कर लेते थे ॥ ३३ ॥ कभी-कभी आप श्रीगुरुदेव की सम्पूर्ण व्याख्या को खण्डन कर देते हैं; और फिर उसी व्याख्या को स्थापन कर देते हैं ॥ ३४ ॥ वहाँ जो सहस्रों शिष्य पढ़ते थे, उनमें से किसी की भी यह सामर्थ्य नहीं थी, कि प्रभु की व्याख्या के ऊपर कोई दोषारोपण कर सके ॥३५॥ ( श्रीमहाप्रभु की ) ऐसी अद्भुत बुद्धि देखकर श्रीगुरुदेव ने प्रसन्न होकर प्रभु को सर्व-श्रेष्ठ शिष्य की पदवी देकर सम्मानित किया ॥ ३६ ॥ जितने शिष्य श्रीगङ्गादास पण्डित जी के यहाँ पढ़ते थे, प्रभु उन सबको ( कोई न कोई ) प्रश्न उठाकर नाना-भाँति से चक्कर में डाल देते थे ॥ ३७ ॥ श्रीमुरारिगुप्त, श्रीकमलाकान्त एवं श्रीकृष्णानन्द आदि गोष्ठी में जो-जो प्रधान शिष्य हैं, उन सबको प्रभु फाँकि (फक्किका) पूछकर विवश कर देते थे । वे सब प्रभु को बालक समझकर हँसकर कुछ नहीं कहते हैं ॥ ३८-३९ ॥ इसी प्रकार नित्य प्रति पढ़ सुनकर प्रभु अपने साथियों के सङ्ग श्रीगङ्गास्नान करने चले जाते हैं ॥ ४० ॥ श्रीनवद्वीप पुरी में विद्यार्थियों की गिनती नहीं है; वे सब ही दोपहर तक पढ़कर श्रीगंगा स्नान करने जाते थे ॥ ४१ ॥ एक-एक अध्यापक के सहस्र-सहस्र शिष्य थे, जो परस्पर निरन्तर विवाद करते रहते थे ॥ ४२ ॥ प्रभु की नवीन अवस्था होने से चञ्चल स्वभाव था; आप विद्यार्थियों के साथ लड़-झगड़ रहते थे ॥ ४३ ॥ विद्यार्थियों में से कोई कहता—"तेरा गुरु क्या है ? वह कितनी बुद्धि रखता है ?" सुनकर कोई दूसरा कहता कि—"यह देख ! मेरे गुरु वे हैं; मेरे जैसे बुद्धिमान जिनके शिष्य हैं ?" ॥ ४४ ॥ इसी प्रकार धीरे धीरे गाली-गलौज होने लगती; फिर जल फेंका-फेंकी, फिर बालू उछालना शुरू हो जाता, फिर जो जिसके हाथ आता, वह उसके साथ मार-पीट करता । कोई किसी के शरीर पर कीचड़ फेंककर मारने लगता । कोई राजा की दोहाई देकर किसी को पकड़ लेता; कोई मार-पीटकर गंगाजी के उस पार तैरकर भाग

जल भरिबारे नाहि पारे नारीगणे । ना पारे करिते स्नान ब्राह्मण-सज्जने ॥४९॥
परम चञ्चल प्रभु विश्वम्भर राय । एइमत प्रभु प्रति घाटे घाटे जाय ॥५०॥
प्रति घाटे पढुयार अन्त नाहिं पाइ । ठाकुर कलह करे प्रति ठाञि ठाञि ॥५१॥
प्रति घाटे घाटे जाय गङ्गाय साँतारि । एको घाटे दुइ चारि दण्ड क्रीड़ा करि ॥५२॥
जत जत प्रामाणिक पढुयार गण । तारा बोले 'कलह करह कि कारण ॥५३॥
जिज्ञासा करह बुझि, कार कोन बुद्धि । वृत्ति-पञ्जी-टीकार के जाने देखि शुद्धि' ॥५४॥
प्रभु बोले 'भालो भालो एइ कथा हय । जिज्ञासुक आमारे जाहार चित्ते लय' ॥५५॥
केहो बले 'एत केने कर अहङ्कार' । प्रभु बले 'जिज्ञासह जे चित्ते तोमार' ॥५६॥
'धातुसूत्र वाखानह' बले से पढुया । प्रभु बले 'वाखानि जे शुन मन दिया' ॥५७॥
सर्व्वशक्ति समन्वित प्रभु भगवान् । करिलेन सूत्र-व्याख्या जे हय प्रमाण ॥५८॥
व्याख्या शुनि सभे बोले प्रशंसा-वचन । प्रभु बोले 'एबे शुन करिये खण्डन' ॥५९॥
यत वाखानिल ताहा दूषिल सकल । प्रभु बोले 'स्थाप' एबे कार आछे बल ॥६०॥
चमत्कार सभेइ भावेन मने मने । प्रभु बोले 'शुन एबे करिये स्थापने' ॥६१॥
पुन हेन व्याख्या करिलेन गौरचन्द्र । सर्व्वमते सुन्दर, कोथाओ नाहि मन्द ॥६२॥
यत सब प्रामाणिक पढुयार गण । सन्तोषे सभेइ करिलेन आलिङ्गन ॥६३॥

---

जाता ॥४५-४७॥ विद्यार्थीगण सब इतना ऊधम करते थे कि सम्पूर्ण श्रीगङ्गाजल बालू एवं कीच से गदला हो जाता था, स्त्रीगण जल भरने नहीं पातीं तथा ब्राह्मण, सज्जनगण स्नान नहीं कर पाते थे ॥ ४८-४९ ॥ प्रभु श्रीविश्वम्भर राय परम चञ्चल थे, आप इसी प्रकार प्रत्येक घाट पर ( ऊधम करने कराने के लिये ) पहुँच जाते थे॥५०॥प्रत्येक घाट पर असंख्य विद्यार्थी और प्रभु भी प्रत्येक स्थान पर कलह करते पहुँच जाते थे॥५१॥ प्रभु गङ्गाजी में तैरते हुए एक घाट से दूसरे घाट पर पहुँच जाते थे और प्रत्येक घाट पर दो-दो, चार-चार घड़ी क्रीड़ा करते थे ॥ ५२ ॥ विद्यार्थियों में जो सर्व प्रमुख विद्यार्थी थे, वे प्रभु से कहते थे कि—"तुम झगड़ा क्यों करते हो ? तुम्हारे मन में हो जो हमसे पूछो; मालुम पड़ेगा किसमें कितनी बुद्धि है देखें, वृत्ति, पाँञ्जी, टीका के यथार्थ तत्त्व कौन जानता है ?" ॥५३-५४॥ प्रभु कहते थे—"अच्छा, अच्छा, यही बात ठहरी तुममें से जिसके मनमें हो वह प्रथम हमसे प्रश्न करे" ॥ ५५ ॥ कोई कहता था "इतना अहङ्कार क्यों करते हो ?" प्रभु कहते हैं—"जो तुम्हारे मन में हो पूँछो" ॥ ५६ ॥ तब विद्यार्थी कोई एक विशेष धातु सूत्र उठाकर प्रभु से कहता कि "इसकी व्याख्या करो"; प्रभु कहते "अब व्याख्यान करता हूँ, मन लगाकर सुनो" ॥ ५७ ॥ सर्व शक्ति समन्वित भगवान् प्रभु सूत्र की ऐसी व्याख्या करते जो सर्वथा संगत होती ॥ ५८ ॥ प्रभु की व्याख्या को सुनकर सब लोग प्रशंसा करने लगते तब पुनः आप कहते कि—"सुनो अब मैं इसी का खण्डन करता हूँ" ॥ ५९ ॥ आपने अभी-अभी जो व्याख्या की थी, इस बार उन सबको दोषयुक्त सिद्ध करके सबको दिखाया, तब प्रभु कहते कि—"कहो अब किस में बल है; जो इसको पुनर्वार प्रमाणित करें ॥ ६० ॥ सब लोग मन ही मन बड़ा आश्चर्य करने लगे, तब प्रभु कहते कि "लो ! अबकी बार इसी खंडित व्याख्या की पुनः स्थापना करता हूँ, सुनो !" ॥६१॥ यह कह कर श्रीगौरचन्द्र ने पुनर्वार ऐसी व्याख्या की जो कि सर्व प्रकार से सुन्दर

सायुज्य वा कोन उपाधिक सुख तानें । सायुज्यादि-सुख मिश्र अल्प करि मानें ।।७९।।
जगन्नाथ-मिश्र-पाय बहु नमस्कार । अनन्त-ब्रह्माण्ड-नाथ पुत्र रूपे-जाँर ।।८०।।
एइ मत मिश्रचन्द्र देखिते पुत्रेरे । निरवधि भासे विप्र आनन्द-सागरे ।।८१।।
कामदेव जिनिञा प्रभु से रूपवान् । प्रति अङ्गे अङ्गे से लावण्य अनुपाम ।।८२।
इहा देखि मिश्रचन्द्र चिन्तेन अन्तरे । 'डाकिनी दानवे पाछे पुत्रे बल करे' ।।८३।।
भये मिश्र पुत्र समर्पीये कृष्ण-स्थाने । हासे प्रभु गौरचन्द्र आड़े थाकि सुने ।।८४।।
मिश्र बोले 'कृष्ण ! तुमि रक्षिता सभार । पुत्र-प्रति शुभ दृष्टि करिबा आमार ।।८५।।
ये तोमार चरण-कमल स्मृति करे । कभु विघ्न ना आइसे ताहार मन्दिरे ।८६।।
तोमार स्मरण-हीन ये ये पाप-स्थान । तथा ये डाकिनी-भूत-प्रेत-अधिष्ठान ।।८७।।

तथाहि-"न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि स्वकर्म्मसु । कुर्व्वन्ति सात्वतां भर्त्तुर्यातुधान्यश्च तत्र हि'।।१।।भा.१०।६।

'आमि तोर दास प्रभु ! यतेक आमार । राखिबा आपने तुमि, सकल तोमार ।।८८।।
अतएव यत आछे विघ्न वा सङ्कट । 'ना आसुक कभु मोर पुत्रेर निकट' ।।८९।।
एइ मत निरवधि मिश्र जगन्नाथ । एक-चित्ते बर मागे तुलि दुइ हाथ ।।९०।।
दैवे एक दिन स्वप्न देखि मिश्रवर । हरिष-बिषाद बड़ हइल अन्तर ।।९१।।
स्वप्न देखि स्तव पढ़ि दण्डवत करे । 'हे गोविन्द ! निमाञि रहुक मोर घरे ।।९२।।

---

ाहना मात्र है ) ।।७७।। श्रीमिश्रजी जिस प्रकार पुत्र की रूप-सुधा पान कर रहे थे, उसको देखकर प्रतीत होता था कि स्यात् उन्हें सदेह की सायुज्य मुक्ति मिल गई हो ।। ७८ ।। अथवा सायुज्य ही क्या वस्तु है, वह तो केवल मात्र औपाधिक सुख है; श्रीमिश्रदेव सायुज्यादि सुख को बहुत छोटा करके मानते थे ।। ७९ ।। श्री जगन्नाथ मिश्र के चरणों में हमारी अनेक प्रकार नमस्कार हैं; जिनके यहाँ अनन्त ब्रह्माण्ड स्वामी पुत्र रूप में विराजमान थे।।८०।।इसी प्रकार श्रीमिश्रचन्द्र पुत्र को देखकर निरन्तर आनन्द के समुद्र में बहते रहते थे।।८१।। प्रभु कामदेव के भी रूप को विजय करने वाले महा रूपवान् थे, आपके श्रीअङ्ग-प्रत्यङ्ग में अतुलित अनोखा लावण्य था ।। ८२ ।। उसको देखकर श्रीमिश्रचन्द्र मन में चिन्ता करने लगे कि कहीं ऐसा न हो कि—"कोई डाकिनी व दानव आदि पुत्र के ऊपर अपना असर जमावे" ।। ८३ ।। इस डर से श्रीमिश्रदेव पुत्र को श्रीकृष्ण को सौंपने लगे हैं, प्रभु श्रीगौरचन्द्र आड़ में खड़े हो यह सब सुनते और हँसते थे ।। ८४ ।। श्रीमिश्रदेव कहते हैं कि—"हे कृष्ण ! आप सबकी रक्षा करने वाले हो, मेरे पुत्र के प्रति भी शुभ दृष्टि करना ।।८५।। हे प्रभो ! जो आपके चरण कमलों का स्मरण करते हैं, उनके घर में विघ्न कभी नहीं आते ।। ८६ ।। तुम्हारे स्मरण से विरहित जो-जो पाप-स्थान हैं, वहीं डाइन, भूत-प्रेतों का निवास होता है ।। ८७ ।। "जिस स्थान में जनसमूह समाज अपना कर्मानुष्ठान करते समय भक्त-भर्त्ता भगवान् की विघ्न-विनाशकारी लीला कथाओं का श्रवणादि नहीं करता, उस स्थान में ही राक्षसगण निवास करते हैं" ।। १ ।। "हे प्रभो ! मैं आपका दास हूँ; मेरा जो कुछ है वह सब आपका ही है, आप स्वयं उनकी रक्षा कीजियेगा । अतएव जो भी विघ्न व सङ्कट हो, वे मेरे पुत्र के निकट कभी न आवें" ।। ८८—८९ ।। इसी प्रकार श्रीजगन्नाथ मिश्र निरन्तर दोनों हाथ उठाकर मन को एकाग्र करके वर माँगते हैं ९० दैवयोग से भगवत इच्छा से) एक दिन श्रीमिश्रवर जी एक

एइमत परम उदार दुइ जन। नाना कथा कहे पुत्र-स्नेहेर कारण ॥१०७॥
हेनमते कथोदिन थाकि मिश्रवर। अन्तर्धान हैला नित्य-सिद्ध कलेवर ॥१०८॥
मिश्रेर विजये प्रभु कान्दिला विस्तर। दशरथ-विजये ये हेन रघुवर ॥१०९॥
दुर्निवार श्री गौरचन्द्रेर आकर्षण। अतएव रक्षा हैल आइर जीवन ॥११०॥
दुःख-रस ए सकल विस्तारि कहिते। दुःख हय, अतएव कहिल संक्षेपे ॥१११॥
हेनमते जननीर सङ्गे गौरहरि। आछेन निगूढ़रूपे आपना सम्बरि ॥११२॥
पितृ-हीन-बालक देखिया शची 'आई'। सेइ पुत्र सेवा बहि आर कार्य्य नाञि ॥११३॥
दण्डेके ना देखे यदि आइ गौरचन्द्र। मूर्च्छा पाये आइ दुइ चक्षे हय अन्ध ॥११४॥
प्रभुओ मायेर प्रीति करे निरन्तर। प्रबोधेन ताने बलि आश्वास-उत्तर ॥११५॥
शुन माता! मने किछु ना चिन्तिह तुमि। सकल तोमार आछे, यदि आछि आमि ॥११६॥
ब्रह्मा महेश्वरेरो ये दुर्ल्लभ लोके बोले। ताहा आमि तोमारे आनिञा दिब हेले ॥११७॥
शची ओ देखिते गौरचन्द्रेर श्रीमुख। देह-स्मृति-मात्र नाहि थाके किसे दुःख ॥११८॥
जार स्मृति-मात्र सर्व्व पूर्ण हय काम। से प्रभु जाहार पुत्र-रूपे विद्यमान ॥११९॥
ताहार के मते दुःख रहिब शरीरे?। आनन्द स्वरूप करिलेन जननीरे ॥१२०॥
हेनमते नवद्वीपे विप्र शिशुरूपे। आछेन वैकुण्ठनाथ स्वानुभव-सुखे ॥१२१॥

---

आज कल तो विद्या-रस ही उसका सर्व-धर्म बन गया है" ॥ १०५-१०६ ॥ इसी प्रकार परम उदार दोनों जन पुत्र-स्नेह के कारण नाना प्रकार की बातें करते रहते थे ॥ १०७ ॥ इस प्रकार कुछ दिन इस नाशवान् जगत् में रहकर श्रीजगन्नाथ मिश्र जी अपने नित्य सिद्ध स्वरूप को (श्रीमन्महाप्रभु के नित्य लीला में पितृ-स्वरूप को प्राप्त होकर यहाँ से अन्तर्धान होगये) ॥ १०८॥ श्रीमिश्रदेव के विजय (अन्तर्धान) होने पर प्रभु ने ऐसा विलाप किया, जैसा श्रीरामचन्द्रजी ने श्रीदशरथ महाराज के अन्तर्धान हो जाने पर किया था ॥ १०९ ॥ श्रीगौरचन्द्र का आकर्षण दुर्निवार (निवारण करना कठिन) है, इसीलिये श्रीशची माताजी की जीवन-रक्षा हो सकी ॥ ११० ॥ यह सब कथा विस्तार पूर्वक कहने में बहुत दुःख होता है; अतएव (बहुत दुःख होने के कारण) संक्षेप में ही कहा है ॥१११॥ इस प्रकार श्रीगौरहरि अपनी जननी के साथ अपने स्वरूप को छिपाकर गुप्त रूप से रहने लगे ॥ ११२ ॥ श्रीशचीमाता पुत्र को पितृहीन देखकर उसकी सेवा के अतिरिक्त और कोई कार्य नहीं करती थीं ॥ ११३ ॥ यदि श्रीमाताजी एक दण्ड के लिये भी श्रीगौरचन्द्र को नहीं देखतीं तो आप दोनों नेत्रों से अन्धी होकर मूर्च्छित हो जाती थीं ॥ ११४ ॥ प्रभु भी श्रीमाताजी की प्रीति का निरन्तर साधन करते थे और आश्वासन वाक्य कहकर उनको प्रबोध करते थे ॥ ११५ ॥ आप कहते हैं कि-"हे मातः! सुनो तुम अपने मनमें कुछ भी चिन्ता मत करो; यदि मैं हूँ तो तुम्हारे सब कुछ है। जो वस्तु संसार में ब्रह्मा एवं शिवजी को भी दुर्ल्लभ कही जाती है, वह वस्तु मैं तुम्हारे लिये अनायास ही ला दूँगा' ॥ ११६-११७ ॥ श्रीशचीदेवी को भी श्रीगौरचन्द्र के श्रीमुख को देखते हुए देह की स्मृति मात्र तक नहीं रहती, फिर दुख कैसे हो॥११८॥ जिनकी स्मृति मात्र से सर्व कामनायें पूर्ण हो जाती हैं, ऐसे प्रभु जिनके पुत्र रूप में विद्यमान हैं फिर उनके शरीर में दुःख कैसे रह सकता है? आपने अपनी जननी को आनन्द-स्वरूप कर दिया था ॥११९-१२०॥

घरे मात्र हय दरिद्रतार प्रकाश । आज्ञा येन महामहेश्वरेर विलास ॥१२२॥
कि थाकुक, ना थाकुक, नाहिक विचार । चाहिलेइ ना पाइले रक्षा नाहि आर ॥१२३॥
घर द्वार भाङ्गिया फेलेन सेइ क्षणे । आपनार अपचय ताहो नाहि माने ॥१२४॥
तथापिह शची, ये चाहेन सेइक्षणे । नाना-यत्ने देन पुत्र स्नेहेर-कारणे ॥१२५॥
एक दिन प्रभु चलिलेन गङ्गा-स्नाने । तैल आमलकी चाहे जननीर स्थाने ॥१२६॥
'दिव्य-माला सुगन्धि-चन्दन देह' मोरे । गङ्गा-स्नान करि चाहों गङ्गा पूजिवारे' ॥१२७॥
जननी कहेन 'बाप ! शुन मन दिया । क्षणेक अपेक्षा कर माला आनी गिया' ॥१२८॥
'आनी गिया' येइ-मात्र शुनिला वचन । क्रोधे रुद्र हइलेन शचीर नन्दन ॥१२९॥
'एखने जाइबा तुमि माला आनिबारे' । एत बलि क्रुद्ध हइ प्रवेशिला घरे ॥१३०॥
यतेक आछिल गङ्गा-जलेर कलस । आगे सब भाङ्गिलेन हइ क्रोधवश ॥१३१॥
तैल, घृत, लवण आछिल जाते जाते । सर्व चूर्ण करिलेन ठेङ्गा लइ हाते ॥१३२॥
छोट बड़ घरे यत छिल घट नाम । सब भाङ्गिलेन इच्छामय भगवान् ॥१३३॥
गड़ागड़ि जाय घरे तैल, घृत, दुग्ध । तण्डुल, कार्पास, धान्य, लोण, बड़ी, मुद्ग ॥१३४॥
जतेक आछिल सिका टानिया टानिया । क्रोधावेशे फेले प्रभु छिण्डिया छिण्डिया ॥१३५॥
वस्त्र आदि जत किछु पाइलेन घरे । खानि खानि करि चिरि फेले दुइ-करे ॥१३६॥

---

इस प्रकार श्रीवैकुण्ठनाथ नवद्वीप धाम में ब्राह्मण-बालक के रूप में निज स्वरूपानन्द सुख में मग्न होकर विराजमान थे ॥ १२१ ॥ घर में तो दरिद्रता मात्र ही प्रकाश कर रही थी, परन्तु आपकी आज्ञा मात्र से महामहेश्वर का विलास उपस्थित हो जाता था ॥१२२॥ घर में कुछ है कि नहीं इस बात का तनिक भी विचार नहीं करते । यदि इच्छित वस्तु चाहते ही न मिले, तो फिर उसकी खैर नहीं ॥ १२३ ॥ उसी क्षण घर द्वार सब तोड़-फोड़ कर फेंक देते थे, ऐसा करने से अपनी ही हानि होती है, इस बात को भी वह नहीं मानते थे ॥ १२४ ॥ तब भी श्रीशचीदेवी पुत्र स्नेह के कारण श्रीविश्वम्भर जिस समय जो वस्तु माँगते थे, वही वस्तु उसी क्षण नाना प्रयत्न करके भी ला देती थीं ॥ १२५ ॥ एक दिन प्रभु श्रीगङ्गा—स्नान करने को जाने लगे। श्रीमाताजी से (श्रीअङ्ग में लगाने के लिये) तेल और ( उबटन के लिये ) आमले माँगे ॥ १२६ ॥ फिर कहने लगे कि—"माँ ! मुझे दिव्य माला एवं सुगन्धि चन्दन ला दो, श्रीगङ्गा—स्नान करके मेरी इच्छा श्रीगङ्गा पूजा करने की है" ॥१२७॥ श्रीमाताजी कहने लगी कि—"बेटा ! ध्यान देकर सुनो; तुम तनिक ठहर जाओ मैं अभी माला ला देती हूँ" ॥१२८॥ श्रीशचीनन्दन 'लाती हूँ' शब्द सुनते ही क्रोध से मूर्तिमान रुद्र ही होगये ॥१२९॥ "इस समय तुम माला लेने जाओगी" इतना कहकर क्रोधित होकर घर में घुस गये ॥ १३० ॥ वहाँ जितने गङ्गाजल के कलश रक्खे थे; क्रोधवश उन सबको तोड़-फोड़ डाला ॥ १३१ ॥ जिस-जिस बर्तन में तेल, घी, एवं नमक रक्खे थे, उन सबको हाथ में डण्डा लेकर चूर्ण कर डाला ॥ १३२ ॥ "घट" नाम के छोटे, बड़े जितने भी पात्र घर में थे, इच्छामय भगवान् ने उन सबको फोड़ डाला ॥ १३३ ॥ घर में तेल, घृत, दुग्ध, चावल, कपास, धान, नमक, मँगोड़ी एवं मूँग लोट-पोट होने लगे ( तितर-बितर बिखर गये ) । १३४ तब [illegible] फेंक दिये ॥ १३५ ॥ घर में पड़े

सब भाङ्गि आर जदि नाहि अवशेष । तबे शेषे गृह प्रति हैल क्रोधावेश ॥१३७॥
दोहाथिया ठेङ्गा पाड़े गृहेर उपरे । हेन प्राण नाहि कारो ये निरोध करे ॥१३८॥
घर द्वार भाङ्गि शेषे वृक्षेरे देखिया । ताहार उपरे ठेङ्गा पाड़े दोहाथिया ॥१३९॥
तथापिह क्रोधावेशे क्षमा नाहि हय । शेषे पृथिवीते ठेङ्गा नाहि समुच्चय ॥१४०॥
गृहेर उपान्ते शची सशङ्कित हैया । महा-भये आछेन जे-हेन लुकाइया ॥१४१॥
धर्म्म-संस्थापक प्रभु धर्म-सनातन । जननीरे हस्त नाहि तोलेन कखन ॥१४२॥
एतादृश क्रोध आरो आछेन व्यक्तिजया । तथापिह जननीरे ना मारिला गिया ॥१४३॥
सकल भाङ्गिया शेषे आसिया अङ्गने । गड़ागड़ि जाइते लागिला क्रोध-मने ॥१४४॥
श्री कनक-अङ्ग हैल बालुका वेष्टित । सेइ हैल महाशोभा अकथ्य-चरित ॥१४५॥
कथोक्षण महाप्रभु गड़ागड़ि दिया । स्थिर हइ रहिलेन शयन करिया ॥१४६॥
सेइमते दृष्टि कैला योग-निद्रा प्रति । पृथिवीते शुइ आछेन श्री वैकुण्ठपति ॥१४७॥
अनन्तेर श्री विग्रहे जाँहार शयन । लक्ष्मी जाँर पाद-पद्म सेवे अनुक्षण ॥१४८॥
चारि वेदे ये प्रभुरे करे अन्वेषणे । से प्रभु जायेन निद्रा शचीर अङ्गने ॥१४९॥
अनन्त-ब्रह्माण्ड जाँर लोम कूपे भासे । सृष्टि-स्थिति-प्रलय करये जाँर दासे ॥१५०॥
ब्रह्मा-शिव-आदि मत्त जाँर गुण-ध्याने । हेन प्रभु निद्रा जान शचीर अङ्गने ॥१५१॥

---

आदि जो कुछ भी मिला, वह सब दोनों हाथों से टूक-टूक करके चीर २ कर फेंक दिये । सब कुछ तोड़-फोड़ कर जब कुछ अवशेष नहीं रहा तब घर पर क्रोध आया ॥ १३६–१३७ ॥ दोनों हाथों में लठिया लेकर घर के ऊपर बजाने लगे; ऐसा साहस किसी में नहीं हुआ जो प्रभु को रोके ॥ १३८ ॥ घर, द्वार सब तोड़-फोड़ के अन्त में वृक्ष को देखकर उसी के ऊपर दोनों हाथों से लठिया बजाने लगे ॥ १३९ ॥ इतने पर भी आपका क्रोधावेश शान्त नहीं हुआ; शेष पृथ्वी पर इतनी लठिया बजाते रहे, जिनकी कोई संख्या नहीं है ॥ १४० ॥ गृह के एक प्रान्त में श्रीशचीमाता ऐसी सशङ्किता होकर बैठी थीं, मानों महाभय से डर कर अपने को छिपा रक्खा हो॥१४१॥परन्तु धर्म के संस्थापन करने वाले मूर्त्तिमान सनातन धर्मस्वरूप श्रीप्रभु ने कभी भी माताजी के ऊपर हाथ नहीं उठाया ॥ १४२ ॥ प्रभु इस प्रकार और भी अनेक बार क्रोध प्रकाशित कर चुके थे, परन्तु तथापि आपने कभी माताजी के ऊपर हाथ नहीं उठाया ॥ १४३ ॥ सब कुछ तोड़ फोड़ने के पश्चात् श्रीप्रभु क्रोध के वश आँगन में लोट लगाने लगे ॥ १४४ ॥ स्वर्ण की कान्ति वाला श्रीअङ्ग बालुका में लिपटने लगा जिससे वह महाशोभा को प्राप्त हुआ । प्रभु के ये सब चरित्र अकथनीय हैं ॥ १४५ ॥ महाप्रभु श्रीगौरसुन्दर कुछ समय बालू में लोट लगाकर, स्थिर होकर चुपचाप सो गये ॥ १४६ ॥ पृथ्वी पर सोते हुए ही आपने श्री-योगनिद्रा के प्रति दृष्टि की । वह देखो आज श्रीवैकुण्ठपति पृथ्वी के ऊपर सो रहे हैं ॥ १४७ ॥ श्रीशेषजी का श्रीविग्रह जिनकी शय्या थी,श्रीलक्ष्मीजी निरन्तर जिनके चरण-कमलों की सेवा करती थी एवं महान् जिन प्रभु का चारों वेद अन्वेषण करते हैं,देखो आज वही प्रभु श्रीशचीदेवीके आँगन में निश्चिन्त हो शयन कर रहे हैं॥१४८–१४९॥जिनके एक-एक लोम कूप में अनन्त ब्रह्माण्ड भासमान हैं, जिनके दासजन सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय कार्य करते रहते हैं,ब्रह्मा शिवादिक जिनके गुण ध्यान में रत रहते हैं,ऐसे प्रभु श्रीशचीदेवी के आँगन में

एइमत महाप्रभु स्वानुभव-रसे । निद्रा जाय हेरि सब्वे देखे कान्दे हासे ॥१५२॥
कथोक्षणे शचीदेवी माला आनाइया । गङ्गा पूजिबार सज्ज सम्मुखे करिया ॥१५३॥
धीरे धीरे पुत्रेर श्री अङ्गे हस्त दिया । धूला झाड़ि तुलिते लागिला देवी गिया ॥१५४॥
'उठ उठ बाप ! मोर' हेर माला धर । आपन इच्छाय गिया गङ्गा पूजा कर ॥१५५॥
भाल हैल बाप ! यत फेलिला भाङ्गिया । जाउक तोमार सब बालाइ लइया' ॥१५६॥
जननीर वाक्य शुनि श्री गौरसुन्दर । चलिला करिते स्नान लज्जित अन्तर ॥१५७॥
एथा शची सर्व्वगृह करि उपस्कार । रन्धनेर उद्योग लागिला करिबार ॥१५८॥
यद्यपिह प्रभु एत करे अपचय । तथापि शचीर चित्ते दुःख नाहि हय ॥१५९॥
कृष्णेर चापल्य येन अशेष-प्रकारे । यशोदाये सहिलेन गोकुल-नगरे ॥१६०॥
एइमत गौराङ्गेर यत चञ्चलता । सहिलेन अनुक्षण शची जगन्माता ॥१६१॥
ईश्वरेर क्रीड़ा जानि कहिते कतेक । एइमत चञ्चलता करेन यतेक ॥१६२॥
सकल सहेन शची काय-वाक्य-मने । हइलेन आइ येन पृथिवी आपने ॥१६३॥
कथोक्षणे महाप्रभु करि गंगास्नान । गृहे आइलेन क्रीड़ामय भगवान् ॥१६४॥
विष्णु-पूजा करि तुलसीरे जल दिया । भोजन करिते प्रभु वसिलेन गिया ॥१६५॥
भोजन करिया प्रभु हैला हर्ष-मन । हासिया करेन प्रभु ताम्बूल भक्षण ॥१६६॥
धीरे धीरे आइ तबे बलिते लागिला । 'एत अपचय बाप ! कि कार्य्ये करिला' ॥१६७॥

---

सो गये ॥१५०–१५१॥ इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभुजी को निज अनुभव के आनन्द में निमग्न हो सोते हुए देखकर सभी देखना कभी रोते थे व कभी हँसते थे ॥ १५२ ॥ कुछ समय पश्चात् श्रीशचीदेवी माला मँगवाकर और गङ्गापूजा की सामिग्री पुत्र के सामने रखकर धीरे-धीरे पुत्र के श्रीअङ्ग से अपने हस्त द्वारा धूलि झाड़ कर उन्हें उठाने लगी ॥ १५३–१५४ ॥ श्रीमाताजी कहने लगीं कि—"बेटा ! उठो, उठो । देखो ! यह लो माला । अपनी इच्छानुसार जाकर गङ्गा पूजन करो ॥ १५५ ॥ मेरे लाल ! जो कुछ तुमने तोड़-फोड़ किया वह सब अच्छा ही किया, तुम्हारी आपत्ति-विपत्ति सबको लेकर सब चला जाय (दुःख नहीं)" ॥१५६॥ श्रीगौरसुन्दर जननी के इस वाक्य को सुनकर कुछ हृदय में लज्जित होकर, श्रीगङ्गा-स्नान करने को चले गये ॥ १५७ ॥ इधर श्रीशचीदेवी समस्त घर को परिष्कार करके, रसोई तैयार करने का उद्योग करने लगीं ॥ १५८ ॥ यद्यपि प्रभु ने इतनी हानि की, तथापि श्रीशचीदेवी के चित्त में तनिक भी दुःख नहीं हुआ ॥ १५९ ॥ जिस प्रकार गोकुलनगरमें श्रीयशोदाजीने श्रीकृष्णकी अनेक प्रकार की महान् चञ्चलता का सहन किया था; इसी प्रकार जगन्माता श्रीशचीदेवी निरन्तर श्रीगौरचन्द्रके सब चापल्यको सहन करती थीं॥१६०–१६१॥ श्रीभगवान की क्रीड़ा, सभी लीला मैं ( सेवक ) कितनी कह सकता हूँ ? प्रभु ने जितनी भी चापल्य लीला की, श्रीशची माताजी ने मनो-वाक्-काय से पृथ्वी के समान सभी कुछ सहन किया है ॥१६२–१६३॥ कुछ समय में क्रीड़ामय भगवान् श्रीमन्महाप्रभुजी गङ्गा-स्नान करके घर आये और श्रीविष्णु पूजा करके सब तुलसीजी में जल प्रदान कर तथा भोजन करने के लिये जा बैठे ॥ १६४-१६५ ॥ भोजन करके प्रभु प्रसन्न चित्त हुए और आप हँसकर पान-बीड़ी

घर द्वार द्रव्य जत सकलि तोमार । अपचय तोमार से, कि दाय आमार ॥१६८॥
पढ़िवारे तुमि बोल एखने जाइबा । घरेते सम्बल नाहि कालि कि खाइबा' ॥१६९॥
हासे प्रभु जननीर शुनिञा वचन । प्रभु बोले 'कृष्ण पोष्टा करिब पोषण' ॥१७०॥
एत बलि पुस्तक लइया प्रभु करे । सरस्वती-पति चलिलेन पढ़िवारे ॥१७१॥
कथोक्षण विद्या-रस करि कुतूहले । जाह्नवीर तीरे आइलेन सन्ध्या-काले ॥१७२॥
कथोक्षण थाकि प्रभु जाह्नवीर तीरे । तबे पुन आइलेन आपन मन्दिरे ॥१७३॥
जननीरे डाक दिया आनिञा निभृते । दिव्य स्वर्ण तोला दुइ दिला तान हाथे ॥१७४॥
'देख माता ! कृष्ण एइ दिलेन सम्बल । इहा भांगाइया व्यय करह सकल' ॥१७५॥
एत बलि महाप्रभु चलिला शयने । परम विस्मित हइ आइ मने गणे ॥१७६॥
'कोथा हैते सुवर्ण आनये बारे बार । पाछे कोन प्रमाद जन्माये आसि आर ॥१७७॥
जेइ-मात्र सम्बल-सङ्कोच हय घरे । सेइ एइमत सोणा आने बारे बारे ॥१७८॥
किबा धार करे, किबा कोन सिद्धि जाने । कोन रूपे कार सोणा आने वा केमने ॥१७९॥
महा-अकैतव आइ परम उदार । भांगाइते दिते ओ डराय बारे बार ॥१८०॥
'दशठाञि पाँचठाञि देखाइया आगे' । लोकेरे शिखाय आइ 'भांगाइबि तबे' ॥१८१॥
हेन-मते-महा प्रभु सर्ब्ब सिद्धेश्वर । गुप्तभावे आछे नवद्वीपेर भितर ॥१८२॥
ना छाड़ेन श्री हस्ते पुस्तक एकक्षण । पढुआ गोष्ठीते येन प्रत्यक्ष मदन ॥१८३॥

---

लिये किया ॥ १६७ ॥ घर, द्वार, द्रव्य सब कुछ तुम्हारा ही है; जो हानि हुई वह भी तुम्हारी ही है; इसमें हमारा क्या स्वत्व है । कहो ! तुम तो अभी पढ़ने जाओगे, घर में तो कुछ भी सहारा नहीं है; कल क्या खाओगे ? ॥१६८–१६९॥श्रीजननी के वचनों को सुनकर प्रभु हँसे और कहने लगे कि–"मातः ! पालन कर्त्ता श्रीकृष्ण हैं; वे ही पालन करेंगे ।"इतना कहकर सरस्वतीपति प्रभु श्रीविश्वम्भरचन्द्र हाथ में पुस्तक लेकर पढ़ने को चले गये ॥ १७०–१७१ ॥ कुछ समय तक प्रसन्न मन विद्या-रस-आस्वादन करके, सन्ध्या समय श्रीगङ्गा-तीर पर पहुँचे । कुछ देर गङ्गा-तीर में ठहर कर फिर अपने घर लौट आये ॥ १७२-१७३ ॥ घर में आकर श्री-मानाजी को पुकार कर एकान्त में बुलाया और दो तोला दिव्य सोना उनके हाथ रख दिया । आप कहने लगे कि–मेरी मैया ! यह देखो ! श्रीकृष्ण ने यह सहारे को दिया है; इसको तुड़वाकर सब व्यय चलाओ ॥ १७४-१७५ ॥इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु जी शयन घर में शयन करने के लिये चले गये; श्रीमाताजी परम विस्मित होकर मन ही मन विचार करने लगीं ॥ १७६ ॥ "यह सोना बार-बार कहाँ से ले आता है; ऐसा न हो कोई और झगड़ा खड़ा करवा ले । जब-जब घर में खर्च की कमी पड़ती है, तब-तब बारम्बार इसी प्रकार सोना ले आता है । न मालुम किसी से उधार करके लाता है, अथवा कोई सिद्धि जानता है; किस प्रकार से किसका सोना कैसे ले आता है" ॥ १७७–१७९ ॥ श्रीशचीमाता महानिष्कपट एवं परम उदार हैं । आप उस सुवर्ण को तुड़वाने के लिये देने में भी बार-बार डरती हैं । अपने सेवक को श्रीमाता जी सिखाती हैं कि—"दश, पाँच ठौर पहिले दिखाकर, पीछे तुड़वाना" ॥ १८०–१८१ ॥ इस प्रकार सर्व सिद्धेश्वर श्रीमन्महाप्रभुजी गुप्त भाव से श्रीनवद्वीप में रहे १८२ आप अपने श्री हस्त से एक क्षण के लिये भी पुस्तक नहीं छोड़ते तथा

ललाटे शोभये ऊर्द्ध-तिलक सुन्दर । शिरे श्री चाँचर-केश सर्व्व-मनोहर ॥१८४॥
स्कन्धे उपवीत, ब्रह्मतेज मूर्त्तिमन्त । हास्यमय श्री मुख, प्रसन्न दिव्य-दन्त ॥१८५॥
*कि वा से अद्भुत दुइ कमल-नयन । कि वा से अद्भुत शोभे त्रिकच्छ वसन ॥१८६॥
जेइ देखे, सेइ एकदृष्टे रूप चाय । हेन नाहि 'धन्य धन्य' बलिये ना जाय ॥१८७॥
हेन से अद्भुत व्याख्या करेन ठाकुर । शुनिञा गुरुर हय सन्तोष प्रचुर ॥१८८॥
सकल पडुया-मध्ये आपने धरिया । वसायेन गुरु सर्व्व-प्रधान करिया ॥१८९॥
गुरु बोले 'बाप ! तुमि मन दिया पड़ । भट्टाचार्य हैबा तुमि, बलिलाङ दढ़' ॥१९०॥
प्रभु बोले 'तुमि आशीर्व्वाद कर जारे । भट्टाचार्य-पद कोन दुर्लभ ताहारे' ॥१९१॥
जाहारे जे जिज्ञासेन श्री गौरसुन्दर । हेन नाहि पडुया जे दिबेक उत्तर ॥१९२॥
आपनि करेन तबे सूत्रेर स्थापन । शेषे आपनार व्याख्या करेन खण्डन ॥१९३॥
केहो यदि कोन मते ना पारे स्थापिते । तबे सेइ व्याख्या प्रभु करेन सुरीते ॥१९४॥
कि वा स्नाने, कि भोजने, कि वा पर्य्यटने । नाहिक प्रभुर आर चेष्टा शास्त्र बिने ॥१९५॥
एइमते आछेन ठाकुर विद्यारसे । प्रकाश ना करे जगतेर दिन-दोषे ॥१९६॥
हरि-भक्ति-शून्य हैल सकल संसार । असत्सङ्ग असत्पथ बहि नाहि आर ॥१९७॥
नाना रूपे पुत्रादिर महोत्सव करे । देह गेह-व्यतिरिक्त आर नाहि स्फुरे ॥१९८॥

---

अङ्ग-प्रत्यङ्गों में प्रत्यक्ष मदन के समान शोभा पाते थे ॥ १८३ ॥ आपके ललाट प्रदेश में सुन्दर ऊर्ध्व-पुण्ड्र तिलक शोभा देता था; सर्व मनहरणकारी घुँघराले चिक्कन केश-कलाप सिर पर लहलहा रहे थे । स्कन्ध देश में यज्ञोपवीत सुशोभित था,मानों आप मूर्तिमन्त ब्रह्मतेज ही थे । परन्तु श्रीमुख के ऊपर हँसी की चाँदनी छा जाती थी,दिव्य दन्त-पंक्ति शोभा दे रही है,आपके वे दोनों नयनकमल की तरह अद्भुत शोभा को प्राप्त होरहे थे और यह त्रिकच्छ वस्त्र क्या ही विलक्षण शोभा दे रहा था । जो कोई भी देखता, वही टकटकी लगाकर रूप को निरन्तर देखता ही रह जाता था; ऐसा कोई नहीं था जो 'धन्य-धन्य' कहकर न जाता हो॥१८४-१८७॥ ठाकुर ऐसी अद्भुत व्याख्या करते थे कि जिसे सुनकर श्रीगुरुदेव परम सन्तोष होते थे ॥ १८८ ॥ श्रीगुरुदेव निज यत्न से श्रीविश्वम्भरचन्द्र को उठाकर सम्पूर्ण गोष्ठी के मध्य में 'सर्व प्रधान' कहकर बिठाते थे ॥ १८९ ॥ श्रीगुरुदेव ने कहा कि—"हे वत्स ! विश्वम्भर ! तुम मन लगाकर पढ़ो; मैं दृढ़ता पूर्वक ( जोर देकर ) अवश्य कहता हूँ, तुम भट्टाचार्य हो जाओगे" ॥ १९० ॥ प्रभु बोले कि—"हे श्री गुरो ! जिसके ऊपर आपका आशीर्वाद हो, उसके लिये भट्टाचार्य पद प्राप्त कर लेना, कौन दुर्लभ बात है ?" ॥१९१॥ श्रीगौरसुन्दर जिस किसी विद्यार्थी से जो कुछ प्रश्न करते थे, किसी में भी शक्ति नहीं, जो उसका उत्तर दे सके ॥ १९२ ॥ तब प्रभु स्वयं उस सूत्र की स्थापना करते, फिर अपनी व्याख्या का आप ही खण्डन करके दिखाते थे ॥ १९३ ॥ यदि कोई किसी प्रकार से भी स्थापन नहीं कर सकता, तब प्रभु स्वयं उस व्याख्या को बड़ी सुन्दर रीति से स्थापन कर देते थे ॥ १९४ ॥ क्या स्नान समय, क्या भोजन समय और क्या पर्यटन समय, शास्त्र चर्चा के सिवाय श्रीप्रभु की और कोई दूसरी चेष्टा नहीं थी ॥ १९५ ॥ इसी प्रकार ठाकुर विद्यारस में निमग्न थे; संसार के दिनों के दोष से आप अपने को प्रकाशित नहीं करते थे ॥ १९६ ॥ इस समय सब संसार हरि भक्ति शून्य हो

***त्रिकच्छ—धोती बाँधकर आगे पेट पर बरकी हुई चुन्नट को उठाकर नाभि के पास धोती बन्द के साथ दबा देते हैं।**

'कृष्णनलि' स०र्वजन करन क्रन्दन ए मब जीवेर कृपा कर नारायण २००
हेन देह पाइया कृष्णेते नाहि मति कत काल गिया आर भुञ्जिव दुर्गति २०१।
जे नर शरीर लागि देवे काम्य करे। ताहा व्यथ जाय व्यर्थ सुखेर विहारे ॥२०२॥
कृष्ण यात्रा महोत्सव पर्व्व नाहि करे। विवाहादि कर्म लागि श्रमकरि मरे ॥२०३॥
तोमार से जीव कृष्ण तुमि से रक्षिता। कि बलिव आमरा तुमि 'त' सर्व्व पिता' ॥२०४॥
एइ मत भक्तगण सभार कुशल। चिन्तेन गायेन कृष्ण चन्द्रेर मङ्गल ॥२०५॥
विद्या-रस करे गौरचन्द्र भगवान्। ए क्षणे शुनह नित्यानन्देर आख्यान ॥२०६॥
पूर्व्वे प्रभु श्री अनन्त कृष्णेर आज्ञाय। राढ़े अवतीर्ण हइयाछेन लीलाय ॥२०७॥
हाड़ो ओझा नामे पिता, माता पद्मावती। एकचाका नामे ग्राम मौड़ेश्वर जथि ॥२०८॥
शिशु हइते सुबुद्धि सुस्थिर गुणवान्। जिनिया कन्दर्प कोटि लावण्येर धाम ॥२०९॥
सेइ हैते राढ़े हइल सर्व्व सुमंगल। दुर्भिक्ष दरिद्र दोष खण्डिल सकल ॥२१०॥
जे दिने जन्मिला नवद्वीपे गौर चन्द्र। राढ़े थाकि हुङ्कार करिला नित्यानन्द ॥२११॥
अनन्त ब्रह्माण्ड व्यापि हइल हुङ्कार। मूर्च्छागत हइल जेन सकल संसार ॥२१२॥

---

रहा था, असत्सङ्ग और असन्मार्ग के अतिरिक्त और कुछ नहीं थे ॥ १९७ ॥ लोग नाना प्रकार से पुत्र आदि के महोत्सव करते थे; उनको देह एवं गृह के सिवाय और कुछ नहीं सूझता है ॥ १९८ ॥ सब लोगों के मिथ्या सुख के व्यवहार देखकर वैष्णवगण परम दुःखित होते थे ॥ १९९ ॥ वह सब भक्त-जन कृष्ण ! कृष्ण ! कहते हुए क्रन्दन करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि—'हे नारायण ! इन सब जीवों के प्रति कृपा करो ॥ २०० ॥ इन सब जीवों की ऐसा भी देह पाकर श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति नहीं है। यह जीव और कितने समय तक दुर्गति भोग करेंगे ॥ २०१ ॥ जिस नर-शरीर को पाने के लिये देवगण कामना करते रहते हैं, इनका वही नर-शरीर वृथा सुख-विहार में व्यर्थ जा रहा है ॥ २०२ ॥ यह लोग श्रीकृष्ण-भक्ति पद श्रीकृष्ण-यात्रा, महोत्सव और पर्व आदि कुछ नहीं करते हैं; केवल विवाह आदि में परिश्रम कर करके मर रहे हैं ॥ २०३ ॥ हे कृष्ण ! यह जीव आपका ही है, इसके आप रक्षक हैं, हम लोग क्या कहें आप तो सर्वपिता हैं ॥२०४॥ इसी प्रकार भक्त-जन सब जीवों की कुशल कामना करते हैं और श्रीकृष्णचन्द्र का मङ्गल-यश गान करते है ॥ २०५ ॥ यहाँ श्रीगौरचन्द्र भगवान् विद्या-रस केलि में लगे हुए हैं। अब उधर प्रभु-पाद श्रीनित्यानन्द जी का आख्यान सुनिये ॥ २०६ ॥ इधर पहले ही श्रीकृष्ण की आज्ञा से, श्रीअनन्तदेव (श्रीनित्यानन्द प्रभु) राढ़ देश में लीला-हेतु प्रकटित हुए ॥ २०७ ॥ आपके पिता का नाम 'श्रीहाड़ाइ ओझा', आपकी माताजी का नाम 'श्रीपद्मा-वतीदेवी' आपके जन्म-ग्राम का नाम 'एकचक्रा' जहाँ पर कि मयूरेश्वर देव विराजित हैं ॥ २०८ ॥ आप बालकपन से ही सुबुद्धि, सुस्थिर, गुणवान् और अपने श्रीअङ्ग के लावण्य धाम से कोटि कामदेवों को जीतने वाले थे ॥ २०९ ॥ आपके जन्म-दिन से ही राढ़ देश में सर्व सुमङ्गल हो गये और दुर्भिक्ष व दरिद्रता का दोष नष्ट हो गया ॥ २१० ॥ जिस दिन नवद्वीप में श्रीगौरचन्द्र अवतीर्ण हुए थे उस दिन श्रीनित्यानन्द प्रभु ने श्रीराढ़देश में हुङ्कार की थी ॥२११ वह हुङ्कार अनन्त-ब्रह्माण्ड-व्यापी हुई थी उस समय ऐसा प्रतीत हुआ

कत लोक बलिलेक हइल वज्रपात । कत लोक मानिलेक परम उत्पात ॥२१३॥
कत लोक बलिलेक जानिलुँ कारण । गौड़ेश्वर गोसाञिर हइल गर्ज्जन ॥२१४॥
एइमत सर्व्व लोक नाना कथा गाय । नित्यानन्द केहो नाहि चिनिल मायाय ॥२१५॥
हेन मते आपना लुकाइया नित्यानन्द । शिशु-गण सङ्गे खेला करेन आनन्द ॥२१६॥
शिशु-गण सङ्गे नित्यानन्द क्रीड़ा करे । श्रीकृष्णेर वाक्य बिना आर नाहि स्फुरे ॥२१७॥
देव सभा करेन मिलिया शिशु-गण । पृथिवीर रूपे केह करे निवेदन ॥२१८॥
तबे पृथ्वी लैया सबे नदीतीरे जाय । शिशु गण मेलि स्तुति करे ऊर्द्ध राय ॥२१९॥
कोन शिशु लुकाइया ऊर्द्ध करि बोले । जन्मिबाङ आमि गिया मथुरा गोकुले ॥२२०॥
कोन दिन निशा भागे शिशु-गण लैया । वसुदेव देवकीर करायेन बिया ॥२२१॥
बन्दिघर करिया अत्यन्त निशा भागे । कृष्ण-जन्म करायेन केह नाहि जागे ॥२२२॥
गोकुल सृजिया तथि आनेन कृष्णेरे । महामाया दिला लइया भाण्डिला कंसेरे ॥२२३॥
कोन शिशु साजायेन पूतनार रूप । केहो स्तन पान करे उठि तार बुके ॥२२४॥
कोन दिन शिशु सङ्गे नल-खड़ि दिया । शकट गड़िया ताहा फेलेन भाङ्गिया ॥२२५॥
निकटे वसये यत गोयालार घरे । अलक्षिते शिशु-सङ्गे गिया चुरि करे ॥२२६॥
तारे छाड़ि शिशु-गण नाहि जाय घरे । रात्रि दिन नित्यानन्द संहति विहरे ॥२२७॥

---

था मानो समस्त संसार को मूर्च्छा हो गई ॥ २१२ ॥ उस समय कुछ लोग कहने लगे कि—वज्रपात हुआ है और कुछ अन्य लोगों ने कोई परम उत्पात समझा ॥ २१३ ॥ कुछ लोग बोले कि—समझ लिया कारण, गौड़ेश्वर प्रभु ने तर्जना की है ॥ २१४ ॥ उस दिन सब लोग इसी प्रकार की नाना बातें करते थे; परन्तु माया के वशीभूत होने के कारण कोई यह नहीं समझ सका कि—यह श्रीनित्यानन्द प्रभु ने हुङ्कार की है ॥ २१५ ॥ इसी प्रकार अपने को छिपाकर श्रीनित्यानन्द प्रभु बालकों के संग खेल खेलकर आनन्दित होते थे ॥ २१६ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु के मुख से बालकों के साथ खेलते समय श्रीकृष्ण विषयक वाक्यों के अतिरिक्त अन्य और कुछ निकलते न थे ॥ २१७ ॥ क्रीड़ा के समय सब शिशुगण मिलकर 'देव-सभा' का खेल करते तो एक बालक अपने को पृथ्वी जानकर उनकी सभा में अपना निवेदन सुनाता ॥ २१८ ॥ तब वे सब पृथ्वी को साथ लेकर नदी के किनारे पर जाते और ऊँचे स्वर से सब बालकगण मिलकर प्रभु की स्तुति करते थे ॥ २१९ ॥ तब शिशु छिपकर ऊँचे स्वर से कहता कि—मैं मथुरा-गोकुल में जाकर जन्म लूँगा ॥ २२० ॥ किसी दिन रात्रि के समय वे शिशुओं को लेकर वसुदेव-देवकी का विवाह कराते हैं ॥२२१॥ घोर अँधेरी रात में एक बन्दी-घर बनाकर उसमें श्रीकृष्ण का जन्म कराते, उस समय गाँव के लोग तो सोते थे ॥२२२॥ पास में ही गोकुल नगर बनाकर पूर्व स्थान से श्रीकृष्ण को वहाँ ले आते और कंस बने हुए शिशु के पास, महामाया बने हुए शिशु को ले जाकर उस ( कंस ) से छल करते थे ॥ २२३ ॥ एक बालक को 'पूतना' बनाते और श्रीकृष्ण बने हुए शिशु उसके वक्षःस्थल पर चढ़कर उसका स्तन पान करते थे ॥ २२४ ॥ किसी दिन बालकों के साथ नल ( नरसल ) व खड़िया द्वारा शकट रचना करके उसको तोड़ कर फेंक देते थे ॥ २२५ ॥ ( आप श्रीनित्यानन्द [illegible] श्रीकृष्ण के रूप में ग्वाल-बाल बने हुए शिशुगणों के साथ, निकटवर्ती ग्वालाओं के घर अलक्षित रूप

जाहार बालक तारा किछु नाहि बोले । सबे स्नेह करिया राखेन लइया कोले ॥२२८॥
सभे बले नाहि देखि हेन मत खेला । के मने जानिल शिशु एत कृष्ण-लीला ॥२२९॥
कोन दिन पत्रेर गढ़िया नाग गण । जले जाय संहति लइया शिशु-गण ॥२३०॥
झाँप दिया पड़े केहो अचेष्ट हइया । चैतन्य कराय पाछे आपने आसिया ॥२३१॥
कोन दिने तालबने शिशु सङ्गे गिया । शिशु-सङ्गे ताल खाय धेनुके मारिया ॥२३२॥
शिशु-सङ्गे गोष्ठे गिया नाना क्रीड़ा करे । बक, अघ, वत्स करिया ताहा मारे ॥२३३॥
विकाले आइसे घर गोष्ठोर सहिते । शिशु-गण-सङ्गे शृङ्ग वाइते वाइते ॥२३४॥
कोन दिन करे गोवर्द्धन धर लीला । वृन्दावन रचि कोन दिन करे खेला ॥२३५॥
कोन दिन करे गोपीर बसन-हरण । कोन दिन करे जज्ञ पत्नी दरशन ॥२३६॥
कोन शिशु नारद काचये दाढ़ि दिया । कंस स्थाने मन्त्र कहे निभृते बसिया ॥२३७॥
कोन दिन कोन शिशु अक्रूरेर वेशे । लइया जाय 'रामकृष्ण' कंसेर आदेशे ॥२३८॥
आपने जे गोपी भावे करेन क्रन्दन । नदी वहे हेन जेन देखे शिशु-गण ॥२३९॥
विष्णु माया मोहे केहो लखिते नो पारे । नित्यानन्द संगे सब बालक विहरे ॥२४०॥
मधुपुरी रचिया भ्रमेण शिशु संगे । केह हय माली केह माला परे रंगे ॥२४१॥

---

से जाकर चोरी करते थे ॥ २२६ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु को छोड़कर बालक-वृद्ध अपने घर नहीं जाते थे, वे सब रात्रि दिन उनके साथ ही खेलते ( विहार करते ) रहते थे ॥ २२७ ॥ जिनके बालक आपके साथ में रहते थे वे भी आपसे कुछ नहीं कहते; वरन् सभी स्नेह करके गोदी में ले लेते थे ॥ २२८ ॥ वह सब कहते कि–हमने तो ऐसे खेल कभी नहीं देखे हैं, इस बालक ने इतनी 'कृष्ण-लीला' किस प्रकार जान ली ? ॥ २२९ ॥ किसी दिन आप पत्रों द्वारा नाग-गण रचना करके शिशु-वृन्द को अपने साथ लेकर जल के पास जाते॥२३०॥ वहाँ जाकर एक बालक अचेष्ट होकर जल में कूद पड़ता था; पीछे प्रभु स्वयं जाकर उसको चेतन कराते थे ॥ २३१ ॥ किसी दिन खेल में शिशुगण को साथ ले जाकर तालवन में धेनुकासुर को मारकर ताल-फल खाने की लीला करते ॥ २३२ ॥ एवं सब बालकों के साथ गोष्ठ में जाकर नाना प्रकार की क्रीड़ा करते थे–वकासुर, अघासुर, वत्सासुर बना-बनाकर उसका वध करने की लीला करते थे ॥२३३॥ वहाँ से तृतीय-प्रहर में गोष्ठों के साथ जिसमें कि शिशुगण शृङ्ग बजाते बजाते लौट कर घर आते थे ॥ २३४ ॥ किसी दिन गोवर्द्धन-धारण की लीला करते तो किसी दिन वृन्दावन रचन कर उसमें क्रीड़ा-विहार करते थे ॥ २३५ ॥ किसी दिन गोपियों के वस्त्र-हरण लीला करते तो किसी दिन यज्ञ-पत्नियों को दर्शन देने की लीला करते थे ॥२३६॥ किसी दिन एक शिशु दाढ़ी लगाकर नारद-बेश धारण करके कंस के पास जाकर एकान्त में उसके हित की बात उससे कहता था ॥ २३७ ॥ किसी दिन एक शिशु श्रीअक्रूर के बेश से कंस महाराज के आदेशानुसार श्रीबलरामजी व श्रीकृष्ण को व्रज से ले जाता है ॥ २३८ ॥ उस समय आप ( श्रीनित्यानन्द प्रभु ) गोपी-भाव से क्रन्दन करने लगते; प्रभु की अश्रु धारा नदी रूप होकर बहने लगती थी। बालकगण प्रभु की ओर देखते ही रह जाते थे ॥ २३९ ॥ इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु के साथ सब बालक-वृन्द विहार करते थे; उस समय श्रीविष्णु-माया से मोहित होने के कारण कोई भी (आपको) जान नहीं पाता था २४० किसी दिन श्रीमधु-

के तोरा बानर सब बल एइ बने । आमि रघुनाथभृत्य बल मोर स्थाने ॥२५६॥
तारा बले आमरा बालिर भये बुलि । देखा ओ श्री रामचन्द्र लइ पद-धूलि ॥२५७॥
ता सभारे सङ्गे करि आइला लइया । श्री रामचरणे पड़े दण्डवत हइया ॥२५८॥
इन्द्रजित-वध लीला कोन दिन करे । कोनोदिन आपने लक्ष्मण भावे हारे ॥२५९॥
विभीषण करिया आनेन राम स्थाने । लङ्केश्वर अभिषेक करेन ताहाने ॥२६०॥
कोनो शिशु बले मुञि आइलुँ रावण । शक्ति शेल हानि एइ, सम्बर लक्ष्मण ॥२६१॥
एत बलि पद्मपुष्प मारिल फेलिया । लक्ष्मणेर भावे प्रभु पड़िला ढ़लिया ॥२६२॥
मूर्च्छित हइला प्रभु लक्ष्मणेर भावे । जगायेन सब शिशु तभु नाहि जागे ॥२६३॥
परमार्थे धातु नाहि सकल शरीरे । कान्दये सकल शिशु हाथ दिया शिरे ॥२६४॥
शुनि माता पिता धाइ आइला सत्वरे । देखये पुत्रेर धातु नाहिक शरीरे ॥२६५॥
मूर्च्छित हइया दोंहे पड़िला भूमिते । देखि सर्व्व लोक आसि हइला विस्मिते ॥२६६॥
सकल वृत्तान्त कहिलेन शिशुगण । केह केह बुझिलेन भावेर कारण ॥२६७॥
पूर्व्वे दशरथ भावे एक नटवर । राम बनवासी शुनि त्यजे कलेवर ॥२६८॥
केह बले 'काच काचियाछे जे छाओयाल । हनूमान औषधि दिले हइ बेजे भाल ॥२६९॥

---

प्रभु पूछते कि–रे सब बानरो ! बतलाओ तुम कौन हो ? मैं श्रीरामचन्द्र जी का सेवक हूँ, हमको बतलाओ तुम वन में क्यों फिर रहे हो ? ॥ २५६ ॥ वे उत्तर देते कि–हम सब 'बालि' के भय से फिरते हैं आप हमको श्रीरामचन्द्र दर्शन करा दीजिये हम जाकर उनकी पद-धूलि लें ॥ २५७ ॥ प्रभु उन सबको साथ लेकर आते और वे सब श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में साष्टाङ्ग दण्डवत् करते ॥ २५८ ॥ किसी दिन आप इन्द्रजीत-वध लीला करते और किसी दिन आप श्रीलक्ष्मण भाव से हार जाते थे ॥ २५९ ॥ किसी दिन एक शिशु को विभीषण बनाकर उसे श्रीरामचन्द्र जी के पास लाते; श्रीरामचन्द्र जी उसको लङ्केश्वर कह के अभिषेक करते ॥ २६० ॥ किसी दिन कोई एक शिशु कहता कि–देखो ! मैं रावण सामने आया हूँ, लक्ष्मण ! तुम सावधान हाओ यह देखो ! मैं शक्ति ( सेल ) प्रहार करता हूँ ॥ २६१ ॥ ऐसा कह कर उसने कमलपुष्प फेंका एवं प्रभु लक्ष्मण भाव में उस समय ढल गये ॥ २६२ ॥ उस समय प्रभु श्रीलक्ष्मण के भाव से मूर्च्छित हो गये; सब शिशु आपको जगाते हैं परन्तु तो भी आप जागृत अवस्था में नहीं आते हैं ॥ २६३ ॥ सचमुच ही आपके सम्पूर्ण शरीर में ( प्राण ) नहीं हैं सब बालक आपकी ऐसी दशा देखकर सिर पर हाथ रखकर रोने लगे ॥ २६४ ॥ इस बात को सुनकर प्रभु के माता-पिता शीघ्र ही दौड़कर आये और आकर देखा कि–सचमुच ही पुत्र के शरीर में ( प्राण ) नहीं है ॥ २६५ ॥ तब तो वह दोनों मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े तथा सब लोग आकर यह आश्चर्य-जनक दृश्य देखकर बड़े विस्मित हुए॥२६६॥लोगों के पूछने पर शिशु-गण ने समस्त वृतान्त कह सुनाया तब उनमें से कोई २ प्रभु के इस भावावेश का कारण इस प्रकार अनुमान किये कि–॥ २६७ ॥ जैसे पूर्व काल में एक श्रेष्ठ नाट्यकार ने श्रीरामचन्द्र जी का वनवास सुनकर श्रीदशरथ के भाव से अपना शरीर छोड़ दिया था, स्यात् उसी प्रकार का भाव इनको भी न हो गया हो ॥ २६८ ॥ कोई कहता है कि–जिस बालक ने [illegible] का वेश धारण कर रक्खा है उसके द्वारा औषधि देने से यह अच्छे

पूर्व्वे प्रभु शिखाइया छिलेन सभारे । पड़िले तोमरा बेड़ि कान्दिह आमारे ॥२७०॥
क्षणेक विलम्बे पाठाइया हनूमान । नाके दिले औषधि आसिबे मोर प्राण ॥२७१॥
निज भावे प्रभु मात्र हइला अचेतन । देखि बड़ विकल हइला शिशु-गण ॥२७२॥
छन्न हइलेन सभे शिक्षा नाहि स्फुरे । उठ भाइ ! बलि मात्र कान्दे उच्च स्वरे ॥२७३॥
लोक मुखे शुनि कथा हइल स्मरण । हनूमान काछे शिशु चलिला तखन ॥२७४॥
आर एक शिशु पथे तपस्वीर वेशे । फल मूल दिया हनूमानेरे, आशंसे ॥२७५॥
'रह बाप ! धन्य कर आमार आश्रम । बड़ भाग्ये आसि मिले तोमा हेन जन ॥२७६॥
हनूमान बले 'कार्य्ये गौरवे चलिब । आसिबारे चाहि, रहिबारे ना पारिब ॥२७७॥
शुनियाछ रामचन्द्र अनुज लक्ष्मण । शक्ति शेले ताँरे मूर्च्छा करिल रावण ॥२७८॥
अतएव जाइ आमि गन्ध मादन । औषध आनिले रहे ताँहार जीवन' ॥२७९॥
तपस्वी बलये 'जदि जाइबे निश्चय । स्नान करि किछु खेये करह विजय' ॥२८०॥
नित्यानन्द शिक्षाते बालके कथा कय । विस्मित हइया सर्व्व लोके रहि चाय ॥२८१॥
तपस्वीर बोले सरोवरे गेला स्नाने । जले थाकि आर शिशु धरिला चरणे ॥२८२॥
कुम्भीरेर रूप धरि जाय जले लैया । हनूमान शिशु आने कूलेते टानिञा ॥२८३॥

---

हो जाँयगे' ॥२६९॥ वैसे तो प्रभु ने पहिले ही सब शिशु-गण को सिखा दिया कि—मेरे मूर्च्छित होने पर तुम सब मुझे चारों ओर से घेरकर मेरे लिये क्रन्दन करना ॥ २७० ॥ थोड़ी देर पीछे हनुमानजी से औषधि मँगवाना, फिर उसको मुझे सुँघा देना तो मेरे प्राण लौट आवेंगे ॥ २७१ ॥ इतना कहते ही प्रभु जब श्रीलक्ष्मण भाव से अचेतन हो गये तो प्रभु की यह दशा देखकर शिशु-गण बड़े विकल हुए ॥ २७२ ॥ वे सब खिन्न हो गये थे, ऐसी दशा में उन्हें प्रभु प्रदत्त-शिक्षा स्मरण नहीं हो रही थी, वह केवल 'उठो भाई !' बोल-बोल कर उच्च स्वर से क्रन्दन कर रहे थे ॥ २७३ ॥ अब लोगों के मुख से यह प्रसङ्ग सुनकर कि—जिस बालक ने श्री-हनुमान जी का वेश धारण किया उसके दवा देने से यह अच्छे हो जाँयगे ) उनको प्रभु प्रदत्त-शिक्षा स्मरण हो आई, तब श्रीहनुमान वेशधारी बालक ने औषधि लेने के लिए प्रस्थान किया ॥ २७४ ॥ एक और शिशु रास्ते में तपस्वी के वेश में फल-मूल देकर श्रीहनुमानजी को आशीर्वाद देने लगा और कहने लगा कि॥२७५॥ हे मित्र ! यहाँ पर कुछ विश्राम कीजिये और हमारे आश्रम को धन्य कीजिये; आप जैसे पुरुष बड़े भाग्य से आकर मिलते हैं ॥ २७६ ॥ हनुमानजी कहते हैं कि—मैं एक विशेष गौरव कार्य के लिये जा रहा हूँ, फिर लौटना भी है, इसलिये मैं ठहर नहीं सकता ॥ २७७ ॥ तुमने सुना है कि—श्रीरामचन्द्र जी के छोटे भाई श्री-लक्ष्मण जी को रावण ने शक्ति-बाण से मूर्च्छित कर दिया है ॥२७८॥ अतएव मैं दवा लाने के लिये जिससे कि उनके जीवन की रक्षा हो, गन्धमादन पर्वत पर जा रहा हूँ ॥ २७९ ॥ तपस्वी कहता कि—"यदि आपको जाना निश्चय ही है तो यहाँ स्नान करके कुछ खाकर आप पधारिये" ॥ २८० ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु की शिक्षा से बालक परस्पर इस प्रकार बातें करते हैं सब लोग विस्मित होकर उनकी ओर देखते हैं॥२८१॥श्रीहनुमानजी तपस्वी के कहने से स्नान करने के लिये सरोवर में उतरते मात्र जल में छिपे हुए एक और शिशु ने आपके चरण पकड़ लिये॥ २८२ और मगर का रूप धरकर वह राक्षस उन्हें जल में ले गया, हनुमान-शिशु उनको

कथोक्षणे रण करि जिनिआ कुम्भीर । आसि देखे हनूमान आर महाबीर ॥२८४॥
आर एक शिशु धरि राक्षसेर काचे । हनूमान खाइबारे जाय तार पाछे ॥२८५॥
'कुम्भीर जिनिला, मोरे जिनिबा केमने । तोमाखाङ, तबे केबा जीयाबे लक्ष्मणे' ॥२८६॥
हनूमान बोले तोर रावण कुक्कुर । तारे नाहि वस्तु बुद्धि, तुइ पाला दूर ॥२८७॥
एइमते दुइ जने हय गाला गाली । शेषे हय चूलाचूली तबे किलाकिली ॥२८८॥
कथोक्षणे से कौतुके जिनिआ राक्षसे । गन्धमादने आसि हइला प्रवेशे ॥२८९॥
तँहि गन्धर्व्वेर वेश धरि शिशुगण । तासभार सङ्गे युद्ध हय कथोक्षण ॥२९०॥
युद्धे पराजय करि गन्धर्व्वेर गण । शिरे करि आनिलेन गन्धमादन ॥२९१॥
आर एक शिशु तँहि वैद्य रूप धरि । औषध दिलेन नाके श्रीराम स्मङरि ॥२९२॥
नित्यानन्द महाप्रभु उठिला तखने । देखि माता-पिता-आदि हासे सर्व्व जने ॥२९३॥
कोले करिलेन गिया हाड़ाइ पण्डित । सकल बालक हइलेन हरषित ॥२९४॥
सभे बोले 'बाप ! इहा कोथाय शिखिला ?' । हासि बोले प्रभु 'मोर ए सकल लीला' २९५॥
प्रथम वयस प्रभु अति सुकुमार । कोले हैते कारो चित्त नाहि एड़िबार ॥२९६॥
सर्व्व लोके पुत्र हैते बड़ स्नेह वासे । चिन्तिते ना पारे केहो विष्णु माया-वशे ॥२९७॥
हेन मते शिशु काल हैते नित्यानन्द । कृष्णलीला बिना आर ना करे आनन्द ॥२९८॥
पिता माता गृह छाड़ि सर्व्व शिशु-गण । नित्यानन्द-संहति विहरे अनुक्षण ॥२९९॥

---

खींचकर किनारे पर ले आया ॥ २८३ ॥ इसी प्रकार थोड़ी देर युद्ध करके मगर को जीतकर श्रीहनूमानजी ने ऊपर आकर एक और महावीर को देखा ॥ २८४ ॥ एक और शिशु राक्षस का वेश धारण करके हनूमानजी को खाने के लिये उनके पीछे दौड़ा ॥ २८५ ॥ उसने कहा कि–तुमने मगर को तो जीत लिया परन्तु मुझे कैसे जीतोगे ? अगर मैं तुमको खा जाऊँ तो लक्ष्मण को कौन जिवायेगा ? ॥ २८६ ॥ श्रीहनूमान जी बोले–"तेरा रावण तो कुत्ता है, मैं उसको कोई वस्तु नहीं समझता हूँ, तू दूर हट ॥ २८७ ॥ इसी भाँति से दोनों में पहिले गाली-गलौज हुई, फिर बाल नोंचा-नोंची और अन्त में मुक्का-मुकी होने लगी ॥ २८८ ॥ कुछ क्षण में श्रीहनूमानजी खेल ही में राक्षस को जीतकर गन्धमादन पर्वत पर जा पहुँचे ॥ २८९ ॥ वहाँ पर शिशुगण गन्धर्वों का वेश धारण करके कुछ देर श्रीहनूमान जी के साथ युद्ध में प्रवृत्त हुए ॥ २९० ॥ अन्त में श्रीहनूमानजी गन्धर्व-गण को युद्ध में परास्त करके गन्धमादन को सिर पर रखकर ले आये ॥ २९१ ॥ एक और शिशु वहीं वैद्य का रूप धारण करके 'श्रीराम' स्मरण कर श्रीलक्ष्मण जी की नाक में औषधि देता है ॥२९२॥ तब श्रीनित्यानन्द महाप्रभु उठ बैठे हैं इनको देखकर माता-पिता आदि सब लोग हर्षित हुए ॥ २९३ ॥ श्री-हाड़ाइ पण्डित जाकर उन्हें गोदी में उठाया तथा सब बालक प्रसन्न हो गये ॥ २९४ ॥ सब लोग कहने लगे कि बालक ! यह खेल कहाँ सीखे हो ? प्रभु ने हँसकर उत्तर दिया कि–'यह सब मेरी ही लीला है' ॥ २९५ ॥ प्रभु की बालक वयस थी आप अति सुकुमार थे, आपको गोदी में उतारने की किसी की इच्छा नहीं होती थी ॥ २९६ ॥ सब लोग आपको पुत्र से भी अधिक स्नेह करते थे, परन्तु विष्णु-माया के वशीभूत होकर आपको कोई समझ नहीं पाता था ॥ २९७ ॥ इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु बालकपन से ही श्रीकृष्ण-लीला के

से सब शिशुर पाये रहु नमस्कार । नित्यानन्द सङ्गे जार एमन विहार ॥३००॥
एइमत क्रीड़ा करे नित्यानन्द राय । शिशु हैते कृष्णलीला बिने नाहि भाय ॥३०१॥
अनन्तेर लीला केबा पारे कहिबारे । ताहान कृपाय जेन मत स्फुरे जारे ॥३०२॥
हेनमते द्वादश वत्सर थाकि घरे । नित्यानन्द चलिलेन तीर्थ करिबारे ॥३०३॥
तीर्थ-जात्रा करिलेन विंशति वत्सर । तबे शेषे आइलेन चैतन्य-गोचर ॥३०४॥
नित्यानन्द तीर्थ-जात्रा शुन आदिखण्डे । जे प्रभुरे निन्दे दुष्ट पापिष्ठ पाषण्डे ॥३०५॥
जे प्रभु करिल सर्व्व-जगत-उद्धार । करुणा समुद्र जाहा बहि नाहि आर ॥३०६॥
जाहार कृपाये जानि चैतन्येर तत्त्व । जे प्रभुर द्वारे व्यक्त चैतन्य महत्त्व ॥३०७॥
शुन श्री चैतन्य प्रियतमेर कथन । जे मते करिला तीर्थ-मण्डली-भ्रमण ॥३०८॥
प्रथमे चलिला प्रभु तीर्थ वक्रेश्वर । तबे वैद्यनाथ वने गेला एकेश्वर ॥३०९॥
गया गिया काशी गेला शिव-राजधानी । जहिं धारा बहे गङ्गा उत्तर वाहिनी ॥३१०॥
गङ्गा देखि बड़ सुखी नित्यानन्दराय । स्नान करे पान करे आर्त्ति नाहि जाय ॥३११॥
प्रयागे करिला माघ मासे प्रातः स्नान । तबे मथुराय गेला पूर्व्व जन्म स्थान ॥३१२॥
जमुना विश्राम घाटे करि जल केलि । गोवर्द्धन पर्व्वत बुलेन कुतूहली ॥३१३॥
श्री वृन्दावन आदि जत द्वादशवन । एके एके प्रभु सब करेन भ्रमण ॥३१४॥

---

सिवाय और कुछ क्रीड़ा ( खेल ) नहीं करते थे ॥ २९८ ॥ सब शिशुगण माता-पिता तथा घर को छोड़कर निरन्तर श्रीनित्यानन्द प्रभु के साथ विहार करते रहते थे॥२९९॥उन सब शिशु-गण के चरणों में मेरा नमस्कार निवेदन हो जिनका श्रीनित्यानन्द प्रभु के साथ इस प्रकार का विहार होता था ॥ ३०० ॥ श्रीनित्यानन्द राय इसी प्रकार की सब क्रीड़ाएँ करते थे बालकपन से ही आपको श्रीकृष्ण-लीलाओं के सिवाय और कुछ नहीं भाता था ॥३०१॥ श्रीअनन्तदेव की लीला कौन वर्णन कर सकता है ? केवल उनकी कृपा से जिसको जितनी स्फूर्ति प्राप्त होती है वह उतना ही वर्णन कर पाता है ॥ ३०२ ॥ इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु १२ वर्ष घर में रहे पश्चात् तीर्थाटन करनेके लिये चल पड़े॥३०३॥आपने बीसवर्ष तीर्थयात्रा में लगाये,फिर अन्तमें श्रीकृष्ण-चैतन्यप्रभु के गोचर होते हैं॥३०४॥नित्यानन्द की तीर्थयात्रा सुनो,जिन प्रभु की दुष्ट, पापी,पाखण्डी ही निन्दा करते हैं॥३०५॥ जिन प्रभु ने सम्पूर्ण संसार का उद्धार किया व जिन प्रभु के सिवाय करुणा-समुद्र अन्य कोई नहीं है उन श्रीनित्यानन्द प्रभु की तीर्थ यात्रा (कथा) श्रोतागण इस ग्रन्थ के आदिखण्ड में सुनें ॥३०६॥ जिन प्रभु की कृपा से श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु का तत्त्व समझ में आता है, जिन प्रभु के द्वारा श्रीचैतन्यचन्द्र का महत्त्व व्यक्त हुआ एवं होता है, उन श्रीचैतन्यचन्द्र के प्रियतम श्रीनित्यानन्द प्रभु का चरित्र सुनिये कि जिस प्रकार उन्होंने तीर्थ मण्डली में भ्रमण किया था ॥ ३०७-३०८ ॥ प्रभु प्रथम वक्रेश्वर तीर्थ गये फिर वहाँ से अकेले वैद्यनाथ-वन को गमन किया; श्रीगयाजी जाकर फिर शिव-राजधानी श्रीकाशी को जहाँ श्रीगङ्गाजी की उत्तर वाहिनी धारा बहती है ॥ ३०९-३१० ॥ श्रीनित्यानन्द राय श्रीगङ्गाजी को देखकर बड़े आनन्दित हो स्नान करते जल-पान करते तो भी उनकी तृप्ति नहीं होती थी ॥३११॥ माघमास में प्रयाग जाकर प्रातः स्नान करते वहाँ से फिर श्रीकृष्ण के पूर्व जन्म स्थान श्रीमथुराजी को गये ॥ ३१२ ॥ वहाँ श्रीयमुना जी के विश्राम-

गोकुले नन्देर घर-वसति देखिया । बिस्तर रोदन प्रभु करिला वसिया ॥३१५॥
तबे प्रभु मदन गोपाल नमस्करि । चलिल हस्तिनापुर-पाण्डवेर पुरी ॥३१६॥
भक्त स्थान देखि प्रभु करेन क्रन्दन । ना बुझे तैर्थिक भक्तिशून्येर कारण ॥३१७॥
*बलराम- कीर्त्ति देखि हस्तिना नगरे । 'त्राहि हलधर' ! बलि नमस्कार करे ॥३१८॥
तबे द्वारकाय आइलेन नित्यानन्द । समुद्रे करिला स्नान हइला आनन्द ॥३१९॥
सिद्ध पुर गेला जथा कपिलेरस्थान । मत्स्य-तीर्थे महोत्सवे करिला अन्नदान ॥३२०॥
शिव काञ्ची विष्णु-काञ्ची गेला नित्यानन्द । देखि हासे दुइ गने महा-महा द्वन्द्व ॥३२१॥
कुरुक्षेत्रे पुण्योदक बिन्दु—सरोवरे । प्रभासे गेलेन सुदर्शन-तीर्थवरे ॥३२२॥
त्रितकूप महातीर्थ गेलेन विशाला । तबे ब्रह्म तीर्थ चक्रतीर्थे रे चलिला ॥३२३॥
प्रतिस्रोता गेला यथा प्राची सरस्वती । नैमिष-अरण्ये तबे गेला महामति ॥३२४॥
तबे गेला नित्यानन्द अयोध्या नगर । राम-जन्म-भूमि देखि कान्दिला विस्तर ॥३२५॥
तबे गेला गुहक चण्डाल राज्य जथा । महा-मूर्च्छा नित्यानन्द पाइलेन तथा ॥३२६॥
गुहक चण्डाल मात्र हइल स्मरण । तिन दिन आछिला आनन्दे अचेतन ॥३२७॥

---

घाट पर जल-केलि करके आनन्दित होकर श्रीगोवर्द्धन पर्वत की परिक्रमा की ॥३१३॥ फिर प्रभु ने श्रीवृन्दावन आदिक द्वादश बन में एक-एक करके भ्रमण किया ॥३१४॥ तत्पश्चात् गोकुल जाकर वहाँ श्रीनन्द बाबा के वास-स्थान को देखकर प्रभु ने बैठकर बड़ा क्रन्दन किया ॥ ३१५ ॥ फिर प्रभु श्रीमदनगोपालजी को प्रणाम करके पाण्डवों की पुरी श्रीहस्तिनापुर गये ॥ ३१६ ॥ भक्त-स्थान हस्तिनापुर को देखकर प्रभु ने क्रन्दन किया, क्रन्दन का तात्पर्य, वहाँ के तैर्थिक ब्राह्मण भक्ति-शून्य होने के कारण कुछ नहीं समझे ॥३१७॥ तथा यहाँ पर श्रीबलराम जी की कीर्त्ति के चिह्नों को देखकर 'त्राहि हलधर !' कहकर नमस्कार करने लगे ॥३१८॥ फिर श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीद्वारकापुरी गये, वहाँ समुद्र में स्नान करके आनन्दित हुए ॥ ३१९ ॥ फिर कपिलमुनि के आश्रम 'सिद्धपुर' को गये तथा मत्स्य-तीर्थ में जाकर महोत्सव करके अन्न दान किया ॥ ३२० ॥ फिर श्रीनित्यानन्द प्रभु शिवकाञ्ची तथा विष्णुकाञ्ची पहुँचे, वहाँ पर दोनों स्थानों के दोनों दलों के संन्यासियों के बीच भीषण कलह देखकर श्रीप्रभु हँसने लगे ॥ ३२१ ॥ तब प्रभु कुरुक्षेत्र, पुण्य-सलिल श्रीबिन्दु-सरोवर तीर्थ, प्रभास व तीर्थवर सुदर्शन को गये ॥ ३२२ ॥ प्रभु फिर त्रितकूप, महातीर्थ, विशाल को गये तदनन्तर ब्रह्म-तीर्थ एवं चक्रतीर्थ को गये ॥ ३२३ ॥ फिर प्रतिस्रोता तीर्थ को जहाँ पर पूर्ववाहिनी श्रीसरस्वती जी हैं, फिर महामति श्रीनित्यानन्द प्रभु नैमिषारण्य को गये ॥ ३२४ ॥ फिर श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीअयोध्यापुरी पहुँचे, श्रीरामचन्द्रजी की जन्म-भूमि को देखकर आपने वहाँ बहुत क्रन्दन किया ॥३२५॥ तब श्रीनित्यानन्द प्रभु गुहक-चाण्डाल के राज्य स्थान को गये वहाँ पहुँच कर आप महान् मूर्च्छा को प्राप्त हो गये॥३२६॥'गुहक-चाण्डाल'

---

* बलराम कीर्त्ति-एक समय जाम्बवती-पुत्र शाम्ब, दुर्योधन की पुत्री 'लक्ष्मणा' को हर लाये । तब दुर्योधन व कर्ण आदि शाम्ब को युद्ध में परास्त कर अपने नगर में ले गये । तब नारदजी से बलदेवजी ने यह वार्त्ता सुनी तो वह हस्तिनापुर गये । जब दुर्योधनादि श्रीबलदेवजी के साथ समझौता करने पर राजी न हुए तो उन्होंने क्रोधित होकर अपने हल द्वारा पृथ्वी का आकर्षण किया । वह चिह्न अभी वर्त्तमान है ।

जे जे बने आछिला ठाकुर रामचन्द्र । देखिया विरहे गड़ि जाय नित्यानन्द ॥३२८॥
तबे गेला सरयू कौशिकी मुनि स्थान । तबे गेला पुलह आश्रम पुण्य-स्थान ॥३२९॥
गोमती गण्डकी शोण तीर्थ स्नान करि । तबे गेला महेन्द्र पर्व्वत चूड़ोपरि ॥३३०॥
परशुरामेरे तहिँ करि नमस्कार । तबे गेला गङ्गा-जन्मभूमि हरिद्वार ॥३३१॥
पम्पा भीमरथी गेला सप्त गोदावरी । वेण्वातीर्थे विपाशाय मज्जन आचरि ॥३३२॥
कार्त्तिक देखिया नित्यानन्द महामति । श्रीपर्व्वत गेला यथा महेश-पार्व्वती ॥३३३॥
ब्राह्मण-ब्राह्मणी रूपे महेश-पार्व्वती । सेइ श्रीपर्व्वते तांहे करेन वसति ॥३३४॥
निज-इष्टदेव चिनिलेन दुइजने । अवधूत रूपे करे तीर्थ पर्य्यटने ॥३३५॥
परम सन्तोषे दोंहे अतिथि देखिया । पाक करिलेन देवी हरषित हैया ॥३३६॥
परम आदरे भिक्षा दिलेन प्रभुरे । हासि नित्यानन्द दोंहाकारे नमस्करे ॥३३७॥
एकान्ते कि कथा हैल, कृष्ण से जानेन । तबे नित्यानन्द प्रभु द्रविड़े गेलेन ॥३३८॥
देखिया वेङ्कटनाथ कामकोष्ठी पुरी । काञ्ची सरिद्वरा गिया गेलेन कावेरी ॥३३९॥
तबे गेला श्रीरङ्गनाथेर पुण्य-स्थान । तबे करिलेन हरिक्षेत्रेर पयान ॥३४०॥
ऋषभ पर्व्वत गेला दक्षिण मथुरा । कृतमाला ताम्रपर्णी यमुना-उत्तरा ॥३४१॥
मलय पर्व्वत गेला अगस्त्य आलय । ताहारा ओ हृष्ट हैला देखि महाशय ॥३४२॥
ता सभार आदर लइया नित्यानन्द । बदरिकाश्रम गेला परम आनन्द ॥३४३॥

---

मात्र स्मरण होते ही आप तीन दिन तक आनन्द से विह्वल हो अचेतन पड़े रहे ॥ ३२७ ॥ जिस-जिस वन में ठाकुर श्रीरामचन्द्र रहे थे उस वन को देखकर श्रीनित्यानन्द प्रभु विरह में पृथ्वी पर लोट-पोट हो जाते थे ॥३२८॥ फिर सरयू नदी के तट पर श्रीकौशिक-मुनि के आश्रम पर गये व पुण्य-स्थान श्रीपुलह ऋषि के आश्रम पर भी पहुँचे ॥ ३२९ ॥ और गोमती, गण्डकी, शोण तीर्थ-स्नान करके महेन्द्र पर्वत की शिखर के ऊपर चढ़ गये ॥३३०॥ वहाँ श्रीपरशुरामजी को नमस्कार करके श्रीगङ्गा जी की जन्म-भूमि श्रीहरिद्वार को गये ॥३३१॥ फिर पम्पा, भीमरथी, सप्त गोदावरी को गये और वेण्वातीर्थ में जलपान करके स्नान किया ॥ ३३२ ॥ फिर श्रीनित्यानन्द महामति श्रीकार्तिकजी के दर्शन करके श्रीपर्वत पर पहुँचे जहाँ पर श्रीमहेश व पार्वतीजी विराजमान हैं ॥ ३३३ ॥ उस श्रीपर्वत पर श्रीमहेश व पार्वती जी ब्राह्मण व ब्राह्मणी के रूप में निवास करते थे ॥ ३३४ ॥ उन दोनों जनों ने अपने इष्टदेव को अवधूत रूप में तीर्थ पर्यटन करते हुए पहिचान लिया ॥३३५॥ वह दोनों प्रभु को अतिथि देखकर परम प्रसन्न हुए, तथा श्रीपार्वतीदेवी ने हर्षित होकर रसोई तैयार की॥३३६॥ और परम सत्कार पूर्वक प्रभु को प्रसाद पवाया है, श्रीनित्यानन्द प्रभु ने हँसकर दोनों को नमस्कार किया ॥ ३३७ ॥ पश्चात् एकान्त में उनके साथ क्या २ बातें हुईं वह तो श्रीकृष्ण ही जानें, तदनन्तर श्रीनित्यानन्द प्रभु द्रविड़ देश को पधारे ॥ ३३८ ॥ फिर श्रीवेङ्कट-नाथ व काम-कोष्ठी पुरी देखकर काञ्ची व सरिद्वरा होते हुए 'कावेरी' पहुँचे ॥ ३३९ ॥ फिर पुण्य स्थल श्रीरङ्गनाथ जी के स्थान पर जाकर हरिक्षेत्र को पयान किया ॥ ३४० ॥ फिर ऋषभ पर्वत व दक्षिण-मथुरा, कृतमाला, ताम्रपर्णी एवं उत्तर यमुना को गये ॥ ३४१ ॥ फिर मलय पर्वत पर श्रीअगस्त्य मुनि के आश्रम पर पहुँचे वहाँ के निवासी भी श्रीनित्यानन्द प्रभु के दर्शन करके

कथो दिन नर नारायणेर आश्रमे । आछिलेन नित्यानन्द परम निर्ज्जने ॥३४४॥
तबे नन्दी ग्रामे गेला व्यासेर आलय । व्यास चिनिलेन बलराम महाशय ।।३४५॥
साक्षात् हइया व्यास आतिथ्य करिला । प्रभु ओ व्यासेर दण्ड प्रणत हइला ।।३४६॥
तबे नित्यानन्द गेला बौद्धेर भवन । देखि लेन प्रभु वसि आछे बौद्ध-गण ॥३४७।
जिज्ञासेन प्रभु केहो उत्तर ना करे । क्रुद्ध हय प्रभु लाथि मारिलेन शिरे ॥३४८॥
पलाइल बौद्ध गण हासिया हासिया । वने भ्रमे नित्यानन्द निर्भय हइया ॥३४९॥
तबे प्रभु आइलेन कन्यका-नगर । दुर्गा देवी देखि गेला दक्षिण सागर ।।३५०॥
तबे नित्यानन्द गेला श्रीअनन्त पुरे । तबे गेला पञ्च अप्सरा-सरोवरे ॥३५१॥
गोकर्णाख्य गेला प्रभु शिवेर मन्दिरे । केरलेते त्रिगर्त्तके बुले घरे घरे ॥३५२॥
द्वैपायनी आर्य्या देखि नित्यानन्द राय । निर्विन्ध्या पयोष्णी तापी भ्रमेन लीलाय ॥३५३॥
रेवा माहिष्मती पुरी मल्लतीर्थ गेला । सूर्पारक दिया प्रभु प्रतीची चलिला ॥३५४॥
एइमत अभय परमानन्द राय । भ्रमे नित्यानन्द भय नाहिक कोथाय ॥३५५॥
निरन्तर कृष्णावेशे शरीर अवश । क्षणे कान्दे क्षणे हासे के बुझे से रस ॥३५६॥
एइमत नित्यानन्द प्रभुर भ्रमण । दैवे माधवेन्द्र सहे हइल मिलन ॥३५७॥
माधवेन्द्रपुरी प्रेम मय कलेवर । प्रेममय जत सब सङ्गे अनुचर ॥३५८॥

---

बड़े आनन्दित हुए ॥३४२॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु उन सबके सत्कार को ग्रहण करके परम आनन्दपूर्वक श्रीबदरिकाश्रम को चले गये ॥ ३४३ ॥ फिर कुछ दिन श्रीनित्यानन्द प्रभु नर-नारायण के परम निर्जन आश्रम में रहे ॥ ३४४ ॥ फिर नन्दी ग्राम में श्रीव्यास आश्रम पर आये, वहाँ पर श्रीव्यासजी ने महामति श्रीबलरामजी को पहिचान लिया ॥ ३४५ ॥ तथा प्रकट होकर प्रभु का आतिथ्य-सत्कार किया, श्रीप्रभु ने भी श्रीव्यासजी को दण्डवत् प्रणाम किया ॥३४६॥ फिर श्रीनित्यानन्द प्रभु बौद्धों के आश्रम पर पहुँचे वहाँ आपने बौद्ध-गणों को बैठे हुए देखा ॥ ३४७ ॥ प्रभु ने उनसे कुछ पूछा, परन्तु उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया तब प्रभु ने क्रोधित होकर उनके सिर पर लात का प्रहार किया ॥३४८॥ तब सब बौद्ध हँसते हुए भाग गये, इधर श्रीनित्यानन्द प्रभु निर्भय होकर वन में भ्रमण करने लगे ॥ ३४९ ॥ फिर प्रभु कन्यका नगर पहुँचे वहाँ दुर्गादेवी के दर्शन करके दक्षिण सागर को गये ॥ ३५० ॥ तब श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीअनन्तपुर को गये, फिर पञ्च अप्सरा-सरोवर पहुँचे ॥ ३५१ ॥ फिर गोकर्ण नामक श्रीशिवजी के मन्दिर पर पहुँचे तथा केरल व त्रिगर्त्तों में जाकर वहाँ के घर-घर पर आप विचरण करने लगे ॥ ३५२ ॥ फिर श्रीनित्यानन्द राय द्वैपायनी आर्य्या ( द्वीप-निवासिनी श्रीपार्वती देवी ) के दर्शन करके आनन्दपूर्वक निर्विन्ध्या, तापी एवं पयोष्णी का भ्रमण किया ॥ ३५३ ॥ फिर आप रेवा, महेश्वरपुरी, मल्ल-तीर्थ को गये तथा सूर्पारक होकर प्रतीची पहुँचे ॥३५४॥ इस प्रकार अभय परमानन्द-धनी श्रीनित्यानन्द प्रभु ने किसी का डर न करते हुए भ्रमण किया ॥३५५॥ आपका शरीर निरन्तर श्रीकृष्ण-आवेश से अवश रहता था, क्षण में आप क्रन्दन करते और दूसरे ही क्षण हँसने लगते उस रस को कौन समझ पाता था ३५६ इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु का भ्रमण करते हुए दैवयोग से [illegible] का मिलन हो गया ३५७ श्रीमाधवेन्द्रपुरी का शरीर प्रेममय था आपके सब अनुचर भी प्रेममय थे ३५८

कृष्ण रस विना आर नाहिक आहार। माधवेन्द्र पुरी देहे कृष्णेर विहार ॥३५९॥
जार शिष्य महाप्रभु-आचार्य्य गोसाञि। कि कहिब आर तार प्रेमेर बड़ाइ ॥३६०॥
माधवपुरी रे देखिलेन नित्यानन्द। ततक्षणे प्रेमे मूर्च्छा हइल निष्पन्द ॥३६१॥
नित्यानन्द देखि मात्र श्री माधव-पुरी। पड़िला मूर्च्छित हइया आपना पासरि ॥३६२॥
भक्ति रसे आदि माधवेन्द्र सूत्रधार। गौरचन्द्र इहा कहियाछेन बार बार ॥३६३॥
दोंहे मूर्च्छा हइलेन दोंहा दरशने। कान्दये ईश्वर पुरी आदि शिष्य गणे ॥३६४॥
क्षणेके हइला बाह्य दृष्टि दुइ जने। अन्योऽन्ये गलाय धरि करेन क्रन्दने ॥३६५॥
बने गड़ि जाय दुइ प्रभु प्रेमरसे। हुङ्कार करये दुइ प्रेमेर आवेशे ॥३६६॥
प्रेम नदी वहे दुइ प्रभुर नयाने। पृथिवी हइया सिक्त धन्य हेन माने ॥३६७॥
कम्प, अश्रु, पुलक, भावेर अन्त नाञि। दुइ देहे विहरये चैतन्य गोसाञि ॥३६८॥
नित्यानन्द बोले जत तीर्थ करिलाङ। सम्यक् ताहार फल आज पाइलाङ ॥३६९॥
नयने देखिलुँ माधवेन्द्रेर चरण। ए प्रेम देखिया धन्य हइल जीवन ॥३७०॥
माधवेन्द्रपुरी नित्यानन्द करि कोले। उत्तर ना स्फुरे रुद्ध कण्ठ प्रेम जले ॥३७१॥
हेन प्रीत हइलेन माधवेन्द्र पुरी। वक्ष हैते नित्यानन्द बाहिर ना करि ॥३७२॥
ईश्वर पुरी परमानन्द पुरी आदि जत। सर्व्व शिष्य हइलेन नित्यानन्देर मत ॥३७३॥
सभे जत महाजन सम्भाषा करेन। कृष्ण प्रेम काहारो शरीरे ना देखेन ॥३७४॥

---

कृष्ण-रस के सिवाय आपका अन्य आहार नहीं था आपकी देह में श्रीकृष्ण ही विहार करते थे ॥ ३५९ ॥ जिनके शिष्य श्रीमहान प्रभु आचार्य श्रीअद्वैत प्रभु हैं फिर भला उनके प्रेम की प्रशंसा और कहाँ तक करूँ ॥ ३६० ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी को देखकर तत्क्षण प्रेम में मूर्च्छित होकर निष्पन्द हो गये ॥ ३६१ ॥ श्रीमाधवेन्द्रपुरी भी श्रीनित्यानन्द प्रभु को देखते ही अपने शरीर की सुधि-बुधि भूलकर मूर्च्छित होकर गिर पड़े ॥ ३६२ ॥ 'श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी भक्ति रस के प्रथम सूत्रधार हैं' यह बात श्रीगौरचन्द्र प्रभु ने बार-बार कही है ॥३६३॥ दोनों जने परस्पर में दोनों के दर्शन करके मूर्च्छित हो गये और श्रीईश्वरपुरी आदि शिष्यगण रोने लगे ॥ ३६४ ॥ थोड़ी देर में ही दोनों की बाह्य दृष्टि हुई तब वह दोनों परस्पर में एक दूसरे के गले में बाँह डालकर क्रन्दन करने लगे ॥ ३६५ ॥ दोनों ही प्रभु प्रेम-रस से,वन में लोट-पोट होते थे तथा दोनों ही प्रेमावेश में हुङ्कार करते थे ॥ ३६६ ॥ दोनों प्रभुओं के नेत्रों से प्रेम की नदियाँ बह रही थीं; पृथ्वी सिक्त होकर अपने को धन्य मान रही थी ॥ ३६७ ॥ दोनों के शरीरों में कम्प, अश्रु, पुलक आदि भावों का अन्त नहीं था। दोनों के देहों में श्रीचैतन्यचन्द्र प्रभु विहार करते थे ॥ ३६८ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु कहने लगे कि—मैंने जितने तीर्थ भ्रमण किये हैं, उनका सम्यक् फल आज ही पाया है । ३६९ ॥ मैंने अपने नेत्रों से श्रीमाधवेन्द्र—चरण दर्शन पाये, इस प्रेम को देखकर मेरा जीवन धन्य होगया ॥ ३७० ॥ श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी श्रीनित्यानन्द प्रभु को गोदी में लेकर कुछ भी नहीं बोल पाये. आपका गला प्रेम-जल से भर गया। ३७१ । श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी को श्रीनित्यानन्द प्रभु से ऐसी प्रीति हुई कि उनको अपने वक्ष-स्थल से अलग नहीं करते थे ३७२ श्रीनित्यानन्द प्रभु की तरह ही श्रीईश्वरपुरी एवं श्रीपरमानन्द पुरी आदि सब

समेइ पायेन दुःख जन सम्भाषिया । अतएव बने सभे भ्रमेन देखिया ॥३७५॥
अन्योऽन्ये से सब दुःखेर हैल नाश । अन्योऽन्ये देखि कृष्ण प्रेमेर प्रकाश ॥३७६॥
कथो दिन नित्यानन्द माधवेन्द्र सङ्गे । भ्रमेन श्री कृष्ण कथा-परानन्द-रङ्गे ॥३७७॥
माधवेन्द्र कथा अति अद्भुत कथन । मेघ देखिलेइ मात्र हय अचेतन ॥३७८॥
अहर्निश कृष्ण प्रेमे मद्यपेर प्राय । हासे कान्दे है है करे हाय हाय ॥३७९॥
नित्यानन्द महा-मत्त गोविन्देर रसे । ढुलिया ढुलिया पड़े अट्ट अट्ट हासे ३८०॥
दोंहार अद्भुत भाव देखि शिष्य गण । निरवधि 'हरि' बलि करये कीर्त्तन ॥३८१॥
रात्रि दिन केहो नाहि जाने प्रेम रसे । कत काल जाय, केहो क्षण नाहि वासे ॥३८२॥
माधवेन्द्र सङ्गे जत हइल आख्यान । के जानये ताहा-कृष्णचन्द्र से प्रमाण ॥३८३॥
माधवेन्द्र नित्यानन्दे छाड़िते ना पारे । निरवधि नित्यानन्द संहति विहरे ॥३८४॥
माधवेन्द्र बोले प्रेम ना देखिलुँ कोथा । सेइ मोर सर्व्व-तीर्थ हेन प्रेम जथा ॥३८५॥
जानिलुँ कृष्णेर कृपा आछे मोर प्रति । नित्यानन्द हेन बन्धु पाइलुँ संहति ॥३८६॥
जे से स्थाने जदि नित्यानन्द सङ्ग हय । सेइ स्थान सर्व्व तीर्थ-वैकुण्ठादि मय ॥३८७॥
नित्यानन्द हेन भक्त शुनिले श्रवणे । अवश्य पाइव कृष्णचन्द्र सेइ जने ॥३८८॥

---

शिष्यगण की वही-दशा थी॥६७३॥श्रीनित्यानन्द प्रभु एवं श्रीमाधवेन्द्र पुरी संसार में जितने बड़े २ आदमियों से बात-चीत करते थे उनमें से किसी के शरीर में कृष्ण-प्रेम का दर्शन नहीं पाते थे ॥३७४॥ दोनों ही संसारी मनुष्यों से सम्भाषण करके दुखी होते थे इस कारण दोनों ही वन में भ्रमण करते थे ॥३७५॥ अब इस समय एक दूसरे को देखकर उस समस्त दुःख का नाश होगया और परस्पर में श्रीकृष्ण प्रेम का प्रकाश दीखने लगा ॥ ३७६ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु कुछ।दिन श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी के साथ श्रीकृष्ण-कथा के परमानन्द रस में निमग्न हुए भ्रमण करते रहे ॥३७७॥ श्रीमाधवेन्द्रपुरीजी की भी अत्यन्त अद्भुत-कथा थी कि–आप मेघ देखते मात्र ही अचेतन हो जाते थे ॥ ३७८ ॥ श्रीकृष्ण प्रेम में रात दिन मद्यप की तरह आप कभी हँसते,कभी रोते. कभी 'है' 'है' करते तथा कभी 'हाय' 'हाय' करते थे ॥ ३७९ ॥ इधर श्रीनित्यानन्द प्रभु भी श्रीकृष्ण प्रेम में महामत्त हो रहे थे आप ढुल-ढुल पड़ते और जोर से अट्टहास करके हँसते थे ॥३८०॥ शिष्यगण दोनों प्रभुओं के अद्भुत भाव को देखकर निरन्तर 'हरि' 'हरि' बोलकर कीर्त्तन करते थे ॥ ३८१ ॥ प्रेम-रस में मग्न होकर कोई भी यह नहीं जानता था कि अब रात्रि है या दिन । कितना ही समय क्यों न बीत जाय,वह एक क्षण ही मालुम होता था ॥३८२॥ श्रीमाधवेन्द्रपुरी जी के साथ श्रीनित्यानन्द प्रभु की जो कुछ कथा-वार्त्तायें हुई उनको कौन जानता है ? अर्थात् श्रीकृष्ण ही जानें उसमें तो प्रमाणस्वरूप श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं ॥ ३८३ ॥ श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी श्रीनित्यानन्द प्रभु को छोड़ नहीं पाते वह निरन्तर श्रीनित्यानन्द प्रभु के साथ ही विचरण करते थे ॥ ३८४ ॥ श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी कहते थे कि–मैंने ऐसा प्रेम कहीं नहीं देखा, जहाँ ऐसा प्रेम है वही स्थान मेरे लिये सर्व-तीर्थमय है ॥ ३८५ ॥ मैं जानता हूँ कि–मेरे ऊपर श्रीकृष्ण की कृपा है तभी तो श्रीनित्यानन्द जैसे बन्धु मुझे मिले ॥ ३८६ ॥ 'चाहे जैसे स्थान पर भी श्रीनित्यानन्द प्रभु का सङ्ग हो, वहीं स्थान सर्व तीर्थ मय एवं श्रीवैकुण्ठ आदि मय है' ॥ ३८७ ॥ श्रीनित्यानन्द जैसे भक्त का नाम कानो से सुनने से सुनने वाला

कम्प, स्वेद, पुलकाश्रु, आछाड़ हुङ्कार । के कहिते पारे नित्यानन्देर विकार ।।४०४।।
एइ मत कथो दिन वसि नीला चले । देखि गङ्गासागर आइला कुतूहले ।।४०५।।
तान तीर्थ-जात्रा सब के पारे कहिते । किछु लिखिलाङ मात्र तार कृपा हैते ।।४०६।।
एइ मत तीर्थ भ्रमि नित्यानन्द राय । पुनर्ब्बार आसिया मिलिला मथुराय ।।४०७।।
निरवधि वृन्दावने करेन वसति । कृष्णेर आवेशे ना जानेन दिवा राति ।।४०८।।
आहार नाहिक-कदाचित दुग्ध पान । सेहो जदि अजाचित केहो करे दान ।।४०९।।
नवद्वीपे गौरचन्द्र आछे गुप्त भावे । इहा नित्यानन्द स्वरूपेर मने जागे ।।४१०।।
'आपन ऐश्वर्य्य प्रभु प्रकाशिबे जबे । आमि गिया करिमु आपन सेवा तबे' ।।४११।।
एइ मानसिक करि नित्यानन्द राय । मथुरा छाड़िया नवद्वीपे नाहि जाय ।।४१२।।
निरवधि विहरये कालिन्दीर जले । शिशु सङ्गे वृन्दावने धूला खेला खेले ।।४१३।।
जद्यपिओ नित्यानन्द धरे सर्व्व शक्ति । तथापिओ कारे नाहि देन कृष्ण-भक्ति ।।४१४।।
'जबे गौरचन्द्र प्रभु करिबे प्रकाश । तार आज्ञा लइया भक्ति-दानेर विलास' ।।४१५।।
केहो किछु ना करे चैतन्य आज्ञा बिने । इहाते अल्पता नाहि पाय प्रभु गणे ।।४१६।।
कि अनन्त किवा शिव, अजादि देवता । चैतन्य-आज्ञाय हर्त्ता कर्त्ता पालयिता ।।४१७।।
इहाते जे पापि-गण मने दुःख पाय । वैष्णवेर अदृश्य सेइ पापी सर्व्वथाय ।।४१८।।
साक्षातेइ देख सभे एइ त्रिभुवने । नित्यानन्द द्वारा पाइलेन प्रेम धने ।।४१९।।

---

मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ते थे ।। ४०३ ।। आपके शरीर में कम्प, स्वेद, पुलक, अश्रु, पछाड़ खाना एवं हुङ्कार करना आदि सात्त्विक भावों का वर्णन कौन कर सकता है ?।।४०४।।श्रीनित्यानन्द प्रभु इसी प्रकार कुछ दिन नीलाचल में रहकर आनन्दयुक्त होकर श्रीगङ्गासागर दर्शन करने के लिये चले गये ।। ४०५ ।। आपकी सम्पूर्ण तीर्थ-यात्रा का वर्णन कौन कर सकता है ? उनकी कृपा द्वारा ही मैंने कुछ लिखा है ।। ४०६ ।। श्री-नित्यानन्द राय इस प्रकार तीर्थ भ्रमण करके पुनः श्रीमथुरा जी पहुँचे हैं ।। ४०७ ।। आप निरन्तर वृन्दावन में ही रहते और उनकी कृष्ण-चेष्टा में दिन-रात की सुधि नहीं रहती थी ।।४०८।। आहार तो करते ही नहीं थे । कभी २ दुग्ध पान हो जाता था, वह भी यदि कोई बिना माँगे ही दे जाता ।। ४०९ ।। श्रीनित्यानन्द स्वरूप के मन ही मन यह जाग्रति होती थी कि—इस समय नवद्वीप में श्रीगौरचन्द्र गुप्त भाव से विराजमान हैं ।।४१०।। 'जब प्रभु अपना ऐश्वर्य प्रकाश करेंगे तब ही मैं जाकर अपनी सेवा करूँगा ।। ४११ ।। श्रीनित्यानन्दराय अपने मन में यही विचार करके श्रीमथुराजी छोड़कर श्रीनवद्वीप नहीं जाते थे ।। ४१२ ।। आप निरन्तर श्रीयमुना-जल में विहार करते थे तथा बालकों के साथ वृन्दावन की धूल में खेल-खेलते रहते थे ।। ४१३ ।। यद्यपि श्री-नित्यानन्द प्रभु सब शक्ति धारण किये हुए थे फिर भी आप किसी को श्रीकृष्ण-भक्ति नहीं देते थे ।। ४१४ ।। आपके मन में ऐसा है कि—'जब श्रीगौरचन्द्र प्रभु आत्म-प्रकाश करेंगे उस समय उनकी आज्ञा से भक्ति-दान का विलास होगा' ।। ४१५ ।। श्रीचैतन्यचन्द्र प्रभु की आज्ञा के बिना कोई कुछ नहीं करता है इससे प्रभु परि-कर में कोई अल्पता नहीं आती ।। ४१६ ।। क्या श्रीअनन्तदेव क्या शिवजी और क्या श्रीब्रह्मा आदि देवगण सभी श्रीचैतन्यचन्द्र प्रभु की हर्त्ता कर्त्ता एव पालक हैं ४१७ इस बात से जो पापी मन में

चैतन्येर आदि भक्त नित्यानन्द राय । चैतन्येर यश वैसे जाहार जिह्वाय ॥४२०॥
अहर्निश चैतन्येर कथा प्रभु कहे । ताने भजिले से चैतन्य-भक्ति हये ॥४२१॥
आदिदेव जय जय नित्यानन्द राय । चैतन्य महिमा स्फुरे जाहार कृपाय ॥४२२॥
चैतन्य कृपाय हय नित्यानन्दे रति । नित्यानन्द जानिले आपद् जाय कति ॥४२३॥
संसारेर पार हइ भक्तिर सागरे । जे डुबिबे से भजुक निताइ चान्देरे ॥४२४॥
केहो बोले 'नित्यानन्द जेन बलराम' । केहो बोले 'चैतन्येर बड़ प्रिय धाम' ॥४२५॥
किबा यति नित्यानन्द किबा भक्त ज्ञानी । जार जेन मत इच्छा ना बोलये केनि ॥४२६॥
जे से केने चैतन्येर नित्यानन्द नहे । तथापि से पाद पद्म रहुक हृदये ॥४२७॥
एत परिहारेओ जे पापी निन्दा करे । तबे लाथि मारों तार शिरेर उपरे ॥४२८॥
कोन चैतन्येर लोक नित्यानन्द प्रति । मन्द बले हेन देख, से केवल स्तुति ॥४२९॥
नित्य शुद्ध ज्ञानवन्त वैष्णव सकल । तबे जे कलह देख, सब कुतूहल ॥४३०॥
इथे एक जनेर जे पक्ष हैया हासे । अन्य जने निन्दा करे क्षय जाय से ॥४३१॥
नित्यानन्द स्वरूपे से निन्दा ना लओयाय । तार पथे थाकिले से गौरचन्द्र पाय ॥४३२॥
हेन दिन हैब कि चैतन्य नित्यानन्द । देखिब वेष्टित चतुर्दिके भक्त-वृन्द ॥४३३॥

---

दूर भी हो वह पापी सर्वथा वैष्णवजनों के लिये अदर्शनीय है॥४१८॥ आप स्वयं ही देखो, इस त्रिभुवनमें सबने श्रीनित्यानन्द द्वारा ही चैतन्य-भक्ति प्राप्त किया है ॥४१९॥ श्रीनित्यानन्द राय श्रीचैतन्य प्रभु के आदि-भक्त हैं जिनकी जिह्वा पर श्रीचैतन्य प्रभु का यश विराजमान है ॥ ४२० ॥ इस प्रकार प्रभु निरन्तर श्रीचैतन्यप्रभु की कथा कहते हैं, इसलिये उनके भजने वाले को श्रीचैतन्य प्रभु के प्रति भक्ति हो जाती है ॥ ४२१ ॥ हे आदिदेव श्रीनित्यानन्द राय ! आपकी जय हो ! जय हो ! आपकी कृपा से ही श्रीचैतन्य प्रभु की महिमा स्फूर्ति होती है ॥ ४२२ ॥ और श्रीचैतन्य प्रभु की कृपा से श्रीनित्यानन्द के प्रति प्रीति-वृद्धि होती है श्रीनित्यानन्द प्रभु के जान लेने पर आपदाएँ न जाने कहाँ चली जाती हैं ॥ ४२३ ॥ जो संसार समुद्र के पार होकर भक्ति समुद्र में डूबने के इच्छुक हों वह श्रीनित्यानन्दचन्द्र का भजन करें ॥ ४२४ ॥ कोई कहता है कि 'श्रीनित्यानन्द श्रीबलराम हैं'। कोई कहता है कि—'श्रीचैतन्यप्रभु के बड़े प्रिय-धाम हैं' ॥ ४२५ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु को 'यति' व 'भक्त' अथवा 'ज्ञानी' जिसको जैसी इच्छा हो क्यों न कहे मेरे हृदय में तो उनके चरण-युगल सदा रहें ॥ ४२६ ॥ और श्रीनित्यानन्द श्रीचैतन्यचन्द्र के तो कुछ भी क्यों न हों तब भी वह चरण कमल मेरे हृदय में रहें ॥ ४२७ ॥ इतनी क्षमा-याचना करने पर भी जो पापी श्रीनित्यानन्द प्रभु की निन्दा करे तब मैं उसके सिर के ऊपर लात मारूँगा ॥ ४२८ ॥ यदि कोई श्रीचैतन्य महाप्रभु का जन, श्रीनित्यानन्द जी के प्रति मन्द शब्द भी प्रयोग करें ऐसा देखो तो वह 'निन्दा' नहीं है, वह केवल 'स्तुति' है। क्योंकि यह समस्त वैष्णव नित्य शुद्ध ज्ञान वाले हैं उनके भीतर जो तुम कलह विवाद देखते हो वह सब उनके कौतुक पूर्ण हास्यादि हैं ॥ ४२९-४३० ॥ इसमें जो एक जन के पक्ष में होकर हँसता एवं दूसरे जन की निन्दा करता है वह अन्त में नाश को प्राप्त होता है ॥ ४३१ ॥ यह निन्दा श्रीनित्यानन्द स्वरूप के प्रति भक्ति उत्पन्न नहीं होने देती है। उन प्रभु के मार्ग पर चलने से श्रीगौरचन्द्र प्रभु की प्राप्ति होती है ॥ ४३२ ॥ क्या कभी ऐसा दिन भी होगा, जब

सर्व्व भावे स्वामी जेन हय नित्यानन्द । तार हइया भजि जेन प्रभु गौरचन्द्र ॥४३४॥
नित्यानन्द स्वरूपेर स्थाने भागवत । जन्मे जन्मे पढ़िवाङ एइ अभिमत ॥४३५॥
जय जय महा प्रभु श्री गौराङ्ग चन्द्र । दिलाओ निलाओ तुमि प्रभु नित्यानन्द ४३६॥
तथापिह एइ कृपा कर महाशय । तोमाते ताहाते जेन चित्त वृत्ति रय ॥४३७॥
तोमार परम भक्त नित्यानन्द राय । बिना तुमि दिले तारे केह नाहि पाय ॥४३८॥
वृन्दावन आदि करि भ्रमे नित्यानन्द । जावत ना आपने प्रकाशे गौरचन्द्र ॥४३९॥
नित्यानन्द स्वरूपेर तीर्थ पर्य्यटन । जेइ इहा शुने तारे मिले प्रेम-धन ॥४४०॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चाँद जान । वृन्दावन दास तछु पद जुगे गान ॥४४१॥

इतिश्रीचैतन्य भागवते आदिखण्डे श्रीनित्यानन्दतीर्थ-यात्रादि कथनं नाम
षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

## सप्तम अध्याय

जय जय श्रीगौरसुन्दर महेश्वर । जय नित्यानन्द-प्रिय नित्य-कलेवर ॥१॥
जय श्रीगोविन्द द्वार-पालकेर नाथ । जीव प्रति कर प्रभु शुभ-दृष्टि पात ॥२॥
जय जय जगन्नाथ-पुत्र द्विज राज । जय हउक तोर जत भकत समाज ॥३॥
जय जय कृपा-सिन्धु कमल लोचन । हेन कृपा कर तब जशे रहु मन ॥४॥
आदि खण्डे शुन भाइ चैतन्येर कथा । विद्या रसे विलास प्रभु करिलेन जथा ॥५॥

---

मे श्रीचैतन्य महाप्रभु व श्रीनित्यानन्द प्रभु को चारों ओर से भक्त-वृन्द से वेष्टित, दर्शन करूँगा ॥ ४३३ ॥ जिस प्रकार भी हो, सर्व भाव से श्रीनित्यानन्द प्रभु मेरे स्वामी हों, मेरी यही इच्छा है कि-मैं उनका होकर ही श्रीगौरचन्द्र प्रभु को भजूँ ॥ ४३४ ॥ मेरा यही अभिप्राय है कि-मैं जन्म-जन्म में श्रीनित्यानन्द स्वरूप के पास श्रीमद्भागवत का अध्ययन करूँ ॥ ४३५ ॥ श्रीमहाप्रभु श्रीगौराङ्गचन्द्र ! आपकी जय हो ! जय हो ! आपकी इच्छा से श्रीनित्यानन्द प्रभु प्राप्त होंगे अथवा नहीं ॥ ४३६ ॥ तो भी हे महाशय ! आप ऐसी कृपा कीजिये कि-जिस प्रकार भी हो आप एवं उनमें मेरी चित्त वृत्ति रहे ॥४३७॥ श्रीनित्यानन्द राय आपके परम भक्त हैं आपकी कृपा बिना उनको कोई नहीं पा सकता है ॥४३८॥ जब तक श्रीगौरचन्द्र अपने को 'प्रकाशित' नहीं करते तब तक श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीवृन्दावन आदि में ही भ्रमण करते रहे ॥ ४३९ ॥ जो कोई श्रीनित्यानन्द-प्रभु की तीर्थ-यात्रा को सुनेगा उसको प्रेम-धन प्राप्त होगा ॥४४०॥ श्रीकृष्णचैतन्य एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र को समझ कर श्रीवृन्दावनदास उनके युगल चरणों में कुछ निवेदन करते हैं ॥ ४४१ ॥

हे श्रीगौरसुन्दर ! हे महेश्वर ! आपकी जय हो, जय हो, हे श्रीनित्यानन्द के प्रिय ! नित्य-शरीर (कलेवर) आपकी जय हो ॥ १ ॥ श्रीगोविन्द द्वारपालक के नाथ ! आपकी जय हो ! हे प्रभो ! जीव के प्रति आप शुभ दृष्टि-पात कीजिये ॥२॥ हे श्रीजगन्नाथ मिश्र के पुत्र द्विजराज श्रीगौरचन्द्र ! आपकी जय हो ! जय हो ! आपके सब भक्त समाज की जय हो ३ हे कृपासिन्धु हे कमल लोचन आपकी जय हो आप हमारे ऊपर ऐसी कृपा कीजिये कि आपके यश श्रवण एवं गान आदि में हमारा मन निरन्तर लगा रहे ४ हे

प्रभु बोले वैद्य ! तुमि इहा केने पढ़ । लता पाता निञा गिया रोगी कर दढ़ ॥२१॥
व्याकरण शास्त्र एइ विषम अवधि । कफ पित्त अजीर्ण व्यवस्था नाहि इथि । २२॥
मने मने चिन्त तुमि कि बुझिबे इहा । घरे जाह तुमि रोगी दढ़ कर गिया ॥२३॥
रुद्र अंश मुरारि परम खर-तर । तथापि नहिल क्रोध देखि विश्वम्भर ॥२४॥
प्रत्युत्तर दिल केने बड़ 'त' टाकुर । सभारेइ चाल देखि गर्व्वह प्रचुर ॥२५॥
सूत्र, वृत्ति, पाँजी, टीका कत हेन कर । आमा जिज्ञासिया किना पाइला उत्तर ॥२६॥
बिना जिज्ञासिया बोल 'कि जानिस् तुइ । ठाकुर ब्राह्मण तुमि कि बलिब मुजि' ॥२७॥
प्रभु बोले व्याख्या कर आजि जे पढ़िला । व्याख्या करे गुप्त प्रभु खण्डिते लागिला ॥२८॥
गुप्त बले एक अर्थ प्रभु बले आर । प्रभु भृत्ये केह कारे नारे जिनिबार ॥२९॥
प्रभुर प्रभावे गुप्त परम पण्डित । मुरारिर व्याख्या शुनि प्रभु हरषित ॥३०॥
सन्तोषे दिलेन तार अङ्गे पद्म हस्त । मुरारिर देह हइल आनन्द समस्त ॥३१॥
चिन्तये मुरारि गुप्त आपन हृदये । प्राकृत-मनुष्य कभु ए पुरुष नहे ॥३२॥
एमन पाण्डित्य कि मनुष्ये कभु हय । हस्त स्पर्शे देह हइल परानन्द मय ॥३३॥
चिन्तिले इहार स्थाने किछु लाज नाजि । एमत सुबुद्धि सर्व्व नवद्वीपे नाजि ॥३४॥

---

काम करते रहते थे ॥ १९ ॥ तब भी प्रभु उन्हें सदा छेड़ते ही रहते थे क्योंकि द्विजराय श्रीविश्वम्भरचन्द्र अपने सेवक को देखकर बड़े सुखी ( प्रसन्न ) होते थे ॥ २० ॥ फिर प्रभु मुरारि गुप्त से कहते कि–'अरे वैद्य जी ! तुम यह क्यों पढ़ते हो ? लता, पत्ता लेकर रोगी की व्यवस्था करो ॥ २१ ॥ यह व्याकरण शास्त्र विषमता की सीमा है, इसमें कफ, पित्त एवं अजीर्ण आदि की व्यवस्था नहीं है ॥ २२ ॥ जो तुम स्वयं मन-मन पुस्तक-चिन्तन करते हो, इसको कौन समझे ? तुम घर जाओ और रोगियों का इलाज करो ॥ २३ ॥ श्रीमुरारि गुप्त रुद्र-अंश होने के कारण परम खरे स्वभाव के थे,परन्तु तब भी श्रीविश्वम्भरचन्द्र की हास्यापद बातें सुनकर एवं उन्हें देखकर क्रोधित नहीं होते थे ॥ २४ ॥ प्राय प्रत्युत्तर करते कि–क्यों तुम्हीं तो बड़े ठाकुर हो जो सबको छेड़कर अत्यन्त गर्व करते हो ? ॥ २५ ॥ सूत्र, वृत्ति, पाँजी, टीका आदि की व्याख्या तुम अपने मन से ही करते हो; हम से पूछने पर क्या तुम्हें कभी उत्तर नहीं मिला ? ॥ २६ ॥ बिना कोई व्याख्या पूछे ही तुम कहते हो कि–'तू क्या जानता है' । तुम ब्राह्मण ठाकुर हो आपसे क्या कहें ? ॥ २७ ॥ प्रभु ने कहा–'तो अच्छा' आज जो पढ़ा है उसकी ही व्याख्या करो' । प्रभु के कहने पर श्रीमुरारि गुप्त व्याख्या करने लगे तथा प्रभु उसका खण्डन करते जाते थे ॥ २८ ॥ श्रीगुप्त जी एक प्रकार की अर्थ व्याख्या करते थे तो प्रभु दूसरी ही प्रकार से इस भाँति सेवक में से कोई दूसरे को जीत नहीं पाता था ॥ २९ ॥ प्रभु की कृपा से गुप्त जी परम पण्डित थे, श्री मुरारि गुप्त की व्याख्या को सुनकर प्रभु बड़े प्रसन्न होते थे ॥ ३० ॥ प्रसन्न होकर प्रभु उनके अङ्ग पर अपना कमल हस्त फेरते थे जिससे उनकी देह आनन्द से पूरित हो जाती थी ॥ ३१ ॥ तब श्रीमुरारि गुप्त अपने हृदय में विचार करते थे कि–'यह पुरुष कभी प्राकृत-मनुष्य नहीं हो सकता ॥ ३२ ॥ इस प्रकार का पाण्डित्य क्या मनुष्य में होना कभी सम्भव है ? इसके हस्त-स्पर्श मात्र से ही मेरा देह परमानन्दमय हो गया ? ॥३३॥ इनके पास पुस्तक-चिन्तन करने में कोई लज्जा की बात नहीं है इन जैसा सुबुद्धि

निज लक्ष्मी चिनिञा हासिला गौरचन्द्र । लक्ष्मी ओ वन्दिला मने प्रभु पद द्वन्द्व ॥५०॥
हेन मते दोंहा चिनि दोंहे घर गेला । के बुझिते पारे गौर सुन्दरेर लीला ॥५१॥
ईश्वर इच्छाय विप्र वनमाली नामे । सेइ दिन आइलेन शची देवी-स्थाने ॥५२॥
नमस्कारि आइरे वसिल द्विजवर । आसन दिलेन आइ करिया आदर ॥५३॥
आइरे वलेन तवे वनमाली आचार्य्य । 'पुत्र-विवाहेर केन ना चिन्तह कार्य्य ॥५४॥
वल्लभ आचार्य्य कुले शीले सदाचारे । निर्दोष वैसेन नवद्वीपेर भीतरे ॥५५॥
तार कन्या लक्ष्मी प्राय रूपे शीले गुणे । से सम्बन्ध कर, जदि इच्छा हय मने ॥५६॥
आइ वले, 'पितृहीन बालक आमार । जीउक पढुक आगे तवे कार्य्य आर' ॥५७॥
आइर कथाय विप्र रस ना पाइया । चलिलेन विप्र किछु दुःखित हइया ॥५८॥
दैवे पथे देखा हइल गौरचन्द्र सङ्गे । तारे देखि आलिङ्गन कैल प्रभु रङ्गे ॥५९॥
प्रभुवले 'कह गियाछिले कोन भिते' । द्विज वले तोमार जननी सम्भाषिते ॥६०॥
तोमार विवाह लागि वलिलाम तारे । ना जाने शुनिञा श्रद्धा ना करिला केने ॥६१॥
शुनि तार वचन ईश्वर मौन हइला । हासि तारे सम्भाषिया मन्दिरे आइला ॥६२॥
जननीरे हासिया वलेन सेइ क्षणे । 'आचार्य्येर सम्भाषा ना कैला कि कारणे' ॥६३॥
पुत्रेर इङ्गित पाइ शची हरषिता । आर दिन विप्रे आनि कहिलेन कथा ॥६४॥

---

पहुँच गये ॥ ४९ ॥ निज लक्ष्मी को पहिचान कर श्रीप्रभु गौरचन्द्र हँसे, उधर श्रीलक्ष्मीदेवी भी मन ही मन प्रभु के युगल चरणों की वन्दना करने लगीं ॥ ५० ॥ इस प्रकार दोनों व्यक्ति परस्पर में एक दूसरे को पहिचान कर अपने-अपने घरों को गये । श्रीगौर सुन्दर की अपूर्व लीला को कौन समझ सकता है ? ॥ ५१ ॥ प्रभु की इच्छा से उसी दिन 'वनमाली' नामक विप्र श्रीशचीदेवी के पास आते हैं ॥ ५२ ॥ और माता जी को नमस्कार करके द्विजवर बैठ गये, श्रीशची माता ने सत्कार पूर्वक आसन दिया ॥ ५३ ॥ पश्चात् श्रीवनमाली आचार्य श्रीशची 'मा' से कहने लगे कि–'माताजी ! आप अपने पुत्र के विवाह के लिये विचार क्यों नहीं करते हो ? ॥ ५४ ॥ देखो नवद्वीप के भीतर ही एक वल्लभाचार्य करके विप्र हैं जो कुलीन, शीलवान्, सदाचारी एवं निर्दोष सज्जन हैं॥५५॥उनकी 'लक्ष्मीदेवी' नाम की कन्या है जो रूप,शील एवं गुण में श्रीलक्ष्मीजी के तुल्य है; यदि तुम्हारे मन में हो तो वह सम्बन्ध करलो' ॥५६॥ माताजी ने उत्तर दिया कि–'हमारा बालक तो पितृहीन है, पहले वह कुछ और बढ़े एवं और कुछ पढ़लें तब आगे और काम देखा जावेगा' ॥ ५७ ॥ विप्र श्रीशची माता की बात में कोई रस न पाकर कुछ उदास मना अपने घर लौट गये ॥ ५८ ॥ दैवयोग से रास्ते में श्रीगौरचन्द्र के साथ मिलन हो गया, प्रभु ने उन्हें देखकर आनन्द पूर्वक आलिङ्गन किया ॥५९॥ फिर प्रभु ने पूँछा–'कहो भाई ! कहाँ गये थे' ? विप्रवर ने उत्तर दिया तुम्हारी माताजी से बातचीत करने ॥६०॥ मैंने उनसे तुम्हारे विवाह के लिये कहा था, न मालूम क्यों उन्होंने सुनकर किसी प्रकार की श्रद्धा प्रकट नहीं की ? ॥ ६१ ॥ उनके वचन सुनकर प्रभु मौन हो गये पश्चात् हँसकर कुछ सम्भाषण करके अपने घर आये ॥ ६२ ॥ और आकर उसी समय माताजी से हँसकर बोले–'माताजी ! तुमने आचार्य जी से बातचीत क्यों नहीं की' ? ६३ पुत्र के इस इङ्गित को श्रीशचीदेवी प्रसन्न हो गई और दूसरे दिन वनमाली–

दिव्य गन्ध चन्दन ताम्बूल माला दिया ब्राह्मण गणरे तुषिलेन हर्ष हैया ८२
वल्लभ आचार्य्य आसि यथा विधि रूपे अधिवास कराइया गेलेन कौतुके ८३
प्रभाते उठिया प्रभु करि स्नान दान, पितृ गण पूजिलेन करिया सम्मान ॥८४॥
नृत्य गीत वाद्ये महा उठिल मङ्गल । चतुर्दिके जय जय शुनि कोलाहल ॥८५॥
• कत वा मिलिला आसि पतिव्रता-गण । कतेक वा इष्ट मित्र ब्राह्मण सज्जन ॥८६॥
खइ कला सिन्दूर ताम्बूल, तेल दिया । स्त्री गणेरे आइ तुषिलेन हर्ष हैया ॥८७॥
देव-गण देव-वधू-गण नर रूपे । प्रभुर विवाहे आसि आछेन कौतुके ॥८८॥
वल्लभ आचार्य्य एइमत विधि क्रमे । करिलेन देव पितृ कार्य्य हर्ष मने ॥८९॥
तबे प्रभु शुभ लग्ने गोधूली-समये । जात्रा करि आइलेन आचार्य्य आलये ॥९०॥
प्रभु आइलेन मात्र आचार्य्य गोष्ठी सने । आनन्द सागरे मग्न हैला हर्ष मने ॥९१॥
सम्भ्रमे आसन दिया यथा विधि रूपे । जामातारे वसाइया परम कौतुके ॥९२॥
तबे सर्व्व अलङ्कारे करिया भूषित । लक्ष्मी कन्या आनिलेन प्रभुर समीप ॥९३॥
हरिध्वनि सर्व्व लोके लागिला करिते । तुलिला प्रभुरे सभे पृथिवी हइते ॥९४॥
तबे लक्ष्मी प्रदक्षिण कैल सातवार । जोड़ हस्ते रहिलेन करि नमस्कार ॥९५॥
तबे शेषे हइल पुष्प फेला फेलि । लक्ष्मी नारायण दोँहे महा कुतुहली ॥९६॥

---

चारों ओर ब्राह्मणगण वेदध्वनि करने लगा उनके मध्य में द्विज-मणि श्रीविश्वम्भरचन्द्र बैठे हुए चन्द्रमा के समान शोभित हो रहे थे ॥ ८० ॥ शुभ मुहूर्त्त में श्रीभगवान् को गन्ध ( सुगन्धि चन्दन एवं इत्र आदि ) व माला देकर आत्मीय जन व विप्रगणों ने अधिवास ( घट-स्थापन ) किया ॥ ८१ ॥ एवं प्रसन्न चित्त होकर ब्राह्मणों को दिव्य गन्ध, चन्दन, ताम्बूल एवं माला देकर उन्हें संतुष्ट किया ॥८२॥ श्रीवल्लभाचार्यजी आकर विधि-पूर्वक अधिवास कराकर आनन्दित होकर चले गये ॥ ८३ ॥ दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर प्रभु ने स्नान-दान करके, सम्मान पूर्वक पितृगण की पूजा की ॥ ८४ ॥ उसी समय नृत्य, गीत एवं वाद्यों का मङ्गल ध्वनि होने लगी चारों ओर से 'जय' 'जय' का कोलाहल हुआ ॥८५॥ तथा कितनी ही पवित्रता स्त्रियाँ वहाँ आकर मिलीं और कितने ही इष्ट-मित्र, सज्जन, ब्राह्मण भी वहाँ उपस्थित हुए ॥ ८६ ॥ श्रीशची माता प्रसन्न होकर खील, केला, सिन्दूर, ताम्बूल एवं तेल दे देकर स्त्रियों को तोषित करने लगीं ॥ ८७ ॥ देवगण एवं देव-वधू गण, नर-नारी रूप में प्रभु के विवाह में सम्मिलित होकर आनन्दित हो रहे थे ॥ ८८ ॥ इसी विधि क्रम से श्रीवल्लभाचार्यजी ने भी आनन्दित होकर देव कार्य व पितृ-पूजा आदि सम्पन्न किया ॥ ८९ ॥ तब प्रभु लग्न युत गोधूलि वेला में श्रीवल्लभाचार्य जी के घर पधारे ॥ ९० ॥ प्रभु के आते ही श्रीवल्लभाचार्यजी निज गोष्ठी सहित प्रसन्न वदन होकर आनन्द-सागर में मग्न हो गये ॥ ९१ ॥ शीघ्र ही यथा विधि आसन देकर वर ( जमाता ) को आनन्द से बैठाया ॥ ९२ ॥ तब सब आभूषणों से सज्जित करके स्वनाम धन्या कन्या लक्ष्मीदेवी को प्रभु के समीप ले आये और सब लोग हरि ध्वनि करने लगे तथा सब ने प्रभु को पृथ्वी से ऊपर उठा लिया ९३ ९४॥ तब लक्ष्मीदेवी ने सात बार उनकी प्रदक्षिणा की और करके दोनों हाथ

'कत कालावधि भाग्यवती हर गौरी । निष्कपटे सेविलेन कत भक्ति करि ॥१११॥
अल्प भाग्ये कन्यार कि हेन स्वामी मिले' । 'एइ हर गौरी हेन बुझि' केह बले ॥११२॥
केहबले 'इन्द्रशची रतिवा मदन' । कोन नारी बले 'एइ लक्ष्मी नारायण' ॥११३॥
कोन कोन नारी बले 'जेन सीताराम । दोलोपरि शोभियाछे अति अनुपाम' ॥११४॥
एइ मत नाना रूप बले नारीगण । शुभ दृष्टे सभे देखे लक्ष्मी नारायण ॥११५॥
हेन मते नृत्य गीत वाद्य कोलाहले । निज गृहे प्रभु आइलेन सन्ध्या काले ॥११६॥
तवे शचीदेवी विप्रपत्नी गण लैया । पुत्र वधू घरे आनिलेन हर्ष हैया ॥११७॥
द्विज आदि जत जाति नट बाजनिया । सभारे तुषिला धन, वस्त्र, वाक्य दिया ॥११८॥
जे शुनये प्रभुर विवाह पुण्य-कथा । ताहार संसार बन्ध ना हय सर्व्वथा ॥११९॥
प्रभु पार्श्वे लक्ष्मीर हइल अवस्थान । शची गृह हइल परम ज्योतिर्धाम ॥१२०॥
निरवधि देखे शची कि घर बाहिरे । परम अद्भुत ज्योति लखिते ना पारे ॥१२१॥
कखन पुत्रेर पाशे देखे अग्नि शिखा । उलटिया चाहिते ना पाय आर देखा ॥१२२॥
कमल पुष्पेर गन्ध क्षणे क्षणे पाय । परम विस्मित आइ चिन्तेन सदाय ॥१२३॥
आइ बले बुझिलाङ कारण इहार । ए कन्याय अधिष्ठान आछे कमलार ॥१२४॥
अतएव ज्योति देखि पद्म गन्ध पाइ । पूर्व्व प्राय एवे आर दारिद्र दुःख नाञि ॥१२५॥

---

रहे थे; विशेष करके रमणी-गण तो ठगी सी रह गईं ॥ ११० ॥ उनमें से कोई रमणी कहती कि–"इस भाग्यवती ने न जाने कितने समय तक, कितनी भक्ति करके निष्कपट भाव से श्रीशङ्कर व गौरी की सेवा की है ? क्या कभी कन्या के मन्द भाग्य से उसको ऐसे स्वामी मिल सकते थे ? फिर कोई दूसरी कहती कि—'ऐसा प्रतीत होता है कि यही हर-गौरी हैं' ॥ १११-११२ ॥ कोई कहती–'यह तो इन्द्र-शची हैं' अथवा 'रति-कामदेव' की जोड़ी हैं'। कोई स्त्री कहती–'यह लक्ष्मीनारायण हैं' ॥११३॥ कोई २ रमणी कहती कि–'डोली में यह तो श्रीसीताराम ही अति अनुपम शोभा को प्राप्त हो रहे हैं ॥ ११४ ॥ इस प्रकार स्त्रीगण इस लक्ष्मी-नारायण की जोड़ी के लिये अनेक प्रकार से कहते जाते थे सभी की शुभ दृष्टि उन पर थी तथा यह लक्ष्मी-नारायण सब पर शुभ दृष्टिपात करते जाते थे ॥ ११५ ॥ इस प्रकार नृत्य, गीत वाद्य के कोलाहल के बीच प्रभु सन्ध्या काल में अपने घर पहुँचे ॥ ११६ ॥ तब श्रीशचीदेवी ने प्रसन्न हो ब्राह्मण-पत्नियों को अपने साथ लेकर पुत्र एवं वधू को द्वार पर से घर में ले आईं ॥११७॥ तथा ब्राह्मण को आदि लेकर अर्थात् ब्राह्मण आदि जितने प्रकार के नट-बजंतरी आदि वहाँ थे सभी को धन, वस्त्र तथा मीठी वाणी से सन्तुष्ट किया ॥ ११८ ॥ जो मनुष्य प्रभु के विवाह की पुण्य कथा को श्रवण करेंगे उनका संसार बन्धन कभी नहीं होगा ॥ ११९ ॥ जब से प्रभु के पार्श्वभाग में लक्ष्मीजी अवस्थिति हुईं तब से श्रीशचीदेवी का घर परम ज्योति-धाम हो गया ॥ १२० ॥ श्रीशचीदेवी बराबर क्या बाहर जब भी देखती थीं तो उनकी परम अद्भुत ज्योति पर दृष्टि नहीं ठहरती थी ॥ १२१ ॥ कभी पुत्र के पास अग्नि-शिखा उठती हुई देखती और जब उलट कर देखती तो फिर वह अदृश्य हो जाती ॥ १२२ ॥ थोड़ी २ देर में ( क्षण २ में ) कमल पुष्प की सुगन्धि सी प्रतीत होती इससे माताजी परम विस्मित होकर निरन्तर सोच विचार करती रहती १२३ कभी मन में कहती कि 'इन

एइ लक्ष्मी वधू गृहे आसि प्रवेशिले । कोथा हैते ना जानि आसिया सब मिले ॥१२६॥
एइ मत आइ नाना मत कथा कय । व्यक्त हइयाओ प्रभु व्यक्त नाहि हय ॥१२७॥
ईश्वरेर इच्छा बुझिबार शक्ति कार । कि रूपे कोन कोन काले कि प्रकार ॥१२८॥
ईश्वर से आपनारे ना जानाय जबे । लक्ष्मीओ जानिते शक्ति ना धरेन तबे ॥१२९॥
एइ सब शास्त्र वेद पुराणे वाखाने । तार कृपा हय जारे, सेइ तारे जाने ॥१३०॥
एइ मत गुप्त भावे आछे द्विजराज । अध्ययन बिना आर नाहि कोन काज ॥१३१॥
जिनिञा कन्दर्प कोटि रूप मनोहर । प्रति अङ्ग अनुपम लावण्य सुन्दर ॥१३२॥
आजानु-लम्बित भुज कमल नयन । अधरे ताम्बूल दिव्य वास परिधान ॥१३३॥
सर्व्वदाय परिहास-मूर्त्ति विद्या बले । सहस्र पडुआ सङ्गे जबे प्रभु चले ॥१३४॥
सर्व्व नवद्वीपे भ्रमे त्रिभुवन पति । पुस्तकेर रूपे करे प्रिया सरस्वती ॥१३५॥
नवद्वीपे हेन नाहि पण्डितेर नाम । जे आसिया बुझिबेक प्रभुर व्याख्यान ॥१३६॥
सबे एक गङ्गा दास महा भाग्यवान । जार ठाञि करे प्रभु विद्यार आदान ॥१३७॥
सकल संसार देखि बले 'धन्य' 'धन्य' । ए नन्दन जाहार ताहार कोन दैन्य ॥१३८॥
जतेक प्रकृति देखे मदन समान । पाषण्डी देखये जेन जम विद्यमान ॥१३९॥
पण्डित सकल देखे जेन बृहस्पति । एइ मत देखे सबे जार जेन मति ॥१४०॥

---

बातों का कारण समझ गई, इस कन्या के शरीर में श्रीलक्ष्मीजी का अधिष्ठान है ॥१२४॥ इसीलिये 'ज्योति' दिखलाई देती है और धन-धान्य प्राप्त होती है। पहले का सा दरिद्रता का दुःख अब हमारे घर में नहीं रहा, जिस दिन से यह वधू-लक्ष्मी घर में आई है, न जाने कहाँ से सब वस्तुएँ आ जाती हैं ॥ १२५-१२६ ॥ इस प्रकार श्रीशची माता नाना प्रकार की बातें विचारती थीं, प्रभु श्रीगौरचन्द्र प्रकट होकर भी प्रकट नहीं होते ॥ १२७ ॥ वे किस रूप से किस काल में किस प्रकार से क्या लीला कार्य करते हैं इस ईश्वरेच्छा को जानने की सामर्थ्य किस में है? ॥ १२८ ॥ यदि प्रभु स्वयं अपने को न जनावें तो लक्ष्मीजी की भी शक्ति नहीं है कि वह प्रभु को जान लें ॥ १२९ ॥ सर्व शास्त्र वेद एवं पुराण यही वर्णन करते हैं कि—'जिसके ऊपर उनकी कृपा होती है वही उन्हें जानता है' ॥ १३० ॥ द्विजराज श्रीगौरचन्द्र प्रभु इस प्रकार गुप्त भाव से रह रहे हैं आपको इस समय अध्ययन के सिवाय और कोई काम नहीं है ॥ १३१ ॥ आपका मनोहर रूप कोटि कामदेवों को भी जीतने वाला है, आपके श्रीअङ्ग प्रत्यङ्ग में अनुपम लावण्य देदीप्यमान है ॥ १३२ ॥ आपकी आजानुलम्बित भुजा एवं कमल नेत्र हैं, होठों पर ताम्बूल एवं श्रीअङ्ग में दिव्य वस्त्र पहिरे हुए हैं ॥ १३३ ॥ आप विद्या-बल के स्वाभिमान से सर्वदा परिहास-मूर्ति रूप में दृष्टिगोचर होते हैं जब प्रभु आप चलते हैं तो साथ में सहस्रों विद्यार्थी चलते हैं ॥ १३४ ॥ त्रिभुवन पति आप हाथ में पुस्तक रूप से प्रिया श्रीसरस्वती को लिये हुए सम्पूर्ण नवद्वीप में भ्रमण करते हैं ॥ १३५ ॥ श्रीनवद्वीप में ऐसा कोई पण्डित नहीं है जो प्रभु के व्याख्यान को समझ सके ॥ १३६ ॥ केवल एक श्रीगङ्गादास पण्डित जी महा भाग्यशाली हैं कि जिनके पास प्रभु विद्या अध्ययन करते हैं ॥ १३७ ॥ प्रभु को देखकर संसार के लोग कहते हैं कि—'धन्य है' 'धन्य है' जिसका यह पुत्र है उसके यहाँ फिर किस बात की कमी है? ॥ १३८ ॥ सब रमणीगण आपको मदन के

देखि विश्वम्भर रूप अनेक वैष्णव । हरिष विषाद मने एइ भावेसब ॥१४१॥
हेन दिव्य शरीर ना हय कृष्ण रस । कि करिवे विद्याय हइले काल-वश ॥१४२॥
मोहित वैष्णव सब प्रभुर मायाय । देखिओ तबु केह देखिते ना पाय ॥१४३॥
साक्षातेओ प्रभु देखि, केह केह बोले । 'कि कार्ज्ये गोडाओ काल तुमि विद्या भोले' ॥१४४॥
शुनिया हासेन प्रभु सेवकेर वाक्य । प्रभु बोले 'तोमरा शिखाओ मोर भाग्य' ॥१४५॥
हेन मते प्रभु गोडायेन विद्यारसे । सेवक चिनिते नारे अन्य जन किसे ॥१४६॥
चतुर्द्दिक् हइते लोक नवद्वीपे जाय । नवद्वीपे पढ़िले से विद्या-रस पाय ॥१४७॥
चाटि ग्राम निवासिओ अनेक तथाय । पढ़ेन वैष्णव सब महा सुख पाय ॥१४८॥
सभेइ जन्मियाछेन प्रभुर आज्ञाय । सभेइ विरक्त कृष्ण-भक्त सर्व्वथाय ॥१४९॥
अन्योऽन्ये मिलिया सभे पढ़िया शुनिया । करेन गोविन्द चर्च्चा निभृते वसिया ॥१५०॥
सर्व्व वैष्णवेर प्रिय मुकुन्द एकान्त । मुकुन्देर गाने द्रवे सकल महान्त ॥१५१॥
विकाल हइले आसि भागवत गण । अद्वैत सभाय सभे हयेन मिलन ॥१५२॥
जेइ मात्र मुकुन्द गायेन कृष्ण गीत । हेन नाहि जानि केवा पड़ये कोन् भित ॥१५३॥
केह कान्दे केहो हासे केहो नृत्य करे । गड़ागड़ि जाय केहो वस्त्र ना सम्वरे ॥१५४॥

---

समान देखती हैं और पाखण्डी लोग आपको साक्षात् यम के रूप में देखते हैं ॥ १३९ ॥ सब पण्डित लोग आपको श्रीवृहस्पति के रूप में देखते हैं इसी प्रकार जिनकी जैसी मति है वह प्रभु को उसी रूप में देखते हैं ॥ १४० ॥ श्रीविश्वम्भर के रूप को देखकर वैष्णव-वृन्द में से प्रत्येक हर्ष एवं विषाद को प्राप्त होते हैं और सोचते हैं कि-॥१४१॥ अगर इनका ऐसा दिव्य शरीर श्रीकृष्ण-रस की ओर आकृष्ट नहीं हुआ तो यह काल के वशीभूत होने पर विद्या-बल से क्या कर सकेंगे ? ॥१४२॥ इस प्रकार प्रभु की माया से सब वैष्णव मोहित हो रहे थे प्रभु को देखकर भी कोई नहीं देख पाता ॥ १४३ ॥ कोई-कोई तो प्रभु को साक्षात् देखकर आपसे कह उठता कि-'ए विश्वम्भर ! तुम विद्या-रस में मत्त होकर अपने समय को क्यों व्यर्थ नष्ट करते हो ?' ॥१४४॥ प्रभु अपने सेवकों के वचन सुनकर हँसते और कहते कि-'तुम जो मुझे शिक्षा देते हो यह मेरा बड़ा भाग्य है' ॥ १४५ ॥ इस प्रकार प्रभु विद्या-रस में अपना समय व्यतीत कर रहे थे । आपको आपके सेवक भी नहीं पहिचान पाते थे तब अन्य जनों की तो गणना ही क्या है ॥ १४६ ॥ लोग चारों ओर से श्रीनवद्वीप में पढ़ने के लिये आते थे, वे सब श्रीनवद्वीप में पढ़ने से ही विद्या-रस की प्राप्ति करते थे ॥ १४७ ॥ वहाँ पर चाटिग्राम ( चटगाँव )। निवासी अनेक वैष्णव भी परम सुख पूर्वक पढ़ते थे ॥ १४८ ॥ उन सब ने प्रभु की आज्ञा से ही जन्म लिया था वह सभी सर्व भाँति से विरक्त एवं श्रीकृष्ण-भक्त थे ॥ १४९ ॥ वह सब पढ़ सुन कर, परस्पर मिलकर एकान्त में बैठकर श्रीकृष्ण-चर्चा किया करते थे ॥ १५० ॥ उनमें से श्रीमुकुन्द दत्त सर्व वैष्णव-वृन्द के एकान्त प्रिय थे आपके गान को सुन कर सब वैष्णव-वृन्द द्रवीभूत हो जाते थे ॥ १५१ । सब भक्त-वृन्द विकाल ( तृतीय-प्रहर ) होने पर श्रीअद्वैत प्रभु की गोष्ठी में आकर सम्मिलित होते थे॥१५२। वहाँ ज्योंही श्रीमुकुन्द दत्त कृष्ण-गीत गाना प्रारम्भ करते त्योंही न मालूम कौन किस ओर लुढ़क पड़ता थ ॥ १५३ ॥ कोई हँसता तो कोई रोता था, कोई नृत्य करता तो कोई वस्त्र को बिना सँभाले ही लोट-पोटत

हुङ्कार करये केह मालसाट मारे। केह गिया मुकुन्देर दुइ पाये धरे ॥१५५॥
एइ मत उठये परमानन्द सुख। ना जाने वैष्णव सब आर कोन दुःख ॥१५६॥
प्रभुओ मुकुन्द प्रति बड़ सुखी मने। देखिलेइ मुकुन्देरे धरेन आपने ॥१५७॥
प्रभु जिज्ञासेन फाँकि वाखाने मुकुन्द। प्रभु बले 'किछु नहे' आर लागे द्वन्द्व ॥१५८॥
मुकुन्द पण्डित बड़ प्रभुर प्रभावे। पक्ष प्रति-पक्ष करि प्रभु सङ्गे लागे ॥१५९॥
एइ मत प्रभु निज सेवक चिनिया। जिज्ञासेन फाँकि, सबे जायेन हारिया ॥१६०॥
श्रीवासादि देखिलेओ फाँकि जिज्ञासेन। मिथ्या वाक्य-व्यय भये सबे पलायेन ॥१६१॥
सहजे विरक्त सबे श्री कृष्णेर-रसे। कृष्ण व्याख्या विनु आर किछु नाहि वासे ॥१६२॥
देखिलेइ मात्र प्रभु फाँकि से जिज्ञासे। प्रबोधिते नारे केहो शेषे उपहासे ॥१६३॥
यदि केह देखे प्रभु आइसेन दूरे। सबे पलायेन फाँकि जिज्ञासेर डरे ॥१६४॥
कृष्ण-कथा शुनिते से सबे भाल वासे। फाँकि बिना प्रभु कृष्ण-कथा ना जिज्ञासे ॥१६५॥
राज पथे प्रभु आइसेन एक दिन। पढ़ुयार सङ्गे महा उद्धतेर चिह्न ॥१६६॥
मुकुन्द जायेन गङ्गा-स्नान करिबारे। प्रभु देखि आड़े पलाइल कत दूरे ॥१६७॥
देखि प्रभु जिज्ञासेन पढ़ुयार स्थाने। ए बेटा आमारे देखि पलाइल केने ॥१६८॥
पढ़ुया सकले बले 'ना जानि पण्डित। आर कोन कार्ये वा चलिला कोनभित' ॥१६९॥

---

था ॥ १५४ ॥ कोई हुङ्कार करता तो कोई मल्लों की भाँति खम्भ ठोकता एवं कोई जाकर श्रीमुकुन्द के दोनों चरणों को ही पकड़ लेता था ॥१५५॥ इसी प्रकार का परमानन्द-सुख उमड़ पड़ता था। उस समय वैष्णवगण अन्य किसी प्रकार के दुःख का भान भी नहीं करते थे ॥१५६॥ प्रभु भी श्रीमुकुन्द के प्रति मन में बड़े प्रसन्न थे, मुकुन्द को देखते ही आप उन्हें पकड़ लेते थे ॥१५७॥ प्रभु उनसे 'फाँकि' पूछते, वह उसकी व्याख्या करते, पर प्रभु कहते 'इसका तो कुछ नहीं!' तब मुकुन्द के साथ द्वन्द्व छिड़ा हो जाता था ॥ १५८ ॥ प्रभु की कृपा से मुकुन्द भी परम पण्डित हैं इसीलिये आप प्रभु के साथ पक्ष, प्रति पक्ष करते हुए प्रभु की बराबरी करने लगते थे ॥१५९॥ प्रभु इसी प्रकार अपने सेवकों को पहिचान कर उनसे 'फाँकि' पूछते तो वे सब अन्त में हार कर चले जाते थे ॥ १६० ॥ श्री श्रीवास आदि भक्तों से भी आप 'फाँकि' पूछने लगते थे, परन्तु जिसमें सार नहीं है ऐसे वाक्य प्रयोग में समय नष्ट होने के भय से वे सब दूर भागते थे ॥ १६१ ॥ वे सब भक्तगण श्रीकृष्ण-रस में लीन होने के कारण अन्य रस से सहज में ही विरक्त थे। वह श्रीकृष्ण-विषयक व्याख्या के अतिरिक्त बोलना पसन्द नहीं करते थे ॥ १६२ ॥ प्रभु उनके देखते ही उनसे 'फाँकि' पूछते तब उनमें से कोई ठीक उत्तर न देकर प्रभु को प्रबोध नहीं कर पाता तो अन्त में प्रभु उनकी हँसी उड़ाते थे ॥ १६३ ॥ फाँकि पूछने के डर के कारण यदि उनमें से कोई प्रभु को दूर से भी आता हुआ देखता तो वह सबके सब भाग जाते थे ॥१६४॥ इन सबको कृष्ण-कथा सुनना ही अच्छा लगता था, परन्तु प्रभु फाँकि पूछने के अतिरिक्त कृष्ण-कथा पूछते नहीं ॥ १६५ ॥ एक दिन प्रभु विद्यार्थी समूह के साथ महा उद्दण्डता प्रकाशित करते हुए राज-पथ पर आये। १६६ इधर से श्रीमुकुन्द श्रीगङ्गा-स्नान करने के लिये जाते थे प्रभु को सामने आते देखकर आँख बचाकर वह कुछ दूर निकल भाग गये १६७। यह देखकर प्रभु विद्यार्थियों से पूछने लगे 'यह बेटा

प्रभु बले जानिलाम जे लागि पलाय। बहिर्म्मुख सम्भाषा करिते ना जुयाय ॥१७०॥
ए बेटा पढ़ाय जत वैष्णवेर शास्त्र। पाँजि, वृत्ति, टीका आमि बाखानिये मात्र ॥१७१॥
आमार सम्भाषे नाहि कृष्णेर कथन। अतएव आमा देखि करे पलायन ॥१७२॥
सन्तोषे पाड़ेन गालि प्रभु मुकुन्देरे। व्यपदेशे प्रकाश करेन आपनारे ॥१७३॥
प्रभु बले 'आरे बेटा कत दिन थाक। पलाइले कोथा एड़ाइबे मोर पाक' ॥१७४॥
हासि बले प्रभु 'आगे पढ़ों कतदिन। तबे से देखिबे मोर वैष्णवेर चिह्न ॥१७५॥
एमन वैष्णव मुञि हइब संसारे। अज भव आसिबेक आमार दुयारे' ॥१७६॥
शुन भाइ सब एइ आमार वचन। वैष्णव हइब मुञि सर्व्व विलक्षण ॥१७७॥
आमारे देखिया एवे जे सब पलाय। ताहाराओ जेन मोर गुण कीर्त्ति गाय॥१७८॥
एतेक बलिया प्रभु हासिते हासिते। घरे गेला निज शिष्य-गणेर सहिते ॥१७९॥
एइमत रङ्ग करे विश्वम्भर राय। के ताने जानिते पारे जदि ना जानाय ॥१८०॥
हेन मते भक्त-गण नवद्वीपे वैसे। सकल नदिया मत्त धन पुत्र रसे ॥१८१॥
शुनिलेइ कीर्त्तन करये परिहास। केह बले 'सब पेट पुषिबार आश' ॥१८२॥
केहो बले 'ज्ञान-जोग एड़िया विचार। उद्धतेर प्राय नृत्य कोन व्यभार' ॥१८३॥
केहो बले 'कत रूप पढ़िल भागवत। नाचिब कान्दिब हेन ना देखिल पथ' ॥१८४॥

---

हमको देखकर भाग क्यों गया ?' ॥ १६८ ॥ सब विद्यार्थी-वृन्द ने उत्तर दिया–'पण्डितजी ! पता नहीं, स्यात् अन्य किसी कार्य से कहीं चले गये हों अथवा डर से !' प्रभु बोले–'हम जान गये, जिससे कि वह भागा है, वह बहिर्मुख से सम्भाषण करना योग्य नहीं समझता ! ॥१६९-१७०॥यह बेटा तो केवल वैष्णव-शास्त्र पढ़ाता है और मैं केवल पाँजि, वृत्ति एवं टीका की व्याख्या करता हूँ ॥ १७१ ॥ मेरी व्याख्या में कृष्ण-वार्त्ता नहीं होती है अतएव यह मुझको देखकर भाग जाताहै॥१७२॥इस प्रकार प्रभु मुकुन्द से सन्तुष्ट होकर गाली देते थे; इस बहाने से आप अपना भाव प्रकाश करने लगे ॥१७३॥प्रभु कहते हैं कि–'अरे बेटा ! कुछ दिन और ठहर, मेरी पकड़ से भागकर कहाँ छिपेगा ?' ॥ १७४ ॥ प्रभु फिर हँस कर कहते कि—मैं पहले कुछ दिन विद्या-अध्ययन कर लूँ तब वह मुझ में वैष्णवता के चिह्न देखेगा ॥ १७५ ॥ मैं संसार में इस प्रकार का वैष्णव हूँगा कि–ब्रह्मा व शिव भी मेरे द्वार पर आयेंगे ॥ १७६ ॥ तुम सब भाई ! मेरी बात सुनो, मैं कुछ समय पश्चात् सब से अनोखा वैष्णव होऊँगा ॥ १७७ ॥ इस समय जो यह सब लोग मुझको देखकर भागते हैं, देखना ! वह भी मेरी गुण-कीर्त्ति गावेंगे' ॥ १७८ ॥ इतना कह कर प्रभु हँसते-हँसते शिष्य-गण के साथ घर चले गये ॥ १७९ ॥ श्रीविश्वम्भर राय इस प्रकार के खेल करते थे; यदि आप अपने को न जनावें तो आपको कौन जान सकता है ? ॥ १८० ॥ इस प्रकार भक्त-गण श्रीनवद्वीप में वास कर रहे थे। इधर सब नवद्वीप-वासी धन एवं पुत्र के क्षणिक आनन्द में मस्त हो रहे थे ॥ १८१ ॥ वह सब कीर्त्तन सुनते ही उसकी हँसी उड़ाते। कोई कहता कि—'यह सब (कीर्त्तन) पेट पालन की आशा से है' ॥ १८२ ॥ कोई कहता कि–'इनका ज्ञान-योग के विचार को छोड़कर उद्धतों की भाँति नाचना न मालूम क्या आचरण है ?' कोई कहता कि–'हमने भागवत् को कितनेही रूपसे पढा लेकिन उसमें नाचने एवं रोने का पथ नहीं देखा १८२ १८४ 'और

श्रीवास पण्डित चारि भाइ लागिया। निद्रा नाहि जाय भाइ! भोजन करिया ॥१८५॥
धीरे धीरे कृष्ण बलिले कि पुण्य नहे। नाचिले गाइले डाक छाड़िले कि हये ॥१८६॥
एइ मत जत पाप पाषण्डीर गण। देखिलेइ वैष्णवेर करेन निन्दन ॥१८७॥
शुनिञा वैष्णव सब महा दुःख पाय। कृष्ण बलि सबेइ कान्देन उर्द्ध-राय ॥१८८॥
'कत दिने ए सब दुःखेर हबे नाश। जगतेर कृष्णचन्द्र! करह प्रकाश' ॥१८९॥
सकल वैष्णव मेलि अद्वैतेर स्थाने। पाषण्डीर वचन करेन निवेदने ॥१९०॥
शुनिञा अद्वैत हन रुद्र अवतार। 'संहारिमु सब' बलि करिये हुङ्कार ॥१९१॥
'आसितेछे एइ मोर प्रभु चक्रधर। देखिबा कि हय एइ नदियार भितर ॥१९२॥
कराइमु कृष्ण सर्व्व नयन गोचर। तबे से अद्वैत नाम कृष्णेर किङ्कर ॥१९३॥
दुःख ना भाविह आर शुन भाइ सब। एथाइ पाइबा सबे कृष्ण अनुभव' ॥१९४॥
अद्वैतेर वाक्य शुनि भागवत-गण। दुःख पासरिया सबे करेन कीर्त्तन ॥१९५॥
उठिल कृष्णेर नाम परम मङ्गल। अद्वैत सहित सबे हइला विह्वल ॥१९६॥
पाषण्डीर वाक्य ज्वाला सब गेल दूर। एइ मत आनन्दित नवद्वीप-पुर ॥१९७॥
अध्ययन सुखे प्रभु विश्वम्भर राय। निरवधि जननीर आनन्द बाढ़ाय ॥१९८॥
हेन काले नवद्वीपे श्रीईश्वर पुरी। आइलेन अति अलक्षित वेश धरि ॥१९९॥

---

किन्तु भाई! शाम को भोजन करने के पीछे श्रीवास पण्डित सहित चारों भाई रात को सोते भी नहीं हैं ॥१८५॥ क्या धीरे-धीरे 'कृष्ण' 'कृष्ण' कहने से पुण्य नहीं होता है? नाचने, गाने एवं ऊँचे स्वर से पुकार करने से ही क्या होता है?' ॥ १८६ ॥ पापी पाषण्डीगण सब इसी प्रकार के थे वह वैष्णव को देखते मात्र ही निन्दा करने लगते ॥ १८७ ॥ जिसको सुनकर सब ही वैष्णव-वृन्द महा दुःख पाते और सभी 'कृष्ण!' 'कृष्ण!' कहकर ऊँचे स्वर से क्रन्दन करने लगते थे ॥ १८८ ॥ और प्रार्थना करते कि—'हे कृष्णचन्द्र! अब कितने दिनों में यह सब दुःख नाश होगा? हे कृष्णचन्द्र! अब तो संसार में प्रगट होओ ॥ १८९ ॥ सब वैष्णव मिल कर श्रीअद्वैत प्रभु के पास पाषण्डियों के वाक्य निवेदन करते थे ॥ १९० ॥ इसको सुनकर श्रीअद्वैत प्रभु रुद्र रूप धारण कर लेते और 'मैं सब पापियों का नाश करूँगा' कह कर हुङ्कार करते थे ॥ १९१ ॥ फिर कहते कि—'देखो शीघ्र ही मेरे चक्रधारी प्रभु यहाँ आ रहे हैं, तुम देखना, इस नवद्वीप में क्या (अघटन घटन) होता है? ॥१९२॥ मैं श्रीकृष्ण को सबके नयन-गोचर कराऊँगा, तभी श्रीकृष्ण का दास मेरा अद्वैत नाम सार्थक ॥ १९३ ॥ हे सब भाइयो! सुनो, अब और मन में दुःख न पाओ, तुम सब यहीं श्रीकृष्ण का अनुभव करोगे!' ॥१९४॥ सब वैष्णव-वृन्द श्रीअद्वैत प्रभु के वाक्य सुन कर दुःख भूल कर श्रीहरि-सङ्कीर्त्तन करते थे ॥ १९५ ॥ परम मङ्गलमयी श्रीकृष्ण-नाम ध्वनि उठी और श्रीअद्वैत प्रभु सहित सब जन विह्वल हो गये ॥ १९६ ॥ सब पाषण्डियों की वाक्य-ज्वाला दूर हो गई इस प्रकार श्रीनवद्वीप-पुर में आनन्द होता रहता था ॥ १९७ ॥ इधर प्रभु श्रीविश्वम्भर राय अध्ययन-सुख में निरन्तर श्रीमाताजी का आनन्द-वर्द्धन कर रहे थे ॥१९८॥ इसी समय श्रीईश्वरपुरी गोस्वामिपाद अति अलक्षित रूप से श्रीनवद्वीप में पधारे ॥१९९॥ श्रीपाद महाशय कृष्ण-रस में परम विह्वल हो रहे थे आप श्रीकृष्ण के एकान्त प्रिय हैं एवं अति दया

कृष्ण रसे परम विह्वल महाशय । एकान्त कृष्णेर प्रिय अति दयामय ॥२००॥
तान वेशे ताने केह चिनिते ना पारे । दैवे गिया उठिलेन अद्वैत मन्दिरे ॥२०१॥
जे स्थाने अद्वैत सेवा करेन बसिया । सम्मुखे बसिला बड़ सङ्कुचित हैया ॥२०२॥
वैष्णवेर तेज वैष्णवेरे ना लुकाय । पुनः पुन अद्वैत ताहार पाने चाय ॥२०३॥
अद्वैत बलेन 'बापु तुमि कोन जन । वैष्णव सन्यासी तुमि हेन लय मन' ॥२०४॥
बलेन ईश्वर पुरी 'आमि शूद्राधम । देखिवारे आइलाम तोमार चरण' ॥२०५॥
बुझिया मुकुन्द एक कृष्णेर चरित । गाइते लागिला अति प्रेमेर सहित ॥२०६॥
जेइमात्र शुनिलेन मुकुन्देर गीते । पड़िला ईश्वर पुरी ढलि पृथिवीते ॥२०७॥
नयनेर जले अन्त नाहिक ताहान । पुनः पुन बाढ़े प्रेम-धारार पयान ॥२०८॥
आरते व्यस्ते अद्वैत तुलिया कैला कोले । सिञ्चित हइल अङ्ग नयनेर जले ॥२०९॥
सम्वरण नहे प्रेम पुनः पुनः बाढ़े । सन्तोषे मुकुन्द उच्च करि श्लोक पढ़े ॥२१०॥
देखिया वैष्णव सब प्रेमेर विकार । अतुल आनन्द मने जन्मिल समार ॥२११॥
पाछे सभे चिनिलेन श्री ईश्वर पुरी । प्रेम देखि सभेइ सङरे 'हरि' 'हरि' ॥२१२॥
एइ मत ईश्वर पुरी नवद्वीप पुरे । अलक्षिते बसेन चिनिते केह नारे ॥२१३॥
दैवे एक दिन प्रभु श्री गौर सुन्दर । पड़ाइया आइसेन आपनार घर ॥२१४॥
पथे देखा हइल ईश्वर पुरी सने । भृत्य देखि प्रभु नमस्करिला आपने ॥२१५॥

---

मय हैं ॥ २०० ॥ उस वेश में आपको कोई पहचान नहीं सकता, दैवयोग से आप श्रीअद्वैत-प्रभु के घर जा पहुँचे ॥ २०१ ॥ जिस स्थान पर बैठकर श्रीअद्वैत प्रभु श्रीठाकुर-सेवा कर रहे थे आप बड़े संकुचित होकर उनके सामने वहीं बैठ गये ॥ २०२ ॥ वैष्णव का तेज वैष्णव से छिपता नहीं है अतएव श्रीअद्वैत प्रभु बार-बार आपकी ओर देखते थे ॥ २०३ ॥ कुछ समय पश्चात् श्रीअद्वैत प्रभु ने आपसे कहा कि—'हे बाबा ! आप कौन हो ? ऐसा प्रतीत होता है कि आप वैष्णव-संन्यासी हैं' ॥ २०४ ॥ श्रीईश्वरपुरी जी ने उत्तर दिया कि—'मैं शूद्रों में भी अति नीच शूद्र हूँ । आपके चरण दर्शन के लिये आया हूँ' ॥ २०५ ॥ श्रीमुकुन्द यह समझ कर अत्यन्त प्रेम के साथ श्रीकृष्ण-चरित्र गान करने लगे ॥ २०६ ॥ ज्योंही श्रीईश्वर पुरीजी ने श्रीमुकुन्द का गान सुना कि—आप पृथ्वी पर ढुलक कर गिर पड़े ॥ २०७ ॥ आपके अश्रुपात का अन्त नहीं हो रहा था तथा अश्रुधारा पुनः पुनः और वेगवान हो उठती थी ॥ २०८ ॥ जैसे तैसे श्रीअद्वैत प्रभु ने आपको उठा कर गोदी में लिया है, आपका सर्वाङ्ग अश्रु जल से सिञ्चित हो गया था ॥ २०९ ॥ आपका प्रेम शान्त नहीं होता था वह पुनः पुनः बढ़ता ही जाता था श्रीमुकुन्द प्रसन्न होकर और उच्च स्वर से श्लोक पढ़ते थे ॥ २१० ॥ सब वैष्णव-वृन्द के मन में ( श्रीईश्वरपुरी जी के ) प्रेम-विकार को देखकर अतुलित आनन्द हुआ ॥ २११ ॥ पीछे सभी ने श्रीईश्वर पुरी को पहिचाना; आपके प्रेम को देखकर सभी 'हरि' 'हरि' स्मरण करने लगे ॥२१२॥ इस प्रकार से श्रीईश्वर पुरी श्रीनवद्वीप-पुर में अलक्षित रूप से निवास कर रहे थे, आपको कोई पहिचान नहीं पाता था ॥ २१३ ॥ दैवयोग से एक दिन प्रभु श्रीगौरसुन्दर पढ़ा कर अपने घर आ रहे थे ॥२१४॥ अकस्मात मार्ग में श्रीईश्वर पुरी जी के साथ मिलन हो गया,प्रभु ने अपना सेवक (परिकर) जान कर उन्हें स्वयं नमस्कार

अति अनिर्व्वचनीय ठाकुर सुन्दर । सर्व्व मते सर्व्व विलक्षण गुण धर ॥२१६॥
जद्यपिओ तार मर्म्म केह नाहि जाने । तथापि साध्वस करे देखि सर्व्व जने ॥२१७॥
चाहेन ईश्वर पुरी प्रभुर शरीर । सिद्ध पुरुषेर प्राय परम गम्भीर ॥२१८॥
जिज्ञासेन 'तोमार कि नाम द्विजवर । कि पुँथि पड़ाओ पड़, कोन स्थाने घर' ॥२१९॥
शेषे सबे बलिलेन निमाञि पण्डित । 'तुमि सेइ' बलिया बड़ हइला हर्षित ॥२२०॥
भिक्षा निमन्त्रण प्रभु करिल ताहाने । महादरे गृहे लइ चलिला आपने ॥२२१॥
कृष्णेर नैवेद्य आइ करिलेन गिया । भिक्षा करि विष्णुगृहे वसिला आसिया ॥२२२॥
कृष्णेर प्रस्ताव सबे कहिते लागिला । कहिते कृष्णेर कथा विह्वल हइला ॥२२३॥
देखिया प्रेमेर धारा प्रभुर सन्तोष । ना प्रकाशे आपन लोकेर देखि दोष ॥२२४॥
मास कत गोपीनाथ आचार्य्येर घरे । रहिला ईश्वर पुरी नवद्वीप पुरे ॥२२५॥
सभे बड़ उल्लासित देखिते ताहाने । प्रभुओ देखिते नित्य चलेन आपने ॥२२६॥
गदाधर पण्डितेर देखि प्रेम जल । बड़ प्रिय वासे तारे वैष्णव सकल ॥२२७॥
शिशु हैते संसारे विरक्त बड़ मने । ईश्वर पुरीओ स्नेह करेन ताहाने ॥२२८॥
गदाधर पण्डितेरे आपनार कृत । पुँथि पड़ायेन, नाम 'कृष्ण लीलामृत' ॥२२९॥
पड़ाइया पड़िया ठाकुर सन्ध्या काले । ईश्वर पुरीरे नित्य नमस्कारे चले ॥२३०॥

---

किया ॥ २१५ ॥ ठाकुर श्रीगौरसुन्दर का स्वरूप अनिर्वचनीय सुन्दर एवं सर्व प्रकार से सभी विलक्षण गुणों का आलय था ॥ २१६ ॥ यद्यपि आपके मर्म को कोई नहीं जानता तो भी सब लोग आप को देखकर भय मानते थे ॥ २१७ ॥ इस कारण श्रीईश्वर पुरी जी भी प्रभु के शरीर की ओर देखते ही रह गये, प्रभु आपको सिद्ध पुरुष के समान परम गम्भीर दिखलाई दिये ॥ २१८ ॥ श्री पुरी जी ने पूछा—'द्विज श्रेष्ठ ! आपका क्या नाम है ? कौनसी पुस्तक पढ़ते एवं पढ़ाते हो ? आपका घर कहाँ है ? ॥ २१९ ॥ श्रीनिमाञि पण्डित अन्त में सब बतला दिया, श्रीपुरी जी ने विस्मित होकर कहा—'अरे आप ही वह हो ?' और बड़े प्रसन्न हुए हैं ॥ २२० ॥ तब प्रभु ने उनको भोजन करने का निमन्त्रण दिया और स्वयं उनको बड़े आदर पूर्वक अपने घर लिवा ले गये हैं ॥ २२१ ॥ श्रीमाता जी ने श्रीकृष्ण-नैवेद्य प्रस्तुत किया तथा श्रीपुरी जी भोजन करके श्रीविष्णु-गृह में आकर बैठ गये ॥ २२२ ॥ और श्रीकृष्ण-कथा वार्ता कहना आरम्भ कर दी, आप श्रीकृष्ण-कथा कहते-कहते विह्वल हो जाते थे एवं प्रेमाश्रु धारा बहने लगी ॥ २२३ ॥ आपकी प्रेमाश्रु-धारा देख-कर प्रभु को बड़ा सन्तोष हुआ परन्तु लोगों के दुर्दिन होने के कारण महाप्रभु अपने को प्रकाश नहीं करते थे ॥ २२४ ॥ श्रीईश्वर पुरी श्रीनवद्वीप-पुरी में कई महीने श्रीगोपीनाथ आचार्य के घर में रहे ॥ २२५ ॥ आपके दर्शन करने के लिये सभी जन बड़े उत्सुक रहते थे, प्रभु भी नित्य प्रति आप से मिलने के लिये जाते थे॥२२६॥ श्रीगदाधर पण्डित के नेत्रों में प्रेम-जल देखकर सकल वैष्णव-वृन्द आपको बड़ा प्यार करते थे ॥२२७॥ आप बालपन से ही संसार से बड़े विरक्त थे, श्रीईश्वरपुरी भी आपको स्नेह करते थे ॥ २२८ ॥ श्रीईश्वरपुरी, श्रीगदाधर पण्डित को अपनी बनाई हुई 'श्रीकृष्णलीलामृत' नामक पुस्तक पढ़ाते थे ॥ २२९ ॥ ठाकुर श्री पढ़ा-कर एवं पढ़कर सन्ध्या समय नित्य प्रति श्रीईश्वरपुरी जी का [illegible] करने के लिये जाते थे ॥ २३० ॥ प्रभु

प्रभु देखे श्री ईश्वर पुरी हरषित। प्रभु हेन ना जानेन तबु बड़ प्रीत ॥२३१॥
हासिया वलेन तुमि परम पण्डित। आमि पुँथि करियाछि कृष्णेर चरित ॥२३२॥
सकल कहिबा कोथा थाके कोन दोष। इहाते आमार बड़ परम सन्तोष ॥२३३॥
प्रभु बोले भक्त वाक्य कृष्णेर वर्णन। इहाते जे दोष देखे, पापी सेइ जन ॥२३४॥
भक्तेर कवित्व जेते मते केने नहे। कृष्णेर सर्व्वथा प्रीत ताहाते निश्चये। २३५॥
मूर्खो वदति विष्णाय, विष्णवे वले धीर। दुइ वाक्य परिग्रह करे कृष्ण वीर ॥२३६॥
तथाहि:—मूर्खो वदति विष्णाय धीरो वदति विष्णवे। उभयोस्तु समं पुण्यं भावग्राही जनार्दनः॥ (क)
इहाते जे दोष देखे ताहाते से दोष। भक्तेर वर्णन मात्र कृष्णेर सन्तोष ॥२३७॥
अतएव तोमार से प्रेमेर वर्णन। इहा दूषिवेक कौन साहसिक जन ॥२३८॥
शुनिञा ईश्वर पुरी प्रभुर उत्तर। अमृत सिञ्चित हइल तान कलेवर ॥२३९॥
पुन हासि वलिला तोमार दोष नाञि। अवश्य वलिवा दोष थाके जेइ ठाञि ।।२४०॥
एइ मत प्रति दिन प्रभु तान सङ्गे। विचार करेन दुइ चारि दण्ड रङ्गे ॥२४१॥
एक दिन प्रभु तान कवित्व शुनिञा। हासि दूषिलेन धातु ना लागे वलिया ॥२४२॥
प्रभु वले ए धातु आत्मनेपदी नय। वलिया चलिला प्रभु आपन आलय ॥२४३॥
ईश्वर पुरीओ सर्व्व शास्त्रेते पण्डित। विद्या रस विचारेओ बड़ हरषित ॥२४४॥
प्रभु गेले सेइ धातु करेन विचार। सिद्धान्त करेन तहि अशेष प्रकार २४५॥

---

को देखकर श्रीईश्वरपुरी बड़े प्रसन्न होते थे, यद्यपि वह प्रभु को, प्रभु करके नहीं जानते थे तब भी बड़ी प्रीति करते थे ॥ २३१ ॥ श्रीपुरी जी हँसकर प्रभु से कहते कि–'आप परम पण्डित हैं मैंने कृष्ण-चरित्र की एक पुस्तक रचना की है ॥२३२॥ उसको आप देखिये और जहाँ कहीं उसमें कोई दोष हों तो वह सब मुझे बताइये इससे मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी' प्रभु ने उत्तर दिया कि—'प्रथम तो भक्त-वाक्य' दूसरे श्रीकृष्ण का वर्णन फिर उसमें जो दोष देखता है वह व्यक्ति पापी है॥२३३-२३४॥भक्त की कविता चाहे जिस प्रकार की भी क्यों न हो निश्चय ही, श्रीकृष्ण उससे प्रसन्न होते हैं। मूर्ख मनुष्य 'विष्णाय' बोलता है और बुद्धिमान 'विष्णवे' कहता है, परन्तु वीर श्रीकृष्ण दोनों ही वाक्यों को ग्रहण करते हैं ॥ २३५-२३६ ॥ मूर्ख 'विष्णाय नमः' कहता है ( जो अशुद्ध है ) और धीर 'विष्णवे नमः' कहता है ( जो शुद्ध है ) लेकिन दोनों का समान पुण्य है क्योंकि श्रीजनार्दन भाव-ग्राही हैं (क) जो इसमें दोष देखता है वह दोष उस ही में है। भक्त के सर्व प्रकार के वर्णन से श्रीकृष्ण की प्रसन्नता होती है ॥ २३७ ॥ अतएव तुम्हारे उस प्रेम के वर्णन में कौन साहसिक जन दोष लगा सकता है ?' ॥ २३८ ॥ प्रभु का उत्तर सुनकर श्रीईश्वर पुरी का शरीर अमृत से सिञ्चित हो गया, आप फिर हँसकर बोले कि–'इसमें तुम्हारा कोई दोष न होगा, जिस-जिस स्थान पर दोष देखने में आवें आप अवश्य उन्हें बताना'॥२३९-२४०॥प्रभु इस प्रकार प्रति दिन उनके साथ आनन्दपूर्वक दो-चार दण्ड (दण्ड = २॥घड़ी) विचार करते थे॥२४१॥एक दिन प्रभु आपके कवित्व को सुनकर हँसे तथा यहाँ धातु पाठ नहीं लगती है' ऐसा कहकर उसमें दोष लगाया ॥ २४२ ॥ प्रभु ने कहा कि–'यह धातु आत्मनेपदी नहीं है' यह कहकर अपने घर चले गये २४३ श्रीईश्वरपुरी भी सर्व-शास्त्रों के पण्डित थे एवं विद्या-रस विचार में ही वह

व्याकरण शास्त्रे सबे विचार आदान । भट्टाचार्य प्रति श्रो नाहिक तृण ज्ञान ॥४॥
स्वानुभवानन्दे करे नगर भ्रमण । संहति परम भाग्यवन्त शिष्य-गण ॥५॥
दैवे पथे मुकुन्देर सङ्ग दरशन । हस्ते धरि प्रभु तारे वलेन वचन ॥६॥
आमारे देखिया तुमि कि कार्जे पलाश्रो । आजि आमा प्रबोधिया बिना देखि जाओ ॥७॥
मने भावे मुकुन्द 'एरे जिनिव केमने । इहार अभ्यास मात्र सवे व्याकरणे ॥८॥
ठेका इमु आजि जिज्ञासिया अलङ्कार । मोर मने गर्व्व जेन नाहि करे आर' ॥९॥
लागिल जिज्ञासा मुकुन्देरे प्रभु सने । प्रभु खण्डे जत अर्थ मुकुन्द बाखाने ॥१०॥
मुकुन्द वलेन 'व्याकरण' शिशु-शास्त्र । बालके से इहार विचार करे मात्र ॥११॥
अलङ्कार विचार करिव तोमा सने । प्रभु वले बुझ तोमार जेवा लय मने ॥१२॥
विषम विषम जत कवित्व प्रचार । पढ़िया मुकुन्द जिज्ञासये अलङ्कार ॥१३॥
सर्व्व शक्ति मय गौर चन्द्र अवतार । खण्ड खण्ड करि दूषे सब अलङ्कार ॥१४॥
मुकुन्द स्थापिते नारे प्रभुर खण्डन । हासिया हासिया प्रभु वलेन वचन ॥१५॥
आजि घरे गिया भालमते पुँथि चाह । कालि बुझवाङ झट आसिवारे चाह ॥१६॥
चलिला मुकुन्द लइ चरणेर धूली । मने मने चिन्तये मुकुन्द कुतुहली ॥१७॥
"मनुष्येर एमन पाण्डित्य आछे कोथा । हेन शास्त्र नाहि जे अभ्यास नाहि जथा ॥१८॥

---

में थे प्रभु सभी को छेड़ते थे उनमें से कोई भी ऐसा शक्ति धारी ( विद्यानिधान ) अध्यापक नहीं था, जो प्रभु को बोध करा दे ॥ ३ ॥ यद्यपि प्रभु ने केवल व्याकरण शास्त्र ही अध्ययन किया था तथापि आप भट्टाचार्य आदिकों को भी तृण मात्र नहीं समझते थे ॥ ४ ॥ आप अपनी इच्छा से स्वानुभव आनन्द में नगर-भ्रमण करते रहते थे, परम भाग्यवान् शिष्यगण आपके साथ रहते थे ॥ ५ ॥ एक दिन दैवयोग से पथ में श्रीमुकुन्द के साथ मिलन हो गया है उस समय प्रभु उनका हाथ पकड़ कर कहने लगे ॥ ६ ॥ मुझको देखकर तुम क्यों भागते हो ? देखें, आज तुम बिना मुझे प्रबोध दिये कैसे जाते हो ॥ ७ ॥ श्रीमुकुन्द मन में विचार करने लगे कि-"इसको किस प्रकार जीतूँ, इसका अभ्यास तो केवल मात्र व्याकरण शास्त्र में ही है ॥ ८ ॥ आज मैं इसको अलङ्कार पूछ कर हराऊँगा जिससे मेरे साथ और कभी गर्व न करे' ॥ ९ ॥ तब श्रीप्रभु के साथ श्री-मुकुन्द प्रश्नोत्तर आरम्भ हुए, मुकुन्द जितने भी अर्थ व्याख्या करते प्रभु उन सबको खण्डन कर देते थे॥१०॥ तब श्रीमुकुन्द ने कहा-'व्याकरण तो शिशु-शास्त्र है, इसका विचार केवल बालक ही करते हैं ॥ ११ ॥ मैं तुम्हारे साथ अलङ्कार विचार करूँगा' । प्रभु बोले-'तुम्हारे मन में जो हो सो पूछो' ॥ १२ ॥ तब श्रीमुकुन्द जितने कठिन-कठिन कवित्व ( पद्य ) प्रचलित थे उनको पढ़कर उनमें अलङ्कार पूछने लगे ॥ १३ ॥ सर्व शक्ति समन्वित अवतारश्रेष्ठ श्रीगौरचन्द्र उन सब अलङ्कारों को खण्ड-खण्ड करके उनमें दोष स्थापित करते थे॥१४॥ प्रभु के खण्डन को मुकुन्द स्थापन नहीं कर पाते, तब प्रभु हँसते हुए उनसे कहते कि-॥ १५ ॥ तुम आज घर जाकर अच्छी तरह से पुस्तक विचार करना, कल हम समझ लेंगे, शीघ्र आना ॥ १६ ॥ तब श्रीमुकुन्द प्रभु के श्रीचरणों की धूलि लेकर चले गये तथा मन ही मन विस्मित होकर विचार करते जाते थे कि ॥ १७ ॥
ऐसा पाण्डित्य मनुष्यों में कहाँ होता है ? ऐसा कोई शास्त्र नहीं है जिसका इनको यथार्थ न हो १८।

एमन सुबुद्धि कृष्ण-भक्त हय जबे । तिलेक इहार सङ्ग ना छाड़िये तबे' ॥१९॥
एइ मते विद्या रसे वैकुण्ठ ईश्वर । भ्रमिते देखेन आर दिने गदाधर ॥२०॥
हासि दुइ हाते प्रभु राखिल धरिया । 'न्याय पढ़ तुमि आमा जाओ प्रबोधिया' ॥२१॥
'जिज्ञास मह' गदाधर बलये वचन । प्रभु बले 'कह, देखि मुक्तिर लक्षण' ॥२२॥
शास्त्र अर्थ जेन गदाधर वाखानिला । प्रभु बलेन व्याख्या ना करिते जानिला ॥२३॥
गदाधर बले 'आत्यन्तिक दुःख नाश । इहारेइ शास्त्रे कहे मुक्तिर प्रकाश' ॥२४॥
नाना रूपे दोष प्रभु सरस्वती पति । हेन नाहि तार्किक जे ताहा करे स्थिति ॥२५॥
हेन जन नाहि जे प्रभुर सने बले । गदाधर भावे 'आजि बांचि पलाइले' २६॥
प्रभु बले 'गदाधर ! आज जाह घर । कालि बुझवाड तुमि आसिह सत्वर ॥२७॥
नमस्कारि गदाधर चलिलेन घरे । ठाकुर भ्रमेन सर्व नगरे नगरे ॥२८॥
परम पाण्डित्य ज्ञान हइल सबार । सभेइ करेन देखि सम्भ्रम अपार ॥२९॥
बैकाले ठाकुर सब्वे पढ़ुयार सङ्गे । गङ्गातीरे आसिया वसेन महारङ्गे ॥३०॥
सिन्धु-सुता सेवित प्रभुर कलेवर । त्रिभुवने अद्वितीय मदन सुन्दर ॥३१॥
चतुर्दिके वेढ़िया वसेन शिष्यगण । मध्ये शास्त्र वाखानेन श्री शची नन्दन ३२॥
वैष्णव सकल तबे सन्ध्या काल हैले । आसिया वसेन गङ्गा तीरे कुतूहले ॥३३॥
दूरे थाकि प्रभुर व्याख्यान सभे शुने । हरिष विषाद सभे भावे मने मने ॥३४॥

---

ऐसा यह सुबुद्धिमान व्यक्ति यदि कृष्ण-भक्त हो जाँय तब मैं इसका एक तिल भर के लिये भी सङ्ग-त्याग न करूँ' ॥ १९ ॥ इसी प्रकार वैकुण्ठनाथ श्रीविश्वम्भर ने विद्या-रस में भ्रमण करते हुए अन्य एक दिन श्रीगदाधर पण्डित को देखा ॥ २० ॥ प्रभु ने हँसकर दोनों हाथों से इनको पकड़ कर रोक लिया और कहने लगे कि—'तुम न्याय पढ़ते हो हमको समझाकर जाओ' ॥ २१ ॥ श्रीगदाधर ने कहा कि—'पूछो', प्रभु बोले—देखें, मुक्ति के लक्षण तो कहो ? ॥२२॥ श्रीगदाधर शास्त्र-सम्मत-अर्थ व्याख्या करने लगे प्रभु बोले—'तुमको व्याख्या करनी नहीं आती' ॥ २३ ॥ गदाधरजी ने कहा—'आत्यन्तिक दुःख के नाश' को ही शास्त्रों में मुक्ति का अर्थ प्रकट किया है' ॥ २४ ॥ सरस्वती-पति श्रीगौरसुन्दर प्रभु उस पर नाना प्रकार से दोषारोपण करने लगे, उस समय कोई भी तार्किक ऐसा नहीं था, जो अपने पक्ष को स्थिर कर सकता ॥२५॥ ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं था जो प्रभु के साथ सम्भाषण कर सकता, श्रीगदाधर जी विचारने लगे आज तो भागने से ही प्राण बचेंगे ॥ २६ ॥ तब प्रभु ने कहा कि—गदाधर ! तुम आज घर जाओ, कल समझ लेंगे शीघ्र आना' ॥ २७ ॥ श्रीगदाधर प्रभु को नमस्कार करके घर चले गये इधर ठाकुर पूर्ववत् शहर के प्रत्येक भाग में भ्रमण करते फिरते थे ॥ २८ ॥ प्रभु का 'परम पाण्डित्य' सबको मालूम पड़ गया, आपको देखकर लोग अपार सम्भ्रम करते थे ॥२९॥ ठाकुर तृतीय प्रहर हो जाने पर सब विद्यार्थियों के साथ बड़ी प्रसन्नता पूर्वक श्रीगङ्गा-तीर पर आकर बैठा करते थे । ३० श्रीलक्ष्मी जी द्वारा सेवित प्रभु का ( विग्रह ) त्रिभुवन में कामदेव के समान अद्वितीय सुन्दर था । ३१ । आपके चारों ओर शिष्य गण बैठते और मध्यमें आप श्रीशची-नन्दन शास्त्र की व्याख्या

केह वले हेन रूप हेन विद्या जार । ना भजिले कृष्ण किछु नहे उपकार ॥३५॥
सभेइ वलेन भाइ इहाने देखिया । फाँकि जिज्ञासार भये जाइ पलाइया ॥३६॥
केह वले देखा पाइले ना देन एड़िया । महादानी प्राय जेन राखेन बान्धिया ॥३७॥
केह वले 'ब्राह्मणेर शक्ति अमानुषी । कोन महा पुरुष वा हय हेन वासि ॥३८॥
जद्यपिओ निरन्तर वाखानेन फाँकि । तथापि सन्तोष वड़ पाङ इहादेखि ॥३९॥
मनुष्येर एमन पाण्डित्य देखि नाञि । कृष्ण ना भजेन सबे एइ दुःखपाइ ॥४०॥
अन्योऽन्ये सभेइ साधेन सभा प्रति । सभे वले 'इहान हउक कृष्णे रति' ॥४१॥
दण्डवत् हइ सभे पड़िला गङ्गारे । सर्व्व भागवत मेलि आशीर्व्वाद करे ॥४२॥
'हेन कर कृष्ण जगन्नाथेर नन्दन । तोर रसे मत्त हय छाड़ि अन्य मन ॥४३॥
निरवधि प्रेम-भावे भजुक तोमारे । हेन सङ्ग कृष्ण देह आमा सभा कारे ॥४४॥
अन्तर्यामी प्रभु चित्त जानेन सभार । श्रीवासादि देखिलेइ, करे नमस्कार ॥४५॥
भक्त आशीर्व्वाद प्रभु शिरे करि लय । भक्त आशीर्व्वादे से कृष्णेर रति हय ॥४६॥
केह केह साक्षातेइ प्रभु देखि वले । 'कि कार्ये गोङाओ काल तुमि विद्या-भोले' ॥४७॥
केहो वले 'हेर शुन निमाञि पण्डित । विद्याय ना तरे, कृष्ण भजह त्वरित ॥४८॥
पड़े केने लोक कृष्ण भक्ति जानिवारे । से जदि नहिल तबे विद्याय कि करे ' ॥४९॥

---

थे ॥ ३३ ॥ वह सब दूर से प्रभु का व्याख्यान सुनते एवं मन ही मन में बड़ा हर्ष व विषाद करते थे। उनमें से कोई कहता कि–'जिसका ऐसा रूप एवं ऐसी विद्या हो बिना श्रीकृष्ण का भजन किये उसका उपकार नहीं है ॥ ३५ ॥ फिर सभी जन कहते कि–'भाई ! इनको तो देखते ही हम फाँकि पूछने के भाग जाते हैं' ॥ ३६ ॥ कोई कहता कि 'यह हमको देख लेने पर फिर छोड़ता ही नहीं; बड़े कर ( लेने वाले की भाँति बाँध कर रख लेता है' ॥ ३७ ॥ कोई कहता कि 'इस ब्राह्मण में अमानुषी शक्ति प्रतीत होता है यानी इसमें किसी महापुरुष का आवेश है ॥ ३८ ॥ यद्यपि यह निरन्तर फाँकि व्या करते हैं तथापि इनको देखकर अपने मनमें बड़ी प्रसन्नता होती है ॥ ३९ ॥ इनका जैसा पाण्डित्य म कहीं देखने में नहीं आता, केवल दुःख इसी बात का है कि–यह श्रीकृष्ण को नहीं भजते ॥४०॥ सभी परस्पर में एक दूसरे के प्रति अपनी-अपनी इच्छा प्रकट करके कहते कि–'इसकी श्रीकृष्ण में रति हो', वह सब श्रीगङ्गा जी को दण्डवत् प्रणाम करके प्रभु के प्रति आशीर्वाद करते थे ॥४२॥ हे कृष्ण ! क करके ऐसा कीजिये कि–'यह श्रीजगन्नाथ मिश्र का पुत्र सब ओर से मन हटाकर तुम्हारे ही रस में जाय ॥ ४३ ॥ यह निरन्तर तुमको प्रेम-भाव से भजे. हे कृष्ण ! तब इनका सङ्ग हम सब जनों क ॥ ४४ ॥ अन्तर्यामी प्रभु सबके चित्त को जानने वाले हैं, आप श्रीवास आदि भक्तों को देखते नमस्कार करते थे ॥ ४५ ॥ प्रभु भक्तों का आशीर्वाद सिर पर धारण करते, भक्तों के आशीर्वाद कृष्ण में रति होती है ॥ ४६ ॥ कोई-कोई तो प्रभु के सामने ही उनसे कहते कि–'ए निमाइ ! तुम मत्त होकर अपने समय को क्यों नष्ट करते हो ?' ॥ ४७ ॥ कोई कहता कि–'ए निमाइ पण्डित ! पु संसार-समुद्र से पार नहीं कर सकती इसलिये शीघ्र ही श्रीकृष्ण-भजन करना आरम्भ करो ॥४८

गोष्ठी सह मुकुन्द 'सञ्जय' भाग्यवान् । भासये आनन्दे मर्म्म ना जानये तान ॥६५॥
विद्या जय करिया ठाकुर जाय घरे । विद्या रसे वैकुण्ठेर नायक विहरे ॥६६॥
एक दिन महा वायु मान्द्य करि छल । प्रकाशेन प्रेम-भक्ति विकार-सकल ॥६७॥
आचम्बिते प्रभु अलौकिक शब्द बोले । गड़ागड़ि जाय, हासे, घर भाङ्गि फेले ॥६८॥
हुङ्कार गर्ज्जन करे मालसाट पूरे । सम्मुखे देखये जारे ताहारेइ मारे ॥६९॥
क्षणे क्षणे सर्व्व अङ्ग स्तम्भाकृति हय । हेन मुर्च्छा हय लोक देखि पाय भय ॥७०॥
शुनिलेन बन्धुगण वायुर विकार । धाइया आसिया सभे करे प्रतीकार ॥७१॥
बुद्धिमन्त खान आर मुकुन्द सञ्जय । गोष्ठी सह आइलेन प्रभुर आलय ॥७२॥
विष्णुतैल नारायणतैल देन शिरे । सभे करे प्रतीकार जार जेन स्फुरे ॥७३॥
आपन इच्छाय प्रभु नाना कर्म्म करे । से केमने सुस्थ हइबेक प्रतीकारे ॥७४॥
सर्व्व अङ्ग कम्प प्रभु करे आस्फालन । हुङ्कार शुनिञा भय पाय सर्व्व जन ॥७५॥
प्रभु बले 'मुञि सर्व्व लोकेर ईश्वर । मुञि बिश्वधर मोर नाम विश्वम्भर ॥७६॥
मुञि सेइ मोरे त ना चिने कोन जने ।' एत बलि लड़देइ धरे सर्व्व गने ॥७७॥
आपना प्रकाश प्रभु करे वायु-छले । तथापि ना बुझे केह तार माया बले ॥७८॥
केह बले 'दानव हइल अधिष्ठान ।' केह बले 'हेन बुझि डाकिनीर काम' ॥७९॥

---

प्रतिपद से लेकर सूत्रों के स्थापन-खण्डन की व्याख्या वर्णन करते रहते थे ॥ ६४ ॥ भाग्यवान् श्रीमुकुन्द 'सञ्जय' गोष्ठी के साथ आनन्दानुभव करते थे, परन्तु वह इसका मर्म कुछ भी नहीं जान पाते थे ॥ ६५ ॥ पश्चात् विद्या में विजय प्राप्त करके ठाकुर घर आते थे । इस प्रकार श्रीवैकुण्ठ नायक विद्या-रस में विहार करते थे ॥ ६६ ॥ एक दिन प्रभु महा वायु रोग के बहाने से ( छल करके ) प्रेम-भक्ति के सम्पूर्ण विकारों को प्रकट करने लगे ॥ ६७ ॥ उस दिन अकस्मात् प्रभु अलौकिक शब्द बोलने लगे–कभी लोटते-पोटते, कभी हँसते एवं घर को तोड़ फोड़ कर गिरा दिया॥६८॥कभी हुङ्कार एवं गर्जना करने लगे कभी खम्भ ठोंकते, कभी जिसको सामने देखते उसी को मारते ॥ ६९ ॥ और थोड़ी २ देर पश्चात् सर्व अङ्ग स्तम्भाकृति हो जाते और कभी ऐसी मूर्च्छा होती कि–जिसे देखकर लोग भय खाते थे ॥ ७० ॥ जब बन्धु वर्ग ने प्रभु के वायु-विकार की बात सुनी तब वे सब लोग दौड़े आये तथा रोग की रोक करने लगे ॥ ७१ ॥ श्रीबुद्धिमन्त खान एवं श्रीमुकुन्द 'सञ्जय' भी निज गोष्ठी के साथ प्रभु के घर पर आये ॥७२॥ सब लोग जिसको जैसा स्फुरण होता रोग का प्रतीकार करता था कोई सिर में विष्णु-तैल देता तो कोई नारायण तैल ॥ ७३ ॥ प्रभु अपनी इच्छा से नाना कर्म करते हैं फिर भला वह प्रतीकार करने से कैसे स्वस्थ हो सकते थे ॥ ७४ ॥ प्रभु सर्व अङ्ग से कँप कँपाते हुए आस्फालन ( आत्म-प्रशंसा ) करते थे एवं मध्य-मध्य में आपकी हुङ्कारें सुनकर सब लोग भय खाते थे ॥ ७५ ॥ प्रभु कहते कि–'मैं ही सर्व-लोकों का ईश्वर हूँ, मैं ही विश्व को धारण करने वाला हूँ मेरा ही नाम विश्वम्भर है' ॥ ७६ ॥ 'मैं वही हूँ परन्तु मुझे कोई नहीं पहिचानता' ऐसा कहकर प्रभु दौड़ कर सब लोगों को पकड़ते थे ॥ ७७ ॥ प्रभु वायु के छल से इस प्रकार अपना प्रकाश दिखलाते थे तब भी आपकी माया के वशीभूत होकर कोई आपको नहीं समझ पाता था ॥ ७८ ॥ कोई कहता कि 'इनके ऊपर दानव क

हेन बुझि जेन सनकादि शिष्य-गणे । नारायण बेढ़ि वैसे बदरिकाश्रमे ॥९५॥
ताहे सभा लैया जेन से प्रभु पढ़ाय । हेन बुझि सेइ लीला करे गौर राय ॥९६॥
सेइ बदरिकाश्रमवासी नारायण । निश्चय जानिह एइ शचीर नन्दन ॥९७॥
अत एव शिष्य सङ्गे सेइ लीला करे । विद्या रसे वैकुण्ठेर नायक विहरे ॥९८॥
पढ़ाइया प्रभु दुइ प्रहर हइले । तबे शिष्य गण लैया गङ्गा-स्नाने चले ॥९९॥
गङ्गा जले विहार करिञा कथोक्षण । गृहे आसि करे प्रभु श्री विष्णु-पूजन ॥१००॥
तुलसीरे जल दिया प्रदक्षिण करि । भोजने वसिला गिया बलि 'हरि' 'हरि' ॥१०१॥
लक्ष्मी देन अन्न खान वैकुण्ठेर पति । नयन भरिञा देखे आइ पुण्यवती ॥१०२॥
भोजनेर अन्ते करि ताम्बूल चर्वण । शयन करिले लक्ष्मी सेवेन चरण ॥१०३॥
कथो क्षणे जोग निद्रा प्रति दृष्टि दिया । पुनः प्रभु चलिलेन पुस्तक लइञा ॥१०४॥
नगरे उठिया करे अशेष विलास । सभार सहिते करे हासिया सम्भाष ॥१०५॥
जद्यपि प्रभुर केह तत्त्व नाहि जाने । तथापि आनन्दे भासे देखि सर्व्वजने ॥१०६॥
नगरे भ्रमण करे शचीर-नन्दन । देवेर दुर्लभ वस्तु देखे सर्व्वजन ॥१०७॥
उठिलेन प्रभु तन्तुवायेर नगरे । देखिया सम्भ्रमे तन्तुवाय नमस्करे ॥१०८॥
'भाल वस्त्र आन' प्रभु बलये वचन । तन्तुवाय वस्त्र आनिलेन सेइ क्षण ॥१०९॥
प्रभु बले ए वस्त्रेर मूल्य कि लइबा । तन्तुवाय बले तुमि आपने जे दिबा ॥११०॥

---

विराजमान हुए व्याख्या करते थे ॥९३॥ उस शोभा की महिमा कहने की मेरी सामर्थ्य नहीं है उसकी उपमा किससे दूँ, विचार करने पर भी कोई सामने नहीं आती ॥ ९४ ॥ ऐसे समझ पड़ता है कि जैसे-बदरिकाश्रम में सनकादि शिष्य-गण श्रीनारायण को घेर कर बैठे हुए हों ॥ ९५ ॥ मानो वही प्रभु उन सब शिष्यगण को लेकर पढ़ा रहे हैं ऐसा प्रतीत होता था कि-श्रीगौरचन्द्र उस समय वही लीला कर रहे थे ॥ ९६ ॥ निश्चय इन श्रीशचीनन्दन को वही बदरिकाश्रम-वासी श्रीनारायण जानिये ॥ ९७ ॥ इसीलिये शिष्यों के साथ वही लीला कर रहे थे इस प्रकार वैकुण्ठ-नायक श्रीगौरसुन्दर विद्या-रस-विहार करते थे ॥ ९८ ॥ दो पहर होने पर प्रभु पढ़ाना समाप्त कर शिष्यगण को साथ लेकर श्रीगङ्गा स्नान करने को जाते थे ॥९९॥ कुछ समय श्रीगङ्गा-जल में विहार करके पश्चात् प्रभु घर आकर श्रीविष्णु-पूजन करते थे ॥ १०० ॥ फिर तुलसी में जल देकर एवं उनकी प्रदक्षिणा करके 'हरि' 'हरि' बोलते हुए भोजन करने बैठते ॥ १०१ ॥ श्रीलक्ष्मीजी अन्न परिवेशन करती और वैकुण्ठपति खाते बैठते तो पुण्यवती श्रीशची माता नयन भर-भर कर देखती थी ॥ १०२ ॥ भोजन के अन्त में ताम्बूल चर्वण कर शयन करने पर लक्ष्मीजी चरण-सेवा करतीं ॥१०३॥ कुछ समय योग-निद्रा के प्रति दृष्टिपात करके अर्थात् सोकर प्रभु फिर पुस्तक लेकर चल देते थे ॥१०४॥ और नगर में जाकर अनेक विलास करते थे एवं सबके साथ हँस कर बात-चीत करते थे ॥ १०५ ॥ यद्यपि कोई प्रभु का तत्त्व नहीं जानता तब भी सब लोग आपको देखकर आनन्द समुद्र में उतरते थे ॥ १०६ ॥ श्रीशची-नन्दन नगर में भ्रमण करते देवताओं को भी दुर्लभ वस्तु ( आप ) का जन-साधारण भी दर्शन पाते थे ॥ १०७ ॥ भ्रमण करते हुए प्रभु बुनकरों के मुहल्ले में जाते, बुनकर प्रभु को देखकर शीघ्रता से नमस्कार करते ॥ १०८ ॥ प्रभु

आजि गन्ध परि घरे जाह'त' ठाकुर । कालि जदि गाये गन्ध थाकये प्रचुर ॥१२६॥
धुइलेओ जदि गाये गन्ध नाहि छाड़े । तबे दिबो मूल्य जे तोमार चित्ते पड़े' ॥१२७॥
एत बलि आपने प्रभुर सर्व्व अङ्गे । गन्ध देय वणिक ना जाने कोन रङ्गे ॥१२८॥
सर्व्व भूत हृदये आकर्षे सर्व्व मन । से रूप देखिया मुग्ध नहे कोन जन ॥१२९॥
वणिकेरे अनुग्रह करि विश्वम्भर । उठिलेन गिया प्रभु मालाकारेर घर ॥१३०॥
परम अद्भुत रूप देखि मालाकार । सादरे आसन दिया करे नमस्कार ॥१३१॥
प्रभु बले 'भाल माला देह मालाकार । कड़ि पाति लागे किछु नाहिक आमार ॥१३२॥
सिद्ध पुरुषेर प्राय देखि मालाकार । माली बले 'किछु दाय नाहिक तोमार' ॥१३३॥
एत बलि माला दिल प्रभुर श्री अङ्गे । हासे महा प्रभु सर्व्व पढुयार सङ्गे ॥१३४॥
माला कार प्रति प्रभु शुभदृष्टि करि । उठिला ताम्बूली घरे गौराङ्ग श्री हरि ॥१३५॥
ताम्बूली देखये रूप मदन मोहन । चरणेर धूलि लइ दिलेन आसन ॥१३६॥
ताम्बूली कहये 'बड़ भाग्य से आमार । कोन भाग्ये तुमि आमा छारेर दुयार' ॥१३७॥
एत बलि आपने से परम सन्तोषे । दिलेन ताम्बूल आनि प्रभु देखि हासे ॥१३८॥
प्रभु बले 'कड़ि बिना केन गुया दिला' । ताम्बूली कहये 'चित्ते हेनइ लइल॥'१३९॥
हासे प्रभु ताम्बूलीर शुनिञा बचन । परम सन्तोषे करे ताम्बूल चर्वण ॥१४०॥

---

कि–'महाशय जी ! आप तो जानते हो । क्या आप से मूल्य कहना उचित है ? ॥१२५॥ ठाकुर ! गन्ध लगाकर आज घर जाओ और कल यदि प्रचुर सुगन्धि इसकी तुम्हारे शरीर में रही आवे ॥ १२६ ॥ एवं धोने पर भी यदि शरीर से गन्ध दूर न हो, तब जो आपके चित्त में आवे वह मूल्य देना' इतना कहकर गन्धी स्वयं प्रभु के सर्व अङ्ग में न जाने किस रङ्ग में मत्त हुआ अपने हाथ से गन्ध ( लेपन ) मर्दन करने लगा ॥१२७-१२८॥ आप सब प्राणियों के हृदय में विराजमान हैं इसीलिये उन सब के मन को आकर्षित करते हैं, ऐसा कौन प्राणी है, जो आपके इस रूप को देख कर मुग्ध न हो ॥ १२९ ॥ इस प्रकार गन्धी के ऊपर प्रभु विश्वम्भर कृपा करके एक माली के घर पहुँचे ॥ १३० ॥ माली ने प्रभु का परम अद्भुत रूप देख कर सादर आसन देकर नमस्कार किया ॥ १३१ ॥ प्रभु कहने लगे कि–'भाई मालाकार ! हमको एक अच्छी सी माला दो । परन्तु हमारे पास कौड़ी पैसा तो कुछ है नहीं ॥१३२॥ सिद्ध महात्मा पुरुष के अनुरूप आपको देख कर माली बोला कि–'प्रभो ! आपको कुछ नहीं देना होगा' ॥ १३३ ॥ इतना कहकर माली ने प्रभु के श्रीअङ्ग में माला पहिना दी, श्री महाप्रभु सब छात्रों के साथ हँसने लगे ॥१३४॥ श्रीगौराङ्ग हरि, माली के प्रति शुभ दृष्टि करके एक तम्बोली के घर जा पहुँचे ॥ १३५ ॥ तम्बोली ने आपका मदनमोहन रूप देखकर श्रीचरणों की धूलि ( मस्तक पर ) लेकर प्रभु को आसन दिया ॥ १३६ ॥ तम्बोली ने कहा कि–'मेरा बड़ा भाग्य है । न जाने किस पुण्य भाग से आप मुझ तुच्छ के घर पधारे' ॥ १३७ ॥ इतना कह स्वयं ही उसने परम प्रसन्नता पूर्वक प्रभु को ताम्बूल निवेदन किया यह देखकर प्रभु हँस पड़े ॥ १३८ ॥ प्रभु ने कहा कि–'भाई ! तुमने बिना कुछ लिये ही हमको ताम्बूल सुपाड़ी दे दिये ?' तम्बोली ने उत्तर दिया कि–'मेरे चित्त में ऐसी ही आई' ॥१३९॥ तब तम्बोली की बात सुनकर प्रभु हसे एव परम पूवक ताम्बूल चर्वण करने लगे १४० तम्बोली

दिव्य चूर्ण कर्पूरादि जत अनुकूल। श्रद्धा करि दिले तार नाहिनिल मूल ॥१४१॥
ताम्बूलीरे अनुग्रह करि गौरराय। हासिया हासिया सर्व्व नगरे वेड़ाय ॥१४२॥
मधु पुरी प्राय जेन नवद्वीप पुरी। एक जाति लक्ष लक्ष कहिते ना पारि १४३॥
प्रभुर विहार लागि पूर्व्वेइ विधात। सकल सम्पन्न करि थुइलेन तथा ॥१४४॥
पूर्व्वे जेन मधुपुरी करिला भ्रमण। सेइलीला करे एवे शचीर नन्दन ॥१४५॥
तवे गौर गेलर शङ्ख वणिकेर घरे। देखि शङ्ख-वणिक सम्भ्रमे नमस्करे ॥१४६॥
प्रभु वले 'दिव्य शङ्ख आन देखि भाइ। के मने वा निव शङ्ख कपर्द्दक नाञि' १४७॥
दिव्य शङ्ख शाँखारि आनिञा सेइ क्षणे। प्रभुर श्री हस्ते दिया वले प्रीत मने ॥१४८॥
'शङ्ख लइ घरे तुमि चलह गोसाञि। पाछे कड़ि दिह, ना दिलेओ दाय नाञि' ॥१४९॥
तुष्ट हइ प्रभु शङ्ख-वणिक वचने। चलिलेन हासि शुभ दृष्टि करि ताने ॥१५०॥
एइमत नवद्वीपे जतनगरिया। सभार मन्दिरे प्रभु बुलेन भ्रमिया ॥१५१॥
सेइ भाग्ये अद्यापिओ नागरिक गण। गायेन चैतन्य नित्यानन्देर चरण ॥१५२॥
निज इच्छा मय गौरचन्द्र भगवान। सर्व्वज्ञेर घरे प्रभु करिला पयान ॥१५३॥
देखिया प्रभुर तेज सेइ 'सर्व्व-ज्ञान'। विनय सम्भ्रम करि करिला प्रणाम ॥१५४॥
प्रभु वले तुमि 'सर्व्व-ज्ञान' भाल शुनि। वल देखि आर जन्मे कि छिलाम आमि ॥१५५॥
भाल वलि सुकृति सर्व्वज्ञ चिन्ते मने। जपिते गोपाल मंत्र देखे सेइ क्षणे ॥१५६॥

---

ने प्रभु की इच्छा समझ कर श्रद्धा-पूर्वक दिव्य चूर्ण एवं कर्पूर आदि भी बिना मूल्य उन्हें दिया ॥ १४१ ॥ श्रीगौरसुन्दर तम्बोली के ऊपर अनुग्रह करके हँसते हुए सब नगर में विचरने लगे ॥ १४२ ॥ श्रीनवद्वीप-पुरी श्रीमधुपुरी के समान ( सम्पन्न ) भी जहाँ प्रत्येक जाति के लाखों-लाखों मनुष्य निवास करते थे ॥ १४३ ॥ विधाता ने पहले से ही प्रभु के विहार के लिये वहाँ सम्पूर्ण वस्तुएँ सम्पन्न कर रक्खी थीं । १४४ ॥ श्रीकृष्ण रूप से पूर्वकाल में जो श्रीमधुपुरी में भ्रमण लीला की थी, वही लीला अब श्रीशची-नन्दन ( श्रीगौरसुन्दर ) कर रहे थे ॥ १४५ ॥ पश्चात् श्रीगौरचन्द्र शङ्ख-वणिक के घर गये, शङ्ख-वणिक ने प्रभु को देखकर शीघ्र पूर्वक नमस्कार किया ॥ १४६ ॥ प्रभु कहते हैं कि—'देखो, भाई ! एक दिव्य शङ्ख तो लाओ, लेकिन मैं तुम्हारे शङ्ख को लूँगा किस प्रकार ? मेरे पास तो कौड़ी नहीं है ॥ १४७ ॥ शङ्ख-वणिक उसी क्षण दिव्य शङ्ख लाकर प्रभु के श्रीहस्त में देकर प्रीति पूर्वक कहने लगा ॥ १४८ ॥ 'प्रभो ! शङ्ख लेकर आप घर को जाँय, मूल्य की कौड़ी पीछे दे देना और यदि नहीं भी देओ तब भी आपको कुछ देना नहीं है' ॥ १४९ ॥ प्रभु शङ्ख-वणिक वचनों से सन्तुष्ट होकर एवं इसके ऊपर शुभ दृष्टि करके हँसते हुए आगे चले ॥ १५० ॥ प्रभु इस प्रकार श्री-नवद्वीप में सब मनुष्यों के घर भ्रमण करते फिरते थे ॥ १५१ ॥ उसी भाग्य से आज भी नवद्वीप-निवासी जन श्रीचैतन्य व नित्यानन्द के चरण-कमलों का यश गान करते हैं ॥ १५२ ॥ निज इच्छामय भगवान् श्री-गौरचन्द्र पश्चात् एक ज्योतिषी के घर पधारे ॥ १५३ ॥ वह ज्योतिषी प्रभु के तेज को देख कर विनय एवं सम्भ्रम पूर्वक प्रभु को प्रणाम करने लगा ॥ १५४ ॥ प्रभु ने कहा कि—हमने तुमको एक अच्छा ज्योतिषी सुना है देखो, कहो तो पूर्व जन्म में कौन था ? ॥ १५५ ॥ 'अच्छा' कहकर उस सुकृतिशाली सर्वज्ञ ने श्रीगोपाल-

निशाभागे देखे अवतीर्ण बन्दि घरे पिता माता देखये सम्मुखे स्तुति करे ॥१५८
सेइ क्षणे देखे पिता पुत्र लइया कोले । सेइ रात्रे थइलेन आनिया गोकुले ..१५६.।
पुनः देखे मोहन द्विभुज दिगम्बर । कटिते किङ्किणी नवनीत दुइ करे ॥१६०॥
निज इष्ट मूर्ति जाहा चिन्ते अनुक्षण । सर्वज्ञ देखये सेइ सकल लक्षण ॥१६१॥
पुनः देखे त्रिभङ्गिम मुरली वदन । चतुर्दिके जंत्रगीत गाय गोपी गण ॥१६२॥
देखिया अद्भुत चक्षु मेलि 'सर्व्व-जान' । गौराङ्गे चाहिया पुनः पुनः करे ध्यान ॥१६३॥
सर्व्वज्ञ कहये शुन श्री बाल गोपाल । के आछिला द्विज एइ देखाओ सकल ॥१६४॥
तबे देखे धनुर्द्धर दूर्व्वादल श्याम । वीरासने प्रभुरे देखये 'सर्व्व-जान'॥१६५॥
पुनः देखे प्रभुरे प्रलय जल- माझे । अद्भुत वराह मूर्ति दन्ते पृथ्वी साजे ॥१६६॥
पुनः देखे प्रभुरे नृसिंह अवतार । महा उग्ररूपे भक्त वत्सल अपार ॥१६७॥
पुनः देखे ताहारे वामन रूप-धारी । वलि जज्ञ छलिते आछेन माया करि ॥१६८॥
पुनः देखे मत्स्यरूपे प्रलयेर जले । करिते आछेन जल क्रीड़ा कुतूहले ॥१६६॥
सुकृति सर्व्वज्ञ पुनः देखये प्रभुरे । मत्त हलधर रूप ओ मूषल करे ॥१७०॥
पुनः देखे जगन्नाथ मूर्त्ति सर्व्वजान । मध्ये शोभे सुभद्रा दक्षिणे बलराम १७१॥

---

मन्त्र जपते हुए उसी क्षण ध्यानावस्था में मन में देखा कि ॥ १५६ ॥ शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज श्याम, श्रीअङ्ग में श्रीवत्स एवं कौस्तुभ मणिधारी, महा ज्योति-धाम निशा काल में बन्दि-घर में अवतीर्ण हो रहे हैं और सामने खड़े हुए माता-पिता आपकी स्तुति करते हैं ॥१५८॥ तत्काल ही फिर देखा कि—पिता जी पुत्र को गोदी में लेकर उसी रात गोकुल ले गये ॥ ५६॥ तथा फिर (दुबारा) देखा कि—मनमोहन स्वरूप, द्विभुजधारी, दिगम्बर मूर्त्ति, कटि में किङ्किणी धारण किये दोनों श्रीहस्तों में नवनीत लिये हुए हैं ॥ १६० ॥ सर्वज्ञ जी जिस निज इष्ट श्रीमूर्त्ति का निरन्तर चिन्तन करते थे वही सब लक्षण उस समय देखने को मिले ॥१६१॥ फिर त्रिभङ्गिम श्रीमुरलीधर देखने लगे जिनके चारों ओर गोपीगण यन्त्रों पर गीत गा रहे थे॥१६२॥ सर्वज्ञ ध्यान में आश्चर्यजनक बातें देखकर श्रीगौरचन्द्र की ओर देख देखकर आँखें बन्द कर करके बारम्बार ध्यान करने लगा ॥१६३॥ सर्वज्ञ अपने इष्ट श्रीबाल-गोपालजी से ध्यान में कहने लगा कि—हे श्रीबालगोपाल ! सुनो, यह विप्र पूर्व जन्म में कौन थे यह सब मुझे दिखलाओ ॥ १६४ ॥ तब सर्वज्ञ ने प्रभु को धनुर्धारी दूर्वादल श्याम ( श्रीराम ) स्वरूप में वीरासन पर बैठे हुए देख रहे ॥ १६५ ॥ पश्चात् प्रभु को प्रलय जल में, अद्भुत श्रीवाराह-मूर्त्ति के रूप में, जिनके दशनों पर पृथ्वी सुशोभित हो रही थी, देखा ॥ १६६ ॥ फिर प्रभुको महा उग्र एवं अपार भक्त-वत्सल श्रीनृसिंह रूप में देखा ॥ १६७ ॥ तदनन्तर आपको वामन-रूपधारी देखा जो बलि की यज्ञ में छलने के लिये माया करके आये हैं ॥ १६८ ॥ फिर देखता है कि—आप मत्स्य रूप से प्रलय के जल में आनन्द पूर्वक जल-क्रीडा परायण हैं ॥ १६६ ॥ सुकृति सर्वज्ञ पश्चात् प्रभु को श्रीहस्त में श्रीमूषल धारण किये हुए मत्त श्रीहलधर रूप में देखता है ॥ १७० ॥ सर्वज्ञ फिर श्रीजगन्नाथ मूर्त्ति दर्शन करता है जिनकी दाहिनी ओर श्रीबलराम एवं मध्य में श्रीसुभद्राजी सुशोभित हैं ॥ १७१ ॥ सर्वज्ञ इस प्रकार

एइ मत ईश्वर तत्त्व देखि सर्व्व जान । तथापि ना बुझे किछु हेन माया तान ॥१७२॥
चिन्तये सर्व्वज्ञ मने हइआ विस्मित । हेन बुझि ए ब्राह्मण महामन्त्र वित् ॥१७३॥
अथवा देवता कोन आसिया कौतुके । परीक्षिते आमारे वा छले द्विज रूपे ॥१७४॥
अमानुषी तेजः देखि द्विजेर शरीरे । सर्वज्ञ करिया किवा कदर्थे आमारे ॥१७५॥
एतेक चिन्तिते प्रभु बलिल हासिया । 'के आमि कि देख तुमि कह ना भाङ्गिया' ॥१७६॥
सर्वज्ञ बोलये 'तुमि चलह एखने । विकाले बलिब मंत्र जापि भाल मने' ॥१७७॥
भाल भाल बलि प्रभु हासिया चलिला । तबे प्रिय श्रीधरेर मन्दिरे आइला ॥१७८॥
श्रीधरेर बड़ प्रभु सन्तुष्ट अन्तरे । नाना छल करि आइसेन तान घरे ॥१७९॥
वाको वाक्य परिहास श्रीधरेर सङ्गे । दुइ चारि दण्ड करि चले प्रभु रङ्गे ॥१८०॥
प्रभु देखि श्रीधर करिया नमस्कार । श्रद्धा करि आसन दिलेन बसिबार ॥१८१॥
परम सुशान्त श्रीधरेर व्यवसाय । महा प्रभु विहरेन उद्धतेर प्राय ॥१८२॥
प्रभु बले 'श्रीधर तुमि जे अनुक्षण । 'हरि' 'हरि' बल तबे दुःख कि कारण ?' ॥१८३॥
लक्ष्मी-कान्त सेवन करिया केने तुमि । अन्न वस्त्रे दुःख पाओ कह देखि शुनि ॥१८४॥
श्रीधर बलेन उपवास त ना करि । छोट हउक बड़ हउक वस्त्र देख परि ॥१८५॥
प्रभु बले देखिलाम गाँठ दश ठाञि । घरे बल देखितेछि खड़ मात्र नाञि ॥१८६॥

---

ईश्वर-तत्त्व देखता हुआ भी कुछ नहीं समझ पाता, प्रभु की माया ऐसी है ॥१७२॥ सर्वज्ञ विस्मित होकर मन ही मन सोचने लगा कि-ऐसा समझ पड़ता है कि-यह ब्राह्मण महा मन्त्रवित् है ॥ १७३ ॥ अथवा यह कोई देवता है जो कौतुक से मेरी परीक्षा करने के लिये या मुझे छलने के लिये द्विज रूप धारण करके आया है ॥ १७४ ॥ इस ब्राह्मण के शरीर में अमानुषी तेज देख रहा हूँ ऐसा प्रतीत होता है कि स्यात् यह मुझे सर्वज्ञ जान कर मेरी अवहेलना करना चाहता है ॥ १७५ ॥ सर्वज्ञ जी इस विचार में लगे ही हुए थे कि-प्रभु ने हँसकर कहा—'मैं कौन हूँ ? तुम क्या देखते हो ? स्पष्ट खोलकर कहो ना' ॥ १७६ ॥ सर्वज्ञ कहने लगा कि-'इस समय तो आप जाइये, मैं अच्छी तरह मंत्र जप कर तृतीय प्रहर के समय आपको बताऊँगा' ॥ १७७ ॥ प्रभु 'अच्छा' 'अच्छा' कहकर हँसते हुए चल दिये । पश्चात् प्रिय श्री श्रीधर के घर पहुँचे ॥ १७८ ॥ प्रभु अन्तर में भी श्रीधर के प्रति बड़े प्रसन्न थे, आप अनेक प्रकार के बहाने करके उनके घर पहुँचते थे ॥ १७९ ॥ प्रभु दो चार दण्ड श्रीधर के साथ परस्पर वाक्य युद्ध एवं परिहास ( हँसी दिल्लगी ) करके आनन्द पूर्वक फिर चले जाते थे ॥ १८० ॥ प्रभु को देखकर श्रीधर ने नमस्कार करके श्रद्धा पूर्वक बैठने के लिये आसन दिया ॥१८१॥श्रीधर का व्यवसाय परम सुशान्त था उधर श्रीमहाप्रभु उद्धत की भाँति भ्रमण करते फिरते थे॥१८२॥ प्रभु ने कहा कि-श्रीधर ! तुम जो निरन्तर 'हरि' 'हरि' भजते हो, फिर तुम्हें दुःख क्यों ? ॥१८३॥ श्रीलक्ष्मी-कान्त का सेवन करके भी तुम अन्न वस्त्र का कष्ट क्यों पाते हो ? कहो तो, देखें-सुनें ॥ १८४ ॥ श्रीधर ने उत्तर दिया कि-हम भूखे तो रहते नहीं और छोटा हो व बड़ा वस्त्र भी, देखो, पहने ही हुए हैं ॥ १८५ ॥ प्रभु ने कहा कि-देख लिया, इसमें दस जगह तो गाँठ लगी हुई हैं और घर में कभी सम्भल देख लिया कि—निरन्तर खड़ मात्र भी नहीं है । (खड़-चावलों की बाल काटने के पश्चात् जो शेष भाग रह जाता है उससे

देख एइ चण्डी विषहरि रे पूजिया । के ना घरे खाय-परे सब नगरिया ॥१८७॥
श्रीधर बलेन 'द्विज ! कहिला उत्तम । तथापि सभार काल जाय एक सम ॥१८८॥
रत्न घरे थाके राजा दिव्य खाय परे । पक्षी-गण थाके देख वृक्षेर उपरे ॥१८९॥
काल पूर्ण सभार समान हइञा जाय । सभे निज कर्म्म भुञ्जे ईश्वर इच्छाय' ॥१९०॥
प्रभु बले 'तोमार विस्तर आछे धन । ताहा तुमि लुकाइया करह भोजन ॥१९१॥
ताहा मुञि विदित करिमु कत दिने । तबे तुमि देखि लोक भाण्डाओ केमने' ॥१९२॥
श्रीधर बलेन 'घरे चलह पण्डित । तोमाय आमाय द्वन्द्व ना हय उचित' ॥१९३॥
प्रभु बले 'आमि तोमा ना छाड़ि एमने । कि आमारे दिबा ताहा बल एइ क्षणे' ॥१९४॥
श्रीधर बलेन 'आमि खोला बेचि खाइ । इहाते कि दिब ताहा बलह गोसाञि' ॥१९५॥
प्रभु बले 'जे तोमार पोता धन आछे । से थाकुक एखाने पाइब ताहा पाछे ॥१९६॥
एबे कला मूला थोड़※ पात कड़ि बिने । दिले आमि कोन्दँल ना करि तोमा सने' ॥१९७॥
मने भावे श्रीधर उद्धत द्विज बड़ । कोन दिन आमारे किलाय पाछे दड ॥१९८॥
मारिलेओ ब्राह्मणेर कि करिते पारि । कड़ि बिना प्रति दिन दिबारेओ नारि ॥१९९॥
तथापिह बले छले जे लय ब्राह्मणे । से आमार भाग्ये बटे दिब प्रति दिने ॥२००॥
चिन्तिया श्रीधर बले 'शुनह गोसाञि । कड़ि पाति तोमार कछुइ दाय नाञि ॥२०१॥

---

छप्पर बनते हैं ) ॥ १८६ ॥ और इधर देखो कि यह सब शहर वाले चण्डी व विष-हरि देवी को पूज कर कौन मनुष्य ऐसा है जो अपने घर में अच्छा खाता पहिनता न हो' ॥ १८७ ॥ श्रीधर ने कहा है कि–'द्विज-वर ! ठीक कहते हो तथापि सबका समय एक समान ही व्यतीत हो जाता है ॥ १८८ ॥ राजा रत्न जटित घर में निवास करते हैं, दिव्य भोजन करते एवं दिव्य वस्त्र पहिनते हैं और इधर पक्षी-गण को देखिये वह वृक्षों के ऊपर रहते हैं ॥ १८९ ॥ परन्तु दोनों का समय समान ही पूर्ण हो जाता है, ईश्वर की इच्छा से सभी अपने कर्म भोग करते हैं ॥ १९० ॥ प्रभु कहने लगे कि–'तुम्हारे पास धन तो बहुत है उसको तुम छिपाकर भोग करते हो ॥ १९१ ॥ मैं उसको कुछ दिन पीछे प्रगट कर दूँगा तब देखेंगे तुम लोगों, को कैसे बहकाते हो ॥ १९२ ॥ श्रीधर बोले कि–पण्डितजी अपने घर जाओ, तुम्हारा हमारा परस्पर में द्वन्द्व करना उचित नहीं है ॥ १९३ ॥ प्रभु बोले–'मैं तुमको इस प्रकार नहीं छोड़ूँगा तुम इसी क्षण मुझको बतलाओ कि–तुम मुझको क्या दोगे ?' ॥ १९४ ॥ तब श्रीधर ने कहा कि–मैं केला पट्ट ( केला वृक्ष का छिलका ) या सागभाजी बेच कर अपना पेट पालन करता हूँ, हे गुसाइं ! आप बतलाइये इसमें से क्या दूँ ? ॥ १९५ ॥ प्रभु बोले–जो तुम्हारा प्रोथित ( गड़ा हुआ ) धन है उसको इस समय रहने दो, उसको तो पीछे लूँगा ॥ १९६ ॥ इस समय तो केला, मूल, थोड़ तथा पत्ते विना कुछ लिये देने से ही तुम्हारे साथ झगड़ा नहीं करूँगा ॥१९७' श्रीधर मन में विचारने लगा कि–यह द्विज बड़ा उद्धत है कहीं ऐसा न हो कि–किसी दिन पीछे से यह जोर से मुक्का मार कर भाग जाय ॥ १९८ ॥ मारने पर भी हम ब्राह्मण का क्या कर सकते हैं और बिना कौड़ी लिये प्रति दिन दे भी नहीं सकता ॥ १९९ ॥ तो भी यह ब्राह्मण बल एवं छल से जो ले लिया करेगा वह

※ केला के थने के भीतर एक सफेद दण्डी होती है जिसका साग होता है

थोड़ कला-कला मूला दिव एइ मने । सर्व्वदाय कोन्दल ना कर आमा सने' ॥२०२॥
प्रभु वले 'भाल भाल आर द्वन्द नाहि । तवे थोड़ कला मूला भाल जेन पाइ' ॥२०३॥
जाहार खोलाय नित्य करेन भोजन । जार थोड़ कला मूला हय श्री व्यञ्जन ॥२०४॥
श्रीधरेर माछे जेइ लाउ धरे चाले । ताहा खाय प्रभु दुग्ध मरिचेर झाले ॥२०५॥
प्रभु वले आमारे कि वासह श्रीधर । ताहा कहिलेइ आमि चलि जाइ घर ॥२०६॥
श्रीधर वलेन 'तुमि द्विज विष्णु अंश' । प्रभु वले 'ना जानिला आमि गोपवंश' ॥२०७॥
तुमि आमा देख जेन ब्राह्मण छाओयाल । आमि आपनारे वासि जे हेन गोओयाल॥२०८॥
हासेन श्रीधर शुनि प्रभुर वचन । ना चिनिल निज प्रभु मायार कारण ॥२०९॥
प्रभु वले 'श्रीधर तोमारे कहि तत्त्व । आमा हैते हय तोर गङ्गार महत्त्व' ॥२१०॥
श्रीधर वलेन 'ओहे पण्डित निमाञि । गङ्गा करियाओ कि तोमार भय नाञि ॥२११॥
वयस बाढ़िले लोक कत स्थिर हय । तोमार चाञ्चल्य आर द्विगुण बाढ़य ॥२१२॥
एइ मत श्रीधरेर सङ्गे रङ्ग करि । आइलेन निज गृहे गौराङ्ग श्रीहरि ॥२१३॥
विष्णु द्वारे वसिलेन गौराङ्ग सुन्दर । चलिला पढुयावर्ग जार जथा घर ॥२१४॥
देखि प्रभु पौर्णमासी चाँदेर उदय । वृन्दावन-चन्द्र भाव हइल उदय ॥२१५॥
अपूर्व्व मुरली ध्वनि लागिला करिते । 'आइ' वहि केह आर ना पाय शुनिते ॥२१६॥

---

सचमुच मेरे भाग्य में देना ही है, यह समझ कर उसको मैं प्रति दिन देता रहूँगा ॥ २०० ॥ मौन विचार के पश्चात् श्रीधर बोला—'गुसाईं ! सुनो, तुमको कौड़ी पैसा कुछ भी नहीं देना होगा ॥ २०१ ॥ मैं यह विचार कर तुमको थोड़, केला एवं केला-मूल यह विचार कर दूँगा कि—तुम पीछे कभी ( सर्वदा के लिये ) मेरे साथ झगड़ा न करोगे' ॥ २०२ ॥ प्रभु कहने लगे—'अच्छा' 'अच्छा' और झगड़ा नहीं होगा । परन्तु थोड़, केला, केला-मूल आदि अच्छे हों ! ॥ २०३ ॥ जिसके खोले का नित्य भोजन होता है एवं जिसके थोड़, केला, केला-मूल प्रभु के लिये लक्ष्मी द्वारा प्रस्तुत किये श्री व्यञ्जन हो जाते हैं ॥ २०४ ॥ उस श्रीधर के छप्पर के ऊपर वेल में जो लौकी लगती है उनको प्रभु दूध एवं मिर्च के चरपराहट के साथ खाते हैं ॥ २०५ ॥ प्रभु बोले श्रीधर ! मैं तुमको कौन मालूम होता हूँ ? इसका उत्तर पाते ही मैं अपने घर चला जाऊँगा ॥ २०६ ॥ श्रीधर-जी कहने लगे कि—'तुम विष्णु-अंश ब्राह्मण हो' प्रभु बोले नहीं, तुम नहीं जानते हो, मैं गोप वंश हूँ' ॥२०७॥ तुम तो मुझको ब्राह्मण बालक करके जानते हो और मैं अपने को गोप बालक करके मानता हूँ ॥ २०८ ॥ श्रीधर प्रभु के वचनों को सुनकर हँसने लगा, माया के कारण उसने अपने प्रभु को नहीं पहिचाना ॥ २०९ ॥ प्रभु फिर कहने लगे कि—'श्रीधर ! मैं तुमको अपना तत्त्व बतलाता हूँ ( सुन ) यह तेरी गङ्गा का महत्त्व मेरे कारण ही है' ॥ २१० ॥ श्रीधर बोला—अहो निमाञि पण्डित ! क्या श्रीगङ्गा जी से भी तुम भय नहीं करते ॥ २११ ॥ आयु बढ़ने पर बालक कितने स्थिर हो जाते ? परन्तु तुम्हारी चञ्चलता तो और द्विगुणित बढ़ती जाती है ॥ २१२ ॥ इस प्रकार गौराङ्ग श्रीहरि श्रीधर के साथ खेल करके अपने घर आये ॥ २१३ ॥ और आकर श्रीगौराङ्ग सुन्दर) श्रीविष्णु-द्वार पर बैठ गये एवं विद्यार्थी वर्ग सब अपने-अपने घर चले गये'' २१४
प्रभु के मन में इस समय पौर्णमासी के चन्द्रमा का उदय हुआ देख कर श्रीवृन्दावन-चन्द्र भाव जागृत हो

त्रिभुवन मोहन मुरली शुनि 'आइ' । आनन्दे मगन मूर्च्छा गेला सेइ ठाञि ॥२१७॥
क्षणेके चैतन्य पाइ स्थिर करि मन । अपूर्व्व मुरली ध्वनि करये श्रवण ॥२१८॥
जे खाने वसियाछेन गौराङ्ग-सुन्दर । सेइ दिगे शुनेन मुरली मनोहर ॥२१९॥
अद्भुत शुनिञा आइ आइला बाहिरे । देखे पुत्र वसियाछे विष्णुर-दुआरे ॥२२०॥
आर नाहि पायेन शुनिते वंशी नाद । पुत्रेर हृदये देखे आकाशेर चाँद ॥२२१॥
पुत्र वक्षे देखे चन्द्र मण्डल साक्षाते । विस्मित हइञा आइ चाहे चारि भिते ॥२२२॥
गृहे आइ वसि गिया लागिला चिन्तिते । कि हेतु निश्चय किछु ना पारे बुझिते ॥२२३॥
एइ मत कत भाग्यवती शची आइ । जत देखे प्रकाश ताहार अन्त नाञि ॥२२४॥
कोन दिन निशा भागे शची आइ शुने । गीत वाद्य जन्त्र गाय कत शत जने॥२२५॥
बहु विध मुख वाद्य नृत्य पद ताल । जेन महा रासक्रीड़ा शुनेन विशाल ॥२२६॥
कोन दिन देखे सर्व्व रात्रि घर द्वार । ज्योतिर्म्मय वहि किछु ना देखये आर ॥२२७॥
कोन दिन देखे अति दिव्य नारी गण । लक्ष्मी प्राय सभे हस्ते पद्म विभूषण ॥२२८॥
कोन दिन देखे ज्योतिर्म्मय देव गण । देखि पुनः आर नाहि पाय दरशन ॥२२९॥
आइर ए सब दृष्टि किछु चित्र नहे । विष्णु भक्ति स्वरूपिणी जारे वेदे कहे ॥२३०॥
'आइ' जारे सकृत करेन दृष्टि पाते । सेइ हय अधिकारी ए सब देखिते ॥२३१॥

---

आया ॥ २१५ ॥ आप अपूर्व मुरली-ध्वनि करने लगे, जिसको माता जी के अतिरिक्त और कोई नहीं सुनता था ॥२१६॥श्रीशची माता त्रिभुवन-मोहन मुरली-ध्वनि सुनकर आनन्द में मग्न हो उसी स्थान पर मूर्च्छित हो गईं ॥ २१७ ॥ क्षण भर पश्चात् चेतनता प्राप्त करने पर मन को स्थिर कर फिर वही अपूर्व मुरली ध्वनि श्रवण करने लगीं ॥ २१८ ॥ जहाँ पर श्रीगौराङ्ग-सुन्दर बैठे हुए थे श्रीशची माता जी उसी ओर मनोहर मुरली-रव सुन रही थीं ॥ २१९ ॥ श्रीशची माता अद्भुत मुरली-ध्वनि सुनकर बाहर आई आकर देखा कि-पुत्र विष्णुद्वार पर बैठा है ॥२२०॥ वंशी ध्वनि अब और सुनाही पड़ती ( परन्तु ) पुत्र के वक्ष पर आकाश के चन्द्र का दर्शन होता था ॥ २२१ ॥ पुत्र के वक्ष पर चन्द्रमण्डल को स्पष्ट देख कर श्रीमाता जी विस्मित होकर देखती थीं ॥ २२२ ॥ पश्चात् श्रीशची माता घर में जाकर विचार करने लगीं, परन्तु इसका कारण क्या है ? यह निश्चय न कर सकीं ॥ २२३ ॥ इस प्रकार अनन्त भाग्यवती श्रीशची माता जितना भी देखतीं थीं प्रकाश का अन्त नहीं दीखता था ॥ २२४ ॥ श्रीशची माता किसी दिन रात्रि में सुनतीं कि-सहस्रों मनुष्य बाजों के साथ गा रहे हैं ॥ २२५ ॥ वह बहुत प्रकार के मुँह से बजने वाले बाजे नाँच तथा ताल पर पैर पड़ने की विशाल ध्वनि सुनती थीं मानो महा रासक्रीड़ा हो रही हो ॥ २२६ ॥ किसी दिन सब रात्रि घर-द्वार सब को केवल ज्योतिर्मय देखतीं, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं दीखता था ॥ २२७ ॥ किसी दिन अति दिव्य नारी-गण के दर्शन करतीं,जो सभी लक्ष्मी जी के समान हाथों में कमल-पुष्प धारण किये हुए होती थीं॥२२८॥ किसी दिन दिव्य प्रकाश युत देवगण का दर्शन करती थीं एक बार दीखने पर फिर दुबारा उनके दर्शन नहीं होते थे । २२९ ।' जिन श्रीशची माता को वेद श्रीविष्णु-भक्ति-स्वरूपिणी कहते हैं उनको यह सब दृश्य दिखलाई देना कोई विचित्र बात नहीं है २३० श्रीशची माता जिसके ऊपर एक बार शुभ दृष्टिपात करें

हेन मते श्रीगौर सुन्दर वन माली । आछे गूढ़ रूपे निजानन्दे कुतूहली ॥२३२॥
जद्यपि आपना प्रभु एतेक प्रकाशे । तथापि ओ चिनिते ना पारे कोन दासे ॥२३३॥
हेन से उद्धत प्रभु करेन कौतुके । ते मत उद्धत आर नाहि नवद्वीपे ॥२३४॥
जखने जे रूप लीला करेन ईश्वर । सेइ सर्व्व श्रेष्ठ तार नाहिक सोसर ॥२३५॥
युद्ध लीला प्रति इच्छा उपजे जखन । अस्त्र शिक्षा वीर आर ना थाके तेमन ॥२३६॥
काम लीला करिते जखन इच्छा हय । लक्षार्बुद वनितारे करेन विजय ॥२३७॥
धन विलासिते वा जखन इच्छा हय । प्रजार घरेते हय निधि कोटि मय ॥२३८॥
ए मत उद्धत गौर सुन्दर एखने । एइ प्रभु विरक्ति आश्रयिबेन जखने ॥२३९॥
से विरक्ति-भक्ति-कण नाहि त्रिभुवने । अन्ये कि सम्भवे ताहा व्यक्त सर्व्व जने ॥२४०॥
एइ मत ईश्वरेर सर्व्व श्रेष्ठ कर्म्म । सबे सेवकेर हारे से ताहार धर्म्म ॥२४१॥
एक दिन प्रभु आइसेन राज पथे । सात पाँच पढ़ुया प्रभुर चारि भिते ॥२४२॥
व्यवहारे राज योग्य वस्त्र परिधान । अङ्गे पीत वस्त्र शोभे कृष्णेर समान ॥२४३॥
अधरे ताम्बूल कोटि चन्द्र श्रीवदन । लोके बले मूर्त्तिमन्त आइसे मदन ॥२४४॥
ललाटे तिलक ऊर्द्ध पुण्ड्रक श्री करे । दृष्टि मात्र पद्म नेत्रे सर्व्व ताप हरे ॥२४५॥
स्वभाव चञ्चल पढ़ुयार वर्ग सङ्गे । बाहु दोलाइया प्रभु आइसेन रङ्गे ॥२४६॥

---

वही यह सब ( लीलायें ) देखने का अधिकारी हो जाता है ॥ २३१ ॥ इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर वनमाली निजानन्द में आनन्द पूर्वक प्रच्छन्न रूप से विहार करते थे ॥ २३२ ॥ यद्यपि प्रभु अपने को इतना प्रकाशित करते थे तथापि कोई भी दास आपको पहिचान नहीं पाता ॥ २३३ ॥ प्रभु कौतुक से इतना उद्धतपना दिखलाते थे कि इतना उद्धत नवद्वीप भर में और कोई नहीं था ॥२३४॥ ईश्वर श्रीगौरचन्द्र जिस समय जिस प्रकार की लीला करते थे वही सर्वश्रेष्ठ होती थी उसके तुल्य कोई नहीं होती थी ॥ २३५ ॥ आपके मन में जिस समय युद्ध-लीला के प्रति इच्छा उत्पन्न होती उस समय आपके समान युद्ध-शिक्षा में निपुण और कोई नहीं दिखलाई देता था ॥२३६॥ जिस समय आपको काम-लीला की इच्छा होती, उस समय आप लक्ष एवं अरबों वनिताओं के मध्य विजय प्राप्त करते थे ॥२३७॥ एवं जिस समय आपके मन में धन विलास करने की इच्छा होती उस समय प्रजा वर्ग के घरों में करोड़ों के खजाने हो जाते थे ॥ २३८ ॥ उस समय तो श्रीगौरसुन्दर ऐसे उद्धत थे, परन्तु जिस समय यही प्रभु विरक्ति आश्रय करेंगे ॥ २३९ ॥ वैसी विरक्ति एवं भक्ति का एक कण भी त्रिभुवन में नहीं है, क्या ऐसा सम्भव है ? सब लोग जानते हैं ॥ २४० ॥ इसी प्रकार ईश्वर श्रीगौरचन्द्र के कर्म्म सर्वतोपरि थे केवल सेवक ही से हार जाते थे यह आपका स्वभाव था ॥ २४१ ॥ एक दिन प्रभु राज-पथ से जा रहे थे चारों ओर आपके पाँच सात विद्यार्थी थे ॥ २४२ ॥ आप व्यवहार में राजाओं के योग्य वस्त्र-परिधान किया करते थे आपके श्रीअङ्ग में श्रीकृष्ण की तरह पीत-वस्त्र शोभित थे ॥ २४३ ॥ श्री-अधरों पर ताम्बूल एवं आपका श्रीमुखारविन्द कोटि चन्द्रमाओं के समान सुन्दर था आपको दूर से देख कर ही मनुष्य कहते थे कि—मूर्तिमान कामदेव आ रहे हैं ॥ २४४ ॥ ललाट प्रदेश में ऊर्द्ध पुण्ड्र तिलक एवं श्री कर में पुस्तक शोभा पाती थी, अपने नेत्र-कमलों की दृष्टि मात्र से सब ताप दूर करते थे ॥ २४५ ॥ चञ्चल

दैवे पथे आइसेन पण्डित श्रीवास। प्रभु देखि मात्र तान हइल महा-हास ॥२४७॥
ताने देखि प्रभु करिलेन नमस्कार। 'चिरजीवी हओ' वले श्रीवास उदार ॥२४८॥
हासिया श्रीवास वले 'कह देखि शुनि। कति चलियाछ उद्धतेर चूड़ामणि ॥२४९॥
कृष्ण ना भजिया काल कि कार्ये गोंडाओ। रात्रि दिन निरवधि केन वा पढ़ाओ ॥२५०॥
पढ़े केन लोक कृष्ण भक्ति जानिवारे। से जदि नहिल तवे विद्याय किं करे ॥२५१॥
एतेक सर्व्वदा व्यर्थ ना गोंडाओ काल। पढ़िला त एवे कृष्ण भजह सकाल' २५२॥
हासि वले गौर चन्द्र 'शुनह पण्डित। तोमार कृपाय सेहो हइव निश्चित' ॥२५३॥
एत वलि महाप्रभु हासिया चलिला। गङ्गातीरे आसि शिष्य सहिते मिलिला ॥२५४॥
गङ्गा तीरे वसिलेन श्री शची-नन्दन। चतुर्दिके वेढ़िया वसिला शिष्य गण ॥२५५॥
कोटि मुखे से शोभात ना पारि कहिते। उपमाओ तार नाहि देखि त्रिजगते ॥२५६॥
चन्द्र तारा गण वा वलिव ताहा नय। सकलङ्क तार कला क्षय वृद्धि हय ॥२५७॥
सर्व्वकाल परिपूर्ण ए ताहार कला। निष्कलङ्क तेञि से उपमा दूरे गेला ॥२५८॥
बृहस्पति उपमाओ दिते ना जुयाय। तिहों एक पक्ष देवगणेर सहाय ॥२५९॥
ए प्रभु सभार पक्ष सहाय सभार। अतएव से दृष्टान्त ना हय इहार ॥२६०॥
कामदेव उपमा वा दिव सेह नय। तिँहो चित्ते जागिले चित्तेर क्षोभ हय ॥२६१॥

---

स्वभाव प्रभु विद्यार्थी वर्ग के साथ हाथ हिलाते हुए आनन्द पूर्वक चल रहे थे ॥२४६॥ दैवयोग से उसी मार्ग से श्रीवास पण्डितजी आ रहे थे प्रभु को देखते ही उन्हें बड़ी जोर से हँसी आई ॥ २४७ ॥प्रभु ने उन्हें देख कर नमस्कार किया; उदार श्रीवास जी ने 'चिरञ्जीवी हो !' कहकर आशीर्वाद दिया ॥ २४८ ॥ श्रीवासजी ने हँसकर कहा कि–'उद्धत-मुकुट-मणि ! कहो, तनिक देर तो सुनाओ किधर जा रहे हो ? ॥ २४९ ॥ तुम श्री-कृष्ण का भजन न करके अपने समय को क्यों नष्ट करते हो ? और तुम रात्रि दिन निरन्तर किस लिये पढ़ाते हो ? ॥ २५० ॥ लोग पढ़ते किसलिये हैं ? कृष्ण-भक्ति जानने के लिये। वह यदि नहीं हुई तो फिर विद्या से क्या लाभ ? ॥ २५१ ॥ इसलिये तुम निरन्तर अपने समय को व्यर्थ नष्ट न करो, पढ़ तो लिये अब शीघ्र ही श्रीकृष्ण-भजन करना प्रारम्भ कर दो' ॥ २५२ ॥ तब श्रीगौरचन्द्र हँसकर बोले 'पण्डितजी ! सुनिये, आपकी कृपा से वह भी निश्चय होगा' ॥ २५३ ॥ इतना कह कर श्रीमहाप्रभु जी हँसते हुए चले गये हैं और शिष्य-वर्ग के साथ श्रीगङ्गा-तट पर पहुँचे॥२५४॥एवं आकर श्रीशचीनन्दन श्रीगङ्गा-तट पर बैठ गये और चारों ओर शिष्यगण घेर कर बैठ गये ॥ २५५ ॥ वह शोभा तो कोटि मुखों से भी मैं नहीं कह सकता एवं तीनों लोक में उसकी उपमा भी कोई नहीं देखी ॥ २५६ ॥ क्या चन्द्र एवं तारागण से उपमा दूँ ? नहीं, वह उचित नहीं है। क्योंकि चन्द्रमा तो सकलङ्क है एवं उसकी कला क्षय एवं वृद्धि को प्राप्त होती रहती है ॥ २५७ ॥ यह एवं इनकी कला सर्वकाल परिपूर्ण हैं और निष्कलङ्क हैं। इसलिये यह उपमा नहीं बैठती-दूर पड़ती है ॥ २५८ ॥ श्रीबृहस्पति जी से उपमा देना भी ठीक नहीं बैठता क्योंकि वह एकपक्षी हैं अर्थात् देव-गण ही के सहायक हैं। २५९ । परन्तु यह प्रभु सभी के पक्षी हैं एवं सभी के सहायक हैं अतएव यह दृष्टान्त भी उनमें योग्य नहीं है। २६० यदि कामदेव से उपमा दूँ तो वह भी योग्य नहीं बैठती क्योंकि उसके चित्त में उठने पर क्षोभ

ए प्रभु जागिले चित्ते सर्व्व बन्ध क्षय । परम निर्मल चित्त सुप्रसन्न हय ॥२६२॥
एइ मत सकल दृष्टान्त जोग्य नय । सबे एक उपमा देखिये चित्ते लय ॥२६३॥
कालिन्दीर तीरे जेन श्रीनन्द-कुमार । गोप वृन्द मध्ये वसि करिला विहार ॥२६४॥
सेइ गोपवृन्द लइ सेइ कृष्ण चन्द्र । द्विज रूपे गङ्गा तीरे करे बुझि रङ्ग ॥२६५॥
गङ्गा तीरे जे जन देखये प्रभुर मुख । सेइ पाइ अति अनिर्व्वचनीय सुख ॥२६६॥
देखिया प्रभुर तेज अति विलक्षण । गङ्गा तीरे काना कानि करे सर्व्व जन॥२६७॥
केह बले 'एत तेज मनुष्येर नय' । केहो बले 'ए ब्राह्मण विष्णु अंश हय'॥२६८॥
केह बले विप्र राजा हइबेक गौड़े । सेइ बुझि एइ हेन कखन ना नड़े ॥२६९॥
राज श्री राजचिह्न देखिया सकल । एइ मत बले आर जत बुद्धि बल ॥२७०॥
अध्यापक-प्रति सब कटाक्ष करिया । व्याख्या करे प्रभु गङ्गा समीपे वसिया ॥ ७१॥
हय व्याख्या नय करे नय करे हय । सकल खण्डिया शेषे सकल स्थापय ॥२७२॥
प्रभु बले तारे आमि बलिये पण्डित । एक बार व्याख्या करे आमार सहित ॥२७३॥
सेइ व्याख्या जदि वाखानिये आर बार । आमा प्रबोधिबे हेन देखि शक्ति कार ॥२७४॥
एइ मत ईश्वर व्यञ्जेन अहङ्कार । सर्व्व गर्व्व चूर्ण हय शुनिञा सभार ॥२७५॥
कत वा प्रभुर शिष्य तार अन्त नाञि । कतवा मण्डली हय पढ़ ठाञि ठाञि ॥२७६॥

---

पैदा होता है ॥ २६१ ॥ परन्तु इन प्रभु के चित्त में उठने पर सर्व बन्धन नष्ट हो जाते हैं, चित्त परम निर्मल हो जाता है एवं अति प्रसन्न रहता है ॥ २६२ ॥ इसी प्रकार अन्य सब ही दृष्टान्त योग्य नहीं बैठते, केवल एक उपमा देखने में आती है जो चित्त को अच्छी भी मालूम होता है ॥ २६३ ॥ वह यह कि—'पूर्व काल में जैसे श्रीनन्दकुमार, श्रीकृष्णचन्द्र ने गोप-वृन्द के मध्य बैठकर विराट् श्रीयमुनाजी के तीर विहार किया था' ॥ २६४ ॥ ऐसा प्रतीत होता था कि वही श्रीकृष्णचन्द्र उन्हीं गोपवृन्द को लेकर द्विज-बालक रूप से श्रीगङ्गा तीर पर आनन्द कर रहे हैं ॥ २६५ ॥ श्रीगङ्गा तीर पर जो मनुष्य प्रभु के श्रीमुख के दर्शन करते थे वही मनुष्य अति अनिर्वचनीय सुख प्राप्त करते थे ॥ २६६ ॥ श्रीगङ्गा तट पर सब मनुष्य प्रभु के अति विलक्षण तेज को देखकर आपस में काना फूसी कर रहे थे ॥२६७॥ कोई कहता कि—इतना तेज मनुष्य में नहीं होता कोई कहता था कि—'यह ब्राह्मण विष्णु अंश है' ॥ २६८ ॥ कोई कहता कि गौड़ देश में ब्राह्मण राजा होगा, ऐसा प्रतीत होता है कि वह यही है प्रभु मेरा वाक्य कभी टलने का नहीं है ॥ २६९ ॥ प्रभु की राजश्री एवं राज चिह्नों को देखकर सब लोग अपने २ बुद्धि बल के अनुसार इसी प्रकार की अनेक बातें कहते थे॥२७०॥ श्रीगङ्गा-तट पर बैठ कर प्रभु सब अध्यापकों के प्रति कटाक्ष करते हुए व्याख्या करते थे॥२७१॥उचित व्याख्या को अनुचित कर देते हैं फिर उस गलत व्याख्या को सत्य करके दिखलाते थे सब कुछ खण्डन करके पश्चात् पुनः सबका स्थापन करते थे ॥ २७२ ॥ प्रभु कहते थे कि—हम उसको पण्डित मानें जो एक बार हमारे सामने व्याख्या करे ॥ २७३ ॥ उसकी उस व्याख्या को यदि हम फिर दूसरे प्रकार से वर्णन करें तो हमको उसका प्रबोध करें, देखें, ऐसी शक्ति किसमें है ? ॥ २७४ ॥ इस प्रकार श्रीगौरचन्द्र ईश्वर अपना अहङ्कार प्रकाश करते थे जिसको सुनकर सब का सम्पूर्ण गर्व चूर्ण हो जाता था ॥ २७५ ॥ प्रभु के कितने शिष्य हैं, उनका अन्त

प्रति दिन दश विश ब्राह्मण कुमार । आसिया प्रभुर पाये करे नमस्कार ।।२७७।।
'पण्डित आमरा पढ़िबाङ तोमा स्थाने । किछु जानि हेन कृपा करिबा आपने' ।।२७८।।
'भाल भाल' हासि प्रभु बलेन वचन । एइ मत प्रति दिन बाढ़े शिष्य गण ।।२७९।।
गङ्गा तीरे शिष्य सङ्गे मण्डली करिञा । वैकुण्ठेर चूड़ा मणि आछेन वसिया ।।२८०।।
चतुर्दिके देखे सब भाग्यवन्त लोक । सर्व्व नवद्वीपे प्रभुर प्रभाव आलोक ।।२८१।।
से आनन्द जे जे भाग्यवन्त देखिलेक । कोन जन आछे तार भाग्य वलिबेक ।।२८२।।
से आनन्द देखिलेक जे सुकृति जन । तारे देखिलेओ खण्डे संसार बन्धन ।।२८३।।
हइल पापिष्ठ जन्म ना हइल तखने । हइलाङ वञ्चित से सुख दरशने ।।२८४।।
तथापिह एइ कृपा कर गौरचन्द्र । सेइ लीला स्फुर्त्ति मोर हउ जन्म जन्म ।।२८५।।
सपार्षदे तुमि नित्यानन्द जथा जथा । लीला कर मुञि जेन भृत्य हङ तथा ।।२८६।।
श्री चैतन्य नित्यानन्द चाँद पहुँ जान । बृन्दावन दास तछु पद जुगे गान ।।२८७।।

इति श्रीचैतन्यभागवते आदिखण्डे श्रीगौराङ्ग-नगरभ्रमणादि वर्णनंनाम अष्टमोऽध्यायः ।।८।।

## नवमो अध्याय

जय जय द्विज कुल चन्द्र गौरचन्द्र । जय जय भक्त-गोष्ठी-हृदय-आनन्द ।।१।।
जय जय द्वार पाल गोविन्देर नाथ । जीव प्रति कर प्रभु शुभ दृष्टि पात ।।२।।

---

नहीं है वह सब पृथक्-पृथक् कितनी ही मण्डलियाँ बनाकर जगह-जगह पढ़ने बैठते थे ।। २७६ ।। प्रति दिन दस, बीस ब्राह्मण-कुमार आकर प्रभु के चरणों में नमस्कार करते थे ।। २७७ ।। एवं निवेदन करते थे कि—पण्डित जी ! हम आपके पास पढ़ेंगे, आप ऐसी कृपा कीजिये जिससे हम कुछ जान जाँय' ।। २७८ ।। हँसकर प्रभु कहते कि–'अच्छा' 'अच्छा' । इसी प्रकार प्रति दिन शिष्य गण बढ़ते रहते थे ।। २७९ ।। वैकुण्ठ चूड़ामणि श्रीगङ्गा-तट पर शिष्यों के साथ मण्डली बनाकर के बैठे हुए थे ।। २८० ।। चारों ओर से सब भाग्यवान् मनुष्य दर्शन करते थे; प्रभु के प्रभाव का प्रकाश समस्त नवद्वीप में हो रहा था ।। २८१ ।। वह आनन्द जिस किसी भाग्यवान् ने देखा, कौन मनुष्य है जो उसके भाग्य की प्रशंसा कर सके ।। २८२ ।। वह आनन्द जिस सुकृति जन ने देखा है उसके दर्शन करने से भी संसार-बन्धन नष्ट हो जाते हैं ।। २८३ ।। यह पापिष्ठ जन्म जो अब हुआ है उस समय नहीं हुआ । हाय ! मैं उस सुख-दर्शन से वञ्चित रहा ।। २८४ ।। हे श्रीगौरचन्द्र ! तब भी इतनी कृपा तो कीजिये कि–मेरे प्रत्येक जन्म में वह लीला मुझे स्फूर्त्ति हो ।। २८५ ।। सपार्षद आप एवं श्रीनित्यानन्द प्रभु जहाँ लीला करें जिस प्रकार हो मैं वहाँ-वहाँ सेवक बन कर रहूँ ।। २८६ ।। श्रीचैतन्यचन्द्र एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र को प्रभु जानकर श्रीवृन्दावनदास उनके युगल चरणों में उनके गुण-गान करते हैं ।।२८७।।

हे द्विज कुल-चन्द्र श्रीगौरचन्द्र आपकी जय हो, जय हो ! भक्त-गोष्ठी के हृदय के आनन्ददाता ! आपकी जय हो, जय हो ।। १ ।। द्वारपाल श्रीगोविन्द के नाथ आपकी जय हो, जय हो हे प्रभो जीवन के

जय अध्यापक शिरो रत्न द्विजराज । जय जय चैतन्येर भकत समाज ॥३॥
हेन मते विद्या रसे श्री वैकुण्ठ नाथ । वेसेन सभार करि विद्या गर्व्व पात ।४॥
जद्यपिओ नवद्वीपे पण्डित समाज । कोट्यर्व्बुद अध्यापक नाना शास्त्र राज ।५॥
भट्टाचार्य चक्रवर्त्ती मिश्र वा आचार्य । अध्यापना विना आर नाहि कोन कार्य ।६॥
जद्यपिओ शास्त्रेते स्वतन्त्र सभे जयी । शास्त्र चिन्ता हैले ब्रह्मार ओ नाहि सहि ॥७॥
प्रभु जत निरवधि आक्षेप करेन । परस्पर माक्षाते ओ सभेइ शुनेन ॥८॥
तथापिह हेन जन नाहि प्रभु प्रति । द्विरुक्ति करिते कार नाहिक शकति ॥९॥
हेन से साध्वस जन्मे प्रभुरे देखिया । सभेइ जायेन एक दिके नम्र हइया ॥१०॥
जदि वा काहारे प्रभु करेन सम्भाष । सेइ जन हय जेन अति वड़ दास ॥११॥
प्रभुर पाण्डित्य वुद्धि शिशुकाल हइते । सभेइ जानेन गङ्गा तीरे भाल मते ॥१२॥
कोन मते केह प्रबोधिते नाहि पारे । इहाओ सभार सदा जागये अन्तरे ।१३॥
प्रभु देखि सभारेइ जन्मे जे साध्वस । स्वभावेइ प्रभु देखि हय सभे वश ॥१४॥
तथापिओ हेन तान मायार वड़ाजि । बुझिवारे पारे ताने हेन जन नाजि ॥१५॥
तेँहो जदि आपनाके ना करे विदित । तबे ताने केह ना जानेन कदाचित ॥१६॥
तेहोँ पुनः नित्य सुप्रसन्न सर्व्ववित् । ताहान मायाय पुनः सभे विमोहित ॥१७॥
हेन मते सभारे मोहिया गौरचन्द्र । विद्या रसे नवद्वीपे करेन आनन्द ॥१८॥

---

प्रति शुद्ध-दृष्टिपात कीजिये ॥ २ ॥ अध्यापक शिरोमणि द्विजराज श्रीविश्वम्भर चन्द्र ! आपकी जय हो और आप के भक्त समाज की जय हो, जय हो ॥ ३ ॥ इस प्रकार श्रीवैकुण्ठनाथ सब लोगों के विद्या-गर्व को नष्ट करके विद्या-रस में विराजते थे ॥ ४ ॥ यद्यपि नवद्वीप के पण्डित समाज में नाना शास्त्र-राज के कोटि एवं अरब अध्यापक थे ॥ ५ ॥ जो भट्टाचार्य, चक्रवर्त्ती, मिश्र एवं आचार्य आदि थे उनका पढ़ाने के सिवाय और कोई कार्य नहीं था ॥ ६ ॥ यद्यपि उनका सब शास्त्रों में अधिकार था एवं सभी उनमें विजय प्राप्त किये हुए थे) शास्त्र विचार करने पर वह ब्रह्मा की भी नहीं सहते थे ॥ ७ ॥ प्रभु निरन्तर जितना आक्षेप करते उसको वह सब लोग एक दूसरे के द्वारा एवं सम्मुख भी सुनते थे ॥ ८ ॥ तथापि ऐसा कोई व्यक्ति नहीं था, जो प्रभु प्रति द्विरुक्ति करने की शक्ति रखता हो ॥ ९ ॥ प्रभु को देखकर उनको ऐसा डर लगता था कि वह सब लोग उनके आगे नम्र बन कर एक ओर को चले जाते थे ॥ १० ॥ यदि उनमें से किसी के साथ प्रभु सम्भाषण करते हैं तो वही जन मानो आपका अति बड़ा दास बन जाता है ॥ ११ ॥ श्रीगङ्गा-तट पर शिशु-काल से ही प्रभु की पाण्डित्य-बुद्धि को सब लोग भली प्रकार जानते थे ॥१२॥ शास्त्रार्थ करके कोई भी किसी प्रकार से प्रभु को निरस्त नहीं कर सकता था यह बात भी सब के हृदय में जागरूक रहती थी ॥ १३ ॥ यद्यपि प्रभु को देख कर सबको भय लगता था एवं सब प्रभुको देखकर सहज में ही आप-आप वश हो जाते थे॥१४॥ तथापि आपकी मायाकी ऐसी बड़ाई है कि उसमें से किसीको ऐसी शक्ति नहीं जो आपको समझ सके १५
विदित न करें तो आपको कोई कभी न जान पाये १६ यद्यपि वह नित्य, सुप्रसन्न

हेन काले तथा एक महा दिग्विजयी । आइल परम अहङ्कार जुक्त हइ ॥१६॥
सरस्वती मन्त्रेर एकान्त उपासक । मन्त्र जपि सरस्वती करिलेन वश ॥२०॥
विष्णु भक्ति स्वरूपिणी विष्णु वक्षः स्थिता । मूर्त्ति भेदे रमा सरस्वती जगन्माता ॥२१॥
भाग्य वशे ब्राह्मणेर प्रत्यक्ष हइला । 'त्रिभुवन दिग्विजयि कर' वर दिला ॥२२॥
जाँर दृष्टि पात-मात्रे हय विष्णु भक्ति । दिग्विजयि वर वा ताहान कोन् शक्ति ॥२३॥
पाइ सरस्वतीर साक्षाते वर दान । संसार जिनिञा विप्र बुले स्थाने स्थान ॥२४॥
सर्व्व शास्त्र जिह्वाय आइसे निरन्तर । हेन नाहि जगते जे दिबेक उत्तर ॥२५॥
जार कक्षा मात्र नाहि बुझे कोन जने । दिग्विजयी हइ बुले सर्व्व स्थाने स्थाने ॥२६॥
शुनिलेन बड़ नवद्वीपेर महिमा । पण्डित समाज जत तार नाहि सीमा ॥२७॥
परम समृद्ध अश्व गज जुक्त हइ । सभा जिनि नवद्वीपे गेला दिग्विजयी ॥२८॥
प्रति घरे घरे प्रति पण्डित सभाय । महा ध्वनि उठिल जे सर्व्व नदीयाय ॥२६॥
सर्व्व राज्य देश जिनि जय पत्र लइ । नवद्वीपे आसियाछे एक दिग्विजयी ॥३०॥
सरस्वती वर-पुत्र शुनि सर्व्व जने । पण्डित सभार बड़ चिन्ता हइल मने ॥३१॥
जम्बु द्वीपे जत आछे पण्डितेर स्थान । सभा जिनि नवद्वीप जगते बाखान ॥३२॥
हेन स्थान दिग्विजयी जाइबे जिनिञा । संसारेइ अप्रतिष्ठा घुषिब शुनिञा ॥३३॥

---

मोहित करके श्रीनवद्वीप में विद्या-रस में आनन्द करते थे ॥ १८ ॥ उसी समय श्रीनवद्वीप में एक महा दिग्विजयी पण्डित बड़े अहङ्कार रखता हुआ आया ॥ १६ ॥ वह 'सरस्वती-मन्त्र' का एकान्त उपासक था जिसने मन्त्र जप कर सरस्वती जी को वश में कर लिया था ॥ २० ॥ विष्णु-भक्ति-स्वरूपिणी एवं श्रीविष्णु भगवान् के वक्षस्थल में विराजिता श्रीलक्ष्मी जी की अन्य मूर्त्ति जगन्माता श्रीसरस्वती जी ॥ २१ ॥ उस ब्राह्मण के सौभाग्य से उसको दर्शन दिये थे एवं वरदान दिया था कि-'तुम त्रिभुवन दिग्विजय करो' ॥२२॥ जिन श्रीसरस्वती जी के दृष्टिपात मात्र से श्रीविष्णु-भक्ति-लाभ हो जाती है उनका दिग्विजय का वर देना कौनसी बड़ी शक्ति का द्योतक है ? ॥ २३ ॥ वह विप्र साक्षात् श्रीसरस्वती जी से वर प्राप्त कर संसार को जीतता हुआ जगह-जगह घूमता फिरता था ॥२४॥ निरन्तर सर्व शास्त्र उसकी जिह्वा पर आते रहते थे संसार मे ऐसा कोई मनुष्य नहीं था जो उसकी बात का उत्तर दे सके ॥ २५ ॥ जिसके पूर्वपक्ष मात्र को कोई कुछ नहीं समझता था,दिग्विजयी होकर वह ब्राह्मण प्रत्येक स्थान पर घूमता फिरता था ॥ २६ ॥ उसने श्रीनवद्वीप की बड़ी महिमा सुनी थी कि-वहाँ पण्डितों के समाज उनकी कोई सीमा नहीं है ॥२७॥ वह दिग्विजयी परम समृद्ध अश्व, गज आदि से युक्त होकर एवं सबको जीत कर श्रीनवद्वीप में आया है ॥ २८ ॥ श्रीनवद्वीप के प्रत्येक पण्डित समाज एवं घर-घर में यह महाध्वनि उठी हुई थी कि-॥ २६ ॥ 'सर्व राज्य व सर्व देश को जीत कर एवं सबसे 'जय-पत्र' लेकर एक दिग्विजयी पण्डित यहाँ आया है' ॥ ३० ॥ सब से उसको सरस्वती का वर-पुत्र सुनकर सब पण्डितों के मन में बड़ी चिन्ता हुई ॥ ३१ ॥ वह विचार करते थे कि-जम्बुद्वीप में पण्डितों के जितने स्थान हैं उन सबके विजेता रूप में श्रीनवद्वीप संसार में प्रसिद्ध है ॥ ३२ ॥ ऐसे स्थान को यदि दिग्विजयी जीत कर जायगा तो इस बात का सुनकर ससार में इसकी अप्रतिष्ठा फैल जायगी ३३ ।

जुझिते वा कार शक्ति आछे तार सने । सरस्वती वर जारे दिलेन आपने ॥३४॥
सरस्वती वक्ता जार जिह्वाय आपने । मनुष्य विवादे कभू पारे तार सने ॥३५॥
सहस्र सहस्र महा महा भट्टाचार्य । सभे एइ चिन्तेन छाड़िया सर्व्व कार्य ॥३६॥
चतुर्दिके सभेइ करेन कोलाहल । बुझिबाङ एइ बार जत विद्या बल ॥३७॥
ए सब वृतान्त जत पढ़ुयार गणे । कहिलेन निज गुरु गौराङ्गेर स्थाने ॥३८॥
'एक दिग्विजयी सरस्वती वश करि । सर्व्वत्र जिनिञा बुले जय पत्र धरि ॥३९॥
हस्ती घोड़ा दोला लोक अनेक संहति । सम्प्रति आसिया हैला नवद्वीपे स्थिति ॥४०॥
नवद्वीपे आपनार प्रति द्वन्द्वी चाय । नहे जय पत्र मागे सकल सभाय' ॥४१॥
शुनि शिष्य गणेर वचन गौर-मणि । हासिया कहिते लागिलेन तत्त्व वाणी ॥४२॥
'शुन भाइ सब एइ कहि तत्त्व कथा । अहङ्कार ना सहेन ईश्वर सर्व्वथा ॥४३॥
जे जे गुणे मत्त हइ करे अहङ्कार । अवश्य ईश्वर ताहा करेन संहार ॥४४॥
फलवन्त वृक्ष आर गुणवन्त जन । नम्रता से ताहार स्वभाव अनुक्षण ॥४५॥
*हैहय, नहुष, वेण, नरक रावण । महा दिग्विजयी शुनियाछ जे जे जन ॥४६॥
बुझि देख कार गर्व्व चूर्ण नाहि हय । सर्व्वदा ईश्वर अहङ्कार ना सहय ॥४७॥
एतेक ताहार जत विद्या अहङ्कार । देखिबा एथाइ सब हइबे संहार ॥४८॥
एत बलि हासि प्रभु शिष्य गण सङ्गे । सन्ध्या काले गङ्गा तीरे चलिलेन रङ्गे ॥४९॥

---

स्वयं श्रीसरस्वती जी ने जिसको वर दिया है उसके साथ बोलने की किस में शक्ति है ॥ ३४ ॥ जिसकी जिह्वा पर स्वयं श्रीसरस्वती जी वक्ता हैं क्या मनुष्य कभी उसके साथ विवाद कर सकता है ? ॥३५॥ सहस्र-सहस्र महा भट्टाचार्य सब अपने अन्य कार्यों को छोड़कर इसी चिन्ता में थे ॥ ३६ ॥ एवं सब लोग चारों ओर कोलाहल करते थे व कहते थे कि—'अब की जान पड़ेगी कि इनमें कितना विद्या बल है' ॥३७॥ यह सब वृत्तान्त विद्यार्थी-वर्ग ने अपने गुरु श्रीगौराङ्ग देव से आकर कहा ॥ ३८ ॥ उन्होंने कहा कि—'एक दिग्विजयी पण्डित श्रीसरस्वती जी को निज-वश करके सर्वत्र विजय प्राप्त करता हुआ एवं विजय-पत्र लेता हुआ घूमता फिरता है ॥ ३९ ॥ उसके साथ अनेक हाथी, घोड़े, पालकियाँ एवं मनुष्य हैं; अब वह नवद्वीप में आकर ठहरा है ॥ ४० ॥ वह नवद्वीप में अपना प्रति-द्वन्द्वी चाहता ( खोजता ) है नहीं तो समस्त सभाओं से जय-पत्र माँगता है' ॥ ४१ ॥ श्रीगौर-मणि शिष्य गण के वचन सुनकर हँसते हुए तत्त्व-वाणी बोले ॥ ४२ ॥ 'भाइयो ! सुनो, मैं यह तत्त्व की बात कहता हूँ कि—ईश्वर अहङ्कार को कभी सहन नहीं करते हैं' ॥ ४३ ॥ जो आदमी जिस गुण से मत्त होकर अहङ्कार करता है ईश्वर अवश्य उसका नाश करते हैं ॥४४॥ फल वाला वृक्ष और गुण-वाला मनुष्य इनका सदा नम्रता का स्वभाव होता है ॥ ४५ ॥ हैहय, नहुष, वेण, नरक एवं रावण आदि जो-जो महा दिग्विजयी जन तुमने सुने हैं ॥ ४६ ॥ समझ कर देखो उनमें से किसका गर्व चूर्ण नहीं हुआ ?

---

* हैहय देश का राजा कार्त्तवीर्यार्जुन इन्होंने भगवान् दत्तात्रेय से वर प्राप्त कर अपनी सहस्र भुजाओं द्वारा रावण को भी हराया था पश्चात् परशुरामजी के द्वारा निहत हुआ था

गङ्गा जल स्पर्श करि गङ्गा नमस्करि । वसिलेन गङ्गातीरे गौराङ्ग श्री हरि ॥५०॥
अनेक मण्डली हइ सर्व्व शिष्य गण । वसिलेन चतुर्दिके परम शोभन ॥५१॥
धर्म्म कथा शास्त्र कथा अशेष कौतुके । गङ्गातीरे वसियाछेन प्रभु बड़ सुखे ॥५२॥
काहा के ना कहि मने भावेन ईश्वर । दिग्विजयी जिनिवाङ के मन प्रकार ॥५३॥
ए विप्रेर हइयाछे महा अहङ्कार । जगते मोहर प्रति द्वन्द्वी नाहि आर ॥५४॥
सभा मध्ये जदि जय करिये इहारे । मृत्यु तुल्य हइवेक संसार भितरे ॥५५॥
अनादर विप्रेर करिवे सर्व्वलोके । लुठिवे सर्वस्व विप्र मरिवेक शोके ॥५६॥
दुःख ना पाइवे विप्र गर्व्व हैवे क्षय । विरले से करिवाङ दिग्विजियी जय ॥५७॥
एइमत चिन्तिते ईश्वर सेइक्षणे । दिग्विजयी निशाये आइला सेइ स्थाने ॥५८॥
परम निर्म्मल निशा पूर्ण चन्द्रवती । कि शोभा हइयाछेन तथा भागीरथी ॥५९॥
शिष्य सङ्गे गङ्गातीरे आछेन ईश्वर । अनन्त ब्रह्माण्डे रूप सर्व मनोहर ॥६०॥
हास्य युक्त श्री चन्द्र-वदन अनुक्षण । निरन्तर दिव्य-दृष्टि दुइ श्री नयन ॥६१॥
मुक्ता जिनि श्री दशन, अरुण अधर । दयामय सुकोमल सर्व्व-कलेवर ॥६२॥
सुवलित श्रीमस्तके श्रीचाँचर केश । सिंह ग्रीव, गज-स्कन्ध, विलक्षण बेश ॥६३॥
सुप्रकाण्ड श्रीविग्रह, सुन्दर हृदय । यज्ञ-सूत्र रूपे तँहि अनन्त विजय ॥६४॥

---

ईश्वर कभी अहङ्कार को सहन नहीं करते हैं ॥ ४७ ॥ इसलिये तुम देखना कि-यही पर उसका सब विद्या-अहङ्कार नष्ट होगा ॥ ४८ ॥ इतना कहकर प्रभु हँसकर सन्ध्या समय शिष्य-गण सहित आनन्द पूर्वक श्रीगङ्गा-तट पर पहुँचे ॥४९॥ वहाँ जल स्पर्श व श्रीगङ्गाजी को नमस्कार करके गौराङ्ग श्रीहरि तट पर बैठ गये ॥५०॥ एवं सर्व शिष्य-गण के अनेक मण्डलियों में विभक्त होकर चारों ओर से घेर कर बैठने से परम शोभा को प्राप्त हो रहे थे ॥ ५१ ॥ अशेष कौतुक पूर्ण धर्म-कथा एवं शास्त्र वार्त्तालाप करते हुए प्रभु अति सुख पूर्वक गङ्गा-तट पर बैठे हुए थे ॥ ५२ ॥ ईश्वर श्रीगौरचन्द्र किसी को भी न कहकर अपने मन में विचार करने लगे कि-मैं इस दिग्विजयी को किस प्रकार जीतूँ ? ॥ ५३ ॥ इस विप्र को बड़ा भारी अहङ्कार हो गया है कि-संसार में मेरा प्रतिद्वन्द्वी और कोई नहीं है ॥ ५४ ॥ यदि इसको सभा के बीच में जय किया जाय तो वह संसार में मृत-तुल्य हो जायगा ॥ ५५ ॥ एवं सब लोग इस विप्र का अनादर करेंगे,इसका सर्वस्व लुट जायगा और वह शोक में मर जायगा ॥ ५६ ॥ यह विप्र दुःख भी न पावे और इसका गर्व भी क्षय हो जाय इस-लिये मैं दिग्विजयी को एकान्त में जय करूँगा ॥ ५७ ॥ श्रीगौरचन्द्र ईश्वर इस प्रकार चिन्ता कर ही रहे थे कि-रात्रि में उसी क्षण वह दिग्विजयी वहाँ आ पहुँचा ॥ ५८ ॥ परम निर्मल पूर्णिमा की रात्रि में वहाँ श्री-गङ्गाजी पर क्या अद्भुत शोभा हो रही थी ॥ ५९ ॥ श्रीगौरचन्द्र शिष्य वर्ग के साथ श्रीगङ्गा तट पर विराज-मान थे, आपका रूप अनन्त ब्रह्माण्ड में सब के मन को हरने वाला था ॥ ६० ॥ आपका श्रीचन्द्रमुख क्षण-क्षण में हास्ययुक्त हो रहा था तथा आपके युगल श्रीनेत्रों से निरन्तर दिव्य दृष्टि सुप्रकाशित हो रही थी॥६१॥ आपके श्रीदशन मुक्ताओं को भी जय कर रहे थे, आपके अधर अरुण थे एवं श्रीअङ्ग दयामय व अति कोमल थे ॥ ६२ ॥ आपके सुन्दर रेखाङ्कित श्रीमस्तक प्रदेश में चाँचर काले केश शोभित थे, सिंह की सी ग्रीवा,

श्रीललाटे ऊर्द्ध सुतिलक मनोहर । आजानुलम्बित दुइ श्रीभुज सुन्दर ॥६५॥
योग पट्ट-छान्दे वस्त्र करिया बन्धन । वाम उरु माझे थुइ दक्षिण चरण ॥६६॥
करिते आछेन प्रभु शास्त्रेर व्याख्यान । हय नय करे, नय करेन प्रमाण ॥६७॥
अनेक मण्डली हइ सर्व्व शिष्य गण । चतुर्दिके वसिया आछेन सुशोभन ॥६८॥
अपूर्व्व देखिया दिग्विजयी सुविस्मित । मने भावे एइ बुझि निमाञि पण्डित ॥६९॥
अलक्षिते सेइ स्थाने थाकि दिग्विजयी । प्रभुर सौन्दर्य्य चाहे एक दृष्टि हइ ॥७०॥
शिष्य स्थाने जिज्ञासिला 'कि नाम इहान' । शिष्य बोले 'निमाञि पण्डित ख्याति जान'॥७१॥
तबे गङ्गा नमस्करि सेइ विप्रवर । आइलेन ईश्वरेर सभार भितर ॥७२॥
ताने देखि प्रभु किछु ईषत् हासिया । बसिते बलिला अति आदर करिया ॥७३॥
परम निशङ्क सेइ, दिग्विजयी आर । तभो प्रभु देखिता साध्वस हैल तार ॥७४॥
ईश्वर स्वभाव शक्ति एइ मत हय । देखितेइ मात्र तार साध्वस जन्माय ॥७५॥
सात पाँच कथा प्रभु कहि विप्र-सङ्गे । जिज्ञासिते तारे किछु आरम्भिला रङ्गे ॥७६॥
प्रभु कहे तोमार कवित्वेर नाहि सीमा । हेन नाहि, जाहा तुमि ना कर वर्णना ॥७७॥
गङ्गार महिमा किछु करह पठन । शुनिला सभार हउ पाप-विमोचन ॥७८॥
शुनि सेइ दिग्विजयी प्रभुर वचन । सेइ क्षणे करि बारे लागिला वर्णन ॥७९॥
द्रुत ये लागिला विप्र करिते वर्णना । कत रूपे बोले तार के करिबे सीमा ॥८०॥

---

हाथी के से युगल-स्कन्ध एवं विलक्षण वेश शोभा पा रहा था ॥६३॥ आपका सुखकारक श्रीविग्रह एवं सुन्दर वक्ष था, वहीं यज्ञोपवीत रूप में श्रीअनन्तजी विराज रहे थे ॥ ६४ ॥ श्रीललाट प्रदेश में ऊर्द्ध पुण्ड्र का मनोहर सुन्दर तिलक था जंघाओं तक लम्बे सुन्दर श्रीभुज-युगल थे ॥६५॥ योगपट्ट की रीति से वस्त्र बन्धन कर दक्षिण श्रीचरण को बायें जंघा पर रखकर प्रभु शास्त्र की व्याख्या करने में लगे हुए थे । 'हाँ' को 'ना' करते थे एवं ना को हाँ सिद्ध कर रहे थे ॥ ६६-६७ ॥ चारों ओर सर्व शिष्य-गण अनेक मण्डलियों में विभक्त होकर बैठे हुए सुन्दर शोभा को पा रहे थे ॥ ६८ ॥ दिग्विजयी उस अपूर्व शोभा को देखकर अति विस्मित हुआ एवं मन में विचार करने लगा कि—'स्यात् यही निमाञि पण्डित है' ॥ ६९ ॥ दिग्विजयी उसी स्थान पर ओट में होकर टकटकी लगाकर प्रभु के सौन्दर्य को देख रहा था ॥ ७० ॥ परन्तु एक शिष्य से पूछने लगा कि—'इनका नाम क्या है ?' शिष्य ने उत्तर दिया कि—'यह निमाञि पण्डित के नाम से प्रसिद्ध है' ॥ ७१ ॥ तब वह विप्रवर श्रीगङ्गा जी को नमस्कार करके ईश्वर की सभा में आ गया ॥ ७२ ॥ उसको देख कर महाप्रभुजी ने कुछ हास्य करते हुए आदर के साथ बैठने को कहा ॥ ७३ ॥ एक तो वह परम निशङ्क और दूसरे दिग्विजयी, तब भी प्रभु को देखकर उसको भय हो रहा था ॥ ७४ ॥ ईश्वर-स्वभाव की ऐसी शक्ति होती है कि दर्शन करते ही दर्शक को भय होने लगता है ॥ ७५ ॥ प्रभु ने उस विप्र से कुछ वार्त्तालाप करने के पश्चात् कौतुक ही से कुछ पूछना आरम्भ किया ॥ ७६ ॥ प्रभु ने कहा कि—आपकी कवित्व शक्ति की कोई सीमा नहीं है, ऐसा कोई विषय नहीं जिसका आप वर्णन न कर सकते हो ॥ ७७ ॥ इसलिये

कत मेघे शुने जेन करये गर्ज्जन। एइ मत कवित्वेर गाम्भीर्य पठन ॥८१॥
जिह्वाय आपनि सरस्वती अधिष्ठान। जे बोलये सेइ हये अत्यन्त-प्रमाण ॥८२॥
मनुष्येरे शक्ति ताहा दूषिवेक के। हेन विद्यावन्त नाहि बुझिवेक जे ॥८३॥
सहस्र सहस्र जत प्रभुर शिष्य गण। अवाक्य हइला सभे शुनिञा वर्णन ॥८४॥
राम राम अद्भुत स्मरेन शिष्य गण। मनुष्येर ए मत कि स्फुरये कथन ॥८५॥
जगते अद्भुत जत शब्द अलङ्कार। सेइ वहि कवित्वेर वर्णन नाहि आर ॥८६॥
सर्व्व शास्त्रे महा विशारद जे जे जन। हेन शब्द ताना बुझिबारे ओ विषम ॥८७॥
एइ मत प्रहर खानेक दिग्विजयी। पढ़े द्रुत वर्णना तथापि अन्त नाञि ॥८८॥
पढ़ि जदि दिग्विजयी हैला अवसर। तबे हासि बलिलेन श्री गौर सुन्दर ॥८९॥
'तोमार जे शब्देर ग्रन्थन अभिप्राय। तुमि विने बुझाइले बुझन ना जाय ॥९०॥
एतेके आपने किछु करह व्याख्यान। जे शब्दे जे बोल तुमि, सेइ से प्रमाण' ॥९१॥
शुनिञा प्रभुर वाक्य सर्व्व मनोहर। व्याख्या करि बारे लागिलेन विप्रवर ॥९२॥
व्याख्या करिलेइ मात्र प्रभु सेइ खाने। दूषिलेन आदि मध्य अन्ते तिन स्थाने ॥९३॥
प्रभु बोले 'ए सकल शब्द अलङ्कार। शास्त्र मते शुद्ध हैते विषम अपार ॥९४॥
तुमि बा दियाछ कोन् अभि प्राय करि। बोल देखि' कहिलेन गौराङ्ग श्री हरि ॥९५॥

---

दिग्विजयी ने प्रभु के वचन सुनते ही उसी क्षण वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया ॥७९॥ वह विप्र ऐसी तीव्र गति से वर्णन करता था कि उसकी कोई सीमा नहीं कर सकता है ॥ ८० ॥ उसकी कविता का पाठ इस प्रकार गाम्भीर्य से हो रहा था कि मानों कितने ही मेघ गर्जन करते हुए सुनाई देते हों॥८१॥उसकी जिह्वा पर स्वयं श्रीसरस्वतीजी का अधिष्ठान था वह जो कुछ वर्णन करता वही अत्यन्त प्रमाणित माना जाता था॥८२॥ किस मनुष्य की शक्ति है जो उसमें दोष निकाल सके और तो क्या ऐसा भी कोई विद्वान् नहीं था जो उसको समझ भी सके ॥ ८३ ॥ प्रभु के सहस्र-सहस्र जितने शिष्य-गण थे, वे सभी उसके वर्णन को सुनकर अवाक् हो गये ॥ ८४ ॥ वह शिष्यगण विस्मित होकर 'राम-राम' स्मरण करने लगे एवं विचारने लगे कि—क्या इस प्रकार का वर्णन मनुष्य को कभी स्फूर्त्ति हो सकता है ? ॥ ८५ ॥ संसार में जितने अद्भुत-अद्भुत शब्द एवं अलङ्कार हैं उसकी कविता में उनके वर्णन के अतिरिक्त और कुछ नहीं था ॥८६॥ उसने ऐसे-ऐसे शब्द प्रयोग किये कि जिनका समझना सब ही सर्व-शास्त्र-विशारद मनुष्यों के लिये भी एक विषम समस्या थी ॥ ८७ ॥ इसी प्रकार लगभग एक प्रहर तक दिग्विजयी पण्डित शीघ्र-गति से वर्णन करता ही चला जाता था, तब भी पाठ का अन्त नहीं होता था ॥ ८८ ॥ कुछ समय पश्चात् उसके वर्णन करते-करते अवसर जान कर हँसते हुए श्रीगौरसुन्दर उससे बोले कि—॥८९॥'आपका शब्द जोड़ने का जो अभिप्रायहै वह बिना आपके समझाये समझ में नहीं आता ? ॥९०॥ इसलिये आप उनकी कुछ व्याख्या कीजिये आप जो बोलते हो उसके वे ही प्रमाण हैं' ॥ ९१ ॥ प्रभु के अति मनहरण वाक्य सुन कर उस पण्डित ने व्याख्या करनी प्रारम्भ की ॥ ९२ ॥ उसके व्याख्या करने के साथ ही प्रभु उसकी कविता के आरम्भ-बीच एवं अन्त में तीनों स्थानों में दोष निकाले ९३ पश्चात् प्रभु गौराङ्ग श्रीहरि बोले 'यह सब शब्द व अलङ्कार शास्त्र के अनुसार शुद्ध कहना बड़ा

एत बड़ सरस्वती-पुत्र दिग्विजयी । सिद्धान्त ना स्फुरे किछु बुद्धि गेल कहि ॥९६॥
सात पाँच बोले विप्र प्रबोधिते नारे । जे बोलेन ताहि दोष गौराङ्ग सुन्दरे ॥९७॥
सकल प्रतिभा पलाइल कोन स्थाने । आपने ना बुझे विप्र कि बोले आपने ॥९८॥
प्रभु बोले 'ए थाकुक पड़ किछु आर' । पड़िते ओ पूर्व्ववत शक्ति नाहि आर ॥९९॥
कोन चित्र ताहार सम्मोह प्रभु-स्थाने । वेदओ पायेन मोह जाँर विद्यमाने ॥१००॥
आपने अनन्त, चतुर्म्मुख, पञ्चानन । जा सभार दृष्ट्ये हये अनन्त भुवन ॥१०१॥
ताँनाओ पायेन मोह जार विद्यमाने । कोन चित्र से विप्रेर मोह प्रभु स्थाने ॥१०२॥
लक्ष्मी-सरस्वती आदि जत योगमाया । अनन्त ब्रह्माण्ड मोहे जा सभार छाया ॥१०३॥
ताहारा पायेन मोह जार विद्यमाने । अतएव पाछे से थाकेन सर्व्व क्षणे ॥१०४॥
वेद कर्त्ता सब मोह पाय जार स्थाने । कोन चित्र दिग्विजयी मोह वा ताहाने ॥१०५॥
मनुष्ये ए सब कार्य्य असम्भव दड़ । तेञि बलि, तान ए सकल कर्म्म बड़ ॥१०६॥
मूले जत किछु कर्म्म करेन ईश्वरे । सकल निस्तार हेतु दुःखित जीवेरे ॥१०७॥
दिग्विजयी जदि पराभवे प्रवेशिला । शिष्य गण हासिबारे उद्यत हइला ॥१०८॥
सभारेइ प्रभु करिलेन निवारण । विप्र प्रति बलिलेन मधुर वचन ॥१०९॥
'आजि चल तुमि शुभ कर वासा-प्रति । कालि विचारिब सब तोमार संहति ॥११०॥

कठिन काम है ॥ ९४ ॥ देखें, कहिये तो, आपने यह किस अभिप्राय से प्रयोग किये हैं ? ॥ ९५ ॥ इतने बड़े दिग्विजयी श्रीसरस्वती-पुत्र को कुछ भी सिद्धान्त स्फुरण नहीं होने लगा, न जाने उसकी बुद्धि कहाँ चली गई ॥९६॥ वह विप्र सात-पाँच (अट-पट) जो बोल रहे थे ठीक प्रकार से उनका समझा नहीं जाता था, श्रीगौराङ्ग-सुन्दर भी उसके सभी वाक्यों में दोष दर्शा देते थे ॥९७॥ न जाने उसकी सब प्रतिभा कहाँ चली गई वह विप्र स्वयं अपनी बात भी समझ नहीं रहा था कि-मैं क्या बोल रहा हूँ ॥ ९८ ॥ तब प्रभु बोले कि-'इसे छोड़ो' और कुछ सुनाइये, उस पण्डित की अब पूर्ववत् पढ़ने की भी शक्ति जाती रही ॥ ९९ ॥ जिन प्रभु के सम्मुख वेद भी मोह को प्राप्त हो जाते हैं उनके सम्मुख उसको मोह हो जाना कौनसी विचित्र बात थी ॥ १०० ॥ स्वयं श्रीअनन्तदेव, ब्रह्माजी एवं शिवजी ( जिन सबकी दृष्टि से अनन्त भुवन सृजन, रक्षण एवं लय होते है ) ॥ १०१ ॥ वह भी जिनके सम्मुख मोहित हो जाते हैं फिर उस विप्र का प्रभु के सामने मोह को प्राप्त हो जाना कौनसी विचित्र बात थी ॥ १०२ ॥ श्रीलक्ष्मी, सरस्वती आदि जितनी योगमाया देवियाँ हैं जिनकी छाया से अनन्त ब्रह्माण्ड मोहित होते हैं ॥ १०३ ॥ वे भी जिन प्रभु के सम्मुख मोहित हो जाती है, इसीलिये वे सदा उनके पीछे रहती हैं ॥ १०४ ॥ जिनके सम्मुख साथ ही वेद-कर्त्ता ( ऋषिगण ) मोह को प्राप्त होते हैं उनके सामने दिग्विजयी का मोह को प्राप्त हो जाना कौनसी विचित्र बात है ? ॥१०५॥ यह सब कार्य मनुष्य के द्वारा होने बड़े असम्भव हैं इसीलिये हम कहते हैं कि-उनके यह सभी कर्म सर्वोपरि हैं॥१०६॥ ईश्वर जो कुछ करते हैं वह सब मूलतः दुःखित जीवों के निस्तार के लिये करते हैं ॥ १०७ ॥ जब दिग्विजयी की पराजय होती देखी तो शिष्य गण हँसी उड़ाने के लिये उद्यत हुए ॥१०८॥ प्रभु ने सबको निवारण किया पश्चात् उस विप्र से मधुर भाषा में बोले कि । १०९ 'अब आज आप अपने को जाँय, कल

तुमि ओ हइला श्रान्त अनेक पढ़िया । निशाओ अनेक जाय, शुनि थाक गिया ।।१११।।
एइमत प्रभुर कोमल व्यवसाय । जाहारे जिनेन सेहो दुःख नाहि पाय ।।११२।।
सेइ नवद्वीपे जत अध्यापक आछे । जिनिआ ओ सभारे तोपेन प्रभु पाछे ।।११३।।
'चल आजि घरे तुमि बसि पुँथि चाह । कालि जे जिज्ञागि, ताहा बलिबारे चाह' ।।११४।।
जिनिआ ओ कारो ना करेन तेज भङ्ग । सभेइ पायेन प्रीत हेन तान रङ्ग ।।११५।।
अत एव नवद्वीपे जतेक पण्डित । सभार प्रभुर प्रति मने बड़ प्रीत ।।११६।।
शिष्य गण सहित चलिला प्रभु घर । दिग्विजयी बड़ हैला लज्जित अन्तर ।।११७।।
दुःखित हैला विप्र चिन्ते मने मने । सरस्वती मोरे वर दिलेन आपने ।।११८।।
न्याय, सांख्य, पातञ्जल, मीमांसा दर्शन । वैशेषिक, वेदान्ते, निपुण जत जन ।।११९।।
हेन जन ना देखिल संसार भितरे । जिनिते कि दाय, मोर सने कक्षा करे ।।१२०।।
शिशु शास्त्र-व्याकरण पढ़ाये ब्राह्मण । से मोरे जिनिल हेन विधिर घटन ।।१२१।।
सरस्वती वरो 'त' अन्यथा देखि हय । एहो मोर चित्ते बड़ लागिल संशय ।।१२२।।
देवी स्थाने मोर वा जन्मिल कोन दोष । अतएव हैल मोर प्रतिभा सङ्कोच ।।१२३।।
अवश्य इहार आजि बुझिब कारण । एत बलि मन्त्र-जपे बसिला ब्राह्मण ।।१२४।।
मन्त्र जपि दुःखे विप्र शयन करिला । स्वप्ने सरस्वती विप्र-सन्मुखे आइला ।।१२५।।
कृपा दृष्ट्ये भाग्यवन्त-ब्राह्मणेर प्रति । कहिते लागिला अति गोप्य सरस्वती ।।१२६।।

---

आपके साथ फिर विचार होगा ।। ११० ।। आप भी बहुत वर्णन करने के कारण शान्त हो गये हैं और रात्रि भी बहुत बीत गई, इसलिये अब जाकर सोइये' ।। १११ ।। प्रभु का इसी प्रकार का कोमल व्यवहार है कि-जिसको जीतते हैं वह भी दुःख नहीं पाता था ।। ११२ ।। इसी नवद्वीप में जितने अध्यापक हैं प्रभु उन सबको जीतकर भी पश्चात् सबको तुष्ट करते थे ।। ११३ ।। 'आज आप घर जाकर एवं वहाँ बैठकर पुस्तक विचार करना; कल जो मैं आपसे पूछूँ उसको बतलाना' ।। ११४ ।। प्रभु जीत कर भी किसी का तेज भङ्ग नहीं करते आप ऐसा कौतुक करते हैं कि-सभी आपसे प्रीति करते हैं ।। ११५ ।। अतएव नवद्वीप में जितने पण्डित हैं, वे सब ही प्रभु के प्रति मन में बड़ी प्रीति रखते हैं ।। ११६ ।। शिष्य-गण को साथ लेकर प्रभु घर की ओर चले, इधर दिग्विजयी मन में बड़ा लज्जित हुआ ।। ।। ११७ ।। वह विप्र दुःखित होकर मन ही मन सोचने लगा कि-मुझे स्वयं श्रीसरस्वती जी ने वरदान दिया था ।। ११८ ।। एवं जो-जो जन न्याय, सांख्य, पातञ्जल, मीमांसा, वैशेषिक एवं वेदान्त दर्शन शास्त्रों में निपुण हैं ।। ११९ ।। उनमें से संसार में मैंने कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं देखा जो मुझे जीतने की तो क्या चले मेरे सम्मुख प्रतियोगिता में भी खड़ा नहीं हो सके।।१२०।। यह ब्राह्मण जो शिशु-शास्त्र व्याकरण पढ़ाता है, इसने मुझको जीत लिया,ऐसा विधि का विधान था।।१२१।। इस प्रकार से तो श्रीसरस्वती जी का वर भी झूँठा हुआ इससे भी मेरे चित्त में बड़ा संशय है ।। १२२ ।। अथवा देवी के प्रति मेरा कोई अपराध हो गया जिसके कारण मेरी प्रतिभा सङ्कुचित हो गई ।। १२३ ।।'आज इसका कारण अवश्य पूछुँगा' इतना कह कर वह विप्र श्रीसरस्वती-मन्त्र जप करने को बैठा ।। १२४ ।। मन्त्र-जप पूर्ण करके विप्र दुःखित होकर सो गया पश्चात् जी स्वप्न में विप्र के सामने आईं १२५

सरस्वती बोलेन 'शुनह विप्र-वर । वेद गोप्य कहि एइ तोमार गोचर ॥१२७॥
कारो स्थाने भाङ्ग जदि ए सकल कथा । तबे तुमि शीघ्र हैबा अल्पायु सर्व्वथा ॥१२८॥
जार ठाञि तोमार हइल पराजय । अनन्त ब्रह्माण्ड-नाथ तिंहो सुनिश्चय ॥१२९॥
आमि जार पाद-पद्मे निरन्तर दासी । सन्मुख हइते आपनारे लज्जा वासि ॥१३०॥
तथाहि-विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया । विमोहिता विकत्थन्ते ममाहमिति दुर्धियः [भा.२।५।१३
आमि से बलिये विप्र ! तोमार जिह्वाय । ताहान सन्मुखे शक्ति ना स्फुरे आमाय ॥१३१॥
आमार कि दाय, शेष देव भगवान । सहस्र वदने वेद जे करे व्याख्यान ॥१३२॥
अज भव आदि जारे उपासना करे । हेन शेष मोह माने जाहार गोचरे ॥१३३॥
पर ब्रह्म नित्य-शुद्ध अखण्ड अव्यय । परिपूर्ण हइ वैसे सभार हृदय ॥१३४॥
भक्ति-ज्ञान-विद्या-शुभ अशुभादि जत । दृश्यादृश्य तोमारे वा कहिवाङ कत ॥१३५॥
सकल प्रवर्त्ते हय शुन जाहा हैते । सेइ प्रभु विप्र रूपे देखिला साक्षाते ॥१३६॥
आब्रह्मादि जत देखो सुख दुःख पाय । सकल जानिह विप्र ! उहान आज्ञाय ॥१३७॥
मत्स्य कूर्म्म आदि जत शुन अवतार । सेइ प्रभु सर्व्व विप्र ! दुइ नाहि आर ॥१३८॥
उंहि से वराह रूपे क्षिति-स्थापयिता । उंहि से नृसिंह-रूपे प्रह्लाद रक्षिता ॥१३९॥
उंहि से वामन रूपे बलिर जीवन । जार पाद-नख हैते गङ्गार जनम ॥१४०॥

---

और भाग्यशाली ब्राह्मण के प्रति कृपा दृष्टि करके अति गोपनीय बात करने लगीं ॥ १२६ ॥ उन्होंने कहा कि-'हे द्विज-श्रेष्ठ ! सुनो, मैं तुम्हारे सामने यह वेद से गोप्य बात कहती हूँ ॥ १२७ ॥ यह सब बात यदि किसी के सामने तुम प्रकट करोगे तो निश्चय शीघ्र ही तुम अल्पायु हो जाओगे ॥ १२८ ॥ जिनके सामने तुम्हारी पराजय हुई है वह निश्चय ही अनन्त ब्रह्माण्डों के स्वामी हैं ॥ १२९ ॥ मैं जिनके चरण-कमलों की दासी हूँ एवं जिनके सम्मुख होते मुझे लज्जा आती है॥१३०॥अर्थ—'मेरे प्रभु मेरा कपट जानते हैं' ऐसा विचार कर, माया जिनकी दृष्टि-पथ पर स्थित होने में अति लज्जा करती है ( प्रसङ्ग में इतना ही प्रयोजन है ) मेरी भाँति के दुर्बुद्धि-गण उनकी उस माया के प्रभाव से मोहित होकर 'मैं' 'मेरा' इस प्रकार आत्म-श्लाघा करते हैं । ( मैं उन भगवान वासुदेव जी को नमस्कार एवं उनका ध्यान करता हूँ ) ॥ क ॥ हे विप्र ! तुम्हारी जिह्वा पर मैं बोलती तो हूँ, किन्तु उनके सामने मेरी शक्ति कुछ काम नहीं करती ॥ १३१ ॥, मेरी तो क्या चले श्रीशेषदेव भगवान् भी जोकि अपने सहस्र मुखों से वेद का वर्णन करते हैं ॥ १३२ ॥ एवं श्रीब्रह्मा जी व शिवजी जिनकी उपासना करते हैं ऐसे श्रीशेषदेव भगवान् भी जिनके सम्मुख मोह को प्राप्त हो जाते हैं, जो पर-ब्रह्म, नित्य-शुद्ध, अखण्ड, अव्यय एवं परिपूर्ण होकर सबके हृदय में विराजमान हैं ॥ १३३-१३४ ॥ भक्ति, ज्ञान, विद्या, शुभ, अशुभ, दृश्य, अदृश्य आदि वस्तुएँ, मैं कितनी तुम्हें गिनाऊँ ॥ १३५ ॥ यह सब जिनसे प्रवर्तित होती हैं उन्हीं प्रभु का तुमने विप्र रूप में साक्षात् दर्शन किया है ॥ १३६ ॥ ब्रह्मादि पर्यन्त जहाँ तक तुम देखते हो सब सुख-दुःख भोग रहे हैं, हे विप्र ! यह सब उनकी आज्ञा से ही हो रहा है ऐसा तुम जानो ॥ १३७ ॥ तुमने मत्स्य, कूर्म आदि जितने अवतार सुने हैं, विप्र ! सर्वत्र वही प्रभु हैं उनके सिवाय अन्य कोई नहीं है । १३८ ॥ वही प्रभु वराह रूप से पृथ्वी स्थापन करने वाले हैं वही श्रीनृसिंह रूप से श्री-

उहि से हइया अवतीर्ण अयोध्याय । बधिला रावण दुष्ट अशेष लीलाय ॥१४१॥
उहाने से वसुदेव-नन्द-पुत्र बलि । एवे विप्र-पुत्र बिद्या-रसे कुतूहली ॥१४२॥
वेदेओ कि जाने न उहान अवतार । जानाइले जानेन अन्यथा शक्ति कार ॥१४३॥
जत किछु मन्त्र तुमि जपिले आमार । दिग्विजयी-पद फल ना हय ताहार ॥१४४॥
मन्त्रेर जे फल ताहा एवे से पाइला । अनन्त ब्रह्माण्ड नाथ साक्षाते देखिला ॥१४५॥
चल शीघ्र विप्र तुमि उहान चरणे । देह गिया समर्पण करह उहाने । १४६॥
स्वप्न हेन ना मानिह ए सब बचन । मन्त्र वशे कहिलाङ वेद सङ्गोपन ॥१४७॥
एत बलि सरस्वती हैला अन्तर्धान । जागिलेन विप्रवर महा भाग्यवान् ॥१४८॥
जागियाइ मात्र विप्रवर सेइ क्षणे । चलिलेन अति उषा काले प्रभु स्थाने ॥१४९॥
प्रभुरे आसिया विप्र दण्डवत् हैला । प्रभु ओ विप्रेरे कोले करिया तुलिला ॥१५०॥
प्रभु बोले 'केने भाइ ए कि व्यवहार' । विप्र बोले 'कृपा दृष्टि जेहेन तोमार' ॥१५१॥
प्रभु बोले 'दिग्विजयी हइया आपने । तवे तुमि आमारे एमत कर केने ॥१५२॥
दिग्विजयी बोलेन शुनह विप्रराज ! । तोमा भजिलेइ सिद्ध हय सर्व्व काज ॥१५३॥
विप्र रूपे कलिजुगे तुमि नारायण । तोमारे चिनिते शक्ति धरे कोन जन ॥१५४॥
तखनेइ मोर चित्ते हइल संशय । तुमि जिज्ञासिले मोर वाक्य ना स्फुरय ॥१५५॥
तुमि जे अगर्व्व सर्व्व-ईश वेदे कहे । ताहा सत्य देखिलु अन्यथा कभू नहे ॥१५६॥

---

प्रह्लाद जी की रक्षा करने वाले हैं ॥ १३९ ॥ वही प्रभु श्रीवामन रूप से बलि राजा के जीवन हैं जिनके पद-नख से श्रीगङ्गा जी की उत्पत्ति है ॥ १४० ॥ उन्हीं प्रभु ने श्रीअयोध्या जी में अवतीर्ण होकर अपनी अशेष लीला द्वारा दुष्ट रावण का वध किया ॥ १४१ ॥ उन्हें वसुदेव एवं नन्द पुत्र कहते हैं वह अब विप्र-पुत्र रूप से विद्या-रस में क्रीड़ा करते हुए विद्यमान हैं ॥ १४२ ॥ क्या वेद भी उनके अवतार को जानते ? उनके जताने से ही जान सकते हैं नहीं तो किस में शक्ति है कि जाने ॥१४३॥ तुमने हमारा जो कुछ मन्त्र जप किया है उसका फल तुम्हारे लिये दिग्विजयी-पद प्राप्त होना नहीं है ॥ १४४ ॥ मन्त्र जप का फल तुम्हें अब प्राप्त हुआ कि अनन्त ब्रह्माण्डनाथ का साक्षात् दर्शन मिला ॥ १४५ ॥ हे विप्र ! तुम शीघ्र ही उनके चरणों में पहुँचो और अपना शरीर उन्हें समर्पण कर दो ॥ १४६ ॥ मेरे यह सब वचन स्वप्न की बातें मत मान लेना, मन्त्र-वश होकर मैंने तुमसे वेद-साङ्गोपन-तत्त्व प्रकट कर दिया है ॥ १४७ ॥ इतना कहकर श्रीसरस्वती जी अन्तर्धान हो गईं और महा भाग्यवान् विप्रवर जग पड़े ॥ १४८ ॥ विप्रवर जागते ही उसी क्षण अति ऊषा काल में ही प्रभु के पास चल दिये ॥ १४९ ॥ और आकर प्रभु को दण्डवत् प्रणाम किया, प्रभु ने भी विप्र को गोद भर कर उठा लिया ॥ १५० ॥ प्रभु बोले 'क्यों भाई ! यह क्या व्यवहार ?' विप्र बोला 'जैसी आपकी कृपा दृष्टि' ॥ १५१ ॥ प्रभु ने कहा 'तब आप दिग्विजयी होकर हमारे साथ ऐसा क्यों करते हैं ? ॥१५२॥ दिग्विजयी कहने लगा–हे विप्रराज ! सुनिये, आपके भजन से ही सर्व कार्य सिद्ध हो जाते हैं ॥ १५३ ॥ कलियुग में विप्र रूप से आप श्रीनारायण हो, आपके जानने की किस मनुष्य में सामर्थ है १५४ मेरे चित्त में उसी समय सशय [illegible] ता था जबकि आपके पूछने पर ऐसा वाक्य-स्फुरण नहीं हुआ था ॥१५५ आपको वेद जो

तीन वारे आमारे करिला पराभव । तथापि आमार तुमि राखिला गौरव ॥१५७॥
एहो कि ईश्वर शक्ति विने अन्ये हय । अतएव तुमि नारायण सुनिश्चय ॥१५८॥
गौड़ तिरहुत दिल्ली काशी आदि करि । गुजरात, विजया नगर-काञ्ची-पुरी ॥१५९॥
हैलङ्ग तैलङ्ग ओड़ देश आर कत । पण्डितेर समाज संसारे आछे जत ॥१६०॥
दूषिब आमार वाक्य से थाकुक दूरे । बुझितेइ कोन जन शक्ति नाहि धरे ॥१६१॥
हेन आमि तोमा स्थाने सिद्धान्त करिते । ना पारिल सर्व्व बुद्धि गेल कोन भिते ॥१६२॥
एहो कर्म्म तोमार आश्चर्य किछु नहे । सरस्वती पति तुमि सेइ देवी कहे ॥१६३॥
बड़ शुभ लग्ने आइलाङ नवद्वीपे । तोमा देखिलाङ डुबियाङ भव कूपे ॥१६४॥
अविद्या वासना वन्धे मोहित हइया । वेडाङ पामार तत्त्व आपना वञ्चिया ॥१६५॥
दैवात् भाग्ये पाइलुँ तोमार दरशन । एवे शुभ दृष्ट्ये मोरे करह मोचन ॥१६६॥
पर-उपकार-धर्म्म स्वभाव तोमार । तोमा वहि शरण्य-दयालु नाहि आर ॥१६७॥
हेन उपदेश मोरे कर महाशय । आर जेन दुर्व्वासना मोर चित्ते नय ॥१६८॥
एइ मत काकुर्व्वाद अनेक करिञा । स्तुति करे दिग्विजयी अति नम्र हैञा ॥१६९॥
शुनिञा विप्रेर काकु श्री गौरसुन्दर । हासिया ताहाने किछु कहिला उत्तर ॥१७०॥
'शुन विप्रवर ! तुमि महा भाग्यवान् । सरस्वती जाहार जिह्वाय अधिष्ठान ॥१७१॥
दिग्विजय करिवा विद्यार कार्य नहे । ईश्वरे भजिले से विद्याय सभे कहे ॥१७२॥

---

गर्व-शून्य एवं सर्वेश्वर कहते हैं यह मैंने ( स्वयं ) देख लिया, वह कभी असत्य नहीं है ॥ १५६ ॥ आपने तीन बार मुझको पराजय किया, तब भी आपने मेरे गौरव नष्ट नहीं होने दिया ॥ १५७ ॥ यह भी क्या ईश्वर-शक्ति बिना किसी और से हो सकता है ? इसलिये आप निश्चय ही नारायण हैं॥१५८॥ गौड़-देश, तिरहुत, दिल्ली आदि लेकर गुजरात, विजय नगर, काञ्ची-पुरी, हैलङ्ग, तैलङ्ग, उड़ीसा एवं अन्य कितने ही देश और संसार में जितने भी पण्डित-समाज हैं॥१५९-१६०॥मेरे वाक्यों में दोष निकालना तो दूर रहा, उनको समझने की भी शक्ति किसी में नहीं है ॥ १६१ ॥ ऐसा मैं आपके सम्मुख सिद्धान्त करते समय मेरी सब बुद्धि न जाने कहाँ चली गई ॥ १६२ ॥ आपका यह कार्य भी कोई आश्चर्यजनक नहीं है क्योंकि 'आप सरस्वती-पति हैं' यह स्वयं उन्हीं देवी ने कहा ॥ १६३ ॥ मैं नवद्वीप में बड़ी शुभ लग्न में आया हूँ जो आपके दर्शन पाये, प्रभो ! मैं संसार-कूप में डूब रहा हूँ ॥ १६४ ॥ अविद्या जनित वासनाओं के बन्धन में मोहित होकर मैं तत्त्व को भूल कर अपने को ठगता हुआ घूमता फिरता हूँ ॥ १६५ ॥ अकस्मात् ही बड़े भाग्य से आपके दर्शन पाये, अब आप अपनी शुभ दृष्टि द्वारा मेरा उद्धार कीजिये ॥ १६६ ॥ परोपकार करना आपका स्वभाव है,आपके सिवाय शरणागत पर और कोई दयालु नहीं है ॥ १६७ ॥ हे महाशय ! मुझको आप ऐसा उपदेश कीजिये जिससे मेरे चित्त में अब और कोई दुर्वासना न उठे ॥ १६८ ॥ इस प्रकार दिग्विजयी अनेक अनुनय विनय करके अति नम्र होकर स्तुति करने लगा ॥ १६९ ॥ विप्र की चाटुता को सुन कर श्रीगौरसुन्दर हँसकर उससे कुछ बोले १७० वह कहने लगे कि—हे विप्रवर सुनो, तुम महा [illegible] हो, जो तुम्हारी जिह्वा पर [illegible] का अधिष्ठान है १७१ 'दिग्विजय करना विद्या का कार्य नहीं है, विद्या वही है जिसके द्वारा

मनदिया बुझ देह छाड़िला चलिले । धन वा पौरुष सङ्गे केहो नाहि चले ॥१७३॥
एतेके महान्त सब सर्व्व परिहरि । करेन ईश्वर सेवा दृढ़ चित्त करि ॥१७४॥
एतेके छाडिया विप्र सकल जञ्जाल । श्रीकृष्ण-चरण गिया भजह सकाल ॥१७५॥
जावत मरण नाहि उपसन्न हय । तावत सेवह कृष्ण करिया निश्चय ॥१७६॥
सेइ से विद्यार फल जानिह निश्चय । कृष्ण पाद पद्मे जदि चित्त वृत्ति हय ॥१७७॥
महा उपदेश एइ कहिल तोमारे । सबे विष्णु-भक्ति सत्य अनन्त-संसारे ॥१७८॥
एत बलि महाप्रभु सन्तोषित हैञा । आलिङ्गन करिलेन विप्रेरे चापिञा ॥१७६॥
पाइया वैकुण्ठ नायकेर आलिङ्गन । विप्रेर हइल सर्व्व बन्ध विमोचन ॥१८०॥
प्रभु बोले 'विप्र ! सब दम्भ परि हरि । भज गिया कृष्ण सर्व्व भूते दया करि ॥१८१॥
जे किछु तोमारे कहिलेन सरस्वती । से सकल किछु ना कहिवा काहा प्रति ॥१८२॥
वेद गुह्य कहिले हय परमायु क्षय । परलोके तार मन्द जानिह निश्चय ॥१८३॥
पाइया प्रभुर आज्ञा सेइ विप्रवर । प्रभुरे करिञा दण्ड प्रणाम विस्तर ॥१८४॥
पुनः पुन पाद पद्म करिञा बन्दन । महा कृत कृत्य हय चलिला ब्राह्मण ॥१८५॥
प्रभुर आज्ञाय भक्ति विरक्ति विज्ञान । सेइ क्षणे विप्र देहे हइला अधिष्ठान ॥१८६॥
कोथा गेल ब्राह्मणेर दिग्विजयी दम्भ । तृण हैते अधिक हइला विप्र नम्र ॥१८७॥
हस्ती-घोड़ा-दोला-धन जतेक सम्भार । पाँच सात करिया दिलेन सभा कार ॥१८८॥

ईश्वर का भजन हो' ऐसा सभी लोग कहते हैं ॥ १७२ ॥ मन देकर [ एकाग्र करके ] समझो, जब जीव देह को छोड़कर जाता है, तब उसके साथ धन व पौरुष कुछ भी नहीं चलता ॥१७३॥ इसीलिये सब महत् पुरुष सर्वस्व त्याग कर दृढ़ चित्त से ईश्वर सेवा [ भजन ] करते हैं ॥१७४॥ अतएव हे विप्र ! तुम भी सब जञ्जाल को छोड़कर शीघ्र ही श्रीकृष्ण-चरण का भजन-सेवा प्रारम्भ कर दो ॥ १७५ ॥ जब तक तुम्हारे निकट मृत्यु नहीं आवे तब तक निश्चित रूप से श्रीकृष्ण भजन करो॥१७६॥तुम निश्चय पूर्वक जानना कि विद्या का फल वही है जिससे श्रीकृष्ण-चरण-कमलों में चित्तवृत्ति हो ॥१७७॥ मैंने यह महा उपदेश तुमसे कहा । इस अनन्त संसार में केवल श्रीविष्णु-भक्ति ही सत्य है ॥१७८॥ इतना कहकर श्रीमहाप्रभु ने प्रसन्न होकर विप्र को छाती से लगाकर आलिङ्गन किया ॥ १७६ ॥ श्रीवैकुण्ठनाथ का आलिङ्गन पाकर विप्र सर्वबन्ध विमोचन हो गये (मुक्त होगये) ॥१८०॥ प्रभु फिर बोले 'हे विप्र ! सब दम्भ परित्याग करके, सब प्राणियों पर दया भाव रखते हुए जाकर श्रीकृष्ण का भजन करो ॥ १८१ ॥ सरस्वती ने जो कुछ तुमसे कहा है वह किसी से कुछ भी मत कहना ॥ १८२ ॥ वेद-गुह्य वस्तु कहने से परमायु क्षय होती है तुम निश्चय मानो, परलोक में भी उसका बुरा होता है ॥१८३॥ वह विप्र प्रभु की इस प्रकार की आज्ञा पाकर प्रभु को अनेक दण्डवत् प्रणाम करके ॥१८४॥ एवं बारम्बार प्रभु के चरण-कमलों की बन्दना करके महा कृतकृत्य होकर वहाँ से चल दिया ॥ १८५ ॥ प्रभु की आज्ञा से उसी क्षण उस विप्र के शरीर में भक्ति, विरक्ति एवं विज्ञान अधिष्ठित हो गये ॥ १८६ ॥ अब उस विप्र का दिग्विजयी होने का दम्भ न मालूम कहाँ चला गया अब तो वह विप्र तृण से भी अधिक नम्र हो गया १८७ हाथी, घोड़ा, पालकी, धन एवं जो कुछ सामान था उसने सब को बाँट दिया ( वितर

चलि लेन दिग्विजयी हइञा अमङ्ग । हेन मत श्रीगौर सुन्दरेर रङ्ग ॥१८९॥
ताहान कृपार एइ स्वाभाविक धर्म्म । राज्य पद छाड़िकरे भिक्षुकेर कर्म्म ॥१९०॥
कलि जुगे तार साक्षी श्रीदवीर खास । राज्य-सुख छाड़ि जार अरण्ये विलास ॥१९१॥
जे विभव निमित्त जगते काम्य करे । पाइया ओ कृष्णदासे ताहा परिहरे ॥१९२॥
तावत् राज्यादि पद सुख करि माने । भक्ति-सुख महिमा जावत् नाहि जाने ॥१९३॥
राज्यादि सुखेर कथा से थाकुक दूरे । मोक्ष सुख अल्प माने कृष्ण अनुचरे ॥१९४॥
ईश्वरेर शुभ दृष्टि विना किछु नहे । अतएव ईश्वर-भजन वेदे कहे ॥१९५॥
हेन मते दिग्विजयी पाइला मोचन । हेन गौर सुन्दरेर अद्भुत कथन ॥१९६॥
दिग्विजयी जिनिलेन श्रीगौर सुन्दरे । शुनि लेन इहा सब नदिया नगरे ॥१९७॥
सकल लोकेर हैल महाश्चर्य ज्ञान । निमाञि पण्डित एत बड़ विद्यावान् ॥१९८॥
दिग्विजयी हारिया चलिला जार ठाञि । एत बड़ पण्डित ना जानि एइ ठाञि ॥१९९॥
सार्थक करेन गर्व्व निमाञि पण्डित । एबे से ताहान विद्या हइल विदित ॥२००॥
केह बोले ए ब्राह्मण यदि न्याय पड़े । भट्टाचार्य हय तबे कखन ना नड़े ॥२०१॥
केह केहो बोले भाइ ! मिलि सर्व्व जने । ❋'वादि-सिंह' बलिया पदवी दिब ताने ॥२०२॥
हेन से ताँहार अति मायार बड़ाञि । एत देखियाओ जानि बारे शक्ति नाञि ॥२०३॥
एइ मत सर्व्व नवद्वीपे सर्व्व जने । प्रभुर सत्कीर्त्ति सभे घोषे सर्व्व क्षणे ॥२०४॥

---

विनर कर दिया ) ॥ १८८ ॥ दिग्विजयी एकाकी प्रसन्न होकर चल दिया, ऐसे श्रीगौरसुन्दर का [ रङ्ग ] खेल, क्रीड़ा बन जाता है ॥ १८९ ॥ आपकी कृपा का यही स्वाभाविक धर्म है कि–[ उनका कृपापात्र ] राज-पद छोड़कर भिक्षुक बन जाता है ॥ १९० ॥ इसके साक्षी कलियुग में श्रीदवीर खास [ श्रीरूप गोस्वामी ] हैं, राज्य सुख को छोड़कर जिनका अरण्य में विलास होता है ॥१९१॥ जिस वैभव के लिये संसार इच्छा करता है कृष्ण के दास उसको पाकर भी छोड़ देते हैं ॥ १९२ ॥ जीव राज्यादि पद को तभी तक सुख रूप मानता है, जब तक कि वह भक्ति-सुख की महिमा से अवगत नहीं होता ॥ १९३ ॥ राज्यादि सुख की बात भी अलग रहने दो कृष्ण का दास मोक्ष-सुख को भी अल्प समझता है ॥ १९४ ॥ ईश्वर की शुभ दृष्टि के बिना कुछ नहीं होता है इसीलिये वेद में ईश्वर-भजन करने के लिये कहा गया है ॥ १९५ ॥ इस प्रकार दिग्विजयी ने बन्ध-मोचन पाया, ऐसी श्रीगौरसुन्दर की अद्भुत कथा है ॥ १९६ ॥ 'श्रीगौरसुन्दर ने दिग्विजयी को जीत लिया है' यह बात श्रीनवद्वीप-नगर में सबने सुनी ॥ १९७ ॥ सुन कर सब लोगों को महा आश्चर्य मालूम होने लगा है कि–निमाञि पण्डित इतने बड़े विद्यावान् हैं॥१९८॥ जिनसे कि दिग्विजयी हार कर चला गया, हम नहीं जानते थे कि इस जगह इतना बड़ा पण्डित है ॥ १९९ ॥ निमाञि पण्डित ने गर्व सार्थक कर दिया उसकी विद्या अब विदित हुई है ॥२००॥ कोई कहता कि–यह विप्र यदि न्याय पढ़े तो बड़ा भारी 'भट्टाचार्य' हो जाय तब तो कभी भी न डिगे ॥ २०१ ॥ कोई-कोई कहते कि–भाई ! चलो सब मिलकर इसको 'वादी-सिंह' नाम की पदवी दें ॥ २०२ ॥ उनकी माया की बड़ाई इतनी अधिक है कि–इतना देखने पर भी आपको

❋ 'प्रतिवाद में सिंह सदृश विजय युक्त' ।

नवद्वीप वासीर चरणे नमस्कार । ए सकल लीला देखिबारे शक्ति जाँर ॥२०५॥
जे शुनये गौराङ्गेर दिग्विजयी जय । कोथा ओ ताहार पराभव नाहि हय ॥२०६॥
विद्या रस गौराङ्गेर अति मनोहर । इहा जेइ शुने हय तार अनुचर ॥२०७॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चाँद जान । बृन्दावन दास तछु पद जुगे गान ॥२०८॥

इति श्रीचैतन्यभागवते आदिखण्डे दिग्विजयिविमोचनं नाम
नवमोऽध्यायः ॥९॥

## दशमोऽध्यायः

जय जय महाप्रभु श्री गौरसुन्दर । जय नित्यानन्द-प्रिय नित्य-कलेवर ॥१॥
जय जय श्री प्रद्युम्न मिश्रेर जीवन । जय श्री परमानन्द पुरीर प्राणधन ॥२॥
जय जय सर्व्व वैष्णवेर धन प्राण । कृपा दृष्ट्ये कर प्रभु सर्व्व जीवे त्राण ॥३॥
आदि खण्ड कथा भाइ शुन एकमने । विप्ररूपे कृष्ण विहरिलेन जेमने ॥४॥

श्रीराग—देखह कृष्णेर ठाकुराली । कलि जीव उद्धारिते आपने भिखारी [ क ]

हेन मते वैकुण्ठ नायक सर्व्व क्षण । विद्या रसे विहरेन लइ शिष्य-गण ॥५॥
सर्व्व नवद्वीपे प्रति नगरे नगरे । शिष्य गण सङ्गे विद्या रसे क्रीड़ा करे ॥६॥
सर्व्व नवद्वीपे सर्व्व लोके हैल ध्वनि । 'निमाजि पण्डित अध्यापक शिरोमणि ॥७॥
बड़ बड़ विषयी सकल दोला हैते । नाम्बिया करेन नमस्कार बहुमते ॥८॥

---

जानने की शक्ति किसी में नहीं ॥ २०३ ॥ इसी प्रकार से सर्व नवद्वीप में सर्व जन सर्व क्षण प्रभु की सत्कीर्त्ति घोषण कर रहे हैं॥२०४॥श्रीनवद्वीप वासियों के चरणोंमें मेरा नमस्कार है जिनमें यह समस्त लीला देखने की शक्ति है ।जो श्रीगौराङ्ग देव की 'दिग्विजयी-जय' लीला को सुनेंगे उनकी कहीं भी पराजय नहीं होगी॥२०५॥ श्रीगौराङ्ग देव की विद्या-रस-क्रीड़ा अत्यन्त मनोहर है जो कोई इसको सुनेगा वही उसका अनुचर हो जायगा ॥ २०६ ॥श्रीकृष्णचैतन्य एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र को जानकर श्रीवृन्दावनदास दोनों के श्रीचरणों में कुछ लीला गान करते हैं ॥ २०७ ॥

हे महाप्रभु श्रीगौरसुन्दर ! आपकी जय हो जय हो, श्रीनित्यानन्दचन्द्र के प्रिय एवं नित्य कलेवर ! आपकी जय हो ॥ १ ॥ श्रीप्रद्युम्न मिश्र के जीवन ! आपकी जय हो, जय हो, श्रीपरमानन्दपुरी के प्राण धन ! आपकी जय हो ॥ २ ॥ सर्व वैष्णवों जनों के प्राण-धन आपकी जय हो जय हो, हे प्रभु ! आप अपनी कृपा दृष्टि द्वारा सब जीवों का उद्धार कीजिये ॥३॥ हे भाइयो ! आदिखण्ड की कथा जिसमें कि श्रीकृष्ण ने विप्र रूप से जिस प्रकार विहार किया है, एकाग्र होकर सुनिये ॥ ४॥ श्रीकृष्ण की प्रेम की ठकुराई तो देखिये कि कलि के जीवों के उद्धार के लिये आप भिखारी बने हैं ( क ) इस प्रकार श्रीवैकुण्ठ-नायक सदैव शिष्यगण साथ लेकर विद्या-रस में विहार करते थे ॥ ५ ॥ आप सर्व नवद्वीप के प्रत्येक मुहल्ले में शिष्य-गण के साथ विद्या-रस में क्रीड़ा करते थे ॥ ६ ॥ सम्पूर्ण नवद्वीप में सब लोगों के मुख से यह बात सुनने में आती थी कि-'निमाञि पण्डित अध्यापक शिरोमणि हैं' ७ बड़े-बड़े सब ही संसारी पुरुष पालकी से उतर कर

प्रभु देखि मात्र जन्मे सभार साध्वस । नवद्वीपे हेन नाहि जे ना हये वश ॥९॥
नवद्वीपे जारा जत धर्म्म कर्म्म करे । भोज्य वस्त्र अवश्य पाठाये प्रभु-घरे ॥१०॥
प्रभु से परम व्ययी ईश्वर स्वभाव । दुःखितेरे निरवधि देन पुरस्कार ॥११॥
दुःखित देखिले प्रभु बड़ दया करि । अन्न वस्त्र कपर्द क देन गौर हरि ॥१२॥
निरवधि अतिथि आइसे प्रभुघरे । जार जेन जोग्य प्रभु देन सभाकारे ॥१३॥
कोन दिन संन्यासी आइसे दश बीस । सभा निमन्त्रेन प्रभु हइञा हरिष ॥१४॥
सेइ क्षणे कहि पाठायेन जननीरे । कुड़ि संन्यासीर भिक्षा आट करिबारे ॥१५॥
घरे किछु नाहि आइ चिन्ते मने मने । कुड़ि संन्यासीर भिक्षा हइब केमने ॥१६॥
चिन्तितेइ हेन नाहि जानि कोन जने । सकल सम्भार आनि देइ सेइ क्षणे ॥१७॥
तबे लक्ष्मी देवी गिया परम सन्तोषे । रान्धेन विशेष करि प्रभुर आदेशे ॥१८॥
संन्यासी गणेरे प्रभु आपने वसिञा । तुष्ट करि पाठायेन भिक्षा कराइञा ॥१९॥
एइ मत जतेक अतिथि आसि हय । सभारेइ जिज्ञासा करेन दयामय ॥२०॥
गृहस्थेर सदा प्रभु शिखायेन धर्म्म । अतिथिर सेवा गृहस्थेर मूल कर्म्म ॥२१॥
गृहस्थ हइञा जदि अतिथि ना करे । पशु पक्षी हैते अधम बलि तारे ॥२२॥
जार वा ना थाके किछु पूर्व्वादिष्ट दोषे । सेह तृण जल भूमि दिबेक सन्तोषे ॥२३॥

तथाहि [ मनु संहितायाम ३।१०१ ]

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता । एतान्यपि सतां गेहे नो छिद्यन्ते कदाचन ॥ [ख]

---

आपको अनेक प्रकार से नमस्कार करते थे ॥ ८ ॥ प्रभु के देखते ही मात्र सब को डर पैदा हो जाता था; श्री-नवद्वीप में ऐसा कोई नर-नारी नहीं था जो आपके वश में न हुआ हो ॥ ९ ॥ श्रीनवद्वीप में लोग जो कुछ धर्म्म, कर्म करते थे वे उसमें से भोज्य वस्तुएँ एवं वस्त्र प्रभु के घर अवश्य भेजते थे ॥ १० ॥ प्रभु भी ईश्वर-स्वभाव-वश बड़े व्ययी थे, जो निरन्तर दीन दुखियों को पुरस्कार देते रहते थे ॥११॥ प्रभु श्रीगौर हरि दुखियों को देखकर बड़ी दया करते थे उनको अन्न, वस्त्र एवं कौड़ी-पैसा देते रहते थे ॥ १२ ॥ प्रभु के घर पर निरन्तर अतिथि आते रहते थे, उनके योग्य जो वस्तु होती प्रभु सबको देते थे ॥ १३ ॥ जब किसी दिन दस, बीस संन्यासी आ जाते तो प्रभु प्रसन्नता पूर्वक उन सबका निमन्त्रण करते थे ॥ १४ ॥ आप उसी समय माताजी को बीस संन्यासियों के लिये शीघ्र भोजन तैयार करने के लिये कहला भेजते ॥ १५ ॥ माता जी मन ही मन में विचार करतीं कि—घर में तो कुछ है नहीं, बीस संन्यासियों के लिये रसोई किस प्रकार होगी ? ॥ १६ ॥ इस प्रकार चिन्ता करते ही न जाने कौन कैसा मनुष्य उसी समय सब सामिग्री लाकर दे जाता था ॥ १७ ॥ तब श्रीलक्ष्मी देवी जाकर परम प्रसन्न होकर प्रभु के आदेश से विशेष रूप से भोजन तैयार करती थीं ॥१८॥ प्रभु स्वयं बैठकर संन्यासियों को भोजन कराकर सन्तुष्ट करके भेजते थे ॥ १९ ॥ इस प्रकार जितने भी अतिथि आ जाते दयामय प्रभु सबको पूछते थे ॥ २० ॥ महाप्रभु ने यह गृहस्थ-धर्म सिखलाया कि—'गृहस्थों का मूल कर्म अतिथि सेवा है' ॥ २१ ॥ गृहस्थी होकर यदि कोई पुरुष अतिथि [illegible] नहीं करता है तो उसको पशु पक्षी से भी अधम कहना चाहिए ॥ २२ ॥ पूर्व भाग्य-दोष से जिसके यहाँ अगर कुछ न हो वह भी प्रसन्नता

सत्य वाक्य कहिवेक करि परिहार । तथापि अतिथि शून्य ना हय ताहार ॥२४॥
अकैतवे चित्त-सुखे जार जेन शक्ति । ताहा करिलेइ बलि अतिथिर भक्ति ॥२५॥
अतएव अतिथिरे आपने ईश्वरे । जिज्ञासा करेन अति परम सादरे ॥२६॥
सेइ सब भिक्षुक परम भाग्यवान् । लक्ष्मी नारायणे जारे करे अन्न दान ॥२७॥
जार अन्ने ब्रह्मादिर आशा अनुक्षण । हेन से अद्भुत ताहा खाय जे ते जन ॥२८॥
केह केह इथि मध्ये कहे अन्य-कथा । से अन्नेर जोग्य अन्य ना हय सर्व्वथा ॥२९॥
ब्रह्मा-शिव-शुक-व्यास-नारदादि करि । सुर सिद्ध आदि जत स्वच्छन्द विहारी ॥३०॥
लक्ष्मी नारायण अवतीर्ण नवद्वीपे । जानि सभे आइसेन भिक्षुकेर रूपे ॥३१॥
अन्यथा से स्थाने जाइवार शक्ति कार । ब्रह्मा आदि बिने किसे अन्न पाय आर ॥३२॥
केह बले दुःखित तारिते अवतार । सर्व्व मते दुःखितेर करेन निस्तार ॥३३॥
ब्रह्मादि देवता तार अङ्ग प्रति अङ्ग । सर्व्वदा ताँहारा ईश्वरेर नित्य सङ्ग ॥३४॥
तथापि प्रतिज्ञा तान एइ अवतारे । ब्रह्मादि दुर्ल्लभो दिव सकल जीवेरे ॥३५॥
अतएव दुःखितेरे ईश्वर आपने । निज गृहे अन्न देन उद्धार कारणे' ॥३६॥
एकेश्वर लक्ष्मी देवी करेन रन्धन । तथापिह परम सन्तोष युक्त मन ॥३७॥
लक्ष्मीर चरित्र देखि शची भाग्यवती । दण्डे दण्डे आनन्द विशेष बाढ़े अति ॥३८॥

---

पूर्वक आसन, भूमि एवं जल दे ॥ २३ ॥ जैसा कि मनुसंहिता में—[ दरिद्रता के कारण अन्न-दान में असमर्थ होने पर अतिथि के लिये ] शयन व बैठने के लिये तृणादि का आसन, भूमि व पीने को जल एवं सत्य वचन इन चार वस्तुओं का सज्जनों के घर में कभी अभाव नहीं होता है [ ख ] विनय पूर्वक सत्य वाक्य कहे तो अतिथि उससे निराश नहीं होता ॥ २४ ॥ निष्कपट भाव से एवं चित्त की प्रसन्नता से जिसकी जैसी शक्ति हो उसके अनुसार करने को अतिथि-सेवा कहते है ॥२५॥ अतएव स्वयं ईश्वर अति आदर पूर्वक अथितियों को पूछते थे ॥ २६ ॥ वह सब भिक्षुक परम भाग्यवान् हैं, जिनको श्रीलक्ष्मीनारायण अन्न दान करते हैं॥२७॥ जिसके अन्न के लिये ब्रह्मादि भी सर्वदा आशा रखते हैं, तो इसमें आश्चर्य है कि उसे अति साधारण मनुष्य खा रहे हैं ॥ २८ ॥ कोई-कोई इसके बीच में एक अन्य बात उठाते हैं कि—'उस अन्न के योग्य अन्य मनुष्य कदापि नहीं हो सकते ॥ २९ ॥ ब्रह्मा,शिव, शुक-व्यास एवं नारद आदि से लेकर देवता व सिद्ध पुरुष आदि तक जितने स्वच्छन्द विचरने वाले हैं ॥३०॥ वह सब नवद्वीप में श्रीलक्ष्मी नारायण को अवतीर्ण हुआ जान कर भिक्षुकों के रूप में आते हैं ॥ ३१ ॥ नहीं तो वहाँ जाने की किसकी शक्ति है । ब्रह्मा आदि के विना अन्य पुरुष किस प्रकार अन्न पा सकेगा ॥ ३२ ॥ कोई-कोई कहते हैं कि—'यह अवतार दुःखियों के निस्तार के लिये हुआ है इसीलिये प्रभु सब प्रकार के दुःखियों का निस्तार करते हैं ॥ ३३ ॥ ब्रह्मा आदि देवता तो उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग हैं वह तो सर्वदा ईश्वर के नित्य-सङ्गी हैं ॥ ३४ ॥ तथापि आपकी इस अवतार में यह प्रतिज्ञा है कि—'मैं ब्रह्मादि को भी दुर्लभ वस्तु प्राणिमात्र को प्रदान करूँगा' ॥ ३५ ॥ अतएव दुःखियों के उद्धार हेतु ईश्वर स्वयं अपने घर पर उन्हें अन्न भोजन प्रदान करते थे ॥ ३६ ॥ श्रीलक्ष्मी देवी अकेली ही रसोई करती हैं तब भी मन परम सन्तोष युक्त रहता है ॥ ३७ ॥ श्रीलक्ष्मी देवी के चरित्र को देखकर भाग्यवती श्रीशची देवी

ऊषः काल हैते लक्ष्मी जत गृह कर्म्म । अपने करेन सब सेइ तान धर्म्म ॥३९॥
देव गृहे करेन से स्वस्तिक मण्डली । शङ्ख चक्र लिखेन हइआ कुतूहली ॥४०॥
गन्ध पुष्प धूप दीप सुवासित जल । ईश्वर पूजार सज्ज करेन सकल ॥४१॥
निरवधि तुलसीर करेन सेवन । ततोधिक शचीर सेवाय तान मन ॥४२॥
लक्ष्मीर चरित्र देखि श्री गौरसुन्दर । मुखे किछु ना बोलेन सन्तोष अन्तर ॥४३॥
कोन दिन लइ लक्ष्मी प्रभुर चरण । वसिया थाकेन पदमूले अनुक्षण ॥४४
अद्भुत देखेन शची पुत्र पद तले । महा ज्योतिर्म्मय अग्नि पुञ्ज शिखा ज्वले ॥४५॥
कोन दिन महापद्म गन्ध शची आइ । घरे द्वारे सर्व्वत्र पायेन अन्त नाहि ॥४६॥
हेन मते लक्ष्मी नारायण नवद्वीपे । केह नाहि चिनेन आछेन गूढ़ रूपे ॥४७॥
तबे कथो दिने इच्छामय भगवान । वङ्ग देश देखिते हइल इच्छा तान ॥४८॥
तबे प्रभु जननीरे वलिलेन आनि । कथो दिन प्रवास करिव माता आमि ॥४९॥
लक्ष्मी प्रति वलिलेन श्री गौरसुन्दर । आइर सेवन करिवारे निरन्तर ॥५०॥
तबे प्रभु कथो आप्त शिष्यवर्ग लय्या । चलिलेन वङ्ग देशे हरषित हैया ॥५१॥
जे जे जन देखे प्रभु चलिया आसिते । सेइ आर दृष्टि नाहि पारे सम्वारिते ॥५२॥
स्त्री लोके देखिया वले 'हेन पुत्र जार । धन्य तार जन्म, तार पाये नमस्कार ॥५३॥
जेवा भाग्यवती हेन पाइलेन पति । स्त्री जन्म सार्थक करिलेन सेइ सती' ॥५४॥

---

का पल-पल में अति विशेष आनन्द बढ़ता था ॥३८॥ श्रीलक्ष्मी देवी ऊषा काल से सर्व-गृह-कार्य स्वयं करती थी यही उसका धर्म था ॥ ३९ ॥ वह श्रीविष्णु मन्दिर में स्वस्तिक मण्डली रचना करती थी एवं आनन्द-युक्त होकर शङ्ख, चक्र आदि अङ्कित करती थी ॥ ४० ॥ और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, सुवासित जल अर्थात् ईश्वर-पूजा की समग्र सामिग्री प्रस्तुत कर देती थी ॥ ४१ ॥ निरन्तर तुलसी-सेवा करती रहती थी, उससे भी अधिक श्रीशची माता की सेवा में उसका मन था ॥ ४२ ॥ श्रीलक्ष्मी देवी के चरित्र को देखकर श्रीगौरसुन्दर मुख से कुछ कहते नहीं थे, परन्तु मन में बड़े प्रसन्न थे ॥ ४३ ॥ किसी दिन लक्ष्मीजी बहुत देर तक लगातार प्रभु के श्रीचरणों को निज-गोदी में धारण करके प्रभु के पद-मूल-प्रदेश में बैठी रहती थी ॥ ४४ ॥ किसी दिन श्रीशची माता पुत्र के पद तल प्रदेश में एक आश्चर्यजनक दृश्य देखती थी कि—वहाँ महा ज्योतिर्मय अग्नि-पुञ्ज की शिखा ज्वाज्वल्यमान है ॥ ४५ ॥ किसी दिन श्रीशची माता घर द्वार सर्वत्र निरन्तर महा-पद्म-गन्ध प्राप्त करती थी ॥४६॥ श्रीनवद्वीप में श्रीलक्ष्मीनारायण गुप्त रूप से विराजमान थे, जिन्हें पहिचानता न था ॥ ४७ ॥ कुछ दिन पश्चात् इच्छामय भगवान् की वङ्गदेश देखने की इच्छा हुई ॥ ४८ ॥ तब प्रभु माताजी को बुलाकर कहने लगे कि—माता जी ! मैं कुछ दिन के लिये प्रवास ( परदेश-गमन ) करूँगा ॥४९॥ पश्चात् श्रीगौरसुन्दर ने श्रीलक्ष्मी देवी को 'माताजी की सेवा निरन्तर करने के लिये' कहते ॥ ५० ॥ तब प्रभु कुछ आत्मीय शिष्य वर्ग लेकर प्रसन्न होकर वङ्गदेश को प्रयाण किया ॥ ५१ ॥ जो भी मनुष्य प्रभु को आते हुए देखते थे फिर उनका अपनी दृष्टि पर काबू नहीं रहता था ॥ ५२ ॥ स्त्रीगण प्रभु को देखकर कहती थीं कि— 'जिनके इस जैसे पुत्र हैं उनका जन्म धन्य है, उनके चरणों में हमारा [illegible] है' ५३ 'एवं जिस भाग्य-

एइ मत पथे जत देखे स्त्री पुरुषे । पुनः पुन सभे व्याख्या करेन सन्तोषे ॥५५॥
वेदेओ करेन काम्य जे प्रभु देखिते । जे ते जने हेन प्रभु देखे कृपा हैते ॥५६॥
हेन मते श्री गौरसुन्दर धीरे धीरे । कथो दिने आइलेन पद्मावती तीरे ॥५७॥
पद्मावती नदीर तरङ्ग शोभा अति । उत्तम पुलीन-वन जल बहु तथि ॥५८॥
देखि पद्मावती प्रभु महा कुतूहले । गण सह स्नान करिलेन तान जले ॥५९।
भाग्यवती पद्मावती सेइदिन हैते । जोग्य हइला सर्व्व लोक पवित्र करिते ॥६०॥
पद्मावती-नदी बड़ देखिते सुन्दर । तरङ्ग पुलिन स्रोत अति मनोहर ॥६१॥
पद्मावती देखि प्रभु परम हरिषे । सेइ स्थाने रहिलेन तान भाग्य वशे ॥६२॥
जेन क्रीड़ा करिलेन जाह्नवीर जले । शिष्य गण सहिते परम कुतूहले ॥६३॥
सेइ भाग्य एवे पाइलेन पद्मावती । प्रति दिन प्रभु जल क्रीड़ा करे तथि ॥६४॥
बङ्ग देशे महाप्रभु हइला प्रवेश । अद्यापिह सेइ भाग्ये धन्य बङ्ग देश ॥६५॥
पद्मावती तीरे रहिलेन गौर चन्द्र । शुनि सर्व्व लोक बड़ हइल आनन्द ॥६६॥
निमाञि पण्डित अध्यापक शिरो मणि । आसिया आछेन सर्व्व दिके हैल ध्वनि ॥६७॥
भाग्यवन्त जत आछे ब्राह्मण सज्जन । उपायन हस्ते आइलेन सेइ क्षण ॥६८॥
सभे आसि प्रभुरे करिया नमस्कार । वलिते लागिला अति करि परिहार ॥६९॥
'आमा सभाकार महा-भाग्योदय हैते । तोमार विजय आसि हैल ए-देशेते ॥७०॥

---

वती ने इन्हें पति रूप से प्राप्त किया है उस सती ने अपने स्त्री जन्म को सार्थक कर लिया' ॥५४॥ इसी प्रकार से मार्ग में जितने स्त्री-पुरुष प्रभु को देखते थे सभी प्रसन्नता पूर्वक बारम्बार उनके गुण बखान करते थे ॥ ५५ ॥ वेद भी जिन प्रभु के देखने की कामना करते हैं उन्हीं प्रभु को उनकी कृपा से अति साधारण मनुष्य भी देख रहे थे ॥ ५६ ॥ इस प्रकार श्रीगौर सुन्दर धीरे-धीरे कुछ दिन में पद्मावती के तट पर पहुँचे ॥ ५७ ॥ पद्मावती नदी की तरङ्गों की अति मनोहर शोभा,श्रीतट पर सुन्दर बन और नदी में अथाह जल था ॥ ५८ ॥ पद्मावती को देखकर प्रभु ने परम आनन्द पूर्वक शिष्यगण सहित उसके जल में स्नान किया ॥ ५९ ॥ उसी दिन से भाग्यवती श्रीपद्मावती सब लोकों को पवित्र करने के योग्य हो गई ॥ ६० ॥ श्रीपद्मावती नदी देखने मे बड़ी सुन्दर थी जिसकी तरङ्ग तट एवं स्रोत सभी अति मनोहर थे ॥६१॥ पद्मावती को देखकर प्रभु परम प्रसन्नता पूर्वक उसके शुभ भाग्य के कारण वहीं ठहर गये ॥ ६२ ॥ जिस प्रकार प्रभु ने आनन्द पूर्वक शिष्य गण सहित श्रीगङ्गाजी के जल में जलक्रीड़ा की थी ॥ ६३ ॥ वही भाग्य अब पद्मावती ने भी प्राप्त किया क्योंकि प्रभु प्रति दिन वहाँ जल-क्रीड़ा करने लगे ॥ ६४ ॥ श्रीमहाप्रभु जी का बङ्गदेश में प्रवेश हुआ उसी सौभाग्य से आज भी बङ्गदेश धन्यवाद के योग्य है ॥ ६५ ॥ श्रीगौरचन्द्र पद्मावती के तट पर ठहरे हुए हैं यह सुनकर सब लोगों को बड़ा आनन्द हुआ ॥ ६६ ॥ चारों ओर यह ध्वनि फैल गई कि-'अध्यापक-शिरोमणि श्रीनिमाञि पण्डित आए हुए हैं' ॥ ६७ ॥ वहाँ जितने भाग्यवान् सज्जन थे वह सब तत्काल हाथों में भेंट ले लेकर उपस्थित हुए ॥ ६८ ॥ और सब ने प्रभु को नमस्कार करके अत्यन्त विनम्र होकर बोले—॥ ६९ ॥ 'हे द्विज मणि हम सब लोगों के भाग्य उदय होने से ही आप इस देश में पधारे हैं ७० हम अर्थ सम्पत्ति

अर्थ वित्त लइ सर्व्व गोष्ठीर सहिते । जार स्थाने नवद्वीपे जाइव पढ़िते ॥७१॥
हेन निधि अनायासे आपने ईश्वरे । आनिञा दिलेन आमा सभार दुयारे ॥७२॥
मूर्त्तिमन्त तुमि वृहस्पति अवतार । तोमार सदृश अध्यापक नाहि आर ॥७३॥
वृहस्पति दृष्टान्त तोमार जोग्य नहे । ईश्वरेर अंश तुमि, हेन मने लये ॥७४॥
अन्यथा ईश्वर बिने एमन पाण्डित्य । अन्येर ना हय कभो लये चित्त-वृत्त ॥७५॥
सबे एक निवेदन करिये तोमारे । विद्या-दान कर किछु आमा सभा कारे ॥७६॥
उद्देशे आमरा सभे तोमार टिप्पणी । लइ पढ़ि पढ़ाइ शुनह द्विज मणि ॥७७॥
साक्षाते ओ शिष्य कर आमा सभा कारे । थाकुक तोमार कीर्त्ति सकल संसारे ॥७८॥
हासि प्रभु सभा प्रति करिया आश्वास । कथो-दिन वङ्ग देशे करिला विलास ॥७९॥
सेइ भाग्ये अद्यापिह सर्व्व वङ्ग देशे । श्रीचैतन्य-सङ्कीर्त्तन करे स्त्री पुरुषे ॥८०॥
मध्ये मध्ये मात्र कथो पापीगण गिया । लोक नष्ट करे आपनारे लओयाइया ॥८१॥
उदर भरण लागि पापिष्ठ सकले । 'रघुनाथ' करि आपनारे केह बोले ॥८२॥
कोन पापी सब छाड़ि कृष्ण सङ्कीर्त्तन । आपनारे गाओयाय कत वा भूत गण ॥८३॥
देखितेछि दिने तीन अवस्था जाहार । कोन लाजे आपनारे गाओयाय से छार ॥८४॥
राढ़े आर एक महा ब्रह्म दैत्य आछे । अन्तरे राक्षस, विप्र काच मात्र काछे ॥८५॥
से पापिष्ठ आपनारे बोलाये गोपाल । अतएव तारे सभे बोलेन शियाल ॥८६॥*
श्रीचैतन्यचन्द्र बिने अन्येरे ईश्वर । जे अधमे बोले सेइ छार शोच्य तर ॥८७॥

---

लेकर अपनी समस्त गोष्ठी सहित नवद्वीप में जिसके पास पढ़ने के लिये जाते ॥ ७१ ॥ उस निधि को अनायास ही स्वयं ईश्वर हम सबके द्वार पर ही ले आये ॥ ७२ ॥ आप वृहस्पति जी के मूर्त्तिमन्त अवतार हो, आपके समान अन्य कोई अध्यापक नहीं है ॥ ७३ ॥ वृहस्पति का दृष्टान्त आपके योग्य नहीं है, हमारे मन में ऐसा प्रतीत होता है कि–'आप ईश्वर के अंश हैं' नहीं तो ईश्वर बिना ऐसा पाण्डित्य अन्य किसी में कभी नहीं होता है यह बात हमारी चित्त-वृत्त में जँचती है ॥ ७५ ॥ हम केवल एक निवेदन आपसे करते हैं कि–आप हम सबको कुछ विद्या-दान दीजिये ॥ ७६ ॥ हे द्विजमणि ! सुनिये इसी उद्देश्य से हम सबने आपकी रचित टिप्पणी तो पढ़ पढ़ा ली है ॥ ७७ ॥ 'अब साक्षात में भी हम सबको शिष्य बना लीजिये, समस्त संसार में आपका यश छा जायेगा' ॥ ७८ ॥ हँसकर प्रभु ने सबको आश्वासन दिया तथा कुछ दिन वङ्गदेश में विलास करने लगे ॥७९। इसी भाग्य से आज कल भी सर्व वङ्गदेश में स्त्री-पुरुष श्रीचैतन्य-सङ्कीर्त्तन करते हैं ॥८०। परन्तु बीच-बीच में कुछ पापीगण जाकर अपने को पुजवाकर लोक नष्ट करते हैं ॥ ८१ ॥ उन सब पापियों में से उदर भरने के लिये कोई अपने को 'रघुनाथ' कहकर बोलता ॥ ८२ ॥ कोई पापी कृष्ण सङ्कीर्त्तन आदि को छोड़कर अपने को एवं कितने ही भूतों को गवाता ( गुण-गान कराता ) ॥ ८३ ॥ हम जिसकी दिन में तीन अवस्था देखते हैं फिर वह तुच्छ किस लज्जा के आधार पर अपने को गवाता है ॥ ८४ ॥ राढ़ देश में एक और महा ब्रह्म दैत्य है जो अन्तर में राक्षस है विप्र का तो वेश मात्र ही पहने हुए है ॥ ८५ ॥ वह पापी

---

*श्रीमद्भागवत के श्रृगाल वासुदेव के चरित्र के अनुसार इनका चरित्र देखकर लोग इसको कहते थे (भ० १० ५६अ )

दुइ बाहु तुलि एइ बलि सत्य करि । अनन्त ब्रह्माण्ड नाथ श्रीचैतन्य हरि ॥८८॥
जार नाम स्मरणे समस्त बन्ध क्षय । जार दास स्मरणेओ सर्व्वत्रे विजय ॥८९॥
सकल भुवने देख जाँर यश गाय । विपथ छाड़िया भज हेन प्रभु पाय ॥९०॥
हेन मते श्रीवैकुण्ठ नाथ गौरचन्द्र । विद्या रसे करे प्रभु बङ्ग देशे रङ्ग ॥९१॥
महा प्रभु विद्या गोष्ठी करि लेन बङ्गे । पद्मावती देखि प्रभु भूलिलेन रङ्गे ॥९२॥
सहस्र सहस्र शिष्य हइल तथाइ । हेन नाहि जानि के पढ़ये कोन ठाँइ ॥९३॥
शुनि सब बङ्ग देशी आइसे धाइया । निमाञि-पण्डित स्थाने पढ़िबाङ गिया ॥९४॥
हेन कृपा दृष्ट्ये प्रभु करेन व्याख्यान । दुइ मासे सभेइ हइला विद्यावान् ॥९५॥
कत शत शत जन पदवी लभिया । घरे जाय आर कत आइसे शुनिञा ॥९६॥
एइ मते विद्या रसे वैकुण्ठेर पति । विद्या-रसे बङ्ग देशे करिलेन स्थिति ॥९७॥
एथा नवद्वीपे लक्ष्मी प्रभुर विरहे । अन्तरे दुःखिता देवी कारे नाहि कहे ॥९८॥
निरवधि करे देवी आइर सेवन । प्रभु गियाछेन हैते नाहिक भोजन ॥९९॥
नाम मात्र अन्न लक्ष्मी परिग्रह करे । ईश्वर विच्छेदे बड़ दुःखिता अन्तरे ॥१००॥
एकेश्वर सर्व्व रात्रि करेन क्रन्दन । चित्ते स्वास्थ्य नाहि दुःख पाय अनुक्षण ॥१०१॥
ईश्वर विच्छेद लक्ष्मी ना पारि सहिते । इच्छा करिलेन प्रभुर समीपे जाइते ॥१०२॥

---

अपने को 'गोपाल' कहलाता है अतएव सब लोग उसको शृगाल कहते हैं ॥ ८६ ॥ जो अधम श्रीचैतन्यचन्द्र के अतिरिक्त अन्य किसी को ईश्वर कहता है वही तुच्छ शोच्यतर पुरुष है ॥ ८७ ॥ मैं दोनों भुजा उठाकर यह कहता हूँ कि—श्रीचैतन्यहरि अनन्त ब्रह्माण्ड के नाथ हैं ॥ ८८ ॥ जिनके 'नाम' स्मरण से सर्व बन्धन क्षय हो जाते हैं जिसके दासों के स्मरण से भी सर्वत्र विजय प्राप्त होती है ॥ ८९ ॥ एवं सभी भुवनों को जिनका यश-गान करते हुए देखते हो, हे भाइयो ! विपथ को त्याग कर उन प्रभु के चरणों का भजन करो ॥ ९० ॥ इस प्रकार वैकुण्ठनाथ श्रीगौरचन्द्र प्रभु वङ्गदेश में विद्या-रस द्वारा आनन्द [ रङ्ग ] कर रहे थे ॥ ९१ ॥ श्रीमहा-प्रभु जी ने बङ्ग देश में अपनी विद्या-गोष्ठी बना ली आप श्रीपद्मावती नदी को देखकर आनन्द में भूले हुए थे ॥ ९२ ॥ वहीं पर आपके सहस्रों शिष्य हो गये । यह भी नहीं जान पड़ता था कि—कौन किस जगह पढ़ रहा है ॥ ९३ ॥ प्रभु की यह सब कीर्त्ति एवं उनका आगमन सुन कर सब बङ्ग-देशी यह विचार करके कि—'चलो-चलें, निमाञि पण्डित के पास पढ़ेंगे' दौड़ कर आते थे ॥ ९४ ॥ प्रभु ऐसी कृपा दृष्टि से व्याख्या करते थे कि—'वह सब दो महीने में ही विद्वान् हो गये ॥ ९५ ॥ कितने ही सैकड़ों मनुष्य पदवियाँ उपाधि [ डिग्रियाँ ] प्राप्त करके घर चले जाते थे और कितने ही सुनकर आते थे ॥ ९६ ॥ इस प्रकार वैकुण्ठ पति श्रीगौरचन्द्र विद्या-रस में सजे बङ्ग देश में ठहरे हुए थे ॥ ९७ ॥ इधर श्रीनवद्वीप में श्रीलक्ष्मी देवी प्रभु के विरह से अन्तर में दुखित थी वह यह बात किसी से प्रकट नहीं करती थीं ॥ ९८ ॥ वह देवी निरन्तर माता जी की सेवा तो करती थी, परन्तु जब से प्रभु गये तब से भोजन छोड़ दिया था ॥ ९९ ॥ लक्ष्मीजी नाम-मात्र को अन्न ग्रहण करती थी वह प्रभु के विच्छेद से अन्तर में बड़ी दुःखित रहती थी ॥ १०० ॥ अकेली रात्रि भर क्रन्दन करती थी, चित्त में सुख नहीं था बरन् अनुक्षण दुःख पाती थी ॥ १०१ ॥ लक्ष्मी जी प्रभु का विरह सह नहीं सकीं

निज प्रति कृति देह थुइ पृथिवी ते । चलिलेन प्रभु पाशे अति अलक्षिते× ॥१०३॥
प्रभु पाद पद्म लक्ष्मी करिया हृदय । ध्याने गङ्गा तीरे देवी करिला विजय ॥१०४॥
ए खाने शचीर दुःख ना पारि कहते । काष्ठ पाषाण द्रवे क्रन्दन शुनिते ॥१०५॥
से सकल दुःख रस ना पारि वर्णिते । अतएव किछु कहिलाङ सूत्र मते ॥१०६॥
आप्त गण शुनि बड़ हइला दुःखित । सबे आसि कार्य करिलेन यथोचित ॥१०७॥
ईश्वर थाकिया कथो दिन बङ्ग देशे । आसिते हैल इच्छा निज गृह वासे ॥१०८॥
तबे प्रभु गृहे आसिबेन हेन शुनि । जार जेन शक्ति सबे दिला धन आनि ॥१०९॥
सुवर्ण-रजत-जल-पात्र, दिव्यासन । सुरङ्ग-कम्बल, बहु प्रकार बसन ॥११०॥
उत्तम पदार्थ जत छिल जार घरे । सबेइ सन्तोषे आनि दिलेन प्रभुरे ॥१११॥
प्रभुओ सबार प्रति कृपा दृष्टि करि । परिग्रह करिलेन गौराङ्ग श्रीहरि ॥११२॥
सन्तोषे सबार स्थाने हइया बिदाय । निज-गृहे चलिलेन श्रीगौराङ्ग राय ॥११३॥
अनेक पढुया सब प्रभुर सहिते । चलिलेन प्रभु स्थाने तथाइ पढ़िते ॥११४॥

* अथ केवल मुद्रित पुस्तक में अधिक अंश पाठ है *

**हेन समये एक सुकृति-ब्राह्मण । अति सार-ग्राही नाम मिश्र-तपन ॥११५॥**
**साध्य साधन तत्त्व निरूपिते नारे । हेन जन नाहि तथा जिज्ञासिबे तारे ॥११६॥**
**निज इष्ट मन्त्र सदा जपे रात्रि दिने । सोयास्ति नाहिक चित्ते साधनाङ्ग बिने ॥११७॥**

---

तथा प्रभु के समीप जाने की इच्छा करने लगीं ॥ १०२ ॥ अतएव निज स्थूल देह पृथ्वी पर छोड़कर अति अलक्षित रूप से प्रभु के पास पहुँचीं ॥ १०३ ॥ लक्ष्मी जी ने प्रभु के चरण-कमलों को हृदय में धारण करके ध्यान योग से श्रीपद्मावती के तट पर प्रभु के समीप विजय प्राप्त की ॥ १०४ ॥ यहाँ पर मैं श्रीशची देवी का दुःख वर्णन नहीं कर सकता उनके क्रन्दन को सुन कर काष्ठ एवं पाषाण भी द्रवित होते थे ॥ १०५ ॥ मेरी सामर्थ्य नहीं है कि-मैं उस सब दुःख-रस का वर्णन कर सकूँ अतएव संक्षेप से कुछ कहा है ॥ १०६ ॥ लक्ष्मी की विजय(गमन)सुनकर आत्मीय जन बड़े दुःखित हुए हैं और वह सब आकर समयानुयायी यथोचित कार्य करने लगे ॥ १०७ ॥ प्रभु कुछ दिन वङ्ग देश में रहकर अपने घर की ओर आने की इच्छा करने लगे ॥१०८॥ जब वङ्ग निवासियों ने यह सुना कि-प्रभु अब अपने घर को जायँगे तब वह सब निज-निज शक्ति के अनुसार धन वस्त्र आदि ला लाकर प्रभु को समर्पण करने लगे ॥ १०९ ॥ स्वर्ण एवं चाँदी के जल के बर्तन, दिव्यासन, सुन्दर रंगों वाले कम्बल एवं बहुत प्रकार के सुन्दर वस्त्र अर्थात् जिसके घर में जो-जो उत्तम वस्तुएँ थीं वह सब प्रसन्नता पूर्वक ला-लाकर प्रभु की भेंट कीं ॥ ११०-१११ ॥ प्रभु श्रीगौराङ्ग हरि ने भी सबके प्रति कृपा-दृष्टि पूर्वक वह सब वस्तुएँ ग्रहण कीं ॥ ११२ ॥ पश्चात् प्रसन्नता पूर्वक सब से विदा होकर श्रीगौराङ्ग राय अपने घर के लिये प्रस्थान किया ॥ ११३ ॥ प्रभु के साथ ही अनेक विद्यार्थी भी वहीं प्रभु के पास ही पढ़ने के लिये चल दिये ॥ ११४ ॥ उसी समय अति सार-ग्राही तपन 'मिश्र' नाम के एक सुकृति ब्राह्मण जो स्वयं साध्य साधन के तत्त्व का निर्णय नहीं कर पाता था एवं उसके निकट ऐसा कोई पुरुष भी नहीं था जिससे

× श्रीलक्ष्मी देवी नर-लीला के अवलित्य के कारण अपनी अप्राकृत देह के अनुरूप एक स्थूल देह छोड़ गईं ।

भाविते चिन्तिते एक दिन रात्रि शेषे। सुस्वप्न देखिल द्विज निज भाग्य-वशे ॥११८॥
सम्मुखे आसिया एकदेव मूर्त्तिमान्। ब्राह्मणेरे कहे गुप्त चरित्र आख्यान ॥११९॥
"शुन शुन ओहे द्विज परम सुधीर। चिन्ता ना करिह आर, मन कर स्थिर ॥१२०॥
निमाञि पण्डित पास करह गमन। तिहों कहिबेन तोमा साध्य-साधन ॥१२१॥
मनुष्य नहेन तिहों नर नारायण। नर रूपे लीला ताँर जगत्-कारण ॥१२२॥
वेद गोप्य ए सकल ना कहिवे कारे। कहिले पाइवे दुःख जन्म जन्मान्तरे' ॥१२३॥
अन्तर्द्धान हैला देव ब्राह्मण जागिला। सुस्वप्न देखिया विप्र कान्दिते लागिला ॥१२४॥
अहो भाग्य मानि पुन चेतन पाइया। सेइक्षणे चलिलेन प्रभु धेयाइया ॥१२५॥
वसिया आछेन जथा श्रीगौरसुन्दर। शिष्य गण सहित परम मनोहर ॥१२६॥
आसिया पड़िला विप्र प्रभुर चरणे। जोड़ हस्ते दाण्डाइलु सभार सदने ॥१२७॥
विप्र बोले 'आमि अति दीन हीन जन। कृपा दृष्ट्ये कर मोर संसार मोचन ॥१२८॥
साध्य-साधन तत्त्व किछुइ ना जानि। कृपा करि आमा प्रति कहिवा आपनि ॥१२९॥
विषयादि-सुख मोर चित्ते नाहि लय। किसे जुड़ाइवे प्राण कह दयामय' ॥१३०॥
प्रभु बोले 'विप्र तोमार भाग्येर कि कथा। कृष्ण भजिवारे चाह सेइ से सर्व्वथा ॥१३१॥
ईश्वर भजन अति दुर्गम अपार। जुगधर्म्म स्थापियाछे करि परचार ॥१३२॥
चारि जुगे चारि धर्म्म राखि क्षिति तले। स्वधर्म्म स्थापिया प्रभु निज स्थाने चले ॥१३३॥

---

पूछें॥ ११५-११६ ॥ जो रात्रि-दिन निरन्तर निज इष्ट-मन्त्र का जप करता था परन्तु उनके चित्त में साधन-अङ्ग जाने बिना शान्ति नहीं आती थी ॥ ११७ ॥ सोच-विचार करते-करते एक दिन शेष रात्रि में उन्होंने निज सौभाग्य से एक स्वप्न देखा कि— ॥ ११८ ॥ एक मूर्त्तिमान् देव सामने आकर उनसे एक गुप्त चरित्र का वर्णन करता हुआ कहने लगा कि— ॥ ११९ ॥ 'हे परम सुधीर द्विज ! सुनो, सुनो, अब तुम चिन्ता मत करो, मन को स्थिर करो ॥१२०॥ तुम निमाञि पण्डित के पास जाओ वह तुम्हारे प्रति साध्य-साधन कहेंगे ॥१२१॥ वह मनुष्य नहीं हैं, वह नर-नारायण भगवान् हैं, उनकी नर रूप में लीला, जगत् के उद्धार हेतु है ॥ १२२ ॥ यह सब वेद गोप्य बात है इसे किसी से मत कहना, इसके कहने से तुम जन्म-जन्मान्तर में दुःख पाओगे ॥ १२३ ॥ इतना कह कर देव अन्तर्धान होगये और ब्राह्मण जग पड़े। वह विप्र सुस्वप्न देखकर क्रन्दन करने लगा ॥ १२४ ॥ फिर चेतना पाकर अपने अहो भाग्य मान कर उसी क्षण प्रभु का ध्यान करता हुआ चल दिया ॥ १२५ ॥ जहाँ पर श्रीगौर सुन्दर शिष्य गण के साथ परम मनोहर रूप से बैठे हुए थे ॥१२६॥ आकर विप्र प्रभु के चरणों में पड़ गया और सभा को दण्डवत् करके हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया ॥ १२७ ॥ ब्राह्मण प्रार्थना करने लगा कि—'हे प्रभो ! मैं अति दीन जन हूँ, कृपादृष्टि द्वारा मेरा संसार मोचन करो ॥ १२८ ॥ मैं साध्य-साधन का कुछ भी तत्त्व नहीं जानता हूँ आप कृपा करके मुझसे कहें ॥ १२९ ॥ विषयादि सुख मुझे अच्छे नहीं लगते, हे दयामय ! कहिये, मेरे प्राण कैसे शान्ति पावें ? ॥ १३० ॥ प्रभु बोले 'विप्र ! तुम्हारे भाग्य का क्या कहना है जो इस प्रकार तुम निरन्तर श्रीकृष्णचन्द्र का भजन करना चाहते हो ॥ १३१ ॥ ईश्वर भजन अति दुर्गम एवं अपार है और वे प्रचार करके युग के अनुसार धर्म स्थापन करते हैं १३२। चारों युगों के

तथाहि गीतायाम् ४।८ भगवद्वाक्यम्

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् । धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥क॥

तथाहि [ भा० १०।१८।६ ] श्रीनन्दं प्रति श्रीगर्ग वाक्यं

आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः । शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ख॥

कलिजुग धर्म्म हय नाम-सङ्कीर्त्तन । चारिजुगे चारि धर्म्म जीवेर कारण ॥१३४॥

तथाहि [ भा० १२।३।४२ ]

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः । द्वापरे परिचर्य्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात् ॥ग॥

अतएव कलिजुगे नाम-जज्ञ सार । आर कोन कर्म्म कैले नाहि हय पार ॥१३५॥

रात्रि दिन नाम लय खाइते शुइते । ताहार महिमा वेदे नाहि पारे दिते ॥१३६॥

शुन मिश्र कलिजुगे नाहि तप जज्ञ । जेइ जन भजे कृष्ण तार महा भाग्य ॥१३७॥

अतएव गृहे तुमि कृष्ण भज गिया । कुटि नाटि परिहरि एकान्त हइया ॥१३८॥

साध्य-साधन तत्त्व जे किछु सकल । हरि नाम सङ्कीर्त्तने मिलिबे सकल ॥१३९॥

तथाहि हरिभक्तिविलासधृतवृहन्नारदीयवचनम्–११।२४२

हरे र्नाम हरे र्नाम हरेर्नामैव केवलम् । कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥घ॥

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे । हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥१४०॥

एइश्लोक नाम बलि लय महामन्त्र । षोल नाम बत्रिस अक्षर एइ तन्त्र ॥१४१॥

---

लिये चारों प्रकार के धर्मों को संसार में प्रकाश करके तथा अपने निज धर्म का [ जिस धर्म-स्थापन के लिये आप अवतार लेते हैं उसका ] स्थापन करके प्रभु अपने लोक को चले जाते हैं ॥ १३३ ॥ जैसा कि–श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है—साधुगण के परित्राण, असाधु-गण के विनाश एवं धर्म-संस्थापन के लिये मैं प्रति युग में जगत में अपने को आविर्भूत करता हूँ ॥ क ॥ एवं जैसा कि श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध अठारहवें अध्याय के नवें श्लोक में श्रीनन्दजी के प्रति श्रीगर्ग जी का वचन है कि–हे नन्द ! प्रति युग में देह को धारण करते हुए इनके पूर्व-काल में शुक्ल, रक्त तथा पीत तीन वर्ण हो चुके हैं अब यह तुम्हारे घर में कृष्णता को धारण कर आविर्भूत हुए हैं ॥ ख ॥ जीव उद्धार के हेतु चार युगों के पृथक् २ चार धर्म हैं, उनमें कलियुग का धर्म है 'श्रीहरि-नाम सङ्कीर्त्तन' ॥ १३४ ॥ जैसा कि श्रीमद्भागवत् द्वादश स्कन्ध तृतीय अध्याय के ४२वें श्लोक में लिखा है कि–सत्य युग में भगवान् विष्णु के ध्यान-परायण, त्रेता युग में यज्ञादि द्वारा यजन-परायण एवं द्वापर में भगवत्-सेवा-परायण मनुष्यों को जो फल मिलता है वह फल कलियुग में एक मात्र भगवत्-कीर्त्तन करने से ही मिल जाता है ॥ ग ॥ अतएव कलियुग में श्रीहरि नाम-यज्ञ ही सार है, इस युग में अन्य धर्म पालन करने से कोई पार नहीं होता है॥१३५॥जो खाते,सोते रात्रि-दिन नाम लेता उसकी महिमा वेद भी वर्णन नहीं कर सकते हैं ॥ १३६ ॥ मिश्र जी ! सुनो, तप एवं यज्ञ कलियुग में नहीं हैं इस काल में तो जो जन कृष्ण-भजन करता है उसी का महाभाग्य है ॥ १३७ ॥ अतएव तुम घर जाकर छल-कपट त्याग कर, एकान्त होकर श्रीकृष्ण का भजन करो ॥ १३८ ॥ साध्य-साधन का जो कुछ सम्पूर्ण तत्त्व है, वह सब तुमको श्रीहरि नाम सङ्कीर्त्तन से ही मिल जायगा ॥ १३९ ॥ जैसा कि श्रीनारदपुराण में लिखा है–'कलियुग में श्रीहरि नाम ही, श्रीहरि नाम ही, श्रीहरि नाम ही एक मात्र उपाय है, श्रीहरि नाम को छोड़कर जीवों के लिये और दूसरी गति नहीं है, नहीं है, निश्चित रूप से नहीं है घ । 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे,

साधिते साधिते जबे प्रेमाङ्कुर हबे । साध्य-साधन तत्त्व जानिबा से तबे ॥१४२॥
प्रभुर श्री मुखे शिक्षा शुनि द्विजवर । पुनः पुन प्रणाम करये बहुतर ॥१४३॥
मिश्र कहे 'आज्ञा हय आमि सङ्गे आसि' । प्रभु कहे 'तुमि शीघ्र जाओ वाराणसी ॥१४४॥
तथाइ आमार सङ्गे हइब मिलन । कहिब सकल तत्त्व साध्य ओ साधन' ॥१४५॥
एत बलि प्रभु तारे दिला आलिङ्गन । प्रेमे पुलकित अङ्ग हइल ब्राह्मण॥१४६॥
पाइया वैकुण्ठ नायकेर आलिङ्गन । परानन्द सुख पाइल ब्राह्मण तखन ॥१४७॥
विदाय-समये प्रभुर चरणे धरिया । सुस्वप्न वृतान्त कहे गोपने वसिया ॥१४८॥
शुनि प्रभु कहे 'सत्य जे हय उचित । आर कारे ना कहिवा ए सब चरित ॥१४९॥
पुनः निषेधिल प्रभु सयत्न करिया । हासिया उठिला शुभक्षण लग्न पाञा॥१५०॥[इति अधिक पाठ]
हेन मते प्रभु वङ्गदेश धन्य करि । निज गृहे आइलेन गौराङ्ग श्री हरि ॥१५१॥
व्यवहारे अर्थ-वित्त अनेक लइया । सन्ध्या काले गृहे प्रभु उत्तरिलासिया ॥१५२॥
दण्डवत् करि प्रभु जननी-चरणे । अर्थ-वित्त सकल दिलेन तान स्थाने ॥१५३॥
सेइ क्षणे प्रभु शिष्य गणेर सहिते । चलिलेन शीघ्र गङ्गा-मज्जन करिते ॥१५४॥
सेइ क्षणे गेला आइ करिते रन्धन । अन्तरे दुःखित हैल सर्व्व परिजन ॥१५५॥
शिक्षा-गुरु प्रभु सर्व्व गणेर सहिते । गङ्गारे हइला दण्डवत् बहु मते ॥१५६॥

---

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे' ॥ १४० ॥ तन्त्रोक्त इस श्लोक को बोल कर १६ नाम व ३२ अक्षर वाले इस महामन्त्र का जाप [ जप ] किया जाय ॥ १४१ ॥ श्रीहरि नाम का जप करते-करते जिस समय प्रेमाङ्कुर होगा उस समय तुम साध्य-साधन के तत्त्व को जानोगे ॥ १४२ ॥ द्विजवर प्रभु के श्रीमुख से शिक्षा सुन कर बारम्बार प्रणाम करने लगा ॥१४३॥ मिश्रजी फिर कहने लगे कि-'प्रभो ! आज्ञा दीजिये, मैं भी सङ्ग चलूँ' प्रभु ने कहा कि-'तुम शीघ्र वाराणसी चले जाओ ॥१४४॥ वहीं मेरे साथ मिलना होगा और वहीं मैं तुमसे समस्त साध्य व साधन का तत्त्व कहूँगा ॥ १४५ ॥ इतना कहकर प्रभु ने उसको आलिङ्गन दिया, द्विज श्रेष्ठ उस समय प्रेम से पुलकित-अङ्ग हो गया ॥ १४६ ॥ वह विप्रवर श्रीवैकुण्ठ नायक के आलिङ्गन को पाकर उस समय परमानन्द का अनुभव प्राप्त करने लगा ॥१४७॥ जाते समय वह विप्रवर प्रभु के चरणों को पकड़ कर एकान्त में बैठकर अपने सुस्वप्न वृत्तान्त को प्रभु के प्रति निवेदन करने लगा ॥ १४८ ॥ सुन कर प्रभु कहते कि—वह सत्य एवं उचित ही है, किन्तु यह सब चरित्र और किसी से मत कहना॥१४९॥प्रभु ने यत्नपूर्वक विप्र को फिर निषेध किया और विप्र शुभक्षण एवं लग्न पाकर हँसते हुए चल दिये ॥१५१॥ इस प्रकार प्रभु गौराङ्ग श्रीहरि वङ्गदेश को धन्य करके अपने घर आये ॥ १५१ ॥ व्यवहार के अनुसार अनेक धन सम्पत्ति लेकर प्रभु सन्ध्या के समय अपने घर पर आकर उतरे ॥ १५२ ॥ और माता जी के चरणों में दण्डवत् करके प्रभु ने वह सम्पूर्ण धन-सम्पत्ति माताजी के चरणों में रख दी ॥ १५३ ॥ प्रभु वहाँ से तत्काल ही शिष्य-गण सहित श्रीगङ्गा-स्नान करने के लिये चल दिये ॥ १५४ ॥ उधर माताजी तुरन्त रसोई करने लगीं। प्रभु को देख कर पूर्व कालीन शोक स्मरण हो आने से सब कुटुम्बी जन मन में दुखित हो गये ॥ १५५ ॥ शिक्षा-गुरु प्रभु सर्व शिष्य वृन्द के साथ बहु प्रकार से श्रीगङ्गाजी को दण्डवत् प्रणाम करने लगे १५६ कुछ समय श्रीगङ्गा-

कथोक्षण जाह्नवीते करि जल-खेला । स्नान करि गङ्गा देखि गृहेते आइला ॥१५७॥
तबे प्रभु यथोचित नित्यकर्म्म करि । भोजने वसिला गिया गौराङ्ग श्री हरि ॥१५८॥
सन्तोषे वैकुण्ठ नाथ भोजन करिया । विष्णु गृह द्वारे प्रभु वसिला आसिया ॥१५९॥
तबे आप्त वर्ग आइलेन सम्भाषिते । सभेइ वेढ़िया वसिलेन चारि भिते ॥१६०॥
सभार सहित प्रभु हास्य-कथा रङ्गे । कहिलेन जेन मत आछिलेन बङ्गे ॥१६१॥
बङ्गदेशि वाक्य अनुकरण करिया । बाङ्गालेर कदर्थेन हासिया हासिया ॥१६२॥
दुःख बड़ हइवेक लागि आप्त गण । लक्ष्मीर विजय केहो ना करे कथन ॥१६३॥
कथो क्षण थाकिया सकल आप्त गण । विदाय हइया गेला जार जे भवन ॥१६४॥
वसिया करेन प्रभु ताम्बूल भोजन । नाना हास्य-परिहास्य करेन कथन ॥१६५॥
शची देवी अन्तरे दुःखिता हइ घरे । काछे नाहि आइसेन पुत्रेर गोचरे ॥१६६॥
आपनि चलिला प्रभु जननी सम्मुखे । दुःखित बदन प्रभु जननीरे देखे ॥१६७॥
जननीरे बोले प्रभु मधुर वचन । दुःखिता तोमारे माता देखि कि कारण ॥१६८॥
कुशले आइलुँ आमि दूर देश हैते । कोथा तुमि मङ्गल करिबा भाल मते ॥१६९॥
आरो तोमा देखि अति दुःखित बदन । सत्य कहो देखि माता इहार कारण ॥१७०॥
शुनिला पुत्रेर वाक्य आइ अधो मुखे । कान्दे मात्र, उत्तर ना करे किछु दुःखे ॥१७१॥
प्रभु बोले 'माता ! आमि जानिल सकल । तोमार वधुर किछु शुनि अमङ्गल ॥१७२॥

---

जल में जल-क्रीड़ा तथा स्नान करके एवं श्रीगङ्गा जी के दर्शन करके प्रभु घर आये ॥ १५७ ॥ तब प्रभु गौराङ्ग श्रीहरि यथोचित नित्य कर्म करके भोजन करने बैठे॥ १५८ ॥ श्रीवैकुण्ठनाथ प्रभु प्रसन्नता पूर्वक भोजन करके आकर श्रीविष्णु-गृह के द्वार पर बैठ गये ॥ १५९ ॥ उसी समय सब आत्मीय जन प्रभु से बात-चीत करने के लिये आये और प्रभु को घेर कर उनके चारों ओर बैठ गये ॥ १६० ॥ प्रभु उन सबके साथ आमोद-प्रमोद करते हुए आनन्द से जिस प्रकार बङ्गदेश में रहे वह सब बातें कहने लगे ॥ १६१ ॥ प्रभु बङ्गदेशीय वाक्य अनुकरण करके हँस-हँस कर बङ्गालियों की कदर्थना (विडम्बना) कर रहे थे ॥१६२॥ आत्मीय जन मनमें यह विचार करके कि–इनको सुनकर बड़ा दुःख होगा इसलिये उनमें से कोई भी लक्ष्मी देवी की विजय प्रभु से नहीं कहते थे ॥ १६३ ॥ कुछ देर रहकर सभी आत्मीय जन बिदा होकर अपने-अपने घर चले गये ॥१६४॥ नाना हास्य-परिहास्यमयी बातें करने के पश्चात् प्रभु बैठे हुए ताम्बूल सेवन करने लगे थे ॥ १६५ ॥ इधर श्री-शचीदेवी मन में दुखी हो घर में ही बैठी रहीं, पुत्र के दृष्टिगोचर नहीं हुईं ॥ १६६ ॥ प्रभु स्वयं माताजी के सम्मुख आये; प्रभु ने माताजी का चेहरा ( मुखारविन्द ) दुःखित देखा ॥ १६७ ॥ तब प्रभु माताजी से मधुर वचन बोले कि–हे माताजी ! मैं तुमको दुःखिता क्यों देख रहा हूँ ? ॥ १६८ ॥ 'मैं दूर देश से कुशल पूर्वक आ गया हूँ' इसके लिये कहाँ तो तुमको भली प्रकार मङ्गल मनाना चाहिए था ॥ १६९ ॥ और कहाँ तुमको दुःखित बदन देख रहा हूँ। हे माता जी ! सत्य करके इसका कारण कहिये ॥ १७० ॥ अपने पुत्र के वाक्य सुनकर श्रीशची माता अधोमुख करके केवल रोने लगीं ( अति ) दुःख के कारण उत्तर नहीं देती थीं॥१७१॥ प्रभु फिर बोले कि–हे माता जी ! मैंने सब जान लिया, मैंने तुम्हारी बधू का कुछ अमङ्गल सुना है १७२

तबे सबे कहिलेन शुनह पण्डित । तोमार ब्राह्मणी गङ्गा पाइला निश्चित ॥१७३॥
पत्नीर विजय शुनि गौराङ्ग श्री हरि । क्षणेक रहिला किछु हेट माथा करि ॥१७४॥
प्रियार विरह दुःख करिया स्वीकार । तुष्णी हइ रहिलेन सर्व्व-वेद-सार ॥१७५॥
लोकानुकरण दुःख क्षणेक करिया । कहिते लागिला निज धैर्य्य चित्त हइया ॥१७६॥
तथाहि [ भा० ८।१६।१६ ] कस्य के पतिपुत्राद्या मोह एव हि कारणम् । [ ङ ]
प्रभु बोले 'माता दुःख भाव कि कारणे । भवितव्य जे आछे से घुचिव केमने ॥१७७॥
एइ मत काल गति-केहो कारो नहे । अतएव 'संसार अनित्य' वेदे कहे ॥१७८॥
ईश्वरेर अधीन से सकल संसार । संयोग वियोग के करिते पारे आर ॥१७९॥
अतएव जे हइल ईश्वर इच्छाय । हइल से कार्य्य आर दुःख केने ताय ॥१८०॥
स्वामीर अग्रेते गङ्गा पाय जे सुकृति । तारे बड़ आर केबा आछे भाग्यवती' ॥१८१॥
एइ मत प्रभु जननीरे प्रबोधिया । रहिलेन निज कृत्ये आप्त गण लैया ॥१८२॥
शुनिया प्रभुर अति अमृत वचन । सभार हइल सर्व्व-दुःख विमोचन ॥१८३॥*
हेन मते वैकुण्ठ नायक गौर हरि । कौतुके आछेन विद्या रसे क्रीड़ा करि ॥१८४॥
सन्ध्या वन्दनादि प्रभु करि ऊषः काले । नमस्करि जननीरे पढ़ाइते चले ॥१८५॥
अनेक जन्मेर भृत्य मुकुन्द सञ्जय । पुरुषोत्तम दास हेन जाहार तनय ॥१८६॥
प्रति दिन सेइ भाग्यवन्तेर आलय । पढ़ाइते गौरचन्द्र करेन विजय ॥१८७॥

---

तब सब उपस्थित जन बोले—हे पण्डितजी ! सुनिये, निश्चय ही तुम्हारी ब्राह्मणी ने श्रीगङ्गा-प्राप्ति कर ली है ॥ १७३ ॥ निज पत्नी की विजय सुनकर श्रीगौराङ्ग हरि कुछ देर के लिये कुछ नीचा सिर करके रह गये ॥ १७४ ॥ सर्व-वेद-सार प्रभु प्रिया-विरह के दुःख को स्वीकार करके चुप होकर रह गये ॥ १७५ ॥ आप क्षण भर लोकानुसार शोक करने के पश्चात् धैर्य चित्त होकर माता जी से कहने लगे ॥ १७६ ॥ जैसा कि श्रीमद्भागवत अष्टम स्कन्ध सोलहवें अध्याय के उन्नीसवें श्लोक में है—'पति पुत्र आदि कौन किसका है ?' [ अर्थात् कोई किसी का नहीं है ] मोह ही इन सब की प्रतीति का कारण है ॥ङ॥ 'माता जी ! तुम दुःखित क्यों होती हो ?' जो होनहार है, वह किस प्रकार टल सकती है ? ॥ १७७ ॥ काल की गति इसी प्रकार की है; कोई किसी का नहीं है इसीलिये वेद संसार को अनित्य कहते हैं ॥ १७८ ॥ यह सम्पूर्ण संसार ईश्वर के आधीन है अन्य किसी की सामर्थ्य नहीं है कि—वह किसी का संयोग एवं वियोग कर सके ॥ १७९ ॥ अतएव ईश्वर-इच्छा से जो कार्य हो गया, वह हो गया उसके लिये दुःख क्या ॥ १८० ॥ जिस सुकृतिशालिनी को अपने स्वामी के आगे ही श्रीगङ्गा प्राप्ति हो जाय, उससे बढ़कर और भाग्यवती कौन है ?' ॥१८१॥ इस प्रकार से प्रभु माता जी को समझाकर, स्वजनों को लेकर अपने कार्य में लग गये ॥१८२॥ प्रभु के अति अमृतमयी वचन सुनकर सबका समस्त दुःख दूर हो गया है ॥ १८३ ॥ इस प्रकार वैकुण्ठ नायक श्रीगौर हरि आनन्द पूर्वक विद्या-रस की लीला कर रहे थे ॥ १८४ ॥ प्रभु ऊषा-काल में ही सन्ध्या वन्दनादि करके माता जी को नमस्कार करके पढ़ाने के लिये चल दिये ॥ १८५ ॥ आपके जो अनेक जन्मों के सेवक श्रीमुकुन्द सञ्जय हैं,

* किसी-किसी पुस्तक में इसी स्थान पर अध्याय समाप्त किया है ।

तावत चालेन श्री हट्टियार ठाकुर । जावत ताहार क्रोध ना हय प्रचुर ॥२०४॥
महा क्रोधे केह लइ जाय खेदाड़िया । लागालि ना पाय जाय तर्ज्जिया गर्ज्जिया ॥२०५॥
केह वा धरिया लय शिकदार स्थाने । लैया जाय महा क्रोधे धरिया देयाने ॥२०६॥
तबे शेषे आसिया प्रभुर सखा गणे । समञ्जस कराइ चलेन सेइ क्षणे ॥२०७॥
कोन दिन थाकि कोन वाङ्गालेर आड़े । बाओयास भाङ्गिया तार पलायेन रड़े ॥२०८॥
एइ मत चापल्य करेन सभा सने । सबे स्त्री मात्र नाहि देखेन दृष्टि कोणे ॥२०९॥
स्त्री हेन नाम प्रभु एइ अवतारे । श्रवणो ना करिला विदित संसारे ॥२१०॥
अतएव जत महा महिम सकले । गौराङ्ग नागर हेन स्तव नाहि बोले ॥२११॥
यद्यपि सकल स्तव सम्भवे ताहाने । तथापिह स्वभावे से गाय बुध गणे ॥२१२॥
हेन मते 'श्रीमुकुन्द सञ्जय' मन्दिरे । विद्या रसे श्रीवैकुण्ठ नायक विहरे ॥२१३॥
चतुर्द्दिके शोभे शिष्य गणेर मण्डली । मध्ये पढ़ायेन प्रभु महा-कुतूहली ॥२१४॥
विष्णु तैल शिरे दिते आछे कोन दासे । अशेष प्रकारे व्याख्या करे निज रसे ॥२१५॥
ऊपः काल हैते दुइ-प्रहर अवधि । पढ़ाइया गङ्गा-स्नाने चले गुण निधि ॥२१६॥
निशारो अर्द्धेक एइ मत प्रति दिने । सेइ पढ़ा चिन्तायेन सभारे आपने ॥२१७॥
अतएव प्रभु स्थाने वर्षेक पढ़िया । पण्डित हयेन सभे सिद्धान्त जानिया ॥२१८॥

---

पुत्र होकर फिर ढोल पीटते हो कहो तो इसका क्या कारण है ? ॥ २०२ ॥ वह जितना-जितना बोलते तो भी प्रभु उनकी बात नहीं मानते थे स्वयं निरन्तर उस देश की बोली का अनुकरण करके उनकी कदर्थना ही करते जाते ॥ २०३ ॥ आप उस समय तक लगातार श्रीहट्टियाओं की कदर्थना ही करते जाते जब तक कि उनका क्रोध प्रचुर परिमाण में न हो जाता ॥ २०४ ॥ महा क्रोध में कोई तो प्रभु को खदेड़ कर ले जाता, परन्तु जब प्रभु हाथ नहीं आते तो तर्जन-गर्जन करता हुआ चला जाता था ॥ २०५ ॥ कोई पकड़ कर शिकदार ( पुलिस कर्मचारी विशेष ) के पास ले चलता और कोई पकड़ कर महा क्रोध-वश होकर विचारालय में ले चलता ॥ २०६ ॥ तब उस समय प्रभु के सखा-गण आकर दोनों में समझौता कराकर ले आते ॥ २०७ ॥ किसी दिन प्रभु किसी के बँगला ( कमरा विशेष ) की ओट में होकर उसके शुष्क अलाबु ( तुम्बा ) को तोड़कर ज़ोर से भाग जाते ॥ २०८ ॥ इस प्रकार प्रभु सबके साथ चपलता करते थे केवल स्त्री मात्र की ओर दृष्टिपात नहीं करते थे ॥ २०९ ॥ संसार में प्रसिद्ध है कि—इस अवतार में प्रभु ने 'स्त्री' नाम श्रवण भी नहीं किया ॥२१०॥ इसीलिये जितने महिमाशाली महत्पुरुष हैं उन सब में से कोई 'गौराङ्ग नागर' ऐसा स्तव में वर्णन नहीं करता है ॥ २११ ॥ यद्यपि आपके लिये सर्व प्रकार के स्तव सम्भव हो सकते हैं तब भी विद्वद्गण आपके स्वभाव के अनुसार ही वर्णन किया करते हैं ॥ २१२ ॥ इस प्रकार श्रीवैकुण्ठ-नायक 'श्रीमुकुन्द सञ्जय' के घर विद्या-रस-विहार करते थे ॥ २१३ ॥ चारों ओर शिष्यों की मण्डली शोभा पाती थी और बीच में श्रीगौरचन्द्र अति आनन्द में पढ़ाते थे ॥ २१४ ॥ कोई एक शिष्य ( दास ) आपके सिर में विष्णु-तेल लगाता और आप अपने रस में अशेष प्रकार से व्याख्या करते रहते ॥ २१५ ॥ ऊषा काल से लेकर दो प्रहर तक गुण-निधान श्रीप्रभु पढ़ाकर तब श्रीगङ्गा-स्नान को जाते थे ॥ २१६ ॥ इस प्रकार आप सब शिष्यों को नित्य के पाठ को

हेन मते विद्या रसे आछेन ईश्वर । विवाहेर कार्य्य शची चिन्ते निरन्तर ॥२१९॥
सर्व्व नवद्वीपे शची निरवधि मने । पुत्रेर सदृश कन्या चाहे अनुक्षणे ॥२२०॥
सेइ नवद्वीपे वैसे महा भाग्यवान् । दया-शील-स्वभाव-श्रीसनातन नाम ॥२२१॥
अकैतव, परम उदार, विष्णु-भक्त । अतिथि सेवन पर उपकारे रत ॥२२२॥
सत्यवादी, जितेन्द्रिय, महावंश जात । पदवी 'राज-पण्डित' सर्व्वत्र विख्यात ॥२२३॥
व्यवहारेओ परम सम्पन्न एक जन । अनायासे अनेकेर करेन पोषण ॥२२४॥
तार कन्या आछेन परम सुचरिता । मूर्त्तिमती लक्ष्मी-प्राय सेइ जगन्माता ॥२२५॥
शची देवी तारे देखिलेन जेइ क्षणे । सेइ कन्या पुत्र योग्या बुझिलेन मने ॥२२६॥
शिशु हैते दुइ-तिन बार गङ्गा-स्नान । पितृ-मातृ-विष्णु-भक्ति बइ नाहि आन ॥२२७॥
आइरे देखिया घाटे प्रति दिने दिने । नम्र हइ नमस्कार करेन चरणे ॥२२८॥
आइओ करेन महा प्रीते आशीर्व्वाद । 'योग्य-पति कृष्ण तोमार करुन प्रसाद' ॥२२९॥
गङ्गा-स्नाने आइ मने करेन कामना । 'ए कन्या आमार पुत्रे हउक घटना' ॥२३०॥
राज पण्डितेर इच्छा सर्व्व-गोष्ठी सने । प्रभुरे करिते कन्या-दान निज मने ॥२३१॥
दैवे शची काशीनाथ पण्डितेरे आनि । बलिलेन तारे बाप ! शुन एक वाणी ॥२३२॥
राज पण्डितेरे कहो, इच्छा थाके तान । आमार पुत्रेरे तवे करु कन्या दान ॥२३३॥

---

प्रति दिन आधी रात तक विचरवाते थे ॥ २१७ ॥ इसीलिये प्रभु के निकट एक वर्ष ही पढ़कर सब सिद्धान्तों के जानकार होकर सब शिष्य पण्डित हो जाते थे ॥ २१८ ॥ इस प्रकार प्रभु विद्या-रस-विहार में मस्त थे, इधर श्रीशची देवी अपने पुत्र के विवाह-कार्य की निरन्तर चिन्ता करती थी ॥ २१९ ॥ आप निरन्तर सम्पूर्ण श्री-नवद्वीप भर में पुत्र के सदृश-कन्या का विचार किया करती रहती थी ॥ २२० ॥ इस नवद्वीप में एक महा भाग्यवान् , दयाशील-स्वभाव श्रीसनातन नाम के विप्र निवास करते थे ॥ २२१ ॥ जो छल कपट-रहित, परम उदार, विष्णु-भक्त, अतिथि-सेवन व परोपकार में रत [ लगे हुए ] ॥ २२२ ॥ सत्य-वादी, जितेन्द्रिय, महान्-वंशज में उत्पन्न थे जिनकी 'राज पण्डित' पदवी थी एवं जो सर्वत्र विख्यात थे ॥ २२३ ॥ व्यवहार में एक मात्र कुशल व्यक्ति व अनायास अनेकों का पोषण करने वाले थे ॥ २२४ ॥ कन्या अत्यन्त सुन्दर चरित्र वाली थी जो प्राय जगत्-माता मूर्त्तिमती लक्ष्मी जैसी ही थी ॥ २२५ ॥ श्रीशचीदेवी जी ने जिस समय उस कन्या को देखा वैसे ही मन में उसे निज-पुत्र के योग्य निश्चय कर लिया ॥ २२६ ॥ वह बालपन से ही दो-तीन बार श्रीगङ्गा-स्नान करती एवं पितृ, मातृ-विष्णु-भक्ति के सिवाय कुछ नहीं जानती थी ॥ २२७ ॥ प्रति दिन श्री-शची माता को घाट पर देखकर नम्र हो उनके चरणों में नमस्कार करती थी ॥ २२८ ॥ श्रीशची 'मा' भी महा प्रीति-पूर्वक उसको आशीर्वाद देती हैं कि-'कृष्ण तुम्हारे लिये योग्य-पति की कृपा करें' ॥ २२९ ॥ श्री-शची माता प्रति दिन श्रीगङ्गा-स्नान के समय कामना करतीं कि-'इस कन्या का संयोग मेरे पुत्र के साथ हो जाय' ॥ २३० ॥ इधर श्री सनातन 'राज पण्डित' एवं उनके आत्मीय जन सब के मन में इस कन्या का 'पाणि-ग्रहण' प्रभु के साथ करने की इच्छा लगी हुई थी ॥ २३१ ॥ दैवयोग से एक दिन श्रीशची देवी काशी-नाथ पण्डित को बुलाकर उनसे कहने लगीं कि-'वत्स ! एक बात सुनो ॥ २३२ ॥ 'तुम जाकर राज पण्डित से

काशी नाथ पण्डित चलिला सेइ क्षणे । 'दुर्गा' 'कृष्ण' वलि राज पण्डित भवने ॥२३४॥
काशी नाथे देखि राजपण्डित आपने । वसिते आसन आनि दिलेन सम्भ्रमे ॥२३५॥
परम गौरवे बिधि करे यथोचित । 'कि कार्य्ये आइला' जिज्ञासिलेन पण्डित ॥२३६॥
काशी नाथ वोलेन आछये एककथा । चित्ते लय यदि तबे करह सर्व्वथा ॥२३७॥
तोमार कन्यार जोग्य सेइ दिव्य पति । ताहान उचित पत्नी सेइ महा सती ॥२३८॥
विश्वम्भर पण्डितेरे तोमार दुहिता । दान कर-ए सम्बन्ध उचित सर्व्वथा ॥२३९॥
जेन कृष्ण रुक्मिणीते अन्योऽन्य उचित । सेइ मत विष्णु-प्रिया-निमाञि पण्डित ॥२४०॥
शुनि विप्र पत्नी आदि आप्त वर्ग सहे । लागिला करिते युक्ति 'देखि के कि कहे' ॥२४१॥
सभे वलिलेन 'आर कि कार्य विचारे । सर्व्वथा ए कर्म्म गिया करह सत्वरे ॥२४२॥
तबे राज पण्डित हइया हर्ष मति । वलिलेन काशीनाथ पण्डितेर प्रति ॥२४३॥
'विश्वम्भर पण्डितेरे दिव कन्यादान । करिव सर्व्वथा विप्र इथे नाहि आन ॥२४४॥
भाग्य थाके यदि सर्व्व वंशेर आमार । तबे हेन सम्बन्ध हइव ए कन्यार ॥२४५॥
'चल तुमि तथा गिया कह सर्व्व कथा । आमि पुन दृढ़ाइलुँ-करिव सर्व्वथा' ॥२४६॥
शुनिञा सन्तोषे काशीनाथ मिश्रवर । सकल कहिल आसि शचीर गोचर ॥२४७॥
कार्य-सिद्धि शुनि 'आइ' सन्तोष हइला । सकल उद्योग तबे करिते लागिला ॥२४८॥

---

बात-चीत करो, यदि उनकी इच्छा हो तो हमारे पुत्र के साथ अपनी कन्या का पाणि ग्रहण करदे' ॥ २३३ ॥ यह सुनकर श्रीकाशीनाथ पण्डित उसी क्षण 'दुर्गा' 'दुर्गा' व 'कृष्ण' 'कृष्ण' बोलते हुए श्रीराज पण्डित के भवन को चल दिये ॥ २३४ ॥ श्रीकाशीनाथ को देखकर श्रीराज पण्डित ने स्वयं शीघ्रता से उसके बैठने के लिये आसन लाकर दिया एवं परम गौरव के साथ यथोचित सत्कारोपचार करने लगे। पश्चात् श्रीराज पण्डित जी ने पूछा कि—'कहिये आप कैसे पधारे ?'॥२६५-२३६॥ श्रीकाशीनाथ जी ने उत्तर दिया कि—'मैं एक बात कहूँगा, यदि सर्व प्रकार से वह आपके चित्त को भावे तो करना ॥ २३७ ॥ [ मैं जिनका नाम लूँगा ] तुम्हारी कन्या के योग्य वही दिव्य-पति है और महासती यह आपकी कन्या उनकी उचित पत्नी है ॥ २३८ ॥ सुनिये बात यह है कि—आप अपनी पुत्री का पाणि-ग्रहण श्रीविश्वम्भर पण्डित के साथ कर दीजिये। यह सम्बन्ध सब प्रकार से योग्य ही है ॥ २३९ ॥ जिस प्रकार श्रीकृष्ण व रुक्मिणी परस्पर योग्य थे उसी प्रकार विष्णुप्रिया व श्रीनिमाञि पण्डित परस्पर एक दूसरे के योग्य हैं ॥२४०॥ सुनकर श्रीसनातन-राज पण्डितजी ने मन में यह विचार करके कि—देखें कौन क्या कहता है अपनी पत्नी आदि स्वजनों से परामर्श लिया ॥२४१॥ वह सब कहने लगे कि—'इसमें विचारने का और क्या काम है शीघ्र ही जिस प्रकार से हो यह कार्य करो' ॥ २४२ ॥ तब श्रीराज पण्डित चित्त में अति प्रसन्न होकर श्रीकाशीनाथ पण्डित जी से बोले कि—॥ २४३ ॥ हे विप्रवर ! मैं अवश्य श्रीविश्वम्भर पण्डित को अपनी कन्या दान दूँगा, मैं अवश्य इस कार्य को सम्पन्न करूँगा इसमें अन्यथा नहीं है ॥ २४४ ॥ यदि हमारे सब वंश के सौभाग्य हों तब इस कन्या का ऐसा सम्बन्ध घटन होगा ॥ २४५ । अब तुम जाओ, वहाँ जाकर सब बात कह दो। मैंने भी पूछकर फिर दृढ़ कर लिया है, यह सम्बन्ध सर्व्वथा अवश्य करूँगा २४६ मिश्रवर श्रीकाशीनाथ ने सुनकर प्रसन्न चित्त हो श्रीशची

प्रभुर विवाह शुनि सर्व्व शिष्य गण । सभेइ हइला अति परानन्द मन ॥२४६॥
प्रथमे वलिला बुद्धिमन्त महाशय । मोर भार ए विवाहे जत लागे व्यय ॥२५०॥
मुकुन्द सञ्जय बोले शुन सखा भाइ । तोमार सकल भार मोर किछु नाञि ॥२५१॥
बुद्धिमन्त खान वोले शुन सब भाइ । वामनिञा* मत ए विवाहे किछु नाञि ॥२५२॥
ए विवाहे पण्डितेर कराइब हेन । राज कुमारेर मत लोके देखे जेन ॥२५३॥
तवे सभे मिलि शुभ-दिन शुभ क्षणे । अधिवास लग्न करिलेन हर्ष-मने ॥२५४॥
बड़ बड़ चन्द्रातप सब टानाइया । चतुर्द्दिके रुइलेन कदली आनिया ॥२५५॥
पूर्ण घट, दीप, धान्य, दधि, आम्र सार । जतेक मङ्गल द्रव्य आछये अपार ॥२५६॥
सकल एकत्रे आनि करि समुच्चय । सर्व्व भूमि करिलेन आलिपना मय ॥२५७॥
जतेक वैष्णव आर जतेक ब्राह्मण । नवद्वीपे आछये जतेक सुसज्जन ॥२५८॥
सभारेइ निमन्त्रण करिला सकाले । अधिवासे गुया आसि खाइवा विकाले ॥२५९॥
अपराह्ण काल मात्र हइल आसिया । वाद्य आसि करिते लागिल वाजनिया ॥२६०॥
मृदङ्ग, सानाञि, जय ढाक, करताल । नाना विध वाद्य ध्वनि उठिल विशाल ॥२६१॥
भाट गणे पढ़िते लागिला रायवार । पतिव्रता-गण करे जय जय कार ॥२६२॥
विप्र गणे करिते लागिला वेदध्वनि । मध्ये आसि वसिला द्विजेन्द्र-कुल-मणि ॥२६३॥

देवी के सामने आकर सब बातें कहीं ॥ २४७ ॥ श्रीशची माता कार्य सिद्धि को सुनकर प्रसन्न हुईं और उसके अनुसार सब कार्य में जुट गईं ॥ २४८ ॥ प्रभु के विवाह की बातें सुनकर सभी शिष्य-गण परम प्रसन्न चित्त हुए ॥ २४९ ॥ महाशय श्रीबुद्धिमन्त खान पहले ही कह उठे कि—इस विवाह में जितना व्यय होगा वह सब मेरे ऊपर है ॥ २५० ॥ [ इसी प्रकार और २-४ जन के भार लेने की बातें सुनकर ] श्रीमुकुन्द सञ्जय कहने लगे कि—हे बन्धुओ ! सुनिये, सब भार आप ही लोग ले लेंगे, मुझे कुछ भी नहीं देंगे ? ॥ २५१ ॥ बुद्धिमन्त खान जी बोले कि—हे सब भाइयो ! सुनिये, ( वमनऊआ ) व्याह की तरह इस विवाह में कोई कार्य नहीं होगा ॥ २५२ ॥ मैं निमाञि पण्डित के इस विवाह को ऐसा कराऊँगा जैसा राजकुमार का, जिसको सब दुनियाँ देखे ॥ २५३ ॥ तब सबने मिलकर प्रसन्नता पूर्वक शुभ दिन एवं शुभ क्षण में अधिवास-लग्न की आयोजना की ॥ २५४ ॥ वह इस प्रकार कि—प्रथम सब बड़े-बड़े चन्द्रातपों [ शामियानों ] को टँगवाकर उनके चारों ओर केला मँगवाकर आरोप किये ॥ २५५ ॥ पश्चात् पूर्ण घट, दीप, धान, दधि, आम्र-पल्लव आदि जितने अपार माङ्गलिक द्रव्य हैं ॥ २५६ ॥ उन सबको एक जगह ला लाकर ढेर करके मानो सर्व पृथ्वी को आलेपन-मय कर दिया ॥२५७॥ नवद्वीप में जितने वैष्णव व ब्राह्मण एवं जितने सभ्यपुरुष निवास करते थे ॥ २५८ ॥ उन सब को प्रातःकाल ही निमन्त्रण कर दिया कि—'आप लोग तृतीय प्रहर के समय अधिवास में पधार कर पान, सुपाड़ी में सम्मिलित हों' ॥२५९॥ ज्योंही अपराह्ण-काल हुआ कि—बाजे वाले आकर बाजे बजाने लगे ॥ २६० ॥ तब तो मृदङ्ग, शहनाई, जय ढाक एवं करताल [ मँजीरे ] आदि नाना प्रकार के वाद्यों की विशाल ध्वनि उठी ॥ २६१ ॥ उधर राय-भाट गण स्तुति-गान करने लगे हैं एवं पतिव्रता-

* वामनिया व्याह-जो ब्राह्मणों का विवाह मामूली से द्रव्य में हो जाता है

तवे गन्ध, चन्दन, ताम्बूल, दिव्य माला ब्राह्मण गणेरे सभे दिवारे लागिला। २६५
शिरे माला, सर्व्व अङ्गे लेपिला चन्दने एको बाटा ताम्बूल से देन एको जने २६६
विप्रकुल नदियाय विप्रेर अन्त नाञि, कत जाय कत आइसे अवधि ना पाइ ॥२६७॥
तथि मध्ये लोभिष्ठ अनेक जन आछे। एक बार लैया पुन आर काच काचे ॥२६८॥
आर बार आसि महा-लोकेर गहले। चन्दन, गुवाक, माला निञा निञा चले ॥२६९॥
सभेइ आनन्दे मत्त के काहारे चिने। प्रभुओ हासिया आज्ञा करिला आपने ॥२७०॥
'सभारे ताम्बूल माला देह तिन बार। चिन्ता नाहि, व्ययकर, जे इच्छा जाहार' ॥२७१॥
एक बार निञा जे जे लेइ आर बार। ए आज्ञाय ताहार कैलेन प्रतिकार ॥२७२॥
पाछे केहो चिनिञा विप्रेरे मन्द बोले। परमार्थे दोष हय शाठ्य करि निले ॥२७३॥
विप्र-प्रिय प्रभुर चित्तेर एइ कथा। तिन-बार दिले पूर्ण हैइव सर्व्वथा ॥२७४॥
तिन बार पाइया सभेइ हर्ष मन। शाठ्य करि आर नाहि लय कोन जन ॥२७५॥
एइमत मालाय, चन्दने, गुया,पाने। हइल अनन्त, मर्म्म केहो नाहि जाने ॥२७६॥
मनुष्ये पाइल जत से थाकुक दूरे। पृथ्वीते पड़िल जत दिते मनुष्येरे ॥२७७॥

---

गण जय-जय ध्वनि करने लगीं ॥ २६२ ॥ विप्र-गण वेद-ध्वनि करने लगे उस समय द्विजेन्द्र-कुल मणि श्रीविश्वम्भरचन्द्र उनके बीच में आकर बैठे ॥ २६३ ॥ उनके चारों ओर ब्राह्मण-मण्डली बैठी हुई देखकर सभी लोगों को परम आनन्द हुआ ॥ २६४ ॥ तब श्रीसनातन के स्वजन, ब्राह्मणों को [ इत्र ] चन्दन, ताम्बूल एवं दिव्य माला देने लगे ॥ २६५ ॥ सिर में माला देकर सब अङ्ग को चन्दन से अनुलेपन कर करके एक-एक व्यक्ति को एक-एक डिब्बा ताम्बूल देने लगे ॥ २६६ ॥ विप्रों की बस्ती श्रीनवद्वीप में विप्रों की कोई संख्या सीमित नहीं थी, कितने आते और कितने जाते इसकी कोई सीमा नहीं मिलती थी ॥ २६७ ॥ उनमें अनेक लोभी-जन भी थे, जो एक बार लेकर फिर दूसरा वेश बनाकर ॥ २६८ ॥ महा लोक–सङ्कट में दुबारा आ-आकर चन्दन, पान-सुपाड़ी एवं माला ले लेकर चले जाते थे ॥ २६९ ॥ सब लोग आनन्द में मत्त हो रहे थे, कौन किसको पहिचाने ? तब प्रभु ने भी स्वयं हँसकर आज्ञा दी कि ॥ २७० ॥ 'सब लोगों को ताम्बूल व माला तीन-तीन बार दो, कुछ चिन्ता नहीं जिसकी जो इच्छा हो व्यय करो ॥ २७१ ॥ जो मनुष्य एक बार ले रहे थे, प्रभु ने उक्त आज्ञा से उन सबका प्रतिकार कर दिया ॥ २७२ ॥ विप्र-प्रिय प्रभु के मन में यह बात है कि–'पीछे पहिचान कर स्यात् कोई उन ब्राह्मणों से अपशब्द कहे व दूसरे चोरी करके लेने से परमार्थ-पथ में दोष होता है। तीन-तीन बार देने से इन दोनों बातों से वे बच जाँयगे और सब प्रकार से उनकी मनः संतुष्टि हो जायगी ॥२७३-२७४॥ तीन-तीन बार माला ताम्बूल पाकर सभी लोग प्रसन्न चित्त थे फिर किसी भी मनुष्य ने छल पूर्वक नहीं लिया ॥ २७५ ॥ इसी प्रकार से देते-देते माला, चन्दन, पान-सुपाड़ी आदि सब वस्तुएँ अनन्त हो गईं, परन्तु इस मर्म को किसी ने नहीं जाना अथवा माला, चन्दन, पान एवं सुपाड़ियों में सेवा-विग्रह श्रीअनन्त देव के अधिष्ठान होने से सब वस्तुएँ अनन्त हो जाती हैं इस मर्म को कोई नहीं जानता है २७६ जितनी माला, पान आदि मनुष्यों ने पाये वह तो दूर रहे मनुष्यों को वितरण करने में जो

सेइ जदि प्राकृत लोकेर घरे हये । ताहातेइ तार पाँच विवाह निवाहे ॥२७८॥
सकल लोकेर चित्ते हइल उल्लास । सभे बोले 'धन्य धन्य धन्य अधिवास' ॥२७९॥
लक्षेश्वरो देखियाछि एइ नवद्वीपे । हेन अधिवास नाहि करे कारो बापे ॥२८०॥
ए मत चन्दन, माला, दिव्य गुया, पान । अकातरे केहो कभो नाहि करे दान ॥२८१
तवे 'राज पण्डित' आनन्द चित्त हैया । आइलेन अधिवास-सामग्री लइया ॥२८२॥
विप्र वर्ग आप्त वर्ग करि निज सङ्गे । बहुविध वाद्य-नृत्य-गीत महारङ्गे ॥२८३॥
वेद विधि पूर्व्वक परम हर्ष मने । ईश्वरेर गन्ध स्पर्श कैला शुभ क्षणे ।२८४॥
ततक्षणे महा जय-जय-हरि-ध्वनि । करिते लागिला सभे महा स्वस्ति वाणी ॥२८५॥
पतिव्रता गण देइ जय जय कार । वाद्य गीते हैल महानन्द-अवतार ॥२८६॥
हेन मते करि अधिवास शुभ काज । गृहे चलिलेन सनातन विप्र राज ॥२८७॥
एइ मत गिया ईश्वरेर आप्त गणे । लक्ष्मीरे* करिला अधिवास शुभ क्षणे ॥२८८॥
आर जत किछु लोके लोकाचार वले । दोहाराइ सब करिलेन कुतूहले ॥२८९॥
तवे सुप्रभाते प्रभु करि गङ्गा-स्नान । आगे विष्णु पूजि गौरचन्द्र भगवान ॥२९०॥
तवे शेषे सर्व्व-आप्त गणेर सहिते । वसिलेन नान्दी मुख कर्म्मादि करिते ॥२९१॥
वाद्य-नृत्य-गीते हैल महा कोलाहल । चतुर्दिके जय-जय उठिल मङ्गल ॥२९२॥

---

सामान पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ २७७ ॥ वही यदि प्राकृत लोक के घर में होता तो उससे ही पाँच विवाहों का निर्वाह हो जाता ॥ २७८ ॥ सब लोगों के चित्त परम उल्लासमय थे सभी लोग कहते थे कि—'इस अधिवास को धन्य है, धन्य है ॥ २७९ ॥ हमने इस नवद्वीप में लखपति भी देखे हैं, परन्तु किसी के बाप ने भी ऐसा अधिवास नहीं किया ॥ २८० ॥ इस प्रकार निडर होकर चन्दन, माला एवं दिव्य पान-सुपाड़ी कभी किसी ने यह नहीं दिये ॥ २८१ ॥ तब इधर से 'श्रीराज पण्डित' प्रसन्न चित्त होकर अधिवास सामिग्री लेकर श्री-जगन्नाथ मिश्र के घर आते हैं ॥ २८२ ॥ विप्र वर्ग एवं बन्धु बान्धवों को साथ लेकर अनेक प्रकार के वाद्य, नृत्य, गीत के महारङ्ग में ॥ २८३ ॥ परम प्रसन्न चित्तयुत शुभ क्षण में विधि पूर्वक ईश्वर श्रीविश्वम्भरचन्द्र के अङ्ग में सुगन्धि चन्दन एवं इत्र आदि लगाते ॥ २८४ ॥ उस समय सब लोग जय-जयकार व 'हरि' 'हरि' की ध्वनि एवं महामङ्गल-प्रदायक 'स्वस्ति वाचन' करने लगे ॥ २८५ ॥ पतिव्रता-गण जय-जयकार करने लगीं इस प्रकार वाद्य, गीत द्वारा महा आनन्द का प्राकट्य हुआ ॥ २८६ ॥ इस प्रकार अधिवास का शुभ काज करके श्रीसनातन विप्रराज अपने घर को गये ॥२८७॥ इसी प्रकार प्रभु के आत्मीय जन भी जाकर शुभक्षण में लक्ष्मी जी का अधिवास किया ॥२८८॥ और लोक में जितने 'लोकाचार' कहे जाते हैं दोनों ने ही आनन्द पूर्वक वे सब किये ॥ २८९ ॥ दूसरे दिन सुप्रभात काल में श्रीगौरचन्द्र भगवान् श्रीगङ्गा-स्नान करके, प्रथम श्रीविष्णु-पूजन करके॥२९०॥पश्चात् अपने सब आत्मीयजनों के साथ नान्दीमुख कर्मादि करने को बैठे॥२९१॥ उस समय वाद्य, नृत्य एवं गीतों का महा कोलाहल होने लगा और चारों ओर मङ्गलमयी जय—जय ध्वनि

---

* प्रभु के इस दूसरे विवाह प्रसङ्ग में भी श्रीग्रन्थकार के 'विष्णु-प्रिया' नाम के पहले 'लक्ष्मी' नाम देने से, इस अर्थ में भी कहीं-कहीं 'लक्ष्मी' नाम लिख दिया गया है

पूर्ण-घट, धान्य, दधि, दीप, आम्रसार। स्थापिलेन घरे द्वारे अङ्गने अपार ॥२६३॥
चतुर्दिके नाना-वर्ण उड़ये पताका। कदलक रोपि बान्धिलेन आम्र-पाता ॥२६४॥
तबे आइ पतिव्रता गण लइ सङ्गे। लोकाचार करिते लागिला महा रङ्गे ॥२६५॥
आगे गङ्गा पूजिया परम हर्ष मने। तबे वाद्य बाजने गेलेन षष्ठी स्थाने ॥२६६।
षष्ठी पूजि तबे बन्धु-मन्दिरे-मन्दिरे। लोकाचार करिया आइला निज घरे ॥२६७॥
तबे खइ, कला, तैल, ताम्बुल सिन्दूरे। दिया दिया पूर्ण करिलेन स्त्री गणेरे ॥२६८।
ईश्वर प्रभावे द्रव्य हैल असंख्यात। शचीओ सभारे देन बार पाँच सात ॥२६९॥
तैले स्नान करिलेन सर्व्व नारी-गणे। हेन नाहि परिपूर्ण नहिल जे मने ॥३००॥
एइ मत महानन्द लक्ष्मीर भवने। लक्ष्मीर जननी करिलेन हर्ष मने ॥३०१॥
श्री राज पण्डित अति चित्तेर उल्लासे। सर्व्वस्व निक्षेप करि महानन्दे भासे ॥३०२॥
सर्व्व-विधि-कर्म्म करि श्री गौर सुन्दर। वसिलेन खानिक हइया अवसर ॥३०३॥
तबे सब ब्राह्मणेरे भोज्य वस्त्र दिया। करिलेन सन्तोषे परम नम्र हैया ॥३०४॥
जे जेमन पात्र जार जोग्य जेन दान। सेइ मते करिलेन सभार सम्मान ॥३०५॥
महा प्रीते आशीर्व्वाद करि विप्र गण। गृहे चलिलेन सभे करिते भोजन ॥३०६॥
अपराह्न बेला आसि लागिला हइते। प्रभुर सभेइ वेश लागिला करिते ॥३०७॥
चन्दने लेपित करि सकल श्री अङ्ग। मध्ये मध्ये सर्व्वत्र दिलेन तथि गन्ध ॥३०८॥

---

उठ खड़ी हुई ॥ २६२ ॥ घर, द्वार एवं आँगन में अपार पूर्ण-घट, धान, दधि, दीप और आम्र-पल्लव स्थापित कर दिये गये थे ॥ २६३ ॥ चारों ओर नाना रङ्गों की पताकायें उड़ रही थीं कदली वृक्ष रोपण करके उनके ऊपर आम के पत्ते बाँध दिये गये थे ॥ २६४ ॥ उसी समय श्रीशची माता पतिव्रता गण को साथ लेकर परम आनन्द युक्त होकर लोकाचार करने लगी ॥ २६५ ॥ प्रथम परम प्रसन्न-चित्त से श्रीगङ्गाजी का पूजन करके बाजों की घोर के साथ श्रीषष्ठी देवी के मन्दिर को गईं ॥ २६६ ॥ वहाँ श्रीषष्ठी पूजन करके अपने बन्धुओं के प्रत्येक घर पर लोकाचार करती हुईं अपने घर लौटीं ॥ २६७ ॥ यहाँ आकर स्त्री-गण को खील,केला,तेल, पान एवं सिंदूर दे देकर उनको प्रसन्न कर रही थीं ॥ २६८ ॥ प्रभु के प्रभाव से द्रव्य [ वस्तुएँ ] असीम हो गईं थीं, श्रीशची 'मा' भी सबको पाँच-पाँच, सात-सात बार दे रही थी ॥ २६९ ॥ सब स्त्रियाँ तेल में नहा गईं थीं ऐसी कोई भी स्त्री नहीं थी जो अपने मन में भरपूर सन्तुष्ट न हुई हो ॥ ३०० ॥ इसी प्रकार श्रीविष्णु प्रिया की माताजी भी अपने यहाँ प्रफुल्ल चित्त से महा आनन्द मना रही थी ॥ ३०१ ॥ यहाँ श्रीराज-पण्डित जी चित्त के उल्लास में आकर सब कुछ निक्षेप कर महा आनन्द सागर में प्रवाहित हो रहे थे ॥ ३०२ ॥ इधर श्रीगौर सुन्दर सब विधि-कर्म पूर्ण करके जब अवसर पाकर थोड़ी देर बैठे ॥ ३०३ ॥ तब परम नम्रता पूर्वक विप्र वर्ग को भोजन एवं वस्त्र देकर उन्हें प्रसन्न करने लगे ॥ ३०४ ॥ जो जैसा पात्र था अथवा जिसको जैसा दान उचित था प्रभु उसी प्रकार से सब का सत्कार कर रहे थे ॥ ३०५ ॥ विप्रगण भी महा प्रीतिपूर्वक भोजन करके आशीर्वादें देकर अपने-अपने घरों को गये ॥ ३०६ ॥ जब तृतीय प्रहर का समय हुआ तो सब लोग आकर प्रभु की वेश रचना करना प्रारम्भ करने लगे ३०७॥ आपके समस्त श्रीअङ्ग में चन्दन अनुलेपित कर

अर्द्ध चन्द्राकृति करि ललाटे चन्दन । तथि मध्ये गन्धेर तिलक सुशोभन ॥३०९॥
अद्भुत मुकुट शोभे शिरेर ऊपर । सुगन्धि मालाय पूर्ण हैल कलेवर ॥३१०॥
दिव्य सूक्ष्म पीत वस्त्र त्रिकच्छ विधाने । पराइया कज्जल दिलेन श्री नयाने ॥३११॥
धान्य दूर्व्वा सूत्र करे करिया बन्धन । धरिते दिलेन रम्भा मञ्जरी दर्पण ॥३१२॥
सुवर्ण कुण्डल दुइ श्रुति मूले साजे । नवरत्न हार बान्धि लेन बाहु-माझे ॥३१३॥
एइ मत जे जे शोभा करे जे जे अङ्गे । सकल घटना सभे करिलेन रङ्गे ॥३१४॥
ईश्वरेर मूर्त्ति देखि जत नर नारी । मुग्ध हइलेन सभे आपना पासरि ॥३१५॥
प्रहरेक बेला आछे हेनइ समय । सभेइ बोलेन 'शुभ कराह विजय ॥३१६॥
प्रहरेक सर्व्व नवद्वीपे बेड़ाइया । कन्या घरे जाइवेन गोधूलि करिया ॥३१७॥
तबे दिव्य दोला साजि बुद्धिमन्त खान । हरिषे आनिञा करिलेन उपस्थान ॥३१८॥
वाद्य गीते उठिल परम कोलाहल । विप्र गणे करे वेद-ध्वनि सुमङ्गल ॥३१९॥
भाट गणे पढ़िते लागिल राइबार । सर्व्व दिके हइल आनन्द अवतार ॥३२०॥
तबे प्रभु जननीरे प्रदक्षिणा करि । विप्र गणे नमस्कार बहुमान्य करि ॥३२१॥
दोलाय वसिला श्रीगौराङ्ग महाशय । सर्व्व दिके उठिल मङ्गल जय जय ॥३२२॥
नारी गण दिते लागिलेन जय कार । शुभ-ध्वनि बइ कोनो दिके नाहिं आर ॥३२३॥
प्रथमे विजय करिलेन गङ्गातीरे । पूर्ण चन्द्र धरिलेन शिरेर उपरे ॥३२४॥

---

बीच-बीच में इत्र आदि सुगन्धित द्रव्य लगाते थे ॥३०८॥ ललाट प्रदेश में अर्द्ध-चन्द्र की आकृति का चन्दन रचना कर उसके बीच में सुगन्धित कपूर, केशर आदि वस्तुओं का मिश्रित तिलक सुशोभित किया ॥३०९॥ सिर के ऊपर अद्भुत शोभाशाली मुकुट सजाया, सुगन्धित मालाओं द्वारा आपके गल देश एवं वक्षस्थल को परिपूर्ण कर दिया ॥ ३१० ॥ त्रिकच्छ विधान से दिव्य, सूक्ष्म एवं पीली धोती पहनाकर श्रीनयनों में काजल लगाया ॥ ३१२ ॥ एक सूत्र में धान एवं दूब बाँधकर फिर उसको आपके हाथ में बाँधा व केले की मञ्जरी और दर्पण हाथ में रखने के लिये दिये ॥ ३१२ ॥ दोनों कर्ण-मूलों में दो सोने के कुण्डल सजाकर पहनाये बाहुओं में नवीन-नवीन रत्नों केहार के केयूर बाँध दिये ॥ ३१३ ॥ इसी प्रकार जो वस्तु व अलङ्कार जिस-जगह फब सकते थे रङ्ग पूर्वक वह सब वस्तुएँ व अलङ्कार वहीं-वहीं संयोजित किये ॥ ३१४ ॥ प्रभु की मूर्त्ति के दर्शन करके सब नरनारी अपने को भूलकर मुग्ध हो रहे थे ॥३१५॥ जब लगभग एक प्रहर समय अवशेष आया, उस समय सब लोगों ने कहा कि-'अब विश्वम्भरचन्द्र की शुभ-विजय ( यात्रा ) कराओ ॥ ३१६ ॥ लगभग एक पहर नवद्वीप में घूम कर गोधूलि के समय कन्या के घर पहुँचना है ॥ ३१७ ॥ तब श्रीबुद्धिमन्त खान ने एक दिव्य पालकी सजवाकर आनन्द-पूर्वक लाकर उपस्थित की ॥ ३१८ ॥ उस समय वाद्यों एवं गीतों द्वारा परम कोलाहल उठ खड़ा हुआ विप्र-गण सुमङ्गल वेद-ध्वनि करने लगे ॥ ३१९ ॥ राय-भाट-गण स्तुति गान करने लगे इस प्रकार चारों ओर आनन्द का अवतरण हुआ॥३२०॥तब प्रभु श्रीगौराङ्ग महाशय माताजी की परिक्रमा करके व परम सत्कार पूर्वक विप्र-गण को नमस्कार करके पालकी में विराजे और चारों ओर मङ्गलमयी जय जय की ध्वनि उमड़ पड़ी ३२१ ३२२ नारीगण भी जय जयकार करने लगी, शुभ ध्वनिया

আগে জত পদাতিক বুদ্ধিমন্ত খাঁর  চলিলা হইয়া দুই সারি পাটোয়ার  ३२६
नाना वर्णे पताका चलिल तार पाछे  विदूषक सकल चलिला नाना काचे  ३२७
नर्त्तक वा ना जानि कतेक सम्प्रदाय , परम उल्लासे दिव्य नृत्य करि जाय ..३२८..
जय ढाक,वीर ढाक, मृदङ्ग काहाल । पटह, दगड, शङ्ख, बंशी, करताल ॥३२९॥
वरगों, शिङ्गा, पञ्च शब्दी,वाद्य वाजे जत । के लिखिवे वाद्य-भाण्ड वाजि जाय कत॥३३०॥
लक्ष लक्ष शिशु वाद्य-भाण्डेर भितरे । रङ्गे नाचि जाय, देखि हासेन ईश्वरे ॥३३१॥
से महा कौतुक देखि शिशुर कि दाय । ज्ञानवान सभे लज्जा छाड़ि नाचि जाय ॥३३२॥
प्रथमे आसिया गङ्गा-तोरे कथो क्षण । करिलेन नृत्य-गीत-आनन्द-बाजन ॥३३३॥
तबे पुष्प वृष्टि करि गङ्गा नमस्करि । भ्रमेन कौतुके सर्व्व-नवद्वीप पुरी ॥३३४॥
देखि अति अमानुषी विवाह-सम्भार । सर्व्व लोक चित्ते महा पाय चमत्कार ॥३३५॥
'बड़ बड़ विवाह देखियाछि' लोके बले । 'ए मत समृद्ध नाहि देखि कोनो काले' ॥३३६॥
एइ मत स्त्री पुरुषे प्रभुरे देखिया । आनन्दे भासये सब सुकृति नदिया ॥३३७॥
सभे जार रूपवती कन्या आछे घरे । सेइ सब विप्र सभे विमरिष करे ॥३३८॥
'हेन वरे कन्या नाहि पारिलाङ दिते । आपनार भाग्य नाहि, हइब केमते' ॥३३९॥

---

के अतिरिक्त किसी ओर कभी अन्य कोई शब्द सुनने में नहीं आता था ॥ ३२३ ॥ प्रथम प्रभु ने श्रीगङ्गा-तट की यात्रा की, पर्ण चन्द्रमा के आकार का मुकुट [ मौहर ] सिर पर धारण कर रक्खा है ॥ ३२४ ॥ सहस्रों-सहस्रों मसालें जलने लगीं, सब नाना प्रकार की आतिशबाजी छोड़ने लगे ॥ ३२५ ॥ श्रीबुद्धिमन्त खान के जितने पैदल एवं शस्त्रधारी सिपाही थे आगे-आगे दो लाइनों में होकर चल रहे थे ॥ ३२६ ॥ उनके पीछे रङ्ग-बिरङ्गी पताकायें चल रहीं थीं—समस्त विदूषक [ स्वांग ] बना २ कर अनेक वेशों में चल रहे थे ॥ ३२७ ॥ और न जाने कितने सम्प्रदायों के [प्रकार के] नर्त्तक परम उल्लास पूर्वक दिव्य नृत्य करते हुए चलते थे॥३२८॥ जय ढाक, वीर ढाक, मृदङ्ग, काहाल, पटह, दुन्दुभि, शङ्ख, बंशी, करताल, वरगों, शिङ्गा, पञ्च शब्दी आदि जितने प्रकार के बाजे बजते चलते थे उनकी गणना करके लिखा नहीं जा सकता था ॥३३०॥बाजों के बीच में लाखों-लाखों शिशु अपूर्व रङ्ग दिखलाते हुए नाचते चलते थे उनको देख कर प्रभु हँसते जाते थे ॥ ३३१ ॥ इस महा कौतुक को देखकर शिशुओं की तो क्या चले बड़े २ ज्ञानवान् भी लज्जा त्याग कर नाचने लगते थे ॥३३२॥प्रथम श्रीगङ्गा तट पर आकर कुछ समय आनन्द-प्रद नृत्य-गीत एवं बाजों की ध्वनि करते रहे ॥३३३॥ तत्पश्चात् पुष्प-वृष्टि करके एवं श्रीगङ्गा जी को नमस्कार करके आनन्द पूर्वक सब नवद्वीप पुरी का भ्रमण किया ॥ ३३४ ॥ इस अमानुषी विवाह के ठाट-बाट को देखकर सब लोगों के चित्त में परम आश्चर्य होता था ॥ ३३५ ॥ वे कहते थे कि—'हमने बड़े-बड़े विवाह देखे हैं, परन्तु इस प्रकार का समृद्धशाली विवाह किसी काल में भी हमने नहीं देखा' ॥ ३३६ ॥ इस प्रकार श्रीनवद्वीपवासी सुकृतिवान् सब स्त्री-पुरुष प्रभु को देख-कर आनन्द में भास रहे थे ॥३३७॥ वह सब विप्र जिनके घरों में रूपवती कन्यायें थीं वे मन में कुछ दुःख करते थे कि ॥ ३३८ ॥ हम ऐसे वर को अपनी कन्या नहीं दे सके, अपने भाग्य में नहीं था. होता किस प्रकार

नवद्वीप ग्रामीर चरणे नमस्कार । ए सब आनन्द देखिवारे शक्ति जार ॥३४०।
एइ मत रङ्गे प्रभु नगरे नगरे । भ्रमेन कौतुके सर्व्व नवद्वीप पुरे ॥३४१॥
गोधूलि समय आसि प्रवेश हइते । आइलेन राज पण्डितेर मन्दिरेते ॥३४२॥
महा जय जयकार लागिल हइते । दुइ वाद्य भाण्डवादे लागिल बाजिते ॥३४३॥
परम सम्भ्रमे राज पण्डित आसिया । दोला हैते कोले करि बसाइला निञा ॥३४४॥
पुष्प बृष्टि करिलेन सन्तोषे आपने । जामाता देखिया हर्षे देह नाहि जाने ॥३४५॥
तबे वरणेर सज्ज सामिग्री लइया । जामाता वरिते विप्र वसिला आसिया ॥३४६॥
पाद्य, अर्घ, आचमनी, वस्त्र, अलङ्कार । यथाविधि दिया कैल वरण व्यभार ॥३४७॥
तबे तान पत्नी नारी गणेर सहिते । मङ्गल विधान आनि लागिला करिते ॥३४८॥
धान्य दूर्व्वा दिलेन प्रभुर श्रीमस्तके । आरति करिया सप्त-घृतेर प्रदीपे ॥३४९॥
खइ कड़ि फेलि करिलेन जय.कार । एइ मत जत किछु करि लोकाचार ॥३५०॥
तबे सर्व अलङ्कारे भूषित करिया । लक्ष्मी देवी आनिलेन आसने धरिया ॥३५१॥
तबे हर्षे प्रभुर सकल आप्त गणे । प्रभुरेओ तुलिलेन धरिया आसने ॥३५२॥
तबे मध्ये अन्तःपट धरि लोकाचारे । सप्त प्रदक्षिण कराइलेन कन्यारे ॥३५३॥
तबे लक्ष्मी प्रदक्षिण करि सात वार । रहिलेन सम्मुखे करिया नमस्कार ॥३५४॥
तबे पुष्प केला फेलि लागिल हइते । दुइ वाद्य भाण्ड महा लागिल बाजिते ॥३५५॥

॥ ३३९ ॥ श्रीग्रन्थकार कहते हैं कि-श्रीनवद्वीपवासियों के चरणों में मेरा नमस्कार है जिनको यह सब आनन्द देखने की शक्ति थी एवं है ॥३४०॥ इसी प्रकार से प्रभु रङ्ग पूर्वक व आनन्दित हुए श्रीनवद्वीपपुरी के [ नौ नगरों के बाजारों में ] प्रत्येक मुहल्ले में भ्रमण करने लगे ॥ ३४१ ॥ गोधूलि समय [ प्रवेश होते-होते ज्ञात होता है कि ] प्रभु श्रीराज पण्डित के घर पर पहुँच गये ॥ ३४२ ॥ उस समय महा जय-जयकार होने लगा दोनों ओर के बाजे स्वरों से बज रहे थे ॥ ३४३ ॥ राज-पण्डित जी ने परम शीघ्रता पूर्वक आकर प्रभु को पालकी से स्वयं गोद में लेकर उतार कर बिठलाया ॥ ३४४ ॥ और प्रसन्न होकर आप स्वयं पुष्प-वृष्टि करने लगे, जामाता को देखकर हर्ष के कारण देह ज्ञान नहीं रहा ॥ ३४५ ॥ पश्चात् 'वरण' की सामिग्री लेकर श्रीराज-पण्डित आकर जामाता को वरण करने के लिये बैठे ॥ ३४६ ॥ और यथा-विधि पाद्य, अर्घ्य, आचमनी, वस्त्र एवं अलङ्कार आदि देकर 'वरण' व्यवहार सम्पन्न किया ॥ ३४७ ॥ पश्चात् उनकी पत्नी नारी-गण के साथ आकर मङ्गल विधान करने लगीं ॥ ३४८ ॥ प्रथम प्रभु के श्रीमस्तक में धान एवं दूब दी, फिर सात घी के दीपकों से आरती करके खील एवं कौड़ी गिरा कर जय-जयकार किया; इसी प्रकार सब लोकाचार करके ॥३४९-३५०॥ पश्चात् लक्ष्मी देवी को सब अलङ्कारों से भूषित करके आसन पर बैठाकर विवाह मण्डप में ले आईं उधर प्रभु के आत्मीय-जन हर्ष पूर्वक प्रभु को भी आसन पर बैठाकर ऊपर उठा लिया॥ ३५१-३५२॥ पश्चात् लोकाचार के अनुसार लोगों एवं वर-कन्या के बीच में १ पर्दा लगाकर कन्या द्वारा वर की सात परिक्रमा कराईं ॥ ३५३ ॥ तब लक्ष्मी जी सात प्रदक्षिणायें पूर्ण करके नमस्कार पूर्वक प्रभु के सम्मुख खड़ी हो गईं ॥ ३५४ उस समय वर-कन्या के ऊपर पुष्प वृष्टि होने लगी दोनों ओर के बाज परम उच्च ध्वनि

चतुर्दिके स्त्री पुरुषे करे जय ध्वनि । आनन्द आसिया अवतरिला आपनि ।।३५६।।
आगे लक्ष्मी जगन्माता प्रभुर चरणे । माला दिया करिलेन आत्म समर्पणे ।।३५७।।
तबे गौर चन्द्र प्रभु ईषत् हासिया । लक्ष्मीर गलाय माला दिलेन तुलिया ।।३५८।।
तबे लक्ष्मी नारायणे पुष्प-फेला फेलि । करिते लागिला हइ महा-कुतूहली ।।३५९।।
ब्रह्मादि-देवता सब अलक्षित रूपे । पुष्प वृष्टि लागिलेन करिते कौतुके ।।३६०।।
'आनन्द विवादे' लक्ष्मी-गणे प्रभु-गणे । उच्चकरि वर कन्या तोले हर्ष मने ।।३६१।।
क्षणे जिने प्रभु-गणे, क्षणे लक्ष्मी-गणे । हासि हासि प्रभुरे बोलये सर्व्व जने ।।३६२।।
ईषत् हासिला प्रभु सुन्दर श्री मुखे । देखि सर्व्व लोक भासे परानन्द सुखे ।।३६३।।
सहस्र सहस्र महाताप दीप ज्वले । कर्णे किछु नाहि शुनि वाद्य कोलाहले ।।३६४।।
मुख चन्द्रिकार महा वाद्य जय ध्वनि । सकल ब्रह्माण्ड स्पर्शिलेक हेन शुनि ।।३६५।।
हेन मते श्री मुख-चन्द्रिका करि रङ्गे । वसिलेन श्री गौर सुन्दर लक्ष्मी सङ्गे ।।३६६।।
तबे राज पण्डित परम हर्ष मने । वसिलेन करिवारे कन्या सम्प्रदाने ।।३६७।।
पाद्य अर्घ्य आचमनी यथा-विधि मते । क्रियाकरि लागिलेन सङ्कल्प करिते ।।३६८।।
विष्णु प्रीति काम्य करि श्रीलक्ष्मीर पिता । प्रभुर श्रीकरे समर्पिलेन दुहिता ।।३६९।।
तबे दिव्य-धेनु, भूमि शय्या, दासी, दास । अनेक जौतुक दिया करिला उल्लास ।।३७०।।
लक्ष्मी वसाइलेन प्रभुर बाम पाशे । होम कर्म्म करिते लागिला तबे शेषे ।।३७१।।

---

के साथ बजने लगे ।। ३५५।। चारों ओर से स्त्री-पुरुष 'जय' जय' की ध्वनि करते थे, ज्ञात होता था, मानो आनन्द ही स्वयं आकर अवतीर्ण हुआ है ।।३५६।। प्रथम जग-माता लक्ष्मी देवी ने प्रभु के श्रीचरणों में माला देकर आत्म-समर्पण किया ।। ३५७ ।। पश्चात् श्रीगौरचन्द्र तनक हँसते हुए वह माला उठाकर लक्ष्मी जी के गले में दे दी ।। ३५८ ।। पश्चात् ( मध्य में रक्खी हुई फूलों भरी थाली में पुष्प ले लेकर ) परम आनन्द पूर्वक 'लक्ष्मी-नारायण' परस्पर एक दूसरे के ऊपर पुष्प-वृष्टि करने लगे ।। ३५९ ।। उस समय ब्रह्मा आदि देवता भी अलक्षित रूप से कौतुक पूर्वक पुष्प-वृष्टि करने लगे ।। ३६० ।। पश्चात् 'आनन्द विवाद' होने लगा, जिसमें लक्ष्मी जी के पक्ष वाले लक्ष्मी जी को और प्रभु के पक्ष वाले प्रभु को श्रेष्ठतम् पदवी पर बिठलाते थे ।।३६१।। कभी वर-पक्ष जीत जाता तो कभी कन्या-पक्ष । जब कन्या-पक्ष की जीत होती तो सब जन ( युवतियाँ ) हँस-हँस कर प्रभु से बातें हँसी की करती थीं ।। ३६२ ।। उस समय प्रभु सुन्दर श्रीमुख से ईषत् [ तनिक ] हँस देते उसको देखकर सब लोग परम-आनन्द-सुख में प्रवाहित होते थे ।। ३६३ ।। हजारों-हजारों महाप्रकाशमान मसालें जल रही थीं, बाजों के कोलाहल में कानों से कुछ सुनाई नहीं देता था ।। ३६४ ।। 'मुख-चन्द्रिका' के समय बाजों की एवं जयकारों की महाध्वनि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को स्पर्श करने वाली हो रही थी ।। ३६५ ।। इस प्रकार श्रीगौर सुन्दर रङ्गपूर्वक 'मुख-चन्द्रिका' करके श्रीविष्णु-प्रिया जी के साथ बैठे ।। ३६६ ।। तब श्रीराज-पण्डित परम प्रसन्न मन से 'कन्या-दान' के लिये बैठे ।। ३६७ ।। यथाविधि पाद्य, अर्घ्य, आचमन की क्रिया पूर्ण करके संकल्प करने लगे ।। ३६८ ।। श्रीविष्णु प्रिया जी के पिता ने विष्णु-प्रीति की कामना करके प्रथम अपनी पुत्री को प्रभु के श्रीकरों में समर्पण किया ।। ३६९ ।। पश्चात् दिव्य दिव्य गौए, भूमि, शय्या, दासी

वेदाचार लोकाचार जत किछु आछे । सब करि वर-कन्या घरे निला पाछे ॥३७२॥
वैकुण्ठ हइल राज-पण्डित आवासे । भोजन करिते जाइ बसिलेन शेषे ॥३७३॥
भोजन करिया सुख रात्रि सुमङ्गले । लक्ष्मी-कृष्ण एकत्र रहिलेन कुतूहले ॥३७४॥
सनातन पण्डितेर गोष्ठीर सहिते । जे सुख हइल, ताहा, के पारे कहिते ॥३७५॥
नग्नजित, जनक, भीष्मक, जाम्बुवन्त । पूर्व्वे ताना जे हेन हइल भाग्यवन्त ॥३७६॥
सेइ भाग्य एबे गोष्ठी सह सनातन । पाइलेन पूर्व्वे विष्णु-सेवार कारण ॥३७७॥
तबे रात्रि प्रभाते जे छिल लोकाचार । सकल करिला सर्व्व भुवनेर सार ॥३७८॥
अपराह्ने गृहे आसिबार हैल काल । वाद्य नृत्य गीत हैते लागिल विशाल ॥३७९॥
चतुर्दिके जय-ध्वनि लागिल हइते । नारी गणे जयकार लागिलेन दिते ॥३८०॥
विप्रगण आशीर्व्वाद लागिला करिते । यात्रा योग्य श्लोक सभे लागिला पढ़िते ॥३८१॥
ढाक, पढ़ा, सानाजि, वरगों, करताल । अन्योऽन्येवाद करि बाजाय विशाल ॥३८२॥
तबे प्रभु नमस्करि सर्व्व मान्य गण । लक्ष्मी सङ्गे दोलाय करिला आरोहन ॥३८३॥
हरि हरि वलि तबे करि जय ध्वनि । चलिलेन लइया द्विजेन्द्र-कुल-मणि ॥३८४॥
पथे जत लोक देखे चलिया आसिते । धन्य धन्य प्रशंसे सभेइ बहु मते ॥३८५॥
स्त्रीगण देखिया बोले 'एइ भाग्यवती । कत जन्म सेविलेन कमला पार्व्वती ॥३८६॥

---

एवं दास आदि अनेक दहेज में देकर उल्लास मनाने लगे ॥ ३७० ॥ तब विष्णु-प्रियाजी के वाम भाग बैठाया पश्चात् होम-कर्म किया ॥ ३७१ ॥ सब वेदाचार एवं लोकाचार पूर्ण करके फिर वर व कन्या को घर में ले गये ॥ ३७२ ॥ श्रीराज पण्डित का घर वैकुण्ठ हो रहा था पश्चात् अन्त में वर-कन्या भोजन करने के लिये जाकर बैठे ॥ सुख पूर्वक भोजन करके लक्ष्मी जी एवं श्रीकृष्ण ने आनन्द, उल्लास के साथ रात्रि में एक ही जगह वास किया ॥ ३७४ ॥ श्रीसनातन पण्डित को निज बन्धु-बान्धवों के सहित जो सुख हुआ है उसे कौन वर्णन कर सकता है ? ॥ ३७५ ॥ पूर्व काल में नग्नजित, जनक, भीष्मक एवं जाम्बुवन्त जितने भाग्यशाली हुए ॥ ३७६ ॥ उतना ही सौभाग्य निज आत्मीय जनों के सहित श्रीसनातन जी को पूर्व जन्म की श्रीविष्णु-सेवा के कारण प्राप्त हुआ॥३७७॥पश्चात् प्रभात कालीन रात्रि के अवसर में जो लोकाचार उन्हें किया॥३७८॥ जब तीसरे पहर घर आने की बेला आई है तब विशाल वाद्य, नृत्य एवं गीत फिर आरम्भ हुए ॥ ३७९ ॥ चारों ओर में 'जय' 'जय' की ध्वनि होने लगी । स्त्रीगण भी 'जय' 'जयकार' करने लगे ॥ ३८० ॥ विप्र-गण आशीर्वाद करने लगे और सब ही पण्डित-गण यात्रा के योग्य श्लोक पाठ करने लगे । बाजे वाले परस्पर में स्पर्द्धा के साथ ढाक ( ढोल ) पढ़ा (पड़ब-ताशे) शहनाई, वरगों (तुरही) एवं करताल आदि बाजों को विशाल ध्वनि के साथ बजाते थे ॥३८२॥ तब प्रभु सब माननीय-वृन्द को नमस्कार करके लक्ष्मी जी के सहित पालकी में विराजे ॥ ३८३ ॥ 'हरि'-'हरि' एवं 'जय'-'जय' की ध्वनियाँ करके द्विजेन्द्र-कुल-मणि श्रीगौरचन्द्र को लेकर चले ॥ ३८४ ॥ पथ में जितने लोग प्रभु को जाते हुए देखते थे वह सभी अनेक प्रकार से इनकी प्रशंसा करते थे ३८५ स्त्रीगण देखकर कहती थीं कि—'इस भाग्यवती ने न जाने कितने जन्म पर्यन्त लक्ष्मी जी एव पार्वती जी की सेवा की है' ३८६ कोई कहती कि 'ऐसा मालूम होता है कि यही श्रीमहेश व पार्वती

केह बोले 'एइ हेन बुझि हर गौरी' । केह बोले 'हेन बुझि कमला श्री हरि' ॥३८७॥
केहो बोले 'एइ दुइ—कामदेव-रति । केहो बोले 'इन्द्र-शची लय मोर मति' ॥३८८
केह बोले 'हेन बुझि रामचन्द्र-सीता' । एइ मत बोले सर्व्व सुकृति बनिता ॥३८९॥
हेन भाग्यवन्त स्त्री पुरुष नदियार । ए सब सम्पत्ति देखिबारे शक्ति जार ॥३९०॥
लक्ष्मी नारायणेर मङ्गल-दृष्टिपाते । सुख मय सर्व्व लोक हैल नदियाते ॥३९१॥
नृत्य, गीत, वाद्य, पुष्प वर्षिते वर्षिते । परम आनन्दे आइसेन सर्व्व-पथे ॥३९२॥
तबे शुभ क्षणे प्रभु सकल मङ्गले । आइलेन गृहे लक्ष्मी-कृष्ण कुतूहले ॥३९३॥
गृहे आसि वसिलेन लक्ष्मी-नारायण । जय ध्वनि मय हैल सकल भुवन ॥३९४॥
कि आनन्द हइल से अकथ्य कथन । से महिमा कोन जने करिब वर्णन ॥३९५॥
जाहार मूर्त्तिर विभा देखिले नयने । सर्व्व-पाप युक्तो जाय वैकुण्ठ-भुवने ॥३९६॥
से प्रभुर विभा लोक देखये साक्षाते । तेञि तान नाम दयामय दीनानाथे ॥३९७॥
तबे जत नट, भाट, भिक्षुक गणेरे । तुषिलेन वस्त्र-धन वचने सभारे ॥३९८॥
विप्रगण-आप्त गण सभारे प्रत्येके । आपने ईश्वर वस्त्र दिलेन कौतुके ॥३९९॥
बुद्धिमन्त खाने प्रभु दिला आलिङ्गन । ताहान आनन्द अति अकथ्य कथन ॥४००॥
ए सब लीलार कभु नाहि परिच्छेद । 'आविर्भाव' 'तिरोभाव' सबे कहे वेद ॥४०१॥

---

है' । कोई कहती कि—उसको तो ऐसा समझ पड़ता है कि—'यह श्रीलक्ष्मी-नारायण हैं' ॥ ३८७ ॥ कोई कहती थी 'यह दोनों कामदेव व रति हैं' और कोई कहती थी—'मेरी बुद्धि के अनुसार तो यह इन्द्र-शची हैं' ॥३८८॥ कोई कहती थी कि-'यह तो ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे श्रीरामचन्द्र व सीताजी हों' तब सुकृति-शीला वनिताएँ इसी प्रकार से अपनी-अपनी मति के अनुसार कहती थीं ॥ ३८० ॥ श्रीनवद्वीप के ऐसे भाग्यवान् स्त्री-पुरुष है, जिनमें यह सब सम्पत्ति देखने की शक्ति है ॥ ३९० ॥ लक्ष्मी-नारायण के शुभ दृष्टिपात से श्रीनवद्वीप के सब लोग सुखमय होगये ॥ ३९१ ॥ सब लोग सम्पूर्ण-पथ में नृत्य, गीत, वाद्य एवं पुष्प-वृष्टि करते-करते परम आनन्द पूर्वक चले आ रहे थे ॥ ३९१ ॥ पश्चात् सकल मङ्गल के साथ आनन्द पूर्वक लक्ष्मी-कृष्ण [ श्री-विष्णु प्रिया-श्रीगौरचन्द्र ] शुभ क्षण में घर के निकट आ पहुँचे ॥ ३९२ ॥ तब श्रीशची माता पतिव्रता स्त्री-गण साथ लेकर हृष्ट-चित्त से पुत्र एवं पुत्र-बधू को द्वार पर से घर लिवा लाईं ॥ ३९४ ॥ जब श्रीलक्ष्मी-नारायण घर में आकर बैठे उस समय सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में 'जय' 'जय' की ध्वनि गूँजने लगी ॥ ३९४ ॥ उस समय जो अद्भुत आनन्द हुआ वह अकथनीय है उस समय के सुख की महिमा को कौन मनुष्य वर्णन कर सकता है ॥ ? ३९५ ॥ जिसकी श्रीमूर्त्ति का विवाह भी नेत्रों से देख लेने पर सर्व-पाप युक्त भी श्रीवैकुण्ठ-धाम को जाता है ॥ ३९६ ॥ उसी प्रभु का विवाह लोग प्रत्यक्ष देखते थे ( आश्चर्य ) इसीलिये उनका नाम दयामय एवं दीनानाथ है ॥ ३९७ ॥ पश्चात् श्रीशची माता ने नट, भाट, भिक्षुक आदिकों को वस्त्र, धन एवं मीठी वाणी द्वारा प्रसन्न किया था ॥ ३९८ ॥ उधर विप्र-गण एवं आत्मीय बन्धु-बान्धवों को प्रभु स्वयं अपने हाथों से वस्त्र दे देकर उन्हें प्रसन्न कर रहे थे ३९९ श्रीबुद्धिमन्त खान को प्रभु ने आलिङ्गन दिया उसका आनन्द भी अति है ४०० इन सब लीलाओं का कभी विराम नहीं है वेद केवल इनको

दण्डेके ए सब लीला जत हइयाछे । शत वर्षे ताहाके वर्णित केबा आछे ? ॥४०२॥
नित्यानन्द स्वरूपेर आज्ञा करि शिरे । सूत्र-मात्र लिखि आमि कृपा अनुसारे ॥४०३॥
ए सब ईश्वर लीला जे पड़े जे शुने । से अवश्य विहरये गौरचन्द्र सने ॥४०४॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चाँद जान । वृन्दावनदास तछु पद युगे गान ॥४०५॥

इति श्रीचैतन्य भागवते आदिखण्डे श्रीविष्णु-प्रिया-परिणय वर्णनं नाम
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

## एकादशोऽध्यायः

जय जय दीनबन्धु श्रीगौर सुन्दर । जय जय लक्ष्मीकान्त सबार ईश्वर ॥१॥
जय जय भक्त-रक्षा हेतु अवतार । जय सर्व्व काल सत्य कीर्त्तन-विहार ॥२॥
भक्त-गोष्ठी सहित गौराङ्ग जय जय । शुनिले चैतन्य कथा भक्ति लभ्य हय ॥३॥
आदि खण्ड कथा अति अमृतेर धार । जहि गौराङ्गेर सर्व्व-मोहन विहार ॥४॥
हेन मते वैकुण्ठ नायक नवद्वीपे । गृहस्थ हइया पढ़ायेन विप्र रूपे ॥५॥
प्रेम-भक्ति-प्रकाश-निमित्त अवतार । ताहा किछु ना करेन इच्छा से ताँहार ॥६॥
अति परमार्थ-शून्य-सकल संसार । तुच्छ-रस विषये से आदर सभार ॥७॥
गीता भागवत वा पढ़ाय जे जे जन । ताराओ ना बोले ना बोलाये कीर्त्तन ॥८॥
हाथे तालि दिया वा सकल भक्त गण । आपना आपनि मेलि करेन कीर्त्तन ॥९॥

आविर्भाव एवं तिरोभाव नाम से पुकारते हैं ॥ ४०१ ॥ इन सब लीला में से एक घड़ी के भीतर जितनी लीलायें हुईं, ऐसा कौन मनुष्य है जो उनको १०० वर्ष में भी वर्णन कर सके ? ॥४०२॥ श्रीनित्यानन्द स्वरूप की आज्ञा सिर पर धारण करके मैंने उनकी कृपा से ही प्रभु की लीला को सूत्र-मात्र में ही लिखा है ॥४०३॥ प्रभु की इन सब लीलाओं को जो पढ़ते एवं सुनते हैं वह मनुष्य अवश्य श्रीगौरचन्द्र के साथ विहार करते हैं ॥ ४०४ ॥ श्रीकृष्ण चैतन्य एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र को जान कर श्रीवृन्दावनदास उनके युगल चरणों में उनके गुण-गान करता है ॥ ४०५ ॥

हे दीनबन्धु श्रीगौर सुन्दर ! आपकी जय हो जय हो, हे लक्ष्मीकान्त ! हे सब प्राणियों के ईश्वर श्रीगौर सुन्दर ! आपकी जय हो, जय हो ॥ १ ॥ हे भक्त-रक्षा-हेतु अवतार धारण करने वाले प्रभो ! आपकी जय हो, जय हो । हे सर्व्व काल सत्य ! हे कीर्त्तन-विहारी ! आपकी जय हो ॥ २ ॥ हे श्रीगौर सुन्दर ! भक्त मण्डली के सहित आपकी जय हो, जय हो [ हे भाई श्रोताओ ! ] श्रीचैतन्यचन्द्र की कथा श्रवण करने से भक्ति प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ आदि खण्ड की कथा जिसमें श्रीगौरचन्द्र के सर्व्व-सुखकारी विहार वर्णित है, अति मधुर अमृत की धारा है ॥ ४ ॥ इस प्रकार श्रीवैकुण्ठ-नायक श्रीनवद्वीप में गृहस्थ होकर विप्ररूप से पढ़ाते हैं ॥ ५ ॥ यद्यपि आपने प्रेम-भक्ति का प्रकाश करने के लिये अवतार लिया है तो भी उस कार्य में से कुछ भी नहीं करते हैं यह आपकी इच्छा है । ६ इस समय सकल संसार नितान्त धर्म-रहित है सब लोग तुच्छ विषय-रस का आदर करते हैं ७ बहुत से आदमी ऐसे भी हैं, जो श्रीगीता एवं श्रीभागवत् रटाते

ताहाते ओ उपहास करये सभारे । इहारा कि कार्य्ये डाक छाड़े निरन्तरे ॥१०॥
आमि ब्रह्म आमातेइ वैसे निरञ्जन । दास-प्रभु भेद वा करेन कि कारण ॥११॥
संसारि सकल बोले 'मागिया खाइते । डाकिया बोलये हरि लोक जानाइते' ॥१२॥
'ए गुलार घर-द्वार फेलाइ भाङ्गिया' । एइ युक्ति करे सब-नदिया मिलिया ॥१३॥
शुनिञा पायेन दुःख सर्व्व भक्त-गणे । सम्भाषा करेन हेन ना पायेन जने ॥१४॥
शून्य देखे भक्त-गण सकल-संसार । हा कृष्ण ! बलिया दुःख भावेन अपार ॥१५॥
हेन काले तथाइ आइला हरिदास । शुद्ध विष्णु-भक्ति जार विग्रहे प्रकाश ॥१६॥
एवे शुन हरिदास ठाकुरेर कथा । जाहार श्रवणे कृष्ण पाइये सर्व्वथा ॥१७॥
बूढ़न ग्रामेते अवतीर्ण हरिदास । से भाग्ये से-सब-देशे कीर्त्तन-प्रकाश ॥१८॥
कथो दिन थाकिया आइला गङ्गातीरे । आसिया रहिला फुलियाय-शान्तीपुरे ॥१९॥
पाइया ताहान सङ्ग आचार्य गोसाञि । हुङ्कार करेन, आनन्देर अन्त नाञि ॥२०॥
हरिदास ठाकुरो अद्वैत देव सङ्गे । भासेन गोविन्द-रस-समुद्र तरङ्गे ॥२१॥
निरवधि हरिदास गङ्गा तीरे तीरे । भ्रमेन कौतुके कृष्ण वलि उच्च स्वरे ॥२२॥
विषय सुखेते विरक्तेर अग्र गण्य । कृष्ण नामे परिपूर्ण श्रीवदन धन्य ॥२३॥

---

है किन्तु वह भी श्रीहरि-कीर्त्तन न करते हैं और न कराते हैं ॥ ८ ॥ और यदि सब भक्त-गण आपस में मिलकर हाथों से ताली बजा-बजाकर कीर्त्तन भी करते हैं ॥ ९ ॥ तो उस पर भी वह लोग इन सब लोगों की हँसी उड़ाते हैं और कहते हैं कि-'यह लोग न मालूम क्यों निरन्तर चिल्लाते हैं ? ॥ १० ॥ 'हम ब्रह्म हैं और हमारे ही भीतर ब्रह्म का निवास है' फिर यह लोग न मालूम क्यों दास और प्रभु का भेद करते हैं' ? ॥११॥ संसारी सब मनुष्य भक्तों के प्रति कहते हैं कि-'यह लोग माँगने खाने व लोगों को जनाने के लिये चिल्ला-चिल्लाकर 'हरि' 'हरि' बोलते हैं ॥ १२ ॥ सब नवद्वीपवासी अभक्त-गण आपस में यह युक्ति करते हैं कि-'चलो भाई ! इन सब लोगों के घर-द्वार तोड़ फोड़कर फेंक दें' ॥ १३ ॥ इन बातों को सुन कर भक्त-गण मन में बड़े दुःखी होते हैं । वह किसी आदमी को भी इस योग्य नहीं देखते हैं जिससे कुछ सम्भाषण करलें॥१४॥ इस प्रकार भक्त-गण सब संसार को भक्ति-शून्य देखते हैं और हा कृष्ण ! हा कृष्ण ! बोलकर मनों में अपार दुःखित हो रहे हैं ॥ १५ ॥ उसी समय वहाँ श्रीहरिदास 'ठाकुर' आये जिनके शरीर से शुद्ध विष्णु-भक्ति प्रकाशित होती थी ॥ १६ ॥ अब श्रीहरिदास ठाकुर का चरित्र सुनिये जिसके सुनने से निश्चय 'श्रीकृष्ण की प्राप्ति' होती है ॥ १७ ॥ श्रीहरिदास जी बूढ़न ग्राम में अवतीर्ण हुए थे, उन्हीं के कारण उस सब देश में अभी तक कीर्त्तन होता हुआ दृष्टि पड़ता है ॥ १८ ॥ कुछ दिन वहाँ रहकर श्रीगङ्गा-तट पर आये और शान्ति पुर के निकटवर्त्ती फुलिया नामक ग्राम में रहने लगे ॥१९॥ वहाँ उनका सङ्ग पाकर श्रीअद्वैताचार्य प्रभु के आनन्द की सीमा नहीं रही और वह प्रेम से हुङ्कार करने लगे ॥ २० ॥ श्रीहरिदास ठाकुर भी अद्वैताचार्य जी के सङ्ग श्रीगोविन्द-रस-समुद्र की तरङ्गों में प्रवाहित होते थे ॥ २१ ॥ श्रीहरिदास जी निरन्तर आनन्द पूर्वक श्रीगङ्गा जी के किनारे किनारे उच्च स्वर से 'कृष्ण' 'कृष्ण' बोलते हुए भ्रमण करते रहते थे ॥ २२ ॥ आप विषय-सुख से विरक्तों के　　　　थे, आपका श्रीमुख निरन्तर कृष्ण नाम से भरपूर रहने के कारण धन्य है　२३

दण्डेके ए सब लीला जत हइयाछे । शत वर्षे ताहाके वर्णिते केन आछे ? ॥४०२॥
नित्यानन्द स्वरूपेर आज्ञा करि शिरे । सूत्र-मात्र लिखि आमि कृपा अनुसारे ॥४०३॥
ए सब ईश्वर लीला जे पड़े जे शुने । से अवश्य विहरये गौरचन्द्र सने ॥४०४॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चाँद जान । वृन्दावनदास तछु पद युगे गान ॥४०५॥

इति श्रीचैतन्य भागवते आदिखण्डे श्रीविष्णु-प्रिया-परिणय वर्णनं नाम
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

## एकादशोऽध्यायः

जय जय दीनबन्धु श्रीगौर सुन्दर । जय जय लक्ष्मीकान्त सबार ईश्वर ॥१॥
जय जय भक्त-रक्षा हेतु अवतार । जय सर्व्व काल सत्य कीर्त्तन-विहार ॥२॥
भक्त-गोष्ठी सहित गौराङ्ग जय जय । शुनिले चैतन्य कथा भक्ति लभ्य हय ॥३॥
आदि खण्ड कथा अति अमृतेर धार । जहि गौराङ्गेर सर्व्व-मोहन विहार ॥४॥
हेन मते वैकुण्ठ नायक नवद्वीपे । गृहस्थ हइया पढ़ायेन विप्र रूपे ॥५॥
प्रेम-भक्ति-प्रकाश-निमित्त अवतार । ताहा किछु ना करेन इच्छा से ताँहार ॥६॥
अति परमार्थ-शून्य-सकल संसार । तुच्छ-रस विषये से आदर सबार ॥७॥
गीता भागवत वा पढ़ाय जे जे जन । ताराओ ना बोले ना बोलाये कीर्त्तन ॥८॥
हाथे तालि दिया वा सकल भक्त गण । आपना आपनि मेलि करेन कीर्त्तन ॥९॥

---

आविर्भाव एवं तिरोभाव नाम से पुकारते हैं ॥ ४०१ ॥ इन सब लीला में से एक घड़ी के भीतर जितनी लीलायें हुईं, ऐसा कौन मनुष्य है जो उनको १०० वर्ष में भी वर्णन कर सके ? ॥४०२॥ श्रीनित्यानन्द स्वरूप की आज्ञा सिर पर धारण करके मैंने उनकी कृपा से ही प्रभु की लीला को सूत्र-मात्र में ही लिखा है ॥४०३॥ प्रभु की इन सब लीलाओं को जो पढ़ते एवं सुनते हैं वह मनुष्य अवश्य श्रीगौरचन्द्र के साथ विहार करते है ॥ ४०४ ॥ श्रीकृष्ण चैतन्य एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र को जान कर श्रीवृन्दावनदास उनके युगल चरणों में उनके गुण-गान करता है ॥ ४०५ ॥

हे दीनबन्धु श्रीगौर सुन्दर ! आपकी जय हो जय हो, हे लक्ष्मीकान्त ! हे सब प्राणियों के ईश्वर श्रीगौर सुन्दर ! आपकी जय हो, जय हो ॥ १ ॥ हे भक्त-रक्षा-हेतु अवतार धारण करने वाले प्रभो ! आपकी जय हो, जय हो । हे सर्व्व काल सत्य ! हे कीर्त्तन-विहारी ! आपकी जय हो ॥ २ ॥ हे श्रीगौर सुन्दर ! भक्त मण्डली के सहित आपकी जय हो, जय हो [ हे भाई श्रोताओ ! ] श्रीचैतन्यचन्द्र की कथा श्रवण करने से भक्ति प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ आदि खण्ड की कथा जिसमें श्रीगौरचन्द्र के सर्व्व-सुखकारी विहार वर्णन हैं, अति मधुर अमृत की धारा है ॥ ४ ॥ इस प्रकार श्रीवैकुण्ठ-नायक श्रीनवद्वीप में गृहस्थ होकर विप्ररूप से पढ़ाते हैं ॥ ५ ॥ यद्यपि आपने प्रेम-भक्ति का प्रकाश करने के लिये अवतार लिया है तो भी उस कार्य में से कुछ भी नहीं करते हैं यह आपकी इच्छा है ६ इस समय सकल संसार नितान्त धर्म-रहित है, सब लोग तुच्छ विषय-रस का आदर करते हैं ७ बहुत से आदमी ऐसे भी हैं, जो श्रीगीता एवं श्रीभागवत् पढ़ाते

ताहाते ओ उपहास करये सभारे । इहारा कि कार्ये डाक छाड़े निरन्तरे ॥१०॥
आमि ब्रह्म आमातेइ वैसे निरञ्जन । दास-प्रभु भेद वा करेन कि कारण ॥११॥
संसारि सकल बोले 'मागिया खाइते । डाकिया बोलये हरि लोक जानाइते' ॥१२॥
'ए गुलार घर-द्वार फेलाइ भाङ्गिया' । एइ युक्ति करे सब-नदिया मिलिया ॥१३॥
शुनिञा पायेन दुःख सर्व्व भक्त-गणे । सम्भाषा करेन हेन ना पायेन जने ॥१४॥
शून्य देखे भक्त-गण सकल-संसार । हा कृष्ण ! बलिया दुःख भावेन अपार ॥१५॥
हेन काले तथाइ आइला हरिदास । शुद्ध विष्णु-भक्ति जार विग्रहे प्रकाश ॥१६॥
एवे शुन हरिदास ठाकुरेर कथा । जाहार श्रवणे कृष्ण पाइये सर्व्वथा ॥१७॥
बूढ़न ग्रामेते अवतीर्ण हरिदास । से भाग्ये से सब-देशे कीर्त्तन-प्रकाश ॥१८॥
कथो दिन थाकिया आइला गङ्गातीरे । आसिया रहिला फुलियाय-शान्तीपुरे ॥१९॥
पाइया ताहान सङ्ग आचार्य गोसाञि । हुङ्कार करेन, आनन्देर अन्त नाञि ॥२०॥
हरिदास ठाकुरो अद्वैत देव सङ्गे । भासेन गोविन्द-रस-समुद्र तरङ्गे ॥२१॥
निरवधि हरिदास गङ्गा तीरे तीरे । भ्रमेन कौतुके कृष्ण बलि उच्च स्वरे ॥२२॥
विषय सुखेते विरक्तेर अग्र गण्य । कृष्ण नामे परिपूर्ण श्रीवदन धन्य ॥२३॥

---

है किन्तु वह भी श्रीहरि-कीर्त्तन न करते हैं और न कराते हैं ॥ ८ ॥ और यदि सब भक्त-गण आपस में मिलकर हाथों से ताली बजा-बजाकर कीर्त्तन भी करते हैं ॥ ९ ॥ तो उस पर भी वह लोग इन सब लोगों की हँसी उड़ाते हैं और कहते हैं कि-'यह लोग न मालूम क्यों निरन्तर चिल्लाते हैं ? ॥ १० ॥ 'हम ब्रह्म हैं और हमारे ही भीतर ब्रह्म का निवास है' फिर यह लोग न मालूम क्यों दास और प्रभु का भेद करते हैं' ? ॥११॥ संसारी सब मनुष्य भक्तों के प्रति कहते हैं कि-'यह लोग माँगने खाने व लोगों को जनाने के लिये चिल्ला-चिल्लाकर 'हरि' 'हरि' बोलते हैं ॥ १२ ॥ सब नवद्वीपवासी अभक्त-गण आपस में यह युक्ति करते हैं कि-'चलो भाई ! इन सब लोगों के घर-द्वार तोड़ फोड़कर फेंक दें' ॥ १३ ॥ इन बातों को सुन कर भक्त-गण मन में बड़े दुःखी होते हैं । वह किसी आदमी को भी इस योग्य नहीं देखते हैं जिससे कुछ सम्भाषण करलें॥१४॥ इस प्रकार भक्त-गण सब संसार को भक्ति-शून्य देखते हैं और हा कृष्ण ! हा कृष्ण ! बोलकर मनों में अपार दुःखित हो रहे हैं ॥ १५ ॥ उसी समय वहाँ श्रीहरिदास 'ठाकुर' आये जिनके शरीर से शुद्ध विष्णु-भक्ति प्रकाशित होती थी ॥ १६ ॥ अब श्रीहरिदास ठाकुर का चरित्र सुनिये जिसके सुनने से निश्चय 'श्रीकृष्ण की प्राप्ति' होती है ॥ १७ ॥ श्रीहरिदास जी बूढ़न ग्राम में अवतीर्ण हुए थे, उन्हीं के कारण उस सब देश में अभी तक कीर्त्तन होता हुआ दृष्टि पड़ता है ॥ १८ ॥ कुछ दिन वहाँ रहकर श्रीगङ्गा-तट पर आये और शान्ति पुर के निकटवर्त्ती फुलिया नामक ग्राम में रहने लगे ॥१९॥ वहाँ उनका सङ्ग पाकर श्रीअद्वैताचार्य प्रभु के आनन्द की सीमा नहीं रही और वह प्रेम से हुङ्कार करने लगे ॥ २० ॥ श्रीहरिदास ठाकुर भी अद्वैताचार्य जी के सङ्ग श्रीगोविन्द-रस-समुद्र की तरङ्गों में प्रवाहित होते थे ॥ २१ ॥ श्रीहरिदास जी निरन्तर आनन्द पूर्वक श्रीगङ्गा जी के किनारे किनारे उच्च स्वर से 'कृष्ण' 'कृष्ण' बोलते हुए भ्रमण करते रहते थे ॥ २२ ॥ आप विषय-सुख से विरक्तों के थे, आपका श्रीमुख निरन्तर 'कृष्ण' नाम से भरपूर रहने के कारण धन्य है २३

क्षणेको गोविन्द नामे नाहिक विरति। भक्ति-रसे अनुक्षण हय नाना मूर्ति ॥२४॥
कखनो करेन नृत्य आपना आपनि। कखनो करेन मत्तसिंह प्राय ध्वनि ॥२५॥
कखनो वा उच्च स्वरे करेन रोदन। अट्ट अट्ट महा हास्य हासेन कखन ॥२६॥
कखनो गर्ज्जेन अति हुङ्कार करिया। कखनो मूर्च्छित हइ थाकेन पड़िया ॥२७॥
क्षणे अलौकिक-शब्द बोलेन डाकिया। क्षणे ताहि बाखानेन उत्तम करिया ॥२८॥
अश्रु-पात, रोमहर्ष, हास्य, मूर्च्छा घर्म्म। कृष्ण-भक्ति विकारेर जत आछे मर्म्म ॥२९॥
प्रभु हरिदास मात्र नृत्ये प्रवेशिले। सकल आसिया तान श्रीविग्रहे मिले ॥३०॥
हेन से आनन्द धारा तिते सर्व्व अङ्ग। अति पाखण्डिओ देखि पाय महा रङ्ग ॥३१॥
किबा से अद्भुत अङ्गे श्रीपुलकावलि। ब्रह्मा शिवो देखिया हयेन कुतूहली ॥३२॥
फुलिया ग्रामेर जत ब्राह्मण-सकल। सभेइ ताहाने देखि हइला विह्वल ॥३३॥
सभार ताहाने बड़ जन्मिल विश्वास। फुलियाये रहिलेन प्रभु हरिदास ॥३४॥
गङ्गा-स्नान करि निरवधि हरि नाम। उच्च करि लइया बुलेन सर्व्व स्थान ॥३५॥
काजि गिया मुलुकेर अधिपति स्थाने। कहि लेन ताहान सकल विवरणे ॥३६॥
जवन हइया करे हिन्दुर आचार। भाल मते तारे आनि करह विचार ॥३७॥
पापीर वचन शुनि सेह पाप मति। धरि आनाइल ताने अति शीघ्र गति ॥३८॥
कृष्णेर प्रसादे हरिदास महाशय। जवनेर कि दाय कालेरो नाहि भय ॥३९॥

---

क्षण भर के लिये भी कृष्ण नाम से विरति नहीं होती थी आप भक्ति-रस द्वारा निरन्तर अनेक रूपों में परिवर्तित होते रहते थे ॥ २४ ॥ कभी अपने आप ही नृत्य करते तो कभी मत्त सिंह की तरह गर्जना करते थे ॥ २५ ॥ कभी उच्च-स्वर से रोते व कभी खूब जोर से हँसते थे ॥ २६ ॥ कभी खूब जोर की हुङ्कार मार कर गर्जते थे, कभी मूर्च्छित होकर पड जाते थे ॥ २७ ॥ कभी चिल्लाकर कोई अलौकिक शब्द बोलते तो फिर कभी उसी शब्द की श्रेष्ठ व्याख्या करते थे ॥ २८ ॥ अश्रु, पुलक, हँसी, मूर्च्छा, प्रस्वेद आदि जो श्रीकृष्ण-भक्ति विकार के जितने मर्म हैं ॥ २९ ॥ श्रीहरिदास ठाकुर के नृत्य आरम्भ करते मात्र ही वह सब उनके श्रीअङ्ग में दिखाई देने लगते थे ॥ ३० ॥ ऐसी अद्भुत आनन्द धारा उठती थी कि-आपका सब शरीर तर हो जाता था और अति पाखण्डी को भी देखकर परम आश्चर्य होता था ॥ ३१ ॥ आपके श्रीअङ्ग में कैसी अद्भुत पुलकावलि होती थी कि-जिनको देखकर ब्रह्मा व शिवजी भी चकित हो जाते थे ॥ ३२ ॥ फुलिया ग्राम के सब ब्राह्मण लोग आपके गुणों को देखकर मुग्ध हो गये ॥ ३३ ॥ उन सब लोगों को आपके प्रति बड़ा विश्वास हो गया, इस प्रकार श्रीहरिदास ठाकुर को फुलिया में रहते हुए अनेक दिन व्यतीत हो गये ॥ ३४ ॥ आप श्रीगङ्गा-स्नान करके निरन्तर उच्च स्वर से 'श्रीहरि नाम' बोलते हुए सर्वत्र विचरण करते रहते थे।॥३५॥ एक दिन एक काजी ने उस देश के अधिपति के पास जाकर आपका सब विवरण उसको कह सुनाया ॥ ३६ ॥ 'हरिदास यवन होकर हिन्दुओं का सा आचरण करता है आप उसको बुलवाकर अच्छी तरह से उसका दण्ड-विधान कीजिये' ॥ ३७ ॥ पापी काजी के वचनों को सुन कर उस पाप-बुद्धि वाले देश-पति ने अति शीघ्रता पूर्वक आपको पकड़वे को बुलाया ३८॥ कृष्ण कृपा से श्रीहरिदास महाशय को यवन-राज की तो क्या चले

कृष्ण कृष्ण बलिते चलिला सेइ क्षणे । मुलुक पतिर द्वारे दिला दरशने ॥४०॥
हरिदास ठाकुरेर शुनि आगमन । हरिष विषाद हैल जत सुसज्जन ॥४१॥
बड़ बड़ लोक जत आछे बन्दि घरे । तारा सब हृष्ट हैला शुनिञा अन्तरे ॥४२॥
परम वैष्णव हरिदास महाशय । ताने देखि बन्दि-दुःख हइबेक क्षय ॥४३॥
रक्षक लोकेरे सभे साधन करिया । रहिलेन बन्दि गण एक दृष्टि हैया ॥४४॥
हरिदास ठाकुर आइला सेइ स्थाने । बन्दि-गण देखि कृपा दृष्टि हैल मने ॥४५॥
हरिदास ठाकुरेर चरण देखिया । रहिलेन बन्दि-गण प्रणति करिया ॥४६॥
आजानुलम्बित भुज, कमल-नयान । सर्व्व मनोहर मुख-चन्द्र अनुपाम ॥४७॥
भक्ति करि सभे करि लेन नमस्कार । सभार हैल कृष्ण-भक्तिर विकार ॥४८॥
ताहार सभार भक्ति देखि हरिदास । वन्दि सब प्रति करिलेन आशीर्व्वाद ॥४९॥
थाक थाक एखन आछह जेन रूपे । गुप्त आशीर्व्वाद करि हासेन कौतुके ॥५०॥
ना बुझिया तान अति दुर्ज्ञेय वचन । बन्दि सब हैला किछु विषादित मन ॥५१॥
तबे पाछे कृपा-युक्त हइ हरिदास । गुप्त आशीर्व्वाद कहे करिया प्रकाश ॥५२॥
'आमि तोमा' सभारे जे कैल आशीर्व्वाद । तार अर्थ ना बुझिया भावह विषाद ॥५३॥
मन्द आशीर्वाद आमि कखनो ना करि । मन दिया सभे इहा बुझह विचारि ॥५४॥
एबे कृष्ण प्रति तोमा सभा कार मन । जेन आछे एइ मत रहु सर्व्व क्षण ॥५५॥

---

काल का भी डर नहीं था ॥ ३९ ॥ वह तत्काल ही 'कृष्ण' 'कृष्ण' उच्चारण करते हुए चल दिये और थोड़ी देर में देश-पति के द्वार पर जा पहुँचे ॥ ४० ॥ श्रीहरिदास ठाकुर का आना सुनकर सब सुसज्जन लोग हर्ष एवं विषाद को प्राप्त हुए ॥ ४१ ॥ तथा वन्दि-घर में पड़े हुए सब बड़े-बड़े लोग मनमें प्रसन्न होते थे ॥ ४२ ॥ वह मन ही मन विचार करते थे कि—हरिदास महाशय परम वैष्णव हैं उनके दर्शन से हमारी जेल छूट जायगी ॥ ४३ ॥ वह बन्दि-गण ( कैदी ) अपनी देख भाल करने वाले अफसरों की थोड़ी सी मिनती करके आपकी ओर टकटकी लगाकर देखने लगे ॥ ४४ ॥ पश्चात् श्रीहरिदास ठाकुर उनके पास पहुँचे तथा बन्दीगण को देखकर उनके मन में बड़ी दया आई ॥४५॥ श्रीहरिदास ठाकुर के चरण दर्शन कर बन्दि-गण उन्हें प्रणाम कर ही रह गये ॥ ४६ ॥ उनकी भुजाएँ जंघा तक लम्बी थीं, नेत्र कमल जैसे थे तथा सबके मन को हरने वाला अनौखा चन्द्रमा के समान मुख था ॥ ४७ ॥ सब ने भक्ति पूर्वक नमस्कार किया तो उन सब में श्रीकृष्ण-भक्ति का उदय हो गया ॥ ४८ ॥ श्रीहरिदास जी ने सब की भक्ति देखकर प्रीति पूर्वक [ बन्दियों को ] आशीर्वाद दिया ॥ ४९ ॥ 'इस समय जिस रूप में हो वैसे ही रहो' यह गुप्त आशीर्वाद करके वे कौतुक पूर्वक हँसने लगे ॥ ५० ॥ उनके इस अति कठिनता से भी न समझ में आने वाले [ दुर्ज्ञेय ] वाक्य को न समझ पाकर बन्दी-जन मन में कुछ दुखी हुए ॥ ५१ ॥ तब पीछे से श्रीहरिदास जी ने कृपा करके अपने गुप्त आशीर्वाद को स्पष्ट करके कहा ॥५२॥ उन्होंने कहा कि—मैंने तुम्हारे लिये जो आशीर्वाद किया उसका तात्पर्य न जानकर तुम मन में दुखी हो रहे हो ॥ ५३ ॥ मैंने मन्द [ कमजोर ] आशीर्वाद कभी नहीं किया करता, तुम सब लोग इस बात को एकाग्र मन से समझो ॥ ५४ मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि इस समय तुम सबका मन जिस

एबे लओ कृष्ण नाम कृष्णेर चिन्तन । सभे मेलि करिते आछह अनुक्षण ॥५६॥
एबे हिंसा नाहि, नाहि प्रजार पीडन । 'कृष्ण' बलि काकुर्व्वादे करह चिन्तन ॥५७॥
आर बार गिया विषयेते प्रवर्त्तिले । सभे इहा पासरिबे, गेले दुष्ट मेले ॥५८॥
सेइ सब अपराध हैब पुनर्व्वार । विषयेर धर्म्म एइ शुन कथा सार ॥५९॥
'बन्दी थाक' हेन आशीर्व्वाद नाहि करि । विषय पासर, अहर्निश बोलो हरि ॥६०॥
छले करिलाङ आमि एइ आशीर्व्वाद । तिलार्द्धेक ना भाविह तोमरा विषाद ॥६१॥
सर्व्व-जीव प्रति दया दर्शन आमार । कृष्णे दृढ़ भक्ति हउ तोमरा सभार ॥६२॥
चिन्ता नाहि-दिन-दुइ-तिनेर भितरे । बन्धन घुचिब एइ कहिलुँ तोमारे ॥६३॥
विषयेते थाक, किबा थाक यथा तथा । एइ बुद्धि कभो ना पासरिह सर्व्वथा ॥६४॥
बन्दि सकलेर करि शुभानुसन्धान । आइलेन मुलुकेर अधिपति स्थान ॥६५॥
अति मनोहर तेज देखिया ताहांन । परम गौरवे वसिवारे दिला स्थान ॥६६
आपने जिज्ञासे ताने मुलुकेर पति । केने भाइ! तोमार कि रूप देखि मति ॥६७॥
कत भाग्ये देख तुमि हयाछ जवन । तबे केने हिन्दुर आचारे देह मन ॥६८॥
आमरा हिन्दुरे देखि नाहि खाइ भात । ताहा तुमि छाड़ हइ महा वंश जात ॥६९॥
जाति-धर्म्म-लङ्घि कर अन्य व्यवहार । पर लोके के मते वा पाइबा निस्तार ॥७०॥

---

भाँति श्रीकृष्ण में लगा हुआ है इसी प्रकार से सर्वदा लगा रहे' ॥ ५५ ॥ इस समय तुम लोग कृष्ण नाम ले रहे हो तथा साथ-साथ कृष्ण-चिन्तवन भी कर रहे हो ॥ ५६ ॥ इसमें हिंसा नहीं है प्रजा का पीड़न भी नहीं है, इस समय तो तुम सब लोग 'कृष्ण' 'कृष्ण' कहते हुए कार्पण्य युक्त हो [ अनुनय-विनय पूर्वक ] प्रभु का चिन्तवन कर रहे हो ॥ ५७ ॥ पश्चात् यहाँ से जाने पर विषयों में प्रवृत्ति होने के कारण, दुष्ट संग में पड़कर तुम सब ही इसे भूल जाओगे ॥ ५८ ॥ फिर वे ही सब अपराध तुमसे होंगे, सुनो! बात यह है कि–विषयों का स्वाभाविक गुण-धर्म ऐसा है ॥ ५९ ॥ 'तुम बन्दी ही रहो' मैंने यह आशीर्वाद नहीं किया था। मैंने छल पूर्वक यह आशीर्वाद किया था कि–'तुम सब लोग इस समय की भाँति विषयों को भूलकर रात-दिन 'हरि' 'हरि' बोलते रहो।' उस बात से तुम लोग मनमें तनिक भी दुःख मत पाना ॥६०-६१॥ हमारी तो सब जीवों के प्रति दया-दृष्टि ही रहती है। तुम सबकी कृष्ण में दृढ़-भक्ति हो ॥ ६२ ॥ कोई चिन्ता की बात नहीं है, दो-तीन दिन के भीतर ही तुम्हारे बन्धन टूट जाँयगे, मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ६३ ॥ चाहे तुम विषयों के मध्य में रहना अथवा अन्य किसी स्थान पर या सङ्ग में, मैं यह चाहता हूँ कि–किसी भी अवस्था में तुम्हारी यह बुद्धि नष्ट न हो ॥ ६४ ॥ इस प्रकार श्रीहरिदास जी सब बन्दियों का शुभ अनुसन्धान करके देश-पति के पास पहुँचे ॥ ६५ ॥ देश-पति ने उनका अति मनोहर तेज देख कर, परम गौरव पूर्वक उनको बैठने के लिये आसन दिया ॥ ६६ ॥ स्वयं देश-पति आपसे पूँछने लगा कि–क्यों भाई! हम तुम्हारी यह कैसी बुद्धि देखते हैं? ॥ ६७ ॥ कितने भाग्य से तुम देखो! यवन हुए हो, फिर तुम हिन्दुओं के आचरण करने में अपना मन क्यों लगाते हो? ॥ ६८ हम लोग भी हिन्दू को देखकर भात नहीं खाते हैं जिसमें तुम तो बड़े खान्दान में से हो फिर तुम उस रीति को क्यों त्यागते हो? ६९ जब तुम जाति धर्म के विपरीत आचरण करते हो तो परलोक

ना जानिञा जे किछु करिला अनाचार । से पाप घुचाह करि *कलिमा उच्चार ॥७१॥
शुनि माया-मोहितेर वाक्य हरि दास । 'अहो विष्णु माया' वलि हैल महाहास ॥७२॥
वलिते लागिला तारे मधुर उत्तर । 'शुन बाप ! सभाग्इ एकइ ईश्वर ॥७३॥
नाम मात्र भेद करे हिन्दुये यवने । परमार्थे एक कहे कोराणे पुराणे ॥७४॥
एक शुद्ध नित्य वस्तु अखण्ड अव्यय । परिपूर्ण हइ वैसे सभार हृदय ॥७५॥
सेइ प्रभु जारे जेन लञोयायेन मन । सेइ मत कर्म्म करे सकल-भुवन ॥७६॥
से प्रभुर नाम-गुण सकल जगते । बोलेन सकल मात्र निज शास्त्र मते ॥७७॥
जे ईश्वर से पुनि सभार भार लय । हिंसा करिले ओ से ताहान हिंसा हय ॥७८॥
एतेके आमारे से ईश्वर जेहेन । लञोयाछेन चित्ते, करि आमि तेन ॥७९॥
हिन्दु कुले केहो जेन हइया ब्राह्मण । आपनेइ गिया हय इच्छाय यवन ॥८०॥
हिन्दु वा कि करे तारे जार जेइ कर्म्म । आपने जे मैल तारे मारिया कि धर्म्म ? ॥८१॥
महाशय तुमि एवे करह विचार । जदि दोष थाके, शास्ति करह आमार' ॥८२॥
हरिदास ठाकुरेर सुसत्य वचन । शुनिञा सन्तोष हैल सकल यवन ॥८३॥
सबे एक पापी काजी मुलुक पतिरे । वलिते लागिला शास्ति करह इहारे ॥८४॥
एइ दुष्ट आरो दुष्ट करिब अनेक । यवन कुलेर अमहिमा आनिवेक ॥८५॥

---

में कैसे उद्धार पाओगे ? ॥ ७० ॥ अनजाने में जो कुछ अनाचार तुम से हो गया है, कलमा पढ़कर उसका प्रायश्चित कर लो ॥ ७१ ॥ माया से मोहित यवन-पति के वाक्यों को सुनकर श्रीहरिदास जी 'विष्णु-माया के लिये धन्य है' कहकर जोर से हँसे ॥७२॥ पश्चात् मधुर वाक्यों से उसको उत्तर देने लगे कि–'हे महाराज ! सुनिये, सब का एक ही ईश्वर है ॥ ७३ ॥ 'हिन्दू और मुसलमानों ने केवल नाम का भेद कर लिया है, वास्तव में कुरान एवं पुराण एक ही परमार्थ वस्तु का प्रतिपादन कर रहे हैं ॥ ७४ ॥ वह ईश्वर एक, शुद्ध, नित्य वस्तु, अखण्ड, अव्यय, परिपूर्ण होकर सबके हृदय में निवास करते हैं ॥ ७५ ॥ तब ब्रह्माण्डों में वही प्रभु जिसके मन को जिधर फेर देते हैं वह उसी प्रकार का कर्म करने लगता है ॥ ७६ ॥ उन प्रभु के नाम एवं गुण सब संसार के लोग अपने-अपने शास्त्र के अनुसार वर्णन करते हैं ॥ ७७ ॥ वह ईश्वर होकर भी सब प्राणियों का सब प्रकार का दायित्त्व अपने ऊपर लिये हुए हैं, इसलिये किसी प्राणी की हिंसा करना उन्हीं की हिंसा करना है ॥ ७८ ॥ इस प्रकार वह प्रभु मुझ से जिस प्रकार करा रहे हैं मैं भी उसी प्रकार कर रहा हूँ' ॥ ७९ ॥ जैसे कोई हिन्दू कुल का ब्राह्मण होकर अपनी इच्छा से जाकर मुसलमान हो जाय ॥ ८० ॥ तो हिन्दू उसका क्या करें ? 'जिसके जैसे कर्म्म हैं वह स्वयं उसको मार रहे हैं' फिर उसको और मारना क्या धर्म है' ॥ ८१ ॥ 'श्रीमान् जी अब आप सोचिये, यदि इसमें मेरा दोष हो तो दण्ड दीजिये' ॥ ८२ ॥ श्रीहरिदासजी के सुन्दर वचनों को सुनकर सब मुसलमान प्रसन्न हुए॥८३॥केवल एक पापी काजी देश-पति से कहने लगा कि–'इसको दण्ड दीजिये क्योंकि यह एक दुष्ट और अनेकों को भी दुष्ट बनावेगा इस रीति से यह यवन-कुल का नाश

---

* कलमा कुरान शरीफ की एक आयत है लाइलाहइल्लिल्लाह मुहम्मदुर्रसूलल्लाह अर्थात् ईश्वर एक है और मुहम्मद उसका रसूल ( पैगम्बर ) है

एतेके उहार शास्ति कर भाल मते । नहे वा आपन शास्त्र बलुक हुखेते ॥८६॥
पुन बोले मुलुकेर पति 'आरे भाइ । आपनार शास्त्र बोल तबे चिन्ता नाञि ॥८७॥
अन्यथा करिब शास्ति सब काजी गणे । बलिबाओ पाछे आर लघु हैबा केने ? ॥८८॥
हरिदास बोलेन 'जे करान ईश्वरे । ताहा बइ आर केहो करिते ना पारे ॥८९॥
अपराध अनुरूप जार जेन फल । ईश्वर से करे इहा जानिह सकल ॥९०॥
खण्ड खण्ड हइ देह जदि जाय प्राण । तभो आमि वदने ना छाड़ि हरि नाम॥९१॥
शुनिञा ताहान वाक्य मुलुकेर पति । जिज्ञासिल 'एवे कि करिबा इहा प्रति' ॥९२॥
काजी बोले 'बाइश बाजारे निञा मारि । प्राण लह आर किछु विचार ना करि ॥९३॥
बाइश बाजारे मारिलेह यदि जीये । तबे जानि ज्ञानि सब साँचा कथा कहे' ॥९४॥
पाइक-सकले डाकि तर्ज्ज करि कहे । 'ए मत मारिबि जेन प्राण नाहि रहे ॥९५॥
जवन हइया जेन हिन्दुयानि करे । प्राणान्त हइले शेषे ए पापेते तरे' ॥९६॥
पापीर वचने सेह पापी आज्ञा दिल । दुष्ट गणे आनि हरिदासेरे धरिल ॥९७॥
बाजारे बाजारे सब वेढ़ि दुष्ट गणे । मारये निर्जीव करि महा क्रोध मने ॥९८॥
'कृष्ण' 'कृष्ण' स्मरण करेन हरिदास । नामानन्दे देह दुःख ना हय प्रकाश ॥९९॥
देखि हरिदास देहे अत्यन्त प्रहार । सज्जन सकल दुःख भावेन अपार ॥१००॥

---

कर देगा' ॥ ८४-८५ ॥ 'इसलिये इसको अच्छी प्रकार से दण्ड दीजिये, नहीं तो वह अपने मुँह से कुरान पाठ करे' ॥ ८६ ॥ तब देश-पति ने फिर कहा कि-'अरे भाई ! अपने शास्त्र का (कुरान) पाठ करो तो तुम्हारे लिये कोई चिन्ता की बात नहीं ॥८७॥ 'नहीं तो यह सब काजी लोग तुमको दण्ड देंगे। तब भी तो बोलना पड़ेगा फिर क्यों इस प्रकार नीचा दिखाते हो ?' ॥ ८८ ॥ श्रीहरिदास जी बोले कि जो ईश्वर कराते हैं वही होता है, उसके अतिरिक्त और कोई कुछ नहीं कर सकता' ॥ ८९ ॥ अपराध के अनुसार जिसका जो फल है वह ईश्वर ही देता है, यह सब ही जानते हैं ॥ ९० ॥ यदि मेरे शरीर के टुकड़े २ हो जाँय तथा प्राण भी चले जावें तब भी मैं अपने मुख से श्रीहरि नाम नहीं छोड़ूँगा ॥ ९१ ॥ इनके वाक्य सुनकर देश-पति (काजी से) पूछने लगा कि-'अब इसके प्रति क्या करना है ?' ॥ ९२ ॥ काजी ने कहा कि-अब और कुछ विचार नहीं करना है, उसको यहाँ के बाईसों बाजारों में घुमाते हुए मारते-मारते प्राण निकलवा दीजिये ॥ ९३ ॥ बाईस बाजारों में मारने पर भी यदि यह जीवित रह जाय तो समझेंगे कि—यह ज्ञानी है और सब सच्ची बातें कहता है । ॥ ९४ ॥ पश्चात् वह सब प्रहारियों को बुलाकर तर्ज कर बोला कि-'तुम लोग इसको इस प्रकार मारना जिससे इसके प्राण न रहें' ॥ ९५ ॥ 'मुसलमान होकर जो हिन्दुओं के से कर्म करता है-प्राणान्त होने पर इस पाप से छूट जावेगा' ॥ ९६ ॥ पापी काजी के कहने से उस पापी यवन पति ने भी आज्ञा दे दी तब दुष्ट गण ने आकर श्रीहरिदास जी को पकड़ लिया ॥ ९७ ॥ वे सब दुष्ट-गण उन्हें चारों ओर से घेरकर प्रत्येक बाजार में घुमाते हुए महा क्रोधित मन हो निर्जीव की तरह मारने लगे ॥ ९८ ॥ श्रीहरिदासजी निरन्तर 'कृष्ण' 'कृष्ण' बोल रहे थे श्रीहरि नाम के आनन्द में वे देह दुःख प्रगट नहीं करते थे । ९९ । श्रीहरिदास जी के शरीर पर अत्यन्त प्रहार देखकर सब सज्जन वृन्द अपार दुःखित होते थे १०० उनमें से कोई

केहो बोले 'उभिष्ट हइब सर्व्व राज्य । से निमित्ते हेन सुजनेर हेन कार्य ॥१०
राजा उजीररे केहो शापे क्रोध मने । मारा मारि करितेओ उठे कोनो जने ॥१
केहो गिया जवन गणेर पाये धरे । 'किछु दिब अल्प करि मारह उहारे' १०३
तथापिह दया नाहि जन्मे पापि गणे । बाजारे बाजारे मारे महा क्रोध मने १
कृष्णेर प्रसादे हरिदासेर शरीरे । अल्प दुःखो नाहि जन्मे एतेक प्रहारे ।१०५
असुर प्रहारे जेन प्रहलाद विग्रहे । कोनो दुःख ना जन्मिल सर्व्व-शास्त्रे कहे '
एइ मत यवनेर अशेष प्रहारे । दुःख ना जन्मये हरिदास ठाकुररे ॥१०७॥
हरि दास स्मरणेओ ए दुःख सर्व्वथा । छिण्डे सेइ क्षणे, हरिदासेर कि कथा
सबे जे सकल पापि गण ताँ रे मारे । तार लागि दुःख मात्र भावेन अन्तरे ॥
'ए सब जीवेरे कृष्ण ! करह प्रसाद । मोर द्रोहे नहु ए सभार अपराध' ॥११
एइ मत पापि गण नगरे नगरे । प्रहार करये हरिदास ठाकुरेरे ॥१११॥
दृढ़ करि मारे तारा प्राण लइबारे । मनस्पथो नाहि हरिदासेर प्रहारे ॥११२॥
विस्मित हइया भावे सकल यवने । 'मनुष्येर प्राण कि रहे ए मारणे ॥११३॥
दुइ तिन बाजारे मारिले लोक मरे । बाइश बाजारे मारिलाङ जे इहारे ॥११४
मरे ओ ना आरो देखि हासे क्षणे क्षणे । ए पुरुष पीर बा' सभेइ भावे मने ॥

---

कहता कि-सब राज्य का नाश होने वाला है इसीलिये तो ऐसे सज्जन की ऐसी वि
॥ १०१ ॥ कोई क्रोधित होकर राजा एवं उसके मन्त्री को शाप देता था । कोई मनुष्य मार
भी उद्यत होता था ॥ १०२ ॥ कोई यवनों के पैर पकड़ कर कहता कि-'आप लोग इनको
आपको कुछ दे दूँगा' ॥१०३॥ तब भी पापियों को दया नहीं आती थी वह महान् क्रोध
में मारते ही चले जाते थे ॥ १०४ ॥ श्रीकृष्ण कृपा से श्रीहरिदास जी के शरीर में इतनी
न्मात्र दुःख नहीं हुआ ॥ १०५ ॥ 'राक्षस हिरण्यकश्यप की मार से जैसे श्रीप्रह्लाद जी
नहीं हुआ था' ऐसा सब शास्त्र कहते हैं ॥ १०६ ॥ उसी प्रकार से इन यवनों के अनेक प्र
दास ठाकुर को कोई कष्ट नहीं हुआ ॥ १०७ ॥ स्वयं श्रीहरिदास जी की बात तो रहने
ऐसा स्मरण करने से भी दुःख तत्काल विनाश हो जाता है ॥ १०८ ॥ श्रीहरिदास जी तो
वाले पापियों के लिये हृदय में दुःखी हो रहे थे ॥ १०९ ॥ आप प्रभु से प्रार्थना करते थे
सब जीवों के ऊपर कृपा कीजिये, मुझ से द्रोह करने के कारण इनका अपराध न हो' ॥
पापी-गण नगर के प्रत्येक बाजार में श्रीहरिदास ठाकुर को मारते हुए चले जा रहे थे
लेने के लिये जोर-जोर से प्रहार करते थे, परन्तु उन प्रहारों की श्रीहरिदासजी के मन
होती थी ॥ ११२ ॥ कुछ समय पश्चात् सब मुसलमान विस्मित होकर विचार करने ल
भी क्या मनुष्य के प्राण रह सकते हैं ? ॥ ११३ ॥ लोग प्रायः दो-तीन बाजारों में मा
परन्तु इसको तो हमने बाईस बाजारों में मारा है ॥ ११४ ॥ यह मरता तो है ही न
हँसता है, स्यात् यह पुरुष पीर है भगवत् पार्षद) सभी मन में ऐसी भावना करते

यवन सकल बोले 'अये हरिदास । तोमा हैते आमा सभार हइबेक नाश ॥११६॥
एत प्रहारे ओ प्राण ना जाय तोमार । काजि प्राण लइबेक आमा सभाकार' ॥११७॥
हासिया बोलेन हरिदास महाशय । 'आमि जीले जदि तोमा सभार मन्द हय ।११८॥
तबे आमि मरि एइ देख विद्य मान' । एत बलि आविष्ट हइला करि ध्यान ॥११९॥
सर्व्व-शक्ति समन्वित प्रभु हरिदास । हइलेन अचेष्ट कोथाओ नाहि श्वास ॥१२०॥
देखिया यवनगण विस्मित हइल । मुलुक पतिर द्वारे निञा फेलाइल ॥१२१॥
'माटि देह निञा' बोले मुलुकेर पति । काजी कहे 'तबेत पाइब भाल-गति ॥१२२॥
बड़ हइजेन करिलेक नीच-कर्म्म । अतएव इहारे जुयाय एइ धर्म्म ॥१२३॥
माटि दिले परलोके हइबेक भाल । गाङ्गे फेल, जेन दुःख पाय चिरकाल' ॥१२४॥
काजीर वचने सब धरिया जबने । गाङ्गे फेलाइते सबे तोले गिया ताने ॥१२५॥
गाङ्गे निते तोले यदि जबन सकल । बसिलेन हरिदास हइया निश्चल ॥१२६॥
ध्यानानन्दे बसिला ठाकुर हरिदास । विश्वम्भर देहे आसि करिला प्रकाश ॥१२७॥
विश्वम्भर अधिष्ठान हैल शरीरे । कार शक्ति आछे हरिदासे नाड़िबारे ।१२८॥
महाबलवन्त सब चतुर्दिके ठेले । महा स्तम्भ प्राय प्रभु आछेन निश्चले ॥१२९॥
कृष्णानन्द-सुधा सिन्धु मध्ये हरिदास । मग्न हइ'आछेन' बाह्य नाहि परकाश १३०॥
किबा अन्तरिक्षे, किबा पृथ्वीते गङ्गाय । ना जानेन हरिदास आछेन कोथाय ॥१३१॥

---

यवन बोले 'ऐ हरिदास ! तुम्हारे कारण हम सबका नाश होगा ॥११६॥ इतने मारने पर भी जो तुम्हारे प्राण नहीं निकले, तब तो काजी निश्चय ही हम सब के प्राण ले लेगा' ॥ ११७ ॥ श्रीहरिदास महाशय हँसकर बोले कि—'मेरे जीने से यदि तुम सबका अनिष्ट होना हो तो यह देखो, मैं तुम्हारे सामने ही मरता हूँ' इतना कहकर ध्यान योग द्वारा आविष्ट हो गये॥११८-११९॥इस प्रकार सर्व शक्ति समन्वित प्रभु हरिदासजी चेतना रहित हो गये, कहीं भी श्वास चलता हुआ प्रतीत नहीं होता था ॥ १२० ॥ यवन-गण यह देखकर बड़े विस्मित हुए और उन्हें देश-पति के द्वार पर लाकर डाल दिया ॥१२१॥ यवन-पति कहने लगा कि—'इसे ले जाकर पृथ्वी में दाब दो' तब काजी बोला कि—महाराज ! तब तो यह सद्गति प्राप्त करेगा ॥१२२॥ इसने बड़े होकर जैसा नीच कर्म किया है उसके अनुसार यह व्यवहार क्या उचित है ? ॥ १२३ ॥ महाराज ! मिट्टी ही देने से तो इसकी परलोक में सद्गति होगी । अतएव इसको गङ्गा में फिकवा दो जिससे यह चिरकाल तक दुःख पावे' ॥१२४॥ काजी के वचन मान कर सब यवन आपको श्रीगङ्गा जी में फेंकने के लिये पकड़ कर उठाने लगे ॥१२५॥ यवन गण ने ज्योंही उनको गङ्गाजी में ले जाने के लिये उठाया त्योंही श्रीहरिदास जी निश्चल होकर बैठ गये॥१२६॥जब श्रीहरिदास ठाकुर ध्यानानन्दमें बैठे थे,उसी समय श्रीविश्वम्भरचन्द्रने उनके शरीरमें अधिष्ठित होकर अपने का प्रकाश किया ॥१२७॥ जब श्रीविश्वम्भर शरीर में अधिष्ठित हो गये तो अब किसकी शक्ति है, जो हरिदासजी को हिला भी सके ॥ १२८ ॥ सभी बड़े-बड़े बलवान् यवन उन्हें चारों ओर ठेलने का यत्न करते थे परन्तु वे विशाल-स्तम्भ की तरह अटल थे १२९ श्रीहरिदासजी कृष्णानन्द सुधा सिन्धु में डूबे रहे थे उनको बाह्य ज्ञान का तनिक भी प्रकाश नहीं था १३० यह बिल्कुल नहीं

प्रह्लादेर जे हेन स्मरण कृष्ण भक्ति । सेइ मत हरिदास ठाकुरेर शक्ति ॥१३२॥
हरिदासे ए सकल किछु चित्र नहे । निरवधि गौरचन्द्र जाहार हृदये ॥१३३॥
राक्षसेर बन्धन जे हेन हनुमान । आपने लइया करि ब्रह्मार सम्मान ॥१३४॥
एइ मत हरिदासो जवन प्रहार । जगतेर शिक्षा लागि करिला स्वीकार ॥१३५॥
अशेष दुर्गति हय जदि जाय प्राण । तथापि वदने ना छाड़िब हरिनाम ॥१३६॥
अन्यथा गोविन्द हेन रक्षक थाकिते । कार शक्ति आछे हरिदासेरे लङ्घिते ॥१३७॥
हरिदास-स्मरणेओ ए दुःख सर्व्वथा । खण्डे सेइ क्षणे, हरिदासेर कि कथा ॥१३८॥
सत्य सत्य हरिदास जगत ईश्वर । चैतन्य चन्द्रेर-महा मुख्य अनुचर ॥१३९॥
हेन मते हरिदास भासेन गङ्गाय । क्षणेके हइल बाह्य ईश्वर इच्छाय ॥१४०॥
चैतन्य पाइया हरिदास महाशय । तीरे आसि उठिलेन परानन्द मय ॥१४१॥
सेइ मते आइलेन फुलिया नगरे । कृष्ण नाम बलिते बलिते उच्च स्वरे ॥१४२॥
देखिया अद्भुत शक्ति सकल जवन । सभार खण्डिल हिंसा भाल हैल मन ॥१४३॥
पीर ज्ञान करि सभे कैल नमस्कार । सकल जवन-गण पाइल निस्तार ॥१४४॥
कथोक्षणे बाह्य पाइलेन हरिदास । मुलुक पतिरे चाहि हैल कृपा हास ॥१४५॥
सम्भ्रमे मुलुक पति जुड़ि दुइ कर । बलिते लागिला किछु विनय उत्तर ॥१४६॥

जानते थे कि–मैं अन्तरिक्ष में हूँ अथवा पृथ्वी पर हूँ, गङ्गाजी में हूँ अथवा अन्य किसी जगह हूँ ॥ १३१ ॥ पूर्व काल में जैसे श्रीप्रह्लादजी में श्रीकृष्ण-स्मरण भक्ति की शक्ति थी उसी प्रकार की शक्ति ठाकुर हरिदासजी में भी थी ॥ १३२ ॥ जिनके शरीर में श्रीगौरचन्द्र निरन्तर विद्यमान रहते थे, उन हरिदासजी के लिये यह सब कोई विचित्र बात नहीं थी ॥ १३३ ॥ जिस प्रकार श्रीहनुमानजी ने सम्मान की रक्षा के हेतु स्वयं राक्षस मेघ नाद का बन्धन ( ब्रह्मास्त्र ) स्वीकार कर लिया था ॥ १३४ ॥ उसी प्रकार हरिदासजी ने भी संसार की शिक्षा के लिये यवनों के प्रहार स्वीकार किये ॥ १३५ ॥ केवल यह दिखलाने के लिये कि–यदि मेरी असीम दुर्गति हो अथवा प्राण भी जाँय तब भी मैं अपने मुख से 'हरि' नाम कहना नहीं छोड़ूँगा॥१३६॥नहीं तो, गोविन्द जैसे रक्षक के होते हुए श्रीहरिदासजी के कुछ भी अनिष्ट करने की किसकी सामर्थ्य थे ॥१३७॥ श्रीहरिदासजी के स्मरण मात्र से ही इस प्रकार के दुःख निश्चय ही तत्काल नष्ट हो जाते हैं फिर स्वयं श्रीहरिदास जी तो बात ही क्या ? ॥१३८॥ सत्य ही श्रीहरिदास ठाकुर जगत्-ईश्वर श्रीचैतन्यचन्द्र के सर्व-प्रधान पार्षद हैं॥१३९॥ ( पश्चात् श्रीहरिदासजी गङ्गाजी में डाल दिये जाते हैं वहाँ आप धारा में बहते रहते हैं ) इस प्रकार श्री-ठाकुर हरिदास के कुछ देर श्रीगङ्गाजी में बहने के पश्चात् प्रभु की इच्छा से उनको बाह्य-ज्ञान हो आया ॥ १४० ॥ श्रीहरिदास महाशय चेतना पाकर परानन्द दशा में श्रीगङ्गा-तट पर उठ आये ॥ १४१ ॥ उच्च स्वर से कृष्ण नाम बोलते २ उसी ( परानन्द दशा में ) वे फुलिया ग्राम में आये ॥ १४२ ॥ उनकी अद्भुत शक्ति को देखकर सभी यवनों का हिंसा-भाव नष्ट होकर मन निर्मल हो गया ॥ १४३ ॥ वे सब उन्हें पीर समझ कर नमस्कार करने लगे तथा समस्त यवन-गण का निस्तार हो गया ॥ १४४ ॥ कुछ क्षण में श्रीहरिदास जी को बाह्य ज्ञान हुआ और कृपामय हास्य करते हुए देश पति की ओर देखने लगे १४५ तब तो देश-पति शीघ्रता

सत्य सत्य जानिलाङ तुमि महा पीर । एक ज्ञान तोमार से हइयाछे स्थिर ॥१४७॥
जोगी ज्ञानी सब जत मुखे मात्र बोले । तुमि से पाइला सिद्धि महा कुतूहले ॥१४८॥
तोमारे देखिते मुञि आनिलुँ एथारे । सब दोष महाशय क्षमिबे आमारे ॥१४९॥
सकल तोमार सम शत्रु मित्र नाञि । तोमा चिने हेन जन त्रिभुवने नाञि ॥१५०॥
चल तुमि शुभ कर आपन इच्छाय । गङ्गातीरे थाक गिया आपन गुफाय ॥१५१॥
आपन इच्छाय तुमि थाक जथा तथा । जे तोमार इच्छा ताहि करह सर्व्वथा ॥१५२॥
हरिदास ठाकुरेर चरण देखिले । उत्तमेर कि दाय जवन देखि भूले ॥१५३॥
एत क्रोधे आनिलेक मारिबार तरे । पीर ज्ञान करि आर पाये पाछे धरे ॥१५४॥
जबनेरे कृपा दृष्टि करिया प्रकाश । फुलियाय आइलेन ठाकुर हरिदास ॥१५५॥
उच्च करि हरि नाम लइते लइते । आइलेन हरिदास ब्राह्मण समाते ॥१५६॥
हरिदासे देखि फुलियार विप्रगण । सभेइ हइला अति परानन्द-मन ॥१५७॥
हरिध्वनि विप्रगण लागिला करिते । हरिदास लागिलेन आनन्दे नाचिते ॥१५८॥
अद्भुत अनन्त हरिदासेर विकार । अश्रु, कम्प, हास्य, मूर्च्छा, पुलक, हुङ्कार ॥१५९॥
आछाड़ खायेन हरिदास प्रेम रसे । देखिया ब्राह्मण गण महानन्दे भासे ॥१६०॥
स्थिर हइ क्षणेके वसिला हरिदास । विप्रगण वसिलेन वेढ़ि चारि पाश ॥१६१॥

---

पूर्वक दोनों हाथ जोड़कर विनय पूर्वक कुछ नम्र निवेदन करने लगा कि-महाशयजी ! मैंने निश्चय पूर्वक जान लिया कि आप बड़े पीर हैं, आपकी एक निष्ठता स्थिर हो गई है ॥ १४६-१४७ ॥ योगी व ज्ञानी तो ( योगी, ज्ञानी करके ) केवल मुख से ही बोलते हैं, परन्तु आपने तो बड़े कुतूहल में ही उसको सिद्धि पा ली है ॥१४८॥ आपके दर्शन करने के लिये मैंने आपको बुलवाया था, हे महाशय जी ! हमारे सब दोषों को आप क्षमा करना ॥ १४९ ॥ आपके लिये सब बराबर हैं, आपका न कोई शत्रु है, न कोई मित्र, आपको पहिचाने ऐसा मनुष्य त्रिभुवन में कोई नहीं है ॥ १५० ॥ अब आप शुभ प्रस्थान कीजिये और अपनी इच्छा से जहाँ चाहें श्रीगङ्गा-तट पर अथवा अपनी गुफा में रहिये ॥ १५१ ॥ अथवा अपनी इच्छानुसार जहाँ चाहें आप रहिये और सदैव अपनी इच्छानुसार जो कुछ चाहें कीजिये ॥ १५२ ॥ श्रीग्रन्थकार कहते हैं कि—श्रीहरिदास ठाकुर के चरण दर्शन करने पर उत्तम मनुष्य की क्या चले यवन भी मुग्ध हो जाते हैं ॥ १५३ ॥ जिस यवन पति ने इतने क्रोध में आकर श्रीहरिदास जी को मरवाने के लिये बुलवाया था वही यवन-पति श्रीहरिदास जी को पीर समझ कर बारम्बार चरणों को पकड़ता है ॥ १५४ ॥ यवन के ऊपर कृपा करके श्रीहरिदास ठाकुर फुलिया में आये ॥ १५५ ॥ श्रीहरिदास जी उच्च स्वर से 'श्रीहरि नाम' लेते-लेते फुलिया ग्राम के ब्राह्मणों की समाज में आये ॥ १५६ ॥ श्रीहरिदास जी को देखकर फुलिया के विप्रगण सभी चित्त में अति परमानन्दित हुए ॥१५७॥ 'हरि' 'हरि' ध्वनि करने लगे तथा श्रीहरिदासजी आनन्द में मस्त होकर नाचने लगे॥१५८॥हरिदासजी को उस समय अश्रु,कम्प हास्य,मूर्च्छा,पुलक एवं हुङ्कार आदि अष्ट सात्विक विकार असीम एवं अद्भुत प्रकारसे होने लगे १५९ वे प्रेमरस में डूबकर पछाड़ खाने लगे जिसे देखकर महानन्द में भासने लगे १६० कुछ समय पश्चात् श्रीहरिदासजी स्थिर होकर बैठ गये,विप्रगण भी उनको चारों ओर से घेरकर बैठ गये १६१

हरिदास बोलेन 'शुनह विप्र गण । दुःख ना भाविह किछु आमार कारण ॥१६२॥
प्रभु निन्दा आमि शुनिलाङ जे अपार । उचित ताहार शास्ति हइल आमार ॥१६३॥
भाल हैल, इथे बड़ पाइलुँ सन्तोष । अल्प शास्ति करि चमिलेन बड़ दोष ॥१६४॥
कुम्भीपाक हय विष्णु-निन्दन श्रवणे । ताहा आमि विस्तर शुनिल पाप-काने ॥१६५॥
योग्य शास्ति करिलेन ईश्वर ताहार । हेन पाप आर जेन नहे पुनर्व्वार' ॥१६६॥
हेन मते हरिदास विप्र-गण सङ्गे । निर्भये करेन सङ्कीर्त्तन महा रङ्गे ॥१६७॥
ताहानेओ दुःख दिल जे सब यवने । सवंशे उभिष्ट तारा हैल कथो दिने ॥१६८॥
तवे हरिदास गङ्गा तीरे गोफा करि । थाकेन विरले अहर्निश 'कृष्ण' स्मरि ॥१६९॥
तीन लच नाम दिने करेन ग्रहण । गोफाइ हइल तान वैकुण्ठ भवन ॥१७०॥
महा नाग वैसे सेइ गोफार भितरे । तार ज्वाला प्राणि-मात्र सहिते ना पारे ॥१७१ ।
हरिदास ठाकुरेर सम्भाषा करिते । जतेक आइसे केह ना पारे रहिते ॥१७२॥
परम विषेर ज्वाला सभेइ पायेन । हरिदास पुनि इहा किछु ना जानेन ॥१७३॥
वसिया करेन युक्ति सर्व्व विप्र गणे । 'हरिदास आश्रमे एतेक ज्वाला केने' ॥१७४॥
सेइ फुलियाय वैसे महा वैद्य गण । तारा आसि जानिलेक सर्पेर कारण ॥१७५॥
वैद्य बलिलेक 'एइ गोफार तलाय । महा एक नाग आछे ताहार ज्वालाय ॥१७६॥
रहिते ना पारे केह कहिल निश्चय । हरिदास ! सत्वरे चलुन अन्याश्रय ॥१७७॥

---

तब श्रीहरिदास जी बोले कि–'हे विप्र-गण ! सुनिये, मेरे लिये आप अपने मन में कुछ दुःख न मानना ॥ १६२ ॥ तत्त्व बात यह है कि–मैंने जो असीम प्रभु-निन्दा सुनी थी उसकी उचित ताड़ना ही मुझे मिली है ॥ १६३ ॥ अच्छा हुआ, इसमें मुझको बड़ा सन्तोष हुआ कि–( प्रभु ने ) थोड़ा सा दण्ड देकर मेरे बड़े भ री अपराध को क्षमा कर दिया ॥ १६४ ॥ भाइयो ! विष्णु-निन्दा श्रवण करने से कुम्भीपाक नरक भोगना पड़ता है । उस विष्णु-निन्दा को मैंने इन पापी कानों से खूब सुना था ॥ १६५ ॥ ईश्वर ने उसका उचित दण्ड मुझको दिया जिससे फिर दुबारा ऐसा पाप मुझ से न हो ॥ १६६ ॥ इस प्रकार श्रीहरिदास जी निर्भय होकर महान् आनन्द पूर्वक विप्रों को साथ लेकर 'श्रीहरि-सङ्कीर्त्तन' करते थे ॥ १६७ ॥ जिन यवनों ने श्रीहरिदास ठाकुर को दुःख दिया था कुछ दिन उपरान्त वे सब यवन अपने कुल सहित नष्ट भ्रष्ट हो गये ॥ १६८ । तत्-पश्चात् ( श्रीहरिदास ठाकुर ) श्रीगङ्गाजी के किनारे एकान्त में गुफा बनाकर रात दिन 'कृष्ण' 'कृष्ण' स्मरण करते हुए रहने लगे ॥ १६९ ॥ प्रति दिन ३ लक्ष 'नाम' लेते थे उनकी गुफा ही वैकुण्ठ-भवन बन गई ॥१७०॥ उसी गुफा के भीतर एक महा नाग सर्प रहता था उसकी विष-ज्वाला कोई भी प्राणी सहन नहीं कर सकता था ॥ १७१ ॥ श्रीहरिदासजी से बात-चीत करने के लिये जितने मनुष्य वहाँ आते थे कोई भी वहाँ ठहर नहीं पाता था ॥ १७२ ॥ उस परम विष की महान् ज्वाला सभी को लगती थी परन्तु श्रीहरिदास जी को उसका तनिक भी भान नहीं होता था ॥ १७३ ॥ एक दिन सब विप्रगण बैठकर विचार करने लगे कि–श्रीहरिदासजी के आश्रम में इतनी ज्वाला क्या है ॥ १७४ ॥ उसी फुलिया में बड़े-बड़े नामी वैद्य-गण भी रहते थे उन्होंने आकर जान लिया कि इस ज्वाला का कारण सर्प है ॥ १७५ ॥ वैद्य बोले कि इस गुफा के नीचे एक महा

सापेर सहित वास कभु युक्त नहे। चल सभे कहि गिया ताहान आलये' ॥१७८॥
तबे सभे आसि हरिदास ठाकुरेरे। कहिला वृत्तान्त सेइ गोफा छाड़िबारे ॥१७९॥
'महा नाग वैसे एइ गोफार भितरे। ताहार ज्वालाय केहो रहिते ना पारे ॥१८०॥
अतएव ए स्थाने रहिते योग्य नहे। अन्य स्थाने आसि तुमि करह आश्रये ॥१८१॥
हरिदास बोलेन 'अनेक दिन आछि। कोनो ज्वालारिष्ट ए गोफाय नाहि वासि ॥१८२॥
सबे दुःख तोमरा जे ना पार सहिते। एतेके चलिब कालि आमि जे से मिते ॥१८३॥
सत्य यदि इहाते थाकेन महाशय। तिहों यदि कालि ना छाड़ेन ए आलय ॥१८४॥
तबे आमि कालि छाड़ि जाइब सर्व्वथा। चिन्ता नाहि तोमरा बोलह कृष्ण गाथा। १८५॥
एइ मत कृष्ण-कथा मङ्गल-कीर्त्तने। थाकिते, अद्भुत अति हैल सेइ क्षणे ॥१८६॥
'हरिदास छाड़िबेन' शुनिला वचन। महा नाग स्थान छाड़िलेन सेइ क्षण ॥१८७॥
गर्त्त हैते उठि सर्प सन्ध्यार प्रवेशे। सभेइ देखेन चलिलेन अन्यदेशे ॥१८८॥
परम अद्भुत सर्प महा भयङ्कर। पीत नील शुक्ल वर्ण-परम सुन्दर ॥१८९॥
महा मणि ज्वलित छे मस्तक उपरे। देखि भये विप्रगण 'कृष्ण' 'कृष्ण' स्मरे ॥१९०॥
सर्प से चलिया गेल ज्वाला नाहि आर। विप्र-गण हइलेन सन्तोष अपार ॥१९१॥
देखि हरिदास ठाकुरेर महाशक्ति। विप्र गणेर जन्मिल विशेष ताँरे भक्ति ॥१९२॥

---

नाग रहता है जिसकी ज्वाला से वहाँ कोई ठहर नहीं पाता। यह बात हम निश्चय करके कहते हैं—हे श्रीहरिदासजी! आप शीघ्र ही दूसरे स्थान को चलिये ॥ १७६-१७७ ॥ सर्प के निकट वास करना कभी उचित नहीं है सभी उनके स्थान पर जाकर उनसे कहो' ॥ १७८ ॥ तब सबने श्रीहरिदासजी के आश्रम पर पहुँच कर उनसे गुफा छोड़ने का वृत्तान्त कहा ॥१७९॥ कि—'इस गुफा के भीतर एक महा नाग रहता है, उसके विष की ज्वाला में कोई भी ठहर नहीं पाता है ॥ १८० ॥ अतएव यह स्थान रहने के योग्य नहीं है आप किसी दूसरे स्थान पर चलकर निवास कीजिये ॥ १८१ ॥ श्रीहरिदासजी बोले कि—मैं तो यहाँ पर अनेक दिन से रहता हूँ, परन्तु किसी प्रकार की ज्वाला का अनुभव मैंने इस गुफा में नहीं किया ॥ १८२ ॥ मुझे सब दुःख यही है कि तुम उसे सहन नहीं कर पाते हो अतएव मैं कल इधर-उधर कहीं चला जाऊँगा ॥ १८३ ॥ सचमुच ही यदि इसमें नाग महाशय रहते हैं और वह यदि कल इस स्थान को नहीं छोड़ेंगे ॥ १८४ ॥ तो फिर निश्चय ही मैं कल इस आश्रम को छोड़कर चला जाऊँगा, कोई चिन्ता की बात नहीं है, तुम लोग कृष्ण-वार्त्ता करो ॥ १८५ ॥ इस प्रकार जब कृष्ण-कथा-वार्त्ता एवं मङ्गलकारी कीर्त्तन हो रहा था उसी क्षण एक अति अद्भुत बात हुई ॥ १८६ ॥ 'हरिदासजी इस स्थान को छोड़ देंगे' यह बात सुनकर महा नाग ने तत्काल ही स्थान छोड़ दिया ॥ १८७ ॥ वह सर्प सन्ध्या होने पर गर्त में से निकल कर दूसरी जगह चला गया, इस बात को सब लोगों ने देखा ॥ १८८ ॥ वह सर्प परम अद्भुत एवं महा भयङ्कर था और उसका नीला, पीला व श्वेत परम सुन्दर वर्ण था ॥ १८९ ॥ उसके सिर में महा मणि जल रही थी। विप्रगण देखकर भय से 'कृष्ण' 'कृष्ण' स्मरण करने लगे ॥ १९० ॥ सर्प के चले जाने पर पुनः ज्वाला नहीं रही जिससे विप्र गण को अपार प्रसन्न हुई ॥ १९१ ॥ श्रीहरिदास ठाकुर की महान शक्ति देखकर विप्र-गण को उसमें विशेष भक्ति बढ़ी ॥ १९२ ॥

हरिदास ठाकुरेर ए कोन प्रभाव । जार वाक्य मात्र स्थान छाड़िलेन नाग ॥१९३॥
जार दृष्टि मात्र छाड़े अविद्या-बन्धन । कृष्ण ना लङ्घेन हरिदासेर वचन ॥१९४॥
आर एक शुन तान अद्भुत आख्यान । नाग राज जे कहिला महिमा ताहान ॥१९५॥
एक दिन एक बड़ लोकेर मन्दिरे । सर्प-क्षत डङ्क नाचे विविध प्रकारे ॥१९६॥
मृदङ्ग-मन्दिरा गीत-तार मन्त्र घोरे । डङ्क वेढ़ि सभेइ गायेन उच्च स्वरे ॥१९७॥
दैव गति तथाय आइला हरिदास । डङ्क नृत्य देखेन हइया एक पाश ॥१९८॥
मनुष्य शरीरे नाग राज मन्त्र बले । अधिष्ठान हइया नाचेन कुतूहले ॥१९९॥
कालि दहे करिलेन जे नाट्य ईश्वरे । सेइ गीत गायेन कारुण्य उच्च स्वरे ॥२००॥
शुनि निज प्रभुर महिमा हरिदास । मूर्च्छित हइया पड़िलेन (कोथा) नाहि श्वास ॥२०१॥
क्षणेके चैतन्य पाइ करिया हुङ्कार । आनन्दे लागिला नृत्य करिते अपार ॥२०२॥
हरिदास ठाकुरेर आवेश देखिया । एक भित हइ डङ्क रहिलेन गिया ॥२०३॥
गड़ागड़ि जायेन ठाकुर हरिदास । अद्भुत पुलक अश्रु-कम्पेर प्रकाश ॥२०४॥
रोदन करेन हरिदास महाशय । शुनिआ प्रभुर गुण हइला तन्मय ॥२०५॥
हरिदासे वेढ़ि सभे गायेन हरिषे । जोड़ हस्ते रहि डङ्क देखे एक पाशे॥२०६॥
क्षणेके रहिला हरिदासेर आवेश । पुन आसि डङ्क नृत्ये करिला प्रवेश ॥२०७॥
हरिदास ठाकुरेर देखिया आवेश । सभेइ हइला अति आनन्द विशेष ॥२०८॥

---

श्रीहरिदास ठाकुर का यह कैसा प्रभाव है 'जिनके वाक्य-मात्र से नाग स्थान को छोड़ गया' ॥१९३॥ भाइयो ! जिनकी दृष्टि मात्र से अविद्या-बन्धन छूट जाते एवं जिन ( श्रीहरिदासजी ) की बात को श्रीकृष्ण कभी नहीं मेटते उनका एक और अद्भुत चरित्र सुनिये, जिसमें नाग-राज ने जिस प्रकार से आपकी महिमा गाई है, उसका वर्णन है ॥१९४-१९५॥ एक दिन एक बड़े आदमी के घर में एक सर्प-क्षत [साँप से डसा हुआ मनुष्य] व डंक झाड़ने वाला अनेक प्रकार से नाच रहे थे ॥१९६॥ सब लोग चिकित्सक के मन्त्रों की लहर में आकर उसको घेरे हुए मृदङ्ग, मंजीरे व सितार बजाकर ऊँचे स्वर से गा रहे थे ॥ १९७ ॥ दैवयोग से उसी समय श्रीहरिदासजी वहाँ जा पहुँचे वे एक ओर खड़े होकर एक टक चिकित्सक का नृत्य देखने लगे ॥१९८॥ मन्त्रो-बल से नाग-राज मनुष्य शरीर में अधिष्ठान करके आनन्द पूर्वक नाच रहा था ॥ १९९ ॥ श्रीकृष्ण ने काली-दह में जो नाट्य किया था उसी के गीत सब लोग करुणापूर्ण उच्च स्वर से गा रहे थे ॥२००॥ श्रीहरिदासजी अपने प्रभु की महिमा सुनकर मूर्च्छित होकर ऐसे गिर पड़े कि-कहीं श्वास नहीं थी ॥ २०१ ॥ एक क्षण के पश्चात् चेतनता प्राप्त करके हुङ्कार मारकर आनन्द से अद्भुत नृत्य करने लगे ॥ २०२ ॥ श्रीहरिदास ठाकुर के इस आवेश को देखकर चिकित्सक एक ओर जाकर खड़ा रह गया ॥ २०३ ॥ इधर श्रीहरिदास ठाकुर लोट-पोट होने लगे, उनके शरीर में अद्भुत पुलक, अश्रु एवं कम्प प्रकट हो रहे थे ॥ २०४ ॥ श्रीहरिदास महाशय रोदन करने लगे एवं प्रभु के गुणों को सुन कर तन्मय हो गये ॥ २०५ ॥ सब लोग चारों ओर से श्रीहरिदास जी को घेर कर परम प्रसन्नता पूर्वक गान करने लगे । यह सब दृश्य [ हाथ जोड़े हुए ] डंक-चिकित्सक एक ओर खड़े होकर देखता था ॥ २०६ ॥ जब क्षण भर में श्रीहरिदासजी का आवेश टूट गया तो चिकित्सक ने

जे खाने पड़ये तान चरणेर धूलि। सभेइ लेपेन अङ्गे हइ कुतूहली ॥२०९॥
आर एक ढङ्ग विप्र थाकि सेइ खाने। 'मुञिओ नाचिमु आजि' गणे मने मने ॥२१०॥
बुझिलाङ नाचिलेइ अबोध वर्वरे। अल्प मनुष्येरे ओ परम भक्ति करे ॥२११॥
एत भावि सेइ खाने आछाड़ खाइया। पड़िल जेहेन महा-अचेष्ट हइया ॥२१२॥
जेइ मात्र पड़िल डङ्केर नृत्य स्थाने। मारिते लागिला डङ्क महा क्रोध मने ॥२१३॥
आशे पाशे घाड़े मुँडे वेत्रेर प्रहार। निर्घात मारये डङ्क रक्षा नाहि आर ॥२१४॥
वेत्रेर प्रहारे विप्र जर्ज्जर हइया। बाप! बाप! बलि त्रासे गेल पलाइया ॥२१५॥
तबे डङ्क निज-सुखे नाचिला विस्तर। सभार जन्मिल बड़ विस्मय अन्तर ॥२१६॥
जोड़ हस्ते सभे जिज्ञासेन डङ्क स्थाने। 'कह देखि ए विप्रेरे मारिले वा केने ॥२१७॥
हरिदास नाचिते वा जोड़ हस्त केने। रहिल, ए सब कथा कहत आपने' ॥२१८॥
तबे सेइ डङ्क-मुखे विष्णु भक्त-नाग। कहिते लागिला हरिदासेर प्रभाव ॥२१९॥
तोमरा जे जिज्ञासिला ए बड़ रहस्य। जद्यपि अकथ्य तभो कहिब अवश्य ॥२२०॥
हरिदास ठाकुरेर देखिया आवेश। तोमरा जे भक्ति बड़ करिला विशेष ॥२२१॥
ताहा देखि ओ ब्राह्मण आहार्य करिया। पड़िला मात्सर्य बुद्ध्ये आछाड़ खाइया ॥२२२॥
आमारो कि नृत्य-सुख भङ्ग करिवारे। आहार्य्ये मात्सर्य्ये कोन जन शक्ति-धरे ॥२२३॥

---

पुनः आकर नृत्य में प्रवेश किया ॥२०७॥ श्रीहरिदास ठाकुर का आवेश देखकर सब लोग अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ २०८ ॥ जिस २ स्थान पर उनके चरणों की धूलि पड़ती थी, लोग वहाँ से उठा उठाकर परम आनन्द-पूर्वक अपने शरीर में लेपन करते थे ॥२०९॥ और एक ढोंगी विप्र वहीं पर खड़ा हुआ मन ही मन में सोचता था कि—'आज मैं भी नाचूँ' ॥ २१० ॥ 'मैं समझ गया अबोध एवं पागल जंगली लोग नाचने से ही एक तुच्छ मनुष्य के प्रति भी परम भक्ति प्रदर्शित करते हैं' ॥२११॥ इतना विचार कर वह वहीं पर पछाड़ खाकर अचेतन की तरह गिर पड़ा ॥ २१२ ॥ ज्योंही वह चिकित्सक के नृत्य करने की जगह में गिरा कि डंक-चिकित्सक मन में महा क्रोधित हो उसे मारने लगा ॥ २१३ ॥ अगल-बगल में, गर्दन में, सिर में बड़े प्रचण्ड रूप से बेत्रों के प्रहार मारता था जिससे रक्षा नहीं थी ॥ २१४ ॥ वेत्रों के प्रहारों से विप्र जर्जर होकर बाप रे! बाप रे! चिल्लाता हुआ डर के मारे भाग गया ॥ २१५ ॥ तब डंक-चिकित्सक स्वयं आनन्द में मत्त होकर खूब नृत्य करने लगा। यह देखकर सब के मन में बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ २१६ ॥ वह सब हाथ जोड़कर चिकित्सक से पूछने लगा कि-'श्रीमान् जी कहिये, आपने इस विप्र को क्यों मारा? ॥ २१७ ॥ और हरिदासजी के नाचने पर हाथ जोड़कर एक ओर को क्यों खड़े हो गये थे?' कृपा करके इस बात का रहस्य हमको बतलाइये ॥ २१८ ॥ तब उस चिकित्सक के मुख से विष्णु-भक्त नाग श्रीहरिदासजी की महिमा का वर्णन करने लगा ॥ २१९ ॥ वह बोला कि—तुम लोगों ने जो बात पूछी है वह बड़ी रहस्यमय है यद्यपि वह कहने योग्य नहीं है तथापि मैं तुमसे अवश्य कहूँगा ॥ २२० ॥ तुम लोगों ने जो श्रीहरिदास ठाकुर का आवेश देखकर उनके प्रति जो विशेष भक्ति प्रदर्शित की थी ॥ २२१ ॥ उसको देखकर वह विप्र ढोंग बनाकर मत्सरता से पछाड़ खाकर गिर पड़ा था २२२ तुम जानते हो? ईर्ष्या एवं मत्सर पूर्वक हमारे नृत्य के आनन्द को नष्ट करने की किस

ए सकल दाम्भिकेर कृष्णे प्रीति नाइ  अकैतव हइले से कृष्ण भक्ति पाइ  २२६
एइ जे देखिले नाचिलेन हरिदास  ओ नृत्य देखिले सर्व्व बन्ध हय नाश  २२७
हरिदास नृत्ये कृष्ण नाचेन आपने । ब्रह्माण्ड पवित्र हये ओ नृत्य देखने ॥२२८॥
उहाने से योग्य पद हरिदास नाम । निरवधि कृष्ण बद्ध हृदये उहान ॥२२९॥
सर्व्व भूत वत्सल सभार उपकारी । ईश्वरेर सङ्गे प्रति जन्मे अवतारी ॥२३०॥
उजि से निरपराध विष्णु वैष्णवेते । स्वप्नेओ उहान दृष्टि ना जाय विपथे ॥२३१॥
तिलार्द्ध उहान सङ्ग जे जीवेर हय । से अवश्य पाय कृष्ण पाद पद्माश्रय ॥२३२॥
ब्रह्मा शिवो हरिदास हेन भक्त-सङ्ग । निरवधि करिते चित्तेर बड़ रङ्ग ॥२३३॥
जाति कुल सर्व निरर्थक बुझाइते । जन्मिलेन नीच कुले प्रभुर आज्ञाते ॥२३४॥
अधम कुलेते यदि विष्णु भक्त हय । तथापि सेइ से पूज्य सर्व्व शास्त्रे कय ॥२३५॥
उत्तम कुलेते जन्मि श्री कृष्ण ना भजे । कुले तार कि करिवे नरकेते मजे ॥२३६॥
से सकल वेद वाक्येर साक्षी देखाइते । जन्मिलेन हरिदास अधम कुलेते ॥२३७॥
प्रह्लाद जे हेन दैत्य, कपि हनुमान । सेइ मत हरिदास नीच जाति नाम ॥२३८॥

---

मे सामर्थ्य ? ॥ २२३ ॥ उसने तो श्रीहरिदासजी के साथ मिथ्या-स्पर्द्धा करके यह सब लीला की थी अतएव मैंने उसको खूब दण्ड दिया ॥ २२४ ॥ जो लोग यह सोचकर कि—संसार में हम को लोग बड़ा आदमी करके जानें अथवा अपने को प्रगट करने के लिये धर्म-कर्म करते हैं ॥ २२५ ॥ उन सब दम्भी लोगों की श्रीकृष्ण में प्रीति कभी नहीं होती है, श्रीकृष्ण-भक्ति तो छल-कपट शून्य होने पर ही मिलती है ॥ २२६ ॥ यही जो तुमने श्रीहरिदास ठाकुर को नृत्य करते हुए देखा था, उस नृत्य के दर्शन करने से जीव के सब बन्धन नष्ट हो जाते हैं ॥२२७॥ श्रीहरिदासजी के नृत्य में कृष्ण स्वयं नाचते हैं उस नृत्य-दर्शन से ब्रह्माण्ड पवित्र होता है॥२२८॥ 'श्रीहरिदास नाम' उनके लिये योग्य पद वही है उनके हृदय में कृष्ण निरन्तर बद्ध रहते हैं ॥ २२९ ॥ वह सब प्राणियों पर दया रखने वाले, सब का उपकार करने वाले एवं प्रति अवतार में ईश्वर के साथ अवतीर्ण होने वाले हैं ॥ २३० ॥ वही विष्णु एवं वैष्णवों के निकट अपराध-शून्य हैं । स्वप्न में भी उनकी दृष्टि विषय पर नहीं जाती है ॥ २३१ ॥ जिस जीव को तिलार्द्ध के लिये भी उनका सङ्ग प्राप्त हो जाता है, वह जीव अवश्य श्रीकृष्ण-चरण-कमल आश्रय पाता है ॥ २३२ ॥ ब्रह्मा-शिव भी श्रीहरिदास जैसे भक्त का सङ्ग करने के लिये वे निरन्तर बड़े इच्छुक रहते हैं ॥ २३४ ॥ श्रीहरिदासजी यह दिखलाने के लिये कि—'जाति-कुल सब निरर्थक है' प्रभु की आज्ञानुसार नीच कुल में पैदा हुए ॥ २३४ ॥ 'यदि कोई विष्णु-भक्त नीच कुल में उत्पन्न हो तो भी वह पूजने योग्य है' इस बात को सर्व शास्त्र वर्णन करते हैं ॥ २३५ ॥ 'यदि कोई पुरुष उत्तम कुल में पैदा होकर श्रीकृष्ण भजन नहीं करता है तो कुल उसकी क्या सहायता कर सकता है, वह नरक में पड़ेगा ॥२३६॥ शास्त्रों के इन सब वाक्यों की साक्षी दिखलाने के लिये श्रीहरिदासजी ने नीच कुल में जन्म लिया॥२३७॥जिस प्रकार प्रह्लादजी दैत्य तथा हनुमानजी कपि हुए उसी प्रकार श्रीहरिदासजी से नीच जाति के हैं २३८

हरिदास स्पर्शे वाञ्छा करे देव गण । गङ्गाओ वाञ्छेन हरि दासेर मज्जन ॥२३९॥
स्पर्शेर कि दाय देखिले ओ हरिदास । छिरडे सर्व्व जीवेर अनादि कर्म-पाश ॥२४०॥
हरिदास आश्रय करिब जेइ जन । ताने देखिले ओ खण्डे संसार बन्धन ॥२४१॥
शत वर्षे शत मुखे उहान महिमा । कहिलेओ नाहि पारि करिवोर सीमा ॥२४२॥
भाग्यवन्त तोमरा से तोमा 'सभा' हैते । उहान महिमा किछु आइला मुखेते ॥२४३॥
सकृत जे वलिवेक हरिदास नाम । सत्य-सत्य सेह जाइवेक कृष्ण धाम ॥२४४॥
एत बलि मौन हइलेन नाग-राज । तुष्ट हइलेन शुनि सज्जन समाज ॥२४५॥
हेन हरिदास ठाकुरेर अनुभाव । कहिया आछेन पूर्व्वे श्रीवैष्णव नाग ॥२४६॥
सभार परम प्रीति हरिदास प्रति । नाग मुखे शुनिजा विशेष हैल अति ॥२४७॥
हेन मते वैसेन ठाकुर हरिदास । गौरचन्द्र ना करेन भक्तिर प्रकाश ॥२४८॥
सर्व्वदिके विष्णु-भक्ति-शून्य सर्व्व जन । उद्देश ना जाने केहो केमन कीर्त्तन ॥२४९॥
कोथाओ नाहिक विष्णु भक्तिर प्रकाश । वैष्णवेर सभेइ करये परिहास ॥२५०॥
आपना आपनि सब साधु गण मेलि । गायेन श्रीकृष्ण नाम दिया करतालि ॥२५१॥
ताहातेओ दुष्ट गण महा क्रोध करे । पाखण्डे-पाखण्डे मेलि वल्गियाइ मरे ॥२५२॥
ए वामन गुला राज्य करिवेक नाश । इहा सभा हैते हैव दुर्भिक्ष प्रकाश ॥२५३॥
ए वामनगुला सब मागिया खाइते । भावुक कीर्त्तन करि नाना छला पाते ॥२५४॥

श्री हरिदासजी के स्पर्श की देवगण भी इच्छा करते हैं श्री गङ्गाजी भी 'श्री हरिदासजी का अपने जल में स्नान' चाहती हैं ॥ २३९ ॥ स्पर्श की तो क्या बात हरिदासजी के दर्शन करने से भी सब जीवों के अनादि काल के कर्म-पाश नष्ट हो जाते हैं ॥ २४० ॥ जो मनुष्य श्री हरिदास जी का आश्रय ग्रहण करेगा उसके दर्शन से भी संसार बन्धन खण्डन हो जायगा ॥२४१॥ मैं १०० वर्ष तक १०० मुखों से वर्णन करने पर भी उनकी महिमा की सीमा नहीं पा सकता हूँ ॥ २४२ ॥ आप लोग बड़े भाग्यवान् हैं, जो तुम्हारी सभा में उनकी कुछ महिमा मेरे मुख पर आई ॥ २४३ ॥ जो मनुष्य एक बार भी 'श्री हरिदास' नाम बोलेंगे, निश्चय ही वह श्री कृष्ण धाम को जायँगे' ॥ २४४ ॥ इतना कह कर नागराज चुप हो गया । यह प्रशंसा को सुनकर सब सज्जन-वृन्द प्रसन्न हुए ॥ २४५ ॥ ऐसे श्री हरिदास ठाकुर की महान् महिमा, श्री वैष्णव-नाग पहले ही कह चुके हैं ॥ २४६ ॥ श्री हरिदासजी के प्रति सब लोगों की एक तो प्रथम से ही परम प्रीति थी, अब नाग-राज के मुख से उनकी महिमा सुनकर विशेष रूप से बढ़ी ॥ २४७ ॥ इस प्रकार श्रीहरिदास ठाकुर जीवन व्यतीत कर रहे थे । इधर श्रीगौरचन्द्र ने अभी अपनी भक्ति का प्रकाश नहीं किया था ॥ २४८ ॥ सब दिशाओं के मनुष्य विष्णु-भक्ति शून्य थे किसी को भी यह पता नहीं कि—'कीर्त्तन कैसा होता है' उसका क्या उद्देश्य है ॥२४९॥ विष्णु-भक्ति कहीं भी देखने में नहीं आती । सब लोग वैष्णवों की हँसी करते हैं ॥ २५० ॥ केवल साधु-गण आपस में मिलकर हाथों से तालियाँ बजा-बजाकर 'श्रीकृष्ण' नाम गा लेते थे ॥२५१॥ ऐसा करने से भी दुष्ट-गण महा क्रोधित होते थे पाखण्डी-पाखण्डी सब मिलकर क्रोध व ईर्ष्या के आवेश में उफनते थे ॥ २५२ ॥ वह कहते कि—यह बामनों का झुण्ड राज्य का नाश करेगा ' ऐसा मालूम होता है कि—यह सब होने से

गोसाञिर शयन हय वर्षा चारि मास । इहाते कि जुयाय डाकिते बड़ डाक ॥२५५॥
निद्रा भङ्ग हैले क्रुद्ध हैवे गोसाञि । दुर्भिक्ष करिव देशे इथे द्विधा नाञि' ॥२५६॥
केहो बोले यदि धान्ये किछु मूल्य चड़े । तवे ए गुलारे धरि किलाइमु घाड़े ॥२५७॥
केहो बोले 'एकादशी निशि-जागरण । करिव गोविन्द नाम करि उच्चारण ॥२५८॥
प्रति दिन उच्चारण करिया कि काज' । एइमत बोले जत मध्यस्थ समाज ॥२५९॥
दुःख पाय शुनिञा सकल भक्त-गण । तथापि ना छाड़े केहो उच्च सङ्कीर्त्तन ॥२६०॥
भक्ति योगे लोकेर देखिया अनादर । हरिदासो दुःख बड़ पायेन अन्तर ॥२६१॥
तथापिह हरिदास उच्च स्वर करि । बोलेन प्रभुर सङ्कीर्त्तन मुख भरि ॥२६२॥
इहाते ओ अत्यन्त दुष्कृति पापिगण । ना पारे शुनिते उच्च हरि सङ्कीर्त्तन ॥२६३॥
हरिनदी-ग्रामे एक ब्राह्मण दुर्ज्जन । हरिदास देखि क्रोधे बोलये वचन ॥२६४॥
'अये हरिदास ! ए कि व्यभार तोमार । डाकिया जे नाम लह कि हेतु इहार ॥२६५॥
मने मने जपिवा एइ से धर्म्म हय । डाकिया लइते नाम कोन शास्त्रे कय ॥२६६॥
कार शिक्षा हरिनाम डाकिया लइते । एइत पण्डित्य सभा बोलह इहाते ॥२६७॥
हरिदास बोलेन 'इहार जत तत्त्व । तोमरा से जान हरिनामेर महत्व ॥२६८॥
तोमरा सभार मुखे शुनिञा से आमि । वलितेछि, वलिवाङ जेवा किछु जानि ॥२६९॥
उच्च करि लइले शतगुण पुण्य हय । दोषत ना कहे शास्त्रे गुण से वर्णय ॥२७०॥
तथाहि—"उच्चैः शतगुणं भवेत्" इति ।

---

दुर्भिक्ष पड़ेगा ॥ २५२-२५३ ॥ यह सब बामनों का झुण्ड माँगने खाने के लिये भाव की दुहाई देकर कीर्त्तन करके अनेक प्रकार से छल-कपट के जाल बिछाता है ॥ २५४ ॥ वर्षा के चार महीने प्रभु का शयन होता है ऐसे समय में इनका जोर-जोर से चिल्लाना क्या उचित है ॥ २५५ ॥ निद्रा-भङ्ग होने पर प्रभु क्रोधित हो जाँयगे, तब वह देश में अकाल डाल देंगे, इसमें सन्देह नहीं है ॥ २५६ ॥ कोई कहता कि—'यदि अन्न का मूल्य कुछ तेज हो जाय तो पकड़ कर इन सबकी गर्दन ठोकूँगा' ॥२५७॥ कोई कहता कि—'एकादशी में रात्रि जागरण करके उच्च स्वर से 'श्रीगोविन्द' नाम करलें ॥ २५८ ॥ प्रति दिन चिल्ला २ कर नाम करने से क्या लाभ है' मध्यस्थ समाज के सब मनुष्य इसी प्रकार की बातें करते थे ॥ २५९ ॥ यह सुन-सुनकर सब भक्त गण बड़ा दुःख पाते थे तब भी कोई उच्च-सङ्कीर्त्तन नहीं छोड़ता था ॥ २६० ॥ संसार में इस प्रकार भक्ति-योग का अनादर देखकर श्रीहरिदासजी भी मन में बड़े दुःखित होते थे ॥ २६१ ॥ तब भी श्रीहरिदासजी मुख भरकर उच्च-स्वर द्वारा प्रभु का नाम-सङ्कीर्त्तन करते थे ॥ २६२ ॥किन्तु अत्यन्त दुष्कृति पापी-गण इस उच्च हरि-सङ्कीर्त्तन को सुन नहीं सकते थे ॥ २६३ ॥ एक दिन 'हरिनदी' गाँव का एक दुष्ट ब्राह्मण श्रीहरिदासजी को देखकर क्रोधित होकर यों बोला कि—॥ २६४ ॥ 'ऐ हरिदास ! यह तुम्हारी क्या रीति है, जो चिल्ला २ कर नाम लेते हो ? इसका क्या कारण है ॥ २६५ ॥ विधान तो यह कहता है कि—मन-मन में जप करे । चिल्ला कर नाम लेना कौन शास्त्र कहता है ? ॥ २६६ ॥ उच्च स्वर से हरि नाम लेना तुमको किसने सिखलाया है ? ( देखो ! ) यह पण्डितों की सभा है इसमें तुम बोलो॥२६७॥श्रीहरिदासजी ने उत्तर दिया कि—इस विषय का जितना तत्त्व है एवं श्रीहरि नाम का जो महत्व है वह सब आप लोग जानते हो ॥२६८॥ आप सब लोगों

विप्र बोले 'उच्च नाम करिले उच्चार। शत-गुण पुण्य हय किहेतु इहार ॥२७१॥
हरिदास बोलेन 'शुनह महाशय। जे तत्त्व इहार वेदे भागवते कय ॥२७२॥
सर्व्व शास्त्र स्फुरे हरिदासेर श्रीमुखे। लागिला करिते व्याख्या कृष्णानन्द सुखे ॥२७३॥
शुन विप्र! सकृत शुनिले कृष्ण नाम। पशु, पक्षि, कीट जाय श्रीवैकुण्ठ धाम ॥२७४॥

तथाहि श्रीभागवते १०।३४।१७ सुदर्शनवाक्यम्—

यन्नाम गृह्णन्नखिलान् श्रोतृनात्मानमेव च। सद्यः पुनाति किं भूयस्तस्य स्पृष्टः पदा हि ते ॥क॥

पशु पक्षी कीट आदि वलिते ना पारे। शुनिले से हरि नाम तारा सब तरे ॥२७५॥
जपिले से कृष्ण नाम आपने से तरे। उच्च सङ्कीर्त्तने पर-उपकार करे ॥२७६॥
अतएव उच्च करि कीर्त्तन करिले। शतगुण फल हय सर्व्व शास्त्रे बोले ॥२७७॥

तथाहि श्रीनारदीये श्रीप्रह्लादवाक्यम्—

जपतो हरि नामानि स्थाने शत गुणाधिकः। आत्मानं च पुनात्युच्चैर्जपन् श्रोतृन्पुनाति च ॥ख॥

जप कर्त्ता हैते उच्च सङ्कीर्त्तनकारी। शतगुण अधिक पुराणे केने धरि ॥२७८॥
शुन विप्र! मन दिया इहार कारण। जपि आपनारे सबे करये पोषण ॥२७९॥
उच्च करि करिले गोविन्द सङ्कीर्त्तन। जन्तु मात्र शुनिञाइ पाय विमोचन ॥२८०॥
जिह्वा पाइयाओ नर विने सर्व्व प्राणी। ना पारे वलिते कृष्ण नाम हेन ध्वनि ॥२८१॥

---

के मुख से सुनकर मैंने जो कुछ जाना है वह आपके सम्मुख कहता हूँ और कहूँगा ॥ २६९ ॥ उच्च स्वर से नाम लेने से सौ गुना पुण्य होता है। शास्त्रों ने इसमें दोष तो कुछ नहीं बतलाया, हाँ गुण अवश्य वर्णन किये हैं ॥ २७० ॥ विप्र ने कहा कि–'उच्च स्वर से हरि नाम करने से सौगुना पुण्य होता है' इसका क्या कारण है ॥ २७१ ॥ श्रीहरिदासजी ने उत्तर दिया कि–हे महाशय! इसका जो तत्त्व वेदों एवं श्रीभागवत में वर्णन है वह सुनिये ॥ २७२ ॥ श्रीग्रन्थकार कहते हैं कि–हरिदासजी के श्रीमुख से सब शास्त्र स्फुरित होने लगे अतएव वे कृष्णानन्द सुख में मग्न हो व्याख्या करने लगे ॥ २७३ ॥ वे बोले–हे विप्र! सुनो, एक बार भी कृष्ण नाम सुनने पर पशु-पक्षी एवं कीट श्रीवैकुण्ठ धाम को जाते हैं ॥ २७४ ॥ जैसा कि श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध चौंतीसवें अध्याय के सत्रहवें श्लोक में श्रीसुदर्शनजी का वाक्य है—'हे प्रभो! लोक जिनके मङ्गलमय नाम को लेते हुए सभी सुनने वालों (जीवों) के साथ शीघ्र ही अपने को पवित्र करते हैं, आप वही पुरुष हो। फिर आपके चरण-स्पर्शित-जन के सम्बन्ध में और कहना ही क्या है ॥ क ॥ पशु, पक्षी, कीट आदि तो श्रीहरि नाम नहीं बोल सकते अतएव वे सब सुनकर ही उद्धार पाते हैं॥२७५॥ कृष्ण नाम जप करने से जप करने वाला स्वयं ही उद्धार पाता है, किन्तु उच्च-सङ्कीर्त्तन से पर-उपकार भी करता है ॥२७६॥ अतएव उच्च स्वर से कीर्त्तन करने से सौगुना फल होता है, यह सब शास्त्र वर्णन करते हैं ॥ २७७ ॥ जैसा श्रीनारदपुराण में श्रीप्रह्लादजी का वाक्य है–'हरि नाम जप-परायण की अपेक्षा उच्च स्वर से जप करने वाला सौगुना श्रेष्ठ है (यह युक्ति युक्त है) क्योंकि जप करने वाला केवल अपने को ही पवित्र करता है, किन्तु उच्च स्वर से जप-कर्त्ता सुनने वालों को भी पवित्र करता है ॥ ख ॥ आप लोग जानते हो, पुराण में जप करने वाले से उच्च सङ्कीर्त्तन करने वालों को सौगुना अधिक क्यों रक्खा है? ॥ २७८ ॥ हे विप्रो! मन लगाकर इसका कारण सुनिये, जप करके लोग केवल अपना पोषण करते हैं २७९ किन्तु श्रीगोविन्द का उच्च सङ्कीर्त्तन

व्यर्थ जन्मा इहारा निस्तरे जाहा हैते । बोल देखि कोन दोष से कर्म्म करिते ॥२८२॥
केहो आपनारे मात्र करये पोषण । केहो वा पोषण करे सहस्र क जन ॥२८३॥
दुइते के बड़ भावि बुझह आपने । एइ अभिप्राय गुण उच्च सङ्कीर्त्तने' ॥२८४॥
सेइ विप्र शुनि हरिदासेर कथन । वलिते लागिल क्रोधे महा दुर्व्वचन ॥२८५॥
दरशन कर्त्ता एवे हैल हरिदास । काले काले वेद पथ हय देखि नाश ॥२८६॥
युगशेषे शूद्रे वेद करिव बाखाने । एखनेइ ताहा देखि शेषे आर केने ॥२८७॥
एइ रूपे आपनारे प्रकट करिया । घरे घरे भाल भोग खाइस बुलिया ॥२८८॥
जे व्याख्या करिलि तुइ ए यदि ना लागे । तवे तोर नाक कान काटि पुनः आगे ॥२८९॥
शुनि विप्राधमेर वचन हरिदास । 'हरि' वलि ईषत् हइल किछु हास ॥२९०॥
प्रत्युत्तर आर किछु तारे ना करिया । चलिलेन उच्च करि कीर्त्तन गाइया ॥२९१॥
जेवा पापी सभासद सेह पाप मति । उचित उत्तर किछु ना करिल इथि ॥२९२॥
ए सकल राक्षस ब्राह्मण नाम मात्र । एइ सब जन जम-जातनार पात्र ॥२९३॥
कलियुगे राक्षस सकल विप्र घरे । जन्मिवेक सुजनेर हिंसा करिवारे ॥२९४॥

तथाहि वराहपुराणे महेशवाक्यम्—

'राक्षसाः कलिमाश्रित्य जायन्ते ब्रह्मयोनिषु । उत्पन्ना ब्राह्मणकुले बाधन्ते श्रोत्रियान् कृत्स्नान्' ॥ग॥

ए सब विप्रेर स्पर्श-कथा-नमस्कार । धर्म शास्त्रे सर्व्वथा निषेध करिवार ॥२९५॥

---

करने से जन्तु-मात्र भी सुनकर उद्धार पाते हैं ॥ २८० ॥ मनुष्यों के अतिरिक्त अन्य प्राणी जिह्वा पाकर भी श्रीकृष्ण-नाम उच्चारण नहीं कर पाते ॥ २८१ ॥ जिस कर्म से व्यर्थ जीवनधारी जीव उद्धार पावें, उसके करने में बतलाइये क्या दोष है ? ॥ २८२ ॥ कोई तो केवल अपना पोषण करता है और कोई सहस्रों मनुष्यों का पोषण करता है ॥ २८३ ॥ अब आप अपने मन में विचार कर देखिये कि—दोनों में कौन बड़ा है ? बस, इसी अभिप्राय से उच्च सङ्कीर्त्तन सौगुना श्रेष्ठ है ॥ २८४ ॥ श्रीहरिदासजी के वचनों को सुनकर वह विप्र क्रोधित होकर महा दुर्वचन बोलने लगा ॥ २८५ ॥ अब यह हरिदास दर्शन-कर्त्ता हुआ है । विदित होता है कि—इसी प्रकार धीरे-धीरे वेद-पथ नाश होगा ॥ २८६ ॥ युग के अन्त में शूद्र लोग वेदों की व्याख्या करने लगेंगे । अन्त में ही क्या ? इस समय ही वह प्रत्यक्ष देख रहे हैं ॥ २८७ ॥ ऐ हरिदास ! तू इसी प्रकार से अपने को प्रकट करके घर-घर में उत्तम-उत्तम भोग-द्रव्य खाता फिरता है ॥ २८८ ॥ तू ने जो व्याख्या की है यदि वह ठीक न हुई तो फिर मैं तेरे नाक-कान काट दूँगा ?॥२८९॥उस अधम विप्र के वचन सुनकर श्रीहरिदासजी को 'हरि' 'हरि' कहकर कुछ हँसी आई ॥ २९० ॥ उसको और कुछ प्रत्युत्तर न करके उच्च स्वर से कीर्त्तन करते हुए चल दिये ॥ २९१ ॥ जो पापी सभासद थे उन्होंने भी पाप बुद्धि के कारण इस पर कुछ भी उचित उत्तर नहीं दिया ॥ २९२ ॥ यह सब राक्षस नाम मात्र के ब्राह्मण हैं । यही सब मनुष्य यमराज की यातना के पात्र हैं ॥ २९३ ॥ कलियुग में राक्षस लोग सुजनों की हिंसा करने के लिये विप्र-घर में जन्म लेते हैं ॥ २९४ ॥ जैसा कि श्रीवराहपुराण में श्रीमहेश वाक्य है कि—'कलियुग का आश्रय लेकर राक्षस-गण ब्रह्म योनि में जन्म ग्रहण करते हैं । ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर वे ( विद्या-श्रोत्रिय ब्राह्मणों को बाधा पहुँचाकर धर्म-क्षीण करते हैं ।' ग इस प्रकार के विप्रों से स्पर्श करना उनसे बात चीत करना एवं करने को भी धर्म

तथाहि पद्मपुराणे महेशवाक्यम्—

किमत्र बहुनोक्तेन ब्राह्मणा ये ह्यवैष्णवाः । तेषां सम्भाषणं स्पर्शं प्रमादेनापि वर्जयेत् ॥घ॥

ब्राह्मण हइया जदि अवैष्णव हय । तबे तार आलापेओ जाय पुण्य क्षय ॥२९६॥

से विप्राधमेर कथो दिवस थाकिया । बसन्ते नासिका तार पड़िल खसिया ॥२९७॥

हरिदास ठाकुरेर बलिलेक जेन । कृष्ण ओ ताहार शास्ति करिलेन तेन ॥२९८॥

भक्ति शून्य जगत देखिया हरिदास । दुःखे कृष्ण-कृष्ण बलि छाड़ेन निश्वास ॥२९९॥

कथो दिन वैष्णव देखिते इच्छा करि । आइलेन हरिदास नवद्वीप पुरी ॥३००॥

हरिदासे देखिया सकल भक्त गण । हइलेन अतिशय परानन्द मन ॥३०१॥

आचार्य गोसाञि हरिदासेरे पाइया । राखिलेन प्राण हैते अधिक करिया ॥३०२॥

सर्व्व वैष्णवेर प्रीति हरिदास प्रति । हरिदासो करेन सभारे भक्ति अति ॥३०३॥

पाखण्डी सकले जत देइ वाक्य ज्वाला । अन्योऽन्ये सब ताहा कहिते लागिला ॥३०४॥

गीता भागवत लइ सर्व्व भक्त-गण । अन्योऽन्ये विचारे थाकेन सर्व्वक्षण ॥३०५॥

जे जने शुनये पड़े ए सब आख्यान । ताहारे मिलिब गौरचन्द्र भगवान् ॥३०६॥

श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। बृन्दावनदास तछु पद जुगे गान ॥३०७॥

इति श्रीचैतन्यभागवते आदिखण्डे श्रीहरिदासमहिमावर्णनं नाम
एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

## द्वादशोऽध्यायः

जय जय श्रीगौर सुन्दर महेश्वर । जय नित्यानन्द प्रिय नित्य-कलेवर ॥१॥

---

शास्त्रों में बिल्कुल निषेध है ॥ २९५ ॥ जैसा कि पद्मपुराण में श्रीमहेशजी का वाक्य है कि–यहाँ बहुत कहने से क्या प्रयोजन है। तात्पर्य यह है कि—जो अवैष्णव ब्राह्मण हों उससे बात-चीत करना, स्पर्श करना, भूल-कर भी निषेध है ॥ घ ॥ ब्राह्मण होकर भी यदि कोई पुरुष अवैष्णव हो तो उसके साथ आलाप करने में भी पुण्य क्षय हो जाता है ॥ २९६ ॥ कुछ दिन पश्चात् उस अधम विप्र की नाक बसन्त ( चेचक ) रोग में गिर पड़ी ॥ २९७ ॥ उसने श्रीहरिदास के प्रति जैसा कहा था, श्रीकृष्ण ने भी उसी प्रकार का दण्ड उसको दिया ॥ २९८ ॥ श्रीहरिदासजी संसार को भक्ति-शून्य देखकर दुःखित होकर 'कृष्ण' 'कृष्ण' बोलकर दीर्घ श्वास छोड़ते थे ॥ २९९ ॥ कुछ दिन पश्चात् श्रीहरिदासजी वैष्णव-दर्शन की इच्छा से श्रीनवद्वीपपुरी में आये ॥ ३०० ॥ वहाँ पर सब भक्त-गण श्रीहरिदासजी को देखकर अत्यन्त परमानन्द-चित्त हुए ॥ ३०१ ॥ श्रीअद्वैत आचार्य जी श्रीहरिदासजी को पाकर उन्हें प्राणों से भी अधिक करके रक्खा ॥ ३०२ ॥ श्रीहरिदासजी के प्रति सब वैष्णवों की परम प्रीति थी एवं श्रीहरिदासजी भी उन सबके प्रति परम भक्ति करते थे ॥३०३॥ पाखण्डी लोगों द्वारा जितनी वाक्य-ज्वाला प्राप्त होती थी उसे परस्पर में सब कथोपकथन करते थे ॥ ३०४ ॥ सब भक्त-गण गीता एवं भागवत लेकर निरन्तर विचार करते रहते थे ॥ ३०५ ॥ जो मनुष्य इन चरित्रों को पढ़ें व सुनें उन्हें भगवान् श्रीगौरचन्द्र प्राप्त होंगे ॥ ३०६ ॥ श्रीकृष्णचैतन्य एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र को प्रभु जानकर श्रीवृ ग्रन्थकार उनके युगल चरणों में उन्हीं की कुछ महिमा निवेदन करता है। ३०७

जय जय सर्व्व वैष्णवेर धन प्राण । कृपा दृष्ट्ये कर प्रभु सर्व्व जीवे त्राण ॥२॥
आदि खण्ड कथा भाइ ! शुन सावधाने । श्री गौर सुन्दर गया चलिला जेमने ॥३॥
हेन मते नवद्वीपे श्री वैकुण्ठ नाथ । अध्यापक शिरोमणि रूपे करे वास ॥४॥
चतुर्द्दिके पाषण्ड वाढ़ये गुरु तर । भक्ति योग नाम हैल शुनिते दुष्कर ॥५॥
मिथ्या रसे देखि अति लोकेर आदर । भक्त सब दुःख बड़ भावेन अन्तर ॥६॥
प्रभु से आविष्ट हइआछेन अध्ययने । भक्त सभे दुःख पाय देखेन आपने ॥७॥
निरवधि वैष्णवेर सब दुष्ट गणे । निन्दा करे बोले ताहा शुनेन आपने ॥८॥
चित्ते इच्छा हैल आत्म प्रकाश करिते । भाविलेन आगे आसिगिया गया हैते ॥९॥
इच्छा मय श्री गौर सुन्दर भगवान् । गया भूमि देखिते हइल इच्छा तान ॥१०॥
शास्त्र विधि मत श्राद्ध कर्म्मादि करिया । जात्रा करि चलिला अनेक शिष्य लैया ॥११॥
जननीर आज्ञा लइ महा हर्ष मने । चलिलेन महा प्रभु गया दरशने ॥१२॥
सर्व्व देश ग्राम करि पुण्य तीर्थ मय । श्री चरण हैल गया देखिते विजय ॥१३॥
धर्म्म कथा वाकोवाक्य परिहास रसे । मन्दारे आइला प्रभु कथोक दिवसे ॥१४॥
देखिया मन्दार मधुसूदन तथाय । भ्रमिलेन सकल पर्व्वत स्वलीलाय ॥१५॥
एइ मत कथो पथ आसिते आसिते । आर दिन ज्वर प्रकाशिलेन देहेते ॥१६॥
प्राकृत लोकेर प्राय वैकुण्ठ ईश्वर । लोक शिक्षा देखाइते धरिलेन ज्वर ॥१७॥

---

हे महाईश्वर भगवान् श्रीगौरसुन्दर ! आपकी जय हो, जय हो । हे नित्य कलेवर ! हे श्रीनित्यानन्द-प्रिय ! आपकी जय हो ॥ १ ॥ हे वैष्णव जनों के धन एवं प्राण ! आपकी जय हो, जय हो । हे प्रभो ! कृपा-दृष्टि पूर्वक सब जीवों का उद्धार कीजिये ॥ २ ॥ हे भाइयो ! आदिखण्ड की कथा, जिसमें श्रीगौर सुन्दर जिस प्रकार से 'गया' गये थे, एकाग्र चित्त होकर सुनिये ॥३॥ पूर्व प्रसङ्गानुसार नवद्वीप में श्रीवैकुठनाथ अध्यापक-शिरोमणि रूप से निवास करते थे ॥ ४ ॥ चारों ओर पाखण्ड बहुत बढ़ रहा था । भक्ति-योग का नाम तक सुनना दुष्कर हो रहा था ॥५॥ लोगों का मिथ्या रस ( अनित्य विषय-भोग ) में अति आदर देखकर भक्त-जन मन में बड़े दुःखित होते थे ॥ ६ ॥ इधर प्रभु अध्ययन में आविष्ट हो रहे थे, उधर भक्त-जन दुःख पा रहे थे, यह उन्हें पता था ॥ ७ ॥ सब दुष्ट जन निरन्तर वैष्णवों की निन्दा करते थे उसे भी वे सुनते थे ॥ ८ ॥ अब आपके मन में आपको प्रकाशित करने की इच्छा हुई । परन्तु सोचते हैं कि–'पहले 'गया' हो आऊँ'॥९॥ श्रीगौर सुन्दर भगवान् इच्छामय हैं, अब उनकी श्री गया-धाम दर्शन करने की इच्छा हुई ॥१०॥ शास्त्र-विधि के अनुसार श्राद्ध कर्म आदि करके बहुत से शिष्यों को साथ लेकर शुभ यात्रा करने लगे ॥११॥ माताजी की आज्ञा लेकर मनमें महा हर्पित होते हुए श्रीगया दर्शन के लिये चल दिये ॥ १२ ॥ मार्ग के सब नगर व गाँवों को पुण्य तीर्थमय करते हुए आप श्रीचरण दर्शन करने के लिये गया-धाम में पधारे ॥१३॥ धर्म-कथा आलाप, एवं उत्तर-प्रत्युत्तर करते हुए एवं परस्पर के परिहास रस में मग्न होते हुए प्रभु कुछ दिन में श्रीमन्दार पर आये १४ मन्दार पर्वत पर के दर्शन कर लीलामय आनन्द पूर्वक सब पर्वत के ऊपर भ्रमण करने लगे १५ इस प्रकार कुछ रास्ता आते आते एक दिन अपने शरीर में ज्वर प्रकाशित कर लिया १६

विप्र गण वेढ़ियाछे श्रीचरण स्थान । श्रीचरणे माला जेन देउल प्रमाण ॥३२॥
गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र, अलङ्कार । कत पड़ियाछे लेखा जोखा नाहि तार ॥३३॥
चतुर्द्दिके दिव्य रूप धरि विप्र गण । करि तेछे पाद पद्म प्रभाव वर्णन ॥३४॥
काशीनाथ हृदये धरिला जे चरण । जे चरण निरवधि लक्ष्मीर जीवन ॥३५॥
बलि शिरे आविर्भाव हैल जे चरण । सेइ एइ देख जत भाग्यवन्त जन ॥३६॥
तिलार्द्ध को जे चरण ध्यान कैले मात्र । यम तार ना हयेन अधिकार पात्र ॥३७॥
योगेश्वर सभेरो दुर्ल्लभ जे चरण। सेइ एइ देख जत भाग्यवन्त जन ॥३८॥
जे चरणे भागीरथी हइला प्रकाश । निरवधि हृदये ना छाड़े जारे दास ॥३९॥
अनन्त-शय्याय अति प्रिय जे चरण । सेइ एइ देख जत भाग्यवन्त जन ॥४०॥
चरण प्रभाव शुनि विप्र-गण मुखे । आविष्ट हइला प्रभु प्रेमानन्द सुखे ॥४१॥
अश्रु-धारा वहे दुइ श्रीपद्म नयने । लोम-हर्ष,कम्प हैल चरण दर्शने ॥४२॥
सर्व्व जगतेर भाग्ये प्रभु गौरचन्द्र । प्रेम भक्ति प्रकाशेर करिला आरम्भ ॥४३॥
अविच्छिन्न गङ्गा वहे प्रभुर नयने । परम अद्भुत रहि देखे विप्र गणे ॥४४॥
दैवजोगे ईश्वर पुरीओ सेइ क्षणे । आइलेन ईश्वर इच्छाय सेइ स्थाने ॥४५॥
ईश्वर पुरीरे देखि श्रीगौर सुन्दर । नमस्करि लेन बड़ करिया आदर ॥४६॥
ईश्वर पुरीओ गौरचन्द्रेरे देखिया । आलिङ्गन करिलेन महा हर्ष हैया ॥४७॥

---

॥ ३१ ॥ वहाँ पहुँचकर आपने देखा कि–विप्रगण श्रीचरण स्थान को घेरकर बैठे हुए हैं तथा श्रीचरणों के ऊपर माला राशि का सुन्दर वृत्ताकार मन्दिर सदृश शोभायमान हो रहा है ॥ ३२ ॥ वहाँ कितनी ही गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र एवं अलङ्कार पड़े हुए हैं जिनका कोई हिसाब किताब नहीं है ॥ ३३ ॥ दिव्य रूप धारण किये हुए ब्राह्मणगण चारों ओर से श्रीचरण-कमलों का वर्णन कर रहे थे, जिन श्रीचरणों को काशीपति शिवजी हृदय में धारण किये हुए हैं,जो चरण सर्वदा लक्ष्मीजी के जीवन हैं ॥३४-३५॥ जो चरण राजा बलि के सिर पर आविर्भूत हुए थे उन्हीं श्रीचरणों को हे भाग्यवान् जनो ! यह दर्शन करो ॥ ३६ ॥ जो आधे तिल ( काल ) मात्र भी इसका ध्यान करता है वह यमराज का अधिकार पात्र नहीं रहता अर्थात् यम उस पर आज्ञा नहीं चला सकते ॥३७॥ जो चरण योगेश्वरों के लिये भी दुर्लभ हैं वही श्रीचरण को हे भाग्यशाली पुरुषो ! यह दर्शन करो ॥ ३८ ॥ जिन चरणों से श्रीगङ्गाजी का जन्म हुआ, जिन चरणों को भगवत दास हृदय से कभी नहीं त्यागते ॥३९॥ जो चरण श्रीअनन्त-शय्या पर अति प्रिय प्रतीत होते हैं वही श्रीचरण को हे भाग्यशालियो ! यह दर्शन करो ॥ ४० ॥ विप्रों के मुख से चरणों का प्रभाव सुनकर प्रभु प्रेमानन्द सुख में आविष्ट हो गये ॥ ४१ ॥ आपके दोनों श्रीकमल नेत्रों से अश्रु धारा प्रवाहित होने लगी एवं चरण-दर्शनों से रोमाञ्च व कम्प हो रहा था ॥ ४२ ॥ सब संसार के सौभाग्य से प्रभु श्रीगौरचन्द्र ने प्रेम-भक्ति प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया ॥ ४३ ॥ आपके नेत्रों से अटूट अश्रु गङ्गा बह रही थी। विप्रगण इस परम अद्भुत दृश्य को स्थगित होकर देख रहे थे ४४ दैवयोग से ईश्वरेच्छा से श्रीईश्वर पुरी भी उसी समय वहाँ पर आ पहुँचे ४५ श्रीईश्वरपुरी को देखकर श्रीगौर सुन्दर ने बड़े सत्कार पूर्वक उन्हें नमस्कार किया ४६

दोँहार विग्रह दोँहाकार प्रेम जले । सिञ्चित हइला प्रेमानन्द कुतूहले ।।४८।।
प्रभु बोले 'गया यात्रा सफल आमार । जतं क्षणे देखिलाङ चरण तोमार ।।४६।।
तीर्थे पिण्ड दिले से निस्तरे पितृ गण । सेइ जारे पिण्ड दिये तरे सेइ जन ।।५०।।
तोमा देखिलेइ मात्र कोटि पितृ-गण । सेइ क्षणे सर्व्व-बन्ध पाय विमोचन ।।५१।।
अतएव तीर्थ नहे तोमार समान । तीर्थेरो परम तुमि मङ्गल-प्रधान ।।५२।।
संसार समुद्र हैते उद्धारो आमारे । एइ आमि देह समर्पिलाङ तोमारे ।।५३।।
कृष्ण पाद पद्मेर अमृत रस पान । आमारे कराओ तुमि एइ चाहि दान' ।।५४।।
बोलेन ईश्वर पुरी 'शुनह पण्डित । तुमि जे ईश्वर अंश अति सुनिश्चित ।।५५।।
जे तोमार पाण्डित्य जे चरित्र तोमार । सेह कि ईश्वर अंश वइ हय आर ।।५६।।
जेन आजि आमि शुभ स्वप्न देखिलाङ । साक्षात ताहार फल एइ पाइलाङ ।।५७।।
सत्य कहि पण्डित तोमार दरशने । परानन्द सुख जेन पाइ अनुक्षणे ।।५८।।
यदवधि तोमा देखियाछि नदियाय । तदवधि चित्ते आर किछु नाहि भाय ।।५६।।
सत्य एइ कहि इथे किछु अन्य नाइ । कृष्ण-दरशन-सुख तोमा देखि पाइ ।।६०।।
शुनि प्रिय ईश्वर पुरीर सत्य वाक्य । हासिया बोलेन प्रभु 'मोर बड़भाग्य' ।।६१।।
एइ मत कत आर कौतुक सम्भास । जत हैल ताहा वर्णिवेन वेदव्यास ।।६२।।
तवे प्रभु तान स्थाने अनुमति लैया । तीर्थ श्राद्ध करिवारे वसिला आसिया ।।६३।।

---

श्रीईश्वरपुरी ने भी श्रीगौरचन्द्र को देखकर परम हर्षित हो उन्हें आलिङ्गन प्रदान किया ।। ४७ ।। प्रेमानन्द कौतूहल वश दोनों के प्रेमाश्रु जल से दोनों के शरीर सिञ्चित हो रहे थे ।। ४८ ।। प्रभु कहने लगे–जिस समय से आपके चरण दर्शन किये हैं उसी समय से मेरी गया यात्रा सफल हो गई ।। ४६ ।। तीर्थ में पिण्ड दान करने से पितृ-गण निस्तार पाते हैं, परन्तु जिस पितृ के लिये पिण्ड दिया जाता है वही तरता है ।। ५० ।। किन्तु आपके दर्शन मात्र से ही करोड़ों पितृ-गण तत्काल सब बन्धनों से छुटकारा पा गये ।। ५१ ।। अतएव तीर्थ आपके समान नहीं हैं आप तीर्थ से भी परम प्रधान मङ्गलकारी हैं ।। ५२ ।। हे प्रभो ! आप संसार समुद्र से मेरा उद्धार कीजिये। मैं अपनी यह देह आपको समर्पण करता हूँ ।।५३।। आप मुझको कृष्ण-कमल-चरणों का अमृत रस पान कराइये, मैं केवल यही दान चाहता हूँ ।। ५४ ।। तब श्रीईश्वरपुरी जी उत्तर देते हैं कि–हे पण्डित ! सुनो, यह बात अति सुनिश्चित है कि–तुम ईश्वर-अंश हो ।। ५५ ।। जो आपका पाण्डित्य एवं चरित्र है, वह ईश्वर-अंश बिना अन्य किसी का हो सकता है ? ।। ५६ ।। मैंने जो आज शुभ स्वप्न देखा था उसका साक्षात् फल यही पा लिया ।। ५७ ।।हे पण्डित ! हम सत्य कहते हैं कि–तुम्हारे दर्शनों से हम मानो निरन्तर एक परमानन्द सुख अनुभव करते हैं ।। ५८ ।। जब से मैंने नवद्वीप में तुम्हारे दर्शन किये हैं तब से मेरे चित्त को और कुछ अच्छा नहीं लगता ।। ५६ ।। मैं यह सत्य कहता हूँ, इसमें कुछ अन्यथा नहीं है कि–तुम्हें देखकर मैं कृष्ण-दर्शन का सुख पाता हूँ ।। ६० ।। श्रीईश्वरपुरी के प्रिय सत्य वचनों को सुनकर प्रभु हँसकर बोले कि 'यह मेरे बड़े भाग्य हैं' ६१ इसी प्रकार से और कितना ही जो वार्त्तालाप हुआ उसे श्रीवेदव्यास जी की शक्ति से सम्पन्न होकर महत् पुरुष वर्णन करेंगे ६२ तब प्रभु उनसे अनु

फल्गुतीर्थे करि बालुकार पिण्डदान । तवे गेला गिरिशृङ्गे प्रेतगया स्थान ॥६४॥
प्रेतगया-श्राद्ध करि श्री शचीनन्दन । दक्षिणाये वाक्ये तुषिलेन विप्रगण ॥६५॥
तवे उद्धारिया पितृ गण सन्तर्पिया । दक्षिण मानसे चलिलेन हर्ष हैया ॥६६॥
तवे चलिलेन प्रभु. श्री राम गयाय । राम अवतारे श्राद्ध करिला जथाय ॥६७॥
एही अवतारे सेइ स्थाने श्राद्धकरि । तवे युधिष्ठिर गया गेला गौर हरि ॥६८॥
पूर्व्वे युधिष्ठिर पिण्ड दिलेन तथाय । सेइ प्रीते तथा श्राद्धकैला गौरराय ॥६९॥
चतुर्दिगे प्रभुरे बेढ़िया विप्र गण । श्राद्ध करायेन सभे पढ़ान वचन ॥७०॥
श्राद्ध करि प्रभु पिण्ड फेले जेइ जले । गयालि ब्राह्मण सब धरि धरि गिले ॥७१॥
देखिया हासेन प्रभु श्री शची नन्दन । से सब विप्रेरो जत खण्डिल बन्धन ॥७२॥
उत्तर मानसे प्रभु पिण्ड-दान करि । भीम गया करिलेन गौराङ्ग श्री हरि ॥७३॥
शिव-गया ब्रह्म-गया आदि जत आछे । सब करि षोड़श-गयाय गेला पाछे ॥७४॥
षोड़श गयाय प्रभु षोड़सी करिया । सभारे दिलेन पिण्ड श्रद्धा युक्त हैया ॥७५॥
तवे महा प्रभु ब्रह्म कुण्डे करि स्नान । गया शिरे आसि करिलेन पिण्ड दान ॥७६॥
दिव्य माला चन्दन श्री हस्ते प्रभु लैया । विष्णु पद चिह्न पूजिलेन हर्ष हैया ॥७७॥
एइ मत सर्व्व स्थाने श्राद्धादि करिया । वासाये चलिला विप्र गणे सन्तोषिया ॥७८॥
तवे महा प्रभु कथो क्षणे सुस्थ हैया । रन्धन करिते प्रभु वसिलेन गिया ॥७९॥
रन्धन सम्पूर्ण हैल हेनइ समय । आइलेन ईश्वर पुरी महाशय ॥८०॥

---

मति लेकर तीर्थ में पितृ-श्राद्ध करने के लिये आकर बैठे ॥६३॥पश्चात् फल्गुतीर्थ में बालुके पिण्ड दान करके गिरि शिखर पर 'प्रेतगया' नामक स्थान पर गये ॥ ६४॥ प्रेतगया में श्राद्ध करके श्रीशचीनन्दन ने विप्रों को दक्षिणा से एवं सुवाक्यों से प्रसन्न किया ॥ ६५ ॥ इस प्रकार पित्रों को उद्धार एवं सन्तर्पण करते हुए प्रभु प्रसन्नता पूर्वक दक्षिणा-मानस को गये ॥ ६६ ॥ वहाँ से प्रभु श्रीराम-गया को गये, जहाँ प्रभु श्रीराम-अवतार काल में श्राद्ध किया था ॥ ६७ ॥ इस अवतार में भी उस स्थान पर श्राद्ध करके श्रीगौरहरि युधिष्ठिर गया को गये ॥ ६८ ॥ पूर्व काल में वहाँ पर श्रीयुधिष्ठिर जी ने पिण्ड-दान किये थे, इसी स्नेह के कारण श्रीगौर-चन्द्र ने भी वहाँ पर श्राद्ध किया ॥ ६९ ॥ विप्रगण प्रभु को चारों ओर से घेर कर शास्त्र-विधि के अनुसार वचन बुलवाते हुए श्राद्ध कराते थे॥७०॥प्रभु ज्योंही पिण्डों को ले लेकर जल में छोड़ते जाते थे, त्योंही गयालि ब्राह्मण उन्हें उठा २ कर मुँह में रखते जाते थे ॥ ७१ ॥ यह देखकर प्रभु हँसने लगे; आपकी कृपा से उन सब विप्रों के सम्पूर्ण बन्धन नष्ट हो गये ॥ ७२ ॥ उसके पीछे गौराङ्ग श्रीहरि ने उत्तर मानस तीर्थ में पिण्ड-दान करके भीम-गया में पिण्ड दान किया ॥ ७३ ॥ शिव-गया, ब्रह्म-गया आदि सब गयाओं में श्राद्ध करके प्रभु पीछे षोडश गया को गये ॥ ७४ ॥ षोडश गया में प्रभु षोडशी कर श्रद्धापूर्वक सब पितृ-गणों को पिण्ड दान किया ॥ ७५ ॥ पश्चात् प्रभु ने ब्रह्म-कुण्ड में स्नान करके गयाशिर पर आकर पिण्ड दान किया ॥ ७६ ॥ श्री-प्रभु ने श्रीहस्तों में दिव्य माला, चन्दन लेकर प्रसन्नता पूवक विष्णु-पद-चिह्नों की पूजा की ॥ ७७ ॥ इसी प्रकार सब स्थानों में श्राद्ध आदि करके एव विप्रों को प्रसन्न करते हुए प्रभु अपने पर गये ७८।

प्रेम जोगे कृष्ण नाम बलिते बलिते । आइलेन मत्त प्राय ढुलिते ढुलिते ॥८१॥
रन्धन एड़िया प्रभु परम सम्भ्रमे । नमस्करि ताने बसाइलेन आसने ॥८२॥
हासिया बोलेन पुरी 'शुनह पण्डित । भालत समये हइलाङ उपनीत' ॥८३॥
प्रभु बोले 'जबे हैल भाग्येर उदय । एइ अन्न भिक्षा आजि कर महाशय' ॥८४॥
हासिया बोलेन पुरी 'तुमि कि खाइबे' । प्रभु बोले 'आमि अन्न रान्धिबाङ एबे' ॥८५॥
पुरी बोले 'कि कार्य करिबे आर पाक । जे अन्न आछये ताहि कर दुइ भाग' ॥८६॥
हासिया बोलेन प्रभु 'यदि आमा चाओ । जे अन्न हइयाछे ताहा तुमि सब खाओ ॥८७॥
तिलार्द्धेके आर अन्न राधिबाङ आमि । नाकर सङ्कोच किछु भिक्षा कर तुमि' ॥८८॥
तबे प्रभु आपनार अन्न ताने दिया । आर अन्न रान्धिते लागिला हर्ष हैया ॥८९॥
हेन कृपा प्रभुर ईश्वर पुरी-प्रति । पुरीरो नाहिक कृष्ण छाड़ा अन्य मति ॥९०॥
श्री हस्ते आपने प्रभु करे परिवेशन । परानन्द सुखे पुरी करेन भोजन ॥९१॥
सेइ क्षणे रमा देवी अति अलक्षिते । प्रभुर निमित्ते अन्न रान्धिला त्वरिते ॥९२॥
तबे प्रभु आगे ताने भिक्षा कराइया । आपनेओ भोजन करिला हर्ष हैया ॥९३॥
ईश्वर पुरीर सङ्गे प्रभुर भोजन । इहार श्रवणे मिले कृष्ण प्रेम धन ॥९४॥
तबे प्रभु ईश्वर पुरीर सर्व्व अङ्गे । आपने श्री हस्ते लेपिलेन दिव्य गन्धे ॥९५॥
जत प्रीति ईश्वरेर ईश्वर पुरीरे । ताहा बर्णिबारे कोन जन शक्ति धरे ॥९६॥

---

वहाँ पर श्रीमहाप्रभु जी कुछ देर आराम करके रसोई तैयार करने लगे ॥ ७९ ॥ रसोई तैयार हो चुकी उसी समय श्रीईश्वरपुरी महाशय आ पहुँचे ॥८०॥आप प्रेम-योग में विभोर हो 'कृष्ण' 'कृष्ण' कहते-कहते मस्तों की भाँति इधर-उधर झूमते हुए आये ॥ ८१ ॥ श्रीप्रभु ने रसोई करना छोड़कर परम सम्भ्रम पूर्वक नमस्कार करके उन्हें आसन पर बिठलाया ॥ ८२ ॥ श्रीपुरी जी हँसकर बोले कि-'हे पण्डित ! सुनो, हम तो भले ही समय पर आये' ॥ ८३ ॥ प्रभु ने कहा कि—'मैं अपना भाग्य जब उदय हुआ जानूँ' जो श्रीमहाशय आज यह अन्न भोजन करें ॥ ८४ ॥ पुरीजी हँसकर बोले-'तुम क्या खाओगे ?' प्रभु ने कहा-'मैं अभी और रसोई करता हूँ' ॥ ८५ ॥ तब पुरीजी बोले कि-'और रसोई क्यों करते हो ? जो अन्न रसोई तैयार है उसी के दो भाग कर लो' ॥ ८६ । श्रीप्रभु ने हँसकर कहा कि—'यदि आप मुझे चाहते हैं तो जो रसोई तैयार हो गई है वह सब आप भोजन कीजिये ॥ ८७ ॥ मैं पल भर में और भोजन तैयार करता हूँ, आप तनिक भी सङ्कोच न कीजिये प्रसन्नता पूर्वक भोजन कीजिये ॥ ८८ ॥ यह कहकर प्रभु अपना भोजन उनको देकर प्रसन्न-चित्त हो और भोजन तैयार करने लगे ॥ ८९ ॥ प्रभु की श्रीईश्वरपुरी के प्रति ऐसी कृपा है। उधर श्रीपुरी जी का भी श्रीकृष्ण को छोड़कर मनमें अन्य भाव नहीं है ॥ ९० ॥ प्रभु स्वयं अपने श्रीहस्तों से परोसते थे और पुरीजी परमानन्द-रस में डूबे हुए भोजन करते थे ॥ ९१ ॥ उसी समय लक्ष्मीदेवी ने अति अलक्षित रूप से श्रीप्रभु के लिये शीघ्र ही रसोई तैयार की ॥ ९२ ॥ तब प्रभु ने पहले उनको भोजन कराया तब पीछे स्वयं भी प्रसन्न होकर भोजन किया ॥ ९३ ॥ 'श्रीईश्वरपुरी के साथ प्रभु की भोजन लीला' सुनने से कृष्ण प्रेम-धन मिलता है ९४ ॥ इसके पश्चात् प्रभु ने स्वयं अपने श्रीहस्तों से श्रीईश्वरपुरी के सब श्रीअङ्ग में दिव्य-गन्ध का अनु

आपने ईश्वर श्री चैतन्य भगवान् । देखिलेन ईश्वर पुरीर जन्म-स्थान ॥९७॥
प्रभु बोले 'कुमार हट्टेरे नमस्कार । श्री ईश्वर पुरीर जे ग्रामे अवतार' ॥९८॥
कान्दिलेन विस्तर चैतन्य सेइ स्थाने । आर शब्द किछु नाइ 'ईश्वर पुरी' बिने ॥९९॥
से स्थानेर मृत्तिका आपने प्रभु तुलि । लइलेन बहिर्वासे बान्धि एक झुलि ॥१००॥
प्रभु बोले 'ईश्वर पुरीर जन्म स्थान । ए मृत्तिका मोहर जीवन धन प्राण' ॥१०१॥
हेन ईश्वरेर प्रीति ईश्वर पुरीरे । भक्तेरे बाढ़ाते प्रभु सब शक्ति धरे ॥१०२॥
प्रभु बोले 'गया करिते जे आइलाङ । सत्य हैल ईश्वर पुरीरे देखिलाङ ॥१०३॥
आर दिने निभृते ईश्वर पुरी स्थाने । मन्त्र दीक्षा चाहिलेन मधुर वचने ॥१०४॥
पुरी बोले 'मन्त्र वा बलिया कोन कथा । प्राण आमि दिते पारि तोमारे सर्व्वथा ॥१०५॥
तबे तान स्थाने शिक्षा गुरु नारायण । करिलेन दशाक्षर मन्त्रेर ग्रहण ॥१०६॥
तबे प्रभु प्रदक्षिण करिया पुरीरे । प्रभु बोले 'देह आमि दिलाङ तोमारे ॥१०७॥
हेन शुभ दृष्टि तुमि करह आमारे । जेन आमि भासि कृष्ण-प्रेमेर सागरे ॥१०८॥
शुनिञा प्रभुर वाक्य श्रीईश्वर पुरी । प्रभुरे दिलेन आलिङ्गन वक्षे धरि ॥१०९॥
दोहार नयन जले दोहार शरीर । सिञ्चित हैल प्रेमे केहो नहे स्थिर ॥११०॥
हेन मते ईश्वर पुरीरे कृपा करि । कथो दिन गयाय रहिला गौर हरि ॥१११॥
आत्म प्रकाशेर आसि हइल समय । दिने दिने वाढ़े प्रेम-भक्तिर विजय ॥११२॥

---

लेपन किया ॥ ९५ ॥ प्रभु की ईश्वरपुरी जी के प्रति जितनी प्रीति थी, उसके वर्णन करने की किसमें सामर्थ्य है ? ॥ ९६ ॥ स्वयं ईश्वर श्रीचैतन्य भगवान् ने श्रीईश्वरपुरी जी की जन्म-भूमि का दर्शन किया ॥ ९७ ॥ और कहने लगे कि-'कुमार हट्ट को नमस्कार है, जो श्रीईश्वरपुरी जी का जन्म-स्थान है' ॥ ९८ ॥ उसी स्थान पर (खड़े होकर) श्रीचैतन्य प्रभु ने बहुत क्रन्दन किया । 'ईश्वरपुरी' 'ईश्वरपुरी' के अतिरिक्त अन्य कोई शब्द मुख पर नहीं था ॥ ९९ ॥ फिर वहाँ की एक झोलिआ रज स्वयं श्रीप्रभु ने अपने कर-कमलों से उठाकर बहिर्वास में बाँध ली ॥ १०० ॥ प्रभु बोले कि—'श्रीईश्वरपुरी के जन्म-स्थान की यह रज मेरी जीवन-धन प्राण है ॥ १०१ ॥ प्रभु की श्रीईश्वरपुरी के प्रति इस प्रकार की प्रीति थी । प्रभु में अपने भक्तों को बढ़ाने के लिये सब सामर्थ्य है ॥ १०२ ॥ प्रभु बोले कि-'गया' करने के लिये मेरा आना सफल हो गया, जो 'श्रीईश्वर पुरीजी' के दर्शन पाये ॥ १०३ ॥ दूसरे दिन श्रीप्रभु ने एकान्त में श्रीईश्वरपुरी जी से मधुर वचनों में मन्त्र-दीक्षा लेने के लिये प्रार्थना की ॥ १०४ ॥ इस पर पुरी जी कहते हैं कि—'मन्त्र सुनाने की तो क्या बात है, मैं सब प्रकार से तुम्हारे लिये प्राण भी दे सकता हूँ ॥ १०५ ॥ तब स्वयं शिक्षा-गुरु श्रीनारायण ने आपसे 'दशाक्षर-मन्त्र' लिया ॥ १०६ ॥ पश्चात् पुरीजी की परिक्रमा करके प्रभु कहने लगे कि-हे गुरुवर ! मैं अपने को आपके समर्पण करता हूँ ॥ १०७ ॥ आप मेरे ऊपर ऐसी शुभ-दृष्टि कीजिये कि-मैं जिससे निरन्तर कृष्ण-प्रेम के समुद्र का अनुभव करता रहूँ ॥ १०८ ॥ प्रभु के वाक्य सुनकर श्रीपुरी जी ने छाती से लगाकर उनको आलिङ्गन दिया ॥ १०९ ॥ दोनों के नेत्रों के प्रेमाश्रुओं से दोनों का शरीर सिञ्चित हो रहा था । दोनो ही बड़े अधीर हो रहे थे । ११० इस प्रकार श्रीईश्वरपुरी जी के ऊपर कृपा करके श्रीगौरहरि कुछ दिन

एक दिन महाप्रभु वसिया निभृते । निज इष्ट मन्त्र ध्यान लागिला करिते ॥११३॥
कथोक्षणे महाप्रभु बाह्य प्रकाशिया । करिते लागिला बड़ रोदन डाकिया ॥११४॥
कृष्णरे बापरे मोर जीवन श्रीहरि । कोन दिगे गेला मोर प्राण करि चुरि ॥११५॥
पाइलों ईश्वर मोर कोन दिगे गेला । श्लोक पढ़ि पढ़ि प्रभु कान्दिते लागिला ॥११६॥
प्रेम-भक्ति रसे मग्न हइला ईश्वर । सकल श्रीअङ्ग हैल धूलाय धूसर ॥११७॥
आर्त नाद करि प्रभु डाके उच्च स्वरे । कोथा गेला बाप कृष्ण ! छाड़िया मोहरे ॥११८॥
जे प्रभु आछिला अति परम गम्भीर । से प्रभु हइला प्रेमे परम अस्थिर ॥११९॥
गड़ागड़ि जायेन कान्देन उच्च स्वरे । भासिलेन निज भक्ति-विरह सागरे ॥१२०॥
तवे कथो क्षणे आसि सर्व्व शिष्य गणे । सुस्थ करिलेन आसि अशेष जतने ॥१२१॥
प्रभु बोले 'तोमरा सकल जाह घरे । मुजि आर ना जाइमुँ संसार भितरे ॥१२२॥
मथुरा देखिते मुजि चलिव सर्व्वथा । प्राण नाथ मोर कृष्णचन्द्र पाङ जथा ॥१२३॥
नाना-रूपे सर्व्व-शिष्य गणे प्रबोधिया । स्थिर करि राखिलेन सभेइ मिलिया ॥१२४॥
भक्ति रसे मग्न हइ वैकुण्ठेर पति । चित्ते स्वास्थ्य ना पायेन रहिबेन कति ॥१२५॥
काहारे ना वलि प्रभु कथो रात्रि-शेषे । मथुरारे चलिलेन प्रेमेर आवेशे ॥१२६॥
कृष्णरे बापरे मोर ! पाइमुँ कोथाय । एइ मत बलिया जायेन गौर राय ॥१२७॥
कथो दूर जाइते शुनेन दिव्य वाणी । 'ए खने मथुरा ना जाइबा द्विज मणि ॥१२८॥

---

गया में ठहरे ॥ १११ ॥ 'आत्म-प्रकाश' का समय भी आ पहुँचा है । इधर प्रभु की 'प्रेम-भक्ति की गति' भी दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही थी ॥ ११२ ॥ एक दिन श्रीमहाप्रभु जी एकान्त-स्थान में बैठकर निज इष्ट-मन्त्र का ध्यान करते थे ॥ ११३ ॥कुछ समय पश्चात् अर्द्ध बाह्य दशा में आकर बड़े जोर-जोर से चिल्लाकर रोदन करने लगे ॥ ११४ ॥ कृष्ण हे ! बाप हे ! मेरे जीवन श्रीहरि ! मेरे प्राणों को चुराकर आप कहाँ चले गये ? ॥ ११५ ॥ 'मेरे प्राप्त किये हुए प्रभु कहाँ चले गये ?' इस भाव के श्लोक उच्चारण करते हुए प्रभु रुदन करने लगे ॥११६॥ प्रेम भक्ति रस में प्रभु मग्न हो रहे थे । आपका सकल श्रीअङ्ग धूलि-धूसरित हो रहा था ॥११७॥ आप उच्च स्वर के आर्तनाद से टेर लगा रहे थे,यथा—हे बाप कृष्ण ! आप मुझे छोड़कर कहाँ चले गये॥११८॥ पहले जो प्रभु परम गम्भीर थे वही अब प्रेम में परम अस्थिर हो गये ॥ ११९ ॥ प्रभु धूल में लोटने-पोटने थे एवं उच्च-स्वर से क्रन्दन करते थे । इस प्रकार आप अपनी भक्तिके विरह-समुद्र में उतरा(भास)रहे थे॥१२०॥ तब कुछ समय पीछे शिष्य-वृन्द ने आकर बहुत प्रयत्न करके आपको कुछ धीरज धराया ॥ १२१ ॥ प्रभु ने उनसे कहा कि—'तुम सब अपने-अपने घरों को जाओ मैं अब संसार में नहीं जाऊँगा ॥ १२२ ॥ मैं निश्चय ही मथुरा जी दर्शन करने के लिये जाऊँगा जहाँ पर मेरे प्राणनाथ कृष्ण से भेंट होगी ॥१२३॥ तब सब शिष्य वृन्द ने मिलकर अनेक प्रकार से आपको समझाकर कुछ स्थिर किया ॥ १२४ ॥ भक्ति-रस में मग्न होकर वैकुण्ठ-पति चित्त में किसी प्रकार की शान्ति नहीं पाते थे तब फिर वहाँ क्यों ठहरते ॥ १२५ ॥ इस-लिये बिना किसी से कहे हुए कुछ रात्रि शेष रहने पर प्रेम के आवेश में आकर श्रीमथुराजी को चलने लगे ॥ १२६ ॥ श्रीगौरसुन्दर 'हे मेरे कृष्ण हे मेरे बाप मैं आपको कहाँ पाऊँ ? आप मुझको कहाँ मिलोगे ?'

जाइवार काल आछे जाइवा तखने । नवद्वीपे निज गृहे चलह एखने ॥१२६॥
तुमि श्री वैकुण्ठ नाथ लोक निस्तारिते । अवतीर्ण हइयाछ सभार सहिते ॥१३०॥
अनन्त ब्रह्माण्ड मय करिया कीर्त्तन । जगतेरे विलाइवा प्रेम-भक्ति-धन ॥१३१॥
ब्रह्मा शिव सनकादि जे रसे विह्वल । महा प्रभु अनन्त गायेन जे मङ्गल ॥१३२॥
ताहा तुमि जगतेरे दिवार कारणे । अवतीर्ण हइयाछ जानह आपने ॥१३३॥
सेवक आमरा तभो चाहि कहिवार । अतएव कहिलाङ चरणे तोमार ॥१३४॥
आपनार विधाता आपनि तुमि प्रभु । तोमार जे इच्छा से लङ्घन नहे कभू ॥१३५॥
अतएव महा प्रभु चल तुमि घर । विलम्बे देखिबा आसि मथुरा नगर ॥१३६॥
शुनिञा आकाश वाणी श्री गौर सुन्दर । निवर्त्त हइला प्रभु हरिष अन्तर ॥१३७॥
बासाय आसिया सर्व्व शिष्येर सहिते । निज गृहे चलिलेन भक्ति प्रकाशिते ॥१३८॥
नवद्वीपे गौरचन्द्र करिला विजय । दिने दिने बाढ़े प्रेम-भक्तिर उदय ॥१३६॥
आदि खण्ड कथा परिपूर्ण एइ हैते । मध्य खण्ड कथा एबे शुन भाल मते ॥१४०॥
जेबा शुने ईश्वरेर गयार विजय । गौरचन्द्र प्रभु तारे मिलिब निश्चय ॥१४१॥
कृष्ण-जश शुनिते से कृष्ण सङ्ग पाइ । ईश्वरेर सङ्गे तार कभू त्याग नाइ ॥१४२॥
अन्तर्यामी नित्यानन्द वलिला कौतुके । चैतन्य चरित्र किछु लिखिते पुस्तके ॥१४३॥
ताहान कृपाय लिखि चैतन्येर कथा । स्वतन्त्र इहाते शक्ति नाहिक सर्व्वथा ॥१४४॥

---

बोलते हुए चले जा रहे थे ॥ १२७ ॥ कुछ दूर जाकर एक दिव्य-आकाश वाणी सुनी कि–'हे द्विजमणि ! इस समय आप मथुरा न जाओ ॥१२८॥ 'जाने का समय आने पर तब जाना । इस समय तुम नवद्वीप में अपने घर जाओ ॥ १२६ ॥ आप श्रीवैकुण्ठनाथ हो । संसार का उद्धार करने के लिये अपने परिकर के सहित श्री-नवद्वीप में अवतीर्ण हुए हो ॥ १३० ॥ आप अनन्त ब्रह्माण्डों में प्रति ध्वनित होने वाला कीर्त्तन करोगे । जगत को प्रेम-भक्ति-धन वितरण करोगे ॥ १३१ ॥ जिस रस में ब्रह्मा, शिव, सनकादि विह्वल हो रहे हैं एवं जिस मङ्गलमय यश को महाप्रभु श्रीअनन्त देव जी निरन्तर गान करते हैं ॥ १३२ ॥ उसको आप संसार में वितरण करने के लिए अवतीर्ण हुए हो, यह सब आप जानते हो ॥ १३३ ॥ हम तो आपके सेवक हैं तब भी कहना उचित था इसलिये आपके चरणों में निवेदन किया ॥ १३४ ॥ हे प्रभो ! आप स्वयं अपने विधाता हो, आपकी इच्छा कभी नहीं मिट सकती ॥ १३५ ॥ अतएव हे महाप्रभो ! अब आप घर जाइये कुछ समय पश्चात् आकर श्रीमथुरा नगर देखना' ॥ १३६ ॥ आकाश-वाणी सुनकर श्रीगौरसुन्दर प्रसन्न-चित्त होकर लौटे ॥ १३७ ॥ सब शिष्यों के साथ प्रथम अपने नियत स्थान पर आकर भक्ति-प्रचार हेतु अपने घर को चल दिये ॥ १३८ ॥ श्रीनवद्वीप में श्रीगौरचन्द्र ने पदार्पण किया इधर प्रेम-भक्ति के विकार भी आपके श्रीअङ्ग में दिन प्रति दिन वृद्धि को प्राप्त हो रहे थे ॥ १३६ ॥ आदिखण्ड की कथा यहाँ परिपूर्ण हो गई, अब मन लगा-कर मध्य-खण्ड की कथा सुनिये ॥ १४० ॥ जो कोई प्रभु की 'गया-यात्रा' श्रवण करेगा उसको अवश्य श्री-गौरचन्द्र प्रभु मिलेंगे ॥ १४१ ॥ वह श्रीकृष्ण यश सुनने से श्रीकृष्ण सङ्ग पाता है उसको ईश्वर-सङ्ग में विच्छेद कभी नहीं होता १४२ अन्तर्यामी - प्रभु ने मुझको कुछ '_ ' पुस्तक रूप में

काष्ठेर पुतलि जेन कुहके नाचाय। एइ मत गौर चन्द्र मोरे जे बोलाय ॥१४५॥
चैतन्य कथार आदि अन्त नाहि जानि। जे ते मते चैतन्येर जश से वाखानि ॥१४६॥
पक्षी जेन आकाशेर अन्त नाहि पाय। जत दूर शक्ति तत दूर उड़ि जाय ॥१४७॥
एइ मत चैतन्य जशेर अन्त नाञि। जार जत शक्ति कृपा सभे तत गाइ ॥१४८॥

तथाहि भा० १।१८।२३ "नभः पतन्त्यात्मसमं पतत्रिणस्तथा समं विष्णुगतिं विपश्चितः" इति।(क)

सर्व्व वैष्णवेर पाये मोर नमस्कार। इथे अपराध किछु नहुक आमार ॥१४९॥
संसारेर पार हैया भक्तिर सागरे। जे डूबिब से भजुक निताइ चान्दरे ॥१५०॥
आमार प्रभुर प्रभु श्री गौर सुन्दर। ए बड़ भरसा चित्ते धरि निरन्तर ॥१५१॥
केहो बोले प्रभु नित्यानन्द बलराम। केहो बोले चैतन्येर महा-प्रिय धाम ॥१५२॥
केहो बोले महा तेजीयान् अधिकारी। केहो बोले कोन रूप बुझिते ना पारि ॥१५३॥
किवा जति नित्यानन्द किवा भक्त ज्ञानी। जार जेन मत इच्छा ना बोलये केनि ॥१५४॥
जे से केने चैतन्येर नित्यानन्द नहे। से चरण-धन मोर रहुक हृदये ॥१५५॥
एत परिहारे ओ जे पापी निन्दा करे। तबे लाथि मारोँ तार शिरेर उपरे ॥१५६॥
जय जय नित्यानन्द चैतन्य जीवन। तोमार चरण मोर हउक शरण ॥१५७॥

---

लिखने का कौतुक पूर्वक आदेश किया ॥ १४३ ॥ उन्हीं की कृपा से मैं श्रीचैतन्यचन्द्र के चरित्र लिखता हूँ इसमें मेरी किञ्चित् मात्र भी स्वतन्त्र-शक्ति नहीं है ॥ १४४ ॥ काष्ठ की पुतली को जैसे बाजीगर नचाता है, उसी प्रकार श्रीगौरचन्द्र मुझ से जो बुलवा रहे हैं वही बोल रहा हूँ ॥ १४५ ॥ मैं श्रीचैतन्यचन्द्र की कथा का आदि-अन्त नहीं जानता जैसे तैसे श्रीचैतन्यचन्द्र का यश वर्णन कर रहा हूँ ॥ १४६ ॥ जिस प्रकार पक्षी आकाश का अन्त नहीं पाता, वह केवल अपनी शक्ति भर ही उतनी दूर उड़ता है ॥ १४७ ॥ उसी प्रकार श्रीचैतन्यचन्द्र के यश का अन्त नहीं है। कृपा करके प्रभु ने जिसको जितनी शक्ति दी है, वह केवल उतना ही गाते हैं ॥ १४८ ॥ जैसा कि श्रीमद्भागवत् प्रथम स्कन्ध अठारहवें अध्याय के तेईसवें श्लोक से ज्ञात होता है-"जैसे पक्षी-गण अपनी शक्ति-अनुरूप आकाश में उड़ते हैं, किन्तु सम्पूर्ण आकाश का पार नहीं पा सकते हैं। उसी प्रकार पण्डित जन भी श्रीविष्णु भगवान् की लीला कृपा विजृम्भित अपनी मति अनुरूप ही वर्णन करते हैं" ॥ क ॥ हे वैष्णवगण ! आप सबके श्रीचरणों में मेरा नमस्कार है। आपकी कृपा से इसमें मेरा कुछ अपराध न हो ॥ १४९ ॥ जो जन संसार समुद्र से पार होकर भक्ति-समुद्र में डूबने के इच्छुक हों वह श्रीनिताइ चाँद का भजन करें ॥ १५० ॥ मैं हर समय अपने चित में यह बड़ा भरोसा रखता हूँ कि मेरे प्रभु के प्रभु श्रीगौरसुन्दर हैं ॥ १५१ ॥ कोई कहता है श्रीनित्यानन्द प्रभु बलराम हैं। कोई कहता है श्रीचैतन्यचन्द्र के महा प्रिय-स्वरूप हैं ॥ १५२ ॥ कोई कहता है-महा तेजस्वी अधिकारी हैं,कोई कहता है 'कैसा स्वरूप है समझ में नहीं आता ?' ॥१५३॥श्रीनित्यानन्द प्रभु को जिसकी जैसी इच्छा हो 'यति अथवा भक्त अथवा ज्ञानी' वह क्यों नहीं कहे ॥१५४॥ और श्रीनित्यानन्द श्रीचैतन्यचन्द्र के चाहे जो कुछ भी क्यों न हों, तब भी मैं तो यही कहता हूँ कि-'वह चरण-धन मेरे हृदय में निवास करो १५५ इतने परिहार करने पर जो पापी निन्दा करे पाँव उसके सिर पर रखता हूँ १५६॥श्रीचैतन्य जीवन निधि श्रीनित्यानन्द प्रभु आपकी जय हो,जय हो हे प्रभो

तोमार हइया जेन गौर चन्द्र गाङ । जन्मे जन्मे जेन तोमा संहति बेडाङ ॥१५८॥
जे शुनये आदि खण्डे चैतन्येर कथा । ताहारे श्री गौर चन्द्र मिलिब सर्व्वथा ॥१५९॥
ईश्वर पुरीर स्थाने हइया विदाय । गृहे आइलेन प्रभु श्री गौराङ्ग राय ॥१६०॥
सुनि सर्व्व नवद्वीप हैल आनन्दित । प्राण आसि देहे जेन हैल उपनीत ॥१६१॥
श्री कृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चाँद जाद । वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ॥१६२॥

आदिखण्डकथा दिव्या ये शृण्वन्ति परात्मनः । सर्वापराधनिर्मुक्तास्ते भवन्ति सुनिश्चितम् ॥ख॥
ये पठन्ति महात्मानो विलिखन्ति परादरैः । प्रलयेऽपि च तेषां वै तिष्ठत्येव हरेः स्मृतिः ॥ ग ॥
जन्मारभ्य गयाभूमिगमने यः कथोदयः । तत्कथ्यते विज्ञजनैरादिखण्डस्य लक्षणम् ॥ घ ॥
कारुण्ये भक्तिदातृत्वे चैतन्यगुणवर्णने । अमायाकथने नास्ति नित्यानन्दसमः प्रभुः ॥ ङ ॥

इति श्रीचैतन्यभागवते आदिखण्डे गयाभूमिगमनवर्णनं नाम
द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

❋ समाप्तश्चायं आदिखण्डः ❋

---

आपके गण ही मेरे शरण-स्थान हों ॥ १५७ ॥ हे प्रभो ! यह चाहता हूँ कि—मैं आपका होकर श्रीगौरचन्द्र का यश गान करूँ एवं प्रत्येक अवतार में आपके साथ ही साथ फिरता रहूँ ॥ १५८ ॥ जो कोई आदिखण्ड वर्णित श्रीचैतन्यचन्द्र की कथा सुनता है, उसको अवश्य श्रीगौरचन्द्र प्राप्त होंगे ॥ १५९ ॥ प्रभु श्रीगौराङ्गराय श्रीईश्वरपुरी जी से विदा होकर घर आ गये ॥ १६० ॥ यह सुनकर सब नवद्वीप-निवासी ऐसे आनन्दित हुए मानो देह में प्राण लौट आकर उपस्थित हो गये हों ॥ १६१ ॥ श्रीकृष्णचैतन्य एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र को प्रभु जान कर वृन्दावनदास उनके युगल चरणों में कुछ वर्णन करता है॥१६२॥ जो महात्मन् आदिखण्ड की दिव्य-कथा को श्रवण करते हैं, वह सुनिश्चय सब अपराधों से विमुक्त हो जाते हैं ॥ख॥ जो महात्मन् परम आदर पूर्वक इसको पाठ करते हैं और लिखते हैं, प्रलय काल में भी उन सब की श्रीहरि की स्मृति निश्चय रहती है ॥ ग ॥ श्रीविश्वम्भरचन्द्र के 'जन्म से लेकर श्रीगया धाम गमन पर्यन्त' जो मङ्गल कथा है, विज्ञजन उसको आदिखण्ड का लक्षण करके बतलाते हैं ॥ घ ॥ क्या तो करुणा में, क्या भक्ति दातृत्व में, क्या श्रीचैतन्य-चन्द्र के गुण वर्णन में, क्या निष्कपट कथा वर्णन करने में श्रीनित्यानन्द के बराबर कोई प्रभु नहीं है ॥ङ॥

## अनुवाद कर्त्ता:—

ब्रज के प्रसिद्ध मान्यगण्य, पूज्य, "वृन्दावनशतका"दि ग्रन्थों के सुमधुर व्याख्या करने वाले, परम प्रेम-परायण, गौरगतप्राण, नित्यधामप्राप्त श्रीयुक्त गौराङ्गदासजी महाराज के अनुगत कृपापात्र, श्रीमान् "पण्डित रामलालजी" "गिडोह" निवासी ।

शुभं भूयात् ।

जय जय जय जग मंगलकारी ।

जन मन मोहन गौर कृष्ण विधु नदिया पूर वर वरज विहारि ।।ध्रु

नित्यानंदचन्द्र हलधर हर कलिकलुप विषम अन्धियारि ।
श्रीअद्वैत परमकरुणानिधि दारुण भव दव दहने उधारि ।।
सुखद गदाधर धरनि विदीत सिरिवासहि प्रेमभकति अधिकारि ।
गरुड गदाधर नरहरि हरिदास स्वरूप प्रिय गुपत मुरारि ।।
सार्वभौम सिरि - वासुदेव विद्यानिधि पुण्डरीक सुखकारि ।
सिरि जगदीश विजय वक्रेश्वर दामोदर वर विपद विदारि ।।
रामानंद मुकुंद सुन्दरानंद नन्दनानन्द प्रचारि ।
श्रीनिधि प्रबोधानन्द गौररसे गरगर हृदय न रहत सम्भारि ।।
रामानन्दराय रससागर परमानंद गुपत धृति धारि ।
राघव रघुपति राम महिवर करन प्रेमधन मुदित विकारि ।।
काशीश्वर परमेश्वर नारायण सुदर्शन नयन फल चारि ।
रूप सनातन रघुनाथ श्रीजीव भक्ति वर रतन उघारि ।।
श्रीगोपालभट्ट रघुनाथ ही लोकनाथ चैतन्य मुरारि ।
वासुघोष माधव गोविन्द सुप्रेम जलधि मधि सतत साँतारि ।।
श्रीधर परमानन्द पुरन्दर पहु गुणे निरत नयने झरु वारि ।
सिरि उद्धारण धनञ्जय सञ्जय गौरिदास यश विसद विथारि ।।
संकर रघुनंदन महेष अभिराम शमन भय भञ्जन कारि ।
श्रीयदु मधु - पण्डित शुक्लाम्बर वृन्दावन वरषत रस भारि ।।
जगदानंद मुकुन्द गानरत पहु रस वस निशि दिवस बिसारि ।
कर्णपूर कविलोचन जनलोचन गुणगण गायत नर नारि ।।
सिरि श्रीनिवास नरोत्तम श्यामानंद सगण गुण गनइ ना पारि ।
नरहरि भण मन आस पुरह निज दास करह अति दुखित नेहारि ।।

॥ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ॥

# श्री चैतन्यभागवत

## मध्यखण्ड

मूल बंगला लिपि के रचनाकार—

## श्रीलवृन्दावनदास ठाकुर महाशय


अर्थ सहायक—

स्वर्गीय लाला श्रीराधाकृष्ण जी अग्रवाल, ग्राम-भूरेका तह-
सील मांट (मथुरा) की धर्मपत्नी श्रीमती नारायणीदेवी
ने अपने गुरुदेव भगवान् माध्वगौड़ेश्वर संप्रदायाचार्य,
विद्यावारिधि, संकीर्तनप्रचारक, महामण्डलेश्वर,
सख्यरस उपासक श्रील श्री १००८ श्री स्वामी
कृष्णानन्ददास जी महाराज की पावन-
स्मृति में प्रकाशित करवाया।

सम्पादक व प्रकाशक—

बाबा कृष्णदास जी

# भूमिका

*

कालाश्नष्टं भक्तियोगं निजं यः प्रादुष्कर्तुं कृष्णचैतन्यनामा।
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे गाढ़ं गाढ़ं लीयतां चित्तभृङ्गः॥

अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक भगवान के अवतारों की संख्या अनन्त है, आवश्यकतानुसार जगन्नियन्ता जगदीश्वर युग-युग में प्रकट होते रहते हैं। भगवान ने अपने अवतार के मुख्य कारण तीन बताये हैं—साधु परित्राण, दुष्ट विनाशन, धर्म संस्थापन। प्रभु के सम्पूर्ण अवतार इन तीन कारणों से प्रभावित हैं। किन्तु एक अवतार ऐसा भी है—जिसमें उक्त तीन कारण तो गौण रह जाते हैं, एक चौथा कारण मुख्य हो जाता है, वह कारण है—"अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ"। न जाने कब से भगवान की यह इच्छा थी कि ये मेरे प्रेमी पागल जिस राग-भक्ति के उन्माद में विस्मृत रहते हैं—उसका मैं स्वयं भी अस्वादन करूँ? और तब उस उन्नत उज्वल रसामृत सिन्धु के सारतत्व को लेकर एक दिन प्रभु स्वयं इस धराधाम पर अवतरित हुए।

भारत के कोटि-कोटि कृष्ण प्राण महाभागवतों ने बहिः साक्षात्कार एवं अन्तः साक्षात्कार के द्वारा जिन कलि पावनावतार प्रेमानन्द रस मूर्ति भगवान श्रीकृष्ण चैतन्य देव की भगवत्ता को सुनिश्चित रूप से स्वीकार किया है, उन्हीं करुणा वरुणालय प्रभु का दिव्य चरित्र इस "चैतन्य भागवत" में वर्णित है। 'चैतन्य भागवत' के रचयिता श्री वृन्दावनदासजी श्रीमन्महाप्रभु के परम कृपापात्र हैं, स्वयं प्रभु ने ही श्री वृन्दावनदासजी की वाणी पर विराजमान होकर 'चैतन्य भागवत' वर्णन किया है—

"मनुष्ये रचिते नारे ऐछे ग्रन्थ धन्य। वृन्दावनदास मुखे वक्ता श्रीचैतन्य"॥ "चैतन्य चरितामृत"

इससे स्पष्ट है कि 'चैतन्य भागवत" साक्षात् भगवत् वाणी है, ऐसे परम पावन-पुनीत ग्रन्थ का पठन-पाठन स्वाध्याय-प्रवचन निश्चित ही कोटि-कोटि जन्मों के अघों को समूल नष्ट कर महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य देव के पाद-पद्मों में श्रद्धा, भक्ति एवं प्रेम का उत्पन्न करने वाला है। 'चैतन्य भागवत' में वर्णित प्रभु की पुण्य कथाओं का जितना ही कीर्त्तन-श्रवण किया जायगा, उतना ही शीघ्र से शीघ्र श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में दिव्य प्रेम-रस की प्राप्ति होगी।

"श्री चैतन्य भागवत" की रचना श्रीमन्महाप्रभु के समसामयिक ही समझी जाती है, किन्तु बड़े ही खेद और दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि श्रीमन्महाप्रभु के प्राकट्य समय ४७८ वर्ष के बाद भी किसी गौड़ीय विद्वान्, गृहस्थ या विरक्त ने इस अमूल्य ग्रन्थ रत्न को हिन्दी भाषा में प्रकाशित कराने की चेष्टा नहीं की। बंगभाषा एवं बंग-लिपि के आवरण में छिपे सहस्रों ग्रन्थ रत्न आज भी न जाने कहाँ कहाँ दबे पड़े हैं, हिन्दी आदि भाषाओं के ज्ञाता भक्तजन जिन ग्रन्थों की कथा-श्रवण के लिये प्यासे-से भटकते रहते हैं, परन्तु विशाल गौड़ीय (बंग-भाषी) सम्प्रदाय द्वारा इन ग्रन्थों के भाषान्तर करने का कुछ भी प्रयास नहीं होता, भले ही किसी को बुरा लगे, किन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि सम्प्रदाय के कर्णधारों ने यदि थोड़ा भी भाषा के व्यामोह को छोड़ा होता तो श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रचारित धर्म आज विश्व का सर्वमान्य धर्म होता और इस सर्व वन्दय धर्म के आश्रय में अनन्त जीवों का कल्याण हुआ होता। भारतवर्ष के बड़े-बड़े विद्वान् एवं समस्त सम्प्रदायाचार्य गौड़ीय सम्प्रदाय के भक्ति-साहित्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करते नहीं थकते आज वे सभी विद्वान गौड़ीय सम्प्रदाय के भक्ति-साहित्य के आगे नतमस्तक हैं दूसरी ओर गौड़ीय सम्प्रदाय

के ही अनेक महापुरुष ऐसे भी हैं जो इस अमूल्य ग्रन्थ राशि को नष्ट होते देख रहे हैं, दूसरों के द्वारा अपहरण होता देखकर भी स्वानन्द स्वाराज्य सिंहासन से तनिक भी विचलित नहीं होते। यह उनके लिये सौभाग्य की बात होगी, किन्तु सम्प्रदाय के प्रचार कार्य में यह उपेक्षा-वृत्ति निश्चित ही दुर्भाग्य की बात है।

वैसे इस बीसवीं शताब्दि में सम्प्रदायेतर महानुभावों की ओर से पर्याप्त जागृति हुई है, अन्य सम्प्रदायि महानुभावों ने ही सर्व प्रथम बंगला ग्रन्थों का हिन्दी करण प्रारम्भ किया, काशी से अच्युत ग्रन्थ माला, बम्बई से वेंकटेश्वर प्रेस आदि से कुछ ग्रन्थ प्रकाशित किये गये उसके भी पहले नाड़ाम वाला स्टेट के महाराज श्री वनमालीराय द्वारा भी अनेक ग्रन्थ हिन्दी में मुद्रित किये गये किन्तु यह परम्परा अक्षुण्ण न रह सकी, क्योंकि सम्प्रदाय के नैष्ठिक वैष्णवों का मनोबल इस प्रचार की ओर नहीं था। अवश्य ही इस दिशा में गौड़ीय मठ की शाखाओं ने बहुत कुछ कार्य किया है, कर भी रहे हैं, गौड़ीय मठ के विद्वान प्रचार का महत्व समझते हैं। सबसे बड़ी अच्छी बात जो इस समय बंगला साहित्य के हिन्दी करण के लिये हो रही है—वह है बाबा श्रीकृष्णदासजी कुसुम सरोवर वालों का हिन्दी प्रकाशन। बाबा श्रीकृष्णदासजी ने अपने अथक परिश्रम से अब तक एक सौ से ऊपर बँगला ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया है, बाबाजी के हृदय में सम्प्रदाय कार्य के प्रति निष्ठा है, लगन है, और एक प्रबल उत्कण्ठा है कि सम्प्रदाय का सम्पूर्ण साहित्य एक बार हिन्दी की गोद में आ विराजे, प्रस्तुत ग्रन्थ "श्रीचैतन्य भागवत" के हिन्दी प्रकाशन का सम्पूर्ण श्रेय बाबा श्रीकृष्णदासजी पर ही है, ग्रन्थ को आदि खण्ड और अन्त्य खण्ड बाबाजी के महान् उद्योग से पहले ही प्रकाशित हो चुके हैं, आदि-अन्त्य खण्डों के प्रकाशित हो जाने के पश्चात् बाबा श्रीकृष्णदासजी को मध्य खण्ड के प्रकाशन की महती चिन्ता थी, इसी बीच करुणा वरुणालय प्रभु की महान् कृपा एवं प्रेरणा से मध्य खण्ड के प्रकाशन का प्रबन्ध भी होगया। श्रीमाध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदायाचार्य विद्यावारिधि, सङ्कीर्त्तन प्रचारक, महामण्डलेश्वर सख्य रस-उपासक श्रील श्री १००८ श्री स्वामी श्री कृष्णानन्ददासजी महाराज जो लेखक को श्रीगुरुदेव भगवान के रूप में इस भवाटवी में आश्रय दाता हुए हैं, महाराज श्री की परम कृपा पात्रा, माता श्री नारायणीदेवी—धर्मपत्नी स्वर्गीय लाला श्रीराधाकृष्णजी अग्रवाल, ग्राम भूरेका तहसील मांट (मथुरा) के परम भागवत सुपुत्र श्री विश्वम्भरदयालजी भगवद् भजन की इच्छा से बाबा श्री कृष्णदासजी के पास कुछ दिन रहे, उन्हीं दिनों चैतन्य भागवत की कथा होने पर श्री विश्वम्भरजी की मातु श्री नारायणीदेवी ने पूर्ण अर्थ सहायता प्रदान कर इस ग्रन्थ को प्रकाशित किया है। ग्रन्थ का प्रकाशन जगत् के जीवों को ज्ञान का दान करना होता है, जैसे नेत्रहीन व्यक्ति को चक्षु प्राप्त करने पर महान् सुख शान्ति मिलती है, वैसे ही इस ग्रन्थ रूपी चक्षु के द्वारा जिनको भी यथार्थ ज्ञान होगा—वे चिर काल तक अन्तरात्मा से आशीर्वाद देते रहेंगे।

माता श्री नारायणीदेवी की यह हार्दिक इच्छा है कि यह ग्रन्थ उन गौर भक्तों को वितरण किया जाय—जिनके हृदय में प्रेम प्रदाता श्री गौरचन्द्र के दिव्य चरित्रों को श्रवण करने की तीव्र लालसा जाग्रत हो रही हो। आशा है प्रबन्धक महानुभाव ऐसी ही व्यवस्था करेंगे।

अन्त में प्रभु के पादपद्मों में पुनः प्रार्थना है कि वे अपने भक्तों के हृदय में ऐसी ही निरन्तर प्रेरणा देते रहें ताकि ऐसे महान् निधि स्वरूप ग्रन्थों का प्रकाशन होता रहे।

जेष्ठ गङ्गादशहरा
संवत् २०२०

गौर भक्त चरणानुचर—
**रामदास शास्त्री मण्डलेश्वर**
चारसम्प्रदायआश्रम (वृन्दावन)

# ✱ श्री चैतन्य भागवत ✱

## —— मध्य खण्ड ——

### प्रथम अध्याय

आजानुलम्बितभुजौ कनकावदातौ
संकीर्तनैकपितरौ कमलायताक्षौ
विश्वम्भरौ द्विजवरौ युगधर्म्मपालौ
वन्दे जगत्प्रियकरौ करुणावतारौ ॥१॥
नमस्त्रिकालसत्याय जगन्नाथसुताय च ।
सभृत्याय सपुत्राय सकलत्राय ते नमः ॥२॥

जय जय जय विश्वम्भर द्विजराज । जय विश्वम्भर प्रिय वैष्णव समाज ॥३॥
जय गौरचन्द्र धर्म्मसेतु महाधीर । जय संकीर्तन मय सुन्दर शरीर ॥४॥
जय नित्यानन्देर बान्धव धन प्राण । जय गदाधर अद्वैतर प्रेमधाम ॥५॥
जय श्रीजगदानन्द प्रिय अतिशय । जय वक्रेश्वर काशीश्वरेर हृदय ॥६॥
जय जय श्रीवासादि प्रियवर्गनाथ । जीवे प्रति कर प्रभु शुभ दृष्टि पात ॥७॥
मध्य खण्ड कथा जेन अमृतेर खण्ड । जे कथा शुनिले घूचे अंतर पाषण्ड ॥८॥

---

अनुवाद—जिनकी दोनों भुजाएँ जानु पर्यन्त लम्बी हैं, जिनके श्रीअङ्ग की कान्ति कंचन के समान कमनीय है, जिनके दोनों नयन कमलदल के समान विस्तीर्ण हैं, जो संकीर्तन के एक मात्र पिता (जन्मदाता) हैं जो सकल विश्व के भरण-पोषण-कर्ता हैं, जो युग धर्म के पालन करने वाले हैं, जो जगत के प्रियकारी हैं, जो द्विज श्रेष्ठ हैं तथा करुणा के अवतार हैं, मैं उन दोनों को (श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभु और श्री नित्यानन्द प्रभु को) वन्दना करता हूँ ॥१॥ हे नाथ ! तुम्हीं भूत, भविष्य, वर्त्तमान—तीनों काल में एक मात्र सत्य हो । तुम जगन्नाथ मिश्र के सुपुत्र हो ! मैं तुमको तुम्हारे भृत्यों, पुत्रों (वात्सल्य-रस के पात्रों) एवं कलत्रों के सहित नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥ हे विश्वम्भर ! हे द्विजराज ! आपकी जय हो, जय हो । हे विश्वम्भर ! हे वैष्णव समाज के प्रिय ! आपकी जय हो ॥३॥ हे गौरचन्द्र ! हे धर्म के सेतु ! हे महाधीर ! आपकी जय हो । हे संकीर्तन रूप ! हे सुन्दर शरीर वाले ! आपकी जय हो ॥४॥ हे नित्यानन्द प्रभु के बंधु ! उनके धन एवं प्राणरूप ! आपकी जय हो । हे श्रीगदाधर पण्डित एवं अद्वैत प्रभु के प्रेमधाम आपकी जय हो ॥५॥ हे श्री जगदानन्द के अत्यन्त प्रिय ! आपकी जय हो । हे श्री वक्रेश्वर एवं काशीश्वर के हृदयरूप ! आपकी जय हो ॥६॥ हे श्री वासादि प्रियवर्ग के नाथ ! आपकी जय हो , जय हो । हे प्रभु ! जीव के प्रति शुभ दृष्टिपात कीजिए ॥७॥ मध्य खण्ड की कथा मानों अमृत की खाँड रूप है । जो कथा सुनने पर अन्तर का पाखण्ड दूर हो जाता है ॥८॥

मध्य खण्ड कथा भाइ ! शुन एकचित्ते । संकीर्त्तन आरम्भ हइल जेन मते ॥९॥
गया करि आइलेन श्रीगौर सुन्दर । परिपूर्ण ध्वनि हैल नदीया नगर ॥१०॥
धाइलेन सभे जत आप्तवर्ग आछे । केहो आगे केहो माझे केहो अति पाछे ॥११॥
यथा योग्य करे प्रभु सभारे सम्भाष । विश्वम्भर देखि हैल सभार उल्लास ॥१२॥
आगुवादि सभे आनिलेन निज घरे । तीर्थ कथा सभारे कहेन विश्वम्भरे ॥१३॥
प्रभु बोले तोमा सभाकार आशीर्व्वादे । गयाभूमि देखि आइलाङ निर्विरोधे ॥१४॥
परम सुनम्र हइ प्रभु कथा कहे । सभे तुष्ट हैला देखि प्रभुर विनये ॥१५॥
शिरे हाथ दिया केहो चिरजीवी करे । सर्व्व अंगे हाथ दिया केहो मन्त्र पड़े ॥१६॥
केहो वक्षे हाथ दिया करे आशीर्वाद । गोविन्द शीतलानन्द करुन प्रसाद ॥१७॥
हइला आनन्दमय शची भाग्यवती । पुत्र देखि हरिषे ना जाने आछे कति ॥१८॥
लक्ष्मीर जनक कुले आनन्द उठिल । पतिमुख देखिया लक्ष्मीर दुःख गेल ॥१९॥
सकल वैष्णवगण हरिष हइला । देखिते ओ सेइक्षणे केहो केहो गेला ॥२०॥
सभारे करिला प्रभु विनय सम्भाष । विदाय दिलेन सभे गेला निज वास ॥२१॥
विष्णुभक्त गुटि दुइचारि जन लैया । रहः कथा कहिबारे वसिलेन गिया ॥२२॥
प्रभु बोले वन्धु सब शुन कहि कथा । कृष्णेर अपूर्व्व जे देखिल यथा यथा ॥२३॥
गयार भितर मात्र हइलाङ प्रवेश । प्रथमेइ शुनिलाङ मंगल विशेष ॥२४॥
सहस्र सहस्र विप्र पड़े वेदध्वनि । देख देख विष्णु पादोदक तीर्थ खानि ॥२५॥
पूर्व्वे कृष्ण जबे कैला गया आगमन । सेइ स्थाने रहि प्रभु धुइला चरण ॥२६॥

---

हे भाई ! एकाग्रचित्त से मध्यखण्ड की कथा सुनो—जिस प्रकार कीर्तन का आरम्भ हुआ है ॥९॥ 'श्रीगौरांग सुन्दर गया होकर आए हैं' इस ध्वनि से नदिया नगर परिपूर्ण हो गयी ॥१०॥ प्रभु के जितने आप्तवर्ग थे सब दौड़े आये—कोई आगे कोई बीच में कोई पीछे ॥११॥ प्रभु ने यथा योग्य सबसे सम्भाषण किया एवं विश्वम्भर जी को देखकर सबका मन उल्लसित हुआ ॥१२॥ सब आगे बढ़कर उनको उनके घर ले गए और विश्वम्भर जी सबसे तीर्थकथा कहने लगे ॥१३॥ प्रभु बोले कि तुम सबों के आशीर्वाद से मैं गया भूमि देख कर सकुशल लौट आया हूँ ॥१४॥ प्रभु अत्यन्त सुनम्र होकर कथा कहते थे । सब लोग प्रभु का विनय देख कर प्रसन्न हुए ॥१५॥ कोई मस्तक पर हाथ रख कर "चिरंजीवी हो" कहने लगे, कोई समस्त अंगों पर हाथ फेर कर मंत्र पढ़ने लगे ॥१६॥ कोई वक्ष पर हाथ देकर आशीर्वाद देने लगे कि शीतलानन्द श्रीगोविंद तुम पर कृपा करें ॥१७॥ भाग्यवती शची तो आनन्दमयी होगई । पुत्र को देखकर हर्ष के मारे मैं कहाँ हूँ, यह भी भूल गयी ॥१८॥ लक्ष्मी देवी का पितृकुल भी आनन्द से भर उठा । पति का मुख देख कर लक्ष्मीजी का दुःख दूर हुआ ॥१९॥ समस्त वैष्णवगण हर्षित हुए । कोई कोई उनको देखने के लिये भी गये ॥२०॥ प्रभु ने सब से विनय पूर्वक वार्तालाप करके उनको विदा किया । सब अपने घर गए ॥२१॥ प्रभु दो चार विष्णु भक्तों को लेकर गोपनीय बात कहने के लिये बैठे ॥२२॥ प्रभु ने कहा—हे समस्त बन्धुओ सुनो । श्रीकृष्ण की जो जो अपूर्व बातें मैंने जैसे-जैसे देखी है वह सब सुनाता हूँ ॥२३॥ गया के भीतर प्रवेश करते ही मैंने पहले ही मंगल शब्द सुना ॥२४॥ सहस्र सहस्र ब्राह्मण वेद ध्वनि करते थे । कोई कहते थे देखो देखो यह विष्णुपाद तीर्थ है ॥२५॥ पूर्वकाल में श्रीकृष्ण चन्द्र ने जब गया में आगमन किया था तब उस स्थान पर रहकर उन्होंने चरण धोये थे । जिन के पादोदक के कारण गङ्गा

जाँर पादोदक लागि गंगार महत्व । शिरे धरि शिव जाने पादोदक तत्त्व ॥२७॥
से चरण उदक प्रभावे सेइ स्थान । जगते हईल पादोदक तीर्थ नाम ॥२८॥
पादपद्मतीर्थेर लईते प्रभु नाम । अक्षरे झरये दुई कमल नयान ॥२९॥
शेषे प्रभु हईलेन वड़ असम्बर । कृष्ण वलि कान्दिते लागिला वहुतर ॥३०॥
भरिल पुष्पेर वन महाप्रेम जले । महा श्वास छाड़ि प्रभु कृष्ण कृष्ण बोले ॥३१॥
पुलके पूर्णित हैल सर्व्व कलेवर । स्थिर नहे प्रभु कम्प भरे थर थर ॥३२॥
श्रीमान् पण्डित आदि जत भक्तगण । देखेन अपूर्व्व कृष्ण प्रेमेर क्रन्दन ॥३३॥
चतुर्दिगे नयने वहये प्रेमधार । गंगा जेन आसि करि लेन अवतार ॥३४॥
मने मने सभे भावेन चमत्कार । एमत ईहाने कभु नाहि देखि आर ॥३५॥
श्रीकृष्णेर अनुग्रह हईल ईहाने । कि विभव पथे वा हईल दरशने ॥३६॥
वाह्यदृष्टि प्रभुर हईल कथोक्षणे । शेषे प्रभु सम्भाषा करिला सभा सने ॥३७॥
प्रभु कहे वन्धुसव ! आजि घरे जाह । कालि यथा बोलों तथा आसिवारे चाह ॥३८॥
तोमा सभा सहित निर्ज्जन एक स्थाने । मोर दुःख सकल करिव निवेदने ॥३९॥
कालि सभे शुक्लाम्बर ब्रह्मचारि घरे । तुमि आर सदाशिव चलिवे सत्वरे ॥४०॥
समय करिया सभे करिला विदाय । यथाकार्य्ये रहिलेन विश्वम्भर राय ॥४१॥
निरवधि कृष्णवेश प्रभुर शरीरे । महाविरक्तेर प्राय व्यवहार करे ॥४२॥
वुझिते ना पारे आई पुत्रेर चरित । तथापिह पुत्र देखि महा आनन्दित ॥४३॥

---

का यह महत्व है कि शिवजी उसको मस्तक पर धारण करते हैं। कारण कि शिवजी उस पादोदक तत्व को जानते हैं ॥२७॥ उस चरणोदक के प्रभाव से वह स्थान जगत में पादोदक तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥२८॥ पादोदक तीर्थ का नाम लेते हुए प्रभु के दोनों कमलनेत्र आँसुओं की झड़ी बहाने लगे ॥२९॥ अन्त में प्रभु अत्यन्त अधीर हो गये और "कृष्ण" कहकर बहुत रोने लगे ॥३०॥ वह पुष्प वन उनके महा प्रेमाश्रु जल से भर गया। प्रभु दीर्घश्वास छोड़ते हुए कृष्ण कृष्ण कहने लगे ॥३१॥ उनका समस्त कलेवर पुलकावली से पूर्ण हो गया, वे स्थिर नहीं रह सके थर थर काँपने लगे ॥३२। श्रीमान् पण्डित आदि जितने भक्त थे सबने उनके कृष्ण प्रेम का अपूर्व क्रन्दन देखा ॥३३॥ नैनों से चारों ओर प्रेम की धारा बहने लगी मानो गङ्गाजी ने आकर अवतार लिया हो ॥३४॥ सब मन ही मन सोचने लगे कि यह बड़े आश्चर्य की बात है, ऐसा हमने इनको कभी नहीं देखा ॥३५॥ इन पर श्रीकृष्ण का अनुग्रह हुआ है अथवा तो इनको गया के मार्ग में क्या कुछ वैभव का दर्शन हुआ है ॥३६॥ कुछ क्षणों के उपरान्त प्रभु की बाह्य दृष्टि हुई, अन्त में आपने सबके साथ सम्भाषण किया ॥३७॥ प्रभु ने कहा—हे समस्त बन्धुओ ! आज सब अपने अपने घर जाओ, कल जहाँ आने के लिए कहूँ वहाँ आना ॥३८॥ तुम सबके साथ कोई एक निर्जन स्थान में मैं अपना सारा दुख निवेदन करूँगा ॥३९॥ कल सब शुक्लाम्बर ब्रह्मचारीके घर सदाशिव केसाथ शीघ्र ही आना ॥४०॥ इस प्रकार समय निश्चित करके प्रभु विश्वम्भर राय ने सबको विदा किया, और अपना कार्य करने लगे ॥४१॥ प्रभु के शरीर में निरन्तर कृष्णावेश होने लगा, प्राय महाविरक्त की भाँति आप व्यवहार करने लगे ॥४२॥ आई (शची माता) पुत्र का चरित्र नहीं समझ सकी तो भी पुत्र को देख कर अत्यन्त आनन्दित हुई ॥४३॥ प्रभु कृष्ण-कृष्ण कहकर रोने लगे, आई ने देखा सारा आंगन अश्रु जल से पूर्ण हो गया ॥४४॥ "कृष्ण कहाँ" "कृष्ण कहाँ" इस प्रकार ठाकुर प्रभु कहने लगे। कहते कहते उनका

कृष्ण कृष्ण बलि प्रभु करेन क्रन्दन । आई देखे पूर्ण हय सकल अङ्गन ॥४४॥
कोथा कृष्ण कोथा कृष्ण बोलये ठाकुर । बलिते बलिते प्रेम बाढ़ये प्रचुर ॥४५॥
किछु नाहि बुझे आई कोन वा कारण । कर जोड़े गेला आई गोविंद शरण ॥४६॥
आरम्भिला महाप्रभु आपन प्रकाश । अनन्त ब्रह्माण्डमय हईल उल्लास ॥४७॥
प्रेम वृष्टि करते प्रभुर शुभारम्भ । शुनि ध्वनि जाय जथा भागवत वृंद ॥४८॥
ये सब वैष्णव गैला प्रभु दरसने । समय करिला प्रभुर तास भार सने ॥४९॥
कालि शुक्लाम्बर घरे मिलिबा आसिया । मोर दुःख निवेदिव निभृते वसिया ॥५०॥
हरिषे पूर्णित हैला श्रीमान् पण्डित । देखिया अद्भुत प्रेम महाहरषित ॥५१॥
यथाकृत्य करि उषः काले साजि लैया । चलिला तुलिते पुष्प हरषित हैया ॥५२॥
एक झाड कुन्द आछे श्रीवास मन्दिरे । कुन्दरूपे किबा कल्पतरु अबतरे ॥५३॥
जतेक वैष्णव तोले तुलिते ना पारे । अक्षय अव्यय पुष्प सर्वक्षण धरे ॥५४॥
उषः काले उठिया जतेक भक्तगण । पुष्प तुलिवारे आसि हइला मिलन ॥५५॥
सभेइ तोलेन पुष्प कृष्ण कथा रसे । गदाधर गोपीनाथ रामाथि श्रीबासते ॥५६॥
हेनइ समये आसि श्रीमान् पंडित । हासिते हासिते तथा हईला विदित ॥५७॥
सभेइ वोलेन आज बड देखि हास्य । श्रीमान् बोलेन आछे कारण अवश्य ॥५८॥
तथाहि कारणं बिना कार्य्यं न सम्भवेत् ॥५९॥
परम अद्भुत कथा महा असम्भव । निमाञि पण्डित हैला परम वैष्णव ॥६०॥

प्रेम अत्यन्त बढ़ चली ॥४५॥ मानो कुछ नहीं समझी कि उसका क्या कारण है ? वह हाथ जोड़ श्रीगोविंद की शरण में आई ॥४६॥ अब महाप्रभु ने अपने "प्रकाश" का शुभारम्भ किया, उससे अनन्त ब्रह्माण्ड में उल्लास छा गया ॥४७॥ प्रेम की वर्षा करने के लिये प्रभु का यह शुभारम्भ है । यह ध्वनि जहाँ सब भक्त-वृन्द थे वहाँ भी पहुँची ॥४८॥ पहले जो सब वैष्णव लोग प्रभु के दर्शन करने गये थे और प्रभु ने जिनको समय दिया था कि कल सब शुक्लाम्बर जी के घर पर आकर मिलना, मैं एकान्त में बैठकर अपना दुःख निवेदन करूँगा । उन सबको बड़ा आनन्द हुआ ॥४९–५०॥ श्रीमान् पंडित जी हर्ष से परिपूर्ण हो गए, उनको प्रभु का अद्भुत प्रेम देखकर महान् आनन्द हुआ ॥५१॥ अपना प्रातः कर्म करके उषाकाल में फूल उतारने के लिए डलिया ले बड़े प्रसन्न होकर चले ॥५२॥ श्रीवास पण्डितजी के मन्दिर में एक कुन्द चमेली का पौधा था, कुन्द रूप में वह मानो कल्पलता का ही अवतार था ॥५३॥ कारण कि जितने वैष्णव जन थे वे सब उसमें फूल उतारते थे किन्तु शेष नहीं कर पाते थे । उसमें वह सर्वदा पुष्पों का अक्षय अव्यय रूप में धारण करता था ॥५४॥ सब भक्तगण का प्रातःकाल उठकर पुष्प चयन करने के लिए आने पर मिलन होता ॥५५॥ श्रीगदाधर श्री गोपीनाथ, श्रीरामाञि पण्डित एवं श्रीवास आदि सब भक्तगण परस्पर आनन्दपूर्वक कृष्णचर्चा करते हुए, पुष्प चयन करने लगे ।५६। उसी समय श्रीमान् पण्डित वहाँ पर आये और बहुत हँसने के कारण उनका आना सबको विदित हुआ ॥५७। जब सब भक्त जन उनसे पूछने लगे कि आज तो आपको बहुत हँसते देख रहे हैं, पण्डित बोले कारण तो अवश्य है ॥५८॥ जैसा कि कहा गया है, कारण के बिना कार्य नहीं होता ॥५९॥ एक बड़ी अद्भुत, बड़ी असम्भव सी बात हुई है—निमाई पण्डित वैष्णव हो गए । जब मैंने यह सुना कि वह गया से सकुशल आ गए हैं तो मैं कल शाम को उनसे वार्तालाप करने के लिए गया ॥६०–६१॥ तो मैंने उनका समस्त वार्तालाप परम वैराग्य-

गया हैते आइलेन सकल कुशले । शुनि आमि सम्भाषिते गेलाङ विकाले ॥६१॥
परम विरक्त रूप सकल सम्भाष । तिलार्द्धेक औद्धत्येर नाहिक प्रकाश ॥६२॥
निभृते जे लागिलेन कहिते कृष्ण-कथा । जे जे स्थाने देखिलेन जे अपूर्व्व जथा ॥६३॥
पाद पद्म तीर्थेर लइते मात्र नाम । नयनेर जले सब पूर्ण हैल स्थान ॥६४॥
सर्व्व अङ्ग महा-कम्प पुलके पूर्णित । हा कृष्ण बलिया मात्र पड़िला भूमित ॥६५॥
सर्व्व अङ्गे धातु नाइ हइला मूर्छित । कथो क्षणे बाह्य दृष्टि हैला चमकित ॥६६॥
शेषे जे बलिया कृष्ण कान्दिते लागिला । हेन बुझि गङ्गादेवी आसिया मिलिला ॥६७॥
जे भक्ति देखिल आमि ताहान नयने । ताहाने मनुष्य बुद्धि नाहि आर मने ॥६८॥
सबे एइ कथा कहिलेन बाह्य हैले । "शुक्लाम्बर-गृहे कालि मिलिबा सकाले ॥६९॥
तुमि आर सदाशिव पण्डित मुरारि । तोमा सभा स्थाने दुःख करिब गोहारि ॥७०॥
परम मङ्गल एइ कहिलाङ कथा । अवश्य कारण इथे आछये सर्व्वथा ॥७१॥
श्रीमानेर वचन शुनिञा भक्त गण । हरि बलि महाध्वनि करिला तखन ॥७२॥
प्रथमेइ बलिलेन श्रीवास उदार । गोत्र बढ़ाउक् कृष्ण ! आमा सभाकार ॥७३॥
आनन्दे करेन सभे कृष्ण सङ्कथन । उठिल मधुर कृष्ण-श्रवण कीर्तन ॥७४॥
तथास्तु तथास्तु बोले भागवत गण । सभेइ भजुक कृष्ण चन्द्रेर चरण ॥७५॥
हेन मते पुष्प तुलि सर्व्व-भक्त गण । पूजा करिवारे सभे करिला गमन ॥७६॥
श्रीमान् पण्डित चलिलेन गङ्गा तीरे । शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी ताहान मन्दिरे ॥७७॥
शुनिञा ए सब कथा प्रभु गदाधर । शुक्लाम्बर गृह प्रति चलिला सत्वर ॥७८॥

---

मय पाया । उद्दण्डता तो उनमें आधा तिल भर भी नहीं रही ॥ ६२ ॥ उन्होंने जहाँ जहाँ जो-जो अद्भुत बातें देखी थीं, वह सब श्री कृष्ण-कथा, वे एकान्त में कहने लगे ॥ ६३ ॥ कहते कहते पाद-पद्म तीर्थ का नाम मात्र लेते ही उनके नेत्रों के जल से वह स्थान सब भर गया ॥ ६४ ॥ और उनका सब शरीर महा कम्प और रोमाञ्च से पूर्ण हो गया और केवल हा कृष्ण "मात्र कहकर वे भूमि पर गिर पड़े ॥ ६५ ॥ शरीर में कहीं चेतनता न रही—वे मूर्च्छित हो गये । कुछ देर में वाह्य दृष्टि हुई तो चमक उठे ॥ ६६ ॥ और फिर "कृष्ण कृष्ण" कहकर जो रोना आरम्भ किया, तो ( उनकी अश्रु-धाराओं से ) ऐसा लगता था कि गंगा देवी ही आकर मिल गई हो ॥ ६७ ॥ मैंने उनके नेत्रों में जो भक्ति देखी, उससे मेरे मन में अब उनके प्रति मनुष्य बुद्धि नहीं रही ॥ ६८ ॥ पश्चात् वाह्य ज्ञान होने पर वे केवल इतना ही बोले कि 'कल शुक्लाम्बर के घर में तुम सब आकर मिलना" ॥ ६९ ॥ "तुम, सदा शिव पण्डित, और मुरारि गुप्त (आकर मिलना ) तुम सबों के निकट मैं अपना दुःख सुनाऊँगा" ॥ ७० ॥ यह मैंने परम मङ्गल सम्वाद सुनाया है । इसके भीतर अवश्य ही कोई कारण है ॥ ७१ ॥ श्रीमान के वचन को सुनकर सब भक्त लोग 'हरि बोल' की महा ध्वनि करने लगे ॥ ७२ ॥ उदार श्रीवास जी सबसे पहले ही बोल उठे "श्रीकृष्ण हमारा गोत्र ( स्व जाति ) बढ़ावें" ॥ ७३ ॥ "हम लोगों के गोत्र की वृद्धि हो ।" सब भक्त लोग बड़े आनन्द में परस्पर मे श्रीकृष्ण-चर्चा करने लगे । मधुर कृष्ण-कथा कीर्तन और श्रवण होने लगा ॥ ७४ ॥ भक्त गण—'ऐसा ही होवे' "ऐसा ही होवे" "सभी श्रीकृष्ण चन्द्र के चरणों का भजन करें" कहने लगे ॥ ७५ ॥ इस प्रकार सब भक्त लोग फूल चुन-चुन कर, देव-पूजा करने के लिये अपने अपने घर चले गये ॥ ७६ ॥ इधर श्रीमान पण्डित गंगा तट को, जहाँ शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी की कुटिया थी, चले ॥ ७७ ॥ यह सब बातें सुनकर गदा-

कि आख्यान कृष्णेर कहेन शुनि गिया। थाकिलेन शुक्लाम्बर गृहे लुकाइया ॥७९॥
सदाशिव मुरारि, श्रीमान शुक्लाम्बर। मिलिला सकल जत प्रेम अनुचर ॥८०॥
हेनइ समये विश्वम्भर द्विजराज। आसिया मिलिला जथा वैष्णव समाज ॥८१॥
परम आदरे सभे करेन सम्भाष। प्रभुर नाहिक बाह्‌ज दृष्टिर प्रकाश ॥८२॥
देखिलेन मात्र प्रभु भागवत गण। पढ़िते लागिला श्लोक भक्तिर लक्षण ॥८३॥
पाइलु ईश्वर मोर कोन दिगे गेला। एत बलि स्तम्भ कोले करिया पड़िला ॥८४॥
भाङ्गिल गृहेर स्तम्भ प्रभुर आवेशे। कोथा कृष्ण बलि पड़िलेन मुक्त केशे ॥८५॥
प्रभु पड़िलेन मात्र "हा कृष्ण" बलिया। भक्त सब पड़िलेन ढलिया ढलिया ॥८६॥
गृहेर भितरे मूर्च्छा गेला गदाधर। केबा कान् दिगे पड़े नाहि परापर ॥८७॥
सभेइ हइला प्रेम आनन्दे मूर्च्छित। हासेन जाह्नवी देवी देखिया विस्मित ॥८८॥
कथो क्षणे बाह्‌ज प्रकाशिया विश्वम्भर। कृष्ण बलि कान्दिते लागिला बहुतर ॥८९॥
कृष्णरे प्रभु रे मोर कोन् दिगे गेला। एतबलि प्रभु पुन भूमि ते पड़िला ॥९०॥
कृष्ण प्रेमे कान्दे प्रभु श्री शची नन्दन। चतुर्द्दिगे बेढ़ि कान्दे भागवत गण ॥९१॥
आछाड़ेर समुच्चय नाहिक श्रीअङ्गे। ना जाने ठाकुर किछु निज प्रेम रङ्गे ॥९२॥
उठिल परमानन्द कृष्णेर क्रन्दन। प्रेममय हैल शुक्लाम्बरेर भवन ॥९३॥
स्थिर हइया क्षणेके बसिला विश्वम्भर। तथापि आनन्द धारा बहे निरन्तर ॥९४॥
प्रभु बोले कोन जन गृहेर भितर। ब्रह्मचारी बोलेन "तोमार गदाधर" ॥९५॥

धर प्रभु भी शीघ्रता से शुक्लाम्बर के घर की ओर चल पड़े ॥ ७८ ॥ "श्रीकृष्ण की क्या चरित कहते हैं—जाकर सुनूँ तो" ऐसा विचार कर वे शुक्लाम्बर के घर में जाकर छिप बैठे ॥ ७९ ॥ पश्चात् सदाशिव, मुरारि गुप्त, श्रीमान्, आदि प्रेमी भक्त जन सब आकर शुक्लाम्बर जी से मिले ॥ ८० ॥ ऐसे समय में द्विजराज विश्वम्भर भी वैष्णव-समाज से आ मिले ॥ ८१ ॥ भक्त लोग सब बड़े आदर से उनसे बोलते हैं परन्तु प्रभु की इस समय बाह्य दृष्टि नहीं है ॥ ८२ ॥ भक्तों को देखते ही प्रभु भक्ति-लक्षण सूचक श्लोकों को पढ़ने लगे ॥ ८३ ॥ पश्चात् "जो कृष्ण मुझे मिले थे वे किधर चले गये" कहते हुए एक खम्भा से लिपट कर गिर पड़े ॥ ८४ ॥ प्रभु के आवेश में आकर पकड़ने से घर का खम्भा टूट गया और "कृष्ण कहाँ" कह कर प्रभु गिर पड़े और उनके केश बिखर गये ॥ ८५ ॥ "हा कृष्ण" कहकर प्रभु के गिरते ही भक्त लोग भी सब ढलक पड़े। गदाधर जी तो घर के भीतर मूर्च्छित हो गये। कौन किधर पड़ा है किसी को पता नहीं ॥ ८६–८७ ॥ सभी प्रेमानन्द में मूर्च्छित हो गये। यह देखकर गंगा देवी हँसने लगीं और अचरज मानने लगीं ॥ ८८ ॥ कुछ देर बाद बाह्य ज्ञान होने पर श्री विश्वम्भर देव "कृष्ण कहाँ" कहकर बहुत ही ज्यादा रोने लगे ॥ ८९ ॥ "हे कृष्ण ! हे मेरे प्रभो !" किधर चले गये "ऐसा कहते हुए प्रभु फिर पृथ्वी पर गिर पड़े" ॥ ९० ॥ श्री कृष्ण प्रेम में प्रभु श्रीशचीनन्दन रोते हैं और उनको चारों ओर से घेर कर भक्त लोग रोते हैं ॥ ९१ ॥ प्रभु का शरीर कितने ही बार पछाड़ खा खाकर भूमि पर गिरा परन्तु प्रभु अपने प्रेम के आनन्द में कुछ भी नहीं जानते ॥ ९२ ॥ श्री कृष्ण प्रेम का परमानन्द मय क्रन्दन मच गया और शुक्लाम्बर का घर प्रेममय हो गया ॥ ९३ ॥ कुछ समय पश्चात् श्री विश्वम्भर प्रभु स्थिर होकर बैठे परन्तु फिर भी उनके नेत्रों से आनन्द-धाराएँ बह रही थीं ॥ ९४ ॥ प्रभु बोले—"घर भीतर कौन है ?" ब्रह्मचारी जी ने कहा—"तुम्हारा गदाधर" ॥ ९५ ॥ श्री गदाधर सिर नीचा करके रो रहे हैं—यह देखकर

हेट माथा करिया कान्देन गदाधर। देखिया सन्तोषे प्रभु बोले विश्वम्भर ॥९६॥
प्रभु बोले गदाधर तोमरा सुकृति। शिशु हैते कृष्णेते कीरला दृढ़ मति ॥९७॥
आमार से हेन जन्म गेल वृथा-रसे। पाइलुँ अमूल्य निधि गेल दिन दोषे ॥९८॥
एत बलि भूमि ते पड़िला विश्वम्भर। धूलाय लोटाय सर्व्व सेव्य कलेवर ॥९९॥
पुनः पुन हय बाह्य पुनः पुन पड़े। दैवे रक्षा पाय नाक मुख से आछाड़े ॥१००॥
मेलिते ना पारे दुइ चक्षु प्रेम जले। सबे मात्र 'कृष्ण' 'कृष्ण' श्री बदने बोले ॥१०१॥
धरिया सभार गला कान्दे विश्वम्भर। "कृष्ण कोथा बन्धु सब बोलह सत्वर" ॥१०२॥
प्रभुर देखिया आर्ति कान्दे भक्त-गण। कारो मुखे आर किछु ना स्फुरे वचन ॥१०३॥
प्रभु बोले "मोर दुःख करह खण्डन। आनि देह मोरे नन्द गोपेर नन्दन" ॥१०४॥
एत बलि श्वास छाड़ि पुनः पुन कान्दे। लोटाय भूमिते केश, ताहो नाहि बान्धे ॥१०५॥
एइ सुखे सर्व्व दिन गेल क्षण प्राय। कथञ्चित सभा प्रति हइला विदाय ॥१०६॥
गदाधर सदा शिव श्रीमान् पण्डित। शुक्लाम्बर आदि सभे हइला बिस्मित ॥१०७॥
जे जे देखिलेन प्रेम सभेइ अवाक्य। अपूर्व्व देखिया कारो देहे नाहि बाह्य ॥१०८॥
वैष्णव समाजे सभे आइला हरिषे। आनुपूर्व्वि कहिलेन अशेष विशेषे ॥१०९॥
शुनिञा सकल महा भागवत गण। हरि हरि बलि सभे करेन क्रन्दन ॥११०॥
देखिया अपूर्व्व प्रेम सभेइ विस्मित। केहो बोले ईश्वर वा हइला बिदित ॥१११॥
केहो बोले निमाञि पण्डित भाल हैले। पाषण्डीर मुण्ड छिण्डिबारे पारि हेले ॥११२॥

---

विश्वम्भर प्रभु सन्तुष्ट होकर बोले कि ॥ ९६ ॥ गदाधर तुम बड़े सुकृतिवान् हो जो कि बचपन से ही तुमने श्रीकृष्ण में दृढ़ मति कर रखी है ॥ ९७ ॥ "मेरा जन्म तो ऐसे ही व्यर्थ के सुख भोग में चला गया। एक अमूल्य निधि मिली थी परन्तु दुर्भाग्य के कारण उसे खो बैठा ॥ ९८ ॥ इतना कहकर श्री विश्वम्भर चन्द्र पृथ्वी पर गिर पड़े, और सबकी सेवा की वस्तु उनका वह शरीर धूल में लोटने लगा ॥ ९९ ॥ बार २ चेतते है और बार २ गिर पड़ते हैं। उन पछाड़ों से नाक-मुख दैव कृपा से ही बच जाते हैं ॥ १००॥ प्रेमाश्रु जल से भरे रहने के कारण आप दोनों नेत्र को खोल नहीं सकते, केवल मुख से "कृष्ण २" निरन्तर उच्चारण करते रहते हैं ॥ १०१ ॥ प्रभु विश्वंभर सबका गला पकड़-पकड़ कर रोते हैं और कहते हैं—"बन्धुओ ! शीघ्र बताओ सब, कृष्ण कहाँ है ?" ॥ १०२ ॥ प्रभु की आर्ति देखकर भक्त लोग रोते हैं। किसी के मुख से कोई वाक्य नहीं निकलता ॥ १०३ ॥ प्रभु फिर बोले—"मेरा दुःख दूर करो। नन्द गोप के पुत्र को ला दो मुझे" ॥ १०४ ॥ इतना कहकर लम्बी-लम्बी साँस लेते हैं, बार २ रोते हैं और केश पृथ्वी पर लोट रहे हैं, पर उन्हें बांधते नहीं ॥ १०५ ॥ इस सुख में सारा दिन एक क्षण के समान निकल गया। तब प्रभु जैसे तैसे सबसे विदा हुये ॥ १०६ ॥ श्रीगदाधर, सदाशिव, श्रीमान पण्डित श्री शुक्लाम्बर आदि सब भक्त बृन्द बड़े ही विस्मित हुये । १०७ ॥ प्रभु के इस प्रेम भक्ति को जिस जिसने देखा, वे सभी अवाक् हो गये। इस अपूर्व प्रेम को देखकर किसी को अपनी देह की सुध नहीं रही ॥ १०८॥ सब बड़े प्रसन्न होते हुये वैष्णव-समाज में आये और आकर आगे-पीछे की सब बातें विशेष प्रकार से कह सुनाई ॥ १०९ ॥ सुनकर महा भागवतगण सब "हरि हरि बोल" कहते हुये रोने लगे ॥ ११० ॥ अपूर्व प्रेम की बात सुनकर सभी विस्मित हैं। कोई कहते—"कहीं ईश्वर तो नहीं प्रकट हो गये" ॥ १११ ॥ कोई कहते "निमाइ पण्डित के स्वस्थ होने पर हम पाखण्डियों के सिर सहज में ही तोड़ सकेंगे" ॥ ११२ ॥

केहो बोले हइबेक कृष्णेर रहस्य। सर्व्वथा सन्देह नाहि जानिह अवश्य ॥११३॥
केहो बोले ईश्वर पुरीर सङ्ग हैते। किवा देखिलेन कृष्ण प्रकाश गया ते ॥११४॥
एइ मत आनन्दे सकल भक्त गण। नाना जन नाना मते करेन कथन ॥११५॥
सभे मिलि करिते लागिला आशीर्व्वाद। हउक हउक सत्य कृष्णेर प्रसाद ॥११६॥
आनन्दे लागिला सभे करिते कीर्त्तन। केहो गाय केहो नाचे करये क्रन्दन ॥११७॥
हेन मते भक्त-गण आछेन हरिषे। ठाकुर आविष्ट हइ आछेन भाव-रसे ॥११८॥
कथञ्चित वाह्य प्रकाशिया विश्वम्भर। चलि लेन गङ्गा दास पण्डितेर घर ॥११९॥
गुरुर करिला प्रभु चरण वन्दन। सम्भ्रमे उठिया गुरु कैला आलिङ्गन ॥१२०॥
गुरु बोले "धन्य बाप तोमार जीवन। पितृ कुल मातृ कुल करिले मोचन ॥१२१॥
तोमार पढ़ुया सब तोमार अवधि। पुँथि केहो नाहि मिले ब्रह्मा बोले जदि ॥१२२॥
एखने आइला तुमि सभार प्रकाश। कालि हैते पढ़ाइबा आजि जाह वास ॥१२३॥
गुरु नमस्करिया चलिला विश्वम्भर। चतुर्द्दिके पढ़ुया वेष्टित शशधर ॥१२४॥
आइलेन श्री मुकुन्द सञ्जयेर घरे। आसिया वसिला चण्डी मण्डप भितरे ॥१२५॥
गोष्ठी सह मुकुन्द सञ्जय पुण्यवन्त। जे हइल आनन्द ताहार नाहि अन्त ॥१२६॥
पुरुषोत्तम सञ्जयेरे प्रभु कैला कोले। सिञ्चि लेन अङ्ग तान नयनेर जले ॥१२७॥
जय कार दिते लागि लेन नारीगण। परम आनन्द हैल मुकुन्द भवन ॥१२८॥
शुभ दृष्टि पात प्रभु करि सभा कारे। आइलेन महाप्रभु आपन मन्दिरे ॥१२९॥
वसिला आसिया विष्णु गृहेर दुयारे। प्रीत करि विदाय दिलेन सभा कारे ॥१३०॥

---

कोई कहते, "इसमें श्रीकृष्ण का कोई रहस्य गुप्त है—यह निश्चय जानलो। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥ ११३ ॥ कोई कहते—"ईश्वरपुरी के सङ्ग से यह प्रेम भक्ति इनको प्राप्त हुई है, अथवा तो इनको गया में श्रीकृष्ण के दर्शन हुये हैं" ॥ ११४ ॥ इस प्रकार आनन्द में सब भक्त लोग नाना प्रकार को बातें करने लगे ॥ ११५ ॥ और सब मिल करके आशीर्वाद करने लगे, "श्रीकृष्ण की कृपा सत्य हो" ॥ ११६ ॥ फिर आनन्द से सब कीर्तन करने लगे—"कोई गाते हैं, कोई नाचते हैं तो कोई रोते हैं ॥ ११७ ॥ इस प्रकार सब भक्त लोग बड़े हर्ष में हैं, उधर प्रभु विश्वम्भर भावरस में आविष्ट हैं ॥ ११८ ॥ जब उनको कुछ बाह्य ज्ञान हुआ तो वे गंगादास पण्डित के घर गये ॥ ११९ ॥ (जाकर) प्रभु ने गुरुदेव की चरण वन्दना की। श्रीगुरु ने भी झट से उठकर उनको आलिंगन किया ॥ १२० ॥ और बोले—"वत्स ! तुम्हारा जीवन धन्य है", तुमने अपने पितृकुल और मातृ-कुल का उद्धार कर दिया ॥ १२१ ॥ तुम्हारे विद्यार्थी सब तुम्हारी ही आशा में बैठे हैं। तुम्हारे अतिरिक्त यदि स्वयं ब्रह्मा भी आकर उनसे पढ़ने को कहें तो भी वे पुस्तक नहीं खोलेंगे ॥ १२२ ॥ अब तुम आ गये हो, सब को आनन्द हुआ है। अब कल से पढ़ाना। आज घर जाओ ॥ १२३ ॥ गुरुजी को नमस्कार करके श्री विश्वम्भर चले—छात्रमण्डिली से परिवेष्टित चन्द्रमा की रीति ॥ १२४ ॥ प्रभु के गया से लौट आने से पुन्यवान मुकुन्द संजय को अपने परिवार समेत जो आनन्द हुआ उसकी सीमा नहीं है। प्रभु ने पहले पुरुषोत्तम संजय को हृदय से लगाया और अपने अश्रुजल से उनका सारा शरीर भिगा दिया ॥१२६ ॥१२७॥ सब महिलायें जय जयकार करने लगीं। मुकुन्द संजय के घर में परम आनन्द छा गया ॥ १२८ ॥ महाप्रभु ने सबके प्रति शुभ दृष्टिपात करते हुये अपने घर को चले गये ॥ १२९ ॥ और विष्णुमन्दिर के द्वार पर आकर बैठ गये फिर सबको प्रीतिपूर्वक विदा किया ॥१३०॥

जेइ जन आइसे प्रभुरे सम्भाषिते। प्रभुर चरित्र के हो ना पारे बुझिते ।।१३१।।
पूर्व विद्या-औद्धत्य ना देखे कोन जन। परम विरक्त प्राय थाके सर्व क्षण ।।१३२।।
पुत्रेर चरित्र शची किछुइ ना बुझे। पुत्रेर मङ्गल लागि गङ्गा विष्णु पूजे ।।१३३।।
"स्वामी निला कृष्ण! मोर निला पुत्र गण। अवशिष्ट सकले आछये एक जन ।।१३४।।
अनाथिनी मोरे कृष्ण! एइ देह वर। सुस्थ चित्ते गृहे मोर रहु विश्वम्भर" ।।१३५।।
लक्ष्मी रे आनिञा पुत्र समीपे वसाय। दृष्टि पात करियाओ प्रभु नाहि चाय ।।१३६।।
निरवधि श्लोक पढ़ि करये क्रन्दन। "कोथा कृष्ण" 'कोथा कृष्ण' बोले अनुक्षण ।।१३७।।
कखनो कखनो जेवा हुङ्कार करये। डरे पलायेन लक्ष्मी शची पाय भये ।।१३८।।
रात्रे निद्रा नाहि जान प्रभु कृष्ण रसे। विरहे ना पाय स्वास्थ्य, उठे पड़े वसे ।।१३९।।
भिन्न जन देखिले करेन सम्वरन। ऊषः काले गङ्गा स्नाने करये गमन ।।१४०।।
आइलेन मात्र प्रभु करि गङ्गा स्नान। पढ़ुयार वर्ग आसि हैला उपस्थान ।।१४१।।
कृष्ण बिनु ठाकुरेर ना आइसे वदने। पढ़ुया सकल इहा किछुइ ना जाने ।।१४२।।
अनुरोधे प्रभु वसिलेन पढ़ाइते। पढ़ुया सभार स्थाने प्रकाश करिते ।।१४३।।
हरि वलि पुंथि मेलिलेन शिष्य गण। शुनिञा आनन्द हैला श्री शची नन्दन ।।१४४।
बाह्‌ज नाहि प्रभुर शुनिञा हरि ध्वनि। शुभ दृष्टि सभारे करिला द्विज मणि ।।१४५।।
आविष्ट हइया प्रभु करये व्याख्यान। सूत्र वृत्ति टीकाय सकले हरि नाम ।।१४६।।

---

जो कोई भी प्रभु से मिलने के लिये आता है वह प्रभु के चरित्र को समझ नहीं पाता है ।। १३१ ।। कोई भी उनमें पहले की सी उद्दण्डता नहीं देख पाता है, प्रभु अब तो सब समय परम विरक्त की तरह रहते हैं ।। १३२ ।। श्री शची माता पुत्र के चरित्र को कुछ भी समझ नहीं पाती हैं, वे पुत्र की मङ्गल के लिये गङ्गा और विष्णु भगवान् की पूजा करने लगीं ।। १३३ ।। वे प्रार्थना किया करतीं कि "हे कृष्ण! आपने मेरा स्वामी ले लिया–पुत्र भी ले लिये, अब तो केवल एक ही बच रहा है। हे कृष्ण! मुझ अनाथिनी को तो यही वर दें कि मेरा विश्वम्भर स्वस्थ चित्त से घर में रह आवे ।। १३४ ।। १३५ ।। वे कभी श्री विष्णु प्रिया जी को लाकर पुत्र के पास बैठातीं परन्तु प्रभु उनकी ओर दृष्टि उठा करके भी नहीं देखते, ।। १३६।। बस निरन्तर श्लोक बोलते हुए रोते रहते और क्षण २ में यही कहते कि "कृष्ण कहाँ हैं" "कहाँ हैं कृष्ण ।। १३७ ।। कभी २ आप जो हुँकार छोड़ते तो डर के मारे विष्णु प्रिया जी उठ भागतीं और माता भय-भीत हो उठतीं ।। १३८ ।। प्रभु कृष्ण रस में लीन रात्रि में सोते भी नहीं, विरह के मारे अस्थिर रहते उठते, गिर पड़ते, बैठ जाते हैं ।। १३९ ।। प्रभु बाहर वालों को देखने पर अपने भाव को दबा लेते है। उषा काल होते ही गङ्गा–स्नान को चले जाते हैं ।। १४० ।। गङ्गा स्नान करके आते ही विद्यार्थियों की टोली आ जाती है ।। १४१ ।। ( परन्तु ) प्रभु के मुख पर "कृष्ण" नाम छोड़ और कुछ आता ही नहीं—विद्यार्थी लोग यह कुछ भी समझ न पाते ।। १४२ ।। विद्यार्थियों के अनुरोध पर प्रभु पढ़ाने बैठे ( पढ़ाने क्या बैठे ) विद्यार्थियों के निकट अपना प्रकाश करने बैठे। १४३ ।। "हरि बोल" कहकर शिष्यों ने पुस्तकें खोलीं। हरि ध्वनि सुनकर प्रभु को बड़ा आनन्द हुआ ।। १४४ ।। हरि ध्वनि सुनकर प्रभु का बाह्य ज्ञान जाता रहा और द्विज मणि प्रभु ने सबके ऊपर एक शुभ दृष्टि डाली ।। १४५ ।। और आवेश में आकर व्याख्या करने लगे, सूत्र, वृत्ति, टीका में सर्वत्र 'हरि' नाम ही सिद्ध करने लगे ।। १४६ ।। प्रभु बोले कि—"एक कृष्ण" नाम ही सब काल में सत्य है। समस्त शास्त्र एक कृष्ण को छोड़ और कुछ नहीं कहते हैं

प्रभु बोले सर्व्व काल सत्य कृष्ण नाम। सर्व्व शास्त्रे कृष्ण बइ ना बोलये आन ।।१४७।।
कर्त्ता हर्त्ता पालयिता कृष्ण से ईश्वर। अज भव आदि जत कृष्णेर किङ्कर ।।१४८।।
कृष्णेर चरण छाड़ि जे आर बाखाने। व्यर्थ जन्म जाय तार असत्य बचने ।।१४९।।
आगम वेदान्त आदि जत दरशन। सर्व्व शास्त्रे कहे कृष्ण-पदे भक्ति-धन। १५०।।
मुग्ध सब अध्यापक कृष्णेर मायाय। छाड़िया कृष्णेर भक्ति अन्य पथे जाय ।।१५१।।
करुणा सागर कृष्ण जगत जीवन। सेवक वत्सल नन्द गोपेर नन्दन। १५२।।
हेन कृष्ण नामे जार नाहि रति मति। पढ़ियाओ सर्व्व शास्त्र ताहार दुर्गति ।।१५३।
दरिद्र अधम जदि लय कृष्ण नाम। सर्व्व दोष थाकिलेओ जाइ कृष्ण-धाम ।।१५४।।
एइ मत सकल शास्त्रेर अभिप्राय। इहाते सन्देह जार सेइ दुःख पाय। १५५।।
कृष्णेर भजन छाड़ि जे शास्त्र वाखाने। से अधम कभू शास्त्र-मर्म्म नाहि जाने ।।१५६।।
शास्त्रेर ना जाने मर्म्म अध्यापना करे। गर्द्दभेर प्राय मात्र शास्त्र वहि मरे ।।१५७।।
पढ़िया शुनिञा लोक गेल छार खारे। कृष्ण महा महोत्सव बञ्चित ताहारे ।।१५८।।
पूतना रे जे प्रभु करिला मुक्ति दान। हेन कृष्ण छाड़ि लोक करे अन्य ध्यान ।।१५९।।
अघासुर हेन पापी जे कैल मोचन। कोन सुखे छाड़े लोक ताहार कीर्त्तन ।।१६०।।
जे कृष्णेर नामे हय जगत पवित्र। ना बोले दुःखित जीव ताहार चरित्र ।।१६१।।
जे कृष्णेर महोत्सवे ब्रह्मादि विह्वल। ताहा छाड़ि नृत्य गीत करये मङ्गल ।।१६२।।
अजामिल उद्धारिल जे कृष्णेर नामे। धन-कुल-विद्या मदे ताहा नाहि जाने ।।१६३।।

।। १४७ ।। "वे कृष्ण ही ईश्वर हैं, सबके कर्ता, हर्ता एवं पालक हैं। ब्रह्मा, शिव आदि सब श्रीकृष्ण के किंकर हैं ।। १४८ ।। जो व्यक्ति श्रीकृष्ण चरण के अतिरिक्त और कुछ बखानता है, उस असत्य वचन से उसका जन्म व्यर्थ चला जाता है ।। १४९ ।। "आगम ( तन्त्र ), वेदान्त आदि सब दर्शन शास्त्र श्री कृष्ण-चरण में भक्ति धन को ही प्रतिपादन करते हैं ।। १५० ।। अतएव जो कृष्ण की भक्ति छोड़कर अन्य पथ में चल रहे हैं वे सब अध्यापक गण श्री कृष्ण की माया से मोहित हैं ।। १५१ ।। "नन्द-नन्दन श्री कृष्ण करुणा-सागर हैं जगत् के जीवन हैं और भक्त वत्सल हैं ।। १५२ ।। ऐसे श्री कृष्ण के नाम में जिसकी रति-मति नहीं है, वह सब शास्त्र पढ़ करके भी दुर्गति को ही प्राप्त होता है ।। १५३ ।। परन्तु दरिद्र और अधम भी यदि 'कृष्ण' नाम लेवें तो उसमें सब दोष होने पर भी वह श्रीकृष्ण के धाम को जाता है ।। १५४ ।। यही सब शास्त्रों का अभिप्राय है ।। इसमें जिसे सन्देह है वही दुःख पाता है ।। १५५ ।। "जो शास्त्र की व्याख्या श्रीकृष्ण-भजन के अतिरिक्त कुछ और करता है वह अधम कभी भी शास्त्र के मर्म को नहीं जानता है ।। १५६ ।। और बिना मर्म जाने जो शास्त्र पढ़ाता है वह गदहा की तरह शास्त्र का बोझा ढोता हुआ मरता है ।। १५७ ।। "लोग पढ़-लिख करके भी नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं। वे श्रीकृष्ण महा महोत्सव से वंचित हैं ।। १५८ ।। जिस प्रभु ने पूतना को भी मुक्ति दे दी ऐसे श्रीकृष्ण को छोड़कर लोग दूसरे का ध्यान करते हैं ।। १५९ ।। "जिन श्रीकृष्ण ने अघासुर जैसे पापी का भी उद्धार कर दिया, उनका कीर्तन फिर लोग, किस सुख के लिये छोड़ देते हैं ।। १६० ।। जिन श्रीकृष्ण के नाम से ही जगत् पवित्र हो जाता है, वे जीव दुःखी होते हुए भी उनका नाम नहीं लेते ।। १६१ ।। "जिन श्रीकृष्ण के महोत्सव में ब्रह्मा आदि देवगण भी विह्वल हो जाते हैं, लोग उसे छोड़कर और नाच-गान में मङ्गल समझते हैं ।। १६२ ।। जिन श्री कृष्ण के नाम से अजामिल का उद्धार हो गया, लोग धन, कुल और विद्या के मद में उस नाम को ही नहीं

शुन भाइ सब सत्य आमार वचन। भजह अमूल्य कृष्ण पाद-पद्म-धन ॥१६४॥
जे चरण सेविते लक्ष्मीर अभिलाष। जे चरण सेविया शङ्कर शुद्ध दास ॥१६५॥
जे चरण हइते जाह्नवी परकाश। हेन पाद पद्मे भाइ सभे हओ दास ॥१६६॥
देखि कार शक्ति आछे एइ नवद्वीपे। खण्डुक आमार व्याख्या आमार समीपे ॥१६७॥
परं ब्रह्म विश्वम्भर शब्द मूर्त्ति मय। जे शब्दे जे वाखानेन सेइ सत्य हय ॥१६८॥
मोहित पढ़ुया सब शुने एक मने। प्रभुओ विह्वल हैया सत्य से वाखाने ॥१६९॥
सहजेइ शब्द मात्रे कृष्ण-सत्य कहे। ईश्वर जे वाखानिव किछु चित्र नहे ॥१७०॥
क्षणेके हइला बाह्ज दृष्टि विश्वम्भर। लज्जित हइया किछु कहये उत्तर। १७१॥
"आजि आमि कोन रूप सूत्र वाखानिल"। पढ़ुया सकल बोले "किछु ना बुझिल ॥१७२॥
जत किछु शब्दे वाखानह कृष्ण मात्र। बुझिते तोमार व्याख्या केवा आछे पात्र ॥१७३॥
हासि बोले विश्वम्भर शुन सब भाइ। पुँथि बान्ध आजि चल गङ्गा स्नाने जाइ ॥१७४॥
वान्धिला पुस्तक सभे प्रभुर वचने। गङ्गा-स्नाने चलिलेन विश्वम्भर सने ॥१७५॥
गङ्गा-जले केलि करे प्रभु विश्वम्भर। समुद्रेर माझे जेन पूर्ण शशधर ॥१७६॥
गङ्गा जले केलि करे विश्वम्भर राय। परम सुकृति सब देखे नदियाय ॥१७७॥
ब्रह्मादिर अभिलाष जे रूप देखिते। हेन प्रभु विप्र रूपे खेले जलेते ॥१७८॥
गङ्गा घाटे स्नान करे जत सब जन। सभेइ चाहेन गौर चन्द्रेर बदन ॥१७९॥

---

जानते ॥ १६३ ॥ "हे भाइयो ! सुनो सब मेरे सत्य वचन को—श्रीकृष्ण के अमूल्य चरण-कमल-धन को भजो ॥ १६४ ॥ जिन श्री चरणों की सेवा के लिये लक्ष्मी जी नित्य अभिलाषा करती हैं, और जिन श्री चरणों का सेवन करके शिव जी शुद्ध दास हुए ॥ १६५ ॥ "जिन श्री चरणों से गङ्गाजी प्रकट हुई हैं, हे भाइयो ! उन चरण कमलों के सब दास बनो ॥ १६६ ॥ देखूँ इस नवद्वीप में किसकी शक्ति है जो मेरी इस व्याख्या को मेरे सन्मुख खण्डन तो करे" ॥ १६७ ॥ श्री विश्वम्भर चन्द्र परंब्रह्म है, सब शब्दों के परमाश्रय हैं। वे जिस शब्द की जो भी व्याख्या करते हैं, वही सत्य होती है ॥ १६८ ॥ विद्यार्थी वृन्द मोहित हुए एक मन से सुन रहे हैं और प्रभु भी प्रेम में विह्वल होकर सत्य का बखान कर रहे हैं ॥१६९॥ सहज में ही प्रत्येक शब्द परम सत्य श्री कृष्ण को ही बताते हैं। अतएव प्रभु ने जो ऐसी व्याख्या की तो कोई आश्चर्य नहीं ॥ १७० ॥ कुछ देर में श्री विश्वम्भर को बाह्य ज्ञान हो आया और तब वे लज्जित होकर विद्यार्थियों से कुछ कहने लगे ॥ १७१ ॥ वे बोले—"आज मैंने सूत्रों की कैसी व्याख्या की ? विद्यार्थी सब बोले—"हम तो कुछ नहीं समझे ॥ १७२॥ आपने तो एक २ शब्द में कृष्ण ही कृष्ण का बखान किया। आपकी इस व्याख्या को समझने वाला यहाँ कौन पात्र है भला ?" ॥ १७३ ॥ तब विश्वम्भर प्रभु हँसकर बोले—"भाइयो ! सुनो सब। पोथी बाँध लो आज, और चलो गङ्गा-स्नान को चलें" ॥ १७४ ॥ प्रभु के वचन के अनुसार सब ने पुस्तकें बाँध लीं और श्री विश्वम्भर के साथ गङ्गा स्नान को चल पड़े ॥ १७५ ॥ प्रभु विश्वम्भर गङ्गा-जल में ऐसे क्रीड़ा कर रहे हैं जैसे समुद्र के बीच पूर्ण चन्द्रमा क्रीड़ा करता है ॥१७६॥ श्री विश्वम्भर राय गङ्गा-जल में विहार कर रहे हैं और नदिया के परम सुकृति शाली जन सब देख रहे हैं ॥ १७७ ॥ ब्रह्मा आदि भी जिस रूप के दर्शन की अभिलाषा करते हैं, ऐसे प्रभु विप्र रूप से जल में विहार कर रहे हैं ॥ १७८ ॥ गङ्गा के घाट पर जितने लोग स्नान कर रहे हैं, वे सब श्री गौरचन्द्र के मुख की ओर देख रहे हैं ॥ १७९ ॥ सब लोग परस्पर में कहते हैं "उन माता-पिता को धन्य है कि जिनके ऐसे

धन्योऽन्ये सर्व्वे जने कहये वचन। धन्य माता पिता जार एहेन नन्दन ॥१८०॥
गङ्गार बाढ़िल प्रभु परशे उल्लास। आनन्दे करये देवी तरङ्ग प्रकाश ॥१८१॥
तरङ्गेर छले नृत्य करये जाह्नवी। अनन्त ब्रह्माण्ड जार पद जुग सेवी ॥१८२॥
चतुर्दिके प्रभु रे बेढ़िया बह्न-सुता। तरङ्गेर छले जल देय अलक्षिता ॥१८३॥
वेदे मात्र ए सब लीलार मर्म्म जाने। किछु शेषे व्यक्त हबे सकल पुराणे ॥१८४॥
स्नान करि गृहे आइलेन विश्वम्भर। चलिला पढ़ुया वर्ग जथा जार घर ॥१८५॥
वस्त्र परिवर्त करि धुइला चरण। तुलसी रे जल दिया करिला सेचन ॥१८६॥
यथा विधि करि प्रभु गोविन्द पूजन। आसिया वसिला गृहे करिते भोजन ॥१८७॥
तुलसीर मञ्जरी सहित दिव्य अन्न। माये आनि सन्मुखे करिला उपसन्न ॥१८८॥
विश्ववसेनेरे प्रभु करि निवेदन। अनन्त ब्रह्माण्ड नाथ करेन भोजन ॥१८९॥
सन्मुखे वसिला शची जगतेर माता। ग्रहेर भितरे देखे लक्ष्मी पतिव्रता ॥१९०॥
माये बोले "आजि बाप! कि पुँथि पढ़िला। काहार सहित किवा कन्दल करिला ॥१९१॥
प्रभु बोले "आजि पढ़िलाङ कृष्ण नाम। सत्य कृष्ण-चरण-कमल गुण-धाम ॥१९२॥
सत्य कृष्ण-नाम-गुण-श्रवण-कीर्तन। सत्य कृष्ण चन्द्रेर सेवक जे जे जन ॥१९३॥
से-इ शास्त्र सत्य कृष्ण-भक्ति कहे जाय। अन्यथा हइले शास्त्र पाषण्डत्वपाय ॥१९४॥
यस्मिन् शास्त्रे पुराणे वा हरि भक्तिर्न दृश्यते। श्रोतव्यं नैव तच्छास्त्रं यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत् ॥१९५॥
चण्डाल चण्डाल नहे-जदि कृष्ण बोले। विप्र नहे विप्र जदि असत्पथे चले ॥१९६॥

---

यह पुत्र है" ॥ १८० ॥ प्रभु के स्पर्श से गङ्गा देवी उल्लास को प्राप्त हुई और आनन्द में तरंगों को प्रकट करने लगीं ॥ १८१ ॥ अनन्त ब्रह्माण्ड जिनके चरण युगल की सेवा करते हैं वह गङ्गा देवी तरङ्गों के बहाने से नृत्य कर रही हैं ॥ १८२ ॥ प्रभु को चारों ओर से घेर कर तरंगों के मिष से गङ्गा देवी अलक्षित रूप से प्रभु पर जल उछाल रही हैं ॥ १८३ ॥ एक वेद ही इस लीला का मर्म जानते हैं, कालान्तर में सब पुराणों में भी ये प्रकाशित होंगी ॥ १८४ ॥ प्रभु विश्वम्भर स्नान करके घर आये और विद्यार्थी गण अपने २ घर को गये ॥ १८५ ॥ घर आकर प्रभु ने वस्त्र बदल कर चरण धोये, फिर तुलसी जी पर जल चढ़ाया ॥ १८६ ॥ तब यथा विधि-श्री गोविन्द-पूजन करके दूसरे कमरे में भोजन के लिये जा बैठे ॥ १८७ ॥ माता जी ने तुलसी मंजरी पड़ा हुआ सुन्दर भात प्रभु के सन्मुख लाकर रक्खा ॥ १८८ ॥ विश्वक्सेन् भगवान् को निवेदन करके अनन्त ब्रह्माण्डों के नाथ विश्वम्भर प्रभु भोजन करने लगे ॥ १८९ ॥ जगन्माता शची देवी सामने बैठीं और घर भीतर से पतिव्रता श्री विष्णु प्रिया जी देखने लगीं ॥ १९० ॥ माता जी बोलीं-"लाल! आज तुमने क्या पढ़ा? और किस किस के साथ कलह मचाया?" ॥ १९१ ॥ प्रभु बोले-"आज मैंने कृष्ण नाम पढ़ा। गुण धाम श्रीकृष्ण-चरण-कमल ही सत्य है ॥ १९२ ॥ श्रीकृष्ण नाम सत्य है, श्रीकृष्ण-गुण सत्य है, श्रीकृष्ण-श्रवण-कीर्तन सत्य है, और सत्य हैं श्रीकृष्ण के सब सेवक वृन्द ॥१९३॥ "और शास्त्र वही सत्य है जो श्री कृष्ण भक्ति का वर्णन करे। अन्यथा होने पर वह शास्त्र पाखण्ड ही है ॥ १९४ ॥ जैसा कि जैमिनी महाभारत में अश्वमेध पर्व में लिखा है कि-' जिस शास्त्र एवं पुराण में हरि-भक्ति न दिखाई दे, उस शास्त्र को न सुने चाहे, ब्रह्मा ही उसे क्यों न कहें ॥ १९५ ॥ "चाण्डाल यदि कृष्ण नाम कहे तो वह चाण्डाल नहीं है। और विप्र भी यदि असत्पथ पर चले तो वह विप्र नहीं है ॥१९६ ॥ प्रभु ने जैसे कपिल देव के रूप में माता देवहूति को जो कहा था, वही यहाँ शची माता से भी कह रहे हैं

कपिलेर भावे प्रभु जननीर स्थाने । जे कहिल ताइ प्रभु कहये ए खाने ।।१९७।।
शुन शुन माता कृष्ण-भक्तिर प्रभाव । सर्व्व भावे कर माता कृष्णे अनुराग ।।१९८।।
कृष्णेर सेवक माता कभु नहे नाश । काल चक्र डरायेन देखि कृष्ण-दास ।।१९९।।
गर्भ वासे जत दुःख जन्मे वा मरणे । कृष्णेर सेवक माता किछुइ ना जाने ।।२००।।
जगतेर पिता कृष्ण, जे ना भजे बाप । पितृ-द्रोही पातकीर जन्मे जन्मे ताप ।।२०१।।
चित्त दिया शुन माता जीवेर जे गति । कृष्ण ना भजिले पाय जतेक दुर्गति ।।२०२।।
मरिया मरिया पुन पाय गर्भ वास । सर्व्व अङ्गे अमेध्य पङ्केर परकाश ।।२०३।।
कटु अम्ल लवण जननी जत खाय । अङ्गे गिया लागे ताते महा मोह पाय ।।२०४।।
माँस मय अङ्ग कृमि कुले वेढ़ि खाय । घुचाइते नाहि शक्ति मरये ज्वालाय ।।२०५।।
नड़िते ना पारे तप्त-पञ्जरेर माझे । तवे प्राण रहे भवितव्यतार काजे ।।२०६।।
कोन अति पातकीर जन्म नाहि हय । गर्भे गर्भे हय पुन उत्पत्ति प्रलय ।।२०७।।
शुन शुन माता जीव-तत्त्वेर संस्थान । सात मासे जीवेर गर्भेते हय ज्ञान ।।२०८।।
तखने से स्मङरिया करे अनुताप । स्तुति करे कृष्णेरे छाड़िया घनश्वास ।।२०९।।
रक्ष कृष्ण जगत्-जीवन प्राण नाथ । तोमा वह जीव दुःख निवेदिब कात ।।२१०।।
जे करये बन्दी प्रभु छाड़ाये से-इ से । सहज मृतेरे प्रभु, माया कर किसे ।।२११।।
मिथ्या धन पुत्र रसे वञ्चिलु जनम । ना भजिलु तोर दुइ अमूल्य चरण ।।२१२।।

।। १९७ ।। "माता जी ! चित्त लगाकर श्री कृष्ण-भक्ति का प्रभाव सुनो । मा ! सर्व भाव से श्री कृष्ण में अनुराग करो ।। १९८ ।। मा ! श्री कृष्ण के सेवक का कभी नाश नहीं है । श्रीकृष्ण दास को देखकर काल-चक्र भी डराता है ।। १९९ ।। "गर्भवास में, जन्म और मरण काल में, जीव को जितना भी दुःख होता है, मा ! श्री कृष्ण सेवक को वे कुछ नहीं होते हैं ।। २०० ।। श्री कृष्ण जगत् के पिता हैं । जो पिता को नहीं भजता है, उस पितृ द्रोही पातकी को जन्म जन्मान्तर तक दुःख भोगना पड़ता है ।। २०१ ।। "हे माता ! जीव के जो परम गति श्री कृष्ण हैं, उनका भजन न करने से जो जो दुर्गति होती है, वह सब चित्त देकर सुनो । २०२ ।। वह जीव मर-मर कर बारम्बार गर्भवास पाता है । उस समय उसके सारे शरीर में अपवित्र मल लिपटा रहता है ।। २०३ ।। "माता जो भी कडुवा, खट्टा, नमकीन वस्तु खाती है उसका रस जा जाकर उसके शरीर में लगता है जिससे वह बड़ा कष्ट पाता है ।। २०४ ।। उसके माँसमय शरीर को छोटे छोटे कीड़ों के दल घेर-घेर कर खाते हैं उन्हें हटाने की शक्ति उसमें नहीं होती, इससे दंशन की दाह में वह जला करता है ।। २०५ ।। "गर्भ पींजरे ( गर्भाशय ) के भीतर पड़ा हुआ वह हिल डुल भी नहीं सकता है । फिर भी जो उसके प्राण बचे रहते हैं, वह केवल प्रारब्ध भोग के लिए ।। २०६ ।। किसी-किसी पापी का तो जन्म भी नहीं हो पाता । उसके जन्म-मरण दोनों गर्भ में ही बार-बार होते रहते हैं ।।२०७।। "हे माता ! जीव-तत्त्व की ( गर्भ में स्थिति को ) चित्त देकर सुनो । गर्भ में जीव को सातवें महीने में ज्ञान होता है ।। २०८ ।। उस समय वह अपने पूर्व जन्म के कर्मों का स्मरण कर करके पश्चाताप करता है और लम्बी-लम्बी साँसे लेता हुआ श्रीकृष्ण की स्तुति करता है ।। २०९ । "हे कृष्ण ! हे जगज्जीवन ! हे प्राण नाथ ! रक्षा करो । यह जीव तुमको छोड़ और किसे अपना दुःख कहे ।। २१०।। हे प्रभो ! जो कैद करता है वही छुड़ाता भी है । प्रभो ! जो आप ही मरा हुआ है, उस पर माया क्यों चलाते हो ।। २११ ।। "मैंने धन-पुत्रादि के मिथ्या सुख भोग में जन्म गँवा दिया । तुम्हारे अमूल्य चरण युगल को भजा नहीं ।। २१२।।

जे पुत्र पोषण कैलूँ अशेष विधर्म्मे। कोथा वा से-सब गेल मोर एइ कर्मे ।।२१३।।
एखन ए दुःखे मोरे के करिबे पार। तुमि से एखन बन्धु करह उद्धार ।।२१४।।
एतेके जानिलुँ सत्य तोमार चरण। रक्ष प्रभु कृष्ण तोर लइलु शरण ।।२१५।।
तुमि हेन कल्पतरु ठाकुर छाड़िया। भूलिलाङ असत्पथे प्रमत्त हइया ।।२१६।।
उचित ताहार एइ शास्ति जोग्य हय। करिला 'त' एबे कृपा कर महाशय ।।२१७।।
एइ कृपा आर जेन तोमा ना पासारि। जे खाने से खाने केने ना जन्मि ना मरि ।।२१८।।
जे खाने तोमार नाञ्चि जशेर प्रचार। जथा नाहि वैश्णव गणेर अवतार ।।२१९।।
जे खाने तोमार महा महोत्सव नात्रि। इन्द्रलोक हइलेओ ताहा नाहि चाइ ।।२२०।।
न यत्र वैकुण्ठ कथा सुधापगा, न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः।
न यत्र यज्ञेश मखा महोत्सवाः, सुरेश लोकोऽपि न वै ससेव्यताम् ।।२२१।।
गर्भवास दुःख प्रभु एहो मोर भाल। जदि तोर स्मृति मोर रहे सर्व्वकाल ।।२२२।।
तोर पाद पद्मेर स्मरण नाहि जथा। हेन कृपा कर प्रभु ना फेलिबा तथा ।।२२३।।
एइ मत दुःख प्रभु कोटि कोटि जन्म। पाइलुँ विस्तर प्रभु सब मोर कर्म्म ।।२२४।
से दुःख विपद प्रभु रहु बारे बार। जदि तोर स्मृति थाके सर्व्व-वेद-सार ।।२२५।।
हेन कर कृष्ण एबे दास्य-जोग दिया। चरणे राखह दासी नन्दन करिया ।।२२६।।
बारेक करह जदि ए दुःखेर पार। तोमा बइ तबे प्रभु ना गाइमुँ आर ।।२२७।।

जिन पुत्रादि को मैंने अनेकानेक अधर्म कर करके पाला पोषा था, मेरे उन कर्मों के फल स्वरूप, वे सब न जाने कहाँ चले गये।। २१३ ।। "अब इस दुःख से मुझे कौन छुड़ाए ?-इस समय तो तुम ही मेरे भाई-बन्धु हो, मेरा उद्धार करो।। २१४ ।। अब मालूम हुआ कि सत्य तो एक तुम्हारे ही श्री चरण हैं हे प्रभो ! हे कृष्ण ! रक्षा करो ! मैंने तुम्हारी की शरण ली है ।। २१५ ।। "तुम जैसे कल्पतरु प्रभु को छोड़ मैं प्रमत्त होकर असत् पथ में भूला रहा ।। २१६ ।। उसका यह दण्ड उचित ही है। पर दण्ड दे चुके। अब तो हे महाशय ! कृपा करो ।। २१७ ।। "कृपा यह करें कि मैं तुमको कभी न भूलूँ—चाहे कहीं जन्मूँ और कहीं मरूँ ।। २१८ ।। हे प्रभो ! जिस स्थान पर तुम्हारे यश का प्रचार न हो, और जहाँ वैष्णव जन न हों ।। २१९ ।। "जहाँ पर तुम्हारे महा महोत्सव होते न हों, वह स्थान चाहे इन्द्रलोक ही क्यों न हो, वह मुझे नहीं चाहिये" ।। २२० ।। जैसा कि श्रीमद्भागवत के पाँचवें स्कन्ध में उन्नीसवें अध्याय के चौवीसवें श्लोक में कहा है कि—"जहाँ पर वैकुण्ठ भगवान् की कथा-सुधा-सरिता बहती न हो, और जहाँ पर उस कथामृत के आश्रित भक्त साधुजन न हों, और जहाँ पर यज्ञेश्वर भगवान् के यज्ञ, महोत्सवादि न होते हों, वह स्थान इन्द्रलोक होने पर भी निवास के योग्य नहीं है ।। २२१ ।। "हे प्रभो ! यदि तुम्हारी स्मृति निरन्तर बनी रहे तो यह गर्भ-वास का दुःख भी मेरे लिए अच्छा है ।। २२२ ।। हे प्रभो ! अब तो ऐसी कृपा करो कि जहाँ पर तुम्हारे चरण-कमलों का स्मरण न रहे, वहाँ मुझे मत फेंक देना ।। २२३।। "हे प्रभो ! इस प्रकार के अनेकानेक दुःख मैंने करोड़ों जन्मों में पाया—वे सब मेरे कर्मों के ही फल थे ।। २२४ ।। हे प्रभो ! वे सब दुःख और विपत्तियाँ भले ही बार-बार पड़ें, यदि तुम्हारी स्मृति बनी रहे तो यह स्मृति ही समस्त वेदों का सार है ।। २२५ ।। "हे कृष्ण ! अब तो ऐसा करो कि मुझे अपनी कोई दासी का पुत्र बना कर, दास भाव देकर अपने चरणों के समीप रख लो ।। २२६ ।। एक बार यदि इस दुःख से मुझे छुड़ा दें तो फिर तुमको छोड़ मैं और किसी को नहीं गाऊँगा" ।। २२७ ।। इस प्रकार वह गर्भ में निरन्तर जलता तड़फता रहता है

एइ मत गर्भवासे पोड़े अनुक्षण। ताहो भाल वासे कृष्ण-स्मृतिर कारण ।।२२८।।
स्तवैर प्रभावे गर्भ दुःख नाहि पाय। काले पड़े भूमि ते आपन अनिच्छाय ।।२२९।।
शुनि शुनि माता जीव तत्त्वेर संस्थान। भूमि ते पड़िले मात्र हय अगेयान ।।२३०।।
मूर्च्छा गत हय क्षणे क्षणे वहे श्वासे। कहि ते ना पारे दुःख सागरेते भासे ।।२३१।।
कृष्णेर सेवक जीव कृष्णेर मायाय। कृष्ण ना भजिले एइ मत दुःख पाय ।।२३२।।
कथो दिने काल वशे हय बुद्धि-ज्ञान।।इथे जे भजये कृष्ण से-इ भाग्यवान् ।।२३३।।
अन्यथा ना भजे कृष्ण दुष्ट सङ्ग करे। पुन सेइ मत गर्भ वासे डूबि मरे ।।२३४।।
यद्य सद्भिः पथि पुनः शिश्नोदर कृतोद्यमैः। आस्थितो रमते जन्तुस्तमो, विशति पूर्ववत् ।।२३५।।
अनायासेन मरणं बिना दैन्येन जीवनम्। अनाराधित गोविन्द चरणस्य कथं भवेत् ।।२३६।।
अनायासे मरण जीवन दुःख बिने। कृष्ण भजिले से हय कृष्णेर स्मरणे ।।२३७।
एतेके भजह कृष्ण साधु-सङ्ग करि। मने चिन्त कृष्ण माता मुखे बोल हरि ।।२३८।।
भक्ति हीन-कर्मे कोन फल नाहि पाय। सेइ कर्म भक्ति हीन—पर हिंसा जाय ।।२३९।।
कपिलेर भावे प्रभु मायेरे सिखाय। शुनि सेइ वाक्य शची आनन्दे मिलाय ।।२४०।।
कि भोजने, कि शयने, कि वा जागरणे। कृष्ण बिनु प्रभु आर किछु ना बाखाने ।।२४१।।
आप्त मुखे ए कथा शुनिञा भक्तगण। सर्व्व गणे वितर्क भावेन मने मन ।।२४२।।
किवा कृष्ण-प्रकाश हइला से शरीरे। किवा साधु सङ्ग, किवा पूर्वेर संस्कारे ।।२४३।।

---

परन्तु श्रीकृष्ण की स्मृति के कारण इस अवस्था को भी वह अच्छा समझता है ।। २२८ ।। और प्रभु की स्तुति के प्रभाव से गर्भ का दुःख अनुभव नहीं करता है। समय होने पर, वह भूमि पर, इच्छा न होते हुए भी, गिर पड़ता है ।। २२९ ।। हे माता ! ध्यान देकर जीव तत्त्व की स्थिति की बात सुनो। भूमि पर गिरते ही वह अचेत हो जाता है ।। २३० ।। मूर्च्छा भंग होने पर वह लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगता है। वह दुःख सागर में अपने को पड़ा हुआ पाता है पर अपना दुःख कह नहीं सकता ।। २३१ ।। हे माता ! श्री कृष्ण का सेवक जीव श्रीकृष्ण की माया में पड़ श्रीकृष्ण का भजन नहीं करता इसी से ऐसा दुःख पाता है ।। २३२ ।। कुछ दिन बाद समय आने पर उसे ज्ञान-बुद्धि हो आती है। तब जो कृष्ण का भजन करने लगे वही भाग्यशाली है ।। २३३ ।। और जो श्रीकृष्ण को न भज कर दुष्ट संग करे तो फिर उसी प्रकार गर्भवास में डूबकर मरता है ।। २३४ ।। जैसा कि श्रीमद्भागवत् में कहा है कि—"जीव सन्मार्ग को पाकर के भी यदि शिश्नोदर-प्रिय असत् जनों का संग करता है तो वह पूर्ववत् पुनः नरक में जा पड़ता है" ( भा० ३—३१—३२ ) ।। २३५ ।। "श्री गोविन्द-चरण-आराधना न करने वाले का अनायास मरण और सुखी जीवन कैसे हो सकता है" ।। २३६ ।। अनायास-मरण और दुःख रहित जीवन तो श्रीकृष्ण-भजन-स्मरण से ही होता है ।। २३७ ।। अतएव हे माता ! साधु-संग करते हुए श्रीकृष्ण का भजन करो, मन में श्रीकृष्ण का चिन्तन करो और मुख से हरि बोलो ।। २३८ ।। "मा ! भक्ति हीन कर्म से कोई फल नहीं मिलता। भक्तिहीन कर्म वही है जिसमें औरों की हिंसा हो" ।। २३९ ।। इस प्रकार प्रभु कपिल देव के भाव में माता को शिक्षा दे रहे हैं। माता भी उन वाक्यों को सुनकर आनन्द मग्न हो रही है ।। २४० ।। अब तो प्रभु क्या भोजन के समय, क्या शयन के समय, क्या जागृत—अवस्था में, सब समय श्रीकृष्ण को छोड़ और कुछ नहीं कहते ।। २४१ ।। यह बात आत्मीय जनों के मुख से भक्त लोगों ने भी सुनी और सुनकर वे सब मन में सोच विचार करने लगे कि ।। २४२ ।। क्या निमाई के शरीर में श्री कृष्ण का प्रकाश हुआ है ? अथवा क्या यह

एइ मत सभे मने करेन विचार । सुख मय चित्त वृत्ति हइल सभार ॥२४४॥
खण्डित भक्तेर दुःख पाषण्डिर नाश । महा प्रभु विश्वम्भर हइला प्रकाश ॥२४५॥
वैष्णव आवेशे महा प्रभु विश्वम्भर । कृष्ण मय जगत देखये निरन्तर ॥२४६॥
अहर्निश श्रवणे सुनये कृष्ण-नाम । वदने बोलये कृष्ण चन्द्र अविराम ॥२४७॥
जे प्रभु आछिला भोला महा विद्या रसे । एवे कृष्ण विनु आर किछु नाहि वासे ॥२४८॥
पढ़ुयार वर्ग सब अति ऊषः काले । पढ़िवार निमित्त आसिया सभे मिले ॥२४९॥
पढ़ाइते वैसे गिया त्रि जगत्-राय । कृष्ण बिनु किछु आर ना आइसे जिह्वाय ॥२५०॥
"सिद्ध वर्ण समाम्नाय" बोले शिष्य गण । प्रभु बोले "सर्व-वर्णे सिद्ध नारायण ॥२५१॥
शिष्य बोले "वर्ण सिद्ध हइल के मने" । प्रभु बोले कृष्ण-दृष्टि-पातेर कारणे ॥२५२॥
शिष्य बोले पण्डित उचित व्याख्या कर । प्रभु बोले सर्व क्षण श्रीकृष्ण स्मङर ॥२५३॥
कृष्णेर भजन कहि सम्यक-आम्नाय । आदि मध्य अन्ते कृष्ण-भजन बुझाय ॥२५४॥
शुनिञा प्रभुर व्याख्या हासे शिष्य गण । केहो बोले हेन बुझि वायुर कारण ॥२५५॥
शिष्य वर्ग बोले "एवे केमत वाखान । प्रभु बोले "जेन हय शास्त्रेर प्रमाण" ॥२५६॥
प्रभु बोले "जदि नाहि बुझह एखने । विकाले सकल बुझाइव भाल-मने ॥२५७॥
आमिओ विरले गिया वसि पुँथि चाइ । विकाले सकले जेन हइ एक ठाञि" ॥२५८॥
शुनिञा प्रभुर वाक्य सर्व्व शिष्य-गण । कौतुके पुस्तक वान्धि करिला गमन ॥२५९॥

---

साधु संग का फल है ? अथवा तो पूर्व संस्कार जागे हैं ?" ॥ २४३ ॥ इस प्रकार मन में सब विचार करने लगे। परन्तु सबकी चित्त वृत्तियाँ सुखमयी बन गईं ॥ २४४ ॥ "महा प्रभु श्री विश्वम्भर का प्रकाश हो गया है। अतएव भक्तों का दुःख दूर हो गया और पाखण्डियों का भी नाश हो गया ही समझो ॥ २४५ ॥ महाप्रभु विश्वम्भर वैष्णव-आवेश में जगत् को निरन्तर कृष्णमय देखने लगे ॥ २४६ ॥ वे श्रीकृष्ण नाम ही रात-दिन सुनते हैं, और मुख मे निरन्तर कृष्ण २ कहते हैं ॥ २४७ ॥ जो प्रभु पहले विद्या के रस में निपट भूले हुए थे, वे ही अब श्रीकृष्ण विना अन्य कुछ नहीं जानते ॥ २४८ ॥ विद्यार्थी वृन्द सब मिलकर पढ़ने के लिये बड़े प्रात: काल प्रभु के पास आते, तथा त्रिलोकीनाथ प्रभु उनको पढ़ाने के लिये जाकर (आसन पर) बैठते भी, परन्तु उनकी जिह्वा पर श्रीकृष्ण नाम विना और कुछ आता ही नहीं ॥ २४९ ॥ २५० ॥ शिष्यगण कहते "सिद्ध वर्ण समाम्नाय" तो प्रभु उसका अर्थ करते—"सब वर्णों में नारायण ही सिद्ध है" ॥ २५१ ॥ शिष्य तब पूछते कि "वर्ण कैसे सिद्ध हुए ?" तो प्रभु उत्तर देते "श्रीकृष्ण की दृष्टि पात के कारण" ॥ २५२ ॥ शिष्य तब कहते—"पण्डित जी ! उचित व्याख्या करें।" तो प्रभु कहते—"सब समय श्रीकृष्ण का स्मरण करो" । २५३ ॥ सम्यक् पाठ तो श्रीकृष्ण-भजन को ही कहते हैं। (अथवा समस्त वेद (आम्नाय—वेद) श्रीकृष्ण भजन को ही कहते हैं) सब आदि, मध्य और अन्त में श्री कृष्ण को ही बताते हैं ॥ २५४ ॥ प्रभु की व्याख्या को सुनकर शिष्य गण हँस पड़ते। कोई कहता "मालूम होता है। कि वायु के कारण इनकी यह दशा है" ॥ २५५ ॥ शिष्य वृन्द फिर पूछते—"ऐसी व्याख्या आप कैसे करते हैं ?" तो प्रभु उत्तर देते—"शास्त्र प्रमाण से यह सिद्ध है" ॥ २५६ ॥ प्रभु फिर बोले—"यदि तुम अभी इसे नहीं समझ पाते तो सायं काल को मैं तुम्हें अच्छी तरह समझा दूँगा ॥ २५७ ॥ मैं भी अभी एकान्त में बैठ पुस्तक विचारता हूँ, सायंकाल को सब एकत्रित होवें" ॥ २५८ ॥ प्रभु के वचन सुन कर सब शिष्य-वृन्द, ने कुछ कौतुक के साथ पुस्तकें बांध लीं और चल दिये ॥ २५९ ॥ सब ने जाकर श्रीगङ्गा दास

सर्व्व शिष्य गङ्गा दास पण्डितेर स्थाने । कहिलेन सब-जत ठाकुर वाखाने ॥२६०॥
एवे जत वाखानेन निमाञ्गि पण्डित । शब्द सने वाखानेन कृष्ण समीहित ॥२६१॥
गया हैते जावत आसिया छेन घरे । तदवधि कृष्ण वइ व्याख्या नाहि स्फुरे ॥२६२॥
सर्व्वदा बोलेन कृष्ण पुलकित अङ्ग । क्षणे हासे हुङ्कार करये बहु रङ्ग ॥२६३॥
प्रति शब्दे धातु सूत्र एकत्र करिया । प्रति दिन कृष्ण व्याख्या करेन वसिया ॥२६४॥
एवे भाल वुझिवारे ना पारि चरित । कि करिव आमि-सब बोलह पण्डित ॥२६५॥
उपाध्याय शिरो मणि विप्र गङ्गा दास । शुनिञा सभार वाक्य उपजिल हास ॥२६६॥
ओझा बोले घरे जाह आसिह सकाले । अजि आमि शिखाइव ताहारे विकाले ॥२६७॥
भाल मत करि जेन पढ़ायेन पुँथि । आसिह विकाले सब ताहार संहति ॥२६८॥
परम हरिषे सभे वासाय चलिला । विश्वम्भर सङ्गे सभे विकाले आइला ॥२६९॥
गुरुर चरण-धूलि प्रभु लय शिरे । "विद्या लाभ हओ" गुरु आशीर्व्वाद करे ॥२७०॥
गुरु बोले बाप विश्वम्भर शुन वाक्य । ब्राह्मणेर अध्ययन नहे अल्प भाग्य ॥२७१॥
मातामह जार चक्रवर्त्ती नीलाम्बर । बाप जार-जगन्नाथ-मिश्र पुरन्दर ॥२७२॥
उभय कुलेते मूर्ख नाहिक तोमार । तुमिह परम जोग्य व्याख्याते टीकार ॥२७३॥
अध्ययन छाड़िले से जदि भक्ति हय । बाप माता मह कि तोमार भक्त नय ॥२७४॥
इहा जानि भाल मते कर अध्ययन । अध्ययन हइले से वैष्णव ब्राह्मण ॥२७५॥
भद्राभद्र मूर्ख विप्र जानिव के मने । इहा जानि कृष्ण बोल कर अध्ययने ॥२७६॥

---

पण्डित ( प्रभु के गुरु ) से जो कुछ व्याख्या प्रभु ने की थी, सब कह सुनाई ॥ १६० ॥ ( और ये यह भी कहा कि ) "अब तो जो कुछ भी निमाइ पण्डित व्याख्या करते हैं, उसमें प्रत्येक शब्द का अभिप्राय श्री कृष्ण ही सिद्ध करते हैं ॥ २६१ ॥ जब से वे गया से लौट कर आये हैं, तब से श्रीकृष्ण के अतिरिक्त और कोई व्याख्या ही उनके मुख से नहीं निकलती है ॥ २६२ ॥ वे पुलकित-शरीर होकर सर्वदा कृष्ण कृष्ण कहते रहते हैं। कभी हँसते हैं, कभी हुँकार करके अनेक प्रकार के भाव दिखाते हैं ॥ २६३ ॥ वे प्रति दिन बैठकर धातु-सूत्र लगा कर प्रत्येक शब्द की व्याख्या 'कृष्ण' में ही करते हैं ॥ २६४ ॥ इस समय उनका चरित्र कुछ अच्छी तरह से समझ में नहीं आया ! पण्डित जी महाराज ! हम क्या करें, आप बताइये" ॥ २६५ ॥ उपाध्याय शिरोमणि विप्र गङ्गादास को शिष्यों की बात सुनकर हँसी आ गई ॥ २६६ ॥ और वे ( उपाध्याय जी ) बोले "आज तो तुम सब अपने घर जाओ, कल सबेरे आना । आज सायंकाल में उसको समझा दूँगा ॥ २६७ ॥ कि वह अच्छी पुस्तक पढ़ावें । तुम भी सब उसके साथ शाम को आना" ॥ २६८ ॥ विद्यार्थी वृन्द सब बड़े प्रसन्न होकर घर चले गये, और फिर सायंकाल को श्री विश्वम्भर चन्द्र के साथ आये ॥ २६९ ॥ प्रभु ने आकर श्रीगुरु की चरण-रज मस्तक पर धारण की । श्रीगुरु ने भी "विद्या लाभ हो" कहकर आशीर्वाद दिया ॥ २७० ॥ गुरु जी बोले—"वत्स विश्वम्भर मेरी बात सुनो । ब्राह्मण के लिये अध्ययन कर्म कोई अल्प भाग्य की बात नहीं है ॥ २७१ ॥ तुम्हारे नाना श्री नीलाम्बर चक्रवर्त्ती और तुम्हारे पिता श्री जगन्नाथ मिश्र ॥ २७२ ॥ तुम्हारे इन दोनों कुलों में कोई भी मूर्ख नहीं है । तुम भी टीका की व्याख्या में परम योग्य हो ॥ २७३ ॥ यदि अध्ययन छोड़ने पर ही भक्ति होती हो तो तुम्हारे पिता और तुम्हारे नाना क्या भक्त नहीं थे ? ॥ २७४ ॥ यह समझ कर अच्छी तरह से अध्ययन करो । अध्ययन करने पर ही ब्राह्मण वैष्णव बनता है ॥२७५ ॥ मूर्ख विप्र भद्र-अभद्र, को कैसे जानेगा ? यह जान तुम कृष्ण कहो

भाल मते गिया शास्त्र वसिया पढाओ। व्यतिरिक्त अर्थ कर मोर माथा खाओ ॥२७७॥
प्रभु बोले तोर दुइ चरण प्रसादे। नव द्वीपे केहो मोरे ना पारे विवादे ॥२७८॥
आमि जे वाखानि सूत्र करिया खण्डन। नवद्वीपे इहा स्थापिबेक कोन जन ॥२७९॥
नगरे वसिया एइ पढ़ाइब गिया। देखि कार शक्ति आछे दूषक् आसिया ॥२८०॥
हरिष हइला गुरु शुनिञा वचन। चलिला गुरुर करि चरण वन्दन ॥२८१॥
गङ्गा दास पण्डित चरणे नमस्कार। वेद-पति सरस्वती-पति शिष्य जार ॥२८२॥
आर किबा गङ्गा दास पण्डितेर साध्य। जार शिष्य चतुर्द्दश-भुवन आराध्य ॥२८३॥
चलिला पढ़ुया सङ्गे प्रभु विश्वम्भर। तारके वेष्टित जेन पूर्ण शशधर ॥२८४॥
वसिला आसिया नगरियार दुयारे। जाहार चरण लक्ष्मी हृदय उपरे ॥२८५॥
जोग पट्ट छान्दे वस्त्र करिया बन्धन। सूत्रेर करये प्रभु खण्डन स्थापन ॥२८६॥
प्रभु बोले सन्धि कार्ज ज्ञान नाहि जार। कलि जुगे 'भट्टचार्य' पदवी ताहार ॥२८७॥
शब्द-ज्ञान नाहि जार से तर्क बाखाने। आमारे 'त' प्रबोधिते नारे कोनो जने ॥२८८॥
जे आमि खण्डन करि जे करि स्थापन। देखि ताहा अन्यथा करुक् कोनो जन ॥२८९॥
एइ मत बोले विश्वम्भर विश्वनाथ। प्रत्युत्तर करि बेक हेन शक्ति कात्त ॥२९०॥
गङ्गा देखि बारे जत अध्यापक जाय। शुनिञा सभार अहङ्कार चूर्ण पाय ॥२९१॥
कार शक्ति आछे विश्वम्भरेर समीपे। सिद्धान्त दिबेक हेन आछे नवद्वीपे ॥२९२॥

---

और अध्ययन करो ॥ २७६ ॥ अब तुम जाकर अच्छी तरह से शास्त्र पढ़ाने बैठो। यदि तुमने विपरीत अर्थ किया तो तुम्हें मेरे सिर की सौगन्ध है" ॥ २७७ ॥ तब प्रभु बोले—"आपके श्री युगल चरण की कृपा से नवद्वीप में कोई मुझे शास्त्रार्थ में नहीं जीत सकता है ॥ २७८ ॥ "मैं जिस सूत्र की व्याख्या खण्डन रूप में करूँ, उसकी स्थापना नवद्वीप में कौन कर सकता है ? ॥ २७९ ॥ मैं अभी जाकर नगर में पढ़ाने बैठता हूँ, देखूँ किसमें शक्ति है कि जो मेरी व्याख्या में दोष निकाले" ॥ २८० ॥ ऐसे वचन सुनकर श्री गुरु बड़े प्रसन्न हुए। प्रभु भी गुरुदेव की चरण-वन्दना करके चल पड़े ॥ २८१ ॥ ( श्री ग्रन्थकार कहते हैं कि ) उन श्रीगङ्गा दास पण्डित के श्री चरण में मेरा नमस्कार है कि वेदपति और सरस्वती पति ( प्रभु ) जिनके शिष्य हैं ॥२८२ ॥ श्री गङ्गादास पण्डित के लिये इससे बढ़कर साध्य लाभ और क्या हो सकता है कि उनके शिष्य हैं चौदहवों भुवन के आराध्य देव ॥ २८३ ॥ प्रभु विश्वम्भर विद्यार्थियों के साथ चले मानों तो ताराओं से घिरे हुए चन्द्रमा जा रहा हो ॥ २८४ ॥ जिनके श्री चरण लक्ष्मी जी के हृदय के ऊपर शोभा पाते हैं, वे प्रभु एक साधारण नागरिक के द्वार पर आ बैठे ॥ २८५ ॥ और योग पट्ट की रीति से वस्त्र बाँधकर सूत्र का खण्डन मण्डन करने लगे ॥ २८६ ॥ प्रभु बोले—"जिनको सन्धि-क्रिया का भी ज्ञान नहीं है, कलियुग में उनकी पदवी है "भट्टाचार्य" ॥ २८७ ॥ और जिनको शब्द-बोध भी नहीं है, वे न्याय शास्त्र की व्याख्या करते हैं, परन्तु मुझे प्रबोध देने में कोई समर्थ नहीं है ॥ २८८ ॥ मैं जिसका खण्डन और जिस का मण्डन करता हूँ, देखूँ, कोई भी आकर उसका अन्यथा तो कर दिखावे ॥ २८९ ॥ इस प्रकार विश्वनाथ श्री विश्वम्भर देव कहते हैं परन्तु ऐसी सामर्थ्य किसमें कि प्रत्युत्तर दे सके ॥ २९० ॥ ( उस समय ) गङ्गा-दर्शन के लिये जितने अध्यापक जा रहे थे, प्रभु के वचन सुन सुन कर उन सब का अहङ्कार चूर्ण हो गया ॥ २९१ ॥ भला नवद्वीप में ऐसी किसमें शक्ति है जो प्रभु विश्वम्भर के सन्मुख अपना कोई सिद्धान्त प्रति-पादन कर सके ॥ २९२ ॥ इस प्रकार प्रभु विश्वम्भर आवेश में भरे हुए व्याख्या कर रहे हैं। चार घड़ी

एइ मत आवेशे बाखाने विश्वम्भर। चारि दण्ड रात्रि तभु नाहि अवसर ॥२९३॥
दैवे आर एक नगरियार दुयारे। एक महा भाग्यवान् आछे विप्रवरे ॥२९४॥
'रत्न गर्भ आचार्य' विख्यात तार नाम। प्रभुर बापेर सङ्गी जन्म एक ग्राम ॥२९५॥
तीन पुत्र ताँर कृष्ण-पद मकरन्द। कृष्णानन्द, जीव, यदुनाथ कविचन्द्र ॥२९६॥
भागवत परम आदरे विप्रवर। भागवत श्लोक पढ़े करिया आदर ॥२९७॥
विन्यस्त हस्त मितरेण धुनानमब्जं कर्णोत्पलालक कपोल मुखाब्ज हासम् ॥२९८॥
भक्ति-जोग श्लोक पढ़े परम सन्तोषे। प्रभुर कर्णे ते आसि करिल प्रवेशे ॥२९९॥
भक्तिर प्रभाव मात्र शुनिल थाकिया। सेइ क्षणे पड़िलेन मूर्च्छित हइया ॥३००॥
सकल पढ़ुया वर्ग विस्मित हइला। क्षणेक अन्तरे प्रभु बाह्य प्रकाशिला ॥३०१॥
बाह्य पाइ 'बोल' 'बोल' बोले विश्वम्भर। गड़ा गड़ि जाय प्रभु धरणी उपर ॥३०२॥
प्रभु बोले 'बाल' 'बोल' पढ़े विप्रवर। उठिल समुद्र कृष्ण-सुख मनोहर ॥३०३॥
लोचनेर जले हैल पृथिवी सिञ्चित। अश्रु कम्प पुलक-सकल सुविदित ॥३०४॥
देखे विप्रवर ताँर परम आनन्द। पढ़े भक्ति-श्लोक भक्ति सने करि सङ्ग ॥३०५॥
देखिया ताँहार भक्ति जोगेर पठन। तुष्ट हैया प्रभु ताने दिला आलिङ्गन ॥३०६॥
पाइया वैकुण्ठ नायकेर आलिङ्गने। प्रेमे पूर्ण रत्न गर्भ हैला सेइ क्षणे ॥३०७॥

---

रात बीत गई पर बन्द ही नहीं होते ॥ २९३ ॥ दैव योग से एक दूसरे नागरिक के घर पर एक महाभाग्यवान् विप्रवर रहते थे ॥ २९४ ॥ वे रत्न गर्भ आचार्य के नाम से विख्यात थे। वे प्रभु के पिताजी के संगी थे और एक ही गाँव में दोनों जन्मे थे ॥ २९५ ॥ उनके तीन पुत्र थे जो श्रीकृष्ण के चरण कमल मकरन्द सेवी थे। उनके नाम हैं—कृष्णानन्द, जीव और यदु नाथ 'कवि चन्द्र' ॥ २९६ ॥ विप्रवर ( रत्न गर्भा चार्य) श्रीमद्भागवत् का परम आदर करते थे। ( संयोग वश ) वे उस समय भागवत का एक श्लोक पढ़ रहे थे ॥ २९७ ॥ "श्लोकार्थ" ( याज्ञिक ब्राह्मणों की पत्नियाँ श्री कृष्ण का दर्शन कर रही हैं कि) श्याम उनका अंग है, स्वर्ण वर्ण पीताम्बर पहने हुए हैं, गले में बनमाला है, शीश पर मोर मुकुट है, गेरु, मनसिल आदि धातुओं से श्रीमुख रंजित हो रहा है. पत्र-पुष्प-दल से रचित मनोहर नटवर वेष है, एक हस्त संगी सखा के कन्धे पर अर्पित है और दूसरे हस्त से कमल घुमा रहे हैं, कानों में कमल के फूल झूम रहे हैं, कपोलों को अलकें चूम रही हैं और मुख कमल से हँसी की किरणें छिटक रहीं हैं। २९८ ॥ (भाग–१०–२३–२२) यह श्लोक भक्ति योग का वे विप्र बड़े आनन्द से पढ़ रहे थे कि वह प्रभु के कानों में आ पड़ा ॥ २९९ ॥ भक्ति के प्रभाव को सुनते ही प्रभु तुरन्त ही मूर्च्छित होकर गिर पड़े ॥ ३०० ॥ विद्यार्थी वृन्द सब बड़े ही विस्मित हुए। क्षण भर पीछे ही प्रभु को बाह्य ज्ञान हो आया ॥ ३०१ ॥ चेत होते ही प्रभु विश्वम्भर "बोलो-बोलो" कहते हुए पृथ्वी पर लोट पोट होने लगे ॥ ३०२ ॥ प्रभु के 'बोल–बोल' कहने पर विप्रवर श्लोक पढ़ने लगे। तब तो मनोहर कृष्ण–सुख का सागर उमड़ पड़ा ॥ ३०३ ॥ प्रभु के अश्रु जल से पृथ्वी गीली हो गई-अश्रु कम्प, पलक प्रभु के अंग में सब स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष हो रहे थे ॥ ३०४ ॥ विप्र श्रेष्ठ ( रत्न गर्भा चार्य ) प्रभु को परम आनन्द में देख कर, भक्ति–सम्बन्धी श्लोकों को भक्ति पूर्वक पढ़ने लगे ॥ ३०५ ॥ उनके भक्ति युक्त पाठ को देखकर प्रभु ने संतुष्ट होकर उनको अपना दिव्य आलिंगन प्रदान किया ॥ ३०६ ॥ श्री वैकुण्ठनाथ के आलिंगन को पाकर रत्नगर्भा चार्य जी की देह तत्क्षण प्रेम से पूर्ण हो गयी ॥ ३०७ ॥ और वे प्रभु के श्री चरणों को पकड़ कर रोने लगे, विप्र श्री चैतन्य चन्द के प्रेम-पाश में

प्रभुर चरण धरि रत्न गर्भ कान्दे । बन्दी हैला विप्र चैतन्येर प्रेम फान्दे ॥३०८ ।
पुन पुन पढे श्लोक प्रेम युक्त हैया । बोल' बोल बोले प्रभु हुङ्कार करिया ॥३०९॥
देखिया सभार हैल अपरूप ज्ञान । नगरिया सब देखि करे परणाम ॥३१०॥
"ना पढ़िह आर" बलिलेन गदाधर । सभे मिलि धरि लेन प्रभु विश्वम्भर ॥३११॥
क्षणे के हइला बाह्य दृष्टि गौर राय । 'कि बोल' 'कि बोल' प्रभु जिज्ञासे सदाय ॥३१२॥
प्रभु बोले कि चाञ्चल्य करिलाङ आमि । पढुया सकल बोले कृत कृत्य तुमि ॥३१३॥
कि बलिते पारि आमा सभार शकति । आप्त गणे निवारिल ना करिह स्तुति ॥३१४॥
बाह्य पाइ विश्वम्भर आपना सम्बरे । सर्व्व गणे चलि लेन गङ्गा देखि बारे ॥३१५॥
गङ्गा नमस्करि गङ्गा-जल लैला शिरे । गोष्ठीर सहित वसिलेन गङ्गा तीरे ॥३१६॥
जमुनार तीरे जेन बेढ़ि गोप गण । नाना रस करिलेन नन्देर नन्दन ॥३१७॥
सेइ मत शचीर नन्दन गङ्गा तीरे । भकत सहित कृष्ण प्रसङ्गे विहरे ॥३१८॥
कथो क्षणे सभारे विदाय दिया घरे । विश्वम्भर चलिलेन आपन मन्दिरे ॥३१९॥
भोजन करिया सर्व्व भुबनेर नाथ । जोग निद्रा प्रति करिलेन दृष्टि पात ॥३२० ।
पोहाइल निशा-सर्व्व पढ़ुयार'गण । आसिया मेलिला पुँथि करिते चिन्तन ॥३२१॥
ठाकुर आइला घाट करि गङ्गा-स्नान । वसिया करेन प्रभु पुस्तक व्याख्यान ॥३२२॥
प्रभुर ना स्फुरे कृष्ण-व्यतिरिक्त आन । शब्द मात्र कृष्ण-भक्ति करये व्याख्यान ॥३२३॥
पढ़ुया सकल बोले "धातु संज्ञा कार" । प्रभु बोले श्रीकृष्णेर शक्ति नाम जार ॥३२४॥

बंध कर कैदी हो गये ॥ ३०८ ॥ वे प्रेम युक्त होकर बारम्बार श्लोक पढ़ने लगे और प्रभु हुङ्कार कर कर के "बोलो बोलो" कहने लगे ॥ ३०९ ॥ यह दृश्य देख सब नागरिकों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ और वे प्रभु को प्रणाम करने लगे ॥ ३१० ॥ अन्त में श्री गदाधर जी बोले—"बस ! अब और मत पढ़ो, फिर सब ने मिल कर प्रभु विश्वम्भर को पकड़ लिया ॥ ३११ ॥ क्षण भर बाद श्रीगौरा राय सचेत हुए, फिर भी 'क्या कहते हो' 'क्या कहते हो' बस यही पूछते रहे ॥ ३१२ ॥ अन्त में प्रभु कहने लगे—"आज मैंने क्या कुछ चंचलता की ?" विद्यार्थी सब बोले—'आप कृतार्थ हैं" ॥ ३१३ ॥ "हम क्या कह सकते है—हममें शक्ति ही कहाँ ?" यह सुनकर प्रभु ने अपने स्वजनों को निवारण किया कि "ऐसी स्तुति मत करो" ॥ ३१४ ॥ बाहर की सुध आने पर प्रभु ने अपने भाव को दबाया और सबके साथ गङ्गा-दर्शन के लिये चल पड़े ॥ ३१५ ॥ जाकर श्री गङ्गा जी को नमस्कार किया, गंगा—जल को सिर पर चढ़ाया और गोष्ठी समेत गंगा-तट पर बैठ गये ॥ ३१६ ॥ जैसे गोपों से घिरे हुए नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ने श्री यमुना के तट पर नाना प्रकार का आनन्द लूटा था, वैसे ही भक्त गण सहित शची नन्दन श्री विश्वम्भर श्री गङ्गा के तट पर श्री कृष्ण—चर्चा का आनन्द ले रहे हैं ॥ ३१७ ॥ ३१८ ॥ कुछ देर बाद सबको अपने-अपने घर के लिये विदा देकर श्री विश्वम्भर देव भी अपने घर को चले आये ॥ ३१९ ॥ और भोजन करके सब लोकों के स्वामी श्रीविश्वम्भर देव ने योग निद्रा के प्रति अवलोकन किया ( अर्थात् शयन किया ) ॥ ३२० ॥ रात्रि व्यतीत हुई और विद्यार्थी वृन्द आ जुटे, और पढ़ने के लिये पोथी खोल—खोल कर बैठ गये ॥ ३२१ ॥ प्रभु भी गङ्गा—स्नान करके घट आ गये और बैठकर पोथी पढ़ाने लगे ॥ ३२२ ॥ प्रभु के मुख से तो 'कृष्ण' के अतिरिक्त और कुछ निकलता ही नहीं, अतएव वे प्रत्येक शब्द का अर्थ कृष्ण भक्ति करने लगे ॥ ३२३ ॥ विद्यार्थियों ने पूछा—"धातु किसका नाम है ?" तो प्रभु ने उत्तर दिया "श्रीकृष्ण की शक्ति का" ॥ ३२४ ॥

धातु-सूत्र वाखानि शुनह भाइ गण । देखि कार शक्ति आछे करुक् खण्डन ॥३२५॥
जत देख राजा दिव्य दिव्य कलेवर । कनक भूषित गन्ध चन्दने सुन्दर ॥३२६॥
जम लक्ष्मी जाहार वचने लोक कहे । धातु विने शुन तार जे अवस्था हये ॥३२७॥
कोथा जाय सर्वाङ्गेर सौन्दर्य चलिया । केह भस्म कार कारे एड़ेन पूतिया ॥३२८॥
सर्व्व देहे धातु रूपे वैसे कृष्ण शक्ति । ताहा सने करे स्नेह ताहाने से भक्ति ॥३२९॥
भ्रम वशे अध्यापक ना बुझये इहा । हय नय भाइ सब बुझ मन दिया ॥३३०॥
एवे जारे नमस्करि करि मान्य ज्ञान । धातु गेले तारे पर शिले करि स्नान ॥३३१॥
जे वापेर कोले पुत्र थाके महा सुखे । धातु गेले सेइ पुत्र अग्नि देइ मुखे ॥३३२॥
धातु संज्ञा कृष्ण-शक्ति वल्लभ सभार । देखि इहा दूषक् आछये शक्ति कार ॥३३३॥
एइ मत पवित्र पूज्य जे कृष्णेर शक्ति । हेन कृष्णे भाइ सब कर दृढ़ भक्ति ॥३३४॥
बोल कृष्ण भज कृष्ण शुन कृष्ण नाम । अहर्निश कृष्णेर चरण कर ध्यान ॥३३५॥
जाहार चरणे दूर्वा जल दिले मात्र । कभू जम तान अधिकारे नहे पात्र ॥३३६॥
अघ बक पूतनारे जे कैल मोचन । भज भज सेइ नन्द नन्दन चरण ॥३३७॥
पुत्र बुध्ये अजामिल जाहार स्मरणे । चलिला वैकुण्ठ भज से कृष्ण चरणे ॥३३८॥
जाहार चरण रसे शिव दिगम्बर । जे चरण सेविवारे॰ लक्ष्मीर आदर ॥३३९॥
जे चरण महिमा अनन्त गुण गाय । दन्ते तृण करि भज हेन कृष्ण पाय ॥३४०॥

---

"सुनो भाइयो ! अब मैं धातु-सूत्र की व्याख्या करता हूँ—देखूँ किसमें शक्ति है जो इसका खण्डन करे ॥ ३२५ ॥ जितने भी राजा आदि को तुम देखते हो कि जिनके बड़े सुन्दर दिव्य कलेवर हैं, जो स्वर्ण-अलङ्कारों से भूषित तथा चन्दन-सुगन्ध से चर्चित हैं ॥ ३२६ ॥ "और जिनके लिये लोग कहते हैं कि यम-राज ( अर्थात् मृत्यु ) और लक्ष्मी जिनकी आज्ञा पर चलते हैं, उनकी भी धातु के विना जो दशा होती है उसे सुनो ॥३२७॥ बिना धातु के उनके सब अंगों का सौन्दर्य न जाने कहाँ चला जाता है। किसी को जलाकर भस्म कर देते हैं तो किसी को गाड़ कर छोड़ देते हैं ॥ ३२८ ॥ "अतएव सबकी देह में धातु रूप में श्रीकृष्ण की शक्ति ही विराजित है । उसी के साथ सब स्नेह करते हैं, और उसी को आदर-भक्ति करते है ॥ ३२९ ॥ अध्यापक गण भ्रम के कारण इसे नहीं समझ पाते हैं । भाइयो ! जरा मन से तो सोचो यह बात है कि नहीं ॥ ३३० ॥ "इस समय हम जिनको नमस्कार करते और माननीय समझते हैं, धातु के चले जाने पर, उन्हीं को छू लेने पर हम स्नान करते हैं ॥ ३३१ ॥ जिस बाप की गोद में बेटा बड़े सुख से रहता है धातु के चले जाने पर, वही बेटा उसी बाप के मुख में आग दे देता है ॥ ३३२ ॥ "इसी से 'धातु' नाम श्रीकृष्ण की शक्ति का है—वही सबको प्यारा है । देखूँ किसमें शक्ति है जो इस तथ्य में दोष निकाले ॥ ३३३ ॥ इस प्रकार से जिस श्रीकृष्ण की शक्ति पूज्य और पवित्र है, उस श्रीकृष्ण की, भाइयो ! तुम सब दृढ़ भक्ति करो ॥ ३३४ ॥ "भाइयो ! कृष्ण कहो, कृष्ण भजो, कृष्ण नाम सुनो । दिन रात कृष्ण-चरण का ध्यान करो ॥ ३३५ ॥ जिन श्रीकृष्ण के चरणों पर दूब और जल मात्र चढ़ाने से ही, उस पर यमराज का अधिकार नहीं रह जाता है ॥ ३३६ ॥ 'जिन्होंने अघासुर, बकासुर और पूतना राक्षसी का उद्धार किया, उन नन्दनन्दन के चरणों का भजन करो ॥३३७ ॥ अजामिल, पुत्र-बुद्धि से, जिनका स्मरण करके वैकुण्ठ को चला गया, उन श्रीकृष्ण के चरणों को भजो ॥ ३३८ ॥ "जिनके चरणों का रस पान कर शिव जी दिगम्बर है । जिन चरणों की सेवा में लक्ष्मी जी का बड़ा ही आदर है ॥ ३३९ ॥ जिन चरणों

जावत् आछये जीव देहे आछे शक्ति। तावत कृष्णेर पाद पद्मे कर भक्ति ॥३४१॥
कृष्ण माता कृष्ण पिता कृष्ण प्राण धन। चरणे धरिया बोलों कृष्णे देह मन ॥३४२॥
दास्य भावे कहे प्रभु, आपन महिमा। हइल प्रहर दुइ तभो नहे सीमा ॥३४३॥
मोहित पढ़ुया सब शुने एक मने। द्विरुक्ति करिते कारो ना आइसे बदने ॥३४४॥
से सब कृष्णेर दास जानिह निश्चय। कृष्ण जारे पढ़ायेन से कि अन्य हय ॥३४५॥
कथो क्षणे बाह्ज प्रकाशिला विश्वम्भर। चाहिया सभार मुख लज्जित अन्तर ॥३४६॥
प्रभु बोले "धातु-सूत्र वारवानिल केन। पढ़ुया सकल बोले सत्य अर्थ जेन ॥३४७॥
जे शब्दे जे अर्थ तुमि करिले बाखान। कार बापे ताहा करि वारे पारे आन ॥३४८॥
जतेक बाखान तुमि-सब सत्य हय। सबे जे उद्देशे पढ़ि तार अर्थ नय ॥३४९॥
प्रभु बोले कह देखि आमारे सकल। वायु वा आमारे करिया छये विह्वल ॥३५०॥
सूत्र रूपे कोन् वृत्ति करिये व्याख्यान। शिष्य वर्ग बोले सबे एक हरि नाम ॥३५१॥
सूत्र, वृत्ति, टीकाय बाखान कृष्ण मात्र। बुझिते तोमार व्याख्या के आछये पात्र ॥३५२॥
भक्तिर श्रवणे जे तोमार आसि हये। ताहाते तो मारे कभू नर-ज्ञान नहे ॥३५३॥
प्रभु बोल कोन् रूपे देखह आमारे। पढ़ुया सकल बोले जत चमत्कारे ॥३५४॥
जे कम्प जे अश्रु जेवा पुलक तोमार। आमरा 'त' कोथाओ कभू नाहि देखि आर ॥३५५॥
कालि जबे पुँथि तुमि चिन्ताह नगरे। तखन पढ़िल श्लोक एक विप्र घरे ॥३५६॥

की महिमा श्री अनन्त देव गाते ही रहते हैं, उन श्रीकृष्ण के चरणों का भजन दांतों में तिनका देकर करो ॥ ३४० ॥ "जब तक इस देह में यह जीवात्मा है, और यह शक्ति है, तब तक श्री कृष्ण के पादपद्मों की भक्ति कर लो ॥ ३४१ ॥ श्री कृष्ण ही माता हैं, श्रीकृष्ण ही पिता हैं, श्रीकृष्ण ही प्राण धन हैं,हे भाइयो ! मैं तुम्हारे पाँव पकड़ कर कहता हूँ कि श्रीकृष्ण में मन लगाओ ॥ ३४२ ॥ इस प्रकार दास भाव में भर कर प्रभु अपनी महिमा आप ही वर्णन कर रहे हैं। दोपहर हो आया, तब भी वर्णन का अन्त नहीं ॥३४३॥ मोहिए हुए विद्यार्थी सब एक मन से सुन रहे हैं, किसी से मुख से एक शब्द नहीं निकल पाता है ॥ ३४४॥ यह निश्चय समझ लो कि वे सब विद्यार्थी कृष्ण के ही दास थे। भला जिनको श्रीकृष्ण पढ़ावें वे क्या दूसरे कोई हो सकते हैं ॥३४५ ॥ कुछ समय बाद प्रभु विश्वम्भर को बाहर की सुध हो आई और सबके मुख की ओर देखकर मन ही मन लज्जित हुए ॥ ३४६ ॥ प्रभु बोले–"धातु–सूत्र की व्याख्या कैसी हुई ?" विद्यार्थी सब बोले–"अर्थ तो सत्य ही है ॥ ३४७ ॥ आपने जिस शब्द का जो अर्थ बखाना, उसको उलट देने की सामर्थ्य किसके बाप में है भला ? ॥ ३४८ ॥ "जो कुछ आपने बखाना, वह तो सब सत्य ही है पर बात तो बस इतनी ही है कि हम जिस उद्देश्य से पढ़ते हैं, उसके अनुसार यह अर्थ नहीं है" ॥ ३४९ ॥ तब प्रभु बोले–"तुम सब मुझे देखकर बताओ तो कि मुझे वायु ने तो कहीं विकल नहीं कर दिया ? ॥ ३५० ॥ "अच्छा ! मैंने सूत्र की व्याख्या में कौन सी वृत्ति कही ?" शिष्यों ने उत्तर दिया–"केवल एक हरि नाम ॥ ३५१ । आप तो सूत्र, वृत्ति, टीका-सब में केवल कृष्ण को ही बखानते हैं। आपको व्याख्या समझने वाला पात्र यहाँ कौन है भला ॥ ३५२ ॥ "भक्ति के पद सुन लेने पर जो आपकी दशा हो आती है, उससे तो आप मनुष्य से कदापि नहीं लगते हैं" ॥ ३५३ ॥ प्रभु ने पूछा–"तुम लोग मुझे किस रूप में देखते हो ?" तो विद्यार्थियों ने उत्तर दिया –"विलक्षण चमत्कार रूप में ॥ ३५४ ॥ "आपके शरीर में जो कम्प, अश्रु और पुलकावलि प्रकट होते है, वे तो हमने और कहीं कभी भी नहीं देखे ॥ ३५५ ॥ कल जब आप नगर

भागवत श्लोक शुनि हइला मूच्छित । सर्व्व अङ्गे नाहि प्राण आमरा विस्मित ।।३५७।।
चैतन्य पाइया तुमि जे कैला क्रन्दन । गङ्गार आसिया जेन हइल मिलन ।।३५८।।
शेषे जेवा कम्प आसि हइल तोमार । शत जन समर्थ नाहय धरिवार । ३५९।।
आपाद मस्तके हैल पुलक उन्नति । लाला, घर्म्म, धूलाय व्यापित गौर ज्योति ।।३६०।।
अपूर्व्व से सब लीला देखे जत जन । सभेइ बोलेन ए पुरुष नारायण ।।३६१।।
केहो बोले व्यास शुक, नारद प्रह्लाद । ताहा सभा कार जोग्य ए मत प्रसाद ।।३६२।।
सभे मिलि धरि लेन करिया शकति । क्षणेके तोमार आसि बाह्य हैल मति ।।३६३।।
ए सब वृतान्त तुमि किछुइ ना जान । आर कथा कहि ताहा चित्त दिया शुन ।।३६४।।
दिन दश धरि कर जतेक व्याख्यान । सर्व्व शब्दे कृष्ण भक्ति कर कृष्ण नाम ।।३६५।।
दश दिन धरि आजि पाठ बाद हय । कहिते तोमारे सभे बड़ वासि भय ।।३६६।।
शब्देर अशेष अर्थ तोमार गोचर । हासि "जे वाखान ताहा के दिवे उत्तर" ।।३६७।।
प्रभु बोले दश दिन पाठ वाद जाय । तबे कि आमारे कहिवारे ना जुयाय ।।३६८।।
पढ़ुया सकल बोले वाखान उचित । सत्य कृष्ण सकल शास्त्रेर समीहित ।।३६९।।
अध्ययन एइ से सकल शास्त्र सार । तबे जे ना लइ दोष आमा सभाकार ।।३७०।।
मूले जे वाखान तुमि ज्ञातव्य सेइ से । ताहाते ना लय चित्त निज कर्म दोषे ।।३७१।।

---

मे एक ठौर पर बैठकर पुस्तक पढ़ा रहे थे तो उस समय एक विप्र श्रेष्ठ ने एक श्लोक पढ़ा था ।। ३५६ ।। "भागवत के उस श्लोक को सुनते ही आप मूच्छित हो गये–शरीर में कहीं प्राण न रहा हम तो सब विस्मित हो गये ।। ३५७ ।। फिर सचेत होकर आप ने जो क्रन्दन किया था उसे देखने से तो यही लगता था कि गगाजी आकर ( आपके नेत्रों से ) मिल गई हैं ।। ३५८ ।। "अन्त में आपको जो कँप कपी हुई उसमें सौ २ मनुष्य भी आपको पकड़ कर स्थिर नहीं रख सके थे ।।३५९ ।। चरण से लेकर मस्तक पर्यन्त समस्य शरीर पुलकावलि से छा गया था, और आपकी गौर कान्ति लार, स्वेद और धूल से ढक गई थी ।। ३६० ।। "आपके उस अपूर्व भाव को जिन जिन ने उस समय देखा, सभी ने यही कहा कि "यह पुरुष तो नारायण है" ।। ३६१ ।। किसी ने यह भी कहा कि जो कृपा इन पर हुई है वह तो व्यास देव, शुकदेव, नारदजी और प्रह्लाद जी के ही योग्य है ।। ३६२ ।। "सब लोगों ने मिलकर बड़ा जोर लगाकर आपको पकड़ रक्खा था । कुछ समय बाद आपको वाहर का ज्ञान हुआ था ।। ३६३ ।। यह सब वृत्तान्त आप कुछ नहीं जानते है । और एक बात कहते हैं, ध्यान देकर सुनिये ।। ३६४ ।। "दस दिन से आप जितनी व्याख्या करते हैं, उनमें प्रत्येक शब्द में आप कृष्ण-भक्ति और कृष्ण-नाम का ही बखान कर रहे हैं ।। ३६५ ।। दस दिन में आज तक का पाठ सब व्यर्थ हो गया । आप से तो कुछ कहने में भी हमको बड़ा डर लगता है ।। ३६६ ।। "आपको तो एक-एक शब्द के अनेक अर्थ आते हैं । जो कुछ भी आप हँसते हुए सहज में कह जाते हैं, उसका उत्तर भला कौन दे सकता है ।। ३६७ ।। यह सुनकर प्रभु बोले–"जब दस दिन से तुम्हारा पाठ व्यर्थ जा रहा है तो क्या तुमको हमसे कहना उचित नही था ?" ।। ३६८ ।। विद्यार्थी बोले–"व्याख्या तो आपकी उचित ही है । सचमुच ही समस्त शास्त्रों का यथार्थ अभिप्राय तो श्रीकृष्ण में ही है ।। ३६९ ।। और सब शास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने का सार भी यही है, फिर भी जो हम इस सार को ग्रहण नहीं कर सकते यह हमारा ही दोष है ।। ३७० ।। "जिस मूल का बखान आप करते हैं, जानने योग्य तो वही एक वस्तु है, परन्तु अपने कर्म-दोष ( दुर्भाग्य ) के कारण हमारा चित्त उसमें नहीं लगता है" ।। ३७१ ।। विद्यार्थियों

"दिवसैको आमि जदि हइ कृष्णदास। तबे सिद्ध हउ तोमा सभार अभिलाष ॥३८९॥
तोमरा सकल लह कृष्णेर शरण। कृष्ण नामे पूर्ण हउ सभार बदन ॥३९०॥
निरवधि श्रवणे शुनह कृष्ण नाम। कृष्ण हउ तोमा सभाकार धन प्राण ॥३९१॥
जे पढ़िल से-इ भाल आर कार्ज नाञि। सभे मिलि कृष्ण वलिवाङ एक ठाञि ॥३९२॥
कृष्णेर कृपाय शास्त्र स्फुरुक् सभार। तुमि सब जन्म जन्म बान्धव आमार" ॥३९३॥
प्रभुर अमृत वाक्य शुनि शिष्य गण। परम आनन्द मन हइलेन तत्क्षण ॥३९४॥
से सब शिष्येर पाये मोर नमस्कार। चैतन्येर शिष्यत्वे हइल भाग्य जार ॥३९५॥
से सब कृष्णेर दास जानिह निश्चय। कृष्ण जारे पढ़ायेन से कि अन्य हय ॥३९६॥
से विद्या विलास देखि लेन जे जे जन। ताहारे देखिले हय बन्ध विमोचन ॥३९७॥
हइल पापिष्ठ जन्म नहिल तखने। हइलाङ वञ्चित से सुख-दरशने ॥३९८॥
तथापिह एइ कृपा कर महाशय। से विद्या-विलास मोर रहुक हृदय ॥३९९॥
पढ़ाइलेन नवद्वीपे वैकुण्ठेर राय। अद्यापिह चिह्न आछे सर्व्व नदीयाय ॥४००॥
चैतन्य लीलार कभो अवधि ना हये। 'आविर्भाव' 'तिरोभाव' एइ वेदे कहे ॥४०१॥
एइ हैते परिपूर्ण विद्यार विलास। सङ्कीर्त्तन आरम्भेर हइल प्रकाश ॥४०२॥
चतुर्द्दिके अश्रु कण्ठे कान्दे शिष्यगण। सदय हइया प्रभु बोलेन बचन ॥४०३॥
पढ़िलाङ शुनिलाङ एत काल धरि। कृष्णेर कीर्त्तन कर परिपूर्ण करि ॥४०४॥
शिष्य गण बोलेन "के मन से ही कीर्त्तन"। आपने शिखाय प्रभु श्री शचीनन्दन ॥४०५॥
हरये नमः कृष्ण जादवाय नमः। गोपाल गोविन्द राम श्री मधु सूदन ॥४०६॥

के लिये भी श्रीकृष्ण-भक्ति की हो तो तुम सबकी अभिलाषाएं पूर्ण हों ॥ ३८९ ॥ तुम सब श्रीकृष्ण के शरणागत बनो। तुम्हारे मुख श्रीकृष्ण नाम से पूरित रहें ॥ ३९० ॥ "कानों से तुम निरन्तर कृष्ण-नाम सुनो और श्रीकृष्ण ही तुम सबों के धन प्राण हों ॥ ३९१ ॥ जो पढ़ लिया सो पढ़ लिया, अब अधिक का प्रयोजन नहीं। बस अब तो हम सब मिलकर एक स्थान पर श्रीकृष्ण कीर्तन करें ॥ ३९२ ॥ "श्रीकृष्ण-कृपा से तुमको सब शास्त्रों की स्फूर्त्ति हो। तुम तो सब मेरे जन्म-जन्म के बन्धु हो ॥ ३९३ ॥ प्रभु के अमृतमय वचनों को सुनकर, शिष्यों के हृदय तत्काल ही परमानन्द से पूर्ण हो गये ॥ ३९४ ॥ उन सब शिष्यों के चरणों में मेरा नमस्कार है कि जिनको श्रीचैतन्य चन्द्र के शिष्य बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ ॥ ३९५ ॥ यह निश्चय जानो कि वे सब श्रीकृष्ण के दास हैं। श्रीकृष्ण जिनको स्वयं पढ़ावें, भला वे कोई अन्य हो सकते हैं ॥ ३९६ ॥ जिन लोगों ने प्रभु का वह विद्या-विलास देखा, उनके दर्शन से ही संसार के बन्धन खुल जाते हैं ॥ ३९७ ॥ इस पापी का जन्म तब न हुआ ! हाय मैं इस सुख के दर्शन से वंचित ही रहा ॥ ३९८ ॥ तथापि हे महाशय ! यह कृपा करो कि वह विद्या-विलास मेरे हृदय में रहे ॥ ३९९ ॥ श्रीवैकुण्ठनाथ ने नवद्वीप में छात्रों को पढ़ाया था उसके चिन्ह आज भी सब नदिया में वर्तमान हैं ॥४०० ॥ श्रीचैतन्यचन्द्र की लीला का कभी अन्त नहीं है। वेद उसका केवल आविर्भाव और तिरोभाव ही कहते हैं ॥ ४०१ ॥ प्रभु का विद्या-विलास यहाँ सम्पूर्ण हुआ। अब आगे नाम-संकीर्तन का प्रकाश आरम्भ हुआ ॥ ४०२ ॥ चारों ओर शिष्यों को गदगद होकर रोते देख प्रभु सदय होकर बोले-"भाइयो ! इतने समय तक तो पढ़ाई-लिखाई की। अब जी भर कर श्री कृष्ण-का कीर्तन करें ॥ ४०३ ॥ ४०४ ॥ शिष्य गण बोले-"संकीर्तन कैसा" ? तब प्रभु श्री शचीनन्दन स्वयं उनको सिखाने लगे ॥४०५॥ गाना ॥केदार राग॥

दिशा दिखाइया प्रभु हाथे त लि दिया । आपने कीर्त्तन करे शिष्य गण लैया । ४०७।
आपने कीर्त्तन नाथ करये कीर्त्तन चौ दिगे बेढ़िया गाय सब शिष्य गण ।।४०८।।
आविष्ट हइया प्रभु निज नाम रसे । गड़ा गड़ि जाय प्रभु धूलाय आवेशे ।।४०९।।
बोल बोल वलि प्रभु चतुर्द्दिके पड़े । पृथिवी विदीर्ण हय आछाड़े आछाड़े ।।४१०।।
गण्ड गोल शुनि सब नदिया नगर । धाइया आइला सब ठाकुरेर घर ।।४११।।
निकटे वसये जत वैष्णवेर घर । कीर्त्तन शुनिञा सभे आइला सत्वर ।।४१२।।
प्रभुर आवेश देखि सर्व्व भक्त गण । परम अपूर्व्व सभे भावे मने मन ।।४१३।।
परम सन्तोष सभे हइला अन्तरे । एवे से कीर्त्तन हैल नदिया नगरे ।।४१४।।
ए मत दुर्लभ भक्ति आछये जगते । नयन सफल हय ए भक्ति देखिये ।।४१५।।
जत उद्धतेर सीमा एइ विश्वम्भर । प्रेम देखिलाङ नारदादिर दुष्कर ।।४१६।।
हेन उद्धतेर जदि हेन भक्ति हय । ना वुझि कृष्णेर इच्छा एवा किवा हय ।।४१७।।
क्षणेके हइला बाह्‌ज विश्वम्भर राय । सबे प्रभु 'कृष्ण' 'कृष्ण' बोलये सदाय ।।४१८।।
बाह्‌ज हइलेओ बाह्‌ज कथा नाहि कहे । सर्व्व वैष्णवेर गला धरिया कान्दये ।।४१९।।
सभे मिलि ठाकुरेरे स्थिर कराइया । चलिला वैष्णव गण महानन्द हैया ।।४२०।।
कोन कोन पढ़ुया सकल प्रभु सङ्गे । उदासीन पथ लइलेन प्रेम रङ्गे ।।४२१।।
आरम्भिला महा प्रभु आपन प्रकाश । सकल भक्तेर दुःख हइल विनाश ।।४२२।।
श्री कृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावन दास तछु पद जुगे गान ।।४२३।।

---

"हरि हरये नमः कृष्ण याद वाय नमः" । गोपाल गोविन्द राम श्री मधुसूदन ॥ ४०६ ॥ ( गाने लगे ) इस प्रकार मार्ग बताकर प्रभु हाथों से ताली बजाते हुए शिष्यों को साथ लेकर कीर्तन करने लगे ।। ४०७ ।। कीर्तन नाथ आज आप ही कीर्तन कर रहे हैं और शिष्य लोग चारों ओर घेरे हुए गा रहे हैं ।। ४०८ ।। कीर्तन करते करते प्रभु अपने नाम के रस में मत वाले होकर धूल में लोट पोट होने लगे ।। ४०९ ।। "बोलो बोलो" कहते हुए प्रभु इधर से उधर चारों ओर गिरते-पड़ते हैं–उनके पछाड़-पछाड़ पर पृथ्वी फटी सी जाती है ॥ ४१० ।। कोलाहल सुनकर सब नदिया वासी दौड़े-दौड़े प्रभु के घर आये । ४११ ।। जितने पड़ौसी वैष्णव लोग थे, कीर्तन सुनकर सब झट पट आ गये ।। ४१२ ।। प्रभु के आवेश भाव को देखकर सब भक्तों के मन में बड़ा ही आश्चर्य हुआ ।। ४१३ ।। सबके मन में बड़ा संतोष भी हुआ कि "हाँ अब हुआ नदिया में कीर्तन ।। ४१४ ॥ "अहा ! ऐसी दुर्लभ भक्ति भी संसार में है ! इस भक्ति के दर्शन से आज नेत्र सफल हो गये !" ॥ ४१५ ॥ "इस विश्वम्भर में, जहाँ पहले बेहद उद्दण्डता थी, वहीं आज नारदादिकों को भी दुर्लभ प्रेम दिखाई देता है ।। ४१६ ।। "यदि ऐसे उद्दण्ड में भी ऐसी भक्ति हो सकती है तो न जाने कृष्णेच्छा से आगे क्या होगा" ? ।। ४१७ ।। थोड़ी देर में प्रभु सचेत हुए फिर भी केवल "कृष्ण–कृष्ण" ही निरन्तर बोलते रहे ।। ४१८ ।। प्रभु, बाहर की दशा में आने पर भी, बाहर की बातें नहीं करते, बस वैष्णवों के कण्ठ पकड़ पकड़ कर रोते हैं ॥ ४१९ ॥ सब वैष्णवों ने मिल कर प्रभु को शान्त स्थिर किया और फिर सब बड़े आनन्द में अपने-अपने घर चले गये ।। ४२० ।। कोई-कोई विद्यार्थी ने तो प्रभु के संग प्रेम रंग में रंग कर वैराग्य का मार्ग पकड़ा ।। ४२१ ।। अब महाप्रभु ने अपना ( स्वरूप ) प्रकाश आरम्भ किया, जिससे कि सब भक्तों का दुःख–नाश हो गया ।। ४२२ ।। श्रीकृष्ण चैतन्य और श्री नित्यानन्द चन्द्र को अपना सर्वस्व जानकर यह वृन्दावन दास उनके युगल चरणों में उनके ही गुणगान को निवेदन करता है ॥ ४२३ ॥

॥ इति ॥

# दूसरा अध्याय

जय जय जगत मङ्गल गौर चन्द्र । दान देह हृदये तोमार पद द्वन्द ॥१॥
भक्त गोष्ठी सहित गौराङ्ग जय जय । शुनिले चैतन्य कथा भक्ति लभ्य हय ॥२॥
ठाकुरेर प्रेम देखि सर्व्व भक्त गण । परम विस्मित हैल सभाकार मन ॥३॥
परम सन्तोषे सभे अद्वैतेर स्थाने । सभे कहिलेन जत हैल दरशने ॥४॥
भक्ति योग प्रभावे अद्वैत महा बल । अवतरि याछे प्रभु जानेन सकल ॥५॥
तथापि अद्वैत तत्त्व बुझन ना जाय । सेइ क्षणे प्रकाशिया तखने लुकाय ॥६॥
शुनिञा अद्वैत बड़ हर्ष हैला । परम आविष्ट हइ कहि ते लागिला ॥७॥
मोर आज कार कथा शुन भाइ सब । निशिते देखिलुँ आज कछु अनुभव ॥८॥
गीतार पाठेर अर्थ भाल ना बुझिया । थाकिलाङ दुःख भाव उपास करिया ॥९॥
कथो रात्रे आमारे बोलये एक जन । उठह आचार्ज झाट करह भोजन ॥१०॥
एइ पाठ एइ अर्थ कहिल तोमारे । उठिया भोजन कर पूजह आमारे ॥११॥
आर केने दुःख भाव पाइले सकल । जे लागि सङ्कल्प कैल से हइल सफल ॥१२॥
जत उपवास कैले जत आराधन । जतेक करिले कृष्ण बलिया क्रन्दन ॥१३॥
जा आनिते भुज तुलि प्रतिज्ञा करिला । से प्रभु तोमारे एवे विदित हइला ॥१४॥
सर्व्व देशे हइबेक कृष्णेर कीर्त्तन । घरे घरे नगरे नगरे अनु क्षण ॥१५॥

---

हे जगन्मंगल गौरचन्द्र ! आपकी जय हो जय हो । अपने श्रीयुगल चरण को हमारे हृदय को प्रदान कीजिए ॥ १ ॥ हे गौरांग देव ! भक्त-मण्डली सहित आपकी जय हो, जय हो श्रीचैतन्य देव की कथा सुनने से भक्ति प्राप्त होती है ॥ २ ॥ श्री गौर प्रभु के श्रीकृष्ण-प्रेम के दर्शन कर सब भक्तों के मन में बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ३ ॥ उन्होंने जो कुछ इधर आँखों से देखा, उससे परम संतुष्ट होकर, वह सब कुछ श्री अद्वैत प्रभु को जा सुनाया ॥ ४ ॥ भक्ति योग के प्रभाव से महा बलीयान् श्रीअद्वैत यह सब जानते हैं कि प्रभु ने अवतार लिया है, ॥ ५ ॥ तथापि श्रीअद्वैत प्रभु का तत्त्व कुछ समझ में नहीं आता है—कारण कि वे क्षण में प्रकट होकर तत्काल ही छिप जाते हैं ॥ ६ ॥ भक्तों की बात सुनकर श्रीअद्वैत बड़े प्रसन्न हुए और बड़े आवेश में आकर कहने लगे ॥ ७ ॥ "हे भाइयो ! तुम सब मेरी आज की एक बात सुनो । आज रात में मुझे कुछ अनुभव हुआ है ॥ ८ ॥ ( कल ) गीता के किसी एक पाठ का अर्थ अच्छी तरह समझ न पाने से मैं बड़ा दुःखित हुआ और उपवास करके पड़ा रहा ॥ ९ ॥ कुछ रात होने पर किसी ने मुझे यह कहा कि "आचार्य ! उठो और झट भोजन करो" ॥ १० ॥ "वह पाठ यह है और उसका अर्थ यह है—यह मैंने तुम्हें बता दिया । अब उठकर भोजन करो और मेरी पूजा करो ॥ ११ ॥ "सब कुछ तो पा लिया, फिर अब क्यों दुःख मानते हो ? जिस कार्य के लिये तुमने संकल्प किया था, वह तो सफल हो गया ॥ १२ ॥ "तुमने जितने उपवास किये, जितनी आराधना की और "कृष्ण-कृष्ण" कह कह कर जितना क्रन्दन किया, ॥ १३ ॥ जिनको ले आने के लिये भुजा उठाकर प्रतिज्ञा की, वे ही तुम्हारे प्रभु इस समय प्रकट हो गये हैं ॥ १४ ॥ "अब सब देश में, नगर-नगर में, घर-घर में निरन्तर श्रीकृष्ण-कीर्तन होगा ॥१५॥ अब तुम्हारी

ब्रह्मार दुर्लभ मूर्त्ति जगते जतेक । तोमार प्रसादे मात्र सभे देखि वेक ॥१६॥
एइ श्री वासेर घरे जतेक वैष्णव । ब्रह्मादिर दुर्लभ देखिब अनुभव ॥१७॥
भोजन करह तुमि आमार विदाय । आर बार आसिवाङ भोजन बेलाय ॥१८॥
चक्षु मेलि चाहि देखि-एइ विश्वम्भर । देखिते देखिते मात्र हइला अन्तर ॥१९॥
कृष्णेर रहस्य किछु ना पारि बुझिते । कोन रूपे प्रकाश वा करेन काहाते ॥२०॥
इहार अग्रज पूर्व्वे विश्व रूप नाम । आमासङ्गे आसि गीता करिता व्याख्यान ॥२१॥
एइ शिशु परम मधुर रूप वान । भाइ के डाकिते आइसेन मोर स्थान ॥२२॥
चित्त वृत्ति हरे शिशु सुन्दर देखिया । आशीर्व्वाद करों भक्ति हउक बलिया ॥२३॥
आभिजात्ये आछे बड़ मानुषेर पुत्र । नीलाम्बर चक्रवर्त्ती ताहार दौहित्र ॥२४॥
आपनेओ सर्व्व गुणे उत्तम पण्डित । ताहार कृष्ण ते भक्ति हइते उचित ॥२५॥
बड़ सुखी हइलाङ ए कथा शुनिञा । आशीर्वाद कर सभे तथास्तु बलिया ॥२६॥
श्री कृष्णेर अनुग्रह हउक सभारे । कृष्ण नामे मत्त हओ सकल संसारे ॥२७॥
जदि सत्य वस्तु हय तबे एइ खाने । सभे आसिवेन एइ बामनार स्थाने" ॥२८॥
आनन्दे अद्वैत करे परम हुङ्कार । सकल वैष्णव करे जय जय कार ॥२९॥
'हरि' 'हरि' बलि डाके वदन सभार । उठिल कीर्त्तन रूप कृष्ण अवतार ॥३०॥
केहो बोले "निमाञि पण्डित भाल हैले । तबे सङ्कीर्त्तन करि महा कुतूहले" ॥३१॥
आचार्येर प्रणति करिया भक्त गण । आनन्दे चलिला करि कृष्णेर कीर्त्तन ॥३२।

---

कृपा से जगत् के सभी प्राणी ब्रह्मा आदि के भी दुर्लभ मूर्त्ति के दर्शन करेंगे ॥ १६ ॥ "इसी श्रीवास के घर में सब वैष्णव जन ब्रह्मा आदि के भी दुर्लभ अनुभव को प्राप्त करेंगे ॥ १७ ॥ अब तुम भोजन करो, मैं भी जाता हूँ । फिर किसी भोजन के समय आऊँगा ॥ १८ ॥ इतने ही में मेरी आँखें खुल गयीं तो क्या देखता हूँ कि यही विश्वम्भर ( गौर ) मेरे देखते-देखते अन्तर्ध्यान हो गया ॥ १९ ॥ भाइयो ! श्रीकृष्ण का रहस्य कुछ समझ में नहीं आता । न जाने वे किस रूप में, किसके भीतर अपना प्रकाश करते हैं ॥ २० ॥ विश्व-रूप नामक इसके बड़े भाई पहले मेरे पास आकर गीता की व्याख्या किया करते थे ॥ २१ ॥ ( उस समय) परम मधुर रूपवान् यह बालक ( विश्वम्भर ) अपने भाई को बुलाने मेरे पास आया करता था ॥ २२ ॥ उस सुन्दर बालक को देखकर चित्त मोहित हो जाता था और "इसे भक्ति मिले"—कह कर मैं आशीर्वाद किया करता था ॥ २३ ॥ वैसे भी वह ऊँचे कुल में बड़े आदमी का पुत्र है । श्री नीलाम्बर चक्रवर्त्ती का धेवता है ॥ २४ ॥ वह आप भी सब गुणों से पूर्ण उत्तम पण्डित है । उसकी श्रीकृष्ण में भक्ति होनी उचित ही है ॥ २५ ॥ मैं उसकी यह बात सुनकर बड़ा सुखी हुआ । तुम सब लोग भी उसे "तथास्तु" कह कर आशीर्वाद दो ॥ २६ ॥ सब पर श्रीकृष्ण की कृपा होवे और यह सब संसार श्रीकृष्ण नाम में मत्त हो जाय ॥ २७ ॥ यदि बात सच्ची है अर्थात् यदि श्रीकृष्ण का अवतार हुआ है तो उनको स्वयं ही इस ब्राह्मण के घर आना होगा ॥ २८ ॥ ( कहते-कहते ) आनन्द के मारे अद्वैत प्रभु जोर-जोर से हुंकार करने लगे और सब वैष्णव लोग जय जयकार करने लगे ॥ २९ ॥ सबके मुख "हरि बोल" "हरि बोल" पुकारने लगे । इस प्रकार वहाँ हरि नाम संकीर्तन के रूप में श्रीकृष्ण का अवतार हो गया ॥ ३० ॥ कोई बोले—"निमाइ पण्डित के अच्छे होने पर हम बड़े आनन्द से संकीर्तन किया करेंगे" ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्ण कीर्तन कर लेने पर भक्तों ने श्री अद्वैताचार्य को प्रणाम किया और आनन्द में मग्न, घर चले गये ॥ ३२ ॥ प्रभु के साथ जिस

प्रभु सङ्गे जहार जहार देखा हय। परम आदरे सभे रहि सम्भाषय ॥३३॥
प्रातः काले जबे प्रभु चले गङ्गा स्नाने। वैष्णव सभार सने हय दरशने ॥३४॥
श्री वासादि देखिले ठाकुर नमस्करे। प्रीत हैया भक्त गण आशीर्व्वाद करे ॥३५॥
"तोमार हउक भक्ति कृष्णेर चरणे। मुखे कृष्ण बोल कृष्ण शुनह श्रवणे ॥३६॥
कृष्ण भजिले से बाप सब सत्य हय। ना भजिले कृष्ण रूप विद्याकिछू नय ॥३७॥
कृष्ण से जगत् पिता कृष्ण से जीवन। दृढ़ कर भज बाप कृष्णेर चरण ॥३८॥
आशीर्व्वाद शुनिञा प्रभुर बड़ सुख। सभारे चाहेन प्रभु तूलिया श्री मुख ॥३९॥
"तोमरा से कर सत्य करि आशीर्व्वाद। तोमरा वा केने अन्य करिवा प्रसाद ॥४०॥
तोमरा से पार कृष्ण भजन दिवारे। दासेरे सेविले से कृष्ण अनुग्रह करे ॥४१॥
तोमरा जे आमारे शिखाओ विष्णु धर्म्म। तेञि बुझि आमार उत्तम आछे कर्म्म ॥४२॥
तोमा सभा सेविले से कृष्ण-भक्ति पाइ। एत बलि कारो पाये धरे सेइ ठाँइ ॥४३॥
निङ्गाडये वस्त्र कारो करिया जतने। धुति वस्त्र तुलि कारो देन त आपने ॥४४॥
कुश गङ्गा-मृत्तिका काहारो देन करे। साजि वहि कोन दिन चले कारो घरे ॥४५॥
सकल वैष्णव गण हाय हाय करे। कि कर ? किकर ? तभो करे विश्वम्भरे ॥४६॥
एइ मत प्रति दिन प्रभु विश्वम्भर। आपन दासेर हब आपने किङ्कर ॥४७॥
कोन कर्म्म सेब केर कृष्ण नाहि करे। सेव केर लागि निज धर्म्म परि हरे ॥४८॥
सकल सुहृत कृष्ण सर्व वेदे कहे। एतेके कृष्णेर केहो द्वेष जोग्य नहे ॥४९॥

---

जिसका भी मिलन होता है, वही खड़ा होकर बड़े आदर के साथ प्रभु से वार्त्तालाप करता है ॥ ३३ ॥ प्रातः काल जब प्रभु गङ्गा-स्नान को जाते हैं, तो सब वैष्णवों के दर्शन होते हैं ॥ ३४ ॥ प्रभु श्रीबास आदि ( वैष्णवों ) को देख कर नमस्कार करते है, और भक्त लोग प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हैं यथा ॥३५॥ श्रीकृष्ण के चरणों में तुम्हारी भक्ति होवे, मुख से कृष्ण–कृष्ण बोलो और कानों से कृष्ण-कृष्ण सुनो ॥ ३६ ॥ "देखो भाई ! श्रीकृष्ण का भजन करने पर ही रूप, विद्या आदि सत्य सफल होते हैं, कृष्ण को न भजने पर ये सब कुछ भी नहीं हैं ॥ ३७ ॥ श्रीकृष्ण ही जगत्पिता हैं। श्रीकृष्ण ही सबके जीवन है। अतएव भाई ! दृढ़ता पूर्वक श्रीकृष्ण-चरण को भजो ॥ ३८ ॥ आशीर्वाद सुनकर प्रभु को बड़ा सुख हुआ और प्रभु श्रीमुख उठा कर उनकी ओर देखते हुए बोले ॥३९॥ आप लोग ही सच्चा आशीर्वाद देते है। आप लोग भला कोई अन्य प्रकार की कृपा क्यों करेंगे ? ॥ ४० ॥ "आप लोग ही कृष्ण–भजन देने में समर्थ हो ( कारण कि ) दासों का सेवन करने पर भी श्रीकृष्ण कृपा करते हैं ॥ ४१ ॥ आप लोग जो मुझे वैष्णव धर्म सिखाते हैं, उससे मैं समझता हूँ कि मेरे भाग्य अच्छे हैं ॥ ४२ ॥ "आप सबों के सेवन से मुझे भी कृष्ण–भक्ति मिले" इतना कहकर वहीं पर किसी के चरण पकड़ लेते हैं ॥ ४३ ॥ कभी बड़े यत्न के साथ किसी के गीले वस्त्र निचोड़ देते हैं। किसी को धोती आदि वस्त्र उठाकर अपने आप हाथ में पकड़ा देते हैं ॥ ४४ ॥ किसी के हाथ में कुश और गङ्गा की मृत्तिका लाकर देते है और किसी दिन किसी की पूजा की डाली उठा उसके घर को चलते हैं ॥ ४५ ॥ प्रभु की इन बातों को देखकर वैष्णव वृन्द हाय ! हाय ! क्या करते हो ? क्या करते हो ? इस प्रकार कहते हैं किन्तु श्रीविश्वम्भर चन्द्र तब भी करते ही हैं ॥ ४६ ॥ इस प्रकार से प्रति दिन प्रभु विश्वम्भर अपने दासों के दास बनते हैं ॥ ४७ ॥ भला श्रीकृष्ण ने अपने सेवकों के कौन से काम नहीं किये ? सेवक के लिये वे अपने धर्म तक को छोड़ देते हैं ॥ ४८ ॥ सब

ताहो परि हरे कृष्ण भक्तेर कारणे। तार साक्षी दुर्योधन बंशेर मरणे ॥५०॥
कृष्णेर करये सेवा भक्तेर स्वभाव। भक्त लागि कृष्णेर सकल अनुभाव ॥५१॥
कृष्णेरे बेचिते पारे भक्त भक्ति-रसे। तार साक्षी सत्यभामा द्वारका निवासे ॥५२॥
सेइ प्रभु गौराङ्ग सुन्दर विश्वम्भर। गूढ़ रूपे आछे नवद्वीपेर भितर ॥५३॥
चिनिते ना पारे केहो प्रभु आपनार। जा सभार लागिया हैला अवतार ॥५४॥
कृष्ण भजिबार जार आछे अभिलाष। से भजुक कृष्णेर मङ्गल निज दास ॥५५॥
सभारे शिखाय गौर चन्द्र भगवाने। वैष्णवेर सेवा प्रभु करिया आपने ॥५६॥
साजि वहे धुति वहे लज्जा नाहि करे। सम्भ्रमे वैष्णव गण हस्ते आसि धरे ॥५७॥
देखि विश्वम्भरेर विनय भक्त गणे। अकैतवे आशीर्वाद करे काय मने ॥५८॥
भज कृष्ण, स्मर कृष्ण, शुन कृष्ण नाम। कृष्ण हउ सभार जीवन धन प्राण ॥५९॥
बोलह बोलह कृष्ण हओ कृष्ण दास। तोमार हृदये हउ कृष्णेर प्रकाश ॥६०॥
कृष्ण वइ आर नाहि स्फुरुक तोमार। तोमा हैते दुःख जाओ आमा सभाकार। ६१॥
जे जे अज्ञ जन कीर्त्तनेर हासे। तोमा हैते ताहारा डुबुक कृष्ण रसे ॥६२॥
जेन तुमि शास्त्रे सब जिनिले संसार। तेन कृष्ण भजि कर पाषण्डि संहार ॥६३॥
तोमार प्रसादे जेन आमरा सकल। सुखे कृष्ण गाइ नाचि हइया विह्वल ॥६४॥
हस्त दिया प्रभुर अङ्गते भक्त गण। आशीर्वाद करे दुःख करि निवेदन ॥६५॥

---

वेदों ने श्रीकृष्ण को सबका सुहृद् कहा है अतएव श्रीकृष्ण के लिये कोई भी द्वेष के योग्य नहीं है ॥ ४९ ॥ परन्तु भक्तों के लिये श्रीकृष्ण अपने इस सर्व-सुहृद् स्वभाव को भी परित्याग कर देते हैं वंश सहित दुर्योधन का मरण ही इसका प्रमाण है ॥ ५० ॥ भक्त का स्वभाव तो होता है श्रीकृष्ण की सेवा करना। और श्री कृष्ण की समस्त चेष्टाएं होती है भक्त के लिये ॥ ५१ ॥ भक्त श्रीकृष्ण को भक्ति रस में बेच तक सकता है। उसका प्रमाण द्वारिका के महल में श्री सत्यभामा जी हैं ॥ ५२ ॥ वही प्रभु श्रीकृष्ण ही तो गौरांग सुन्दर विश्वम्भर के गुप्त रूप में नवद्वीप में विराजमान हैं ॥ ५३ ॥ जिन सबके लिये आपका अवतार हुआ है, वे कोई भी अपने प्रभु को पहचान नहीं पा रहे हैं ॥ ५४ ॥ श्रीकृष्ण-भजन की जिसकी इच्छा हो, वह प्रभु के मङ्गलकारी निज दासों का भजन करे ॥ ५५ ॥ यही भगवान् गौर चन्द्र वैष्णव जनों की अपने आप सेवा करके सब को सिखला रहे हैं ॥ ५६ ॥ प्रभु पूजा की डलिया उठाकर चलते हैं, धोती ले चलते हैं, लज्जा नहीं करते हैं। यह देख वैष्णव जन हड़ बड़ा कर झट आकर उनका हाथ पकड़ लेते हैं ॥ ५७ ॥ भक्त वृन्द विश्वम्भर चन्द्र के विनय को देखकर उनको वाणी और हृदय से निष्कपट आशीर्वाद देते हैं, यथा ॥ ५८ ॥ "श्रीकृष्ण को भजो, श्रीकृष्ण का सुमरन करो, श्रीकृष्ण नाम सुनो, श्रीकृष्ण हम सबके जीवन धन प्राण हों ॥ ५९ ॥ बोलो, कृष्ण बोलो, कृष्ण के दास होओ। तुम्हारे हृदय में श्रीकृष्ण का प्रकाश हो ॥ ६० ॥ "श्रीकृष्ण के अतिरिक्त तुमको और कुछ भी स्फुरण न हो। तुम्हारे द्वारा हम सब के दुःख दूर हों ॥ ६१ ॥ जो मूढ लोग आज कीर्तन की हँसी उड़ाते हैं, तुम्हारे द्वारा वे सब श्रीकृष्ण के भक्ति रस में डूबें ॥ ६२ ॥ "जैसे तुमने शास्त्रार्थ में सब संसार को जीत लिया है। वैसे ही अब श्रीकृष्ण का भजन करके पाखण्डियों का संहार करो ॥ ६३ ॥ तुम्हारी कृपा से हम सब भी मतवाले होकर श्रीकृष्ण के नाम, रूप, लीला आदि को सुख से गा-गा कर नाच सकें ॥ ६४ ॥ भक्त लोग प्रभु के श्रीअंग पर हाथ रख कर आशीर्वाद देते हैं और अपना दुःख सुनाते हैं यथाः—॥ ६५ ॥ "वत्स ! इस नवद्वीप में जितने भी अध्या-

एइ नवद्वीपे बाप ! जत अध्यापक । कृष्ण-भक्ति वाखानिते सभे हय वाके ।।६६।।
कि संन्यासी कि तपस्वी किवा ज्ञानी जत । बड़ बड़ एइ नवद्वीपे आछे कत ।।६७।।
केहो ना वाखाने बाप कृष्णेर कीर्त्तन । ना करे व्याख्या आरो निन्दे सर्व क्षण ।।६८।।
जतेक पापिष्ठ श्रोता सेइ बोल धरे । तृण ज्ञान केहो आमा सभारे ना करे ।।६९।।
सन्तापे पोडये बाप ! सब देह भार । कोथाओ ना शुनि कृष्ण कीर्त्तन प्रचार ।।७०।।
एखने प्रसन्न कृष्ण हइला सभारे । ए पथे प्रविष्ट करि दिलेन तोमारे ।।७१।।
तोमा हैते हइवेक पाषण्डीर क्षय । मनेते आमरा इहा बुझिल निश्चय ।।७२।।
चिरजीवी हओ तुमि वलि कृष्ण नाम । तोमा हैते व्यक्त हउ कृष्ण गुण ग्राम" ।।७३।।
भक्त आशीर्वाद प्रभु शिरे करि लये । भक्त आशीर्वाद से कृष्णेते भक्ति हये ।।७४।।
शुनिञा भक्तेर दुःख प्रभु विश्वम्भर । प्रकाश हइते चित्त हइल सत्त्वर ।।७५।।
प्रभु बोले "तुमि" सब कृष्णेर दयित । तोमरा जे बोल सेइ हइव निश्चित ।।७६।।
धन्य मोर जीवन तोमरा बोल भाल । तोमरा राखिले ग्रासि वारे नारे काल ।।७७।।
कोन द्वार हय पाप पाषण्डीर गण । सुखे गिया कर कृष्ण चन्द्रेर कीर्त्तन ।।७८।।
भक्त दुःख प्रभु कभू सहिते ना पारे । भक्त लागि कृष्णेर सर्वत्र अवतारे ।।७९।।
एत बुझि तोमरा आनाइवा कृष्ण चन्द्र । नवद्वीपे कराइवा वैष्णव आनन्द ।।८०।।
तोमा सभा हैते हैव जगत उद्धार । कराइवा तोमरा कृष्णेर अवतार ।।८१।।
सेवक करिया मोरे सभेइ जानिवा । एइ वर-मोरे कभू ना परिहरिवा ।।८२।।

पक हैं, वे श्रीकृष्ण की भक्ति बखानने के समय सब गूँगे हो जाते हैं ।। ६६ ।। इस नवद्वीप में कितने ही बड़े बड़े सन्यासी, तपस्वी और ज्ञानी जन हैं ।। ६७ ।। परन्तु वत्स ! कोई भी श्रीकृष्ण-कीर्तन का वर्णन नहीं करते—गुण तो बखानते ही नहीं, उल्टा उसकी निन्दा ही सदा किया करते हैं ।। ६८ ।। "पापी श्रोता भी सारे उनके स्वर में स्वर मिलाते हैं और हम सबों को तो कोई तिनके के बराबर भी नहीं समझता है ।। ६९ ।। इस सन्ताप से वत्स ! हम सबके शरीर जले रहे हैं । हाय ! कहीं भी श्रीकृष्ण—कीर्तन की चर्चा नहीं सुन पाते हैं ।। ७० ।। "परन्तु अब श्रीकृष्ण हम सब पर प्रसन्न हुए हैं कि जो तुमको इस पथ में प्रवेश कराया है ।। ७१ ।' हम अपने मन में यह निश्चय समझ गये हैं कि तुम्हारे द्वारा पाखण्डियों का अवश्य ही नाश होगा ।। ७२ ।। "तुम कृष्ण नाम कहते हुए चिरञ्जीवी होओ । तुम्हारे द्वारा श्रीकृष्ण के गुण गण का प्रकाश होवे" ।। ७३ ।। भक्तों के आशीर्वाद को प्रभु सिर पर चढ़ाते हैं । भक्तों के आशीर्वाद से ही श्री कृष्ण में भक्ति होती है ।। ७४ ।। प्रभु विश्वम्भर ने भक्तों के दुःखों को सुन कर अपने को शीघ्र ही प्रकट कर देने की इच्छा की ।। ७५ ।। प्रभु बोले—"आप लोग सब श्रीकृष्ण के प्यारे हैं । आप लोग जो कुछ कहते हैं, वही निश्चय होगा ।। ७६ ।। "मेरे जीवन को धन्य है कि जो आप लोग मेरे लिये ऐसी मंगल कामना करते हैं । आप लोग यदि रक्षा करें तो काल भी नहीं खा सकता है ।। ७७ ।। फिर तुच्छ पापी पाखण्डियों के दल की क्या गिनती ? आप लोग जाकर आनन्द से श्रीकृष्ण चन्द्र का कीर्तन करें ।। ७८ ।। "प्रभु कभी भी भक्तों का दुःख सह नहीं सकते । भक्तों के लिये ही प्रभु के सर्वत्र अवतार होते हैं ।। ७९ ।। इससे प्रतीत होता है कि आप लोग भी श्रीकृष्ण चन्द्र को ले आयेंगे और नवद्वीप में वैष्णवों में आनन्द करायेंगे ।।८०।। "आप सबों के द्वारा जगत् का उद्धार हो, आप लोग ही श्रीकृष्ण का अवतार करायेंगे ।। ८१ ।। मुझको आप लोग सभी अपना सेवक जानें, और मुझे कभी न भूलें—बस यही वरदान मुझे दें" ।। ८२ ।। ( ऐसा

सभार चरण धुलि लय विश्वम्भर । आशीर्वाद सभेइ करेन बहुतर ।।८३।।
गङ्गा स्नान करिया चलिला सभे घरे । प्रभुओ चलिला किछु हासिया अन्तरे ।।८४।।
आपन भक्तेर दुःख शुनिञा ठाकुर । पाषण्डीर प्रति क्रोध बाढ़िल प्रचुर ।।८५।।
"संहारिव सब वलि" करये हुङ्कार । "मुञि सेइ मुञि सेइ" बोले बारे बार ।।८६।।
क्षणे हासे, क्षणे कान्दे क्षणे मूर्च्छा पाय । लक्ष्मीरे देखिया क्षणे मारिवारे जाय ।।८७।।
एइ मत हैला प्रभु वैष्णव-आवेशे । शचीना बुझये कोन व्याधि वा विशेषे ।।८८।।
स्नेह विनु शची किछु नाहि जाने आर । सभारे कहेन विश्वम्भर व्यवहार ।।८९।।
"बिधाताये स्वामी निल, निल पुत्र गण । अवशिष्ट सकले आछये एक जन ।।९०।।
ताहारो किरूप मति बुझने ना जाय । क्षणे हासे क्षणे कान्दे क्षणे मूर्च्छा पाय ।।९१।।
आपने आपने कहे मने मने कथा । क्षणे बोले "छिण्डों छिण्डों पाषण्डीर माथा" ।।९२।।
क्षणे गिया गाछेर उपर डाले चढ़े । ना मेले लोचन क्षणे पृथिवीते पड़े ।।९३।।
दन्त कड़मडि करे माल साट मारे । गड़ा गड़ि आय, किछु वचन ना स्फुरे" ।।९४।।
नाहि शुने देखे लोक कृष्णेर विकारे । वायु-ज्ञान करि लोक बोले वान्धिवारे ।।९५।।
शची मुखे शुनि आय जे जे देखि वारे । वायु ज्ञान करि सभे बोले वान्धिवारे ।।९६।।
पाषण्डी देखिया प्रभु खेदाड़िया जाय । वायु ज्ञान करि लोक हासिया पलाय ।।९७।।
अस्ते व्यस्ते मा, ये गिया आनये धरिया । लोक बोले "पूर्व-वायु जन्मिल आसिया" ।।९८।।

---

कहकर ) श्री विश्वम्भर चन्द्र सब की चरण-रज लेते हैं, और वे भी सब अनेक आशीर्वाद देते हैं ।। ८३ ।। गङ्गा-स्नान करके भक्त लोग सब अपने-अपने घर को चले और प्रभु भी मन में कुछ हँसते हुए घर आये ।। ८४ ।। अपने भक्तों के दुःख को सुनकर प्रभु को पाखण्डियों के ऊपर बड़ा भारी क्रोध हो आया ।। ८५ ।। "मैं सबका संहार कर डालूँगा" कहते हुए वे हुँकार करने लगे और बार-बार "मैं वही हूँ, मैं वही हूँ" कहने लगे ।। ८६ ।। वे क्षण में हँसते हैं, क्षण में रोते हैं और क्षण में मूर्च्छित हो जाते हैं । और कभी श्री लक्ष्मी जी ( श्रीविष्णु प्रिया ) को देखकर उन्हें मारने दौड़ते हैं ।। ८७ ।। इस प्रकार प्रभु को वैष्णव-आवेश होने लगा परन्तु माता शची इसे कोई व्याधि विशेष ही समझती ।। ८८ ।। माता शची तो अपने स्नेह बिना और कुछ भी नहीं जानती । वे विश्वम्भर के व्यवहार सबसे कहती, यथा ।। ८९ ।। "देखो ! विधाता ने मेरे स्वामी को लिया, कई पुत्रों को लिया, अब एक ही शेष रह गया है ।। ९० ।। "उसकी भी न जाने कैसी मति हो गई है कुछ समझ में नहीं आती ? वह क्षण में हँसता, क्षण में रोता और क्षण में मूर्च्छित हो जाता है ।। ९१ ।। वह अपने आप मन ही मन न जाने क्या-क्या बातें करता रहता है, और कभी "पाखण्डियों का शिर छेद डालूँगा, छेद डालूँगा"—कह उठता है ।। ९२ ।। कभी वह वृक्ष की ऊँची डाल पर जा बैठता है और कभी आँखें बन्द हो जाती हैं और पृथ्वी पर गिर पड़ता है ।। ९३ ।। कभी दाँत किट-किटा कर पीसता है, कभी ताल ठोंकता है, पृथ्वी पर लोट-पोट हो जाता है और बोल बन्द हो जाती है" ।। ९४ ।। साधारण लोगों को कृष्ण-प्रेम का विकार देखने-सुनने को नहीं मिलता है, अतएव वे लोग वायु समझकर बाँध रखने के लिये कहते हैं ।। ९५ ।। माता शची से सुन-सुन कर जो जो लोग प्रभु को देखने के लिये जाते हैं वे सब वायु का विकार समझ कर बाँध रखने के लिये कहते हैं ।। ९६ ।। पाखण्डियों को देख लेने पर प्रभु उनको खदेड़ने लगते हैं । वे भी वायु का रोग समझ कर हँसते हुए भाग जाते हैं ।। ९७ ।। मा शची हड़-बड़ा कर पीछे दौड़ती हैं और पकड़ कर ले आती हैं । देखने वाले कहते हैं—"इसकी पुरानी

लोके बोले "तुमित अबोध ठाकुराणि । आर वा इँहार वार्त्ता जिज्ञासह केनि ॥९९॥
पूर्वकार वायु आसि जन्मिल शरीरे । दुइ-पाये बन्धन करिया राख घरे ॥१००॥
खाइबारे देह डाव नारिकेल जल । यावत् उन्माद-वायु नाहि करे बल" ॥१०१॥
केहो बोले "इथे अल्प औषधे कि करे । शिवाघृत-प्रयोगे से ए. वायु निस्तरे ॥१०२॥
पाक तैल शिरे दिया कराइवा स्नान । यावत प्रवल नाहि हइयाछे ज्ञान" ॥१०३॥
परम उदार शची जगतेर माता । यार मुखे येइ शुने, कहे सेइ कथा ॥१०४॥
चिन्ताय व्याकुल शची किछु नाहि जाने । गोविन्द-शरणे गेला काय-वाक्य-मने ॥१०५॥
श्रीवासादि वैष्णव-सभार स्थाने स्थाने । लोक द्वारे शची करिलेन निवेदने ॥१०६॥
एक दिन गेला तथा श्रीवास पण्डित । उठि प्रभु नमस्कार कैला सावहित ॥१०७॥
भक्त देखि प्रभुर बाडिल भक्ति-भाव । लोम हर्ष, अश्रुपात, कम्प, अनुराग ॥१०८॥
तुलसीरे आछिला करिते प्रदक्षिणे । भक्त देखि प्रभु मूर्च्छा पाइला तखने ॥१०९॥
बाह्य पाइ कथो क्षणे लागिला कान्दिते । महाकम्पे प्रभु स्थिर नापारे हइते ॥११०॥
अद्भुत देखिया श्रीनिवास मने गणे । "महा भक्ति योग, वायु बोले कोन् जने ॥१११॥
बाह्य पाइ प्रभु बोले पण्डितेर स्थाने । "कि बुझ पण्डित ! तुमि मोहर विधाने ॥११२॥
केहो बोले महावायु बान्धिबार तरे । पण्डित ! तोमार चित्ते किलये आमारे" ॥११३॥
हासि बोले श्रीवास पण्डित "भाल वाइ । तोमार जेमत वाइ ताहा आमि चाइ ॥११४॥

---

वायु उखड़ आयी है !" ॥ ९८ ॥ फिर वे लोग माता से कहते हैं–"मा ठकुरानी ! तुम तो बड़ी अबोध हो ! अब और अधिक इसकी बात क्यों पूछती फिरती हो ? ॥ ९९ ॥ पुरानी वायु शरीर में फिर उभर आयी है । इसलिये इसके तो दोनों पाँव बाँधकर घर में अटका रक्खो ॥ १०० ॥ ' पीने के लिये दो–हरे नारियल का पानी जिससे कि वायु प्रबल होकर उ माद न होने पावे" ॥ १०१ ॥ कोई कहते "अरे ! इस रोग मे छोटी-मोटी दवाइयों से काम नहीं चलेगा "शिवा घृत" ( स्याल का तेल ) के प्रयोग से ही यह वायु दूर हो सकती है ॥ १०२ ॥ ( "और सुनो ) सिर में पाक तेल की मालिश करके स्नान कराया करो जब तक वायु का जोर रहे और बुद्धि ठीक न हो जाय" ॥ १०३ ॥ जगन्माता शची देवी परम उदार हैं–वे जिसके मुख से जो कुछ सुनती हैं, वही कहने भी लगती हैं ॥ १०४ ॥ चिन्ता से व्याकुल होकर उन्हें कुछ सूझता नहीं था । वे मन-कर्म-वचन से श्री गोविन्द की शरण में गईं ॥ १०५ ॥ उन्होंने श्री वासादि सब वैष्णवों के निकट आदमी भेज-भेज कर यह सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ १०६ ॥ एक दिन श्रीवास पण्डित वहाँ आये, तो प्रभु ने उठकर सावधानी से नमस्कार किया ॥ १०७ ॥ ( परन्तु ) भक्त के दर्शन से प्रभु में भक्ति-भाव उमड़ आया–प्रेम के कारण शरीर में रोमाञ्च, अश्रु और कम्प प्रकट हो आये ॥ १०८ ॥ प्रभु तुलसी जी की परिक्रमा दे रहे थे, परन्तु भक्त तो देखकर तत्काल ही मूर्च्छित हो पड़े ॥ १०९ ॥ थोड़ी देर मे सचेत होने पर प्रभु रोने लगे, शरीर अत्यन्त ही काँपने लगा जिससे वे स्थिर न रह सके ॥ ११० ॥ यह अद्भुत दृश्य देखकर श्र निवास जी मन में सोचते हैं कि "यह तो महान् भक्ति योग है, कौन इसे वायु का रोग.कहता है" ॥ १११ ॥ प्रभु ने भी सचेत होकर श्रीवास पंडित से पूछा । कि "पंडित जी ! तुम मेरी दशा को क्या समझते हो ॥ ११२ ॥ "कोई तो इसे महा वायु रोग बतला कर मुझे बाँध रखने के लिये कहते हैं, ( परन्तु ) पण्डित जी ! तुम्हारे चित्त में मेरे बारे में क्या जँचता है" ॥ ११३ ॥ श्रीवास पण्डित हँस कर बोले–"बड़ी अच्छी वायु है । तुम्हारी जैसी वायु तो मैं चाहता हूँ" ॥ ११४ ॥ "तुम्हारे शरीर में

महा भक्ति जोग देखि तोमार शरीरे। श्री कृष्णेर अनुग्रह हइल तोमारे" ॥११५॥
एतेक शुनिल जबे श्रीवासेर मुखे। श्रीवासेरे आलिङ्गन कैला बड़ सुखे ॥११६॥
"सभे बाले वायु, सबे आशंसिले तुमि। आजि बड़ कृत कृत्य हइलाङ आमि ॥११७॥
अदि तुमि वायु-हेन बलिता आमारे। प्रवेशितों आजि आमि गङ्गार भितरे" ॥११८॥
श्रीवास बोलेन "जे तोमार भक्ति योग। ब्रह्मा, शिव-शुकादि वाञ्छये एइ भोग ॥११९॥
सभे मिलि एक ठाञि करिव कोर्त्तन। ये-ते केने ना बोले पाषण्डि-पापि-गण" ॥१२०॥
शची प्रति श्रीनिवास वलिला वचन। "चित्तेर जतेक दुःख करह खण्डन ॥१२१॥
'वायु नहे-कृष्ण भक्ति' वलिल तोमारे। इहा कभु अन्य जन बूझिवारे नारे ॥१२२॥
भिन्न जन स्थाने इहा किछु ना कहिवा। अनेक कृष्णेर जदि रहस्य देखिवा" ॥१२३॥
एतेक कहिया श्रीनिवास गेला घर। वायु ज्ञान दूर हैल 'शचीर अन्तर ॥१२४॥
तथापिह अन्तर दुःखिता शची हय। 'वाहिराय पुत्र पाछे' एइ मने भय ॥१२५॥
एइ मते आछे प्रभु विश्वम्भर-राय। केताने जानिते पारे जदि ना जानाय ॥१२६॥
एक दिन प्रभु-गदाधर करि सङ्गे। अद्वैत देखिते प्रभु चलिलेन रङ्गे ॥१२७॥
अद्वैत देखिल गिया प्रभु-दुइ-जन। वसिया करये जल-तुलसी-सेवन ॥१२८॥
दुइ भुज आस्फालिया बोले हरि हरि। क्षणे हासे क्षणे कान्दे अर्च्चन पासरि ॥१२९॥
महामत्त सिंह जेन करये हुङ्कार। क्रोध देखि-जेन महारुद्र-अवतार ॥१३०॥
अद्वैत देखिया मात्र प्रभु विश्वम्भर। पड़िला मूर्च्छित हइ पृथिवी-उपर ॥१३१॥

तो मुझे महान् भक्ति योग दिखाई देता है। (अतएव) तुम्हारे ऊपर श्रीकृष्ण का अनुग्रह हुआ है ॥११५॥ श्रीवास के मुख से इतना सुनने पर प्रभु ने बड़ा प्रसन्न होकर उनको आलिंगन किया ॥ ११६ ॥ (और बोले कि) "सब लोग तो इसे वायु का रोग बतलाते हैं, एक तुमने ही इसकी प्रशंसा की। (अतएव) आज मैं बड़ा कृत कृत्य हो गया ॥ ११७ ॥ जो यदि तुम भी इसे वायु बताते तो मैं आज अवश्य ही गङ्गा जी में प्रवेश कर जाता ॥ ११८ ॥ श्रीवास जी बोले कि "तुम्हारी जो यह भक्ति योग है इसको तो ब्रह्मा, शिव, शुकदेव आदि भी भोगना चाहते हैं ॥ ११९ ॥ पाखण्डी पापी लोग चाहे जो कुछ भी क्यों न कहें, हम तो सब मिलकर अब एक स्थान पर कीर्तन किया करेंगे" ॥ १२० ॥ फिर श्रीनिवास जी शची माता से बोले कि "अब आप अपने चित्त के सब दुःख को दूर कर दो ॥ १२१ ॥ मैं आप से कहता हूँ कि यह वायु नहीं है—यह कृष्ण भक्ति है। इस बात को और लोग कभी समझ ही नहीं सकते हैं ॥ १२२ ॥ "जो यदि आप श्रीकृष्ण के अनेक रहस्यों को देखना चाहें, तो बाहर वालों से कुछ भी न कहें" ॥ १२३ ॥ इतना कहकर श्रीनिवास जी अपने घर को चले गये और शची माता के हृदय से भी वायु रोग होने का भ्रम-ज्ञान दूर हो गया ॥ १२४ ॥ तथापि शची माता का अन्तस् दुःखित मन में है कारण कि उनके मन में 'पुत्र पीछे कहीं घर न छोड़ जाय"—इस बात का भय है ॥ १२५ ॥ इस प्रकार प्रभु विश्वम्भरराय लीला कर रहे हैं। यदि वे ही न जनावें तो कौन उनको जान सकता है ॥ १२६ ॥ एक दिन प्रभु गदाधर को साथ लेकर अद्वैत प्रभु से मिलने के लिये बड़े उमंग से चले ॥ १२७ ॥ वहाँ जाकर दोनों ने देखा कि अद्वैत प्रभु तुलसी जी की पूजा कर रहे हैं ॥ १२८ ॥ वे दोनों भुजाएँ उठाकर "हरि बोल" "हरि बोल" कर रहे हैं, और पूजा भूल कर कभी हँसते हैं और कभी रोते हैं ॥ १२९ ॥ वे महामत्त सिंह की भाँति हुँकार करते हैं। उनके क्रोध को देखने पर वे महारुद्र अवतार जैसे लगते हैं ॥ १३० ॥ अद्वैत प्रभु को देखते ही प्रभु

भक्ति योग प्रभावे अद्वैत महाबल। एइ मोर प्राणनाथ जानिला सकल ॥१३२॥
कति जावे चोरा आजि भावे मने मने। "एत दिन चूरि करि बुल" एइ खाने ॥१३३॥
अद्वैतेर ठाञि तोर ना लागे चोराइ। चोरेर उपरे चुरि करिव एथाइ" ॥१३४॥
चूरिर समय एवे बुझिया आपने। सर्व-पूजा-सज्जलइ नाम्बिला तखने ॥१३५॥
पाद्य, अर्घ्य, आचमनी लइ सेइ ठाञि। चैतन्य चरण पूजे आचार्ज गोसाञि ॥१३६॥
गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, चरण-उपरे। पुनः पुन एइ श्लोक पढ़ि नमस्करे ॥१३७॥
नमोब्रह्मण्य देवाय गो-ब्राह्मण हितायच। जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः ॥१३८॥
पुनः पुन श्लोक पढ़ि पड़ये चरणे। चिनिञा आपन प्रभु करये क्रन्दने ॥१३९॥
पाखालिल दुइ पद नमनेर जले। जोड़ हस्त करिदाण्डाइला पदतले ॥१४०॥
हासि बोले गदाधर जिह्वा कामड़ाये। 'वाल केरे गोसाञि एमतना जुयाये" ॥१४१॥
हासये अद्वैत गदाधरेर वचने। "गदाधर! बालक जानिवा कथोदिने" ॥१४२॥
चित्ते वड़ विस्मित हइला गदाधर। "हेन बूझि अवतीर्ण हइला ईश्वर" ॥१४३॥
कथोक्षणे विश्वम्भर प्रकाशिला बाह्ज। देखेन आवेशमय अद्वैत आचार्ज ॥१४४॥
आपमारे लुकायेन प्रभु विश्वम्भर। अद्वैतेरे स्तुति करे जुड़ि दुइकर ॥१४५॥
नमस्कार करि ताँर पद धूलि लये। आपनार देह प्रभु ताँरे निवेदये ॥१४६॥
"अनुग्रह तुमि मोरे कर महाशय। तोमार आमि से हेन जानिह निश्चय ॥१४७॥

---

विश्वम्भर मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े॥ १३१ ॥ भक्ति योग के प्रभाव से महाबलीयान् श्री अद्वैत जी भी सब बातें जान गये कि ये ही मेरे प्राण नाथ हैं ॥ १३२ ॥ वे मन ही मन सोचते हैं कि "इतने दिन तो यह चोर यहाँ चोरी करता फिरा परन्तु आज यह कहाँ जायगा ॥ १३३ ॥ अद्वैत के निकट इसकी चोरी नहीं चलेगी। मैं यहीं पर चोर के भी चोरी करूँगा ॥ १३४ ॥ तब चोरी का समय समझ कर अद्वैत प्रभु आप ही पूजा की सब सामग्री लेकर नीचे उतर आये ॥ १३५ ॥ अद्वैताचार्य गुसाईं ने श्रीचैतन्य चन्द्र के श्री चरणों की पूजा, पाद्य, अर्घ्य, आचमन आदि के द्वारा वहीं पर की ॥ १३६ ॥ श्री चरणों के ऊपर गन्ध, और पुष्प चढ़ाकर एवं धूप-दीप देकर वे इस श्लोक को बारम्बार पढ़ते हुए नमस्कार करने लगे ॥ १३७ ॥ हे कृष्ण ! हे गोविन्द ! आप ब्राह्मणों के प्रति भक्तिमान् हैं, आपको नमस्कार हैं। आप गौ–ब्राह्मण और जगत् के लिये अवतार लेते हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है ॥ १३८ ॥ इस श्लोक को बारम्बार पढ़ते हुए श्रीअद्वैत प्रभु के श्री चरणों पर पड़ते हैं और अपने प्रभु को पहचान कर रोते हैं ॥ १३९ ॥ उन्होंने अपने दोनों नेत्रों के जल से प्रभु के श्री चरणों को धो डाला और फिर वे हाथ जोड़कर श्री चरणों के समीप खड़े हुए ॥ १४० ॥ तब श्रीगदाधर जी जीभ काटते हुए हँस कर बोले–"बालक के प्रति हे गुसांई जी ! ऐसा व्यवहार उचित नहीं है" ॥ १४१ ॥ गदाधर जी के वचन पर श्रीअद्वैत जी हँसे और बोले–"गदाधर ! कुछ दिनों में इस बालक को जान जाओगे" ॥ १४२ ॥ यह सुनकर गदाधर जी मन मे बड़ा अचम्भा करने लगे–कि कहीं यह ईश्वर ही तो अवतीर्ण नहीं हो गया ॥ १४३ ॥ कुछ देर में श्री विश्वम्भर देव ने वाह्य दशा प्रकट की ( अर्थात् वे सचेत हुए ) तो अद्वैताचार्य को आवेश मय दशा में देखा ॥१४४॥ तब प्रभु अपने को छिपाने के लिये हाथ जोड़कर श्रीअद्वैत जी की स्तुति करने लगे ॥१४५॥ प्रभु ने उनको नमस्कार करके उनके चरणों की धूल ली और अपनी देह उनको समर्पण करते हुए बोले ॥ १४६ ॥ "हे महाशय ! आप मेरे ऊपर कृपा करें। यह निश्चय जानिये कि मैं आपका ही हूँ ॥ १४७ ॥

धन्य हइलाङ आमि देखिया तोमारे। तुमि कृपा करिलेसे कृष्ण नाम स्फुरे ।।१४८।।
तुमिसे करिते पार भव बन्ध-नाश। तोमार हृदये कृष्ण सर्वथा प्रकाश" ।।१४९।।
भक्त बाढ़ाइते निज ठाकुर से जाने। जेन करे भक्त, तेन करेन आपने ।।१५०।।
मने बोले 'अद्वैत। किकर' भारि भूरि। चोरेर उपरे आगे करियाछों चुरि ।।१५१।।
हासिया अद्वैत किछु करिला उत्तर। "सभा' हैते तुमि मोर बड़ विश्वम्भर! ।।१५२।।
कृष्ण-कथा-कौतुके थाकह एइ ठाँइ। निरन्तर तोमा' जेन देखिबारे पाइ ।।१५३।।
सर्व-वैष्णवेर इच्छा तोमारे देखिते। तोमार सहित कृष्ण-कीर्त्तन करिते" ।।१५४।।
अद्वैतेर वाक्य शुनि परम-हरिषे। स्वीकार करिया चलिलेन निज-वासे ।।१५५।।
जानिला अद्वैत-हैल प्रभुर प्रकाश। परीक्षिते' चलिलेन शान्तिपुर-वास ।।१५६।।
"सत्य जदि प्रभु हये, मुञि हङ दास। तबे मोरे बान्धिया आनिब निज-पाश" ।।१५७।।
अद्वैतेर चित्त बुझिबार शक्ति कार। जार' शक्ति-कारणे चैतन्य-अवतार ।।१५८।।
ए-सब कथाय जार नाहिक प्रतीत। अद्वैतेर सेवा तार निष्फल निश्चित ।।१५९।।
महा प्रभु विश्वम्भर प्रति-दिने दिने। कीर्त्तन करेन सर्व-वैष्णवेर सने ।।१६०।।
सभे बड़ आनन्दित देखि विश्वम्भर। लखिते ना पारे केहो आपन ईश्वर ।।१६१।।
सर्व-विलक्षण तार-परम-आवेश। देखिते सभार चित्ते सन्देह विशेष ।।१६२।।
जखन प्रभुर हय आनन्द-आवेश। कि कहिब ताहा, सबे जाने प्रभु 'शेष' ।।१६३।।

मैं आपके दर्शन करके धन्य हो गया। आपके कृपा करने पर ही श्रीकृष्ण नाम का स्फुरण होता है (मन और मुख में आता है) ।। १४८ ।। "आप ही संसार-बन्धन का नाश कर सकते हैं। आपके हृदय में सर्वथा श्रीकृष्ण प्रकाशमान् रहते हैं" ।। १४९ ।। भगवान् अपने भक्तों को बढ़ाना खूब जानते हैं। जैसे भक्त उनकी स्तुति करते हैं, वैसे ही वे आप उनकी स्तुति करते हैं ।। १५० ।। श्रीअद्वैताचार्य मन ही में बोले "क्या करते हो छल-चतुराई! मैं तो पहले २ ही चोर की चोरी कर चुका हूँ" ।। १५१ ।। फिर हँस करके श्री अद्वैत ने कुछ उत्तर दिया कि "हे विश्वम्भर! तुम मेरे लिए सबसे बड़े हो ।। १५२ ।। "तुम श्रीकृष्ण-कथा-कौतुक करते हुए यहीं रहो जिससे मैं तुमको निरन्तर देख सकूँ ।। १५३ ।। सब वैष्णवों की इच्छा तुम्हें देखने और तुम्हारे साथ कृष्ण-कीर्तन करने की है" ।। १५४ ।। श्रीअद्वैत जी के बचन को सुनकर प्रभु ने बड़ी प्रसन्नता से उसे स्वीकार कर लिया और अपने घर को लौट आये ।। १५५ ।। श्रीअद्वैत जी जान तो गये कि प्रभु का प्रकाश (अवतार) हो गया, तथापि परीक्षा करने के लिये वे अपने निवास स्थान शान्तिपुर को चल दिये ।। १५६ ।। (उनके मन में यह है कि) "यदि सचमुच में ये प्रभु ही हैं, और यदि मैं उनका सच्चा दास हूँ तो प्रभु मुझे बाँध कर अपने पास ले आयेंगे" ।। १५७ ।। जिनकी शक्ति के प्रभाव से श्रीचैतन्य देव का अवतार हुआ, उन अद्वैताचार्य जी के चित्त को समझने की शक्ति भला किसमें है ।। १५८ ।। इन सब बातों पर जिसका विश्वास नहीं है, उसकी अद्वैत प्रभु की सेवा निश्चय ही निष्फल है ।। १५९ ।। अब महाप्रभु विश्वम्भर वैष्णवों के साथ प्रति दिन कीर्तन करते हैं ।। १६० ।। श्री विश्वम्भर को देख-देख कर सभी बड़े प्रसन्न होते हैं, पर कोई अपने नाथ को पहचान नहीं पाता है ।। १६१ ।। हाँ, प्रभु का परम भावावेश सबसे विलक्षण होता है, उसे देख २ कर सब के चित्त में विशेष सन्देह तो हो आता है ।। १६२ ।। जिस समय प्रभु को आनन्द में आवेश हो आता है, उसे मैं क्या कह सकता हूँ, उसे तो केवल शेष भगवान् ही जानते हैं ।। १६३ ।। प्रभु के कम्प होते समय सौ सौ जने भी उनको पकड़ कर स्थिर नहीं

शतेक-जनेओ कम्प धरिवारे नारे। लोचने वहये शतशत नदी धारे ॥१६४॥
कनक-पनस येन पुलकित-अङ्ग। क्षणे क्षणे अट्ट अट्ट हासे बहु रङ्ग ॥१६५॥
क्षणे हय आनन्द मूर्च्छित प्रहरेक। बाह्य हेले ना बोलये कृष्ण-व्यतिरेक ॥१६६॥
हुङ्कार शुनिते दुइ श्रवण विदरे। 'तारे अनुग्रहे ताँर भक्त सब तरे' ॥१६७॥
सर्व-अङ्ग स्तम्भा कृति क्षणे क्षणे हय। क्षणे हय सेइ अङ्ग नवनीत मय ॥१६८॥
अपूर्व देखिया सब-भागवत गणे। नर-ज्ञान आर केहो ना करये मने ॥१६९॥
केहो बोले "ए पुरुष अंश-अवतार"। केहो बोले "ए शरीरे कृष्णेर विहार" ॥१७०॥
केहो बोले "शुक किवा प्रह्लाद नारद। केहो बोले "हेन वुझि खण्डिल आपद ॥१७१॥
जत सब भागवत गणेर गृहिणी। ताँहारा बोलये "कृष्ण जन्मिला आपनि" ॥१७२॥
केहो बोले "एइ वुझि प्रभु अवतार। एइ मत मने सभे करेन विचार ॥१७३॥
बाह्य हैले ठाकुर सभार गला धरि। जे क्रन्दन करि, ताहा कहिते ना पारि ॥१७४॥
"कोथा गेले पाइवसे मुरली वदन"। वलिते छाड़ये श्वास, करये क्रन्दन ॥१७५॥
स्थिर हइ प्रभु सब आप्तगण-स्थाने। प्रभु बोले "मोर दुःख करों निवेदने ॥१७६॥
प्रभु बोले "मोहर दुःखेर अन्त नाञि। पाइयाओ हाराइलुँ जीवन-कानाञि ॥१७७॥
सुभार सन्तोष हैल रहस्य शुनिते। श्रद्धा करि सभे वसिलेन चारि भिते ॥१७८॥
कानाञिर-नाट शाला नामे ग्राम। गया हैते आसित देखिलुँ सेइ स्थान ॥१७९॥

रख सकते। नेत्रों से मानों तो सैकड़ो नदियाँ बहने लगती हैं ॥ १६४ ॥ रोमाञ्च और पुलक के कारण श्री अग सोने का कटहल जैसा प्रतीत होता है, और क्षण-क्षण में अनेक प्रकार से अट्टहास करते हैं ॥१६५॥ कभी एक-एक प्रहर तक के लिये आनन्द में मूर्च्छित हो जाते हैं और सचेत होने पर भी कृष्ण २ के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहते हैं ॥ १६६ ॥ उनके हुँकार को सुनने से दोनों कान फटने लग जाते हैं, परन्तु उनकी कृपा से उनके भक्त सब पार हो जाते हैं ॥ १६७ ॥ क्षण १ में आपका सारा शरीर अकड़ कर स्तम्भ जैसा हो जाता है और क्षण भर में वही अंग नवनीत जैसे सुकोमल हो जाता है ॥ १६८ ॥ ऐसी अपूर्व दशा को देख कर सब भक्त वृन्द उनको अब मनुष्य नहीं समझते हैं ॥ १६९ ॥ कोई कहता "यह पुरुष तो अंशावतार है।" कोई कहता "इनके इस शरीर में श्रीकृष्ण विहार करते हैं" ॥ १७० ॥ कोई कहता "यह शुकदेव अथवा प्रह्लाद अथवा नारद जी हैं।" कोई कहता "ऐसा मालूम होता है कि अब हमारी सब आपदाएँ कट जायँगी" ॥ १७१ ॥ भक्त जनों कि जो गृहिणी हैं, वे कहतीं "श्रीकृष्ण ने आप ही जन्म लिया है" ॥ १७२ ॥ कोई कहतीं—"मेरी समझ में ऐसी आती है कि यह प्रभु के अवतार हैं। इस प्रकार सभी अपने २ मन में विचार करती हैं ॥ १७३ ॥ इधर प्रभु जब वाह्य दशा में आते हैं, तो सबका गला पकड़ २ कर जो बिलाप करते हैं, वह मैं कुछ कह नहीं सकता ॥ १७४ ॥ "कहाँ जाने से वे मुरली धारी मिलेंगे" कह २ कर प्रभु लम्बी २ साँस छोड़ते हैं और रोते हैं ॥ १७५ ॥ फिर जब स्थिर होते हैं तो सब आत्मीय जनों से कहते हैं कि "वन्धुओ! मैं तुम लोगों से अपना दुःख निवेदन करता हूँ ॥ १७६ ॥ "मेरे दुःख का अन्त नहीं है। हाय! मैंने अपने जीवन कन्हैया को पाकर के भी गवाँ दिया" ॥ १७७ ॥ यह सुन कर सबको आनन्द हुआ और रहस्य-बात सुनने के लिये वे सब श्रद्धा पूर्वक प्रभु के चारों ओर बैठ गये ॥ १७८ ॥ प्रभु कहने लगे कि—"गया धाम से लौटते समय कन्हाई नाट्यशाला नामक एक ग्राम में मैने देखा कि ॥ १७९ ॥ "तमाल जैसा श्याम वर्ण का एक सुन्दर बालक है। नवीन गुञ्जाओं से खचित उसकी

तमाल-श्यामल एक बालक सुन्दर। नव गुंजा-सहित कुन्तल मनोहर ॥१८०॥
विचित्र-मयूर पुच्छ शोभे तदुपरि। झलमल मणिगण-लखिते ना पारि ॥१८१॥
हाथेते मोहन वंशी परम सुन्दर। चरणे नूपुर शोभे अति-मनोहर ॥१८२॥
नील स्तम्भ जैन भुजे रत्न-अलंकार। श्रीवत्स कौस्तुभवक्षे शोभे मणिहार ॥१८३॥
किकहिब से पीत-धटीर परि धान। मकर-कुण्डल शोभे कमल-नयान ॥१८४॥
आमार समीपे आइला हासिते हासिते। आमा' आलिङ्गिया पलाइला कोन भिते" ॥१८५॥
किरूपे कहेन कथा श्री गौर सुन्दरे। ताँर कृपा विने ताहा के बुझिते पारे। १८६॥
कहिते कहिते मूर्च्छा गेला विश्वम्भर। पड़िला 'हा कृष्ण' बलि पृथिवी-उपर ॥१८७॥
व्यथे व्यथे धरे सभे 'कृष्ण कृष्ण' बलि। स्थिर करि झाड़िलेन श्री अङ्गेर धूलि ॥१८८॥
स्थिर हइयाओ प्रभु स्थिर नाहि हये। 'कोथा कृष्ण। कोथा कृष्ण।' बलिया कान्दये ॥१८९॥
क्षणे के हइला स्थिर श्री गौर सुन्दर। स्वभावे हइला अति नम्र कलेवर ॥१९०॥
परम-सन्तोष-चित्त हइल सभार। शुनिञा प्रभुर भक्ति कथार प्रचार ॥१९१॥
सभे बोले "आमरा सभार बड़ पुण्य। तुमि-हेन सङ्गे सभे हइलाङ धन्य ॥१९२॥
तुमि सङ्गे जार, तार वैकुण्ठे कि करे। तिलेके तोमार सङ्गे भक्ति फल धरे ॥१९३॥
अनुवाल्य तोमार आमरा सर्व जन। सभार नायक हइ करह कीर्त्तन ॥१९४॥
पाषण्डीर वाक्ये दग्ध शरीर सकल। ए तोमार प्रेम जले करह शीतल" ॥१९५॥
सन्तोषे सभार प्रति करिया आश्वास। चलि लेन मत्त-सिंह-प्राय निज-वास ॥१९६॥

---

मनोहर केशावली हैं ॥ १७० ॥ उसके ऊपर विचित्र मोर-पंख शोभा दे रहा है, जिनमें मणि गण झलमला रहे हैं, जिससे दृष्टि ठहर नहीं पाती है ॥ १८१ ॥ "हाथ में परम सुन्दर मोहनी वंशी है, चरणों पर अत्यन्त मनोहर नूपर शोभायमान हैं, ॥ १८२ ॥ नील स्तम्भ सदृश भुजाओं पर रत्नो के अलंकार और वक्षस्थल पर श्रीवत्स, कौस्तुभमणि और मणि हारावली शोभा दे रहे हैं ॥ १८३ ॥ और कमर पर वह कसी हुई पीताम्बर, वह मैं क्या कहूँ। कानों में मकराकृत कुण्डल हैं, कमल सदृश उसके नेत्र हैं ॥ १८४ ॥ ( ऐसा वह सुन्दर बालक है ) वह हँसते २ मेरे समीप आया और मुझे आलिंगन करके न जाने किधर भाग गया" ॥ १८५ ॥ गौर सुन्दर ये बातें किस प्रकार से कह रहे थे, इसे उनकी कृपा बिना कौन समझ सकता है ॥ १८६ ॥ ( उपरोक्त बातें ) कहते कहते श्रीविश्वम्भर प्रभु मूर्च्छित हो गये और 'हा कृष्ण' कहते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ १८७ ॥ कृष्ण २ कहते हुए सब लोगों ने झट-पट प्रभु को पकड़ लिया और स्थिर करके उनके श्री अंग की धूल झाड दी ॥ १८८ ॥ स्थिर होकर के भी प्रभु स्थिर नहीं हो पाते हैं और "कहाँ हैं कृष्ण ?" "कहाँ हैं कृष्ण" कह २ कर रोते हैं ॥ १८९ ॥ कुछ देर में श्रीगौर सुन्दर स्थिर हुए और अत्यन्त नम्र उनका स्वभाव हो गया ॥ १९० ॥ प्रभु की भक्ति-कथा को विस्तार से सुनकर सब भक्तों के चित्त को बड़ा आनन्द हुआ ॥ १९१ ॥ और वे सब बोले कि "हम सबों के बड़े पुण्य है। तुम्हारे जैसों के संग से हम सब धन्य हो गये ॥ १९२ ॥ "तुम जिसके साथ हो, फिर वह वैकुण्ठ में भी क्या करे। तुम्हारे एक तिल भर संग से ही भक्ति फल प्राप्त हो जाता है ॥ १९३ ॥ हम सब लोग तुम्हारे अनुप्रात हैं, तुम हम सबके नायक ( स्वामी ) बनकर कीर्तन करो ॥ १९४ ॥ "पाखण्डियों के वचन रूपी ज्वालाओं से हम सबके शरीर जल रहे हैं। इसे तुम प्रेम जल द्वारा शीतल करो" ॥ १९५ ॥ ( यह सुनकर ) प्रभु ने प्रसन्नतापूर्वक सबको आश्वासन दिया और मत्त सिंह की भाँति अपने घर को चल दिये ॥ १९६ ॥ घर

गृहे आइलेओ नाहि व्यवहार प्रस्ताव। निरन्तर आनन्द-आवेश-आविर्भाव ॥१९७॥
कतवा आनन्द धारा बहे श्री नयने। चरणेर गङ्गा किवा आइला वदने ॥१९८॥
कोथा कृष्ण। कोथा कृष्ण। एइ मात्र बोले। आर केहो कथा नाहि पाय जिज्ञासिले ॥१९९॥
जे वैष्णव ठाकुर देखे न विद्यमाने। ताहारेइ जिज्ञासेन "कृष्ण कोन् खाने" ॥२००॥
वलिया क्रन्दन प्रभु करे अतिशय। जे जाने जे-मत सेइ-मत प्रबोधय ॥२०१॥
एक दिन ताम्बूल लइया गदाधर। सन्तोषे हइला आसि प्रभुर गोचर ॥२०२॥
गदाधरे देखि प्रभु करेन जिज्ञासा। "कोथा कृष्ण आछेन श्यामल,पीतवासा" ॥२०३॥
से आर्ति देखिते सर्व-हृदय विदरे। कि बोल बलिव हेन वचन ना स्फुरे ॥२०४॥
सम्भ्रमे बोलेन गदाधर महाशय। निरवधि आछे कृष्ण तोमार हृदय ॥२०५॥
हृदये आछेन कृष्ण वचन शुनिञा। आपन हृदय प्रभु चिरे नख दिया ॥२०६॥
आथे व्यथे गदाधर दुइ हाथे धरि। नाना मते प्रबोधि राखिला स्थिर करि ॥२०७॥
"एइ आसिवेन कृष्ण स्थिर हओ खानि"। गदाधर बोले,आइ देखिल आपनि ॥२०८॥
वड़ तुष्ट हैला आइ गदाधर-प्रति। "एमत शिशुर बुद्धि नाहि देखि कति ॥२०९॥
मुञि भये नाहि पारों सम्मुख हइते। शिशु हइ केन प्रबोधित भालमते" ॥२१०॥
आइ बोले "बाप ! तुमि सर्वदा थाकिवा। छाड़िया इहार सङ्ग कोथाओ ना जावा" ॥२११॥
अद्भुत प्रभुर प्रेम जोग देखि आइ। पुत्र-हेन ज्ञान आर मने किछु नाइ ॥२१२॥

---

आने पर भी आप घर-गृहस्थी की बातें नहीं करते हैं। आप के शरीर में प्रेमानन्द के कारण निरन्तर आवेश बना रहता है ॥ १९७ ॥ आप के श्री नेत्रों से न जानें कितनी आनन्द-धाराएँ बहती रहती हैं जिन्हें देख ऐसा प्रतीत होता है कि श्री चरणों से निकली हुई गङ्गा तो कहीं श्रीमुख पर न आ गई हों ॥१९८॥ "कृष्ण कहाँ ? कहाँ कृष्ण ?" बस केवल इतना ही बोलते हैं। इसके सिवाय और कोई बात पूछने पर भी नहीं मिलती है ॥ १९९ ॥ जिस किसी वैष्णव भक्त को सामने देख पाते हैं, उसी से पूछते हैं कि "कृष्ण कहाँ हैं ?" ॥ २०० ॥ ऐसा पूछ कर प्रभु अतिशय क्रन्दन करते हैं। भक्त लोग जो जैसा जानता है वह वैसा ही समझाता बुझाता है ॥ २०१ ॥ एक दिन श्रीगदाधर जी ताम्बूल लेकर प्रसन्नता पूर्वक प्रभु के सन्मुख आये ॥ २०२ ॥ गदाधर को देखकर प्रभु पूछते हैं "पीताम्बर धारी साँवला कृष्ण कहाँ है ?" ॥ २०३ ॥ प्रभु की उस आर्ति को देखकर सब का हृदय फटने लगता है। क्या कह कर प्रभु को उत्तर दें वह बात किसी को फुरती नहीं है ॥ २०४ ॥ गदाधर महाशय हड-बडा कर बोल उठे कि "श्रीकृष्ण तो निरन्तर आपके हृदय में ही रहते हैं" ॥ २०५ ॥ "श्रीकृष्ण हृदय में है" यह वचन सुनकर प्रभु नखों से अपना हृदय चीरने लगे ॥ २०६ ॥ गदाधर ने झपट कर जैसे तैसे प्रभु के दोनों हाथ पकड़ लिये और नाना प्रकार से समझाते हुए उनको स्थिर करके रक्खा ॥ २०७ ॥ गदाधर जी बोले—"श्रीकृष्ण अभी आये ही जाते हैं—नेक स्थिर तो होओ"—( ऐसा कहते हुए ) शची माता ने स्वयं देख लिया ॥ २०८ ॥ वे गदाधर पर बड़ी प्रसन्न हुईं ( वे मन में सोचती हैं कि ) "अहो ! बालक में ऐसी बुद्धि तो मैंने कहीं नहीं देखी ॥ २०९ ॥ "मैं तो डर के मारे इसके ( पुत्र के ) सामने नहीं जा सकती हूँ और इसने बालक होकर के भी कैसे सुन्दर ढङ्ग से इसे समझाया" ॥२१० ॥ फिर वे गदाधर से बोलीं कि "वत्स ! तुम तो सदा यहीं रहा करो। इसका साथ छोड़ कर कहीं मत जाओ ॥ २११ ॥ प्रभु के अद्भुत प्रेम-योग को देखकर शची माता उनको अपना पुत्र समझना भूल जाती हैं ॥ २१२ ॥ वे मन में सोचती हैं कि "यह पुरुष मनुष्य नहीं

मने भावे आइ "ए पुरुष नर नहे। मनुष्येर नयने कि एत धारा बहे। २१३॥
नाहि जानि आसियाछे कौन् महाशय"। भय पाइ प्रभुर सम्मुख नाहि हय ॥२१४॥
सर्व-भक्त गण सन्ध्या समय हइले। आसिया प्रभुर गृहे अल्पे अल्पे मिले ॥२१५॥
भक्ति जोग सम्मत जे-सब श्लोक हय। पढ़िते लागिला श्री मुकुन्द-महाशय ॥२१६॥
पुण्य वन्त मुकुन्देर हेन दिव्य ध्वनि। शुनि लेइ आविष्ट हयेन द्विजमणि ॥२१७॥
हरि बोल बलि प्रभु लागिला गर्जिते। चतुर्दिगे पड़े, केहो ना पारे धरिते ॥२१८॥
श्वास, हास, कम्प, स्वेद, पुलक, गर्जन। एक बारे सर्व-भाव दिल दरसन ॥२१९॥
अपूर्व देखिया सुखे गाय भक्त गण। ईश्वरेर प्रेमावेश नहे सम्वरण ॥२२०॥
सर्व निशा जाय जेन मुहूर्तेक प्राय। प्रभातेवा कथञ्चित् प्रभु बाह्य पाय ॥२२१॥
एइ मत निज गृहे श्रीशची नन्दन। निरवधि निशिदिशि करेन कीर्त्तन ॥२२२॥
आरम्भिला महा प्रभु कीर्त्तन प्रकाश। सकल भक्तेर दुःख हय देख नाश ॥२२३॥
'हरि बोल बलि डाके श्रीशची नन्दन। घन घन पाषण्डीर हय जागरण ॥२२४॥
निद्रा सुख भङ्गे बहिर्मुख क्रुद्ध हय। जार जेन मत इच्छा बालीया मरय ॥२२५॥
केहो बोले "ए-गुलार हइलकि बाइ"। केहो बोले "रात्रे निद्रा जाइत ना पाइ" ॥२२६॥
केहो बोले "गोसाञि रुषिबें घन डाके। ए-गुलार सर्व नाश हैव एइ पाके" ॥२२७॥
केहो बोले "ज्ञान-योग एड़िया विचार। परम-उद्धत-हेन सभार व्यभार ॥२२८॥
केहो बोले "किसेर कीर्त्तन केवा जाने। एत पाक करे एइ श्रीवास-बामने ॥२२९॥

है! मनुष्य के नेत्रों से क्या इतनी धाराएँ बह सकती हैं॥ २१३॥ "न जाने यह कौन महापुरुष आया है।" (अतएव) भय पाकर शची मा प्रभु के सामने नहीं जाती हैं॥ २१४॥ (एक दिन) सन्ध्या होते ही भक्त वृन्द थोड़े २ करके सब प्रभु के घर में आ मिले॥ २१५॥ उस समय श्री मुकुन्द महाशय भक्ति-योग-सम्मत श्लोकों को पढ़ने लगे॥२१६॥ पुण्यवान् मुकुन्द का ऐसा दिव्य कण्ठ स्वर है कि उसे सुनते ही द्विजमणि (गौर प्रभु) में भावावेश हो आया॥ २१७॥ और वे 'हरि बोल' कह कर गरजने लगे और चारों ओर गिर पड़ने लगे। कोई भी उनको पकड़ कर रख नहीं पाता॥ २१८॥ श्वास, हास, कम्प, स्वेद, पुलक, गर्जन आदि सब भाव एक साथ ही प्रभु में प्रकट हो गये॥ २१९॥ यह अपूर्व दृश्य देखकर भक्त लोग आनन्द से गाने लगे। (इधर) प्रभु का प्रेमावेश शान्त नहीं होता है॥ २२०॥ रात सारी एक मुहूर्त्त की तरह बीत गयी, प्रभात काल में जैसे तैसे प्रभु बाह्य दशा में आये॥ २२१॥ इस प्रकार श्रीशची नन्दन अपने घर पर दिन रात निरन्तर कीर्त्तन करते हैं॥ २२२॥ श्री मन्महाप्रभु ने कीर्तन का प्रकाश आरम्भ कर दिया, जिसे देख २ सब भक्तों के दुःख नाश होने लगे॥ २२३॥ इधर श्री शची नन्दन बार २ 'हरि बोल' 'हरि बोल' कहकर पुकारते और उधर पाखण्डियों की निद्रा बार बार भंग हो जाती और जागरण होने लगता॥ २२४॥ निद्रा-सुख-भंग के होने से बहिर्मुख लोगों को क्रोध होता और जिसके मन में जो आता वही वह बकने लगता॥ २२५॥ कोई कहता "क्या इन लोगों की वायु बिगड़ गई है? कोई कहता—"क्या करें, इनके मारे रात में सो नहीं पाते"॥ २२६॥ कोई कहता—"इनके बार २ पुकारने से भगवान् नाराज हो जायँगे। इस कर्म से इन लोगों का सर्वनाश हो जायगा"। २२७॥ कोई कहता—"ज्ञान-योग का विचार छोड़ कर, इन लोगों ने बिल्कुल उद्दण्ड चाल पकड़ी है"॥ २२८॥ कोई कहता—"कौन जाने यह किस लिये कीर्तन करते हैं? यह श्रीवास बामन ही यह सब उपद्रव मचा रहा है"॥ २२९॥

मागिया खाइते लागि मिलि चारि भाइ। 'हरि' बलि डाक छाड़े जेन महावाइ ॥२३०॥
मने मने बलिले कि पुण्य नाहि हय। रात्रि करि डाकिले कि पुण्य -जनमय" ॥२३१॥
केहो बोले "आरे भाई। पड़िल प्रमाद। श्रीवासेर बादे हैल देशेर उत्साद ॥२३२॥
आजि मुञि देयाने शुनिलुँ सब कथा। राजार आज्ञाय दुइ नाउ आइसे एथा ॥२३३॥
शुनिलेक नदियाय कीर्तन विशेष। धरिया निवारे हैल राजार आदेश ॥२३४॥
जे-तेदिगे पलाइव श्रीवास-पण्डित। आमा 'सभा' लैया सर्वनाश उपस्थित ॥२३५॥
तखने बलिलुँ मुञि हइया मुखर। श्रीवासेर घर फेलि गङ्गार भितर ॥२३६॥
तखने ना केउ इहा परिहास-ज्ञाने। सर्वनाश हय एवे देख विद्यमाने" ॥२३७॥
केहो बोले "आमरा सभेर-कोन् दाय। श्रीवासे बान्धिया दिव जेवा आसि चाय ॥२३८॥
एइ मत कथा हैल नदिया नगरे। 'राज नौका आइसे वैष्णव धरि बारे' ॥२३९॥
वैष्णव समाजे सब ए कथा शुनिला। गोविन्द स्मङरि सब भय निवारिला। २४०॥
जे करिब कृष्ण चन्द्र-से-इसत्य हय। से प्रभु थाकिते कोन् अध मेरे भय ॥२४१॥
श्रीवास पण्डित बड़ परम उदार। जेइ कथा शुने ताइ प्रतीत ताँहार ॥२४२॥
जवनेर राज्य देखि मने हैल भय। जानि लेन गौरचन्द्र भक्तेर हृदय। २४३॥
प्रभु अवतीर्ण नाहि जाने भक्त गण। जानाइते आरम्भिला श्रीशची नन्दन ॥२४४॥
निर्भये बेड़ाय महा प्रभु विश्वम्भर। त्रिभुवने अद्वितीय मदन सुन्दर ॥२४५॥

---

"माँगने खाने के लिये" चार जने मिल कर "हरि बोल" कह २ कर ऐसे चिल्लाते हैं मानों तो महा वायु का प्रकोप हो गया हो ॥ २३० ॥ "अरे मन-मन में कहने से क्या पुण्य नहीं होता ? क्या रात भर चिल्लाने से ही पुण्य होता है ? ॥ २३१ ॥ कोई कहता—"अरे भाई ! सर्व नाश हो चला ! इस श्रीवास के कलह से देश का नाश हो गया ॥ २३२ ॥ "आज मैंने दिवान जी के यहाँ सब बातें सुनी हैं। राजा की आज्ञा से यहाँ पर दो नौका ( फौज की ) आने वाली हैं ॥ २३३ ॥ "राजा ने सुना है कि नदिया में विशेष कीर्तन होता है, इसलिये उनको पकड़ ले जाने के लिए राजा की आज्ञा हुई है" ॥ २३४ ॥ श्रीबास पंडित तो इधर-उधर कहीं भाग जायगा। हम सबों का ही सर्वनाश होगा ॥ २३५ ॥ "मैंने तो तभी मुख जोर बनकर कह दिया था कि श्रीवास के घर को उखाड़ कर गङ्गा में फेंक दें ॥ २३६ ॥ ( परन्तु ) उस समय तो मेरी बात को हँसी समझ कर तुम लोगों ने कुछ नहीं किया, अब इस समय देख लो सर्वनाश होने वाला है" ॥ २३७ ॥ कोई कहते हैं कि हम लोगों की क्या क्षति है। जो कोई आप के अन्वेषण करेंगे तो श्रीवास को बाँध कर दे देंगे ॥ २३८ ॥ इस प्रकार नदिया नगर में यह बात फैल गई कि "वैष्णवों को पकड़ ले जाने के लिए राजा की नौका आ रही है" ॥ २३९ ॥ वैष्णव समाज ने भी यह बात सुनी परन्तु "गोविन्द २" कह कर श्री भगवान् को स्मरण करते हुए उन्होंने भय को दूर कर दिया ॥ २४० ॥ वे बोले कि—"सच तो वही होगा कि जो श्रीकृष्ण चन्द्र करेंगे ! उन प्रभु के रहते हुए हमें किस अधम का भय है ?" ॥ २४१ ॥ श्रीवास पण्डित परम उदार हैं। वे जो बात सुनते हैं उसी पर विश्वास कर लेते हैं ॥ २४२ ॥ यवनों का राज्य देखकर उनके मन में भय हो गया। भक्त के हृदय की इस बात को श्रीगौर चन्द्र जान गये ॥२४३॥ भक्त लोग नहीं जानते हैं कि प्रभु ने अवतार लिया है, सो अब श्री शचीनन्दन नाना आरम्भ करते हैं ॥ २४४ ॥ कामदेव से भी अति सुन्दर, त्रिभुवन में अद्वितीय रूपवान् महाप्रभु विश्वम्भर (नदिया नगर में) निर्भय विचरते फिरते हैं ॥ २४५ ॥ ( उनकी रूप-माधुरी कैसी है कि ) सुगन्धित चन्दन से सर्वांग चर्चित

सर्वाङ्गे लेपियाछेन सुगन्धि चन्दन। अरुण अधर शोभे कमल-नयन ॥२४६॥
चाँचर-चिकुर शोभे पूर्णचन्द्र-मुख। स्कन्धे उपवीत शोभे मनोहर रूप ॥२४७॥
दिव्य वस्त्र परिधान, अधरे ताम्बूल। कौतुके कौतुके गेला भागीरथी कूल ॥२४८॥
सुकृति जे हय तारा देखिते हरिष। जतेक पाषण्डी सब हय विमर्ष ॥२४९॥
एत भय शुनिञाओ भय नाहि पाय। राजार कुमार जेन नगरे वेड़ाय ॥२५०॥
आर जन बोले "भाइ। बुझिलाङ थाक। जत देख ए सकल पलावार पाक ॥२५१॥
निर्भये चा' हेन चारि दिगे विश्वम्भर। गङ्गार सुन्दर स्रोत पुलिन सुन्दर ॥२५२॥
गावी एक यूथ देखे पुलिनेते चरे। हम्बा-रवकरि आइसे जल खाइ वारे ॥२५३॥
ऊर्द्ध-पुच्छ करि केहो चतुर्दिगे धाय। केहो जुझे, केहो शोये, केहो जल खाय ॥२५४॥
देखिया गर्ज्जये प्रभु करये हुङ्कार। "मुञि सेइ मुञि सेइ" बोले वारेवार ॥२५५॥
एइ मते धाय्या गेला श्रीवासेर घरे। "कि करिस् वासिया।" बोले अहङ्कारे ॥२५६।
नृसिंह पूजये श्रीनिवास जेइ घरे। पुनः पुन लाथि मारे ताहार दुयारे ॥२५७॥
"काहारे पूजिस्वेटा। करिस् कार् ध्यान। जाहारे पूजिस् तारे देख विद्यमान" ॥२५८॥
ज्वलन्त-अनल जेन श्रीवास पण्डित। हइल समाधि-भङ्ग चा हे चारिभित ॥२५९॥
देखे वीरा सने वसि आछे विश्वम्भर। चतुर्भुज-शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धर ॥२६०॥
गर्ज्जिते आछये जेन मत्त-सिंह-सार। वाम-कक्षे तालि दिया करये हुङ्कार ॥२६१॥

---

है, अरुण अधर और कमल सदृश नेत्र शोभा दे रहे हैं ॥ २४६ ॥ शीश पर घुँघराले केशों की शोभा बनी है, श्री मुख पूर्णचन्द्र के समान है। कन्धे पर यज्ञोपवीत शोभित है, मनोहारी आपका रूप है ॥ २४७ ॥ दिव्य वस्त्र पहने हुए, अधरों में पान दिये हुए, कौतुक ही कौतुक में आप श्री भागीरथी के तट पर पधारे ॥ २४८ ॥ जो पुण्यात्मा हैं वे तो प्रभु को देखकर हर्षित होते हैं और पाखण्डी लोग मुरझा जाते हैं ॥२४९॥ ( कोई कहता है कि ) इतने भय की बात होने पर इसे भय नहीं होता—यह राज कुमार की तरह में घूमता फिरता है ॥ २५० ॥ दूसरा कहता है "अरे भाई ! मैं सब बात समझ गया और बातें रहने दो—यह जो कुछ भी तुम देखते हो यह सब भागने के लिये एक चाल है" ॥ २५१ ॥ प्रभु विश्वम्भर निर्भय होकर चारों ओर देख रहे हैं, ( सामने ही ) गङ्गा जी की सुन्दर धारा और सुन्दर पुलिन है ॥ २५२ ॥ प्रभु ने देखा कि पुलिन पर गौओं का एक झुण्ड चर रहा है, वे "हम्बा-हम्बा" करती हुईं पानी पीने के लिये आ रही है ॥ २५३ ॥ कोई पूँछ उठा कर चारों ओर दौड़ती हैं, कोई लड़ती हैं, कोई लेटती हैं और कोई जल पीती हैं ॥ २५४ ॥ यह देखकर प्रभु गरजते हुए हुँकार करते हैं और बारम्बार 'मैं वही हूँ' 'मैं वही हूँ' करते है ॥ २५५ ॥ ऐसा कहते हुए ही वे दौड़ कर श्रीवास के घर पहुँचे और बड़े गर्व के साथ बोले—"अरे बासिया ! तू क्या कर रहा है ?" ॥ २५६ ॥ जिस घर में श्रीनिवास नृसिंह जी की पूजा कर रहे थे, उसके द्वार पर प्रभु बारम्बार लात मारने लगे ॥ २५७ ॥ ( और कहने लगे ) "अरे बेटा ! तू किसकी पूजा कर रहा है ? किसका ध्यान कर रहा है ? अरे ! तू जिसको पूज रहा है उसको सामने देख ले" ॥ २५८ ॥ ज्वलन्त अग्नि सदृश तेज वाले श्रीवास जी की समाधि ( ध्यान ) भंग हो गई और वे चारों ओर देखने लगे। २५९ ॥ तो उन्होंने देखा कि विश्वम्भर चतुर्भुज रूप में शंख, चक्र, गदा, पद्म, धारण किये हुए वीरासन से बैठे हुए हैं ॥ २६० ॥ और मत्त सिंह की भाँति गर्जना कर रहे हैं और बाँई बगल को बजाते हुए हुङ्कार कर रहे हैं ॥ २६१ ॥ यह देखकर श्रीवास का शरीर काँप उठा। वे हक्के-बक्के रह गये और मुख से कुछ भी

देखिया हइल कम्प श्रीवास शरीरे । स्तब्ध हैला श्रीनिवास किछुइना स्फुरे ॥२६२॥
डाकिया बोलये प्रभु "आरे श्रीनिवास । एत दिन ना जानिस् आमार प्रकाश ॥२६३॥
तोर उच्च सङ्कीर्त्तने, नाढार हुङ्कारे । छाड़िया वैकुण्ठ आइलुँ सर्व परिवारे ॥२६४॥
निश्चिन्ते आछह तुमि आमारे आनिया । शान्ति पुरे गेल नाढ़ा आमारे एड़िया ॥२६५॥
साधु उद्धारिमु दुष्ट विनाशिमु सब । तोर किछु चिन्ता नाइ,पढ़ 'मोर स्तव' ॥२६६॥
प्रभुरे देखिया प्रेमे कान्दे श्रीनिवास । घुचिल अन्तर-भय पाइया आश्वास ॥२६७॥
हरिषे पूर्णित हैल सर्व-कलेवर । दाण्डाइया स्तुति करे जुड़ि दुइ कर ॥२६८॥
सहजे पण्डित बड़-महा-भागवत । आज्ञा पाइ स्तुति करे, जेन अभिमत ॥२६९॥
भागवते आछे ब्रह्म-मोहापनोदने । सेइ श्लोक पढ़ि स्तुति करये प्रथमे ॥२७०॥
नौमीड्यतेऽभ्रवपुषे तड़िदम्बराय, गुञ्जा वतंस परिपिच्छ लसन्मुखाय ।
वन्यस्रजे कवल-वेत्र-विषाण-वेणु, लक्ष्मश्रिये मृदु पदे पशु पाङ्गजाय । २७१॥
"विश्वम्भर-चरणे आमार नमस्कार । नव-घन जिनि वर्ण, पीतवास जाँर ॥२७२॥
शचीर-नन्दन पाये मोर नमस्कार । नवगुञ्जा शिखिपुच्छ भूषण जाहार ॥२७३॥
गङ्गा दास-शिष्य प्राये मोर नमस्कार । वनमाला, करे दधि, ओदन जाँहार ॥२७४॥
जगन्नाथ पुत्र-पदे मोर नमस्कार । कोटि चन्द्र जिनि रूप वदन जाँहार ॥२७५॥

---

न बोल सके ॥ २६२ ॥ प्रभु पुकार कर बोले—"अरे श्रीनिवास !" तूने इतने दिन तक मेरे अवतार को नहीं जाना ॥ २६३ ॥ तेरे उच्च संकीर्तन और नाढा ( अद्वैत ) के हुँकार से मैं वैकुण्ठ को छोड़ कर सब परिवार सहित यहाँ आया हूँ ॥ २६४ ॥ तू तो मुझे लाकर निश्चिन्त हो गया है और नाढा मुझे छोड़ कर शान्तिपुर चला गया है" ॥ २६५ ॥ "मैं साधुओं का उद्धार करूँगा और सब दुष्टों का विनाश करूँगा । तू कुछ चिन्ता मत कर, मेरी स्तुति पढ़" ॥ २६६ ॥ प्रभु को देखकर श्रीनिवास प्रेम में रोने लगे । प्रभु का आश्वासन पाकर उसके हृदय का भय दूर हो गया ॥ २६७ ॥ श्रीवास पण्डित एक तो वैसे ही महा भागवत हैं, उस पर प्रभु की आज्ञा हुई है । अब तो उनको मन की हो गई—वे स्तुति करने लगे ॥ २६८ ॥ २६९ ॥ श्रीमद्भागवत में जो ब्रह्मा-मोह-नाश का प्रसंग है, उसी में से ब्रह्मा कृत स्तुति का प्रथम श्लोक पढ़ कर वे स्तुति करते हैं ॥ २७० ॥ "प्रभो ! आपका नव जल धर के समान श्यामल शरीर है, आप विद्युत जैसे झल मलाते हुए पीताम्बर को पहने हुए हैं, कर्णों में गुञ्जाओं के भूषण और शीश पर मोर पंख धारण करने से आपके मुख पर अनोखी छटा छिटक रही है, आपके वक्षः स्थल पर लटकती हुई बनमाला है, बाँईं हथेली पर दही भात का कौर है, बगल में, बेत और सींगा है, और कमर की फेंट पर वंशी है । इन असाधारण चिन्हों से आपकी विशेष शोभा हो रही हैं, पुत्र आप सुकुमार चरण वाले हैं, और पशु पालक नन्दराय के पुत्र हैं । आप ही स्तुति करने योग्य हैं ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ" ॥ २७१ ॥ ( भाग० १०–१४–१ ) "श्री विश्वम्भर के चरणों में मेरा नमस्कार है, जिनका वर्ण नवीन मेघ को भी जीतने वाला है और जो पीताम्बर पहने हुए हैं ॥ २७२ ॥ श्री शचीनन्दन के चरणों में मेरा नमस्कार है जिनका कि नवीन गुञ्जा और मोर पंख ही भूषण है ॥ २७३ ॥ श्री गङ्गादास पण्डित के शिष्य के चरणों में मेरा नमस्कार है, कि जो बनमाला पहने हुए हैं और जिनके हाथ में दही–भात का कौर है ॥ २७४ ॥ श्री जगन्नाथ मिश्र के पुत्र के चरणों में मेरा नमस्कार है, कि जिनके मुख की रूप माधुरी कोटि चन्द्रमाओं को जीतने वाली है ॥ २७५ ॥ जिनके भूषण के चिन्ह सींगा, बेत और वंशी हैं, वही तुम नवद्वीप में अवतीर्ण

शिङ्गा, वेत्र, वेणु चिह्न भूषण आँहार। सेइ तुमि नवद्वीपे कैले अवतार ॥२७६॥
चारि-वेदे जाँरे घोषे 'नन्देर कुमार'। सेइ तुमि, तोमार चरणे नमस्कार" ॥२७७॥
ब्रह्मस्तवे स्तुति करे प्रभुर चरणे। स्वच्छन्दे बोलये-अत आइसे वदने ॥२७८॥
"तुमि विष्णु, तुमि कृष्ण, तुमि यज्ञेश्वर। तोमार चरणोदक-गङ्गा तीर्थवर ॥२७९॥
जानकी वल्लभ तुमि, तुमि नरसिंह। अज-भव-आदि तोर चरणेर भृङ्ग ॥२८०॥
तुमिसे वेदान्त वेद्य, तुमि नारायण। तुमिसे छलिला बलि-हइया वामन ॥२८१॥
तुमि हय ग्रीव, तुमि जगत-जीवन। तुमि नीलाचल चन्द्र-सभार कारण ॥२८२॥
तोमार मायाय कार् नाहि हय भङ्ग। कमला ना जाने-जार सने एक सङ्ग ॥२८३॥
सङ्गी सखा भाइ-सर्व-मते सेवेजे। हेन प्रभु मोह माने'-अन्य जनाके ॥२८४॥
मिथ्या-गृहवासे मोरे पाड़ियाछ भोले। तोमा' ना जानिञा मोर जन्मगेल हेले ॥२८५॥
नाना माया करि तुमि आमारे वञ्चिला। धाजि-धूति आदि करि आमार बहिला ॥२८६॥
ताथे मोर भय नाहि, शुन प्राणनाथ। तुमि-हेन प्रभु मोरे हइला साक्षात ॥२८७॥
आजि मोर सकल-दुःखेर हैल नाश। आजि मोर दिवस हइल परकाश ॥२८८॥
आजि मोर जन्म-कर्म सकल सफल। आजि मोर उदय-सकल सुमङ्गल ॥२८९॥
आजि मोर पितृ कुल हइल उद्धार। आजि से बसति धन्य हइल आमार ॥२९०॥
आजि मोर नयान-भाग्येर नाहि सीमा। ताहा देखि-जाँर श्रीचरण सेवे रमा" ॥२९१॥
बलिते आविष्ट हैला पण्डित-श्रीवास। ऊर्द्ध-बाहु करि कान्दे, छाड़े घन श्वास ॥२९२॥

---

हुए हो ॥ २७६ ॥ चारों वेद जिनको 'नन्द कुमार' कहकर घोषणा करते हैं, वह तुम ही हो। तुम्हारे चरणों में नमस्कार है" ॥ २७७ ॥ (इस प्रकार) श्रीवास पण्डित ब्रह्म-स्तव के द्वारा प्रभु के चरणों में स्तुति निवेदन करते हैं-और जो कुछ मुख में आता है वही निधडक बोलते जाते हैं ॥ २७८ ॥ यथाः-हे प्रभो! तुम विष्णु हो, तुम श्रीकृष्ण हो, तुम यज्ञेश्वर हो। तीर्थ श्रेष्ठ गङ्गा तुम्हारा ही चरणोदक है ॥ २७९ ॥ तुम जानकी-वल्लभ राम हो, तुम नृसिंह हो, ब्रह्मा, शिव, आदि तुम्हारे ही श्रीचरणों के मधुकर हैं ॥ २८० ॥ तुम ही वेदान्त-वेद्य हो, तुम ही नारायण हो, तुमने ही बामन बन कर बलि को छला था ॥ २८१ ॥ तुम हयग्रीव हो, तुम ही जगज्जीवन हो, तुम ही सबके कारण नीला चल निवासी श्रीजगन्नाथ हो ॥ २८२ ॥ तुम्हारी माया से कौन नहीं हारा ? सदा साथ रहने वाली लक्ष्मी जी भी तुम्हें नहीं जानती है ॥२८३॥ जो साथी, सखा, भाई आदि के रूप में सब प्रकार से तुम्हारी सेवा करते हैं, वे प्रभु (बलराम) भी तुम्हारी माया से मोह में पड़ जाते हैं, तो फिर औरों की तो बात ही क्या ? ॥ २८४ ॥ प्रभो! तुमने मुझे भी इस मिथ्या गृहस्थ में भुला रक्खा है। तुम्हें न जानकर मेरा जन्म ऐसे ही व्यर्थ चला गया ॥२८५॥ हे नाथ! तुमने कितने २ छल करके मुझे छला! तुम मेरी पूजा की डाली और धोती तक उठा कर चले ॥ २८६ ॥ उससे मुझे, सुनो प्राण नाथ, भय नहीं है, (प्रसन्नता ही है, कारण कि) तुम जैसे प्रभु मुझे साक्षात् मिल गये ॥ २८७ ॥ आज मेरे समस्त दुःखों का नाश हो गया। आज मेरा शुभ दिवस उदय हुआ ॥ २८८ ॥ आज मेरा जन्म, मेरे कर्म सब सफल हो गये। आज मेरे समस्त सुमंगल उदय हो आये ॥ २८९ ॥ आज मेरे पितृ कुल का उद्धार हो गया। आज मेरा निवास-स्थान धन्य हो गया ॥ २९० ॥ आज मेरे नेत्रों के सौभाग्य की सीमा नहीं है (कारण कि आज मैं) उनको देख रहा हूँ कि जिनके श्री चरणों की लक्ष्मी जी सेवा करती हैं" ॥ २९१ ॥ (इस प्रकार) स्तुति करते २ श्रीवास पण्डित आवेश में

गड़ा गड़ि जाय भाग्यवन्त श्रीनिवास । देखिया अपूर्व गौरचन्द्रे र प्रकाश । २६३॥
कि अद्भुत सुख हैल श्रीवास-शरीरे । डुबिलेन विप्रवर आनन्द-सागरे ॥२६४॥
हासिया शुनेन प्रभु श्रीवासेर स्तुति । सदय हइया बोले श्रीवासेर प्रति ॥२६५॥
"स्त्री-पुत्र-आदि जत तोमार बाड़ीर । देखुक आमार रूप, करह बाहिर ॥२६६॥
सस्त्रीक हइया पूज' चरण आमार । वर माग जेन इच्छा थाकये तोमार ॥२६७॥
प्रभुर पाइवा आज्ञा श्रीवास पण्डित । सर्व-परिकर सह आइला त्वरित ॥२६८॥
विष्णु पूजा-निमित्त जतेक पुष्प छिल । सकल प्रभुर पाये साक्षातेइ दिल । ।२६९॥
गन्ध-माल्य-धूप-दीपे पूजे श्रीचरण । सस्त्रीक हइया विप्र करये क्रन्दन ॥३००॥
भाइ, पत्नि, दास, दासी, सकल लइया । श्रीवास करये काकु चरणे पड़िया ॥३०१॥
श्रीनिवास प्रिय कारी प्रभु विश्वम्भर । चरण दिलेन सर्व-शिरेर उपर ॥३०२॥
अलक्षिते कुले प्रभु माथाय सभार । हासि बोले "मोरे चित्त हउ सभाकार ॥३०३॥
हुङ्कार गर्जन करि प्रभु विश्वम्भर । श्रीनिवास सम्बोधिया बोलेन उत्तर ॥३०४॥
"अये श्रीनिवास ! किछु मने भय पाओ । शुनि तोमा" धरिते आइसे राज-नाओ ॥३०५॥
अनन्त-ब्रह्माण्ड–माझे जत जीव वैसे । सभार प्रेरक आमि आपनार रसे ॥३०६॥
मुञि जदि बोलाङ सेइ राजार शरीरे । तबे से बलिब सेह धरिबार तरे ॥३०७॥
जदि वा एमत नहे, स्वतंत्र हइया । धरि बारे बोले, तबे मुञि चाहों इहा ॥३०८॥
मुञि गिया सर्व-आगे नौकाय चढ़िमु । एइ मत गिया राजगोचर हइमु ॥३०९॥

भर गये और भुजा उठा कर रोने और लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगे ॥२६२ ॥ श्री गौरचन्द्र के अपूर्व प्रकाश को देखकर भाग्यवान् श्रीनिवास धरती पर लोट पोट हो गये ॥ २६३॥ श्रीवास के तन-मन में कैसा अद्भुत सुख हुआ कि विप्रवर आनन्द-सागर में डूब गये ॥ २६४ ॥ प्रभु ने श्रीवास की स्तुति हँसते हँसते सुनी और फिर सदय होकर ( श्रीवास से ) बोले ॥ २६५ ॥ "श्रीवास ! तुम्हारे घर में जितने स्त्री-पुरुष आदि हैं, उन सबको बाहर बुलाओ, वे सब मेरा रूप देखें" ॥ २६६॥ "तुम स्त्री सहित मेरे चरणों की पूजा करो, और जो तुम्हारी इच्छा हो, वही वर माँग लो" ॥ २६७ ॥ प्रभु की आज्ञा पाकर श्रीवास पण्डित अपने परिवार सहित शीघ्र ही आ गया ॥ २६८ ॥ उन्होंने, विष्णु-पूजन के लिये जितने फूल थे, वे सब प्रभु के चरणों में साक्षात् चढ़ा दिये ॥ २६९ ॥ उन्होंने सुगन्धि, माला, धूप, दीप के द्वारा श्री चरणों की पूजा की । स्त्री सहित बिप्रवर रोने लगे ॥ ३०० ॥ फिर भाई, पत्नी, दास, दासी, सब को लेकर वे प्रभु के श्री चरणों में पड़ गये और दीन वचनों द्वारा प्रार्थना करने लगे ॥ ३०१ ॥ श्रीनिवास के प्रिय कर्त्ता श्री विश्वम्भर प्रभु ने सबके सिर पर अपना चरण रख दिया ॥ ३०२ ॥ प्रभु ने अलक्षित रूप से सबके सिर पर हाथ फेरा और हँसकर बोले–"मुझ में सबका चित्त होवे" ॥ ३०३ ॥ फिर हुँकार और गर्जन करते हुए श्रीवास को सम्बोधन करके बोले ॥ ३०४ ॥ "ऐ श्रीनिवास ! क्या तुम मन में कुछ डर रहे हो ? मैं सुनता हूँ कि तुम लोगों को पकड़ने के लिये एक राज-नौका आ रही है ॥ ३०५ ॥ ( तो सुनो ) अनन्त ब्रह्माण्डों में जितने जीव बसते हैं, मैं उन सबका स्वेच्छानुसार प्रेरक हूँ ॥ ३०६ ॥ ( अतएव ) जब मैं उस राजा के शरीर के भीतर से बुलवाऊँगा, तब ही वह पकड़ने के लिये बोलेगा ॥ ३०७ ॥ "यदि ऐसी बातें नहीं हुई और वह स्वतंत्र रूप से पकड़ लाने के लिये आज्ञा करे भी, तो मैं यह करना चाहता हूँ कि ॥ ३०८ ॥ मैं जाकर सबसे पहले नौका पर चढ़ूँगा और इस प्रकार जाकर राजा के सन्मुख पहुँचूँगा

मोरे देखि राजा कि रहिव नृपासने । विह्वल करियाना पाड़िमु सेइ खाने ।।३१०।।
जदि वा एमत नहे, जिज्ञासिव मोरे । सेहो मोर अभीष्ट शुनह कहों तोरे ।।३११।।
शुन शुन अये राजा ! सत्य मिथ्या जान । जतेक मोल्ला काजी सव तोर आन ।।३१२।।
हस्ती,घोड़ा,पशु, पक्षी जत तोर आछे । सकल आनह राजा ! आपनार काछे ।।३१३।।
एवे हेन आज्ञा कर' सकल-काजीरे । आपनार शास्त्र वलि कान्दाउ सभारे ।।३१४।।
ना पारिल तारा जदि एतेक करिते । तवे से आपना' व्यक्त करिव राजाते ।।३१५।।
'सङ्कीर्तन माना कर' ए गुलार बोले । जत तार शक्ति एइ देखिलि सकले ।।३१६।।
मोर शक्ति देख एवे नयन भरिया । एत वलि मत्त-हस्ती आनिव धरिया ।।३१७।।
हस्ती,घोड़ा,मृग,पाखी एकत्र करिया । सेइ खाने कान्दाइमु श्रीकृष्ण वलिया ।।३१८।।
राजार जतेक गण—राजार सहिते । सभा' कान्दाइमु कृष्ण वलि भालमते । ३१९।।
इहाते वाअप्रत्यय तुमि वास' मने । साक्षातेइ करों देख आपन-नयने ।।३२०।।
सम्मुखे देखये एक वालिका आपनि । श्रीवासेर भ्रातृ-सुता—नाम 'नारायणी' ।।३२१।।
अद्यापिह वैष्णव-मण्डले जाँर ध्वनि । 'चैतन्येर अवशेष-पात्र नारायणी ।।३२२।।
सर्व-भूत-अन्तर्यामी—प्रभु गौर चाँद । आज्ञा कैला "नारायणि । कृष्ण वलि काँद" ।।३२३ ।
चारि-वत्सरेर सेइ उन्मत्त-चरित । 'हा कृष्ण' वलिया कान्दे, नाहिक सम्वित ।।३२४।।
अङ्ग वाहि पड़े धारा पृथिवीर तले । परिपूर्ण हैल स्थल नयनेर जले ।।३२५।।

---

।। ३०९ ।। मुझे देखकर राजा क्या अपने राज-आसन पर बैठा रह सकेगा ? क्या मैं उसे विह्वल बना कर वहीं न गिरा सकूंगा ? ।। ३१० ।। यदि ऐसा न हुआ और राजा ने मुझसे कुछ—पूछा तो वह तो मैं चाहता ही हूँ । मैं उसे जो कहूँगा वह तुझसे कहता हूँ सुन ।। ३११ ।। ( मैं कहूँगा ) "अरे राजन् ! सुन-सुन और सत्य-मिथ्या को पहचान । जितने तेरे काजी और मुल्ला है उन सबको बुला ले ।। ३१२ ।। और जितने तेरे हाथी—घोड़ा, पशु—पक्षी हैं, उन सबको अपने पास मँगवा ले ।। ३१३ ।। अब इन सब काजी—मुल्लाओ को आज्ञा कर कि ये अपना शास्त्र ( कुरान ) पढ़कर इन सब पशु-पक्षियों को रुलावें ।। ३१४ ।। यदि वे काजी-मुल्ला ऐसा नहीं कर सके तो फिर मैं अपने को राजा के आगे प्रकट करूंगा ।। ३१५ ।। ( मैं कहूँगा कि ) अरे राजा ! तू इन लोगों के कहने से संकीर्तन बन्द करता है—इनकी जितनी भी शक्ति है वह तो तूने सब देख ही ली ।। ३१६ ।। अब तू आंख खोल करके मेरी भी शक्ति देख । इतना कहकर मैं एक मत वाले हाथी को पकड़ लाऊंगा ।। ३१७ ।। और हाथी-घोड़ा, पशु-पक्षी सबको वहाँ इकट्ठा करूंगा और वहीं पर उन सबको "कृष्ण कृष्ण" कहकर रुलाऊंगा ।। ३१८ ।। और राजा के सहित राजा के जितने लोग हैं, उन सबको "कृष्ण २" कह कर खूब रुलाऊंगा ।। ३१९ ।। यदि तुम्हारे मन में इस बात पर विश्वास नहीं होता है तो मैं तुम्हारे सामने ही करके दिखलाता हूँ, तुम अपनी आँखों से देख लो ।। ३२० ।। श्रीवास की भतीजी नारायणी नाम की एक वालिका को प्रभु ने अपने सामने देखा ।। ३२१ ।। जिसके लिये आज भी वैष्णव मण्डली में यह ध्वनि गाई जाती है "श्री चैतन्यदेव के अवशेष प्रसाद की पात्री नारायणी" ।३२२।। उसके लिये सर्वभूत अन्तर्यामी प्रभु गौरचन्द्र ने आज्ञा की कि—"नारायणी ! कृष्ण २ कह कर रो तो" ।। ३२३ ।। चार वर्ष की वह बालिका प्रेमोन्मत्त हो गई, "हा कृष्ण" "हा कृष्ण" कह कर रोने लगी और कुछ ज्ञान उसे न रहा ।। ३२४ ।। आँसुओं की धारा उसके शरीर को भिगोती हुई पृथ्वी पर बहने लगी और वह स्थान उस जल से भर गया ।। ३२५ ।। तब प्रभु विश्वम्भर हँस २ कर कहने लगे "अरे श्रीवास !

हासिया हासिया बोले प्रभु विश्वम्भर। "एखन तोमार सब घुचिल किङर ॥३२६॥
महा-वक्ता श्रीनिवास—सर्व-तत्त्व जाने। आस्फालिया दुइ भुज बोले प्रभु-स्थाने ॥३२७॥
"काल रूपी तोमार विग्रह भगवाने। जखने सकल सृष्टि संहारिया आने' ॥३२८॥
तखने ना करि भय तोर नाम-बले। एखने किसेर भय, तुमि मोर घरे" ॥३२९॥
बलिया आविष्ट हैला पण्डित-श्रीवास। गोष्ठीर सहित देखे प्रभुर प्रकाश ॥३३०॥
चारि-वेदे जारे देखिवारे अभिलाष। ताहा देखे श्रीवासेर जत दासी दास ॥३३१॥
कि बलिब श्रीवासेर उदार चरित्र। जाहार चरण-धूले संसार पवित्र ॥३३२॥
कृष्ण-अवतार जेन वसुदेव घरे। जतेक विहार सब-नन्देर मन्दिरे ॥३३३॥
जगन्नाथ घरे हैल एइ अवतार। श्रीवास पण्डित गृहे सकल विहार ॥३३४॥
सर्व वैष्णवेर प्रिय—पण्डित-श्रीवास। ताँर बाड़ी गेले मात्र सभार उल्लास ॥३३५॥
अनुभवे जारे स्तव करे वेद मुखे। श्रीवासेर दास दासी ताँरे देखे सुखे ॥३३६॥
एतेके वैष्णव सेवा परम-उपाय। अवश्य मिलये कृष्ण वैष्णव कृपाय ॥३३७॥
श्रीवासेरे आज्ञा कैला प्रभु विश्वम्भर। "ना कहिओ ए सब कथा काहारो गोचर" ॥३३८॥
बाह्य पाइ विश्वम्भर लज्जित-अन्तर। आश्वासिया श्रीवासेरे गेलानिज-घर ॥३३९॥
सुखमय हैल तबे श्रीवास पण्डित। पत्नी, वधू, भाइ, दास, दासीर सहित ॥३४०॥
श्रीवास करिला स्तुति—देखिया प्रकाश। इहा जेइ शुने सेइ हय कृष्णदास ॥३४१॥
अन्तर्जामि-रूपे बलराम भगवान। आज्ञा कैला चैतन्येर गाइते आख्यान ॥३४२॥

---

अब तो तुम्हारा सब भय दूर हो गया न ॥ ३२६ ॥ श्रीवास जी बड़े भारी वक्ता हैं और सर्व तत्त्व के ज्ञाता हैं। वे दोनों भुजा उठाकर प्रभु से बोले—॥ ३२७ ॥ "आपकी काल रूपी भगवन्मूर्त्ति जब समस्त सृष्टि का संहार कर डालती है तब भी मैं आपके बल से भयभीत नहीं होता हूँ, फिर इस समय जब कि आप मेरे घर में हैं, मुझे किसका भय ?" ॥ ३२८ ॥ ३२९ ॥ कहते २ श्रीवास को आवेश हो आया। वे (आनन्द में भरे) परिवार सहित प्रभु के प्रकाश का दर्शन करने लगे ॥ ३३० ॥ चारों वेद जिनके दर्शन की अभिलाषा करते हैं, उनको श्रीवास के सब दास-दासी देख रहे हैं ॥ ३३१ ॥ श्रीवास के उदार चरित्र को मैं क्या बखानूँ कि जिनकी चरण—रज से संसार पवित्र है ॥ ३३२ ॥ जैसे श्रीकृष्ण का अवतार तो वसुदेव जी के घर हुआ परन्तु लीलाएँ सब नन्द बाबा के घर हुईं, ॥ ३३३ ॥ वैसे ही यह गौर अवतार भी हुआ तो श्रीजगन्नाथ जी के घर परन्तु सारी लीलाएँ श्रीवास पण्डित के घर में ही हुईं ॥ ३३४ ॥ श्रीवास पण्डित सब वैष्णवों के बड़े प्रिय हैं। उनके घर जाने में ही सबको बड़ा आनन्द होता है ॥३३५॥ वेद अपने अनुभव ज्ञान के बल से जिनकी केवल मुख से ही स्तुति करते हैं, श्रीवास के दास—दासी उन्हीं को सुख पूर्वक आँखों से देख रहे हैं ॥ ३३६ ॥ इसीलिये वैष्णव सेवा ही श्रीकृष्ण प्राप्ति का परम उपाय है। वैष्णवों की कृपा से श्रीकृष्ण अवश्य मिलते हैं ॥ ३३७ ॥ प्रभु विश्वम्भर ने श्रीवास जी को आज्ञा की कि "तुम यह सब प्रसंग किसी को सुनाना नहीं ॥ ३३८ ॥ पश्चात् बाह्य दशा में आने पर प्रभु विश्वम्भर मन में बड़े लज्जित हुए और श्रीवास को ढाँढस—भरोसा देकर अपने घर चले गये ॥ ३३९ ॥ तब तो श्री-वास पण्डित पत्नी, बधू, भाई, दास—दासी सबके सहित बड़े आनन्द को प्राप्त हुए ॥ ३४० ॥ श्रीवास ने प्रभु के प्रकाश को देखकर जो स्तुति की है उसे जो कोई भी सुनेगा, वह श्रीकृष्ण का दास बन जायगा ॥ ३४१ ॥ भगवान् बलराम ने अन्तर्यामी रूप से मुझको श्रीचैतन्य चरित गाने के लिए आज्ञा की. ( इसी-

वैष्णवेर पाये मोर एइ मनस्काम। जन्म जन्म मोर प्रभु हउ वलराम ॥३४३॥
'नरसिंह' 'यदुसिंह' येन नाम-भेद। एइ मत जान' 'नित्यानन्द' वलदेव' ॥३४४॥
चैतन्य चन्द्रे र प्रिय-विग्रह वलाइ। एवे 'अवधूत चन्द्र' करि जारे गाइ ॥३४५॥
मध्य खण्ड-कथा भाइ। शुन एक चिते। वत्सरेक कीर्तन करिला जेन मते ॥३४६॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चाँद जान। वृन्दावनदास तछु पद युगे गान ॥३४७॥

# अथ तृतीयोऽध्यायः

अवतीर्णौ स्वकारुण्यौ परिछिन्नौ सदीश्वरौ। श्रीकृष्ण चैतन्य-नित्यानन्दौ द्वौभ्रातरौ भजे ॥१॥
जय जय सर्व प्राणनाथ विश्वम्भर। जय नित्यानन्द-गदा धरेर ईश्वर ॥२॥
जय जय अद्वैतादि-भक्तेर अधीन। भक्ति दान देह' प्रभु! उद्धारह दीन ॥३॥
एइ रूपे नवद्वीपे प्रभु विश्वम्भर। भक्ति सुखे भासे लइ सर्व-अनुचर ॥४॥
प्राण हेन सकल सेवक आपनार। 'कृष्ण' वलि कान्दे गला धरिया सभार ॥५॥
देखिया प्रभुर प्रेम सर्व—दास गण। चतुर्दिगे प्रभु वेढ़ि करये क्रन्दन ॥६॥
थाकुक दासेर काज, से प्रेम देखिते। शुष्क काष्ठ—पाषाणादि मिलाय भूमिते ॥७॥
छाड़ि धन, पुत्र, गृह सर्व-भक्त गण। अहर्निशि प्रभु—सङ्गे करेन कीर्त्तन ॥८॥
हइलेन गौरचन्द्र कृष्ण भक्तिमय। जखन जेरूप शुने, सेइ मत हय ॥९॥

---

लिये मैं यह कुछ गा रहा हूँ ) ॥ ३४२ ॥ श्री वैष्णवों के चरणों में मेरी यही प्रार्थना है कि जन्म-जन्म में मेरे प्रभु श्रीबलराम जी हों ॥ ३४३ ॥ जैसे "नरसिंह" "यदुसिंह" में केवल नाम मात्र का ही भेद है वैसे ही "नित्यानन्द" और "वलराम" में भी जानो ॥ ३४४ ॥ श्रीबलराम जी, जिनको अब अवधूत-चन्द्र ( नित्या नन्द ) के नाम से गाते हैं, श्रीचैतन्य चन्द्र के प्रिय विग्रह हैं ॥ ३४५ ॥ भाइयो ! मध्य खण्ड की कथा एकाग्र चित्त से सुनो—जिस प्रकार प्रभु ने एक वर्ष तक कीर्तन किया है—( वह इसमें वर्णित होगी ) ॥ ३४६ ॥ श्रीकृष्ण चैतन्य और श्री नित्यानन्द चन्द्र को अपना सर्वस्व जान कर यह वृन्दावन दास उनके श्रीयुगल चरणों में उनका ही गुण-गान कुछ निवेदन करता है ॥ ३४७ ॥

जो केवल अपनी करुणा से प्रेरित होकर ही अवतीर्ण हुए हैं, जो परिच्छिन्नवत् प्रतीत होते हुए भी सत् अर्थात् नित्य स्वरूप हैं तथा ईश्वर अर्थात् सर्व नियन्ता हैं, उन दोनों भाई श्रीकृष्ण चैतन्य और श्री नित्यानन्द को मैं भजता हूँ, ॥ १ ॥ सब के प्राण नाथ विश्वम्भर की जय हो जय हो। नित्यानन्द और गदाधर के ईश्वर की जय हो जय हो ॥ २ ॥ अद्वैताचार्य आदि भक्तों के अधीन प्रभु की जय हो, जय हो। हे प्रभो ! भक्ति प्रदान करो और दीनों का उद्धार करो ॥ ३ ॥ इस प्रकार श्री विश्वम्भर प्रभु नवद्वीप में अपने सब अनुचर जनों के सहित भक्ति-सुख की सरिता में आनन्द से बहे जा रहे हैं ॥ ४ ॥ आपको अपने सब सेवक प्राण समान प्रिय हैं, आप उनके कण्ठ पकड़-पकड़ कर 'कृष्ण-कृष्ण' कहते हुए रोते हैं ॥ ५ ॥ वे सेवक गण भी प्रभु के प्रेम को देखकर उनको चारों ओर से घेर कर रोते हैं ॥ ६ ॥ सेवकों की बात तो दूर रहे, उस प्रेम को देखकर सूखे काठ और पत्थर भी पिघल कर धूल में मिल जाते है ॥ ७ ॥ सब भक्त जन अपने धन, पुत्र, गृह आदि छोड़ कर प्रभु के साथ दिन रात कीर्त्तन करते हैं ॥ ८ ॥ अब तो गौरचन्द्र कृष्ण-भक्ति मय हो गये हैं। जब जैसी कथा सुनते हैं, उसी भाव में तन्मय हो जाते है

दास्य भावे प्रभु जवे करेन क्रन्दन। हइल प्रहर दुइ गङ्गा–आगमन ॥१०॥
जवे हासे, तवे प्रभु प्रहरेक हासे। मूर्च्छित हइले–प्रहरेक नाहि श्वासे ॥११॥
क्षणे हय स्वानु भाव,–दम्भ करि वैसे। "मुञि सेइ मुञि सेइ" इहा वलि हासे ॥१२॥
"कोथा गेल नाढ़ा बूढ़ा–जे आनिल मोरे। विलाइमु भक्ति रस प्रति-घरे घरे" ॥१३॥
सेइ क्षणे "कृष्ण आरे वाप" वलि कान्दे। आपनार केश आपनार पाये वान्धे ॥१४॥
अक्रूर-जानेर श्लोक पढ़िया पढ़िया। क्षणे पड़े पृथिवीते दण्डवत हैया ॥१५॥
हइ लेन महाप्रभु जे हेन अक्रूर। सेइ मत कथा कहे वाह्य गेल दूर ॥१६॥
"मथुराय चल नन्द ! राम–कृष्ण लैया। धनुर्मख राज महोत्सव देखि गिया ॥१७॥
एइ मत नाना भावे नाना-कथा कहे। देखिया वैष्णव-सव आनन्दे भासये ॥१८॥
एक दिन वराह भावेर श्लोक शुनि। गर्जिया मुरारि-घरे चलिला आपनि ॥१९॥
अन्तरे मुरारि गुप्त-प्रति वड़ प्रेम। हनुमान-प्रति प्रभु रघुनाथ जेन ॥२०॥
मुरारिर घरे गेला श्रीशची नन्दन। सम्भ्रमे करिला गुप्त चरण-वन्दन ॥२१॥
"शूकर शूकर" वलि प्रभु चलि जाय। स्तम्भित मुरारि गुप्त चतुर्दिगे चाय ॥२२॥
विष्णु गृहे प्रविष्ट हइला विश्वम्भर। सम्मुखे देखिला जल भाजन सुन्दर ॥२३॥
वराह-आकार प्रभु हैला सेइ क्षणे। स्वानुभावे गाडु प्रभु तुलिला दशने ॥२४॥
गर्जे जज्ञ वराह–प्रकाशे खुर चारि। प्रभु वोले "मोर स्तुति वोलह मुरारि ॥२५॥

---

॥ ९ ॥ जब प्रभु दास–भाव में रोते हैं तो दो-दो पहर तक उनके नेत्रों से ऐसी अश्रु धाराएँ बहती हैं मानो तो गङ्गा जी ही स्वयं आ गई हों। ॥ १० ॥ प्रभु जब हँसते हैं तो एक २ पहर तक हँसते ही रहते हैं और मूर्च्छित होते हैं तब भी पहर-पहर तक श्वास का पता नहीं चलता है ॥ ११ ॥ और क्षण भर में उनका अपना ईश्वर भाव प्रकट हो जाता है, और तब वे बड़े स्वाभिमान के साथ बैठ जाते हैं और "मैं वही हूँ, मैं वही हूँ" कहते हैं और हँसते हैं ॥ १२ ॥ कभी कहते हैं–"अरे वह बूढ़ा नाडा ( अद्वैत ) कहाँ गया जो मुझे यहाँ ( भूतल पर ) ले आया है। अब मैं घर घर में भक्ति रस लुटाऊँगा" ॥ १३ ॥ और फिर उसी समय–"कृष्ण ! मेरे बाप" कहकर रोते हैं और अपने केश को अपने पैरों से बाँधते हैं ॥ १४ ॥ कभी व्रज-आगमन के समय अक्रूर जी के श्लोकों को पढ़ते हुए पृथ्वी पर दण्डवत् कर गिर पड़ते हैं ॥१५॥ महाप्रभु अक्रूर के भाव में तन्मय होकर मानो तो अक्रूर ही बन गये। वे अपने को भूल गये और अक्रूर की भाँति बचन बोलने लगे ॥ १६ ॥ वे कहने लगे–"नन्दजी ! राम–कृष्ण को लेकर मथुरा को चलो। चल कर राजा का धनुष–यज्ञ महोत्सव देखो" ॥ १७ ॥ इस प्रकार प्रभु नाना प्रकार के भावावेश में नाना प्रकार की बातें कहते हैं और वैष्णव जन यह चरित्र देख २ कर आनन्द धारा में बहे जाते हैं ॥ १८ ॥ एक दिन बराह अवतार का एक श्लोक सुनते ही प्रभु गरजते हुए मुरारि गुप्त के घर को चले ॥ १९ ॥ प्रभु के हृदय में मुरारि के प्रति बड़ा प्रेम है ठीक जैसा हनुमान जी के प्रति प्रभु रघुनाथ जी का है ॥२०॥ जब श्री शचीनन्दन मुरारि गुप्त के घर पहुँचे तो मुरारि गुप्त ने बड़े आदर सम्मान पूर्वक प्रभु की चरण-वन्दना की ॥ २१ ॥ प्रभु "शूकर शूकर" कहते हुए चलते जाते हैं जिसे सुनकर मुरारि गुप्त चकित खड़ा-खड़ा चारों ओर देखता है ॥ २२ ॥ विश्वम्भर देव बिष्णु–मन्दिर में प्रवेश कर गये और सामने ही उन्होंने जल से भरा हुआ एक सुन्दर पात्र देखा ॥ २३ ॥ देखते ही तत्क्षण प्रभु का वराह आकार हो गया और ईश्वर भाव के आदेश में प्रभु ने गडुवे को अपने दाँतों पर उठा लिया ॥ २४ ॥ चार खुरों को प्रकट करते

स्तब्ध हैला मुरारि अपूर्व-दरशने। किबलिव मुरारि, ना आइसे बदने ॥२६॥
प्रभु बोले "बोल बोल किछु भय नाञि। एत दिन नाहि जान' मुञि एइ ठाञि" ॥२७॥
कम्पित मुरारि कहे करिया विनति। "तुमि से जानह प्रभु! तोमार जे स्तुति ॥२८॥
अनन्त-ब्रह्माण्ड जार फणा एक धरे। सहस्र बदन हइ जारे स्तुति करे ॥२९॥
तभु नाहि पाय अन्त, सेइ प्रभु कहे। तोमर स्तवेते आर के समर्थ हये ॥३०॥
जे वेदेर मत करे सकल संसार। सेइ वेद सर्व-तत्त्व ना जाने तोमार ॥३१॥
जत देखि शुनि प्रभु! अनन्त भुवन। तोर लोम कूपे गिया मिलाय जखन ॥३२॥
एक सदा नन्द तुमि जकर जखने। शेल देखि वेदे ताहा जानिव केमने ॥३३॥
अत एव तुमिसे तोमारे जान' मात्र। तुमि जानाइले जाने तोमार कृपा पात्र ॥३४॥
तोमार स्तुति जे मोर कोन अधिकार। एत वलि कान्दे गुप्त करे नमस्कार ॥३५॥
गुप्त-वाक्ये तुष्ट हइ वराह ईश्वर। वेद प्रति क्रोध करि वोलये उत्तर ॥३६॥
"हस्त पाद मुख मोर नाहिक लोचन। वेद मोरे एइ मत करे विडम्वन ॥३७॥
काशी ते पढ़ाय बेटा परकाशानन्द। सेइ बेटा करे मोर अङ्ग खण्ड-खण्ड ॥३८॥
वाखानये वेद मोर विग्रह ना माने। सर्वाङ्गे हइल कुष्ठ, तम्हू नाहि जाने ॥३९॥
सर्व जज्ञ मय: मोर जे अङ्ग पवित्र। अज-भव-आदि गाय जाहार चरित्र ॥४०॥
पुण्य पवित्रता पाय जे अङ्ग-परशे। ताहा 'मिथ्या' वोले बेटा के मन साहसे" ॥४१॥

---

हुए यज्ञ-वराह गरजने लगे और बोले "मुरारि। मेरी स्तुति करो" ॥ २५ ॥ इस अपूर्व दर्शन से मुरारि गुप्त स्तब्ध हो गया क्या बोले ? क्या स्तुति करे ? मुख में कुछ भी तो नहीं आता है ॥ २६ ॥ तब प्रभु बोले—"बोल-बोल ! कोई भय नहीं है !. तुम्हें इतने दिन तक मालूम नहीं था कि मैं इसी ठौर पर हूँ ॥२७॥ तब काँपते हुए मुरारि ने विनय-पूर्वक कहा—"हे प्रभो ! तुम्हारी स्तुति तो तुम ही जानते हो" ॥ २८ ॥ अपने एक फन पर अनन्त ब्रह्माण्डों को धारण करने वाले शेष जी अपने सहस्र मुखों से आप की स्तुति करते है ॥ २९ ॥ "तब भी आपकी महिमा का अन्त नहीं पाते हैं—ऐसा स्वयं शेष प्रभु कहते हैं, तो फिर आप की स्तुति करने में और कौन समर्थ हो सकता है ? ॥ ३० ॥ "जिस वेद के मत पर सब संसार चलता है वे वेद भी आपके सर्व-तत्त्व को नहीं जानते हैं ॥ ३१ ॥ हे प्रभो ! जितने अनन्त भुवन देखने-सुनने में आते है वे सब महा प्रलय काल में जब आपके ही रोम-कूप में लीन हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ तब एक सदा नन्द स्वरूप आप ही रह जाते हैं। उस समय आप जब जो कुछ करते हैं, उसको, कहिये तो सही, वेद कैसे जान सकते हैं ? ॥ ३३ ॥ अतएव आप ही केवल अपने को जानते हो और आपके जनाने पर ही आपका कोई कृपा पात्र जान सकता है ॥ ३४ ॥ ऐसे जो आप हैं, आपकी स्तुति करने का भला मेरा क्या अधिकार है ? "इतना कहकर मुरारि गुप्त रोने लगे और प्रभु को प्रणाम करने लगे ॥ ३५ ॥ वराह भगवान् मुरारि गुप्त के वचनों से प्रसन्न हुए-फिर वेदों के प्रति क्रोध करते हुए बोले ॥ ३६ ॥ "मेरे हाथ, पाँव, मुख, आँख नही है" कह कर वेद मेरी विडम्बना करते हैं ॥ ३७ ॥ "काशी में बेटा प्रकाशानन्द वेद पढ़ाता है। पढ़ाता क्या है वह मेरे शरीर के टुकड़े २ करता है ॥ ३८ ॥ "वह वेद की व्याख्या करता हुआ मेरे शरीर को नहीं मानता है, इसी से उसके सर्वांग में कोढ हो गया है, फिर भी उसकी आँखें नहीं खुलती हैं ॥ ३९ ॥ "मेरा जो पवित्र अंग सर्व यज्ञ मय है, जिसके चरित्र को ब्रह्मा शिव आदि गाते हैं" ॥ ४० ॥ "जिस मेरे अंग के स्पर्श से पुण्य और पवित्रता की प्राप्ती होती है अथवा तो पवित्र भी पवित्र बन जाता है. उसे वह बेटा

"शुनरे मुरारि गुप्त" कहये शूकर। "वेद-गुह्य कहि एइ तोमार गोचर ॥४२॥
आमि यज्ञ वराह—सकल-वेद-सार। आमिसे करिलुँ पूर्वे पृथिवी-उद्धार ॥४३॥
सङ्कीर्त्तन-आरम्भे मोहर अवतार। भक्त-जन राखि दुष्ट करिमु संहार ॥४४॥
सेव केर द्रोह मुञ्रि सहिते ना पारों। पुत्र जदि हय मोर, तथापि संहारों ॥४५॥
पुत्र काटों आपनार सेवक लागिया। मिथ्या नाहि बोलों गुप्त शुन मन दिया ॥४६॥
जे काले करिलुँ, मुञ्रि पृथिवी-उद्धार। रहिल क्षितिर गर्भ—परशे आमार ॥४७॥
हइल 'नरक' नामे पुत्र महाबल। आपने पुत्रेरे धर्म कहिलुँ सकल ॥४८॥
महाराजा हइलेन आमार नन्दन। देव द्विज गुरु भक्त करेन पालन ॥४९॥
दैव दोषे ताहार हइल दुष्ट-सङ्ग। बाणेर संसर्गे हैल भक्त-द्रोह-रङ्ग ॥५०॥
सेव केर हिंसा मुञ्रि ना पारि सहिते। काटिलुँ आपन पुत्र-सेवक राखिते ॥५१॥
जन्मे जन्मे तुमि सेवियाछह आमारे। एतेके सकल तत्त्व कहिल तोमारे" ॥५२॥
शुनिञा मुरारि गुप्त प्रभुर वचन। विह्वल हइया गुप्त करेन क्रन्दन ॥५३॥
मुरारि—सहित गौरचन्द्र जय जय। जय यज्ञ वराह-सेवक-रक्षामय ॥५४॥
एइ मत सर्व-सेव केर घरे घरे। कृपाय जानायेन ठाकुर आपनारे ॥५५॥
चिनिञा सकल भृत्य—प्रभु आपनार। परानन्द मय चित्त हइल सभार ॥५६॥
पाषण्डीरे आर केहो भय नाहि करे। हाटे घाटे सभे 'कृष्ण' गाय उच्चस्वरे ॥५७॥
प्रभु-सङ्गे मिलिया सकल भक्त गण। महानन्दे अहर्निश करये कीर्त्तन ॥५८॥

"मिथ्या" कहने का साहस कैसे करता है ॥ ४१ ॥ फिर वराह भगवान् बोले—"अरे मुरारि सुन ! वेद में भी जो गुप्त है, उसे मैं तुमसे प्रत्यक्ष करता हूँ ॥ ४२ ॥ "मैं यज्ञ वराह-सब वेदों का सार हूँ। मैंने ही पूर्व-काल में पृथ्वी का उद्धार किया था ॥ ४३ ॥ "यह मेरा अवतार संकीर्त्तन—प्रचार के लिये हुआ है। मैं भक्त जनों की रक्षा करके दुष्टों का संहार करूँगा ॥ ४४ ॥ "मेरे सेवक से द्रोह—यह मैं सह नहीं सकता हूँ वह मेरा पुत्र ही क्यों न हो, उसे भी मैं मार डालता हूँ ॥ ४५ ॥ "अपने सेवक के लिये मैं अपने पुत्र को भी काट डालता हूँ। मुरारि गुप्त ! यह मैं मिथ्या नहीं कह रहा हूँ—ध्यान देकर सुनो ॥ ४६ ॥ "जिस समय मैंने पृथ्वी का उद्धार किया था उस समय मेरे स्पर्श से पृथ्वी देवी के गर्भ रह गया था ॥ ४७ ॥ "उससे 'नरक' नाम का एक बड़ा बलवान पुत्र हुआ। उस अपने पुत्र को मैंने धर्म का सब तत्त्व समझा दिया ॥ ४८ ॥ "पीछे जाकर मेरा पुत्र महा राजा हुआ—और वह देव, द्विज, गुरु और भक्तों का पालन करने लगा ॥ ४९ ॥ "परन्तु दुर्भाग्य वश वह दुष्ट—संग में पड़ गया बाणासुर के दुष्ट संग से उस पर भक्त द्रोह का रङ्ग चढ़ गया ॥ ५० ॥ "परन्तु मैं तो अपने सेवकों के प्रति हिंसा सह नहीं सकता—इसी से अपने सेवकों की रक्षा के लिये मैंने अपने पुत्र नरकासुर को मार डाला ॥ ५१ ॥ "तुमने जन्म-जन्म में मेरी सेवा की है—इसी कारण मैंने ये सब तत्त्व तुमसे कह सुनाया" ॥ ५२ ॥ इस प्रकार प्रभु के वचनों को सुनकर मुरारि गुप्त आनन्द में विह्वल हो कर रोने लगा ॥ ५३ ॥ मुरारि गुप्त के सहित गौरचन्द्र की जय हो जय हो ! सेवकों की रक्षा करना हो जिनका धर्म है उन यज्ञ वराह भगवान् की जय हो ॥ ५४ ॥ इस प्रकार प्रभु गौरचन्द्र सब सेवकों के घर-घर में जा जाकर कृपा करके अपने स्वरूप को प्रकट करने लगे ॥ ५५ ॥ सेवक जनों के हृदय भी अपने प्रभु को पहचान कर परमानन्द से पूर्ण हो गये ॥ ५६ ॥ अब तो कोई भक्त पाखण्डियों का भय नहीं करते और हाट-बाट-घाट में सब ऊँचे स्वर से 'कृष्ण कृष्ण' गाते हैं ॥ ५७ ॥

मिलिला सकल भक्त बइ नित्यानन्द । भाइ ना देखिया बड़ दुखी गौरचन्द्र ।।५९।।
निरन्तर नित्यानन्द स्मरे विश्वम्भर । जानि लेन नित्यानन्द अन्तर ईश्वर ।।६०।।
प्रसङ्गे शुनह नित्यानन्देर आख्यान । सूत्र रूपे जन्म-कर्म किछु कहि तान ।।६१।।
राढ़-माझे एक चाका नामे आछे ग्राम । जहिं जन्मि लेन नित्यानन्द भगवान ।।६२।।
मौड़ेश्वर-नामे देव आछें कथो दूरे । जाँरे पूजियाछें नित्यानन्द हल धरे ।।६३।।
सेइ ग्रामे वैसे विप्र हाड़ाइ–पण्डित । महा-विरक्तेर प्राय दयालु–चरित ।।६४।।
ताँर पत्नी–पद्मावती नाम पतिव्रता । परम-वैष्णवी शक्ति–सेइ जगन्माता ।।६५।।
परम-उदार दुइ ब्राह्मण ब्राह्मणी । ताँर घरे नित्यानन्द जन्मिला आपनि ।।६६।।
सकल-पुत्रेर ज्येष्ठ–नित्यानन्द-राय । सर्व सुलक्षण देखि नयन जुड़ाय ।।६७।।
तान बाल्य लीला आदि खण्डे से विस्तर । एथाय कहिले हय ग्रन्थ बहुतर ।।६८।।
एइ मत कथो-दिन नित्यानन्द राय । हाड़ाइ पण्डित घरे आछेन लीलाय ।।६९।।
गृह छाड़ि बारे प्रभु करि लेन मने । ना छाड़े जननी-तात-दुःखेर कारणे ।।७०।।
तिल–मात्र नित्यानन्द ना देखिले माता । जुग प्राय हेन वासे ततोधिक पिता ।।७१।।
तिल मात्र नित्यानन्द–पुत्रे रे छाड़िया । कोथाओ हाड़ाइ ओझा नाजाय चलिया ।।७२।।
किवा कृषि कर्मे किवा जजमान घरे । किवा हाटे किवा घाटे जत कर्म करे ।।७३।।
पाछे जदि नित्यानन्द चन्द्र चलि जाय । तिलार्द्धे शतेक बार उलटिया चाय ।।७४।।

और सब भक्त लोग प्रभु के साथ मिलकर बड़े आनन्द से रात दिन कीर्तन करते हैं ।। ५८ ।। एक श्रीनित्यानन्द को छोड़ सब भक्त प्रभु से आ मिले हैं–परन्तु भाई ( निताई ) को न देखकर प्रभु बड़े दुखी रहते हैं ।। ५९ ।। विश्वम्भर देव निरन्तर नित्यानन्द का स्मरण करते हैं । विश्वम्भर के मन के इस दुःख को अन्तर्यामी नित्यानन्द भी जान गये ।। ६० ।। अब प्रसंग वश श्रीनित्यानन्द प्रभु की कथा भी सुनो । मैं सूत्र रूप से उनके जन्म-कर्म को कुछ कहता हूँ ।। ६१ ।। राढ़ देश में 'एक चाका' नामक एक ग्राम है–जहाँ श्रीनित्यानन्द भगवान् का जन्म हुआ था ।। ६२ ।। वहाँ से थोड़ी दूर पर "मौडेश्वर" नाम के महादेव हैं जिनकी पूजा हलधर नित्यानन्द जी ने की थी ।। ६३ ।। उस ग्राम में हाडाइ पण्डित नाम के एक ब्राह्मण रहते थे । वे बड़े विरक्त जैसे और दयालु स्वभाव के थे ।। ६४ ।। उनकी पत्नी पद्मावती जी बड़ी पतिव्रता हैं, परम वैष्णवी शक्ति हैं, जगन्माता ही हैं ।। ६५ ।। ब्राह्मण-ब्राह्मणी दोनों बड़े उदार हैं, उनके घर में स्वयं श्री नित्यानन्द जी प्रकट हुए हैं ।। ६६ ।। उनके सब पुत्रों में श्री नित्यानन्दराय बड़े हैं–सर्व-सुलक्षण युत हैं–आपके दर्शन करके सब के नयन शीतल हो जाते हैं ।। ६७ ।। उनकी बाललीला आदि खण्ड में विस्तार पूर्वक कह आये हैं, यहाँ पर फिर कहने से ग्रन्थ बहुत बड़ा हो जायगा ।। ६८ ।। इस प्रकार कुछ दिन नित्यानन्द राय हाडाइ पण्डित के घर में लीला करते रहे ।। ६९ ।। फिर प्रभु ( नित्यानन्द ) ने घर छोड़ने का विचार किया परन्तु माता पिता दुखी होंगे सोच कर वे तुरन्त घर नहीं छोड़ सके ।। ७० ।। एक तिल भर समय नित्यानन्द जी को न देखने पर माता जी को एक युग के समान लगता है और पिता जी को तो उससे भी अधिक प्रतीत होता है ।। ७१ ।। पिता हाडाइ ओझा तो तिल मात्र भी नित्यानन्द को छोड़ कर कहीं नहीं जाते हैं ।। ७२ ।। चाहे खेत में जाना हो या यजमान के घर, हाट–बाजार में जाना हो या घाट में न्हाने को, जो भी कार्य क्यों न हो ।। ७३ ।। नित्यानन्द चन्द्र यदि उनके पीछे-पीछे नहीं आते हैं तो वे आधे क्षण में सौ २ बार मुड़ २ कर पीछे देखते हैं ।। ७४ ।। और पकड़ २ कर बारम्बार आलिगन

धरिया धरिया पुन आलिङ्गन करे लुनीर पुतलि जेन मिलाय शरीरे ।७५।
एइ मत पुत्र-सङ्ग बुले सर्व्व ठाँइ । प्राण हैला नित्यानन्द, शरीर हाड़ाइ ।।७६।।
अन्तर्जामी नित्यानन्द इहा सब जाने । पितृ सुख-धर्म पालि आछे पिता सने ।।७७।।
दैवे एक दिन एक संन्यासी सुन्दर । आइ लेन नित्यानन्द जन केर घर ।।७८।।
नित्यानन्द पिता ताने भिक्षा कराइया । राखि लेन परम-आनन्द युक्त हैया ।।७९।।
सर्व्व रात्रि नित्यानन्द पिता ताँर सङ्ग । आछि लेन कृष्ण कथा-कथन-आनन्दे ।।८०।।
गन्तु काम संन्यासी हइला ऊषःकाले । नित्यानन्द पिता प्रति न्यासिवर बोले ।।८१।।
न्यासिबोले"एक भिक्षा आछये आमार । नित्यानन्दपिता बोले" जे इच्छा तोमार ।।८२।।
न्यासी बोले "करिवाङ तीर्थ-पर्जटन । संहति आमार भाल नाहिक ब्राह्मण ।।८३।।
एइ जे सकल-ज्येष्ठ-नन्दन तोमार । कथो दिन लागि देह' संहति आमार ।।८४।।
प्राण-अतिरिक्त आमि देखिब उहाने । सर्व-तीर्थ देखिवेन विविध-विधाने" ।।८५।।
शुनिञा न्यासीर वाक्य शुद्ध विप्रवर । मने मने चिन्ते बड़ हइया कातर ।।८६।।
"प्राण भिक्षा करि लेन आमार संन्यासी । ना दिलेओ 'सर्व नाश हय' हेन वासि ।।८७।।
भिक्षु केरे पूर्वे महापुरुष सकल । प्राण दान दिया छेन करिया मङ्गल ।।८८।।
रामचन्द्र पुत्र—दशरथेर जीवन । पूर्वे विश्वामित्र ताहे करिला जाचन ।।८९।।
जद्यपिह राम-विने राजा नाहि जीये । तथापि दिलेन—एइ पुराणेते कहे ।।९०।।
सेइ त वृत्तान्त आजि हइल आमारे । ए धर्म संङ्कटे कृष्ण । रक्षा कर' मोरे" ।।९१।।

---

करते हैं—मानो तो नित्यानन्द चन्द्र मक्खन की पुतली हों जिसे वे अपने शरीर में मिला हो लेते हों ।।७५।। इस प्रकार वे पुत्र को लेकर ही सर्वत्र आते जाते है । अधिक क्या कहें बस हाडाइ पण्डित के शरीर के लिये नित्यानन्द जी प्राण बन गये ।। ७६ ।। अन्तर्यामी नित्यानन्द जी यह सब जानते हैं—और पिता को सुख पहुँचाना जो पुत्र का धर्म है उसे पालन करते हुए पिता के साथ-साथ रहते हैं ।। ७७ ।। दैवेच्छा से एक दिन एक सुन्दर सन्यासी नित्यानन्द जी के पिता के घर आ गये ।। ७८ ।। नित्यानन्द जी के पिता ने उनको भोजन करा कर अपने यहाँ बड़े आनन्द से ठहराया ।। ७९ ।। और सारी रात श्रीकृष्ण कथा कहते सुनते हुए उनके ही पास वे बड़े आनन्द से रहे ।। ८० ।। प्रातः काल संन्यासी जी जाने के लिये तैयार हुये तो नित्यानन्द जी के पिता से बोले ।। ८१ ।। "मेरी एक भिक्षा की प्रार्थना है । नित्यानन्द के पिता बोले—"कहिये—क्या इच्छा है ?" ।। ८२ ।। संन्यासी जी बोले—"मेरे मन में तीर्थ भ्रमण का विचार है परन्तु साथ में कोई अच्छा सा ब्राह्मण नहीं है ।। ८३ ।। "यह जो आपका सबसे बड़ा पुत्र है, उसे कुछ दिन के लिये मेरे साथ दे देवें ।। ८४ ।। "मैं अपने प्राणों से भी अधिक इनकी सँभाल करूँगा, और नाना प्रकार के सब तीर्थों के दर्शन भी इनको हो जायँगे" ।। ८५ ।। संन्यासी के वचनों को सुनकर शुद्ध हृदय वाले विप्रवर ( हाडाइ ) बड़े दुखी होकर मन ही मन सोचने लगे ।। ८६ ।। "हाय ! संन्यासी जी ने पुत्र की नहीं मेरे प्राण की ही भिक्षा माँगी हैं अब यदि नहीं देता हूँ तो कहीं हमारा सर्वनाश न हो जाय ।। ८७ ।। "पूर्व काल में सब महापुरुषों ने भिक्षुकों को आनन्द पूर्वक प्राण दान कर दिये हैं ।। ८८ ।। "पूर्व समय मे विश्वामित्र जी ने दशरथ जी के जीवन स्वरूप उनके पुत्र श्रीरामचन्द्र जी को माँगा था ।। ८९ ।। "यद्यपि श्रीराम के विना राजा दशरथ जी नहीं सकते थे, तथापि उन्होंने पुत्र को दे दिया—ऐसा ही तो पुराण कहते हैं ।। ९० ।। "वैसा ही प्रसंग आज मेरे सामने भी आ पड़ा है । हे कृष्ण ! इस धर्म संकट में मेरी

दैवे सेइ वस्तु, केने नहिब से मति। अन्यथा लक्ष्मण केने गृहेते उत्पति ॥९२॥
चिन्तिया ब्राह्मण गेला ब्राह्मणीर स्थाने। आनु पूर्वं कहि लेन सब विवरणे ॥९३॥
शुनिञा बलिला पतिव्रता जगन्माता। जे तोमार इच्छा प्रभु। सेइ मोर कथा" ॥९४॥
आइला संन्यासि-स्थाने नित्यानन्द पिता। न्यासीरे दिलेन पुत्र नोङाइया माथा ॥९५॥
नित्यानन्द लइ चलि लेन न्यासिवर। हेन मते नित्यानन्द छाड़ि लेन घर ॥९६॥
नित्यानन्द गेले मात्र हाड़ाइ-पण्डित। भूमिते पड़िला विप्र हइया मूर्च्छित ॥९७॥
से विलाप क्रन्दन कहिब कोन् जने। विदरे पाषाण काष्ठ ताहार श्रवणे ॥९८॥
भक्ति रसे जड़ प्राय हइला विह्वल। लोके बोले "हाड़ो ओझा हइला पागल" ॥९९॥
तिन मास ना करिला अन्नेर ग्रहण। चैतन्य प्रभावे सबे रहिल जीवन ॥१००॥
प्रभु केने छाड़े, जार हेन अनुराग। विष्णु-वैष्णवेर एइ अचिन्त्य प्रभाव ॥१०१॥
स्वामि होना देवहूति-जननी छाड़िया। चलिला कपिल-प्रभु निरपेक्ष हइया ॥१०२॥
व्यास-हेन वैष्णव जनक छाड़ि शुक। चलिला—उलटि नाहि चाहि लेन मुख ॥१०३॥
शची-हेन जननी छाड़िया एकाकिनी। चलिलेन निरपेक्ष हइ न्यासि मणि ॥१०४॥
परमार्थे एइ त्याग त्याग कभू नहे। ए सकल कथा बूझे कोन् महाशये ॥१०५॥
ए सकल लीला जीव-उद्धार—कारणे। महाकाष्ठ द्रवे जेन इहार श्रवणे ॥१०६॥
जेन पिता-हाराइया श्रीरघुनन्दने। निर्भरे शुनिले ताहा कान्दये जवने ॥१०७॥

---

रक्षा करो!" ॥ ९१ ॥ दैव योग से हाडाइ पंडित वही राजा दशरथ ही तो हैं, फिर क्यों न इनकी भी वैसी ही बुद्धि होगी। यदि ये राजा दशरथ न होते तो इनके घर लक्ष्मण जी ( नित्यानन्द ) क्यों जन्म लेते ? ॥ ९२ ॥ मन-ही-मन में ऐसा सोच विचार करते हुए हाडाइ पण्डित अपनी ब्राह्मणी ( पद्मावती ) के पास गये और यथा क्रम सब बातें कह सुनायीं ॥ ९३ ॥ सुन करके पतिव्रता जगन्माता बोलीं "प्रभो! आपको जो इच्छा है वही मेरी भी समझें ॥ ९४ ॥ तब नित्यानन्द जी के पिता संन्यासी जी के समीप आये और मस्तक नमा कर अपना पुत्र प्रदान कर डाला ॥ ९५ ॥ तब संन्यासी प्रवर नित्यानन्द जी को लेकर चले गये। इस प्रकार श्री नित्यानन्द जी ने गृह-त्याग किया ॥ ९६ ॥ नित्यानन्द जी के चले जाते ही हाडाइ पण्डित मूर्च्छा खाकर भूमि पर गिर पड़े ॥ ९७ ॥ पुत्र-शोक में उनका वह विलाप-वह क्रन्दन कौन कह सकता है। उसको सुनकर काष्ठ और पाषाण भी विदीर्ण हो जायें ॥ ९८ ॥ वे भक्ति रस में विह्वल होकर जडवत् हो गये और लोग कहने लगे कि "हाडाइ ओझा तो पागल हो गया है" ॥ ९९ ॥ तीन महीने तक उन्होंने अन्न ग्रहण नहीं किया केवल चैतन्य चन्द्र के प्रभाव से ही वे जीवित रहे ॥ १०० ॥ भला जिसका ऐसा अनुराग हो, उसको प्रभु ( नित्यानन्द ) छोड़ते क्यों हैं ? विष्णु और वैष्णवों का ऐसा ही कुछ अचिन्त्य प्रभाव है ॥ १०१ ॥ देखो, पति हीन देवहूति माता की ओर से निरपेक्ष हो करके भगवान् कपिल उनको छोड़ कर चले गये ॥ १०२ ॥ और श्रीव्यास जी जैसे वैष्णव पिता को छोड़कर श्रीशुकदेवजी चले गये—एक बार मुड़ करके भी नहीं देखा ॥ १०३ ॥ और शची जैसी माता को अकेली छोड़ कर, निरपेक्ष होकर संन्यासी मणि गौरचन्द्र चले गये ॥ १०४ ॥ ये सब त्याग परमार्थ-दृष्टि में त्याग नहीं है— इस बात को कोई विरला महाशय ही समझता है ॥ १०५ ॥ ये सब लीलाएँ जीव—उद्धार के निमित्त होती हैं—इनके सुनने से कठोर काठ भी पिघल जाता है ॥ १०६ ॥ श्रीराम जी के वन चले जाने पर उनके पिता दशरथ ने प्राण त्याग कर दिया—इसे सुनने पर यवन भी रोते हैं ॥ १०७ ॥ इस प्रकार श्री नित्यानन्द राय

हेन मते गृह छाड़ि नित्यानन्द राय । स्वानु भावा नन्दे तीर्थ करि बारे जाय ॥१०८॥
गया काशी प्रयाग मथुरा द्वारावती । नर नारायणाश्रमे गेला महामति ॥१०९॥
वौद्धाश्रम दिया गेला व्यासेर आलय । रङ्ग नाथ, सेतुवन्ध, गेलेन मलय ॥११०॥
तवे अनन्तेर पुर गेला महाशय । अमेन निर्जन-वने परम-निर्भय ॥१११॥
गोमती, गण्डकी, गेला सरयू, कावेरी । अयोध्या, दण्ड कवन वुलेन बिहरि ॥११२॥
त्रिमल्ल, वेङ्कट नाथ, सप्त गोदावरी । महेश्वर-स्थान गेला कन्यका नगरी ॥११३॥
रेवा माहिष्मति मनु तीर्थ हरिद्वार । जहिं पूर्वे अवतार हइल गङ्गार ॥११४॥
एइ मत जत तीर्थ नित्यानन्द राय । सव देखि पुन आइलेन मथुराय ॥११५॥
चिनितेना पारे केहो अनन्तेर धाम । हुङ्कार करये देखि पूर्व जन्म-स्थान ॥११६॥
निरवधि वाल्य भाव, आन नाहि स्फुरे । धूला खला खेले वृन्दावनेर भितरे ॥११७॥
आहारेर चेष्टा नाहि करये कोथाय । बाल्य भावे वृन्दावने गड़ा गड़ि जाय ॥११८॥
केहो नाहि बुझे तान चरित्र उदार । कृष्ण रस विने आर ना करे आहार ॥११९॥
कदाचित् कोनो दिने करे दुग्ध पान । सेहो जदि अजाचित केहो करे दान ॥१२०॥
एइ मत वृन्दावने वैसे नित्यानन्द । नव द्वीपे प्रकाश हइला गौरचन्द्र ॥१२१॥
निरन्तर संङ्कीर्तन-परम आनन्द । दुःख पाय प्रभु ना देखिया नित्यानन्द ॥१२२॥
नित्यानन्द जानि लेन प्रभुर प्रकाश । जे अवधि लागि करे वृन्दावने वास ॥१२३॥
जानिञा आइला झाट नवद्वीप पुरे । आसिया रहिला नन्दन-आचार्येर घरे ॥१२४॥

---

गृह को त्याग कर स्वानु भव के आनन्द में भरपूर, तीर्थ यात्रा को निकल जाते हैं ॥ १०८ ॥ महामति नित्यानन्द जो गया, काशी, प्रयाग, मथुरा, द्वारिका तथा नर-नारायण के बद्रिकाश्रम को गये ॥ १०९ ॥ फिर बौद्धाश्रम होते हुए व्यास जी के आश्रम रंगनाथ सेतुबन्ध तथा मलय पर्वत को गये ॥ ११० ॥ फिर महाशय नित्यानन्द जी अनन्त पुर को गये और निर्जन वन में निर्भय विचरने लगे ॥ १११ ॥ फिर गोमती, गण्डकी, सरयू, कावेरी, अयोध्या में जा जाकर आनन्द पूर्वक भ्रमण किया ॥ ११२ ॥ फिर त्रिमल्ल, वेंकट नाथ, सप्त गोदावरी, महेश्वर स्थान और कन्या कुमारी को गये ॥ ११३ ॥ और फिर नर्मदा, माहिस्मति ( वर्तमान महेश्वर पुर ) मनु तीर्थ और हरिद्वार गये जहाँ पूर्वकाल में गङ्गाजी हिमाचल से नीचे उतरीं थीं ॥ ११४ ॥ इस प्रकार नित्यानन्द राय ने जितने भी तीर्थ हैं, उन सबके दर्शन किये, और फिर वे दूसरी बार मथुरा में आये ॥ ११५ ॥ अनन्त तत्त्व के आश्रय स्वरूप अथवा अनन्त देव के तेज को कौन पहचान सकता है । आप अपने पूर्व जन्म स्थान को देखकर हुँकार करने लगे ॥ ११६ ॥ यहाँ आपको निरन्तर बाल भाव का ही आवेश रहता है—और कोई भाव नहीं आता है । इस बाल भाव में वे वृन्दावन में धूल में खेलते रहते हैं ॥ ११७ ॥ कहीं कोई भी आहार की चेष्टा नहीं है—बस बाल भाव में वृन्दावन की रज में लोट-पोट होते रहते हैं ॥ ११८ ॥ उनके उदार चरित्र को कोई नहीं समझ पाता है—वे एक कृष्ण रस के बिना और कुछ भोजन नहीं करते हैं ॥ ११९ ॥ कभी किसी दिन दूध पी लेते हैं परन्तु वह भी यदि कोई बिन माँगे दे जाय तो ॥ १२० ॥ इस प्रकार नित्यानन्द जो वृन्दावन में निवास कर रहे हैं कि इतने में उधर नवद्वीप में गौरचन्द्र का प्रकाश हुआ ॥ १२१ ॥ प्रभु गौरचन्द्र निरन्तर संकीर्तन के परम आनन्द में मग्न रहते हैं—फिर भी नित्यानन्द जी को न देखकर बड़ा दुख पाते हैं ॥ १२२ ॥ नित्यानन्द जी प्रभु के प्रकाश को जान गये । इसी प्रकाश की प्रतीक्षा में हरि तोबे वृन्दावन वास कर रहे थे ॥ १२३ ॥ प्रकाश

नन्दन-आचार्य महा भागवतोत्तम। देखि महा तेजो राशि जेन सूर्य-सम ॥१२५॥
महा-अवधूत-वेश-प्रकाण्ड शरीर। निरवधि-गति स्खले देखि महा-धीर ॥१२६॥
अहर्निश वदने बोलये कृष्ण नाम। त्रिभुवने अद्वितीय चैतन्येर धाम ॥१२७॥
निजानन्दे क्षणे क्षणे करये हुङ्कार। महा-मत्त जेन बलराम-अवतार ॥१२८॥
कोटि चन्द्र जिनिञा वदन मनोहर। जगत-जीवन हास सुरङ्ग अधर ॥१२९॥
मुक्ता जिनिञा श्री दशनेर ज्योति। आयत अरुण दुइ लोचन-सुभाति ॥१३०॥
आजानु लम्बित भुज, सुपीवर वक्ष। चलिते कमल वत पदयुग दक्ष ॥१३१॥
परम-कृपाये करे सभारे सम्भाष। शुनिले श्रीमुख वाक्य कर्म-बन्ध-नाश ॥१३२॥
आइला नदिया पुरे नित्यानन्द-राय। सकल-भुवने जय जय ध्वनि गाय ॥१३३॥
से महिमा बोले हेन के आछे प्रचण्ड। जे प्रभु भाङ्गिला गौर सुन्दरेर दण्ड ॥१३४॥
वणिक् अधम मूर्ख ये करिला पार। ब्रह्माण्ड पवित्र हय नाम लैले जाँर ॥१३५॥
पाइया नन्दना चार्य हरषित हैया। राखि लेन निज गृहे भिक्षा कराइया ॥१३६॥
नवद्वीपे नित्यानन्द चन्द्र-आगमन। इहा जेइ शुने तारे मिले प्रेम धन ॥१३७॥
नित्यानन्द आगमन जानि विश्वम्भर। अन्तरे-हरिष प्रभु हइला विस्तर ॥१३८॥
पूर्वे व्यपदेशे सर्व-वैष्णवेर स्थाने। व्यञ्जिया आछेन, केहो मर्म नाहि जाने ॥१३९॥
आरे भाइ दिन दुइ तिनेर भितरे। कौन महापुरुष एक आसिबे एथारे ॥१४०॥

---

हो गया, जान कर आप तुरन्त ही नवद्वीप पुरी में आ पहुँचे और नन्दनाचार्य के घर में आकर ठहरे ॥ १२४॥ महा भागवतोत्तम नन्दना चार्य ने नित्यानन्द प्रभु को महा तेज पुंज सूर्य के समान देखा ॥ १२५ ॥ वेश महा अवधूत का है। विशाल शरीर है, निरन्तर स्खलित गति है, महान् धीर हैं—ऐसा देखा ॥ १२६ ॥ दिन-रात मुख से कृष्ण नाम कहते रहते हैं, त्रिभुवन में श्री चैतन्य चन्द्र के अद्वितीय धाम ( आश्रय, तेज ) हैं ॥ १२७ ॥ अपने निजानन्द में मत्त होकर क्षण २ में हुँकार करते हैं—ऐसे महा मतवाले हैं जैसे स्वयं बलराम ही हों ॥ १२८ ॥ कोटि चन्द्र जयी मनोहर मुख है, सुरंग अधर हैं, उन पर जगत्-संजीवनी हास्य है ॥ १२९ ॥ मुक्ता—आभा-विजयिनी श्री दशनावली की ज्योति है, विस्तीर्ण, अरुण एवं सुन्दर दो लोचन हैं ॥ १३० ॥ भुजाएँ जानु पर्यन्त लम्बी हैं, विशाल वक्ष स्थल है, चलने में चतुर कमल के समान चरण युगल हैं ॥ १३१ ॥ वे परम कृपा पूर्वक सबके साथ वार्त्तालाप करते हैं। उनके श्री मुख के वचन श्रवण करने से कर्म-बन्धन—नष्ट हो जाते हैं ॥ १३२ ॥ जब नदिया नगर में नित्यानन्द राय आये तो समस्त लोकों में "जय जय" ध्वनि होने लगी ॥ १३३ ॥ जिस प्रभु ( नित्यानन्द ) ने स्वयं श्री गौर सुन्दर का दण्ड तोड़ डाला, उनकी महिमा वर्णन कर सके—ऐसा कौन सामर्थ्यवान है ॥ १३४ ॥ जिन्होंने शंख वणिक, अधम और मूर्ख सबों का उद्धार किया और जिनका नाम लेने से ब्रह्माण्ड पवित्र होता है ॥ १३५ ॥ ऐसे नित्यानन्द प्रभु को पाकर नन्दना चार्य बड़े ही प्रसन्न हुए और भोजन करा कर उनको आप ने अपने घर ठहरा लिया ॥ १३६ ॥ नवद्वीप में श्री नित्यानन्द चन्द्र के आगमन को जो सुनेगा उसे अवश्य ही प्रेम धन प्राप्त होगा ॥ १३७ ॥ नित्यानन्द जी का आगमन जान कर विश्वम्भर प्रभु मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हो रहे हैं ॥ १३८ ॥ आपने पहले ही सब वैष्णवों के समीप नित्यानन्द जी के आने की बात किसी छल से प्रकट कर दी थी परन्तु कोई भी उनके अभिप्राय को नहीं समझ सका ॥ १३९ ॥ प्रभु ने पहले ही कह दिया था कि 'अरे भाइयो ! दो तीन के भीतर ही कोई एक महापुरुष यहाँ आयँगे ॥ १४० ॥ दैव योग से उसी दिन

दैवे सेइ दिन विष्णु पूजि गौरचन्द्र। सत्वरे मिलिला जथा वैष्णवेर वृन्द ॥१४१॥
सभा कार स्थाने प्रभु कहये आपने। "आजि आमि अवरूप देखिलु स्वपने ॥१४२॥
ताल-ध्वज एक रथ-संसारेर सार। आसिया रहिल रथ-आमार दुआर ॥१४३॥
तार माझे देखि एक प्रकाण्ड-शरीर। महा एक स्तम्भ कान्धे,गति नहे स्थिर ॥१४४॥
वेत्र-वान्धा एक कारण-कुम्भ वाम हाथे। नील वस्त्र-परिधान, नील वस्त्र माथे ॥१४५॥
वाम-श्रुति मूले एक कुण्डल विचित्र। हलधर हेन तान वुझिये चरित्र ॥१४६॥
एइ बाड़ी निमाञि पण्डितेर हये हये। दश-वार विश-वार एइ कथा कहे ॥१४७॥
महा-अवधूत-वेश परम प्रचण्ड। आर कभु नाहि देखि एमन उद्दण्ड ॥१४८॥
देखिया सम्भ्रम बड़ पाइलाङ आमि। जिज्ञासिल आमि 'कौन महाजन तुमि" ॥१४९॥
हासिया आमारे वोले "एइ भाइ हये। तोमार आमार कालि हैव परिचये" ॥१५०॥
हरिष वाढ़िल शुनि ताहार वचन। आपनारे वासों मुञि जेन सेइ सम ॥१५१॥
कहिते प्रभुर सव वाह्ज गेल दूर। हल धर-भावे प्रभु गर्जये प्रचुर ॥१५२॥
"मद आन' मद आन" वलि प्रभु डाके। हुङ्कार शुनिते जेन दुइ कर्ण फाटे ॥१५३॥
श्रीवास पण्डित वोले शुनह गोसाञि। जे मदिरा चह तुमि, से तोमार ठाञि ॥१५४॥
तुमि जारे विलाओ, से-इसे तारे पाय" । कम्पित वैष्णव गण दूरे रहि चाय ॥१५५॥
मने मने चिन्ते सव वैष्णवेर गण। "अवश्य इहार किछु आछये कारण' ॥१५६॥
आर्जा तर्जा पढ़े प्रभु अरुण-नयन। हासिया दोलाय अङ्ग जेन सङ्कर्षण ॥१५७॥

---

विष्णु-पूजन करके गौरचन्द्र शीघ्र ही वैष्णवों से आ मिले ॥ १४१ ॥ और सबके सामने प्रभु कहने लगे, "आज मैंने एक विलक्षण स्वप्न देखा कि ॥ १४२ ॥ एक रथ है, रथ क्या है संसार का सार है, उस पर ताल की धुजा है-वह मेरे घर के द्वार पर आकर ठहरा ॥ १४३ ॥ उस रथ में एक विशाल काय पुरुष है-जिसके कन्धे पर एक बड़ा मोटा सोटा है और जिसकी चाल स्थिर नहीं है ॥ १४४ ॥ उसके बायें हाथ में बेंत से बंधा हुआ एक फूटा कलश है। वह नीले वस्त्र पहने हुए है और सिर पर भी उसने नीला वस्त्र बाँध रक्खा है ॥ १४५ ॥ उसके बायें कान में एक विचित्र कुण्डल है-रंग ढङ्ग से वह हलधर जैसा प्रतीत होता था ॥ १४६ ॥ "यह घर निमाई पंडित का है न" बस इसी एक बात को वह बार २ बीसों बार कहता था ॥ १४७ ॥ महा अवधूत का सा उनका वेश है बड़े शक्ति शाली तेजस्वी है। ऐसा उद्दण्ड पुरुष तो मैंने कभी नहीं देखा है ॥ १४८ ॥ यह देखकर मुझको बड़ा सम्भ्रम हुआ और मैंने पूछा कि 'आप कौन महापुरुष हो" ॥ १४९ ॥ वह हँसकर बोले-"यह आप का भाई है-मेरा और आपका परिचय कल होगा" ॥ १५० ॥ उनके वचन को सुनकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ और मैं भी अपने को वैसा ही ( उनका भाई जैसा ही ) समझने लगा ॥ १५१ ॥ ऐसा कहते २ प्रभु की वाह्य दशा लोप हो गयी और वे हलधर भाव के आवेश में जोर २ से गरजने लगे ॥ १५२ ॥ "मद लाओ, मद लाओ" कह २ के प्रभु पुकारने लगे-उस हुँकार को सुनकर दोनों कान फटे जाते थे ॥ १५३ ॥ तब श्रीवास पण्डित बोले-"हे गुसांई ! जिस मदिरा को आप चाहते हैं, वह तो आप ही के पास है" ॥ १५४ ॥ "आप उस मद को जिसे देते हैं वही उसे पाता है," ऐसा कहते हुए वैष्णव गण काँपते हुए दूर खड़े २ देखते हैं ॥ १५५ ॥ सब वैष्णव लोग मन-ही-मन में सोचते है कि इसमें अवश्य ही कुछ कारण है ॥१५६॥ प्रभु लाल २ नेत्र करके "आर्या" और "तर्जा" (छन्द विशेप) पढ़ते हैं और बलराम की भाँति हँसते हुए अपने अंग को हिलाते हैं ॥ १५७ ॥ कुछ समय पश्चात् प्रभु

क्षणेके हइला प्रभु स्वभाव-चरित्र । स्वप्न-अर्थ सभारे वाखाने राम मित्र ॥१५८॥
"हेन बूझि, मोर चित्त लय एइ कथा । कोन महा पुरुषेक आसियाछे एथा ॥१५६॥
पूर्वे मुञि बलियाछों तोमा' सभार स्थाने । कोन महाजन-सङ्ग हैव दरशने ॥१६०॥
चल हरिदास ! चल श्रीवास पण्डित । चाह गिया देखि के आइला कोनभित ॥१६१॥
दुइ महा भागवत प्रभुर आदेशे । सर्व-नवद्वीप चाहि बुलये हरिषे ॥१६२॥
चाहिते चाहिते कथा कहे दुइ-जन । "ए बुझि आइला किवा प्रभु सङ्कर्षण" ॥१६३॥
आनन्दे विह्वल दुहे चाहिया वेड़ाय । तिलार्द्धे को उद्देश कोथाओ नाहि पाय ॥१६४॥
सकल नदिया तीन प्रहर चाहिया । आइला प्रभुर स्थाने काहों ना देखिया ॥१६५॥
निवेदिल आसि दोंहे प्रभुर चरणे । "उपाधिक कोथाह नहिल दरशने ॥१६६॥
कि वैष्णव, कि सन्न्यासी कि गृहस्थ स्थल । पाषण्डीर घर आदि-देखिल सकल ॥१६७॥
चाहिलाङ सर्व नवद्वीप जार नाम । सबे ना चाहिल प्रभु ! गिया आर ग्राम" ॥१६८॥
दोंहार वचन शुनि हासे गौर चन्द्र । छलेबुझायेन 'बड़ गूढ़ नित्यानन्द ॥१६६॥
एइ अवतारे केहो गौरचन्द्र गाय । नित्यानन्द नाम शुनि उठिया पलाय ॥१७०॥
पूजये गोविन्द जेन, नामाने' शङ्कर । एइ पाके अनेक जाइव जम-घर ॥१७१॥
बड़ गूढ़ नित्यानन्द एइ अवतारे । चैतन्य देखाय जारे से देखिते पारे ॥१७२॥
ना बुझि जे निन्दे,' तान चरित्र अगाध । पाइयाओ विष्णु भक्ति हय तार बाध ॥१७३॥
सर्वथा श्रीवास आदि ताँर तत्त्व जाने । ना हइल देखा कोन कौतुक-कारणे । १७४॥

---

अपनी स्वाभाविक दशा में आ गये और तब बलराम मित्र ( अर्थात् गौर चन्द्र ) सबके आगे स्वप्न का अर्थ समझाने लगे ॥ १५८ ॥ वे बोले—"मेरे चित्त में तो यह बात ऐसे जँचती है कि यहाँ कोई एक महापुरुष आया है ॥ १५९ ॥ पहले भी मैं तुम लोगों से कह चुका हूँ कि किसी महापुरुष के दर्शन होंगे ॥ १६० ॥ "हरिदास जी ! जाओ ! श्रीवास पंडित ! तुम भी जाओ, जाकर पता लगाओ कौन कहाँ आया है ॥१६१॥ प्रभु के आदेश से दोनों महा भागवत बड़े प्रसन्न होकर सारे नवद्वीप में ढूंढते हुए घूमने लगे ॥ १६२ ॥ ढूंढते २ वे दोनों आपस में कहते हैं "ऐसा मालूम होता है कि संकर्षण प्रभु ही आये हैं ॥ १६३ ॥ वे दोनों आनन्द में मतवाले होकर खोजते फिरते हैं परन्तु रंचक मात्र भी कहीं पता नहीं लगता है ॥ १६४ ॥ तीन पहर तक सारी नदिया छान डालने पर भी जब वे कहीं न मिले तो दोनों लौट कर प्रभु के पास आये ॥ १६५ ॥ आकर दोनों ने प्रभु के चरणों में निवेदन किया कि हमें आपके बताये हुए लक्षणों वाले कोई भी महापुरुष के दर्शन नहीं हुए ॥ १६६ ॥ क्या वैष्णव, क्या गृहस्थी, क्या संन्यासी, क्या पाखण्डी—सबके घर हमने देख डाले ॥ १६७ ॥ सारी नवद्वीप हमने छान डाली—केवल बाहर के गाँवों में हम नहीं गये ॥ १६८ ॥ दोनों के वचनों को सुनकर गौरचन्द्र हँसने लगे—मानों तो हँसने के छल से यह समझा रहे हों कि "नित्यानन्द तत्त्व बड़ा गूढ है ॥ १६९ ॥ इस अवतार में कोई २ गौरचन्द्र को तो गाते हैं परन्तु नित्यानन्द जी का नाम सुनते ही उठ भागते हैं ॥ १७० ॥ जैसे कोई गोविन्द की पूजा तो करे परन्तु शंकर को न माने । इसके फल-स्वरूप बहुतों को यम के घर जाना पड़ेगा ॥ १७१ ॥ इस अवतार में नित्यानन्द बड़े गूढ हैं, चैतन्य चन्द्र जिसको कृपा कर दिखावें, वही देख सकता है ॥ १७२ ॥ विना समझे बूझे उनके अगाध चरित्र की जो निन्दा करते हैं, वे विष्णु भक्ति पाकर के भी अटक पड़ते हैं ॥ १७३ ॥ केवल श्रीवास आदि मुख्य भक्त जन उनके तत्त्व को भली प्रकार जानते हैं—परन्तु उनको भी जो वे नहीं मिले—वह केवल कोई

क्षणेके ठाकुर बोले ईषत् हासिया । "आइस आमार सङ्गे सभे देखि गिया ।।१७५।।
उल्लासे प्रभुर सङ्गे सर्व-भक्त गण । 'जय कृष्ण' बलि सभे करिला गमन ।।१७६।।
सभा' लइ प्रभु नन्दन-आचार्येर घरे । जानिञा उठिला गिया श्रीगौर सुन्दरे ।।१७७।।
वसि आछे एक महापुरुष रतन । सभे देखिलेन-जेन कोटि-सूर्य-सम ।।१७८।।
अलक्षित-आवेश--बुझन नाहि जाय । ध्यान सुख परिपूर्ण, हासथे सदाय ।।१७९।।
महा भक्ति जोग प्रभु बुझिया ताँहार । गण-सह विश्वम्भर कैला नमस्कार ।।१८०।।
सम्भ्रमे रहिला सर्व-गण दाण्डाइया । केहो किछुना बोलये रहिल चाहिया ।।१८१।।
सम्मुखे रहिला महाप्रभु विश्वम्भर । चिनिलेन नित्यानन्द--प्राणेर ईश्वर ।।१८२।।
विश्वम्भर मूर्त्ति जेन मदन समान । दिव्य गन्ध-माल्य दिव्य वास परिधान ।।१८३।।
किहय कनक--ज्योति से देहेर आगे । से वदन देखिते चाँदेर साध लागे ।।१८४।।
से दन्त देखिते कोथा मुकुतार दाम । से केश बन्धान देखि ना रहे गेयान ।।१८५।।
देखिते आयत दुइ अरुण नयान । आरकि 'कमल आछे' हेन हय ज्ञान ।।१८६।।
से आजानु दुइ भुज, हृदय सुपीन । ताहे शोभे शुभ्र यज्ञ सूत्र अति क्षीण ।।१८७।।
ललाटे विचित्र ऊर्द्ध-तिलक सुन्दर । आभरण विने सर्व-अङ्ग मनोहर ।।१८८।।
किवा हय कोटि मणि से नख चाहिते । से हास देखिते किवा करिव अमृते ।।१८९।।
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावन दास तँछु पद जुगे गान ।।१९०।।

---

कौतुक विशेष के कारण ही समझना चाहिये ।। १७४ ।। क्षण भर में प्रभु नेक मुसकराकर बोले--"चलो मेरे साथ ! चल कर देखें वह कहाँ है ।। १७५ ।। तब तो सब भक्त लोग उल्लास में भर कर "जय कृष्ण" कहते हुए प्रभु जी के साथ चल पड़े ।। १७६ ।। गौर सुन्दर सब जानते हैं--अत एव सब भक्तों को साथ लेकर सीधे नन्दना चार्य के घर जा पहुँचे ।। १७७ ।। वहाँ जाते ही सबने देखा कि एक महा पुरुष रत्न बैठे हुए हैं--कोटि सूर्य के समान उनका तेज है ।। १७८ ।। वे कोई अदृश्य सूक्ष्म आवेश में बैठे हैं जो किसी की समझ में नहीं आता है, ध्यान सुख में परिपूर्ण आप सदा हँस रहे हैं ।। १७९ ।। विश्वम्भर प्रभु ने उनको परम भक्ति के योग्य समझ कर परि कर भक्तों के सहित नमस्कार किया ।। १८० ।। सम्भ्रम में आकर सब भक्त लोग खड़े रह गये--कोई कुछ नहीं कहता है-केवल उनकी ओर ही सब देखते रहते हैं ।। १८१ ।। महा प्रभु विश्वम्भर सामने खड़े हैं--तब तो नित्यानन्द जी अपने प्राणों के नाथ को पहचान जाते हैं ।। १८२ ।। श्री विश्वम्भर प्रभु की मूर्ति कामदेव के समान है--आप दिव्य गन्ध, माल्य तथा दिव्य वस्त्र धारण किये हुए हैं ।। १८३ ।। उनकी उज्जवल गौर देह के आगे कंचन की ज्योति भला क्या है । उनके उस मुख के दर्शन की लालसा चन्द्रमा को भी होती है ।। १८४ ।। उन दशनावली के आगे मुक्ता की पंक्ति भी कुछ नहीं है और उनके उस केश-बन्धन को देखकर तो सुध-बुध ही नहीं रहती है ।। १८५ ।। उनके दोनों विस्तीर्ण अरुण नयन युगल को देखकर यही प्रश्न उठता है कि क्या इनको छोड़ कर और भी कोई कमल है ? ।। १८६ ।। घुटने तक लम्बी दो भुजाएँ हैं विशाल हृदय है, उसके ऊपर शुभ्र अति सूक्ष्म यज्ञ-सूत्र शोभित है ।। १८७ ।। ललाट पर सुन्दर विचित्र उर्द्ध-पुण्ड तिलक है, और बिना आभूषण के ही सर्वांग मनोहर हैं ।। १८८ ।। उनकी नखावली के दर्शन करने पर कोटि २ मणि भी तुच्छ प्रतीत होती हैं और उनका वह हास्य देखकर फिर अमृत लेकर क्या करना ।। १८९ ।। श्री कृष्ण चैतन्य एवं श्री नित्यानन्द चन्द्र को जान कर ग्रन्थकार वृन्दावन दास महाशय उनके युगल चरणों में उनकी कुछ महिमा का गान करते हैं ।।१९०।।

इति--श्री चैतन्य भागवते मध्य खण्डे नित्यानन्द मिलनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।। ३ ।।

# अथ चतुर्थ अध्याय

नित्यानन्द सम्मुखे रहिला विश्वम्भर। चिनिलेन नित्यानन्द आपन-ईश्वर ॥१॥
हरिषे स्तम्भित हैला नित्यानन्द-राय। एक दृष्टि हञा विश्वम्भर रूप चाय ॥२॥
रसनाये लेहे जेन, दरशने पान। भुजे जेन आलिङ्गन, नासिकाये घ्राण ॥३॥
एइ मत नित्यानन्द हइला स्तम्भित। ना बोले ना करे किछु, सभेइ विस्मित ॥४॥
बुझि लेन सर्व प्राण नाथ गौर राय। नित्यानन्द जानाइते सृजिला उपाय ॥५॥
इङ्गिते श्रीवास प्रति बोलेन ठाकुरे। एक भागवतेर वचन पढ़िवारे ॥६॥
प्रभुर इङ्गित बुझि श्रीवास-पण्डित। कृष्ण-ध्यान एक श्लोक पढ़िला त्वरित ॥७॥
"बर्हापीडं नटवर वपुः कर्णयोः कर्णिकारं। बिभ्रद्वासः कनक कपिशं वैजयन्तींच मालाम् ॥
रन्ध्रान् वेणोर धरसुधया पूरयन् गोप वृन्दै, र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीत कीर्तिः" ॥८॥
शुनि मात्र नित्यानन्द श्लोक-उच्चारण। पड़िला मूर्च्छित हैया—नाहिक चेतन। ९॥
आनन्दे मूर्च्छित हैला नित्यानन्द-राय। "पढ़ पढ़" श्रीवासेरे गौराङ्ग शिखाय ॥१०॥
श्लोक शुनि कथो क्षणे हइला चेतन। तवे प्रभु लागिलेन करिते क्रन्दन ॥११॥
पुनः पुन श्लोक शुनि बाढ़ये उन्माद। ब्रह्माण्ड भेदये हेन शुनि सिंहनाद ॥१२॥

---

श्री विश्वम्भर प्रभु श्री नित्यानन्द के सन्मुख खड़े हैं—बस नित्यानन्द जी ने अपने नाथ को पहचान लिया ॥ १ ॥ तब तो नित्यानन्द राय हर्ष के कारण स्तम्भित हो गये और श्री विश्वम्भर के रूप को इकटक देखने लगे ॥ २ ॥ वे जिह्वा से मानो तो प्रभु की रूप माधुरी का पान करने लगे, भुजाओं से मानो तो प्रभु को आलिंगन करने लगे और नासिका से श्री अंग का सुगन्ध लेने लगे ॥ ३ ॥ इस प्रकार नित्यानन्द जी के सब अंग स्तम्भित हो गये हैं—वे न कुछ बोलते हैं और न कुछ करते ही हैं—यह देख सब विस्मित हो रहे हैं ॥ ४ ॥ सबके प्राण नाथ श्री गौरराय श्री नित्यानन्द के भाव को समझ गये और उनका स्वरूप लोगों को जनाने के लिये आप ने एक उपाय किया ॥ ५ ॥ श्री ठाकुर गौरचन्द्र ने श्रीवास पण्डित को श्रीमद्भागवत का एक श्लोक पढ़ने के लिये संकेत किया ॥ ६ ॥ प्रभु का संकेत समझ कर श्रीवास पंडित ने शीघ्रता से श्रीकृष्ण-ध्यान—सम्बन्धी एक श्लोक पाठ किया ॥ ७ ॥ यथा ( भाग० १०. २१: ५ ) "शीश पर मोर पंखों का मुकुट, कानों में कर्णिकार ( कनेर फूल ) का कुंडल, श्री अंग पर कनक वर्ण पीताम्बर तथा वक्षःस्थल पर वैजयन्ती माला धारण किये हुए, अधर सुधा से वेणु के छिद्रों को पूर्ण करते हुए, अपना गुण गान करते हुए गोप सखाओं के सहित, नटवर वपुधारी श्रीकृष्ण ने अपने श्रीचरण की विहार स्थली श्री वृन्दावन में प्रवेश किया ॥ ८ ॥ श्लोक का उच्चारण मात्र सुनते ही नित्यानन्द जी मूर्च्छित होकर गिर पड़े और चेतना-शून्य से हो गये ॥ ९ ॥ नित्यानन्द जी को आनन्द से मूर्च्छित देखकर श्री गौरांग प्रभु श्री वास से कहते हैं "पढ़ो-फिर पढ़ो" ॥ १० ॥ ( श्रीवास जो फिर उसी श्लोक को बारम्बार पढ़ते हैं ) तब श्लोक को सुन करके कुछ समय पश्चात् प्रभु चेतन होते हैं और फिर रोने लगते हैं ॥ ११ ॥ श्लोक को बारम्बार सुन २ कर उनका प्रेमोन्माद बढ़ने लगता है और वे ब्रह्माण्ड—भेदन-कारी सिंह-नाद करने लगते हैं ॥ १२ ॥ औरों को दिखायी भी नहीं देता—इतने वेग से वे शून्य में उछल कर भूमि पर पछाड़ खाकर

अलक्षिते अन्तरिक्षे पड़ये आछाड़। सभे मने वासे' किवा चूर्ण हैल हाड़ ॥१३॥
अन्येर कि दाय वैष्णवेर लागे भय। "रक्ष कृष्ण! रक्ष कृष्ण!" सभेइ स्मरय ॥१४॥
गड़ा गड़ि जाय प्रभु पृथिवीर तले। कलेवर पूर्ण हैल नयनेर जले ॥१५॥
विश्वम्भर मुख चाहि छाड़े घनश्वास। अन्तरे आनन्द–क्षणे क्षणे महा हास ॥१६॥
क्षणे नृत्य, क्षणे गड़ि, क्षणे बाहु-ताल। क्षणे जोड़े जोड़े लाफ देइ देखि भाल ॥१७॥
देखिया अद्भुत कृष्ण-उन्माद-आनन्द। सकल-वैष्णव-सङ्गे कान्दे गौरचन्द्र ॥१८॥
पुनः पुन बाढ़े सुख अति अनि वार। धरेन सभेइ–केहो नारे धरि बार ॥१९॥
धरिते नारिला जदि वैष्णव-सकले। विश्वम्भर लइ लेन आपनार कोले ॥२०॥
विश्वम्भर कोले मात्र गेला नित्यानन्द। समर्पिया प्राण ताने हइला निस्पन्द ॥२१॥
जार प्राण ताने नित्यानन्द समर्पिया। आछेन प्रभुर कोले अचेष्ट हइया ॥२२॥
भासे नित्यानन्द चैतन्येर प्रेम जले। शक्ति हत लक्ष्मण जे हेन राम–कोले ॥२३॥
प्रेम-भक्ति वाणे मूर्च्छा गेला नित्यानन्द। नित्यानन्द कोले करि कान्दे गौरचन्द्र ॥२४॥
कि आनन्द–विरह हइल सर्व-गणे। पूर्वे जेन शुनिआछि श्रीराम–लक्ष्मणे ॥२५॥
गौरचन्द्रे नित्यानन्दे स्नेहेर जे सीमा। श्रीराम-लक्ष्मण वइ नाहिक उपमा ॥२६॥
वाह्य पाइ लेन नित्यानन्द कथो क्षणे। हरि ध्वनि जय-ध्वनि करे सर्व-गणे ॥२७॥

गिर पड़ते हैं–जिसे देख सब लोग यही समझते हैं कि हाय! इनकी हड्डी–पसली चूर चूर तो नहीं हो गयीं ॥ १३ ॥ उस समय औरों को तो क्या, वैष्णवों को भी भय हो आता है और वे सब "हे कृष्ण! रक्षा करो! हे कृष्ण! रक्षा करो" कह कह कर भगवान् का स्मरण करने लगते हैं ॥ १४ ॥ उधर नित्यानन्द प्रभु भूमि पर लोट पोट हो रहे हैं–नेत्रों के अश्रु-जल से आपका सब शरीर भीग गया है ॥ १५ ॥ वे विश्वम्भर प्रभु को ओर देख २ कर लम्बी २ श्वास छोड़ते हैं, हृदय आनन्द से भरपूर है, क्षण २ में खिल खिला कर हँस उठते हैं ॥ १६ ॥ क्षण में नृत्य करते हैं तो क्षण में भूमि पर लोट पोट होते हैं, क्षण में भुजा फटकारते हुए ताल ठोंकते हैं और तो क्षण में दोनों चरण मिलाकर कूदते हैं–सब ही कियाएँ सुन्दर दिखायी देती हैं ॥ १७ ॥ श्री नित्यानन्द जी को श्रीकृष्ण प्रेम में आनन्दोन्माद के दर्शन कर सब वैष्णवों के सहित श्री गौरचन्द्र रोने लगते हैं ॥ १८ ॥ श्री नित्यानन्द जी का प्रेमानन्द सुख पुनः पुनः बढ़ता ही जाता है–किसी प्रकार रोके नहीं रुकता है। सब लोग उनको पकड़ते हैं पर पकड़ कर कोई रख नहीं सकता है ॥ १९ ॥ जब सब वैष्णव जन मिल करके भी उनको रख न सके तो श्री विश्वम्भर प्रभु ने उनको अपनी गोद में लिया ॥ २० ॥ श्री विश्वम्भर की गोद में जाते ही श्री नित्यानन्द अपना प्राण उन्हें समर्पण करके निश्चेष्ट शान्त हो गये ॥ २१ ॥ जिनका प्राण 'उनको समर्पण करके नित्यानन्द जी प्रभु की गोद में निश्चेष्ट होकर पड़े रहे ॥ २२ ॥ नित्यानन्द जी श्री चैतन्य चन्द्र के प्रेम-जल में गोता खा रहे हैं। वे ऐसे लगते हैं मानो तो शक्ति-हत लक्ष्मण जी श्रीराम की गोद में सो रहे हों ॥ २३॥ प्रेम भक्ति के बाण से श्रीनित्यानन्द मूर्च्छित हो गये हैं और उनको गोद में लेकर गौरचन्द्र रो रहे हैं ॥ २४ ॥ उस समय सब लोगों में कैसा आनन्द मय विरह छा गया कि जैसा कि सुनते हैं पूर्व काल में श्रीराम–लक्ष्मण के प्रसंग में अनुभव हुआ था ॥ २५ ॥ गौरचन्द्र और नित्यानन्द चन्द्र में जो स्नेह की पराकाष्ठा है उसकी उपमा श्रीराम और श्री लक्ष्मण के स्नेह के अतिरिक्त और कहीं नहीं है ॥ २६ ॥ कुछ क्षण बाद नित्यानन्द जी सचेत हुए। तब सब भक्त वृन्द हरि ध्वनि, जय ध्वनि करने लगे ॥ २७ ॥ विश्वम्भर प्रभु नित्यानन्द जी को गोद में लिये

नित्यानन्द-चैतन्येर अनेक आलाप। सब कथा ठारे ठौरे नाहिक प्रकाश ।।४४।।
प्रभु बोले 'जिज्ञासा करिते वासि भय। कोन दिग हैते शुभ करिला विजय ।।४५।।
शिशु मति नित्यानन्द-परम विह्वल। बालकेर प्राय जेन वचन चञ्चल ।।४६।।
एइ प्रभु अवतीर्ण जानि लेन मर्म्म। कर जोड़े करि बोले हइ बड़ नम्र ।।४७।।
प्रभु स्तुति करे, शुनि लज्जित हइया। व्यप देशे सर्व्व-कथा कहेन भाङ्गिया ।।४८।।
नित्यानन्द बोले "तीर्थ करिल अनेक। देखिल कृष्णेर स्थान जतेक जतेक ।।४९।।
स्थान मात्र देखि,कृष्ण देखिते ना पाइ। जिज्ञासा करिल तबे भाल-लोक-ठाञि ।।५०।।
सिंहासन-सब केने देखि आच्छादित। कह भाइ सब कृष्ण गेला कोन् भित ।।५१।।
तारा बोले-कृष्ण गियाछेन गौड़ देशे। गया करि गियाछेन कथोक दिवसे ।।५२।।
नदियाय शुनि बड़ हरि सङ्कीर्त्तन। केहो बोले तथाय जन्मिला नारायण ।।५३।।
पतित तैर त्राण बड़ शुनि नदियाय। शुनिञा आइलु मुञि पातकी एथाय" ।।५४।।
प्रभु बोले "आमरा सकल भाग्यवान्। तुमि-हेन भक्तेर हइल उपस्थान ।।५५।।
आजि कृत कृत्य हेन मानिल आमरा। देखिल जे तोमार आनन्द-वारि-धारा" ।।५६।।
हासिया मुरारि बोले "तोमरा तोमरा। उहति ना बुझि किछु आमरा-सभारा" ।।५७।।
श्रीवास बोलेन "उहा आमराकि बुझि। माधव-शङ्कर जेन दोंहे दोंहा पूजि" ।।५८।।
गदाधर बोले "भाल बलिला पण्डित। सेइ बुझि जेन राम-लक्ष्मण—चरित" ।।५९।।
केहो बोले "दुइ जन जेन दुइ काम। केहो बोले "दुइ जन कृष्ण-बलराम ।।६०।।

में ही हुआ है प्रकट रूप में नहीं ।। ४४ ।। फिर प्रभु विश्वम्भर बोले—"यह पूछने में भी मुझे भय होता है कि किधर से आपका शुभागमन हुआ ?" ।। ४५ ।। श्री नित्यानन्द जी परम विह्वल हो रहे हैं—बालक की जैसी उनकी सरल मति है और बालक के जैसे ही उनके चंचल वचन हैं ।। ४६ ।। "ये ही हैं प्रभु जिन्होंने अवतार लिया है"—इस रहस्य को आप समझ गये और तब हाथ जोड़ कर बड़े नम्र होकर बोले ।। ४७ ।। प्रभु के मुख से अपनी स्तुति सुनकर आप बड़े लज्जित हुए और अन्य चर्चा के मिष से सब बातें खोल २ कर कहने लगे ।। ४८ ।। नित्यानन्द जी बोले—"मैंने अनेक तीर्थ किये। मैंने जितने भी श्रीकृष्ण के धाम देखे वहाँ केवल धाम ही धाम दिखायी दिया, श्रीकृष्ण कहीं भी नहीं दिखायी दिये, कि तब सज्जन लोगों से मैंने पूछ ताँछ की ।। ४९ ।। ५० ।। "क्यों सब सिंहासन ढके दिखायी देते हैं। कहो भाइयो। श्रीकृष्ण कहाँ चले गये ? ।। ५१ ।। वे बोले—"श्रीकृष्ण तो गौड देश को गये हैं—और कुछ दिन पहले गया की यात्रा करके घर लौटे हैं ।। ५२ ।। "नदिया में, सुनते हैं, आज कल बड़ा हरि-संकीर्तन होता है। कोई कहते हैं कि कहीं नारायण प्रकट हुये हैं ।। ५३ ।। नदिया में पतितों की बड़ी रक्षा होती है, अथवा तो पतितों के बड़े त्राण कर्त्ता हैं, सुनकर मैं पातकी भी नदिया में आया हूँ ।। ५४ ।। तब गौर प्रभु बोले—"हम सब बड़े ही भाग्यवान् हैं जो आप जैसे भक्त यहाँ आ उपस्थित हुए हैं" ।। ५५ ।। आज हम सब अपने को कृत कृत्य मानते हैं कि जो हमने:आपके प्रेमानन्द की अश्रु-धाराओं के दर्शन किये ।। ५६ ।। तब तो श्रीमुरारि गुप्त हँसकर बोल उठे "आप और आप—दोनों ही जानें यह सब बातें। हम सब तो कुछ भी नहीं समझ पाते हैं" ।। ५७ ।। इस पर श्रीवास जी बोले—"भला हम लोग क्या समझेंगे। यहाँ तो मानो माधव और महादेव दोनों ही दोनों की पूजा कर रहे हैं" ।। ५८ ।। फिर गदाधर जी बोले "उत्तम कहा श्रीवास जी ! मुझे तो इनका चरित्र राम लक्ष्मण जैसा लगता है" ।। ५९ ।। कोई बोला—"यह दोनों जने मानो तो दो कामदेव

केहो बोले "आमि किछु विशेष ना जानि। कृष्ण कोले जेन 'शेष' आइला आपनि" ॥६१॥
केहो बोले "दुइ सखा जेन कृष्णार्जुन। सेइ मत देखिलाङ स्नेह परिपूर्ण" ॥६२॥
केहो बोले "दुइ जने बड़ परिचय। किछुना बुझिये-सब ठारे कथा कय" ॥६३॥
एइ मत हरिषे सकल-भक्तगण। नित्यानन्द-दरशने कहेन कथन ॥६४॥
नित्यानन्द गौरचन्द्र दोंहार मिलन। इहार श्रवणे हय बन्ध-विमोचन ॥६५॥
सङ्गी, सखा, भाइ, छत्र, शयन, वाहन। नित्यानन्द वइ अन्य नहे कोन जन ॥६६॥
नाना-रूपे सेवे प्रभु आपन-इच्छाय। जारे देन अधिकार, से-इ जन पाय ॥६७॥
आदि देव महा योगी ईश्वर वैष्णव। महिमा अनन्त इहा नाहि जाने सब ॥६८॥
ना जानिञा निन्दे ताँर चरित्र अगाध। पाइयाओ विष्णु भक्ति ताँर हयबाध ॥६९॥
चैतन्येर प्रिय-देह नित्यानन्द राम। हउ मोर प्राणनाथ-एइ मनस्काम ॥७०॥
ताहान प्रसादे हैल चैतन्येते रति। ताहान आज्ञाये लिखि चैतन्येर स्तुति ॥७१॥
'रघुनाथ' यदुनाथ' जेन नाम भेद। सेइमत भेद 'नित्यानन्द' 'बलदेव' ॥७२॥
संसारेर पार हइ भक्तिर सागरे। जे डूबिब से भजुक निताइ चाँदेरे ॥७३॥
जे वा गाय एइ कथा हइया तत्पर। गोष्ठी सह वरदाता तारे विश्वम्भर ॥७४॥
जगते दुर्लभ बड़ विश्वम्भर नाम। सेइ प्रभु चैतन्य सभार धन प्राण ॥७५॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ॥७६॥

है" । कोई बोला—"यह दोनों जने कृष्ण-बलराम हैं" ॥ ६० ॥ कोई बोला—"मैं और तो कुछ नहीं जानता हूँ—बस मुझे तो लगता है कि श्रीकृष्ण की गोद में स्वयं शेष जी आ गये हैं" ॥ ६१ ॥ कोई बोला—"ये दो सखा तो कृष्ण-अर्जुन जैसे हैं । वैसा ही भरपूर स्नेह भी दिखायी देता है ॥ ६२ ॥ कोई बोला—"इन दोनों में बड़ी जान-पहचान है—तभी तो सब बातें संकेत ही संकेत में कर लेते हैं, और हम कुछ भी नहीं समझ पाते हैं ॥ ६३ ॥ इस प्रकार सब भक्त लोग श्री नित्यानन्द के दर्शन सों हर्षित होकर परस्पर में वचन कहते हैं ॥ ६४ ॥ नित्यानन्द और गौरचन्द्र की मिलन-कथा श्रवण करने से सब बन्धन खुल जाते हैं ॥ ६५ ॥ प्रभु के संगीन सखा, भ्राता, छत्र, शय्या, बाहन इत्यादि सब नित्यानन्द जी ही हैं—उनके बिना और दूसरा कोई नहीं है ॥ ६६ ॥ नित्यानन्द जी अपनी इच्छा से नाना स्वरूप धारण करके प्रभु की सेवा करते है, आप जिसको सेवा का अधिकार देते हैं वही सेवा पा सकता है ॥ ६७ ॥ आप आदि देव हैं, महा योगी हैं, ईश्वर हैं एवं वैष्णव हैं । आपकी महिमा अनन्त है—इसे सब नहीं जानते हैं ॥ ६८ ॥ जो आपके अत्यन्त गहन चरित्र को समझे बिना निन्दा करते हैं, वे विष्णु भक्ति लाभ करके भी बाधा को प्राप्त हो जाते है ॥ ६९ ॥ श्री चैतन्य चन्द्र की प्रिय देह हैं श्री नित्यानन्द राय । वे मेरे प्राण नाथ होवें—यही मेरी मनोकामना है ॥ ७० ॥ उनकी कृपा से ही मेरी श्रीचैतन्य चन्द्र में प्रीति हुई है और उनकी आज्ञा से ही मैं श्री चैतन्य-चरित्र लिख रहा हूँ ॥ ७१ ॥ जैसे रघुनाथ और यदुनाथ में नाम का ही भेद है ऐसे ही नित्यानन्द और बलदेव में है ॥ ७२ ॥ जो कोई संसार से पार होकर भक्ति-समुद्र में डूबना चाहता हो वह नित्यानन्द चन्द्र का भजन करे ॥ ७३ ॥ जो कोई प्रेमासक्ति पूर्वक इस चरित्र को गायेंगे, उनको परिवार सहित विश्वम्भर देव वरदान देंगे ॥ ७४ ॥ "विश्वम्भर" नाम जगत् में बड़ा दुर्लभ है । वही प्रभु चैतन्य चन्द्र सबके प्राण धन हैं ॥ ७५ ॥ श्रीकृष्ण चैतन्य एवं श्री नित्यानन्द चन्द्र को अपना सर्वस्व समझने वाला यह वृन्दावन दास उनके युगल चरणों में उनके ही कुछ गुणों का गान करता है ॥ ७६ ॥

इति—श्रीचैतन्य भागवते मध्य खण्डे नित्यानन्द चैतन्य दर्शनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥

# अथ पंचम अध्याय

'हरि बोल' हरि बोल' गौराङ्ग सुन्दर । बाहु तुलि बुले जेन मत्त करिवर ॥१॥
जय नवद्वीप नव प्रदीप प्रभाव पाषण्ड गजैक सिंहः ।
स्वनाम संख्या जप सूत्रधारीचैतन्य चन्द्रो भगवन्मुरारिः ॥२॥
हेन मते नित्यानन्द-सङ्गे-कुतुहले । कृष्ण कथा रसे सभे हइला विह्वले ॥३॥
सभे महा भागवत परम-उदार । कृष्ण-रसे मत्त सभे करेन हुङ्कार ॥४॥
हासे प्रभु नित्यानन्द चारि दिगे देखि । बहये आनन्द धारा सभाकार आँखि ॥५॥
देखिया आनन्द महाप्रभु विश्वम्भर । नित्यानन्द-प्रति किछु बलिला उत्तर ॥६॥
"शुन शुन नित्यानन्द श्रीपाद गोसाञि । व्यास पूजा तोमार हइब कोन ठाञि ॥७॥
कालि हैब पौर्णमासी—व्यासेर पूजन । आपने बुझिया बोल, जारे लय मन" ॥८॥
नित्यानन्द जानि लेन प्रभुर इङ्गित । हाथे धरि आनि लेन श्रीवास पण्डित ॥९॥
हासि बोले नित्यानन्द "शुन विश्वम्भर । व्यास पूजा एइ मोर बामनेर घर" ॥१०॥
श्रीवासेर प्रति बोले प्रभु विश्वम्भर । "बड़ भार लागिल जे तोमार उपर" ॥११॥
पण्डित बोलेन 'प्रभु! किछु नहे भार । तोमार प्रसादे सब घरेइ आमार ॥१२॥
मुद्ग, वस्त्र, जज्ञ सूत्र, घृत, गुया, पान । विधि जोग्य जत सज्ञ-सब विद्यमान ॥१३॥
पद्धति-पुस्तक मात्र मागिया आनिव । कालि महा भाग्ये व्यास पूजन देखिब ॥१४॥

---

श्री गौरांग सुन्दर अपनी दोनों भुजाओं को उठाकर, 'हरि बोल' 'हरि बोल' कहते हुए मत्त हस्ती की भाँति विचरण करते फिरते हैं ॥ १ ॥ हे नवद्वीप के नवीन प्रदीप स्वरूप ! हे पाषण्ड गज के लिये सिंह समान प्रभाव शालि ! हे स्वनाम—संख्या-जप-पूर्ण करने के लिये सूत्र धारण करने वाले, हे भगवन्मुरारी श्रीचैतन्य चन्द्र । आप की जय हो ॥ २ ॥ इस प्रकार श्री नित्यानन्द प्रभु के साथ, श्रीकृष्ण-कथा के आस्वादन में नवीन २ कौतुहल को प्राप्त होते हुए सब भक्त जन विह्वल हो गये ॥ ३ ॥ सब लोग परम भागवत हैं,परम उदार हैं, और कृष्ण-रस में मत्त होकर सब ही हुँकार कर रहे हैं ॥ ४ ॥ नित्यानन्द प्रभु चारों ओर देखते हुए हँसते हैं और सब लोगों के नेत्रों से आनन्द की धाराएँ बह रही हैं ॥ ५ ॥ इस अपूर्व आनन्द को देखकर महा प्रभु विश्वम्भर नित्यानन्द जी प्रति कुछ बोले ॥ ६ ॥ "हे श्रीपाद गुसाई नित्यानन्द जो ! सुनिये तो सही सुनिये । आपकी व्यास पूजा किस जगह होगी ?" ॥ ७ ॥ "कल आषाढी पूर्ण मासी है—व्यास पूजा की तिथि है । जहाँ आप की इच्छा हो सो आप सोच समझ कर बता दें ॥ ८ ॥ नित्यानन्द जी प्रभु गौरचन्द्र के संकेत को समझ गये और श्रीवास पण्डित का हाथ पकड़ कर प्रभु के सामने ले आये ॥ ९ ॥ और हँसकर बोले कि 'हे विश्वम्भर ! मेरी व्यास पूजा इस ब्राह्मण के घर होगी ॥१०॥ तब विश्वम्भर देव श्रीवास प्रति बोले कि यह तो तुम्हारे ऊपर बड़ा भार आ पड़ा ॥ ११ ॥ श्रीवास पंडित बोले "कुछ भार नहीं है प्रभो ! आपकी कृपा से मेरे घर में सब कुछ है" ॥ १२ ॥ "वस्त्र, मूँग, यज्ञोपवीत, घृत, सुपारी, पान इत्यादि आवश्यक सामग्री सब विद्यमान है ही ॥ १३ ॥ "केवल मात्र पूजा-पद्धति की पुस्तक ही नहीं है—सो माँग कर ले आऊँगा । यह तो बड़े भाग्य मेरे जो मैं कल व्यास पूजा के दर्शन

प्रीत हैला महाप्रभु श्रीवासेर बोले। हरि हरि ध्वनि कैला वैष्णव-सकले ॥१५॥
विश्वम्भर बोले "शुन श्रीपाद गोसाञि। शुभकर' सभे पण्डितेर घर जाइ" ॥१६॥
आनन्दित नित्यानन्द प्रभुर वचने। सेइ क्षणे आज्ञा लइ करिला गमने ॥१७॥
सर्व-गणे चलिला ठाकुर विश्वम्भर। राम-कृष्ण बेढ़ि जेन गोकुल किङ्कर ॥१८॥
प्रविष्ट हइला मात्र श्रीवास-मन्दिरे। बड़ कृष्णानन्द हैल सभार शरीरे ॥१९॥
कपाट पड़िल तबे प्रभुर आज्ञाय। आप्त गण बिने आर जाइते ना पाय ॥२०॥
कीर्त्तन करिते आज्ञा करिला ठाकुर। उठिल कीर्त्तन ध्वनि, बाह्य गेल दूर ॥२१॥
व्यास पूजा-अधिवास उल्लास कीर्त्तन। दुइ प्रभु नाचे, बेढ़ि गाय भक्त गण ॥२२॥
चिर दिवसेर प्रेमे चैतन्य निताइ। दोंहे दोंहा ध्यान करि नाचे एक ठाञि ॥२३॥
हुङ्कार करये केहो, केहो वा गर्ज्जन। केहो मूर्च्छा जाय, केहो करये क्रन्दन ॥२४॥
कम्प, स्वेद, 'पुलकाश्रु, आनन्द-मूर्च्छित'। ईश्वरेर विकार-कहिते जानि कत ॥२५॥
स्वानुभावा नन्दे नाचे प्रभु दुइ जन। क्षणे कोला कुलि करि करये क्रन्दन ॥२६॥
दोंहार चरण दोंहे धरि बारे चाहे। परम चतुर दोंहे-केहो नाहि पाये ॥२७॥
परम-आनन्दे दोंहे गड़ा गड़ि जाय। आपना ना जाने दोंहे आपन-लीलाय ॥२८॥
बाह्य दूर हइल, वसन नाहि रहे। धरये वैष्णव गण, धरण ना जाये ॥२९॥
जे धरये त्रिभुवन, के धरिब तारे। महा मत्त दुइ प्रभु कीर्त्तने विहरे ॥३०॥

---

करूँगा" ॥ १४ ॥ श्रीवास जी के वचन से श्री महाप्रभु जी बड़े प्रसन्न हुए और सब वैष्णवों ने "हरि बोल हरि" ध्वनि की ॥ १५ ॥ फिर विश्वम्भर प्रभु बोले "सुनिये श्रीपाद गुसांई। अब सब पंडित श्रीवास के घर को चलें" ॥ १६ ॥ प्रभु के वचन से आनन्दित हो कर नित्यानन्द जी उनसे आज्ञा ले तत्काल चल पड़े ॥ १७ ॥ प्रभु विश्वम्भर भी सब परिवार सहित चले। ऐसा प्रतीत होता था मानों तो गोकुल के जन राम-कृष्ण को घेर कर चले जा रहे हों ॥ १८ ॥ श्रीवास पण्डित के घर में प्रवेश करते ही सबके शरीर में श्री कृष्ण प्रेम का आनन्द छा गया" ॥ १९ ॥ तब प्रभु की आज्ञा से किवाड़ बन्द कर दिये गये जिससे कि अपने निज जन के अतिरिक्त और कोई अब भीतर नहीं जा सकता था ॥ २० ॥ तब महाप्रभु गौर ने कीर्त्तन करने की आज्ञा दी और कीर्त्तन की ध्वनि होने लगी और वाह्य ज्ञान सबका जाता रहा ॥ २१ ॥ व्यास पूजा के अधिवास के उल्लास में कीर्त्तन करते हुए दोनों प्रभु नाच रहे हैं और भक्त गण उनको घेर कर गा रहे हैं ॥ २२ ॥ श्री चैतन्य और श्री निताइ का प्रेम चिरकाल का बहुत पुराना है-उस प्रेम में एक दूसरे का ध्यान करते हुए वे एकत्र नाच रहे हैं ॥ २३ ॥ उनमें कोई हुंकार करते हैं तो कोई गर्जन करते हैं। कोई मूर्च्छित होते हैं तो कोई क्रन्दन करते हैं ॥ २४ ॥ कम्प, स्वेद, पुलक, अश्रु, आनन्द-मूर्च्छा आदि ईश्वर के अगों में जो जो प्रेम के विकार प्रकट हुए उनमें से मैं भला कितनों को कह सकता हूँ ॥२५॥ दोनों प्रभु अपने २ भाव के आनन्द में नाच रहे हैं। वे कभी परस्पर को आलिंगन करके क्रन्दन करते हैं ॥ २६ ॥ और कभी दोनों दोनों के चरणों को पकड़ना चाहते हैं परन्तु दोनों ही परम चतुर हैं अतएव कोई किसी के चरण को पकड़ नहीं सकता है ॥ २७ ॥ परम आनन्द में मत्त होकर दोनों भूमि पर लुढकते फिरते हैं, अपनी लीला के आवेश में दोनों ही अपने को भूले हुए हैं ॥ २८ ॥ उनका वाह्य-ज्ञान जाता रहा, वस्त्र शरीर पर नहीं रहे। वैष्णव गण दोनों को पकड़ना चाहते हैं, पर वे पकड़ में नहीं आते हैं ॥ २९ ॥ जो त्रिभुवन को धारण करते हैं उनको भला कौन धारण कर सकता है? महा-मत्त होकर दोनों प्रभु

'बोल बोल' बलि डाके श्रीगौर सुन्दर। सिञ्चित आनन्द जले सर्व्व-कलेवर ॥३१॥
चिर-दिने नित्यानन्द पाइ अभिलाषे। बाह्य नाहि, आनन्द-सागर-माझे भासे ॥३२॥
विश्वम्भर नृत्य करे अति-मनोहर। निज शिर लागे गिया चरण–उपर ॥३३॥
टल मल भूमि नित्यानन्द-पद ताले। भूमि कम्प–हेन माने' वैष्णव–सकले ॥३४॥
एइ मत आनन्दे नाचे न दुइ नाथ। से उल्लास कहि बारे शक्ति आछे कार ॥३५॥
नित्यानन्द प्रकाशिते प्रभु विश्वम्भर। बलराम-भावे उठे खट्वार उपर ॥३६॥
महामत्त हैला प्रभु बलराम भावे। "मद आन" "मद आन" बलि घन डाके ॥३७॥
नित्यानन्द प्रति बोले श्रीगौर सुन्दर। "झाट देह' मोरे हल मुषल सत्वर" ॥३८॥
पाइया प्रभुर आज्ञा प्रभु-नित्यानन्द। करे दिला, कर पाति लैला गौरचन्द्र ॥३९॥
कर देखे केहो आर किछुइ ना देखे। केहो वा देखिल हल मुषल प्रत्यक्षे ॥४०॥
जारे कृपा करे सेइ ठाकुरे, से जाने। देखि लेह शक्ति नाहि कहिते कथने ॥४१॥
एवड़ निगूढ़ कथा केहो मात्र जाने। नित्यानन्द व्यक्त सेइ-सब-जन स्थाने ॥४२॥
नित्यानन्द-स्थाने हल मुषल लइया। "वारुणी वारुणी" प्रभु डाके मत्त हैया ॥४३॥
कारो बुद्धि नाहि स्फुरे, ना बुझे उपाय। अन्योऽन्ये सभार बदन सभे चाय ॥४४॥
जुगति करिया सभे मनेते भाविया। घट भरि गङ्गा जल सभे दिल लैया ॥४५॥
सर्व्व-जन देइ जल, प्रभु करे पान। सत्य जेन कादम्बरी पीये-हेन भाण ॥४६॥

---

कीर्त्तन में विहार कर रहे हैं ॥ ३० ॥ "बोलो, हरि बोलो," कह कहकर श्रीगौर सुन्दर उच्च ध्वनि करते हैं। प्रेमानन्द के जल से समस्त शरीर उनका भीग गया है ॥ ३१ ॥ और नित्यानन्द जी भी चिरकाल की मनोवांछित वस्तु को प्राप्त करके वाह्य-ज्ञान शून्य हो गये हैं और आनन्द के सागर में बहे जा रहे हैं ॥३२॥ प्रभु विश्वम्भर अति मनोहर नृत्य करते हैं–उनका मस्तक चरणों से जा लगता है ॥३३॥ और नित्यानन्द जी के चरणों के ताल से पृथ्वी डग मगाती है तो सब वैष्णव जन समझते हैं कि भू-कम्प हो रहा है ॥३४॥ इस प्रकार आनन्द में दोनों प्रभु नाच रहे हैं, उस उल्लास को वर्णन करने की सामर्थ्य किसमें है ? ॥३५॥ तब नित्यानन्द जी का स्वरूप क्या है, इसको प्रकट करने के लिए प्रभु विश्वम्भर बलराम जी के भावावेश में श्री विष्णु सिंहासन पर चढ़ बैठे ॥ ३६ ॥ बलराम जी के भाव में प्रभु महामत्त हो गये और "मद लाओ," ,'मद लाओ" कह कह कर बारम्बार पुकारने लगे ॥ ३७ ॥ फिर नित्यानन्द जी के प्रति श्रीगौर सुन्दर बोले–"शीघ्र ही मुझे हल मूषल दो ॥ ३८ ॥ महाप्रभु की आज्ञा पाकर प्रभु नित्यानन्द हल-मूषल प्रभु के हाथों में अर्पण करते हैं और वे हाथ पसार कर ले लेते हैं ॥ ३९ ॥ कोई तो हाथ ही हाथ देखते हैं, और कुछ भी नहीं देख पाते हैं, परन्तु किसी २ ने हल मूषल प्रत्यक्ष देख पाया ॥ ४० ॥ जिस पर वे प्रभु कृपा करते हैं, वही उनको जान पाता–देख पाता है। और देखने पर भी उसे वर्णन करने की शक्ति तो किसी में भी नहीं होती है ॥ ४१ ॥ यह पूर्वोक्त चरित्र अति गूढ है–इसे कोई विरले ही जानते हैं–और उन्हीं सब भाग्यवालों के निकट ही नित्यानन्द व्यक्त हैं अर्थात् वे ही उनके तत्त्व को जानते हैं ॥ ४२ ॥ श्री नित्यानन्द जी से हल मूषल लेकर प्रभु मतवाले होकर "वारुणी" "वारुणी" कह-कह कर पुकारते हैं ॥४३॥ उस समय किसी की बुद्धि काम नहीं देती है, कोई उपाय नहीं सूझता है, सब ही एक दूसरे का मुख ताकते हैं ॥ ४४ ॥ फिर कुछ सोच विचार कर सबने एक घड़ा में गङ्गा जल भर कर प्रभु को ला दिया ॥ ४५ ॥ सब लोग तो जल दे रहे हैं और प्रभु पी रहे हैं परन्तु आपको ऐसा लग रहा है कि मैं सचमुच ही

चतुर्दिगे राम स्तुति पढ़े भक्त गण। "नाढ़ा नाढ़ा 'नाढ़ा" प्रभु बोले अनुक्षण ॥४७॥
सघने डुलाय शिर "नाढ़ा नाढ़ा" बोले। नाढ़ार सन्दर्भ केहो ना बुझे सकले ॥४८॥
सभे बलिलेन "प्रभु! 'नाढ़ा' वोल का'रे"। प्रभु बोले आइलु मुञि जाहार हुङ्कारे ॥४९॥
'अद्वैत-आचार्य' बलि कथा कह जार। सेइ नाढ़ा लागि मोर एइ अवतार ॥५०॥
मोहरे आनिला नाढ़ा वैकुण्ठ थाकिया। निश्चिन्ते रहिल गिया हरिदास लैया ॥५१॥
सङ्कीर्त्तन-आरम्भे मोहर अवतार। घरे घरे करिमु कीर्त्तन-परचार ॥५२॥
विद्या, धन, कुल, ज्ञान, तपस्यार मदे। मोर भक्त स्थाने जार आछे अपराधे ॥५३॥
से अधम-सभारे ना दिमु प्रेम जोग। नगरिया प्रति दिमु ब्रह्मादिर भोग" ॥५४॥
शुनिञा आनन्दे भासे सब भक्त-गण। क्षणेके सुस्थिर हैला श्रीशची नन्दन ॥५५॥
"कि चाञ्चल्य करिलाङ प्रभु जिज्ञासये। सब भक्त-बोले "किछु उपाधिक नहे" ॥५६॥
सभारे करेन प्रभु प्रेम-आलिङ्गन। "अपराध मोर ना लइबा सर्व्व-क्षण ॥५७॥
हासे सर्व्व-भक्त गण प्रभुर कथाय। नित्यानन्द-महाप्रभु गड़ा गड़ि जाय ॥५८॥
सम्बरण नहे नित्यानन्देर आवेश। प्रेम रसे विह्वल हइला प्रभु 'शेष' ॥५९॥
क्षणे हासे, क्षणे कान्दे क्षणे दिगम्बर। बाल्य भावे पूर्ण हैल सर्व्व-कलेवर ॥६०॥
कोथा वा थाकिल दण्ड कोथा कमण्डुल। कोथा वा वसन 'गेल, नाहि आदि मूल ॥६१॥
चञ्चल हइला नित्यानन्द महा धीर। आपने धरिया प्रभु करिलेन स्थिर ॥६२॥
चैतन्येर वचन-अङ्कुश सबे माने'। नित्यानन्द मत्त-हस्ती आर नाहि जाने ॥६३॥

वारुणी पी रहा हूँ ॥ ४६ ॥ चारों ओर भक्त गण, बलराम-स्तुति पढ़ रहे हैं और प्रभु निरन्तर "नाढ़ा ३" कह रहे हैं ॥ ४७ ॥ आप जोर-जोर से शिर हिलाते हुए "नाडा २" कहते हैं परन्तु 'नाडा' के गूढ़ अर्थ को कोई भी नहीं समझ पाता है ॥ ४८ ॥ तब सब बोले—"प्रभो! आप 'नाडा २' किसे कह रहे हैं ?" प्रभु बोले "जिसकी हुँकार से मैं आया हूँ उसे ही" ॥ ४९ ॥ "तुम लोग जिसे अद्वैताचार्य कह कर पुकारते हो, उसी नाडा के लिए मेरा यह अवतार है ॥ ५० ॥ "वही नाडा मुझे वैकुण्ठ से ले आया है और अब वह हरिदास को लेकर वहाँ निश्चिन्त जा बैठा है ॥ ५१ ॥ "संकीर्तन आरम्भ करने के लिए मेरा यह अवतार है—मैं घर-घर में कीर्तन का प्रचार करूँगा ॥ ५२ ॥ "विद्या, धन, कुल, ज्ञान, तपस्या, आदि के अभिमान के कारण जिन लोगों का मेरे भक्तों के निकट अपराध है ॥ ५३ ॥ "उन सब अधम लोगों को मैं अपना भक्ति योग नहीं दूँगा। उनको छोड़ जन-साधारण को भी ब्रह्मादिकों का दुर्लभ भोग प्रदान करूँगा" ॥ ५४ ॥ प्रभु के वचनों को सुनकर सब भक्त लोग आनन्द में बहने लगे। कुछ समय पश्चात् श्री शचीनन्दन स्थिर होकर पूर्व दशा में आ गये ॥ ५५ ॥ और पूछने लगे कि "मैंने क्या चंचलता कर डाली है"। भक्त लोग बोले—"स्वरूप से बाहर की ऐसी कुछ बात नहीं की !" ॥ ५६ ॥ तब प्रभु सबको प्रेम पूर्वक आलिंगन करते हैं और कहते है—"आप लोग कभी मेरा अपराध न लेवें" ॥ ५७ ॥ प्रभु की बात पर सब भक्त गण हँसते हैं और नित्यानन्द प्रभु तो भूमि पर लोट-पोट हो जाते हैं ॥ ५८ ॥ नित्यानन्द जी का भावावेश शान्त ही नहीं होता है। आज प्रेम रस में शेष प्रभु विह्वल हो गये हैं ॥ ५९ ॥ क्षण में वे हँसते हैं, क्षण में रोते हैं, और क्षण में दिगम्बर हो जाते हैं—इस प्रकार के बाल भाव से उनका श्री अंग भरपूर हो रहा है ॥ ६० ॥ कहीं दण्ड पड़ा हुआ है तो कहीं कमण्डल और कहीं वस्त्र पड़े हुए हैं ॥ ६१ ॥ इस प्रकार परम धीर नित्यानन्द जी अत्यन्त चंचल हो गये—तब प्रभु ने स्वयं उनको पकड़ करके स्थिर किया ॥ ६२ ॥

"स्थिर हओ, कालि पूजिवारे चाह् व्यास। स्थिर कराइया प्रभु गेला निज-वास ।।६४।।
भक्त गरा चलि लेन आपनार घरे। नित्यानन्द रहिलेन श्रीवास मन्दिरे ।।६५।।
कथो रात्र्ये नित्यानन्द हुङ्कार करिया। निज दण्ड कमण्डलु फेलिला भाङ्गिया ।।६६।।
के वुझये ईश्वरेर चरित्र अखण्ड। केने भाङ्गिलेन निज कमण्डलु दण्ड ।।६७।।
प्रभाते उठिया देखे रामाइ-पण्डित। भाङ्गा दण्ड कमण्डलु देखिया विस्मित ।।६८।।
पण्डितेर स्थाने कहि लेन ततक्षणे। श्रीवास वोलेन "जाओ ठाकुरेर स्थाने" ।६९।।
रामाइर मुखे शुनि आइला ठाकुर। वाह्य नाहि नित्यानन्द हासेन प्रचुर ।।७०।।
दण्ड लइ लेन प्रभु श्रीहस्ते तुलिया। चलि लेन गङ्गा स्नाने नित्यानन्द लैया ।।७१।।
श्रीवासादि सभेइ चलिला गङ्गा स्नाने। दण्ड थुइलेन प्रभु गङ्गाये आपने ।।७२।।
चञ्चल से नित्यानन्द, ना माने वचन। तवे एक वार प्रभु करये गर्ज्जन ।।७३।।
कुम्भीर देखिया तारे धरि वारे जाय। गदाधर श्रीनिवास करे 'हाय हाय' ।।७४।।
साँतरे गङ्गार माझे निर्भय-शरीर। चैतन्येर वाक्ये मात्र किछु हय स्थिर ।।७५।।
नित्यानन्द प्रति डाकि वोले विश्वम्भर। व्यास पूजा आसि झाट करह सत्त्वर ।।७६।।
शुनिञा प्रभुर वाक्य उठिला तखने। स्नान करि गृहे आइलेन प्रभु-सने ।।७७।।
आसिया मिलिला सब-भागवत गण। निरवधि 'कृष्ण कृष्ण' करिते कीर्त्तन ।।७८।।
श्रीवास पण्डित-व्यास पूजार आचार्य। चैतन्येर आज्ञाय करेन सर्व्व-कार्य ।।७९।।

---

नित्यानन्द जी मतवाले हाथी की तरह केवल एक चैतन्य प्रभु के वचन रूपी अंकुश को ही मानते हैं–और किसी को कुछ समझते ही नहीं हैं ।। ६३ ।। प्रभु कहते हैं–"शान्त होओ श्रीपाद ! कल को तो आप व्यास पूजा करना चाहते हैं" । इस प्रकार उनको स्थिर करा कर आप प्रभु अपने गृह को गये ।। ६४ ।। भक्त गण भी सब अपने २ घर को गये नित्यानन्द जी श्रीवास के घर में रह गये ।। ६५ ।। कुछ रात होने पर नित्यानन्द जी ने हुँकार करते हुए अपने दण्ड-कमण्डलु को तोड़-फोड़ डाला ।। ६६ ।। सर्व समर्थ ईश्वर के चरित्र अखण्ड हैं–कौन समझ सकता है कि क्यों उन्होंने अपना दण्ड-कमण्डलु तोड़-फोड़ डाला ।। ६७ ।। प्रातःकाल उठकर रामाइ पंडित ने देखा कि दण्ड कमण्डल टूटे-फूटे पड़े हैं । यह देखकर उनको बड़ा विस्मय हुआ ।। ६८ ।। उन्होंने तुरन्त ही जाकर श्रीवास पंडित को यह बात सुनायी तो वे बोले कि "तुम प्रभु के पास जाओ ।। ६९ ।। श्रीरामाइ के मुख से समाचार पाकर प्रभु आये तो देखते हैं कि नित्यानन्द जी को वाह्य-ज्ञान कुछ नहीं है और वे खब हँस रहे हैं ।। ७० ।। प्रभु ने दण्ड को उठाकर अपने श्री हस्त में ले लिया और नित्यानन्द जी को लेकर गङ्गा-स्नान को चल पड़े ।। ७१ ।। श्रीवास आदि सब भक्त साथ चले । गङ्गा में पहुँचकर प्रभु ने स्वयं, दण्ड को गङ्गा जी में बिसर्जन कर दिया ।। ७२ ।। नित्यानन्द जी चंचल बने हुए हैं–किसी की बातों को नहीं मानते हैं–तब प्रभु ने एक बार गरज कर कुछ डाँट दिया ।। ७३ ।। नित्यानन्द जी मगर को देखकर उसे पकड़ने जाते हैं । गदाधर जी और श्रीवास "हाय २" करके चिल्ला उठते हैं ।। ७४ ।। आप निर्भय होकर गङ्गा के मध्य में तैर रहे हैं, केवल श्रीचैतन्य प्रभु के वाक्य से ही कुछ शान्त हो जाते हैं ।। ७५ ।। तब प्रभु विश्वम्भर पुकार कर नित्यानन्द जी से कहते हैं "श्रीपाद ! चलो न शीघ्र चलकर व्यास पूजा करो" ।। ७६ ।। प्रभु के वचन सुनकर वे निकल आये और स्नान करके प्रभु के साथ घर आये ।। ७७ ।। "कृष्ण" "कृष्ण" कीर्त्तन निरन्तर करते हुए सब भक्त लोग भी वहाँ आ मिले ।। ७८ ।। व्यास पूजा के आचार्य श्रीवास पण्डित हैं और वे श्रीचैतन्य चन्द्र की आज्ञा से सब कार्य करते हैं

मधुर मधुर सभे करेन कीर्त्तन। श्रीवास मन्दिर हैल वैकुण्ठ भवन ॥८०॥
सर्व शास्त्र ज्ञाता सेइ ठाकुर-पण्डित। करिला सकल कार्य जे विधि बोधित ॥८१॥
दिव्य-गन्ध सहित सुन्दर बनमाला। नित्यानन्द हाथे दिया बलिते लागिला।८२॥
"शुन शुन नित्यानन्द! एइ माला धर। वचन पढ़िया व्यास देवे नमस्कार ॥८३॥
शास्त्र विधि आछे माला आपने से दिबा। व्यास तुष्ट हैले, सर्व-अभीष्ट पाइबा" ॥८४॥
जत शुने नित्यानन्द करे 'हय हय'। किसेर वचन पाठ–प्रबोधनालय ॥८५॥
किबा बोले धीरे धीरे, बुझन ना जाय। माला हाथे करि पुन चारि दिगे चा'य ॥८६॥
प्रभुरे डाकिया बोले श्रीवास उदार। "ना पूजेन व्यास एइ श्रीपाद तोमार" ॥८७॥
श्रीवासेर वाक्य शुनि प्रभु विश्वम्भर। धाइया सन्मुखे प्रभु आइला सत्वर ॥८८॥
प्रभु बोले "नित्यानन्द! शुनह वचन। माला दिया झाट कर' व्यासेर पूजन" ॥८९॥
देखि लेन नित्यानन्द–प्रभु विश्वम्भर। माला तुलि दिला तार मस्तक-उपर ॥९०॥
चाँचर-चिकुरे माला शोभे अति भाल। छय-भुज विश्वम्भर हइला तत्काल ॥९१॥
शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, श्रीहल, मुषल। देखिया विस्मित हैला निताइ विह्वल।९२॥
षड्भुज देखि मूर्च्छा पाइला निताइ। पड़िला पृथिवी तले–धातु मात्र नाइ ॥९३॥
भय पाइलेन सब वैष्णवेर गण। "रक्ष कृष्ण! रक्ष कृष्ण!" करेन स्मरण ॥९४॥
हुङ्कार करेन जगन्नाथेर नन्दन। कक्षे तालि देइ घन-विशाल–गर्ज्जन ॥९५॥
मूर्च्छा गेला नित्यानन्द षड्भुज देखिया। आपने चैतन्य तोले गा'ये हाथ दिया ॥९६॥

---

॥ ७९ ॥ सब मधुर २ कीर्तन करते हैं–अहो श्रीवास का घर वैकुण्ठ धाम बन गया है ॥ ८० ॥ सर्व शास्त्र के ज्ञाता श्रीवास पंडित ने वेद-विधि के अनुसार व्यास पूजा सम्बन्धी सब कार्य यथावत् सम्पन्न किया ॥ ८१ ॥ फिर दिव्य गन्ध युक्त एक सुन्दर बन माला नित्यानन्द जी के हाथ में देकर बोले ॥८२॥ "सुनो–नित्यानन्द जी! सुनो! यह माला लो, और मंत्र पढ़ करके व्यास देव को नमस्कार करो॥ ८३ ॥ "शास्त्र की ऐसी विधि है कि माला स्वयं पहरावे। व्यास जी के प्रसन्न होने पर सब अभीष्ट वस्तु प्राप्त होंगी ॥८४॥ नित्यानन्द जी जो भी सुनते हैं, केवल "हाँ हाँ" कर देते हैं–कौन मंत्र पाठ करें, ये तो समझाने पर मानते ही नहीं हैं ॥ ८५ ॥ धीरे धीरे न जाने क्या कुछ कहते जाते हैं, समझ में नहीं आता–फिर माला हाथ में लेकर चारों ओर देखते हैं॥ ८६ ॥ तब तो उदार श्रीवास जी प्रभु को पुकार कर कहते हैं कि "हे प्रभो! आपके ये श्रीपाद व्यास–पूजा नहीं करते हैं" ॥ ८७ ॥ श्रीवास जी के वचन को सुनकर प्रभु विश्वम्भर दौड़ कर नित्यानन्द प्रभु के सन्मुख आये ॥ ८८ ॥ और बोले–"नित्यानन्द जी! मेरी बात सुनो! माला अर्पण करके झटपट व्यास जी की पूजा कर डालो" ॥ ८९ ॥ श्रीनित्यानन्द जी ने प्रभु विश्वम्भर को देखा और माला उठाकर उनके मस्तक पर चढ़ा दी ॥ ९० ॥ प्रभु के घुँघराली अलकावली पर माला अत्यन्त शोभा देने लगी–उसी क्षण प्रभु विश्वम्भर षड भुज धारी बन गये ॥ ९१ ॥ प्रभु की छः भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, पद्म, हल और मूषल को देखकर श्री निताई चांद विस्मित और विह्वल हो गये हैं ॥ ९२ ॥ षड्भुज के दर्शन करके निताई प्रभु मूर्च्छित हो गये और पृथ्वी पर गिर पड़े तथा संज्ञा-शून्य हो गये।॥९३॥ यह देखकर सब वैष्णव लोग भयभीत हो गये और "हे कृष्ण। रक्षा करो!" "हे कृष्ण! रक्षा करो" कह कह कर भगवान् को स्मरण करने लगे ॥ ९४ ॥ तब तो जगन्नाथ–नन्दन प्रभु गौर सुन्दर हुँकार करते हैं और बगल बजाते हुए बारम्बार जोर २ से गरजते हैं ॥ ९५ ॥ नित्यानन्द जी षड्भुज दर्शन करके मूर्च्छित

"उठ उठ नित्यानन्द ! स्थिर कर' चित । सङ्कीर्तन शुन-जे तोमार समीहित ॥९७॥
जे कीर्त्तन-निमित्त करिला अवतार । से तोमार सिद्ध हैल, किवा चाह आर ॥९८॥
तोमार से प्रेम भक्ति, तुमि प्रेममय । विने तुमि दिले, कारो भक्ति नाहि हय ॥९९॥
आपना' सम्वरि उठ, निज-जन चा'ह । जाहारे तोमार इच्छा, ताहारे विलाह ॥१००॥
तिलार्द्धेक तोमारे जाहार द्वेष रहे । भजि लेह से आमार प्रिय कभु नहे" ॥१०१॥
पाइया चैतन्य प्रभु-प्रभुर वचने । हइला आनन्द मय षड्भुज दर्शने ॥१०२॥
जे अनन्त-हृदये वैसेन गौरचन्द्र । सेइ प्रभ अविस्मय जान' नित्यानन्द ॥१०३॥
छय-भुज-दृष्टि ताने कोन अद्भुत । अवतार-अनुरूप ए सब कौतुक ॥१०४॥
रघुनाथ-प्रभु जेन पिण्डदान कैला । प्रत्यक्ष हइया आसि दशरथ लैला ॥१०५॥
से जदि अद्भुत, तवे एहो अद्भुत । निश्चय सकल एइ कृष्णेर कौतुक ॥१०६॥
नित्यानन्द स्वरूपेर स्वभाव सर्व्वथा । तिलार्द्धेको दास्य भाव ना हय अन्यथा ॥१०७॥
लक्ष्मणेर स्वभाव जे हेन अनुक्षण । सीता वल्लभेर दास्ये मन प्राण धन ॥१०८॥
एइ मत नित्यानन्द स्वरूपेर मन । चैतन्य चन्द्रेर दास्य प्रति अनुक्षण ॥१०९॥
यद्यपिह अनन्त ईश्वर निराश्रय । सृष्टि स्थिति प्रलयेर हेतु जगन्मय ॥११०॥
सर्व-सृष्टि-तिरोभाव जे समये हये । तखनो अनन्त-रूप सत्य वेदे कहे ॥१११॥
तथापिह श्रीअनन्त देवेर स्वभाव । निरवधि प्रेम दास्य भावे अनुराग ॥११२॥

---

पड़े हैं और श्रीचैतन्य देव स्वयं अपने हाथों से उन्हें पकड़ कर उठाते हैं ॥ ९६॥ और कहते हैं-"नित्यानन्द जी ! उठो २, चित्त को स्थिर करो और अपने मनोवाञ्छित संकीर्तन को श्रवण करो ।९७। "जिस कीर्त्तन के निमित्त तुम ने अवतार ग्रहण किया है, वह तो सिद्ध हो गया । अब तुम और क्या चाहते हो ? ॥९८॥ "तुम प्रेम मय हो और प्रेम भक्ति तुम्हारी ही वस्तु है । तुम्हारे दिये विना किसी में वह भक्ति नहीं हो सकती है ॥ ९९ ॥ "अब आप अपने को सँभाल कर उठें और अपने जनों की ओर देखें और जिसे चाहें उसे प्रेम भक्ति देवें ॥ १०० ॥ "जिसका आपके प्रति तिलार्द्ध भी द्वेष भाव रहेगा वह मेरा भजन करने पर भी कभी मेरा प्रिय नहीं होगा" ॥ १०१ ॥ प्रभु के वचनों से निताइ प्रभु चेतनता लाभ करते हैं और षड्भुज के दर्शन से परमानन्द को प्राप्त होते हैं ॥ १०२ ॥ जिन अनन्त देव के हृदय में श्रीगौर चन्द्र निवास करते हैं, उन्हें ही प्रभु नित्यानन्द जानो--विस्मय मत करो ॥ १०३ ॥ उनके लिये छः भुजाओं का दर्शन कौन सी अद्भुत बात है ? ये सब तो कौतुक हैं जो अवतार के अनुरूप ही हैं ॥ १०४ ॥ जैसे श्रीरामचन्द्र ने पिण्ड दान किया था तो दशरथ जी ने प्रत्यक्ष होकर ग्रहण किया था ॥ १०५॥ उस चरित्र को यदि अद्भुत कहा जाय तो यह भी अद्भुत है। निश्चय ही ये सब श्रीकृष्ण के कौतुक हैं ॥ १०६ ॥ नित्यानन्द जी के स्वरूप का यह एक नित्य स्वभाव है कि तिलार्द्ध काल के लिये भी दास-भाव का त्याग नहीं होता है ॥ १०७ ॥ जैसे लक्ष्मण जी का यह स्वभाव है कि श्री सीतानाथ के दास्य में वे निरन्तर अपने मन, प्राण, धन-सर्वस्व को लगाये रखते हैं ॥ १०८ ॥ वैसे ही नित्यानन्द स्वरूप का भी मन निरन्तर श्रीचैतन्य चन्द्र के दास्य में अर्पित रहता है ॥ १०९ ॥ यद्यपि श्री अनन्त देव ईश्वर हैं, निराश्रय हैं अर्थात् सबके आश्रय होने के कारण उनका कोई आश्रय नहीं है, सृष्टि-स्थिति--प्रलय के हेतु है तथा जगन्मय हैं ॥ ११० ॥ जिस समय सारी सृष्टि का लय हो जाता है, उस समय भी अनन्त रूप स्थिर रहता है-ऐसा वेद कहते हैं ॥१११॥ ऐसी महिमा होने पर भी श्री अनन्त देव का यही स्वभाव है कि वे निरन्तर प्रेममय दास भाव में ही अनु-

जुगे जुगे–प्रति-अवतारे-अवतारे। स्वभाव ताहार दास्य, बुझह विचारे ॥११३॥
श्रीलक्ष्मण-अवतारे अनुज हइया। निरवधि सेवेन अनन्त–दास हैया ॥११४॥
अन्न पानी निद्रा छाड़ि श्रीराम चरण। सेवियाओ आकांक्षा ना पूरे अनुक्षण ॥११५॥
ज्येष्ठ हइयाओ बलराम-अवतारे। दास्य जोग कभु ना छाड़िलेन अन्तरे ॥११६॥
स्वामी करियाओ से बोलेन कृष्ण प्रति। भक्ति बइ कखनोना हय अन्य-मति ॥११७॥
बत्स हरण प्रसङ्गे बलदेव वाक्यम्, केयं वाकुत आयाता देवी नार्युत वासुरी।
प्रायो मायास्तु मे भर्तुर्नान्यामेऽपिविमोहिनी ॥११८॥
सेइ प्रभु आपने अनन्त महाशय। नित्यानन्द-महाप्रभु जानिह निश्चय ॥११९॥
इहाते जे नित्यानन्द बलराम प्रति। भेद दृष्टि हेन करे–से-इ मूढ़ मति ॥१२०॥
सेवा विग्रहेर प्रति अनादर जार। विष्णु स्थाने अपराध सर्व्वथा ताहार ॥१२१॥
तथाहि श्रीरामचन्द्र वाक्यम्, अजप्त्वा लक्ष्मणं मंत्रं रामचन्द्रं जपेत् तुयः।
तस्य कार्यं न सिध्येत कल्प कोटि शतै रपि ॥१२२॥
ब्रह्मा-महेश्वर–वन्द्य जद्यपि कमला। तभु ताँर स्वभाव–चरण सेवा-खेला ॥१२३॥
सर्व-शक्ति-समन्वित 'शेष' भगवान्। तथापि स्वभाव-धर्म–सेवा से ताहान ॥१२४॥
अतएव तान जेन स्वभाव, कहिते। सन्तोष पायेन प्रभु सकल हइते ॥१२५॥
ईश्वर-स्वभाव से–केवल भक्ति वश। विशेषे प्रभुर सुख शुनि तेइ जश ॥१२६॥
स्वभाव कहिते विष्णु वैष्णवेर प्रीत। अतएव वेदे कहे स्वभाव-चरित ॥१२७॥

राग वान हैं ॥ ११२ ॥ विचार करके देख लो कि प्रत्येक युग में प्रत्येक अवतार में उनका स्वभाव दास का ही रहा है ॥ ११३ ॥ श्री लक्ष्मण के अवतार में छोटे भाई बन कर अनन्त देव दास भाव में निरन्तर श्री राम जी की सेवा करते हैं ॥ ११४ ॥ अन्न, जल और निद्रा को त्याग करके श्रीराम के चरण कमलों की सेवा करके भी, आपकी सेवा की लालसा पूरी नहीं हुई ॥ ११५ ॥ और बलराम अवतार में बड़े भाई होने पर भी आपने कभी भी भीतर हृदय में दास भाव को नहीं छोड़ा ॥ ११६ ॥ ( बड़े होने पर भी कभी २ ) आप श्रीकृष्ण से स्वामी कहकर के भी बोलते हैं और कहते हैं कि "भक्ति को छोड़ कभी भी मेरी अन्य मति न हो" ॥ ११७ ॥ ब्रह्मा के बालक और बछड़ों को चुराने पर जब श्रीकृष्ण ही समस्त बालक और बछड़े बन गये तो उस प्रसंग में बलराम जी बोले–"यह माया कौन है ? कहाँ से आयी है ? यह देवताओं की माया है या मनुष्यों की या असुरों की ? नहीं २–यह तो मेरे प्रभु की ही माया है कारण कि औरों की माया मुझे विमोहित नहीं कर सकती है ॥ ११८ ॥ वही प्रभु अनन्त महाशय स्वयं ही नित्यानन्द महाप्रभु हैं–इसे निश्चय जानो ॥ ११९ ॥ इस कारण जो नित्यानन्द और बलराम में भेद-दृष्टि करता है–वही मूढ़ मति है ॥ १२० ॥ सेवा की ही मूर्त्ति-जो श्रीनित्यानन्द हैं उनके प्रति जिसका अनादर है, उसका सदा भगवान् विष्णु के निकट अपराध जानो ॥ १२१ ॥ उदाहरण स्वरूप श्रीरामचन्द्र जी का यह वाक्य है कि "लक्ष्मण के मन्त्र को जपे बिना जो श्रीराम का मंत्र जपता है। उसका कार्य शत कोटि कल्पों में भी सिद्ध नहीं होता है ॥ १२२ ॥ जिस प्रकार लक्ष्मी जी ब्रह्मा, महेश आदि की वन्दनीया होने पर भी उनका स्वभाव प्रभु के चरण कमलों की सेवा करना ही है ॥ १२३ ॥ उसी प्रकार 'शेष' भगवान् यद्यपि सर्व-शक्ति करके संयुक्त हैं। तथापि उनके स्वभाव का धर्म प्रभु की सेवा ही है ॥ १२४॥ अतएव उनका जैसा स्वभाव है उसका वर्णन करने से वे सबसे अधिक प्रसन्न होते हैं ॥ १२५ ॥ ईश्वर का स्वभाव है कि वे केवल भक्ति के वश में रहते हैं और उनको अपने भक्तों का यश सुनने में विशेष सुख मिलता है ॥ १२६ ॥ परस्पर के

विष्णु वैष्णवेर तत्त्व जे कहे पुराणे । सेइ मत लिखि आमि पुराण-प्रमाणे ॥१२८॥
नित्यानन्द स्वरूपेर एइ वाक्य मन । "चैतन्य ईश्वर, मुञितार एक जन" ॥१२९॥
अहर्निश श्रीमुखे नाहिक अन्य कथा । "मुञि तार, सेहो मोर ईश्वर सर्व्वथा ॥१३०॥
चैतन्येर सङ्गे जे मोहोर स्तुति करे । सेइ से मोहोर भृत्य, पाइबेक मोरे" ॥१३१॥
आपने कहिया आछेन षड्भुज दर्शने । तान प्रीते कहि तान ए सब कथने ॥१३२॥
परमार्थे नित्यानन्द ताहान हृदये । दोंहे दोंहा देखिते आछेन सुनिश्चये ॥१३३॥
तथापिह अवतार-अनुरूप खेला । करेन ईश्वर सेवा, बुझतान लीला ॥१३४॥
सहजे स्वीकार प्रभु करये आपने । ताहा गाय वर्णे, वेदे भारते पुराणे ॥१३५॥
जे कर्म करये प्रभु, से-इ हय वेद । ताहि गाय सर्व-वेद छाड़ि सर्व-भेद ॥१३६॥
भक्ति जोग विने इहा बुझन ना जाय । जाने जन-कथो गौरचन्द्रेर कृपाय ॥१३७॥
नित्य शुद्ध ज्ञान वन्त वैष्णव-सकल । तबे जे कलह देख सब कुतूहल ॥१३८॥
इहा ना बुझिया कोनो कोनो बुद्धि-नाश । एक वन्दे, आरनिन्दे, जाइबेक नाश ॥१३९॥
तथाहि नारद पुराणे, "अभ्यर्चयित्वा प्रतिमा सुविष्णुं द्विष्यन् जने सर्वगतं तमेव ।
अभ्यर्च्य पादौ द्विज नस्य मूर्द्धि न द्रुह्यन्नि वाज्ञो नरकं प्रयाति ॥१४०॥
वैष्णव हिंसार कथा, सेथाकुक दूरे । सहज-जीवेरे जे अधम पीड़ा करे ॥१४१॥

---

स्वभाव का वर्णन करने से विष्णु और वैष्णव जन-दोनों प्रसन्न होते हैं-अतएव वेद इन्हीं दोनों के स्व-भाव-चरित्र का वर्णन करते हैं ॥ १२७ ॥ विष्णु और वैष्णवों का तत्त्व जैसा कि पुराणों में कहा है, उसी प्रमाण के अनुसार मैं वैसा ही लिखता हूँ ॥ १२८ ॥ श्री नित्यानन्द स्वरूप की वाणी और मन में बस यही है कि-"श्रीचैतन्य देव ईश्वर हैं, और मैं उनका एक जन हूँ" ॥ १२९ ॥ दिन रात उनके श्रीमुख में-"मैं उनका हूँ और वे सर्वथा मेरे ईश्वर हैं-"इसे छोड़ और कोई दूसरी बात नहीं है ॥ १३० ॥ "जो जन श्री चैतन्य चन्द्र के साथ मेरी स्तुति करता है। वही मेरा सेवक है, वही मुझको प्राप्त होगा" ॥ १३१ ॥ ये सब बातें स्वयं आपने ही षड्भुज दर्शन के समय कही हैं-उन्हीं की प्रसन्नता के लिये मैं उन्हीं की ये सब बातें कह रहा हूँ ॥ १३२ ॥ परमार्थ में अर्थात् तत्त्व दृष्टि से जो नित्यानन्द जी सदा प्रभु के हृदय में हैं ही और सुनिश्चय करके वहाँ दोनों दोनों को देख भी रहे हैं ॥ १३३ ॥ तथापि अवतार के अनुरूप खेल खेलते हुये वे ईश्वर की सेवा करते हैं-ऐसे इस लीला को समझो ॥ १३४ ॥ प्रभ नित्यानन्द जी आप ही सेवा के इस स्वभाव को स्वीकार करते हैं और उसी को वेद, महाभारत, पुराण गा गाकर वर्णन करते हैं ॥ १३५ ॥ प्रभु जो कर्म करते हैं, वही वेद हो जाता है, फिर उसे ही सब वेद सब भेद भाव छोड़ कर गाते हैं ॥१३६॥ भक्ति योग बिना यह बात समझ में नहीं आती है, कुछ थोड़े लोग ही गौर चन्द्र की कृपा से इसे जानते हैं ॥ १३७ ॥ सब वैष्णव जन नित्य, शुद्ध और ज्ञानवान् हैं फिर भी जो उनमें परस्पर में कलह देखने में आता है, वह सब एक कौतुक मात्र है ॥ १३८ ॥ इस बात को समझे बिना कोई २ नष्ट-बुद्धि वाले एक की वन्दना करते और दूसरे की निन्दा करते हैं-वे नाश को प्राप्त होंगे ॥ १३९ ॥ जैसे कि नारद पुराण में कहा है कि "जो प्रतिमा में विष्णु की विधि पूर्वक पूजा करता हुआ उनके जनों के प्रति द्वेष करता है वह सर्वान्तिर्यामी भगवान् के प्रति ही द्वेष करता है। वह मूर्ख ब्राह्मण के चरणों की पूजा करके उसके मस्तक पर चोट करने वाले की भाँति नरक को जाता है ॥ १४० ॥ वैष्णव जनों की हिंसा की बात तो दूर रहे, जो अधम साधारण जनों को भी पीड़ा पहुँचाते हैं, ॥ १४१ ॥ और श्री विष्णु की पूजा करके भी जो साधारण

विष्णु पूजियाओ जे प्रजार द्रोह करे । पूजाओ निष्फल हय, आरो दुःखे मरे ।।१४२।।
सर्व भूते आछेन श्रीविष्णु ना जानिया । विष्णु पूजा करे अति प्राकृत हइया ।।१४३।।
एक हस्ते जेन विप्र-चरण पाखाले । आर हस्ते ढिला मारे माथाय कपाले ।।१४४।।
ए सब लोकेर कि कुशल कोन-क्षणे । हइयाछे हइ बेक ? बुझ भावि मने ।।१४५।।
जत पाप हय प्रजा गणेर हिंसने । तार शतगुण हय वैष्णव-निन्दने ।।१४६।।
श्रद्धा करि मूर्ति पूजे, भक्त ना आदरे । मूर्ख नीच-पतितेर दया नाहि करे ।।१४७।।
भक्ताधम शास्त्रे कहे ए सब जनारे । प्रभु-अवतार' जेइ जन भेद करे ।।१४८।।
एक अवतार भजे, ना भजये आर । कृष्ण–रघुनाथ करे भेद व्यवहार ।।१४९।।
बलराम-शिव प्रति प्रीत नाहि करे । भक्ता धर्म शास्त्रे कहे ए सब जनारे ।।१५०।।
"अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धये हते । नतद्भक्तेषु चान्येषु सभक्तः प्राकृतः स्मृतः" ।।१५१।।
प्रसङ्गे कहिल भक्ताधमेर लक्षणे । पूर्ण हैला नित्यानन्द षड्भुज-दर्शने ।।१५२।।
एइ नित्यानन्देर षड्भुज दरशन । इहा जे शुनये–तार बन्ध विमोचन ।।१५३।।
वाह्य पाइ नित्यानन्द करेन क्रन्दने । महा नदी वहे दुइ कमल–नयने ।।१५४।।
सभा' प्रति महाप्रभु बलिला बचन । "पूर्ण हैल व्यास पूजा, करह कीर्त्तन" ।।१५५।।
पाइया प्रभुर आज्ञा सभे आनन्दित । चौदिगे उठिल कृष्ण ध्वनि आचम्बित ।।१५६।।
नित्यानन्द-गौरचन्द्र नाचे एक ठाञि । महामत्त दुइ भाइ, कारो वाह्य नाञि ।।१५७।।
सकल वैष्णव हैला आनन्दे विह्वल । व्यास पूजा-महोत्सव महा-कुतूहल ।।१५८।।

---

प्राणी से द्रोह करते हैं, उनकी पूजा निष्फल जाती है और वे दुःख पाकर मरते हैं ।। १४२ ।। जो जन सर्व-भूत में स्थित भगवान् विष्णु को न जाकर प्राकृत की भाँति उनकी पूजा करता है ।। १४३ ।। वह ऐसा ही है कि जैसे कोई एक हाथ से ब्राह्मण के चरणों को धोवे और दूसरे हाथ से उसके माथे पर, या शिर पर पत्थर मारे ।। १४४ ।। सोच कर समझो तो सही कि इन सब लोगों का क्या कभी कुशल हुआ है या होगा ! ।। १४५ ।। जितना पाप साधारण जीव की हिंसा से होता है, उससे सौ गुना पाप वैष्णव-निन्दा से होता है ।। १४६ ।। मूर्त्ति की तो श्रद्धा से पूजा करे परन्तु भक्त का आदर न करे, तथा मूर्ख, नीच और पतित जनों पर दया न करे । १४७ ।। तथा प्रभु के अवतारों में भेद भाव रक्खे, ऐसे सब जनों को शास्त्र में "अधम-भक्त" कहा है ।। १४८ ।। एक अवतार को भजे, पर दूसरे को न भजे, श्रीकृष्ण और श्रीराम में भेद का व्यवहार करे तथा बलराम और शिवजी के प्रति भक्ति भाव न रक्खे । ऐसे सब लोगों को शास्त्र में "अधम भक्त" कहा है ।। १४९ ।।१५०।। श्रीमद्भागवत में कहा है कि "जो केवल अर्चा विग्रह में ही श्रद्धा पूर्वक श्री हरि की पूजा करते हैं परन्तु न उनके भक्तों का और न और जीवों का आदर करते हैं, वे "प्राकृत भक्त" कहे जाते हैं" ।। १५१ ।। यह प्रसंगवश अधम भक्त के लक्षण कहे गये । यहीं पर श्री नित्यानन्द जी के षड्भुज दर्शन का प्रसंग पूर्ण हुआ ।। १५२ ।। नित्यानन्द जी के षड्भुज दर्शन के इस प्रसंग को जो सुनेगा, वह बन्धन-मुक्त हो जायगा ।। १५३ ।। जब नित्यानन्द जी बाहरी दशा में आये तो वे रोने लगे–उनके दोनों कमल नयनों से महा नदी बह चली ।। १५४ ।। तब महा प्रभु ने सब लोगों से कहा कि "व्यास-पूजा तो पूरी हो गयी–अब कीर्तन करो" ।। १५५ ।। प्रभु की आज्ञा पाकर सब को बड़ा आनन्द हुआ और अचानक चारों ओर कृष्ण-नाम-धुन होने लगी ।। १५६ ।। श्रीनित्यानन्द और श्रीगौर चन्द्र एक ठौर पर नृत्य करते हैं । दोनों भाई महामत्त हो रहे हैं–किसी को बाहर की सुध नहीं है ।। १५७ ।। वैष्णव वृन्द सब आनन्द में

केहो नाचे केहो गाय केहो गड़ि जाय। सभेइ चरण धरे, जे जाहार पाय ॥१५९॥
चैतन्य प्रभुर माता-जगतेर आइ। निभृते वसिया रङ्ग देखेन तथाइ ॥१६०॥
विश्वम्भर नित्यानन्द देखि दुइ जने। "दुइ जन मोर पुत्र" हेन वासे' मने ॥१६१॥
व्यास पूजा महोत्सव परम उदार। अनन्त-प्रभु से पारे इहा वर्णिबार ॥१६२॥
सूत्र आमि किछु कहि चैतन्य चरित। जे-ते-मते कृष्ण गाइ लेइ हय हित ॥१६३॥
दिन अवशेष हैल व्यास पूजा-रङ्गे। नाचेन वैष्णव गण विश्वम्भर-सङ्गे ॥१६४॥
परानन्दे मत्त महा भागवत गण। "हा कृष्ण" वलिया सभे करेन क्रन्दन ॥१६५॥
एइ मते निज भक्ति योग प्रकाशिया। स्थिर हैला विश्वम्भर सर्व-गण लैया ॥१६६॥
ठाकुर-पण्डित प्रति बोले विश्वम्भर। "व्यासेर नैवेद्य सव आनह सत्वर" ॥१६७॥
ततक्षणे आनि लेन सर्व-उपहार। आप नेइ प्रभु हस्ते दिलेन सभार ॥१६८॥
प्रभुर हस्तेर द्रव्य पाइ ततक्षण। आनन्दे भोजन करे भागवत गण ॥१६९॥
जतेक आछिल सेइ वाड़ीर भितरे। सभारे डाकिया प्रभु दिला निज-करे ॥१७०॥
ब्रह्मादि पाइया जाहा भाग्य हेन माने। ताहा पाय वैष्णवेर दास वासी गणे ॥१७१॥
ए सव कौतुक जत श्रीवासेर घरें। एतेकें श्रीवास-भाग्य के। वलिते पारे ॥१७२॥
एइ मत नाना दिन नाना से कौतुके। नवद्वीपे हय नाहि जाने सर्व लोके ॥१७३॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावन दास तछु पद जुगे गान ॥१७४॥

---

विह्वल हो रहे हैं। व्यास पूजा महोत्सव में महान कौतुहल हो रहा है ॥ १५८ ॥ कोई नाच रहे हैं, कोई गा रहे हैं और कोई धरती पर लोट रहे हैं। सब ही चरण पकड़ रहे हैं–जिसका जिसे मिल जाय ॥१५९॥ श्रीचैतन्य प्रभु की माता जगन्माता शची देवी वहीं पर एकान्त में बैठी हुई यह सब कौतुहल देख रही हैं ॥ १६० ॥ श्री विश्वम्भर और नित्यानन्द को देखकर "ये दोनों जने मेरे ही पुत्र हैं"–ऐसा उनके मन में लग रहा है ॥ १६१ ॥ व्यास-पूजा-महोत्सव तो परम उदार है। इसका वर्णन एक अनन्त देव ही कर सकते हैं–और कोई नहीं ॥ १६२ ॥ मैं तो श्रीचैतन्य चरित के कुछ सूत्र ही कह रहा हूँ–कारण कि जिस किसी प्रकार से श्रीकृष्ण का गुण गान करने से ही हित होता है ॥ १६३ ॥ व्यास पूजा के आनन्द में दिन बीत गया। वैष्णव गण श्रीविश्वम्भर के साथ नाच रहे हैं ॥ १६४ ॥ सब महा भागवत जन परमानन्द में मतवाले हो रहे हैं और "हा कृष्ण" कह २ कर रुदन कर रहे हैं ॥ १६५ ॥ इस प्रकार अपने भक्ति योग को प्रकाशित करके श्री विश्वम्भर अपने सब भक्तों के सहित स्थिर हो गये ॥ १६६ ॥ फिर श्रीवास पंडित से बोले कि "व्यास पूजा के सब नैवेद्य को शीघ्र ही ले आओ" ॥ १६७ ॥ वे तत्काल सब सामग्री ले आये उसे प्रभु ने स्वयं अपने हाथ से सबको बाँट दिया ॥ १६८ ॥ प्रभु के श्रीहस्त का प्रसाद पाकर तुरन्त ही सब भक्त जन आनन्द से उसे पाने लगे ॥ १६९ ॥ उस घर के भीतर जितने भी मनुष्य थे सबको बुलाकर प्रभु ने अपने हाथ से उनको भी प्रसाद दिया ॥ १७० ॥ जिसको पाकर ब्रह्मा आदि भी अपना परम सौभाग्य समझते हैं, उसी को वैष्णवों के दास-दासी-जन तक पा रहे हैं ॥ १७१ ॥ यह सब कौतुक चरित श्रीवास जी के घर में हुआ। अतएव श्रीवास के भाग्य को कौन कह सकता है ॥ १७२ ॥ इस प्रकार से नवद्वीप में दिन दिन में नाना प्रकार के कौतुक होते हैं–जिन्हें सब नहीं जानते हैं ॥ १७३ ॥ श्रीकृष्ण चैतन्य और श्री नित्यानन्द को ही जानने वाला, वृन्दावनदास उनके युगल चरणों में कुछ उनका ही गुण गान करता है ॥ १७४ ॥ इति—श्रीचैतन्य भागवते मध्य खण्डे श्रीव्यास पूजा वर्णनं नाम पञ्चमोऽध्याय ॥

# अथ छठा अध्याय

जयति जयति देवः कृष्ण चैतन्य चन्द्रो। जयति जयति कीर्ति स्तस्य नित्या पवित्रा ॥
जयति जयति भृत्य स्तस्य विश्वेश मूर्त्ते। जयति जयति नृत्य स्तस्य सर्व प्रियाणाम् ॥१॥
जय जय जगत जीवन गौरचन्द्र। दान देह' हृदये तोमार पद द्वन्द ॥२॥
जय जय जगत मङ्गल विश्वम्भर। जय जय जत गौर चन्द्रेर किङ्कर ॥३॥
जय श्री परमानन्द पुरीर जीवन। जय दामोदर स्वरूपेर प्राण धन ॥४॥
जय रूप-सनातन-प्रिय महाशय। जय जगदीश-गोपी नाथेर हृदय ॥५॥
जय जय द्वारपाल-गोविन्देर नाथ। जीव प्रति कर' प्रभु! शुभ दृष्टिपात ॥६॥
हेन मते नित्यानन्द-सङ्गे गौरचन्द्र। भक्त गण लैया करे सङ्कीर्तन-रङ्ग ॥७॥
एखने शुनह अद्वैतेर आगमन। मध्य खण्डे जेन मते हैल दरशन ॥८॥
एक दिन महाप्रभु ईश्वर-आवेशे। रामाइरे आज्ञा करि लेन पूर्ण रसे ॥९॥
"चलह रामाञ्चि! तुमि अद्वैतेर वास। तार स्थाने कह गिया आमार प्रकाश ॥१०॥
जार लागि करिला विस्तर आराधन। जार लागि करियाछ विस्तर क्रन्दन ॥११॥
जार लागि करिला विस्तर उपवास। से प्रभु तोमार आसि हइला प्रकाश ॥१२॥
भक्ति जोग विलाइते तारँ आगमन। आपनि आसिया झाट कर' विवर्तन ॥१३॥
निर्जने कहिओ नित्यानन्द—आगमन। जे किछु देखिले तारँ कहिओ कथन ॥१४॥

---

श्रीकृष्ण चैतन्य चन्द्र देव की जय हो, जय हो। उनकी नित्य पवित्र कीर्त्ति की जय हो जय हो। उस विश्वेश्वर मूर्त्ति के सेवकों की जय हो जय हो, तथा उनके समस्त प्रिय जनों के नृत्य की जय हो, जय हो ॥ १ ॥ जगज्जीवन गौरचन्द्र की जय हो, जय हो, आप अपने श्रीचरण युगल को मेरे हृदय के लिये प्रदान करें ॥ २ ॥ जगन्मंगल विश्वम्भर की जय हो जय हो, श्रीगौर चन्द्र के समस्त किंकरों की जय हो जय हो ॥ ३ ॥ श्री परमानन्द पुरी के जीवन स्वरूप प्रभु की जय हो। दामोदर स्वरूप के प्राण धन प्रभु की जय हो ॥ ४ ॥ महाशय रूप सनातन के प्रिय गौर प्रभु की जय हो। जगदीश—गोपीनाथ के हृदय स्वरूप गौर प्रभु की जय हो ॥ ५ ॥ द्वारपाल गोविन्द के नाथ की जय हो, जय हो। हे प्रभो! जीव के प्रति शुभ दृष्टि कीजिए! ॥ ६ ॥ इस प्रकार नित्यानन्द जी के सहित श्रीगौर चन्द्र, भक्तों को लेकर संकीर्तन का आनन्दोत्सव करते हैं ॥ ७ ॥ अब इस मध्य खण्ड में जिस प्रकार श्रीअद्वैत प्रभु ने आगमन करके दर्शन दिया—उस प्रसंग को सुनो ॥ ८ ॥ एक दिन श्री महाप्रभु ने ईश्वर आवेश में पूर्णानन्द में मग्न होकर रामाइ पंडित को आज्ञा की ॥ ९ ॥ "रामाइ! तुम अद्वैत के घर जाओ और उनको मेरे "प्रकाश" का सम्वाद सुनाओ ॥ १० ॥ उनसे यह कहना कि "जिनको प्रकट करने के लिये तुमने इतनी आराधना की, जिनके लिये तुम इतने रोये हो, तुमने इतने व्रतोपवास किये हैं, वे तुम्हारे प्रभु आकर प्रकट हो गये हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ "वे अपना भक्ति योग लुटाने के लिये आये हैं। आप शीघ्र ही यहाँ आकर आनन्द में नृत्य करें ॥ १३ ॥ "और उनसे एकान्त में श्रीनित्यानन्द जी का आगमन भी वह सुनाना और भी जो कुछ तुमने देखा है सो सब कहना ॥ १४ ॥ "उनको मेरी पूजा की सामग्री तथा उपहार को लेकर स्त्री सहित

आमार पूजार सज्ज उपहार लैया। झाट आसि तारे बोल' सश्लोक हइया' ॥१५॥
श्रीवास-अनुज–राम आज्ञा शिरे करि। सेइ क्षणे चलिला स्मङरि 'हरि हरि' ॥१६॥
आनन्दे विह्वल–पथ ना जाने रामाञि। चैतन्येर आज्ञा लैया गेला सेइ ठाञि ॥१७॥
आचार्येरे नमस्करि रामाञि-पण्डित। कहितेना पारे कथा, आनन्दे पूर्णित। १८॥
सर्वज्ञ अद्वैत भक्ति जोगेर प्रभावे। आइल प्रभुर आज्ञा' जानि आछे आगे ॥१९॥
रामाञि देखिया हासि बोलये वचन। "बुझि आज्ञा हैल आमा निवार कारण ॥२०॥
कर जोड़ करि बोले रामाञि पण्डित। "सकल जानिञा छह, चलह त्वरित ॥२१॥
आनन्दे विह्वल हैला आचार्य-गोसाञि। हेन नाहि जाने,देह आछे कोन् ठाञि ॥२२॥
के बुझये अद्वैतेर चरित्र गहन। जानिञाओ नाना-मत कहये कथन ॥२३॥
"कोथार गोसाञि आइला मानुष-भितरे। कोन् शास्त्रे बोले नदियाय अवतारे ॥२४॥
मोर भक्ति अध्यात्म वैराग्य ज्ञान मोर। सकल जानये श्रीनिवास–भाइ तोर" ॥२५॥
अद्वैतेर चरित्र रामाञि भाल जाने। उत्तरना करे किछु, हासे मने मने ॥२६॥
एइ मत अद्वैतेर चरित्र अगाध। सुकृतिर भाल, दुष्कृतिर कार्जे बाध ॥२७॥
पुन बोले "कह कह रामाञि पण्डित। कि कारणे तोमार गमन आचम्बित" ॥२८॥
बुझिलेन–आचार्य हइला शान्त चित। तखने कान्दिया कहे रामाञि पण्डित ॥२९॥
जार लागि करियाछ विस्तर क्रन्दन। जार लागि करिला विस्तर आराधन ॥३०॥

---

तुरन्त ही यहाँ आने के लिये कहना" ॥ १५ ॥ श्रीवास जी के भाई रामाइ पण्डित प्रभु की आज्ञा को शिरोधार्य करके उसी समय, "हरि हरि" स्मरण करते हुए चल पड़े ॥ १६ ॥ रामाइ आनन्द में विह्वल होकर चले जा रहे हैं। मार्ग का भी ध्यान नहीं है। फिर भी श्रीचैतन्य प्रभु की आज्ञा को लीये हुए वहाँ पहुँच ही तो गये ॥ १७ ॥ रामाइ पंडित ने अद्वैताचार्य जी को नमस्कार किया परन्तु आनन्द में भरे हुए मुख से कुछ कह नहीं पाते हैं ॥ १८ ॥ अद्वैत प्रभु भक्ति योग के प्रभाव से सर्वज्ञ हैं–अतएव वे पहले ही समझ गये कि मेरे लिए प्रभु की आज्ञा आयी है ॥ १९ ॥ वे रामाइ को देख हँसकर बोले–"मालूम होता मुझको लाने के लिये आज्ञा हुई है" ॥ २० ॥ रामाइ पंडित हाथ जोड़कर बोले–"आप तो सब जान ही गये हैं–अतएव चलिये शीघ्र ही" ॥ २१ ॥ तब तो आचार्य-गुसांई आनन्द में विह्वल हो गये मेरा शरीर कहाँ है–इसका भी ज्ञान उन्हें न रहा ॥ २२ ॥ श्री अद्वैत के गहन चरित्र को कौन समझ सकता है। जानते हुए भी अनजान की सी नाना बातें वे कहने लगे ॥२३॥ वे बोले–"मनुष्यों के भीतर गुसांई अर्थात् ईश्वर कहाँ से आ गये ? नदिया में अवतार होना किस शास्त्र में लिखा है ? ॥ २४ ॥ "मेरी भक्ति, मेरा अध्यात्म, वैराग्य और ज्ञान इनको तेरा भाई श्रीनिवास भली प्रकार सब जानता है" ॥ २५ ॥ श्रीअद्वैत के चरित्र को रामाइ पण्डित भी भली भाँति जानते हैं, परन्तु फिर भी कुछ उत्तर नहीं देते हैं–केवल मन-ही-मन में हँसते हैं ॥ २६ ॥ श्री अद्वैताचार्य के ऐसे २ जो चरित्र हैं वे बड़े ही अगाध हैं। सत्कर्मी ही उन्हें कुछ समझ सकते हैं अतएव उनके लिये तो मंगल कारी हैं–परन्तु कुकर्मी जीव उन्हें न समझ कर उनमें दोष दृष्टि करते हैं अतएव उनके लिये बाधा कारी हैं ॥ २७ । श्री अद्वैत जी फिर दुबारा बोले–कि "रामाइ पण्डित ! कहो तो सही, किस कारण से अचानक तुम्हारा यहाँ आना हुआ है ?" ॥ २८ ॥ रामाइ पंडित समझ गये कि अब आचार्य देव का चित्त शान्त हुआ है अतएव वे अब रोकर बोले ॥ २९ ॥ "हे आचार्य जी ! जिन प्रभु को प्रकट करने के लिये आपने इतने आँसू-बहाए हैं, इतनी आराधना की है, और इतने

जार लागि करिला विस्तर उपवास। से प्रभु तोमार लागि हइला प्रकाश ।।३१।।
भक्ति जोग विलाइते तार आगमन। तोमारे से आज्ञा करिबारे विवर्त्तन ।।३२।।
षडुङ्ग-पूजार विधि जोग सज्ज लैया। प्रभुर आज्ञाय चल सस्त्रीक हइया ।।३३।।
नित्यानन्द स्वरूपेर हैल आगमन। प्रभुर द्वितीय देह, तोमार जीवन ।।३४।।
तुमिसे जानह तारे मुञि कि कहिमु। भाग्य थाके मोर तवे एकत्र देखिमु ।।३५।।
रामाञ्जिर मुखे जवे एतेक शुनिला। तखनि तुलिया बाहु कान्दिते लागिला ।।३६।।
कान्दिया हइला मूर्च्छा आनन्द-सहित। देखिया सकल-गण हइला विस्मित ।।३७।।
क्षणेके पाइया वाह्य, करये हुङ्कार। "आनिलु आनिलु" वोले "प्रभु आपनार" ।।३८।।
"मोर लागि प्रभु आइला वैकुण्ठ छाड़िया"। एत वलि कान्दे पुन भूमिते पड़िया ।।३९।।
अद्वैत गृहिणी पतिव्रता जगन्माता। प्रभुर प्रकाश शुनि कान्दे आनन्दिता ।।४०।।
अद्वैतेर तनय-'अच्युता नन्द' नाम। परम वालक सेहो कान्दे अविराम। ४१।।
कान्देन अद्वैत पत्नी-पुत्रेर सहिते। अनुचर-सव वेढ़ि कान्दे चारि-भिते। ४२।।
केवा कोन् दिगे कान्दे, नाहि परापर। कृष्ण प्रेम मय हैल अद्वैतेर घर ।।४३।।
स्थिर हय अद्वैत-हइते नारे स्थिर। भावा वेशे निरवधि दोलाये शरीर ।।४४।।
रामाञ्जिरे वोले "प्रभु कि वलिला मोरे"। रामाञ्जि वोलेन "झाट चलिबार तरे" ।।४५।।
अद्वैत वोलये "शुन रामाञ्जि पण्डित। मोर प्रभु हेन तवे आमार प्रतीत ।।४६।।
आपन ऐश्वर्य जदि मोहोरे देखाय। श्रीचरण तुलि देइ आमार माथाय ।।४७।।

व्रत-उपवास किये हैं-वे ही प्रभु आपके लिये प्रकट हो गये हैं ।। ३० ।। ३१ ।। अपनी भक्ति योग लुटाने के लिये ही उनका आगमन हुआ है और आप के लिये उनके आगे नृत्य करने की आज्ञा हुई है ।। ३२ ।। विधि के अनुसार षडाङ्ग पूजा की सब सामग्री लेकर स्त्री सहित चलिये-यही प्रभु की आज्ञा है ।। ३३ ।। श्री मन्महाप्रभु के द्वितीय देह स्वरूप, तथा आप के जीवनस्वरूप, श्रीनित्यानन्द स्वरूप का भी वहाँ आगमन हुआ है ।। ३४ ।। मैं क्या कहूँ आप तो उनको जानते ही हैं मेरे भाग्य में होगा तो आप सब के एकत्र दर्शन करूँगा ।। ३५ ।। जब रामाइ के मुख से इतनी बातें सुनी तो आचार्य देव भुजाओं को उठा कर रोने लगे ।। ३६ ।। रोते रोते आनन्द में डूब कर वेसुध हो गये-यह देख कर सब लोग विस्मित हो गये ।। ३७ ।। थोड़ी देर में सचेत हो कर वे हुँकार करने लगे और 'अपने प्रभु को ले आया हूँ-ले आया हूँ" कहने लगे ।। ३८ ।। "ओ हो ! मेरे लिये प्रभु अपने वैकुण्ठ धाम को छोड़ कर आ गये"-ऐसा कह कर वे पृथ्वी पर लोटते हैं और रोते हैं ।। ३९ ।। जगन्माता पतिव्रता अद्वैत-पत्नी सीतादेवी भी प्रभु के प्रकाश का समाचार सुन कर आनन्द में भर कर रोने लगी ।। ४० ।। अच्युतानन्द नामक अद्वैत जी का पुत्र-जो निपट बालक है-वह भी बराबर रोता ही रहा ।। ४१ । अद्वैताचार्य तो अपनी पत्नी और पुत्र के सहित रो रहे हैं और उनको घेर कर चारों ओर सेवक लोग सब रो रहे हैं ।। ४२ ।। कोई कहीं-कोई कहीं पड़ा रो रहा है-किसी को अपने-पराये की सुध नहीं है-इस प्रकार अद्वैताचार्य का घर प्रेममय हो रहा है ।। ४३ । अद्वैताचार्य स्थिर होना चाहते हैं परन्तु हो नहीं पाते हैं-भावावेश में वे अपने शरीर को लगातार हिला रहे हैं ।। ४४ ।। रामाइ पंडित से पूछते हैं-"प्रभु ने मेरे लिये क्या कहा था"। वे उत्तर देते हैं-"शीघ्र चले आने के लिये" ।। ४५ ।। अद्वैत जी बोले-"सुनो रामाइ पंडित ! 'वे मेरे प्रभु हैं'-इस बात का विश्वास तभी होगा कि जब वे अपना ऐश्वर्य मुझको दिखायेंगे और अपने श्री चरण को उठाकर मेरे मस्तक पर रख देंगे, तब मैं

तवे से जानिबु मोर हय प्राण नाथ। सत्य सत्य सत्य एइ कहिलुँ तोमा'त" ॥४८॥
रामाइ बोलेन "प्रभु ! मुञि कि वलिमु। जदि मोर भाग्य थाके नयने देखिमु ॥४६॥
जे तोमार इच्छा प्रभु ! से-इ से ताँहार। तोमार निमित्त प्रभु ! एइ अवतार" ॥५०॥
हइला अद्वैत तुष्ट रामेर वचने। शुभ-जात्रा-उद्योग करिला ततक्षणे ॥५१॥
पत्नीरे वलिला "झाट हओ सावधान। लइयो पूजार सज्ज चल आगुयान" ॥५२॥
पतिव्रता सेइ चैतन्येर तत्त्व जाने। गन्ध, माल्य, धूप, वस्त्र अशेष-विधाने ॥५३॥
क्षीर, दधि, सुनवनी, कर्पूर, ताम्वूल। लइया चलिला जत सब अनुकूल ॥५४॥
सपत्नीके चलिला अद्वैत-महाप्रभु। रामेरे निषेधे' "इहा ना कहिवा कभू ॥५५॥
'ना आइला आचार्य' तुमि वलिवा वचन। देखि प्रभु मोरे तवे कि बोले तखन ॥५६॥
गुप्त थाकों मुजि नन्दन आचार्येर घरे। 'ना आइला' वलि तुमि करिवा गोचरे" ॥५७॥
सभार हृदये वैसे प्रभु विश्वम्भर। अद्वैत-सङ्कल्प चित्ते हइल गोचर ॥५८॥
आचार्येर आगमन जानिञा आपने। ठाकुर-पण्डित-गृहे चलिला तखने ॥५६॥
प्राय जत चैतन्येर निज-भक्त गण। प्रभुर इच्छाय सव मिलिला तखन ॥६०॥
आवेशित चित्त प्रभु' सभेइ बुझिया। सशङ्क आछेन सभे नीर' व हइया ॥६१॥
हुङ्कार करये प्रभु त्रिदशेर राय। उठिया वसिला प्रभु विष्णुर खट्टाय ॥६२॥
"नाढ़ा आइसे' नाढ़ा आइसे" बोले बारे बारे। "नाढ़ा चाहे मोर ठाकुराल देखि वारे" ॥६३॥
नित्यानन्द जाने सब प्रभुर इङ्गित। बुझिया मस्तके छत्र धरिला त्वरित ॥६४॥

---

जानूँगा कि वे मेरे प्राणनाथ हैं यह मैं तुमसे सत्य ३ कहता हूँ" ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ रामाइ पंडित बोले—"प्रभो ! इस विषय में मैं क्या कहूँ ? हाँ, मेरे भाग्य में होगा तो यह मैं अपनी आँखों से देख पाऊँगा ॥ ४६ ॥ जो आपकी इच्छा है प्रभो ! वही उनकी भी है। यह अवतार ही प्रभो ! आप के निमित्त हुआ है ॥ ५० ॥ रामाइ पंडित के वचनों से श्रीअद्वैतजी संतुष्ट हुये और तुरन्त ही शुभ यात्रा के लिये उद्योग करने लगे ॥ ५१ ॥ वे पत्नी से बोले—"शीघ्र ही तैयार हो जाओ और पूजा की सामग्री लेकर आगे २ चलो ॥ ५२ ॥ वे पतिव्रता देवी श्रीचैतन्यप्रभु के तत्त्व को जानती हैं। वे, सुगन्ध, माला, धूप, वस्त्र, दूध, दही सुन्दर नवनीत, कपूर, पान इत्यादि पूजा-विधि के लिये आवश्यक समस्त सामग्रियों को लेकर चलीं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ श्री अद्वैत महाप्रभु पत्नी को लेकर चले तो सही परन्तु "मेरे आने की बात प्रभु से कभी कहना ही नहीं"—ऐसा कह कर, रामाइ को मना भी करते हैं ॥ ५५ ॥ "तुम तो यूँ कहना कि 'आचार्य नहीं आये'। देखें तब क्या कहते हैं प्रभु ! ॥ ५६ ॥ "मैं तो नन्दन आचार्य के घर में छिप कर रहूँगा और तुम "वे नहीं आये" कह करके प्रचार कर देना" ॥ ५७ ॥ ( परन्तु ) विश्वम्भर प्रभु तो सब के हृदय में विराजमान हैं अतएव अद्वैताचार्य का सङ्कल्प उनके चित्त में प्रत्यक्ष हो गया और ( नवद्वीप में ) उनका आगमन जान करके वे तुरन्त ही स्वयं श्रीवास पण्डित के घर को चल दिये ॥ ५८ ॥ ५६ ॥ श्रीचैतन्य प्रभु के जो निजभक्त जन हैं, वे भी प्रायः सब ही प्रभु की इच्छा से वहाँ ( श्रीवास के घर में ) आ मिले ॥ ६० ॥ परन्तु प्रभु आवेश भाव में हैं समझ कर उन सबको बड़ी शंका हो रही है और वे सब चुपचाप हैं ॥ ६१ ॥ इतने ही में देवताओं के नाथ विश्वम्भर प्रभु हुँकार करते हुए विष्णु सिंहासन पर चढ़ बैठे ॥६२॥ और बार बार कहने लगे कि—"नाढ़ा आ रहा है" "नाढ़ा आ रहा है" "नाढ़ा मेरी ठकुराई देखना चाहता है ॥ ६३ ॥ श्री नित्यानन्द जी प्रभु के संकेत को सब जानने वाले हैं। वे समझ गये ( कि प्रभु इस समय

गदाधर बुझि देइ कर्पूर ताम्बूल। सर्व-जने करे सेवा-जेन अनुकूल ॥६५॥
केहो पढ़े स्तुति केहो कोन सेवा करे। हेनइ समये आसि रामाञि गोचरे ॥६६॥
नाहि कहि तेइ प्रभु बोले रामाञिरे। "मोरे परीक्षिते' नाढ़ा पाठाइल तोरे" ॥६७॥
"नाढ़ा आइसे" बलि प्रभु मस्तक ढुलाय। "जानिञाओ नाढ़ा मोरे चालये सदाय ॥६८॥
एथाइ रहिल नन्दना चार्येर घरे। मोरे परीक्षिते' नाढ़ा पाठाइल तोरे ॥६९॥
आन' गिया शीघ्र तुमि एथाइ ताहाने। प्रसन्न श्रीमुखे आमि बलिल आपने ॥७०॥
आनन्दे चलिला पुन रामाञि-पण्डित। सकल अद्वैत-स्थाने करिला विदित ॥७१॥
शुनिञा आनन्दे भासे अद्वैत आचार्य। आइला प्रभुर स्थाने, सिद्ध हैल कार्य ॥७२॥
दूरे थाकि दण्डवत् करिते करिते। सस्त्रीके आइसे स्तव पढ़िते पढ़िते ॥७३॥
आइला निर्भय पद, हइला सन्मुखे। निखिल ब्रह्माण्डे अपरूप वेश देखे ॥७४॥
श्रीराग, जिनिञा कन्दर्प-कोटि लावण्य सुन्दर। ज्योतिर्मय कनक-सुन्दर कलेवर ॥७५॥
प्रसन्न-वदन कोटि चन्द्रेर ठाकुर। अद्वैतेर प्रति जेन सदय प्रचुर ॥७६॥
दुइ-बाहु-कोटि कनकेर स्तम्भ जिनि। तहिँ दिव्य अलङ्कार-रत्नेर खेंचनि ॥७७॥
श्रीवत्स कौस्तुभ-महा मणि शोभे वक्षे। मकर-कुण्डल वैजयन्ती माला देखे ॥७८॥
कोटि-महा-सूर्य जिनि तेजे॰ नाहि अन्त। पाद पद्मे रमा, छत्र धरये अनन्त ॥७९॥
किवा-नख किवा मणि ना पारे चिनिते। त्रिभङ्गे बाजाय वांशी हासिते हासिते ॥८०॥

अपने ऐश्वर्य भाव में हैं ) और उन्होंने तुरन्त ही छत्र लेकर प्रभु के मस्तक पर धारण कराया ॥ ६४ ॥ श्री गदाधर भी भाव समझ करके पान-कपूर देने लगे और सब भक्त लोग यथायोग्य सेवा में तत्पर हो गये ॥ ६५ ॥ कोई स्तुति-पाठ कर रहे है, कोई किसी सेवा-कार्य में लगे हुये हैं ऐसे ही समय में रामाइ पंडित सामने दिखाई पड़े ॥ ६६ ॥ उसके कुछ न कहने पर प्रभु स्वयं रामाइ से कहने लगे—"मेरी परीक्षा के लिये नाड़ा ने तुमको भेजा है, क्यों ?" ॥ ६७ ॥ ( मैं जानता हूँ कि वह ) "नाडा आ रहा है—" ऐसा कहते हुए प्रभु शिर को हिलाते हैं और कहते हैं. "सब कुछ जान करके भी यह नाडा मुझे हमेशा छेड़ता रहता है ॥ ६८ ॥ "आप तो यहाँ नन्दनाचार्य के घर में रह गया और तुझे मेरी परीक्षा लेने के लिये भेज दिया" ॥ ६९ ॥ "तुम जाकर शीघ्र ही उनको यहाँ ले आओ—यह मैं प्रसन्न मुख से कह रहा हूँ" ॥ ७० ॥ अब तो रामाइ पंडित फिर बड़े आनन्द से चले और जाकर उन्होंने अद्वैत प्रभु को सब वृत्तान्त सुनाया ॥ ७१ ॥ अद्वैताचार्य तो सुन करके आनन्द मग्न हो गये और प्रभु के निकट चले—उनके मन का सङ्कल्प पूरा जो हो गया ॥ ७२ ॥ वे दूर से ही दण्डवत करते और स्तुति पढ़ते हुये स्त्री के सहित आये ॥ ७३ ॥ और निर्भय पद जो श्री गौरचन्द्र प्रभु हैं उनके समीप आ पहुँचे और सन्मुख हुए तो अखिल ब्रह्माण्ड भर से विलक्षण एक रूप और वेश का दर्शन किया ॥ ७४ ॥ प्रभु का कोटि-कन्दर्प-विजयी सुन्दर लावण्य है, ज्योतिर्मय सुन्दर कंचन कलेवर है ॥ ७५ ॥ प्रसन्न श्रीमुख कोटि चन्द्रमाओं का स्वामी है। उस प्रसन्नता से मानो तो यही प्रतीत होता है कि आप श्रीअद्वैत के प्रति अत्यन्त दयावान हैं ॥ ७६ ॥ कोटि कंचन-स्तम्भ-जयी आप के भुज युगल हैं जिन पर रत्न-जटित दिव्य अलङ्कार सुशोभित हैं ॥ ७७ ॥ वक्षस्थल पर श्रीवत्स और कौस्तुभ-महामणि और वनमाला शोभा दे रही है कानों पर मकराकृति कुण्डल हैं। ७८ ॥ कोटि महासूर्य पराजय कारी आप के तेज का अन्त नहीं है, लक्ष्मीदेवी चरण कमलों की सेवा कर रही हैं, अनन्त देव छत्र धारण किये हुए हैं ॥ ७९ ॥ नख हैं या मणि—पहचाने नहीं जाते हैं त्रिभंग खड़े हँसते हुए वंशी बजा रहे हैं

किबा प्रभु, किबा गण, किबा अलङ्कार । ज्योतिर्मय वइ किछु नाहि देखे आर ॥८१॥
देखे पड़िआछे चारि पञ्च शत मुख । महा भये स्तुति करे नारदादि शुक ॥८२॥
मकर वाहन-रथ एक वराङ्गना । दण्ड परणामे आछे जेन गङ्गा समा ॥८३॥
तबे देखे स्तुति करे सहस्र वदन । चारि दिगे देखे ज्योतिर्मय देव गण ॥८४॥
उलटिया चाहे निज चरणेर तले । सहस्र सहस्र देव पड़ि "कृष्ण" बोले ॥८५॥
जे पूजार समये जे देव ध्यान करे । ताहा देखे चारि दिगे चरणेर तले ॥८६॥
देखिया सम्भ्रमे दण्ड परणाम छाडि । उठिला अद्वैत–अद्भुत देखि बड़ि ॥८७॥
देखे सप्त फणाधर महा नाग गण । ऊर्द्ध वाहु स्तुति करे तुलि सब फण ॥८८॥
अन्तरिक्षे परिपूर्ण देखे दिव्य रथ । गज हंस अश्वे निरोधिल वायु पथ ॥८९॥
कोटि कोटि नाग वधू सजल नयने । कृष्ण वलि स्तुति करे देखे विद्यमाने ॥९०॥
क्षिति अन्तरिक्षे स्थान नाहि अवकाशे । देखे वड़ि आछे महा-ऋषि गण पाशे ॥९१॥
महा-ठाकुराल देखि पाइला सम्भ्रम । पति पत्नी किछु वलि वारे नहे क्षम ॥९२॥
परम-सदय-मति प्रभु विश्वम्भर । चाहिया अद्वैत प्रति करिला उत्तर ॥९३॥
"तोमार सङ्कल्प लागि अवतीर्ण आमि । विस्तर आमार आराधना कैले तुमि ॥९४॥
सूतिया आछिलुँ क्षीर सागर-भितरे । निद्रा भङ्ग मोर, तोर प्रेमेर हुङ्कारे ॥९५॥
देखिया जीवेर दुःख ना पारि सहिते । आमारे आनिले सर्व-जीव उद्धारिते । ९६॥

---

॥ ८० ॥ क्या तो प्रभु, क्या सेवकगण और क्या अलङ्कार, सबका अद्वैताचार्य ज्योतिर्मय छोड़ और कुछ नहीं देख पाते हैं ॥ ८१ ॥ और यह भी देखते हैं कि चतुर्मुख, पञ्चमुख, शतमुख वाले देवता ( श्रीचरणों पर ) पड़े हुए हैं और शुक, नारदादि बहुत डर २ के स्तुति कर रहे हैं ॥ ८२ ॥ गंगा देवी जैसी कोई एक सुन्दर रमणी मकर वाहन रथ पर से उतर करके दण्डवत प्रणाम कर रही है ॥ ८३ ॥ फिर देखते हैं कि सहस्त्र-वदन शेष जी स्तुति कर रहे हैं तथा चारों ओर ज्योतिर्मय देवताएँ दिखाई देते हैं ॥ ८४ ॥ उधर से दृष्टि फिरी तो देखते हैं कि अपने पाँवों के ही नीचे हजारों देवता पड़े हुए 'कृष्ण' 'कृष्ण' कह रहे हैं ॥ ८५ ॥ पूजा के समय जिन देवताओं का वे ध्यान किया करते थे आज वे चारों ओर अपने पाँवों के ही नीचे पड़े हुए दिखाई दे रहे हैं ॥ ८६ ॥ ऐसा अद्भुत रहस्य देख कर श्री अद्वैत दण्डवत् प्रणाम को छोड़, हड़ बड़ा कर उठ खड़े हुए ॥ ८७ ॥ तो देखते हैं कि सात २ फण वाले महानाग का समूह अपनी फणारूपी सब बाहुओं को ऊपर उठा कर स्तुति कर रहे हैं ॥ ८८ ॥ आकाश दिव्यरथों से भर गया है, और गज, हंस, अश्वादिकों ने वायु का मार्ग ही रोक लिया है ॥ ८९ ॥ और भी देखते हैं कि कोटि २ नाग-पत्नियाँ अश्रुपूर्ण नेत्रों से "कृष्ण" "कृष्ण" कह कर स्तुति करती हुई विद्यमान हैं ॥ ९० ॥ पृथ्वी और आकाश में खाली स्थान नहीं रहा–महर्षियों के झुण्ड के झुण्ड भी आस पास पड़े हुये हैं ॥ ९१ ॥ प्रभु की इस महान् ठकुराई के दर्शन करके पति-पत्नी दोनों बड़े भारी सम्भ्रम को प्राप्त हुए और कुछ भी कहने में समर्थ नहीं हुए ॥ ९२ ॥ तब परम दयालु मति वाले प्रभु विश्वम्भर श्री अद्वैत की ओर देख करके बोले ॥ ९३ ॥ "तुम्हारे सङ्कल्प को पूर्ण करने के लिए ही मैं अवतीर्ण हुआ हूँ । तुमने मेरी बड़ी भारी आराधना की है ॥ ९४ ॥ "मैं क्षीर-सागर के भीतर सो रहा था परन्तु तेरे प्रेम की हुँकारों से मेरी निद्रा भंग हो गयी ॥ ९५ ॥ "जीवों के दुःख को देखकर जब उसे तुम नहीं सह सके, तो सब जीवों का उद्धार करने के लिए तुम मुझे ले आये ॥ ९६ ॥ "चारों ओर तुमने जो ये सब मेरे गण देखे इन सबका जन्म तुम्हारे कारण हो

जतेक देखिले चतुर्द्दिगे मोर गण। सभार हइल जन्म तोमार कारण ॥९७॥
जे वैष्णव देखिते ब्रह्मादि भावे मने। तोमा' हैते ताहा देखिबेक सर्व-जने ॥९८॥
रामकिरि राग—एतेक प्रभुर वाक्य अद्वैत शुनिञा।
उर्द्ध बाहु करि कान्दे सस्त्रीक हइया ॥९९॥
"आजि से सफल मोर दिन प्रकाश। आजिसे सफल कैलु जत अभिलाष ॥१००॥
आजि मोर जन्म कर्म सकल सफल। साक्षाते देखिलु तोर चरण जुगल ॥१०१॥
घोषे' मात्र चारि-वेद, जारे नाहि देखे। हेन तुमि मोर लागि हैला परतेखे ॥१०२॥
मोर किछु शक्ति नाहि तोमार करुणा। तोमा' बइ जीव उद्धारिब कोन् जना" ॥१०३॥
वलिते वलिते प्रेमे भासेन आचार्य। प्रभु वोले "आमार पूजार कर कार्य ॥१०४॥
पाइया प्रभुर आज्ञा परम-हरिषे। चैतन्य चरण पूजे अशेष विशेषे ॥१०५॥
प्रथमे चरण धुइ सुवासित जले। शेषे गन्धे परिपूर्ण पाद पद्मे ढाले ॥१०६॥
चन्दने डुबाइ दिव्य तुलसी मञ्जरी। अर्घ्येर सहित दिला चरण-उपरि ॥१०७॥
गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, पञ्च-उपचारे। पूजा करे, प्रेम जले वहे महा धारे ॥१०८॥
पञ्च शिखा ज्वालि पुन करेन वन्दना। शेषे जय जय ध्वनि करये घोषणा ॥१०९॥
करिया चरण-पूजा षोडशोपचारे। आर बार दिला माल्य वस्त्र अलङ्कारे ॥११०॥
शास्त्र दृष्ट्ये पूजा करे पटल—विधाने। एइ श्लोक पढ़ि करे दण्ड परणामे ॥१११॥
तथाहि—नमो ब्रह्मण्य देवाय गो ब्राह्मण हिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥११२॥

---

हुआ है ॥ ९७ ॥ "जिन वैष्णवों के दर्शन करने के लिये ब्रह्मादिक मनमें कामना ही किया करते है, उनको, तुम्हारे कारण, अब सब-लोग देख पायेंगे ॥ ९८ ॥ रामकली राग ॥ प्रभु के इन वचनों को सुनकर श्रीअद्वैत भुजा उठा कर स्त्री सहित रोने लगे ॥ ९९ ॥ और कहने लगे कि—"आज ही मेरे लिये दिन का प्रकाश सफल हुआ—कारण कि आज मेरी समस्त अभिलाषाएँ सफल हुईं ॥ १०० ॥ "आज मेरे जन्म-कर्म सब सफल हुये जो कि आज मैंने तुम्हारे युगल चरणों के साक्षात् दर्शन किये ॥ १०१ ॥ "जिनकी घोषणा मात्र ही वेद करते हैं परन्तु जिनको देख नहीं पाते हैं, ऐसे आप मेरे लिये प्रत्यक्ष गोचर हुए हैं ॥ १०२ ॥ "आप जो प्रकट हुये हैं, यह कोई मेरी शक्ति से नहीं—यह तो केवल आप की करुणा है। आपके बिना कौन जीवों का उद्धार कर सकता है ?" ॥ १०३ ॥ इस प्रकार कहते २ आचार्य देव प्रेम में बह चले तब प्रभु बोले "मेरी पूजा का कार्य करो" ॥ १०४ ॥ प्रभु की आज्ञा पाकर आचार्यदेव महान् हर्ष के साथ श्रीचैतन्यचन्द्र के श्री चरणों की पूजा अशेष-विशेष प्रकार से करने लगे ॥ १०५ ॥ पहले सुगन्धित जल से श्रीचरणकमलों को धो कर उनपर गन्ध-द्रव्य लेपन किया ॥ १०६ ॥ फिर दिव्य तुलसी की मंजरी को चन्दन में डुबो कर अर्घ्य के साथ चरण कमलों पर चढ़ाया ॥ १०७ ॥ आप, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि पञ्चोपचार से श्री चरणों की पूजा कर रहे हैं और आप के नेत्रों से प्रेम जल की महाधाराएँ बह रही हैं ॥ १०८ ॥ फिर पाँच बत्ती जला कर आप प्रभु की आरती उतारते हैं और फिर प्रणाम करते हैं। अन्त में आप जय-जयकार की ध्वनि करते हैं ॥ १०९ ॥ अब फिर षोडशोपचार से श्रीचरणों की पूजा करके दुबारा माला, वस्त्र, अलङ्कार अर्पण करते हैं ॥ ११० ॥ शास्त्रोक्त तंत्र विधि के अनुसार पूजा करके इस श्लोक को पढ़ते हुए दण्डवत् प्रणाम करते है। १११ ॥ गो-ब्राह्मण हितकारी के लिये नमस्कार है। जगत्-हितकारी श्रीकृष्ण के

एइ श्लोक पढ़ि आगे नमस्कार करि। शेषे स्तुति करे नाना शास्त्र-अनुसारि॥११३॥
"जय जय सर्व प्राण नाथ विश्वम्भर। जय जय गौरचन्द्र करुणा सागर॥११४॥
जय जय भकत-वचन-सत्यकारी। जय जय महाप्रभु महा–अवतारी॥११५॥
जय जय सिन्धु सुता-रूप-मनोरम। जय जय श्रीवत्स–कौस्तुभ-विभूषण॥११६॥
जय जय हरे-कृष्ण-मंत्रे र प्रकाश। जय जय निज-भक्ति-ग्रहण विलास॥११७॥
जय जय महाप्रभु अनन्त शयन। जय जय जय सर्व जीवेर शरण॥११८॥
तुमि विष्णु तुमि कृष्ण तुमि नारायण। तुमि मत्स्य तुमि कूर्म तुमि सनातन॥११९॥
तुमिसे वराह प्रभु, तुमि से वामन। तुमि कर' जुगे जुगे वेदेर पालन॥१२०॥
तुमि रक्षः कुल हन्ता जानकी जीवन। तुमि गुह वर दाता अहल्या मोचन॥१२१॥
तुमि से प्रहलाद लागि कैले अवतार। हिरण्य वधिया नरसिंह-नाम जार॥१२२॥
सर्व देव चूड़ामणि तुमि द्विजराज। तुमि से भोजन कर' नीलाचल-माझ॥१२३॥
तोमारे से चारि-वेदे वुले अन्वेषिया। तुमि एथा आसि रहियाछ लुकाइया॥१२४॥
लुकाइते बड़ प्रभु तुमि महा धीर। भक्त जन धरि तोमा' करये बाहिर॥१२५॥
सङ्कीर्त्तन-आरम्भे तोमार अवतार। अनन्त–ब्रह्माण्डे तोमा' वइ नाहि आर॥१२६॥
एइ तोर दुइ खानि चरण कमल। इहारि से रसे गौरी-शङ्कर विह्वल॥१२७॥
एइ से चरण रमा सेवे' एक मने। इहारि से जश गाय सहस्र वदने॥१२८॥

लिये नमस्कार है, श्रीब्राह्मणों के पालक श्रीगोविन्द के लिये नमस्कार है॥ ११२॥ पहले यह श्लोक पढ करके नमस्कार किया पश्चात् नाना शास्त्रानुसार स्तुति करने लगे॥ ११३॥ "हे सर्व प्राणनाथ विश्वम्भर देव! आपकी जयहो-जयहो। हे करुणासागर गौरचन्द्र। आपकी जय हो जय हो॥ ११४॥ "हे भक्तों के वचन सत्य करने वाले! आपको जय हो, जय हो! हे महा अवतारी महाप्रभु! आपकी जय हो, जय हो॥ ११५॥ "हे लक्ष्मी के मनको रमाने वाले रूपधारी! आपकी जय हो, जय हो! हे श्रीवत्स और कौस्तुभ मणि से विभूषित! आपकी जय हो, जय हो॥ ११६॥ "हे हरे कृष्ण मंत्र के प्रकाशक! आपकी जय हो जय हो! अपनी भक्ति आप ही ग्रहण करना–यह भी आपका विलास है! ऐसे आपकी जय हो, जय हो॥ ११७॥ "हे शेष शायी महाप्रभो! आपकी जय हो, जय हो हे सर्व जीवों के आश्रय आपकी जय हो जय हो॥११८॥ "तुम विष्णु हो, तुम कृष्ण हो, तुम नारायण हो, तुम मत्स्य हो, तुम कूर्म भगवान हो,तुम ही सनातन हो,तुम वही वराह प्रभु हो,वही वामन भगवान हो,तुम ही युग २ में वेद का पालन करते हो॥११९॥ ॥१२०॥ "तुम ही राक्षस कुल के नाश करने वाले जानकी जीवन श्रीराम हो! तुम ही निषादराज गुह के वरदाता और अहल्या के उद्धार कर्त्ता हो॥१२१॥ "तुमने ही प्रह्लादके लिये अवतार लियाथा–और हिरण्य-कश्यप का वध किया था। तब तुम्हारा ही नाम नृसिंह पड़ा था॥१२२॥' हे द्विजराज तुम ही सब देवताओं के चूड़ामणि स्वरूप हो! तुमही नीलाचल (जगन्नाथपुरी) में ही भोजन करते हो॥१२३॥ तुम्हें ही चारों वेद ढूँढते फिरते हैं सो तुम यहाँ आकर छिपे बैठे हो॥१२४॥ "छिपने में तुम प्रभु बड़े ही धीर-वीर हो परन्तु भक्त-जन भी तुमको ढूँढ कर निकाल ही तो लेते हैं॥१२५॥ तुह्मारा अवतार संकीर्तन आरम्भ करने के लिये ही हुआ है–अनन्त ब्रह्माण्डों में तुम्हारे अतिरिक्त और कुछ नहीं है॥१२६॥ "ये जो तुम्हारे युगल चरण कमल हैं इनके रसास्वादन में ही श्री गौरीशङ्कर विह्वल रहते हैं॥१२७॥ "ये ही वे श्री चरण हैं कि जिनकी लक्ष्मीजी एकाग्रचित्त से सेवा करती हैं, और इन्हीं के यश को सहस्र वदन शेष जी गाया करते हैं॥१२८॥

इइसे चरण ब्रह्मा पूजये सदाय। श्रुति स्मृति पुराणे इहारि तत्त्व गाय ॥१२९॥
सत्य लोक आक्रमिल एइ से चरणे। बलि शिर धन्य हैल इहार अर्पणे ॥१३०॥
एइ से चरण हैते गङ्गा-अवतार। शङ्कर धरिला शिरे महावेग जार" ॥१३१॥
कोटि वृहस्पति जिनि अद्वैतेर बुद्धि। भाल मते जाने सेइ चैतन्येर शुद्धि ॥१३२॥
वर्णिते वदन भासे नयनेर जले। पड़िला दीघल हइ चरणेर तले ॥१३३॥
सर्व भूत अन्तर्जामी श्रीगौराङ्ग राय। चरण तुलिया दिला अद्वैत-माथाय ॥१३४॥
चरण अर्पण शिरे करिला जखन। 'जय जय' महा ध्वनि हइल तखन ॥१३५॥
अपूर्व देखिया सभे हइला विह्वल। 'हरि हरि' बलि सभे करे कोलाहल ॥१३६॥
गड़ागड़ि जाय केहो माल साट् मारे। कारो गला धरि केहो कान्दे उच्चै स्वरे ॥१३७॥
सस्त्रीके अद्वैत हैला पूर्ण-मनोरथ। पाइया चरण शिरे पूर्व-अभिमत ॥१३८॥
अद्वैतेरे आज्ञा कैला प्रभु विश्वम्भर। "आरे नाढ़ा! आमार कीर्त्तने नृत्य कर। १३९॥
पाइया प्रभुर आज्ञा आचार्ज गोसाञि। नाना भक्ति जोगे नृत्य करे सेइ ठाञि ॥१४०॥
उठिल कीर्तन ध्वनि अति-मनोहर। नाचेन अद्वैत गौर चन्द्रेर गोचर ॥१४१॥
क्षणे वा विशाल नाचे, क्षणे वा मधुर। क्षणे वा दशने तृण करये प्रचुर ॥१४२॥
क्षणे क्षणे उठे, क्षणे पड़ि गड़ि जाय। क्षणे घनश्वास वहे, क्षणे मूर्च्छा पाय ॥१४३॥
जे कीर्तन जखन शुनये-से-इ हये। एक भावे स्थिर नहे आनन्दे भासये ॥१४४॥

---

"इन्हीं श्रीचरणों की सदा ब्रह्माजी पूजा किया करते हैं—इनके ही तत्त्व को श्रुति-स्मृति पुराण सब वर्णन करते हैं ॥ १२९ ॥ "इन्ही श्रीचरणों ने सत्यलोक आक्रमण किया था और इनके अर्पण करने से ही राजा बलि का शिर धन्य हुआ था ॥ १३० ॥ "इन्हीं श्रीचरणों से गङ्गाजी का अवतार हुआ है जिनके महान् वेग को महादेव जी ने अपने शीश पर धारण किया था ॥ १३१ ॥ श्रीअद्वैताचार्य की बुद्धि करोड़ों बृहस्पतियों की बुद्धि को भी जीतने वाली है—वे श्री चैतन्यदेव के तत्त्व को भली भाँति जानते हैं ॥ १३२ ॥ स्तुति करते हुए उनका मुख मंडल नेत्रों के अश्रुजल से भीग गया और वे श्री चरणों के तले लम्बे होकर पड़ गये ॥ १३३ ॥ सर्व प्राणियों के अन्तर्यामी श्री गौरांगराय ने अपना चरण उठाकर अद्वैत के शीश पर रख दिया ॥ १३४ ॥ शीश पर चरण अर्पण करते ही "जय जय" महाध्वनि होने लगी ॥ १३५ ॥ इस अपूर्व चरित्र को देख कर सब विह्वल हो गये—और "हरि हरि" कहते हुए कोलाहल करने लगे ॥ १३६ ॥ कोई भूमि पर लोट पोट हो गये तो कोई ताल ठोंकते हुए उछलने लगे और कोई किसी का गला पकड़ कर जोर २ से रोने लगे ॥ १३७ ॥ पूर्व के अपने सङ्कल्प के अनुसार श्री चरणों को अपने मस्तक पर लाभ करके श्री अद्वैताचार्य स्त्री सहित पूर्ण मनोरथ को हो गये ॥ १३८ ॥ तब प्रभु विश्वम्भर श्री अद्वैत को आज्ञा करते हुए बोले—"आ नाढ़ा! मेरे कीर्त्तन में नृत्य कर" ॥ १३९ ॥ प्रभु की आज्ञा पाकर आचार्य गुसांई वहीं पर नाना प्रकार के भक्ति भावों को प्रकट करते हुए नृत्य करने लगे। १४० ॥ तब तो कीर्त्तन की अति मनोहर ध्वनि होने लगी और अद्वैताचार्य प्रभु के सन्मुख नाचने लगे ॥ १४१ ॥ वे क्षण में तो जोरदार नृत्य करते हैं, क्षण में मधुर नृत्य करते हैं, और क्षण में दाँतों में बहुत से तिनकों को उठा लेते हैं ॥ १४२ ॥ वे क्षण २ में उठते हैं, क्षण २ में गिर कर लोट पोट हो जाते हैं, क्षण में लम्बी २ साँस लेते हैं और क्षण में मूर्च्छित हो जाते हैं ॥ १४३ ॥ जिस समय जो कीर्त्तन सुनते हैं उस समय वैसा ही हो जाते हैं, एक भाव में स्थिर ही नहीं रह सकते हैं बस आनन्द में बहे ही जाते हैं ॥ १४४ ॥ अन्त में केवल दास

अवशेषे आसि सबे रहे दास्य भाव। बुझन ना जाय सेइ अचिन्त्य-प्रभाव ॥१४५॥
धाइया धाइया जाय ठाकुरेर पाशे। नित्यानन्द देखिया भ्रुकुटि करि हासे ॥१४६॥
हासि बोले "भाल हैल आइला निताइ। एत दिन तोमार नागालि नाहि पाइ ॥१४७॥
जाइबा कोथाय आजि राखिमु बान्धिया। क्षणे बोले "प्रभु" क्षणे बोले "माता लिया" ॥१४८॥
अद्वैत-चरित्रे हासे नित्यानन्द-राय। एक मूर्त्ति, दुइ भाग, कृष्णेर लीलाय ॥१४९॥
पूर्वे बलियाछि नित्यानन्द नाना रूपे। चैतन्येर सेवा करे अशेष-कौतुके ॥१५०॥
कोना रूपे कहे कोनो रूपे करे ध्यान। कोनो रूपे छत्र शय्या, कोनो रूपे गान ॥१५१॥
नित्यानन्द-अद्वैत अभेद प्रेम जान'। एइ अवतारे जाने से-इ भाग्यवान् ॥१५२॥
जे किछु कलह-लीला देखह दोंहार। से सब अचिन्त्य रङ्ग–ईश्वर व्यभार ॥१५३॥
ए-दुइर प्रीति जेन अनन्त-शङ्कर। दुइ कृष्ण चैतन्येर प्रिय-कलेवर ॥१५४॥
जे ना बूझि दोंहार कलह-पक्ष धरे। एक वन्दे,' आर निन्दे,' सेइ जन मरे ॥१५५॥
अद्वैतेर नृत्य देखि वैष्णव-सकल। आनन्द सागरे मग्न हइला केवल ॥१५६॥
हइल प्रभुर आज्ञा-रहिवार तरे। ततक्षणे रहिलेन आज्ञा धरि शिरे ॥१५७॥
आपन गलार माला अद्वैतेरे दिया। "वर माग' वर माग" बोलेन हासिया। १५८॥
शुनिञा अद्वैत किछु ना करे उत्तर। "माग' माग" पुनः पुन बोले विश्वम्भर ॥१५९॥
अद्वैत बोलये "आर कि मागिमु वर। जेवर चाहिलुँ ताहा पाइलुँ सकल ॥१६०॥

भाव रह जाता है ( वास्तव में ) भाव का प्रभाव अचिन्त्य है, समझ में नहीं आ सकता है ॥ १४५ ॥ वे दौड़ २ कर महाप्रभु के पास जाते हैं और नित्यानन्द जी को देख भौंह टेडी करके हँसते हैं ॥ १४६ ॥ और कहते हैं–कि अच्छा हुआ निताई जो तुम आ गये–इतने दिन तक तुम्हारा पता ही नहीं था ॥ १४७ ॥ "अब जाओगे कहाँ ? आज तो बाँध कर रक्खूँगा" । क्षण में तो ( निताई से ) 'प्रभु' कह कर बोलते हैं और क्षण में उनको "मतवाला" कहते हैं ॥ १४८ ॥ अद्वैत के इन चरित्रों पर नित्यानन्दराय हँसते हैं। ( गौर ) कृष्ण की लीला में ये दोनों ( निताई और अद्वैत ) एक ही मूर्ति के तो दो भाग हैं ॥ १४९ ॥ हम पहले ही कह आये हैं कि श्रीनित्यानन्द नाना रूप में, अशेष कौतुक के साथ, श्री चैतन्यचन्द की सेवा करते हैं ॥ १५० ॥ किसी रूप में बोलते हैं, किसी रूप में ध्यान करते हैं, किसी रूप में छत्र और सेज हैं, तो किसी रूप में गुणगान करते हैं ॥ १५१ ॥ नित्यानन्द और अद्वैत में भेद रहित प्रेम जानों। ऐसा जो इनको इस अवतार में जानता है वही भाग्वान है ॥ १५२ ॥ इन दोनों में जो कुछ कलह-लीला देखने में आती है, वह सब ईश्वर के व्यवहार के कौतुक विनोद हैं जो अचिन्त्य हैं–प्राकृत मन–बुद्धि के अगम्य हैं ॥ १५३ ॥ इन दोनों की प्रीति ऐसी है जैसी शेष जी और शङ्कर जी की परस्पर में है। दोनों ही श्रीकृष्ण-चैतन्य के प्रिय कलेवर हैं ॥ १५४ ॥ जो इस तत्त्व को न समझ कर इन दोनों के कलह में किसी एक का भी पक्ष लेता हैं और एक की वन्दना और दूसरे की निन्दा करना है, वह ( महदपराध के कारण ) मरता है ॥ १५५ ॥ श्री अद्वैत के नृत्य को देखकर सब वैष्णव लोग सर्वथा आनन्द सागर में डूब गये ॥ १५६ ॥ तब श्रीअद्वैत के लिये वहीं ठहरने की आज्ञा प्रभु की हुई–तत्काल उस आज्ञा को शिरोधार्य करके वे ठहर गये ॥ १५७ ॥ प्रभु ने भी अपने गले की माला उनको देकर हँसते २ "वर माँगो–वर माँगो" कहा ॥ १५८ ॥ अद्वैताचार्य सुनकर के भी कुछ उत्तर नहीं देते हैं और प्रभु विश्वम्भर बार २ "माँगो" ही कहते हैं ॥ १५९ ॥ अन्त मे अद्वैताचार्य बोले–"मैं अब क्या वर माँगू ? मैंने तो जो वर चाहा था, वह सम्पूर्ण पा ही लिया ॥ १६० ॥

तोमारे साक्षात् करि आपने नाचिलु । चितेर अभीष्ट जत सकलि पाइलु ॥१६१॥
कि चाहिमु प्रभु ! किवा शेष आछे आर । साक्षाते देखिलु प्रभु ! तोर अवतार ॥१६२॥
कि चाहिमु किवा नाहि जानह आपने । किवा नाहि देख तुमि दिव्य-दरशने" ॥१६३॥
माथा डुलाइया बोले प्रभु विश्वम्भर । तोमार निमित्त आमि हइलु गोचर ॥१६४॥
घरे घरे करिमु कीर्त्तन परचार । मोर जशे नाचे जेन सकल संसार ॥१६५॥
ब्रह्मा-भव-नारदादि जारे तप करे । हेन भक्ति विलाइमु बलिलु तोमारे" ॥१६६॥
अद्वैत बोलेन "जदि भक्ति विलाइवा । स्त्री शूद्र-आदि जत मूर्खेरे से दिवा ॥१६७॥
विद्या-धन--कुल-आदि तपस्यार मदे । तोर भक्त तोर भक्ति जे जे जन बाधे ॥१६८॥
से पापिष्ठ-सव देखि मरुक पुड़िया । चाण्डाल नाचुक तोर नाम गुण गाय्या" ॥१६९॥
अद्वैतेर वाक्य शुनि करिला हुङ्कार । प्रभु बोले "सत्य जे तोमार अङ्गीकार" ॥१७०॥
ए सब वाक्येर साक्षी--सकल संसार । मूर्ख नीच प्रति कृपा हइल ताहार ॥१७१॥
चाण्डालादि नाचये प्रभुर गुण ग्रामे । भट्ट, मिश्र, चक्रवर्त्ती सबे निन्दा जाने ॥१७२॥
ग्रन्थ पड़ि मुण्ड मूड़ि कारो बुद्धि-नाश । नित्यानन्द निन्दे वृथा जाइवारे नाश ॥१७३॥
अद्वैतेर बोले प्रेम पाइल जगते । ए सकल कथा कहि मध्य खण्ड हैते ॥१७४॥
चैतन्य-अद्वैते जत हैल प्रेम-कथा । सकल जानेन सरस्वती जगन्माता ॥१७५॥
सेइ भगवती सर्व--जनेर जिह्वाय । अनन्त हइया चैतन्येर जश गाय ॥१७६॥
सर्व-वैष्णवेर पा'ये मोर नमस्कार । इथे अपराध किछु नहुक आमार ॥१७७॥

---

"जब आपका साक्षात्कार करके आपके सामने नाच लिया तो मन के सब ही मनोरथ पा चुका ॥ १६१ ॥ "जब प्रभो ! साक्षात् आप के अवतार के दर्शन कर लिये तो अब क्या माँगू--और रह भी क्या गया माँगने को ॥ १६२ ॥ "क्या इस बात को आप नहीं जानते हैं--आप अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा क्या नहीं देखते" ॥ १६३ ॥ तब प्रभु विश्वम्भर शिर हिलाते हुए बोले-तुम्हारे निमित्त ही मैं प्रकट हुआ हूँ" ॥ १६४ ॥ "मैं घर २ में कीर्त्तन का प्रचार करूँगा जिससे कि मेरे यश को गाकर सारा संसार नाच उठे ॥ १६५ ॥ "ब्रह्मा शिव, नारदादि जिस भक्ति के लिये तप करते हैं, ऐसी भक्ति मैं सब को लुटाऊँगा--यह मैं तुमसे कहे देता हूँ" ॥ १६६ ॥ अद्वैताचार्य जी बोले--"यदि भक्ति आप लुटावें तो स्त्री, शूद्र, मूर्ख और नीच जाति को वह देवें ॥ १६७ ॥ "जो लोग विद्या, धन, कुल एवं तपस्या के अभिमान में आकर आपके भक्त और आपकी भक्ति को बाधा पहुँचावें ॥ १६८ ॥ "वे सब पापी लोग देख २ कर डाह से जल मरें और चण्डाल आपके नाम और गुण को गा गा कर नाचें" ॥ १६९ ॥ श्री अद्वैत प्रभु के वचन को सुनकर प्रभु ने हुँकार दिया और बोले--"तुम्हें जो स्वीकार है वही होगा ॥ १७० ॥ ( ग्रंथकार वचन ) इन सब वाक्यों का साक्षी सारा संसार है । मूर्ख और नीच जनों पर ही प्रभु की विशेष कृपा हुई है ॥ १७१ ॥ प्रभु के गुण को गा गा कर चाण्डाल आदि तो नाचते हैं और भट्ट, मिश्र चक्रवर्त्ती--ये केवल निन्दा करना ही जानते हैं ॥१७२॥ ग्रंथ पढ़कर और शीश मुड़ाकर किसी २ की तो बुद्धि ऐसी भ्रष्ट हो गई है कि वे अपने सर्वनाश के लिये श्री नित्यानन्द प्रभु की निन्दा करते हैं ॥ १७३ ॥ श्री अद्वैताचार्य के प्रार्थना करने पर जगत् को प्रेम प्राप्त हुआ--यह सब कथा इस मध्यखण्ड में कहते हैं ॥ १७४ ॥ श्री चैतन्यदेव और अद्वैत प्रभु में जितनी कुछ प्रेम-वार्ता हुई, वह सब जगन्माता सरस्वती जानती हैं ॥ १७५ ॥ वही भगवती सब जनों की जिह्वा पर अनन्त होकर श्री चैतन्य चन्द्र का यश गान करती हैं ॥ १७६ ॥ समस्त वैष्णवों के चरणों में मेरा नमस्कार

सस्त्रीके आनन्द हैला आचार्ज गोसाञि । अभिमत पाइया रहिला सेइ ठाञि ॥१७८॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावन दास तछु पद जुगे गान ॥१७९॥

# अथ सातवाँ अध्याय

नाचेरे चैतन्य गुण निधि । असाधने चिन्ता मणि हाथे दिल विधि ध्रु० ॥१॥
जय जय श्रीगौर सुन्दर सर्व-प्राण । जय नित्यानन्द–अद्वैतेर प्रेम धाम ॥२॥
जय श्रीजगदानन्द–श्री गर्भ-जीवन । जय पुण्डरीक विद्या निधि–प्रेम धन ॥३॥
जय जगदीश-गोपी नाथेर ईश्वर । जय हउ जत गौरचन्द्र–अनुचर ॥४॥
हेन मते नवद्वीपे श्रीगौराङ्ग राय । नित्यानन्द सङ्गे रङ्ग करेन सदाय ॥५॥
अद्वैत लइया सर्व-वैष्णव–मण्डल । महा-नृत्य-गीत करे कृष्ण कोलाहल ॥६॥
नित्यानन्द रहि लेन श्रीवासेर घरे । निरन्तर बाल्य भाव, आन नाहि स्फुरे ॥७॥
आपनि तुलिया हाथे भात नाहि खाय । पुत्र-प्राय करि अन्न मालिनी जो गाय ॥८॥
इबे शुन श्रीविद्या निधिर आगमन । 'पुण्डरीक' नाम–श्रीकृष्णेर प्रियतम ॥९॥
प्राच्य-भूमि चाटि ग्राम धन्य करि वारे । तथा ताने अवतीर्ण करिला ईश्वरे ॥१०॥
नवद्वीपे करि लेन ईश्वर प्रकाश । विद्या निधि ना देखिया छाड़े प्रभु श्वास ॥११॥

---

है–उनके चरणों में मेरा कोई अपराध न होवे ॥ १७७ ॥ इस प्रकार आचार्य गुसांई स्त्री सहित बड़े आनन्द को प्राप्त हुए और मनो वांछित फल पा करके वहीं टहर गये ॥ १७८ ॥ श्री कृष्ण चैतन्य एवं श्रीनित्यानन्द चन्द्र को वृन्द्रावन दास अपना सर्वस्व जानकर उनके चरण युगल में उन्हीं का गुण गा गा करके निवेदन करता हूँ ॥ १७९ ॥

इति श्री चैतन्य भागवते मध्यखण्डे श्री अद्वैत मिलनं नाम षष्ठोऽध्याय ॥

गुणनिधि श्रीचैतन्यचन्द्र नाच रहे हैं । अहो ! विधाता ने हमारे हाथ में बिना कुछ साधन किये ही, यह चिन्तामणि पकड़ा दी ॥ १ ॥ सर्व-प्राण-स्वरूप श्रीगौर सुन्दर की जय हो, जय हो । नित्यानन्द और अद्वैत के प्रेम-धाम ( प्रभु ) की जय हो ॥ २ ॥ श्रीजगदानन्द और श्रीगर्भ भक्त के जीवन स्वरूप ( प्रभु ) की जय हो, जय हो । पुण्डरीक विद्या विधि के प्रेमधन ( गौर ) की जय हो ॥ ३ ॥ श्री जगदीश और गोपीनाथ भक्त के ईश्वर की जय हो । गौरचन्द्र के जितने भी अनुचर भक्त हैं, उन सब की जय हो ॥ ४ ॥ इस प्रकार नवद्वीप में श्रीगौरांगराय श्री नित्यानन्द के साथ नित्य लीला-कौतुक करते हैं ॥ ५ ॥ और सब वैष्णवमण्डली श्री अद्वैत प्रभु को लेकर नृत्य-गीत द्वारा कृष्ण नाम का महा कोलाहल करते हैं ॥ ६ ॥ श्रीनित्यानन्द जी श्रीवास पण्डित के घर में ठहरे हुये हैं । आप निरन्तर बाल भाव में रहते हैं, दूसरे भाव की उनमें स्फूर्ति ही नहीं होती है ॥ ७ ॥ वे अपने हाथ से तो भात भी उठा कर मुँह में नहीं देते हैं । श्रीमालिनी देवी ( श्रीवास की पत्नी ) उनको पुत्र समान मानती हैं और अपने हाथों उनको भात खिलाती हैं ॥ ८ ॥ अब श्री पुण्डरीक विद्यानिधि का आगमन वृत्तान्त सुनो । 'पुण्डरीक' नाम श्रीकृष्ण को बड़ा ही प्यारा है ॥ ९ ॥ पूर्व देश के चटगाँव भूमि को धन्य करने के लिये प्रभु ने वहाँ उनको जन्म दिया ॥ १० ॥ जब नवद्वीप में प्रभु ने अपना ऐश्वर्य रूप का प्रकाश किया, तो वहाँ विद्या निधि को न देख कर ( एक दिन ) लम्बी २ साँसें छोड़ने लगे ॥ ११ ॥ एक दिन प्रभु गौरराय नृत्य करके बैठे तो "पुण्डरीक"

नृत्य करि उठिया बसिला गौर राय। 'पुण्डरीक' नाम बलि कान्दे उच्च-रा'य ॥१२॥
"पुण्डरीक आरे मोर बापरे बन्धुरे। कबे तोमा' देखिब आरे रेबापरे ॥१३॥
हेन चैतन्येर प्रिय पात्र विद्या निधि। हेन सब भक्त प्रकाशिला गौर-निधि ॥१४॥
प्रभु से क्रन्दन करे तान नाम लैया। भक्त सब केहो किछु नाहि बुझे इहा ॥१५॥
सभे बोले "पुण्डरीक' बोलेन कृष्णेरे"। विद्या निधि-नाम शुनि सभेइ विचारे' ॥१६॥
'कोन प्रिय भक्त' इहा सभे बुझि लेन। बाह्य हैले प्रभु स्थाने सभे बलि लेन ॥१७॥
"कौन भक्त लागि प्रभु ! करह क्रन्दन। सत्य आमा' सभा' प्रति करह कथन ॥१८॥
आमा' सभाकार भाग्य हउ ताने जानि। तार जन्म-कर्म कोथा कह प्रभु ! शुनि ॥१९॥
प्रभु बोले "तोमरा सकल भाग्यवान्। शुनिते हइल इच्छा ताहार आख्यान ॥२०॥
परम-अद्भुत ताँर सकल-चरित्र। ताँर नाम श्रवणेओ संसार पवित्र ॥२१॥
विषमीर प्राय ताँर परिच्छेद सब। चिनिते ना पारे केहो तिहों जे वैष्णव ॥२२॥
: जन्म, विप्र परम-पण्डित। परम-साचार सर्व-लोके अपेक्षित ॥२३॥
कृष्ण भक्ति-सिन्धु-माझे भासे निरन्तर। अश्रु, कम्प, पुलक, वेष्टित कलेवर ॥२४॥
गङ्गा स्नान ना करेन पाद स्पर्श-भये। गङ्गा दरशन करे निशिर समये ॥२५॥
गङ्गाय जे सब लोक करे अनाचार। कुल्लोल, दन्त धावन, केश संस्कार ॥२६॥
ए सकल देखिया पायेन मने व्यथा। एतेके देखेन गङ्गा निशाय सर्व्वथा ॥२७॥
विचित्र विश्वास आर एक शुन तान। देवार्च्चन पूर्व्वे करे गङ्गा जल पान ॥२८॥

---

२ पुकारते हुये रोने लगे ॥ १२ ॥ "हे मेरे बाप ! हे मेरे बन्धु ! अरे मेरे पुण्डरीक ! अरे ! हे ! बाप ! कब तुमको देख पाऊँगा ॥ १३ ॥ ऐसे प्रिय पात्र हैं । श्री पुण्डरीक विद्या निधि श्रीचैतन्य देव को ऐसे ही सब भक्तों ने ही तो श्रीगौर निधि को प्रकट कराया है ॥ १४ ॥ उनका नाम ले लेकर प्रभु जो रो रहे हैं—यह सब भक्त लोग कुछ भी नहीं समझ पाते हैं ॥ १५ ॥ वे सब बोले 'पुण्डरीक' तो श्रीकृष्ण को कहते है। परन्तु फिर विद्या निधि, नाम सुनकर वे सब सोच-विचार में पड़ जाते हैं ॥ १६ ॥ इतना तो सब समझ गये कि ये कोई प्रिय भक्त हैं । फिर जब प्रभु को बाह्य ज्ञान हो आया तो सब प्रभु से पूछने लगे ! ॥ १७ ॥ "हे प्रभो ! आप किस भक्त के लिये रुदन करते हैं । हमारे प्रति आप सत्य २ बतावें ॥ १८ ॥ "उनको जानने का सौभाग्य हमको भी मिल जाय । उनके जन्म-कर्म कहाँ हुये हैं—कहिये न प्रभो ! हम भी तो सुनें ॥ १९ ॥ तब प्रभु बोले कि "तुम सब बड़े भाग्यवान हो जो उनकी कथा सुनने की तुम्हारी इच्छा हुई है ॥ २० ॥ "उनके चरित्र सब परम अद्भुत हैं, उनके तो नाम को सुन करके भी संसार पवित्र हो जाय ॥ २१ ॥ "( परन्तु ) उनकी वेश-भूषा रहन-सहन आदि सब विषयी जनों के जैसे हैं । कोई नहीं पहचान सकता कि ये वैष्णव हैं ॥ २२ ॥ "चटगाँव में उनका जन्म है, विप्र कुल है परम पण्डित हैं, बड़े सुन्दर आचारवाले हैं, लोक समाज में प्रतिष्ठित हैं ॥ २३ ॥ "श्री कृष्ण भक्ति सिन्धु में वे निरन्तर तैरते रहते हैं । उनकी देह अश्रु, कम्प, पुलकादि सात्विक भावों से व्याप्त रहती है ॥ २४ ॥ वे पाँव से गंगाजी के छू जाने के भय से गंगा में स्नान भी नहीं करते हैं और गङ्गा के दर्शन भी रात्रि के समय करते हैं ॥ २५ ॥ गङ्गा जी में कुल्ला, दाँतौन, केश-संस्कार आदि जो जो अनाचार लोग करते हैं उसे देखकर उनके चित्त को बड़ा दुःख होता है—इसी कारण वे सर्वदा रात्रि में गङ्गा जी का दर्शन किया करते हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥ उनके और एक विचित्र विश्वास की बात सुनो—वे देव-पूजन से पहले गङ्गाजल पान करते हैं ॥ २८ ॥ गंगा जल पीकर

तबे से करेन पूजा-आदि नित्य कर्म्म । इहा सर्व-पण्डितेरे बुझाबेन धर्म्म ॥२९॥
चाटि ग्रामे आछेन, एथाहो बाड़ी आछे । आसिबेन सम्प्रति, देखिबा किछु पाछे ॥३०॥
ताँरे झाट केहो चिनिबारे ना पारि बा । देखिले विषयी' मात्र ज्ञान से करिबा ॥३१॥
ताँरे ना देखिया आमि स्वास्थ्य नाहि पाइ । सभे ताँरे आकर्षिया आनह एथाइ" ॥३२॥
कहि ताँर कथा प्रभु आविष्ट हइला । "पुण्डरीक बाप !" बलि कान्दिते लागिला ॥३३॥
महा-उच्च स्वरे प्रभु रोदन करेन । ताँहार भक्तेर तत्त्व तिंहोसे जानेन ॥३४॥
भक्त तत्त्व चैतन्य गोसाञि मात्र जाने । से-इ भक्त जाने, जारे कहेन आपने ॥३५॥
ईश्वरेर आकर्षण हैल ताँर प्रति । नवद्वीपे आसिते ताँहार हैल मति ॥३६॥
अनेक सेवक सङ्गे अनेक सँभार । अनेक ब्राह्मण सङ्गे शिष्य भक्त आर ॥३७॥
आसिया रहिला नवद्वीपे गूढ़ रूपे । परम-भोगीर प्राय सर्व लोक देखे ॥३८॥
वैष्णव समाजे इहा केहो नाहि शुने । सबे मात्र मुकुन्द जानिला सेइ क्षणे ॥३९॥
श्रीमुकुन्द-बेज-ओझा ताँर तत्त्व जाने । एक सङ्गे मुकुन्देरो जन्म चाटि ग्रामे ॥४०॥
विद्या निधि—आगमन जानिञा गोसाञि । जे हइल आनन्द-ताहार अन्त नाञि ॥४१॥
कोनो वैष्णवेरे प्रभु ना क न' भाङ्गिया । पुण्डरीक आछेन विषयि-प्राय हैया ॥४२॥
जत किछु ताँर प्रेम भक्तिर महत्त्व । मुकुन्द जानेन, आर वासुदेव दत्त ॥४३॥
मुकुन्देर बड़ प्रिय पण्डित गदाधर । एकान्त मुकुन्द ताँर सङ्गे अनुचर ॥४४॥
जथा कार जे वार्ता—कहेन आसि सब । "आजि एथा आइला एक अद्भुत वैष्णव ॥४५॥

---

के ही वे पूजा आदि नित्य कर्म करते हैं—इसके द्वारा वे पण्डितों को धर्म की शिक्षा देते हैं ॥ २९ ॥ उनका घर चटगाँव में है और यहाँ भी है—कुछ दिन में वे यहाँ आने वाले हैं, तब तुम सब उनके दर्शन कर पाओगे ॥ ३० ॥ शीघ्र ही उनको कोई पहचान नहीं सकता है-जो भी उनको देखेगा, केवल विषयी ही समझेगा ॥ ३१ ॥ उनको देखे बिना मुझे शान्ति नहीं है—अतएव तुम सब उनको आकर्षित करके यहाँ ले आओ ॥ ३२ ॥ उनकी वार्ता करते २ प्रभु आवेश में आ गये और "पुण्डरीक बाबा !" पुण्डरीक बाबा कह कर रोने लगे ॥ ३३ ॥ बड़े ही ऊँचे स्वर से प्रभु रोते हैं । वास्तव में अपने भक्त का तत्त्व वे ही जानते है ॥३४॥ श्री चैतन्य गुसाई ही भक्त-तत्त्व को जानते हैं, अथवा वे भक्त जन जानते हैं कि जिनसे प्रभु स्वयं कह दें ॥ ३५ ॥ ( अब क्या हुआ कि ) ईश्वर जो गौरचन्द्र है उन्होंने पुण्डरीक विद्या निधि को आकर्षण किया बस फिर तो नवद्वीप आने के लिये उनकी भी इच्छा हो उठी ॥ ३६ ॥ वे बहुत से सेवक साज सामान ब्राह्मण, शिष्य और भक्तों को लेकर नवद्वीप आये और गुप्तरूप से वहाँ निवास करने लगे । सब लोग उनको इक विषय भोगी के समान ही देखते थे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ वैष्णव समाज में किसी ने यह वार्ता नहीं सुनी—केवल मात्र एक मुकुन्द को ही तत्काल सब समाचार मिल गया ॥ ३९ ॥ श्रीमुकुन्द वैद्य उपाध्याय उनके तत्त्व को भी जानते हैं क्योंकि मुकुन्द का जन्म उनके साथ ही चटगाँव में हुआ था ॥ ४० ॥ श्रीविद्या निधि के आगमन को जानकर प्रभु को जो आनन्द हुआ उसकी सीमा नहीं है ॥ ४१ ॥ परन्तु प्रभु किसी वैष्णव भक्त के आगे यह भेद प्रकाशित नहीं करते हैं । उधर पुण्डरीक भी एक विषयी पुरुष के समान निवास कर रहे हैं ॥ ४२ ॥ उनकी प्रेम भक्ति का जो कुछ भी महत्त्व है, वह मुकुन्द और वासुदेव दत्त ही जानते हैं ॥ ४३ ॥ इधर पण्डित गदाधर श्री मुकुन्द के बड़े ही प्रिय हैं और मुकुन्द उनके एक अनन्य अनुचर हैं ॥ ४४ ॥ जहाँ जो कुछ बात होती है, मुकुन्द आकर सब उनको सुनाते हैं । ( अतएव यह बात भी

गदाधर पण्डित ! शुनह सावधाने। वैष्णव देखिते जे वांछह तुमि मने ॥४६॥
अद्भुत वैष्णव आजि देखाब तोमारे। 'सेवक' करिया जेन स्मङर आमारे" ॥४७॥
शुनि गदाधर बड़ हरिष हइला। सेइ क्षणे 'कृष्ण' बलि देखिते चलिला ॥४८॥
बसिया आछेन विद्या निधि महाशय। सम्मुखे हइल गदाधरेर विजय ॥४६॥
गदाधर पण्डित करिला नमस्कार। बसाइला आसने तारे करि पुरस्कार ॥५०॥
जिज्ञासिला विद्या निधि मुकुन्देर स्थाने। "किवा नाम इँहार थाकेन कोन् ग्रामे ॥५१॥
विष्णु भक्ति तेजोमय देखि कलेवर। आकृति प्रकृति–दुइ परम सुन्दर" ॥५२॥
मुकुन्द बोलेन "श्रीगदाधर' नाम। शिशु हैते संसारे विरक्त भाग्यवान् ॥५३॥
'माधव-मिश्रेर पुत्र' कहि व्यवहारे। सकल वैष्णव प्रीत वासेन इँहारे ॥५४॥
भक्ति पथेरत, सङ्ग भक्तेर सहिते। शुनिञा तोमार नाम आइला देखिते" ॥५५॥
शुनि विद्या निधि बड़ सन्तोष हइला। परम गौरवे सम्भाषिवारे लागिला ॥५६॥
बसिया आछेन पुण्डरीक महाशय। राजपुत्र हेन करियाछेन विजय ॥५७॥
दिव्य खट्टा हिङ्गुल-पित्तले शोभा करे। दिव्य चन्द्रातप तिन ताहार उपरे ॥५८॥
तहिं दिव्य शय्या शोभे अति-सूक्ष्म–वासे। पट्ट-नेत-बालिश शोभये चारि-पाशे ॥५६॥
बड़-झारि छोट-झारि गुटि पाँच सात। दिव्य पित्तलेर बाटा, पाका पान ता'त ॥६०॥
दिव्य आल बाटि दुइ शोभे दुइ पाशे। पान खाय, गदाधर देखि देखि हासे ॥६१॥
दिव्य मयूरेर पाखा लइ दुइ जने। बातास करिते आछे देहे सर्व क्षणे ॥६२॥

---

सुनाई कि ) "आज एक अद्भुत वैष्णव यहाँ आये हैं ॥ ४५ ॥ " पंडित गदाधर जी ! सावधान होकर सुनो जो तुम्हारे मन में वैष्णव-दर्शन करने की इच्छा हो ॥ ४६ ॥ "तो मैं आज तुमको एक अद्भुत वैष्णव के दर्शन कराऊँगा। मुझे तो तुम अपने एक सेवक के रूप में स्मरण कर लिया करो ॥ ४७ ॥ यह सुनकर गदाधर जी बड़े प्रसन्न हुए और "कृष्ण २" कहते हुए उसी क्षण उनके दर्शन करने के लिये चल पड़े ॥ ४८ ॥ श्री विद्यानिधि महाशय अपने स्थान में बैठे हुए है कि सामने से गदाधर जी का आना हुआ ॥४६॥ आकर उन्होंने नमस्कार किया तो उन्होंने सत्कार पूर्वक उनको आसन पर बैठाया ॥ ५० ॥ फिर विद्या निधि जी ने मुकुन्द से पूछा कि "इनका नाम क्या है ? कौन से गांव में रहते हैं ॥ ५१ ॥ "इनकी देह विष्णु भक्ति के तेज से तेजोमय दिखाई देती है–इनकी आकृती और प्रकृति –दोनों ही परम सुन्दर हैं ॥ ५२ ॥ मुकुन्द जी बोले "इनका नाम श्री गदाधर हैं–ये बचपन से ही संसार से विरक्त हैं, भाग्यशाली हैं ॥ ५३ ॥ "व्यवहार में ये माधव मिश्र जी के पुत्र कहे जाते हैं। सब वैष्णव इनसे प्रीति करते हैं ॥ ५४ ॥ "ये भक्ति मार्ग में आसक्त हैं और भक्तों का ही संग करते हैं। आपका नाम सुनकर आपके दर्शन को आये हैं ॥५५॥ यह सुन करके विद्या निधि जी को बड़ा सन्तोष हुआ और बड़े आदर के साथ वे गदाधर जी से वार्तालाप करने लगे ॥ ५६ ॥ पुण्डरीक महाशय ऐसे विराजमान हैं मानों तो कहीं के राजकुमार पधारे हों ॥ ५७ ॥ दिव्य पलङ्ग है जो हिंगुल–पीतल से शोभायमान है, उसके ऊपर दिव्य तीन चँदोआ तने हुए हैं ॥ ५८ ॥ पलङ्ग के ऊपर अति झीने वस्त्रों की दिव्य शय्या बिछी हुई है–चारों ओर रेशमी नेत वस्त्र के तकिया शोभा दे रहे हैं ॥ ५६ ॥ पाँच-सात बड़ी छोटी झारियाँ रक्खी हुई हैं पीतल का सुन्दर पानदान रक्खा हुआ हैं–उसमें पके हुये पान हैं ॥ ६० ॥ पलङ्ग के दोनों ओर दो सुन्दर पीकदानो शोभा दे रही हैं आप पान चबा रहे हैं और गदाधर जी देख २ कर हँस रहे हैं ॥ ६१ ॥ दो जने मोर पंख के सुन्दर पंखों से सब समय उन

चन्दनेर उर्द्ध-पुण्ड्र तिलक कपाले। गन्धेर सहित तथि फागु विन्दु मिले ॥६३॥
कि कहिव से वा केश भारेर संस्कार। दिव्य गन्ध आमलकी वइ नाहि आर ॥६४॥
भक्तिर प्रभावे देह मदन-समान। जेना चिने तार हय राज पुत्र ज्ञान ॥६५॥
सम्मुखे विचित्र एक दोला साय वान। विषयीर प्राय जेन व्यभार-संस्थान ॥६६॥
देखिया विषयि-रूप देव गदाधर। सन्देह विस्मय किछु जन्मिल अन्तर ॥६७॥
आजन्म-विरक्त गदाधर–महाशय। विद्या निधि प्रति किछु जन्मिल संशय ॥६८॥
"भाल त वैष्णव–सब विषयीर वेश। दिव्य भोग दिव्य वास दिव्य गन्धकेश ॥६९॥
शुनिञा त भाल भक्ति आछिल इहाने। आछिल जे भक्ति सेह गेल दरशने" ॥७०॥
वुझि गदाधर-चित्त श्रीमुकुन्दा नन्द। विद्या निधि प्रकाशिते करिला आरम्भ ॥७१॥
कृष्णेर प्रसादे गदाधर-अगोचर। किछु नाहि, अवेद्य कृष्ण से माया धर ॥७२॥
मुकुन्द सुस्वर बड़–कृष्णेर गायन। पढ़ि लेन श्लोक–भक्ति महिमा वर्णन ॥७३॥
राक्षसी पूतना–शिशु खाइते निर्दया। ईश्वर वधिते गेला काल कूट लैया ॥७४॥
ताहारेओ मातृ-पद दिलेन ईश्वरे। ना भजे अवोध जीव हेन दयालु रे ॥७५॥
पूतना लोक वालघ्नी राक्षसी रुधिराशना। जिघांसयापि हरये स्तनं दत्त्वाप सद्गति ॥७६॥
शुनि लेन मात्र भक्ति जोगेर स्तवन। विद्या निधि लागि लेन करिते क्रन्दन ॥७७॥
नयने अपूर्व वहे श्रीआनन्द धार। जेन गङ्गा देवीर हइल अवतार ॥७८॥

---

पर हवा कर रहे हैं ॥ ६२ ॥ मस्तक पर चन्दन का उर्द्ध-पुण्ड्र तिलक है और तिलक में सुगन्धि युक्त अरुण कुंकुम विन्दु शोभा दे रही हैं ॥ ६३ ॥ उनके संवारे हुए केशों की शोभा तो भला क्या कहूँ ! केश क्या हैं, दिव्य सुगन्धित आँवले के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ॥ ६४ ॥ भक्ति के प्रभाव से कामदेव के समान सुन्दर देह है जो आपको पहचानता नहीं है वह तो कोई राजकुमार ही समझ बैठता है ॥ ६५ ॥ सामने ही एक छत्रीदार डोला ( पालकी ) रक्खा हुआ है, ( कहाँ तक कहें ) आप के व्यवहार के साज सामान सब विषयी पुरुषों के समान हैं ॥ ६६ ॥ ऐसे विषयी रूप को देखकर गदाधर देव के मन में कुछ सन्देह और विस्मय उदय हो आया ॥ ६७ ॥ गदाधर महाशय जन्म से ही विरक्त हैं अतएव विद्या निधि के प्रति कुछ संशय हो ही तो आता है ॥ ६८ ॥ ( वे मन में सोचते हैं कि ) "अच्छे वैष्णव हैं ये–वेश भूषा तो सब विषयी जैसा है–सुन्दर भोग, सुन्दर वस्त्र सुन्दर सुगन्धित केश इनका नाम सुन कर तो बड़ी भक्ति इन पर हो आई थी परन्तु दर्शन करके तो वह भक्ति सब चली गई ॥ ६९ ॥ ७० ॥ गदाधर के मनोभाव को समझ कर श्री मुकुन्दानन्द ने श्री विद्यानिधि के स्वरूप को प्रकट करने का एक उपाय किया ॥ ७१ ॥ यद्यपि श्री कृष्ण की कृपा से गदाधर के लिये कुछ अगोचर नहीं है ( अतएव विद्या निधि जी के स्वरूप को भी वे जानते हैं ) तथापि यह माया धारी श्रीकृष्ण की एक माया है जो बुद्धि के गम्य नहीं है ॥ ७२ ॥ मुकुन्द का बड़ा सुरीला कण्ठ है वे श्रीकृष्ण चरित्र के बड़े सुन्दर गायक हैं । उन्होंने भक्ति महिमा-सूचक एक श्लोक पढ़ा ॥ ७३ ॥ ( उस का अर्थ यह है कि ) बच्चों को खाने वाली बड़ी निर्दयी राक्षसी पूतना कालकूट विष लेकर भगवान् श्रीकृष्ण को मारने को गई । ७४ ॥ परन्तु उस को भी भगवान् ने माता की पदवी दे दी ! अहो ! अबोध जीव ऐसे दयालु प्रभु को भी नहीं भजते हैं ॥ ७५ । ७६ ॥ ७७ ॥ भक्ति योग की इस स्तुति को सुनते ही श्री विद्या निधि जी रोने लगे । नेत्रों से आनन्द की अपूर्व धाराएँ बह चलीं–मानों तो गङ्गा देवी का ही अवतार हो गया हो । ७८ । अश्रु, कम्प, स्वेद, मूर्च्छा, पुलक, हुँकार आदि सब एक हो समय

अश्रु-कम्प-स्वेद-मूर्च्छा-पुलक-हुङ्कार। एक काले हइल सभार अवतार ॥७९॥
'बोल बोल' बलि महा लागिला गर्जिते। स्थिर हैते ना पारिला,पड़िला भूमिते ॥८०॥
लाथि-आछाड़ेर घाये जतेक सम्भार। भाङ्गिल सकल, रक्षा नाहि कारो आर ॥८१॥
कोथा गेल दिव्य बाटा, दिव्य गुया पान। कोथा गेल झारि, जाथे करे जल-पान ॥८२॥
कोथाय पड़िल गिया शय्या पदा घाते। प्रेमा देशे दिव्य वस्त्र चिरे दुइ-हाथे ॥८३॥
कोथा गेल से वा दिव्य केशेर संस्कार। धूलाय लोटाये करे क्रन्दन अपार ॥८४॥
"कृष्णरे ठाकुररे कृष्णरे! मोर प्राण। मोरे से करिला काष्ठ-पाषाण-समान" ॥८५॥
अनुताप करिया कान्दये उच्च स्वरे। "मुञि से वञ्चित हैलुँ हेन अवतारे" ॥८६॥
महा-गड़ा गड़ि दिया जे पड़े आछाड़। सभे मने करे किवा चूर्ण हैल हाड़ ॥८७॥
हेन से हइल कम्प-भावेर विकारे। दश-जन धरिलेओ धरिते ना पारे ॥८८॥
वस्त्र, शय्या, झारि, बाटा जतेक सम्भार। पदा घाते सब गेल, किछु नाहि आर ॥८९॥
सेवक सकल जे करिल सम्वरण। सकले रहिल सेइ व्यवहार-धन ॥९०॥
एइ मते कथो क्षण प्रेम प्रकाशिया। आनन्दे मूर्च्छित हइ थाकिला पड़िया ॥९१॥
तिल मात्र धातु नाहि सकल-शरीरे। डुबिलेन विद्या निधि आनन्द सागरे ॥९२॥
देखि गदाधर महा हइला विस्मित। तखने से मने बड़ हइला चिन्तित ॥९३॥
हेन जनेरे से आमि अवज्ञा करिलुँ। कोन् वा अशुभ क्षणे देखिते आइलुँ ॥९४॥
मुकुन्देरे परम-सन्तोषे करि कोले। सिञ्चि लेन अङ्ग तांर प्रेमानन्द जले ॥९५॥

---

में प्रकट हो गए ॥ ७९ ॥ "बोलो," 'बोलो" कह कर वे बड़ी गर्जना करने लगे, और स्थिर न रह सके, पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ८० ॥ उनकी पछाड़ और दुलत्तियों के मारे सारा साज-बाज नष्ट हो गया—कुछ नहीं बच सका ॥ ८१ ॥ 'कहाँ तो गया वह दिव्य पान का डब्बा और कहाँ गई वे दिव्य पान सुपारी और कहाँ गई वह झारी जिससे जल पीते थे ॥ ८२ ॥ पाँवों की ठोकरों से वह सुन्दर बिछौना भी कहीं जा पड़ी प्रेमावेश में वे दोनों हाथों से अपने उन सुन्दर वस्त्रों को चीरने लगे ॥ ८३ ॥ उन दिव्य केशों का संस्कार भी न जाने कहाँ चला गया, अब वे धूल में लोट रहे हैं और अपार क्रन्दन कर रहे हैं ॥ ८४ ॥ "हे कृष्ण! "हे ठाकुर" "हे कृष्ण" 'हे मेरे प्राण' 'अरे! मुझे तूने काष्ठ-पाषाण के समान बना दिया है' ॥ ८५ ॥ इस प्रकार अनुताप करते हुए ऊँचे स्वर से रोते हैं और कहते हैं—"हाय! ऐसे अवतार में मैं ही एक वंचित रह गया" ॥ ८६ ॥ भूमि पर लोट-पोट होते हुए जब वे पछाड़ खाकर गिरते हैं, तो सब लोग यही सोचते हैं कि हाय! इनकी हड्डी-पसली तो कहीं चूर चूर नहीं हो गईं ॥ ८७ ॥ और भाव के विकार से शरीर तो ऐसा काँपने लगा कि उसे दश आदमी, पकड़ने पर भी, रोक कर नहीं रख सकते हैं ॥ ८८ ॥ चरणों की चोटों से वस्त्र, बिछौना झारी, डब्बा, आदि साज सामान सब नष्ट-भ्रष्ट हो गये—कुछ नहीं बच रहा ॥८९॥ जो कुछ व्यवहार की वस्तुओं को सेवकों ने सम्हाल लिया, बस वे ही बच रहीं ॥ ९० ॥ इस प्रकार कुछ समय तक प्रेम प्रकाशित करके वे फिर आनन्द से मूर्च्छा भाव को प्राप्त होकर स्थिर पड़ गये ॥ ९१ ॥ समस्त शरीर में तिल भर चेतनता कहीं नहीं रही—विद्या निधि जी तो एक दम आनन्द सागर में डूब गये यह देखकर गदाधर को महान् विस्मय हुआ और तब तो वे मन में बड़ी भारी चिन्ता में पड़ गये ॥ ९३ ॥ 'हाय २! मैंने ऐसे महापुरुष की अवज्ञा कर डाली! न जाने मैं किस अशुभ घड़ी में इनके दर्शन को चला" ॥ ९४ ॥ फिर परम संतुष्ट हो करके उन्होंने मुकुन्द को गोद में ले लिया और उसके अंगों को अपने प्रेमाश्रु-

"मुकुन्द ! आमार तुमि कैले बन्धु कार्ज । देखाइला भक्ति, विद्या निधि-भट्टाचार्ज ॥९६॥
ए मत वैष्णव किवा आछे त्रिभुवने । त्रैलोक्य पवित्र हय ए भक्त दर्शने ॥९७॥
आजि आमि एड़ाइलु परम-सङ्कटे । सेहो जे कारणे तुमि आछिला निकटे ॥९८॥
विषयीर परिच्छेद देखिया उहान । 'विषयि-वैष्णव' मोर चित्ते हैल ज्ञान ॥९९॥
बुझिया आमार चित्त तुमि महाशय । प्रकाशिला पुण्डरीक भक्तिर उदय ॥१००॥
जत खानि आमि करियाछि अपराध । तत खानि कराइबा चित्तेर प्रसाद ॥१०१॥
ए पथे प्रविष्ट जत सब भक्त गण । उपदेष्टा अवश्य करेन एक जन ॥१०२॥
ए पथेते आमि उपदेष्टा नाहि करि । इहान स्थानेइ मंत्र उपदेश धरि ॥१०३॥
इहाने अवज्ञा जेन करियाछि मने । शिष्य हैले सब दोष क्षमिवे आपने" ॥१०४॥
एत भावि गदाधर मुकुन्देर स्थाने । दीक्षा करिवार कथा कहि लेन ताने ॥१०५॥
शुनिआ मुकुन्द बड़ सन्तोष हइला । 'भाल भाल' बलि बड़ श्लाघिते लागिला ॥१०६॥
प्रहर दुइते विद्यानिधि महा धीर । बाह्य पाय्या बसिलेन हइया सुस्थिर ॥१०७॥
गदाधर पण्डितेर नयनेर जल । अन्त नाहि–धारा अङ्ग तितिल सकल ॥१०८॥
देखिया सन्तोष विद्या निधि-महाशये । कोले करि थुइलेन आपन-हृदये ॥१०९॥
परम-सम्भ्रमे रहि लेन गदाधर । मुकुन्द कहेन ताँर मनेर उत्तर ॥११०॥
"व्यवहार ठाकुराल देखिया तोमार । पूर्वे किछु चित्त दूषियाछिल उँहार ॥१११॥

---

जल से सींच डाला ॥ ९५ ॥ वे बोले–"मुकुन्द ! सचमुच में तुमने मेरे साथ बन्धु का जैसा कार्य किया जो विद्या निधि भट्टाचार्य की भक्ति के दर्शन कराये ॥ ९६ ॥ "ऐसा वैष्णव त्रिभुवन में कोई और भी है क्या ? ऐसे भक्त के दर्शन से त्रिलोक पवित्र हो जाते हैं ॥ ९७ ॥ "आज मैं एक घोर संकट से बच गया–वह केवल इसी कारण कि तुम समीप थे ॥ ९८ ॥ "एक विषयी पुरुष की तरह इनकी वेश-भूषा सब देख करके तो मैंने अपने चित्त में इनको एक विषयी–वैष्णव ही ठान लिया था ॥ ९९ ॥ "परन्तु तुम्हारा अन्तः करण बड़ा महान् है–तुम मेरी भावना को समझ गये और पुण्डरीक जी की शुभ भक्ति को तुमने प्रकट करके दर्शा दिया ॥ १०० ॥ "अब तुम ऐसा करो कि जितनी मात्रा में मैंने अपराध किया है उतनी ही मात्रा में मेरे चित्त को प्रसन्नता प्राप्त होवे ॥ १०१ ॥ "इस पथ में प्रवेश करने वाले सब भक्त गण किसी न किसी एक जन को अपना ( मंत्र ) उपदेष्टा ( गुरु ) अवश्य बनाते हैं ॥ १०२ ॥ "किन्तु मैंने अभी तक किसी को ( मंत्र ) उपदेष्टा नहीं बनाया है—अतएव इनके पास से ही मैं मंत्र-उपदेश ग्रहण करूँगा ॥ १०३ ॥ "मैंने जो अपने मन में इनकी अवज्ञा की है—सो इनका शिष्य बन जाने पर ये मेरे सब दोषों को आप ही क्षमा कर देंगे" ॥ १०४ ॥ इतना विचार करके गदाधर जी ने मुकुन्द के निकट उनसे दीक्षा दिलवा देने के लिये अनुरोध किया ॥ १०५ ॥ यह सुनकर मुकुन्द जी बड़े संतुष्ट हुए और "ठीक है, उत्तम है" कह कर उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ १०६ ॥ दो एक पहर के पीछे महा धीर गम्भीर जो विद्या निधि जी हैं, उनको बाह्य ज्ञान हुआ और वे सुस्थिर होकर बैठे ॥ १०७ ॥ इधर गदाधर पण्डित के नेत्रों से ( पश्चात्ताप के ) अश्रु-जल की धाराएँ निरन्तर बह रही हैं—सारा शरीर भीग चला है ॥ १०८ ॥ यह देखकर विद्या निधि महाशय बड़े संतुष्ट हुए और उनको गोद में लेकर अपने हृदय से लगा लिया ॥ १०९ ॥ गदाधर पण्डित बड़े भारी सम्भ्रम में पड़े हुए हैं–( कुछ बोल नहीं सकते ), तब मुकुन्द उनके मन की बात कहते हैं कि ॥११०॥ "आपका अमीराना ठाट-बाट देखकर इनके मन ने पहले उसमें कुछ दोष देखा था ॥ १११ ॥ "अब उसका

इबे ताँर प्रायश्चित चिन्तिला आपने । मंत्र दीक्षा करिबेन तोमारइ स्थाने ।।११२।।
विष्णु भक्ति विरक्ति शैशवे वृद्ध रीत । माधव मिश्रेर कुल नन्दन-उचित ।।११३।।
शिशु हैते ईश्वरेर सङ्गे अनुचर । गुरु शिष्य जोग्य-पुण्डरीक-गदाधर ।।११४।।
आपने बुझिया चित्ते एक शुभ-दिने । निज इष्ट-मंत्र-दीक्षा कराह इहाने" ।।११५।।
शुनिञा हासेन पुण्डरीक विद्या निधि । "आमारे त' महारत्न मिलाइला विधि ।।११६।।
कराइब-इहाते सन्देह किछु नाइ । बहु-जन्म-भाग्ये से एमत शिष्य पाइ ।।११७।।
एइ जे आइसे शुक्ल पक्षेर द्वादशी । सर्व-शुभ-लग्न इथि मिलिबेक आसि ।।११८।।
इहाते सङ्कल्प सिद्धि हइब तोमार । शुनि गदाधर हर्षे हैला नमस्कार ।।११९।।
से दिन मुकुन्द-सङ्गे हइया विदाय । आइ लेन गदाधर-जथा गौर राय ।।१२०।।
विद्या निधि-आगमन शुनि विश्वम्भर । अनन्त-हरिष प्रभु हइला अन्तर ।।१२१।।
विद्या निधि-महाशय अलक्षित वेशे । रात्रि करि आइलेन महाप्रभु-पाशे ।।१२२।।
सर्व-सङ्ग छाड़ि एकेश्वर मात्र हञा । प्रभु देखि मात्र पड़िलेन मूर्च्छा पाञा ।।१२३।।
दण्डवत् प्रभुरे ना पारिला करिते । आनन्दे मूर्छित हैया पड़िला भूमिते ।।१२४।।
क्षणेके चैतन्य पाइ करिया हुङ्कार । कान्दे पुन आपनाके करिया धिक्कार ।।१२५।।
"कृष्णारे ! पराण मोर, कृष्ण ! मोर बाप । मुञि-अपराधी के कतेक देह' ताप ।।१२६।।
सर्व जगतेरे बाप ! उद्धार करिला । सबे मात्र मोरे तुमि एकेला बञ्चिला ।।१२७।।
'विद्या निधि' हेन कौन वैष्णव ना चिने । सभेइ कान्देन मात्र ताँहार क्रन्दने ।।१२८।।

प्रायश्चित इन्होंने आप ही यह सोचा है कि आपके ही निकट मंत्र दीक्षा ले लेवें ।। ११२ ।। "भगवान् विष्णु की भक्ति और वैराग्य में ये बचपन से ही बड़े–बूढ़ों की तरह आचरण करते आये हैं। ये माधव मिश्र जी के योग्य सुपुत्र हैं ।। ११३ ।। "ये बचपन से ही प्रभु के अनुचर बन कर उनके साथ रहते हैं। आप और गदाधर दोनों योग्य गुरु और योग्य शिष्य हैं ।। ११४ ।। "अब आप सोच विचार करके किसी एक शुभ दिन में इनको अपने इष्ट-मंत्र की दीक्षा प्रदान करें ।। ११५ ।। यह सुनकर पुण्डरीक विद्या निधि हँसे और बोले कि "विधाता ने एक महारत्न से मुझे मिला दिया ।। ११६ ।। "मैं अवश्य दीक्षा दूँगा–इसमें कुछ सन्देह नहीं। ऐसा शिष्य तो अनेक जन्मों के भाग्य से कहीं जाकर मिलता है ।। ११७ ।। "यह जो शुक्ल-पक्ष की द्वादशी आ रही है–इसमें सब शुभ लग्न आकर मिलेंगे ।। ११८ ।। "उसी दिन तुम्हारा संकल्प सिद्ध होगा। यह सुन कर गदाधर जी ने बड़े हर्ष के साथ उनको नमस्कार किया ।। ११९ ।। उस दिन गदाधर मुकुन्द के साथ वहाँ से विदा होकर, जहाँ श्री गौरचन्द्र हैं वहाँ आये ।। १२० ।। इधर विद्या निधि जी के आगमन को सुनकर विश्वम्भर प्रभु हृदय में असीम हर्ष को प्राप्त हो रहे हैं ।। १२१ ।। एक दिन विद्या निधि महाशय भेष बदल करके रात्रि में गुप्त रूप से प्रभु के पास आये ।। १२२ ।। सब सङ्ग को छोड़ कर अकेले हो कर वे पहुँचे और प्रभु के दर्शन करते ही मूर्च्छा खाकर गिर पड़े ।। १२३ ।। वे प्रभु को दण्डवत् भी नहीं कर सके, दर्शन करते ही आनन्द से मूर्च्छित हो कर भूमि पर गिर पड़े ।। १२४ ।। कुछ देर में चेतन हुये तो हुँकार करने लगे और फिर अपने को धिक्कार देते हुए रोने लगे ।। १२५ ।। "हे कृष्ण ! हे मेरे प्राण ! हे कृष्ण ! हे मेरे बाप ! मुझ अपराधी को तुम और कितना दुःख देकर जलाओगे ।। १२६ ।। "हे पिता ! सर्व जगत् का तो तुमने उद्धार किया केवल एक मुझे ही वंचित कर दिया" ।। १२७ ।। ये विद्या निधि जी हैं" करके इनको कोई भी वैष्णव नहीं पहचानते हैं–परन्तु उनके करुण क्रन्दन से सब ही रोने लगते हैं। १२८ ।।

निज प्रियतम जानि श्रीभक्त वत्सल। संभ्रमे उठिया कोले कैला विश्वम्भर ॥१२६॥
"पुण्डरीक बाप!" बलि कान्देन ईश्वर। "बाप देखिलाङ आजि नयन गोचर" ॥१३०॥
तखने से जानि लेन सर्व भक्त गण। 'विद्या निधि-गोसाञिर हैला आगमन' ॥१३१॥
तखन जे हैल सर्व-वैष्णव-क्रन्दन। परम-अद्भुत—ताहा ना जाय वर्णन।१३२॥
विद्या निधि वक्षे करि श्रीगौर सुन्दर। प्रेम जले सिञ्चिलेन ताँर कलेवर ॥१३३॥
'प्रिय तम प्रभुर' जानिञा भक्त गणे। प्रीति भय आप्तता सभार हैल मने ॥१३४॥
वक्षे हैते विद्या निधि ना छाड़े ईश्वरे। लीन हैला जेन प्रभु ताँहार शरीरे ॥१३५॥
प्रहरेक गौरचन्द्र आछेन निश्चले। तबे प्रभु बाह्य पाइ डाकि हरि' बोले ॥१३६॥
"आजि कृष्ण वांछा सिद्धि कैलेन आमार। आजि पाइलाङ सर्व-मनोरथ-पार" ॥१३७॥
सकल-वैष्णव-सङ्गे करिला मिलन। पुण्डरीक लइ सभे करिला कीर्त्तन ॥१३८॥
"इँहार पदवी पुण्डरीक प्रेम निधि'। प्रेम भक्ति बिलाइते गढ़ि लेन विधि" ॥१३९॥
एइ मत ताँर गुण वर्णिया वर्णिया। उच्च स्वरे 'हरि' बोले श्रीभुज तुलिया ॥१४०॥
प्रभु बोले "आजि शुभ प्रभात आमार। आजि महा मङ्गल वासिये आपनार ॥१४१॥
निद्रा हैते आजि उठिलाङ शुभ क्षणे। देखिलाङ प्रेम निधि साक्षाते नयने ॥१४२॥
श्रीप्रेम निधिर आसि हैल बाह्य ज्ञान। एखने से प्रभु चिनि करिला प्रणाम।१४३।
अद्वैत देवेर आगे करि नमस्कार। जथा योग्य प्रेम भक्ति कैलेन सभार ॥१४४॥
परानन्द हइलेन सर्व-भक्त गण। हैल प्रेम निधि-पुण्डरीक-दरशन ॥१४५॥

---

श्री भक्तवत्सल प्रभु विश्वम्भर अपने प्रियतम को आया जान, हड़बड़ा कर उठे और उनको अपनी गोद में ले लिया ॥ १२६ ॥ "पुण्डरीक! बाबा!" कह कर प्रभु रोते हैं और कहते हैं "आज बाबा के दर्शन पाये" ॥ १३० ॥ तब उस समय सब भक्त लोग भी यह जान गये कि विद्या निधि गुसांई का आगमन हुआ है ॥ १३१ ॥ तब जो क्रन्दन सब वैष्णवों में हुआ वह बड़ा ही अद्भुत था—उसका वर्णन नहीं हो सकता ॥ १३२ ॥ श्री गौरसुन्दर ने विद्या निधि जी को वक्षस्थल से लगा कर अपने प्रेमाश्रु-जल से उनके शरीर को सींच डाला ॥ १३३ ॥ उनको प्रभु का प्रियतम जानकर उनके प्रति, भक्तों के हृदय में, प्रीति, भय तथा गौरव के भाव उदय हो आये ॥ १३४ ॥ उधर विद्या निधि भी अपने वक्षस्थल से प्रभु को पृथक नहीं करना चाहते हैं—( ऐसा प्रतीत होता था कि ) प्रभु उनके शरीर में घुल मिल से गये हैं ॥ १३५ ॥ श्री गौरचन्द्र एक पहर तक निश्चल पड़े रहे, फिर सचेत होकर "हरि बोल" कहने लगे ॥ १३६ ॥ (और बोले) "आज श्री कृष्ण ने मेरी मनोवांछा पूर्ण करदी। आज मैं अपने सब मनोरथों का पार पा गया ॥ १३७ ॥ फिर प्रभु ने सब वैष्णवों के साथ उनका मिलन कराया और तब सबने पुण्डरीक जी को लेकर कीर्त्तन किया ॥ १३८ ॥ ( कीर्त्तन में ) "इनकी पदवी "पुण्डरीक प्रेमनिधि है। इन्हें विधाता ने प्रेम भक्ति लुटाने के लिये ही गढ़ा है" ॥ १३९ ॥ इस प्रकार उनके गुणों को वर्णन करते हुये अपनी श्रीभुजाओं को उठा कर ऊँचे स्वर से 'हरि बोल" कहते जाते हैं ॥ १४० ॥ प्रभु बोले कि "आज मेरा बड़ा शुभ प्रभात है। आज मैं अपना परम मंगल मानता हूँ" ॥ १४१ ॥ "आज मैं बड़ी शुभ घड़ी में नींद से उठा हूँ कि जो मैंने प्रेमनिधि के साक्षात् नेत्रों से दर्शन किये" ॥ १४२ ॥ ( इतने में ) प्रेमनिधि जी को भी बाह्य ज्ञान हो आया और अब उन्होंने प्रभु को पहचान कर प्रणाम किया ॥ १४३ ॥ फिर उन्होंने श्रीअद्वैत जी को नमस्कार करके सब के प्रति यथा योग्य प्रेम भाव दर्शाया ॥ १४४ ॥ समस्त भक्त गण परानन्द को प्राप्त हुये। ऐसा है

क्षरोके जे हैल प्रेम भक्ति-आविर्भाव । ताहा वर्णिवार पात्र—व्यास महा भाग ॥१४६॥
गदाधर आज्ञा मागिलेन प्रभु-स्थाने । पुण्डरीक-मुखे मंत्र-ग्रहण-कारणे ॥१४७॥
"ना जानिञा उहान अगम्य व्यवहार । चित्ते अवज्ञान हइयाछिल आमार ॥१४८॥
एतेके उहान आमि हइबाङ शिष्य । शिष्य-अपराध गुरु क्षमिवे अवश्य" ॥१४९॥
गदाधर वाक्ये प्रभु सन्तोष हइला । "शीघ्रकर' शीघ्रकर" बलिते लागिला ॥१५०॥
तवे गदाधर देव प्रेम निधि-स्थाने । मंत्र दीक्षा करिलेन सन्तोषे आपने ॥१५१॥
कि कहिव आर पुण्डरीकेर महिमा । गदाधर शिष्य ताँर—भक्तिर एइ सीमा ॥१५२॥
कहिलाङ किछु विद्यानिधिर आख्यान । एइ मोर काम्य-जेन देखा पाइ तान ॥१५३॥
जोग्य गुरु-शिष्य-पुण्डरीक-गदाधर । दुइ-कृष्ण चैतन्येर प्रिय-कलेवर ॥१५४॥
पुण्डरीक गदाधर-दुइर मिलन । जे पढ़े जे शुने तारे मिले प्रेम धन ॥१५५॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावन दास तछु पद जुगे गान ॥१५६॥

# अथ आठवाँ अध्याय

जय जय श्रीगौर सुन्दर सर्व प्राण । जय नित्यानन्द-अद्वैतेर प्रेम-धाम ॥१॥
जय श्रीजगदानन्द-श्रीगर्भ-जीवन । जय पुण्डरीक विद्या निधि-प्रेम धन ॥२॥
जय जगदीश-गोपीनाथेर ईश्वर । जय हउ जत गौरचन्द्रेर-अनुचर ॥३॥
हेन मते नवद्वीपे श्रीगौराङ्ग राय । नित्यानन्द-सङ्गे रङ्ग करये सदाय ॥४॥

---

पुण्डरीक प्रेम निधि जी का दर्शन ॥ १४५ ॥ ( उस समय वहाँ ) जो प्रेम भक्ति का आविर्भाव एक क्षण काल में हुआ था उसका वर्णन तो महाभाग श्री व्यास जी ही कर सकते हैं, ( मैं नहीं ) ॥ १४६ ॥ तब गदाधर जी ने श्री पुण्डरीक जी के मुख से मंत्र ग्रहण करने के लिये प्रभु से आज्ञा माँगी ॥ १४७ ॥ वे बोले कि "उनके अगम्य व्यवहार को न समझ कर मेरे चित्त में उनके प्रति अवज्ञा भाव हो आया था ॥ १४८ ॥ "इस कारण मैं उनका शिष्य होना चाहता हूँ ( कारण कि ) शिष्य के अपराध को गुरु अवश्य क्षमा कर देंगे ॥ १४९ ॥ गदाधर जी के वाक्य से प्रभु को सन्तोष हुआ और वे "शीघ्र करो" "शीघ्र करो" कहने लगे ॥ १५० ॥ तब गदाधर देव ने अपने सन्तोष के लिये प्रेम निधि जी से मंत्र दीक्षा ले ली ॥ १५१ ॥ श्रीपुण्डरीक जी की महिमा मैं और क्या कहूँ । उनकी भक्ति की सीमा बस इतने ही में समझ लो कि गदाधर पंडित जैसे अनेक शिष्य हैं ॥ १५२ ॥ यह मैंने कुछ श्री विद्यानिधि जी का आख्यान कहा । इसमें मेरी केवल यही एक कामना है कि उनके दर्शन मुझे मिल जाँय ॥ १५३ ॥ श्री पुण्डरीक और गदाधर दोनों योग्य गुरु-शिष्य हैं और दोनों श्री कृष्ण चैतन्य के प्रिय कलेवर है ॥ १५४ ॥ श्री पुण्डरीक—गदाधर—मिलन प्रसङ्ग को जो पढ़ेंगे-सुनेंगे, वे प्रेम-धन पायेंगे ॥ १५५ ॥ श्री कृष्णचैतन्य और नित्यानन्द को ( सर्वस्व ) जानकर यह वृन्दावन दास उनके कुछ यश को गाकर उनके ही युगल चरणों में निवेदन करता है ॥ १५६ ॥

इति श्री चैतन्य भागवते मध्यखण्डे पुण्डरीक गदाधर मिलनं नाम सप्तमोऽध्याय ॥

सर्व जीवों के प्राण श्री गौरसुन्दर की जय हो, जय हो । श्री नित्यानन्द और अद्वैत के प्रेम-धाम की जय हो ॥ १ ॥ श्री जगदानन्द और श्री गर्भ के जीवन स्वरूप की जय हो । श्री पुण्डरीक विद्या निधि के प्रेम-धन-स्वरूप की जय हो ॥ २ ॥ श्री जगदीश और गोपीनाथ के ईश्वर की जय हो । श्री गौरचन्द्र के समस्त अनुचरों की जय हो ॥ ३ ॥ इस प्रकार श्री गौरांगराय श्री नित्यानन्द के साथ नवद्वीप में सदा ही

अद्वैत लइया सर्व वैष्णव-मण्डल। महा-नृत्य गीत करे कृष्ण कोलाहल ।।५।।
नित्यानन्द रहिलेन श्रीवासेर घरे। निरन्तर बाल्य भाव, आर नाहि स्फुरे ।।६।।
आपनि तुलिया हाथे भात नाहि खाय। पुत्र-प्राय करि अन्न मालिनी जो गाय ।।७।।
नित्यानन्द-अनुभाव जाने पतिव्रता। नित्यानन्द सेवा करे-जेन पुत्र माता ।।८।।
एक दिन प्रभु श्रीनिवासेर सहित। वसिया कहेन कथा-कृष्णेर चरित ।।९।।
पण्डितेरे परीक्षये प्रभु विश्वम्भर। "एइ अवधूत केने राख निरन्तर ।।१०।।
कोन् जाति कोन् कुल किछुइ ना जानि। परम-उदार तुमि-बलिलाङ आमि ।।११।।
आपनार जाति-कुल जदि रक्षा चाओ। तवे झाट् एइ अवधूतेरे घुचाओ" ।।१२।।
ईषत् हासिया बोले श्रीवास-पण्डित। "आमारे परीक्ष' प्रभु! ए नहे उचित ।।१३।।
दिनेको जे तोमा' भजे, सेइ मोर प्राण। नित्यानन्द तोर देह-आमाते प्रमाण ।।१४।।
मदिरा जवनी जदि नित्यानन्द धरे। जाति प्राण धन जदि मोर नाश करे ।।१५।।
तथापि आमार चित्ते नहिब अन्यथा। सत्य सत्य तोमारे कहिलुँ एइ कथा" ।।१६।।
एतेक शुनिया अवे श्रीवासेर मुखे। हुङ्कार करिया प्रभु उठे तार बुके ।।१७।।
प्रभु बोले "किबलिला पण्डित श्रीवास। नित्यानन्द प्रति तोर एतेक विश्वास ।।१८।।
मोर गोप्य नित्यानन्द जानिले से तुमि। तोमारे सन्तुष्ट हृया वर दिये आमि ।।१९।।
जदि लक्ष्मी भिक्षा करे नगरे नगरे। तथापि दारिद्र तोर नहि बेक घरे ।।२०।।
विड़ाल-कुक्कुर-आदि तोमार बाडीर। सभार आमाते भक्ति हइ बेक स्थित ।।२१।।

क्रीड़ा करते हैं ।। ४ ।। और सब वैष्णव मण्डल अद्वैताचार्य को लेकर श्री कृष्ण का कीर्त्तन और नृत्य करते करते हुए महा कोलाहल करते हैं ।। ५ ।। श्री नित्यानन्द जी श्रीवास के घर में ठहरे हुए हैं और निरन्तर बाल भाव में रहते हैं—और कोई दूसरा भाव उनमें उठता ही नहीं ।। ६ ।। वे अपने हाथ से उठा कर भात भी नहीं खाते हैं। श्री मालिनी देवी ( श्री वास-पत्नी ) उनको पुत्र के समान समझ कर उन्हें आप भात खिलाया करती हैं ।। ७ ।। पतिव्रता मालिनी देवी नित्यानन्द जी के प्रभाव को जानती हैं और उनकी इस प्रकार सेवा करती हैं जैसे माता पुत्र की करती है ।। ८ ।। एक दिन प्रभु गौरचन्द्र श्रीवास के साथ बैठ कर कृष्ण चरित्र की कथा कह रहे हैं ।। ९ ।। उस समय पंडित श्रीवास की परीक्षा के लिए प्रभु विश्वम्भर बोले— 'तुम इस अवधूत को निरन्तर अपने यहाँ क्यों रख रहे हो ।। १० ।। "इस की जाति कुल का कुछ भी तो पता नहीं। तुम बड़े उदार हो, ( परन्तु ) मैं यह कहे देता हूँ कि ।। ११ ।। "यदि तुम अपनी जाति और कुल की रक्षा चाहते हो तो इस अवधूत को झटपट दूर कर दो ।। १२ ।। श्री वास पण्डित कुछ हँसते हुए बोले—"तुम मेरी परीक्षा जो करते हो प्रभो! यह उचित नहीं है ।। १३ ।। "जो एक दिन के लिए भी तुमको भजता है, वही मेरे लिए प्राण समान प्रिय है और फिर ये नित्यानन्द जी तो तुम्हारी देह हैं—यह मेरा सत्य विश्वास है ।। १४ ।। "यदि श्री नित्यानन्द जी मदिरा और यवन—स्त्री को भी ग्रहण कर लें, यदि वे मेरी जाति, प्राण, धन, सब को नष्ट कर दें, तथापि मेरे चित्त में उनके प्रति विपरीत भाव कदापि नहीं होगा—यह मैं तुमसे सत्य २ कहता हूँ ।। १५ ।। १६ ।। श्री वास के मुख से इतना सुनते ही प्रभु हुँकार करते हुए, उनके वक्षस्थल पर चढ़ गये ।। १७ ।। और बोले—"क्या कहा श्रीवास पण्डित ? नित्यानन्द के प्रति तेरा इतना विश्वास ? ।। १८ ।। "मेरे गुप्त नित्यानन्द को तुम जान गये ! मैं संतुष्ट हो कर तुमको वर देता हूँ कि ।। १९ ।। "स्वयं लक्ष्मी को नगर के घर २ में भिक्षा माँगना पड़े तो पड़े परन्तु तेरे घर में कभी दरिद्रता

नित्यानन्द समर्पिल आमि तोमा' स्थाने । सर्व मते सम्वरण करिवा आपने ॥२२॥
श्रीवासेरे वर दिया प्रभु गेला घर । नित्यानन्द भ्रमे' सर्व-नदिया नगर ॥२३॥
क्षणे के गङ्गार माझे एड़ेन साँतार । महा स्रोते लइ जाय-सन्तोष अपार ॥२४॥
बालक-सभार सङ्गे क्षणे क्रीड़ा करे । क्षणे जाय गङ्गादास-मुरारिर घरे ॥२५॥
प्रभुर वाड़ीते क्षणे जायेन धाइया । वड़ स्नेह करे आइ ताहाने देखिया ॥२६॥
बाल्य भावे नित्यानन्द आइर चरण । धरिवारे जाय-आइ करे पलायन ॥२७॥
एक दिन आइ किछु देखिल स्वपने । निभृते कहिला पुत्र-विश्वम्भर-स्थाने ॥२८॥
"निशि अवशेषे मुञि देखिलुँ स्वपन । तुमि आर नित्यानन्द-एइ दुइ जन ॥२९॥
वत्सर-पाँचेर दुइ छाओयाल हैया । मारा मारि करि दौंहे वेड़ाओ धाइया ॥३०॥
दुइ जने साम्भाइला गोसाञिर घरे । राम कृष्ण लइ दोंहे हइला वाहिरे ॥३१॥
ताँर हाथे कृष्ण, तुमि लइ वलराम । चारि जने मारा मारि मोर विद्यमान ॥३२॥
राम कृष्ण ठाकुर वोलये क्रुद्ध हैया । के तोरा ढाङ्गाति दुइ वाहिराओ गिया ॥३३॥
ए वाड़ी ए घर सब आमा दोंहा कार । ए सन्देश दधि दुग्ध जत उपहार ॥३४॥
नित्यानन्द बोलये से काल गेल वय्या । जे-काले खाइला दधि नवनी लुटिया ॥३५॥
घुचिला गोयाला-हैल विप्र-अधिकार । आपना चिनिञा छाड़' सब-उपहार ॥३६॥
प्रीति जदि ना छाड़िवा, खाइवा मारण । लुटिया खाइले वा राखिवे कौन जन ॥३७॥
राम कृष्ण वोले 'आजि मोर दोष नाञि । वान्धिया एडिमु दुइ ढङ्ग एइ ठाञि ॥३८॥

नहीं आयगी ॥ २० ॥ "और तुम्हारे घर के कुत्ता-बिल्ली आदि सब की मुझ में निश्चल भक्ति होगी ॥२१॥ "मैं नित्यानन्द को तुम्हारे निकट समर्पण करता हूँ । तुम स्वयं सब प्रकार से उनकी सँभाल रखना" ॥२२॥ इस प्रकार श्रीवास को वर देकर प्रभु घर चले गये । ( अब श्रीनित्यानन्द का चरित्र सुनो ) नित्यानन्द जी नदिया नगर भर में सर्वत्र घूमते फिरते हैं ॥ २३ ॥ कभी तो गङ्गा में मझधार में पहुँचने पर तैरना बन्द कर देते हैं और प्रबल धारा में बड़े आनन्द से बहे चले जाते हैं ॥ २४ ॥ कभी सब बालकों के साथ खेलने लगते हैं तो कभी गङ्गादास और मुरारि गुप्त के घर चले जाते हैं ॥ २५ ॥ कभी दौड़ते हुए प्रभु के घर जा पहुँचते हैं तो उनको देख कर शची माँ बड़ा स्नेह करती है ॥ २६ ॥ बाल भाव में नित्यानन्द जी शचीमा के चरण पकड़ने जाते हैं तो वे भागती हैं ॥ २७ ॥ एक दिन शची मा ने स्वप्न में कुछ देखा उसे वह एकान्त में पुत्र विश्वम्भर से कहने लगी ॥ २८ ॥ "विश्वम्भर ! आज मैंने शेष-रात्रि में एक स्वप्न देखा कि तुम और नित्यानन्द-दोनों जने ॥ २९ ॥ "पाँच २ वर्ष के बालक होकर आपस में लड़ते-झगड़ते हुए दौड़ते फिर रहे हो ॥ ३० ॥ "फिर तुम दोनों श्री ठाकुर जी के मन्दिर में घुस गये और राम कृष्ण को लेकर बाहर निकले ॥ ३१ ॥ "नित्यानन्द के हाथ में कृष्ण और तुम्हारे हाथ में बलराम थे । और फिर मेरे सामने ही तुम चारों में लड़ाई-झगड़ा होने लगा ॥ ३२ ॥ "ठाकुर श्री राम-कृष्ण क्रोध में भर कर बोले- "तुम दो ढोंगी कौन हो-निकल जाओ बाहर यह घर बार यह सन्देश-दूध-दही आदि सब उपहार हम दोनों के हैं" ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तब नित्यानन्द ने कहा कि "वे दिन बीत गये जब कि तुमने दूध-दही-मक्खन लूट २ कर खाया था ॥ ३५ ॥ अब ग्वालाओं का राज्य गया, अब तो ब्राह्मणों का अधिकार है । इसलिए अपने को पहचानो और छोड़ो हमारी इन सब भेंट पूजा को ॥ ३६ ॥ यदि खुशी २ से नहीं छोड़ दोगे तो मार खाओगे । हम तुम्हें लूट खायँगे-देखेंगे कौन बचाता है" ॥ ३७ ॥ इस पर राम कृष्ण बोले "अच्छा अब

'दोहाइ कृष्णेर जदि करों आजि आन। नित्यानन्द प्रति तर्जे गर्जे करे राम ॥३६॥
नित्यानन्द बोले तोर कृष्णेर कि डर। गौरचन्द्र विश्वम्भर-आमार ईश्वर ॥४०॥
एइ मत कलह करह चारि जन। काड़ा काड़ि करि सब करह भोजन ॥४१॥
काहारो हाथेर केहो काड़ि लइ जाय। काहारो मुखेर केहो मुख दिया खाय ॥४२॥
'जननि' ! बलिया नित्यानन्द डाके मोरे। 'अन्न देह' माता ! मोरे क्षुधा बड़ करे' ॥४३॥
एतेक बलिते मुञि चैतन्य पाइलुँ। किछु ना बुझिलुँ मुञि तोमारे कहिलुँ" ॥४४॥
हासे प्रभु विश्वम्भर शुनिञा स्वपन। जननीर प्रति बोले मधुर वचन ॥४५॥
बड़इ सुस्वप्न तुमि देखियाछ माता। आर कारो ठाञि पाछे कह एइ कथा ॥४६॥
तोमार घरेर मूर्त्ति परतेख बड़। मोर चित्त तोमार स्वप्नेते हैल दढ़ ॥४७॥
मुञि देखों बारे बार नैवेद्येर साजे। आधा आधि ना थाके, ना कहि कारे लाजे ॥४८॥
तोमोर बधुरे मोर सन्देह आछिल। आजि -से आमार मने सन्देह घुचिल" ॥४९॥
हासे लक्ष्मी जगन्माता–स्वामीर वचने। अन्तरे थाकिया सब स्वप्न-कथा शुने ॥५०॥
विश्वम्भर बोले 'माता ! शुनह वचन। नित्यानन्दे आनि झाट् कराह भोजन" ॥५१॥
पुत्रेर वचने शची हरिष हइला। भिक्षार सामग्री जत करिते लागिला ॥५२॥
नित्यानन्द-स्थाने गेला प्रभु विश्वम्भर। निमन्त्रण गिया ताने करिला सत्वर ॥५३॥
"आमार वाड़ीते आजि गोसाञिर भिक्षा। चञ्चलता ना करिवा-कराइल शिक्षा" ॥५४॥
कर्ण धरि नित्यानन्द 'विष्णु विष्णु' बोले। "चञ्चलता करे देख पागल-सकले ॥५५॥

---

हमारा दोष नहीं है। तुम दोनों ढोंगियों को अब हम यहीं बाँध कर ही छोड़ेंगे" ॥ ३८ ॥ "मुझे कृष्ण की दुहाई है, जो ऐसा न करूं तो"—इस प्रकार नित्यानन्द के ऊपर गरजते हुए बलराम ने कहा ॥ ३९ ॥ तो नित्यानन्द भी बोला –' तेरे कृष्ण का मुझे क्या डर ? मेरे ईश्वर तो गौरचन्द्र विश्वम्भर हैं ॥ ४० ॥ "इस प्रकार चारों जने लड़ते–झगड़ते हैं, और एक दूसरे से छीन २ कर भोजन करते हैं ॥ ४१ ॥ "कोई किसी के हाथ में छीन झपट कर ले जा रहा है तो कोई किसी के मुख से मुख मिला कर खा रहा है ॥ ४२ ॥ फिर नित्यानन्द ने पुकार कर मुझे कहा–"माँ ! मुझे खाने को दो ! बड़ी भूख लग रही है ॥ ४३ ॥ 'उसके इतने कहने पर मैं जाग पड़ी। मेरी तो समझ में यह स्वप्न कुछ नहीं आया, इसलिये यह तुमको सुनाया" ॥ ४४ ॥ स्वप्न को सुनकर विश्वम्भर प्रभु हँसे और माता से मधुर वचन बोले ॥ ४५ ॥ माता जी ! तुमने बड़ा ही शुभ स्वप्न देखा है कहीं पीछे से यह किसी को सुना न देना ॥ ४६ ॥ "तुम्हारे मन्दिर की मूर्ति बड़ी प्रत्यक्ष है–यह बात तुम्हारे स्वप्न को सुन कर मेरे चित्त में दृढ़ हो गई है ॥ ४७ ॥ "मैंने कई बार यह देखा है कि भोग की सामग्री में से आधा नहीं रहता है। लज्जा के मारे मैंने यह बात किसी से कहा नहीं" ॥४८॥ 'तुम्हारी बहू के ऊपर मेरे मन में कुछ सन्देह था–वह आज दूर हो गया" ॥ ४९ ॥ जगन्माता लक्ष्मी जी भीतर से स्वप्न की वार्ता सुन रही थी–वह स्वामी के वचनों को सुन कर हँसती है ॥ ५० ॥ श्री विश्वम्भर देव फिर बोले–"माँ ! मेरी बात सुनो ! नित्यानन्द को बुला कर शीघ्र ही भोजन कराओ" ॥ ५१ ॥ पुत्र के वचन को सुन कर शची माता को बड़ा आनन्द हुआ और वह भोजन की सब सामग्री बनाने लगीं। ५२ । इधर विश्वम्भर प्रभु शीघ्र ही नित्यानन्द जी के समीप गये और उनको निमंत्रण दिया ॥ ५३ ॥ वे बोले–"आज गुसांई की भिक्षा हमारे घर है–परन्तु आप वहाँ कोई चंचलता न करें"–इतनी सीख भी सुना दी ॥ ५४ ॥ श्री नित्यानन्द जी कान पकड़ कर बोले–"विष्णु २ ! चंचलता तो पागल लोग किया

ईशान करिल सब-गृह-उपस्कार। ना जत छिल अवशेष-सकल ताँहार ॥७३॥
सेविलेन सर्व काल आइरे ईशान। चतुर्दश-लोक-मध्ये महा भाग्यवान् ॥७४॥
एइ मत अनेक कौतुक प्रति दिने। मर्म भृत्य बइ इहा केहो नाहि जाने ॥७५॥
मध्य खण्ड—कथा बड़ अमृतेर खण्ड। जे कथा शुनिले खण्डे अन्तर-पाषण्ड ॥७६॥
एइ मत गौरचन्द्र नवद्वीप-माझे। कीर्त्तन करेन सब-भकत समाजे ॥७७॥
जत जत स्थाने सब पार्षद जन्मिला। अल्पे अल्पे सभे नवद्वीपेरे आइला ॥७८॥
सभे जानि लैन—ईश्वरेर अवतार। आनन्द-स्वरूप चित्त हइल सभार ॥७९॥
प्रभुर प्रकाश देखि वैष्णव-सकल। अभय-परमानन्दे हइला विह्वल ॥८०॥
प्रभुओ सभारे देखे प्राणेर समान। सभेइ प्रभुर पारिषदेर प्रधान ॥८१॥
वेदे जारे निरवधि करे अन्वेषण। से प्रभु सभारे करे प्रेम-आलिङ्गन ॥८२॥
निरन्तर सभार मन्दिरे प्रभु जाय। चतुर्भुज-षड्भुजादि विग्रह देखाय ॥८३॥
क्षणे जाय गङ्गादास-मुरारिर घरे। आचार्य रत्नेर क्षणे चलेन मन्दिरे ॥८४॥
निरवधि नित्यानन्द थाकेन संहति। प्रभु-नित्यानन्देर विच्छेद नाहि कति। ८५॥
नित्यानन्द स्वरूपेर बाल्य निरन्तर। सर्व-भावे आवेशित प्रभु विश्वम्भर ॥८६॥
मत्स्य, कूर्म, वराह, वामन, नरसिंह। भाग्य-अनुरूप देखे चरणेर भृङ्ग ॥८७॥
कोन् दिन गोपी भावे करेन रोदन। कारे वलि रात्रि-दिन—नाहिक स्मरण ॥८८॥
कोन् दिन उद्धव-अक्रूर-भाव हय। कोन दिन राम-भावे मदिरा आचय ॥८९॥
कोन दिन चतुर्मुख-भावे विश्वम्भर। ब्रह्म-स्तव पढ़ि पड़े पृथिवी—उपर ॥९०॥

---

शेष को हटाया तथा घर सब साफ किया ॥ ७३ ॥ चौदह लोकों में महा भाग्यवान् ईशान ने सब समय शची माता की सेवा की है ॥ ७४ ॥ इस प्रकार प्रति दिन प्रभु के अनेक कौतुक होते हैं, जिनको मर्मी सेवक बिना कोई नहीं जानता है ॥ ७५ ॥ इस मध्यखन्ड की कथा बड़ा मधुर अमृत का खण्ड है जिसके सुनने से अन्तर का पाखण्ड सब खण्डित हो जाता है ॥ ७६ ॥ इस प्रकार श्री गौर चन्द्र नवद्वीप में सब भक्त समाज में कीर्त्तन किया करते हैं ॥ ७७ ॥ प्रभु के जो जो पार्षद जिस २ स्थान में प्रकट हुए थे, वे धीरे २ सब नबद्वीप में आ गये ॥ ७८ ॥ सब यह जान गये कि ईश्वर का अवतार हुआ है अतएव सब के चित्त आनन्द स्वरूप बने हुये हैं ॥ ७९ ॥ प्रभु के स्वरूप-प्रकाश के दर्शन करके सब वैष्णव लोग निर्भय हो गये हैं और परमानन्द में विह्वल बने हुये हैं ॥ ८० ॥ प्रभु भी सब को अपने प्राणों के समान देखते हैं—सभी प्रभु के पार्षदों में प्रधान २ हैं ॥ ८१ ॥ वेद जिनको निरन्तर अन्वेषण कर ही रहे हैं, वे ही प्रभु सब को प्रेमालिंगन करते हैं ॥ ८२ ॥ प्रभु निरन्तर सब भक्तों के घर जाते हैं और उनको चतुर्भुज-षड्भुज आदि नाना रूप दिखलाते हैं ॥ ८३ ॥ कभी श्री गङ्गादास और मुरारि के घर जाते हैं—तो कभी आचार्य रत्न के घर जाते हैं ॥ ८४ । नित्यानन्द जी सदैव प्रभु के साथ ही रहते हैं। प्रभु और नित्यानन्द का वियोग कहीं नहीं है ॥ ८५ ॥ नित्यानन्द स्वरूप का तो निरन्तर बाल भाव रहता है और प्रभु विश्वम्भर में सर्व भावों का आवेश रहता है ॥ ८६ ॥ प्रभु के चरण कमलों के भृंग ( भक्त लोग ) अपने २ भाग्य के अनुसार मत्स्य, कूर्म, बाराह, बामन, नृसिंह आदि रूप के दर्शन करते हैं ॥ ८७ ॥ किसी दिन प्रभु गोपी भाव में रुदन करते हैं—कभी तो उनको दिन रात तक की सुध नहीं रहती है ॥ ८८ ॥ किसी दिन उद्धव और अक्रूर का भाव आ जाता है और किसी दिन बलराम जी के भावों में वे मदिरा माँगने लग जाते हैं ॥ ८९ ॥ किसी दिन

कोन दिन प्रह्लाद-भावे ते स्तुति करे। एइ मत प्रभु भक्ति सागरे विहरे ।।९१।।
देखिया आनन्दे भासे शची जगन्माता। 'वाहि राय पुत्र पाछे' एइ मनः कथा ।।९२।।
आइ वोले "वाप! गिया कर' गङ्गा स्नान। प्रभु बोले "बोल माता! जय कृष्ण राम" ।।९३।।
जत किछु करे शची पुत्रे रे उत्तर। 'कृष्ण' वइ किछु नाहि वोले विश्वम्भर ।।९४।।
अचिन्त्य आवेश सेइ–बुझन ना जाय। जखन जे हये–से-इ अपूर्व देखाय ।।९५।।
एक दिन आसि एक शिवेर गायन। डमरु वाजाय–गाय शिवेर कथन ।।९६।।
आइल करिते भिक्षा प्रभुर मन्दिरे। गाइया शिवेर गीत वेढ़ि नृत्य करे ।।९७।।
शङ्करेर गुण शुनि प्रभु विश्वम्भर। हइला शङ्कर मूर्त्ति दिव्य-जटा धर ।।९८।।
एक-लाफे उठे तार कान्धेर उपर। हुङ्कार करिया बोले "मुञि से शङ्कर" ।।९९।।
केहो देखे जटा, शिङ्गा डमरु वाजाय। 'वोल वोल' महाप्रभु बोलये सदाय ।।१००।।
से महापुरुष जत शिव गीत गाइल। परिपूर्ण फल तार एकत्र पाइल ।।१०१।।
सेइ से गाइल शिव निर-अपराधे। गौरचन्द्र आरोहण कैल जार कान्धे ।।१०२।।
वाह्य पाइ नाम्विलेन प्रभु विश्वम्भर। आपने दिलेन भिक्षा झुलिर भितर ।।१०३।।
कृतार्थ हइया सेइ पुरुष चलिल। हरि ध्वनि सर्व-गणे मङ्गल उठिल ।।१०४।।
जय पाइ उठे कृष्ण भक्तिर प्रकाश। ईश्वर-सहित सर्व-दासेर विलास ।।१०५।।

---

चतुर्भुज ब्रह्मा जी के भाव में आकर विश्वम्भर प्रभु ब्रह्मस्तव का पाठ करके भूमि पर पड़ कर साष्टांग प्रणाम करते हैं।। ९० ।। तो किसी दिन प्रहलाद के भाव में भगवान् की स्तुति करते हैं। इस प्रकार प्रभु निरन्तर भक्ति-सागर में बिहार करते हैं ।। ९१ ।। ये चरित्र देख २ कर जगन्माता शची आनन्द में फूली फिरती हैं–परन्तु मन में तो यह बात रहती ही है कि "पीछे कहीं पुत्र घर से बाहर न निकल जाय" ।। ९२ ।। (एक दिन) शची मा बोली–"बेटा! जा कर गङ्गा स्नान करो" तो प्रभु कहते हैं–"माता! जय कृष्ण राम बोलो" ।९३।। शची मा जो कुछ भी पुत्र से कहती हैं, उसके उत्तर में विश्वम्भर "कृष्ण" के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कहते हैं ।। ९४ ।। प्रभु का यह आवेश भाव अचिन्त्य है, समझ में कुछ नहीं आता है। जिस समय जो भाव उदय हो आता है, वही अपूर्व होता है ।। ९५ ।। एक दिन एक शिव-गायक कहीं से वहाँ आ गया। वह डमरू बजाता हुआ शिव जी का चरित्र गाता फिरता था।। ९६ ।। वह प्रभु के घर भी भिक्षा माँगने आया और शिव जी का गीत गाता हुआ घूम २ कर नाचने लगा ।। ९७ ।। शङ्कर भगवान् के गुणों को सुन कर प्रभु विश्वम्भर जटाधारी दिव्य शङ्कर मूर्ति बन गये ।। ९८ ।। और एक ही छलांग में उसके कन्धे पर चढ़ बैठे और हुँकार करते हुए बोले–"मैं ही वह शङ्कर हूँ" ।। ९९ ।। उस समय किसी को जटा और किसी को सिंगी के दर्शन हुए, किसी ने डमरु बजाते हुए देखा। महाप्रभु तो निरन्तर "बोलो २" कहते ही जाते हैं ।। १०० ।। उस महा पुरुष ने (आज तक) जितने भी शिव-गीत गाये थे आज उन का परिपूर्ण फल इकट्ठा ही पा लिया ।। १०१ ।। उसने ही अपराध शून्य होकर शिव जी के गीत गाये होंगे, तब ही तो गौरचन्द्र उसके कन्ध पर चढ़ बैठे ।। १०२ ।। सचेत होने पर प्रभु विश्वम्भर उसके कन्धे पर से उतर पड़े और स्वयं ही उसकी झोली में उन्होंने भिक्षा डाल दी ।।१०३ ।। वह पुरुष कृतार्थ होकर चला गया, और सब भक्त जन मङ्गल हरि ध्वनि करने लगे ।। १०४ ।। जब प्रभु के साथ प्रभु के भक्तों का क्रीड़ा–कौतुक होता है तो श्रीकृष्ण भक्ति भी प्रकाशित होकर सर्वोत्कर्ष को प्राप्त हो उठती है ।। १०५ ।। एक दिन प्रभु बोले, "भाइयो! एक सार बात सुनो–( वह यह कि ) हम सबों की रात्रि क्यों

प्रभु बोले "भाइ सब ! शुन मंत्र सार। रात्रि केने मिथ्या जाय आमा' सभाकार ॥१०६॥
आजि हैते निर्बन्धित करह सकल। निशाय करिब सभें कीर्त्तन मङ्गल ॥१०७॥
सङ्कीर्तन करिया सकल-गण-सने। भक्ति स्वरूपिणी गङ्गा करिब मज्जने ॥१०८॥
जगत् उद्धार हउ शुनि कृष्ण नाम। परार्थे से तोमरा सभार धन प्राण। १०९॥
सर्व-वैष्णवेर हैल शुनिञा उल्लास। आरम्भिला महाप्रभु कीर्त्तन विलास ॥११०॥
श्रीवास मन्दिरे प्रति-निशाय कीर्त्तन। कोन दिन हय चन्द्रशेखर भवन ॥१११॥
नित्यानन्द, गदाधर, अद्वैत, श्रीवास। विद्या निधि, मुरारि, हिरण्य, हरिदास ॥११२॥
गङ्गादास, वनमाली, विजय, नन्दन। जगदानन्द, बुद्धि मन्त खान, नारायन ॥११३॥
काशीश्वर, वासुदेव, राम, गरुड़ाइ। गोविन्द, गोविन्दानन्द सकल तथाइ ॥११४॥
गोपीनाथ, जगदीश, श्रीमान्, श्रीधर। सदा शिव, वक्रेश्वर, श्रीगर्भ, शुक्लाम्बर ॥११५॥
ब्रह्मानन्द, पुरुषोत्तम-सञ्जयादि जत। अनन्त चैतन्य-भृत्य—नाम जानि कत ॥११६॥
सभेइ प्रभुर नृत्ये थाकेन संहति। पारिषद बइ आर केहो नाहि तथि ॥११७॥
प्रभुर हुङ्कार, आर निशा-हरि-ध्वनि। ब्रह्माण्ड भेदये जेन हेन मत शुनि ॥११८।
शुनिञा पाषण्डि सब मरये वलिया। "निशाय ए गुला खाय मदिरा आनिया ॥११९॥
ए-गुला सकल मधुमती सिद्धि जाने। रात्रि करि मंत्र पढ़ि पञ्च कन्या आने' ॥१२०॥
चारि-प्रहर निशि—निद्रा जाइते ना पाइ। 'बोल बोल' हुँ हुँकार शुनिये सदाइ" ॥१२१॥
वलिया मरये जत पाषण्डीर गण। आनन्दे कीर्त्तन करे श्रीशची नन्दन ॥१२२॥

---

व्यर्थ ही जावे ॥ १०६ ॥ "आज से सब यह नेम कर लो कि रात्रि काल में सब मङ्गलमय कीर्त्तन किया करेंगे ॥ १०७ ॥ मैं भी सब भक्त जनों के साथ संकीर्तन करके भक्तस्वरूपिणी गङ्गा में मज्जन किया करूंगा ॥ १०८ ॥ "तुम लोग परमार्थ के लिये हो, और तुम सबों का प्राण धन श्रीकृष्ण नाम है अतएव श्रीकृष्ण नाम सबको सुनाओ—सुन २ कर जगत् का उद्धार होवे ॥ १०९ ॥ यह मङ्गल प्रस्ताव सुन कर सब वैष्णवों को बड़ा उल्लास हुआ। इस प्रकार श्री महाप्रभु ने रात्रि में नित्य-संकीर्त्तन—विलास आरम्भ किया ॥ ११० ॥ अब तो प्रति रात्रि श्रीवास के घर कीर्त्तन होने लगा। किसी २ दिन आचार्य चन्द्रशेखर के घर भी होता था ॥ १११ ॥ श्री नित्यानन्द, श्रीगदाधर, श्रीअद्वैत, श्रीवास, विद्या निधि, मुरारि, हिरण्य, हरिदास, गङ्गादास, वनमाली, विजय, नन्दनाचार्य, जगदानन्द, बुद्धिमन्त खान, नारायन, काशीश्वर, वासुदेव, राम, गरुड़ाइ, गोविन्द, गोविंदानन्द, गोपीनाथ, जगदीश, श्रीमान, श्रीधर, सदाशिव, वक्रेश्वर, श्रीगर्भ, शुक्लाम्बर, ब्रह्मानन्द, पुरुषोत्तम, संजय, आदि सब वहाँ कीर्त्तन में होते थे। श्री चैतन्यचन्द्र के अनन्त भृत्य हैं—मैं तो थोड़ों के ही नाम जानता हूँ ॥ ११२ । ११६ ॥ सभी प्रभु के नृत्य में साथ रहते थे। वहाँ पार्षदों के अतिरिक्त और कोई नहीं रहता था ॥ ११७ ॥ एक तो प्रभु की हुँकार ध्वनि, दूसरी रात्रि के समय सम्मिलित हरि-ध्वनि—ये दोनों मिल करके ऐसा घन घोर शब्द होता था मानो तो वह ब्रह्माण्ड भेदन कर रहा हो। ११८ ॥ इसे सुन २ कर पाखण्डी लोग बक् झक् करके मरने लगे। ( कोई कहता ) अरे ! ये सब लोग रात में मदिरा लाकर पीते हैं ॥ ११९ ॥ कोई कहता—"इन्हें मधुमती देवी की सिद्धि है—उस के प्रभाव से रात्रि में मंत्र पढ़कर पंच कन्याओं को ले आते हैं" ॥ १२० ॥ कोई कहता—"हम चार पहर रात सोने ही नहीं पाते है, बस "बोलो २" और हुहुँकार ही रोज रात भर सुना करते हैं" ॥ १२१ ॥ इस प्रकार के पाखण्डी लोग बकझक करके मरते थे परन्तु श्री शचीनन्दन अपने आनन्द में कीर्त्तन किया

शुनिले कीर्त्तन मात्र प्रभुर शरीरे। बाह्य नाहि थाके, पड़े पृथिवी-उपरे ॥१२३॥
हेन से आछाड़ प्रभु पड़ेन निर्भर। पृथ्वी हय खण्ड खण्ड सभे पाय डर ॥१२४॥
से कोमल-शरीरे आछाड़ बड़ देखि। 'गोविन्द' स्मरये आइ बुजि दुइ आँखि ॥१२५॥
प्रभ से आछाड़ खाय वैष्णव-आवेशे। तथापिह आइ दुःख पाय स्नेह वशे ॥१२६॥
आछाड़ेर आइ ना जानेन प्रतिकार। एइ बोल बोले काकु करिया अपार ॥१२७॥
"कृपा कर' कृष्ण ! मोरे देह' एइ वर। से समय आछाड़ खायेन विश्वम्भर ॥१२८॥
मुजि जेन ताहा नाहि जानों से समय। हेन कृपाकर' मोरे कृष्ण महाशय ॥१२९॥
यद्यपिह परानन्दे ताँर नाहि दुःख। तथापिह ना जानिले मोर बड़ सुख" ॥१३०॥
आइर चित्तेर इच्छा जानि गौरचन्द्र। सेइ मत ताहारे दिलेन परानन्द ॥१३१॥
जत क्षण प्रभु करे हरि सङ्कीर्त्तन। आइर ना थाके बाह्य मात्र ततक्षण ॥१३२॥
प्रभुर आनन्द नृत्ये नाहि अवसर। रात्रि दिने वेढि सब गाय अनुचर ॥१३३॥
कोन दिन प्रभुर मन्दिरे भक्त गण। सभेइ गायेन, नाचे श्रीशचीनन्दन ॥१३४॥
कखन ईश्वर भावे प्रभु-प्रकाश। कखन रोदन करे बोले "मुञिदास" ॥१३५॥
चित्त दिया शुन भाइ ! प्रभुर विकार। अनन्त-ब्रह्माण्डे सम नाहिक जाहार ॥१३६॥
जे मते करेन नृत्य प्रभु गौरचन्द्र। से मते से महानन्दे गाय भक्त वृन्द ॥१३७॥
श्रीहरि वासरे हरि-कीर्त्तन विधान। नृत्य आरम्भिला प्रभु जगतेर प्राण ॥१३८॥

---

करते थे ॥ १२२ ॥ कीर्त्तन सुनने मात्र से ही, प्रभु की सुध-बुध जाती रहती है और वे अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ते हैं ॥ १२३ ॥ प्रभु बेखटके इतने जोर से पछाड़ खाते हैं कि सभी डर जाते हैं कि कहीं पृथ्वी के टुकड़े २ न हो जायँ ॥ १२४ ॥ उस कोमल शरीर पर इतनी पछाड़े पड़ती देख कर माता शची दोनों आँखें बन्द कर लेती हैं और "गोविन्द २" कहने लगती हैं ॥ १२५ ॥ प्रभु तो भक्ति भाव के आवेश में आनन्द की पछाड़े खाते हैं तथापि स्नेह वश शची मा बड़ा दुःख पाती हैं ॥ १२६ ॥ माता उन पछाड़ों को रोकने का उपाय नहीं जानती हैं अतएव प्रभु से अपार अनुनय-विनय करती हुई यही कहती हैं कि ॥ १२७॥ "हे कृष्ण ! मेरे ऊपर कृपा करो और यही वर दो कि 'जिस समय मेरा विश्वम्भर पछाड़ खाय, उस समय मुझे उसके गिरने का पता ही न चले'—बस इतनी कृपा करो हे महान् हृदय वाले कृष्ण प्रभो ! यद्यपि उसे तो, परमानन्द में डूबे रहने के कारण, कोई दुःख नहीं होता, परन्तु फिर भी मैं उसके गिरने को न जान पाऊँ तो बड़ा सुख मानूँ ॥ १२८ । १३० ॥ माता के चित्त की ऐसी इच्छा को जानकर प्रभु गौरचन्द्र ने उनको उसी प्रकार का परमानन्द दिया अब तो जितने समय तक प्रभु हरि संकीर्त्तन करते हैं उतने समय तक माता को बाहर की कुछ सुध-बुध नहीं रहती है ॥ १३१ ॥ १३२ ॥ प्रभु को आनन्दमय कीर्त्तन नृत्य से कभी अवकाश ही नहीं है। बस रात दिन भक्त लोग उनको घेर कर गाते—नाचते रहते हैं ॥ १३३ ॥ किसी दिन प्रभु के घर ही भक्त लोग सब गाते हैं और श्री शचीनन्दन नाचते हैं ॥ १३४ ॥ कभी ईश्वर भाव में प्रभु का प्रकाश होता है तो कभी रोते हैं और "मैं दास हूँ" कहते हैं ॥ १३५ ॥ भाइयो ! प्रभु के श्रीअंग में जो प्रेम-भाव के सात्त्विक विकार प्रकट होते हैं, जिसकी समता अनन्त ब्रह्माण्डों में नहीं है—उसको ध्यान पूर्वक सुनो ॥ १३६ ॥ जैसे २ प्रभु गौरचन्द्र नृत्य करते हैं भक्त वृन्द वैसे २ ही महान् आनन्द पूर्वक गाते हैं ॥ १३७ ॥ श्री एकादशी के दिन हरि-संकीर्त्तन का विधान है। जगज्जीवन प्रभु ने भी इस दिन से संकीर्त्तन नृत्य आरम्भ किया ॥ १३८ ॥ पुण्यशाली श्रीवास पंडित के आंगन में उसका शुभ—आरम्भ हुआ और

ऊष काल हैते नृत्य करे विश्वम्भर। जूथ जूथ हैल जत गायन सुन्दर ॥१४०॥
श्रीवास पण्डित लैया एक सम्प्रदाय। मुकुन्द लइया आर जन कथो गाय ॥१४१॥
लइया गोविन्द दत्त आर कथो जन गौरचन्द्र नृत्ये सभे करेन कीर्त्तन। १४२॥
धरिया बुलेन नित्यानन्द महाबली। अलक्षिते अद्वैत लयेन पद धूलि ॥१४३॥
गदाधर-आदि जत सजल-नयने। आनन्दे विह्वल हैला प्रभुर कीर्त्तने ॥१४४॥
शुनह चल्लिश-पद प्रभुर कीर्त्तन। जे विकारे नाचे प्रभु जगत्-जीवन ॥१४५॥
भाटियारी राग—चौदिगे गोविन्द ध्वनि, शचीरनन्दन नाचे रङ्गे।
आनन्दे विह्वल हइला सब पारिषद सङ्गे ॥१४६॥
जय जय हरि राम राम राम राम। प्रभु बेढ़ि भक्त गण गाय हरि नाम ॥ ध्रु० ॥१४७॥
जखन कान्दये प्रभु—प्रहरेक कान्दे। लोटाय भूमिते केश, ताहा नाहि वान्धे ॥१४८॥
से क्रन्दन देखि हेन कोन् काष्ठ आछे। ना पड़े विह्वल हैया से प्रभुर पाछे ॥१४९॥
जखने हासये प्रभु महा-अट्टहास। सेइ हय प्रहरेक आनन्द-विलास ॥१५०॥
दास्य भावे प्रभु निज महिमा ना जाने। 'जिनिलुँ जिनिलुँ' वोले उठे घने घने ॥१५१॥
क्षणे क्षणे आपने गायइ उच्च ध्वनि। ब्रह्माण्ड भेदये येन हेन मत शुनि ॥१५२॥
क्षणे क्षणे हय अङ्ग ब्रह्माण्डेर भर। धरिते समर्थ केहो नहे अनुचर ॥१५३॥

---

"गोपाल गोविन्द" कीर्त्तन की ध्वनि गूँज उठी ॥ १३९ ॥ (एकादशी को) उषा काल से ही प्रभु विश्वम्भर नृत्य आरम्भ कर दिया और सुन्दर कीर्त्तनियों की पृथक् २ मण्डलियां बन गयीं ॥ १४० ॥ एक मण्डली श्रीवास पण्डित की बनी, कुछ भक्त लोगों मुकुन्ददत्त को लेकर गाने लगे ॥ १४१ ॥ कुछ लोग गोविन्ददत्त को लेकर कीर्त्तन करने लगे परन्तु श्री गौरचन्द्र के नृत्य के समय तो सब भक्त लोग मिल कर कीर्त्तन करते हैं ॥ १४२ ॥ महाबली नित्यानन्द जी प्रभु के पीछे २ उनको पकड़ते—सम्हालते हुए फिरते है और अद्वैताचार्य जी तो प्रभु की आँखें बचा कर चुप २ के उनकी पद रज ले लेते हैं ॥ १४३ ॥ गदाधर आदि भक्त जन प्रभु के कीर्त्तन नृत्य में नेत्रों से प्रेमाश्रुजल बहाते हुए आनन्द में विह्वल हो रहे हैं ॥१४४॥ अब चालीस पदों में प्रभु का कीर्त्तन सुनो। जिन अद्भुत प्रेम विकारों से युक्त हो करके जगत्-जीवन प्रभु ने नृत्य किया है उनका इन पदों में कुछ वर्णन है ॥ १४५ ॥ चारों ओर "गोविन्द" ध्वनि हो रही है, और शचीनन्दन गौर भक्ति रङ्ग में भरे हुए नृत्य कर रहे हैं ॥ १४६ ॥ प्रभु को घेर कर भक्त गण "जय जय हरि राम, राम राम राम" आदि हरि नाम कीर्त्तन कर रहे हैं ॥ १४७ ॥ जिस समय प्रभु रोना आरम्भ करते हैं तो पहर भर तक रोते ही रहते हैं—भूमि पर केश बिखर जाते हैं, पर उन्हें बाँधते नहीं है ॥ १४८ ॥ उनके उस रोने को देख कर ऐसा कौन काष्ठ-हृदय वाला होगा जो विह्वल होकर प्रभु के पीछे न गिर पड़े ॥ १४९ ॥ और जब प्रभु हँसते हैं तो बड़े जोर से ठहाके मार कर हँसते हैं—यह आनन्द विलास भी पहर २ तक चलता है। कभी दास भाव में भर कर अपनी महिमा को भूल जाते हैं और बार २ "जीत लिया," "जीत लिया" कह उठते हैं ॥ १५० ॥ १५१ ॥ कभी अपने आप बड़े ऊँचे सुर से गाने लगते हैं—वह ध्वनि ऐसी सुनायी देती है कि मानो तो ब्रह्माण्ड को फोड़ती भई चली जा रही हो। और कभी २ आपका श्रीअंग ब्रह्माण्ड जैसा भारी हो जाता है—जिसे पकड़ रखने की सामर्थ्य किसी अनुचर में नहीं होती है ॥ १५२ ॥ ॥ १५३ ॥ कभी क्षण भर में श्रीअंग रूई से भी अति हलका हो जाता है और तब बड़े आनन्द से कन्धे पर

क्षणे हय तुला हैते अत्यन्त पातल। हरिषे करिया कान्धे बुलये सकल ॥१५४॥
प्रभुरे करिया कान्धे भागवत गण। पूर्णानन्द हइ करे अङ्गन भ्रमण ॥१५५॥
जखने वा हय प्रभु आनन्दे मूर्च्छित। कर्ण मूले सभे 'हरि' बोले अति भीत ॥१५६॥
क्षणे क्षणे सर्व-अङ्गे हय महा कम्प। महा-शीते बाजे जेन बाल केर दन्त ॥१५७॥
क्षणे क्षणे महा स्वेद हय कलेवरे। मूर्त्ति मती गङ्गा जेन आइला शरीरे ॥१५८॥
कखनो वा हय अङ्ग ज्वलन्त अनल। दिते मात्र मलयज शुखाय सकल ॥१५९॥
क्षणे क्षणे अद्भुत वहे महा श्वास। सम्मुख छाड़िया सभे हय एक पाश ॥१६०॥
क्षणे जाय सभार चरण धरि बारे। पलाय वैष्णव गण चारि दिगे डरे ॥१६१॥
क्षणे नित्यानन्द-अङ्गे पृष्ठ दिया बैसे। चरण तुलिया सभाकारे चा'हि हासे ॥१६२॥
बुझिया इङ्गित सब भागवत गण। लुटये चरण-धूलि-अपूर्व रतन ॥१६३॥
आचार्य गोसाञि बोले "आरे आरे चोरा। भाङ्गिल सकल तोर भारि भूरि मोरा" ॥१६४॥
महानन्दे विश्वम्भर गड़ा गड़ि जाय। चारि दिगे भक्त गण कृष्ण गुण गाय ॥१६५॥
जखन उद्दण्ड नाचे प्रभु विश्वम्भर। पृथिवी कम्पित हय, सभे पाय डर ॥१६६॥
कखनो वा मधुर नाचये विश्वम्भर। जेन देखि नन्देर नन्दन नटवर ॥१६७॥
कखनो वा करे कोटि-सिंहेर हुङ्कार। कर्ण-रक्षा-हेतु—सबे अनुग्रह ताँर ॥१६८॥
पृथिवीर आलग हइया क्षणे जाय। केहो देखे, केहो देखि बारे नाहि पाय ॥१६९॥
भावावेशे पाकल-लोचने जारे चा'य। महा त्रास पाय्या, सेइ हासिया पलाय ॥१७०॥

---

उठा कर भक्त लोग सब घूमते हैं ॥ भक्त लोग प्रभु को कन्धे पर उठा कर आनन्द में पूर्ण होकर आंगन में नाचते फिरते हैं ॥ १५४ ॥ १५५ ॥ जब प्रभु आनन्द में मूर्च्छित हो जाते हैं तो अति भयभीत होकर सब आप के कर्णमूल में 'हरि हरि' कहते हैं ॥ १५६ ॥ कभी क्षण २ में आपके सर्वाङ्ग में महाकम्प होता है उस समय आप के अंग २ ऐसे थर थर हिलते हैं जैसे अत्यन्त शीत बालक के दाँत बजते हैं ॥ १५७ ॥ क्षण २ में आप के शरीर से बड़ा भारी पसीना बहने लगता है—मानों तो शरीर में मूर्तिमयी गङ्गा ही आ गई हों ॥ और कभी शरीर धकधकाती हुई अग्नि के समान हो जाता है—उस पर चन्दन का लेप करते ही करते में सूख जाता है ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ क्षण २ में अद्भुत लम्बे २ श्वास निकलने लगते हैं—उस समय सामने से हट कर सब कोई बगल में हो जाते हैं ॥ फिर कभी सब भक्तों के चरणों को पकड़ने के लिये बढ़ते हैं तो भक्त लोग डर के मारे इधर उधर चारों तरफ भाग जाते हैं ॥ १६० ॥ १६१ ॥ कभी श्रीनित्यानन्द के अङ्ग से पीठ लगा कर बैठते हैं और अपने चरणों को उठा कर सबकी ओर देखते हुए हँसते हैं ॥ तब तो प्रभु का इशारा समझ करके सब भक्त लोग श्री चरणरज रूपी अपूर्व रत्न को लूटने लगते हैं ॥ १६२ ॥ १६३ ॥ तब श्री अद्वैताचार्य गुसांई कहते हैं कि—"अरे ओ चोर ! तेरी सारी चालाकी का भण्डा मैंने फोड़ दिया" ॥ श्री विश्वम्भर प्रभु तो महा आनन्द में भूमि पर लोट पोट हो हो कर पड़ते हैं और चारों ओर भक्त लोग कृष्ण-गुण-गान करते हैं ॥ १६४ ॥ १६५ ॥ जब प्रभु विश्वम्भर उद्दण्ड नृत्य करते हैं तो पृथ्वी काँप उठती है और भक्त सब डर जाते हैं ॥ और कभी २ विश्वम्भर ऐसा मधुर नृत्य करते हैं कि देखने पर नटवर नन्दनन्दन जैसे ही लगते हैं ॥ १६६ ॥ १६७ ॥ कभी करोड़ों सिंह की जैसी हुँकार करते हैं—उससे कान फट नहीं जाते हैं, इसे केवल उनकी कृपा ही समझो ॥ कभी पृथ्वी से ऊपर में उठ जाते हैं—उस समय कोई तो उन्हें देख पाता है, और कोई नहीं देख पाता है ॥ १६८ ॥ १६९ ॥ भावावेश से घूर्ण-

कृष्ण आवेशे चञ्चल हइया विश्वम्भर। नाचये विह्वल हइ, नाहि परापर ॥१७१॥
भावावेशे एक बार धरे जार पाय। आर बार पुन तार उठये माथाय ॥१७२॥
क्षणे जार गला धरि करये क्रन्दन। क्षणेके ताहार कान्धे करे आरोहण ॥१७३॥
क्षणे हय बाल्य भावे परम-चञ्चल। मुखे वाद्य बाय जेन छाओयाल-सकल ॥१७४॥
चरण नाचये क्षणे खल खल हासे। जानु गति चले क्षणे बालक-आवेशे ॥१७५॥
क्षणे क्षणे हय भाव—त्रिभङ्ग-सुन्दर। प्रहरेक सेइ मत आछे निरन्तर ॥१७६॥
क्षणे ध्यान करे कर मुरलीर छन्द। साक्षात् देखिये जेन वृन्दावन चन्द्र। १७७॥
बाह्य पाइ दास्य भावे करये क्रन्दन। दन्ते तृण करि चाहे चरण-सेवन ॥१७८॥
चक्राकृति हइ क्षणे प्रहरेक फिरे। आपन चरण गिया लागे निज-शिरे ॥१७९॥
जखन जे भाव हय, से-इ अद्भुत। निज नामानन्दे नाचे जगन्नाथ सुत ॥१८०॥
घन घन हिक्का हय, सर्व अङ्ग नड़े। ना पारे हइते स्थिर पृथिवी ते पड़े ॥१८१॥
गौर वर्ण देह- क्षणे नाना वर्ण देखि। क्षणे क्षणे दुइ गुण हय दुइ आँखि ॥१८२॥
अलौकिक हैया प्रभु वैष्णव-आवेशे। जे वलिते जोग्य नहे ताहा प्रभु भाषे ॥१८३॥
पूर्वे जे वैष्णव देखि प्रभु करि बोले। 'ए बेटा आमार दास' धरे तार चूले ॥१८४॥
पूर्वे जे वैष्णव देखि धरये चरणे। तार वक्षे उठि करे चरण-अर्पणे ॥१८५॥
प्रभुर आनन्द देखि भागवत गण। अन्योऽन्ये गला धरि करये क्रन्दन ॥१८६॥

---

यमान लोचनों से जिसकी ओर देख देते हैं, वही महा भयभीत होकर हँसता हुआ भाग जाता है ॥ श्रीकृष्ण आवेश में चंचल विह्वल होकर विश्वम्भर प्रभु नृत्य करते हैं अपने पराये का कुछ भी मान नहीं रहता है ॥ १७० ॥ १७१ ॥ भावावेश में एक बार जिस का पाँव पकड़ते हैं, दूसरी बार उसके सिर पर चढ़ बैठते है ॥ अभी जिस के गले से लिपट कर रोते हैं, क्षण में उसी के कन्धे पर चढ़ बैठते हैं ॥ १७२ ॥ १७३ ॥ क्षण में बाल भाव से परम चंचल हो उठते हैं और बालकों की तरह मुख से बाजा बजाने लगते हैं ॥ क्षण में चरणों को नचाते हैं और क्षण में बाल भाव में घुटने पर चलने लगते हैं ॥ १७४ ॥ १७५ ॥ क्षण २ में त्रिभंग सुन्दर का भाव आ जाता है तब तो पहर २ भर तक उसी भाव में रह जाते हैं। क्षण में हाथों से मुरली पकड़ने की मुद्रा बताते हुए ध्यान करते हैं— उस समय आप साक्षात् श्री वृन्दाबन चन्द्र जैसे दिखाई देते हैं ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ बाह्य ज्ञान हो आने पर दास भाव में रोते हैं और दाँतों में तिनका लेकर प्रभु की चरण सेवा चाहते हैं। क्षण में चक्र की भाँति पहर भर तक घूमते ही रहते हैं उस समय उनके चरण उनके सिर से जा लगते हैं ॥ १७८ ॥ १७९ ॥ जिस समय जो भाव हो आता है वही अद्भुत होता है। इस प्रकार श्री जगन्नाथ सुत अपने नाम के आनन्द में नाच रहे हैं ॥ कभी बार २ हिचकियाँ आने लगती हैं, सारे अङ्ग हिलने लगते हैं, स्थिर नहीं हो पाते और पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं ॥१८०॥१८१॥ क्षण में गोरे रंग की आपकी देह अनेक रङ्गों की दिखाई देती है। क्षण २ में दोनों आँखें दुगनी बड़ी हो जाती हैं। प्रभु वैष्णव आवेश में अलौकिक बन करके न कहने योग्य बातें भी कहने लग जाते हैं ॥ १८२ ॥ १८३ ॥ जिस वैष्णव को देख कर "प्रभु" कहकर पहले बोलते थे, आज उसी को "यह बेटा मेरा दास है" कहकर उसके बालों को पकड़ लेते हैं। और पहले जिस वैष्णव को देख कर उसके चरणों को पकड़ते थे, आज उसकी छाती पर चढ़ कर वहाँ चरण अर्पण कर देते हैं ॥ १८४ ॥ १८५ ॥ प्रभु के आनन्द को देखकर भक्त लोग एक दूसरे का गला पकड़ कर रो रहे हैं। सब के अङ्गों में श्री चन्दन और मालाएँ शोभा दे रही हैं और वे सब कृष्ण

सभार अङ्गे ते शोभे श्रीचन्दन-माला। आनन्दे गायइ कृष्ण रसे हइ भोला ॥१८७॥
मृदङ्ग मन्दिरा बाजे शङ्ख करताल। सङ्कीर्त्तन-सङ्गे सब हइल मिशाल ॥१८८॥
ब्रह्माण्डे उठिल ध्वनि पूरिया आकाश। चौदिगेर अमङ्गल जाय सब नाश ॥१८९॥
ए कोन् अद्भुत ! जार सेवकेर नृत्य। सर्व विघ्न नाश हये जगत् पवित्र ॥१९०॥
से प्रभु आपने नाचे आपनार नामे। इहार कि फल—किवा वलिव पुराणे ॥१९१॥
चतुर्दिगे श्रीहरि-मङ्गल-सङ्कीर्तन। माझे नाचे जगन्नाथ मिश्रेर नन्दन ॥१९२॥
जार नामानन्दे शिव वसन ना जाने। जार रसे नाचे शिव, से नाचे आपने ॥१९३॥
जार नामे वाल्मीक हइल तपोधन। जार नामे अजामिल पाइल मोचन ॥१९४॥
जार नाम-श्रवणे संसार-वन्ध घुचे। हेन प्रभु अवतीर कलि जुगे नाचे ॥१९५॥
जार नाम लइ शुक नारद वेडाय। सहस्र वदन प्रभु जार गुण गाय ॥१९६॥
सर्व-महा प्रायश्चित जे प्रभुर नाम। से प्रभु नाचये, देखे जत भाग्यवान ॥१९७॥
हइल पापिष्ठ, जन्म तखने ना हैल। हेन महा महोत्सव देखिते ना पाइल ॥१९८॥
कलि जुगे आशंसिल श्रीभागवते। एइ अभिप्राय तार जानि व्यास सुते ॥१९९॥
निजानन्दे नाचे महाप्रभु विश्वम्भर। चरणेर तालि शुनि अति मनोहर ॥२००॥
भावावेशे माला नाहि रहये गलाय। छिण्डिया पड़ये गिया भकतेर गाय ॥२०१॥
कति गेल गरुड़ेर आरोहण-सुख। कति गेल शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-रूप ॥२०२॥
कोथाय रहिल सुख अनन्त-शयन। दास्य भावे लूटि धूलि करये रोदन ॥२०३॥

---

रस में विभोर होकर बड़े आनन्द में गा रहे हैं ॥ १८६ ॥ १८७ ॥ मृदंग, मजीरा, शङ्ख और करताल बज रहे हैं। इनकी ध्वनि संकीर्त्तन के साथ मिल रही है। ऐसी वह सम्मिलित ध्वनि ब्रह्माण्ड में उठी कि उससे आकाश परिपूर्ण हो कर चारों ओर अमंगल सब नाश होने लगा ॥ १८८ ॥ १८९ ॥ यह कौन सी अद्भुत बात है। जिनके सेवकों के नृत्य से ही सब विघ्न नष्ट होकर जगत् पवित्र हो जाता है। वे ही प्रभु अपने नाम से आप ही नाच रहे हैं—इसका क्या फल है मैं इस पुराण ( ग्रंथ ) में भला क्या लिखूँ ॥ १९० ॥ ॥ १९१ ॥ चारों ओर मङ्गलमय श्रीहरि संकीर्त्तन हो रहा है और मध्य में श्री जगन्नाथ मिश्र नन्दन नृत्य कर रहे हैं। जिनके नाम के आनन्द में शिवजी को अपने वस्त्रों का ज्ञान नहीं रहता है जिनके रस में मतवाले हो शिव जी नाचने हैं वे ही प्रभु ( आज ) स्वयं नाच रहे हैं ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ जिनके नाम से बाल्मीकि तपस्वी हुए और अजामिल मुक्त हुए, जिनके नाम-श्रवण से संसार बन्धन नष्ट हो जाते हैं, ऐसे प्रभु स्वयं अवतीर्ण होकर कलियुग में नृत्य कर रहे हैं ॥ १९४ ॥ १९५ ॥ जिनके नामों को लेते हुए शुक नारद विचरण किया करते हैं, सहस्र वदन शेष जी जिनका गुण—गान करते हैं, जिन प्रभु का नाम सर्व श्रेष्ठ प्रायश्चित्त है वे ही प्रभु तो स्वयं नृत्य कर रहे हैं और भाग्यवान् जन देख रहे हैं ॥ १९६ ॥ १९७ ॥ हाय ! इस पापिष्ठ का जन्म तब न हुआ, जो ऐसे महा महोत्सव के दर्शन न कर पाया। उसके इस अभिप्राय को जान करके ही श्री शुकदेव जी ने श्री मद्भागवत में कलियुग की प्रशंसा की है ॥ १९८ ॥ १९९ ॥ महाप्रभु विश्वम्भर अपने निजानन्द में नाच रहे हैं। आप के चरणों का ताल सुनने में बड़ा ही मनोहर है, भावावेश में माला आपके गले में नहीं रहती है—वह टूट कर भक्तों के ऊपर जा पड़ती है ॥ २०० ॥ २०१ ॥ गरुड़ की सवारी का वह सुख आज कहाँ चला गया ! शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धारी रूप भी न जाने कहाँ चला गया !! शेष-शय्या का सुख भी न जाने कहाँ रह गया !!! आज तो प्रभु दास भाव में भक्तों के चरणों की

कोथाय रहिल वैकुण्ठेरे सुख आर। दास्य सुखे सब सुख पासरिल आर ॥२०४॥
कति गेल रमार बदन-दृष्टि-सुख। विरहि हइया कान्दे तुलि बाहु मुख ॥२०५॥
शङ्कर-नारद आदि जार दास्य पाइया। सर्वैश्वर्य तिरस्करि भ्रमे' दास हैया ॥२०६॥
सेइ प्रभु आपनेइ दन्ते तृण धरि। दास्य जोग मागे, सब सुख परि हरि ॥२०७॥
हेन दास्य जोग छाड़ि जेवा आर चाहे। अमृत छाड़िया जेन विष लागि धाये ॥२०८॥
सेवा केने भागवत पड़े वा पढ़ाय। भक्तिर प्रभाव नाहि जाहार जिह्वाय ॥२०६॥
शास्त्रेर ना जाने मर्म अध्यापना करे। गर्द्दभेर प्राय जेन शास्त्र वहि' मरे ॥२१०॥
एइ मत शास्त्र वहे, अर्थ नाहि जाने। अधम-सभाय अर्थ अधम वाखाने ॥२११॥
वेदे भागवते कहे 'दास्य बड़ धन'। दास्य लागि रमा-अज-भवेर जतन ॥२१२॥
चैतन्येर वाक्ये जार नाहिक प्रमाण। चैतन्य नाहिक तार, किवलिब आन ॥२१३॥
दास्य भावे नाचे प्रभु श्रीगौर सुन्दर। चौदिगे कीर्त्तन ध्वनि अति मनोहर ॥२१४॥
शुनिते शुनिते क्षणे हय मूरछित। तृण करे अद्वैत तखने उप नीत ॥२१५॥
आपाद-मस्तक तृणे निछिया लइया। निज शिरे थुइ नाचे भ्रुकुटी करिया ॥२१६॥
अद्वैतेर भक्ति देखि सभार त्रास। नित्यानन्द गदाधर-दुइ जने हास ॥२१७॥
नाचे प्रभु गौरचन्द्र जगत जीवन। आवेशेर अन्त नाहि, हय घने घन ॥२१८॥
जाहा नाहि देखि शुनि श्रीभागवते। हेन सब विकार प्रकाशे' शची सुते ॥२१६॥

---

भूल को लूटते हुए रोदन कर रहे हैं !!!! ॥ २०२ ॥ २०३ ॥ वैकुण्ठ के वे सब सुख भी न जाने कहाँ रह गये। आज प्रभु दास्य सुख में और सब सुखों को भूल गए हैं। और कहाँ गया लक्ष्मी जी के मुख कमल के देखने का वह सुख ! आज तो प्रभु बिरही बन कर भुजा और मुख को उठाए हुए रो रहे हैं ॥२०४॥२०५॥ जिनकी दासता को पाकर शंकर, नारद, आदि सब ऐश्वर्य को ठुकरा करके दास होकर विचरण करते हैं, वे ही प्रभु सब सुख को त्याग करके दाँतों में तिनका ले कर आप ही अपनी दास्य भक्ति के लिये प्रार्थना कर रहे हैं ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ ऐसी दास्य भक्ति योग को छोडकर जो और कुछ माँगते हैं, वे अमृत को छोड़ कर मानो तो विष के लिये दौड़ते हैं। जिस पुरुष की जिह्वा पर भक्ति की महिमा नहीं उसका भागवत पढ़ना और पढ़ाना किस काम का ? ॥ २०८ ॥ २०६ ॥ बिना शास्त्र का मर्म जाने जो उसे पढ़ाता है, वह गधा की भाँति शास्त्र का बोझा ढोने वाला है। इस प्रकार बिना अर्थ जाने जो शास्त्र का बोझा ढोता है, वह अधम लोगों की सभा में अर्थ भी अधम ( तुच्छ ) ही करता फिरता है ॥ २१० ॥ २११ ॥ वेद और भागवत कहते हैं कि "प्रभु की दासता परम धन है"। इस दासता के लिए लक्ष्मी, ब्रह्मा, शिवजी भी प्रयत्नशील रहते हैं। श्री चैतन्यचन्द्र के वचनों में जिसको विश्वास नहीं है, वह चैतन्यशून्य ही है—और कुछ क्या कहूँ ॥ २१२ ॥ २१३ ॥ श्री गौर सुन्दर प्रभु दास्य भाव में नृत्य कर रहे हैं और चारों ओर अति मनोहर कीर्त्तन ध्वनि हो रही है। कीर्त्तन सुनते २ प्रभु कभी मूर्च्छित हो जाते हैं तो उस समय अद्वैताचार्य जी हाथ में तृण लेते हैं ॥ २१४ ॥ २१५ ॥ और उस तृण को श्री प्रभु के मस्तक से चरण पर्यन्त घुमा कर उनकी बलिहारी जाते हैं और फिर उस तृण को अपने शिर पर रख कर नृत्य करते हैं। श्री अद्वैत प्रभु की भक्ति को देख कर और सब को तो भय होता है परन्तु नित्यानन्द और गदाधर जी—ये दो जने हँसते हैं ॥ २१६ ॥ २१७ ॥ जगत्-जीवन प्रभु गौरचन्द्र नाच रहे हैं—आवेश का अन्त नहीं है-बार २ हो रहा है। श्री मद्भागवत में भी जो प्रेमभक्ति के विकार देखने-सुनने में नहीं आते श्री शचीनन्दन में ऐसे सब विकार

क्षणे क्षणे सर्व-अङ्ग हय स्तम्भाकृति । तिलार्द्ध को नोडाइते नाहिक शकति ॥२२०॥
सेइ अङ्ग क्षणे क्षणे हेन मत हय । अस्थि मात्र नाहि जेन नवनीत मय ॥२२१॥
कखनो देखिये अङ्ग-गुण दुइ तिन । कखनो स्वभाव हैते अतिशय क्षीण ॥२२२॥
कखनो वा मत्त जेन ढुलि ढुलि जाय । हासिया दोलाय अङ्ग, आनन्द सदाय ॥२२३॥
सकल-वैष्णव प्रभु देखि एके एके । भावा वेशे पूर्व-नाम धरि-धरि डाके ॥२२४॥
'हल धर, शिव, शुक, नारद, प्रह्लाद । रमा, अज, उद्धव' वलिया करे नाद ॥२२५॥
एइ मत सभा' देखि नाना मत वोले । जेवा जेइ वस्तु ताहा प्रकाशये छले ॥२२६॥
अपरूप कृष्णा वेश, अपरूप नृत्य । आनन्दे नयन भरि देखे सब भृत्य ॥२२७॥
पूर्वे जेइ साम्भाइल वाड़ोर भितरे । से-इ मात्र देखे, अन्ये प्रवेशिते नारे ॥२२८॥
प्रभुर आज्ञाय दृढ़ लागि याछे द्वार । प्रवेशिते नारे लोक सब नदियार ॥२२९॥
धाइया आइसे लोक कीर्त्तन शुनिया । प्रवेशिते नारे लोक द्वारे रहे गिया ॥२३०॥
सहस्र सहस्र लोक कलख करे । "कीर्त्तन देखिव-झाट घुचाह दुयारे" ॥२३१॥
जतेक वैष्णव सब कीर्त्तनेर रसे । ना जाने आपन देह, अन्य वोल किसे ॥२३२॥
जतेक पाषण्डि सब ना पाइया द्वार । वाहिरे थाकिया मन्द वोलये अपार ॥२३३॥
केहो बोले "ए गुला सकल नाकि खाय । चिनिले पाइवे लाज-द्वार ना घुचाय" ॥२३४॥

प्रकाशित हो रहे हैं ॥ २१८ ॥ २१९ ॥ कभी तो क्षण २ में प्रभु के समस्त अंग अकड़ कर स्तम्भ की भाँति अचल हो जाते हैं–उनमें तिलभर भी शक्ति नहीं रहती है । फिर वे ही अंग क्षण २ में ऐसे हो जाते हैं मानों तो अस्थि कहीं है ही नहीं, केवल मक्खन ही मक्खन है ॥ २२० ॥ २२१ ॥ कभी तो आप के अङ्ग दुगने–तिगुने लम्बे दिखायी देते हैं कभी स्वभाविकता से कहीं अधिक दुबले-पतले हो जाते हैं । कभी मतवाले की तरह झूमते झामते हुए चलते हैं कभी हँस २ कर अपने अंगों को झुलाते हैं और आनन्द में तो सदा ही चूर रहते हैं ॥ २२२ ॥ २२३ ॥ कभी समस्त वैष्णवों की ओर देखते हैं और भावावेश में भरे हुए उनमें से एक एक को उसका पूर्व काल का नाम ले लेकर बुलाते हैं । किसी को बलराम किसी को शिव, तो किसी को शुक, नारद, प्रह्लाद, लक्ष्मी, ब्रह्मा, उद्धव, आदि पूर्व नामों से पुकारते हैं ॥ २२४ ॥ २२५ ॥ इस प्रकार सब भक्तों को देख २ कर नाना प्रकार की बातें करते हैं । और बातों २ में ही वे जिस भक्त का जो स्वरूप है, उसे गुप–चुप प्रकट भी करते जाते हैं । प्रभु का यह कृष्णावेश निराला है यह नृत्य निराला है–सब भक्त वृन्द नयन भर २ कर आनन्द में दर्शन कर रहे हैं ॥ २२६ ॥ २२७ ॥ यह दर्शन केवल वे ही कर रहे हैं, कि जिन्हें पहले से ही घर के भीतर प्रवेश करा लिया गया है । पीछे से और कोई वहाँ प्रवेश नहीं कर पाते हैं ॥ प्रभु की आज्ञा से द्वार मजबूती से बन्द कर दिया गया है । इसी से नदिया के आम लोग कोई वहाँ प्रवेश नहीं कर सकते हैं ॥ २२८ ॥ २२९ ॥ आते तो हैं नदिया के लोग–कीर्त्तन सुन २ कर दौड़े हुए परन्तु घुस नहीं पाते हैं–द्वार पर ही खड़े रह जाते हैं ॥ बाहर खड़े वे हजारों लोग कोलाहल मचाते हैं और कहते हैं कि "जल्दी खोलो किवाड़–हम कीर्त्तन देखेंगे" ॥ २३० ॥ २३१ ॥ इधर घर के भीतर जितने भी वैष्णव लोग हैं, वे सब कीर्त्तन के रस में अपनी देह तक से बेसुध हैं, फिर और बातों की सुध कौन करे ! तब तो किवाड़ न खुलने पर पाखण्डी लोग बाहर खड़े २ बेशुमार खरी खोटी बकने लगते हैं ॥ २३२–॥ २३३ ॥ कोई कहता है ' ये लोग सब छिप कर कुछ खाते हैं–'कोई देख लेगा तो लज्जित होना पड़ेगा'–इस विचार से ये द्वार नहीं खोलते हैं" दूसरा कहता है ठीक-ठीक यही बात है कुछ खाते पीते न होते तो

केहो बोले "सत्य सत्य एइ से उत्तर। नहिलेके मते डाके ए अष्ट प्रहर" ॥२३५॥
केहो बोले "अरे भाइ! मदिरा आनिया। सभे रात्रि करि खाय लोक लुकाइया" ॥२३६॥
केहो बोले "भाल छिल निमाञि पण्डित। तार केने नारायण कैल हेन चित ॥२३७॥
केहो बोले "हेन बुझि पूर्वेर संस्कार"। केहो बोले "सङ्ग दोष हइल ताहार ॥२३८॥
नियामक बाप नाहि, ताते आछे वाइ। एत दिने सङ्ग दोषे ठेकिल निमाइ" ॥२३९॥
केहो बोले "पासरिल सब अध्ययन। मासेक ना चाहिले हय 'अवैया करण'" ॥२४०॥
केहो बोले "अरे भाइ! सब हेतु पाइल। द्वार दिया कीर्त्तनेर सन्दर्भ जानिल ॥२४१॥
रात्रिकरिमंत्रपढ़ि पञ्च-कन्या आने। नानाविधि द्रव्य आइसे ता' सभारसने ॥ २४२ ॥
भक्ष्य,भोज्य,गन्ध,माल्य,विविध वसन। खाइया ता'सभा'सङ्गे विविधरमन ॥ २४३ ॥
भिन्न लोक देखिले—ना हय तार सङ्ग। एतेके दुयारदिया करे नाना—रङ्ग" ॥ २४४ ॥
केहो बोले" कालिहउ,जाइब देयाने। काँकालि बान्धिया सब निब जनेजने ॥२४५॥
जेनाछिल राज्यदेशे आमिञा कीर्त्तन। दुर्भिक्ष हइल—सब गेल चिरन्तन ॥२४६॥
देवे हरि लेक वृष्टि—जानिल निश्चय। धान्य मरि गेल कड़ि उत्पन्न ना हय ॥२४७॥
थाकि याति श्रीवासेर कालि करों कार्य्य। कालि वा कि करौं देख अद्वैत आचार्य ॥२४८॥
कोथा हैते आसि नित्यानन्द-अवधूत। श्रीवासेर घरे थाकि करे एत रूप" ॥२४९॥
एइ मते नाना रूपे देखाये न भय। आनन्दे वैष्णव सब किछु ना शुनय ॥२५०॥

---

आठों पहर ऐसे कैसे चिल्ला सकते ? ॥ २३४ ॥ २३५ ॥ कोई कहता है—"अरे भाई ! ये लोग मदिरा लाते हैं, और रात में लोगों से छिपा कर यहाँ सब पीते हैं ॥ २३६ ॥ कोई कहता—"निमाई पण्डित तो भला-मानस था। नारायण ने उसका ऐसा चित्त कैसे कर दिया" ॥ २३७ ॥ तब कोई तो कहता—"यह तो पूर्व का संस्कार मालूम होता है"। और कोई कहता—"नहीं, यह संग-दोष है ॥ २३८ ॥ एक तो शासन करने वाला बाप नहीं है, उसके ऊपर वायु का रोग, और फिर सङ्ग-दोष ! बेचारा निमाई इतने दिन इनके संग-दोष से लुट गया !" ॥ २३९ ॥ कोई कहता "यह तो अध्ययन भी सब भूल गया। अरे ! महीना दिन अभ्यास छूट जाय तो व्याकरण भूल कर "अवैयाकरण" बन जाता है ॥ २४० ॥ कोई कहता—"अरे भाई ! मैं जान गया सब कारण। दरवाजा बन्द करके कीर्तन करने का गूढ़ रहस्य मैं जान गया" ॥ २४१ ॥ "( सुनो ) ये लोग रात में मंत्र पढ़ कर पाँच कन्याओं को ले आते हैं। उनके साथ ही अनेक प्रकार की सामग्री भी लाते हैं भक्ष्य-भोज्यादि वस्तुओं को उन्हें खिला कर आप खाते हैं और गन्ध, माला, वस्त्र उनको धारण करा कर, उनके साथ अनेक प्रकार से रमण करते हैं ॥ २४२ ॥ २४३ ॥ "बाहर के लोग देख लेगें, तो उनका सङ्ग नहीं बनेगा—इस विचार से दरवाजा बन्द करके बड़े २ मौज लूटते हैं" ॥ २४४ ॥ कोई कहता "कल तो होने दो, दिवान के पास जाकर सब कह दूँगा और एक २ की कमर कसवा कर वहाँ ले जाऊँगा" ॥ २४५ ॥ "जो कीर्त्तन इस राज्य में, देश भर में, कहीं नहीं था, उसको ला करके अकाल पैदा कर दिया। पुरानी बातें सब चौपट हो गईं ॥ २४६ ॥ ',इसी कारण हम यह निश्चय जान गये, कि दैव ने वर्षा हर ली है जिससे धान की फसल सब नष्ट हो गई है एक कौड़ी तक की भी उपज नहीं हो रही है ॥ २४७ ॥ "चोरों की धरोहर को सम्हालने वाले श्रीवास को कल मैं ठीक कर दूँगा—और उस अद्वैताचार्य को भी देखना, कल क्या दशा करता हूँ ॥ २४८ ॥ "और न जाने कहाँ से एक नित्यानन्द अवधूत आकर श्रीवास के घर में रहता है। वही ये सब करतूत करा रहा है ॥ २४९ ॥ ऐसे ऐसे वे नाना प्रकार के भय

केहो बोले "ब्राह्मणेर नहे नृत्य धर्म। पढ़ियाओ ए-गुला करये हेन कर्म ॥२५१॥
केहो बोले "ए-गुला देखिते ना जुयाय। ए- गुलार सम्भाषे सकल कीर्त्ति जाय ॥२५२॥
ओ नृत्य कीर्त्तन जदि भाल लोक देखे। सेहो एइ मत हय,-देख परतेखे। २५३॥
परम-सुबुद्धि छिल निमाञि पण्डित। ए-गुलार सङ्गे तार हेन हैल चित" ॥२५४॥
केहो बोले 'आत्मा विना साक्षात् करिया। डाकिले कि कार्य हय, ना जानिल इहा ॥२५५॥
आपन शरीर-माझे आछे निरञ्जन। घरे हाराइया धन, चाय गिया वन" ॥२५६॥
केहो बोले "कौन कार्य परेरे चर्चिया। चल सभे घरे जाइ, कि कार्य देखिया ॥२५७॥
केहो वोले "ना देखिल निज कर्म दोषे। से सब सुकृति' ता' सभारे बलि किसे" ॥२५८॥
सकल पाषण्डी—तारा एक चाप हैया। 'एइ सेइ गन' हेन बुझि जाय धाय्या ॥२५९॥
"ओ कीर्त्तन ना देखिले कि हइब मन्द। शत जन वेढ़ि जेन करे महा द्वन्द ॥२६०॥
कोन् जप कोन् तप कोन् तत्त्व ज्ञान। जाहा ना देखिले करि निज कर्म ध्यान ॥२६१॥
चालू कला मुद्‌ग दधि एकत्र करिया। जाति नाश करि खाय एकत्र हइया ॥२६२॥
परि हासे आसि सभे देखिवार तरे। 'देखित पागल गुला कोन् कर्म करे' ॥२६३॥
एतेक वलिया सभे चलि लेन घरे। एक जाय, आर आसि वाजये दुयारे ॥२६४॥
पाषण्डी पाषण्डी जेइ दुइ देखा हय। गला गलि करि सब हासिया पड़य ॥२६५॥
पुन धरि लइ जाय-जेवा नाहि देखे। केहो वा निवर्त हय कारो अनुरोधे ॥२६६॥

---

दिखाते हैं, परन्तु वैष्णव लोग आनन्द में भरे हुए कुछ भी नहीं सुनते हैं ॥ २५० ॥ फिर कोई कहता—"यह नृत्य ब्राह्मणों का धर्म नहीं है। ये लोग पढ़-लिख करके भी ऐसा कर्म करते हैं ॥ २५१ ॥ कोई कहता—"अरे! इनको तो देखना भी उचित नहीं और इसके साथ बात-चीत करने से तो सारी कीर्ति ही नष्ट हो जाती है ॥ २५२ ॥ इस नृत्य-कीर्त्तन को यदि कोई भला मानष देख ले, तो वह भी ऐसा ही हो जाता है। प्रत्यक्ष देख लो न "निमाई पण्डित बड़ा सुबुद्धिमान था-पर इनकी सङ्गति से उसका चित्त भी ऐसा हो गया ॥२५३—॥ २५४ ॥ कोई कहता—"अरे ! ये इस बात को नही जानते हैं कि आत्मा का साक्षात्कार किये बिना चिल्लाने से कुछ कार्य नहीं बनता है। ॥ २५५ ॥ अपने शरीर के भीतर ही निरञ्जन पुरुष है। परन्तु ये लोग धन को घर में भूल कर वन में ढूंढते फिरते हैं ॥ २५६ ॥ कोई कहता "पराई चर्चा से हमें क्या काम ? चलो सब अपने २ घर जायँ। यह सब देखने से हमें क्या मतलब ॥ २५७॥ कोई कहता—"हम अपने दुर्भाग्य के कारण नृत्य-कीर्त्तन नहीं देख पा रहे है। वे तो सब सुकृतिशाली हैं फिर हमें उनको क्यों दोष देना चाहिए ॥ २५८ ॥ तब तो सब पाखण्डी लाग एक स्वर से कह उठते हैं—"यह भी उसी दल का है"। ऐसा कह उसे छोड़ कर दूर भाग जाते हैं ॥ २५९ ॥ "सैकड़ों आदमियों ने घेरा बना कर एक धमा चौकड़ी सी मचा रक्खी है, भला ऐसे कीर्त्तन को न देखने में क्या बुराई है ॥ २६० ॥ यह भी कोई जप है, तप है, तत्त्व ज्ञान है, कि जिसे न देख पाने पर हम अपने कर्मों का दोष समझें ॥ २६१ ॥ "ये सब लोग चाँवल, केला, मूँग, दही इत्यादि वस्तुओं को इकट्ठी करके एक साथ मिलकर खाते हैं और जाँति-पाँति का सत्यानाश करते है ॥ २६२ ॥ ऐसी २ हँसी उड़ाते हुए पाखण्डी लोग सब देखने को आते हैं कि "देखें तो ये पागल लोग करते क्या हैं" ॥ २६३ ॥ और देख भाल कर सब घर लौट जाते हैं। एक जाता हैं तो दूसरा दरवाजे पर आ भिड़ता है ॥ २६४ ॥ जब मार्ग में दो पाखण्डियों की भेंट होती है, तो परस्पर गले लग कर हँस २ के लोट पोट हो जाते हैं ॥ २६५ ॥ फिर जिसने नहीं देखा है, उसको पकड़ कर ले आते हैं और कोई २ तो

केहो बोले "भाइ ! एइ देखिल शुनिल । निमाइ पण्डित लैया पागल हइल ।।२६७।।
दुर्दुरि उठिया आछे श्रीवासेर बाड़ी । दुर्गोत्सवे जेन साड़ि देइ हुड़ा हुड़ि ।।२६८।।
'हइ हइ हाय हाय' एइ मात्र शुनि । इहा सभा' हैते हैल अपयश-वाणी ।।२६९।।
महा महा भट्टाचार्य सहस्र जथाय । हेन ढाङ्गाइत-गुला बैसे नदियाय ।।२७०।।
श्रीवास बामन एइ नदिया हइते । घर भाङ्गि कालि लैया फेलाइब सोते ।।२७१।।
ओ बामन घुचाइले ग्रामेर कुशल । अन्यथा जवने ग्राम करिबे कवल" ।।२७२।।
एइ मत पाषण्डी करये कोलाहल । तथापिह महा भाग्यवन्त से सकल ।।२७३।।
प्रभु-सङ्गे एकत्र जन्मिल एक-ग्रामे । देखिलेक शुनिलेक ए सब विधाने ।।२७४।।
चैतन्येर गण-सब मत्त कृष्ण रसे । वहिर्मुख वाक्य किछु कर्णे ना प्रवेशे ।।२७५।।
"जय कृष्ण मुरारि मुकुन्द वन माली" । अहर्निश गाय सबे हइ कुतूहली ।।२७६।।
अहर्निश भक्त सङ्गे नाचे विश्वम्भर । श्रान्ति नाहि कारो-सब सत्त्व कलेवर ।।२७७।।
'वत्सरेक' नाम मात्र, कत जुग गेल । चैतन्य-आनन्दे केहो किछु ना जानिल ।।२७८।।
जेन महा-रास-क्रीड़ा, कत जुग गेल । 'तिलार्द्ध क' हेन सब गोपिका मानिल ।।२७९।।
एइ मत अचिन्त्य कृष्णेर परकाश । इहा जाने भाग्यवन्त चैतन्येर दास ।।२८०।।
एइ मत नाचे महा प्रभु विश्वम्भर । निशि अवशेष मात्र से एक-प्रहर ।।२८१।।
शाल ग्राम-शिला-सब निज-कोले करि । उठिला चैतन्य चन्द्र खट्टार उपरि ।।२८२।।

---

किसी के कहने-सुनने पर लौट भी पड़ता है ।। २६६ ।। कोई कहता—"भाई ! हमने तो यही देखा और सुना कि निमाइ पण्डित को लेकर ये लोग पागल हो गये हैं ।। २६७ ।। "( यह कीर्त्तन की ध्वनि है या ) श्रीवास के घर में मेंढकों की टर्र २ का शोर मचा हुआ है । अथवा तो दुर्गा जी के उत्सव में "साड़ी" ( गीत गाने वाले गायक विशेष ) लोगों की होड़ मची हुई है ।। २६८ ।।"जब देखो तब बस "हा हा"—"हू हू" ही सुनाई देता है । इन लोगों ने तो वाणी को कलंकित कर डाला ! ।। २६९ ।। (बड़े आश्चर्य की बात है कि) नदिया में जहाँ सहस्र २ महा २ भट्टाचार्य हैं वहाँ ऐसे २ ढोंगी लोग भी रहते हैं ।। २७० ।। "कल इस नदिया से श्री वास बामन के घर को तोड़ फोड़ कर गङ्गा में बहा देना है ।। २७१ ।। उस बामन को भगा देने में ही गाँव का कुशल है नहीं तो इस गाँव को यवन राजा खा जायगा । २७२ ।। यद्यपि इस प्रकार से पाखंडी लोग कोलाहल मचाते हैं, तथापि वे सब महा भाग्यशाली ही हैं ।। २७३ ।। ( कारण कि ) उन्होंने प्रभु के साथ एक ही गाँव में जन्म लिया और प्रभु के इन सब चरित्रों को देखा और सुना ।। २७४ ।। इधर श्रीचैतन्य देव के गण सब कृष्ण रस में मतवाले हो रहे हैं । वहिर्मुख जनों के वाक्य कुछ भी उनके कर्णों में प्रवेश नहीं कर पाते हैं ।। २७५ ।। भक्त लोग "जय कृष्ण मुरारि मुकुन्द वनमाली" आनन्द से दिन रात गाते रहते हैं ।। २७६ ।। और विश्वम्भर देव भी रात दिन भक्तों के साथ नाचते रहते हैं । किसी को भी थकावट मालूम नहीं होती—सब की देह सत्त्वमय है ।। २७७ ।। कहने के लिए ही कीर्त्तन एक वर्ष तक हुआ परन्तु इस कीर्त्तन में कितने युग बीत गये, यह श्री चैतन्य देव के साथ आनन्द में विभोर कोई कुछ भी न जान सका ।। २७८ ।। जैसे महारास विलास में कितने ही युग बीत गए परन्तु गोपियों ने उसे आधा क्षण ही समझा ।। २७९ ।। ऐसे ही श्री कृष्ण का प्रकाश अचिन्त्य होता है—श्री चैतन्यचन्द्र के भाग्यवान् दास ही इसे जानते हैं ।। २८० ।। इस प्रकार महाप्रभु श्री विश्वम्भर नृत्य कर रहे हैं, अब केवल एक पहर रात शेष रह गई है ।। २८१ ।। इतने में श्री चैतन्यचन्द्र सब शालिग्राम शिलाओं को अपनी गोद में लेकर विष्णु–

मड़ मड़ करे खट्टा विश्वम्भर भरे । आथे व्यथे नित्यानन्द खट्टा स्पर्श करे ।।२८३।।
अनन्तेर अधिष्ठान हइल खट्टाय । ना भाङ्गिल खट्टा, दोले श्रीगौराङ्ग-राय ।।२८४।।
चैतन्य-आज्ञाय स्थिर हइल कीर्त्तन । कहे आपनार तत्त्व-करिया गर्जन ।।२८५।।
"कलि जुगे कृष्ण आमि, आमि नारायण । आमि सेइ भगवान् देवकी नन्दन ।।२८६।।
अनन्त-ब्रह्माण्ड-कोटि-माझे आमि नाथ । जत गाओ सेइ आमि, तोरा मोर दास ।।२८७।।
तोमा' सभा' लागिया आमार अवतार । तोरा जेइ देह' सेइ आमार आहार ।।२८८।।
आमारे से दिया आछ सर्व-उपहार" । श्रीवास बोलेन "प्रभु ! सकल तोमार" ।।२८९।।
प्रभु बोले "मुञि इहा खाइलुँ सकल । अद्वैत बोलये "प्रभु ! बड़इ मङ्गल ।।२९०।।
करे-करे प्रभुरे जो गाय सर्व-दासे । आनन्दे भोजन करे प्रभु निजा वेशे ।।२९१।।
दधि खाय दुग्ध खाय नवनीत खाय । "आर कि आछये आन" बोलये सदाय ।।२९२।।
विविध सन्देश खाय शर्करा म्रक्षित । मुद्ग नारिकेल जल शस्येर सहित ।।२९३।।
कदलक, चिपीटक, भर्जित तण्डुल । "आर बार आन" बोले खाइया बहुल ।।२९४।।
व्यवहारे जन-शत-दुइर आहार । निमिषे खाइया बोले कि आछये आर" ।।२९५।।
प्रभु बोले "आन' आन' एथा किछु नाञि" । भक्त सब त्रास पाइ स्मङरे गोसाञि ।।२९६।।
कर जोड़ करि सभे कय भय-वाणी । "तोमार महिमा प्रभु ! आमरा कि जानि ।।२९७।।
अनन्त ब्रह्माण्ड आछे जाहार उदरे । तारे कि करिब एइ क्षुद्र-उपहारे ।।२९८।।
प्रभु बोले "क्षुद्र नहे भक्त-उपहार । झाट आन' झाट आन' कि आछये आर" ।।२९९।।

---

सिंहासन पर जा बैठे ।। २८२ ।। श्री विश्वम्भर के बोझ से सिंहासन चर्र-मर्र करने लगा तो झट से दौड़ कर श्री नित्यानन्द ने सिंहासन को छू दिया ।। २८३ ।। ( छूते ही ) सिंहासन में अनन्त देव का अधिष्ठान हो गया और वह टूटने से बच गया उस पर श्री गौरांगदेव झूलने लगे ।। २८४ ।। फिर श्री चैतन्यचन्द्र की आज्ञा से कीर्तन बन्द हुआ और तब वे गरजते हुए अपना तत्त्व कहने लगे यथा:—"कलियुग में कृष्ण मैं ही हूँ, मैं ही नारायण हूँ । मैं वही भगवान् देवकीनन्दन हूँ । अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों का मैं नाथ हूँ । तुम लोग जिस २ का यश गाते हो, वह सब मैं ही हूँ । तुम सब मेरे दास हो" ।। २८५ ।। २८६ ।। २८७ ।। "तुम सब के लिए ही मेरा अवतार हुआ है । तुम लोग जो कुछ मुझे देते हो वही मेरा आहार है ।। अतएव तुम लोगों ने भी अपना सर्वस्व मुझे भेंट कर दिया है ।" इस पर श्री वास जी बोले ये सब तो है ही आपका प्रभो !" ।। २८८ ।। २८९ ।। प्रभु बोले—"देखो ये तो मैं सब खा चुका !" अद्वैताचार्य बोले—"बड़ा ही अच्छा हुआ प्रभो !" सब सेवक लोग ला ला कर प्रभु के हस्त कमल में अर्पण करते हैं और प्रभु निजादेश में आनन्द पूर्वक भोजन करते हैं ।। २९० ।। २९१ ।। आप दूध-दही-मक्खन सब खा-पी गए और "और लाओ और क्या है" कहते हुए बार २ पुकारने लगे ।। २९२ ।। शक्कर मिले हुए सन्देश आदि अनेक प्रकार की मिठाइयाँ, मूँग, नारियल, जल गिरी सहित, केला, चीऊड़ा, खील आदि बहुत कुछ खा करके प्रभु बोले और लाओ, क्या है" ।। २९३ ।। २९४ ।। व्यवहार में दो सौ आदमियों का भोजन पलक मारते २ सफाचट करके प्रभु बोले "और क्या है" "लाओ २ ! यहाँ तो कुछ भी नहीं है" । यह देख सुन कर भक्त लोग सब भयभीत होकर भगवान् को स्मरण करने लगे ।। २९५ ।। २९६ ।। फिर सब हाथ जोड़ कर डरते हुए बोले "प्रभो ! तुम्हारी महिमा हम लोग क्या जाने अनन्त ब्रह्माण्ड जिसके उदर में हों, उनके लिए हमारी इस तुच्छ भेंट से भला क्या हो सकता है ।। २९७ ।। २९८ ।। प्रभु बोले—"भक्त की भेंट तुच्छ नहीं है । लाओ २ झटपट

आनन्द हइल भय गेल सभाकार। जो गाय ताम्बूल सवे जार अधिकार ॥३०१॥
हरिषे ताम्बूल जो गायेन सव-दासे हस्त पाति लय प्रभु सभा प्रति हासे। ३०२।
अन्तर गम्भीर हइ क्षणे क्षणे हासे। सकल भक्तेर चित्ते लागये तरासे ॥३०३॥
दुइ चक्षु पाकाइया करये हुङ्कार। "नाड़ा नाड़ा नाड़ा" प्रभु वोले बारे बार ॥३०४॥
महा शास्ति कर्त्ता हेन भक्त-सब देखे। हेन शक्ति नाहि कारो हइव सम्मुख ॥३०५॥
नित्यानन्द महा प्रभु शिरे धरे छाति। जोड़ करे अद्वैत सम्मुखे करे स्तुति ॥३०६॥
महा-भये जोड़ हाथे सर्व भक्त गण। हेट-माथा करि चिन्ते' चैतन्य-चरण ॥३०७॥
ए ऐश्वर्य शुनिते जाहार हय सुख। अवश्य देखिव सेइ चैतन्य-श्रीमुख ॥३०८॥
जे खाने जे आछे, से आछये सेइ खाने। तदूर्द्ध हइते केहो नारे आज्ञा विने ॥३०९॥
"वर माग" वोले अद्वैतेर मुख चा'इ। "तोर लागि अवतार मोर एइ ठाँइ" ॥३१०॥
एइ मत सव भक्त देखिया देखिया। "माग' माग" वोले प्रभु हासिया हासिया ॥३११॥
एइ मत प्रभु निज ऐश्वर्य प्रकाशे। देखि भक्त गण सुख-सिन्धु-माझे भासे ॥३१२॥
अचिन्त्य चैतन्य-रङ्ग-बुझन ना जाय। क्षणेके ऐश्वर्य करि पुन मूर्च्छा पाय ॥३१३॥
बाह्य प्रकाशिया प्रभु करये क्रन्दन। दास्य-भाव प्रकाशी करये अनुक्षण ॥३१४॥
गला धरि कान्दे सर्व-वैष्णव देखिया। सभारे सम्भाषे' 'भाइ' 'वान्धव' वलिया ॥३१५॥

क्या कुछ है भक्त लोग बोले—"प्रभो! अब तो केवल कर्पूर-सुवासित-ताम्बूल मात्र रह गए हैं प्रभु बोले "लाओ! वे ही दो—कुछ चिन्ता मत करो ॥ २९९ ॥ ३०० ॥ तब तो सब को बड़ा आनन्द हुआ, और भय दूर हो गया और जिन २ का अधिकार था, वे सब प्रभु को पान देने लगे ॥ ३०१ ॥ सब दास जन बड़े उमङ्ग के साथ प्रभु को पान दे रहे हैं और प्रभु सबके प्रति हँसते हुए हाथ बढ़ा कर ले रहे हैं ॥ ३०२ ॥ प्रभु का हृदय गम्भीर है, परन्तु बाहर क्षण २ में हँस रहे हैं—यह देख कर सब भक्तों के चित्त में भय का संचार हो आता है ॥ ३०३ ॥ इतने में प्रभु, दोनों आँख लाल लाल करके, हुँकार करते हुए बार बार "नाड़ा ३" पुकारने लगे ॥ ३०४ ॥ उस समय भक्तवृन्द प्रभु को महा दण्डदाता के रूप में देखते हैं—किसी की शक्ति नहीं कि सन्मुख होवे ॥ ३०५ ॥ श्री नित्यानन्द जी महाप्रभु के शिर के ऊपर छत्र धारण करते हैं और श्री अद्वैत प्रभु के सामने हाथ जोड़ कर स्तुति करते हैं ॥ ३०६ ॥ और सब भक्तवृन्द महाभय के मारे हाथ जोड़ कर शिर नीचा करके, श्री चैतन्यचन्द्र के चरणों का चिन्तन करते हैं ॥ ३०७ ॥ इस ऐश्वर्य लीला के सुनने से जिसको सुख होता है। वह अवश्य ही श्री चैतन्यचन्द्र के श्री मुख का दर्शन पायगा ॥ ३०८ ॥ जो भक्त जहाँ पर है,:वह वहीं पर अचल है । प्रभु की आज्ञा बिना कोई ऊपर उठ नहीं सकता ॥ ३०९ ॥ तब प्रभु अद्वैताचार्य के मुख की ओर ताकते हुए बोले—"वर माँग! तेरे लिए ही मेरा यहाँ अवतार हुआ है" ॥ ३१० ॥ इसी प्रकार सब भक्तों की ओर देख २ कर हँसते हुए उनसे कहते हैं "वर माँग—वर माँग" ॥ ३११ ॥ इस प्रकार प्रभु अपने ऐश्वर्य को प्रकाशित कर रहे हैं जिसे देख कर भक्त लोग सुख के सागर में बहे चले जा रहे हैं ॥ ३१२ ॥ श्री चैतन्यचन्द्र की लीला अचिन्त्य है. समझ में नहीं आती है। क्षण में ऐश्वर्य को प्रकट करके वे फिर मूर्च्छित हो जाते हैं ॥ ३१३ ॥ फिर बाह्य ज्ञान लाभ करके प्रभु रोने लगते हैं और क्षण २ में दास भाव को प्रकट करते हैं ॥ ३१४ ॥ वैष्णवों को आपस में गले पकड़ कर रोते हुए देखते प्रभु "भाइ बन्धु" कह कर उन सबसे बोलते हैं ॥ ३१५ ॥ प्रभु ऐसी २ माया फैलाते हैं कि

लखिते ना पारे-प्रभु हेन माया करे। भृत्य विनु ताँर तत्त्व के वुझिते पारे ।।३१६।।
प्रभुर चरित्र देखि हासे भक्त गण। सभेइ वोलेन "अवतीर्ण नारायण ।।३१७।।
कथो क्षण थाकि प्रभु खट्टार उपर। आनन्दे मूर्छित हैला श्रीगौर सुन्दर ।।३१८।।
धातु मात्र नाहि, पड़िलेन पृथिवी ते। देखि सव पारिषद कान्दे चारि भिते ।।३१९।।
सर्व भक्त गण जुक्ति करिते लागिला। "आमा' सभा' छाड़िया वा ठाकुर चलिला ।।३२०।।
जदि प्रभु ए मत निष्ठुर भाव करे। आमराह एइ क्षणे छाड़िव शरीरे ।।३२१।।
एतेक चिन्तिते सर्वज्ञेर चूड़ामणि। वाह्य प्रकाशिया करे महा-हरि ध्वनि ।।३२२।।
सर्व-गणे उठिल आनन्द कोलाहल। ना जानि के कोन दिगे हय वा विह्वल ।।३२३।।
ए मत आनन्द हय नवद्वीप पुरे। प्रेम रसे वैकुण्ठेर नाथ से विहरे ।।३२४।।
ए सकल पुण्य कथा जे करे श्रवण। भक्त सङ्गे गौरचन्द्र रहे तार मन ।।३२५।।
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावन दास तछु पद जुगे गान ।।३२६।।

# अथ नवाँ अध्याय

जय जगन्नाथ-शची-नन्दन चैतन्य। जय गौर सुन्दरेर सङ्कीर्त्तन धन्य। १।।
जय नित्यानन्द-गदाधरेर जीवन। जय जय अद्वैत श्रीवास-प्राण-धन ।।२।।
जय श्रीजगदानन्द-हरि दास-प्राण। जय वक्रेश्वर पुण्डरीक-प्रेम धाम ।।३।।
जय वासुदेव-श्रीगर्भेर प्राण नाथ। जीव प्रति कर' प्रभु ! शुभ दृष्टि पात ।।४।।

---

कोई समझ नहीं पाता है। वास्तव में उनके सेवक बिना उनके तत्त्व को कौन समझ सकता है ।। ३१६ ।। प्रभु के चरित्र को देख कर भक्त गण सब हँसते हैं और कहते हैं कि "नारायण अवतीर्ण हुए हैं" ।। ३१७ ।। कुछ देर तक प्रभु गौर सुन्दर विष्णु–सिंहासन पर बैठे और फिर आनन्द मूर्च्छा को प्राप्त हो गए ।। ३१८ ।। और संज्ञा-शून्य होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। यह देख कर सब पार्षद चारों ओर रोने लगे ।। ३१९ ।। और शङ्का में भरे हुए आपस में कहने लगे–"हम सब को छोड़ कर ठाकुर चल दिये क्या यदि हम सबके प्रति प्रभु ऐसा ही निष्ठुर भाव दिखायेंगे, तो हम सब भी इसी क्षण शरीर छोड़ देंगे" ।। ३२० ।। ३२१ ।. इनके ऐसा विचार करते ही सर्वज्ञ शिरोमणि प्रभु ने वाह्य चेतना प्रकट करके बड़े जोर से हरि ध्वनि की तब तो सब भक्त लोगों में आनन्द–कोलाहल मच गया और वे विह्वल होकर कोई कहीं, कोई कहीं पड़ गए ।। ३२२ ।। ३२३ ।। इस प्रकार नवद्वीप में आनन्द हो रहा है। वैकुण्ठनाथ वहाँ प्रेमास्वादन करते हुए विहार कर रहे हैं ।। ३२४ ।। इन सब पुण्य कथाओं को जो श्रवण करते हैं, उनके मन में भक्तों के सहित गौरचन्द्र निवास करते हैं ।। ३२५ ।। श्री कृष्ण चैतन्य और श्री नित्यानन्दचन्द्र को अपना सर्वस्व जान कर वृन्दावन दास उनके युगल चरणों में उनका गुण गान करता है ।। ३२६ ।।

इति—श्री चैतन्य भागवते मध्यखण्डे श्री चैतन्य ऐश्वर्य प्रकाशादि वर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ।।

श्री जगन्नाथ मिश्र और श्रीशची के नन्दन श्री चैतन्यचन्द्र की जय हो। श्रीगौर सुन्दर के धन्य सङ्कीर्तन की जय हो ।। १ ।। श्री नित्यानन्द और श्री गदाधर के जीवन स्वरूप प्रभु की जय हो। श्री अद्वैत तथा श्रीवास के प्राणधन स्वरूप प्रभु की जय हो ।। २ ।। श्री जगदानन्द और श्री हरिदास के प्राण स्वरूप गौर की जय हो। श्री वक्रेश्वर और श्री पुण्डरीक के प्रेमधाम स्वरूप प्रभु की जय हो ।। ३ ।। श्री वासुदेव

एबे शुन चैतन्येर महा-परकाश। जहिँ सर्व-वैष्णवेर सिद्धि अभिलाष ॥७॥
'सात प्रहरिया-भाव' लोके ख्याति जार। जहिँ प्रभु हइलेन सर्व-अवतार ॥८॥
अद्भुत भोजन जहिँ अद्भुत प्रकाश। जने जने विष्णु भक्ति दानेर विलास ॥९॥
राज राजेश्वर अभिषेक सेइ दिने। करि लेन प्रभुरे सकल-भक्त गणे ॥१०॥
एक दिन महाप्रभु श्रीगौर सुन्दर। आइ लेन श्रीनिवास पण्डितेर घर ॥११॥
सङ्गे नित्यानन्द चन्द्र परम-विह्वल। अल्पे अल्पे भक्त गण मिलिला सकल ॥१२॥
आवेशित-चित्त महाप्रभु गौरराय। परम-ऐश्वर्य करि चतुर्दिगे चाय ॥१३॥
प्रभुर इङ्गित बूझिलेन भक्त गण। उच्च स्वरे चतुर्दिगे करेन कीर्त्तन ॥१४॥
अन्य अन्य दिन प्रभु नाचे दास्य भावे। क्षणेके ऐश्वर्य प्रकाशिया पुन भाङ्गे ॥१५॥
सकल-भक्तेर भाग्ये ए-दिन नाचिते। उठिया वसिला प्रभु विष्णुर खट्टाते ॥१६॥
आर-सब-दिने प्रभु भाव प्रकाशिया। वैसेन विष्णुर खाटे जेन ना जानिया ॥१७॥
सात प्रहरिया-भावे-छाड़ि सर्व-माया। वसिला प्रहर सात प्रभु व्यक्त हैया ॥१८॥
जोड़ हस्ते सम्मुखे सकल भक्त गण। रहिलेन परम-आनन्द-युक्त-मन ॥१९॥
कि अद्भुत आनन्देर हइल प्रकाश। सभेइ वासेन जेन वैकुण्ठ विलास ॥२०॥

---

और श्री गर्भ के प्राणनाथ की जय हो। हे प्रभो ! जीवों के प्रति शुभ दृष्टि कीजिए ॥ ४ ॥ भक्त मण्डली सहित श्री गौरांगदेव की जय हो, जय हो। श्री चैतन्यचन्द्र की कथा सुनने से भक्ति लाभ होती है ॥ ५ ॥ भाइयो ! जिस प्रकार महा प्रभु गौरचन्द्र ने विहार किया है—वह मध्यखण्ड की कथा एक चित्त होकर सुनो ॥ ६ ॥ अब पहले श्री चैतन्यचन्द्र के महा-प्रकाश की कथा सुनो—जिसमें सब वैष्णवों की अभिलाषाएँ पूर्ण हुई हैं। जो संसार में "सात-पहरिया-भाव के नाम से प्रसिद्ध है तथा जिसमें प्रभु ने सब अवतारों का प्रकाश किया है ॥ ७ ॥ ८ ॥ जिस लीला में अद्भुत भोजन राशि है, अद्भुत स्वरूप—प्रकाश है, और जन जन प्रति विष्णुभक्ति दान का विलास है ॥ ९ ॥ उसी दिन सब भक्तों ने मिलकर प्रभु का राज राजेश्वर अभिषेक किया है ॥ १० ॥ (वह प्रसङ्ग इस प्रकार है) एक दिन महाप्रभु श्री गौरसुन्दर श्रीवास पण्डित के घर आए ॥ ११ ॥ साथ में आनन्द में परम विह्वल श्री नित्यानन्द हैं। और सब भक्त लोग भी दो २ चार २ करके धीरे २ वहाँ आ मिले ॥ १२ ॥ महाप्रभु श्री गौरराय का चित्त स्वरूप के आवेश से भर आया और वे परम ऐश्वर्य का प्रकाश करते हुए चारों ओर देखने लगे ॥ १३ ॥ भक्त लोग प्रभु के संकेत को समझ गए, और चारों ओर उच्चस्वर से कीर्त्तन करने लगे ॥ १४ ॥ और २ दिन तो प्रभु दास भाव में नाचा करते थे, और बीच २ में क्षण भर के लिए ही ऐश्वर्य प्रकट कर फिर समेट लेते थे ॥ १५ ॥ परन्तु समस्त भक्तों के भाग्य से आज के दिन तो प्रभु नाचते २ भगवान् विष्णु के सिंहासन पर चढ़कर विराज गए ॥ १६ ॥ और सब दिन तो प्रभु ऐश्वर्य भाव को प्रकाशित कर विष्णु सिंहासन पर ऐसे जा बैठते थे कि मानो तो कुछ जानते ही नहीं हैं ॥ १७ ॥ परन्तु आज सब माया ( पर्दा ) को हटा कर प्रभु सात पहर तक अपने ईश्वर, भाव को व्यक्त करके बैठे रहे ॥ १८ ॥ सब भक्त लोग हाथ जोड़ कर परमानन्द चित्त से उनके सामने खड़े हैं ॥ १९ ॥ उस समय कैसा अद्भुत आनन्द का प्रकाश हुआ कि सभी लोग यह समझने लगे कि साक्षात् वैकुण्ठ का ही विलास हो रहा है ॥ २० ॥ प्रभु भी ठीक वैकुण्ठनाथ की भाँति बैठ गए—आधा तिल भर भी

प्रभुओ वसिला जेन वैकुण्ठेर नाथ। तिलार्द्धेक माया मात्र नाहिक कोथात ॥२१॥
आज्ञा हैल "बोल मोर अभिषेक गीत। शुनि गाय भक्त गण हइ हरषित ॥२२॥
अभिषेक शुनि प्रभु मस्तक ढुलाय। सभारे करेन कृपा दृष्टि अमायाय ॥२३॥
प्रभुर इङ्गित बूझिलेन भक्त गण। अभिषेक करिते सभार हैल मन ॥२४॥
सर्व-भक्त गणे वहि' आने' गङ्गा जल। आगे छाँकिलेन दिव्य-वसने सकल ॥२५॥
शेषे श्रीकर्पूर-चतुः सम आदि दिया। सज्ज करिलेन सभे प्रेम जुक्त हैया ॥२६॥
महा जय जय ध्वनि शुनि चारि भिते। अभिषेक मंत्र सभे लागिला पढ़िते ॥२७॥
सर्वाद्ये श्रीनित्यानन्द 'जय जय' वलि। प्रभुर श्रीशिरे जल दिया कुतूहली ॥२८॥
अद्वैत-श्रीवास-आदि जतेक प्रधान। पढ़िया पुरुष सूक्त करायेन स्नान ॥२९॥
गौराङ्गेर भक्त सब महा-मंत्र वित। मंत्र पढ़ि जल ढाले हइ हरषित ॥३०॥
मुकुन्दादि गाय अभिषेक-सुमङ्गल। केहो कान्दे केहो नाचे-आनन्दे विह्वल ॥३१॥
पतिव्रता गण करे जय जय कार। आनन्द स्वरूप चित्त हइल सभार ॥३२॥
वसिया आछेन वैकुण्ठेर अधीश्वर। भृत्य गणे जल ढाले शिरेर उपर ॥३३॥
नाम मात्र-अष्टोत्तर-शत घट जल। सहस्र घटेओ अन्त ना पाइ सकल ॥३४॥
देवता सकले धरि नरेर आकृति। गुप्ते अभिषेक करे जे हय सुकृति ॥३५॥
जार पाद पद्मे जल विन्दु दिले मात्र। सेहो ध्याने—साक्षाते के दिते आछे पात्र ॥३६॥
तथापिह तारे नाहि जम दण्ड भय। हेन प्रभु साक्षाते सभार जल लय ॥३७॥

कहीं माया का आवरण नहीं रक्खा ॥ २१ ॥ और तब यह आज्ञा हुई कि "मेरे अभिषेक के गीत गाओ"। यह सुन कर भक्तगण हर्षित होकर गाने लगे ॥ २२ ॥ अभिषेक गान को सुनकर प्रभु आनन्द में झूमते हुए शिर हिलाते हैं और सब के प्रति सहज स्नेहपूर्ण कृपा दृष्टि करते हैं ॥ २३ ॥ प्रभु ने अभिषेक करने के लिए संकेत किया जिसे समझ कर सब के मन में अभिषेक करने की अभिलाषा हुई ॥ २४ ॥ तब तो सब भक्त गण गङ्गाजल ढो ढो कर लाते हैं। पहले उस जल को दिव्य वस्त्र से छानते हैं, फिर उसमें कस्तूरी दो भाग चन्दन चार भाग, कुंकुम तीन भाग और कपूर एक भाग—इस चतुःसम को मिला कर प्रेमपूर्वक सुगन्धित जल तैयार करते हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥ चारों ओर से महा जय जयकार ध्वनि होने लगी और सब भक्त लोग अभिषेक मंत्र पढ़ने लगे ॥ २७ ॥ सर्व प्रथम महा विनोदी श्री नित्यानन्द ने "जय २" कह कर प्रभु के मस्तक पर जल छोड़ा ॥ २८ ॥ पश्चात् श्री अद्वैत और श्री वास आदि प्रधान भक्तों ने पुरुष सूक्त पाठ करके स्नान कराया ॥ २९ ॥ श्री गौरांग के भक्त सब महामंत्रज्ञ हैं—वे सब हरजित होकर मंत्र पढ़ २ कर जल ढालने लगे ॥ ३० ॥ मुकुन्द आदि भक्त अभिषेक के मङ्गल गीत गा रहे हैं-कोई आनन्द में विह्वल होकर रो रहे हैं तो कोई नाच रहे हैं ॥ ३१ ॥ पतिव्रताएं जय जयकार कर रहीं हैं। सब ही के चित्त आनन्द स्वरूप हो गए हैं ॥ ३२ ॥ वैकुण्ठ के अधीश्वर प्रभु बैठे हुए हैं और सेवक लोग शिर पर जल ढाल रहे है ॥ ३३ ॥ एक सौ आठ घड़ा तो केवल कहने के लिए ही हैं, वहाँ तो हजार २ घड़ों से भी पूरा नहीं पड़ रहा है ॥ ३४ ॥ कोई २ विशेष पुण्यशाली देवता भी मनुष्य का रूप बना कर गुप्त रूप से प्रभु का अभिषेक करते है ॥ ३५ ॥ जिनके चरण कमलों में—साक्षात् जल चढ़ाने का अधिकार भला कितनों का है—ध्यान में भी एक ही बूंद जल देने से यमराज के दण्ड का भय नहीं रहता है, ऐसे प्रभु आज साक्षात् सब का जल ग्रहण कर रहे हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ श्रीवास के दास-दासी गण जल लाते हैं और प्रभु स्नान करते हैं। अहो! भक्त

श्रीवासेर दास-दासी गणे आने जल। प्रभु स्नान करे, भक्त से वार एइ फल ॥३८॥
जल आने' एक भाग्यवती–'दुःखी' नाम। आपने ठाकुर देखि बोले "आन' आन' ॥३९॥
आपने ठाकुर ताँर भक्ति योग देखि। 'दुःखी' नाम घुचाइया थुइलेन 'सुखी' ॥४०॥
नाना वेद मंत्र पढ़ि सर्व-भक्त गण। स्नान कराइया अङ्ग करिला मार्जन ॥४१॥
परिधान कराइला नूतन वसन। श्री अङ्गे लेपिला दिव्य सुगन्धि-चन्दन ॥४२॥
विष्णु खट्टा पड़िलेन उपस्कार करि। वसिलेन प्रभु निज खट्टार उपरि ॥४३॥
छत्र धरिलेन शिरे नित्यानन्द राय। कोन भाग्यवन्त रहि चामर ढुलाय ॥४४॥
पूजार सामग्री लइ सर्व-भक्त गण। पूजिते लागिला निज प्रभुर चरण ॥४५॥
पाद्य, अर्घ्य, आचमनी, गन्ध, पुष्प, धूप। प्रदीप, नैवेद्य, वस्त्र-यथा अनुरूप ॥४६॥
यज्ञ सूत्र, यथा शक्ति अङ्गे अलङ्कार। पूजिलेन करिया षोड्श-उपचार ॥४७॥
चन्दने करिया लिप्त तुलसी मञ्जरी। पुनः पुन देन सभे चरण-उपरि ॥४८॥
दशाक्षर-गोपाल मंत्रेर विधि मते। पूजा करि सभे स्तव लागिला पढ़िते ॥४९॥
अद्वैतादि आर जत पार्षद प्रधान। पड़िला चरणे करि दण्ड–परणाम ॥५०॥
प्रेम नदी बहे सर्व-गणेर नयने। स्तुति करे सभे, प्रभु अमायाय शुने ॥५१॥
"जय जय जय सर्व-जगतेर नाथ। तप्त-जगतेरे कर' शुभ-दृष्टिपात ॥५२॥
जय आदि हेतु जय जनक सभार। जय जय सङ्कीर्त्तनारम्भ-अवतार ॥५३॥
जय जय वेद-धर्म-साधुजन-त्राण। जय जय आब्रह्म-स्तम्वेर मूल प्राण ॥५४॥

---

सेवा का यही फल है ( कि स्वयं भगवान् को सेवा मिल जाती है ) ॥ ३८ ॥ जल लाने वालों में एक भाग्यवती दासी का नाम 'दुःखी' था। उसको जल लाते देख कर प्रभु स्वयं कहते हैं–"लाओ २" ॥ ३९ ॥ और उसके भक्तिभाव को देख कर प्रभु स्वयं उसका "दुखी" नाम मिटा कर "सुखी" नाम रख देते हैं ॥ ४० ॥ अनेक वेद मंत्रों के द्वारा सब भक्तों ने प्रभु को स्नान कराया, श्री अङ्ग को पोंछा ॥ ४१ ॥ नवीन वस्त्र धारण कराये और श्रीअङ्ग पर दिव्य सुगन्धित चन्दन का लेप किया ॥ ४२ ॥ पश्चात्, संस्कार करके विष्णु सिंहासन लगाया गया, तब उस पर प्रभु गौरसुन्दर विराजमान हुए ॥ ४३ ॥ श्री नित्यानन्दराय ने शिर पर छत्र लगाया और कोई भाग्यवान चँवर करने लगे ॥ ४४ ॥ फिर सब भक्त गण पूजा की सामग्री लेकर प्रभु के श्री चरण की पूजा करने लगे ॥ ४५ ॥प्रथम पाद्य और अर्घ्य देकर फिर आचमन कराते हैं। फिर श्रीअङ्ग में गन्ध लेप कर पुष्पमाला अर्पण करते हैं। धूप-दीप दान करते हैं। नैवेध समर्पण करते हैं। यथोचित वस्त्र यज्ञोपवीत और यथाशक्ति अलङ्कार श्रीअङ्ग में धारण कराते हैं। इस प्रकार षोडशोपचार से प्रभु की पूजा सम्पन्न हुई ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ फिर सब भक्त लोग तुलसी की मंजरी पर चन्दन लगा २ कर प्रभु के श्रीचरणों पर बार २ चढ़ाने लगे ॥ ४८ ॥ दशाक्षर गोपाल मंत्र की विधि के अनुसार पूजा करने के पश्चात् सब भक्त लोग प्रभु की स्तुति पढ़ने लगे ॥ ४९ ॥ श्री अद्वैताचार्य आदि प्रधान २ पार्षदगण ने श्री चरणों में दण्डवत् पाइ कर प्रणाम किया ॥ ५० ॥ सब भक्तों के नेत्रों से प्रेम की नदी बह रही है और सब स्तुति कर रहे हैं और प्रभु सहज निष्कपट भाव से सुन रहे हैं। ५१ ॥ स्तुतिः—"सब जगत् के नाथ को जय ३ हो। हे प्रभो ! इस तप्त जगत् के प्रति शुभ दृष्टि दीजिए ॥ ५२ ॥ आप सब के आदि कारण हैं–आप की जय हो। आप सब के पिता हैं–आपको जय हो ॥ संकीर्त्तन प्रचार के लिए आप का अवतार है–आप की जय हो–जय हो ॥ ५३ ॥ "हे वेद-धर्म-साधुजन रक्षक ! आप को जय हो। हे ब्रह्मा से तृण पर्यन्त के मूल प्राणस्व-

जय जय पतित पावन गुण-सिन्धु । जय जय परम-शरण दीन बन्धु ॥५५॥
जय जय क्षीर सिन्धु-मध्ये -गुप्तवासी । जय जय भक्त-हेतु प्रकट विलासी ॥५६॥
जय जय अचिन्त्य अगम्य आदि-तत्त्व । जय जय परम-कोमल शुद्ध-सत्त्व ॥५७॥
जय जय विप्र कुल-पावन-भूषण । जय वेद-धर्म-आदि सभार जीवन ॥५८॥
जय जय अजामिल-पतित-पावन । जय जय पूतना-दुष्कृति-विमोचन ॥५९॥
जय जय अदोष-दरशी रमाकान्त" । एइ मत स्तुति करे सकल महान्त ॥६०॥
परम प्रकट रूप प्रभुर प्रकाश । देखि परानन्दे डूबिलेन सर्व-दास ॥६१॥
सर्व माया घुचाइया प्रभु गौरचन्द्र । श्रीचरण दिलेन—पूजये भक्त वृन्द ॥६२॥
दिव्य गन्ध आनि केहो लेपे श्रीचरणे । तुलसी-कमले मेलि पूजे कोन जने ॥६३॥
केहो रत्न-सुवर्ण-रजत-अलङ्कार । पाद पद्मे दिया दिया करे नमस्कार ॥६४॥
पट्ट-नेत-शुक्ल नील सुपीत वसन । पाद पद्मे दिया नमस्करे सर्व जन ॥६५॥
नाना विध धातु पात्र देइ सर्व जने । ना जानि कतेक आसि पड़े श्रीचरणे ॥६६॥
जे चरण पूजिबारे सभार भावना । अज-रमा-शिव करे जे लागि कामना ॥६७॥
वैष्णवेर दास-दासी गणे ताहा पूजे । एइ मत फल हये—वैष्णवे जे भजे ॥६८॥
दूर्वा, धान्य, तुलसी लइया सर्व जने । पाइया अभय सभे देन श्रीचरणे ॥६९॥
नाना विध फल आनि देन पद तले । गन्ध, पुष्प, चन्दन चरणे केहो ढाले ॥७०॥

---

रूप ! आपकी जय हो, जय हो ॥ ५४ ॥ पतित पावन गुणसिन्धु की जय जय हो । परम शरण की, दीन-बन्धु की जय जय हो ॥ ५५ ॥ "हे क्षीरसिन्धु में गुप्तवास करने वाले ! आपकी जय हो, जय हो । हे भक्तों के लिए प्रकट विलास करने वाले । आपकी जय हो, जय हो ॥ ५६ ॥ अचिन्त्य, अगम्य, आदि तत्त्वस्वरूप आपकी जय २ हो । परम कोमल शुद्ध सत्त्व स्वरूप आपकी जय २ हो ॥ ५७ ॥ "विप्रकुल पावन की जय विप्रकुल भूषण की जय ! वेद धर्म के आदि और सब के जीवन स्वरूप प्रभु की जय ॥ ५८ ॥ अजामिल पतित पावन की जय २ ! पूतना दुष्कृति विनाशक की जय २ ॥ अदोषदर्शी रमाकान्त की जय ३ । इस प्रकार सब बड़े २ पार्षद स्तुति करते हैं ॥ ५९ ॥ ६० ॥ प्रभु के इस प्रकाश में उनका परम रूप प्रकट हुआ है उसके दर्शन कर प्रभु के सब दास परानन्द में डूब गए ॥ ६१ ॥ प्रभु गौरचन्द्र ने आज माया का सब आवरण हटाकर अपने श्री चरणों को अर्पण किया—भक्तवृन्द उनकी पूजा करने लगे ॥ ६२ ॥ कोई दिव्य गन्ध लाकर प्रभु के श्री चरणों पर लगाते हैं तो कोई कमल पर तुलसी रख कर उनसे श्री चरणों को पूजते है ॥ ६३ ॥ कोई रत्न के कोई स्वर्ण के, कोई चाँदी के अलङ्कारों को श्री चरण कमलों में अर्पण कर करके नमस्कार करते हैं ॥ ६४ ॥ पट्ट वस्त्र, नेत वस्त्र, शुक्ल, नील, पीत वस्त्रादि को श्री पाद पद्मों में अर्पण करके सब नमस्कार करते हैं ॥ ६५ ॥ सब भक्त वृन्द नाना प्रकार के धातु-पात्र भी चढ़ाते हैं । इस प्रकार न जाने कितने पात्र श्री चरणों में आ आ कर पड़े हुए हैं ॥ ६६ ॥ जिन श्री चरणों को पूजने की भावना सब की रहती है. जिनकी कामना ब्रह्मा लक्ष्मी और शिवजी भी करते हैं ॥ ६७ ॥ उन्हीं की पूजा आज वैष्णवों के दास-दासीगण भी कर रहे हैं । वैष्णवों की सेवा करने वालों को ऐसा ही फल मिलता है ॥ ६८ ॥ वे सब लोग आज समय प्राप्त करके, दूब, धान और तुलसीदल ले ले कर श्री चरणों पर चढ़ाते हैं ॥ ६९ ॥ नाना प्रकार के फल लाकर चरण समीप रखते है, और कोई गन्ध, पुष्प, चन्दन ही श्री चरणों पर ढाल देते है ॥ ७० ॥ कोई षोडशोपचार से पूजा करते हैं तो कोई पञ्चाङ्ग से ही—जैसी जिसके चित्त में स्फुरण हुई

केहो पूजे करिया षोड़श-उपचारे। केहो वा षडङ्ग-मते-जेन स्फुरे जारे ॥७१॥
कस्तूरी, कुङ्कुम, श्रीकर्पूर, फागु धूलि। सभे श्रीचरणे देइ हइ कुतूहली ॥७२॥
चम्पक, मल्लिका, कुन्द, कदम्ब, मालती। नाना-पुष्पे शोभे श्रीचरण-नख-पाँति ॥७३॥
परम प्रकाश—वैकुण्ठेर चूड़ा मणि। "किछु देह' खाइ" प्रभु चाहेन आपनि ॥७४॥
हस्त पाते प्रभु, सब देखे भक्त गण। जे जे मत देइ-सब करेन भोजन ॥७५॥
केहो देइ कदलक केहो दिव्य मुद्ग। केहो दधि क्षीर वा नवनी, केहो दुग्ध ॥७६॥
प्रभुर श्रीहस्ते सब देइ भक्त गण। अमायाय महाप्रभु करेन भोजन ॥७७॥
धाइल सकल गण नगरे नगरे। किनिञा उत्तम द्रव्य आनेन सत्वरे ॥७८॥
केहो दिव्य नारि केल उपस्कार करि। शर्करा-सहित देइ श्रीहस्त-उपरि ॥७९॥
नाना विध प्रकार सन्देश देइ आनि। श्रीहस्ते लइया प्रभु खायेन आपनि। ८०॥
केहो देइ मेवा खिरा-कर्कटिका फल। केहो देइ इक्षु केहो देइ गङ्गा जल ॥८१॥
देखिया प्रभुर सभे आनन्द-प्रकाश। दश-बार बीस-बार देइ कोन दास ॥८२॥
शत शत जने वा कतेक देइ जल। महा योगेश्वर पान करेन सकल ॥८३॥
सहस्र सहस्र भाण्ड—दधि क्षीर दुग्ध। सहस्र सहस्र कान्दिकला, कत मुद्ग ॥८४॥
कतेक वा सन्देश, कतेक वा फल मूल। कतेक सहस्र बाँटा कर्पूर ताम्बूल ॥८५॥
कि अपूर्व शक्ति प्रकाशिला गौरचन्द्र। 'केमते खायेन' नाहि जाने भक्त वृन्द ॥८६॥
भक्तेर पदार्थ प्रभु खायेन सन्तोषे। खाइया सभार जन्म-कर्म कहे शेषे ॥८७॥

---

॥ ७१ ॥ सब बड़े आनन्द से कस्तूरी, कुंकुम, श्री कपूर, अबीर गुलाल, श्री चरणों पर डालते जाते हैं ॥ ७२ ॥ और श्री चरणों की नख-पंक्ति चम्पा, चमेली, कुन्द, कदम्ब, मालती आदि नाना प्रकार के पुष्पों से शोभा को प्राप्त हो रही हैं ॥ ७३ ॥ वैकुण्ठ के नायक चूडामणि प्रभु आज अपने ऐश्वर्य का परम प्रकाश करते हुए आप ही माँगने भी लगे—"कुछ दो तो खाऊँ ॥ ७४ ॥ ऐसा कह कर प्रभु हाथ पसारते हैं—तो यह देख भक्त गण भोजन देने लगते हैं, जो कोई जैसा कुछ भी देता है, प्रभु सब खा जाते हैं ॥ ७५ ॥ कोई केला देते हैं तो कोई दिव्य मूँग की दाल। कोई दही कोई खीर, कोई मक्खन, कोई दूध देता है ॥ ७६ ॥ सब भक्त लोग प्रभु के श्री हस्त में ही देते हैं और महाप्रभु सहज निष्कपट भाव से खाते जाते हैं ॥ ७७ ॥ (फिर तो क्या था) भक्त लोग सब बाजारों में दौड़ते फिरते हैं और उत्तम २ पदार्थ मोल लेकर भागे आते हैं ॥ ७८ ॥ कोई दिव्य नारियल संस्कार करके, उसमें शक्कर मिलाकर श्रीहस्त में अर्पण करते हैं ॥ ७९ ॥ कोई नाना प्रकार के सन्देश ला ला कर देते हैं और प्रभु स्वयं श्रीहस्त में लेकर खाते है ॥ ८० ॥ कोई मेवा कोई खीरा, कोई ककड़ी, कोई गन्ना तो कोई गङ्गाजल देता है ॥ ८१ ॥ प्रभु के आनन्द-प्रकाश के दर्शन कर कोई २ दास तो दस २ बीस २ बार देते हैं ॥ ८२ ॥ सैकड़ों ही भक्तों ने न जाने कितना जल दे डाला परन्तु प्रभु सब को पी गए महा योगेश्वर जो ठहरे ॥ ८३ ॥ दही, दूध और खीर के हजारों पात्र खाली हो गए। हजारों गढ केला के खा गए। कितनी मूँग की दाल ॥ ८४ ॥ कितना सन्देश कितना फल, कन्दमूल स्वाहा कर गए—इसका पार नहीं। कपूर मिले पानों के तो हजारों पानदान खाली हो गए ॥ ८५ ॥ अहो! कैसी अपूर्व शक्ति आज श्री गौरचन्द्र ने प्रकाशित की! इतना सब आप कैसे खाते जा रहे हैं—इसे भक्त लोग कोई नहीं जान पाते हैं ॥ ८६ ॥ भक्तों की वस्तु प्रभु बड़े संतुष्ट होकर खाते हैं और खाकर पीछे से सब के जन्म-कर्म बखानते जाते हैं ॥ ८७ ॥ ( जिसकी जो बातें प्रभु बताते हैं ) उस भक्त को वे सब तत्काल स्म-

तत्क्षणे से भक्तेर हय स्मङरण। सन्तोषे आछाड़ खाय, करये क्रन्दन ॥८८॥
श्रीवासेरे बोले "अरे! पड़े तोर मने। भागवत शुनिलि जे अमुकेर स्थाने ॥८९॥
पदे पदे भागवत प्रेम रस मय। शुनिया द्रविल अति तोमार हृदय ॥९०॥
उच्च स्वर करि तुमि लागिला कान्दिते। विह्वल हइया तुमि पड़िला भूमिते ॥९१॥
अबुध पढुया भक्ति योग ना जानिञा। वलाये कान्दये केने ना बूझिल इहा ॥९२॥
बाह्य नाहि जान' तुमि प्रेमेर विकारे। पढुया तोमारे निल बाहिर-दुयारे ॥९३॥
देवानन्द इथे ना करिल निवारण। गुरु यथा अज्ञ-सेइ मत शिष्य गण ॥९४॥
बाहिर-दुयारे तोमा' एड़िल टानिञा। तवे तुमि आइला परम दुःख पाञा ॥९५॥
दुःख पाइ मने तुमि विरले बसिला। आर वार भागवत चाहिते लागिला ॥९६॥
देखिया तोमार दुःख श्रीवैकुण्ठ हैते। आविर्भाव हइलाङ तोमार देहेते ॥९७॥
तवे आमि तोमार एइ हृदये वसिया। कान्दाइलु आपनार प्रेम योग दिया ॥९८॥
आनन्द हइल देह शुनि भागवत। सब तिति स्थान हैल वरिषार मत" ॥९९॥
अनुभव पाइया विह्वल श्रीनिवास। गड़ा गड़ि जाय कान्दे वहे घन श्वास ॥१००॥
एइ मत अद्वैतादि जतेक वैष्णव। सभारे देखिया करायेन अनुभव ॥१०१॥
आनन्द सागरे मग्न सर्व-भक्त गण। वसिया करेन प्रभु ताम्बूल भक्षण ॥१०२॥
कोन भक्त नाचे, केहो करे सङ्कीर्त्तन। केहो बोले 'जय जय श्रीशची नन्दन" ॥१०३॥
कदाचित् जे भक्त ना थाके सेइ-स्थाने। आज्ञा करि प्रभु तारे आनान आपने। १०४॥

---

रण हो आती है और वह आनन्द-विह्वल हो पछाड़ खाकर गिर पड़ता है और रोने लगता है ॥ ८८ ॥ श्रीवास से बोले–"अरे! आती है याद तुझे! तूने अमुक ( देवानन्द पण्डित ) के स्थान पर श्री भागवत सुनी थी ॥ ८९ ॥ श्री भागवत पद २ पर प्रेम रसमय है–उसे सुन कर तुह्मारा हृदय अत्यन्त ही पिघल चला था ॥ ९० ॥ "तब तुम ऊँचे स्वर से रोने लगे थे और विह्वल होकर भूमि पर गिर गए थे ॥ ९१ ॥ अबोध विद्यार्थी गण भला भक्ति भाव को क्या समझें। वे कहने लगे 'यह क्यों इतना रोता–पीटता है–कुछ समझ में नहीं आता ॥ ९२ ॥ "तुम तो भाव के तरङ्गों में पड़े बाहर से बेसुध थे। विद्यार्थी लोग तुमको घसीटते हुए बाहर द्वार पर ले गए ॥ ९३ ॥ इस पर देवानन्द ने उनको मना नहीं किया। गुरु जैसे अज्ञ वैसे ही शिष्य गण भी अज्ञ! ॥ ९४ ॥ "उन्होंने तुमको घसीट कर बाहर द्वार पर छोड़ दिया। तब तुम वहाँ से बड़े दुखित होकर घर लौटे ॥ ९५ ॥ मन में दुःख पाकर तुम एकान्त में जा बैठे और श्रीमद्भागवत को उठा कर देखने लगे ॥ ९६ ॥ "तब मैं तुम्हारा दुःख देख श्री वैकुण्ठ से आकर तुह्मारी देह में प्रकट हो गया ॥ ९७ ॥ तब मैंने तुम्हारे इस हृदय में बैठ निज प्रेमयोग देकर, तुमको रुलाया था ॥ ९८ ॥ "तब तुमको भागवत सुनकर बड़ा ही आनन्द हुआ और तुम्हारे नेत्रों के जल से वह स्थान सारा भीग गया–मानो तो वर्षा हुई हो" ॥ ९९ ॥ इस अनुभव को प्राप्त होकर श्रीवास आनन्द में विह्वल हो भूमि पर लोट पोट हो गए रोने और लम्बी २ साँस लेने लगे ॥ १०० ॥ इसी प्रकार श्री अद्वैतादि जितने वैष्णवजन हैं, सब को देख २ कर उनके अनुभव की सुध कराते हैं ॥ १०१ ॥ सब भक्त लोग आनन्द-सागर में मग्न हैं और प्रभु बैठे हुए ताम्बूल चर्वण कर रहे हैं ॥ १०२ ॥ भक्त लोग कोई नाच रहे हैं, कोई संकीर्त्तन कर रहे हैं, कोई "जय २ श्री शचीनन्दन" कर रहे हैं ॥ १०३ ॥ यदि कोई भक्त वहाँ नहीं भी है तो प्रभु आप आज्ञा करके उसे बुलवा भेजते हैं ॥ १०४ ॥ आने पर प्रभु "कुछ दो खाऊँगा" कह कर श्रीहस्त फैला देते हैं। और जो भी जोकुछ

"किछु देह' खाइ" वलि पातेन श्रीहस्त। जेइ जे देयेन ताहा खायेन समस्त ॥१०५॥
खाइया बोलेन प्रभु "तोर मने आछे। अमुक निशाय आमि वसि तोर काछे ॥१०६॥
विप्र रूपे तोर ज्वर करिलाङ नाश। शुनिञा विह्वल हइ पड़े सेइ दास ॥१०७॥
गङ्गा दासे देखि बोले "तोर मने जागे। राज भये पलाइस् जबे निशा भागे ॥१०८॥
सर्व-परिकर सने आसि खेया घाटे। कोथाह नाहिक नौका--पड़िला सङ्कटे ॥१०९॥
रात्रि शेष हैल, तुमि नौका ना पाइया। कान्दिते लागिला अति दुःखित हइया। ११०॥
'मोर आगे जवने स्पर्शिवे परिवार। गाङ्गे प्रवेशिते मन हइल तोमार ॥१११॥
तबे आमि नौका निया लेयारिर रूपे। गङ्गाय वाहिया जाइ तोमार समीपे ॥११२॥
तबे नौका देखि तुमि सन्तोष हइला। अतिशय प्रीत करि कहिते लागिला ॥११३॥
'अरे भाइ! आमारे राखह एइ बार। जाति प्राण धन देह--सकलि तोमार ॥११४॥
रक्षा कर' परिकर-सङ्गे कर' पार। एक-तङ्का एक-जोड़ वस्त्र से तोमार ॥११५॥
तबे तोमा' सङ्गे परिकर करि पार। तबे निज वैकुण्ठे गेलाङ आर वार" ॥११६॥
शुनि भासे गङ्गादास आनन्द सागरे। हेन लीला करे प्रभु गौराङ्ग सुन्दरे ॥११७॥
"गङ्गाय हइते पार चिन्तिले आमारे। मने पड़े पार आमि करिलाङ तोरे" ॥११८॥
शुनिञा मूर्च्छित गङ्गा दास गड़ि जाय। एइ मत कहे प्रभु अति अमायाय ॥११९॥
वसिया आछेन वैकुण्ठेर अधीश्वर। चन्दन-मालाय परिपूर्ण कलेवर ॥१२०॥
कोन प्रियतम करे श्रीअङ्गे व्यजन। श्रीकेश-संस्कार करे अति प्रिय जन ॥१२१॥
ताम्बूल जो गाय कोन् अति प्रिय भृत्य। केहो गाय, केहो वा सम्मुखे करे नृत्य ॥१२२॥

---

देते हैं उसे वे सब खा जाते हैं ॥ १०५ ॥ खाकर किसी से प्रभु कहते हैं--"तुझे याद है--उस रात को मैंने विप्र रूप से तेरे पास बैठ कर तेरा ज्वर नाश किया था"। यह सुन कर वह दास विह्वल होकर गिर पड़ता है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ गङ्गादास को देख कर बोले--"तुझे याद आती है कि जब तू राजा के भय से रात मे भाग निकला था ॥ और कुटुम्ब सहित जब तू नौका-घाट पर आया, तो वहाँ कहीं भी नौका न मिली और तू सङ्कट में फँस गया ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ रात बीत चली पर नौका न मिली। तब तू अत्यन्त दुखित होकर रोने लगा ॥ ११० ॥ "अब मेरी आँखों के आगे राजा के यवन सिपाही मेरे बाल-बच्चों को पकड़ लेंगे--उनको स्पर्श कर लेंगे"--इस दुःख में तुमने गंगा में डूब मरने की मन में ठान ली ॥ १११ ॥ तब मैं ही मल्लाह के रूप में नौका को लेकर गंगा में नौका खेता हुआ तुम्हारे पास आया था ॥ ११२ ॥ तब नौका देख कर तुम बड़े ही प्रसन्न हुए और अतिशय प्रीति पूर्वक मुझसे कहने लगे ॥ ११३ ॥ "अरे भाई! अबकी बार मेरी रक्षा कर दो--यह मेरी जाति, प्राण, धन देह--सब तुम्हारे ही हैं ॥ ११४ ॥ रक्षा करो! परिवार समेत पार कर दो ॥ एक टका ( रुपया ) और एक जोड़ा धोती तुम्हें दूँगा ॥ ११५ ॥ "तब मैं तुमको परिवार समेत पार कर अपने वैकुण्ठ को चला गया" ॥ ११६ ॥ यह सुन कर गंगादास आनन्द-सागर में बहने लगे। ऐसी २ लीला प्रभु श्री गौरांग सुन्दर करते हैं ॥ ११७ ॥ ( प्रभु पुनः कहते हैं ) "गङ्गा से पार होने के लिए मेरा चिन्तन करने पर मैंने ही तुझे पार किया था--याद आती है ?" ॥ ११८ ॥ यह सुन कर मूर्च्छित गङ्गादास लोट पोट होने लगते हैं। इस प्रकार आज प्रभु सब माया--छलना से रहित होकर भक्तों के प्रति कह रहे है ॥ ११९ ॥ श्री वैकुण्ठ के अधीश्वर विराजमान हैं। चन्दन और मालाओं से श्री अंग परिपूर्ण है ॥ १२० ॥ कोई प्यारा भक्त श्रीअंग पर पंखा कर रहा है, कोई अति लाडला उनके केशों को सँवार रहा है ॥ १२१ ॥

एइ मत सकल दिवस पूर्ण हैल। सन्ध्या आसि परम-कौतुके प्रवेशिल ॥१२३॥
धूप दीप लइया सकल भक्त गण। अर्चना करिते लागि लेन श्रीचरण ॥१२४॥
शङ्ख, घन्टा, करताल, मन्दिरा, मृदङ्ग। वाजायेन वहु विध उठिल आनन्द ॥१२५॥
अमायाय वसिया आछेन गौरचन्द्र। किछु नाहि वोले जत करे भक्त वृन्द ॥१२६॥
नाना विध पुष्प सभे पाद पद्मे दिया। "त्राहि प्रभु" वलि पड़े दण्डवत् हैया ॥१२७॥
केहो काकु करे, केहो करे जय ध्वनि। चतुर्दिगे आनन्द क्रन्दन मात्र शुनि ॥१२८॥
कि अद्भुत सुख हैल निशार प्रवेशे। जे आइसे से-इ जेन वैकुण्ठे प्रवेशे ॥१२९॥
प्रभुर हइल महा-ऐश्वर्य-प्रकाश। जोड़ हस्ते सम्मुखे रहिला सर्व दास ॥१३०॥
भक्त-अङ्गे अङ्ग दिया पाद पद्म मेलि। लीलाय आछेन गौर सिंह कुतूहली ॥१३१॥
करोन्मुख हइलेन श्रीगौर सुन्दर। जोड़ हस्ते रहिलेन सर्व-अनुचर ॥१३२॥
सात प्रहरिया-भावे सर्व जने जने। अमायाय प्रभु कृपा करेन आपने ॥१३३॥
आज्ञा हैल "श्रीधरेर झाट गिया आन'। आसिया देखुक मोर प्रकाश-विधान ॥१३४॥
निरवधि भावे मोर वड़ दुःख पाय्या। आसिया देखुक मोरे, झाट आन' गिया ॥१३५॥
नगरेर अन्ते गिया थाकिह वसिया। जे मोरे डाकये तारे आनिह धरिया" ॥१३६॥
धाइल वैष्णव गण प्रभुर वचने। आज्ञा लइ गेला तारा श्रीधर-भवने ॥१३७॥
सेइ श्रीधरेर किछु शुनह आख्यान। खोलार पसार करि राखे निज-प्राण ॥१३८॥
एक बार खोला गाछि किनिञा आनय। खानि खानि करि ताहा काटिया वेचय ॥१३९॥

---

कोई दूसरा दुलारा दास उनको ताम्बूल अर्पण कर रहा है। कोई गा रहे हैं तो कोई सामने नृत्य कर रहे हैं ॥ १२२ ॥ इसी प्रकार समस्त दिन व्यतीत हो गया। परम कौतुक के साथ संध्या ने प्रवेश किया ॥ १२३ ॥ भक्त लोग सब धूप दीप लेकर प्रभु के श्री चरणों की आरती उतारने लगे ॥ १२४ ॥ और शङ्ख घण्टा, करताल, मजीरा, मृदंग बजाने लगे—परम आनन्द छा गया ॥ १२५ ॥ प्रभु माया—रहित होकर बैठे हैं। भक्त लोग कुछ भी करें, प्रभु कुछ नहीं कहते हैं ॥ १२६ ॥ फिर सब भक्तों ने नाना प्रकार के पुष्प प्रभु के श्री पाद पद्म पर अर्पण किये तथा "रक्षा करो प्रभो ! कहते हुए दण्ड के समान भूमि पर पड़ गए। १२७॥ कोई भक्त गिडगिड़ाते हुए विनती कर रहे हैं तो कोई जय जयकार कर रहे हैं। बस चारों ओर आनन्द का क्रन्दन कोलाहल मचा हुआ है ॥ १२८ ॥ संध्या के समय कैसा अद्भुत सुख छा गया कि जो आता है वही मानो तो वैकुण्ठ में ही चला जाता है ॥ १२९ ॥ प्रभु अपने महा ऐश्वर्य का प्रकाश करके विराजमान हैं और सब दास वृन्द हाथ जोड़ सन्मुख खड़े हैं ॥ १३० ॥ परम विनोदी गौरसिंह भक्त के अंग के ऊपर अङ्ग ( हस्त ? ) दिये चरण कमलों को मिला कर आनन्द पूर्वक सिंहासन पर विराजमान हैं ॥ १३१ ॥ तब श्री गौरसुन्दर वर देने के लिए तैयार हुए। सब अनुचर वृन्द हाथ जोड़े हुए हैं ॥ १३२ ॥ इस "सात—पहरिया भाव" में एक २ भक्त के ऊपर प्रभु स्वयं अमायिकी कृपा करते हैं ॥१३३॥ श्रीमुख से आज्ञा हुई कि 'झट से श्रीधर को ले आओ। वह आकर मेरे प्रकाश के विधान को देखे" ॥१३४॥ "वह बड़ा दुःख पाता हुआ भी निरन्तर मेरा चिन्तन किया करता है। झटपट ले आओ उसे। वह आकर मुझे देखे ॥१३५ ॥ तुम लोग इस मोहल्ले के आखीर में जाकर रहो। वहाँ जिस को तुम मुझे बुलाते हुए सुनो, उसे पकड़ लाना" ॥ १३६ ॥ प्रभु के वचनों को सुन कर वैष्णव लोग "जो आज्ञा" कह कर श्रीधर के घर को उठ भागे ॥ १३७ ॥ उस श्रीधर का चरित्र कुछ सुनो। वह केला की दुकान कर अपने प्राणों की रक्षा करता है ॥ १३८ ॥ एक बार

ताहाते जे-किछु हय दिवसे उपाय। तार अर्द्ध गङ्गार नैवेद्य लागि जाय ॥१४०॥
अर्द्धेक सदाय हय निज-प्राण-रक्षा। एइ मत हय विष्णु भक्तेर परीक्षा ॥१४१॥
महा सत्य वादी तिंहो जेन युधिष्ठिर। आर जेइ मूल्य बोले, ना हय बाहिर ॥१४२॥
मध्ये मध्ये जेबा जन ताँर तत्त्व जाने। ताहार वचने मात्र द्रव्य-खानि किने ॥१४३॥
एइ मते नवद्वीपे आछे महाशय। 'खोलाबेचा' ज्ञान करि केहो नाचिनय ॥१४४॥
चारि-प्रहर रात्रि निद्रा नाहि कृष्ण नामे। सर्व-रात्रि 'हरि' बोले दीघल-आह्वाने ॥१४५॥
जतेक पाषण्डी बोले श्रीधरेर डाके। रात्रे निद्रा नाहि जाइ दुइ कर्ण फाटे ॥१४६॥
महा-चाषा बेटा! भाते पेट नाहि भरे। क्षुधाय व्याकुल हैया रात्रि जागि मरे' ॥१४७॥
एइ मत पाषण्डी मरये मन्द बलि। निज कार्य करये श्रीधर कुतूहली ॥१४८॥
'हरि' बलि, डाकिते जे आछये श्रीधर। निशा भागे प्रेम योगे डाके उच्च स्वर ॥१४९॥
आध पथ भक्त गण गेल मात्र धाय्या। श्रीधरेर डाक शुने—तथाइ थाकिया ॥१५०॥
डाक-अनुसारे गेला भागवत गण। श्रीधरेर धरिया लइला ततक्षण ॥१५१॥
"चल चल महाशय! प्रभु देख सिया। आमरा कृतार्थ हइ तोमा परशिया ॥१५२॥
शुनिञा प्रभुर नाम श्रीधर मूर्च्छित। आनन्दे विह्वल हइ पड़िला भूमित ॥१५३॥
आथे व्यथे भक्त गण लइला तुलिया। विश्वम्भर-अग्रे निल आलग करिया ॥१५४॥
श्रीधर देखिया प्रभु प्रसन्न हइला। 'आइस-आइस' करि बलिते लागिला ॥१५५॥

जो केला का वृक्ष ख़रीद कर ले आता है, उसके टुकड़े २ कर उन्हें बेचता है ॥ १३९ ॥ उससे दिन भर में जो कुछ कमाई होती है, उसके आधे से श्री गङ्गाजी को भोग लगाता है ॥ १४० ॥ और आधे से ही सदा अपने प्राणों की रक्षा करता है। विष्णु-भक्त की परीक्षा इसी प्रकार हुआ करती है ॥ १४१ ॥ वह महा सत्यवादी है मानो तो युधिष्ठिर ही हो। जो मूल्य एक बार कह देता, उससे फिर दूसरा मूल्य नहीं कहता ॥ १४२ ॥ जो लोग उसकी इस यथार्थ वादिता को जानते हैं, वे बीच २ में इसके पास से लेते हैं। जो मूल्य वह एक बार कह देता है, तुरन्त ही वही मूल्य देकर ले जाते हैं ॥ १४३ ॥ इस प्रकार ये 'महाशय' नवद्वीप में रहते हैं। पर 'खोला बेचने वाला' समझ कर कोई इनको नहीं पहचानता है ॥ १४४ ॥ श्रीकृष्ण नाम लेते हुए इन्हें रात चार पहर नींद नहीं सारी रात "हरि हरि" को ऊँचो २ टेर लगाते हैं ॥ १४५ ॥ पाखण्डी निन्दक लोग कहते कि श्रीधर की चिल्लाहट के मारे हम रात भर सो नहीं पाते हैं और हमारे दोनों कान फटे जाते हैं ॥ १४६ ॥ "गँवार उल्लू कहीं का। भात से पेट भरता नहीं—इसी से भूख से व्याकुल होकर यह रात भर जग-जग कर मरता है" ॥ १४७ ॥ इस प्रकार पाखण्डी लोग गाली दे दे कर जलते-मरते पर श्रीधर मस्त होकर अपने काम में लगा रहता ॥ १४८ ॥ रात्रि का समय है। श्रीधर अपने घर में ऊँचे २ सुर से, बड़े प्रेम के साथ "हरि हरि टेर रहा है ॥ १४९ ॥ इधर से भक्त लोग आधा ही रास्ता जा पाये थे कि वहीं उनको श्रीधर की टेर सुनायी पड़ी ॥ १५० ॥ उस टेर का अनुसरण करते हुए भक्त लोग चले और तुरन्त ही श्रीधर को जा पकड़ा ॥ १५१ ॥ वे बोले—"महाशय जी! चलिए, चलिए! प्रभु के दर्शन कीजिए। हमतो आज तुम्हारा स्पर्श पा कर कृतार्थ हुए" ॥ १५२ ॥ प्रभु का नाम सुन कर श्रीधर तो मूर्च्छित हो गया और आनन्द में विह्वल होकर भूमि पर गिर पड़ा ॥ १५३ ॥ भक्त लोगों ने जैसे-तैसे उसको उठाया और सब से बचा कर श्री विश्वम्भर के आगे ले आए ॥ १५४ ॥ श्रीधर को देख कर प्रभु बड़े प्रसन्न हुए और "आओ २" कहने लगे ॥ १५५ ॥ श्रीधर! तुमने मेरी अमित आराधना की है और मेरे

विस्तर करिया आछ मोर आराधन । बहु जन्म मोर प्रेमे त्यजिला जीवन ।।१५६।।
एइ जन्मे मोर सेवा करिला विस्तर । तोमार खोलाय अन्न खाइलुँ निरन्तर ।।१५७।।
तोमार हस्तेर द्रव्य खाइलुँ विस्तर । पासरिला आमा' सङ्गे जे कैला उत्तर" ।।१५८।।
जखने करिला प्रभु विद्यार विलास । परम-उद्धत हेन जखने प्रकाश ।।१५९।।
सेइ काले गूढ़-रूपे श्रीधरेर सङ्गे । खोला-केना-बचा-छले कैल बहुरङ्गे ।।१६०।।
प्रतिदिन श्रीधरेर पसारेते गिया । थोड़, कला, मूल, खोला आनेन किनिया ।।१६१।।
प्रति दिन चारि दण्ड कलह करिया । तबे से किनये द्रव्य अर्द्ध-मूल्य दिया ।।१६२।।
सत्य वादी श्रीधर- जे निव ताहा बोले । अर्द्ध मूल्य दिया प्रभु निज-हस्ते तोले ।।१६३।।
उठिया श्रीधर दास करे काढ़ा काढ़ि । एइ मत श्रीधर-ठाकुरे हुड़ा हुड़ि ।।१६४।।
प्रभु बोले "केने भाइ श्रीधर तपस्वि । अनेक तोमार अर्थ आछे हेन वासि ।।१६५।।
आमार हाथेर द्रव्य लइसि काढ़िया । एत-दिने केवा आमि ना जानिल इहा ।।१६६।।
परम ब्रह्मण्य श्रीधर-क्रुद्ध नाहि हय । वदन देखिया सब द्रव्य काढ़ि लय ।।१६७।।
मदन मोहन रूप गौराङ्ग सुन्दर । ललाटे तिलक उर्द्ध शोभे मनोहर ।।१६८।।
त्रिकच्छ-वसन शोभे कुटिल-कुन्तल । प्रकृते नयन दुइ परम चञ्चल ।।१६९।।
शुभ्र यज्ञ सूत्र शोभे वेढ़िया शरीरे । सूक्ष्म रूपे अनन्त जे हेन कलेवरे ।।१७०।।
अधरे ताम्बूल-हासे श्रीधरे चाहिया । आर वार खोला लये आपने तुलिया ।।१७१।।

---

प्रेम में बहुत से जन्मों में प्राण दिये हैं ।। १५६ ।। "इस जन्म में भी तुमने मेरी बहुत सेवा की है । तुम्हारे खोला (केला की बाहरी धूल) पर मैंने सदा अन्न-प्रसाद पाया है ।। १५७ ।। तुम्हारे हाथ के बहुत से पदार्थ मैंने खाये हैं । तुम मेरे साथ जो सवाल-जबाब किया करते थे—उन्हें भूल गए क्या ?" ।। १५८ ।। ( वह कथा इस प्रकार से है कि ) जिस समय प्रभु-विद्या-विलास में रत थे उस समय आप अपने को परम उद्दण्ड जैसा दिखलाते थे ।। १५९ ।। उस समय अपने रूप को छिपाकर, प्रभु ने श्रीधर के साथ, केला के पत्ते, फल-फूल लेने के छल से बहुत कुछ कौतुक-विनोद किया था ।। १६० ।। आप नित्य प्रति श्रीधर के दुकान पर जाकर केला के फूल गुदा फल, मूल छाल, मोल ले आते थे ।। १६१ ।। परन्तु प्रति दिन चार घड़ी उससे लड़-झगड लेते थे और तब आधे दाम पर वस्तु मोल लेते थे ।। १६२ ।। सत्यवादी श्रीधर जो दाम लेंगे वही बतलायेंगे भी, परन्तु प्रभु उसका आधा ही देकर वस्तु अपने ही हाथ से उठा लेते हैं ।। १६३ ।। तब दास श्रीधर भी उठ कर खड़ा हो जाता है और छीनने लगता है । इस प्रकार सेवक श्रीधर और प्रभु गौर में खब छीना—झपटी और जिद्दम जिद्द चलती है ।। १६४ ।। प्रभु कहते—"क्यों भाई तपस्वी श्रीधर ! मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम्हारे पास बहुत धन है ।। १६५ ।। तुम मेरे हाथ से चीज-वस्तु छीन लेते हो ! अरे ! तुम इतने दिनों में भी न जान पाये कि मैं कौन हूँ ?" ।। १६६ ।। श्रीधर परम ब्राह्मण भक्त है, वह प्रभु पर क्रोध नहीं करता है । बस उनके मुख-चन्द्र की ओर ताकता है और अपनी सब चीजें छीन लेता है ।। १६७ ।। श्री गौरांग-सुन्दर का मदनमोहन रूप है—मस्तक पर ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक मनोहर शोभा दे रहा है ।।१६८।। त्रिकच्छ वस्त्र धारण किये हुए हैं, कुटिल कुन्तल शोभा दे रहे हैं । नयन युगल सहज स्वभाव से परम चंचल हैं ।। १६९ ।। शुभ्र यज्ञोपवीत बदन पर शोभा दे रहा है—यह यज्ञोपवीत क्या है—मानो तो अनन्त ( शेष ) देव ही सूक्ष्म रूप से श्री अंग पर विराजमान हैं ।। १७० ।। अधर पर पान की लाली है । ऐसे अधरों से आप श्रीधर की ओर देख कर हँस देते हैं और फिर दुबारा केला उठा लेते हैं ।। १७१ ।। श्रीधर कहता है "सुनो ब्राह्मण

श्रीधर बोलेन "शुन ब्राह्मण-ठाकुर । क्षमा कर' मोरे मुञि तोमार कुक्कुर ॥१७२॥
प्रभु बोले "जानि तुमि परम-चतुर । खोला-बेचा अर्थ आछे तोमार प्रचुर ॥१७३॥
"आर कि पसार नाहि" श्रीधर से बोले । "अल्प कड़ि दिया तथा किन' पात खोले ॥१७४॥
प्रभु बोले "योग निञा आमि नाहि छाड़ि । थोड़ कला दिया मोरे तुमि लह कड़ि ॥१७५॥
रूप देखि मुग्ध हैया श्रीधर से हासे । गालि पाड़े विश्वम्भर परम सन्तोषे ॥१७६॥
"प्रत्यह गङ्गारे द्रव्य देह' त किनिया । आमारे वा किछु दिले मूल्येते छाड़िया ॥१७७॥
जे गङ्गा पूजह तुमि, आमि तार पिता । सत्य सत्य तोमारे कहिलु एइ कथा" ॥१७८॥
कर्णे धरि श्रीधर से 'हरि हरि' बोले । उद्धत देखिया तारे देइ पात-खोले ॥१७९॥
एइ मत प्रति दिन करेन कन्दल । श्रीधरेर ज्ञान-"विप्र परम-चञ्चल" ॥१८०॥
श्रीधर बोलेन "मुञि हारिलु तोमारे । कड़ि बिनु किछु दिब क्षमा कर' मोरे ॥१८१॥
एक खण्ड खोला दिब, एक खण्ड थोड़ । एक खण्ड कला मूल, आरो दोष मोर ॥१८२॥
प्रभु बोले "भाल भाल आर नाहि दाय । श्रीधरेर खोले प्रभु प्रत्यह अन्न खाय ॥१८३॥
भक्तेर पदार्थ प्रभु हेन मते खाय । कोटि हैले अभक्तेर उलटि ना चाय ॥१८४॥
एइ लीला करिब चैतन्य हेन आछे । इहार कारणे से श्रीधर खोला बेचे ॥१८५॥
एइ लीला लागिया श्रीधरे बेचे खोला । के बुझिते पारे विष्णु-वैष्णवेर लीला ॥१८६॥
विनि प्रभु जानाइले सेइ नाहि जाने । सेइ कथा प्रभु कराइ लेन स्मरणे ॥१८७॥

---

देवता ! मुझे क्षमा करो । मैं तो तुम्हारा कुत्ता हूँ" ॥ १७२ ॥ प्रभु कहते-"मैं जानता हूँ, तुम बड़े चतुर हो । खोला बेच २ कर तुम्हारे पास काफी धन हो गया है ॥ १७३ ॥ श्रीधर कहता-"क्या और दुकानें नहीं हं । कम दाम देकर वहीं से केला, पत्ता खरीद लो" ॥ १७४ ॥ प्रभु कहते-"मैं अपने रोज के सौदागर को नहीं छोड़ सकता । अरे ! दाम लो मुझसे और दो थोड़े ( केला का गुदा ) और केला ॥ १७५ ॥ श्रीधर तो प्रभु का रूप देख कर मुग्ध हो जाता है और हँसने लगता है । तब तो प्रभु विश्वम्भर मन में परम संतुष्ट होते हुए भी बाहर से खरी-खोटी सुनाने लगते हैं ॥ १७६ ॥ प्रभु कहते-"तुम नित्य प्रति चीज वस्तु खरीद कर गङ्गा को तो चढ़ाते हो, फिर मेरे लिए दाम कुछ छोड़ दोगे तो क्या हो जायगा ॥ १७७ ॥ अरे ! जिस गङ्गा की तुम पूजा करते हो मैं तो उसका बाप हूँ । यह मैंने तुमसे सत्य २ बात कही है ॥ १७८ ॥ तब तो श्रीधर झट से अपने कानों को पकड़ कर "हरि हरि" कहने लगता, और अत्यन्त ढीठ देख कर उनको खोला-पत्ता दे देता ॥ १७९ ॥ इस प्रकार प्रभु नित्य प्रति श्रीधर से तकरार किया करते । श्रीधर बस इतना ही जानता कि यह विप्र बड़ा चंचल है ॥ १८० ॥ श्रीधर कहता-"मैं हारा ! मैं तुम्हें बिना मूल्य के कुछ दूँगा-क्षमा करो मुझे ॥ १८१ ॥ एक टुकड़ा खोला एक टुकड़ा थोड, और एक टुकड़ा केला-मूल दूँगा-फिर तो मेरा कोई दोष नहीं रहेगा न ॥ १८२ ॥ प्रभु कहते-'अच्छा २ ! अब और तुम्हारा देना नहीं है" । श्रीधर के खोला पर प्रभु प्रति दिन अन्न-भात खाते हैं । १८३ ॥ भक्तों की वस्तु ही प्रभु इस प्रकार खाते हैं । अभक्तों की वस्तु कोटि २ क्यों न हो-उधर उलट कर के भी नहीं देखते हैं ॥ १८४ ॥ श्री चैतन्यचन्द्र श्रीधर के साथ इस प्रकार की लीला करेंगे ऐसा ही विधान था । इसीलिए श्रीधर खोला बेचते हैं ॥ १८५ ॥ इस लीला के लिए ही श्रीधर खोला बेचते हैं । विष्णु और वैष्णवों की लीला कौन समझ सकता है ॥ १८६ ॥ बिना प्रभु के जनाये, वह ( श्रीधर ) भी इसे नहीं जानता था । इसीलिए प्रभु ने उस प्रसङ्ग की यहाँ सुध दिलाई ॥ १८७ ॥ प्रभु बोले-"श्रीधर ! देख मेरे रूप को ! यदि तू चाहे तो अष्ट सिद्धियों को आज

प्रभु बोले "श्रीधर ! देखह रूप मोर । अष्ट सिद्धि दास आजि करि देउ तोर" ॥१८८॥
माथा तुलि चा'हे महा पुरुष श्रीधर । तमाल-श्यामल देखे सेइ विश्वम्भर ॥१८९॥
हाथे वंशी मोहन, दक्षिणे वलराम । महा ज्योतिर्मय सब देखे विद्यमान ॥१९०॥
कमला ताम्बूल देइ हस्तेर उपरे । चतुर्मुख पञ्च मुख आगे स्तुति करे ॥१९१॥
महा फणा-छत्र देखे शिरेर उपरे । सनक, नारद, शुक, देखे जोड़ करे ॥१९२॥
प्रकृति-स्वरूपा सब जोड़-हस्त करि । स्तुति करे चतुर्दिगे परम-सुन्दरी ॥१९३॥
देखि मात्र श्रीधर हइला मूरछित । सेइ मत ढलिया पड़िला पृथिवीत ॥१९४॥
"उठ उठ श्रीधर !" प्रभुर आज्ञा हैल । प्रभु-वाक्ये श्रीधर से चैतन्य पाइल ॥१९५॥
प्रभु बोले "श्रीधर ! आमारे कर' स्तुति" । श्रीधर बोलये "नाथ मुञि मूढ़ मति ॥१९६॥
कोन् स्तुति जानों मुञि-छारेर शकति । प्रभु बोले "तोर वाक्य-सेइ मोर स्तुति" ॥१९७॥
प्रभुर आज्ञाय जगन्माता सरस्वती । प्रवेशिला जिह्वाय, श्रीधर करे स्तुति ॥१९८॥
"जय जय जय महाप्रभु विश्वम्भर । जय जय जय नवद्वीप-पुरन्दर ॥१९९॥
जय जय अनन्त-ब्रह्माण्ड-कोटि-नाथ । जय जय शची-पुण्यवती-गर्भ जात ॥२००॥
जय महा-वेद-गोप्य जय विप्रराज । युगे युगे धर्म पाल' करि नाना काज ॥२०१॥
गूढ़ रूपे पेड़ाइला नगरे नगरे । विनि तुमि जानाइले के जानिते पारे ॥२०२॥
तुमि धर्म तुमि कर्म तुमि भक्ति ज्ञान । तुमि शास्त्र तुमि वेद तुमि सर्व ध्यान ॥२०३॥
तुमि ऋद्धि तुमि सिद्धि तुमि योग भोग । तुमि श्रद्धा तुमि दया तुमि मोह लोभ ॥२०४॥

---

तेरी दासी बना दूँ" ॥ १८८ ॥ महापुरुष श्रीधर ने सिर उठा कर देखा तो गौर विश्वम्भर को तमाल सदृश श्याम रूप में दर्शन किया ॥ १८९ ॥ उनके हाथ में मोहिनी वंशी है. दाहिनी ओर बलराम हैं और भी महा ज्योतिर्मय स्वरूप विराजमान हैं ॥ १९० ॥ लक्ष्मी जी आप के हाथ में ताम्बूल दे रही हैं । सामने चतुर्मुख पञ्चमुख आदि देवता गण स्तुति कर रहे हैं ॥ १९१ ॥ शीश के ऊपर महाफणों का क्षत्र दिखाई देता है । और हाथ जोड़े हुए सनकादि, नारद, शुकदेव आदि मुनिगण भी दिखाई देते हैं ॥ १९२ ॥ शक्ति स्वरूपिणी परम सुन्दरी रमणी गण सब हाथ जोड़े, चारों ओर खड़ी स्तुति कर रही हैं ॥ १९३ ॥ ये सब देखते ही श्रीधर तो मूर्च्छित हो गया, और पृथ्वी पर लुढक पड़ा ॥ १९४ ॥ तब प्रभु को आज्ञा हुई कि "उठ २ श्रीधर" प्रभु के वाक्य से श्रीधर सचेत हो उठा ॥ १९५ ॥ प्रभु बोले "श्रीधर ! मेरी स्तुति कर !" श्रीधर बोला— "नाथ ! मैं तो मूढ मति हूँ" ॥ १९६ ॥ "मैं भला आपकी स्तुति क्या जानूँ । इस तुच्छ की शक्ति ही क्या ? प्रभु बोले "तेरे मुख के वचन ही मेरी स्तुति है । तू बोल कुछ" ॥ १९७ ॥ प्रभु की आज्ञा से जगन्माता सरस्वती श्रीधर की जिह्वा पर आ विराजीं, और श्रीधर स्तुति करने लगा ॥ १९८ ॥ "महाप्रभु विश्वम्भर की जय ३ नवद्वीप—पुरन्दर की जय ३ ॥ १९९ ॥ अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के नाथ की जय २ । पुण्यवती शची के गर्भ से प्रकट प्रभु की जय २ ॥ २०० ॥ "हे वेद के महागोप्य तत्त्व ! आपकी जय हो । हे विप्रराज ! आपकी जय हो । आप युग २ में नाना कार्य द्वारा धर्म को पालन किया करते हैं ॥ २०१ ॥ आप इस नदिया नगर में गुप्त रूप से विचरते रहे, आप को कोई पहचान न सका । आप के जनाये बिना कौन आप को जान भी कौन सकता है ॥ २०२ ॥ "तुम धर्म स्वरूप हो, तुम कर्म स्वरूप हो । तुम ही भक्ति और ज्ञान स्वरूप हो । तुम शास्त्र हो तुम वेद हो और तुम ही सर्वध्यान स्वरूप हो ॥ २०३ ॥ तुम ऋद्धि हो, तुम सिद्धि हो, तुम ही योग और भोग-स्वरूप हो । तुम श्रद्धा हो, तुम दया हो, तुम ही मोह और लोभ स्वरूप हो ॥२०४॥

तुमि इन्द्र तुमि चन्द्र तुमि अग्नि जल। तुमि सूय तुमि वायु तुमि धन बल ॥२०५॥
तुमि भक्ति तुमि मुक्ति तुमि अज भव। तुमिवा हइवे केने–तोमार ए सब ॥२०६॥
पूर्वे मोर स्थाने तुमि आपने वलिला। 'तोर गङ्गा देख मोर चरण-सलिला" ॥२०७॥
तभू मोर पाप-चित्ते नहिल स्मरण। ना जानिलुँ तुमा दुइ अमूल्य चरण ॥२०८॥
जे तुमि करिला धन्य गोकुल नगरे। एखने हइला नवद्वीप-पुरन्दरे ॥२०९॥
राखिया वेड़ाओ भक्ति शरीर-भितरे। हेन भक्ति नवद्वीपे हइला वाहिरे ॥२१०॥
भक्ति योगे भीष्म तोमा' जिनिल समरे। भक्ति योगे यशोदाय वान्धिल तोमारे ॥२११॥
भक्ति योगे तोमारे बेचिल सत्य भामा। भक्ति वशे तुमि कान्धे कैल गोपरामा ॥२१२॥
अनन्त ब्रह्माण्ड-कोटि बहे जारे मने। से तुमि श्रीदाम गोप वहिला आपने ॥२१३॥
जाहा हैते आपनार पराभव हये। सेइ वड़ गोप्य, लोक काहारेओ ना कहे ॥२१४॥
भक्ति लागि सर्व-स्थाने पराभव पाय्या। जिनिञा वेड़ाओ तुमि भक्ति लुकाइया ॥२१५॥
से माया हइल चूर्ण आर नाहि लागे। हेर-देख सकल भुवने भक्ति मागे ॥२१६॥
से काले हारिला जन-दुइ चारि-स्थाने। ए काले वान्धिवा तोमा' सर्व जने जने" ॥२१७॥
महा-शुद्धा-सरस्वती श्रीधरेर शुनि। विस्मय पाइला सर्व-वैष्णव-आनि ॥२१८॥
प्रभु वोले "श्रीधर! वाछिया माग' वर। अष्ट सिद्धि दिव आजि तोमार गोचर ॥२१९॥
श्रीधर वोलेन "प्रभु! आरो भाण्डाइवा। निश्चिन्त्ये थाकह तुमि आइ ना पारिवा ॥२२०॥

---

"तुम इन्द्र हो, तुम चन्द्र हो, तुम अग्नि और जल स्वरूप हो। तुम सूर्य हो, तुम वायु हो, तुम ही धन और बल स्वरूप हो ॥२०५॥ तुम भक्ति हो, तुम मुक्ति हो, तुम ही ब्रह्मा और शङ्कर हो। (नहीं २) तुम ये सब क्यों होओगे! ये ही सब तुम्हारे हैं ॥ २०६ ॥ "तुमने आप ही मुझसे पहले कहा था कि देख! यह तेरी गङ्गा तो मेरे चरणों का जल है। २०७ ॥ तब भी मेरे पापी चित्त को चेत नहीं हुआ और मैं तुम्हारे इन अमूल्य चरण युगल को नहीं पहचान सका ॥ २०८ ॥ "जिस तुमने गोकुल नगर को धन्य किया वही तुम अब नवद्वीप में पुरन्दर हुए हो ॥ २०९ ॥ आप जिस भक्ति को अपने भीतर धारण करके विचरते हो, वह भक्ति यहाँ नवद्वीप में बाहर प्रकट हो गई ॥ २१० ॥ "भक्ति के प्रभाव से ही भीष्म पितामह ने तुमको जीत लिया था। भक्ति के बल से ही यशोदा जी ने तुमको बाँध लिया था ॥ २११ ॥ भक्ति के भाव में ही सत्य-भामा ने तुमको बेच दिया था और भक्ति के वशीभूत होकर ही तुमने गोपरमणी ( श्रीराधा ) को अपने कन्धे पर चढ़ाया था ॥ २१२ ॥ तुमको तो अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के प्राणी अपने हृदय में धारण करते हैं और आप तुम श्रीदामा गोप को अपने कन्धे पर ले जाते हो ॥ २१३ ॥ जिसके द्वारा अपनी पराजय होती है, उसे लोग किसी को बतलाते नहीं, उसे तो बड़े यत्न से छिपा कर रखते है ॥ २१४ ॥ तुम भी भक्ति महारानी के द्वारा सब ठौर पछाड़ पा करके भी भक्ति को छिपा कर, विजयी बने हुए विचरते हो ॥२१५॥ अब वह आप की माया ( छल-कपट ) चूर २ हो गई है—वह अब और नहीं चल रही है। कारण कि यह देखो यह देखो सब लोक भक्ति माँग रहे हैं ॥ २१६ ॥ उस समय तो तुम दो चार जनों के पास ही हारे थे, परन्तु इस समय तो तुमको एक २ जन सब ( अपने प्रेम में ) तुमको बाँध लेंगे" ॥ २१७॥ श्रीधर की ऐसी महा विशुद्ध वाणी को सुनकर वैष्णव अग्रगण्य सब विस्मित को प्राप्त हुए ॥ २१८ ॥ तब प्रभु बोले "श्री-धर! चुन करके वर माँग लो। मैं आज अष्ट सिद्धि प्रत्यक्ष रूप में तुमको दे दूँगा" ॥ २१९ ॥ श्रीधर बोला—"प्रभो! और बहकाने चाहते हो क्या? पर यह निश्चय मानो कि अब तुम्हारी चाल चलेगी नहीं

प्रभु बोले "दर्शन मोर व्यर्थ नहे। अवश्य पाइबा वर-जेइ चिते लये" ॥२२१॥
"माग' माग" पुनः पुन बोले विश्वम्भर। श्रीधर बोलये "प्रभु ! देह' एइ वर ॥२२२॥
'जे ब्राह्मण काड़ि लेन मोर खोला पात। से ब्राह्मण हउ मोर जन्मे जन्मे नाथ ॥२२३॥
जे ब्राह्मण मोर सङ्गे करिल कन्दल। मोर प्रभु हउ ताँर चरण-युगल' ॥२२४॥
बलिते बलिते प्रेम बाढ़ये श्रीधरे। दुइ बाहु तुलि कान्दे महा-उच्च स्वरे ॥२२५॥
श्रीधरेर भक्ति देखि वैष्णव-सकल। अन्योऽन्ये कान्दे सब हइया विह्वल ॥२२६॥
हासि बोले विश्वम्भर "शुनह श्रीधर। एक महा राज्ये करों तोमारे ईश्वर ॥२२७॥
श्रीधर बोलये आमि किछुइ ना चाइ। हेन कर' प्रभु ! जेन तोर नाम गाइ ॥२२८॥
प्रभु बोले "श्रीधर ! आमार तुमि दास। एतेके देखिले तुमि आमार प्रकाश ॥२२९॥
एतेके तोमार मति-भेद ना हइल। वेद गोप्य भक्ति योग तोरे आमि दिल ॥२३०॥
जय जय ध्वनि हैल वैष्णव मण्डले। 'श्रीधर पाइल वर' शुनिल सकले ॥२३१॥
धन नाहि, जन नाहि, नाहिक पाण्डित्य। के चिनिब ए सकल चैतन्येर भृत्य ॥२३२॥
कि करिब विद्या-धन-रूप-वेश-कुले। अहङ्कार बाढ़ि सब पड़ये निर्मूले ॥२३३॥
कला मूला वेचिया श्रीधर पाइल जाहा। कोटि-कल्पे कोटीश्वरे ना देखिल ताहा ॥२३४॥
अहङ्कार द्रोह मात्र विषयेते आछे। अधः पात-फल तार ना जानये पाछे ॥२३५॥
देखि मूर्ख-दरिद्रेरे सुजने जे हासे। कुम्भी पाके जाय सेइ निज-कर्म-दोषे ॥२३६॥
वैष्णव चिनिते पारे काहार शकति। आछये सकल सिद्धि, देखिते दुर्गति ॥२३७॥

---

॥ २२० ॥ प्रभु बोले—"परन्तु मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं जाता। जो तुम्हारा चित्त चाहेगा वही वरदान मिल जायगा ॥ २२१ ॥ इस प्रकार जब विश्वम्भर प्रभु बार २ "माँग २" कहने लगे तो श्रीधर बोला—"प्रभो ! यह वर दो कि ॥ २२२ ॥ "जिस ब्राह्मण ने मेरे खोला पत्ते छीने थे, वह ब्राह्मण जन्म २ में मेरे नाथ हों ॥ २२३ ॥ जिस ब्राह्मण ने मेरे साथ झगड़ा किया था उनके युगल चरण मेरे प्रभु हों ॥ २२४ ॥ कहते २ श्रीधर का प्रेमभाव बढ़ चला और वह दोनों बाहु उठा कर बड़े जोर से रोने लगा ॥ २२५ ॥ श्रीधर की यह भक्ति देखकर वैष्णव लोग सब विह्वल हो गए और आपस में रोने लगे ॥ २२६ ॥ तब विश्वम्भर प्रभु हँस कर बोले—"सुनो श्रीधर ! मैं तुमको एक महाराज्य का स्वामी बना देता हूँ" ॥ २२७ ॥ श्रीधर बोला—"मुझे कुछ नहीं चाहिए। बस ऐसा करदो प्रभो ! कि मैं तुम्हारा नाम गाया करूँ" ॥ २२८ ॥ प्रभु बोले—'श्रीधर ! तुम मेरे दास हो। इसीलिए तुमने मेरा यह महा प्रकाश देखा ॥ २२९ ॥ इतने पर भी तुम्हारी मति नहीं टली—अतएव मैंने तुझे वेद-गोप्य भक्ति योग दिया ॥ २३० ॥ वैष्णव मण्डली में जय जयकार की ध्वनि गूंज उठी। श्रीधर को वरदान मिला—यह सबने सुना ॥ २३१ ॥ ओह ! श्री चैतन्यचन्द्र के इन भृत्यों के पास न धन है, न जन है, न पण्डिताई है, इनको कौन पहचान सकता है ॥ २३२ ॥ अरे ! विद्या, धन, रूप, कुल, वेश-भूषा—इनसे क्या होगा ? ये तो अहंकार बढ़ा कर आप भी जड़ समेत नष्ट हो जाते हैं ॥२३३॥ श्रीधर ने केला-मूल बेच कर जो भक्तियोग पाया उसके दर्शन भी करोड़पतियों को करोड़ों कल्पों में नहीं हुए ॥ २३४ ॥ विषय वस्तुओं में केवल अहंकार और द्रोह मात्र हैं, उसका फल अधःपतन है—पर इस परिणाम को लोग नहीं जानते हैं ॥ २३५ ॥ जो सज्जन को मूर्ख और दरिद्र देख कर हँसता है, वह अपने कर्म के दोष से कुम्भीपाक नरक में जाता है ॥ २३६ ॥ किसकी सामर्थ्य है कि वैष्णवों को पहचान सके ? देखने में ही उनको दुर्गति सी है, पर सब सिद्धियाँ उनमें हैं ॥ २३७ ॥ इसका साक्षी है खोला-बेचने वाला श्रीधर !,

खोला बेचा श्रीधर- ताहार एइ साक्षी । भक्ति मात्र निल अष्ट-सिद्धिके उपेक्षि ॥२३८॥
जत देख वैष्णवेर व्यवहार-दुःख । निश्चय जानिह सेइ परानन्द सुख ॥२३९॥
विषय मदान्ध सब ए मर्म ना जाने । विद्या मदे धन मदे वैष्णव ना चिने ॥२४०॥
भागवत पढ़ियाओ कारो बुद्धि नाश । नित्यानन्द निन्दा करे जाइवेक नाश ॥२४१॥
श्रीधर पाइला वर करिया स्तवन । इहा जेइ शुने तारे मिले प्रेम धन ॥२४२॥
प्रेम भक्ति हय कृष्ण चरणार विन्दे । से-इ कृष्ण पाये जे वैष्णव ना निन्दे ॥२४३॥
निन्दाये नाहिक कार्य, सबे पाप-लाभ । एतेके ना करे निन्दा महा महाभाग ॥२४४॥
अनिन्दक हइ जे सकृत् कृष्ण बोले । सत्य सत्य कृष्ण तारे उद्धारिब हेले ॥२४५॥
वैष्णवेर पा'ये मोर एइ मनस्काम । श्रीचैतन्य-नित्यानन्द हउ मोर प्राण ॥२४६॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ॥२४७॥

# अथ दशवाँ अध्याय

मोर बधुँया । गौर गुण निधिया ॥ ध्रु ॥१॥
जय जय महा प्रभु श्रीगौर सुन्दर । जय जय नित्यानन्द अनादि ईश्वर ॥२॥
हेन मते प्रभु श्रीधरेरे वर दिया । 'नाड़ा नाड़ा नाड़ा' बोले मस्तक दुलाञा ॥३॥
प्रभु बोले आचार्य ! मागह निज कार्य । "जे मागिलुँ ताहा पाइलुँ" बोलये आचार्य ॥४॥
हुङ्कार करये जगन्नाथेर नन्दन । हेन शक्ति नाहि कारो-बलिते बचन ॥५॥

---

जिसने अष्ट सिद्धियों की उपेक्षा करके केवल मात्र भक्ति ही ली ॥ २३८ ॥ वैष्णवों के व्यवहारिक जीवन में जितने भी दुःख दिखाई देते हैं, उनको निश्चय ही परानन्द सुख रूप ही जानना चाहिए ॥ २३९ ॥ विषय-मदान्ध लोग सब इस मर्म को नहीं जानते हैं । वे विद्या और धन के मद में वैष्णव को नहीं पहचान पाते हैं ॥ २४० ॥ किसी २ की बुद्धि तो भागवत पढ़ करके भी नष्ट हो गई है, और वे श्री नित्यानन्द की निन्दा करते हैं–उनका नाश हो जायगा ॥ २४१ ॥ श्रीधर ने प्रभु की स्तुति करके वरदान पाया-इस प्रसङ्ग को जो सुनते हैं वे प्रेम धन पाते हैं ॥ २४२ ॥ उनकी श्री कृष्ण चरणारविन्द में प्रेमभक्ति होती है । वे ही श्रीकृष्ण को पाते हैं जो वैष्णवों की निन्दा नहीं करते हैं ॥ २४३ ॥ निन्दा के द्वारा कुछ काम नहीं बनता है, केवल पाप ही पल्ले पड़ता है । इसी कारण श्रेष्ठ महापुरुष किसी की निन्दा नहीं करते हैं ॥ २४४ ॥ अनिन्दक बन कर जो एक बार भी श्रीकृष्ण का नाम लेता है, श्रीकृष्ण उसका सहज ही में उद्धार कर देंगे–यह सत्य है, सत्य है ॥ २४५ ॥ श्री वैष्णवों के चरणों में मेरी यही मनोकामना है कि श्री चैतन्यचन्द्र और श्रीनित्या-नन्द मेरे प्राण हों ॥ २४६ ॥ श्री कृष्णचैतन्य और श्री नित्यानन्द चन्द्र को अपना सर्वस्व जान कर यह वृन्दावनदास उनके युगल चरणों में उनके ही गुण–गान को समर्पण करता है ॥ २४७ ॥

इति श्री चैतन्य भागवते मध्यखण्डे श्रीधर वर लाभ वर्णनं नाम नवमोऽध्याय ॥

मेरे प्राण बन्धु, गौर गुण निधि ॥ १ ॥ महाप्रभु श्री गौरसुन्दर की जय हो, जय हो । अनादि ईश्वर श्री नित्यानन्द की जय हो, जय हो ॥ २ ॥ इस प्रकार प्रभु ने श्रीधर को वरदान देकर फिर सिर हिलाते हुए "नाड़ा ३" पुकारा ॥ ३ ॥ और बोले "आचार्य ! माँग लो जो तुम्हारी इच्छा हो" । आचार्य बोले–"जो माँगा था वह तो मिल ही गया" ॥ ४ ॥ तब जगन्नाथ-नन्दन हुंकार करने लगे–किसी की शक्ति

महा परकाश प्रभु विश्वम्भर-राय। गदाधर जो गाय ताम्बूल, प्रभु खाय ॥६॥
धरणी धरेन्द्र नित्यानन्द धरे छत्र। सम्मुखे अद्वैत-आदि सब महा पात्र ॥७॥
मुरारिरे आज्ञा हैल "मोर रूप देख"। मुरारि देखये—रघुनाथ परतेख ॥८॥
दूर्वादल श्याम देखे सेइ विश्वम्भर। वीरासने वसि आछे महा धनुर्द्धर ॥९॥
जानकी लक्ष्मण देखे—वामेते दक्षिणे। चौदिगे करये स्तुति वानरेन्द्र गणे ॥१०॥
आपन प्रकृति वासे' जे हेन वानर। सकृत् देखिया मूर्च्छा पाइल वैद्य वर ॥११॥
मूर्च्छित हइया गुप्त मुरारि पड़िला। चैतन्येर फाँदे गुप्त मुरारि रहिला ॥१२॥
डाकि बोले विश्वम्भर "आरे रे वानरा। पासरिलि-तोरे पोड़ाइल सीता चोरा ॥१३॥
तुइ तार पुरी पुड़ि कैलि वंश क्षय। सेइ प्रभु आमि—तोरे दिल परिचय ॥१४॥
उठ उठ मुरारि! आमार तुमि प्राण। आमि सेइ राघवेन्द्र, तुमि हनुमान् ॥१५॥
सुमित्रा-नन्दन देख तोमार जीवन। जारे जियाइले आनि से गन्ध मादन ॥१६॥
जानकीर चरणे करह नमस्कार। जार दुःख देखि तुमि कान्दिला अपार" ॥१७॥
चैतन्येर वाक्ये गुप्त चैतन्य पाइला। देखिया सकल प्रेमे कान्दिते लागिला ॥१८॥
शुष्क काष्ठ द्रवे' शुनि गुप्तेर क्रन्दन। विशेषे द्रविला सर्व-भागवत गण ॥१९॥
पुनरपि मुरारिरे बोले विश्वम्भर। "जे तोमार अभिमत इच्छि लह वर" ॥२०॥
मुरारि बोलये "प्रभु! आर नाहि चाहों। हेन कर' प्रभु! जेन तोर गुण गाओ ॥२१॥

---

नहीं जो मुख से एक भी वचन बोल सके ॥ ५ ॥ ( स्मरण रहे कि ) यह प्रभु विश्वम्भर राय का महा-प्रकाश है। श्री गदाधर ताम्बूल दे रहे है और प्रभु चबा रहे हैं ॥ ६ ॥ धरणी धरेन्द्र श्री नित्यानन्द राय क्षत्र धारण किये हुए हैं, और अद्वैताचार्य आदि महापात्र सब सन्मुख हैं ॥ ७ ॥ तब मुरारि के लिए प्रभु की आज्ञा हुई—"देख मेरा रूप"। तो मुरारि गुप्त साक्षात् श्री रघुनाथ जी के दर्शन करने लगा ॥ ८ ॥ उन्हीं गौर विश्वम्भर देव को वह अब दूर्वा दल श्याम वर्ण का देखता हैं। वीरासन मे विराजमान है। महान् धनुष धारण कर रक्खा है ॥ ९ ॥ बांई ओर श्री जानकी जी के और दांई ओर श्री लक्ष्मण जी के दर्शन होते हैं। और चारों ओर वानर राज वृन्द स्तुति कर रहे हैं ॥ १० ॥ श्री मुरारि भी तो अपने को वानर ही समझते हैं। सो अपने प्रभु श्री रामचन्द्र के एक ही बार दर्शन कर वैद्यराज मुरारि मूच्छित हो गए ॥ ११ ॥ इस प्रकार मुरारि गुप्त मूच्छित हो कर गिर पड़ा—श्री चैतन्यचन्द्र की कृपा के फन्दे में गिरफ्तार हो रहा ॥ १२ ॥ प्रभु विश्वम्भर पुकार कर बोले—"अरे ओ बानर! भूल गया क्या ? सीता चोर रावण ने तुझे जलाना चाहा था ॥ १३ ॥ पर तूने ही उसकी पुरी को जलाकर उसके वंश का विध्वंस कर दिया था। वही प्रभु मैं हूँ—यह मैं तुझे अपना परिचय दे रहा हूँ ॥ १४ ॥ "उठो, उठो मुरारि! तुम तो मेरे प्राण हो। मैं वही राघवेन्द्र राम हूँ और तुम वही हनूमान हो ॥ १५ ॥ और अपने जीवन स्वरूप सुमित्रा-नन्दन ( लक्ष्मण ) को देखो, जिनके प्राणों की रक्षा तुमने गन्ध मादन पर्वत लाकर की थी ॥ १६ ॥ "और जिनके दुःख को देखकर तुम बहुत रोये थे उन जानकी जी के चरणों में नमस्कार करो ॥ १७ ॥ प्रभु चैतन्य चन्द्र के वचनों से मुरारि गुप्त सचेत हुए और इन सब के दर्शन करके मारे प्रेम के रोने लगा ॥ १८ ॥ गुप्त के रोने को सुनकर काठ भी पिघल गये और विशेष करके तो सब भक्त लोग पिघल गये ॥ १९ ॥ प्रभु विश्वम्भर मुरारि से पुनः बोले—"जो तुम्हारी इच्छा हो, सो वर माँग लो" ॥ २० ॥ मुरारि बोला—"प्रभो! मैं और कुछ नहीं चाहता हूँ बस इतना कर दो कि मैं तुम्हारा गुण गाया करूँ" ॥ २१ ॥ और हे

जे-ते ठाञि प्रभु ! केने जन्म नहे मोर। तथाइ तथाइ जेन स्मृति हय तोर ॥२२॥
जन्म जन्म तोमार जे सब प्रभु ! दास। ताँ' सभार सङ्गे जेन हय मोर वास ॥२३॥
'तुमि प्रभु, मुञि दास' इहा नाहि जथा। हेन सत्य कर' प्रभु ! ना फेलिबे तथा ॥२४॥
स-पार्षदे तुमि जथा कर' अवतार। तथाइ तथाइ दास हइव तोमार'' ॥२५॥
प्रभु बोले ''सत्य सत्य एइ वर दिल। महा-महा-जय ध्वनि तत्क्षणे हैल ॥२६॥
मुरारिर प्रति सर्व-वैष्णवेर प्रीत। सर्व-भूते कृपालुता मुरारि चरित ॥२७॥
जे ते स्थान मुरारिर जदि सङ्ग हय। सेइ स्थान सर्व-तीर्थ-श्रीवैकुण्ठ मय ॥२८॥
मुरारिर प्रभाव बलिते-शक्ति कार। मुरारि-वल्लभ प्रभु सर्व-अवतार ॥२९॥
ठाकुर चैतन्य बोले ''शुन सर्व-गण। सकृत् मुरारि-निन्दा करे जेइ जन ॥३०॥
कोटि-गङ्गा स्नाने तार नाहिक निस्तार। गङ्गा-हरि-नामे तार करिव सँहार ॥३१॥
मुरारि वैसये गुप्त इहार हृदये। एतेके 'मुरारि गुप्त' नाम जोग्य हये'' ॥३२॥
मुरारिरे कृपा देखि भागवत गण। प्रेम योगे 'कृष्ण' बलि करये रोदन ॥३३॥
मुरारिरे कृपा कैल श्रीचैतन्य-राय। इहा जेइ शुने सेइ प्रेम भक्ति पाय ॥३४॥
मुरारि श्रीधर कान्दे सम्मुखे पड़िया। प्रभुओ ताम्बूल खाय गर्जिया गर्जिया ॥३५॥
हरि-दास प्रति प्रभु सदय हइया। ''मोरे देख हरिदास !'' बोले डाक दिया ॥३६॥
''एइ मोर देह हैते तुमि मोर बड़। तोमार जे जाति, सेइ जाति मोर दृढ़ ॥३७॥
पापिष्ठ जवने तोमा' बड़ दिल दुःख। ताहा स्मङरिते मोर विदरये बुक ॥३८॥

---

प्रभो ! जहाँ कहीं भी मेरा जन्म क्यों न हो, वहाँ २ तुम्हारी स्मृति बनी रहे ॥ २२ ॥ ''और प्रभो ! जो सब आपके दास हैं, मेरा उन सबके साथ जन्म २ में वास हो ॥ २३ ॥ और जहाँ ''तुम प्रभु और मैं दास'' यह न हो वहाँ मुझ नहीं पटक देना—यह सत्य २ करके दिखाना ॥ २४ ॥ ''और जहाँ २ आप अपने पार्षदों के सहित अवतार लें, वहाँ २ मैं आपका दास बनूँ ॥ २५ ॥ तब प्रभु बोले—''जाओ सत्य २ यही वर दिया'' तब तो तुरन्त ही महा २ जय जयकार ध्वनि होने लगी ॥ २६ ॥ श्री मुरारि के प्रति सब वैष्णवों की बड़ी प्रीति है। मुरारि का चरित्र भी सब जीवों पर कृपा-पूर्ण है ॥ २७ ॥ जैसी-कैसी ठौर पर भी यदि मुरारि का सङ्ग हो जाय, तो वह ठौर सर्व तीर्थमय तथा श्रीवैकुण्ठ मय हो जाता है ॥२८॥ श्री मुरारि गुप्त के प्रभाव को वर्णन करने की सामर्थ्य किसमें है ? सब अवतारों में प्रभु मुरारि-वल्लभ हैं ( अर्थात् (१) मुरारि उनका परम प्रिय है (२) वे मुरारि के परम प्रिय हैं ) ॥ २९ ॥ प्रभु श्री चैतन्य देव फिर बोले—''सब भक्त लोगो ! सुनो ! एक बार भी जो मुरारि की निन्दा करता है ॥ ३० ॥ उसका निस्तार कोटि गङ्गा-स्नान से भी नहीं हो सकता है। गङ्गा और हरि नाम ही उसका नाश कर देंगे ॥ ३१ ॥ इसके हृदय में गुप्त रूप से भगवान् मुरारि निवास करते हैं इसीलिए इसका ''मुरारि गुप्त'' नाम योग्य ही है ॥ ३२ ॥ इस प्रकार मुरारि गुप्त के ऊपर प्रभु की कृपा देख कर सब भक्त लोग प्रेमपूर्वक ''कृष्ण २'' कह कर रोने लगे ॥३३॥ मुरारि के ऊपर श्री चैतन्य राय ने जो कृपा की है इसको जो कोई सुनेगा वह भी प्रेम पायगा ॥ ३४ ॥ इधर मुरारि और श्रीधर प्रभु के सामने पड़े हुए रो रहे हैं और प्रभु भी गरज २ कर पान चबा रहे हैं ॥३५॥ फिर हरिदास के ऊपर दयालु हो प्रभु पुकार कर बोले—''हरिदास ! मुझे देखो ॥ ३६ ॥ ''इस मेरी देह से तुम्हारी देह बड़ी है। और तुम्हारी जो जाति है, मेरी भी निश्चय वही जाति है ॥ ३७ ॥ पापी यवन लोगों ने तुम्हें बड़ा दुःख दिया था। हाय ! उसके स्मरण से मेरा हृदय फटता है ॥ ३८ ॥ ''सुनो २ हरिदास !

शुन शुन हरिदास ! तोमारे जखने । नगरे नगरे मारि बेड़ाय जवने ।।३९।।
देखिया तोमार दुःख, चक्र धरि करे । नाम्बिलुँ वैकुण्ठ हैते सभा' काटि वारे ।।४०।।
प्राणान्त करिया तोमा' मारये सकल । तुमि मने चिन्त' ताहा सभार कुशल ।।४१।।
आपने मारण खाओ, ताहा नाहि लेख' । तखनेओ ता' सभारे मने भाल देख ।।४२।।
तुमि भाल देखिले ना करों मुञि बल । तोलों चक्र, तोमा' लागि से हय विफल ।।४३।।
काटिते ना पारों तोर सङ्कल्प लागिया । तोर पृष्ठे पड़ों तोर मारण देखिया ।।४४।।
तोहोर मारण निज-अङ्गे करि लङो । एइ तार चिह्न आछे, मिछा नाहि कहों ।।४५।।
जेवा गौण छिल मोर प्रकाश करिते । शीघ्र आइलुँ तोर दुःख ना पारों सहिते ।।४६।।
तोमारे चिनिल मोर नाढ़ा भाल मते । सर्व-भावे मोरे वन्दी करिला अद्वैते ।।४७।।
भक्त-वाढ़ाइते निज ठाकुर से जाने । कि ना बोले, कि ना करे, भक्तेर कारणे ।।४८।।
ज्वलन्त-अनल कृष्ण भक्त लागि खाय । भक्तेर किङ्कर हय आपन-इच्छाय ।।४९।।
भक्त बइ कृष्ण आर किछुइ ना जाने । भक्तेर समान नाहि अनन्त-भुवने ।।५०।।
हेन कृष्ण भक्त-नामे ना पाय सन्तोष । सेइ सब पापीरे लागिल दैव दोष ।।५१।।
भक्तेर महिमा भाइ ! देख चक्षु भरि । कि वलिला हरिदास प्रति गौर हरि ।।५२।।
प्रभु मुखे शुनि महा-कारुण्य-वचन । मूर्च्छित पड़िला हरिदास ततक्षण ।।५३।।
बाह्य दूरे गेल, भूमि तले हरि दास । आनन्दे डुबिला तिलार्द्धेक नाहि श्वास ।।५४।।
प्रभु बोले 'उठ उठ मोर हरिदास । मनोरथ भरि देख आमार प्रकाश" ।।५५।।

---

जिस समय यवन लोग तुमको मोहल्ले २ में मारते हुए घूम रहे थे, ।। ३९ ।। उस समय तुम्हारे दुःख को देख कर उन सब यवनों को काट डालने के लिए मैं वैकुण्ठ से चक्र लिये हुए उतरा था ।। ४० ।। "वे तुम्हारे प्राणों का अन्त करते हुए तुमको मार रहे थे पर तुम अपने मन में उनकी मङ्गल-कामना ही कर रहे थे ।। ४१ ।। तुम आप जो मार खा रहे थे, उसकी चिन्ता तुम्हें नहीं थी, तुम तो उस समय भी मन में उनका ही भला सोच रहे थे ।। ४२ ।। "तुम्हें उनका भला सोचते देख कर. मैं भी अपने बल से काम नहीं ले सका। मैं चक्र उठाता पर तुम्हारे कारण से वह बिना चलाये व्यर्थ हो जाता ।। ४३ ।। तुम्हारे शुभ-संकल्प के कारण मैं चक्र चला कर उनको काट नहीं सकता था। तब तुम्हारे ऊपर मार पड़ती देख कर मैं ही तुम्हारे पीठ के ऊपर पड़ गया था ।। ४४ ।। "और तुम पर पड़ने वाली मार को मैंने अपने पीठ पर ले लिया था। मैं मिथ्या नहीं कह रहा हूँ--यह देखो मार के चिन्ह ।। ४५ ।। मेरी इच्छा तो अपने को प्रकट करने की अभी नहीं थी, परन्तु तुम्हारा दुःख न सह सकने के कारण शीघ्र ही प्रकट होना पड़ा ।। ४६ ।। "तुमको मेरे नाढा ने ही भली भाँति पहचाना। अद्वैत ने मुझे सब प्रकार से बन्दी बना लिया है ।। ४७ ।। अपने भक्तों को बढ़ाना भगवान् ही जानते हैं। वे भक्त के लिये क्या २ नहीं कहते और करते हैं ।। ४८ ।। भक्तों के लिए श्री कृष्ण जलती हुई अग्नि को खा जाते हैं और स्वेच्छा से ही भक्तों के किंकर बन जाते हैं ।।४९।। भक्त को छोड़ श्रीकृष्ण और कुछ नहीं जानते हैं। भक्त के समान अनन्त भुवनों में कोई नहीं है ।। ५० ।। ऐसे कृष्ण भक्त के नाम से जो लोग प्रसन्न नहीं होते हैं, वे सब पापी दैव के मारे हुए अभागे हैं ।। ५१ ।। भाइयो ! भक्त की महिमा आँख खोल कर देख लो ! हरिदास के प्रति गौरहरि ने क्या कहा ।। ५२ ।। प्रभु के श्रीमुख से परम करुणा युक्त वचनों को सुनकर हरिदास तत्क्षण मूर्च्छित हो गए ।। ५३ ।। बाहर की सुध जाती रही, भूमि पर पड़े हुए हरिदास आनन्द में डूब गए। साँस आधा तिल भर भी चलती न थी ।। ५४ ।। प्रभु बोले--"मेरे हरि-

बाह्य पाइल हरि दास प्रभुर वचने। कोथा रूप-दरशन–करये क्रन्दने ॥५६॥
सकल अङ्गणे पड़ि गड़ा गड़ि जाय। महाश्वास वहे क्षणे, क्षणे मूर्च्छा पाय ॥५७॥
महावेश हैल हरि दासेर शरीरे। चैतन्य कराये स्थिर, तभू नहे स्थिरे ॥५८॥
"बाप विश्वम्भर प्रभु जगतेर नाथ। पात कीरे कर' कृपा, पड़िलुँ तोमा' त ॥५९॥
निर्गुण अधम सर्व-जाति-वहिष्कृत। मुञि कि बलिव प्रभु! तोमार चरित ॥६०॥
देखिले पातक मोरे, परशिले स्नान। मुञि कि बलिव प्रभु! तोमार आख्यान ॥६१॥
एक सत्य करियाछ आपन-वदने। जे जन तोमार करे चरण-स्मरणे ॥६२॥
कीट तुल्य हय तभु तारे नाहि छाड़। इहाते अन्यथा हैले नरेन्द्रे रे पाड़' ॥६३॥
एइ बल नाहि मोर–स्मरण विहीन। स्मरण करिले मात्र–राख तुमि दीन ॥६४॥
सभा-मध्ये द्रौपदी करिते विवसन। आनिल पापिष्ठ दुर्योधन दुःशासन ॥६५॥
सङ्कटे पड़िया कृष्णा तोमा स्मङरिला। स्मरण-प्रभावे तुमि वस्त्रे प्रवेशिला ॥६६॥
स्मरण-प्रभावे वस्त्र हइल अनन्त। तथापिह ना जानिल से सब दुरन्त ॥६७॥
कोन-काले पार्वतीरे डाकि नीर गणे। वेढ़िया खाइते कैल तोमार स्मरणे ॥६८॥
स्मरण-प्रभावे तुमि आविर्भाव हैया। करिला सभार शास्ति वैष्णवी तारिया ॥६९॥
हेन-तुया-स्मरण-विहीन मुञि पाप। मोरे तोर चरणे शरण देह' बाप ॥७०॥
विष, सर्प, अग्नि, जले पाथरे वान्धिया। फेलिल प्रह्लादे दुष्ट हिरण्य धरिया ॥७१॥

---

दास! उठो २। प्राण भर कर मेरे ऐश्वर्य प्रकाश के दर्शन करो" ॥ ५५ ॥ प्रभु के वचन से हरिदास की सुध-बुध लौट आई परन्तु रूप के दर्शन करना तो कहाँ, रोना शुरु किया ॥ ५६ ॥ वे रोते २ सारे आंगन भर में लुढकने लगे क्षण में तो लम्बी २ साँसे लेते हैं, और क्षण में बेसुध पड़े रहते हैं ॥ ५७ ॥ हरिदास के शरीर में भाव का बड़ा भारी आवेश हो आया। श्री चैतन्य प्रभु उसे शान्त करते हैं पर तब भी वे शान्त नहीं हो पाते हैं ॥ ५८ ॥ हरिदास जो बोले –"हे मेरे बाप! हे विश्वम्भर! हे प्रभो! हे जगन्नाथ! पातकी के ऊपर कृपा करो। यह तुम्हारे श्री चरणों में पड़ा है ॥ ५९ ॥ मैं निगुनी हूँ, अधम हूँ, सब जाति से बाहर हूँ। हे प्रभो! मैं भला तुम्हारे चरित्र को क्या कह सकता हूँ ॥ ६० ॥ मुझे देख लेने से पाप लगता है, छू लेने से नहाना पड़ता है–ऐसा मैं प्रभो! तुम्हारे चरित्र को क्या बखान करूँ ॥ ६१ ॥ ( पर हाँ ) आप अपने श्रीमुख के एक वचन को सदा सत्य करते आये हैं कि जो जन तुम्हारे श्री चरण का स्मरण करता है ॥ ६२ ॥ वह चाहे कीट समान क्यों न हो, उसे भी आप कभी नहीं छोड़ते हैं। पर विपरीत चलने वाला राजा ही क्यों न हो, उसे भी आप नीचे गिरा देते हैं ॥ ६३ ॥ केवल स्मरण मात्र करने पर आप दीन की रक्षा कर देते हैं–परन्तु मैं तो स्मरण-शून्य हूँ स्मरण का यह बल भी तो मुझमें नहीं है ॥ ६४ ॥ सभा के मध्य में द्रौपदी को नंगी करने के लिये पापी दुर्योधन और दुशासन उसे ले आए ॥ ६५ ॥ उस समय संकट में पड़ कर द्रौपदी ने तुम्हारा स्मरण किया। स्मरण के प्रभाव से तुम उसके वस्त्र में प्रवेश कर गए ॥ ६६ ॥ स्मरण के प्रभाव से वस्त्र अनन्त हो गया। तब भी वे सब दुष्ट इस कृपा को न समझ सके ॥ ६७ ॥ किसी समय पार्वती को डाकिनियों के झुण्ड ने घेर लिया और उनको खाना चाहा। तब उन्होंने तुम्हारा स्मरण किया ॥ ६८ ॥ स्मरण के प्रभाव से तुम प्रकट हुए और उन डाकिनियों को दण्ड देकर तुमने वैष्णवी देवी ( पार्वती ) की रक्षा की ॥ ६९ ॥ ऐसा जो तुम्हारा स्मरण है, मैं पापी तो उससे विहीन हूँ। हे बाप जो! मुझे अपने चरणों की शरण दो ॥ ७० ॥ दुष्ट हिरण्यकश्यप ने प्रह्लाद को विष दिया, सर्प से डस-

प्रह्लाद करिल तोर चरण-स्मरण। स्मरण-प्रभावे सर्व-कृत्या विमोचन ॥७२॥
कारो वा भाङ्गिल दन्त, कारो तेज नाश। स्मरण-प्रभावे तुमि हइला प्रकाश ॥७३॥
पाण्डु पुत्र स्मङरिल दुर्वाशार भये। अरण्ये प्रत्यक्ष हैला हइया सदये ॥७४॥
चिन्ता नाहि युधिष्ठिर! हेर् देख आमि। आमि दिव मुनि-भिक्षा, वसि थाक तुमि ॥७५॥
अवशेष एक शाक आछिल हाण्डीते। सन्तोषे खाइला निज भकत राखिते ॥७६॥
स्नाने सब ऋषिर उदर महा फूले। सेइ मत सब ऋषि पलाइला डरे ॥७७॥
स्मरण-प्रभावे पाण्डु पुत्रेर मोचन। ए सब कौतुक सब स्मरण-कारण ॥७८॥
अखण्ड स्मरण-धर्म इहा-सभाकार। तेञि चित्र नहे इहा-सभार उद्धार ॥७९॥
अजामिल-स्मरणेर महिमा अपार। सर्व-धर्म-हीन ताहा वइ नाहि आर ॥८०॥
दूत भये पुत्र स्नेहे देखि पुत्र मुख। स्मङरिल पुत्र नाम 'नारायण' रूप ॥८१॥
सेइ त स्मरणे सब खण्डिल आपद। तेञि चित्र नहे-भक्त स्मरण-सम्पद ॥८२॥
हेन तोर चरण-स्मरण-हीन मुञि। तथापिह प्रभु! मोरे ना छाड़िबि तुञि ॥८३॥
तोमा' देखिबारे मोर कोन् अधिकार। एक वइ प्रभु! किछु ना चाहिव आर" ॥८४॥
प्रभु बोले "बोल बोल—सकल तोमार। तोमारे अदेय किछु नाहिक आमार" ॥८५॥
कर-जोड़ करि बोले प्रभु हरिदास। "मुञि अल्प भाग्य प्रभु! करों वड़ आश ॥८६॥
'तोमार चरण भजे—जे सकल दास। तार अवशेष जेन हय मोर ग्रास ॥८७॥

वाया, अग्नि में जलाया, पत्थर बाँध कर जल में डुबाया ॥ ७१ ॥ तब प्रह्लाद ने तुम्हारे चरणों का स्मरण किया। स्मरण के प्रभाव से वह सब आपदाओं से मुक्त हो गया ॥ ७२ ॥ स्मरण के प्रभाव से तुम प्रकट हो गए और तुमने किसी के दाँत तोड़ डाले, और किसी का तेज नष्ट कर दिया ॥ ७३ ॥ पाण्डवों ने दुर्वासा के भय से तुमको स्मरण किया तो तुम दया करके घोर बन में प्रकट हो गए ॥ ७४ ॥ और बोले "युधिष्ठिर जी! चिन्ता मत करो। देखो, मुझे देखो। मैं मुनि को भिक्षा दूँगा तुम तो निश्चिन्त बैठे रहो ॥ ७५ ॥ हँडिया में साग का एक तिनका मात्र कहीं शेष था। तुमने प्रसन्न होकर अपने भक्तों की रक्षा के लिए उसे ही खा लिया ॥ ७६ ॥ तब तो उधर स्नान करते हुए सब ऋषियों के पेट बड़े भारी फूल उठे और वे डर के मारे जैसे के तैसे वहीं से खिसक गए ॥ ७७ ॥ इस प्रकार स्मरण के प्रभाव से पाण्डवों को दुःख से छुटकारा मिला। ये सब कौतुक केवल एक स्मरण के कारण हुए ॥ ७८ ॥ ये सब भक्त तुम्हारा स्मरण निरन्तर करते थे। अखण्ड स्मरण ही इन सब का धर्म था। अतएव इनका जो उद्धार हुआ तो कोई आश्चर्य नहीं ॥ ७९ ॥ अजामिल के स्मरण की महिमा तो अपार है। वह सब धर्मों से सर्वथा शून्य था ॥ ८० ॥ उसने यमदूतों के भय से पुत्र के स्नेह में पुत्र का मुख देखने के लिए उसका नाम 'नारायण' स्मरण किया ॥८१॥ बस उस स्मरण से सब आपदाएँ दूर हो गईं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं। हरि-स्मरण ही भक्त की सम्पदा है ॥ ८२ ॥ ऐसा जो आपका चरण-स्मरण है, मैं तो उससे शून्य हूँ, तथापि हे प्रभो! तुम मुझे न छोड़ना ॥ ८३ ॥ तुम्हारे दर्शन पाने का भला मेरा क्या अधिकार है। हे प्रभो! मैं एक बात को छोड़ और कुछ नहीं चाहता हूँ ॥ ८४ ॥ प्रभु बोले—"बोलो २ सब कुछ तुम्हारा ही है। तुम्हारे लिए मेरे पास कोई भी वस्तु अदेय नहीं ॥ ८५ ॥ प्रभु हरिदास हाथ जोड़ कर बोले—"हे प्रभो! मैं हूँ तो मन्दभागा पर आशा बहुत बड़ी करता हूँ ॥ ८६ ॥ ( मैं यही चाहता हूँ कि ) जो सब दास तुम्हारे श्री चरण का भजन करते हैं, उनका शेष जूँठा मेरा भोजन हो ॥ ८७ ॥ मेरा प्रत्येक जन्म में वही एक भोजन हो और वही शेष प्रसाद ही मेरी क्रिया

सेइ से भोजन मोर हउ जन्म जन्म। सेइ अवशेष मोर क्रिया कुल धर्म' ॥८८॥
तोमार स्मरण-हीन पाप-जन्म मोर। सफल करह दासोच्छिष्ट दिया तोर ॥८९॥
एइ मोर अपराध हेन चित्ते लय। महा पद चाहों—जै मोहर जोग्य नय ॥९०॥
प्रभुरे नाथरे मोर वाप विश्वम्भर। मृत मुञि, मोर अपराध क्षमा कर' ॥९१॥
शचीर नन्दन वाप! कृपा कर' मोरे। कुक्कुर करिया मोरे राख भक्त-घरे" ॥९२॥
प्रेम भक्ति मय हैला प्रभु हरिदास। पुनः पुन करे काकु ना पूरये आश ॥९३॥
प्रभु बोले "शुन शुन मोर हरिदास। दिवसे को तोमा' सङ्गे कैल जेइ वास ॥९४॥
तिलार्द्ध को तुमि जार सङ्गे कह कथा। से अवश्य आमा' पाइ वेक नाहिक अन्यथा ॥९५॥
तोमारे जे करे श्रद्धा, से करे आमारे। निरन्तर आछि आमि तोमार शरीरे ॥९६॥
तुमि-हेन सेवके आमार ठाकुराल। तुमि मोरे हृदये बान्धिला सर्व काल ॥९७॥
मोर स्थाने मोर सर्व-वैष्णवेर स्थाने। विनि अपराधे तोरे भक्ति दिल दाने" ॥९८॥
हरिदास-प्रति वर दिलेन जखने। जय जय महा ध्वनि उठिल तखने ॥९९॥
जाति कुल क्रिया धने किछु नाहि करे। प्रेम धन आर्त्ति विने ना पाइ कृष्णेरे ॥१००॥
जे ते-कुले वैष्णवेर जन्म केने नहे। तथापिह सर्वोत्तम—सर्व शास्त्रे कहे ॥१०१॥
एइ तार प्रमाण—जवन हरिदास। ब्रह्मादिर दुर्लभ देखिल परकाश ॥१०२॥
जे पापिष्ठ वैष्णवेर जाति बुद्धि करे। जन्म जन्म अधम-जोनिते डुवि मरे ॥१०३॥
हरिदास स्तुति-वर शुने जेइ जन। अवश्य मिलिव तारे कृष्ण-प्रेम धन ॥१०४॥

मेरा कुल और धर्म हो ॥ ८८ ॥ तुम्हारे स्मरण से शून्य यह मेरा पाप-जन्म है। इसे अपने दासों का उच्छिष्ट प्रसाद देकर सफल करो ॥ ८९ ॥ मेरे मन में ऐसा लगता है कि यह मेरा अपराध है कि मैं परम पद को चाहता हूँ कि जिसके योग्य मैं नहीं हूँ ॥ ९० ॥ हे प्रभो। हे नाथ। हे मेरे वाप विश्वम्भर। मैं तो मरा हुआ हूँ। मेरे अपराधों को क्षमा करो ॥ ९१ ॥ हे शची-नन्दन। हे मेरे बाप। मेरे ऊपर कृपा करो। मुझे कुत्ता बना कर भक्तों के घर में रख दो ( जिससे कि उनका जूँठा मुझे मिलता रहे ) ॥ ९२ ॥ प्रभु हरिदास की देह प्रेम भक्तिमय हो गई वे बार २ गिडगिडाते हैं पर फिर भी साध नहीं मिटती ॥ ९३ ॥ तब प्रभु बोले— "सुनो २ मेरे हरिदास। एक दिन के लिए भी जिसने तुम्हारे साथ बास किया, ॥ ९४ ॥ ( अथवा ) आधा तिल भर समय के लिए भी तुम जिससे कुछ बोलो वह अवश्य ही मुझे देखेगा यह बात अन्यथा नहीं हो सकती ॥ ९५ ॥ तुम्हारी जो श्रद्धा-भक्ति करेगा, वह मेरी करेगा। मैं निरन्तर तुम्हारे शरीर में स्थित हूँ ॥ ९६ ॥ तुम जैसे सेवकों से ही मेरी ठकुराई है, तुमने सब समय के लिए मुझे अपने हृदय में बाँध लिया है ॥ ९७ ॥ तुम्हारा मेरे और मेरे भक्तों के प्रति कोई अपराध नहीं है, इसी से मैने तुमको भक्ति दान दी ॥९८॥ इस प्रकार प्रभु ने जब हरिदास को वरदान दिया तो उस समय जय जयकार की महाध्वनि उठी ॥ ९९ ॥ देखो, जाति, कुल, क्रिया, धन, इत्यादि से कुछ नहीं होता। प्रेमधन—आर्ति बिना श्रीकृष्ण नहीं मिलते ॥ १०० ॥ वैष्णव का जन्म जिस किसी कुल में क्यों न हो तथापि वह सर्वोत्तम है—यही सब शास्त्र कहते हैं ॥ १०१ ॥ उसका प्रमाण यह है कि यवन हरिदास ने प्रभु का वह स्वरूप प्रकाश देखा जो ब्रह्मादिक देवताओं को भी दुर्लभ है ॥ १०२ ॥ ( अतएव ) जो पापी वैष्णवों की जाति देखता है, वह जन्म २ तक नीच योनियों में मरता फिरता है ॥ १०३ ॥ हरिदास जी की स्तुति और प्रभु का वरदान—इसे जो जन सुनेंगे, वे अवश्य श्रीकृष्ण प्रेमधन पायेंगे ॥ १०४ ॥ यह वचन मेरे नहीं हैं—सब शास्त्र यही कहते हैं कि भक्त की

तोमार उपासे मुञि मानों उपवास। तुमि मोरे जेइ देह' सेइ मोर ग्रास ॥१२१॥
तिलार्द्ध तोमार दुःख आमि नाहि सहि। स्वप्ने आमि तोमार सहित कथा कहि ॥१२२॥
उठ उठ आचार्य ! श्लोकेर अर्थ शुन। एइ अर्थ, एइ पाठ, निःसन्देह जान' ॥१२३॥
उठिया भोजन कर' ना कर' उपास। तोमार लागिया आमि करिव प्रकाश। १२४॥
सन्तोषे उठिया तुमि करह भोजन। आमि वलि, तुमि जेन मानह स्वपन ॥१२५॥
एइ मत जेइ जेइ पाठे द्विधा हय। आसिया-चैतन्य चन्द्र आपने कहय ॥१२६॥
जत रात्रि स्वप्न हय, जे दिन, जखने। जत श्लोक—सब प्रभु कहिला आपने ॥१२७॥
धन्य धन्य अद्वैतेर भक्तिर महिमा। भक्ति शक्ति कि वर्णिव, एइ तार सीमा ॥१२८॥
प्रभु बोले "सर्व-पाठ कहिल तोमारे। एक पाठ नाहि कहि, आजि कहि तोरे ॥१२९॥
सम्प्रदाय-अनुरोधे सभे मन्द पढ़े। 'सर्वतः पाणि पादन्तत्' एइ पाठ नड़े ॥१३०॥
आजि तोरे सत्य कहि छाड़िया कपट। 'सर्वत्र पाणि पादन्तत्' एइ सत्य पाठ ॥१३१॥
तथाहि (गीता १३। १३) सर्वतः पाणि पादन्तत् सर्वतोऽक्षि शिरो मुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति" ॥१३२॥
"अति-गुप्त-पाठ आमि कहिल तोमारे। तोमा' वइ पात्र केवा आछे कहि वारे" ॥१३३॥
चैतन्येर गुप्त-शिष्य आचार्य गोसाञि। चैतन्येर सर्व-व्याख्या आचार्येर ठाञि ॥१३४॥
शुनिञा आचार्य प्रेमे कान्दिते लागिला। पाइया मनेर कथा महानन्दे भोला ॥१३५॥
अद्वैत बोलये "आर कि बलिव मुञि। एइ मोर महत्त्व जे, मोर नाथ तुञि" ॥१३६॥

---

मैं अपना उपवास मानता, कारण कि तुम मुझे जो कुछ देते हो, वही मेरा भोजन है ॥ १२१ ॥ मैं तुम्हारा आधा तिल भर दुःख नहीं सह सकता हूँ—इसलिए स्वप्न में मैं तुमसे बातें किया करता ॥१२२॥ (मैं कहता) "उठो २ आचार्य ! श्लोक का अर्थ सुनो। यह अर्थ है, यह (शुद्ध) पाठ है—ऐसा जान सन्देह रहित हो जाओ ॥ १२३ ॥ अब उठ कर भोजन करो, उपवास मत करो। तुम्हारे लिए मैं अपने को प्रकट करूँगा ॥१२४॥ "उठ कर प्रसन्न चित्त से भोजन करो—यह मैं ही कहा करता पर तुम उसे स्वप्न ही माना करते" ॥१२५॥ इस प्रकार जिस २ पाठ में श्री अद्वैत को सन्देह होता था, स्वयं चैतन्यचन्द्र आकर उन्हें बतलाया करते थे ॥ १२६ ॥ तब प्रभु ने जिस २ दिन, जिस २ रात को स्वप्न हुए और जितने श्लोकों की व्याख्या बतायी, वह सब कुछ बता दिया ॥ १२७ ॥ धन्य है, धन्य है, श्री अद्वैत की भक्ति की महिमा को। भक्ति की शक्ति को मैं क्या कहूँ—यही उसकी सीमा है ॥ १२८ ॥ प्रभु फिर बोले—"आचार्य ! मैंने तुमको सब पाठ तो बतलाया परन्तु एक पाठ नहीं बतलाया उसे आज तुमसे कहता हूँ ॥ १२९ ॥ सम्प्रदाय का पक्ष लेकर सब ही "सर्वतः पाणिपादन्तत्" ऐसा अशुद्ध पाठ करते हैं ॥ १३० ॥ पर मैं आज कपट छोड़ कर तुमसे सत्य कहता हूँ कि "सर्वत्र पाणिपादन्तत्" यह है सत्य पाठ ॥ १३१ ॥ श्लोकार्थ ॥ सब ओर को जिनके हस्त और चरण हैं सब ओर को जिनके नेत्र, मस्तक और मुख हैं तथा सब ओर को जिनके कर्ण हैं वे ही परमात्म वस्तु हैं-वे ही इस लोक में सबको आवृत्त करके वर्तमान हैं ( गीता-१३-१३ ) ॥ १३२ ॥ "यह मैंने तुमको अत्यन्त गुप्त पाठ बतलाया। ( कारण कि ) एक तुमको छोड़ कर और कौन पात्र है कि जिससे यह कहा जा सके" ॥ १३४ ॥ ( अतएव ) श्री चैतन्य चन्द्र के गुप्त शिष्य हैं श्री अद्वैताचार्य। श्री चैतन्य चन्द्र अपनी व्याख्या सब आचार्य के निकट ही करते हैं ॥ १३४ ॥ प्रभु के ऐसे वचनों को सुनकर आचार्य मारे प्रेम के रोने लगे, और मनचाही बात को पाकर आनन्द में विभोर हो गए ॥ १३५ ॥ अद्वैत बोले—"मैं और क्या कहूँ मेरा

आनन्दे विह्वल हैला आचार्य गोसाञि । प्रभुर प्रकाश देखि बाह्य किछु नाञि ॥१३७॥
ए सब कथाय जार नाहिक प्रतीत । अधः पात हय तार, जानिह निश्चित ॥१३८॥
महा भागवते बुझे अद्वैतेर व्याख्या । आपने चैतन्य जारे कराइल शिक्षा ॥१३९॥
वेदे जेन नाना मत करये कथन । एइ मत आचार्येर दुर्ज्ञेय वचन ॥१४०॥
अद्वैतेर वाक्य बुझिवार शक्ति जार । जानिह ईश्वर-सङ्गे भेद नाहि तार ॥१४१॥
शरतेर मेघ जेन पर भाग्य वशे । सर्वत्र ना करे वृष्टि, नाहि तार दोषे ॥१४२॥
तथाहि भागवते १० । २० । ३६ "गिरयो मुमुचुस्तोयं क्वचिन्न मुमुचुः शिवम् ।
यथा ज्ञानामृतं काले ज्ञानिनो ददतेन वा" ॥१४३॥
एइ मत अद्वैतेर किछु दोष नाञि । भाग्या भाग्य बुझि व्याख्या करे सेइ ठाञि ॥१४४॥
चैतन्य-चरण-सेवा अद्वैतेर काज । इहाते प्रमाण सब-वैष्णव-समाज ॥१४५॥
सर्व-भागवतेर वचन अनादरि । अद्वैतेर सेवा करे, नहे प्रियङ्करी ॥१४६॥
चैतन्येते महा महेश्वर-बुद्धि जार । से-इ से अद्वैत भक्त-अद्वैत ताहार ॥१४७॥
'सर्व प्रभु गौरचन्द्र' इहा जे ना लय । अक्षय-अद्वैत-सेवा व्यर्थ तार हय ॥१४८॥
शिरच्छेदि भक्ति जेन करे दशानन । ना मानये रघुनाथ-शिवेर कारण ॥१४९॥
अन्तरे छाड़िल शिव, से ना जाने इहा । सेवा व्यर्थ हैल, मैल सवंशे पुड़िया ॥१५०॥
भाल-मन्द शिवे झाट भाङ्गिया ना कहे । जार बुद्धि थाके, से-इ चित्ते बुझि लये ॥१५१॥

---

बड़प्पन है तो यही है कि तुम मेरे नाथ हो ॥ १३६ ॥ प्रभु के स्वरूप प्रकाश के दर्शन कर आचार्य गुसांई आनन्द में विह्वल हो गए और बाहर की सुध बुध सब जाती रही ॥ १३७ ॥ इन सब कथाओं में जिसका विश्वास नहीं है निश्चय समझो कि उसका अधः पतन होगा ॥ १३८ ॥ जिन अद्वैताचार्य को स्वयं श्री-चैतन्य चन्द्र ने शिक्षा दी उनकी व्याख्या को महा भागवत ही समझ सकते हैं ॥ १३९ ॥ जैसे वेदों में नाना प्रकार के वचन है, वैसे ही अद्वैताचार्य के वचन भी दुर्ज्ञेय हैं ॥ १४० ॥ अद्वैत जी के वचनों को समझने की शक्ति जिसमें होगी, उसका ईश्वर के साथ कोई भेद नहीं है—यह जान लेना ॥ १४१ ॥ शरद के मेघ सर्वत्र नहीं बरसते हैं –( कहीं २ ही बरसते हैं ) इसमें दोष मेघ का नहीं अपने भाग्य का ही है ॥ १४२ ॥ जैसे श्रीभागवत में कहा है कि—"शरद ऋतु में, पर्वत समूह कल्याण कारी जल कहीं देते हैं, कहीं नहीं भी देते जैसे ज्ञानी जन कभी ज्ञानामृत दान करते हैं, कभी नहीं भी करते ( भाग १०-२०-३६ ) ॥ १४३ ॥ ऐसे ही अद्वैत प्रभु का भी कोई दोष नहीं है वह दूसरों के भाग्य-अभाग्य को जान बूझ करके वैसी ही वहाँ व्याख्या करते हैं ॥ १४४ ॥ श्री अद्वैत का कार्य है श्रीचैतन्य चरण की सेवा । वैष्णव समाज सब इस बात को स्वीकार करती हैं ॥१४५॥ जो लोग सब वैष्णव भक्तों के वचनों का निरादर करके श्रीअद्वैत की ही सेवा करते हैं वह सेवा श्री अद्वैत को प्रिय नहीं है ॥ १४६ ॥ जिसकी श्री चैतन्य चन्द्र में महा-महेश्वर बुद्धि है, वही श्री अद्वैत का भी भक्त है और अद्वैत प्रभु भी उसके हैं ॥ १४७ ॥ "श्री गौरचन्द्र सब के प्रभु-सर्वेश्वर है" इस तत्त्व को जो स्वीकार नहीं करते हैं उनकी अद्वैत प्रभु की अक्षय सेवा भी निष्फल है ॥ १४८ ॥ जैसे रावण ने अपनी शिवभक्ति, सिर काट करके तो दिखाई परन्तु शिवजी के कारण स्वरूप रघुनाथ जी को नहीं माना ॥ १४९ ॥ तो शिवजी ने भी उसे अपने अन्तस् से छोड़ दिया—वह इसे नहीं जान सका । फल यह हुआ कि उसकी सेवा व्यर्थ हुई और वह वंश-सहित विध्वंस हो गया ॥ १५० ॥ शिवजी भला-बुरा झट खोल करके प्रकाश नहीं कर देते हैं—जिसमें बुद्धि होती है वह हृदयंगम कर लेता है ॥ १५१ ॥ इसी

एइ मत अद्वैतेर चित्त ना बुझिया । बोलाय 'अद्वैत भक्त—चैतन्य निन्दिया ॥१५२॥
ना बोले अद्वैत किछु स्वभाव-कारणे । ना धरे वैष्णव वाक्य, मरे भाल-मने ॥१५३॥
जाहार प्रसादे अद्वैतेर सर्व-सिद्धि । हेन चैतन्येर किछु ना जानये शुद्धि ॥१५४॥
इहा बलि तेइ आइसे धाइया मारि बारे । अहो माया बलवती ! कि बलिव तारे ॥१५५॥
प्रभुर जे अलङ्कार-इहा नाहि जाने । अद्वैतेर प्रभु गौर-इहा नाहि माने ॥१५६॥
पूर्वे जे आख्यान हैल, सेइ सत्य हय । ताहाते प्रतीत जार नाहि तार क्षय ॥१५७॥
जत जत शुन जार महत्त्व बड़ाञि । चैतन्येर सेवा हैते आर किछु नाञि ॥१५८॥
नित्यानन्द-महाप्रभु जारे कृपा करे । जार जेन योग्य भक्ति सेइ से आदरे ॥१५९॥
अहर्निश लओयाय ठाकुर नित्यानन्द । "बोल भाई सब ! मोर प्रभु गौरचन्द्र" ॥१६०॥
चैतन्य-स्मरण करि आचार्य गोसाञि । निरवधि कान्दे, आर किछु स्मृति नाञि ॥१६१॥
इहा देखि चैतन्येते जार भक्ति नय । ताहार आलापे हय सुकृतिर क्षय ॥१६२॥
वैष्णवाग्रगण्य-बुद्धे जे अद्वैत गाय । सेइ से वैष्णव जन्म जन्म कृष्ण पाय ॥१६३॥
अद्वैतेर से-इ से एकान्त प्रिय कर । ए मर्म ना जाने जत अधम किङ्कर ॥१६४॥
'सभार ईश्वर प्रभु गौराङ्ग सुन्दर । ए कथाय अद्वैतेरे प्रीत बहुतर ॥१६५॥
अद्वैतेर श्रीमुखेर ए सकल कथा । इहाते सन्देह किछु ना कर सर्वथा ॥१६६॥
मध्य खण्ड-कथा बड़ अमृतेर खण्ड । जे कथा शुनिले सर्व खण्डये पाषण्ड ॥१६७॥

---

प्रकार अद्वैत के मनोभाव को तो समझते नहीं है और श्री चैतन्यचन्द्र की निन्दा करते हुए "अद्वैत-भक्त" कहलाते हैं ॥ १५२ ॥ अपने ( गम्भीर ) स्वभाव के कारण श्री अद्वैत तो कुछ कहते नहीं हैं परन्तु जो वैष्णवों के वचन को नहीं मानते हैं, वे निश्चय ही समाप्त हो जाते हैं ॥ १५३ ॥ जिनकी कृपा से श्री अद्वैत चन्द्र को सब सिद्धि प्राप्त हैं, ऐसे श्री चैतन्यचन्द्र के तत्त्व को वे (निन्दक जन) कुछ नहीं जानते हैं ॥१५४॥ उनसे यह तथ्य कहने पर तो वह वे मारने दौड़ते हैं । अहो ! बलबती माया ! उनसे क्या कहा जाय ॥१५५॥ वे यह नहीं जानते हैं कि श्री अद्वैत तो श्री गौर प्रभु के अलङ्कार हैं और न वे यही मानते हैं कि श्री अद्वैत के प्रभु श्रीगौर हैं ॥ १५६ ॥ जो कुछ ऊपर प्रसङ्ग में कहा गया—वह सब सत्य है-करके जिनका विश्वास है, उनका नाश नहीं है ॥१५७॥ जिसकी जितनी भी महिमा और गरिमा सुनने में आती है वह सब श्री चैतन्य चन्द्र की सेवा से ही है । अन्य किसी कारण से नहीं है ॥१५८॥ श्री नित्यानन्द प्रभु जिस पर कृपा करते हैं, वेही जन २ प्रति यथायोग्य आदर-भक्ति प्रदर्शन करते हैं ॥१५९॥ ठाकुर नित्यानन्द अहर्निश लोगों से गौर-चन्द्र का नाम बुलवाते हैं । वे कहते हैं-"भाइयो ! तुम सब मेरे प्रभुगौरचन्द्र को गाओ" ॥१६०॥ और अद्वैता-चार्य भी श्री चैतन्यचन्द्र को स्मरण करके निरन्तर रोते रहते हैं-और सब बात भूल जाते हैं ॥१६१॥ श्री चैतन्य चन्द्र में किसी को भक्ति-शून्य देख सुन करके भी जो उसके साथ वार्तालाप करता है, उसके सुकृति का क्षय हो जाता है ॥१६२॥ जो जन वैष्णव-श्रेष्ठ-बुद्धि से श्री अद्वैत को गाते हैं, वे वैष्णव ही जन्म २ में श्री-कृष्ण को पाते हैं ॥१६३॥ और वे ही जन अद्वैत प्रभु के भी परम प्रियकर हैं। और इस मर्म को न जानने वाले सब अधम सेवक हैं ॥१६४॥ "प्रभु गौरांग सुन्दर सब के ईश्वर हैं" यह कथन अद्वैत प्रभु को अत्यन्त प्रिय है ॥१६५॥ यह सब बातें श्री अद्वैत प्रभु के ही श्रीमुख की हैं । इनमें किसी प्रकार का कुछ भी सन्देह नहीं करना ॥१६६॥ मध्यखण्ड की कथा तो अमृत का ही खण्ड (टुकड़ा) है, जिस कथा के श्रवण से हृदय का पाखण्ड सब खण्डित हो जाता है ॥ १६७ ॥ श्री अद्वैत को गीता का सत्य पाठ बतला कर श्री विश्व-

अद्वैतेरे बलिया गीतार सत्य पाठ। विश्वम्भर मुकाइल भक्तिर कपाट ॥१६८॥
श्रीभुज तुलिया बोले प्रभु विश्वम्भर। "सभे मोरे देख, माग' जार जेइ वर ॥१६९॥
आनन्द पाइला सभे प्रभुर वचने। जार जेइ इच्छा मागे' ताहार कारणे ॥१७०॥
अद्वैत बोलये "प्रभु मोर एइ वर। मूर्ख नीच दरिद्रेरे अनुग्रह कर" ॥१७१॥
केहो बोले "मोर बापे आसि बारे ना दे। तार चित्त भाल हउ तोमार प्रसादे ॥१७२॥
केहो बोले शिष्य-प्रति केहो पुत्र प्रति। केहो भार्या केहो भृत्ये जार जथा रति ॥१७३॥
केहो बोले "आमार हउक गुरु भक्ति। एइ मत वर मागे' जार जेन शक्ति ॥१७४॥
भक्त-वाक्य-सत्यकारी प्रभु विश्वम्भर। हासिया हासिया सभा कारे देन वर ॥१७५॥
मुकुन्द आछेन अन्तः पटेर बाहिरे। सम्मुख हइते शक्ति मुकुन्द ना धरे ॥१७६॥
मुकुन्द सभार प्रिय–परम-महान्त। भाल मते जाने सेइ सभार वृत्तान्त। १७७॥
निरवधि कीर्तन करिया प्रभु-सने। कोन जन ना बुझे, तथापि दण्ड केने ॥१७८॥
ठाकुरेह नाहि डाके आसिते ना पारे। देखिया जन्मिल दुःख सभार अन्तरे ॥१७९॥
श्रीवास बोलेन 'शुन जगतेर नाथ। मुकुन्द कि अपराध करिल तोमा' त ॥१८०॥
मुकुन्द तोमार प्रिय–मो' सभार प्राण। केबा नाहि द्रवे' शुनि मुकुन्देर गान ॥१८१॥
भक्ति परायण सर्व दिगे सावधान। अपराध ना देखिये कर' अपमान ॥१८२॥
यदि अपराध थाके, तार शास्ति कर। आपनार दास केने दूरे परिहर ॥१८३॥
तुमि ना डाकिले नारे सम्मुख हइते। देखुक तोमारे प्रभु ! बोल भाल मते" ॥१८४॥

---

म्भर देव ने भक्ति के किवाड़ खोल दिये ॥ १६८ ॥ (यथा) श्रीभुज उठाकर प्रभु बोले–"सब मेरे दर्शन करो, और जिसकी जो इच्छा हो सो वर माँग लो" ॥ १६९ ॥ प्रभु के वचन से सबको बड़ा आनन्द हुआ और सब अपनी २ इच्छानुसार वर माँगने लगे ॥ १७० ॥ पहले अद्वैत जी बोले–"प्रभु ! मैं यह वर चाहता हूँ कि आप मूर्ख, नीच, और दरिद्रों के ऊपर कृपा करें ॥ १७१ ॥ फिर कोई बोला–"मेरा बाप मुझे आप के पास नहीं आने देता है, आपकी कृपा से उनका चित्त स्वस्थ हो जाय" ॥ १७२ ॥ किसी ने शिष्य के लिए, किसी ने पुत्र के लिए, किसी ने स्त्री के लिये, किसी ने सेवक के लिये,–जिसकी जिसमें प्रीति थी उसके लिये वरदान माँगा ॥ १७३ ॥ कोई बोला–"मुझे गुरु-भक्ति मिले" इस प्रकार सब लोग अपनी २ शक्ति अनुसार वर माँगते हैं ॥ १७४ ॥ भक्तों के वचन को सत्य करने वाले प्रभु विश्वम्भर भी हँस २ कर सबको वर देते हैं ॥ १७५ ॥ मुकुन्द दत्त पर्दा के बाहर ही खड़े हैं। भीतर प्रभु के सन्मुख आने की शक्ति नहीं है ॥ १७६ ॥ मुकुन्द सब के प्रिय हैं, महान् हृदयवान् हैं, सब वैष्णवों से भली भाँति परिचित हैं ॥१७७॥ वे प्रभु के साथ निरन्तर कीर्त्तन करते हैं फिर भी उनको यह दण्ड क्यों ? यह किसी की समझ में नहीं आ रहा है ॥१७८॥ प्रभु भी उसे नहीं बुलाते हैं और वह स्वयं आ नहीं सकता यह देख कर सब के चित्त में बड़ा ही दुःख हो रहा है ॥ १७९ ॥ तब श्री वास जी बोले–"हे जगन्नाथ प्रभो ! सुनिए। मुकुन्द ने आप का क्या अपराध किया है ? ॥ १८० ॥ मुकुन्द तो आप का बड़ा प्यारा है और हम सबों का प्राण है–उसके गायन को सुन कर किसका हृदय नहीं पिघल जाता है ॥ १८१ ॥ वह भक्ति परायण है, सब ओर से सावधान रहता है। उसका अपराध तो बताइये जिस कारण उसका अपमान कर रहे हैं ॥ १८२ ॥ यदि कोई अपराध हो तो उसका दण्ड दें, पर अपने दास को दूर न कर दें ॥ १८३ ॥ आप के बिना बुलाये वह आपके सम्मुख हो नहीं सकता। प्रभो ! आप उसे भली प्रकार से बुलावें। वह भी आप का दर्शन करे ॥ १८४ ॥ तब प्रभु

प्रभु बोले "हेन वाक्य कभु ना बलिवा। ओ बेटार लागि मोरे केहो ना साधिवा ।।१८५।।
'खड़ लय जाठि लय' पूर्वे जे शुनिला। अइ बेटा सेइ हय, केहो ना चिनिला ।।१८६।।
क्षणे दन्ते तृण लय, क्षणे जाठि मारे। ओ खड़-जाठिया बेटा ना देखिब मोरे" ।।१८७।।
महा वक्ता श्रीनिवास बोले आर बार। "बुझिते तोमार वाक्य कार अधिकार ।।१८८।।
आमरात मुकुन्देर दोष नाहि देखि। तोमार अभय-पाद पद्म तार साक्षी ।।१८९।।
प्रभु बोले 'ओ बेटा जखन जथा जाय। सेइ मत कथा कहि तथाय मिशाय ।।१९०।।
वाशिष्ठ पढ़ये जबे अद्वैतेर सङ्गे। भक्ति योगे नाचे गाय तृण करि दन्ते ।।१९१।।
अन्य-सम्प्रदाये गिया जखने साम्भाय। नाहि माने' भक्ति, जाठि मारये सदाय ।।१९२।।
'भक्ति हैते बड़ आछे' जे इहा वाखाने। निरन्तर जाठि मारे मोरे सेइ जने ।।१९३।।
भक्ति-स्थाने उहार हइल अपराध। एतेके उहार हैल दरशन-बाध" ।।१९४।।
मुकुन्द शुनये सब बाहिरे थाकिया। 'ना पाइब दरशन' शुनि लेन इहा ।।१९५।।
"गुरु-उपरोधे पूर्वे ना मानिलु भक्ति। सब जाने महाप्रभु-चैतन्येर शक्ति ।।१९६।।
मने चिन्ते मुकुन्द परम-भागवत। "ए देह राखिते मोर ना हय युगत ।।१९७।।
अपराधी शरीर छाड़िब आजि आमि। देखिब कतेक काले, इहा नाहि जानि" ।।१९८।।
मुकुन्द बोलेन "शुन ठाकुर श्रीवास। कभू कि देखिमु मुञि' बोल प्रभु-पाश ।।१९९।।
कान्दये मुकुन्द दुइ झरये नयने। मुकुन्देर दुःखे कान्दे भागवत गणे ।।२००।।

---

बोले—"ऐसी बात फिर कभी न कहना। उस बेटा के लिए मुझसे कोई भी प्रार्थना न करे ।। १८५ ।। "तुम लोगों ने पहले सुना ही होगा कि एक प्रकार के मनुष्य होते हैं जो कभी दाँतों में तिनका पकड़ते हैं तो कभी हाथ में लाठी सम्हालते हैं—यह बेटा मुकुन्द भी वैसा ही है-इसे किसी ने पहचाना नहीं ।। १८६ ।। यह क्षण में तो दाँतों में तृण ले लेता है, और क्षण में लाठी चलाता है ऐसा "खड-जाठिया" बेटा (खड-तृण जाठिया-लाठी ) मुझे नहीं देख पायगा। १८७ ।। श्री निवास जी बड़े भारी वक्ता हैं—वे फिर बोले—"प्रभो! आपके वाक्य समझने वाला अधिकारी यहाँ कौन है ? ।। १८८ ।। हमको तो मुकुन्द का कोई दोष नहीं दिखाई देता है-तुम्हारे अभय पाद-पद्म ही इसके साक्षी हैं ।। १८९ ।। प्रभु बोले—"यह बेटा जहाँ जाता है, वहाँ वैसी ही बातें बना कर मिल जुल जाता है ।। १९० ।। जब अद्वैत के साथ योगवाशिष्ठ पढ़ता है तब दाँतों में तृण पकड़ कर भक्ति-पूर्वक नाचता है ।। १९१ ।। "और जब किसी अन्य सम्प्रदाय में जा घुसता है तब भक्ति को नहीं मानता है उस पर निरन्तर प्रहार करता है ।। १९२ ।। "भक्ति से भी कोई वस्तु बड़ी है"—ऐसा जो कोई कहता है, वह मुझ पर निरन्तर लाठी मारता है ।। १९३ ।। इस प्रकार भक्ति के निकट उसका अपराध हुआ है अतएव उसके लिए मेरे दर्शन में बाधा पड़ गई है" ।। १९४ ।। मुकुन्द बाहर से सब सुन रहे थे। उन्होंने सुना कि "मुझे दर्शन नहीं मिलेगा" ।। १९५ ।। तब मुकुन्द मन में सोचने लगे कि "मैंने पहले गुरु के समझाने पर भी भक्ति को नहीं माना। मेरी इस बात को महाप्रभु श्री चैतन्य की ज्ञान शक्ति सब जानती है ।।१९६।। परम भागवत मुकुन्द फिर मन में सोचते हैं कि "अब इस देह को रखना मेरे लिए उचित नहीं है ।। १९७ ।। यह शरीर अपराधी है, आज मैं इसे अवश्य त्याग दूँगा। पर यह भी तो नहीं मालूम कि कितने समय में प्रभु का दर्शन मिलेगा ।। १९८ ।। तब मुकुन्द ने बाहर से कहा "पण्डित श्रीवास जी! सुनिए। प्रभु से इतना पूछ दीजिए कि मुझे कब उनके दर्शन होंगे ।। १९९ ।। यह कह कर मुकुन्द रोने लगे और उसके दुःख से और वैष्णव लोग भी रोने लगे ।। २०० ।। तब प्रभु बोले—"जब उसके कोटि जन्म और बीत जायँगे, । तब जाकर

प्रभु बोले "आर यदि कोटि जन्म हय । तबे मोर दरशन पाइब निश्चय" ॥२०१॥
शुनिल 'निश्चय-प्राप्ति' प्रभुर श्रीमुखे । मुकुन्द सिञ्चित हैला परानन्द सुखे ॥२०२॥
"पाइब पाइब" बलि करे महा नृत्य । आनन्दे विह्वल हैला चैतन्येर भृत्य ॥२०३॥
महानन्दे मुकुन्द नाचये सेइ खाने । 'देखि' वेन हेन वाक्य शुनिञा श्रवणे ॥२०४॥
मुकुन्द देखिया प्रभु हासे' विश्वम्भर । आज्ञा हैल "मुकुन्देरे आनह सत्वर" ॥२०५॥
सकल वैष्णव डाके "आइसह मुकुन्द" । ना जाने मुकुन्द किछु, पाइया आनन्द ॥२०६॥
प्रभु बोले "मुकुन्द ! घुचिल अपराध । आइस आमारे देख, धरह प्रसाद" ॥२०७॥
प्रभुर आज्ञाय सभे आनिल धरिया । पड़िला मुकुन्द महापुरुष देखिया ॥२०८॥
प्रभु बोले "उठ उठ मुकुन्द आमार । तिलार्द्धे को अपराध नाहिक तोमार ॥२०९॥
सङ्ग-दोष तोमार सकल हैल क्षय । तोर स्थाने आमार हइल पराजय ॥२१०॥
'कोटि जन्मे पाइबा' हेन बलिलाङ आमि । तिलार्द्धे के सब ताहा घुचाइले तुमि ॥२११॥
'अव्यर्थ आमार वाक्य' तुमिसे जानिला । तुमि आमा' सर्व काल हृदये वान्धिला ॥२१२॥
आमार गायन तुमि, थाक आमा' सङ्गे । परिहास पात्र-सङ्गे आमि कैल रङ्गे ॥२१३॥
सत्य यदि तुमि कोटि अपराध कर' । से सकल मिथ्या, तुमि मोर प्रिय दृढ़ ॥२१४॥
भक्ति मय तोमार शरीर-मोर दास । तोमार जिह्वाय मोर निरन्तर वास" ॥२१५॥
प्रभुर आश्वास शुनि कान्दये मुकुन्द । धिक्कार करिया आपनारे बोले मन्द ॥२१६॥
"भक्ति ना मानिलुँ मुञि एइ छार मुखे । देखिलेइ भक्ति शून्य कि पाइब सुखे ॥२१७॥

---

निश्चय ही वह मेरा दर्शन पायगा" ॥ २०१ ॥ "निश्चय पायगा" ये शब्द प्रभु के श्रीमुख के सुनते ही मुकुन्द के तो तन-मन रोम २ परानन्द सुख में भीग गए ॥ २ २ ॥ और वह "पाऊँगा २" कहता हुआ महा नृत्य करने लगा विह्वल हो गया मारे आनन्द के श्री चैतन्य चन्द्र का भृत्य ( मुकुन्द ) ॥ २०३ ॥ 'देखेगा" इस वचन को कानों से सुनकर महा-आनन्द के साथ मुकुन्द वहीं बाहर नाचने लगा ॥ २०४ ॥ मुकुन्द को देखकर प्रभु विश्वम्भर हँसे और आज्ञा की "मुकुन्द को शीघ्र ही ले आओ" ॥ २०५ ॥ तब तो सब वैष्णव लोग "आओ मुकुन्द ! आओ मुकुन्द !" कह कर पुकारने लगे । पर सुने कहाँ मुकुन्द—वह तो आनन्द में डूब रहा है ॥ २०६ ॥ प्रभु बोले—"मुकुन्द ! तुम्हारा अपराध नष्ट हो गया । आओ ! मेरे दर्शन करो ! प्रसाद लो" ॥ २०७ ॥ प्रभु की आज्ञा से भक्त लोग उसे पकड़ लाए । अपने सम्मुख महापुरुष को देख कर मुकुन्द पृथ्वी पर लम्बा पड़ गया ॥ २०८ ॥ प्रभु बोले—"उठो, मेरे मुकुन्द ! उठो ! तुम्हारा आधा तिल भर भी अपराध नहीं है ॥२०९॥ तुम्हारा सङ्ग-दोष सब क्षय हुआ और तुम्हारे निकट मेरा पराजय हुआ ॥२१०॥ मैंने तो कहा कि "कोटि जन्म में पाओगे"—और तुमने उसे क्षण काल में ही मिटा दिया ॥ २११ ॥ "मेरे वचन अव्यर्थ हैं" यह तुमने निश्चय करके पकड़ लिया । इसीसे तुमने मुझे सब समय के लिये अपने हृदय में बाँध लिया ॥ २१२ ॥ तुम तो मेरे गायक ( कीर्त्तनिया ) हो, सदा मेरे साथ रहते हो, हँसी-विनोद के साथी हो-इसीलिए तुम्हारे साथ मैंने कुछ कौतुक—खेल किया था ॥ २१३ ॥ "यदि सचमुच तुम कोटि अपराध भी कर डालो, तथापि वे सब मिथ्या हैं । तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो ॥ २१४ ॥ तुम्हारा भक्तिमय शरीर मेरा दास है । और तुम्हारी जिह्वा पर मेरा निरन्तर निवास है ॥ २१५ ॥ प्रभु के आश्वासन को सुनकर मुकुन्द रोने लगा, और अपने को धिक्कारता हुआ भला बुरा कहने लगा ॥ २१६ ॥ वह बोला—"मैंने इस नीच मुख से भक्ति नहीं माना । ऐसा मैं भक्ति शून्य, प्रभु का दर्शन करने पर भी क्या सुख पाऊँगा ॥ २१७ ॥ दुर्योधन

विश्वरूप तोमार देखिल दुर्योधन। जाहा देखिबारे वेदे करे अन्वेषण॥२१८॥
देखियाओ सबंशे मरित दुर्योधन। ना पाइल सुख—भक्ति शून्येर कारण॥२१९॥
हेन भक्ति ना मानिल आमि छार मुखे। देखिले कि हैब आर मोर प्रेम सुखे॥२२०॥
जखने चलिला तुमि रुक्मिणी हरणे। देखिल नरेन्द्र-सब गरुड़ वाहने॥२२१॥
अभिषेके हैल राज राजेश्वर नाम। देखिल नरेन्द्र तोमा महा ज्योतिर्धाम॥२२२॥
ब्रह्मादि देखिते जाहा करे अभिलाष। विदर्भ-नगरे ताहा करिला प्रकाश॥२२३॥
ताहा देखि मरे सब नरेन्द्रेर गण। ना पाइल सुख—भक्ति शून्येर कारण॥२२४॥
सर्व यज्ञ मय रूप-कारण-शूकर। आविर्भाव हैला तुमि जलेर भितर॥२२५॥
अनन्त पृथिवी लागि आछये दशने। जे प्रकाश देखिते देवेर अन्वेषणे॥२२६॥
देखिलेक हिरण्य—अपूर्व-दरशने। ना पाइल सुख-भक्ति शून्येर कारणे॥२२७॥
आर महा प्रकाश देखिल तार भाइ। जाहा गोप्य हृदये ते कमलार ठाँइ॥२२८॥
अपूर्व नृसिंह-रूप कहे त्रिभुवने। ताहा देखि मरे भक्ति शून्येर कारणे॥२२९॥
हेन भक्ति मोर छार-मुखे ना मानिल। ए बड़ अद्भुत ! मुख खसि ना पड़िल॥२३०॥
कुब्जा, यज्ञ पत्नी, पुर नारी,मालाकार। कोथाय देखिल तारा प्रकाश तोमार॥२३१॥
भक्ति योगे तोमारे पाइल सेइ सब। सेइ खाने मरे कंस—देखि अनुभव॥२३२॥
हेन भक्ति मोर छार-मुखे ना मानिल। एइ बड़ कृपा तोर—तथापि रहिल॥२३३॥

---

ने भी तो आप के उस विश्वरूप को देखा था कि जिसको देखने को वेद निरन्तर ढूँढते फिरते हैं॥२१८॥ विराट रूप देख करके भी दुर्योधन वंश सहित विध्वंस हो गया। भक्ति शून्य होने के कारण दर्शन के सुख से वह वंचित ही रह गया॥ २१९॥ मैंने ऐसी सुखदायिनी भक्ति को अपने इस अधम मुख से नहीं माना। अतएव आपके दर्शन करने पर भी मुझे क्या सुख मिलेगा॥ २२०॥ और जिस समय आप रुक्मिणी को हरण करने गए थे, उस समय सब राजाओं ने भी तो आपको गरुड़ पर सवार देखा था॥ २२१॥ फिर अभिषेक के समय आप का राज-राजेश्वर नाम हुआ। राजाओं ने तुम्हारा महा-ज्योतिर्मय रूप देखा॥ २२२॥ ब्रह्मादि भी जिस रूप के दर्शन की अभिलाषा करते हैं, वह रूप आप ने विदर्भ नगर में प्रकाशित किया॥ २२३॥ परन्तु तथापि उस रूप को देख कर सब राजा लोग जल मरे और सुख से कोरे ही रह गए—कारण कि वे भक्ति शून्य जो थे॥ २२४॥ और एक बार आप सर्व यज्ञमय, कारण स्वरूप, शूकर रूप में भी तो जल में प्रकट हुए थे॥ २२५॥ अनन्त विशाल पृथ्वी आपके दाँतों के ऊपर थी। ऐसा जो आप का अपूर्व रूप प्रकाश था कि जिसके दर्शन के लिए देवता लोग भी खोजते फिरते हैं॥ २२६॥ उसका दर्शन हिरण्याक्ष ने किया परन्तु भक्ति शून्य होने के कारण सुख उसे भी न मिला॥ २२७॥ और एक महाप्रकाश को उसके भाई ( हिरण्यकश्यप ) ने देखा था। वह रूप लक्ष्मी देवी के भी गोप्य, हृदय में भी था॥२२८॥ जिसे त्रिभुवन में नृसिंह का अपूर्व रूप कहते हैं। उसे देख करके भी वह मरा भक्ति शून्य होने के कारण॥ २२९॥ ऐसी भक्ति को मेरे नीच मुख ने स्वीकार नहीं की—पर यह बड़ी अद्भुत बात है कि मेरी जीभ ( मुख ) उस समय कट कर कैसे नहीं गिर पड़ी॥ २३०॥ ( परन्तु दूसरी ओर ) कुब्जा, यज्ञ पत्नीगण, मथुरा नारीगण और मथुरा के माली ने आपका कोई ( अद्भुत ) प्रकाश कहाँ देखा था भला॥ २३१॥ परन्तु उनमें भक्ति थी, उस भक्ति योग के कारण उन्होंने आप को प्राप्त किया और उसी मथुरा में कंसादि आप को देख करके मरे—यह देखते-अनुभव करते हुए भी॥ २३२॥ ऐसी भक्ति को मेरे नीच मुख ने न

जे भक्तिर प्रभावे अनन्त महाबली। अनन्त ब्रह्माण्ड धरे हइ कुतूहली ॥२३४॥
सहस्र फणार एक फणे विन्दु जेन। यशे मत्त प्रभु, ना जानये 'आछे हेन' ॥२३५॥
निराश्रये पालन करेन सभाकार। भक्ति योग-प्रभावे ए सब अधिकार ॥२३६॥
हेन भक्ति ना मानिलुँ मुञि पाप मति। अशेष-जन्मेओ मोर नाहि भाल-गति ॥२३७॥
भक्ति योगे गौरी पति हइला शङ्कर। भक्ति योगे नारद हइला मुनिवर ॥२३८॥
वेद धर्म योग-नाना शास्त्र करि व्यास। तिलार्द्ध क चित्ते नाहि वासेन प्रकाश ॥२३९॥
महा-गोप्य-ज्ञाने भक्ति बलिला संक्षेपे। सबे एइ अपराध-चित्तेर विक्षेपे ॥२४०॥
नारदेर वाक्ये भक्ति करिला विस्तार। तवे मनो दुःख गेल, तारिला संसार ॥२४१॥
कीट हइ ना मानिलुँ मुञि हेन भक्ति। आरो तोमा' देखिवारे आछे मोर शक्ति" ॥२४२॥
बाहु तुलि कान्दये मुकुन्द महा दास। चलये शरीर जेन, हेन वहे श्वास ॥२४३॥
सहजे एकान्त-भक्त कि कहिव सीमा। चैतन्य प्रियेर माझे जाहार गणना ॥२४४॥
मुकुन्देर खेद देखि प्रभु विश्वम्भर। लज्जित हइया किछु करिला उत्तर ॥२४५॥
"मुकुन्देर भक्ति मोर बड़ प्रियङ्करी। जथा गाओ तुमि तथा आमि अवतरि ॥२४६॥
तुमि जत कहिले, सकल सत्य हय। भक्ति विने आमा' देखिलेओ किछु नय ॥२४७॥
एइ तोरे सत्य कहि, बड़ प्रिय तुमि। वेद मुख बलियाछि जत किछु आमि ॥२४८॥
जे जे कर्म कैले हय जे जे दिव्य गति। ताहा घुचाइते पारे काहार शकति ॥२४९॥

---

माना इतना होने पर भी यही आप की बड़ी कृपा है कि मैं जीवित हूँ ॥ २३३ ॥ जिस भक्ति के प्रभाव से महाबली अनन्त देव सहज विनोद में ही अनन्त ब्रह्माण्डों को ऐसे धारण किये हुए हैं ॥२३४॥ जैसे कि मानो तो सहस्र फणों में से एक फण के ऊपर एक बूँद पड़ी हुई हो। प्रभु के यश गान में वे ऐसे मत्त हैं कि "फण पर भी कुछ है"—इसका कुछ ज्ञान ही नहीं है ॥ २३५ ॥ स्वयं वे निराधर हैं परन्तु सब को धारण कर पालन कर रहे हैं—यह अधिकार उनका भक्ति योग के प्रभाव से ही प्राप्त है ॥ २३६ ॥ ऐसे भक्ति योग को मुझ पाप मति ने नहीं माना। अतएव अनन्त जन्मों में भी मेरी सद्गति नहीं होगी ॥ २३७ ॥ भक्ति योग के प्रभाव से ही शङ्कर गौरी-पति हैं, और भक्ति योग के प्रभाव से ही नारद मुनिश्रेष्ठ हैं ॥ २३८ ॥ व्यास जी ने वेद, धर्मशास्त्र, योगशास्त्र आदि अनेक शास्त्रों की रचना करके भी अपने चित्त में तिल भर भी प्रसन्नता का अनुभव नहीं किया ॥ २३९ ॥ उनके चित्त विक्षेप का केवल यही एक अपराध था कि उन्होंने भक्ति को महा गोप्य समझ कर संक्षेप में वर्णन किया था ॥ २४० ॥ फिर नारद जी के कहने पर जब उन्होंने भक्ति विस्तार पूर्वक वर्णन की तब उनका मानो दुःख दूर हुआ और संसार का भी उद्धार हुआ ॥२४१॥ एक कीट होकर के भी मैंने ऐसी भक्ति को नहीं माना फिर भी आपके दर्शन करने की मेरी सामर्थ्य तो देखो ॥२४२। ऐसा कहता हुआ महादास मुकुन्द, भुजाओं को उठा कर रोता जाता है और साँस ऐसी चलती है कि शरीर नहीं धौंकनी चल रही हो ॥ २४३ ॥ श्री चैतन्य चन्द्र के प्रिय जनों में जिनकी गणना है, ऐसे सहज अनन्य भक्त मुकुन्द की भक्ति की सीमा मैं क्या कहूँ ॥ २४४ ॥ मुकुन्द के खेद को देख कर प्रभु विश्वम्भर ने लज्जित होकर उत्तर दिया ॥२४५॥ 'मुकुन्द की भक्ति मुझे बड़ी प्रिय है। तुम जहाँ गाते हो, मैं वहाँ प्रकट होता हूँ ॥ २४६ ॥ तुमने जो कुछ कहा, वह सब सत्य है। भक्ति के बिना मेरा दर्शन मिल जाने पर कुछ हाथ नहीं लगता ॥ २४७ ॥ "यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, ( कारण कि ) तुम मेरे बड़े प्रिय हो। मैंने जो कुछ भी वेद के मुख से कहा है कि ॥ २४८ ॥ जिन २ कर्मों के करने से जो २ दिव्य गति प्राप्त होती है,

मुञि पारों सकल अन्यथा करि बारे। सर्व-विधि-उपरे आमार अधिकारे ॥२५०॥
मुञि सत्य करियाछों आपनार मुहे। मोर भक्ति विने कोन कर्म किछु नहे ॥२५१॥
भक्ति ना मानिले हय मोर मर्म-दुःख। मोर दुःखे घुचे तार दरशन-सुख ॥२५२॥
रजकेओ देखिल, मागिल तार ठाञि। तथापि वञ्चित हैल, जाते प्रेम नाञि ॥२५३॥
आमा देखिबारे सेइ कत तप कैल। कत कोटि देह सेइ रजक छाड़िल ॥२५४॥
पाइलेक महा भाग्ये मोर दरशने। ना पाइल सुख भक्ति शून्येर कारणे ॥२५५॥
मोर सेवकेर ठाञि जार अपराध। मोर दरशन-सुख तार हय बाध ॥२५६॥
भक्त-स्थाने अपराध कैले घुचे भक्ति। भक्तिर अभावे घुचे दरशन-शक्ति ॥२५७॥
जतेक कहिले तुमि सब मोर कथा। तोमार मुखे वा केने आसिब अन्यथा ॥२५८॥
'भक्ति विलाइमु मुञि' बलिल तोमारे। आगे प्रेम भक्ति दिल तोर कण्ठ स्वरे ॥२५९॥
जत देख आछे मोर वैष्णव मण्डल। शुनिले तोमार गान द्रवये सकल ॥२६०॥
आमार जे मन तुमि वल्लभ एकान्त। एइ मत हओ तोरे सकल महान्त ॥२६१॥
जे खाने जे खाने हय मोर अवतार। तथाय गायन तुमि हइबे आमार ॥२६२॥
मुकुन्देर प्रति यहि वरदान कैल। महा-जय जय ध्वनि तखने उठिल ॥२६३॥
'हरि बोल हरि बोल जय जगन्नाथ। 'हरि' बलि निवेदइ सभे तुलि हाथ ॥२६४॥
मुकुन्देर स्तुति वर शुने जेइ जन। सेहो मुकुन्देर सङ्गे हइब गायन ॥२६५॥
ए सब चैतन्य कथा वेदेर निगूढ़। सुबुद्धि मानये इहा, ना मानये मूढ़ ॥२६६॥

---

उसको मिटाने की भला किसकी सामर्थ्य है ॥ २४९ ॥ "परन्तु मैं सब कुछ उलट सकता हूँ। सब विधि-विधान के ऊपर मेरा अधिकार है ॥ २५० ॥ मैंने अपने ही मुख से यह सत्य घोषणा कर रक्खी है कि मेरी भक्ति के बिना कोई भी कर्म का सार कुछ नहीं है ॥ २५१ ॥ "भक्ति को न मानने से मुझे मार्मिक दुःख होता है। मेरे दुःख के कारण उसको दर्शन का सुख नहीं मिलता है ॥ २५२ ॥ कंस के धोबी ने मेरा दर्शन किया मैंने उससे वस्त्र भी मांगे, पर फिर भी वह दर्शन के आनन्द सुख से वंचित ही रहा-कारण कि उसमें प्रेमभक्ति नहीं थी ॥ २५३ ॥ मेरे दर्शन के लिए उसने कितना तो तप किया था और कितने करोड़ देह उस धोबी ने छोड़े थे ॥ २५४ ॥ महाभाग्य से उसे मेरा दर्शन तो मिला पर भक्ति शून्य होने के कारण दर्शन का सुख न मिला। २५५ ॥ "मेरे सेवक के निकट जिसका अपराध होता है उसको मेरे दर्शन के सुख में बाधा पड़ जाती है ॥ २५६ ॥ ( कारण कि ) भक्त के निकट अपराध करने से भक्ति मिट जाती है और भक्ति के अभाव में दर्शन करने की शक्ति चली जाती है ॥ २५७ ॥ "तुमने जो कुछ भी कहा वह सब मेरी ही बातें थीं। तुम्हारे मुख में दूसरी बातें आ भी कैसे सकती हैं ॥ २५८ ॥ मैं तुमसे कहता हूँ कि मैं भक्ति वितरण करूँगा और मैं सब से आगे तुम्हारे कण्ठस्वर में प्रेमभक्ति देता हूँ ॥ २५९ ॥ "देखो जितने भी मेरे वैष्णव भक्त मण्डल हैं, वे सब तुम्हारे गायन को सुन कर द्रवीभूत हो जाँयगे ॥ २६० ॥ जैसे तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो, वैसे ही तुम और सब महानुभावों के भी प्रिय होगे ॥ २६१ ॥ और जहाँ २ मेरा अवतार होगा, वहाँ २ तुम मेरे गायक बनोगे ॥ २६२ ॥ जब मुकुन्द के प्रति ऐसा वरदान दिया तो महा जय जयकार ध्वनि होने लगी ॥ २६३ ॥ सब लोग हाथ उठा २ कर 'हरि बोल' 'हरि बोल' 'जय जगन्नाथ' "हरि २" कह २ के अपने २ हृदयोच्छ्वास को निवेदन करने लगे ॥ २६४ ॥ मुकुन्द की स्तुति और वर प्राप्ति के प्रसङ्ग को जो कोई सुनेंगे वे भी मुकुन्द के साथ प्रभु के गायक होंगे ॥ २६५ ॥ यह सब चैतन्य-चरित्र वेद के लिए भी गुप्त है, सुबुद्धिमान इसे मानते

शुनिले ए सब कथा जार हय सुख। अवश्य देखिव सेइ श्रीचैतन्य-मुख ॥२६७॥
एइ मत जत जत भक्तेर मण्डल। सभे कैला स्तुति-वर पाइल सकल ॥२६८॥
श्रीवास पण्डित अति महा महोदार। अतएव तान गृहे सब व्यवहार ॥२६९॥
जार जेन मत इष्ट प्रभु आपनार। सेइ विश्वम्भर देखे सेइ अवतार ॥२७०॥
'महा-महा-परकाश' इहारे से बलि। ए मत करये गौरचन्द्र कुतूहली। २७१॥
एइ मत दिने दिने प्रभुर प्रकाश। सपत्नीके चैतन्येर देखे जत दास ॥२७२॥
देह-मन-निर्विशेषे जे जे हय दास। तारा से देखिते पाय ए सब प्रकाश ॥२७३॥
सेइ नवद्वीपे आर कत कत आछे। तपस्वी, संन्यासी, ज्ञानी, योगी माझे माझे ॥२७४॥
यावत्काल गीता भागवत केहो पड़े। केहो वा पढ़ाय स्वधर्मे ते नाहि नड़े ॥२७५॥
केहो केहो परिग्रह किछुइ ना लय। वृथा आकुमार-धर्मे शरीर शोषय। २७६॥
सेइ खाने हेन वैकुण्ठेर सुख हैल। वृथा-अभिमानी एको जना ना देखिल ॥२७७॥
श्रीवासेर दास दासी जे सब देखिल। शास्त्र पढ़ियाओ ताहा केहो ना जानिल ॥२७८॥
मुरारि गुप्तेर दासे जे प्रसाद पाइल। केहो माथा मुण्डाइया ताहा ना देखिल। २७९॥
धने कुले पाण्डित्ये चैतन्य नाहि पाइ। केवल भक्तिर वश चैतन्य गोसाञि ॥२८०॥
बड कीर्त्ति हइले चैतन्य नाहि पाइ। भक्ति वश सवे प्रभु-चारि-वेदे गाइ ॥२८१॥
सेइ नवद्वीपे हेन प्रकाश हइल। जत भट्टाचार्य एको जना ना देखिल ॥२८२॥
दुष्कृतिर सरोवरे कभू जल नहे। ए मन प्रकाशे कि वञ्चित जीव हये ॥२८३॥

---

हैं,मूढ़ जन नहीं मानते हैं ॥ २६६ ॥ यह सब कथा सुनने पर जिसे सुख होता है, वह श्री चैतन्य के मुखचन्द्र का अवश्य दर्शन करेगा ॥२६७॥ इसी प्रकार से जितना भी भक्त मण्डल था, सबने स्तुति को और वर पाया ॥ २६८ ॥ श्रीवास पण्डित "अति महा २ उदार" हैं, अतएव उनके ही घर पर यह सब विहार हुए। २६९॥ जिसका इष्टदेव जैसा था, वह प्रभु विश्वम्भर को उसी अवतार के रूप में देखते हैं ॥ २७० ॥ इसीलिए इसको 'महा २ प्रकाश' कहते हैं। इस प्रकार कौतुक श्री गौरचन्द्र लीला करते हैं ॥ २७१ ॥ इसी प्रकार दिन प्रति दिन प्रभु अपने स्वरूप का प्रकाश करते हैं और चैतन्य दास सब अपनी स्त्रियों के सहित दर्शन करते हैं ॥२७२॥ जो अपने शरीर और मन के भेद को मिटा कर उन्हें एक करके प्रभु के दास बनते हैं, वे ही यह सब प्रकाश देख पाते हैं ॥२७३॥ उसी नवद्वीप में और भी तो कितने २ लोग थे-तपस्वी, सन्यासी, ज्ञानी, बीच २ में योगी भी थे। २७४ ॥ उनमें से कोई जब तक गीता-भागवत पढ़ते या पढ़ाते तब तक अपने स्वधर्म से नहीं टलते ॥ २७५ ॥ कोई कोई तो कुछ भी परिग्रह नहीं करते और ब्रह्मचर्य धर्म पालन करते हुए वृथा ही अपने शरीर को सुखा डालते है ॥ २७६ ॥ उसी स्थान में वैकुण्ठ का जैसा परमानन्द हुआ पर वृथा अभिमानी जन एक भी उसे न देख पाए ॥ २७७ ॥ श्रीवास के दास दासियों ने जो कुछ प्रत्यक्ष दर्शन किया, शास्त्र पढ़कर के भी किसी को उसका परोक्ष ज्ञान तक न हो सका ॥ २७८ ॥ मुरारि गुप्त के दासों को जो कृपा मिली उसे मूड़ मुड़ाकर भी किसी ने न देखा ॥ २७९ ॥ (अतएव) धन, कुल, पण्डिताई आदि से श्री चैतन्यचन्द्र नहीं मिलते-श्री चैतन्य गुसांई तो केवल भक्ति के वश हैं ॥ २८० ॥ बड़ी भारी कीर्ति से भी चैतन्यचन्द्र नही मिलते हैं प्रभु तो केवल भक्ति के वश में है—यही चारों वेद गाते हैं ॥२८१॥ उसी नवद्वीप में ऐसे २ विलक्षण प्रकाश हुए परन्तु इतने भट्टाचार्यों (पण्डितों) में से एक को भी देखने को न मिला ॥ २८२ ॥ भला दुष्कृति रूप सरोवर में भी कभी (सुकृति रूप) जल रहता है नहीं तो ऐसे २ प्रकाशों से भी जीव क्या

ए सब लीलार कभू नाहि परिच्छेद । 'आविर्भाव तिरोभाव' एइ कहे वेद ॥२८४॥
अद्यापिह चैतन्य ए सब लीला करे । जखने जाहारे करे दृष्टि-अधिकारे ॥२८५॥
सेइ देखे, आर देखिवारे शक्ति नाञि । निरन्तर क्रीड़ा करे चैतन्य गोसाञि ॥२८६॥
जे मंत्रे ते जे वैष्णव इष्ट ध्यान करे । सेइ मत देखाय ठाकुर विश्वम्भरे ॥२८७॥
देखाइया आपने शिखाय सभाकारे । "ए सकल कथा भाइ ! सुने पाछे आरे ॥२८८॥
जन्म जन्म तोमरा पाइवे मोर सङ्ग । तोमा' सभार भृत्येओ देखिव मोर रङ्ग ॥२८९॥
आपन गलार माला दिला सभा कारे । चर्वित-ताम्बूल आज्ञा हइल सभारे ॥२९०॥
महानन्दे खाय सभे हरषित हैया । कोटि-चान्द-शारद-मुखेर द्रव्य पाय्या ॥२९१॥
भोजनेर अवशेष जतेक आछिल । नारायणी पुण्यवती ताहा से पाइल ॥२९२॥
श्रीवासेर भ्रातृ-सुता बालिका अज्ञान । ताहारे भोजन शेष प्रभु करे दान ॥२९३॥
परम-आनन्दे खाय प्रभुर प्रसाद । सकल वैष्णव तारे करे आशीर्वाद ॥२९४॥
"धन्य धन्य एइ से सेविला नारायण । बालिका स्वभावे धन्य इहार जीवन" ॥२९५॥
खाइले प्रभुर आज्ञा हये "नारायणि । कृष्णेर परमानन्दे कान्द देखि शुनि ॥२९६॥
हेन प्रभु चैतन्येर आज्ञार प्रभाव । 'कृष्ण' बलि कान्दे अति बालिका स्वभाव ॥२९७॥
अद्यापिह वैष्णव मण्डले जार ध्वनि । 'गौराङ्गेर अवशेष-पात्र नारायणी' ॥२९८॥
जारे जेन आज्ञा करे ठाकुर चैतन्य । से आसिया अविलम्बे हय उपसन्न ॥२९९॥
ए सब वचने जार नाहिक प्रतीत । सत्य अधः पात तार जानिह निश्चित ॥३००॥

---

वंचित रह सकता है ? ॥ २८३ ॥ इन सब लीलाओं की कभी समाप्ति नहीं है । वेद (शास्त्र) इनका केवल आविर्भाव और तिरोभाव ही बतलाता है ॥ २८४ ॥ आज भी श्री चैतन्य देव यह सब लीला कर रहे हैं, किन्तु जिस समय जिसको देखने का अधिकार प्रदान करते है ॥ २८५ ॥ तब ही वह देख पाता है औरों की शक्ति नहीं है देखने को । पर श्री चतन्य प्रभु तो निरन्तर क्रीड़ा कर रहे है ॥ २८६ ॥ जो वैष्णव जन जिस मंत्र द्वारा अपने इष्ट का ध्यान करते हैं ठाकुर विश्वम्भर उनको उसी रूप में दर्शन देते हैं ॥ २८७ ॥ दर्शन देकर आप ही सब को सावधान भी करते हैं कि "भाइयो ! यह सब बातें और कोई न सुन पाए ॥ २८८ ॥ "तुम लोग जन्म २ में मेरा सङ्ग पाओगे । तुम सब के नौकर चाकर भी मेरा कौतुक-विहार देखेंगे" ॥२८९॥ ऐसा कह कर फिर आपने अपने गले की मालाएं सब को दीं और अपना चर्वित ताम्बूल सब को बाँट देने के लिए आज्ञा की ॥ २९० ॥ कोटि शरच्चन्द सदृश श्री मुख का पान प्रसाद पाकर उसे भक्त लोग परम आनंद के साथ पाने लगे ॥ २९१ ॥ (प्रभु के) भोजन का शेष प्रसाद जो कुछ था, वह पुण्यवती नारायणी ने पाया ॥ २९२ ॥ नारायणी श्रीवास के भाई की पुत्री है—अज्ञान बालिका है, उसको प्रभु ने अपना भोजन-शेष प्रदान किया ॥ २९३ ॥ वह परम आनन्द के साथ प्रभु का प्रसाद पाती है और वैष्णव लोग उसे आशीर्वाद देते हैं ॥ २९४ (और कहते हैं) "इसे धन्य है, धन्य है । इसने नारायण की सेवा की है । बालिका रूप में इसका जीवन धन्य है ॥ २९५ ॥ प्रसाद पा चुकने पर उसके लिए प्रभु की आज्ञा हुई—"नारायणी ! तुम कृष्ण के परमानन्द में रोओ—हम सब देख सुनें तो सही ॥ २९६ ॥ प्रभु श्री चैतन्य देव की आज्ञा का ऐसा प्रभाव है कि अति बालिका स्वभाव नारायणी "कृष्ण २" कह कर रोने लगी । २९७ ॥ आज भी वैष्णव मंडली में यह ध्वनि प्रचलित है कि "श्री गौरांग के शेष- प्रसाद की पात्री नारायणी ॥ २९८ ॥ और भी प्रभु श्री चैतन्य देव जिसको बुलाते हैं वही तुरन्त आकर उपस्थित हो जाता है ॥ २९९ ॥ इन सब बातों का जिसको

अद्वैतेर प्रिय प्रभु चैतन्य ठाकुर। एइ से अद्वैतेर बड़ महिमा प्रचुर ॥३०१॥
चैतन्येर प्रिय देह ठाकुर निताइ। एइ से महिमा तान चारि वेदे गाइ ॥३०२॥
'चैतन्येर भक्त' हेन नोहि जार नाम। यदि वा से वस्तु, तभू तृणेर समान ॥३०३॥
नित्यानन्द कहे आमि चैतन्येर दास। अहर्निश आर प्रभु ना करे प्रकाश ॥३०४॥
ताहान कृपाय हय चैतन्येते रति। नित्यानन्द भजिले आपद नाहि कति ॥३०५॥
आमार प्रभुर प्रभु गौराङ्ग सुन्दर। ए बड़ भरसा चित्ते धरि निरन्तर ॥३०६॥
धरणी धरेन्द्र-नित्यानन्देर चरण। देह' प्रभु गौरचन्द्र! आमारे शरण ॥३०७॥
बलराम-प्रीते गाइ चैतन्य चरित। कर बलराम प्रभु! जगतेर हित ॥३०८॥
'चैतन्येर दास' वइ निताइ ना जाने। चैतन्येर दासत्व नित्यानन्द करे दाने ॥३०९॥
नित्यानन्द कृपाय से गौरचन्द्र चिनि। नित्यानन्द-प्रसादे से भक्त तत्त्व जानि ॥३१०॥
सर्व-वैष्णवेर प्रिय नित्यानन्द-राय। सभे नित्यानन्द-स्थाने भक्ति-पद पाय ॥३११॥
कोन-मते यदि करे नित्यानन्दे हेला। आपने चैतन्य बोले 'सेइ जन गेला ॥३१२॥
आदि देव महा योगी ईश्वर वैष्णव। महिमार अन्त इहा ना जानये सव ॥३१३॥
काहारो ना करे निन्दा, 'कृष्ण कृष्ण' बोले। अजय चैतन्य सेइ जिनिवेक हेले ॥३१४॥
'निन्दाय नाहिक लभ्य' सर्व-शास्त्रे कहे। सभार सम्मान-भागवत-धर्म हये ॥३१५॥
मध्य खण्ड कथा जेन अमृतेर खण्ड। महा-निम्ब हेन वासे' जतेक पाखण्ड ॥३१६॥

---

विश्वास नहीं है, उसका अवश्य ही अधःपतन होगा—यह निश्चय जानो ॥ ३०० ॥ श्री चैतन्य चन्द्र श्रीअद्वैत के प्रिय प्रभु हैं—यही श्री अद्वैत की बडी भारी महिमा है ॥ ३०१ ॥ प्रभु नित्यानन्द श्री चैतन्य प्रभु की प्रिय देह है—उनकी इस महिमा को चारों वेद गाते हैं ॥ ३०२ ॥ श्री चैतन्य चन्द्र के भक्तों में जिसका नाम नही है, चाहे वह ( कैसी ही महान् ) वस्तु क्यों न हो, तो भी वह तृणवत् है ॥ ३०३ ॥ नित्यानन्द प्रभु कहते है कि "मैं श्री चैतन्य का दास हूँ। रात दिन वे इसे छोड़ और कुछ कहते ही नहीं हैं ॥ ३०४ ॥ उनकी कृपा से ही श्री चैतन्य प्रभु में रति होती है। श्री नित्यानन्द का भजन करने से कोई आपदा नहीं आती है ॥३०५॥ मेरे प्रभु (नित्यानन्द) के प्रभु श्री गौरांग सुन्दर हैं—मेरे चित्त में निरन्तर यही बड़ा भारी भरोसा है ॥३०६॥ हे प्रभो गौरचन्द्र! धरणी धरेन्द्र श्री नित्यानन्द के चरण की शरण मुझे प्रदान करो ॥ ३०७ ॥ श्रीबलराम ( नित्यानन्द ) की प्रसन्नता के लिए मैं यह चैतन्य-चरित गा रहा हूँ। हे बलराम प्रभो! जगत् का कल्याण करो ॥ ३०८ ॥ श्री चैतन्य के दास के बिना श्रीनिताई और कुछ नहीं जानते हैं। और आप दान भी चैतन्य के दासत्व का ही करते हैं ॥ ३०९ ॥ श्री नित्यानन्द की कृपा से ही मैं श्री गौरचन्द्र को पहचानता हूँ और उन्हो की कृपा से भक्त-तत्त्व को भी जानता हूँ ॥ ३१० ॥ श्री नित्यानन्द राय सब वैष्णवों के प्रिय है और सब ही श्री नित्यानन्द के निकट से भक्ति-पद को प्राप्त करते हैं ॥ ३११ ॥ यदि कोई किसी प्रकार से श्री-नित्यानन्द की अवहेलना करता है तो स्वयं श्री चैतन्य चन्द्र कह देते है कि "वह तो नष्ट हो गया" ॥३१२॥ श्री नित्यानन्द प्रभु आदिदेव हैं, महा योगी हैं, ईश्वर हैं, वैष्णव है, महिमा की अवधि हैं यह सब लोग नही जानते हैं ॥ ३१३ । जो किसी की निन्दा नहीं करता है, "कृष्ण २" कहता है, वह अजय श्री चैतन्य-चन्द को अनायास ही जीत लेगा ॥ ३१४ ॥ "निन्दा से कुछ लाभ नहीं होता" यही सब शास्त्र कहते हैं "सब का सम्मान" यही भागवत् धर्म है ॥ ३१५ ॥ मध्यखण्ड की कथा मानो अमृत का ग्रास है। परन्तु जितने पाखण्डी लोग हैं उनको यह नीम जैसी बड़ी कडवी लगती है ॥ ३१६ ॥ यदि किसी को शक्कर में नीम का स्वाद आवे

केहो जेन शर्कराये निम्ब-स्वादु पाय। तार दैव,-शर्कराय स्वादु नाहि जाय ॥३१७॥
एइ मत चैतन्येर परानन्द-यशे। शुनिते ना पाय सुख-हइ दैव वशे ॥३१८॥
संन्यासीह यदि नाहि माने गौरचन्द्र। जानिह से खल-जन, जन्म जन्म अन्ध ॥३१९॥
पक्षि मात्र यदि बोले चैतन्येर नाम। सेहो सत्य जाइवेक चैतन्येर धाम ॥३२०॥
जय गौरचन्द्र ! नित्यानन्देर जीवन। तोर नित्यानन्द मोर हउ प्राण-धन ॥३२१॥
जार जार सङ्गे तुमि करिला विहार। से सब गोष्ठीर पा'ये मोर नमस्कार ॥३२२॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ॥३२३॥

# अथ ग्यारहवाँ अध्याय

राग मलार– ( निधि गौराङ्ग कोथा हैते आइला प्रेमा सिन्धु।
अनाथेर नाथ प्रभु पतित जनेर वन्धु ॥ ध्रु )

जय जय विश्वम्भर द्विज कुल सिंह। जय हउ तोर जत चरणेर भृङ्ग ॥१॥
जय श्रीपरमानन्द पुरीर जीवन। जय दामोदर स्वरूपेर प्राण धन ॥२॥
जय रूप-सनातन-प्रिय महाशय। जय जगदीश-गोपीनाथेर हृदय ॥३॥
हेन मते नवद्वीपे प्रभु विश्वम्भर। क्रीड़ा करे, नहे सर्व-जनेर गोचर ॥४॥
नवद्वीपे मध्य खण्डे कौतुक अनन्त। घरे वसि देखये श्रीवास भाग्य वन्त ॥५॥
निष्कपटे प्रभुरे सेविला श्रीनिवास। गोष्ठी-सङ्गे देखये प्रभुर परकाश ॥६॥

---

तो ये उसका दुर्भाग्य समझो शक्कर तो शक्कर ही है—उसका स्वाद कहीं नहीं गया है ॥ ३१७ ॥ इस प्रकार वे दुर्भाग्यवशात: श्री चैतन्य के परानन्दमय यश को श्रवण करके भी सुख नहीं पाते हैं ॥ ३१८ ॥ यदि कोई सन्यासी भी श्री गौरचन्द्र को नहीं मानता है तो उसको खल जन्म २ का अन्धा ही समझो ॥ ३१९ ॥ और यदि पक्षी भी श्री चैतन्य चन्द्र के नाम को लेता है तो वह श्री चैतन्य के धाम को निश्चय ही प्राप्त कर लेगा ॥ ३२० ॥ श्री नित्यानन्द के जीवन स्वरूप श्री गौरचन्द्र की जय हो। हे गौर प्रभो ! तुम्हारे नित्यानन्द मेरे प्राण धन हों ॥ ३२१ ॥ हे गौर ! जिन २ को साथ लेकर तुमने विहार किया है, उन सब भक्त मण्डली के श्रीचरणों में मेरा नमस्कार है ॥ ३२२ ॥ श्री कृष्ण चैतन्य एवं श्री नित्यानन्द चन्द्र को जान कर यह वृन्दावन दास उनके युगल चरणों में उनके गुण—गान को समर्पण करता है ॥ ३२३ ॥

इति श्री चैतन्य भागवते मध्यखण्डे महा प्रकाश वर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥

हे गौरांग निधि ! हे प्रेम सिन्धो ! हे अनाथों के नाथ ! हे प्रभो ! हे पतित जनों के बन्धो ! आप कहाँ से आए ।टेक। हे विश्वम्भर ! हे द्विज कुलसिंह ! जय हो, जय हो आप की और आपके चरण कमलों के समस्त मधुकर कुल की ॥ १ ॥ श्री परमानन्द पुरी के जीवन स्वरूप प्रभु की जय। श्री स्वरूप दामोदर के प्राणधन गौर की जय ॥ २ ॥ श्री रूप सनातन के प्रिय महाशय प्रभु की जय। श्री जगदीश-गोपीनाथ के हृदय गौर की जय ॥ ३ ॥ इस प्रकार नवद्वीप में विश्वम्भर प्रभु क्रीड़ा कर रहे हैं, पर सब लोग यह नहीं जानते हैं ॥ ४ ॥ इस मध्य खण्ड में नवद्वीप में प्रभु द्वारा कृत अनन्त कौतुकों का वर्णन है जिन्हें भाग्यवान श्री वास पण्डित घर बैठे २ देखते हैं ॥ ५ ॥ श्री निवास पंडित ने निष्कपट भाव से प्रभु की सेवा की है, अतएव सपरिवार प्रभु की प्रकाश लीलाओं का दर्शन कर रहे हैं ॥ ६ ॥ श्रीवास के घर में ही नित्यानन्द जो

श्रीवासेर घरे नित्यानन्देर वसति । 'बाप !' बलि श्रीवासेरे करये पिरिति ॥७॥
अहर्निश बाल्य-भावे बाह्य नाहि जाने । निरवधि मालिनीर करे स्तन-पाने ॥८॥
कभू नाहि दुग्ध, परशिले मात्र हय । ए सब अचिन्त्य-शक्ति मालिनी देखय ॥९॥
चांचल्येर निवारणे कारेओ ना कहे । निरवधि शिशु-रूप मालिनी देखये ॥१०॥
प्रभु विश्वम्भर बोले "शुन नित्यानन्द । काहारो सहित पाछे कर' तुमि द्वन्द ॥११॥
चञ्चलता ना करिबा श्रीवासेर घरे" । शुनि नित्यानन्द विष्णु स्मङरण करे ॥१२॥
"आमार चाञ्चल्य तुमि कभू ना पाइबा । आपनार मत तुमि कारो ना वासिबा" ॥१३॥
विश्वम्भर बोले "आमि तोमा' भाले जानि" । नित्यानन्द बोले "दोष कह देखि शुनि" ॥१४॥
हासि बोले गौरचन्द्र "कि दोष तोमार । सब घरे अन्नवृष्टि कर' अवतार" ॥१५॥
नित्यानन्द बोले "इहा पागल से करे । ए छलाये घरे भात ना दिबे आमारे ॥१६॥
आमारे ना दिया भात सुखे तुमि खाओ । अपकीर्ति आर केने बलिया बेड़ाओ ॥१७॥
प्रभु बोले "तोमार अपकीर्ति आमि पाइ । से इत कारणे आमि तोमारे शिखाइ ॥१८॥
हासि बोले नित्यानन्द "बड़ भाल भाल । चाञ्चल्य देखिले शिखाइबा सर्वकाल ॥१९॥
निश्चय बलिला तुमि-आमि त चञ्चल । एत बलि प्रभु चा'हि हासे' खल खल ॥२०॥
आनन्दे ना जाने बाह्य कोन् कर्म करे । दिगम्बर हइ वस्त्र वान्धिलेन शिरे ॥२१॥
जोड़े जोड़े लाफ देइ हासिया हासिया । सकल अङ्गने बुले दुलिया दुलिया ॥२२॥

---

का निवास है । वे श्रीवास को "बाप" कह कर उनसे स्नेह करते हैं ॥ ७ ॥ श्री नित्यानन्द दिन रात बाल भाव में डूबे हुए बाहर से बेखबर रहते हैं। और बार २ मालिनी ( श्रीवास की पत्नी ) का स्तन पान करते हैं ॥ ८ ॥ यद्यपि मालिनी के स्तनों में दूध लेश मात्र भी नहीं होता, तथापि श्री नित्यानन्द जी के स्पर्श मात्र से दूध भर आता है । उनकी इस अचिन्त्य प्रभाव को मालिनी सब देखती हैं ॥ ९ ॥ (पर) वे किसी से कहती नहीं है कहीं ऐसा न हो कि प्रभु विश्वम्भर इनको निषेध करें । वह भी नित्यानन्द जी को सदा शिशु रूप में ही देखती हैं ॥ १० ॥ एक दिन प्रभु विश्वम्भर बोले–"सुनो, नित्यानन्द जी ! आप किसी से न लड़े-झगड़े ॥ ११ ॥ "और श्रीवास के घर पर चांचलता न करें । यह सुनकर नित्यानन्द जी "श्री विष्णु" "श्री विष्णु" ऐसा स्मरण करने लगे ॥ १२ ॥ (और कहने लगे ) "तुम कभी मुझमें चांचलताई न पाओगे । तुम अपना जैसा किसी को मत समझो" ॥ १३ ॥ विश्वम्भर देव बोले–"मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ" । तो नित्यानन्द बोले–"तो बताओ मेरे दोष क्या हैं–सुनूं तो" ॥ १४ ॥ श्री गौरचन्द्र हँस कर बोले–"तुम्हारा क्या दोष ? (दोष यही है कि) सारे घर भर तुम अन्न-वर्षा का अवतार कर देते हो । ( श्लोकार्थ:–सब पर बिना विचारें प्रेम की वर्षा करते हो ) ॥ १५ ॥ नित्यानन्द बोले–"ऐसा तो पागल किया करते हैं ! अच्छा ! इसी बहाने से तुम मुझे अपने घर में भात नहीं खिलाओगे ॥ १६ ॥ "अच्छा–मत खिलाओ मुझे न देकर आप हो अकेले मौज से खाओ लेकिन अपनी इस अपयश का ढोल क्यों बजाते फिरते हो" ॥ १७ ॥ प्रभु बोले–"तुम्हारा अपयश आकर मुझे लगता है । इसीलिए तो मैं तुमको सीख दे रहा हूँ" ॥१८॥ तब नित्यानन्द जी हँस कर बोले–"अच्छा-बड़ा अच्छा" चांचलताई देखने हर सदैव सीख देते रहना ॥ १९ ॥ तुमने ठीक ही कहा मैं तो चांचल हूँ" । इतना कह कर प्रभु की ओर देखते हुए खिलखिला कर हँस पड़े ॥ २० ॥ मारे आनन्द के बाहर को कुछ सुध बुध नहीं है–मैं क्या कह रहा हूँ इसका होश नहीं । झट दिगम्बर बन गए और वस्त्र को लेकर सिर पर लपेट लिया ॥ २१ ॥ वे दोनो पाँवों को मिलाकर उछलते- कूदते हैं- हँसते है

गदाधर श्रीनिवास हासे' हरिदास। शिक्षार प्रसादे सभे देख दिगवास ॥२३॥
डाकि बोले विश्वम्भर ए कि कर' कर्म्म। गृहस्थेर बाड़ीते ए मत न हे धर्म्म ॥२४॥
एखनि बलिला तुमि 'आमि कि पागल'। एइ क्षणे निज वाक्य घुचिल सकल" ॥२५॥
जार वाह्य नाहि, तार वचने कि लाज। नित्यानन्द भासये आनन्द सिन्धु माझ ॥२६॥
आपने धरिया प्रभु पराय वसन। ए मत अचिन्त्य नित्यानन्देर कथन ॥२७॥
चैतन्येर वचन अङ्कुश मात्र माने। नित्यानन्द मत्त सिंह आर नाहि जाने ॥२८॥
आपनि तुलिया हाथे भात नाहि खाय। पुत्र प्राय करि अन्न मालिनी जो गाय ॥२९॥
नित्यानन्द-अनुभाव जाने पतिव्रता। नित्यानन्द-सेवा करे–जेन पुत्र माता ॥३०॥
एक दिन पित्तलेर वाटि निल काके। उड़िया वसिल काक जे डाले ते थाके ॥३१॥
अदृश्य हइल काक कोन् राज्ये गेल। महा-चिन्ता मालिनीर चित्ते ते जन्मिल ॥३२॥
वाटि थुइ सेइ काक आइल आर बार। मालिनी देखये शून्य वदन ताहार ॥३३॥
"महा-तीव्र ठाकुर पण्डित-व्यवहार। 'श्रीकृष्णेर घृत पात्र हैल अपहार' ॥३४॥
शुनिले प्रमाद हैव" हेन मने मणि। नाहिक उपाय किछु, कान्दये मालिनी ॥३५॥
हेन काले नित्यानन्द आइला सेइ स्थाने। देखये मालिनी कान्दे, नाहिक कारणे ॥३६॥
हासि बोले नित्यानन्द "कान्द कि कारण। कोन् दुःख बोल, सब करिब खण्डन" ॥३७॥
मालिनी बोलये "शुन श्रीपाद गोसाञि। घृत पात्र काके लइ गेल कोन् ठाञि ॥३८॥

---

और झूमते-झामते हुए सारे आंगन भर में घूमते फिरते हैं ॥ २२ ॥ गदाधर, श्रीनिवास और हरिदास जी हँसते हैं, कि देखो प्रभु ने तो इनको चांचलताई न करने की सीख दो परन्तु उसका फल यह हुआ कि ये दिगम्बर बने घूम रहे हैं ॥ २३ ॥ तब विश्वम्भर प्रभु टेर कर कहते हैं–"तुम यह क्या कर रहे हो ? गृहस्थियों के घर में ऐसा करना धर्म नहीं है ॥ २४ ॥ अभी तो तुमने कहा था "मैं क्या पागल हूँ"। और अभी क्षण भर में अपनी बात को सब मिटा दी ( और पागल बन गए ) ॥ २५ ॥ परन्तु जिसे बाहर की कुछ खबर ही नहीं उनको किसी की बातों से, ताना-झांसे से-भला शर्म कहां। नित्यानन्द तो आनन्द सागर में बहे जा रहे हैं ॥ २६ ॥ तब प्रभु ने स्वयं उन्हें पकड़ कर वस्त्र पहनाया। श्री नित्यानन्द का चरित्र ऐसा अचिन्त्य (दुर्गम) है ॥ २७ ॥ श्री नित्यानन्द एक मत्त सिंहराज है जो एक श्री चैतन्य चन्द्र के वचन-अंकुश को ही मानते हैं और कुछ नहीं जानते हैं ॥ २८ ॥ वे अपने आप तो हाथ उठा कर मुख में भात भी नहीं देते हैं। मालिनी ही पुत्र जैसा समझ कर उनके मुख में अन्न देती हैं ॥ २९ ॥ श्री नित्यानन्द के प्रभाव को पतिव्रता मालिनी देवी जानती हैं और माता जैसे पुत्र की सेवा करती है उसी प्रकार वे श्री नित्यानन्द की सेवा करती हैं ॥ ३० ॥ एक दिन पीतल की एक कटोरी को कौआ ले गया। वह जिस डाल पर रहता था वहीं उड़कर जा बैठा ॥ ३१ ॥ काक अदृश्य होकर न जाने किस राज्य में चला गया–तब तो मालिनी के चित्त को बड़ी भारी चिन्ता ने आ दबाई ॥ ३२ ॥ वह कौआ कटोरी को कहीं रख कर फिर आ गया मालिनी ने देखा कि उसकी चोंच पर कुछ नहीं है ॥ ३३ ॥ वह सोचने लगी कि श्री ठाकुर पंडित (श्रीवास) का व्यवहार बड़ा कड़ा है ! वह कटोरी तो श्री कृष्ण के घी की कटोरी है। वह चली गयी ॥ ३४ ॥ यह सुन पायँगे तो गजब हो जायगा"। ऐसा सोच और कुछ उपाय न देखकर बेचारी मालिनी रोने लगी ॥३५॥ उसी समय नित्यानन्द जी वहाँ आ गए, और देखा कि मालिनी बिना बात के रो रही है ॥ ३६ ॥ हँस कर नित्यानन्द बोले–"क्यों रो रही हो ? क्या दुःख है ? बोलो–बताओ ! मैं सब दूर कर दूंगा" ॥ ३७ ॥ मालिनी बोली–' श्री

नित्यानन्द बोले "माता ! चिन्ता परिहर । आमि दिब बाटि, तुमि क्रन्दन सम्वर" ॥३९॥
काक प्रति हासि प्रभु बोलये वचन । "अहे काक ! झाट बाटि आनह एखन" ॥४०॥
सभार हृदये नित्यानन्देर वसति । ताँर आज्ञा लङ्घिबेक–काहार शकति ॥४१॥
शुनिया प्रभुर आज्ञा काक उड़ि जाय । शोकाकुली मालिनी काकेर दिगे चाय ॥४२॥
क्षणे के उड़िया काक अदृश्य हइल । बाटि मुखे करि, पुन से खाने आइल ॥४३॥
आनिञा थुइल बाटि मालिनीर स्थाने । नित्यानन्द-प्रभाव मालिनी भाल जाने ॥४४॥
आनन्दे मूर्च्छिता हैला अपूर्व देखिया । नित्यानन्द-प्रति स्तुति करे दाण्डाइया ॥४५॥
'जे जन आनिल मृत गुरुर नन्दन । जे जन पालन करे सकल भुवन ॥४६॥
जमेर घरे ते हैते जे आनिते पारे । काक-स्थाने बाटि आने' कि महत्त्व ताँरे ॥४७॥
जाँहार मस्तको परि अनन्त-भुवन । लीलाय ना जाने भर, करये पालन ॥४८॥
अनादि अविद्या ध्वंस हय जाँर नामे । कि महत्त्व ताँर-बाटि आने' काक-स्थाने ॥४९॥
जे तुमि लक्ष्मण-रूपे पूर्वे वनवासे । निरवधि रक्षक आछिला सीता-पाशे ॥५०॥
तथापिह आर तुमि सीतार चरण । इहा बइ, सीता नाहि देखिले के मन ॥५१॥
तोमार से बाणे रावणेर वंश नाश । से तुमि जे बाटि आन' के मन प्रकाश ॥५२॥
जाँहार चरणे पूर्वे कालिन्दी आसिया । स्तवन करिल महा-प्रभाव देखिया ॥५३॥
चतुर्दश भुवन-पालन-शक्ति जाँर । काक स्थाने बाटि आने' कि महत्त्व ताँर ॥५४॥
तथापि तोमार कर्म अल्प नाहि हये । 'जेइ कर, सेइ सत्य' चारि-वेदे कहे" ॥५५॥

---

पाद गुसांई ! सुनो श्रीकृष्ण के घी की कटोरी को कौआ न जाने कहाँ ले गया" ॥ ३८ ॥ नित्यानन्द जी बोले–"माता ! चिन्ता छोड़ो ! मैं ला दूँगा कटोरी । तुम रोना बन्द करो ॥ ३९ ॥ फिर प्रभु हँस कर कौआ से बोले–"अरे कौवे ! अभी ले आओ कटोरी यहाँ" ॥ ४० ॥ सब के हृदय में नित्यानन्द जी का निवास है, फिर किसकी शक्ति है जो उनकी आज्ञा का उल्लंघन करे ॥ ४१ ॥ प्रभु की आज्ञा को सुन कर कौआ उड़ चला और दुःखिनी मालिनी कौवे की तरफ देखने लगी ॥ ४२ ॥ कौआ उड़कर थोड़ी देर में गायब हो गया फिर कटोरी को मुख में लेकर वहीं आ गया । ४३ ॥ उसने कटोरी को लाकर मालिनी के पास रख दी । नित्यानन्द जी के प्रभाव को मालिनी खूब जानती हैं ॥ ४४ ॥ आज इस अपूर्व घटना को देख कर वे मारे आनन्द के मूर्च्छित सी हो गई और ( फिर सम्हल कर ) खड़ी होकर उनकी स्तुति करने लगी ॥ ४५ ॥ (स्तुति)–"जो गुरु के मृत पुत्र को ले आए, जो सकल भुवनों का पालन करते हैं ॥ ४६ ॥ जो यमराज के घर से भी ला सकते हैं, वे कौए के पास से कटोरी ले आयें, यह कौन सी बड़ाई है उनकी ॥४७॥ "जिन्होंने अपने शीश के उपर अनन्त भुवन अनायास ही धारण कर रक्खा है–उनका भार वे जानते ही नहीं ॥ ४८ ॥ जिनके नाम मात्र से अनादि काल की अविद्याध्वंस हो जाती है, उनके लिए कौए के पास से कटोरी मँगवा लेना कौन से महत्त्व की बात है ॥ ४९ । "जो तुम पूर्वकाल में लक्ष्मण रूप से बनवास के समय सीताजी के निकट निरन्तर रक्षक बन कर रहे थे ॥ ५० ॥ तब भी तुमने सीताजी के केवल चरणों को छोड़ कर सीताजी को देखा ही नहीं कि वे कैसी है ॥ ५१ ॥ "तुम्हारे ही उन बाणों से रावण का वंश विध्वंस हुआ था, वही तुम कटोरी ले आओ तो इसमें तुम्हारी शक्ति का क्या प्रकाश भला ॥ ५२ । पूर्वकाल में जिनके महा प्रकाश को देख कर कालिन्दी जी ने जिनके चरणों में आकर स्तुति की थी ॥ ५३ ॥ "चौदह भुवनों को पालन करने की जिनमें सामर्थ्य है, उनके लिए कौए से कटोरी मँगवा लेना क्या महत्त्व की बात है ॥५४॥

हासे नित्यानन्द शुनि ताँहार स्तवन । बाल्य भावे बोले "मुञि करिमु भोजन" ॥५६॥
नित्यानन्द देखिले ताँहार स्तन झरे । बाल्य भावे नित्यानन्द स्तन पान करे ॥५७॥
एइ मत अचिन्त्य नित्यानन्देर चरित्र । आमि कि बलिब-सबे जगते विदित ॥५८॥
करये दुर्विज्ञ कर्म अलौकिक जेन । जे जानये तत्त्व, से वासये सत्य हेन ॥५९॥
अहर्निश भावावेशे परम उद्दाम । सर्व नदियाय बुले ज्योतिर्मय-धाम ॥६०॥
किबा योगी नित्यानन्द, किबा भक्त ज्ञानी । जाहार जे मत इच्छा ना बोलये केनि ॥६१॥
जे से केने चैतन्येर नित्यानन्द नहे । तभु से चरण-धन रहुक हृदये ॥६२॥
एत परिहारेओ जे पापी निन्दा करे । तबे लाथि मारों तार शिरेर उपरे ॥६३॥
एइ मत आछे प्रभु श्रीवासेर घरे । निरवधि आपने गौराङ्ग रक्षा करे ॥६४॥
एक दिन निज गृहे प्रभु विश्वम्भर । बसिआछे लक्ष्मी-सङ्गे परम-सुन्दर ॥६५॥
जो गाय ताम्बूल लक्ष्मी परम-हरिषे । प्रभुर आनन्दे ना जानये रात्रि दिसे ॥६६॥
जखन थाकये लक्ष्मी सङ्गे विश्वम्भर । शचीर चित्तेते हय आनन्द विस्तर ॥६७॥
मायेर चित्तेर सुख ठाकुर जानिया । लक्ष्मीर सङ्गेते प्रभु थाकेन वसिया ॥६८॥
हेन काले नित्यानन्द आनन्द-विह्वल । आइला प्रभुर बाड़ी-परम-चञ्चल ॥६९॥
बाल्य भावे दिगम्बर हैला दाण्डाइया । काहारो ना करे लाज प्रेमाविष्ट हैया ॥७०॥
प्रभु बोले "नित्यानन्द ! केने दिगम्बर । नित्यानन्द "हय हय" करये उत्तर ॥७१॥
प्रभु बोले "नित्यानन्द ! परह वसन । नित्यानन्द बोले "आजि आमार गमन ॥७२॥

---

तथापि तुम्हारे कोई कर्म तुच्छ नहीं हैं । तुम जो कुछ करते हो वही सत्य है—यही चारों वेद कहते हैं ॥५५॥ श्री नित्यानन्द जी उनकी स्तुति सुनकर हँसे और बाल-भाव में बोले—"मैं भोजन करूँगा" ॥ ५६ ॥ नित्यानन्द को देखने पर उनके स्तन बहने लगते और बाल भाव में नित्यानन्द स्तन पान करते ॥ ५७ ॥ इस प्रकार नित्यानन्द जी के चरित्र अचिन्त्य हैं उन्हें मैं क्या कहूँ वे जगत् में प्रसिद्ध ही हैं ॥ ५८ ॥ आप ऐसे दुर्विज्ञेय कर्म करते हैं जो अलौकिक से लगते हैं, जो उनके तत्त्व को जानते हैं वे उनको सत्य मानते हैं ॥ ५९ ॥ वे अहर्निश भावावेश में परम उन्मत्त बने नदिया में घूमते फिरते हैं—दिव्य ज्योतिर्मय उनका स्वरूप है । ६०॥ नित्यानन्द जी को योगी, भक्त, ज्ञानी जिसकी जो इच्छा हो, क्यों न वह लेओ ॥ ६१ ॥ और श्री चैतन्यचन्द्र के नित्यानन्द जी जो कुछ भी क्यों न हों, तथापि उनके चरण धन मेरे हृदय में निवास करें ॥ ६२ ॥ इतने परिहार करने पर भी जो पापी उनकी निन्दा करता है तो उसके माथे पर लात मारूँगा ॥६३॥ इस प्रकार श्री नित्यानन्द प्रभु श्रीवास जी के घर में निवास कर रहे हैं । स्वयं श्री गौरांग प्रभु उनकी निरन्तर रक्षा करते हैं ॥ ६४ ॥ एक दिन प्रभु विश्वम्भर अपने गृह में श्री लक्ष्मी जी के साथ परम सुन्दर रूप से विराजे हुए हैं ॥ ६५ ॥ परम हर्षोत्फुल्ल होकर श्री लक्ष्मी जी ताम्बूल अर्पण कर रही हैं । प्रभु के आनन्द में वे दिन रात सब भूल जाती हैं ॥ ६६ ॥ जिस समय श्री विश्वम्भर लक्ष्मी जी के साथ रहते हैं उस समय शची माता के हृदय में बड़ा ही आनन्द होता है ॥ ६७ ॥ प्रभु भी माता के चित्त के सुख की बात जान कर लक्ष्मी जी के साथ बैठे रहते हैं ॥ ६८ ॥ ऐसे समय पर एक दिन आनन्द में विह्वल परम चंचल नित्यानन्द जी प्रभु के घर आ पहुँचे ॥६९॥ और आकर बाल्य भाव में दिगम्बर खड़े हो गए । वे प्रेमावेश में चूर किसी की लज्जा-शर्म नहीं करते ॥ ७० ॥ यह देख कर प्रभु बोले—"नित्यानन्द जी ! दिगम्बर कैसे हो" ? नित्यानन्द जी उत्तर देते हैं "हाँ हाँ" ॥ ७१ ॥ प्रभु बोले—"नित्यानन्द जी ! वस्त्र पहनो"—तो नित्यानन्द बोले—"आज मैं जाऊँगा"

प्रभु बोले "नित्यानन्द ! इहा केने करि" । नित्यानन्द बोले "आर खाइते ना पारि" ॥७३॥
प्रभु बोले "एक एड़ि कह केने आर" । नित्यानन्द बोले "आमि गेलु दशवार" ॥७४॥
क्रुद्ध हइ बोले प्रभु "मोर दोष नाञि । नित्यानन्द बोले "प्रभु ! एथा नाहि आइ" ॥७५॥
प्रभु कहे "कृपा करि परह वसन । नित्यानन्द बोले "आमि करिव भोजन" ॥७६॥
चैतन्येर भावे मत्त नित्यानन्द-राय । एक शुने, आर कहे, हासिया वेडाय । ७७॥
आपने उठिया प्रभु पराय वसन । वाह्य नाहि, हासे पद्मावतीर नन्दन ॥ ७८॥
नित्यानन्द-चरित्र देखिया आइ हासे । विश्वरूप पुत्र हेन मने मने वासे' ॥७९॥
सेइ मत वचन शुनये सब मुखे । माझे माझे से-इ रूप आइ मात्र देखे ॥८०॥
काहारे ना कहे आइ, पुत्र स्नेह करे । सम-स्नेह करे नित्यानन्द-विश्वम्भरे ॥ १॥
वाह्य पाइ नित्यानन्द परिला वसन । सन्देश दिलेन आइ करिते भोजन ॥८२॥
आइ-स्थाने पञ्च क्षीर-सन्देश पाइया । एक खाइ, आर चारि फेले छड़ाइया ॥८३॥
"हाय हाय" बोले आइ "केने फेलाइला" । नित्यानन्द बोले "केने एक ठाञि दिला" ॥८४॥
आइ बोले "आर नाहि, आर कि खाइवा । नित्यानन्द बोले "चाह, अवश्य पाइवा" ॥८५॥
घरेर भितरे आइ अपरूप देखे । सेइ चारि सन्देश देखये परतेखे ॥८६॥
आइ बोले "से सन्देश कोथाय पड़िल । घरेर भितरे कोन् पथेते आइल ॥८७॥
धूला घुचाइया सेइ सन्देश लइया । हरिषे आइला आइ अपूर्व देखिया ॥८८॥
आसि देखे नित्यानन्द सेइ लाडू खाय । आइ बोले "बाप ! इहा पाइला कोथाय" ॥८९॥

---

॥७२॥ प्रभु बोले—"नित्यानन्द जी ! ऐसा क्यों करते हो" ? तो वे बोले—"अब और खा नहीं सकता" ॥७३॥ प्रभु बोले—"एक बात छोड़ दूसरी क्यों करते हो" तो वे बोले—"मैं दस बार गया" ॥ ७४ ॥ तब प्रभु रिसा कर बोले—"मेरा दोष नहीं है" तो नित्यानन्द बोले—"यहाँ मा नहीं हैं" ॥ ७५ ॥ फिर प्रभु बोले—"कृपा कर वस्त्र तो पहनो" तो वे बोले—"मैं भोजन करूँगा" ॥ ७६ ॥ इस प्रकार श्री नित्यानन्द राय श्री चैतन्य चन्द्र के भाव में मतवाले बने हुए हैं—सुनते कुछ और कहते कुछ हैं, और हँसते फिरते हैं ॥ ७७ ॥ तब प्रभु ने उठ कर स्वयं उनको वस्त्र पहनाया, परन्तु पद्मावती नन्दन (नित्यानन्द) को बाहरी ज्ञान कहाँ वे तो हँस रहे हैं ॥ ७८ ॥ नित्यानन्द जी के चरित्र को देख कर शची मा हँसती हैं और मन ही मन उनको विश्वरूप पुत्र जैसा ही मानती हैं ॥ ७९ ॥ उसी (विश्वरूप) के जैसे वचन इनके मुख से भी सुन पाती है, और बीच २ में उसी का रूप भी शची मा ही केवल देख पाती हैं ॥ ८० ॥ पर माता किसी से कहती नहीं पुत्र सा उन पर स्नेह करती हैं और वह स्नेह भी नित्यानन्द और विश्वम्भर पर समान होता है ॥ ८१ ॥ तब बाहरी सुध आने पर नित्यानन्द जी ने वस्त्र पहने और शची मा ने सन्देश लाकर खाने को दिया ॥ ८२ ॥ माता के पास से दूध के सार से बने हुए पाँच सन्देश मिठाई को पाकर नित्यानन्द जी ने एक तो खा लिया और चार को फेंक कर बिखेर दिया ॥ ८३ ॥ माता बोली—"हाय ! हाय ! यह तुमने क्यों फेंक दिए" । तो नित्यानन्द बोले "तुमने इकट्ठे इतने क्यों दे दिए ? ॥ ८४ ॥ माता बोली—"और तो हैं नहीं, अब क्या खाओगे ?" तो वे बोले—"देखो तो सही अवश्य और होंगे" ॥ ८५ ॥ माता ने भीतर जाकर क्या अचरज देखा कि वे ही चार सन्देश प्रत्यक्ष भीतर हैं ॥ ८६ ॥ माता बोली—"अरे ! वे सन्देश तो न जाने कहाँ जाकर पड़े थे-वे घर के भीतर कौन से रास्ते से आ गए ॥ ८७ ॥ यह अचरज देख वह बड़ी प्रसन्न हुई, और वह उन सन्देशों को उठा कर, झाड़ पोंछ के बड़ी प्रसन्न होकर ले आईं ॥ ८८ ॥ तो आकर क्या देखती हैं कि नित्यानन्द राय उन्हीं

नित्यानन्द बोले "जाहा छड़ाइ फेलिलु । तोर दुःख देखि ताइ चाहिया आनिलु" ॥९०॥
अद्भुत देखिया आइ मने मने गणे । "नित्यानन्द महिमा ना जाने कोन् जने" ॥९१॥
आइ बो "नित्यानन्द ! केने मोरे भाँड' । जानिल ईश्वर तुमि, मोरे माया छाड़" ॥९२॥
बाल्य भावे नित्यानन्द आइर चरण । धरिबारे जाय, आइ करे पलायन ॥९३॥
एइ मत नित्यानन्द चरित्र अगाध । सुकृतिर भाल, दुष्कृतिर कार्य-बाध ॥९४॥
नित्यानन्द-निन्दा करे जे पापिष्ठ जन । गङ्गाओ ताहारे देखि करे पलायन ॥९५॥
वैष्णवेर अधिराज अनन्त ईश्वर । नित्यानन्द महाप्रभु 'शेष' महीधर ॥९६॥
जे ते केने चैतन्येर नित्यानन्द नहे । तभु से चरण-धन रहुक हृदये ॥९७॥
वैष्णवेर पाये मोर एइ मनस्काम । मोर प्रभु नित्यानन्द हउ बलराम ॥९८॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावन दास तछु पदयुगे गान ॥९९॥

# अथ बारहवाँ अध्याय

हेन लीला नित्यानन्द विश्वम्भर सङ्गे । नवद्वीपे दुइ जन करे बहु रङ्गे ॥१॥
प्रेमानन्दे अलौकिक नित्यानन्द-राय । निरवधि बालकेर प्राय व्यवसाय ॥२॥
सभारे देखिया प्रीत मधुर-सम्भाष । आपना आपनि नृत्य, गीत, वाद्य, हास ॥३॥
स्वानु भावा नन्दे क्षणे करये हुङ्कार । शुनिते अपूर्व बुद्धि जन्मये सभार ॥४॥

---

(फेंके हुए) लड्डुओं (सन्देशों) को खा रहे हैं माता ने पूछा—"बेटा ! ये कहाँ से आ गए" ? ॥ ८९ ॥ नित्यानन्द बोले—"वही हैं जो मैंने फेंक दिये थे । तुमको दुःखित देखकर मैं उनको उठा लाया हूँ" ॥ ९० ॥ यह अचरज देख कर माता मन ही मन सोचती हैं कि नित्यानन्द की महिमा कोई नहीं जानता है ॥९१॥ माता बोली—"नित्यानन्द ! तुम क्यों मुझे भुलाते हो । मैं जान गई तुम ईश्वर हो । अब मेरे आगे माया मत चलाओ ॥ ९२ ॥ तब नित्यानन्द जी बाल भाव में माता जी के चरण पकड़ने को दौड़े-तो माता जी भाग निकलीं ॥ ९४ ॥ इस प्रकार श्री नित्यानन्द जी के चरित्र अगाध हैं जो सुकृतिशालियों के लिए शुभकारी हैं और दुष्टों के लिए बाधा विघ्नकारी हैं ॥ ९४ ॥ जो पापी लोग श्री नित्यानन्द की निन्दा करते हैं । गङ्गाजी भी उन्हें देख कर भाग जाती हैं ॥ ९५ ॥ श्री नित्यानन्द महा प्रभु वैष्णवों के अधिराज हैं, अनन्त देव हैं, ईश्वर हैं, महीधर शेष जी हैं ॥ ९६ ॥ श्री नित्यानन्द प्रभु श्री चैतन्य चन्द्र के जो कुछ भी क्यों न हों, तौभी मेरे लिए तो उनके ही श्री चरणारविन्द परम धन हैं वे ही मेरे हृदय में सदा निवास करें ॥ ९७ ॥ और वैष्णवों के श्री चरणों में भी मेरी यही मनोकामना है कि श्री नित्यानन्द बलराम मेरे प्रभु हों ॥ ९८ ॥ श्रीकृष्ण चैतन्य एवं श्री नित्यानन्द चन्द्र को जान कर यह वृन्दावन दास उनके श्री चरणों में उनके ही गुण गान को समर्पण करता है ॥ ९९ ॥

इति श्री चैतन्य भागवते मध्यखण्डे नित्यानन्द चरित्र वर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥

ऐसी २ लीलाएँ नवद्वीप में श्री नित्यानन्द और विश्वम्भर देव मिल कर दोनों जने बड़े आनन्द से किया करते हैं ॥ १ ॥ श्री नित्यानन्द राय अलौकिक प्रेमानन्द में निमग्न निरन्तर बालकों की भाँति चेष्टा किया करते हैं ॥ २ ॥ मिलने पर सबसे प्रेमपूर्वक मधुर बोलते हैं, और अपने आप ही नाचने गाने बजाने और हँसनेलगते हैं ॥३॥ और क्षण में अपने अनुभव के आनन्दमें हुँकार करने लगते हैं, जिसे सुनकर सब लोगों

वर्षाय गङ्गार ढेउ कुम्भीरे वेष्टित । ताहाते भासये, तिलार्द्धेक नाहि भीत ॥५॥
सर्व लोक देखि ताँरे करे 'हाय हाय' । तथापि भासेन हासि नित्यानन्द-राय ॥६॥
अनन्तेर भावे प्रभु भासेन गङ्गाय । ना बुझिया सर्व लोक करे हाय हाय ॥७॥
आनन्दे मूर्च्छित वा हयेन कोन क्षण । तिन-चारि दिवसेओ ना हय चेतन ॥८॥
एइ मत आर कत अचिन्त्य-कथन । अनन्त मुखेओ नारि करिते वर्णन ॥९॥
दैवे एक दिन जथा प्रभु बसि आछे । आइलेन नित्यानन्द ईश्वरेर काछे ॥१०॥
बाल्य भावे दिगम्बर, हास्य श्रीवदने । सर्वदा आनन्द धारा वहे श्रीनयने ॥११॥
निरवधि एइ वलि करेन हुङ्कार । "मोर प्रभु निमाञि पण्डित नदियार ॥१२॥
हासे' प्रभु देखि तान मूर्ति दिगम्बर । महा-ज्योतिर्मय तनु देखिते सुन्दर ॥१३॥
आथे व्यथे प्रभु निज-मस्तकेर वास । पराइया थुइलेन तथापिह हास ॥१४॥
आपने लेपिला ताँर अङ्गे दिव्य-गन्धे । शेषे माल्य परिपूर्ण दिलेन श्रीअङ्गे ॥१५॥
वसिते दिलेन निज-सम्मुखे आसन । स्तुति करे प्रभु, शुने सर्व भक्त गण ॥१६॥
"नामे नित्यानन्द तुमि रूपे नित्यानन्द । एइ तुमि नित्यानन्द-राम-मूर्ति मन्त ॥१७॥
नित्यानन्द-पर्यटन भोजन व्यवहार । नित्यानन्द बिने किछु नाहिक तोमार ॥१८॥
तोमारे बुझिते शक्ति मनुष्येर कोथा । परम सुसत्य-तुमि जथा कृष्ण तथा" ॥१९॥
चैतन्येर रसे नित्यानन्द-महा मति । जे बोलेन, जे करेन, सर्वत्र सम्मति ॥२०॥
प्रभु बोले "एक खानि कौपीन तोमार । देह'-इहा बड़ इच्छा आछये आमार" ॥२१॥

---

को बड़ा ही अपूर्व (अद्भुत) लगता है ॥ ४ ॥ वर्षाकाल में गङ्गा की तरङ्गों में मगर घड़ियालों की भरमार होती है, पर नित्यानन्द जी उन तरङ्गों में बहते फिरते हैं—तिल भर भी भय नहीं करते ॥ ५ ॥ लोग तो सब उनको देख कर "हाय २" करते हैं और फिर भी नित्यानन्द राय हँसते हुए बहते फिरते हैं ॥ ६ ॥ प्रभु तो शेष नाग के भावावेश में बहते हैं परन्तु इसे समझे बिन लोग सब हाय हाय मचाते हैं ॥ ७ ॥ किसी समय आप मूर्च्छित हो जाते हैं तो तीन चार दिन तक चेत ही नहीं होता है ॥ ८ ॥ इस प्रकार के उनके और भी अचिन्त्य चरित्र हैं—अनन्त मुखों से भी उनका वर्णन नहीं हो सकता है ॥ ९ ॥ दैवयोग से एक दिन जहाँ प्रभु गौरचन्द्र बैठे हुए थे, श्री नित्यानन्द जी उनके पास आ गए ॥ १० ॥ बाल भाव में निमग्न आपका दिगम्बर रूप है, श्रीमुख पर हँसी है और श्रीनेत्रों से निरन्तर आनन्द की धाराएँ बह रही हैं ॥ ११ ॥ और आप बारम्बार यह कह कर हुँकार कर रहे हैं कि "नदिया के निमाइ पण्डित मेरे प्रभु हैं ॥ १२ ॥ गौर प्रभु उनकी दिगम्बर मूर्त्ति को देख कर हँसे । उनकी देह ज्योतिर्मय है और देखने में सुन्दर है ॥ १३ ॥ प्रभु ने झट पट अपने मस्तक का वस्त्र उनको पहना दिया पर फिर भी वे हँस रहे हैं ॥ १४ ॥ प्रभु ने स्वयं उनके अङ्ग पर दिव्य गन्ध का लेप किया, और फिर पीछे से उनके श्री अङ्ग को मालाओं से भर दिया ॥ १५ ॥ फिर बैठने के लिए अपने सन्मुख एक आसन दिया और उनकी स्तुति करना आरम्भ किया भक्त लोग सुन रहे हैं ॥ १६ ॥ "नाम से तुम नित्यानन्द हो और रूप में भी तुम नित्यानन्द हो । तुम नित्यानन्द मूर्तिमान् बलराम हो ॥ १७ ॥ नित्यानन्द (नित्य-आनन्द) ही तुम्हारा भ्रमण है, भोजन है, और सब व्यवहार है । नित्यानन्द बिना तुम्हारा कुछ भी नहीं है ॥ १८ ॥ "तुमको समझने की शक्ति मनुष्य में कहाँ ? यह परम सुसत्य है कि जहाँ तुम हो वहाँ कृष्ण है" ॥ १९ ॥ श्री चैतन्य के आस्वादन में डूबे हुए महामति नित्यानन्द जी जो कुछ कहते हैं और करते हैं वे सब प्रभु सम्मत ही होते हैं ॥ २० ॥ प्रभु बोले— आप अपनी एक

एत वलि प्रभु ताँर कौपीन आनिया। छोट करि चिरिलेन अनेक करिया ॥२२॥
सकल-वैष्णव मण्डलीर जने जने। खानि खानि करि प्रभु दिलेन आपने ॥२३॥
प्रभु बोले "ए वस्त्र वान्धह सभे शिरे। अन्येर कि दाय, इहा वाञ्छे योगेस्वरे ॥२४॥
नित्यानन्द-प्रसादे से हय विष्णु भक्ति। जानिह कृष्णेर नित्यानन्द पूर्ण-शक्ति ॥२५॥
कृष्णेर द्वितीय नित्यानन्द वइ नाइ। सङ्गी, सखा, शयन, भूषण, वन्धु, भाइ ॥२६॥
वेदेर अगम्य-नित्यानन्देर चरित्र। सर्व-जीव-जनक-रक्षक-सर्व-मित्र ॥२७॥
इहान व्यभार कर्म कृष्ण रस मय। इहाने सेविले कृष्णे प्रेम भक्ति हय ॥२८॥
भक्ति करि इहान कौपीन वान्ध' शिरे। महा-यत्ने इहा पूजा कर' गिया घरे" ॥२९॥
पाइया प्रभुर आज्ञा सर्व भक्त गण। परम-आदरे शिरे करिला वन्धन ॥३०॥
प्रभु बोले "शुनह सकल भक्त गण। नित्यानन्द पादोदक करह ग्रहण ॥३१॥
करिले इहार पादोदक-रस-पान। कृष्णे दृढ़-भक्ति हय, इथे नाहि आन" ॥३२॥
आज्ञा पाइ सभे नित्यानन्देर चरण। पाखालिया पादोदक करये ग्रहण ॥३३॥
पाँच बार दश बार एको जने खाय। वाह्य नाहि नित्यानन्द हासये सदाय ॥३४॥
आपने वसिया महाप्रभु गौर राय। नित्यानन्द-पादोदक कौतुके लुटाय ॥३५॥
सभे नित्यानन्द-पादोदक करि पान। मत्त-प्राय 'हरि' वलि करये आह्वान ॥३६॥
केहो बोले "आजि धन्य हइल जीवन"। केहो बोले "आजि सब खण्डिल वन्धन" ॥३७॥
केहो बोले "आजि हइलाङ कृष्ण दास"। केहो बोले "आजि धन्य दिवस प्रकाश" ॥३८॥
केहो बोले "पादोदक वड़ स्वादु लागे। एखनेओ मुखेर मिष्टता नाहि भागे" ॥३९॥

---

कौपीन दें यह मेरी बड़ी इच्छा है" ॥ २१ ॥ ऐसा कह कर प्रभु ने उनकी कौपीन लेकर उसके छोटे २ बहुत से टुकड़े कर लिए ॥ २२ ॥ और वैष्णव मण्डली में प्रत्येक जन को स्वयं प्रभु ने टुकड़े बाँट दिए ॥ २३ ॥ और बोले—"सब लोग अपने २ सिर पर इन टुकड़ों को बाँध। औरों की तो बात ही क्या, योगेश्वर भी इस वस्त्र की बड़ी इच्छा करते हैं ॥ २४ ॥ "इन नित्यानन्द जी की कृपा से ही विष्णु-भक्ति होती है। इनको तुम श्रीकृष्ण की पूर्ण शक्ति करके ही जानो ॥ २५ ॥ श्री नित्यानन्द के बिना श्री कृष्ण का संगी सखा, शय्या, भूषण, बन्धु, भाई और दूसरा कोई नहीं है ॥ २६ ॥ "नित्यानन्द जी के चरित्र वेदों को भी अगम्य हैं। ये सब जीवों के जनक, रक्षक और मित्र हैं ॥ २७ ॥ इनके व्यवहार और कर्म सब कृष्ण रसमय हैं। इनकी सेवा करने से श्री कृष्ण में प्रेम भक्ति होती है ॥ २८ ॥ "इनकी कौपीन को भक्ति पूर्वक सिर पर बाँधो और घर जाकर महा यत्न पूर्वक इसकी पूजा करो" ॥ २९ ॥ प्रभु की आज्ञा पाकर सब भक्तों ने बड़े आदर पूर्वक टुकड़े सिरपर बाँध लिये ॥३०॥ प्रभु कहते हैं कि-हेसब भक्तगण सुनो, नित्यानन्द पादोदक का पानकरो ॥३१॥ इन का पादोदक रस पान करने से श्री कृष्ण में दृढ़ भक्ति होती है ॥ ३२ ॥ प्रभु की आज्ञा पाकर भक्त-जन श्री नित्यानन्द के चरण प्रक्षालन कर पादोदक पान करते हैं ॥ ३३ ॥ एक २ जन पाँच २ एवं दस २ बार पीता है, इधर श्री नित्यानन्द को बाह्य ज्ञान नहीं है वे निरन्तर हँस रहे हैं ॥ ३४ ॥ श्री महाप्रभु गौरराय स्वयं बैठ कर आनन्द पूर्वक नित्यानन्द पादोदक लुटा रहे हैं ॥ ३५ ॥ सर्व भक्त गण पादोदक पान कर मस्तों की भाँति "हरि बोल हरि बोल" पुकारते हैं ॥ ३६ ॥ कोई कहता है कि "आज जीवन धन्य हो गया" कोई कहता है कि "आज समस्त बन्धन नष्ट हो गये" ॥ ३७ ॥ कोई कहता है कि "आज मैं कृष्ण दास बन गया" कोई कहता है कि "आज के दिन का प्रकाश होना मेरे लिये धन्य है ॥ ३८ ॥ कोई कहता है कि—"पादोदक

किबे नित्यानन्द-पादोदकेर प्रभाव। पान-मात्र सभे हैला चञ्चल-स्वभाव ।।४०।।
केहो नाचे, केहो गाय, केहो गड़ि जाय। हुङ्कार गर्जन केहो करये सदाय ।।४१।।
उठिल परमानन्द कृष्ण सङ्कीर्त्तन। विह्वल हइया नृत्य करे भक्त गण ।।४२।।
क्षणेके श्रीगौरचन्द्र करिया हुङ्कार। उठिया लागिला नृत्य करिते अपार ।।४३।।
नित्यानन्द स्वरूप उठिला ततक्षण। नृत्य करे दुइ प्रभु वेढ़ि भक्त गण ।।४४।।
कार गा'ये केवा पड़े केवा कारे धरे। केवा कार चरणेर धूलि लय शिरे ।।४५।।
केवा कार गला धरि करये क्रन्दन। केवा कोन् रूप करे, ना जाय वर्णन ।।४६।।
'प्रभु' करियाओ कारो किछु भय नाञि। प्रभु-भृत्य सकले नाचये एक ठाञि ।।४७।।
नित्यानन्द-चैतन्य करिया कोला कोलि। आनन्दे नाचेन दुइ महा-कुतूहली ।।४८।।
पृथिवी कम्पिता नित्यानन्द पद ताले। देखिया आनन्दे सर्व-गण 'हरि' बोले ।।४९।।
प्रेम रसे मत्त हइ वैकुण्ठ ईश्वर। नाचेन लइया सब प्रेम-अनुचर ।।५०।।
ए सब लीलार कभू नाहि परिच्छेद। 'आविर्भाव' 'तिरोभाव' मात्र कहे वेद ।।५१।।
एइ मत सर्व दिन प्रभु नृत्य करि। बसिलेन सर्व गण-सङ्गे गौर हरि ।।५२।।
हाथे तिन तालि दिया गौराङ्ग सुन्दर। सभारे कहेन अति-अमाया उत्तर ।।५३।।
प्रभु बोले "एइ नित्यानन्द स्वरूपेरे। जे करये भक्ति श्रद्धा, से करे आमारे ।।५४।।
इहान चरण ब्रह्मा शिवेरो वन्दित। अतएव इहाने करिह सभे प्रीत ।।५५।।
तिलार्द्धेको इहाने जाहार द्वेष रहे। भक्त हइलेओ से आमार प्रिय नहे ।।५६।।

तो बड़ा स्वादिष्ट लगता है। अभी मुख का मिठास दूर नहीं हुआ है ॥ ३९ ॥ श्री नित्यानन्द पादोदक का कैसा प्रभाव है कि- पान मात्र करते ही सब कोई चंचल स्वभाव के हो गये हैं ॥ ४० ॥ फिर तो कोई नाचने लगा, कोई गाने लगा, कोई जमीन पर लोट-पोट हो गया, कोई बारम्बार हुँकार और गर्जना करने लगा ॥ ४१ ॥ इस प्रकार परमानन्द मय श्री कृष्ण-संकीर्त्तन मच गया और भक्त लोग विह्वल होकर नाचने लगे ॥ ४२ ॥ थोड़ी देर में श्री गौरचन्द्र भी हुँकार करते हुए उठ खड़े हुए और अपार नृत्य करने लगे ॥ ४३ ॥ तुरन्त ही श्री नित्यानन्द स्वरूप भी उठ खड़े हुए और भक्तों से घिरे हुए दोनों प्रभु नृत्य करने लगे ॥ ४४ ॥ कोई किसी के शरीर के ऊपर गिर पड़ता है तो कोई किसी को पकड़ता है, कोई किसी की चरण धूलि सिर पर चढ़ाता है ॥ ४५ ॥ कोई किसी का गला पकड़ कर रोता है, कोई कुछ कोई कुछ करते हैं-सो सब वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ४६ ॥ "प्रभु" मानने पर भी किसी को कुछ भय नहीं है। प्रभु और दास सब एकत्र नृत्य कर रहे हैं ॥ ४७ ॥ श्री नित्यानन्द और श्री चैतन्य चन्द्र परस्पर आलिंगन किए हुऐ नाच रहे हैं-दोनों महा कौतुकी हैं ॥ ४८ ॥ श्री नित्यानन्द के चरणों के ताल से पृथ्वी कम्पायमान हो रही है-यह देख कर भक्त लोग सब "हरि बोल" ध्वनि कर रहे हैं ॥ ४९ ॥ प्रेम रस में मत्त होकर वैकुण्ठ के ईश्वर सब प्रेम के अनुचरों को लेकर नाच रहे हैं ॥ ५० ॥ इन सब लीलाओं की कभी इति श्री नहीं है वेद इनका केवल आविर्भाव और तिरोभाव ही कहते हैं ॥ ५१ ॥ इस प्रकार सारा दिन नृत्य करके प्रभु गौर हरि सब भक्त जनों के साथ बैठे ॥ ५२ ॥ प्रभु गौरांग सुन्दर अपने हाथों से तीन तालियाँ देकर सब लोगों के प्रति अमायिक वचन बोले कि-"इन नित्यानन्द स्वरूप की जो कोई भक्ति-श्रद्धा करता है, वे मेरी ही करता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ "इनके श्री चरण ब्रह्मा और शिव करके भी वन्दित हैं। अतएव इनसे सब कोई प्रेम करें ॥ ५५ ॥ इनसे तिल भर भी जो द्वेष करता है, वह भक्त होने पर भी मेरा प्यारा नहीं है ५६ । 'इनकी वायु भी जिसके शरीर

इहाँर बातास लागिबेक जार गाय। ताहारेओ कृष्ण ना छाड़िब सर्वथाय"॥५७॥
शुनिञा प्रभुर वाक्य सर्व भक्त गण। महा-जय जय ध्वनि करिला तखन॥५८॥
भक्ति करि जे शुनये ए सब आख्यान। तार स्वामी हय गौरचन्द्र भगवान्॥५९॥
नित्यानन्द स्वरूपेर ए सकल कथा। जे देखिल ताँहारे, से जानये सर्वथा॥६०॥
एइ मत कत नित्यानन्देर प्रभाव। जाने जत चैतन्येर प्रिय महा भाग॥६१॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावन दास तछु पद युगे गान॥६२॥

# अथ तेरहवाँ अध्याय

"आजानु लम्बित भुजौ कनकावदातौ। सङ्कीर्त्तनैक पितरौ कमलायताक्षौ॥
विश्वम्भरौ द्विजवरौ युग धर्म पालौ। वन्दे जगत्प्रिय करौ करुणावतारौ॥
जय जय महाप्रभु श्रीगौर सुन्दर। जय नित्यानन्द सर्व सेव्य-कलेवर॥१॥
जय जय शची सुत द्विज कुल मणि। नित्यानन्दाद्वैत दुइ ताहि मध्ये गणि॥२॥
हेन मते नवद्वीपे प्रभु विश्वम्भर। क्रीड़ा करे, नहे सर्व-नयन-गोचर॥३॥
लोके देखे पूर्वे जेन निमाञि पण्डित। अतिरिक्त आर किछु ना देखे चरित॥४॥
जखन प्रविष्ट हय सेवकेर मेले। तखन भासेन एइ मत कुतूहले॥५॥
जार जेन भाग्य, तेन ताहारे देखाय। बाहिर हइले सब आपना लुकाय॥६॥
एक दिन आचम्बिते हैले हेन मति। आज्ञा कैल नित्यानन्द-हरिदास-प्रति॥७॥
"शुन शुन नित्यानन्द! शुन हरिदास। सर्वत्र आमार आज्ञा करह प्रकाश॥८॥

---

को लग जायगी उसे भी श्री कृष्ण कदापि नहीं छोड़ेंगे॥ ५७॥ प्रभु के वचनों को सुन कर सब भक्तों ने तत्क्षण महा "जय जय" ध्वनि मचा दी॥ ५८॥ जो कोई भक्ति पूर्वक इन सब चरित्रों को सुनते हैं, उनके स्वामी श्री गौरचन्द्र भगवान् होते हैं॥ ५९॥ श्री नित्यानन्द स्वरूप के इन सब चरित्रों को जिन्होंने देखा वे भली भाँति इसे जानते हैं॥ ६०॥ ऐसे २ नित्यानन्द जी के प्रभाव के कितने ही चरित्र हैं—उन्हें श्रीचैतन्य चन्द्र के प्रिय महा भागवान् ही जानते हैं॥ ६१॥ श्री कृष्ण चैतन्य और श्री नित्यानन्द चन्द्र जिसके जीवन हैं, वह वृन्दावन दास उनके श्री चरण युगल में उनका यश गान समर्पण करता है॥ ६२॥

इति श्री चैतन्य भागवते मध्यखण्डे नित्यानन्द प्रभाव वर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥

महा प्रभु श्री गौर सुन्दर की जय हो जय हो, सर्वसेव्य कलेवर श्री नित्यानन्द की जय हो॥ १॥ शची नन्दन द्विज कुलमणि की जय हो जय हो। उनके जय के मध्य में ही श्री नित्यानन्द और श्री अद्वैताचार्य जी की भी जय हो, जय हो॥ २॥ इस प्रकार प्रभु विश्वम्भर नवद्वीप में लीला कर रहे हैं, परन्तु सब लोग उसे देख नहीं पाते॥ ३॥ और लोग तो जैसे पहले वैसे ही अब भी प्रभु को निमाइ पण्डित करके ही जानते हैं इसके अतिरिक्त उनके और चरित्र कुछ भी नहीं देख पाते हैं॥ ४॥ जब प्रभु अपने सेवकों के दल में पधारते हैं तब ही वे इस प्रकार के कौतुक के तरङ्गों में क्रीड़ा करते हैं॥ ५॥ जिसका जैसा भाग्य, उसको वैसा ही दिखाते हैं, और भक्तों से अलग होने पर फिर अपना सब कौतुक छिपा लेते हैं॥ ६॥ एक दिन अचानक उनकी कुछ ऐसी इच्छा हुई और उन्होंने श्री नित्यानन्द और हरिदास जी के प्रति यह आज्ञा की॥ ७॥ "सुनो सुनो नित्यानन्द जी और हरिदास जी सुनो! मेरी आज्ञा का सर्वत्र प्रचार करो॥ ८॥

प्रति घरे घरे गिया कर' एइ भिक्षा। 'कृष्ण भज, कृष्ण बोल, कर' कृष्ण-शिक्षा ॥९॥
इहा बइ आर ना वलिबा बोलाइ वा। दिन-अवसाने आसि आमारे कहिबा ॥१०॥
तोमरा करिले भिक्षा, जेइ ना वलिव। तवे आमि चक्र-हस्ते सभारे काटिव ॥११॥
आज्ञा शुनि हासे' सब वैष्णव मण्डल। अन्यथा करिते आज्ञा आछे कार् बल ॥१२॥
आज्ञा शिरे करि नित्यानन्द हरिदास। सेइ क्षणे चलिला पथेते आसि हास ॥१३॥
हेन आज्ञा जाहा नित्यानन्द शिरे वहे। इहाते अप्रीत जार, से सुबुद्धि नहे ॥१४॥
करये अद्वैत-सेवा, चैतन्य ना माने'। अद्वैतेइ तारे संहारिब भाल-मने ॥१५॥
आज्ञा पाइ दुइ जने बुले घरे घरे। "बोल कृष्ण, गाओ कृष्ण, भजह कृष्णेरे ॥१६॥
कृष्ण प्राण, कृष्ण धन, कृष्ण से जीवन। हेन कृष्ण बोल भाइ! हइ एक-मन" ॥१७॥
एइ मत नदियाय-प्रति घरे घरे। वलिया बेडान दुइ जगत्-ईश्वरे ॥१८॥
दोहान संन्यासि-वेश, जान जार घरे। आथे व्यथे आसि भिक्षा-निमंत्रण करे ॥१९॥
नित्यानन्द हरिदास बोले "एइ भिक्षा। कृष्ण बोल, कृष्ण भज, कर कृष्ण शिक्षा" ॥२०॥
एइ बोल बलि दुइ जन चलि जाय। जे हय सुजन, सेइ वड़ सुख पाय ॥२१॥
अपरूप शुनि लोक दुइ जन-मुखे। नाना-जने नाना-कथा कहे नाना-सुखे ॥२२॥
"करिव करिव" केहो बोलये सन्तोषे। केहो बोले "दुइ जन क्षिप्त मंत्र-दोषे ॥२३॥
तोमराह पागल हइया मंत्र-दोषे। 'आमा' सभा' पागल करिते आइस किसे" ॥२४॥
जे-गुला चैतन्य-नृत्ये ना पाइल द्वार। तार बाड़ी गेले मात्र बोले "मार मार ॥२५॥

---

प्रत्येक घर २ में जाकर यही भिक्षा माँगो कि "कृष्ण भजो, कृष्ण कहो, और कृष्ण सीखो" ॥ ९ ॥ इसके अतिरिक्त न तो कुछ बोलो न बुलवाओ। और संध्या समय आकर मुझे सब सुनाओ ॥१० ॥ "तुम्हारे (नाम की) भिक्षा माँगने पर भी जो नाम नहीं लेंगे, तो फिर मैं हाथ में चक्र लेकर उन सब को काट डालूँगा" ॥ ११ ॥ इस आज्ञा को सुनकर वैष्णव मण्डली सब हँसने लगी कि भला प्रभु की आज्ञा टालने की किसमें शक्ति है ॥ १२ ॥ प्रभु की आज्ञा को शिरोधार्य करके श्री नित्यानन्द और हरिदास जी उसी समय चल पड़े और हँसी-विनोद करते नगर को बढ़े ॥ १३ ॥ ऐसी है प्रभु की आज्ञा कि जिसे नित्यानन्द जी भी सिर पर चढ़ाते हैं, इसमें जिसकी अप्रसन्नता है, वह सुबुद्धिमान् नहीं है ॥ १४ ॥ और अद्वैताचार्य की तो जो सेवा करता है परन्तु श्री चैतन्य देव को नहीं मानता है, अद्वैत जी ही उसको समुचित दण्ड दे देते हैं ॥ १५ ॥ प्रभु की आज्ञा पाकर दोनों जने घर २ घूमते हुए यही भिक्षा माँगते हैं कि भाइयो! बोलो कृष्ण, गाओ कृष्ण भजो कृष्ण" । १६॥ "कृष्ण ही प्राण हैं, कृष्ण ही धन हैं, कृष्ण ही जीवन हैं। ऐसे कृष्ण का नाम भाइयो! एक मन से बोलो ॥ १७ ॥ इस प्रकार नवद्वीप के घर २ में ऐसा कहते हुए ये दोनों जगदीश्वर घूमते फिरते हैं ॥ १८ ॥ दोनों का संन्यासी भेष है, जिसके घर जा पहुँचते हैं वही झट पट आकर भिक्षा के लिए निमन्त्रण करता है ॥ १९ ॥ तो श्री नित्यानन्द और हरिदास जी कहते हैं कि हमारी तो यही भिक्षा है कि "कृष्ण बोलो, कृष्ण भजो और कृष्ण सीखो" ॥ २० ॥ ऐसा कह कर दोनों चल पड़ते हैं, तो जो सज्जन होते हैं। वे बड़ा सुख पाते हैं ॥ २१ ॥ इन दोनों के मुख से अपूर्व भिक्षा की बात को सुनकर लोग नाना प्रकार की बातें कह कर अपना मन संतोष करते हैं ॥२२॥ कोई तो प्रसन्न होकर कहता है "करूँगा करूँगा" कोई कहता "मंत्र-दोष के कारण दोनों जने पागल हो गए हैं ॥ २३ ॥ और इनसे कहते हैं—अरे! तुम तो मंत्र-दोष से पागल हुए सो हुए पर हम सब को भी पागल करने क्यों आए" ॥ २४ ॥ जिन लोगों को थों

भव्य भव्य लोक-सब हइल पागल। निमाञि पण्डित नष्ट करिल सकल" ॥२६॥
केहो बोले "दुइ जन किवा चोर-चर। छला करि चाचिया बुलये घरे घर ॥२७॥
ए मत प्रकट केने करिब सुजने। आर बार आइले धरि लइब देयाने" ॥२८॥
शुनि शुनि नित्यानन्द-हरिदास हासे। चैतन्येर आज्ञा-बले ना पाय तरासे ॥२९॥
एइ मत घरे घरे बुलिया बुलिया। प्रति दिन विश्वम्भर-स्थाने कहे गिया ॥३०॥
एक दिन पथे देखे दुइ मातोयाल। महा-दस्यु-प्राय दुइ मद्यप विशाल ॥३१॥
से दुइ जनेर कथा कहिते अपार। तारा नाहि करे, हेन पाप नाहि आर ॥३२॥
ब्राह्मण हइया मद्य-गोमांस-भक्षण। डाका, चुरि, परगृह दाहे सर्व क्षण ॥३३॥
देयाने नाहिक देखा, बोलाय कोटाल। मद्य पान बिने आर नाहि जाय काल ॥३४॥
दुइ जन पथे पड़ि गड़ा गड़ि जाय। जाहारे जे पाय, सेइ ताहारे किलाय ॥३५॥
दूरे थाकि लोक सब पथे देखे रङ्ग। सेइ खाने नित्यानन्द हरिदास-सङ्ग ॥३६॥
क्षणे दुइ जने प्रीत, क्षणे धरे चुले। 'चकार बकार' शब्द उच्च करि बोले ॥३७॥
नदियार विप्रेर करिल जाति नाश। मद्येर विक्षेपे कारे करये आश्वास ॥३८॥
सर्व पाप सेइ दुइर शरीरे जन्मिल। वैष्णवेर निन्दा पाप सबे ना हइल ॥३९॥
अहर्निश मद्यपेर सङ्गे रङ्गे थाके। नहिल वैष्णव-निन्दा एइ सब पाके ॥४०॥
जे सभाय वैष्णवेर निन्दा मात्र हय। सर्व-धर्म थाकिलेओ तबु हय क्षय ॥४१॥

---

चैतन्य चन्द्र के सङ्कीर्तन नृत्य देखने के लिए भीतर जाने को नहीं मिला था, उनके घर पर जाते ही वे "मारो मारो इनको" कह के चिल्ला उठते ॥ २५ ॥ और कहते "सज्जन भद्र पुरुष सब पागल हो गए। निमाइ पण्डित ने सब को बिगाड डाला" ॥ २६ ॥ कोई कहता—"ये दो कहीं चोरों के चर तो नहीं हैं। नाम के बहाने से घर २ देखते फिरते हैं ॥ २७ ॥ यदि ये सज्जन होते तो ऐसे ढोल बजा कर काम क्यों करते ? अबकी बार आएँ तो सही, पकड कर दीवान के हवाले न कर दूँ" ॥ २८ ॥ यह सुन २ कर श्री नित्यानन्द और हरिदास जी हँसते हैं पर श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा के बल पर भयभीत नहीं होते हैं ॥ २९ ॥ इस प्रकार दिन भर घर २ प्रति घूम २ कर संध्या काल को, प्रभु के पास आकर सब वृत्तान्त सुनाते हैं ॥ ३० ॥ एक दिन उन्होंने मार्ग में दो मतवालों को देखा। वे बड़े भयंकर डाकू जैसे लगते थे और दोनों बड़े भारी शराबी थे ॥ ३१ ॥ उन दोनों के कुकर्मों का कोई ठिकाना नहीं था ऐसा कोई पाप नहीं था जो वे करते न थे ॥ ३२ ॥ वे थे तो जाति से ब्राह्मण पर मदिरा पीते और गोमांस तक खाते थे, और डाका चोरी और घर जलाना तो उनका नित्य कर्म था ॥ ३३ ॥ वे कहलाते तो शहर-कोतवाल थे पर कार्यालय का मुँह उन्होंने कभी नहीं देखा था। वे शराब पीने के सिवाय और कुछ नहीं जानते थे ॥ ३४ ॥ जो कोई उनके हाथ आ जाता उसी को वे मरम्मत कर देते ॥ ३५ ॥ अतएव रास्ते पर लोग दूर से खड़े २ उनका तमाशा देख रहे थे वहीं पर नित्यानन्द और हरिदास जी भी थे ॥ ३६ ॥ वे दोनों मतवाले क्षण में तो आपस में प्यार करते और क्षण में एक दूसरे के बालों को नोचते, और जोर २ से "चकार बकार" अर्थात् गन्दी गालियां बकते ॥ ३७ ॥ इन्होंने नदिया के विप्र की जाति नाश कीनी है और मदिरा के विक्षेप में किसी को नहीं मानते हैं ॥३८॥ जितने भी पाप हैं सब इन दोनों के शरीर में प्रकट हुए—केवल एक वैष्णवों की निन्दा रूपी पाप से ये बचे हुए थे ॥ ३९ ॥ दिन रात शराबियों के सङ्ग-रङ्ग में रहने के कारण ये वैष्णवों की निन्दा से बचे रह गए ॥ ४० ॥ जिस सभा में वैष्णवों की निन्दा होती है, उसका सब धर्मों के रहते हुए भी

संन्यासि-सभाय यदि हय निन्द्य कर्म। मद्यपेरो सभा हैते से सब अधर्म्म ॥४२॥
मद्यपेर निष्कृति आछये कोनो काले। पर चर्च्च केर गति नहे कभु भाले ॥४३॥
शास्त्र पढ़ियाओ कारो कारो बुद्धि नाश। निन्दानन्द-निन्दा करे, हवे सर्व नाश ॥४४॥
दुइ-जना किला किलि गाला गालि करे। नित्यानन्द-हरिदास देखे थाकि दूरे ॥४५॥
लोक-स्थाने नित्यानन्द जिज्ञासे आपने। "कोन् जाति दुइ जन, हेन-मत केने" ॥४६॥
लोक बोले "गोसाञ्चि! ब्राह्मण दुइ जन। दिव्य पिता माता, महा कुले उतपन्न ॥४७॥
सर्व काल नदियाय पुरुषे पुरुषे। तिलार्द्ध को दोष नाहि ए-दोंहार वंशे ॥४८॥
एइ दुइ गुणवन्त पासरिल धर्म। जन्म हैते ए मत करये अपकर्म ॥४९॥
छाडिल गोष्ठीये बड़ दुर्जन देखिया। मद्यपेर सङ्गे बुले स्वतंत्र हइया ॥५०॥
ए-दुइ देखिया सब नदिया डराय। पाछे कारो कोन दिन वसति पोड़ाय ॥५१॥
हेन पाप नाहि, जाहा ना करे दुइ जन। डाका, चुरि, मद्य-माँस करये भक्षण" ॥५२॥
शुनि नित्यानन्द बड़ करुण-हृदय। दुइर उद्धार चिन्ते' हइया सदय ॥५३॥
"पापी उद्धारिते प्रभु कैला अवतार। ए मत पातकी कोथा पाइवेन आर ॥५४॥
लुकाइया करे प्रभु आपना प्रकाश। प्रभाव ना देखि लोक करे उपहास ॥५५॥
ए-दुइरे प्रभु जदि अनुग्रह करे। तवे से प्रभाव देखे सकल-संसारे ॥५६॥
तवे हङ नित्यानन्द-चैतन्येर दास। ए-दुइरे करों यदि चैतन्य-प्रकाश ॥५७॥

---

नाश होता है ॥ ४१ ॥ संन्यासी सभा में यदि वैष्णवों की निन्दा होती है तो वह शराबियों की सभा से अधिक अधर्मी है ॥ ४२ ॥ (कारण कि) शराबियों का उद्धार तो किसी समय हो भी सकता है परन्तु पर-चर्चा करने वाले की कभी भी उत्तम गति नहीं हो सकती ॥ ४३ ॥ शास्त्र पढ़ करके भी किसी २ की बुद्धि नष्ट हो गई है, जो वे श्री नित्यानन्द की निन्दा करते हैं। उनका सर्वनाश होगा ॥४४॥ दोनों शराबी आपस में मार पीट, गाली गलौज कर रहे हैं और नित्यानन्द और हरिदास जी दूर से देख रहे है ॥ ४५ ॥ फिर नित्यानन्द जी ने आप ही लोगों से पूछा कि ये दोनों किस जाति के हैं और ऐसे कैसे हैं । ४६ ॥ लोग बोले-"गुसाँई जी! ये दोनों ब्राह्मण है। उच्चकुल में उत्पन्न हुए हैं इनके माता पिता बड़े ही उत्तम हैं ॥ ४७ ॥ इनके पूर्व पुरुष चिरकाल से नदिया में निवास करते आए हैं इनके वंश में किसी में भी तिल भर दोष नहीं था ॥ ४८ ॥ पर ये दो ऐसे गुणवन्त निकले कि अपना धर्म-कर्म सब भूल गए। ये बचपन से ही ऐसे कुकर्म करते आए हैं ॥ ४९ ॥ इनको दुष्ट- दुर्जन देख कर इनके बन्धु-बान्धवों ने भी इनको छोड़ दिया। अब ये परम स्वतंत्र हो शराबियों के साथ घूमते फिरते हैं ॥ ५० ॥ इन दोनों को देख कर सारी नदिया डरती है—कहीं ऐसा न हो कि किसी दिन हमारा किसी का घर न जला दें ॥ ५१ ॥ ऐसा पाप नहीं है, जो ये दोनों नहीं करते हैं डाका डालते, चोरी करते, मद्य-मांस खाते पीते हैं ॥ ५२ ॥ यह सुन कर दयालु हृदय वाले नित्यानन्द जी दया के परवश होकर उनके उद्धार की चिन्ता करने लगे ॥ ५३ ॥ वे सोचते हैं—"पापियों का उद्धार करने के लिए ही प्रभु ने अवतार लिया है। तो फिर ऐसे पापी उनको और कहाँ मिलेंगे ॥ ५४ ॥ "प्रभु लोगों से छिपा कर अपनी प्रकाश लीला करते हैं। लोगों को प्रभु का प्रभाव प्रत्यक्ष देखने को न मिलने से वे उपहास करते हैं ॥५५॥ "इन दोनों के ऊपर यदि प्रभु कृपा करें, तभी संसार प्रभु के प्रभाव को देखेगा ॥५६॥ और मैं श्री नित्यानन्द श्री चैतन्य का दास तभी हूँगा जब मैं इन दोनों के हृदय में चैतन्य का प्रकाश कर दूँगा ॥ ५७ ॥ "इस समय जो मदिरा में मतवाले बने अपने को भूले हुए हैं, ऐसे ही यदि श्री कृष्ण के नाम

एखने जे मदे मत्त, आपना' ना जाने। एइ मत हय यदि श्रीकृष्णेर नामे॥
'मोर प्रभु' बलि यदि कान्दे दुइ जन। तबे से सार्थक मोर जत पर्यटन॥५८॥
जे जे जन ए-दुइर छाया परशिया। वस्त्रेर सहित गङ्गा स्नान कैल गिया॥५९॥
सेइ सब जन जबे ए-दोंहारे देखि। गंगा स्नान हेन माने,' तबे मोरे लेखि"॥६०॥
श्रीनित्यानन्द प्रभुर महिमा अपार। पतितेर त्राण लागि जाँर अवतार॥६१॥
ए सब चिन्तिया मने हरिदास-प्रति। बोले "हरिदास! देख दोंहार दुर्गति॥६२॥
ब्राह्मण हइया हेन दुष्ट-व्यवहार। ए-दोंहार जम घरे नाहि प्रतिकार॥६३॥
प्राणान्ते मारिल तोमा' जे जवन गणे। ताहारओ करिला तुमि भाल मने मने॥६४॥
जदि तुमि शुभानु सन्धान कर' मने। तबे से उद्धार पाय एइ दुइ जने॥६५॥
तोमार सङ्कल्प प्रभु ना करे अन्यथा। आपने कहिला प्रभु एइ तत्त्व कथा॥६६॥
प्रभुर प्रभाव सब देखुक संसार। चैतन्य करिल हेन-दुइर उद्धार॥६७॥
जेन गाय अजामिल-उद्धार पुराणे। साक्षाते देखुक एबे ए-तिन-भुवने"॥६८॥
नित्यानन्द-तत्त्व हरिदास भाल जाने। 'पाइल उद्धार दुइ' जानि लेन मने॥६९॥
हरिदास प्रभु बोले "शुन महाशय। तोमार जे इच्छा, सेइ प्रभुर निश्चय॥७०॥
आमारे भाण्डाह जेन पशुरे भाण्डाह। आमारे से तुमि पुनः पुन परिखाह॥७१॥
हासि नित्यानन्द ताने दिला आलिङ्गन। अत्यन्त कोमल हइ बोलेन वचन॥७२॥
"प्रभुर जे आज्ञा लइ आमरा बेड़ाइ। ताहा कहि एइ दुइ मद्यपेर ठाँइ॥७३॥
सभारे भजिले 'कृष्ण' प्रभुर आदेश। तार मध्ये अतिशय-पापीरे विशेष॥७४॥

---

में मतवाले बन जायें और "हे मेरे प्रभो" कह २ कर रोने लग जायें तभी मेरा यह नगर भ्रमण सार्थक होगा॥ ५८॥ "जिन २ लोगों ने इन दोनों के छाया को छूकर के गङ्गा में जा वस्त्र सहित स्नान किया है॥५९॥ वे ही सब लोग अब इन दोनों के दर्शन में ही अपना गङ्गा स्नान मानेंगे, तब ही मेरा नाम नित्यानन्द करके जानना॥६०॥ श्री नित्यानन्द प्रभु की महिमा अपार है जिनका अवतार ही पतितों के उद्धार के लिए हुआ है॥ ६१॥ इस प्रकार मन में विचार करके वे हरिदास जी से बोले—"हरिदास! इन दोनों की दुर्गति तो देखो॥ ६२॥ "ब्राह्मण होकर ऐसा दुष्ट आचरण!! इन दोनों के लिए तो यम के घर में भी छुटकारा नहीं॥ ६३॥ जिन यवन सिपाहियों ने तुम्हारे अन्तिम श्वास तक तुमको मारा था, उनका भी तुमने अपने मन में शुभ चिन्तन ही किया था॥ ६४॥ "अहो तुम यदि इनके लिए भी मन में शुभ कामना करो तो इन दोनों का भी उद्धार हो जाय॥ ६५॥ (कारण कि) तुम्हारे संकल्प को प्रभु अन्यथा नहीं कर सकते—यह बिलकुल सत्य है-यह प्रभु ने ही स्वयं कहा है॥ ६६॥ "और प्रभु का प्रभाव भी तो संसार देखे कि श्री चैतन्य प्रभु ने ऐसे २ दुष्टों का उद्धार किया है॥ ६७॥ अजामिल का उद्धार पुराण जो गाते हैं, उसे अब यह तीनों लोक प्रत्यक्ष देख लें"॥ ६८॥ श्री नित्यानन्द के तत्त्व को हरिदास जी भली प्रकार से जानते हैं अतएव उनके मन ने जान लिया कि इनका उद्धार हो गया॥ ६९॥ हरिदास प्रभु फिर नित्यानन्द प्रभु से बोले-"सुनो महाशय जी! तुम्हारी जो इच्छा है, वही प्रभु का निश्चय है॥ ७०॥ जैसे लोग पशु को भुलाते हैं, वैसे तुम मुझे क्या भुलाते हो। मैं भूलने वाला नहीं हूँ। मेरी तुम बार २ परीक्षा लेते हो"॥ ७१॥ तब हँस करके नित्यानन्द जी ने उनको छाती से लगा लिया और कुछ अत्यन्त कोमल होकर बोले॥ ७२॥ "तो सुनो! हम प्रभु की जो आज्ञा लेकर घूम रहे है, उस आज्ञा को इनके पास चल कर सुनाऐं॥ ७३॥ "सब लोगों से

बलिबार भार मात्र आमरा-दुइर। बलिले ना लय, तबे सेइ महावीर ।।७५।।
बलिते प्रभुर आज्ञा से-दुइर स्थाने। नित्यानन्द-हरिदास करिला गमने ।।७६।।
साधु लोके माना करे "निकटे ना जाओ। नागालि पाइले पाछे पराण हाराओ ।।७७।।
आमरा अन्तरे थाकि परम-तरासे। तोमरा निकटे जाह के मन साहसे ।।७८।।
किसेर संन्यासि-ज्ञान ओ-दुइर ठाञि। ब्रह्म बधे गो बधे जाहार अन्त नाञि" ।।७९।।
तथापिह दुइ जन 'कृष्ण कृष्ण' बलि। निकटे चलिला, दोंहे महा-कुतूहली ।।८०।।
'शुनि बारे पाय' हेन निकटे थाकिया। कहेन प्रभुर आज्ञा डाकिया डाकिया ।।८१।।
"बोल कृष्ण, भज कृष्ण, लह कृष्ण नाम। कृष्ण माता, कृष्ण पिता, कृष्ण धन प्राण ।।८२।।
तोमा 'सभा' लागिया कृष्णेर अवतार। हेन कृष्ण भज, सब छाड़ अनाचार" ।।८३।।
डाक शुनि माथा तुलि चाहे दुइ जन। महा-क्रोधे दुइ जन अरुण-नयन ।।८४।।
संन्यासि-आकार देखि माथा तुलि चाहे। "धर धर" बलि दोंहे धरि बारे जाये ।।८५।।
आथे व्यथे नित्यानन्द-हरिदास धाय। "रह रह" बलि दुइ दस्यु पाछे जाय। ८६।।
धाइया आइसे पाछे तर्ज गर्ज करे। महा-भय पाइ दुइ प्रभु धाय डरे ।।८७।।
लोक बोले "तखनेइ निषेध करिल। ए दुइ संन्यासी आजि सङ्कटे पड़िल ।।८८।।
अनेक पाषण्डि-सब हासे' मने मने। "भण्डेर उचित शास्ति कैल नारायणे" ।।८९।।
"कृष्ण ! रक्ष, कृष्ण ! रक्ष" सु ब्राह्मण बोले। से स्थान छाड़िया भये चलिला सकले ।।९०।।

और उनमें भी विशेष करके अतिशय पापीयों से श्री कृष्ण का भजन कराने के लिए प्रभु का आदेश है ।।७४। ( जो यदि तुम यह कहोगे कि ये मतवाले प्रभु के आदेश को क्या सुनेंगे तो ) हम दोनों के ऊपर तो आज्ञा सुना देने का ही भार है यदि कहने पर भी ये नाम न लें, तो प्रभु महावीर हैं-वे ही उनसे बुलवा लेंगे ।।७५।। अब नित्यानन्द और हरिदास जी प्रभु की आज्ञा सुनाने के लिए उन दोनों के पास चले ।।७६। यह देख कर सज्जन लोग मना करने लगे-"अरे ! नजदीक मत जाओ ! उनके हाथ पड गए तो प्राणों को खो बैठोगे ।। ७७ ।। "हम तो मारे डर के दूर २ रहते हैं और तुम कैसे इनके पास जाने का साहस करते हो। ७८ ।। ( यह मत समझो कि हम संन्यासी हैं ) अरे ! जिन्होंने न जाने कितनी ब्राह्मण हत्याएँ और गोहत्याएँ कर डाली हैं, वे दोनों संन्यासी को क्या समझें" ।। ७९ ।। इस प्रकार मना किये जाने पर भी वे दोनों जने 'कृष्ण कृष्ण' कहते हुए उनके पास चले। उन्हें (भय नहीं) बड़ा आनन्द था ।। ८० ।। वे सुन सकें, इतने समीप आ कर, वे पुकार २ कर प्रभु की आज्ञा सुनाने लगे ।। ८१ ।। 'कृष्ण बोलो, कृष्ण भजो, कृष्ण का नाम लो। कृष्ण ही माता, कृष्ण ही पिता और कृष्ण ही धन प्राण हैं ।। ८२ ।। तुम सब के लिए ही श्रीकृष्ण का अवतार हुआ है। ऐसे कृष्ण को भजो और सब अनाचार छोड़ो ।। ८३ ।। पुकार सुन कर दोनों ने सिर उठा कर देखा. महा क्रोध से दोनों आँखें लाल हो रही हैं ।। ८४ ।। सिर उठा कर जब उन्होंने दो संन्यासी मूर्त्ति को देखा तो "पकड़ो पकड़ो" कहते हुए दोनों को पकड़ने के लिए चले ।। ८५ ।। नित्यानन्द और हरिदास तो झट-पट भागे, गिरते-पड़ते और "ठहरो ठहरो" कहते हुए पीछे २ वे दोनों डाकू चले ।। ८६ ।। वे गर्जन-तर्जन करते हुए पीछे २ दौड़े आ रहे हैं और दोनों प्रभु महा भय भीत होकर भागे जा रहे हैं ।। ८७ ।। लोग कहने लगे-"हमने तो तभी मना किया था-पर माने नहीं। आज ये दोनों संन्यासी बड़े संकट में पड़ गए" ।। ८८ ।। और जितने पाखण्डी लोग थे वे सब मन २ में हँसने लगे "अच्छा हुआ ! ढोंगियों के लिए नारायण ने उचित दण्ड दिया" ।। ८९ ।। सज्जन ब्राह्मण लोग "हे कृष्ण ! रक्षा करो ! इनकी रक्षा करो" कहने लगे

दुइ दस्यु धाय, दुइ ठाकुर पलाय। "धरिलुँ धरिलुँ" बलि लागि नाहि पाय ॥९१॥
नित्यानन्द बोले "भाल हइल वैष्णव। आजि जदि प्राण बाँचे, तबे पाइ सब ॥९२॥
हरिदास बोले "ठाकुर! आर केने बोल। तोमार बुद्धिते अपमृत्ये प्राण गेल ॥९३॥
मद्यपेरे कैले जेन कृष्ण-उपदेश। उचित ताहार शास्ति-प्राण अवशेष" ॥९४॥
एत बलि धाय प्रभु हासिया हासिया। दुइ दस्यु पाछे धाय तर्जिया गर्जिया ॥९५॥
दोंहार शरीर स्थूल-ना पारे धाइते। तथापिह धाय दुइ मद्यप त्वरिते ॥९६॥
दुइ दस्यु बोले "भाइ! कोथारे जाइबा। जगा-माधार ठाञि आजि केमते एड़ाइबा ॥९७॥
तोमरा ना जान' एथा जगा-माधा आछे। खानि रह उलटिया हेर-देख पाछे" ॥९८॥
त्रासे धाय दुइ प्रभु वचन शुनिया। "रक्ष कृष्ण! रक्ष कृष्ण! गोविन्द!" बलिया ॥९९॥
हरिदास बोले "आमि ना पारि चलिते। जानिञाओ आसि आमि चञ्चल सहिते ॥१००॥
राखिलेन कृष्ण काल यवनेर ठाँइ। चञ्चलेर बुद्धये आजि प्राण से हाराइ" ॥१०१॥
नित्यानन्द बोले "आमि नहिये चञ्चल। मने भावि देख तोमार प्रभु से विह्वल ॥१०२॥
ब्राह्मण हइया जेन राज-आज्ञा करे। तान बोल बलि सब प्रति घरे घरे ॥१०३॥
कोथाओ जे नाहि शुनि-सेइ आज्ञा ताँर। चोर ढङ्ग बइ लोक नाहि बोले आर ॥१०४॥
ना करिले आज्ञा तान सर्व नाश करे। करिलेओ आज्ञा तान एइ फल धरे ॥१०५॥
आपन प्रभुर दोष ना जानह तुमि। दुइ-जने बलिलाङ, दोष भागी आमि" ॥१०६॥

---

और उस स्थान को छोड़ २ कर सब भाग चले ॥९०॥ इधर ये दोनों डाकू पीछे २ दौड़ रहे हैं, उधर वे दोनों ठाकुर भागे जा रहे हैं। "पकड़ा अब पकड़ा" कहते हैं, पर पकड़ नहीं पाते हैं ॥ ९१ ॥ नित्यानन्द बोले—"अच्छे वैष्णव हुए! आज अगर प्राण बच गये तो जानो कि सब कुछ पा लिया" ॥ ९२ ॥ हरिदास बोले—"बस ठाकुर! रहने दो! और बातें मत बनाओ। तुम्हारी बुद्धि के कारण अकाल मृत्यु में प्राण गए समझो ॥ ९३ ॥ "हमने शराबियों को जो कृष्ण भजन का उपदेश किया उसका दण्ड ठीक ही मिल रहा है-अब प्राण ही कुछ शेष है" ॥ ९४ ॥ परस्पर में ऐसा कहते हुए दोनों प्रभु हँसते २ भागे जा रहे हैं, और वे दोनों डाकू सरीखे गरजते तरजते हुए पीछे २ दौड़े जा रहे हैं ॥ ९५ ॥ दोनों शराबियों का शरीर स्थूल है, दौड़ नहीं सकते, फिर भी तेजी से दौनों दौड़े जा रहे हैं ॥ ९६ ॥ दोनों दस्यु बोले—"अरे भाइयो! कहाँ जाओगे भाग के। जगाइ-मधाइ के हाथ से आज कैसे छूट पाओगे ॥ ९७ ॥ "तुम नहीं जानते थे क्या, कि यहाँ जगाई-मधाई हैं अरे नेक ठहर कर पीछे मुड़ कर तो देखो" ॥ ९८ ॥ उनके वचनों को सुन कर दोनों प्रभु डर के "हे कृष्ण! रक्षा करो! हे कृष्ण रक्षा करो! हे गोविन्द!" कहते हुए भागे चले जाते हैं ॥ ९९ ॥ हरिदास जी बोले—"मैं तो अब नहीं चल सकता। मैं जान बूझ कर भी (ऐसे) चंचल के साथ आया ॥ १०० ॥ यवनों के हाथ से तो श्री कृष्ण ने मृत्यु रक्षा की, परन्तु इस चंचल की बुद्धि के कारण आज प्राणों से हाथ धोने पड़ेंगे" ॥ १०१ ॥ तब नित्यानन्द जी बोले—"मैं चञ्चल नहीं हूँ। मन में नेक विचार करके तो देखो, कि चञ्चल तो तुम्हारे प्रभु ही हैं ॥ १०२ ॥ कि जो ब्राह्मण हो करके भी राजा को तरह आज्ञा देते हैं-उन्हीं की तो आज्ञा हम सब घर २ में सुनाते फिर रहे हैं। १०३ ॥ "और आज्ञा भी तो उनकी ऐसी (अनोखी) है कि जो कहीं नहीं सुनी गई। इसीलिए लोग हमको चोर, ढोंगी छोड़ कर और कुछ कहते ही नहीं ॥१०४॥ जो हम उनकी आज्ञा पर नहीं चलते तो वे हमारा सर्वनाश करते हैं और जो चलते हैं तो इधर ऐसा फल मिलता है ॥ १०५ ॥ "अपने प्रभु के दोष को तुम देखते नहीं हो। और इन दो शराबियों से भजन करने के लिए

हेन मते दुइ जने आनन्द कन्दल। दुइ दस्यु धाय पाछे, देखिया विकल ॥१०७॥
धाइया आइला निज ठाकुरेर बाड़ी। मद्येर विक्षेपे दस्यु पाड़े रड़ा रड़ि ॥१०८॥
देखा ना पाइया दुइ मद्यप रहिल। शेषे हुड़ा हुड़ि दुइ जनेइ बाजिल ॥१०९॥
मद्येर विक्षेपे दुइ किछु ना जानिल। आछिल वा कोन् स्थाने, कोथा वा रहिल ॥११०॥
कथो क्षणे दुइ प्रभु उलटिया चा'हे। कोथा गेल दुइ दस्यु देखिते ना पाये ॥१११॥
स्थिर हइ दुइ जने कोला कोलि करे। हासिया चलिला जथा प्रभु-विश्वम्भरे ॥११२॥
वसि आछे महाप्रभु कमल लोचन। सर्वाङ्ग सुन्दर रूप मदन मोहन ॥११३॥
चतुर्दिगे रहियाछे वैष्णव मण्डल। अन्योऽन्ये कृष्ण कथा कहेन सकल ॥११४॥
कहये आपन तत्त्व सभा' मध्ये रङ्गे। श्वेत-द्वीप पति जेन सनकादि-सङ्गे ॥११५॥
नित्यानन्द-हरिदास हेनइ समय। दिवस वृत्तान्त जत सम्मुखे कहय ॥११६॥
"अपरूप देखिलाङ आजि दुइ जन। परम मद्यप, पुन बोलाय 'ब्राह्मण' ॥११७॥
भाल रे बलिल तारे 'बोल कृष्ण-नाम। खेदाडिया आइल, भाग्ये रहिल पराण ॥११८॥
प्रभु बोले "के से दुई, किवा तार नाम। ब्राह्मण हइया केने करे हेन काम" ॥११९॥
सम्मुखे आछिला गङ्गादास श्रीनिवास। कहये जतेक तार विकर्म-प्रकाश ॥१२०॥
"से-दुइर नाम प्रभु ! जगाइ माधाइ। सु ब्राह्मण पुत्र दुइ, जन्म एइ ठाँइ ॥१२१॥
सङ्ग दोषे से-दोंहार हैल हेन मति। आजन्म मदिरा वइ आन नाहि गति ॥१२२॥
से-दुइर भये नदियार लोक डरे। हेन नाहि, जार घरे चुरि नाहि करे ॥१२३॥

---

...म दोनों ने ही कहा परन्तु दोषी मैं ही अकेला ठहरा" ॥१०६॥ इस प्रकार दोनों प्रभु आनन्द का कलह ...ो हैं और दोनों डाकुओं को पीछे २ दौडते हुए देख कर व्याकुल भी होते हैं ॥ १०७ ॥ दोनों प्रभु दौड ...पने ठाकुर (प्रभु) के भवन में घुस गए, और वे दोनों डाकू शराब के नशे में दौड़ते ही रहे ॥ १०८ ॥ ...इनको देख न पाने पर वे रुक गए और अन्त में उन दोनों की आपस में ही ठन गई ॥ १०९ ॥ शराब ...शे में दोनों यह नहीं जानते कि हम कहाँ तो थे और अब कहाँ आ पडे हैं ॥ ११० ॥ कुछ देर बाद दोनों ने मुड़ कर देखा तो वे दो दस्यु दिखाई नहीं दिए-न जाने वे कहाँ चले गए थे ॥ १११ ॥ तब शान्त हो दोनों प्रभु आपस में मिले और फिर हँसते हुए प्रभु विश्वम्भर के पास चले ॥ ११२ ॥ मश्रीन्महाप्रभु ...हुए हैं। कमल सदृश नयन हैं, सर्वाङ्ग सुन्दर है, रूप मदन मोहन है ॥११३॥ चारों ओर वैष्णव-मंडली ...राजमान है, सब परस्पर में श्री कृष्ण की चर्चा कर रहे हैं ॥ ११४ ॥ प्रभु स्वयं सभा के मध्य में अपना ... बड़े आनन्द के साथ वर्णन कर रहे हैं मानो तो श्वेत द्वीप पति श्री विष्णु सनकादिकों के सहित विराजे ... ॥ ११५ ॥ ऐसे समय श्री नित्यानन्द और हरिदास जी सन्मुख आकर दिन भर का वृत्तान्त सुनाने लगे ...११६ ॥ वे बोले—"आज हमने दो अनोखे जीव देखे-पूरे शराबी, परन्तु कहने को ब्राह्मण ॥ ११७ ॥ हम उनके भलाई के लिए बोले—"कृष्ण नाम बोलो" परन्तु वे तो हमारे ऊपर टूट पड़े, भाग्य से ही प्राण ... ॥ ११८ ॥ प्रभु बोले—"वे दो कौन हैं ? क्या उनके नाम हैं ? ब्राह्मण होकर वे ऐसा काम क्यों करते है ...११९ ॥ प्रभु के सामने पं० गङ्गादास और श्री निवास जी बैठे हुए थे। वे उनके सब दुष्कर्मों को बखान ...गे ॥ १२० ॥ वे बोले—"प्रभो ! उन दोनों का नाम है जगाइ-मधाइ दोनों सद ब्राह्मण के पुत्र हैं, जन्म ...का है ॥ १२१ ॥ "सङ्ग-दोष से उन दोनों की ऐसी बुद्धि हो गई है कि जन्म से ही मदिरा के बिना और ...जानते ही नहीं ॥ १२२ ॥ उन दोनों के भय से नदिया के सब लोग डरते हैं। ऐसा कोई मनुष्य नही

से-दुइर पातक कहिते नाहि ठाञि । आपने सकल देख, जानह गोसाञि" ॥१२४॥
प्रभु बोले "जानों जानों सेइ दुइ बेटा । खण्ड खण्ड करिमु आइले मोर एथा ॥१२५॥
नित्यानन्द बोले "खण्ड खण्ड कर' तुमि । से-दुइ थाकिते कति ना जाइब आमि ॥१२६॥
किसेर वा एत तुमि करह बड़ाइ । आगे सेइ-दुइर जे 'गोविन्द' बोलाइ ॥१२७॥
स्वभावेइ धार्मिक बोलये कृष्ण नाम । ए दुइविकर्म वइ नाहि जाने आन ॥१२८॥
ए दुइ उद्धार' जदि दिया भक्ति-दान । तवे जानि 'पातकि पावन' हैव नाम ॥१२९॥
आमारे तारिया जत तोमार महिमा । ततोधिक ए-दोंहार उद्धारेर सीमा" ॥१३०॥
हासि बोले विश्वम्भर "हइल उद्धार । जेइ क्षणे दरशन पाइल तोमार ॥१३१॥
विशेषे चिन्तह तुमि एतेक मङ्गल । अविरात कृष्ण तार करि व कुशल" ॥१३२॥
श्रीमुखेर वाक्य शुनि भागवत गण । जय जय-हरि-ध्वनि करिला तखन ॥१३३॥
"हइल उद्धार" सभे मानिला हृदये । अद्वैतेर स्थाने हरिदास कथा कहे ॥१३४॥
"चञ्चलेर सङ्गे प्रभु आमारे पाठाय । आमि थाकि कोथा, से वा कोन दिगे जाय ॥१३५॥
वर्षाते जाह्नवी जले कुम्भीर बेड़ाय । साँतार एड़िया तारे धरिवारे जाय ॥१३६॥
कूले थाकि डाक पाड़ि करि 'हाय हाय' । सकल-गङ्गार माझे भासिया बेड़ाय ॥१३७॥
जदि वा कूले ते उठे छाओयाल देखिया । मारि वार तरे शिशु जाय खेदाड़िया ॥१३८॥
तार पिता माता आइसे हाथे ठेङ्गा लैया । ना' सभा' पाठाइ आमि चरणे धरिया ॥१३९॥
गोपालार घृत दधि लइया पलाय । आमारे धरिया तारा मारि वारे चाय ॥१४०॥

---

कि जिसके घर चोरी न करते हों ॥ १२३ ॥ "उन दोनों के पापों का बखान आप के सामने क्या करें ? हे प्रभो ! आप सब देखते और जानते है" ॥ १२४ ॥ प्रभो बोले—"जानता हूँ, उन दोनों बेटाओं को जानता हूँ । यहाँ मेरे पास आयँगे तो मैं उनके टुकड़े २ कर डालूँगा ॥ १२५ ॥ नित्यानन्द जी बोले—"टुकड़े २ तो आप करेंगे ही ! परन्तु मैं तो उनके रहते कहीं भी नहीं जाऊँगा ॥ १२६ ॥ आप किस लिए इतनी बड़ी २ बातें करते हैं । पहले उन दोनों से तो 'गोविन्द" बुलवा लो ॥ १२७ ॥ "धार्मिक पुरुष तो स्वभाव से ही कृष्ण नाम लेते हैं । परन्तु ये दोनों तो दुष्कर्म के अतिरिक्त और कुछ जानते ही नहीं हैं ॥ १२८ ॥ इन दोनों को यदि भक्ति दान करके उद्धार करो तब हम जाने कि आपका नाम "पतित पावन" है ॥ १२९ ॥ "हम लोगों को तारने में जो कुछ भी आपकी महिमा है, उससे कहीं अधिक महिमा की सीमा इन दोनों के उद्धार में है" ॥ १३० ॥ तब विश्वम्भर प्रभु हँस कर बोले—"उद्धार तो हो चुका उसी समय जिस समय उनको तुम्हारा दर्शन मिला ॥ १३१ ॥ "ऊपर से आप उनके मंगल की जो विशेष चिन्ता कर रहे हैं, तो श्रीकृष्ण शीघ्र ही उनका कल्याण करेंगे" ॥ १३२ ॥ श्रीमुख के ऐसे वचन सुन कर सब भक्त लोगों ने उस समय "जय जय" और "हरि बोल" ध्वनि की ॥ १३३ ॥ सब ने मन में समझ लिया कि "उद्धार हो गया" तब अद्वैत जी से हरिदास जी बोले ॥ १३४ ॥ प्रभु चंचल के साथ मुझे भेजते हैं । मैं कहीं रहता हूँ और वे कहीं को चल देते हैं ॥ १३५ ॥ "वर्षा के दिन हैं, गङ्गा के जल में मगर घूमते फिरते हैं । और ये मुझे छोड़ कर जल में कूद पड़ते हैं और तैरते हुए मगर पकड़ने जाते हैं ॥ १३६ ॥ मैं किनारे पर खड़े पुकारता हूँ, हाय २ मचाता हूँ, पर ये सारी गङ्गा में मौज से तैरते फिरते हैं ॥ १३७ ॥ "और जब किनारे पर बाहर निकल भी आते हैं, तो बालकों को देख कर मारने के लिए उनके पीछे दौड़ते हैं ॥ १३८ ॥ उनके मा बाप हाथ में लाठी ले लेकर आते हैं तो मैं उनके पाँवों पड़ २ कर उनको लौटाता हूँ ॥ १३९ ॥ "कभी ग्वालाओं के दूध, दही, मक्खन

सेइ से करये कर्म, जे जुगत नहे। कुमारी देखिया बोले' मोरे विवाहिये ॥१४१॥
चढ़िया षाँडेर पिठे 'महेश' बोलाय। परेर गाभीर दुग्ध–ताहा दुहि' खाय ॥१४२॥
आमि शिखाइले गालि पाड़ये तोमारे। तोहोर अद्वैत मोर कि करिते पारे ॥१४३॥
चैतन्य-बलिस् जारे 'ठाकुर' करिया। से वा कि करिते पारे आमारे आसिया' ॥१४४॥
किछुइ ना कहि आमि ठाकुरेर स्थाने। दैवे भाग्ये आजि रक्षा पाइल पराणे ॥१४५॥
महा-मातोयाल दुइ पथे पड़ि' आछे। कृष्ण-उपदेश गिया कहे तार काछे ॥१४६॥
महा-क्रोधे धाइया आइसे मारि बार। जीवन-रक्षार हेतु-प्रसाद तोमार ॥१४७॥
हासिया अद्वैत बोले "कोन चित्र नहे। मद्यपेर उचित-मद्यप-सङ्ग हये ॥१४८॥
तीन-मातोयाल-सङ्ग एकत्र उचित। नैष्ठिक हइया केने तुमि तार भित ॥१४९॥
नित्यानन्द करि' ब-सकल मातोयाल। उहान चरित्र आमि जानि भाले भाल ॥१५०॥
एइ देख तुमि दिन-दुइ-तिन ब्याजे। सेइ दुइ मद्यप आनिब गोष्ठी-माझे" ॥१५१॥
बलिते अद्वैत हइलेन क्रोधा वेश। दिगम्बर हइ बोले अशेष विशेष ॥१५२॥
"शुषिब सकल चैतन्येर कृष्ण भक्ति। के मने नाचये गाय देखों ताँर शक्ति ॥१५३॥
देख कालि सेइ दुइ मद्यप आनिया। निमाञि निताइ दुइ नाचिब मिलिया ॥१५४॥
एकाकार करिबेक सेइ-दुइ-जने। जाति लइ तुमि आमि पलाइ जतने" ॥१५५॥
अद्वैतेर क्रोधा वेशे हासे' हरिदास। 'मद्यप उद्धार' चित्ते हइल प्रकाश ॥१५६॥
अद्वैत-बचन बुझे काहार शकति। बुझे हरिदास प्रभु, आर जेन मति ॥१५७॥

---

को लेकर भाग जाते हैं, तो वे मुझे पकड़ कर मारना चाहते हैं ॥ १४० ॥ यह वही सब काम करते हैं जो करना नहीं चाहिए। कोई कुमारी कन्या को देख कर कहते हैं–"मेरे साथ व्याह कर लो" ॥१४१॥ "कभी साँड़ की पीठ पर चढ़ कर कहते हैं कि मुझे 'शङ्कर' कहो। कभी किसी की गाय को दुह कर दूध पी जाते है ॥१४२॥ मैं इनको समझाता हूँ तो आप को गाली देते हैं कि "तेरा अद्वैत मेरा क्या कर सकता है" ॥१४३॥ "स्वयं श्री चैतन्य भी जिसको तुम ठाकुर कहते हो, वह भी आकर मेरा क्या कर सकता है ॥ १४४ ॥ मैं यह सब बातें प्रभु से कभी कहता नहीं हूँ। और आज तो दैव की कृपा से बड़े भाग्य से प्राण बचे हैं ॥ १४५ ॥ "दो महा मतवाले रास्ते पर पड़े हुए थे। यह उनके पास जाकर कृष्ण नाम का उपदेश करने लगे। १४६॥ वे बड़े क्रोध में भर कर मारने को दौड़े आये, आपकी कृपा से ही जीवन की रक्षा हुई ॥ १४७ ॥ तब अद्वैत हँस कर बोले–"कोई आश्चर्य नहीं है। मतवालों को मतवालों का सङ्ग मिलना उचित ही है ॥१४८॥ तीन मतवालों का एकत्र सम्मिलन तो होना ही चाहिए तुम डरते क्यों हो ? तुम तो पूरे निष्ठावान हो ॥ १४९ ॥ नित्यानन्द तो सब को मतवाला बनायेंगे। उनके चरित्र को तो अच्छी तरह जानता हूँ ॥१५०॥ "और अब तुम यह देख लेना कि दो तीन दिन में ही ये उन दोनों शराबियों को अपनी गोष्ठी में ही ले आयेंगे ॥१५१॥ कहते २ अद्वैत प्रभु में क्रोध का आवेश हो आया और वे दिगम्बर होकर सब कुछ कहने लगे ॥ १५२ ॥ वे बोले–"मैं श्री चैतन्य की सम्पूर्ण कृष्ण-भक्ति को सोख लूँगा-देखूँगा उनकी शक्ति को वे कैसे नाचते-गाते हैं ॥१५३॥ देखो, कल ही उन दोनों शराबियों को लाकर निमाइ-निताइ दोनों उनसे मिलकर नाचेंगे ॥१५४॥ "वे दोनों जने सब की जाति-पाँति एक मेक कर डालेंगे। अतएव तुम हम अपनी २ जाति लेकर भाग चलें" ॥ १५५ ॥ अद्वैत के क्रोधावेश पर हरिदास जी हँसने लगे। मद्यपों का भावी उद्धार उनके चित्त में प्रकाशित हो आया ॥ १५६ ॥ श्री अद्वैत के वचनों को समझने की किसको शक्ति है, केवल हरिदास ठाकुर ही समझते

एवे पापि सब अद्वैतेर पक्ष हैया । गदाधर-निन्दा करे, मरये पुड़िया ॥१५८॥
जे पापिष्ठ एक वैष्णवेर पक्ष हय । अन्य-वैष्णवेरे निन्दे' से-इ जाय क्षय ॥१५६॥
सेइ दुइ मद्यप वेड़ाय स्थाने स्थाने । आइल जे घाटे प्रभु करे गङ्गा स्नाने ॥१६०॥
दैव योगे सेइ खाने करिलेक थाना । बेड़ाइया बुले सर्व्व ठाञि देइ हाना ॥१६१॥
सकल-लोकेर चित्त हइल सशङ्क । किवा बड़, किवा धनी, किवा महारङ्क ॥१६२॥
निशा हैले केहो नाहि जाय गङ्गा स्नाने । जदि जाय, तवे दश-विशेर गमने ॥१६३॥
प्रभुर बाड़ीर काछे थाके निशा भागे । सर्व्व-रात्रि प्रभुर कीर्त्तन शुनि जागे ॥१६४॥
मृदङ्ग मन्दिरा बाजे कीर्त्तनेर सङ्गे । मद्येर विक्षेपे तारा शुनि नाचे रङ्गे ॥१६५॥
दूरे थाकि सब ध्वनि शुनि वारे पाय । शुनि लेइ नाचिया अधिक मद्य खाय ॥१६६॥
जखन कीर्त्तन रहे, सेह दुइ रहे । शुनिञा कीर्त्तन पुन उठिया नाचये ॥१६७॥
मद्यपाने विह्वल, किछुइ नाहि जाने । आछिल वा कोथाय, आछये कोन स्थाने ॥१६८॥
प्रभुरे देखिया बोले "निमाञि पण्डित । कराइला सम्पूर्ण मङ्गल चण्डी गीत । १६९॥
गायेन सब भाल मुञि देखिवारे चाङ । सकल आनिञा दिव, जथा जेइ पाङ ॥१७०॥
दुर्जन देखिया प्रभु दूरे दूरे जाय । आर आर पथ दिया सभेइ पलाय ॥१७१॥
एक दिन नित्यानन्द नगर भ्रमिया । निशाय आइसे दोंहे धरिलेक गिया ॥१७२॥
'केरे केरे' बलि डाके जगाइ माधाइ । नित्यानन्द बोलेन "प्रभुर बाड़ी जाइ" ॥१७३॥
मद्येर विक्षेपे बोले "किवा नाम तोर" । नित्यानन्द बोले "अवधूत नाम मोर ॥१७४॥

हैं, और तो अपनी २ मति अनुसार अनुमान लगाते हैं ॥ १५७ ॥ इस समय पापी लोग श्री अद्वैत का पक्ष लेकर श्री गदाधर की निन्दा करते हैं, जल कर मरते हैं ॥१५८॥ जो पापी एक वैष्णव का पक्ष लेकर दूसरे वैष्णव की निन्दा करता है, उसका सर्वनाश होता है ॥ १५९ ॥ वे दोनों शराबी जगह २ घूमते फिरते हैं, एक दिन वे उसी घाट पर आ पड़े जिस पर प्रभु नित्य गंगा स्नान करते हैं ॥ १६० ॥ दैवेच्छा से वहीं पर उन्होंने अपना डेरा डाल लिया । और इधर उधर सब जगह घूमने और चोट करने लगे ॥ १६१ ॥ इससे छोटे बड़े धनी-गरीब सब के चित्तों में शङ्का भय होने लगा ॥ १६२ ॥ रात होने पर कोई गंगा-स्नान को नहीं जाते हैं, जाते भी हैं तो दस बीस जने मिल कर ॥ १६३ ॥ वे दोनों रात में महाप्रभु के घर के पास ही रहते हैं और सारी रात प्रभु का कीर्त्तन सुन २ जागते रहते हैं ॥ १६४ ॥ कीर्त्तन के साथ मृदंग-मजीरा बजते हैं तो शराब के नशे में उसे सुन २ कर वे बड़े आनन्द में नाचते हैं ॥ १६५ ॥ वे दूर रह कर सब ध्वनि सुन पाते हैं । सुनते ही नाचते हैं और खूब शराब पीते हैं ॥ १६६ ॥ जिस समय कीर्त्तन बन्द हो जाता है, तो वे भी बन्द हो जाते है, और कीर्त्तन होने पर सुन कर फिर नाचने लग जाते हैं ॥ १६७ ॥ शराब पीकर मतवाले, चंचल बने हुए उन्हें कुछ पता नहीं रहता कि हम कहाँ थे और अब कहाँ हैं ॥ १६८ ॥ प्रभु को देख कर कहते हैं "निमाइ पण्डित ! मंगल चण्डी का गीत पूरा करा कर आये ? ॥ १६९ ॥ तुम्हारा गाना तो अच्छा होता है, हम भी देखना चाहते हैं । जहाँ से जो कुछ मिलेगा, वह सब तुमको लाकर देंगे (क्यों दिखाओगे न ?) ॥ १७० ॥ दुर्जन समझ कर प्रभु दूर २ रहते हैं । और लोग सब दूसरे रास्ते से भाग निकलते हैं ॥ १७१ ॥ एक दिन नित्यानन्द जी नगर में घूम कर रात के समय आ रहे थे कि दोनों ने जाकर उन्हें घेर लिया ॥ १७२ ॥ जगाइ-मधाइ चिल्लाते हैं-"कौन है रे कौन है ? नित्यानन्द जी कहते हैं-"प्रभु के घर जा रहा हूँ" ॥ १७३ ॥ शराब में चूर वे पूछते हैं "तेरा नाम क्या है" ? नित्यानन्द जी कहते है-"अवधूत है नाम

बाल्य भावे महा-मत्त नित्यानन्द-राय । मद्यपेर सङ्गे कथा कहेन लीलाय ॥१७५॥
'उद्धारिब दुइ जन' हेन आछे मने । अत एव निशा भागे आइला से-स्थाने ॥१७६॥
'अवधूत' नाम शुनि माधाइ कुपिया । मारिल प्रभुर शिरे मुटुकी तुलिया ॥१७७॥
फूटिल मुटुकी शिरे, रक्त पड़े धारे । नित्यानन्द महाप्रभु 'गोविन्द' स्मङरे ॥१७८॥
दया हैल जगाइर रक्त देखि माथे । आर बार मारिते-धरिल दुइ-हाथे ॥१७९॥
"केने हेन करिले निर्दय तुमि दृढ़ । देशान्तरी मारिया कि हैवा तुमि बड़ ॥१८०॥
एड़ एड़-अवधूत ना मारिह आर । संन्यासी मारिया कोन् लाभ वा तोमार" ॥१८१॥
आथे व्यथे लोक गिया प्रभुरे कहिला । साङ्गो पाङ्गे ततक्षणे ठाकुर आइला ॥१८२॥
नित्यानन्द-अङ्गे सब रक्त पड़े धारे । हासे' नित्यानन्द सेइ-दुइर भितरे ॥१८३॥
रक्त देखि क्रोधे प्रभु बाह्य नाहि माने । "चक्र ! चक्र ! चक्र !" प्रभु डाके घने घने ॥१८४॥
आथे व्यथे चक्र आसि उपसन्न हैल । जगाइ माधाइ ताहा नयने देखिल ॥१८५॥
प्रमाद गणिला सब-भागवत गण । आथे व्यथे नित्यानन्द करे निवेदन ॥१८६॥
"माधाइ मारिते प्रभु ! राखिल जागाइ । दैवे से पडिल रक्त, दुःख नाहि पाइ ॥१८७॥
मोरे भिक्षा देह' प्रभु ! ए दुइ शरीर । किछु दुःख नाहि मोर, तुमि हओ स्थिर ॥१८८॥
"जगाइ राखिल" हेन वचन शुनिया । जगाइरे आलिङ्गन कैला सुखी हैया ॥१८९॥
जगाइरे बोले "कृष्ण कृपा करु तोरे । नित्यानन्द राखिया, किनिल तुत्रि मोरे ॥१९०॥

मेरा" ॥ १७४ ॥ बालभाव में महा मतवाले श्री नित्यानन्द राय शराबियों के साथ कौतुक वश बातें कर रहे हैं ॥ १७५ ॥ उनके मन में यही है कि "इन दोनों का उद्धार करूँगा" इसी लिए वे रात में वहाँ आए हैं ॥ १७६ ॥ "अवधूत" नाम सुनते ही मधाइ ने कुपित होकर एक मटकी का ठीकरा उठा कर दे मारा ॥१७७॥ वह ठीकरा सिर पर लग कर फूट गया और रक्त की धारा बह चली । श्री नित्यानन्द जी तो प्रभु श्री गोविन्द का स्मरण करने लगे ॥ १७८ ॥ सिर से रक्त-धार बहती देख जगाइ के मन में दया आ गई और मधाइ के दुबारा मारने के लिए उठे हुए दोनों हाथों को उसने पकड़ लिया ॥ १७९ ॥ (और वह बोला कि ) "तुमने क्यों ऐसा किया ? तुम बड़े निर्दयी हो । एक परदेशी को मार कर क्या तुम बड़े बन जाओगे ॥१८०॥ "छोड़ो २ बस करो ! अवधूत को और मत मारो । संन्यासी को मारने में तुम्हारा लाभ भी क्या ? ॥१८२ ॥ कुछ लोग हड़बड़ा कर भागे और प्रभु से जाकर सब बातें कहीं तो प्रभु सब परिवार सहित तुरंत ही वहाँ आ पहुँचे ॥ १८२ ॥ श्री नित्यानन्द के शरीर के ऊपर रक्त की धाराएँ पड़ रही हैं और वे दोनों के बीच में खड़े हँस रहे हैं ॥ १८३ ॥ रुधिर देखते ही प्रभु अत्यन्त क्रोधित होकर बाहर की सब बातें भूल गए और "चक्र ! चक्र ! चक्र" कह कर बार २ पुकारने लगे ॥ १८४ ॥ बबड़ाता हुआ चक्र आ कर उपस्थित हो गया—उसे आँखों से जगाइ-मधाइ ने देखा ॥ १८५ ॥ भक्त लोग तो सब घबड़ा उठे कि अब न जाने क्या काण्ड हो जायगा और हड़बड़ा कर नित्यानन्द जी ने प्रभु से निवेदन किया कि ॥ १८६ ॥ "हे प्रभो ! मधाइ के मारने पर जगाइ ने मेरी रक्षा की है । यह रक्त तो अकस्मात् निकल आया पर इससे मैं कोई दुःख नहीं पा रहा हूँ ॥ १८७ ॥ "हे प्रभो ! ये दो शरीर तो मुझे भीख दे दो ! मुझे कुछ दुःख नहीं है । तुम तो शान्त हो जाओ" ॥ १८८ ॥ "जगाइ ने बचाया" यह बात सुनते ही प्रभु ने सुखी होकर जगाइ को अपनी छाती से लगा लिया ॥ १८९ ॥ और बोले "जगाइ ! तेरे ऊपर श्री कृष्ण कृपा करें ! नित्यानन्द को बचा कर तैने मुझे खरीद लिया ॥ १९० ॥ तुम्हारे चित्त में जो भी इच्छा हो, वह तुम माँग लो । आज से तुझे प्रेम

जे अभीष्ट चित्ते देख, ताहा तुमि माग'। आजि हैते हउ तोर प्रेम भक्ति-लाभ" ॥१९१॥
जगाइरे वर शुनि वैष्णव मण्डल। जय जय-हरि-ध्वनि करिला सकल ॥१९२॥
"प्रेम भक्ति हउ" करि जखन बलिल। तखने जगाइ प्रेमे मूर्च्छित हइल ॥१९३॥
प्रभु बोले "जगाइ! उठिया देख मोरे। सत्य आमि प्रेम-भक्ति-दान दिल तोरे" ॥१९४॥
चतुर्भुज—शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधर। जगाइ देखिल सेइ प्रभु विश्वम्भर ॥१९५॥
देखिया मूर्च्छित हैया पड़िल जगाइ। वक्षे श्रीचरण दिला चैतन्य गोसाञि ॥१९६॥
पाइया चरण-धन लक्ष्मीर जीवन। धरिल जगाइ जेन अमूल्य-रतन ॥१९७॥
चरणे धरिया कान्दे सुकृति जगाइ। ए मत अपूर्व करे गौराङ्ग गोसाञि ॥१९८॥
एक-जीव, दुइ देह, जगाइ माधाइ। एक-पुण्य, एक-पाप, वैसे एक-ठाँइ ॥१९९॥
जगाइरे प्रभु जबे अनुग्रह कैल। माधाइर चित्त ततक्षणे भाल हैल ॥२००॥
आथे व्यथे नित्यानन्द-वसन एड़िया। पड़िल चरण धरि दण्डवत् हैया ॥२०१॥
"दुइ जने एक-ठाञि कैलु प्रभु! पाप। अनुग्रह केने प्रभु! हय दुइ-भाग ॥२०२॥
मोरे अनुग्रह कर,' लङ तोर नाम। आमारे उद्धार करिबारे नारे आन" ॥२०३॥
प्रभु बोले "तोर त्राण नाहि देखि मुञि। नित्यानन्द अङ्गे रक्त पाड़िलि से तुञि" ॥२०४॥
माधाइ बोलये "इहा बलिते ना पार। आपनार धर्म्म प्रभु! आपनि केने छाड़ ॥२०५॥
बाणे विन्धिलेक तोमा' जे असुर गणे। निज-पद ता' सभारे तबे दिले केने ॥२०६॥
प्रभु बोले "ताहा हैते तोर अपराध। नित्यानन्द-अङ्गे तुञि कैलि रक्त पात ॥२०७॥
मो' हइते मोर नित्यानन्द-देह बड़। तोर स्थाने एइ सत्य कहिलाङ दढ़ ॥२०८॥

---

भक्ति लाभ हो" ॥१९१॥ जगाइ के लिए ऐसा वरदान सुनकर वैष्णव-मण्डली सब "जय जय" "हरि बोल" ध्वनि करने लगी ॥ १९२ ॥ प्रभु ने जैसे ही "प्रेम भक्ति मिले" कहा वैसे ही जगाइ प्रेम में मूर्च्छित हो पड़ा ॥ १९३ ॥ प्रभु बोले—"जगाइ! उठ कर मुझे देखो। सचमुच ही मैंने तुझे प्रेम भक्ति दे दी है" ॥ १९४ ॥ जगाइ ने आँखें खोलीं तो उन्हीं प्रभु विश्वम्भर को शङ्ख, चक्र-गदा-पद्म-धारी चतुर्भुज रूप में देख पाया ॥ १९५ ॥ देखते ही जगाइ फिर मूर्च्छित हो पड़ा तब उसकी छाती पर श्री चैतन्य देव ने अपना चरण रख दिया ॥ १९६ ॥ श्री लक्ष्मी के जीवन धन स्वरूप श्री चरण को पाकर जगाइ ने उसे एक अमूल्य रत्न की भाँति अपने हृदय पर धारण कर लिया ॥ १९७ ॥ पुण्यशाली जगाइ श्री चरण को धारण कर रो रहा है-ऐसा अपूर्व कौतुक श्री गौरांग प्रभु करते हैं ॥ १९८ ॥ जगाइ-मधाइ एक आत्मा दो शरीर हैं। उनका एक-सा पुण्य और एक-सा पाप है, और वे एक ही ठौर रहते हैं ॥ १९९ ॥ जब जगाइ के ऊपर प्रभु ने कृपा की तो मधाइ का चित्त भी तत्काल स्वस्थ हो गया ॥ २०० ॥ वह घबड़ा कर नित्यानन्द जी के वस्त्र को छोड़ प्रभु के चरणों पर दण्डवत् गिर पड़ा ॥ २०१ ॥ और बोला—"प्रभो! हम दोनों ने मिल कर एक साथ सब पाप किये, फिर आप की कृपा के दो भाग क्यों हुए प्रभो? ॥ २०२ ॥ "मेरे ऊपर कृपा करो! मैं आपका नाम लूँगा। और कोई तो मेरा उद्धार नहीं कर सकेगा ॥ २०३ ॥ प्रभु बोले—"तेरा उद्धार मुझे दिखाई नहीं देता कारण कि तूने नित्यानन्द के श्रीअङ्ग का रक्त बहाया है" ॥ २०४ ॥ मधाइ बोला—"यह आप नहीं कह सकते हैं! प्रभो! आप अपने धर्म को क्यों छोड़ते हो?" ॥ २०५ ॥ "जिन असुरों ने आप को बाणों से बींध दिया था, उन सब को आपने अपनी पदवी (अथवा श्री चरण) क्यों दी?" ॥ २०६ ॥ प्रभु बोले—"उनसे तेरा अपराध विशेष है, कारण कि तूने नित्यानन्द के अङ्ग से रक्त बहाया है ॥ २०७ ॥ मेरी देह से

"सत्य जदि कहिला ठाकुर ! मोर स्थाने । बोलह निष्कृति-मुञि तरिमु के मने ॥२०९॥
सर्व-रोग नाश'–वैद्य चूड़ामणि तुमि । तुमि रोग चिकिच्छिले सुस्थ हइ आमि ॥२१०॥
ना कर' कपट प्रभु ! संसारेर नाथ । विदित हइला आर लुकाइवा का'त" ॥२११॥
प्रभु बोले "अपराध कैले तुमि वड़ । नित्यानन्द चरण धरिया तुमि पड़" ॥२१२॥
पाइया प्रभुर आज्ञा माधाइ तखन । धरिल अमूल्य धन निताइ चरण ॥२१३॥
जे चरण धरिले ना जाइ कभू नाश । रेवती जानेन जेइ चरण-प्रकाश ॥२१४॥
विश्वम्भर बोले "शुन नित्यानन्द-राय । पडिले चरणे-कृपा करिते जुयाय ॥२१५॥
तोमार अङ्गे ते जेन कैल रक्त पात । तुमि से क्षमिते पार, पड़िल तोमा' त" ॥२१६॥
नित्यानन्द बोले "प्रभु ! कि बलिव मुजि । वृक्ष द्वारे कृपा कर' सेह शक्ति तुञि ॥२१७॥
कोन जन्मे थाके यदि आमार सुकृत । सब दिलु माधाइरे शुनह निश्चित ॥२१८॥
मोर जत अपराध-किछु दाय नाइ । माया छाड़, कृपा कर,' तोमार माधाइ" ॥२१९॥
विश्वम्भर बोले "यदि क्षमिला सकल । माधाइर कोल देह,' हउक सफल" ॥२२०॥
प्रभुर आज्ञाय कैल दृढ़-आलिङ्गन । माधाइर हैल सर्व-वन्ध-विमोचन ॥२२१॥
माधाइर देहे नित्यानन्द प्रवेशिला । सर्व-शक्ति-समन्वित माधाई हइला ॥२२२॥
हेन मते दुइ जने पाइला मोचने । दुइ जने स्तुति करे दुइर चरणे ॥२२३॥
प्रभु बोले "तोरा आर ना करिस् पाप" । जगाइ माधाइ बोले "आर नारे बाप" । २२४॥

नित्यानन्द की देह बड़ी है । यह मैं तेरे निकट सत्य कहता हूँ" ॥ २०८ ॥ मधाइ बोला–"हे प्रभो ! यदि यह आपने मुझ से सत्य कहा है तो मेरे उद्धार का उपाय बताइये, कहिये मैं कैसे करूँ" ॥ २०९ ॥ आप तो सब प्रकार के रोगों के नाश करने वाले वैद्य शिरोमणि हैं । यदि आप ही मेरी चिकित्सा कर दें तो मैं स्वस्थ हो सकता हूँ ॥ २१० ॥ "हे प्रभो ! हे संसार के नाथ ! मुझसे छल कपट न करें । आप तो प्रकट हो चुके हैं, अब कहाँ छिपेंगे ?" ॥ २११ ॥ प्रभु बोले–"तुमने अपराध तो बड़ा भारी किया है, (अतएव) श्री नित्यानन्द के चरणों में पडो" ॥ २१२ ॥ प्रभु की आज्ञा होने पर मधाइ ने श्री नित्यानन्द के श्री चरण रूपी अमूल्य धन को पकड़ लिया ॥ २१३ ॥ जिन चरणों के पकड़ने से जीव कभी नाश को प्राप्त नहीं होता है, जिन चरणों के स्वरूप को श्री रेवती जी जानती हैं ॥२१४॥ प्रभु विश्वम्भर बोले–"नित्यानन्द राय जी ! सुनो ! चरणों में पड़ने से अब यह कृपा करने योग्य है ॥ २१५ ॥ "तुम्हारे अङ्ग से जो इसने रक्त बहाया है, इसे तुम ही क्षमा कर सकते हो-इसीलिये यह तुम्हारे चरणों पर पड़ा हुआ है" ॥ २१६ ॥ नित्यानन्द जी बोले-"प्रभो ! मैं क्या कहूँ ? वृक्ष के द्वारा भी जो आप कृपा करते हो, वह भी आप की ही शक्ति है ॥ २१७ ॥ सुनिये यदि किसी जन्म के मेरे जो कुछ भी पुण्य हों, वह सब, मैं निश्चय पूर्वक कहता, मैंने मधाइ को दिया ॥ २१८ ॥ "मेरे प्रति इसका जो अपराध है, उसका इस पर अब कुछ भार नहीं है । (अतएव अब तो) आप माया को छोड, कृपा करें-यह मधाइ तुम्हारा है" ॥ २१९ ॥ विश्वम्भर प्रभु बोले–"यदि सब क्षमा किया, तो इसे हृदय से लगावें-यह सफल होवे" ॥२२०॥ प्रभु की आज्ञा से नित्यानन्द जी ने दृढ़ आलिंगन किया-(जिससे) मधाइ सब बन्धनों से मुक्त हो गया ॥ २२१ ॥ (आलिंगन के द्वारा) मधाइ की देह में नित्यानन्द (की शक्ति) का प्रवेश हो गया और मधाइ सर्व शक्तिमान् बन गया ॥ २२२ ॥ इस प्रकार दोनों जने का उद्धार हुआ तब दोनों जने दोनों प्रभु के चरणों में स्तुति करने लगे ॥ २२३ ॥ प्रभु बोले–"तुम दोनों अब फिर पाप नहीं करना" । जगाइ–मधाइ बोले "नहीं बाप ! अब नहीं" ॥ २२४ ॥ प्रभु बोले–"सुनो ! तुम दोनों जने सुनो ।

प्रभु बोले "शुन शुन तुमि दुइ-जन। सत्य एइ तोरे आमि बलिल बचन ॥२२५॥
कोटि कोटि जन्मे जत आछे पाप तोर। आर यदि ना करिसृ, सब दाय मोर ॥२२६॥
तो-सभार मुखे मुञि करिब आहार। तोर देहे हइबेक मोर अवतार" ॥२२७॥
प्रभुर शुनिञा वाक्य जगाइ माधाइ। आनन्दे मूर्च्छित हइ पड़िला तथाइ ॥२२८॥
मोह गेल, दुइ विप्र आनन्द सागरे। बुझि आज्ञा करिलेन प्रभु विश्वम्भरे ॥२२९॥
"दुइ जने तुलि लह आमार बाड़ी ते। कीर्त्तन करि व दुइ जनेर सहिते ॥२३०॥
ब्रह्मार दुर्लभ आजि ए-दोंहारे दिव। ए दुइरे जगतेर उत्तम करिव ॥२३१॥
ए-दुइ-परशे जे करिल गङ्गा स्नान। ए-दुइरे वलिवेक गङ्गार समान ॥२३२॥
नित्यानन्द-प्रतिज्ञा अन्यथा नाहि हय। नित्यानन्द-इच्छा मुञि जानिह निश्चय" ॥२३३॥
जगाइ माधाइ सब वैष्णवे धरिया। प्रभुर बाड़ीर अभ्यन्तरे गेला लैया ॥२३४॥
आप्त गण साम्भाइला प्रभुर सहिते। पड़िल कपाट, कारो शक्ति नाहि जाइते ॥२३५॥
वसिला आसिया महाप्रभु विश्वम्भर। दुइ-पाशे शोभे नित्यानन्द-गदाधर ॥२३६॥
सम्मुखे अद्वैत वैसे महा पात्र-राज। चारि दिगे वैसे सब वैष्णव-समाज ॥२३७॥
पुण्डरीक विद्यानिधि, प्रभु हरिदास। गरुड़ाइ, रामाइ, श्रीवास, गङ्गादास ॥२३८॥
वक्रेश्वर-पण्डित, चन्द्र शेखर-आचार्य। ए सब जानये चैतन्येर सर्व-कार्य ॥२३९॥
अनेक महान्त आर चैतन्य वेढ़िया। आनन्दे वसिला जगाइ माधाइ लइया ॥२४०॥
लोम हर्ष, महा अश्रु, कम्प सर्व-गा'य। जगाइ माधाइ दुइ गड़ा गड़ि जाय ॥२४१॥
कार् शक्ति बुझिते चैतन्य-अभिमत। दुइ दस्यु करे-दुइ महा भागवत ॥२४२॥

---

मैं तुमसे यह सत्य वचन कहता हूँ कि ॥ २२५ ॥ जो यदि तुम फिर पाप न करो तो तुम्हारे करोड़ों जन्मों के जितने पाप हैं उन सब का भार मेरे ऊपर रहा ॥ २२६ ॥ तुम्हारे मुख से मैं भोजन करूँगा और तुम्हारी देह में मैं प्रकट हूँगा" ॥ २२७ ॥ प्रभु के वचनों को सुन कर जगाइ–मधाइ आनन्द में मूच्छित होकर वहीं गिर पड़े ॥ २२८ ॥ उनका मोह दूर हुआ, वे आनन्द के सागर में डूब गए उनकी दशा को समझ कर प्रभु विश्वम्भर ने यह आज्ञा की कि ॥ २२९ ॥ "दोनों को उठा कर हमारे घर ले चलो। मैं इन दोनों के साथ कीर्त्तन करूँगा ॥ २३० ॥ और जो ब्रह्मा को दुर्लभ है वह (प्रेमभक्ति) मैं आज इन दोनों को दूँगा और संसार में इनको उत्तम बनाऊँगा ॥ २३१ ॥ "जिन्होंने इन दोनों से स्पर्श होने पर गङ्गा स्नान किया है, वे हो अब इन दोनों को गङ्गा के समान कहेंगे ॥२३२॥ नित्यानन्द जी की प्रतिज्ञा अन्यथा नहीं होगी। नित्यानन्द की इच्छा मैं अच्छी तरह से जानता हूँ" ॥ २३३ ॥ तब सब वैष्णव जगाइ मधाइ को पकड़ कर प्रभु के घर के भीतर ले गए ॥ २३४ ॥ जब प्रभु के साथ निज जन सब भीतर प्रवेश कर चुके तो किवाड़ बन्द कर दिये गए–फिर किसको शक्ति जो भीतर जा सके ॥ २३५ ॥ महा प्रभु विश्वम्भर आकर बैठ गए। दोनों बगल में नित्यानन्द और गदाधर शोभा दे रहे हैं ॥ २३६ ॥ सामने महापात्र राज श्री अद्वैत बैठे हुए हैं और चारों ओर सब वैष्णव समाज हैं ॥ २३७ ॥ (यथा) पुण्डरीक विद्यानिधि हरिदास ठाकुर, गरुडाइ, रामाइ, श्रीवास, गङ्गादास, वक्रेश्वर पण्डित, चन्द्रशेखर आचार्य–ये सब भक्त वृन्द श्री चैतन्य देव के सब कार्य को जानते हैं ॥ २३८ ॥ २३९ ॥ और भी अनेक महानुभाव जगाइ मधाइ को ले श्री चैतन्य प्रभु को घेर कर आनन्द से बैठ गऐ ॥ २४० ॥ जगाइ मधाइ के शरीर में रोमाञ्च, पुलक अश्रु, कम्प इत्यादि विकार प्रकट हो रहे हैं और वे दोनों पृथ्वी पर लोट पोट हो रहे हैं ॥ २४१ ॥ श्री चैतन्य देव के मनोभाव को समझने की

आमि-दुइ पातकीर देखिया उद्धार। अल्पत्व पाइल पूर्व-महिमा तोमार ।।२५९।।
अजामिल-उद्धारेर जतेक महत्त्व। आमार उद्धारे सेहो पाइल अल्पत्त्व ।।२६०।।
सत्य कहि, आमि किछु स्तुति नाहि करि। उचितेइ अजामिल मुक्ति-अधिकारी ।।२६१।।
कोटि ब्रह्म बधि' जदि तोर नाम लये। 'सद्य मोक्ष तार' वेदे एइ सत्य कहे ।।२६२।।
हेन नाम अजामिल कैल उच्चारण। तेञि चित्र नहे अजामिलेर मोचन ।।२६३।।
वेद सत्य पालिते तोमार अवतार। मिथ्या हय वेद तवे ना कैले उद्धार ।।२६४।।
आमि द्रोह कैलुँ प्रिय-शरीरे तोमार। तथापिह आमि-दुइ करिले उद्धार ।।२६५।।
एवे बुझि देख प्रभु ! आपनार मने। कत कोटि अन्तर आमरा दुइ जने ।।२६६।।
'नारायण' नाम शुनि अजामिल-मुखे। चारि महाजन आइला सेइ जन देखे ।।२६७।।
आमि देखिलाङ तोमा' रक्त पाड़ि अङ्गे। साङ्गोपाङ्ग,अस्त्र, पारिषद-सब सङ्गे ।।२६८।।
गोप्य करि राखि छिला ए सब महिमा। एवे व्यक्त हैल प्रभु ! महिमार सीमा ।।२६९।।
एवे से हइल वेद महा बलवन्त। एवे से बड़ाञि करि गाइब अनन्त ।।२७०।।
एवे से विदित हैल गोप्य-गुण ग्राम। 'निलक्ष्य-उद्धार' प्रभु ! इहार से नाम ।।२७१।।
जदि हेन बोल कंस-आदि दैत्य गण। ताहाराओ द्रोह करि पाइल मोचन ।।२७२।।
कत लक्ष्य आछे तथि देख निज-मने। निरन्तर देखिलेक से नरेन्द्र गणे ।।२७३।।
तोमा' सने जुझिलेक क्षत्रियेर धर्मे। भये तोमा' निरन्तर चिन्तिलेक मर्मे ।।२७४।।

संसार घोषित करता है ।। २५८ ।। वह आप की पूर्व महिमा भी आज हम दोनों पापियों के उद्धार को देख कर अल्पता को प्राप्त हो गई है । २५९ ।। अजामिल उद्धार की जो भी महिमा है हमारे उद्धार से वह भी अल्प हो गई है ।।२६०।। हम यह सत्य कह रहे हैं स्तुति मात्र नहीं कर रहे हैं । (देखिए) अजामिल को मुक्ति का अधिकारी होना तो उचित ही है ।। २६१ ।। (कारण कि) कोटि ब्रह्म हत्या कारी भी यदि आपका नाम लेवे तो उसकी तत्काल मुक्ति हो जाती है—यह वेद सत्य कहते हैं ।। २६२ ।। ऐसा नाम अजामिल ने उच्चारण किया था, इसलिए अजामिल के मोक्ष में कोइ आश्चर्य नहीं ।।२६३।। वेद की सत्य वाणी की रक्षा के निमित्त आप अवतार लेते हैं अतएव (नाम लेने पर) जो आप उद्धार न करें तो वेद—वाणी मिथ्या हो जाय ।।२६४।। ( परन्तु ) हमने तो आपके प्रिय शरीर के प्रति द्रोह किया तथापि आप ने हम दोनों का उद्धार ही किया ।। २६५ ।। अब प्रभो ! आप अपने मन में विचार कर देखिए कि हम दोनों में ( हम में और अजामिल में ) कितना करोड़ अन्तर है । २६६।। अजामिल के मुख से 'नारायण' नाम सुन कर चार महापुरुष आए जिनको केवल उसी ने ही देखा ।। २६७ ।। जब मैंने आपके शरीर से रक्त बहाया तो मैंने आप का अङ्ग, उपांग, अस्त्र एवं पार्षद आदि सब के साथ दर्शन किया ।। २६८ ।। हे प्रभो ! आप अपनी यह सब महिमा छिपाए हुए थे-परन्तु अब आपकी महिमा की सीमा प्रकट हो गई है ।। २६९ ।। अतएव अब ही वेद भी महा बलवान बने और अब अनन्त देव भी अधिक प्रशंसा के सहित आप का गुण गान करेंगे ।। ।। २७० ।। अब ही आप के गुप्त गुण गण प्रकट हो गये । हे प्रभो "अहैतुकि उद्धार" इसी का नाम है ।। २७१ ।। जो यदि आप कहें कि कंस आदि दैत्यगण भी तो द्रोह करके मुक्ति हुए ।। २७२ ।। तो आप अपने मनमें विचार करके तो देखें कि वहाँ कितने निमित्त हैं । (प्रथम तो) उन (दुष्ट) राजाओं ने निरन्तर आप का दर्शन किया ।।२७३।। (दूसरा) उन्होंने क्षत्रिय का धर्म समझ कर आपसे युद्ध किया । (तीसरा) वे भय के कारण आपका ही सदा मन में चिन्तन किया करते थे । २७४ ।। तथापि वे द्रोह के पाप से नहीं बच सके और वंश के सहित सब राजा

तथापि नारिल ग्राह- पाश एड़ाइते। पड़िल नरेन्द्र सब वंशेर सहिते ॥२७५॥
तोमारे देखिते निज शरीर छाड़िल। तबे कोन् महाजन तारे परशिल ॥२७६॥
आमारे परशे सबे भागवत गणे। छाया छुञि जेइ जन कैला गङ्गा स्नाने ॥२७७॥
सर्व मते प्रभु ! तोर ए महिमा बड़। काहारे भाण्डिबे–सभे जानिलेक दृढ़ ॥२७८॥
महा भक्त गजराज करिला स्तवन। एकान्त शरण देखि करिला मोचन ॥२७९॥
दैवे से उपमा नहे असुरा पूतना। अघ बक-आदि जत, केहो नहे सीमा ॥२८०॥
छाड़िया से देह तारा गेल दिव्य-गति। वेद बिने ताहा देखे काहार शकति ॥२८१॥
जे करिला एइ दुइ पातकि-शरीरे। साक्षाते देखिल इहा सकल-संसारे ॥२८२॥
जतेक करिला तुमि पातकि-उद्धार। कारो कोनो रूपे लक्ष्य आछे सभाकार ॥२८३॥
निर्लक्ष्ये तारिला ब्रह्म दैत्य दुइ जन। तोमार कारुण्य सबे इहार कारण" ॥२८४॥
बलिया बलिया कान्दे जगाइ माधाइ। ए मत अपूर्व करे चैतन्य गोसाञि ॥२८५॥
जतेक वैष्णव गण अपूर्व देखिया। जोड़ हाथे स्तुति करे सभे दाण्डाइया ॥२८६॥
"जे स्तुति करिल प्रभु ! ए दुइ मद्यपे। तोर कृपा बिने इहा जाने कार बापे ॥२८७॥
तोमार अचिन्त्य शक्ति के बुझिते पारे। जखन जे रूपे कृपा करह जाहारे" ॥२८८॥
प्रभु बोले "ए-दुइ मद्यप नहे आर। आजि हैते एइ दुइ सेवक आमार ॥२८९॥
सभे मिलि अनुग्रह कर ए-दुइरे। जन्मे जन्मे आर जेन आमा ना पासरे ॥२९०॥

---

लोग नाश को प्राप्त हुये ॥ २७५ ॥ उन्होंने आपके देखने में अपना शरीर छोड़ा, पर उस समय, कहिये, किन महापुरुषों ने उनको स्पर्श किया था ॥ २७६ ॥ और इधर हम ऐसे कि हमारी छाया को छूकर के भी लोग गङ्गा स्नान किया करते–ऐसे हमको समस्त भागवत–मंडली ने स्पर्श किया ॥ २७७ ॥ (अतएव) हे प्रभो ! सब प्रकार से आपकी यह महिमा बड़ी है–अब आप छल करके अपने को छिपा नहीं सकते, सब आपको निश्चय पूर्वक जान गये हैं ॥ २७८ ॥ और गजराज तो महा भक्त था, उसने तो आपकी स्तुति की थी, आपकी अनन्य शरण ली थी–तब आपने उसका उद्धार किया था ॥ २७९ ॥ और राक्षसी पूतना, अघासुर, बकासुर आदि किसी के भी भाग्य में यह उपमा (तुलना) नहीं है, ये कोई भी उद्धार (अथवा कृपा) की सीमा नहीं हैं ॥ २८० ॥ उन्होंने तो देह छोड़ करके ही दिव्य गति पाई, और उस गति को भी कोई देख सके, ऐसी शक्ति वेद के अतिरिक्त और किसकी है ॥ २८१ ॥ और इधर आपने इन दो पापी शरीरों के साथ जो कुछ किया (अर्थात् कृपा और दिव्य गति दान) उसे सब संसार ने प्रत्यक्ष देख पाया ॥ २८२ ॥ आपने जितने भी पापियों का उद्धार किया, उन सब का कहीं न कहीं, कोई न कोई हेतु है ही ॥ २८३ ॥ पर हम दो ब्रह्म–दैत्यों का तो आपने बिना कोई हेतु के उद्धार किया है इसका कारण केवल आपकी करुणा ही है ॥ २८४ ॥ इस प्रकार जगाइ-मधाइ कहते जाते और रोते जाते हैं ! श्री चैतन्य प्रभु ऐसा अपूर्व काण्ड करते हैं ॥२८५॥ सब वैष्णव लोग इस अपूर्व घटना को देख कर खड़े हो, हाथ जोड़ कर स्तुति करते हैं ॥ २८६ ॥ "हे प्रभो ! इन दोनों मद्यपों ने आप की जो स्तुति की, वह आप की कृपा बिना किसी का बाप भी क्या जान सकता, कर सकता है ॥ २८७ ॥ आप जिस शक्ति के द्वारा जिस समय, जिसके प्रति, जिस रूप में जो कृपा करते हैं, वह शक्ति अचिन्त्य है, उसे कौन समझ सकता है ? ॥ २८८ ॥ प्रभु बोले–"अब ये दो मद्यप नहीं रहे। आज से ये दोनों मेरे सेवक हैं ॥ २८९ ॥ तुम सब मिल कर इन दोनों पर कृपा करो कि जिससे ये जन्म जन्मान्तर तक मुझे न भूलें ॥ २९० ॥ ' इनका जिस २ के प्रति जो जो अपराध है, वह सब क्षमा करके इन दोनों पर

जे जे रूपे जार ठाञि आछे: अपराध। क्षमिया ए दुइ प्रति करह प्रसाद" ॥२९१॥
शुनिञा प्रभुर वाक्य जगाइ-माधाइ। सभार चरण धरि पड़िला तथाइ ॥२९२॥
सर्व-महा भागवत कैला आशीर्वाद। जगाइ-माधाइ हैला निर-अपराध ॥२९३॥
प्रभु बोले "उठ उठ जगाइ-माधाइ। हइला आमार दास, आर चिन्ता नाइ ॥२९४॥
तुमि-दुइ जत किछु करिला स्तवन। परम सुसत्य, किछु ना हय खण्डन ॥२९५॥
स शरीरे कभु कारो हेन नाहि हय। नित्यानन्द-प्रसादे से जानिह निश्चय ॥२९६॥
तो' सभार जत पाप मुञि निल सब। साक्षाते देखह भाइ! एइ अनुभव" ॥२९७॥
दुइ जनार शरीरे पातक नाहि आर। इहा बुझाइते हैला कालिया आकार ॥२९८॥
प्रभु बोले "तोमरा आमारे देख केन"। अद्वैत बोलये "श्रीगोकुल चन्द्र जेन" ॥२९९॥
अद्वैते-प्रतिभा शुनि हासे' विश्वम्भर। 'हरि' बलि ध्वनि करे जत अनुचर ॥३००॥
प्रभु बोले "काला देख दुइर पातके। कीर्त्तन करह सब जाउक निन्दके ॥३०१॥

निन्दका: शूकराश्चैव सफलं निर्मितं हरे:।
शुध्यन्ति शूकरा ग्रामं साधून शुध्यन्ति निन्दका: ॥३०२॥

शुनिञा प्रभुर वाक्य: सभार उल्लास। महानन्दे हइल कीर्त्तन-परकाश ॥३०३॥
नाचे प्रभु विश्वम्भर नित्यानन्द-सङ्गे। बेढ़िया वैष्णव-सब यश गाय रङ्गे ॥३०४॥
नाचये अद्वैत-जार लागि अवतार। जाहार कारणे हैल जगत्-उद्धार ॥३०५॥
कीर्त्तन करये सभे दिया करताली। सभेइ करेन नृत्य हइ :कुतूहली ॥३०६॥

---

कृपा करो ॥ २९१ ॥ प्रभु के वचन सुनकर जगाइ-मधाइ वहीं पर सब के चरणों को पकड़ कर पड़ गये ॥ २९२ ॥ तब सब महा भागवतों ने उनको आशीर्वाद दिया और जगाइ-मधाइ निरपराध हो गए ॥२९३॥ प्रभु बोले—"जगाइ! उठो! मधाइ! उठो! तुम मेरे दास हो गये अब कोई चिन्ता की बात नहीं ॥ २९४ ॥ "तुम दोनों ने जो कुछ स्तुति की, वह सब परम सुन्दर सत्य है, उसका कुछ भी खण्डन योग्य नहीं है ॥२९५॥ शरीर को नष्ट किये बिना इसी शरीर में ऐसा कभी नहीं होता है। तुम्हारे साथ जो ऐसा हुआ, यह श्री नित्यानन्द की कृपा का फल है यह निश्चय जान लो ॥ २९६ ॥ "तुम्हारे जितने भी पाप हैं, वे सब मैंने ले लिए। भाइयो! इसे प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देख लो" ॥ २९७ ॥ (इतना कह कर) यह बतला देने के लिए कि उन दोनों के शरीर में अब पाप और नहीं रहा प्रभु का गौर वर्ण श्याम हो गया ॥ २९८ ॥ प्रभु बोले—"तुम लोग मुझे कैसा देखते हो ?" श्री अद्वैत बोले—"श्री गोकुल चन्द्र जैसा" ॥२९९॥ श्री अद्वैत का उत्तर सुन कर प्रभु विश्वम्भर हँसे और सब भक्त लोगों ने हरि बोल ध्वनि किया ॥ ३०० ॥ प्रभु बोले "इन दोनों के पाप के कारण तुम मुझको काला देखते हो। ( अतएव ) सब मिलकर कीर्त्तन करो जिससे ये पाप सब निन्दक में चले जायँ ॥ ३०१ ॥ श्लोकार्थ:—भगवान् ने निन्दक और शूकरों को सफल बनाया है। ( कारण कि ) शूकर तो ग्राम की शुद्धि करते हैं और निन्दक लोग साधुओं की शुद्धि करते हैं ॥ ३०२ ॥ प्रभु के वचन सुनकर सब को बड़ा उल्लास हुआ और महा आनन्द के साथ कीर्त्तन प्रारम्भ हुआ ॥ ३०३ ॥ प्रभु विश्वम्भर श्री नित्यानन्द के साथ नाचते हैं और भक्त लोग दोनों को घेर कर आनन्द में यश गाते हैं ॥ ३०४ ॥ श्री अद्वैत भी नाचते हैं, जिनके लिए यह अवतार हुआ है और जिनके कारण जगत् का उद्धार हुआ है ॥ ३०५ ॥ सब लोग ताली दे दे कर कीर्त्तन कर रहे हैं और मस्त होकर नाच रहे हैं ॥ ३०६ ॥ सब महा आनन्द में विभोर हैं, प्रभु के प्रति किसी का भय नहीं है। नृत्य में प्रभु के साथ लाखों बार धक्कम-धक्का हो

प्रभु प्रति महानन्दे कारो नाहि भय। प्रभु-सङ्ग कत लक्ष ठेला ठेलि हय ॥३०७॥
बधू-सङ्गे देखे आइ घरेर भितरे। बसिया आसये आइ आनन्द सागरे ॥३०८॥
सभेइ परमानन्द देखिया प्रकाश। काहारो ना घुचे कृष्ण बेशेर उल्लास ॥३०९॥
जार अङ्ग परशिते रमा पाय भय। से प्रभुर अङ्ग-सङ्गे मद्यप नाचय ॥३१०॥
मद्यपेरे उद्धारिला चैतन्य गोसाञि। वैष्णव निन्दके कुम्भीपाके दिला ठाञि ॥३११॥
निन्दाय ना बाढ़े धर्म, सबे पाप-लाभ। एतेके ना करे निन्दा कोनो महा भाग ॥३१२॥
दुइ दस्यु दुइ महा भागवत करि। गण-सहे नाचे प्रभु गौराङ्ग श्रीहरि ॥३१३॥
नृत्या वेशे बसिला ठाकुर विश्वम्भर। वसिला चौदिगे वेढ़ि वैष्णव मण्डल ॥३१४॥
सब अङ्गे धूला चारि-अङ्गुलि-प्रमाण। तथापि सभार-अङ्ग निर्मल-गेयान ॥३१५॥
पूर्ववत् हैला प्रभु गौराङ्ग सुन्दर। हासिया सभारे बोले प्रभु विश्वम्भर ॥३१६॥
"ए-दुइरे पापी-हेन ना करिह मने। ए-दुइर पाप मुञि लइलु आपने। ३१७॥
सर्व देहे मुञि करों बोलों चालों खाङ। तबे देह-पात जबे मुञि चलि जाङ ॥३१८॥
जेइ देहे अल्प-दुःखे जीव डाक छाड़े। मुञि विने सेइ देह पुड़िले ना नड़े ॥३१९॥
तबे जे जीवेर दुःख-करे अहङ्कार। 'मुञि करों बोलों!' बलि पाय महा मार ॥३२०॥
एतेके जतेक कैल एइ-दुइ-जने। करिलाङ आमि, घुचाइ लाङ आपने ॥३२१॥
इहा जानि ए-दुइरे सकल वैष्णव। देखिवा अभेद दृष्ट्ये-जेन तुमि सब ॥३२२॥
शुन एइ आज्ञा मोर-जे हओ आमार। ए-दुइरे श्रद्धा करि जे दिब आहार ॥३२३॥

---

जाती है ॥ ३०७॥ घर भीतर से शची माता बधू के साथ, यह आनन्द देख रही हैं और बैठी २ ही आनन्द सागर में बही जा रही हैं ॥ ३०८ ॥ उस समय वहाँ परमानन्द छा गया, उसमें सब ही निमग्न हो गये। (अतएव) किसी का भी कृष्ण-कीर्त्तन के आवेश का उल्लास दूर नहीं हो रहा है ॥ ३०९ ॥ जिनके अंग को स्पर्श करने में लक्ष्मी जी भी भय खाती है, उन प्रभु के अंग-संग में मद्यप नाच रहे हैं ॥ ३१० ॥ श्री चैतन्य प्रभु ने मद्यपों का तो उद्धार कर दिया परन्तु वैष्णव-निन्दकों को कुम्भीपाक नरक में स्थान दिया ॥ ३११ ॥ निन्दा से धर्म नहीं बढ़ता है, केवल पाप ही पल्ले पड़ता है। इसलिये कोई भी महापुरुष निन्दा नहीं करते हैं ॥३१२॥ दोनों डाकुओं को महा भागवत बना करके प्रभु गौरांग श्रीहरि परिकर सहित नाच रहे हैं ॥३१३॥ नृत्य के आवेश में प्रभु विश्वम्भर बैठ पड़े और चारों ओर से घेर कर वैष्णव-मण्डली बैठ गई ॥ ३१४ ॥ सब के शरीरों पर चार २ अंगुल धूल चढ़ी हुई है, फिर भी सब अपने २ शरीर को निर्मल समझ रहे हैं ॥३१५॥ प्रभु गौरांग सुन्दर पूर्ववत् हुये और (प्रभु विश्वम्भर) हँसते हुए सब से बोले ॥ ३१६ ॥ "इन दोनों को "ये पापी हैं" ऐसा कोई न सोचे। इन दोनों का पाप स्वयं मैंने ले लिया है ॥३१७॥ सब की देह में मैं ही करता हूँ, बोलता हूँ, चलता हूँ, खाता हूँ, (इसीलिये) जब मैं चला जाता हूँ तो देह गिर पड़ता है ॥ ३१८ ॥ "जिस देह में जरा सा दुःख होते ही जीव चिल्लाने लगता है, वही देह, मेरे बिना जलाई जाने पर भी हिलती तक नहीं है ॥ ३१९ ॥ तो फिर जीव के दुःख में हेतु है-अहंकार। "मैं करता हूँ, मैं बोलता हूँ" ऐसा अहंकार करके बोलने के कारण ही उस पर मार पड़ा करती है ॥३२०॥ "इसलिए इन दोनों ने जो कुछ किया वह मैंने ही किया और मैंने ही उसे मिटाया भी" ॥ ३२१ ॥ ऐसा समझ कर इन दोनों को तुम सब वैष्णव लोग अभेद दृष्टि से देखना-अपनी ही भाँति समझना ॥ ३२२ ॥ "( फिर भी कहता हूँ कि ) जो मेरे हों, वे मेरी इस आज्ञा को सुनें। इन दोनों को जो श्रद्धा पूर्वक भोजन देंगे ॥३२३॥ तो अनन्त ब्रह्माण्डों में जितना

अनन्त ब्रह्माण्ड-माझे जत मधु वैसे। जे हय कृष्णेर मुखे दिले प्रेम रसे ॥३२४॥
ए-दुइरे वट-मात्रो दिब जेइ जन। तार से कृष्णेर मुखे मधु-समर्पण ॥३२५॥
ए-दुइ-जनेरे जे करिब परिहास। ए-दुइर अपराधे तार सर्व नाश" ॥३२६॥
शुनिञा वैष्णव गण कान्दे महा प्रेमे। जगाइ-माधाइ-प्रति करे परणामे ॥३२७॥
प्रभु बोले "शुन सब भागवत गण। चल सभे जाइ भागीरथीर चरण ॥३२८॥
सर्व-गण-सहित ठाकुर विश्वम्भर। पड़िला जाह्नवी जले बन माला धर ॥३२९॥
कीर्त्तन आनन्दे जत भागवत गण। शिशु-प्राय चञ्चल-चरित्र सर्व क्षण ॥३३०॥
महा भव्य वृद्ध सब, सेहो शिशु मति। एइ मत हय विष्णु भक्तिर शकति ॥३३१॥
गङ्गा स्नान-महोत्सव कीर्त्तनेर शेषे। प्रभु-भृत्य-बुद्धि गेल आनन्द आवेशे ॥३३२॥
जल देइ प्रभु-सर्व-वैष्णवेर गाय। केहो नाहि पारे, सभे हासिया पलाय ॥३३३॥
जल युद्ध करे प्रभु जार जार सङ्गे। कथो क्षण युद्ध करि सभे देइ भङ्गे ॥३३४॥
क्षणे केलि अद्वैत-गौराङ्ग-नित्यानन्दे। क्षणे केलि हरिदास-श्रीवास-मुकुन्दे ॥३३५॥
श्रीगर्भ, श्रीसदा शिव, मुरारि, श्रीमान्, । पुरुषोत्तम सञ्जय, बुद्धि मन्त खान ॥३३६॥
विद्यानिधि, गङ्गादास, जगदीश नाम। गोपी नाथ, गदाधर, गरुड़, श्रीराम ॥३३७॥
गोविन्द,श्रीधर,कृष्णानन्द,काशीश्वर। जगदानन्द,गोविन्दानन्द, श्रीशुक्लाम्बर ॥३३८॥
अनन्त चैतन्य भृत्य, कत निब नाम। वेद व्यास हैते व्यक्त हइबे पुराण ॥३३९॥
अन्योन्ये सर्व जन जल केलि करे। परानन्द रसे केहो जिने, केहो हारे ॥३४०॥

भी मधु है उसे प्रेम पूर्वक श्रीकृष्ण के मुख में देने से जो फल होता है ॥ ३२४ ॥ "वही फल इन दोनों को बट के बीज के बराबर (अत्यल्प) अन्न देने से होगा—वह मानो तो श्रीकृष्ण के मुख में अनन्त ब्रह्माण्डों का मधु समर्पण करना है ॥ ३२५ ॥ "और इन दोनों की जो हँसी करेगा, वह इन दोनों का अपराधी बनकर सर्वनाश को प्राप्त होगा" ॥ ३२६ ॥ यह सुन कर वैष्णव भक्त वृन्द महा प्रेम में आकर रोने लगे और जगाइ-मधाइ को प्रणाम करने लगे ॥ ३२७ ॥ प्रभु बोले—"भक्तजनो ! सब सुनो ! चलो अब श्री गङ्गाजी को चलें" ॥ ३२८ ॥ तब सब परिकर सहित वनमाला धारी प्रभु विश्वम्भर वहाँ से चल कर गङ्गाजल में उतर पड़े ॥३२९॥ कीर्त्तन के आनन्द में सब भक्त लोग सब समय बालक की भाँति चंचल-चरित करते रहते हैं ॥३३०॥ बड़े २ सब बूढ़े लोगों में भी बाल स्वभाव आ जाता है विष्णु भक्ति की शक्ति ऐसी ही होती है ॥ ३३१ ॥ कीर्त्तन की समाप्ति पर गङ्गा स्नान महोत्सव प्रारम्भ हुआ—जिसमें आनन्द के आवेश में स्वामी-सेवक बुद्धि लोप हो गई ॥ ३३२ ॥ प्रभु सब भक्तों के ऊपर जल उछालते हैं पर प्रभु के ऊपर कोई डाल नहीं पाता सब हार २ कर हँसते हुए भाग जाते हैं ॥ ३३३ ॥ प्रभु जिस जिसके साथ जल युद्ध करते हैं, उसे थोड़ी ही देर में हरा देते हैं ॥ ३३४ ॥ कभी श्री अद्वैत, श्री गौरांग और श्री नित्यानन्द में जल केलि होती है तो कभी जल केलि हरिदास, श्रीवास, मुकुन्द में होती है ॥ ३३५ ॥ श्रीगर्भ, श्री सदाशिव मुरारि, श्रीमान्, पुरुषोत्तम संजय, बुद्धिमन्त खान, ॥ ३३६ ॥ पुण्डरीक विद्यानिधि, गङ्गादास, जगदीश, गोपीनाथ, गदाधर, गरुड़ श्रीराम ॥ ३३७ ॥ गोविन्द, श्रीधर, कृष्णानन्द, काशीश्वर, जगदानन्द, गोविन्दानन्द, श्री शुक्लाम्बर ॥३३८॥ इस प्रकार कहाँ तक नाम गिनाएँ। श्री चैतन्य चन्द्र के अनन्त भृत्य हैं। वे सब वेद व्यास द्वारा पुराण में प्रकाशित होंगे ॥३३९॥ सब लोग परस्पर में जल-केलि कर रहे हैं। परानन्द रसमें मतवाले बने कोई जीतते हैं तो कोई हारते है ॥३४०॥ श्री गदाधर और श्री गौरांग मिल कर जल क्रीड़ा कर रहे हैं, और श्रीनित्या-

गदाधर-गौराङ्ग मिलिया जल केलि। नित्यानन्द-अद्वैते खेलये हइ मेलि ॥३४१॥
अद्वैत-नयने नित्यानन्द कुतूहली। निर्घात करिया जल दिला महाबली ॥३४२॥
दुइ चक्षु अद्वैत मेलिते नाहि पारे। महा क्रोधा वेशे प्रभु गाला गालि पाड़े ॥३४३॥
"नित्यानन्द मद्यप करिल चक्षु काण। कोथा हैते मद्यपेर हैल उपस्थान ॥३४४॥
श्रीनिवास पण्डितेर मूले जाति नाञि। कोथाकार अवधूत आनि दिल ठाञि ॥३४५॥
शचीर नन्दन चोरा एत कर्म्म करे। निरवधि अवधूत-संहति विहरे" ॥३४६॥
नित्यानन्द बोले "मुखे नाहि वास' लाज। हारिले आपने,आर कन्दले कि काज" ॥३४७॥
गौरचन्द्र बोले "एक-बारे नाहिं जान। तिन-बार हइले से हारि-जिति-मानि" ॥३४८॥
आर बार जल युद्ध अद्वैत-निताइ। कौतुक लागिया एक-देह दुइ ठाञि ॥३४९॥
दुइ जने जल युद्ध—केहो नाहि पारे। एक-बार जिने केहो आर-वार हारे ॥३५०॥
आर-वार नित्यानन्द सम्भ्रम पाइया। दिलेन नयने जल निर्घात्त करिया ॥३५१॥
अद्वैत पाइया दुःख बोले 'माता लिया। संन्यासी ना हय कभु ए ब्रह्म वधिया ॥३५२॥
पश्चिमार घरे घरे खाइयाछे भात। कुल जन्म जाति केहो ना जाने कोथात ॥३५३॥
माता पिता गुरु नाहि, ना जानि कि रूप। खाय परे' सकल, बोलाय अवधूत" ॥३५४॥
नित्यानन्द-प्रति स्तव करे व्यक्प देशे। शुनि नित्यानन्द प्रभु गण-सह हासे ॥३५५॥
"संहारिव सकल, आमार दोष नाञि"। एत बलि जले झाँपे' आचार्य गोसाञि ॥३५६॥
आचार्येर क्रोधे हासे' भागवत गण। क्रोधे तत्त्व कहे, जेन शुनि कुवचन ॥३५७॥

---

[...]और श्री अद्वैत मिल कर खेल रहे हैं ॥ ३४१ ॥ महाबली कौतुकी नित्यानन्द जी ने श्री अद्वैत के नेत्रों [...] से जल मारते हैं ॥ ३४२ ॥ जिससे कि अद्वैत आँखें खोल नहीं पाते और बड़े क्रोध में भरकर गाली [...]ते हैं ॥ ३४३ ॥ (यथा) "अरे इस मतवाले नित्यानन्द ने मेरी आँख कानी कर दीं। न जाने यह मत-[...] कहाँ से यहाँ आ गया है ॥३४४॥ "श्रीवास पण्डित की तो जड़ से कोई जाति नहीं है। (तब ही तो) [...] एक अवधूत को लाकर अपने घर में बास दिया है ॥ ३४५ ॥ "यह चोर शचीनन्दन भी तो यही सब [...]रता है—सदा अवधूत की संगति में घूमता रहता है" ॥ ३४६ ॥ तब नित्यानन्द जी बोले—"ऐसा कहने [...] लज्जा भी नहीं आती अपने आप हार जाने पर दूसरों से झगड़ने का क्या काम" ॥ ३४७ ॥ प्रभु [...]न्द्र बोले—"हम एक बार की नहीं मानेंगे। तीन बार खेल होने पर हार-जीत मानी जायगी" ॥३४८॥ [...]र दूसरी बार श्री अद्वैत और श्री नित्यानन्द में जल-युद्ध ठन गया कौतुक के लिए ही तो यह एक देह [...]र हैं ॥ ३४९ ॥ दोनों जनों में जल-युद्ध हो रहा है। कोई किसी को हरा नहीं पाता है। एक बार कोई [...]भी जाता है तो दूसरी बार हार जाता है ॥ ३५० ॥ नित्यानन्द जी ने हड़बड़ा कर दुबारा अद्वैत जी [...]खों में जल दे मारा॥ ३५१ ॥ दुःख पाकर अद्वैत जी बोले—"यह मतवाला तो संन्यासी कभी नहीं है [...] ब्रह्म-बधिक है ॥ ३५२ ॥ पश्चिमी हिन्दुस्तानियों के घर २ में इसने भात खाया है। इसके कुल जन्म, [...] को कोई नहीं जानता कि यह कहाँ का है ॥ ३५३ ॥ "इसके माता, पिता, गुरु भी नहीं है न जाने क्या [...] रूप है सब कुछ खाता-पहनता है और कहलाता है "अवधूत" ॥ ३५४ ॥ इस प्रकार अद्वैत जी नित्या-[...]ी की निन्दा के छल से स्तुति करते हैं जिसे सुनकर नित्यानन्द प्रभु परिकर सहित हँसते हैं ॥ ३५५ ॥ [...]अद्वैताचार्य प्रभु 'सब का संहार कर डालूँगा, इसमें मेरा दोष नहीं है" इतना कह कर जल में कूद पड़े [...] ॥ आचार्य के क्रोध पर भागवत गण हँसते हैं। क्रोध में भरे हुए कहते तो [...] हैं पर

हेन रस-कहेर मर्म ना बुझिया। भिन्न ज्ञाने निन्दे वन्दे से मरे पुड़िया ॥३५८॥
निश्चय गौराङ्ग चन्द्र जारे कृपा करे। से-इ से वैष्णव वाक्य बुझिबारे पारे ॥३५९॥
सेइ कथो क्षणे दुइ महा कुतूहली। नित्यानन्द-अद्वैते हइल कोला कोलि ॥३६०॥
महा मत्त दुइ प्रभु गौरचन्द्र-रसे। सकल गङ्गार माझे नित्यानन्द भासे ॥३६१॥
हेन मते जल केलि कीर्त्तनेर शेषे। प्रति रात्रि सभा लैया करे प्रभु रसे ॥३६२॥
ए लीला देखिते मनुष्येर शक्ति नाइ। सबे देखे देव गण सङ्गोपे तथाइ ॥३६३॥
सर्व-गणे गौरचन्द्र गङ्गा स्नान करि। कूले उठि उच्च करि बोले 'हरि हरि' ॥३६४॥
सभारे दिलेन माला-प्रसाद-चन्दन। विदाय हइला सभे करिते भोजन ॥३६५॥
जगाइ-माधाइ समर्पिला सभा स्थाने। आपन-गलार माला दिला दुइ जने ॥३६६॥
ए सब लीलार कभू अवधि ना हय। 'आविर्भाव' 'तिरोभाव' मात्र वेदे कय ॥३६७॥
गृहे आसि प्रभु धुइलेन श्रीचरण। तुलसीर करिलेन चरण-वन्दन ॥३६८॥
भोजन करिते वसिलेन विश्वम्भर। नैवेद्यान्न आनि मा'ये करिला गोचर ॥३६९॥
सर्व-भागवतेरे करिया निवेदन। अनन्त-ब्रह्माण्ड नाथ करये भोजन ॥३७०॥
परम-सन्तोषे महा प्रसाद खाइया। मुख शुद्धि करि वारे वसिला आसिया ॥३७१॥
वधू-सङ्गे देखे आइ नयन भरिया। महानन्द-सागरे शरीर डुवाइया ॥३७२॥
आइर भाग्येर सीमा के वलिते पारे। सहस्र वदन प्रभु यदि शक्ति धरे ॥३७३॥
प्राकृत-शब्देओ जेवा वलिवेक 'आइ'। आइ-शब्द-प्रभावेओ तार दुःख नाइ ॥३७४॥

सुनने में कठोर वचन जैसा लगता है ॥ ३५७ ॥ ऐसे रसमय कलह का मर्म न समझ कर जो इन दोनों को भिन्न जानकर एक की निन्दा और दूसरे की बन्दना करता है, वह (अपराध से) जल कर भस्म हो जाता है ॥३५८॥ श्री गौरांग चन्द्र जिस पर कृपा करते हैं, वही निश्चय करके वैष्णवों के वाक्यों को समझ सकता है ॥ ३५९ ॥ कुछ समय पश्चात् वे दोनों महा कौतुकी श्री नित्यानन्द और श्री अद्वैत में परस्पर में आलिंगन हुआ ॥ ३६० ॥ दोनों प्रभु गौरचन्द के रस में मतवाले बने हुए हैं और नित्यानन्द तो सारी गङ्गामें तैरते फिर रहे-हैं ॥ ३६१ ॥ इस प्रकार की जल-क्रीड़ा, कीर्त्तन की समाप्ति पर प्रत्येक रात्रि प्रभु गौरचन्द्र सबको लेकर बड़े आनन्द में किया करते हैं ॥ ३६२ ॥ इस लीला को देखने की शक्ति मनुष्य में नहीं है, केवल देव-गण ही गुप्त होकर इसे देखते हैं ॥ ३६३ ॥ इस प्रकार सब परिकरों के साथ गङ्गा स्नान करके प्रभु गौरचन्द्र बाहर किनारे पर निकले और ऊँचे स्वर से "हरि बोल" "हरि बोल" ध्वनि की ॥ ३६४ ॥ प्रभु ने सब को माला और प्रसादी चन्दन दिया और सब भक्त लोग भोजन के लिए विदा हुए ॥३६५॥ प्रभु ने जगाई-मधाइ को सब भक्तों के हाथ सौंपा और दोनों को अपने गले की माला दी ॥ ३६६ ॥ इन सब लीलाओं की कभी समाप्ति नहीं है, इनका केवल आविर्भाव-तिरोभाव मात्र होता है-यही वेद कहते हैं ॥ ३६७ ॥ प्रभु ने गृह में आकर श्री चरण धोए और तुलसी जी को चरण-बन्दना की ॥ ३६८ ॥ फिर विश्वम्भर देव भोजन के लिए बैठे। शची माता ने निवेदित अन्न लाकर सम्मुख रक्खा ॥ ३६९ ॥ सब भक्तों को निवेदन करके अनन्त ब्रह्माण्डों के नाथ भोजन करते हैं ॥३७०॥ प्रभु ने परम संतोष के साथ महा प्रसाद पाया, और फिर मुख शुद्धि के लिए बाहर आकर बैठे ॥ ३७१ ॥ शची माता बधू के साथ नेत्र भर पुत्र को देख रही हैं और महान् आनन्द सागर में डूब रही हैं ॥ ३७२ ॥ सहस्र वदन वाले अनन्त देव के यदि सामर्थ्य भी हो तौभी शची माता के भाग्य की सीमा का पार न पा सकें ॥ ३७३ ॥ प्राकृत भाषा में जो लोग 'आइ' (माता) शब्द

पुत्रेर श्रीमुख देखि आइ जगन्माता। निज देह आइ नाहि जाने आछे कोथा ॥३७५॥
विश्वम्भर चलिलेन करिते शयन। तखन विदाय करे गुप्त देव गण ॥३७६॥
चतुर्मुख-पञ्च मुख आदि देव गण। निति आसि चैतन्येर करये सेवन ॥३७७॥
देखिते ना पाय इहा केहो आज्ञा विने। सेइ प्रभु अनुग्रहे बोले कारो स्थाने ॥३७८॥
कोन दिन वसिया थाकये विश्वम्भर। सम्मुखे आइला मात्र कोन अनुचर ॥३७९॥
"आइ-खाने थाक" प्रभु बोलये आपने। "चारि-पाँच-मुख गुला लोटाय अङ्गने ॥३८०॥
पड़िया आछये जत नाहि लेखा जोखा। तोमरा-सभेरे कि ए गुला ना दे देखा" ॥३८१॥
कर-जोड़ करि बोले सब भक्त गण। "त्रिभुवने करे प्रभु! तोमार सेवन ॥३८२॥
आमरा-सभेर कोन शक्ति देखि वार। विने प्रभु! तुमि दिले दृष्टि-अधिकार" ॥३८३॥
ए सब अद्भुत चैतन्येर गुप्त कथा। सर्व-सिद्धि हय इहा शुनिले सर्वथा ॥३८४॥
इहाते सन्देह किछु ना करिह मने। अज-भव निति आइसे गौराङ्गेर स्थाने ॥३८५॥
हेन मते जगाइ-माधाइ-परित्राण। करिला श्रीगौर चन्द्र जगतेर प्राण ॥३८६॥
सभार करिव गौर सुन्दर उद्धार। व्यतिरिक्त वैष्णव निन्दक दुराचार ॥३८७॥
शूल पाणि-सम यदि भक्त निन्दा करे। भागवत प्रमाण—तथापि शीघ्र मरे ॥३८८॥
तथाहि भागवते (५।१०।२५)—"महद्विमानात् स्वकृताद्धि मादृक्।
नङ्क्ष्यत्य दूरादपि शूलपाणिः" ॥३८९॥
हेन वैष्णवेरे निन्दे' असर्वज्ञ हइ। से जनेर अधःपात सर्व—शास्त्रे कइ ॥३९०॥

---

बोलेंगे, उनके सब दुःख 'आइ' शब्द के प्रभाव से जाते रहेंगे ॥३७४॥ पुत्र के श्रीमुख को देख कर जगन्माता 'आइ' को अपनी देह की भी सुधि नहीं है कि वे कहाँ है ॥ ३७५ ॥ फिर विश्वम्भर देव शयन के लिए चले, तो देवता लोग भी गुप्त रूप से बिदा लेकर चले ॥ ३७६ ॥ चतुर्मुख पंचमुख आदि देवता लोग नित्य प्रति आकर श्री चैतन्य चन्द्र की सेवा करते हैं ॥ ३७७ ॥ परन्तु प्रभु की आज्ञा बिना कोई भी इनको नहीं देख पाते हैं। प्रभु ही स्वयं कृपा करके किसी २ को दिखला देते हैं ॥ ३७८ ॥ किसी दिन विश्वम्भर बैठे हुए हैं कि सामने कोई सेवक आ गया ॥ ३७९ ॥ तो प्रभु स्वयं उससे कहते हैं—"माता के पास जाकर रहो। आंगन पर चार पाँच मुख वाले लोट पोट हो रहे हैं ॥ ३८० ॥ कितनी संख्या में ये पड़े हुए हैं, इसका कुछ हिसाब किताब नहीं है। तुम लोगों को ये सब दिखाई नहीं पड़ते क्या" ॥३८१ ॥ सब भक्त लोग हाथ जोड़ कर बोले "प्रभो! त्रिभुवन आपकी सेवा करता है ॥ ३८२ ॥ प्रभो! जब तक इनके दर्शन का अधिकार आप हमें न दें, तब तक इनको देखने की शक्ति हम सब की कहाँ है" ॥ ३८३ ॥ श्री चैतन्य चन्द्र की ये सब अद्भुत गुप्त कथाएँ हैं। इनके श्रवण करने से निश्चय हो सर्व सिद्धि होती है ॥ ३८४ ॥ ब्रह्मा, शङ्कर आदि देवता लोग नित्य प्रति श्री गौरांग देव के समीप आते हैं—इसमें कुछ भी सन्देह मन में नहीं करना। ३८५ ॥ इस प्रकार जगत् के प्राण श्री गौरसुन्दर ने जगाइ-मधाइ का उद्धार किया ॥ ३८६ ॥ श्री गौरसुन्दर सभी का उद्धार करेंगे, एक वैष्णव निन्दक दुराचारी को छोड़ ॥ ३८७ ॥ इसमें भागवत का प्रमाण है कि यदि शूलपाणी शङ्कर जैसा भी भक्त की निन्दा करता है, तो वह उस अपराध से शीघ्र ही मरता है ॥३८८॥ यथा (भाग. ५. १०. २५) महत् पुरुष का अपमान करने से अपने किये हुए उस कर्म के फल से, मुझ शूलपाणी जैसा भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है—इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३८९ ॥ फिर जो अल्पज्ञ जन वैष्णवों की निन्दा करते हैं, उनका अधःपतन होता है—यही सब शास्त्र कहते हैं ॥ ३९० ॥ जो श्रीकृष्ण का नाम सब पापों का महान्

सर्व-महा प्रायश्चित जे कृष्णेर नाम। वैष्णवापराधे से-इ नामे लय प्राण ।।३९१।।
पद्म पुराणेर एइ परम वचन। प्रेम भक्ति हय इहा करिले पालन ।।३९२।।
तथाहि पद्म पुराणे ब्रह्म खण्डे २५ वाँ अध्याय १४ वाँ श्लोक
"सतां निन्दा नाम्नः परममपराधं वितनुते। यतः ख्यातिं यातं कथमु सहते तद्विगरिहाम्" ।।३९३।।
जेइ 'शुने दुइ-महा दस्युर उद्धार। तारे उद्धारिव गौरचन्द्र अवतार ।।३९४।।
ब्रह्म दैत्य-पावन गौराङ्ग! जय जय। करुणा सागर प्रभु परम सदय ।।३९५।।
सहज-करुणा सिन्धु महा कृपा मय। दोष नाहि देखे प्रभु, गुण मात्र लय ।।३९६।।
हेन-प्रभु-विरहे जे पापि-प्राण रहे। सबे परमायु-गुण, आर किछु नहे ।।३९७।।
तथापिह एइ कृपा कर' महाशय। "श्रवणे वदने जेन तोर यश लय ।।३९८।।
आमार प्रभुर सङ्गे गौराङ्ग सुन्दर। जथा वैसे, तथा जेन हङ अनुचर" ।।३९९।।
चैतन्य कथार आदि अन्त नाहि जानि। जे-ते-मते चैतन्येर यश से वाखानि ।।४००।।
गण-सह प्रभु पाद पद्मे नमस्कार। इथे अपराध किछु नहुक आमार ।।४०१।।
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चाँद जान। वृन्दावन दास तछु पद जुगे गान ।।४०२।।

# अथ चौदहवाँ अध्याय

जय जय शची पुत्र स्वयं भगवान्। जय नित्यानन्दाद्वैत करुणानिधान ।।१।।
चतुर्मुख-पञ्चमुख-आदि देव गण। निति आसि चैतन्येर करये सेवन ।।२।।

---

प्रायश्चित है वही वैष्णव अपराध होने पर प्राण ले लेता है ।।३९१।। पद्मपुराण का यह (नीचे दिया हुआ) परम वचन है, इसके पालन करने से प्रेम-भक्ति का उदय होता है ।। ३९२ ।। यथा:—पद्मपुराण, ब्रह्मखण्ड में २५ वाँ अध्याय का १४ वाँ श्लोक:—"सत्पुरुषों की निन्दा श्री हरिनाम के निकट परम अपराध को विस्तार करती है। भला जिन सत्पुरुषों से नाम को नाम मिला, उनकी ही निन्दा नाम कैसे सह सकता है" ।।३९३।। जो इन दो महान् दस्यु (जगाइ-मधाइ) का उद्धार सुनेंगे श्री गौरचन्द्र उनका उद्धार करेंगे ।। ३९४ ।। हे ब्रह्मदैत्य पावन कारी गौरांग! हे करुणा सागर! हे परम दयालु प्रभो! आप की जय हो, जय हो ।।३९५।। प्रभु सहज करुणा सिन्धु हैं, महान कृपालु हैं, वे दोष तो नहीं देखते हैं, वे तो केवल गुण ही लेते हैं ।।३९६।। ऐसे प्रभु के विरह में जो ये पापी प्राण रह रहे हैं, वह केवल परमायु के गुण से, और किसी कारण से नहीं ।। ३९७ ।। तथापि हे महाशय! यही कृपा करें कि मेरे श्रवण और मुख आपके यश को ही ग्रहण करते रहें ।। ३९८ ।। और मेरे प्रभु (नित्यानन्द) के साथ गौरांग सुन्दर जहाँ विराजें, वहाँ मैं उनका अनुचर बन कर रहूँ ।। ३९९ ।। श्री चैतन्य चन्द्र की कथा का मैं आदि अन्त कुछ नहीं जानता हूँ। मैं तो जैसे तैसे श्री चैतन्य का यश बखान करता हूँ। ४०० ।। सब परिकरों के सहित प्रभु गौरचन्द्र के पादपद्मों में नमस्कार है। इसमें मेरा कभी कोई अपराध न हो जाय ।। ४०१ ।। श्री कृष्ण चैतन्य और श्री नित्यानन्द चन्द्र को अपना सर्वस्व जान कर यह वृन्दावन दास उनके चरण कमलों में उनका कुछ यश गान समर्पण करता है ।। ४०२ ।।

इति श्री चैतन्य भागवते मध्यखण्डे जगाइ–मधाइ उद्धार वर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।।

स्वयं भगवान् शची-सुत की जय हो, जय हो। करुणा निधान श्री नित्यानन्द और श्री अद्वैत की जय हो ।।१।। कनक किरण-वान गौरांग सुन्दर का कलेवर प्रेम के भार से डगमगा रहा है। रंगीले गौरांग
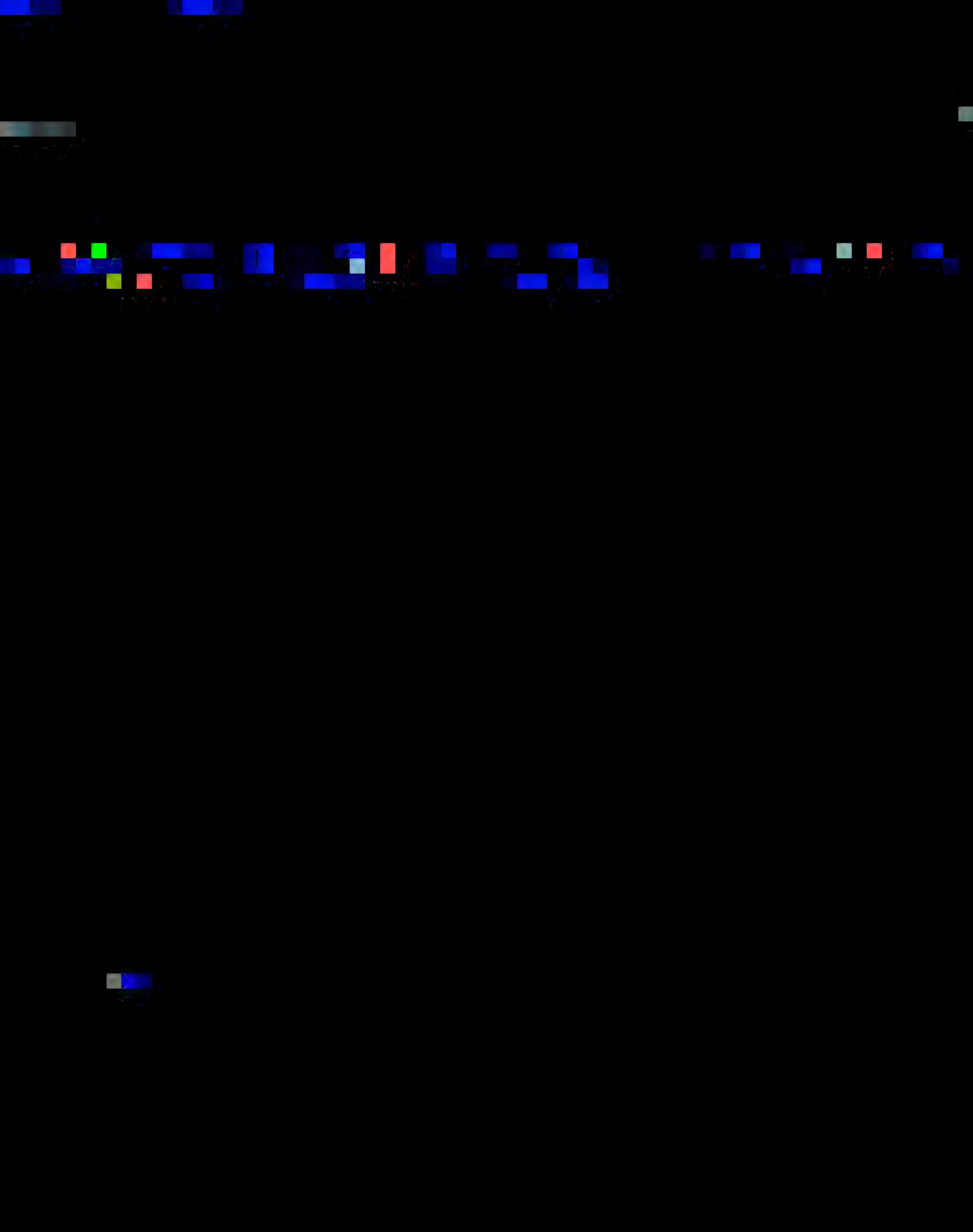
आज्ञा विने केहो इहा देखिते ना पारे। ताना पुनि ठाकुरेर सभे सेवा करे ॥३॥
सर्व दिन देखे प्रभु जत लीला करे। शयन करिले प्रभु सभे चले घरे ॥४॥
ब्रह्म दैत्य-दुइर से देखिया उद्धार। आनन्दे चलिला ता'इ करिया विचार ॥५॥
"ए मत कारुण्य आछे चैतन्येर घरे। ए मत जनेरे प्रभु करये उद्धारे ॥६॥
आजि बड़ चित्ते प्रभु दिलेन भरसा। 'अवश्य पाइब पार' धरिलाङ आशा" ॥७॥
एइ मत अन्योऽन्ये करि सङ्कथन। महानन्दे चलिला सकल देव गण ॥८॥
प्रभु-स्थाने प्रत्यह आइसे धर्मराज। आपने देखिल प्रभु चैतन्येर काज ॥९॥
चित्र गुप्त स्थाने जिज्ञासये प्रभु यम। "किबा ए दुइर पाप, किबा उपशम" ॥१०॥
चित्र गुप्त बोले "शुन प्रभु धर्मराज। ए विफल परिश्रमे आर किबा काज ॥११॥
लक्षेक कायस्थ यदि एक मास पढ़ि। तथापि पाइते अन्त शीघ्र नहे वड़ि ॥१२॥
तुमि यदि शुन लक्ष करिया श्रवण। तथापिह शुनि वारे तुमि से भाजन ॥१३॥
ए-दुइर पाप निरन्तर दूते कहे। लिखिते कायस्थ सब उत्तापित हये ॥१४॥
ए-दुइर पाप दूत कहे अनुक्षण। इहा लागि दूत कत खाइल मारण ॥१५॥
दूत बोले "पाप करे सेइ दुइ जने। लिखाइते भार मोर, मोरे मार' केने" ॥१६॥
ना लिखिले हय शास्ति, हेन करि लिखि। पर्वत-प्रमाण 'गडा' आछे तार साक्षी ॥१७॥
आमराओ कान्दि याछि ओ-दुइ लागिया। के मते वा ए यातना सहिव आसिया ॥१८॥

---

सुन्दर नृत्य कर रहे हैं ॥ टेक १॥ चतुर्मुख पंचमुख आदि देवगण नित्य प्रति आकर श्री चैतन्य देव की सेवा करते हैं ॥ २ ॥ प्रभु की आज्ञा बिना उनकी इस सेवा को कोई देख नहीं पाता है परन्तु वे सब प्रभु की सेवा करते हैं ॥ ३ ॥ प्रभु जो २ लीला करते हैं उसे वे सब दिन भर देखते हैं और प्रभु के शयन करने पर वे सब घर चले जाते हैं ॥ ४ ॥ आज दो ब्रह्म दैत्यों का उद्धार देख कर वे उस पर विचार करते हुए आनन्द मे चले जा रहे हैं ॥ ५ ॥ (यथा) "ओह ! श्री चैतन्य देव के घर में ऐसी करुणा भी है ! वे प्रभु ऐसे जनों का भी उद्धार करते हैं ॥ ६ ॥ प्रभु ने आज हमारे चित्त को बड़ा ही भरोसा दिया। अब हमें भी यह आशा हो गई कि हम भी अवश्य पार हो जायँगे ॥ ७ ॥ इस प्रकार से परस्पर में वार्त्तालाप करते हुए सब देवता लोग महान् आनन्द में चले जा रहे हैं ॥ ८ ॥ प्रभु के समीप धर्मराज भी नित्य आया करते हैं। उन्होंने भी आज श्री चैतन्य प्रभु के कार्य को आप देखा ॥ ९ ॥ तब वे प्रभु यमराज (धर्मराज) चित्रगुप्त से पूछते हैं कि "इन दोनों के क्या २ पाप थे और क्या उनके लिए उपयुक्त दण्ड था" ॥ १० ॥ चित्रगुप्त बोला—"हे प्रभु धर्मराज ! सुनिए ! इस (लेखा-जोखा) के व्यर्थ परिश्रम से मतलब ही क्या" ॥ ११ ॥ "( इनके पापों को ) यदि एक लाख कायस्थ (लेखक-मुनीम) एक महीना तक पढ़ें तौभी वे पढ़कर जल्दी खतम नहीं कर पायँगे ॥ १२ ॥ और आप यदि लाख कान बना कर सुनें तो ऐसे सुनने वाले एक आप ही होंगे ॥ १३ ॥ "इन दोनों के पापों को दूत लोग आ २ कर लगातार कहते ही रहते है, जिन्हें लिखते २ मुनीम लोगों को गर्मी चढ़ जाती है ॥ १४ ॥ (तो जब इधर) दूत लोग इनके पापों को क्षण २में कहते ही जाते हैं, (तो उधर मुनीम लोगों का लिखते २ दिमाग गर्म हो जाने के कारण) कितने ही दूतों को तो मार खानी पड़ती है ॥१५॥ तब दूत कहते हैं—"जब वे दो जने तो पाप करते जाते हैं और लिखवाने का जिम्मा हमारे ऊपर ही है, तो फिर हमें मारते क्यों हैं ?" ॥ १६ ॥ न लिखें तो दण्ड मिले, इसलिए मुनीम लोगों को भी लिखना पड़ता है। लिख लिख कर बही खातों का ढेर लगकर एक पर्वत बन गया यही उनके पापों का साक्षी है ॥ १७ ॥ हम भी उन दोनों के

तिल मात्र महा प्रभु सब कला दूर। एबे आज्ञा कर' गडा' डुवाइ प्रचुर ।१६।
कभु नाहि देख यम ए मत महिमा पातकि-उद्धार जत तार एइ सीमा।२०।
स्वभाव-वैष्णव यम-मूर्तिमन्त धर्म। भागवत धर्मेर जानये सव-मर्म ॥२१॥
जखन शुनिला चित्र गुप्तेर वचन। कृष्णावेशे देह पासरिला ततक्षण ॥२२॥
पड़िला मूर्च्छित हैया रथेर उपरे। कोथाओ नाहिक धातु सकल शरीरे ॥२३॥
आथे व्यथे चित्र गुप्त-आदि जत गण। धरिया लागिला सभे करिते क्रन्दन ॥२४॥
सर्व देव रथे जाय कीर्त्तन करिया। रहिल यमेर रथ शोकाकुल हैया ॥२५॥
दुइ ब्रह्म-असुरेर मोचन देखिया। सेइ गुण-कर्म्म सभे चलिल गाइया ॥२६॥
काहो केहो ना जानये आनन्द-कीर्त्तने। कारुण्य देखिया केहो करये क्रन्दने ॥२७॥
रहियाछे यम-रथ—देखे देव गणे। रहिल सकल रथ यम-रथ-स्थाने ॥२८॥
शेष, अज, भव, नारदादि ऋषि गणे। देखे पड़ि आछे यमदेव अचेतने ॥२९॥
विस्मित हइला सभे—ना जानि कारण। चित्र गुप्त कहिलेन सकल कारण ॥३०॥
'कृष्णावेश' हेन जानि अज-पञ्चानन। कर्ण मूले सभे मिलि करये कीर्त्तन ॥३१॥
उठि लेन यमदेव कीर्तन शुनिया। चैतन्य पाइया नाचे महा मत्त हैया ॥३२॥
उठिल परमानन्द देव-सङ्कीर्तन। कृष्णेर आवेशे नाचे सूर्येर नन्दन ॥३३।
यम नृत्य देखि नाचे सर्व-देव गण। नारदादि-सङ्गे नाचे अज-पञ्चानन ॥३४॥

लिए रोये हैं कि वे दोनों यहाँ (नरक में) आकर कैसे यहाँ की यातनाएँ सहेंगे ॥ १८ ॥ परन्तु महाप्रभु ने क्षण भर में उनके सब पाप दूर कर दिए। अब आज्ञा करिये—इस पर्वत जैसी ढेरी को (कहीं समुद्र में) डुबा दें" ॥ १९ ॥ यमराज ने ऐसी महिमा कभी नहीं देखी थी। जितने भी पातकियों का उद्धार हुआ है, उन सब की सीमा है—यही (जगाइ-मधाइ) उद्धार ॥२०॥ यमराज का वैष्णव स्वभाव है, वे मूर्त्तिमान् धर्म है, भागवत् धर्म के मर्म को सब जानने वाले हैं ॥ २१ ॥ (अतएव) जब उन्होंने चित्रगुप्त के वचन सुने तो तुरन्त ही कृष्ण भक्ति के आवेश में देह को भूल गए ॥ २२ ॥ और मूर्च्छित होकर रथ के ऊपर गिर पड़े-समस्त शरीर में कहीं चेतनता न रही ॥ २३ ॥ तब चित्रगुप्त आदि सब गणों ने हडबड़ा कर उनको सम्हाला और उनको पकड़ कर वे सब रोने लगे ॥ २४ ॥ और सब देवता तो अपने २ रथ पर बैठे प्रभु की लीला का कीर्त्तन करते हुए जा रहे हैं परन्तु यमराज का रथ (गणों के) शोकाकुल होने से वहीं रह गया ॥ २५ ॥ दो ब्रह्म राक्षसों का उद्धार देख कर, प्रभु के उन्हीं सब गुण कर्म को गाते हुए और सब देव गण जा रहे हैं ॥ २६ ॥ कीर्त्तन के आनन्द में किसी को किसी की खोज खबर नहीं है। कोई २ प्रभु को अद्भुत करुणा को देख कर रो भी रहे हैं ॥२७॥ जब देवताओं ने देखा कि यमराज का रथ पीछे रह गया, तो वे अपने २ रथ को वहाँ ले आए ॥ २८ ॥ (वहाँ आकर) शेषजी, ब्रह्मा, शिव, नारद आदि ऋषियों ने देखा कि यमराज रथ पर अचेत पड़े है ॥ २९ ॥ इनका कारण न जानने से सब बड़े विस्मित हुए। तब चित्रगुप्त ने सब कारण सुनाया ॥ ३० ॥ उनमें कृष्ण भक्ति का आवेश हुआ है—ऐसा जानकर ब्रह्मा, शिव आदि सब मिल कर उनके कर्ण-मूल में कृष्ण कीर्त्तन करते हैं ॥ ३१ ॥ कीर्त्तन सुनकर यमदेव उठ बैठे। चेतनता लौट आने पर वे महामत्त होकर नाचने लगे ॥ ३२ ॥ देवताओं के संकीर्तन में परमानन्द उदय हो आया। सूर्यनन्दन यमराज कृष्ण-प्रेम के आवेश में नाच रहे हैं ॥ ३३ ॥ यम के नृत्य को देख सब देवता लोग भी नाचने लगे। श्री नारदादिकों के साथ ब्रह्मा—शिव नाचने लगे ॥३४॥ देवताओं का नृत्य सावधान होकर सुनो। यह अत्यन्त गुह्य है। इसको

देव गण-नृत्य शुन सावधान हैया। अति गुह्य—वेदे व्यक्त करि वेन इहा ॥३५॥
श्रीराग—नाचइ धर्मराज, छाड़िया सकल काज, कृष्णावेशे ना जाने आपना'।
स्मङरिया श्रीचैतन्य, बोले "अति धन्य धन्य, पतित पावन धन्य वाना" ॥१॥
हुँ हुङ्कार गरजन, स पुलक महा प्रेम, यमेर भावेर अन्त नाइ।
विह्वल हइया यम, करे बहु क्रन्दन, स्मङरिया जगाइ माधाइ ॥२॥
यमेर जतेक गण, देखिया यमेर प्रेम, आनन्दे पड़िया गड़ि जाय।
चित्र गुप्त महा भाग, कृष्णे वड़ अनुराग, माल साट पूरि पूरि धाय ॥३॥
नाचे प्रभु शङ्कर, हइया दिगम्बर, कृष्णा वेशे वसन ना जाने।
वैष्णवेर अग्रगण्य, जगत् करये धन्य, कहिया तारक-राम नामे ॥४॥
शिव नाचे महानन्दे, जटाओ नाहिक वान्धे, देखि निज-प्रभुर महिमा।
कार्तिक गणेश नाचे, महेशेर पाछे पाछे, स्मङरिया कारुण्येर सीमा ॥५॥
नाचे ;जे चतुरानन, भक्ति जार प्राण धन, लइया सकल परिवार।
कश्यप कर्दम दक्ष, मनु भृगु महा मुख्य, पाछे नाचे सकल ब्रह्मार ॥६॥
सभे महा भागवत, कृष्ण रसे महामत्त, सभे करे भक्ति-अध्यापना।
वेढ़िया ब्रह्मार पाशे, कान्दे छाड़ि दीर्घ श्वासे, स्मङरिया प्रभुर करुणा ॥७॥
देवर्षि नारद नाचे, रहिया ब्रह्मार पाछे, नयने वहये प्रेम जल।
पाइया यशेर सीमा, कोथावा रहिल वीणा, ना जानये, आनन्दे विह्वल ॥८॥
चैतन्येर प्रिय भृत्य, शुक देव करे नृत्य, भक्तिर महिमा शुक जाने।
लोटाइया पड़े धूलि, जगाइ माधाइ वलि, करे वहु दण्ड परणामे ॥९॥

---

वेद व्यक्त करेंगे ॥ ३५ ॥ ( पद—अर्थ )—सब कामों को छोड़ कर धर्मराज नाच रहे हैं। वे कृष्ण-प्रेम के आवेश में अपने को भूल गऐ हैं। श्री चैतन्य चन्द्र का स्मरण कर करके वे कह उठते हैं—"आपको धन्य है, अति धन्य है। आपके पतित पावन बाने को धन्य है ॥ १ ॥ यमराज महान् प्रेमावेश में कभी हुँकार करते और कभी गरजते हैं, शरीर पुलकित हो रहा है। उनके भावों का अन्त नहीं है। जगाइ—मधाइ के ऊपर प्रभु की कृपा का स्मरण कर करके यमराज विह्वल हो जाते हैं और बहुत रोते हैं ॥ २ ॥ यमराज के गण सब, उनके ऐसे प्रेम को देख कर मारे आनन्द के भूमि पर लोट पोट हो रहे हैं, चित्रगुप्त तो महाभग है, उनका श्रीकृष्ण में बड़ा अनुराग है। वे तो ताल ठोक कर उछलते फिरते हैं ॥ ३ ॥ भोले शङ्कर बाबा तो दिगम्बर बन के नाच रहे हैं। कृष्ण प्रेम के आवेश में उन्हें वस्त्र की सुध बुध ही नहीं। वे वैष्णवों में अग्रगण्य है और तारक राम नाम सुना कर जगत् को धन्य कर रहे हैं ॥ ४ ॥ अपने प्रभु की महिमा को देखकर शिवजी महान् आनन्द में नाच रहे हैं, जटाओं को भी नहीं बाँधते हैं। और कार्त्तिकेय, गणेश भी प्रभु की करुणा की अवधि को स्मरण कर करके नाच रहे हैं ॥ ५ ॥ भक्ति जिनका प्राण धन है ऐसे ब्रह्मा जी अपने सब परिवार सहित नाच रहे हैं। और ब्रह्मा जी के पीछे कश्यप, कर्दम, दक्ष, मनु, भृग आदि प्रधान २ महाजन नाच रहे हैं ॥ ६ ॥ सभी महा भागवत हैं, कृष्ण—रस में महामत्त हैं, भक्ति के अध्यापक हैं। वे ब्रह्मा जी को घेरे हुए, प्रभु की करुणा का स्मरण करके रुदन करते हैं और दीर्घ श्वास त्याग करते हैं ॥७॥ ब्रह्मा जी के पीछे देवर्षि नारद भी नाच रहे हैं, उनके नेत्रों से प्रेम जल बह रहा है। प्रभु के यश की सीमा को पाकर आनन्द में विह्वल हो रहे हैं—वीणा कहाँ गिर पड़ी है, कुछ सुध ही नही है ॥ ८॥ श्री चैतन्य प्रभु

नाचे इन्द्र सुरेश्वर, महावीर वज्र धर, आपनाके करे अनुताप।
सहस्र नयने धार, अविरत वहे जार, सफल हइल ब्रह्म शाप ॥१०॥
प्रभुर महिमा देख, इन्द्र देव बड़ सुखी, गड़ा गड़ि जाय परवश।
कोथा गेल वज्र सार, कोथाय किरीट हार, इहारे से वलि 'कृष्ण रस' ॥११॥
चन्द्र सूर्य पवन, कुवेर वह्नि वरुण, नाचे सब-जत लोक पाल।
सभेइ कृष्णेर भृत्य, कृष्ण रसे करे नृत्य, देखिया कृष्णेर ठाकुराल ॥१२॥
नाचे सब देव गण, सभे उलसित मन, छोट वड़ ना जाने हरिषे।
बड़ हय ठेला ठेलि, तबु सभे कुतूहली, सत्य सुख कृष्णेर आवेशे ॥१३॥
नाचे प्रभु भगवान्, 'अनन्त आहार नाम, विनता नन्दन करि सङ्गे।
सकल वैष्णव राज, पालन जाहार काज, आदि देव सेहो नाचे रङ्गे ॥१४॥
अज भव नारद, शुक आदि जत देव, अनन्त वेढ़िया सभे नाचे।
गौरचन्द्र अवतार, ब्रह्म दैत्य-उद्धार, सहस्र वदन गाय माझे ॥१५॥
केहो कान्दे केहो हासे,' देखि महा परकाशे, केहो मूर्च्छा पाय सेइ ठाञि।
केहो बोले "भाल भाल, गौरचन्द्र ठाकुराल, धन्य पापी जगाइ माधाइ" ॥१६॥
नृत्य गीत-कोलाहले, कृष्ण-यश सुमङ्गले, पूर्ण हैल सकल आकाश।
महा-जय जय-ध्वनि, अनन्त ब्रह्माण्डे शुनि, अमङ्गल सव गेल नाश ॥१७॥

---

का प्रिय भृत्य श्री शुकदेव भी नाच रहे हैं। श्री शुक भक्ति की महिमा को जानते हैं, वे जगाइ-मधाइ का नाम ले ले कर धूल में लोट पोट होते हैं और अनेक प्रणाम करते हैं ॥ ९ ॥ देवताओं के ईश्वर, वज्रधारी महावीर इन्द्रराज भी नाच रहे हैं तथा अपने को धिक्कार दे रहे हैं। उनके सहस्र नेत्रों से निरन्तर अश्रु की धाराएँ वह रही हैं, आज ब्रह्म शाप उनके लिए सफल हो गया ॥ १० ॥ प्रभु की महिमा को देख कर इन्द्र-देव बड़े सुखी हैं और भाव विवश होकर भूमि पर लोट पोट हो रहे हैं। कहाँ गया उनका वज्रसार ! कहाँ रहे उनके किरीट हार !! इसका नाम है श्रीकृष्ण-रस !!! ॥ ११ ॥ चन्द्र, सूर्य, कुबेर, अग्नि, वरुण आदि सब लोकपाल नाच रहे हैं। सभी श्रीकृष्ण के भृत्य हैं, श्री कृष्ण की ठकुराई को देख कर वे श्रीकृष्ण रस में मत्त होकर नाच रहे हैं ॥ १२ ॥ सब देवता लोग नाच रहे हैं, सबके मन में उल्लास है, मारे हर्ष के छोटे-बड़े का भेद भूल गए हैं। बड़ी ठेलम ठेला मची हुई है तोभी सबको बड़ा आनन्द आ रहा है, कारण कि श्री कृष्ण की भक्ति का आवेश ही तो सच्चा सुख है।।१३। प्रभु भगवान जिनका नाम श्री अनन्त देव है वे विनता सुत गरुड़ जी के साथ नाच रहे हैं। सभी वैष्णव राज हैं। पालन करना जिनका कार्य है, जो आदि देव हैं, वे (श्री अनन्त देव) भी आनन्द में नाच रहे हैं ॥ १४ ॥ ब्रह्मा, शिव, नारद, शुक आदि जितने देव और ऋषि मुनि हैं, वे सब अनन्त देव को घेर कर नाच रहे हैं। सब के मध्य में सहस्र वदन शेष जी "गौरचन्द्र-अवतार" तथा "ब्रह्म-दैत्य-उद्धार" का कीर्त्तन कर रहे हैं ॥ १५ ॥ महा प्रकाश को देख कर कोई रोते हैं, कोई हँसते हैं कोई वहीं मूर्च्छित हो जाते हैं। कोई कहते हैं —"वाह ! वाह ! गौरचन्द्र की ठकुराई को और धन्य है पापी जगाइ-मधाइ को" ॥१६॥ श्री कृष्ण यश के सुमंगल नृत्य गीत के कोलाहल से आकाश पूर्ण हो गया। अनन्त ब्रह्माण्डों में जय जयकार की ध्वनि सुनाई दे रही है जिससे सब अमङ्गल नष्ट हो रहे हैं ॥ १७ ॥ वह मङ्गल ध्वनि सत्य लोक आदि को पार कर गयी उसने स्वर्ग-मर्त्य और पाताल को भर दिया। ब्रह्म,दैत्य-उद्धार के अतिरिक्त और कुछ सुनाई नहीं पड़ती (इस प्रकार) श्री गौरांग देव की ठकुराई

सत्य लोक-आदि जिनि, उठिल मङ्गल ध्वनि, स्वर्ग मर्त्य पूरिल पाताल।
ब्रह्म दैत्य उद्धार, वइ नाहि शुनि आर, प्रकट गौराङ्ग-ठाकुराल ॥१८॥
हेन -मते महाजन, भागवत देव गण, कृष्णा वेशे चलिलेन पुरे।
गौराङ्ग चन्द्रेर यश, विने आर कोन रस, काहारो वदने नाहि स्फुरे ॥१६॥
जय जगत मङ्गल, प्रभु गौर चन्दर, जय सर्व-जीव लोक नाथ।
उद्धारिला करुणाते, ब्रह्म दैत्य जेन मते, सभा' प्रति कर' दृष्टि पात ॥२०॥
जय जय श्रीचैतन्य, संसार तारक धन्य, पतित पावन धन्य वाना।
श्रीचैतन्य-नित्यानन्द, प्रभु भाल भक्त वृन्द, वृन्दावन गुण गाना ॥२१॥

# अथ पन्द्रहवाँ अध्याय

"मायूर राग। देख गौराचांदेर कत भाँति।
शिव शुक नारद, धेयानेना पाओत, सोयंहु अकिंचन सङ्गे दिन राति ॥धु॥"
हेन मते नवद्वीपे विश्वम्भर राय। अनन्त अचिन्त्य लीला करये सदाय ॥१॥
एत सब प्रकाशेओ केहो नाहि चिने। सिन्धु माझे चन्द्र जेन ना जानिल मीने ॥२॥
जगाइ माधाइ दुइ—चैतन्य कृपाय। परम धार्मिक रूपे वैसे नदियाय ॥३॥
ऊष· काले गङ्गा स्नान करिया निर्जने। दुइ लक्ष कृष्ण नाम लय प्रति दिने ॥४॥
आपनारे धिक्कार करये अनुक्षण। निरवधि 'कृष्ण' वलि करये क्रन्दन ॥५॥
पाइया कृष्णेर रस परम उदार। 'कृष्णेर दयित' देखे सकल संसार ॥६॥
पूर्वे जे करिल हिंसा, ताहा स्मङरिया। कान्दिया भूमिते पड़े मूर्च्छित हइया ॥७॥

---

प्रकट हो रही है ॥१८॥ इस प्रकार महा पुरुष भागवत देवगण श्री कृष्ण के प्रेमावेश में अपने २ लोक को रहे हैं। श्री गौरांग चन्द्र के यश को छोड़ और कोई रस किसी की रसना पर आ नहीं रहा है ॥ १६ ॥ जगन्मङ्गल प्रभु गौरचन्द्र की जय हो, सब जीव तथा सर्व लोक के नाथ की जय हो। हे प्रभो ! जैसे आपने करुणा करके ब्रह्म-दैत्यों का उद्धार किया वैसे ही आप सबके प्रति शुभ दृष्टि पात करें ॥ २० ॥ श्री चैतन्य चन्द्र की जय हो। संसार तारक आपको धन्य हो, आपके पतित पावन बाने को धन्य हो। श्री चैतन्य चन्द्र श्री नित्यानन्द और उनके भक्तों के गुणों को (यह) वृन्दावन दास गान करता है ॥ २१ ॥

इति यमराज कीर्तनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥

मायूर राग ॥ देखो गौर चन्द्र का कैसा सुन्दर प्रकाश है। जिनको शिव, शुक, नारदादि ध्यान में भी नहीं पाते हैं, वे ही प्रभु निष्किञ्चन जनों के साथ दिन रात विहार करते हैं ॥ टेर ॥ इस प्रकार से नवद्वीप में श्री विश्वम्भर राय सदा ही अनन्त और अचिन्त्य लीला करते रहते हैं ॥ १ ॥ इतना सब प्रकाश होने पर भी कोई आप को नहीं पहचानता है जैसे समुद्र के भीतर रहने वाले चन्द्रमा को मछलियों ने नही जाना था ॥२॥ श्री चैतन्य की कृपा से जगाइ मधाइ दोनों परम धर्मात्मा बन कर नदिया में रहने लगे ॥३॥ ऊषा काल में गङ्गा स्नान कर निर्जन में बैठ कर प्रति दिन दो लाख 'कृष्ण' नाम का जप करते हैं ॥ ४ ॥ वे अपने को क्षण २ से धिक्कारते रहते हैं और कृष्ण २ कहते हुए निरन्तर रोते हैं ॥ ५ ॥ श्रीकृष्ण-रस को पाकर दोनों परम उदार हो गये हैं (अतएव) समस्त संसार को श्री कृष्ण के प्रिय रूप में देखते हैं ॥ ६ ॥

"गौरचन्द्र आरे बाप पतित पावन। स्मङरि स्मङरि पुन करये क्रन्दन ।।८।।
आहारेर चिन्ता गेल कृष्णेर आनन्दे। स्मङरि चैतन्य कृपा दुइ जन कान्दे ।।९।।
सर्व जन सहित ठाकुर विश्वम्भर। अनुग्रह आश्वास करये निरन्तर ।।१०।।
आपने वसिया प्रभु भोजन कराय। तथापिह दुँहे चित्ते सो याथना पाय ।।११।।
विशेषे माधाइ नित्यानन्देरे लङ्घिया। पुनः पुन कान्दे विप्र ताहा स्मङरिया ।।१२।।
नित्यानन्द-छाड़िल सकल अपराध। तथापि माधाइ चित्ते ना पाय प्रसाद ।।१३।।
"नित्यानन्द-अङ्गे मुञि कैलुँ रक्त पात"। इहा वलि निरन्तर करे आत्म घात ।।१४।।
"जे अङ्गे चैतन्य चन्द्र करये विहार। हेन अङ्गे मुञि पापी करिलुँ प्रहार" ।।१५।।
मूर्च्छागत हय इहा स्मङरि माधाइ। अहर्निश कान्दे, आर किछु चिन्ता नाइ ।।१६।।
नित्यानन्द महाप्रभु बालक-आवेशे। अहर्निश नदियाय वुलेन हरिषे ।।१७।।
सहजे परमानन्द नित्यानन्द-राय। अभिमान नाहि—सर्व नगरे वेड़ाय ।।१८।।
एक दिन नित्यानन्दे निभृते देखिया। पड़िला माधाइ दुइ-चरणे धरिया ।।१९।।
प्रेम जले धोयाइल प्रभुर चरण। दन्ते तृण करि करे प्रभुर स्तवन ।।२०।।
"विष्णु रूपे तुमि प्रभु ! करह पालन। तुमि से फनाय धर अनन्त भुवन ।।२१।।
भक्तिर स्वरूप प्रभु ! तोमार कलेवर। तोमारे चिन्तये मने पार्वती-शङ्कर ।।२२।।
तोमार से भक्ति योग, तुमि कर' दान। तोमा' वइ चैतन्येर प्रिय नाहि आन ।।२३।।

---

उन्होंने पहिले जो २ हिंसा की थीं उनका स्मरण कर २ वे रोते २ मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं ।। ७ ।। हे मेरे बाप ! हे पतित पावन गौरचन्द्र स्मरण कर करके बारम्बार रोते हैं ।।८।। श्रीकृष्ण के प्रेमानन्द में मगन रहने के कारण भोजन की चिन्ता चली गयी। वे दोनों केवल श्री चैतन्य प्रभु की कृपा का स्मरण कर करके रोते रहते हैं ।। ९ ।। विश्वम्भर प्रभु, सब भक्त जनों के साथ दोनों को कृपा करके निरन्तर आश्वासन देते रहते हैं ।। १० ।। प्रभु आप बैठ करके उनको भोजन कराते हैं, फिर भी उनके चित्त को चैन नहीं पड़ता ।। ११ ।। विशेष करके तो विप्र मधाइ, जिसने श्री नित्यानन्द पर प्रहार किया था, उस अपने कृत्य को स्मरण कर करके बार २ रोता है ।। १२ ।। यद्यपि नित्यानन्द जी ने उसके सब अपराध क्षमा कर दिये हैं तथापि मधाइ के चित्त में प्रसन्नता नहीं है ।। १३ ।। "हाय ! नित्यानन्द जी के श्रीअङ्ग में से मैंने रक्त बहाया है" ! यह कह २ कर वह बार २ अपने शरीर को पीटता है ।। १४ ।। "अरे ! जिस अङ्ग में श्री चैतन्य चन्द्र विहार करते हैं ऐसे श्रीअंग पर मुझ पापी ने प्रहार किया" ।। १५ ।। यह स्मरण कर मधाइ मूर्च्छित हो जाता है और दिन रात रोता रहता है—और कोई दूसरी चिन्ता उसे नहीं है ।। १६ ।। और श्री नित्यानन्द महा प्रभु तो बालभाव के आवेश में आनन्द से नदिया में दिन रात घूमते फिरते हैं ।। १७ ।। श्री नित्यानन्द राय तो सहज स्वभाव से ही परमानन्दमय हैं, (देह) अभिमान तो आप में है ही नहीं। (अतएव बालवत्) सब शहर में घूमते फिरते हैं ।। १८ ।। एक दिन श्री नित्यानन्द को एकान्त में देख कर मधाइ उनके दोनों चरणों को पकड़ कर पड़ गया ।। १९ ।। प्रेम के अश्रुजल से प्रभु के चरणों को धो डाला और दाँतों मे तिनका ले कर प्रभु की स्तुति करने लगा ।। २० ।। "हे प्रभो ! विष्णु रूप से तुम ही (जगत् का) पालन करते हो ! तुम ही अनन्त रूप से अनन्त लोकों को अपने फण पर धारण करते हो ।।२१।।हे प्रभो ! तुम्हारा श्रीअङ्ग भक्ति का स्वरूप ही है। श्री पार्वती-शङ्कर तुम्हारा ही मन में चिन्तन करते हैं ।। २२ ।। "भक्तियोग भी तुम्हारा ही है और तुम ही उसे दान करते हो। तुम्हारे अतिरिक्त श्री चैतन्य प्रभु का और कोई प्रिय

तोमार से प्रसादे गरुड़ महाबली। लीलाय वहये कृष्ण हइ कुतूहली ॥२४॥
तुमि से अनन्त-मुखे कृष्ण गुण गाओ। सर्व-धर्म-श्रेष्ठ 'भक्ति' तुमि से बुझाओ ॥२५॥
तोमारि से गुण गाय ठाकुर नारद। तोमार से जत किछु चैतन्य सम्पद ॥२६॥
तोमार से 'कालिन्दी भेदन' करि नाम। तोमा' सेवि जनक पाइल महा ज्ञान ॥२७॥
सर्व धर्म मय तुमि पुरुष पुराण। तोमारे से वेदे बोले "आदि देव नाम ॥२८॥
तुमि से जगत्पिता महा योगेश्वर। तुमि से लक्ष्मण चन्द्र महा धनुर्धर ॥२९॥
तुमि से पाषण्ड क्षय रसिक आचार्य। तुमि से जानह चैतन्येर सर्व कार्य ॥३०॥
तोमारे सेविया पूज्या हैला महा माया। अनन्त-ब्रह्माण्ड चाहे तोमा' पद-छाया ॥३१॥
तुमि चैतन्येर भक्त, तुमि महा भक्ति। जत किछु चैतन्येर-तुमि सर्व शक्ति ॥३२॥
तुमि शय्या, तुमि खट्टा, तुमि से शयन। तुमि चैतन्येर छत्र, तुमि प्राण धन ॥३३॥
तोमा' बइ कृष्णेर द्वितीय नाहि आर। तुमि गौरचन्द्रे र सकल अवतार ॥३४॥
तुमि से करह प्रभु! पतितेर त्राण। तुमि से संहार' सर्व-पाषण्डीर प्राण ॥३५॥
तुमि से करह प्रभु! वैष्णवेर रक्षा। तुमि से वैष्णव-धर्म कराइला शिक्षा ॥३६॥
तोमार कृपाय सृष्टि करे अज-देवे। तोमारे से रेवती वारुणी सदा सेवे ॥३७॥
तोमार से क्रोधे महारुद्र-अवतार। सेइ द्वारे कर' सर्व-सृष्टिर संहार ॥३८॥
तथाहि विष्णु पुराणे (२। ५। १९) 'कल्पान्ते यस्य वक्त्रेभ्यो विषानल शिखोज्वलः।
संकर्षणात्मकोरुद्रो निष्क्रम्यात्तिजगत् त्रयम्'' ॥३९॥

---

नहीं है ॥ २३ ॥ तुम्हारे ही कृपा से गरुड जी इतने महाबली हैं कि खेल २ में ही बड़े आनन्द के साथ श्रीकृष्ण को उठाये फिरते हैं ॥२४॥ तुम हीं अनन्त मुख से श्रीकृष्ण के गुणों को गाते हो। "सब धर्मों में भक्ति हीं श्रेष्ठ है" यह तुम ही समझाते हो ॥२५॥ तुम्हारे हीं गुणों को नारद ठाकुर गाते हैं, । जो कुछ श्री चैतन्य चन्द्र की सम्पदा है वह सब तुम्हारी है ॥ २६ ॥ तुम्हारा हीं नाम 'कालिन्द्री–भेदन कारी' है। तुम्हारी सेवा करके ही जनक ने महाज्ञान प्राप्त किया था ॥ २७ ॥ तुम सर्व धर्ममय पुराण पुरुष हो। वेद तुमको ही "आदि देव" नाम से पुकारते हैं ॥ २८ ॥ तुम ही जगत्पिता हो, महा योगेश्वर हो, और तुम ही महान् धनुर्धारी लक्ष्मण हो ॥ २९ ॥ तुम ही पाषण्ड-नाशक हो, रसिकाचार्य हो और तुम ही चैतन्य के सब कार्य के ज्ञाता हो ॥ ३० ॥ तुम्हारी सेवा करके ही महामाया पूज्य बनी हैं। तुम्हारी चरण छाया ही अनन्त ब्रह्माण्ड चाहते हैं ॥ ३१ ॥ तुम श्री चैतन्य के भक्त हो, और महा भक्ति के स्वरूप भी तुम ही हो श्रीचैतन्य के तुम ही सब कुछ हो और तुम्ही सर्व शक्ति हो ॥ ३२ ॥ तुम ही श्री चैतन्य की शय्या हो, उनके सिंहासन हो, शयन हो, क्षत्र हो, प्राणधन हो, ॥३३॥ तुम्हारे सिवाय श्री कृष्ण का कोई दूसरा नहीं है, तुम ही गौरचन्द्र के सब अवतार स्वरूप हो ॥ ३४ ॥ हे प्रभो! तुम ही पतितों का उद्धार करते हो और तुम ही सब पाखंडियों के प्राणों को हरण करते हो ॥ ३५ ॥ हे प्रभो! तुम ही वैष्णवों की रक्षा करते हो और वैष्णव धर्म की शिक्षा भी तुम ही देते हो ॥३६॥ तुम्हारी कृपा से ही ब्रह्मदेव सृष्टि करते हैं। तुम्हारी ही सेवासदा श्री रेवती, वारुणी और कान्ति किया करती हैं ॥ ३७ ॥ तुम्हारे ही क्रोध से महारुद्र का अवतार होता है-उन्हीं के द्वारा तुम सृष्टि का संहार करते हो ॥ ३८ ॥ जैसा कि विष्णु पुराण में (२. ५. १९) में कहा है कि "कल्प के अन्त में जिनके (अनन्तदेव के) अनेक मुखों से विषमय अग्नि शिखा से उज्ज्वल संकर्षणात्मक रुद्र प्रकट होकर तीनों लोकों को ग्रस लेते हैं ॥ ३९ ॥ "तुम सब कुछ करके भी कुछ नहीं करते हो। तुम अनन्त

"सकल करिया तुमि किछु नाहि कर'। अनन्त ब्रह्माण्ड नाथ ! तुमि वक्षे धर ॥४०॥
परम-कोमल सुख-विग्रह तोमार। जे विग्रहे करे कृष्ण शयन विहार ॥४१॥
से हेन श्रीअङ्गे आमि करिलुँ प्रहार। मुञ्चि हेन दारुण पातकी नाहि आर ॥४२॥
पार्वती-प्रभृति नवार्बुद नारी लैया। जे अङ्ग पूजये शिव-जीवन करिया ॥४३॥
जे अङ्ग-स्मरणे सर्व-वन्ध-विमोचन। हेन अङ्गे रक्त पड़े मोहर कारण ॥४४॥
चित्रकेतु-महाराजा जे अङ्ग सेविया। सुखे विहरये वैष्णवाग्रगण्य हैया ॥४५॥
जे अङ्ग सेविया शौनकादि ऋषि गण। पाइल नैमिषारण्ये वन्ध विमोचन ॥४६॥
अनन्त ब्रह्माण्ड करे जे अङ्ग स्मरण। हेन अङ्गे मुञ्चि पापी करिलुँ लङ्घन ॥४७॥
जे अङ्ग लङ्घिया इन्द्रजित गेल क्षय। जे अङ्ग लङ्घिया द्विविदेर नाश हय ॥४८॥
जे अङ्ग लङ्घिया नाश गेल जरासन्ध। आरो मोर कुशल ! लङ्घिलुँ हेन अङ्ग ॥४९॥
लङ्घनेर कि दाय, जाहार अपमाने। कृष्णेर श्यालक 'रुक्मी' त्यजिल पराणे ॥५०॥
दीर्घ-आयु ब्रह्मासन पाइयाओ सूत। तोमा' देखि ना उठिल, हैल भस्मी भूत ॥५१॥
जाँर अपमान करि राजा दुर्योधन। स वान्धवे राजपुरे पाइल मरण ॥५२॥
दैव जोगे छिला तथा महा भक्त गण। ताँरा सब जानिलेन तोमार कारण ॥५३॥
कुन्ती, भीष्म, युधिष्ठिर, विदुर, अर्जुन। ताँ' सभार वाक्ये पुर पाइलेन पुन ॥५४॥
जाँर अपमान-मात्र जीवनेर नाश। मुञ्चि-दारुणेर कोन् लोके हैव वास" ॥५५॥
वलिते वलिते प्रेमे भासये माधाइ। वक्षे दिया श्रीचरण पडिला तथाइ ॥५६॥

ब्रह्माण्डों के नाथ को अपने वक्षःस्थल पर धारण कर रहे हो ॥ ४० ॥ तुम्हारा श्री विग्रह परम कोमल है, और सुख स्वरूप है कि जिस पर श्रीकृष्ण शयन और विहार करते हैं ॥ ४१ ॥ "ऐसे तुम्हारे श्रीअङ्ग पर मैंने प्रहार किया (अतएव) मुझ जैसा घोर पापी और कोई नहीं है । ४२ ॥ जिस श्रीअङ्ग को जीवन सर्वस्व समझ शिवजी पार्वती आदि नौ अरब स्त्रियों को लेकर पूजा करते हैं ॥ ४३ ॥ "जिस अङ्ग के स्मरण से सब बन्धन टूट जाते हैं, ऐसे अङ्ग में से मेरे कारण रक्त बहा ॥ ४४ ॥ जिस अङ्ग की सेवा करके चित्रकेतु महाराज वैष्णवों में अग्रगण्य बन कर सुख पूर्वक विहार कर रहे हैं ॥ ४५ ॥ "जिस अङ्ग का सेवन करके शौनकादि ऋषियों ने नैमिषारण्य में बन्धन से मुक्ति पाई ॥ ४६ ॥ जिस अङ्ग का अनन्त ब्रह्माण्ड स्मरण करते है, उस अङ्ग से मैंने विरोध किया ॥ ४७ ॥ "( जिस अङ्ग से विरोध करके रावण वंश सहित ध्वंस हुआ) जिस अङ्ग से विरोध करके इन्द्रजीत नष्ट हुआ । जिस अङ्ग से विरोध करके द्विविद नष्ट हुआ ॥ ४८ ॥ जिस अङ्ग से विरोध करके जरासन्ध का नाश हुआ, ऐसे उस अङ्ग से विरोध करके फिर मेरी कुशलता कैसी ? ॥ ४९ ॥ ' विरोध बैर तो दूर रहे जिसके अपमान से ही श्रीकृष्ण के साले रुक्मी को अपने प्राणों से हाथ धोने पडे थे ॥ ५० ॥ सूत को दीर्घायु और ब्रह्मासन ( व्यासासन ) प्राप्त थे परन्तु वह तुमको देख कर न उठा, इसलिए भस्म हो गया ॥५१॥ "जिस अङ्ग के अपमान करने से राजा दुर्योधन बन्धु-बान्धवों के साथ राजपुर में मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥ ५२ ॥ दैवयोग से वहाँ बड़े २ भक्तजन थे । वे सब समझ गये कि तुम्हारे कारण हो ऐसा हुआ ॥ ५३ ॥ "पश्चात् श्री कुन्ती, भीष्म, युधिष्ठिर, विदुर, अर्जुन आदि सब के कहने पर वे पुनः पुर को प्राप्त हुए ॥ ५४ । अतएव जिन (श्रीअङ्ग) के अपमान मात्र मे जीवन का नाश हो जाता है तो, (फिर कहिये) मुझ जैसे घोर पापी को किस लोक में ठौर मिलेगी" ? ॥ ५५ ॥ इस प्रकार कहते २ मधाइ प्रेम में बहा जा रहा है । वह श्री चरणों को अपनी छाती पर धारण करके वहीं पड़ गया ॥ ५६ ॥ जिन

"जे चरण धरिले ना जाइ कभु नाश। पतितेर त्राण लागि जाहार प्रकाश ॥५७॥
शरणागतेरे बाप! कर' परित्राण। माधाइर तुमि से जीवन धन प्राण ॥५८॥
जय जय जय पद्मावतीर नन्दन। जय नित्यानन्द-सर्व वैष्णवेर धन ॥५९॥
जय जय अक्रोध परमानन्द राय। शरणागतेर दोष क्षमिते जुयाय ॥६०॥
दारुण चण्डाल मुञि कृतघ्न गोखर। सर्व-अपराध प्रभु! मोर क्षमा कर" ॥६१॥
माधाइर काकु-प्रेम शुनिञा स्तवन। हासि नित्यानन्द-राय बलिला वचन ॥६२॥
"उठ उठ माधाइ! आमार तुमि दास। तोमार शरीरे हैल आमार प्रकाश ॥६३॥
शिशु-पुत्र मारिले कि बापे दुःख पाय। एइ मत तोमार प्रहार मोर गा'य ॥६४॥
तुमि जे करिले स्तुति, इहा जेइ शुने। सेह भक्त हइबेक आमार चरणे ॥६५॥
आमार प्रभुर तुमि अनुग्रह पात्र। आमाते तोमार दोष नाहि तिल-मात्र ॥६६॥
जे जन चैतन्य भजे, से-इ मोर प्राण। जुगे जुगे आमि तार करि परित्राण। ६७।
ना भजे चैतन्य जबे मोरे भजे गाय। मोर दुःख सेहो जन्मे जन्मे दुःख पाय" ॥६८॥
एत बलि तुष्ट हैया दिला आलिङ्गन। सर्व दुःख माधाइर हैल विमोचन ॥६९॥
पुन बोले माधाइ धरिया श्रीचरण। "आर एक प्रभु! मोर आछे निवेदन ॥७०॥
सर्व-जीव-हृदये बसह प्रभु! तुमि। हेन जीव बहु हिंसा करियाछि आमि ॥७१॥
कारे वा करिलु हिंसा ताहा नाहि चिनि। चिनिले वा अपराध मागिये आपनि ॥७२॥
जा' सभार स्थाने करिलाङ अपराध। कोन् रूपे तारा मोरे करिब प्रसाद। ७३॥

---

श्री चरणों को पकड़ लेने पर कभी नाश नहीं होता, जिन श्री चरणों का प्रकाश पतितों के उद्धार के लिए ही है ॥ ५७ ॥ (मधाइ बोला)—"हे पिता! मुझ शरणागत की रक्षा करो! इस मधाइ के तो तुम ही जीवन धन प्राण हो ॥ ५८ ॥ पद्मावती नन्दन की जय हो, जय हो। सब वैष्णवों के धन श्री नित्यानन्द की जय हो ॥५९॥ "अक्रोध परमानन्द राय की जय हो जय हो। शरणागत के दोष तो क्षमा के ही योग्य हैं ॥ ६० ॥ मैं घोर चाण्डाल हूँ, कृतघ्न हूँ, गधा हूँ। हे प्रभो! मेरे सब अपराधों को क्षमा करो ॥ ६१ ॥ मधाई की दीनता और प्रेम से भरे हुए स्तुति को सुन करके श्री नित्यानन्द राय हँस कर बोले ॥६२॥ "उठो! मधाइ! उठो! तुम तो मेरे दास हो। तुम्हारे शरीर में मेरा प्रकाश हुआ है ॥ ६३ ॥ "बालक पुत्र के मार देने से क्या पिता को दुःख होता है। मेरे शरीर पर तुम्हारा प्रहार भी ऐसा ही है ॥ ६४ । तुमने जो मेरी स्तुति की है, उसे जो सुनेगा, वे भी मेरे चरणों का भक्त बनेगा ॥६५॥ मेरे प्रभु के तुम कृपा पात्र हो। मेरे निकट तुम्हारा तिल भर भी दोष नहीं है ॥ ६६ ॥ जो जन श्री चैतन्य चन्द्र का भजन करते हैं, वे ही मेरे प्राण हैं, और मैं युग २ में उनकी रक्षा करता हूँ ॥६७॥ और जब श्री चैतन्य चन्द्र को तो नहीं भजता हैं और मुझको भजता है और गाता है तो मुझे उससे जो दुःख होता है उससे वह भी जन्म २ में दुःख पाता है" ॥ ६८ ॥ इतना कह कर नित्यानन्द प्रभु ने संतुष्ट होकर उसे अपना आलिंगन दिया। मधाइ के सब दुःख दूर हो गये ॥६९॥ प्रभु के श्री चरणों को पकड़ कर मधाइ फिर बोला—"हे प्रभो! एक निवेदन मेरा और है" ॥ ७० ॥ "हे प्रभो! सब जीवों के हृदय में तुम ही निवास करते हो। ऐसे बहुत से जीवों की मैंने हिंसा की है ॥७१॥ (परन्तु) किस २ की हिंसा की है मैं उनको पहचानता नहीं हूँ। यदि पहचान पाता तो अपने आप मैं उनसे अपराधों के लिए क्षमा चाहता ॥ ७२ ॥ "(ऐसी दशा में) जिन सब के निकट मैंने अपराध किये हैं, वे सब किस प्रकार मेरे ऊपर प्रसन्न होंगे? ॥ ७३ ॥ हे प्रभो! जब तुम मेरे ऊपर इतने दयालु बने हो तो हे महा-

जदि मोरे प्रभु ! तुमि हइला सदय । इथे उपदेश मोरे कर महाशय ॥७४॥
प्रभु बोले "शुन कहि तोमारे उपाय । गङ्गा घाट तुमि सज्ज करह सदाय ॥७५॥
सुखे लोक जखने करिब गङ्गा स्नान । तखने तोमारे सभे करिब कल्याण ॥७६॥
अपराध-भञ्जनी गङ्गार सेवा कार्य । इहाते अधिक वा तोमार कोन् भाग्य ॥७७॥
काकु करि सभारे करिह नमस्कार । सबे अपराध तबे क्षमिब तोमार ॥७८॥
उपदेश पाइया माधाइ ततक्षणे । चलिला प्रभुरे करि बहु प्रदक्षिणे ॥७९॥
'कृष्ण कृष्ण बलिते नयने वहे जल । गङ्गा घाट सज्ज करे, देखये सकल ॥८०॥
लोके देखि करे बड़ अपरूप ज्ञान । सभारे माधाइ करे दण्ड परणाम ॥८१॥
'जाने वा अज्ञाने जत कैलुँ अपराध । सकल क्षमिया मोरे करह प्रसाद" ॥८२॥
माधाइर क्रन्दने कान्दये सर्व जन । आनन्दे 'गोविन्द' सभे करये स्मरण ॥८३॥
शुनिल सकल लोके 'निमाञि पण्डित । जगाइ-माधाइर कैल उत्तम चरित" ॥८४॥
शुनिञा सकल लोक हइला विस्मित । सभे बोले "नर नहे निमाञि पण्डित ॥८५॥
ना बुझि निन्दये जत सकल दुर्जन । निमाञि पण्डित सत्य करये कीर्तन ॥८६॥
निमाञि पण्डित सत्य गोविन्देर दास । नष्ट हैब-जे तारे करिबे परिहास ॥८७॥
ए-दुइर बुद्धि भाल जे करिते पारे । सेइ वा ईश्वर, कि ईश्वर-शक्ति धरे ॥८८॥
प्राकृत मानुष नहे निमाञि पण्डित । एबे से महिमा तान हइल विदित" ॥८९॥
एइ मत नदियार लोक कहे कथा । आर लोक ना मिशाय-निन्दा हय जथा ॥९०॥
परम-कठोर तप करये माधाइ । 'ब्रह्मचारी' हेन ख्याति हइल तथाइ ॥९१॥

---

शय ! इस विषय में भी मुझे उपदेश करो" ॥ ७४ ॥ प्रभु बोले—"सुनो ! तुमको उपाय बतलाता हूँ । तुम सदा गङ्गा जी के घाटों को साफ किया करो ॥ ७५ ॥ उससे सुख पाकर जब लोग गङ्गा स्नान करेंगे तो सब तुम्हारा कल्याण करेंगे" ॥ ७६ ॥ "देखो ! गङ्गा जी की सेवा समस्त अपराधों का भंजन करने वाली है । इससे अधिक तुम्हारा और क्या भाग्य होगा ॥ ७७ ॥ "तुम अति दीनता के साथ सब को नमस्कार करना । वे तुम्हारे सब अपराधों को क्षमा करेंगे ॥ ७८ ॥ ऐसा उपदेश पाने पर मधाइ उसी समय प्रभु की बहुत सी प्रदक्षिणा करके चल पड़ा ॥ ७९ ॥ (घाट पर) मधाइ "कृष्ण २" कहता हुआ नेत्रों से अश्रु-जल बहा रहा है और गङ्गा के घाटों को साफ कर रहा है—सब ने यह देख पाया ॥ ८० ॥ देख कर लोगों को बड़ा ही आश्चर्य मालूम होता है । मधाइ सब को दण्डवत् प्रणाम करता है ॥ ८१ ॥ (और कहता है) "मैंने जान—अनजान में जितने अपराध किये हैं उनको आप सब क्षमा करके मुझ पर कृपा करें ॥ ८२ ॥ मधाइ के रोने पर सब लोग रो पड़ते हैं और आनन्द में "गोविन्द २" कहते हुए प्रभु का स्मरण करते हैं ॥ ८३ ॥ (अब तो) सब लोगों ने सुन पाया कि निमाइ पण्डित ने जगाइ—मधाइ को उत्तम चरित्रवान् बना दिया है ॥८४॥ सुनकर सब लोगों ने बड़ा अचरज माना और वे कहने लगे "निमाइ पण्डित मनुष्य नहीं हैं ॥८५॥ "बिना समझे ही दुष्ट लोग सब उनकी निन्दा करते हैं । निमाइ पण्डित सचमुच कीर्त्तन ही करते हैं ॥ ८६॥ निमाइ पण्डित श्री गोविन्द के सच्चे दास हैं । जो उनकी हँसी उडायँगे वे नष्ट हो जायँगे ॥ ८७ ॥ "जो इन दोनों की बुद्धि को उत्तम बना सकते हैं, वे या तो ईश्वर हैं या ईश्वर के समान शक्ति धारी हैं ॥८८॥ (अवश्य) ही निमाइ पण्डित प्राकृत मनुष्य नहीं है । अब उनकी महिमा प्रकट हो गई" ॥८९॥ इस प्रकार नदिया के लोग कहने लगे और उन्होंने प्रभु की निन्दा करने वालों से मिलना जुलना छोड़ दिया ॥ ९० ॥ इधर

निरवधि गङ्गा देखि थाके गङ्गा घाटे। स्वहस्ते कोदालि लइ आपनेइ खाटे ॥६२॥
अद्यापिह चिह्न आछे चैतन्य-कृपाय। 'माधाइर घाट' बलि सर्व लोके गाय ॥६३॥
एइ मत सत्कीर्ति हैल दोंहाकार। चैतन्य प्रसादे दुइ-दस्युर उद्धार ॥६४॥
मध्य खण्ड कथा जेन अमृतेर खण्ड। जाहाते उद्धार दुइ परम-पाषण्ड ॥६५॥
महा प्रभु गौरचन्द्र सभार कारण। इहा शुनि जार दुःख, खल सेइ जन ॥६६॥
चारि वेद-गुप्त-धन चैतन्येर कथा। मन दिया शुन जे करिल जथा जथा ॥६७॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ॥६८॥

# अथ सोलहवाँ अध्याय

हेममते नवद्वीपे विश्वम्भर-राय। भक्त-सङ्गे सङ्कीर्तन करये सदाय। १॥
द्वार दिया निशा भागे करये कीर्त्तन। प्रवेशिते नारे भिन्न-लोक कोन जन ॥२॥
एक दिन नाचे प्रभु श्रीवासेर बाड़ी। घरे छिल लुकाइया श्रीवास-शाशुड़ी ॥३॥
ठाकुर पण्डित-आदि केहो नाहि जाने। डोल मुण्डे दिया आछे घरे एक कोणे ॥४॥
लुकाइले कि हय् अन्तरे भाग्य नाइ। अल्प-भाग्ये सेइ नृत्य देखिते ना पाइ ॥५॥
नाचिते नाचिते प्रभु बोले घने-घन। "उल्लास आमार आजि नहे कि कारण" ॥६॥
सर्व-भूत अन्तर्यामि—जानेन सकल। जानिआओ ना कहेन, करे कुतूहल। ७॥
पुनः पुन नाचि बोले "सुख नाहि पाइ। केबा जानि लुकाइया आछे कोन् ठाँइ" ॥८॥

---

मधाइ परम कठोर तप करने लगा। नदिया में वह "ब्रह्मचारी" नाम से प्रसिद्ध हो गया ॥ ६१ ॥ वह निरन्तर गङ्गा जी का दर्शन करता हुआ गङ्गा घाट पर ही रहता है और अपने हाथ में कुदाली लेकर अपने आप ही कड़ी मेहनत करता है ॥ ६२ ॥ श्री चैतन्य की कृपा से आज भी उसके चिन्ह हैं। सब लोग उसे 'मधाइ—घाट' के नाम से पुकारते हैं ॥ ६३ ॥ इस प्रकार दोनों ने सत्कीर्ति कमाई। श्री चैतन्य की कृपा से दो डाकुओं का उद्धार हुआ ॥ ६४ ॥ मध्यखण्ड की कथा मानो अमृत का खण्ड है, जिसमें दो परम पाखण्डियों के उद्धार की कथा है। ६५ ॥ महाप्रभु श्री गौरचन्द्र सब के कारण (मूल) हैं—यह सुनकर जिसे दुःख हो, वह जन खल है ॥ ६६ ॥ श्री चैतन्य चन्द्र की कथा चारों वेदों का गुप्त धन है। प्रभु ने जहाँ २ जो २ किया वह सब मन देकर सुनो ॥ ६७ ॥ श्री कृष्ण चैतन्य और श्री नित्यानन्द चन्द्र को अपना सर्वस्व जानकर यह वृन्दावन दास उनके श्री चरण युगल में उनके गुणगान को समर्पण करता है ॥ ६८ ॥

इति जगाइ—मधाइ—चरित्र वर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥

इस प्रकार नवद्वीप में श्री विश्वम्भर राय भक्तों के साथ नित्य संकीर्त्तन करते हैं ॥ १ ॥ कीर्त्तन रात्रि के समय द्वार बन्द करके करते हैं (जिसमें) कोई भी अन्य लोग प्रवेश नहीं कर पाते हैं ॥ २ ॥ एक दिन प्रभु श्रीवास के घर में नाच रहे हैं भीतर घर में श्रीवास की सास छिप करके बैठी है ॥ ३ ॥ पण्डित श्रीवास आदि कोई भी नहीं जानते हैं। वह कोठी मे सिर देकर छिपी बैठी है ॥४। पर छिपने से क्या होता है, भाग्य तो नहीं है। थोड़े भाग्य से वह नृत्य देखने को नहीं मिलता है ॥ ५ ॥ प्रभु नाचते २ बारम्बार कहने लगे कि "क्या कारण है जो मेरे हृदय में उल्लास नहीं हो रहा है ?" ॥ ६ ॥ प्रभु सब जीवों के घट घट वासी हैं—अतएव सब जानते हैं, पर जान करके भी नहीं कहते—कौतुक करते हैं ॥७॥ प्रभु नाचते हुए बार-

सर्व बाड़ी विचार करिल जने जने । श्रीवास चाहिल घर सकल आपने ॥९॥
"भिन्न केहो नाहि" बलि करये कीर्त्तन । उल्लासे नाचये प्रभु श्रीशचीनन्दन ॥१०॥
आर बार रहि बोले "सुख नाहि पाइ । आजिवा आमारे कृष्ण-अनुग्रह नाइ" ॥११॥
महा त्रासे चिन्ते' सब भागवत गण । "आमा' सभा' बइ आर नाहि कोनो जन ॥१२॥
आमराइ कोन वा करिल अपराध । अतएव प्रभु चित्ते ना पाय प्रसाद ॥१३॥
आर बार ठाकुर पण्डित घरे गिया । देखे निज शाशुड़ी आछे लुकाइया । १४॥
कृष्णावेशे महामत्त ठाकुर पण्डित । आर बाह्य नाहि, तार किसेर गर्वित ॥१५॥
विशेषे प्रभुर वाक्यै कम्पित-शरीर । आज्ञा दिया चूले धरि करिला बाहिर ॥१६॥
केहो नाहि जाने इहा, आपने से जाने । उल्लासित विश्वम्भर नाचे ततक्षणे ॥१७॥
प्रभु बोले "चित्ते एबे बासिये उल्लास" । हासिया कीर्त्तन करे पण्डित-श्रीवास ॥१८॥
महानन्दे हइल कीर्त्तन कोलाहल । हासिया पड़ये सब वैष्णव मण्डल । १९॥
नृत्य करे गौर सिंह महा कुतूहली । धरिया बुलेन नित्यानन्द महाबली ॥२०॥
चैतन्येर लीला केबा देखिबारे पारे । से'इ देखे जारे प्रभु देन अधिकारे ॥२१॥
एइ मत प्रतिदिन हरि सङ्कीर्त्तन । गौरचन्द्र करे, नाहि देखे सर्व जन ॥२२॥
आर एक दिन प्रभु नाचिते नाचिते । ना पाय उल्लास, प्रभु चा'य चारि भिते ॥२३॥
प्रभु बोले "आजि केने सुख नाहि पाइ । किबा अपराध हइयाछे कार ठाँइ" ॥२४॥
स्वभावे चैतन्य भक्त आचार्य गोसाञि । चैतन्येर दास्य बइ मने आर नाञि ॥२५॥

---

बारम्बार कहते हैं कि "आज सुख नहीं मिलता । कौन जाने घर में कहीं कोई छिपा हुआ हो" ॥८॥ सब लोग घर में देखने लगे श्रीवास ने स्वयं सारा घर देख डाला ॥९॥ "बाहर वाला तो यहाँ कोई नहीं हैं"-ऐसा कह कर सब कीर्त्तन करने लगे, प्रभु श्री शचीनन्दन भी उल्लास पूर्वक नाचने लगे ॥ १० ॥ परन्तु फिर रुक कर बोले-"सुख नहीं आ रहा है । आज मेरे ऊपर श्रीकृष्ण की कृपा नहीं हैं" ॥ ११ ॥ सब भागवत गण महा त्रस्त होकर सोचते हैं-"हमारे अतिरिक्त तो यहाँ और कोई है नहीं ॥ १२ ॥ कदाचित् हम लोगों ने ही कोई अपराध किया है । जिसके कारण प्रभु का चित्त प्रसन्न नहीं हो पाता है" ॥ १३ ॥ श्रीवास पण्डित दूसरी बार घर के भीतर गये तो देखा कि उनकी अपनी सास दुबकी बैठी है ॥ १४ ॥ श्रीकृष्ण के भावावेश में महामत्त श्रीवास पण्डित को अपनी देह की ही सुध बुध नहीं है फिर बड़े-छोटे का विचार कहाँ ॥ १५ ॥ और उस पर प्रभु के वचन से उनका शरीर काँप रहा है । अतएव उन्होंने अपनी सास को "निकल यहाँ से" ऐसी आज्ञा देकर उसे केशों से पकड़ बाहर कर दिया ॥ १६ ॥ इस बात को कोई नहीं जानता है, एक श्री वास जी ही जानते हैं । इधर प्रभु उसी क्षण बड़े उल्लास के साथ नाचने लगे ॥ १७ ॥ प्रभु बोले-"अब चित्त मे उल्लास का अनुभव कर रहा हूँ" । (सुनकर) श्रीवास पण्डित हँस कर कीर्त्तन करते हैं ॥१८॥ तब तो बड़े आनन्द में कीर्त्तन का कोलाहल होने लगा और सब वैष्णव मंडली हँस २ कर लोट पोट होने लगी ॥ १९ ॥ महा कौतुकी गौरसिंह नृत्य कर रहे हैं और महाबली उनको सम्हाले हुए घूम रहे हैं ॥२०॥ श्री चैतन्य चन्द्र की लीला कौन देख सकता है । हाँ जिसको वे अधिकार देते हैं वही देख पाता है ॥ २१ ॥ इस प्रकार श्री गौरचन्द्र नित्य हरि संकीर्त्तन करते हैं, पर सब लोग उसे देख नहीं पाते हैं ॥ २२ ॥ और एक दिन भी प्रभु को नाचते २ कोई उल्लास नहीं मिला, तो वे चारों ओर देखने लगे ॥ २३ ॥ प्रभु बोले-"आज मुझे सुख क्यों नहीं मिल रहा है । न जाने किसी का क्या अपराध मुझ से हो गया" ॥ २४ ॥ श्री

जखन खट्टाय उठे प्रभु विश्वम्भर। चरण अर्पये सर्व-शिरेर उपर ॥२६॥
जखन ठाकुर निज ऐश्वर्य प्रकाशे। तखन अद्वैत सुख-सिन्धु-माझे भासे ॥२७॥
प्रभु बोले "आरे नाढ़ा ! तुइ मोर दास। तखन अद्वैत पाय परम उल्लास ॥२८॥
अचिन्त्य गौराङ्ग तत्त्व बुझन ना जाय। सेइ क्षणे धरे प्रभु वैष्णवेर पा'य ॥२९॥
दशने धरिया तृण करये क्रन्दन। "कृष्णरे ! बापरे ! तुमि आमार जीवन" ॥३०॥
ए मत क्रन्दन करे-पाषाण विदरे। निरन्तर दास्य भावे प्रभु केलि करे ॥३१॥
खण्डिले ईश्वर भाव सभाकार स्थाने। असर्वज्ञ-हेन प्रभु जिज्ञासे आपने ॥३२॥
"किछु-चाञ्चल्य मुञि उपाधिक करों। बलिह आमारे जेन तखनेइ मरों ॥३३॥
कृष्ण मोर प्राण धन, कृष्ण मोर धर्म। तोमरा आमार भाइ ! बन्धु जन्म जन्म ॥३४॥
कृष्ण दास्य बइ मोर आर नाहि गति। बलिह आमारे पाछे हय अन्य मति" ॥३५॥
भये सब वैष्णव करेन सङ्कोचन। हेन प्राण नाहि कारो-करिव कथन ॥३६॥
एइ मत जखन आपने आज्ञा करे। तखन से चरण स्पर्शिते केहो पारे ॥३७॥
निरन्तर दास्य भावे वैष्णव देखिया। चरणेर धूली लय सम्भ्रमे उठिया ॥३८॥
इहाते वैष्णव सब दुःख पाय मने। अतएव सभारे करये आलिङ्गने ॥३९॥
गुरु-बुद्धि अद्वैतेरे करे निरन्तर। एतेके अद्वैत दुःख पाय बहुतर ॥४०॥
आपनेह सेविते साक्षाते नाहि पाय। उलटिया आरो प्रभु धरे दुइ पा'य। ॥४१॥
जे चरण मने चिन्ते' से हैल साक्षाते। अद्वैतेर इच्छा थाके सदाइ ताहाते ॥४२॥

---

अद्वैताचार्य जी स्वभाव से ही श्री चैतन्य चन्द्र के भक्त हैं। उनके मन में श्री चैतन्य के दासत्व के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ॥ २५ ॥ जिस समय विश्वम्भर प्रभु विष्णु सिंहासन पर चढ़ बैठते हैं और सब भक्तों के शिर पर अपना चरण अर्पण करते हैं ॥ २६ ॥ जिस समय गौरचन्द्र प्रभु अपना ऐश्वर्य प्रकाशित करते हैं, तब उस समय अद्वैत प्रभु सुख के सागर में बहने लगते हैं ॥ २७ ॥ प्रभु कहते हैं—"अरे नाढ़ा ! तू मेरा दास है"। तब तो अद्वैत जी को परम आनन्द प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ श्री गौरांग का तत्त्व अचिन्त्य है समझ मे नहीं आता है (कारण कि) उसी समय क्षण भर में प्रभु वैष्णवों के पाँव पकड़ने लग जाते हैं। २९॥ (तथा) दाँतों में तिनका लेकर रोते हैं और "कृष्ण हे ! बाप हे ! तुम्ही मेरे जीवन हो" कह २ कर पुकारते हैं ॥३०॥ प्रभु ऐसा रोते हैं कि सुनकर पत्थर भी फट जाय। (इस प्रकार) प्रभु निरन्तर दास भाव में लीला करते है ॥ ३१॥ ईश्वर भाव के तिरोभाव होने पर प्रभु असर्वज्ञ की भाँति स्वयं सब से पूछते हैं ॥ ३२ ॥ "मैंने कुछ अस्वाभिक चंचलता तो नहीं की ? की हो तो कहो। मैं अपने प्राणों को त्याग दूँगा ॥ ३३ ॥ श्रीकृष्ण मेरे प्राणधन हैं, श्रीकृष्ण मेरे धर्म हैं, और तुम सब मेरे भाई हो, जन्म २ के बन्धु हो ॥ ३४ ॥ "श्रीकृष्ण की दासता के बिना मेरी और कोई गति नहीं है। यदि पीछे कभी मेरी मति कुछ और हो जाय तो मुझसे कह देना ॥ ३५ ॥ (परन्तु) वैष्णव लोग भय के मारे सब संकोच करते हैं, किसी में यह दम नहीं कि कुछ कह दे ॥ ३६ ॥ इस प्रकार जब स्वयं प्रभु आज्ञा करते हैं तभी कोई उनके चरण स्पर्श कर सकता है ॥ ३७ ॥ प्रभु निरन्तर दास भाव में रहते हैं, और वैष्णवों को देखते ही सम्भ्रम सहित उठकर उनकी चरण धूल लेते हैं ॥ ३८ ॥ इससे वैष्णव सब मन में दुःख पाते हैं अतएव प्रभु फिर सब को आलिंगन करते हैं ॥ ३९ ॥ श्री अद्वैत के प्रति प्रभु सदैव गुरु-बुद्धि रखते हैं, इससे अद्वैत जी बड़ा दुःख पाते हैं ॥ ४० ॥ ( कारण कि ) वे आप तो प्रभु की साक्षात् सेवा कर नहीं पाते हैं, और उल्टे प्रभु ही उनके दोनों पाँव पकड़ लेते हैं ॥४१॥

साक्षाते ना पारे, प्रभु करियाछे राग। तथापिह चुरि करे चरण-पराग ॥४३॥
भावावेशे प्रभु जे समये मूर्च्छा पाय। तखने अद्वैत चरणेर पाछु जाय ॥४४॥
दण्डवत् हइ पड़े चरणेर तले। पाखाले चरण दुइ-नयनेर जले ॥४५॥
कखनो वा निछिया पूँछिया लय शिरे। कखनो वा षड़ङ्ग-विहित पूजा करे ॥४६॥
एहो कर्म अद्वैत करिते पारे मात्र। प्रभु करियाछे जारे महा महापात्र ॥४७॥
अत एव अद्वैत सभार अग्रगण्य। सकल वैष्णव बोले "अद्वैत से धन्य ॥४८॥
अद्वैत सिंहेर एइ एकान्त महिमा। ए रहस्य ना जानये दुष्ट जत जना ॥४९॥
एक दिन महा प्रभु विश्वम्भर नाचे। आनन्दे अद्वैत तान बुले पाछे पाछे ॥५०॥
'हइल प्रभुर मूर्च्छा' अद्वैत बुझिया। लेपिला चरण धूला अङ्गे लुकाइया ॥५१॥
अशेष कौतुक जाने प्रभु गौर राय। नाचिते नाचिते प्रभु सुख नाहि पाय ॥५२॥
प्रभु कहे "चित्त केने ना वासों प्रकास। कार् अपराधे मोर ना हय उल्लास ॥५३॥
कोन् चोरे आमारे वा करियाछे चुरि। सेइ अपराधे आमि नाचिले ना पारि ॥५४॥
केहो वा कि लइयाछे मोर पद धूली। सभे सत्य कह, चिन्ता नाहि आमि वलि ॥५५॥
अन्तर्यामि-वचन शुनिञा भक्त गण। भये मौन सभे, केहो ना बोले वचन ॥५६॥
वलिते अद्वैत-भय, ना वलिले मरि। बुझिया अद्वैत बोले जोड़ हाथ करि ॥५७॥
"शुन बाप ! चोरे यदि साक्षाते ना पाय। तवे तार अगोचरे चुरि से जुयाय ॥५८॥

---

जिन चरणों का वे मन में चिन्तन किया करते हैं, वे अब साक्षात् प्रकट हो गये हैं, उनमें ही सदा अद्वैत की इच्छा रहती है ॥ ४२ ॥ वे उन श्री चरणों की साक्षात् सेवा तो कर नहीं सकते कारण कि प्रभु रुष्ट होते है परन्तु तथापि चरण-रज की चोरी करते हैं ॥ ४३ ॥ प्रभु जिस समय भावावेश में मूर्च्छित हो जाते हैं, तब अद्वैत जी उनके चरणों के पीछे की ओर जाते हैं ॥ ४४ ॥ और चरण तल पर दन्डवत् पड़ जाते हैं और नेत्रों के जल से दोनों चरणों को पखारने लगते हैं ॥ ४५ ॥ कभी बलैया लेते हैं, पोंछते हैं, औप मस्तक पर लगा लेते हैं, तो कभी षाड़ाङ्ग पूजा श्री चरणों की करते हैं ॥ ४६ ॥ इस कर्म को केवल एक श्री अद्वैत ही कर सकते हैं कि जिनको प्रभु ने ( अपनी कृपा का ) महान् से महान् पात्र बनाया है ॥ ४७ ॥ अतएव श्री-अद्वैत सब वैष्णवों के अग्रगण्य हैं और सब वैष्णव वृन्द उनको ही धन्य कहते हैं ॥ ४८ ॥ श्री अद्वैत सिंह की यही ऐकान्तिक महा महिमा है। इस रहस्य को दुष्ट लोग नहीं जानते हैं ॥ ४९ ॥ एक दिन महा प्रभु विश्वम्भर नाच रहे हैं और श्री अद्वैत आनन्द में पीछे २ घूम रहे हैं ॥ ५० ॥ प्रभु मूर्च्छित हो पड़े-यह जान कर अद्वैत जी ने चुपके से उनकी चरण रज ले अपने अङ्ग में लगा ली ॥ ५१ ॥ प्रभु गौर राय भी अनन्त कौतुक जानते हैं। (मूर्च्छा भंग के पश्चात् जब वे नाचने लगे तो) नाचते २ प्रभु को सुख नहीं मिला ॥५२॥ तब प्रभु बोले—"मैं अपने चित्त में प्रकाश का अनुभव क्यों नही कर रहा हूँ ? किसके अपराध से मेरे चित्त को उल्लास नहीं हो रहा है ॥५३॥ "अथवा तो किसी चोर ने मेरी चोरी की है। उसी अपराध से मैं नाच नहीं पाता हूँ ॥५४। अथवा क्या किसी ने मेरे पाँव की धूल ली है ? मैं कहता हूँ कि सब सच्ची बात बतला देवें कोई चिन्ता न करें ॥ ५५ ॥ अन्तर्यामी प्रभु के बचनों को सुनकर भक्त लोग सब भय से मौन हैं कोई कुछ नहीं कहता है ॥ ५६ ॥ यदि कहै तो इधर अद्वैत का भय और न कहें तो उधर मरते हैं (प्रभु का भय) भक्तों के संकट को समझ कर अद्वैत प्रभु हाथ जोड़ कर बोले ॥ ५७ ॥ "बाप जी ! सुनो ! यदि चोर को साक्षात् में नहीं मिले तो फिर पीठ पीछे चुरा लेना ही उसके लिए ठीक है ॥ ५८ ॥ मैंने ही चोरी की है,

मुञि चूरि करियाछों, मोर क्षम' दोष। आर ना करिब यदि तोमा' असन्तोष" ।।५९।।
अद्वैतेर वाक्ये महाक्रुद्ध विश्वम्भर। अद्वैत महिमा क्रोधे बोलये विस्तर ।।६०।।
सकल संसार तुमि करिया संहार। तथापिह चित्ते नाहि बास' प्रतिकार ।।६१।।
संहारेर अवशेष सबे आछि आमि। आमा' संहारिवा तवे सुखे थाक तुमि ।।६२।।
तपस्वी संन्यासी ज्ञानी योगी ख्याति जार। कारे तुमि नाहि कर' शूलेते संहार ।।६३।।
कृतार्थ हइते जे आइसे तोमा' स्थाने। ताहारे संहार कर' धरिया चरणे ।।६४।।
मथुरा निवासी एक परम वैष्णव। तोमार देखिते आइल चरण-वैभव ।।६५।।
तोमा' देखि कोथा से पाइल विष्णु भक्ति। आरो संहारिले तार चिरन्तन-शक्ति ।।६६।।
लइया चरण धूलो तारे कैला क्षय। संहार करिते तुमि परम-निर्दय ।।६७।।
अनन्त-ब्रह्माण्डे जत आछे भक्ति योग। सकल तोमारे कृष्ण दिला उपभोग ।।६८।।
तथापिह तुमि चूरि कर' क्षुद्र-स्थाने। क्षुद्र संहारिते कृपा नाहि वास' मने ।।६९।।
महा डाकाइत तुमि चोरे महा-चोर। तुमि से करिला चूरि प्रेम-सुख मोर ।।७०।।
एइ मत छले कहे सुसत्य वचन। शुनिञा आनन्दे भासे भागवत गण ।।७१।।
"तुमि से करिला चुरि, आमि कि ना पारि । हेर-देख चोरेर उपरे करों चुरि" ।।७२।।
एत बलि अद्वैतेरे आपने धरिया। लूटये चरण धूलि हासिया हासिया ।।७३।।
महाबली गौर सिंह, अद्वैत ना पारे। अद्वैत-चरण प्रभु घषे निज-शिरे ।।७४।।
चरण धरिया वक्षे अद्वैतेरे बोले। "हेर-देख चोर बान्धिलाङ निज कोले ।।७५।।

---

मेरे दोष को क्षमा करो। यदि तुम असंतुष्ट हो तो मैं ऐसा फिर कभी नहीं करूँगा" ।। ५९ ।। अद्वैत के वाक्य से श्री विश्वम्भर महा क्रुद्ध हो गये और क्रोध में भरकर अद्वैत की बहुत कुछ महिमा बखानने लगे ।। ६० ।। (प्रभु बोले)"तुमने समस्त संसार का संहार किया, फिर भी उसके प्रतिकार का तुम्हारे चित्त में कुछ भान ही नहीं है ।। ६१ ।। अब मैं ही एक संहार के लिए शेष रह गया हूँ, सो अब मुझे मार कर तुम सुख से रहना ।। ६२ ।। "तपस्वी, संन्यासी, ज्ञानी, योगी इत्यादि नाम वालों में से तुम किसको अपने त्रिशूल से समाप्त नहीं कर देते हो ।। ६३ ।। जो तुम्हारे निकट कृतार्थ होने के लिए आता है, तुम उसका चरण पकड़ कर संहार करते हो ।। ६४ ।। "मथुरा वासी एक परम वैष्णव तुम्हारे चरण वैभव-दर्शन को आया ।।६५।। पर तुम्हारे दर्शन कर उसे विष्णु भक्ति तो मिली नहीं, उल्टा तुमने उसकी पूर्व-शक्ति का ही संहार कर दिया ।। ६६ ।। "उसकी चरण धूल को लेकर उसको समाप्त कर दिया। तुम संहार कर देने में परम निर्दयी हो ।। ६७ ।। अनन्त ब्रह्माण्डों में जितना भक्ति योग है वह तो सब श्रीकृष्ण ने तुम्हारी भेंट कर दी ।।६८।। "तथापि तुम क्षुद्र जनों की चोरी करते हो। छोटों को मार डालने में तुम्हारे दया-माया भी तो नहीं होती ।।६९।। (अतएव) तुम महाडाकू हो, चोर हो, महा चोर हो। तुमने ही मेरे प्रेम-सुख को चोरी की है ।।७०।। इस प्रकार (निन्दा) के बहाने से प्रभु सु-सत्य वचन कहते हैं, जिसे सुन २ कर भागवत जन आनन्द में बहने लगे ।। ७१ ।। (प्रभु फिर बोले) "तुमने चोरी की, क्या मैं नहीं कर सकता हूँ? लो देखो अब मैं चोर की भी चोरी करता हूँ" ।। ७२ ।। इतना कह कर प्रभु ने अपने आप अद्वैत को पकड़ लिया और हँस २ कर उनकी चरण धूल लूटने लगे ।। ७३ ।। गौरसिंह महा बलवान् हैं, श्री अद्वैत उनसे पार नहीं पाते हैं। अतएव श्री अद्वैत के चरण ले ले कर प्रभु अपने मस्तक पर घिसते हैं ।। ७४ ।। चरणों को वक्षःस्थल पर रख कर श्री अद्वैत से कहते हैं "देख लो आँखें खोल कर, मैंने चोर को अपनी भुजाओं में बाँध लिया है ।। ७५ ।। चोर

करिते थाकये चुरि चोर शत बार। बारे के गृहस्थ सब करये उद्धार" ॥७६॥
अद्वैत बोलये "सत्य कहिला आपनि। तुमि जे गृहस्थ आमि किछुइ ना जानि ॥७७॥
प्राण, बुद्धि, मन, देह, सकल तोमार। के राखिव तुमि प्रभु! करिले संहार ॥७८॥
हरिषेरो दाता तुमि, तुमि देह, ताप। तुमि संहारिले वा राखिव कार् बाप ॥७९॥
नारदादि जाय प्रभु! द्वारका नगरे। तोमार चरण-धन-प्राण देखिबारे ॥८०॥
तुमि ता' सभार लह चरणेर धूली। से सब कि करे प्रभु! सेइ आमि वलि ॥८१॥
आपनार सेवक आपने जबे खाओ। कि करिब सेवके, आपने भावि चाओ ॥८२॥
कि दाय चरण धूलि, सेह रहु पाछे। काटिले तोमार शास्ता कोन् जन आछे ॥८३॥
तबे जे ए मत कर'—नहे ठाकुराली। आमार संहार हय, तुमि कुतूहली ॥८४॥
तोमार से देह, तुमि राख वा संहार'। जे तोमार इच्छा प्रभु! ताइ तुमि कर' ॥८५॥
विश्वम्भर बोले "तुमि भक्तिर भाण्डारी। एतेके तोमार चरणेर सेवा करि ॥८६॥
तोमार चरण-धूली सर्वाङ्गे लेपिले। भासये पुरुष कृष्ण प्रेम रस जले ॥८७॥
विने तुमि दिले भक्ति, केहो नाहि पाय। 'तोमार से आमि' हेन जान' सर्वथाय ॥८८॥
तुमि आमा' जथा वेच, तथाइ बिकाइ। एइ सत्य कहिलाङ तोमार से ठाँइ" ॥८९॥
अद्वैतेर प्रति देखि कृपार वैभव। अपूर्व चिन्तये मने सकल वैष्णव ॥९०॥
"सत्य से सेविला प्रभु ए महा पुरुषे। कोटि मोक्ष तुल्य नहे ए कृपार लेशे ॥९१॥
कदाचित् ए प्रसाद शंकर से पाय। जाहा करे अद्वैतेरे श्रीगौराङ्ग राय ॥९२॥
आमराओ भाग्यवन्त हेन भक्त-सङ्गे। ए भक्तेर पद धूलि लइ सर्व-अङ्गे" ॥९३॥

---

सैकड़ों बार चोरी करता है पर गृहस्थी एक ही बार में सब बसूल कर लेता है" ॥ ७६ ॥ श्री अद्वैत बोले— "आप सत्य कहते हैं। किन्तु आप गृहस्थ हैं, यह तो मैं कुछ नहीं जानता ॥७७॥ हे प्रभो! ये मेरे प्राण बुद्धि मन, देह सभी तुम्हारे हैं! तुम ही इनको मारोगे तो फिर कौन इनको बचायगा? ॥ ७८ ॥ "तुमही हर्ष के दाता हो, और (दुःख ताप) भी तुम ही देते हो। तुम ही यदि मारो तो किसका बाप बचा सकता है ॥७९॥ हे प्रभो! नारद आदि तुम्हारे चरण धन प्राण के दर्शन करने के लिए द्वारिका में जाते हैं ॥ ८० ॥ "तुम उन सब की चरण धूल लेते हो। वे बिचारे क्या करें! मेरी भी वही दशा है प्रभो ॥ ८१ ॥ जब आप अपने सेवक को खाने लगो तो सेवक बिचारा क्या करे? आप ही नेक विचार कर देखो ॥ ८२ ॥ "चरण-धूल की बात तो छोड़ो यह तो दूर रहे। तुम यदि काट भी डालो तो तुम्हारे ऊपर शासन करने वाला कौन है? ॥ ८३ ॥ परन्तु तुम जो ऐसा करते हो—यह ठकुराई नहीं है। मेरे तो प्राण जायँ तुम्हारा खेल होवे ॥८४॥ "यह देह तुम्हारी है, तुम इसे रक्खो चाहे मारो! जो तुम्हारी इच्छा होवे प्रभो! वही करो ॥ ८५ ॥ तब विश्वम्भर प्रभु बोले—"तुम भक्ति के भण्डारी हो। इसी कारण तुम्हारे चरणों की मैं सेवा करता हूँ ॥८६॥ तुम्हारे चरणों की धूल को सर्वांग में लेप करने से मनुष्य श्री कृष्ण की प्रेम रस सरिता में बहने लगता है ॥८७॥ "तुम्हारे दिये बिना भक्ति कोई नहीं पाता है। यह तुम निश्चय जान लो कि "मैं तुम्हारा हूँ" ॥८८॥ तुम मुझे जहाँ बेच देते हो, मैं वहीं बिक जाता हूँ यह मैंने तुम्हारे निकट सत्य कहा ॥ ८९ ॥ श्री अद्वैत के प्रति प्रभु की कृपा का वैभव देख कर सब वैष्णवों के चित्त में बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ९० ॥ "सचमुच में इन महापुरुष ने ही प्रभु की सेवा की है! कोटि मोक्ष भी इस कृपा की कणिका के तुल्य नहीं है ॥ ९१ ॥ "श्री गौरांगराय जो कृपा श्री अद्वैत पर करते हैं वह प्रसाद कदाचित् शंकर जी को मिलता हो तो हो ॥ ९२ ॥

हेन भक्त अद्वैतेरे बलिते हरिषे। पापि-सब दुःख पाय निज-कर्म्म-दोषे ॥९४॥
से-काले जे हैल कथा, से-इ सत्य हय। ना माने वैष्णव-वाक्य, से-इ जाय क्षय ॥९५॥
'हरि बोले' बलि उठे प्रभु विश्वम्भर। चतुर्दिगे वेढ़ि सब गाय अनुचर ॥९६॥
अद्वैत-आचार्य महा-आनन्दे विह्वल। महामत्त हइ नाचे पासरि सकल ॥९७॥
तर्जे गर्जे आचार्य दाड़िते दिया हाथ। भ्रुकुटी करिया नाचे शान्ति पुर नाथ ॥९८॥
"जय कृष्ण गोविन्द गोपाल वनमाली। अहर्निश गाय सभे हइ कुतूहली ॥९९॥
नित्यानन्द महाप्रभु परम-विह्वल। तथापि चैतन्य नृत्ये परम-कुशल ॥१००॥
सावधाने चतुर्दिगे दुइ-हस्त मेलि। पड़िते चैतन्य धरि रहे महाबली ॥१०१॥
अशेष-आवेशे नाचे श्रीगौराङ्ग राय। ताहा वर्णिवार शक्ति कोन वा जिह्वाय ॥१०२॥
सरस्वती-सहिते आपने बलराम। सेइ से ठाकुर गाय पूरि मनस्काम ॥१०३॥
क्षणे क्षणे मूर्च्छा पाय क्षणे क्षणे कम्प। क्षणे तृण लय करे, क्षणे महा-दम्भ ॥१०४॥
क्षणे हासे, क्षणे श्वास, क्षणे वा विवास। एइ मत प्रभुर भावेर परकाश ॥१०५॥
बीरासन करिया ठाकुर क्षणे वैसे। महा-अट्ट-अट्ट करि माझे प्रभु हासे' ॥१०६॥
भाग्य-अनुरूप कृपा करये सभारे। डूबिला वैष्णव-सब आनन्द सागरे ॥१०७॥
सम्मुखे देखये शुक्लाम्बर-ब्रह्मचारी। अनुग्रह करे ताने गौराङ्ग श्रीहरि ॥१०८॥
सेइ शुक्लाम्बरेर शुनह किछु कथा। नवद्वीपे वसति-प्रभुर जन्म जथा ॥१०९॥

ऐसे भक्त के सङ्ग से हम भी भाग्यवान् हैं। आओ इन भक्त की पदधूल अपने सब अङ्ग में लगावें" ॥ ९३॥ इस प्रकार वे सब अद्वैत जी को "भक्त" कहने में परम आनन्द मानते हैं परन्तु ( इसे सुन कर ) पापी सब अपने कर्म दोष से दुःख पाते हैं ॥ ९४ ॥ उस समय जो २ बातें हुई वे सब सत्य हैं। जो वैष्णव-वाक्य को नहीं मानते हैं वे ही नष्ट होते हैं ॥ ९५ ॥ विश्वम्भर प्रभु 'हरि बोल' कहते हुए उठ खड़े हुए और उन्हें चारों ओर से घेर कर सब अनुचर वृन्द गाने लगे ॥ ९६ ॥ अद्वैताचार्य महान् आनन्द में बिह्वल हैं, वे सब कुछ भूल कर महामत्त बने हुए नाच रहे हैं ॥ ९७ ॥ शान्तिपुर के आचार्य प्रभु दाढ़ी पर हाथ रख कर तर्जन-गर्जन करते हैं और भौंह टेढ़ी करके नाचते हैं ॥ ९८ ॥ सब आनन्द-मग्न होकर अहर्निश "जय कृष्ण गोविन्द गोपाल बनमाली" गाते हैं ॥ ९९ ॥ श्री नित्यानन्द महाप्रभु भी परम विह्वल हो रहे हैं, फिर भी श्री चैतन्य चन्द्र के नृत्य के समय परम चतुर हैं ॥ १०० ॥ (कारण कि) वे सावधानता से (महाप्रभु के पीछे २) चारों ओर अपने दोनों हाथों को फैलाये हुए फिरते हैं। जब श्री चैतन्य देव गिरने लगते हैं तो महाबली नित्यानन्द झट पकड़ लेते हैं ॥ १०१ ॥ श्री गौरांग राय अशेष आवेश पूर्वक नृत्य कर रहे हैं। उनके आवेश को वर्णन करने की शक्ति किस जिह्वा में है भला ? ॥ १०२ ॥ सरस्वती जी के सहित श्री बलराम जी अपनी साध पूरी करते हुए उन्हीं प्रभु का गुण गाते हैं ॥१०३॥ प्रभु क्षण २में मूर्च्छित होते हैं, क्षण २ में काँपते हैं, क्षण में हाथ में तिनका लेते हैं (दीन बनते हैं) और क्षण में बड़ा अहंकार प्रकट करते हैं ॥१०४॥ प्रभु क्षण में हँसते हैं, क्षण में लम्बी २ साँसें छोड़ते हैं, क्षण में विवश हो जाते हैं इस प्रकार से प्रभु के भाव का प्रकाश हो रहा है ॥१०५॥ प्रभु क्षण में वीरासन मार कर बैठ जाते हैं और बीच २ में अट्ट २ हास करते हैं ॥१०६॥ प्रभु सब पर उनके भाग्य के अनुसार कृपा करते हैं। ( अतएव ) सब वैष्णव जन आनन्द सागर में डूब रहे हैं ॥ १०७ ॥ प्रभु के सामने शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी को देखते हैं और उन पर कृपा करते हैं ॥ १०८ ॥ उन शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी की कुछ कथा सुनो। प्रभु के जन्म स्थान नवद्वीप में ही उनका निवास है ॥ १०९ ॥ वे

परम स्वधर्म पर, परम सुशान्त। चिनिते ना पारे केहो, परम-महान्त ॥११०॥
नवद्वीपे घरे घरे झुलि लइ कान्धे। भिक्षा करे, अहर्निश 'कृष्ण' बलि कान्दे ॥१११॥
'भिखारी' करिया ज्ञान, लोके नाहि चिने। दरिद्रे'र अवधि-करये भिक्षाटने ॥११२॥
भिक्षा करि दिवसे जे किछु विप्र पाय। कृष्णेर नैवेद्य करि तवे शेषे खाय ॥११३॥
कृष्णानन्द-प्रसादे दारिद्र नाहि जाने। बलिया बेड़ाय 'कृष्ण' सकल-भवने ॥११४॥
चैतन्येर कृपा पात्र के चिनिवे पारे। जखने चैतन्य अनुग्रह करे जारे ॥११५॥
पूर्वे जेन आछिल दरिद्र दामोदर। सेइ मत शुक्लाम्वर विष्णु भक्ति धर ॥११६॥
सेइ मत कृपाओ करिला विश्वम्भर। जे रहे प्रभुर नृत्ये वाड़ीर भितर ॥११७॥
झुलि कान्धे लइ विप्र नाचे महा रङ्गे। देखि हासे' प्रभु सब-वैष्णवेर सङ्गे ॥११८॥
वसिया आछये प्रभु ईश्वर-आवेशे। झुलि कान्धे शुक्लाम्वर नाचे कान्दे हासे' ॥११९॥
शुक्लाम्वर देखिया गौराङ्ग कृपामय। "आइस आइस" करि (प्रभु) बोलये सदय ॥१२०॥
"दरिद्र सेवक मोर तुमि जन्म जन्म। आमारे सकल दिया तुमि भिक्षु धर्म ॥१२१॥
आमिह तोमार द्रव्य अनुक्षण चाइ। तुमि ना दिलेओ आमि बल करि खाइ ॥१२२॥
द्वार कार माझे खुद काढ़ि खाइलुँ तोर। पासरिला ? कमला धरिला हस्त मोर" ॥१२३॥
ए बलिया हस्त दिया झुलिर भितर। मुष्टि मुष्टि तण्डुल चिवाय विश्वम्भर ॥१२४॥
शुक्लाम्वर बोले "प्रभु ! कैला सर्व नाश। ए तण्डुले खुद-कण विस्तर प्रकाश" ॥१२५॥
प्रभु बोले "तोर खुद-कण मुञि खाङ। अभक्ते'र अमृते उलटि नाहि चा'ङ" ॥१२६॥

परम स्वधर्म परायण हैं, परम सुशान्त हैं परम महन्त हैं-पर कोई आपको पहचानता नहीं है ॥११०॥ कन्धा पर झोली लिये आप नवद्वीप में घर २ भिक्षा माँगते हैं और दिन रात 'कृष्ण २' गाते हुए रोते रहते हैं ॥ १११ ॥ भिखारी समझ कर लोग नहीं पहचानते। दरिद्रता की सीमा हैं आप भिक्षा करके निर्वाह करते हैं ॥ ११२ ॥ दिन में विप्र भिक्षा माँग कर जो कुछ पाते हैं उसे श्रीकृष्ण को निवेदन करके पीछे से आप खाते हैं ॥ ११३ ॥ श्री कृष्णानन्द की प्रसन्नता में दरिद्रता का अनुभव नहीं करते सबों के घर "कृष्ण २" कहते हुए घूमते रहते हैं ॥ ११४ ॥ श्री चैतन्य चन्द्र के कृपा पात्र को कौन पहचान सकता है ? वही जिस पर श्री चैतन्य प्रभु जब कभी कृपा कर दें ॥ ११५ ॥ पूर्व काल में जैसे दरिद्र दामोदर (सुदामा) थे वैसे ही अब के विष्णु भक्ति धारी शुक्लाम्बर हैं ॥ ११६ ॥ और वैसी ही कृपा भी विश्वम्भर प्रभु ने इनके ऊपर की। यह प्रभु के नृत्य के समय (श्रीवास के) घर के भीतर ही रहते हैं ॥११७॥ (आज भी ये) झोली काँधे पर लटका ब्राह्मण बड़े आनन्द से नाच रहे हैं। यह देख कर प्रभु सब वैष्णवों के साथ हँसने लगे ॥ ११८ ॥ प्रभु ईश्वर के आवेश में बैठे हुए हैं और काँधे झोली लिये शुक्लाम्बर नाच-से-हँस रहे हैं ॥ ११९ ॥ शुक्लाम्बर को देख कर कृपामय श्री गौरांग प्रभु कृपार्द्र होकर "आओ २" कहके बुलाने लगे ॥ १२० ॥ "तुम मेरे जन्म २ के दरिद्र सेवक हो तुमने मुझे अपना सर्वस्व देकर भिक्षु धर्म को पकड़ा है ॥ १२१ ॥ मैं भी तुम्हारी वस्तु सदव चाहता हूँ। तुम न दो तो मैं बलपूर्वक लेकर खाता हूँ ॥ १२२ ॥ "द्वारिका के बीच में मैंने तुम्हारे चाँवल के कण छीन कर खाये थे। भूल गये क्या ? जब रुक्मिणी ने मेरा हाथ पकड़ लिया था ॥ १२३ ॥ इतना कह कर झोली के भीतर हाथ डालकर चाँवल मुट्ठी भर २ कर विश्वम्भर प्रभु चवाने लगे ॥१२४॥ शुक्लाम्बर जी बोले-"मेरा सर्वनाश कर दिया प्रभो ! इन चाँवलों में तो छोटे २ कन बहुतेरे भरे पड़े हैं ॥ १२५ ॥ प्रभु बोले-"तेरे क्षुद्र कणों को भी मैं खाता हूँ परन्तु अभक्त के अमृत को ओर मैं फिर करके भी नहीं देखता

स्वतन्त्र परमानन्द भक्त र जीवन । चिवाय तण्डुल, के करिब :निवारण ।।१२७।।
प्रभुर कारुण्य देखि सर्व भक्त गण । शिरे हाथ दिया सभे करेन क्रन्दन ।।१२८।।
ना जाने के कोन् दिगे पड़ये कान्दिया । सभेइ विह्वल हैला कारुण्य देखिया ।।१२९।।
उठिल परमानन्द-कृष्णेर कीर्त्तन । शिशु-वृद्ध आदि करि कान्दे सर्व जन ।।१३०।।
दन्ते तृण करे केहो केहो, नमस्करे ।केहो बोले "प्रभु ! कभू ना छाड़िबा मोरे ।।१३१।।
गड़ा गड़ि जायेन सुकृति शुक्लाम्बर । तण्डुल खायेन सुखे वैकुण्ठ-ईश्वर ।।१३२।।
प्रभु बोले "शुन शुक्लाम्बर-ब्रह्मचारी । तोमार हृदये आमि सर्वथा विहरि ।।१३३।।
तोमारे भोजने हय आमार भोजन । तुमि भिक्षा चलिले, आमार पर्यटन ।।१३४।।
प्रेम भक्ति विलाइते मोर अवतार । जन्म . जन्म तुमि प्रेम सेवक आमार ।।१३५।।
तोमारे दिलाङ आमि प्रेम भक्ति-दान । निश्चय जानिह 'प्रेम भक्ति' मोर प्राण" ।।१३६।।
शुक्लाम्बरे वर शुनि वैष्णव मण्डल । जय जय-हरि ध्वनि करिला सकल ।।१३७।।
कमला नाथेर भृत्य घरे घरे मागे' । ए रसेर मर्म जाने कोनो महा भागे ।।१३८।।
दश-घरे मागिया तण्डुल विप्र पाय । लक्ष्मी पति गौरचन्द्र ताहा काढ़ि खाय ।।१३९।।
मुद्रार सहित नैवेद्येर जेन विधि । वेद रूपे आपने वलिला गुण निधि ।।१४०।।
बिनि सेइ विधि, किछु स्वीकार ना करे । सकल प्रतिज्ञा चूर्ण-भक्तेर दुयारे ।।१४१।।
शुक्लाम्बर-तण्डुल-आहार परमाण । अतएव सकल विधिर 'भक्ति' प्राण ।।१४२।।
जत विधि-प्रतिषेध-सब भक्ति-दास । इहाते जाहार दुःख, से-इ बुद्धि नाश ।।१४३।।

---

।। १२६ ।। प्रभु स्वतन्त्र हैं, परमानन्द मय हैं, भक्तों के जीवन हैं । वे चाँवल चबा रहे हैं, कौन रोके उनको ।। १२७।। प्रभु की करुणा को देख कर सब भक्त लोग सिर पर हाथ रख कर रोने लगे ।। १२८ ।। रोते २ न जाने कौन २ किस २ तरफ जा गिरे । प्रभु की करुणा को देख कर सभी विह्वल हो रहे हैं ।।१२९।। लोग परमानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण नाम का कीर्त्तन करने लगे । बाल-वृद्ध सब लोग आनन्द से रोने लगे ।। १३० ।। कोई दाँतों से तिनका ले रहा है तो कोई नमस्कार कर रहा है । कोई कह रहा है "प्रभो ! मुझे कभी न छोड़े" ।। १३१ ।। पुण्यशाली शुक्लाम्बर तो भूमि पर लोट पोट हो रहे हैं और प्रभु वैकुण्ठनाथ बैठे सुख से चाँवल चबा रहे हैं ।। १३२ ।। प्रभु बोले—"शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी ! सुनो ! तुम्हारे हृदय में मैं सदा विहार करता हूँ ।। १३३ ।। तुह्मारे भोजन करने में मेरा भोजन होता है और तुह्मारे भिक्षा के लिये चलने में मेरा भ्रमण होता है ।।१३४।। "प्रेम भक्ति वितरण करने के लिये मेरा अवतार है । तुम मेरे जन्म २ के प्रेम सेवक हो ।।१३५।। तुमको मैंने प्रेम भक्ति दी । यह निश्चय जानो कि प्रेम भक्ति मेरी प्राण है" ।।१३६।। शुक्लाम्बर के लिये वरदान को सुनकर सब वैष्णव मण्डल "जय जय" "हरि बोल", "हरि बोल" की ध्वनि करते हैं ।। १३७ ।। लक्ष्मीनाथ का सेवक घर २ में भीख माँगे-इस रस के मर्म को विरला कोई महाभाग ही जानता है ।। १३८ ।। दस घरों में माँगने पर ब्राह्मण को चाँवल मिलता है और उस चाँवल को लक्ष्मी पति गौरचन्द्र छीन कर खाते हैं ।। १३९ ।। (उधर तो भगवान् को नैवेद्य अर्पण करने के लिए) मुद्राओं के सहित निवेदन करने की विधि है, जिसे स्वयं गुणनिधि प्रभु ने वेद में वर्णन की है ।। १४० ।। उस विधि के बिना प्रभु कुछ नहीं स्वीकार करते हैं, परन्तु भक्त के द्वार पर भगवान् की सब प्रतिज्ञाएँ चूर्ण हैं ।। १४१ ।। शुक्लाम्बर के चाँवल ही इसका प्रमाण है, अतएव समस्त विधियों की प्राण है "भक्ति" ।। १४२ ।। और जितने भी विधि निषेध हैं वे सब भक्ति के दास हैं । इसमें जिसको दुःख होवे उसकी बुद्धि नष्ट है ।। १४३ ।। वेदव्यास ने भक्ति

'भक्ति विधि मूल कहिलेन वेद व्यास। साक्षाते गौराङ्ग ताहा करिला प्रकाश ॥१४४॥
मुद्रा नाहि करे विप्र, ना दिल आपने। तथापि तण्डुल प्रभु खाइला जतने ॥१४५॥
विषय मदान्ध-सब ए मर्म ना जाने। सुत-धन-कुल-मदे वैष्णव ना चिने ॥१४६॥
देखि मूर्ख दरिद्र जे सुजनेरे हासे। तार पूजा वित्त कभू कृष्णेरे ना वासे ॥१४७॥
तथाहि भागवते ( ४। ३। २१ )
"न भजति कुमनिषिणां सइज्यां हरिरधनात्मधन प्रियो रसज्ञः।
श्रुत धन कुल कर्मणामदैर्ये विदधति पापमकिंचनेषु सत्सु" ॥
अकिञ्चन-प्राण कृष्ण' सर्व वेदे गाय। साक्षाते गौराङ्ग एइ ताहारे देखाय ॥१४८॥
शुक्लाम्बर-तण्डुल-भोजन जेइ शुने। सेइ प्रेम भक्ति पाय चैतन्य चरणे ॥१४९॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ॥१५०॥

# अथ सत्रहवाँ अध्याय

मध्य खण्ड कथा जेन अमृतेर खण्ड। जे कथा शुनिले घुचे अन्तर पाखण्ड ॥१॥
हेन मते नवद्वीपे प्रभु विश्वम्भर। गूढ़ रूपे सङ्कीर्त्तन करे निरन्तर ॥२॥
जखन करये प्रभु नगर भ्रमण। सर्व लोक देखे जेन' साक्षात् मदन ॥३॥
व्यवहारे देखे प्रभु जेन दम्भ मय। विद्यावल देखिया पाषण्डी करे भय ॥४॥
व्याकरण-शास्त्रे सबे विद्यार आदान। भट्टाचार्य प्रतिओ नाहिक तृण ज्ञान ॥५॥

---

को सब विधियों का मूल कहा है। श्री गौरांग ने उसे प्रत्यक्ष प्रकाशित कर दिया ॥ १४४ ॥ देखो यहाँ न तो ब्राह्मण ने मुद्रा ही दिखाई, न स्वयं अर्पण ही किया परन्तु फिर भी प्रभु ने बड़े यत्न के साथ खाया। १४५॥ विषय मदान्ध जन इस मर्म को नहीं जानते हैं। वे सुत-धन-कुल के मद से अन्धे हुए वैष्णव को नहीं पहचानते हैं ॥ १४६ ॥ जो कोई सज्जन को मूर्ख और दरिद्र देख कर हँसता है, उसकी पूजा-सम्पत्ति को प्रभु कभी हृदय में भी नहीं लाते हैं ॥१४७॥ जैसा कि श्री मद्भागवत में (४। ३। २१) कहा है कि "जो लोग विद्या, धन, कुल एवं कर्मों के अभिमान में आकर निष्किञ्चन सत्पुरुषों के प्रति पापाचरण करते हैं, श्री हरि उन दुर्बुद्धियों की पूजा को ग्रहण नहीं करते, कारण कि एक ओर तो निर्धनों के आत्मा रूपी भगवान् ही एक मात्र धन हैं अतएव वे प्रभु के प्रिय हैं, और दूसरी ओर भगवान् भी अनन्य भक्ति प्रेम-रस में आसक्त रसज्ञ हैं"। "अकिंचनों के प्राण कृष्ण हैं और कृष्ण के प्राण अकिंचन जन है "यही सब वेद गाते हैं, इसे ही श्री गौरांग देव ने उनको प्रत्यक्ष दिखा दिया ॥ १४८ ॥ शुक्लाम्बर के तण्डुल भोजन को कथा जो सुनते हैं वे श्री चैतन्य चरण में प्रेम भक्ति पाते हैं ॥ १४९ ॥ श्रीकृष्ण चैतन्य और श्री नित्यानन्द चन्द्र को अपना सर्वस्व जानकर यह वृन्दावन दास उनके युगल चरणों में उनका गुण गान समर्पण करता है ॥ १५० ॥

इति शुक्लाम्बर तण्डुल भोजनं नाम षोडशोऽध्यायः॥

इस मध्य खण्ड की कथा मानों अमृत का खण्ड है जिसको सुनने से हृदय का पाखण्ड दूर हो जाता है ॥ १ ॥ इस प्रकार नवद्वीप में प्रभु विश्वम्भर गूढ़ रूप से निरन्तर संकीर्त्तन करते हैं ॥ २ ॥ जिस समय प्रभु नगर में भ्रमण करते हैं, उस समय सब लोग आपको साक्षात् कामदेव जैसा देखते हैं ॥ ३ ॥ व्यवहार में प्रभु को दम्भपूर्ण देखते हैं और विद्याबल को देखकर पाखण्डी लोग भी डरते हैं ॥ ४ ॥ यद्यपि प्रभु ने

नगर भ्रमण करे प्रभु निज-रङ्गे । गूढ़ रूपे थाकये सेवक-सब सङ्गे ॥६॥
पाषण्डि-सकल बोले "निमाञि पण्डित । तोमारे राजार आज्ञा आइसे त्वरित ॥७॥
लुकाइया निशा भागे करह कीर्त्तन । देखिते ना पाय लोक, शाँपे' अनुक्षण ॥८॥
मिथ्या नहे लोक-वाक्य सम्प्रति फलिल । सुहृद् ज्ञाने से कथा तोमारे कहिल" ॥९॥
प्रभु बोले "अस्तु अस्तु ए सब वचन । मोर इच्छा आछे-करों राज-दरशन ॥१०॥
पढ़िलु सकल शास्त्र अलप-वयसे । शिशु-ज्ञान करि मोरे केहो ना जिज्ञासे' ॥११॥
मोरे खोजे हेन जन कोथाओ ना पाङ । जेवा जन मोरे खोजे, मुञि इहा चाङ" ॥१२॥
पाषण्डी बोलये "राजा चाहिव कीर्त्तन । ना करे पाण्डित्य-चर्चा राजा से जवन" ॥१३॥
तृण-ज्ञान पाषण्डीरे ठाकुर ना करे । आइलेन महाप्रभु आपन-मन्दिरे ॥१४॥
प्रभु बोले "हैल आजि पाषण्डि-सम्भाष । सङ्कीर्त्तन कर' सब दुःख जाउ नाश" ॥१५॥
नृत्य करे महाप्रभु वैकुण्ठ-ईश्वर । चतुर्दिगे वेढ़ि गाय सब अनुचर ॥१६॥
रहिया रहिया बोले "अरे भाइ सब । आजि केने नहे मोर प्रेम-अनुभव ॥१७॥
नगरे हइल किवा पाषण्डि सम्भाष । एइ वा कारणे नहे प्रेमेर प्रकाश ॥१८॥
तोमा' सभा' स्थाने वा हइल अवज्ञान । अपराध क्षमिया राखह मोर प्राण" ॥१९॥
महा पात्र अद्वैत भ्रकुटी करि नाचे । "के मते हइव प्रेम, नाढ़ा शुषियाछे ॥२०॥
महा प्रेमे अद्वैत बलये हासि हासि । उलटा चोर शिरिवान्धे सेइ हेल वासि ॥२१॥
मुञि नाहि पाङ प्रेम, ना पाय श्रीवास । तेलि-मालि-सने कर' प्रेमेर विलास ॥२२॥

---

विद्या में केवल व्याकरण शास्त्र ही पढ़ा है तथापि वे भट्टाचार्यों को तृण के समान भी नहीं समझते हैं ॥५॥ प्रभु अपने आनन्द में नगर भ्रमण करते हैं और सेवक लोग गूढ़ रूप से सब साथ रहते हैं ॥ ६ ॥ पाखण्डी लोग सब कहते हैं—"निमाइ पण्डित ! तुम्हारे लिए शीघ्र ही राजा की आज्ञा आ रही है ॥ ७ ॥ तुम छिप करके रात के समय कीर्त्तन करते हो लोग देख नहीं पाते इसलिए रोज स्राप देते हैं ॥८॥ 'लोगों के वचन मिथ्या नहीं है। वे अब फल रहे है। सुहृद समझ कर हमने तुमसे सब बातें कह दीं" ॥ ९ ॥ प्रभु बोले- "तुम्हारे ये वचन सब फलें, फलें ! मेरी भी इच्छा है कि मैं राजा के दर्शन करूँ ॥१०॥ "मैंने छोटी अवस्था में ही सब शास्त्र पढ़ लिये परन्तु बालक समझ कर कोई मेरी बात नहीं पूछता ॥ ११ ॥ मुझे खोजे ऐसा मनुष्य मैं कहीं नहीं देखता। (इसीसे) मैं यही चाहता हूँ कि कोई मेरी खोज-खबर करे ॥ १२ ॥ पाखण्डी बोले—"राजा तुम्हारा कीर्त्तन देखेगा !! पाण्डित्य की चर्चा तो करेगा नहीं कारण कि वह यवन है" ॥१३॥ प्रभु पाखण्डियों को तिनका जैसा भी नहीं समझते हैं। महाप्रभु अपने घर चले आये ॥ १४ ॥ आकर बोले "आज पाखण्डियों के साथ वार्तालाप हुआ है। अतएव संकीर्त्तन करो जिससे सब दुःख नाश होवें" ॥१५॥ वैकुण्ठ नाथ महाप्रभु नृत्य करते हैं और सब अनुचर गण चारों ओर से घेर कर गाते हैं ॥१६॥ प्रभु ठहर २ कर कह उठते हैं "अरे भाइयो ! आज मुझे प्रेम का अनुभव क्यों नहीं हो रहा है ॥ १७ ॥ "नगर मे आज पाखंडियों से सम्भाषण हुआ क्या इसी कारण से प्रेम का प्रकाश नहीं है ? ॥ १८ ॥ अथवा तुम सब के निकट कोई अज्ञानता हुई है ? सो मेरे अपराध को क्षमा कर मेरे प्राण बचाओ ॥ १९ ॥ महापात्र श्री अद्वैत भौंह टेढ़ी कर २ के नाच रहे हैं। प्रभु कहते हैं "प्रेम होगा कैसे ? नाढा ने सोख जो लिया है" ॥२०॥ तब महा प्रेम में मस्त अद्वैताचार्य हँस २ कर कहते हैं "यह तो चोर का उल्टा चोरी लगाना जैसा लगता है ॥ २१ ॥ "देखो तो सही, न मैं प्रेम पाता हूँ, न श्रीवास ही पाते हैं। और तेली-मालियों के साथ प्रेम-

अवधूत तोमार प्रेमेर हैल दास। आमि से बाहिर, आर पण्डित-श्रीवास ॥२३॥
आमि-सब नहिलाङ प्रेम-अधिकारी। अवधूत आजि आसि हइला भाण्डारी ॥२४॥
यदि मोरे प्रेम योग ना देह' गोसाञ्जि। शुषिव सकल प्रेम, मोर दोष नाञ्जि" ॥२५॥
चैतन्येर प्रेमे मत्त आचार्य गोसाञ्जि। कि बोलये, कि करये, किछु स्मृति नाञ्जि ॥२६॥
सर्व मते कृष्ण भक्ति महिमा बाढ़ाय। भक्त जने यथा बेचे, तथाइ विकाय ॥२७॥
जे भक्ति-प्रभावे कृष्णे बेचिवारे पारे। से जे वाक्य वलिवेक, कि विचित्र तारे ॥२८॥
नाना रूपे भक्त बाढ़ायेन गौरचन्द्र। के बुझिते पारे तान अनुग्रह दण्ड ॥२९॥
ठाकुर-विषाद ना पाइया प्रेम-सुख। हाथे तालि दिया नाचे अद्वैत कौतुक ॥३०॥
अद्वैतेर वाक्य शुनि प्रभु विश्वम्भर। प्रभु आर किछु ना करिला प्रत्युत्तर ॥३१॥
सेइ मत रड़ दिया घुचाइया द्वार। पाछे धाय नित्यानन्द-हरिदास तार ॥३२॥
'प्रेम-शून्य शरीर थुइया किवा काज'। चिन्तिया पड़िला प्रभु जाह्नवीर माझ ॥३३॥
झाँप दिया ठाकुर पड़िला गङ्गा माझे। नित्यानन्द-हरिदास झाँप दिला पाछे ॥३४॥
आथे व्यथे नित्यानन्द धरिलेन केशे। चरण चापिया धरे प्रभु हरि दासे ॥३५॥
दुइ जने धरिया तुलिला लँया तीरे। प्रभु बोले तोमरा वा धरिले किसेरे ॥३६॥
कि काजे राखिव प्रेम रहित जीवन। किसेरे वा तोमरा धरिले दुइ जन" ॥३७॥
दुइ जने महा कम्प—आजि किवा फले। नित्यानन्द-दिग चा'हि गौरचन्द्र बोले। ३८॥
"तुमि केने धरिला आमार केश भारे"। नित्यानन्द बोले "केने जाओ मरि बारे" ॥३९॥

---

विलास करते हो तुम ॥ २२ ॥ और वह अवधूत भी तुम्हारे प्रेम का दास हो गया एक मैं बाहर हूँ और है श्रीवास बाहर ॥ २३ ॥ "हम तो सब प्रेम के अधिकारी न हुए और वह अवधूत बाहर से आकर (प्रेम का) भण्डारी हो गया ॥ २४ ॥ हे गुसांई ! यदि तुम मुझे अपना प्रेमयोग नहीं दोगे तो मैं तुम्हारे सब प्रेम को सोख लूँगा—फिर मुझे दोष न देना" ॥ २५ ॥ श्रीचैतन्य के प्रेम में अद्वैताचार्य मत्त हैं—भला क्या बोलते हैं, क्या करते हैं, इसकी कुछ सुधि नहीं है ॥ २६ ॥ श्रीकृष्ण सब प्रकार से भक्ति की महिमा को बढ़ाते हैं। भक्त जन जहाँ उनको बेच देते हैं, वहीं वे बिक जाते हैं ॥ २७ ॥ जो अपनी भक्ति के बल पर श्रीकृष्ण को बेच सकते हैं, वे यदि कुछ उल्टी-सीधी कह भी दें, तो उनके लिए कोई विचित्र बात नहीं ॥ २८ ॥ श्री-गौरचन्द्र नाना प्रकार से भक्त को बढ़ाते हैं। उनके अनुग्रह—विग्रह को कौन समझ सकता है ॥ २९ ॥ प्रभु को तो प्रेम सुख के न मिलने से विषाद है और अद्वैत ताली बजा कर कौतुक करते हुए नाच रहे हैं ॥३०॥ श्री अद्वैत के वाक्य को सुनकर प्रभु ने कुछ उत्तर नहीं दिया ॥ ३१ ॥ वे उसी अवस्था में दौड़ कर द्वार खोल भाग गए पीछे २ नित्यानन्द जी और हरिदास जी भागे ॥ ३२ ॥ प्रेम शून्य इस शरीर को रख कर क्या लाभ—"ऐसा सोच कर प्रभु गङ्गा जी में कूद पड़े ॥३३॥ प्रभु झम्म से गङ्गा जी में कूद पड़े तो पीछे २ नित्यानन्द—हरिदास जी भी झम्म से कूद पड़े ॥ ३४ ॥ नित्यानन्द ने लपक झपक कर प्रभु के केश पकड़ लिये और हरिदास जी ने चरण दबोच कर पकड़ लिये ॥ ३५ ॥ दोनों ने पकड़ कर किनारे पर ला रक्खा तो प्रभु बोले "तुम दोनों ने मुझे क्यों पकड़ा ? ॥ ३६ ॥ यह प्रेम रहित जीवन किस कार्य के लिये रक्खूँ ? किस लिए तुम दोनों ने मुझे पकड़ा ?" ॥ ३७ ॥ दोनों जने तो काँपने लगे सोचते हैं कि न जाने आज क्या होने वाला है, तब नित्यानन्द जी की ओर देख गौरचन्द्र बोले ॥ ३८ ॥ "तुमने मेरे केश भार क्यों पकड़े ?" नित्यानन्द जी भी बोले "मरने के लिए क्यों जाते हो ? ॥ ३९ ॥ प्रभु बोले "मैं जानता हूँ तुम परम विह्वल

प्रभु बोले "जानि तुमि परम-विह्वल"। नित्यानन्द बोले "प्रभु! क्षमह सकल ॥४०॥
जार शास्ति करि वारे पार' सर्व मते। तार लागि चल निज शरीर एड़िते ॥४१॥
अभिमाने सेवके वा वलिल वचन। प्रभु ताहे लय किबा भृत्येर जीवन" ॥४२॥
प्रेम मय नित्यानन्द, बहे प्रेम जल। जार प्राण धन बन्धु-चैतन्य सकल ॥४३॥
प्रभु बोले "शुन नित्यानन्द! हरिदास। कारो स्थाने पाछे कर' आमार प्रकाश ॥४४॥
'आमा' ना देखिला' वलि वलिवा वचन। आमार आज्ञाय एइ करिह पालन ॥४५॥
मुञि आजि सङ्गोपे थाकिव एक ठाञि। कारे पाछे कह, तवे मोर दोष नाञि" ॥४६॥
ए वलिया प्रभु नन्दनेर घरे जाय। ए दुइ सङ्गोप कैला प्रभुर आज्ञाय ॥४७॥
भक्त-सब ना पाइया प्रभुर उद्देश। दुख मय हैल सब श्रीकृष्ण-आवेश ॥४८॥
परम-विरहे सभे करेन क्रन्दन। केहो किछु ना बोलये, पोड़े सर्व-मन ॥४९॥
सभार उपर जेन हैल वज्राघात। महा-अपरुद्ध हैला शान्ति पुर नाथ ॥५०॥
अपरुद्ध हइ प्रभु प्रभुर विरहे। उपवास करि थाकि लेन गिया गृहे ॥५१॥
सभेइ चलिला घरे शोकाकुलि हैया। गौराङ्ग-चरण-धन हृदये वान्धिया ॥५२॥
ठाकुर आइला नन्दन-आचार्येर घरे। वसिला आसिया विष्णु खट्टार उपरे ॥५३॥
नन्दन देखिया गृहे परम मङ्गल। दण्डवत् हइया पड़िला भूमितल ॥५४॥
सत्वरे दिलेन आनि नूतन वसन। तिता-वस्त्र एड़िलेन श्रीशचीनन्दन ॥५५॥
प्रसाद, चन्दन, माला, दिव्य अर्घ्य, गन्ध। चन्दने भूषित कैल प्रभुर श्रीअङ्ग ॥५६॥
कर्पूर-ताम्बूल आनि दिलेन सम्मुखे। भक्तेर पदार्थ प्रभु खाय निज-सुखे ॥५७॥

हो"। नित्यानन्द जी बोले—"प्रभो! सब क्षमा करो ॥ ४० ॥ "तुम जिसको सब प्रकार से दण्ड दे सकते हो, उसके लिये तुम अपने शरीर को छोड़ने जाते हो ॥ ४१ ॥ सेवक ने अभिमान में आकर कुछ वचन कह भी दिये तो क्या उसके लिये प्रभु को सेवक का प्राण ले लेना चाहिये ?" ॥ ४२ ॥ प्रेममय श्रीनित्यानन्द के नेत्रों से प्रेम जल बह रहा है—(क्यों न हो) उनके प्राण, बन्धु, धन सब श्री चैतन्य ही है ॥ ४३ ॥ प्रभु बोले "सुनो! नित्यानन्द और हरिदास जी! किसी के निकट मेरा प्रकाश न कर देना ( मुझे बतला न देना ) ॥४४॥ "तुम दोनों तो यही कहना कि "हमने उनको नहीं देखा"। मेरी आज्ञा से इसका पालन करो ॥४५॥ मैं आज एक जगह छिप कर रहूँगा। तुमने यदि किसी से कह दिया तो फिर मुझे दोष न देना" ॥ ४६ ॥ यह कह कर प्रभु नन्दनाचार्य के घर चले गए। और इन दोनों ने भी प्रभु की आज्ञा से इस बात को गुप्त रक्खी ॥ ४७ ॥ तब तो प्रभु का पता न मिलने पर सब भक्त लोगों का श्री कृष्ण आनन्द का आवेश दुःख में परिणत हो गया ॥ ४८ ॥ परम विरह में सब लोग रोने लगे कोई कुछ नही बोलते हैं। सबके मन जल रहे हैं ॥ ४९ ॥ मानो तो सब के ऊपर वज्र गिर पड़ा हो और शान्तिपुर नाथ (अद्वैताचार्य) तो बड़े अपराधी बन गए ॥ ५० ॥ वे अपराधी बन कर प्रभु के विरह में अनशन करके घर में जा बैठे ॥ ५१ ॥ श्री गौरांग चरण धन को हृदय में बाँध कर सब शोकाकुल हो अपने २ घर चले गए ॥ ५२ ॥ प्रभु नन्दनाचार्य के घर में आए और आकर विष्णु-सिंहासन पर बैठ गए ॥ ५३ ॥ नन्दनाचार्य ने घर में परम मङ्गल (मूर्ति प्रभु) को देख पृथ्वी पर पड़कर दण्डवत् प्रणाम किया ॥ ५४ ॥ और जल्दी से नये वस्त्र लाकर दिये। तब श्रीशची-नन्दन ने गीले वस्त्रों को बदला ॥५५॥ फिर नन्दनाचार्य ने प्रसाद, चन्दन, माला, दिव्य अर्घ्य गन्धादि अर्पण किया और प्रभु के श्रीअङ्ग को चन्दन से चर्चित किया ॥५६॥ और कपूर युक्त ताम्बूल लाकर सन्मुख रक्खा

पासरिला दुःख प्रभु नन्दन-सेवाय । सुकृति नन्दन वसि ताम्बूल जो गाय ॥५८॥
प्रभु बोले "मोर वाक्य शुनह नन्दन । आजि तुमि आमारे करिवा सङ्गोपन" ॥५९॥
नन्दन बोलये "प्रभु ! ए बड़ दुष्कर । कोथा लुकाइवा तुमि संसार-भितर ॥६०॥
हृदये थाकिया ना परिला लुकाइते । विदित करिल तोमा' भक्त तथा हैते ॥६१॥
जे नारिल लुकाइते क्षीर सिन्धु-माझे । से केमने लुकाइव वाहिर-समाजे" ॥६२॥
नन्दन-आचार्य-वाक्य शुनि प्रभु हासे' । वञ्चिलेन निशि प्रभु नन्दन-सम्भाषे ॥६३॥
भाग्यवन्त नन्दन अशेष-कथा-रङ्गे । सर्व रात्रि गोङाइला ठाकुरेर सङ्गे ॥६४॥
क्षण-प्राय गेल निशा कृष्ण-कथा-रसे । प्रभु देखे-दिवस हइल परकाशे ॥६५॥
अद्वैतेर प्रति दण्ड करिया ठाकुर । शेषे अनुग्रह मने वाढ़िल प्रचुर ॥६६॥
आज्ञा कैल प्रभु नन्दन आचार्य चा'हिया । "एकेश्वर श्रीवास पण्डिते आन' गिया" ॥६७॥
सत्वरे नन्दन गेला श्रीवासेर स्थाने । आइला श्रीवास लैया-प्रभु जेइ खाने ॥६८॥
प्रभु देखि ठाकुर पण्डित कान्दे प्रेमे । प्रभु बोले "चिन्ता किछु ना करिह मने ॥६९॥
सदय हइया प्रभु जिज्ञासे' आपने । "आचार्येर वार्त्ता कह-आछये के मने" ॥७०॥
"आरो वार्तालिह" बोले पण्डित-श्रीवास । "आचार्येर कालि प्रभु ! हैल उपवास ॥७१॥
आछि वारे आछे प्रभु ! सवे देह मात्र । कि वलिव आमिरा-तोमार प्रेम पात्र ॥७२॥
अन्य जन हइले कि आमराइ सहि । तोमार से सभेइ जीवन प्रभु ! वहि' ॥७३॥
तोमा' विने कालि प्रभु ! सभार जीवन । महाशोच्य वासिलाङ-आछे कि कारण ॥७४॥

प्रभु अपने आनन्द में भक्त की वस्तु खा रहे हैं ॥ ५७ ॥ नन्दनाचार्य की सेवा से प्रभु दुःख भूल गए है और पुण्यशाली नन्दनाचार्य सन्मुख बैठकर ताम्बूल अर्पण कर रहे हैं ॥ ५८ ॥ प्रभु बोले "नन्दन ! मेरी बात सुनो ! आज तुम मुझको छिपा कर रखना" ॥ ५९ ॥ नन्दनाचार्य बोले-"प्रभो ! यह तो बड़ा दुष्कर कार्य है । (बताओ तो सही) संसार के भीतर तुम कहाँ छिपोगे ? ॥ ६० ॥ "हृदय में रहकर आप छिप न सके । भक्तों ने तुमको वहाँ से बाहर निकाल कर छोड़ा ॥ ६१ ॥ और जो क्षीर समुद्र में छिप न सके वे भला बाहर समाज में कैसे छिप सकेंगे ?" ॥ ६२ ॥ नन्दनाचार्य के वचनों को सुनकर प्रभु हँसे और वह रात्रि प्रभु ने नन्दनाचार्य के सहित सम्भाषण में बिताई ॥६३ । भाग्यवान् श्रीनन्दन ने प्रभु के साथ अशेष वार्त्ताओं के आनन्द में समस्त रात्रि बिताई ॥ ६४ ॥ श्रीकृष्ण कथा रस में रात्रि एक क्षण के समान बीत गई । प्रभु ने देखा कि उज्याला हो आया है ॥ ६५ ॥ अद्वैत को दण्ड देकर अन्त में प्रभु के मनमें बड़ी भारी कृपा उमड़ आई ॥ ६६ ॥ और वे नन्दनाचार्य के प्रति दृष्टि देकर बोले "जाकर अकेले एक श्रीवास पण्डित को बुला लाओ" ॥६७॥ नन्दनाचार्य शीघ्रता से श्रीवास के घर गये और उन्हें लेकर प्रभु के पास आये ॥६८॥ प्रभु को देखकर श्रीवास पण्डित प्रेम में रोने लगे । तब प्रभु बोले "श्रीवास ! मनमें कुछ चिन्ता मत करो" ॥ ६९ ॥ प्रभु ने दयालु होकर स्वयं पूछा-"आचार्य की बात कहो ! कैसे हैं वे ?" ॥ ७० ॥ श्रीवास पण्डित बोले-"फिर भी उनकी ही बात पूछते हो ( तो सुनो ) प्रभो ! आचार्य का कल उपवास हुआ है ॥ ७१ ॥ रहने के लिये प्रभो ! उनकी एक देह मात्र रह गई है ! हम लोग भला क्या कहें ! वे आपके प्रेम-पात्र हैं ॥ ७२ ॥ "और कोई होता तो क्या हम ही लोग सह, लेते ? हे प्रभो ! तुम से ही सब जीवन धारण किये हुए हैं ॥ ७३ ॥ परन्तु तुम्हारे बिना कल सब का जीवन परम शोचनीय लगता था न जाने रह क्यों गया ॥ ७४ ॥ "जैसे उनके वचन वैसा उनको आप दण्ड दे चुके । अब आकर प्रसन्नता पूर्वक सन्मुख हो जाँय"

जेन दण्ड करिला वचन अनुरूप। एखन आसिया हओ प्रसाद-सम्मुख" ॥७५॥
श्रीवासेर वचन शुनिञा कृपा मय। चलिला, आचार्य-प्रति हइया सदय ॥७६॥
मूर्च्छागत आसि प्रभु देखे आचार्येरे। महा-अपराधी हेन माने' आपनारे ॥७७॥
प्रसादे हइया मत्त बुले अहङ्कारे। पाइया प्रभुर दण्ड कम्प देह भारे ॥७८॥
देखिया सदय प्रभु बोलये उत्तर। "उठह आचार्य! हेर-आमि विश्वम्भर" ॥७९॥
लज्जाय अद्वैत किछु ना बोले वचन। प्रेम योगे मने चिन्ते' प्रभुर चरन ॥८०॥
आर बार बोले प्रभु "उठह आचार्य। चिन्ता नाहि, उठि कर' आपनार कार्य" ॥८१॥
अद्वैत बोलये "प्रभु! कराइला कार्य। जत किछु बोल मोरे, सब प्रभु! बाह्य ॥८२॥
मोरे तुमि निरन्तर लओयाओ कुमति। अहङ्कार दिया मोरे कराओ दुर्गति ॥८३॥
सभारे उत्तम दिया आछ दास्य भाव। मोरे दिया छह प्रभु! जत किछु राग ॥८४॥
लओयाओ आपने दण्ड कराह आपने। मुखे एक बल तुमि, कर' आर मने ॥८५॥
प्राण, देह, धन, मन,' सब तुमि मोर। तवे मोरे दुःख देह,' ठाकुरालि तोर ॥८६॥
हेन कर' प्रभु! मोरे दास्य भाव दिया। चरणे राखह दासी नन्दन करिया" ॥८७॥
शुनिञा अद्वैत वाक्य प्रभु विश्वम्भर। कहे तवे कहे सर्व-वैष्णव-भितर ॥८८॥
शुन शुन आचार्य तोमार तत्व कइ। व्यवहार-दृष्टान्त देखह तुमि एइ ॥८९॥
राज पात्र राजा-स्थाने चालये जखने। दुयारी प्रहरी सब करे निवेदने ॥९०॥
महा पात्र यदि मोचरिया राजा-स्थाने। जीव्य लइ दिले रहे गोष्ठीर जीवने ॥९१॥
जे महापात्रेर स्थाने करे निवेदन। राज-आज्ञा हैले काटे सेइ सब जन ॥९२॥

---

॥ ७५ ॥ श्रीवास के वचन सुनकर कृपामय प्रभु अद्वैताचार्य के प्रति दयालु होकर चले ॥७६॥ प्रभु ने आकर देखा कि आचार्य मूर्च्छित से पड़े हैं। अपने को महा अपराधी जैसा माने हुए हैं ॥ ७७ ॥ (जो) प्रभु की प्रसन्नता में मत्त होकर बड़े अभिमान में घूमा करते थे, (आज) वे प्रभु का दण्ड पाकर काँप रहे हैं, देह सम्हाले नहीं सम्हलती है ॥ ७८ ॥ यह देखकर दयालु प्रभु बोले "उठो आचार्य! देखो! मैं विश्वम्भर हूँ" ॥ ७९ ॥ अद्वैत जी लज्जावश कुछ बोलते नहीं, मन में ही प्रेम पूर्वक प्रभु के श्रीचरणों का चिन्तन करते रहते हैं ॥८०॥ प्रभु फिर बोले—"उठो आचार्य कोई चिन्ता मत करो। उठ कर अपना काम करो" ॥८१॥ अद्वैत जी बोले "हे प्रभो! काम तो करा चुके। तुम जो मुझसे कहते हो, वे सब बाहर का दिखावा है ॥ ८२ ॥ तुम मुझे सदा कुमति में ले जाते हो और अहंकार देकर मेरी दुर्गति करते हो ॥ ८३ ॥ "सब को तो उत्तम दास भाव दे रक्खा है और जितना कुछ क्रोध है वह प्रभो! मुझको ही दिया है ॥ ८४ ॥ आप ही सब कुछ करवाते हो और आप ही दण्ड देते हो। मुख से तुम कुछ कहते हो, मन में कुछ और करते हो ॥ ८५ ॥ "मेरे प्राण, देह, धन, मन सब तुम ही हो। फिर भी जो तुम मुझे दुःख देते हो यही तो तुम्हारी ठकुराई है ॥ ८६ ॥ हे प्रभो! (अब तो) ऐसा करो कि मुझे दास भाव दे दासीपुत्र बनाकर अपने चरणों में रख लो" ॥ ८७ ॥ अद्वैताचार्य के वचनों को सुनकर प्रभु विश्वम्भर निष्कपट भाव से सब वैष्णवों के मध्य में बोले ॥ ८८ ॥ "सुनो हे आचार्य! सुनो! मैं तुम्हारा तत्त्व वर्णन करता हूँ, व्यवहार में भी इसका दृष्टान्त तुम यह देख लो कि ॥८९॥ "राज-मंत्री जब राजा के निकट जाता है तो द्वारिया-पौरिया आदि सब उनको अपना निवेदन जनाते हैं ॥ ९० ॥ जब महामंत्री राजा को उनका निवेदन सुनाकर उनकी जीविका लेकर उनको देता है तब ही वे अपने कुटुम्ब सहित जीवन पाते हैं ॥ ९१ ॥ (परन्तु) जिस राज मंत्री के निकट वे

सब राज्य भार देइ जे महा पात्रे रे। अपराधे शोच्य-हाथे तार शास्ति करे।।९३।।
एइ मत कृष्ण महाराज राजेश्वर। कर्ता हर्ता-ब्रह्मा शिव जाहार किङ्कर।।९४।।
सृष्टि-आदि करितेओ दिया छेन शक्ति। शास्ति करितेओ केहो ना करे द्विरुक्ति।।९५।।
रमा-आदि भवादिओ कृष्ण-दण्ड पाय। दोषो प्रभु सेवकेर क्षमये सदाय।।९६।।
अपराध देखि कृष्ण जार शस्ति करे। जन्म जन्म दास सेइ-बलिल तोमारे।।९७।।
उठिया करह स्नान, कर' आराधन। नाहिक तोमार चिन्ता, करह भोजन"।९८।।
प्रभुर वचन शुनि अद्वैत-उल्लास। दासेर शुनिआ दण्ड, बड़ हैल हास।।९९।।
"एखने से बलि प्रभु! तोर ठाकुरालि"। नाचेन अद्वैत रङ्गे दिया कर तालो।।१००।।
प्रभुर आश्वास शुनि आनन्दे विह्वल। पासरिला पूर्वे जत विरह सकल।।१०१।।
सकल वैष्णव हैला परम-आनन्द। तखने हासये हरिदास-नित्यानन्द।।१०२।।
ए सब परमानन्द-लीला-कथा-रसे। केहो केहो वञ्चित हइल दैव दोषे।।१०३।।
चैतन्येर प्रेम पात्र श्रीअद्वैत-राय। ए सम्पत्ति अल्प हेन बुझये मायाय।।१०४।।
अल्प करि ना मानिह 'दास' हेन नाम। अल्प भाग्ये 'दास' नाहि करे भगवान्।।१०५।।
आगे हय मुक्त, तबे सर्व-बन्ध-नाश। तबे सेइ हैते पारे 'श्रीकृष्णेर दास'।।१०६।।
एइ व्याख्या करे भाष्य कारेर समाजे। मुक्त सब लीला- तनु करि कृष्ण भजे।।
तथा चोक्तं भाष्य कृद्भिः—"मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते"।।१०७।।

---

सब विनती जनाते हैं, राजा की आज्ञा होने पर वे ही सब उसका सिर काट डालते हैं।। ९२।। राजा जिस महा मंत्री को राज्य का सारा भार दे देता है, अपराध होने पर अति तुच्छ जन के हाथ से उसी को दण्ड देता है।।९३।। "इसी प्रकार श्रीकृष्ण राजेश्वर हैं, कर्त्ता, हर्त्ता हैं, ब्रह्मा, शिव आदि जिनके किंकर हैं।।९४।। (श्रीकृष्ण ने) उनको सृष्टि, संहार आदि की शक्ति भी दे रक्खी है, और कदाचित् उनको दण्ड भी देव तो कोई एक शब्द नहीं कह सकता।। ९५।। "लक्ष्मी आदि (प्रियागण) और शिव आदि (देवगण) भी श्रीकृष्ण के दण्ड को पाते हैं परन्तु सेवक के दोषों को भी प्रभु सदा क्षमा कर देते हैं।। ९६।। अपराध देखकर श्रीकृष्ण जिसको दण्ड देते हैं, उसे (श्रीकृष्ण का) जन्म २ का दास समझो यह मैंने तुमसे (सत्य) कहा।। ९७।। "अब तुम उठकर स्नान करो, पूजा करो, भोजन करो। अब तुम्हारे लिए कोई चिन्ता नहीं है" ।। ९८।। प्रभु के वचनों को सुनकर अद्वैत जी को बड़ा उल्लास हुआ, दास को दण्ड मिलता है सुनकर तो खूब हास-परिहास हुआ।। ९९।। "प्रभो! अब मैं कहूँगा कि यह है तुम्हारी ठकुराई" (ऐसा कह) अद्वैताचार्य ताली बजाते हुए आनन्द में नाचने लगे।। १००।। प्रभु का आश्वासन सुनकर आनन्द में विह्वल हो रहे हैं, पहले का विरह सब भूल गये।। १०१।। सब वैष्णवों को परम आनन्द हुआ और तब श्री नित्यानन्द और हरिदास जी हँसने लगे।। १०२।। इन सब परमानन्दमयी लीला कथा के रस से कोई २ लोग अपने भाग्य-दोष के कारण वंचित रह गये।। १०३।। श्री अद्वैताराय श्री चैतन्य चन्द्र के प्रेमपात्र हैं इस सम्पत्ति को कोई २ माया के कारण अल्प समझते हैं।। १०४।। (परन्तु) 'दास' नाम को छोटा नहीं समझना थोड़े भाग्य से भगवान् अपना 'दास' नहीं बनाते हैं।। १०५।। पहले (जीव) मुक्त होता है, फिर सब बन्धन नष्ट हो जाते हैं, तब कहीं वह श्रीकृष्ण का दास हो सकता है।। १०६।। भाष्यकार (श्री शङ्कराचार्य) ने भी समाज में यही व्याख्या की है कि "मुक्त पुरुष भी स्वेच्छा से शरीर धारण कर श्री भगवान् का भजन करते हैं"।। १०७।। श्रीकृष्ण के सब सेवक श्रीकृष्ण की शक्ति रखते हैं परन्तु अपराध होने पर दण्ड श्रीकृष्ण ही

कृष्णेर सेवक सब कृष्ण शक्ति धरे। अपराध हइलेओ कृष्ण शास्ति करे ॥१०८॥
हेन कृष्ण भक्त नामे कोन शिष्य गण। अल्प हेन ज्ञाने द्वन्द्व करे अनुक्षण ॥१०९॥
से सब दुष्कृति अति जानिह निश्चय। जाथे सर्व वैष्णवेर पक्ष नाहि लय ॥११०॥
'सर्व-प्रभु गौरचन्द्र' इथे द्विधा जार। कभु 'शुद्ध भक्त' नहे सेइ दुराचार ॥१११॥
गर्दभ-शृगाल-तुल्य शिष्य गण लैया। केहो बोले "आमि रघुनाथ भाव' गिया" ॥११२॥
सृष्टि स्थिति प्रलय करिते शक्ति जार। चैतन्य-दासत्व बइ बल नाहि आर ॥११३॥
अनन्त-ब्रह्माण्ड धरे प्रभु बलराम। सेहो प्रभु दास्य करे, केवा हय आन ॥११४॥
जय जय हलधर नित्यानन्द-राय। चैतन्य कीर्तन स्फुरे जाहार कृपाय ॥११५॥
ताँहार प्रसादे हैल चैतन्येते रति। जत किछु बलि-सब ताँहार शकति ॥११६॥
आमार प्रभुर प्रभु श्रीगौर सुन्दर। ए बड़ भरसा चित्ते धरि निरन्तर ॥११७॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ॥११८॥

# अथ अठारहवाँ अध्याय

जय जय जगत् मङ्गल गौरचन्द्र। दान देह' हृदये तोमार पद द्वन्द्व ॥१॥
जय जय नित्यानन्द स्वरूपेर प्राण। जय जय भकत वत्सल गुण धाम ॥२॥
भक्त गोष्ठी सहिते गौराङ्ग जय जय। शुनिले चैतन्य कथा भक्ति लभ्य हय ॥३॥
हेन मते नवद्वीपे विश्वम्भर-राय। सङ्कीर्त्तन सुख प्रभु करये सदाय ॥४॥

---

...॥ १०८ ॥ ऐसे 'श्रीकृष्ण भक्त' नाम को कोई २ शिष्य जन छोटा समझ कर जब देखो तब कलह ...ते हैं ॥ १०९ ॥ वे सब अति दुष्ट कर्मा हैं-ऐसा निश्चय जानो, अतएव सब वैष्णवों के बीच में किसी का ...न लेवे ॥ ११० ॥ "श्री गौरचन्द्र सबके प्रभु हैं" इसमें जिसको सन्देह हो, वह कभी शुद्ध भक्त नहीं, वह ...चार है ॥ १११ ॥ गदहा और स्याल जैसे चेलों को लेकर कोई कहते हैं "मुझे रघुनाथ मानो ॥ ११२॥ ...(ईश्वर) सृष्टि, स्थिति और संहार करने की शक्ति जिनकी हैं, उनका भी श्रीचैतन्य की दासता के बिना कोई दूसरा बल नहीं है ॥ ११३ ॥ (यथा) प्रभु बलराम जी अनन्त ब्रह्माण्डों को धारण करते हैं, वे ...भु की दासता करते हैं-फिर दूसरा कौन होता है ? ॥ ११४ ॥ हलधर श्री नित्यानन्दराय की जय हो, ...हो, जिनकी कृपा से श्री चैतन्य कीर्त्तन की (मुझमें) स्फूर्ति होती है ॥ ११५ ॥ उन्हीं की कृपा से श्री-...देव में मेरी रति हुई और जो कुछ मैं कह रहा हूँ-यह सब उन्हीं की शक्ति है ॥ ११६ ॥ मेरे प्रभु के ... श्री गौरचन्द्र, इस बात का मुझे चित्त में निरन्तर बड़ा भारी भरोसा है ॥ ११७ ॥ श्रीकृष्ण चैतन्य श्री नित्यानन्दचन्द्र को अपना सर्वस्व जान कर यह वृन्दावन दास उनके श्री चरण युगल में उनका ...गान समर्पण करता है ॥ ११८ ॥

इति भक्त-माहात्म्य-कीर्त्तनं नाम सप्तदशोऽध्यायः

जगन्मंगल श्रीगौर चन्द्र की जय हो जय हो। हे प्रभो! अपने श्रीचरण युगल मेरे हृदय में अर्पण ...॥ १ ॥ श्रीनित्यानन्द स्वरूप के प्राण श्रीगौर चन्द्र की जय हो जय हो। भक्त वत्सल गुण धाम गौर ...य हो जय हो ॥ २ ॥ भक्त मण्डली के सहित श्रीगौरांग की जय हो जय हो। श्रीचैतन्य चन्द्र की ... सुनने से भक्ति प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ इस प्रकार प्रभु विश्वम्भर राय सदा संकीर्तन का सुख लेते हैं

मध्य खण्ड कथा भाई ! शुन एक मने । लक्ष्मी-काचे प्रभु नृत्य करिला जे मने ॥५॥
एक दिन प्रभु वलिलेन सभा' स्थाने । "आजि नृत्य करिवाङ अङ्केर विधाने" ॥६॥
सदा शिव-बुद्धि मन्त खानेरे डाकिया । वलिलेन प्रभु "काच सज्ज कर' गिया ॥७॥
शङ्ख, काँचुली, पाट शाड़ी, अलङ्कार । योग्य योग्य करि सज्ज कर' सभाकार ॥८॥
गदाधर काचिवेन-रुक्मिणीर काच । ब्रह्मानन्द ताँर बुड़ी-सखी सुप्रभात ॥९॥
नित्यानन्द हइवेन बड़ाइ आमार । कोतोयाल हरिदास-जागाइते भार ॥१०॥
श्रीवास नारद-काच, स्नातक श्रीराम" । दियड़िया हाड़ि मुञि" बोलये श्रीमान् ॥११॥
अद्वैत बोलये "के करिव पात्र-काच" । प्रभु बोले "पात्र सिंहासने गोपीनाथ ॥१२॥
सत्वरे चलह बुद्धि मन्त खान ! तुमि । काच-सज्ज कर' गिया नाचिवाङ आमि" ॥१३॥
आज्ञा शिरे करि सदा शिव-बुद्धिमन्त । गृहे चलिलेन, आनन्देर नाहि अन्त ॥१४॥
सेइ क्षणे कथिवार चान्दोया काटिया । काच-सज्ज करिलेन सुन्दर करिया ॥१५॥
लइया जतेक काच बुद्धिमन्त खान । थुइलेन लइया ठाकुर-विद्यमान ॥१६॥
देखिया हइला प्रभु सन्तोषित-मन । सकल-वैष्णव प्रति वलिला वचन ॥१७॥
"प्रकृति-स्वरूपे नृत्य हइव आमार । देखिते जे जितेन्द्रिय-तार अधिकार ॥१८॥
सेइ से जाइव आजि वाड़ीर भितरे । जेइ जन इन्द्रिय धरिते शक्ति धरे" ॥१९॥
लक्ष्मी वेशे अङ्क-नृत्य करिव ठाकुर । सकल-वैष्णव-रङ्ग वाढ़िल प्रचुर ॥२०॥
शेषे प्रभु कथा खानि कहिलेन दृढ़ । शुनिञा हइला सभे विषादित बड़ ॥२१॥

॥ ४ ॥ जिस प्रकार प्रभु ने लक्ष्मी वेश में नृत्य किया है, वह, मध्य खण्ड की कथा भाइयो ! मन लगाकर सुनो ॥ ५ ॥ एक दिन प्रभु सबसे बोले—"आज मैं नाटक के नियमानुसार नृत्य करूँगा" ॥ ६ ॥ फिर प्रभु, सदा शिव एवं बुद्धिमन्त खान को पुकार कर बोले—"जाकर वेश-भूषा सजाओ" ॥ ७ ॥ सब को यथा योग्य शंख की चूड़ी, चोली, रेशमी साड़ी, आभूषण आदि पहिना कर वेश सजाओ ॥ ८ ॥ "गदाधर रुक्मिणी का वेश सजेंगे और ब्रह्मानन्द को उनकी रक्षक सखी "सुप्रभात" के वेश में सजाना ॥ ९ ॥ नित्यानन्द मेरी रक्षक सखी होंगे और हरिदास कोतवाल बनें—उन पर लोगों को सावधान करने का भार रहेगा ॥ १० ॥ श्रीवास नारद जी का और श्रीराम स्नातक का वेश बनावें" । ( इतने में ) श्रीमान् बोल उठा कि "मैं शूद्र मशालची बनूँगा" ॥ ११ ॥ तब अद्वैत जी बोले—"नायक कौन सजेगा ?" प्रभु बोले—"नायक के सिंहासन पर होंगे ( स्वयं ) श्रीगोपीनाथ" ॥ १२ ॥ "बुद्धिमन्त खान ! तुम शीघ्र जाओ ! और पात्रों की वेश-रचना करो । आज मैं नाचूँगा ॥ १३ ॥ सदा शिव और बुद्धिमन्त, प्रभु की आज्ञा को शिरोधार्य करके घर को चले । उनके आनन्द की सीमा नहीं है ॥ १४ ॥ उसी समय जाकर काठियावाड़ देश का बना हुआ सुन्दर चँदोआ टँगाया और सुन्दर २ वेश-भूषा तैय्यार किए ॥ १५ ॥ बुद्धिमन्त खान ने उन सब वेष-भूषाओं को लेकर प्रभु गौरचन्द्र के सन्मुख रख दिया ॥ १६ ॥ उन्हें देखकर प्रभु मन में संतुष्ट होकर सब वैष्णवों के प्रति बोले ॥ १७ ॥ "मेरा नृत्य नारी के रूप में होगा । जो जितेन्द्रिय हैं उनको ही उसे देखने का अधिकार होगा ॥ १८ ॥ ( अतएव ) आज घर के भीतर वे ही जायें कि जो इन्द्रियों को वश में रखने में समर्थ हों ॥ १९ ॥ आज प्रभु लक्ष्मी वेश में नाटक में नृत्य करेंगे—सुनकर तो सब वैष्णवों को बड़ा ही आनन्द हुआ ॥ २० ॥ ( परन्तु ) अन्त में प्रभु ने जो बात जोर देकर कही उसे सुनकर सब उदास हो गए ॥ २१ ॥ ( अतएव ) सर्व प्रथम अद्वैताचार्य ने पृथ्वी पर रेखा खींची और बोले "आज

महा-पाग शोभे शिरे, धटी परिधान। दण्ड हस्ते सभारे करये सावधान ॥४०॥
"आरे आरे भाइ-सब हओ सावधान। नाचिव लक्ष्मीर वेशे जगतेर प्राण" ॥४१॥
हाथे नड़ि चारि दिगे धाइया वेड़ाय। सर्वाङ्गे पुलक 'कृष्ण' सभारे जागाय ॥४२॥
"कृष्ण भज, कृष्ण सेव, बोल कृष्ण-नाम"। दम्भ करि हरिदास करये आह्वान ॥४३॥
हरिदास देखिया सकल गण हासे। "के तुमि, एथाय केने ?" सभेइ जिज्ञासे' ॥४४॥
हरिदास बोले "आमि वैकुण्ठ-कोटाल। 'कृष्ण' जागाइया आमि वुलि सर्वकाल ॥४५॥
वैकुण्ठ छाड़िया प्रभु आइलेन एथा। प्रेम भक्ति लुटाइब ठाकुर सर्वथा ॥४६॥
लक्ष्मी वेशे नृत्य आजि करित्र आपने। प्रेम भक्ति लूटि आजि हओ सावधाने ॥४७॥
एत वलि दुइ गोंफ मोचड़ाय हाथे। रड़ दिया वुले गुप्त-मुरारिर साथे ॥४८॥
दुइ महा-विह्वल कृष्णेर प्रिय दास। दुइर शरीरे गौरचन्द्रे र विलास ॥४९॥
क्षणेके नारद-काच करिया श्रीवास। प्रवेशिला सभा-माझे करिया उल्लास ॥५०॥
महा-दीर्घ पाका दाड़ि, फोंटा सर्व गाय। वीणा कान्धे, कुश-हस्ते चारि दिगे चा'य ॥५१॥
रामाञि-पण्डित कक्षे करिया आसन। हाथे कमण्डलु-पाछे करिला गमन ॥५२॥
वसिते दिलेन राम-पण्डित आसन। साक्षात् नारद जेन दिला दरशन ॥५३॥
श्रीवासेर वेश देखि सर्व गण हासे'। करिया गभीर नाद अद्वैत जिज्ञासे' ॥५४॥
"के तुमि आइला एथा के मन कारणे"। श्रीवास बोलेन "शुन कहिये कथने ॥५५॥

---

हरिदास ठाकुर ने प्रवेश किया, दो लम्बी २ मूँछ आप के वदन पर विशेष शोभा दे रही हैं ॥ ३९ ॥ शिर पर एक बड़ा सा पग्गड़ शोभा दे रहा है, कमर पर सुन्दर वस्त्र पहिने हुए हैं और हाथ में सोंठा लेकर सब को सावधान कर रहे हैं ॥ ४० ॥ "अरे ओ भाइयो ! सब सावधान हो जाओ। जगत् के प्राण प्रभु आज लक्ष्मी के वेश में नाचेंगे" ॥ ४१ ॥ ऐसा कहते हुए, हाथ में छड़ी लिये हुए वे चारों ओर दौड़ते फिरते हैं, सर्वांग में पुलक हो रहा है, और 'कृष्ण' नाम से सब को जगा रहे हैं ॥ ४२ ॥ "कृष्ण को भजो, कृष्ण की सेवा करो, कृष्ण का नाम बोलो" इस प्रकार बड़े घटाटोप से श्री हरिदास पुकार रहे हैं ॥ ४३ ॥ हरिदास जी को देखकर परिकर लोग सब हँसते हैं, और पूछते हैं—"तुम कौन हो ? यहाँ क्यों आये हो ?" ॥ ४४ ॥ हरिदास जी कहते हैं—"मैं वैकुण्ठ का कोतवाल हूँ। मैं "कृष्ण २" जगाता हुआ सब समय घूमता रहता हूँ ॥ ४५ ॥ वैकुण्ठ छोड़ कर प्रभु यहाँ आये हैं, और वे सब प्रकार से प्रेमभक्ति लुटायँगे ॥ ४६ ॥ "आज वे स्वयं लक्ष्मी वेश में नृत्य करेंगे। अतएव तुम सब सावधान होकर आज प्रेम भक्ति लूटो" ॥ ४७ ॥ इतना कह कर हाथों से दोनों मूँछों पर ताव देते हैं, और मुरारि गुप्त के साथ दौड़े २ फिरते हैं ॥ ४८ ॥ दोनों प्रेम में महा विह्वल हैं, दोनों श्रीकृष्ण के प्रिय दास हैं, और दोनों के शरीर में श्री गौरचन्द्र का विलास है ॥ ४९ ॥ क्षण भर बाद नारद जी का वेश बना कर श्रीवास ने बड़े उल्लास के साथ सभा में प्रवेश किया ॥ ५० ॥ बड़ी लम्बी सफेद दाढ़ी है, सब शरीर पर तिलक की बिन्दियाँ लगी हुई हैं, कन्धे पर वीणा है, हाथ में कुश है और चारों ओर दृष्टि दौड़ा रहे हैं ॥ ५१ ॥ रामाइ पण्डित बगल में आसन दबाए, हाथ में कमण्डलु लिये, पीछे २ चल रहे हैं ॥५२॥ रामाइ पंडित ने उनको बैठने के लिये आसन बिछा दिया। श्रीवास पण्डित ऐसे लगते हैं मानो तो साक्षात् नारद जी दर्शन दे रहे हों ॥ ५३ ॥ श्रीवास के वेश को देखकर परिकर लोग सब हंसते है और श्री अद्वैत गम्भीर घोष के साथ पूछते हैं ॥ ५४ ॥ "तुम कौन हो ? यहाँ किस कारण से आये हो ?" श्रीवास जी कहते हैं—"सुनो, बतलाता हूँ ॥ ५५ ॥ मेरा नाम नारद है, मैं श्रीकृष्ण

नारद आमार नाम, कृष्णेर गायन। अनन्त-ब्रह्माण्डे आमि करिये भ्रमण ॥५६॥
वैकुण्ठ गेलाङ–कृष्ण देखिबार तरे। शुनिलाङ 'कृष्ण गेला नदिया-नगरे' ॥५७॥
शून्य देखिलाङ वैकुण्ठेर घर-द्वार। गृहिणी-गृहस्थ नाहि, नाहि परिवार ॥५८॥
ना पारि रहिते–शून्य वैकुण्ठ देखिया। आइलाङ आपन ठाकुर स्मङरिया ॥५९॥
प्रभु आजि नाचिवेन धरि लक्ष्मी-वेश। अतएव ए सभाय आमार प्रवेश" ॥६०॥
श्रीवासेर नारद निष्ठार वाक्य शुनि। हासिया वैष्णव-सब करे जय ध्वनि ॥६१॥
अभिन्न-नारद जेन श्रीवास पण्डित। से-इ रूप, से-इ वाक्य, से-इ से चरित ॥६२॥
जत पतिव्रता गण-सकल लइया। आइ देखे कृष्ण-सुधा-रसे मगन हैया ॥६३॥
मालिनीरे बोले आइ "एइनि पण्डित"। मालिनी बोलये "आइ! अइ सुनिश्चित" ॥६४॥
परम-वैष्णवी आइ सर्व-लोक-माता। श्रीवासेर मूर्त्ति देखि हइला विस्मिता ॥६५॥
आनन्दे पड़िला आइ हइया मूर्च्छित। कोथाओ नाहिक धातु, सभे चमकित ॥६६॥
सत्वरे सकल पतिव्रता-नारी गण। कर्ण मूले 'कृष्ण कृष्ण' करेन स्मरण ॥६७॥
सम्बित् पाइया आइ 'गोविन्द' स्मङरे। पतिव्रता गणे धरे, धरिते ना पारे ॥६८॥
एइ मत कि घरे बाहिरे सर्व जन। बाह्य नाहि स्फुरे, सभे करेन क्रन्दन ॥६९॥
गृहान्तरे वेश करे प्रभु विश्वम्भर। रुक्मिणीर भाव मगन हइला निर्भर ॥७०॥
आपना ना जाने प्रभु रुक्मिणी-आवेशे। विदर्भेर सुता हेन आपनारे वासे' ॥७१॥
नयनेर जले पत्र लिखये आपने। पृथिवी इइल पत्र, अङ्गुली कलमे ॥७२॥
रुक्मिणीर पत्र 'सप्त श्लोक' भागवते। जे आछे, पढ़ये ताहा कान्दिते कान्दिते ॥७३॥

---

गायक हूँ। मैं अनन्त ब्रह्माण्डों में भ्रमण करता रहता हूँ॥ ५६॥ "मैं श्रीकृष्ण के दर्शन के लिये वैकुण्ठ तो वहाँ जाकर सुना कि श्रीकृष्ण तो नदिया नगर में गये हैं॥ ५७॥ मैंने वहाँ वैकुण्ठ के सब घर द्वार देखे उनमें न गृहिणी हैं, न गृहस्थ हैं और न परिवार हैं॥ ५८॥ "वैकुण्ठ को शून्य देखकर मैं वहाँ न सका अतएव अपने प्रभु का स्मरण करता हुआ वहाँ से चला आया॥ ५९॥ प्रभु आज लक्ष्मी वेश बना यहाँ नाचेंगे, अतएव मैं इस सभा में आया हूँ"॥ ६०॥ श्रीवास के अटल नारद भाव के वचनों को सुन वैष्णव लोग हँसते हुए जय जयकार करते हैं॥ ६१॥ श्रीवास पण्डित मानो तो नारद जी से अभिन्न ही रूप, वही वचन, वही चरित्र॥ ६२॥ श्री शची माता सब पतिव्रताओं के समेत श्रीकृष्ण सुधा रस निमग्न हो कर देख रही हैं॥ ६३॥ श्री शची मा मालिनी देवी (श्रीवास–भार्या) से पूछती हैं "यही हैं पण्डित जी?"। मालिनी कहती है "हाँ मा! सुनिश्चित रूप से यही हैं"॥ ६४॥ परम वैष्णवी सर्व-माता, शची मा श्रीवास की मूर्त्ति को देखकर विस्मित हो गईं॥ ६५॥ वे आनन्द से मूर्च्छित हो पड़ीं र में चेतनता कहीं न रही सब अचरज मान रहे हैं॥ ६६॥ सब पतिव्रता स्त्रियाँ बड़ी शीघ्रता करके कानों में "कृष्ण २" नाम सुनाने लगीं॥ ६७॥ शची मा सचेत होकर "गोविन्द २" कहती हैं, पति-गण माता को पकड़ती हैं परन्तु सम्हाल नहीं पातीं॥६८॥ इस प्रकार क्या घर क्या बाहर, सब लोगों बाहर की सुधि-बुध नहीं है, सब रो रहे हैं॥ ६९॥ प्रभु विश्वम्भर भीतर घर में अपना रुक्मिणी वेश रहे हैं और रुक्मिणी के भाव में एक दम तन्मय हो गये हैं॥७०॥ श्री रुक्मिणी के आवेश में प्रभु अपने नहीं जानते वे अपने को विदर्भ राज की कन्या ही मान रहे हैं॥ ७१॥ वे स्वयं अपने नेत्रों के जल से लिख रहे हैं। पृथ्वी ही पत्र है और अंगुली कलम हैं॥ ७२॥ श्री रुक्मिणी के पत्र के जो सात श्लोक

गीत बन्धे शुन सात-श्लोकेर व्याख्यान । जे कथा शुनिले स्वामी हय भगवान् ॥७४॥

तथाहि भागवते ( १० । ५२ । ३७ )

"श्रुत्वा गुणान् भुवन सुन्दर ! शृण्वतां ते । निविश्य कर्ण विवरै र्हरतोऽङ्ग तापम् ॥
रूप दृशां दृशिमता मखिलार्थ लाभं । त्वय्य च्युता विशति चित्त मत त्रयंमे" १ इत्यादि ॥७५॥

( कारुण्य सारदा रागेन गीयते )–"शुनिञा तोमार गुण भुवन सुन्दर ।
दूर गेल अङ्ग ताप त्रिविध दुष्कर ॥७६॥

सर्व-निधि-लाभ तोर रूप-दरशने । सुखे देखे विधि जारे दिलेक लोचने ॥७७॥
शुनि यदु सिंह ! तोर यशेर बाखान । निर्लज्ज हइया चित्त जाय तुया-ठाम ॥७८॥
कोन कुलवती धीरा आछे जग-माझे । काल पाइ तोमार चरण नाहि भजे ॥७९॥
विद्या-कुल-शील-धन-रूप-वेश-धामे । सकल विफल हय–तोमार विहने ॥८०॥
मोर धार्ष्टच क्षमा कर' त्रिदशेर राय । ना पारि राखिते चित्त तोमाय मिशाय ॥८१॥
एतेके वरिल तोर चरण-युगल । मन प्राण बुद्धि तोहे–अर्पिल सकल ॥८२॥
पत्नी पद दिया मोरे कर' निज दासी । तोर भागे शिशु पाल नहुक विलासी ॥८३॥
कृपा करि मोरे परिग्रह कर' नाथ । जेन सिंह-भाग नहे शृगालेर साथ ॥८४॥
व्रत,-दान,-गुरु-विप्र-देवेर अर्चन । सत्य यदि सेवियाछों अच्युत-चरण ॥८५॥
तबे गदाग्रज मोर हउ प्राणेश्वर । दूर हउ शिशु पाल एइ मोर वर ॥८६॥
कालि मोर विवाह हइब हेन आछे । आजि झाट आसिबा, विलम्ब कर' पाछे ॥८७॥

---

श्री भागवत में हैं, प्रभु उन्हें रोते २ पढ़ रहे हैं ॥ ७३ ॥ उन सात श्लोकों की व्याख्या गीत के रूप में सुनो जिसके सुनने से श्रीकृष्ण स्वामी होते हैं ॥ ७४ ॥ श्लोकार्थ, "हे भुवन सुन्दर ! तुह्मारे गुणों को सुनते २ वे गुण कर्णों के द्वार से हृदय में प्रवेश करके जनों का अङ्ग ताप हर लेते हैं । और जिनके नेत्र हैं तुम्हारा रूप देखकर उनकी दर्शन–इन्द्रियाँ "हमें अखिल अर्थ लाभ हो गया" ऐसा मानती हैं । हे अच्युत ! मेरा चित्त भी तुम्हारे उसी रूप गुण की कथा सुन कर लज्जा को तिलाञ्जलि देकर तुममें प्रवेश कर रहा है ॥ ७५ ॥ गीतार्थ (भाग० १० । ५२ । ३७) "हे भुवन सुन्दर ! तुम्हारे गुणों को सुनकर दुष्कर त्रिविध अङ्ग ताप दूर हो गये ॥ ७६ ॥ तुम्हारा रूप दर्शन ही सर्व निधि प्राप्ती है, विधाता ने जिसको नेत्र दिये हैं वे सुख से तुह्मारे रूप के दर्शन करते हैं ॥ ७७ ॥ "हे यदुसिंह ! तुम्हारे यश की गाथा सुनकर चित्त निर्लज्ज होकर तुह्मारे पास चला जाता है ॥ ७८ ॥ जगत् में ऐसी कौन कुलवती धीर नारी है जो समय पाकर तुम्हारे चरणों की सेवा न करे ॥ ७९ ॥ "तुम्हारे बिना विद्या, कुल, शील, धन, रूप, वेश धाम आदि सब व्यर्थ हैं ॥ ८० ॥ हे देवताओं के नाथ ! मेरी धृष्टता को क्षमा करो मैं अपने चित्त को रोक नहीं सकती । वह तुममें मिला जाता है ॥ ८१ ॥ "इसलिए मैंने तुम्हारे युगल चरणों को बरण कर लिया है । मैं अपना मन प्राण, बुद्धि सब तुमको अर्पण कर चुकी हूँ ॥ ८२ ॥ अब मुझे 'पत्नि-पद' देकर अपनी दासी बनाओ तुम्हारे भाग का भोगी शिशुपाल न होने पाय ॥ ८३ ॥ हे नाथ ! कृपा करके मुझे ग्रहण करो देखो सिंह का भाग स्याल को न मिल जाय ॥ ८४ ॥ यदि मैंने व्रत दान, किये हों, गुरु विप्र और देवताओं की पूजा की हो और अच्युत के चरण की सेवा सचमुच की हो ॥ ८५ ॥ तो श्रीकृष्ण मेरे प्राणेश्वर हों और शिशुपाल दूर हो जाय,–यही बरदान मुझे मिले ॥ ८६ ॥ "कल मेरे विवाह की बात है तुम आज ही शीघ्र आ जाओ, ऐसा न हो कि देर कर बैठो ॥८७॥ पहले तो तुम गुप्त रूप से आकर विदर्भपुर के समीप रहना सब सेना-सामन्त के साथ लोक

गुप्ते आसि रहिवा विदर्भ पुर-काछे। शेषे सब-सैन्य-सङ्गे आसिवा समाजे ॥८८॥
चैद्य शाल्य जरासन्ध–मथिया सकल। हरि लेह मोरे–देखाइया बाहु बल ॥८९॥
दर्प-प्रकाशेर प्रभु ! एइ से समय। तोमार वनिता–शिशुपाल-योग्य नय ॥९०॥
बिनि बन्धु बधि मोरे हरिवा जे मने। ताहार उपाय बोलों तोमार चरणे ॥९१॥
विवाहेर पूर्व-दिने कुल धर्म आछे। नव-वधू चलि जाय भवानीर काछे ॥९२॥
सेइ अवसरे प्रभु ! हरिवा आमारे। ना मारिवा बन्धु, दोष क्षमिवा सभारे ॥९३॥
जाहार चरण धूलि सर्व अङ्गे स्नान। उमा पति चाहे, चाहे जतेक प्रधान ॥९४॥
हेन धूलि-प्रसाद ना कर' यदि मोरे। मरिव करिया व्रत, बलिलुँ तोमारे ॥९५॥
जत जन्मे पाङ तोर अमूल्य-चरण। तावत मरिव शुन कमल लोचन ॥९६॥
चल चल ब्राह्मण ! सत्वर कृष्ण स्थाने। कह गिया ए सकल मोर विवरणे" ॥९७॥
एइ मत बोले प्रभु रुक्मिणी-आवेशे। सकल-वैष्णव गण प्रेमे कान्दे हासे' ॥९८॥
हेन रङ्ग हय चन्द्र शेखर-मन्दिरे। चतुर्दिगे हरि ध्वनि शुनि उच्चस्वरे ॥९९॥
'जाग जाग जाग' डाके प्रभु हरिदास। नारदेर काचे नाचे पण्डित-श्रीवास ॥१००॥
प्रथम-प्रहरे एइ कौतुक विशेष। द्वितीय–प्रहरे गदाधरेर प्रवेश ॥१०१॥
'सुप्रभात' तान सखी–करि-निज-सङ्गे। ब्रह्मानन्द ताहान बड़ाइ बुले रंगे ॥१०२॥
हाथे नड़ि, काँखे डाली, टेन परिधान। ब्रह्मानन्द जे हेन बड़ाइ विद्यमान ॥१०३॥
डाकि बोले हरिदास "के सब तोमरा"। ब्रह्मानन्द बोले "जाइ मथुरा आमरा" ॥१०४॥
श्रीवास बोलये "दुइ काहार वनिता"। ब्रह्मानन्द बोले "केने जिज्ञास' वारता" ॥१०५॥

---

ाज में पीछे आना ॥ ८८॥ "शिशुपाल, शाल्य, जरासन्ध आदि सब को मथ कर अपना बाहुबल दिखाकर के हर लो ॥८९॥ हे प्रभो ! दर्प प्रकाश करने का समय यही है। तुम्हारी प्रिया शिशुपाल के योग्य नहीं है ९० ॥ "बन्धु वध बिना जैसे मुझे हर सकोगे उपाय मैं तुम्हारे चरणों में निवेदन करती हूँ ॥९१॥ हमारा ८ धर्म ऐसा है कि ब्याह से पहिले के दिन नव वधू पार्वती जी के पास जाती है ॥ ९२ ॥ "हे प्रभो ! उसी ासर पर मुझको हर लेना–परन्तु बन्धुओं को न मारना, सब के दोषों को क्षमा कर देना ॥९३॥ जिनकी ाण धूलि से सर्वांग स्नान की चाहना उमापति तथा अन्य सब महानुभाव करते हैं ॥ ९४ ॥ "उस धूलि कृपा यदि मुझ पर न करोगे तो मैं तुमसे कहे देती हूँ कि मैं व्रत कर करके मर जाऊँगी ॥ ९५ ॥ जितने मों तक तुम्हारे अमूल्य चरण नहीं मिलेंगे, उतने जन्मों तक, हे कमल लोचन ! सुन लो मैं व्रत कर करके ती जाऊँगी ॥ ९६ ॥ हे ब्राह्मण देव ! शीघ्र ही श्री कृष्ण के समीप गमन करो और जाकर उनको मेरा सब वृत्तान्त सुनाओ" ॥ ९७ ॥ इस प्रकार प्रभु रुक्मिणी जी के आवेश में आकर कह रहे हैं, और सब गव लोग प्रेम में रो रहे, हँस रहे हैं ॥९८॥ श्री चन्द्रशेखर के घर में ऐसा आनन्द हो रहा है और चारों र ऊँचे २ सुर से 'हरि बोल' की ध्वनि सुनाई दे रही है ॥ ९९ ॥ हरिदास ठाकुर "जागो ३" पुकार रहे और नारद के वेश में श्रीवास पण्डित नाच रहे हैं ॥ १०० ॥ प्रथम पहर में तो यह कौतुक विशेष रहा। र द्वितीय पहर में गदाधर का प्रवेश हुआ ॥ १०१ ॥ उनके साथ में ब्रह्मानन्द "सुप्रभात" सखी के वेश हैं। वे उनको रक्षा करती हुई मस्त घूम रही हैं ॥ १०२ ॥ उनके हाथ में छड़ी है, काँख में डलिया है, नेत पहिने हुई हैं। ब्रह्मानन्द इस समय ऐसी बड़ी बूढ़ी सखी बने हुए हैं ॥ १०३ ॥ हरिदास जी पुकार कर ते है "तुम सब कौन हो ?"। ब्रह्मानन्द जी कहते हैं "हम मथुरा जा रही हैं" ॥ १०४ ॥ श्रीवास जी

श्रीनिवास बोले "जानि वारे ना जुयाय"। हय बलि ब्रह्मानन्द मस्तक ढुलाय ॥१०६॥
गङ्गादास बोले "आजि कोथाय रहिवा"। ब्रह्मानन्द बोले "स्थान खानि तुमि दिवा" ॥१०७॥
गङ्गादास बोले "तुमि जिज्ञासिले धर। जिज्ञासाय कार्य नाहि, झाट तुमि नड़" ॥१०८॥
अद्वैत बोलये "एत विचारे कि काज। 'मातृ-सम पर-नारी केने देह' लाज ॥१०९॥
नृत्य-गीत-प्रिय बड़ आमार ठाकुर। एथाये नाचाह--धन पाइवा प्रचुर" ॥११०॥
अद्वैतेर वाक्य शुनि परम-सन्तोषे। नृत्य करे गदाधर प्रेम परकाशे' ॥१११॥
रमा-वेशे गदाधर नाचे मनोहर। समय उचित गीत गाय अनुचर ॥११२॥
गदाधर-नृत्य देखि आछे कोन् जन। विह्वल हइया नाहि करये क्रन्दन ॥११३॥
प्रेम नदी बहे गदाधरेर नयाने। पृथिवी हइया सिक्त 'धन्य हेन माने' ॥११४॥
गदाधर हैला जेन गङ्गा मूर्त्ति मती। सत्य सत्य गदाधर--कृष्णेर प्रकृति ॥११५॥
आपने चैतन्य बलियाछे बारे बार। "गदाधर मोर वैकुण्ठेर परिवार" ॥११६॥
जे गाय, जे देखे--सब भासिलेन प्रेमे। चैतन्य प्रसादे केहो बाह्य नाहि जाने ॥११७॥
'हरि हरि' बलिकान्दे वैष्णव मण्डल। सर्व-गणे हइल आनन्द-कोलाहल ॥११८॥
चौदिगे शुनिये कृष्ण प्रेमेर क्रन्दन। गोपिकार वेशे नाचे माधव नन्दन ॥११९॥
हेनइ समये महाप्रभु विश्वम्भर। प्रवेश करिला आद्या शक्ति-वेश धर ॥१२०॥
आगे नित्यानन्द बूड़ी-वड़ाइर वेशे। बङ्क वङ्क करि हाँटे, प्रेम रसे भासे ॥१२१॥

पूछते हैं "ये दो किनकी प्रिया हैं ?" ब्रह्मानन्द जी कहते हैं--"यह क्यों पूछते हो ?" ॥ १०५ ॥ श्रीवास बोले "क्या यह बात जानने योग्य नहीं ?", ब्रह्मानन्द ने "हाँ" ( अर्थात् "जानने योग्य नहीं है" ) कह कर सिर हिला दिया ॥१०६॥ तब गङ्गादास ने पूछा--आज कहाँ रहोगी ? ब्रह्मानन्द जी बोले 'रहने को स्थान तुम दोगे' ॥ १०७ ॥ गङ्गादास बोले 'तुम तो पूछने पर ही गले पड़ने लगती हो ! अतएव पूछ ताछ का काम नहीं चलो अपना रास्ता पकड़ो' ॥ १०८ ॥ अद्वैत जी बोले 'इतने विचार का क्या काम ? पर नारी माता के समान होती है। इनको क्यों लज्जित करते हो' ॥ १०९ ॥ (फिर ब्रह्मानन्द जी से बोले) 'देखो ! हमारे प्रभु को नृत्य गीत बड़ा प्रिय है, अतएव यहीं नाचो खूब धन मिलेगा ॥ ११० ॥ अद्वैत जी के वचन को सुन कर परम सन्तोष के साथ गदाधर जी नृत्य करते हुए प्रेम प्रकट करते हैं ॥ १११ ॥ गदाधर जी लक्ष्मी वेश में मनोहर नृत्य कर रहे हैं, और अनुचर जन समयोचित गीत गा रहे हैं ॥ ११२ ॥ श्री गदाधर के नृत्य को देखकर ऐसा कौन है कि जो विह्वल होकर रोने न लगे ॥ ११३ ॥ श्री गदाधर के नेत्रों से प्रेम की नदी बह रही है जिससे पृथ्वी गीली होकर अपने को धन्य मान रही है ॥ ११४ ॥ श्री गदाधर मानो तो गङ्गा की मूर्त्ति बन गये हैं, सचमुच में श्री गदाधर श्रीकृष्ण की प्रकृति ( शक्ति) ही हैं ॥ ११५ ॥ (इसीमे) स्वयं श्री चैतन्य देव ने आगे बार २ यही कहा है कि "गदाधर मेरे वैकुण्ठ का परिवार है ॥ ११६ ॥ उस समय जो गा रहे थे और जो देख रहे थे वे सब प्रेम में बह गये। श्री चैतन्य की कृपा से किसी को बाहर की कुछ सुध बुध न रही ॥११७॥ समस्त वैष्णव मण्डली 'हरि बोल हरि बोल' कह कर रोने लगी सब लोगों में आनन्द का कोलाहल मच गया ॥ ११८ ॥ चारों ओर से श्रीकृष्ण प्रेम के कारण क्रन्दन ध्वनि आ रही है और माधव नन्दन श्री गदाधर गोपिका के वेश में नाच रहे हैं ॥ ११९ ॥ ऐसे समय में महाप्रभु विश्वम्भर ने आदिशक्ति के वेश में प्रवेश किया ॥ १२० ॥ आगे २ नित्यानन्द जी बड़ी बूढ़ी के वेश में हैं, वे टेढे २ चलते हैं और प्रेम रस में बहे जा रहे हैं ॥१२१॥ सब वैष्णव जनों ने मण्डली बना ली और जय जयकार की महाध्वनि करने

मण्डली करिया सब वैष्णव रहिला। जय जय महा ध्वनि करिते लागिला ॥१२२॥
केहो नारे चिनिते-ठाकुर विश्वम्भर। हेन अति-अलक्षित-वेश मनोहर ॥१२३॥
नित्यानन्द महाप्रभु-प्रभुर बड़ाइ। ताँर पाछे प्रभु; आर किछु चिह्न नाइ ॥१२४॥
अतएव सभेइ चिनिलेन 'प्रभु एइ'। वेशे केहो लखिते ना पारे 'प्रभु सेइ' ॥१२५॥
सिन्धु हैते प्रत्यक्ष कि हइला कमला। रघु सिंह गृहिणी कि जानकी आइला ॥१२६॥
किबा महालक्ष्मी, किबा आइला पार्वती। किबा वृन्दावनेर सम्पत्ति मूर्ति मती ॥१२७॥
किबा भागीरथी, किबा रूपवती दया। किबा सेइ महेश मोहिनी महा माया ॥१२८॥
एइ मत अन्योन्ये सर्व-जने जने। ना चिनिआ प्रभुरे आपने मोह माने' ॥१२९॥
आजन्म धरिया प्रभु देखिल जाहारा। तथापि लखिते नारे तिलार्द्धेक तारा ॥१३०॥
अन्येर कि दाय, आइ ना पारे चिनिते। मूर्ति भेदे लक्ष्मी किबा आइला नाचिते ॥१३१॥
अचिन्त्य अव्यक्त सत्य महा योगेश्वरी। भकति स्वरूपा हैला आपने श्रीहरि ॥१३२॥
महा योगेश्वर हर-जे रूप देखिया। महा मोह पाइलेन पार्वती लइया ॥१३३॥
तवे जे नहिल मोह वैष्णव-सभार। पूर्व-अनुग्रह-आछे, एइ हेतु तार ॥१३४॥
कृपा-जलनिधि प्रभु हइला सभारे। सभार जननी भाव हइल अन्तरे ॥१३५॥
परलोक हैते जेन आइला जननी। आनन्दे' नन्दन-सब आपना' ना जानि ॥१३६॥
एइ मत अद्वैतादि प्रभुरे देखिया। कृष्ण प्रेम सिन्धु-माझे बुलेन भासिया ॥१३७॥
जगत जननी भावे नाचे विश्वम्भर। समय-उचित गीत गाय अनुचर ॥१३८॥

---

। १२२ ॥ कोई प्रभु विश्वम्भर को पहचान नहीं पाते हैं,—ऐसा मनोहर वेश बनाया है उन्होंने कि जो पहले देखने में नहीं आया था ॥ १२३ ॥ प्रभु के साथ नित्यानन्द महाप्रभु बड़ी बूढ़ी के रूप में आगे हैं पीछे प्रभु गौर हैं। (इस आगे पीछे के क्रम के अतिरिक्त उनके पहचान के लिये) और कोई चिन्ह नहीं १२४ ॥ अतएव (इसी एक चिन्ह से) सब ने पहचान लिया कि प्रभु ये हैं—परन्तु वेश को देखकर कोई पहचान पाता है कि ये वेही प्रभु हैं ॥ १२५ ॥ क्या समुद्र से लक्ष्मी जी प्रकट हुई हैं अथवा तो रघुकुल की गृहिणी जानकी जो आई हैं ॥ १२६ ॥ अथवा तो महालक्ष्मी अथवा पार्वती जो आई हैं अथवा तो मूर्तिमती वृन्दावन की सम्पत्ति हैं ॥ १२७ ॥ अथवा तो भागीरथी गङ्गा हैं अथवा रूपवती दया हैं; अथवा महेश मन मोहिनी महामाया हैं ॥ १२८ ॥ इस प्रकार प्रभु को न पहचान कर परस्पर में कहते हुए सब मोह को प्राप्त हो रहे हैं ॥ १२९ ॥ जिन्होंने जन्म से ही प्रभु को देखा है वे भी उनको आधा तिल भर पहचान सके ॥१३०॥ औरों की तो बात ही क्या, स्वयं शची मा नहीं पहचान सकीं। (वे यही समझ कि) कदाचित् लक्ष्मी जी ही एक दूसरी मूर्त्ति प्रकट करके नृत्य करने को आई हैं ॥ १३१ ॥ आज श्री गौरहरि अचिन्त्य अव्यक्त सत्य स्वरूपा, महायोगेश्वरी भक्ति स्वरूपिणी हो गये हैं ॥१३२॥ महा-र महादेव पार्वती जी के साथ होते हुए भी जिस रूप को देखकर महामोह को प्राप्त हो गये थे ॥१३३॥ रूप को देखकर) जो आज कोई वैष्णव जन मोहित नहीं हुये उसका कारण यही है कि उनको पहले की कृपा प्राप्त है ॥ १३४ ॥ प्रभु सब के प्रति कृपा सागर बन गये हैं अतएव सब के हृदय में प्रभु के जननी भाव का उदय हो आया ॥ १३५ ॥ आज मानो तो परलोक (परमलोग) से जननी आई है—मारे आनन्द के पुत्रगण सब अपनपौ भूल गये हैं ॥ १३६ ॥ इस प्रकार अद्वैत आदि सब लोग प्रभु को श्री कृष्णप्रेम सिन्धु में बहे जा रहे हैं ॥ १३७ ॥ प्रभु विश्वम्भर जगज्जननी भाव में नृत्य कर रहे

हेन दढ़ाइते केहो नारे कोन जन। कोन् प्रकृतिर भावे नाचे नारायण ॥१३९॥
कखनो बोलये "विप्र ! कृष्ण कि आइला"। तखन बुझिये जेन विदर्भेर बाला ॥१४०॥
नयने आनन्द धारा देखिये जखन। मूर्तिमती गङ्गा जेन बुझिये तखन ॥१४१॥
भावा वेशे जखन वा अट्ट अट्ट हासे। महाचण्डी हेन सभे बुझेन प्रकाशे ॥१४२॥
ढूलिया ढूलिया प्रभु नाचये जखने। साक्षात् रेवती जेन कादम्वरो पाने ॥१४३॥
क्षणे ब्रोले "चल बड़ाइ ! जाइ वृन्दावने। गोकुल सुन्दरी-भाव वुझिये तखने ॥१४४॥
वीरासने क्षणे प्रभु वसे ध्यान करि। सभे देखे जेन महा-कोटि-योगेश्वरी ॥१४५॥
अनन्त-ब्रह्माण्डे जत निज-शक्ति आछे। सकल प्रकाशे' प्रभु रुक्मिणीर काचे ॥१४६॥
व्यपदेशे महाप्रभु शिखाय सभारे। पाछे मोर शक्ति कोन जन निन्दा करे ॥१४७॥
लौकिक वैदिक जत किछु विष्णु शक्ति। सभार सम्माने हय कृष्णे दृढ-भक्ति ॥१४८॥
देव-द्रोह करिले कृष्णेर बड़ दुःख। गण-सहे कृष्ण-पूजा करिलेइ सुख ॥१४९॥
जे शिखाये कृष्ण चन्द्र, से-इ सत्य हय। अभाग्ये पापिष्ठ-मति ताहा नाहि लय ॥१५०॥
सर्व-शक्ति-स्वरूपा नाचये विश्वम्भर। केहो नाहि देखे हेन नृत्य मनोहर ॥१५१॥
जे देखे, जे शुने, जेवा गाय प्रभु-सङ्गे। सभेइ भासये प्रेम-सागर-तरङ्गे ॥१५२॥
एको-वैष्णवेर जत नयनेर जल। सेइ जेन महावन्या—थाकुक सकल ॥१५३॥
आद्या शक्ति-वेशे नाचे प्रभु गौर सिंह। सुखे देखे ताँर जत चरणेर भृङ्ग ॥१५४॥

है और अनुचर जन समयोचित गीत गा रहे हैं। १३८ ॥ परन्तु कोई भी यह निश्चय नहीं कर पाता है कि नारायण (गौर) किस प्रकृति ( रमणी ) के भाव में नाच रहे हैं ॥१३९॥ कभी तो वे कहते हैं "ब्राह्मण ! क्या श्रीकृष्ण आ गये ?" उस समय तो रुक्मिणी जैसे लगते हैं ॥१४०॥ और नेत्रों की आनन्द धाराओं को देखने पर मूर्तिमती गङ्गा जी जैसी समझ में आते हैं ॥ १४१ ॥ और जब भावावेश में अट्टहास करते हैं तो सब यही समझते हैं कि महाचण्डी का प्रकाश हुआ है ॥ १४२ ॥ और जब प्रभु झूम २ कर नाचने लगते हैं तो कादम्बरी पीये हुई रेवती जैसी लगते हैं ॥ १४३ ॥ फिर क्षण भर में कहते हैं "चल बूढ़ी वृन्दावन को चलें"। तब गोकुल सुन्दरी (गोपी) का भाव समझ में आता है ॥ १४४ ॥ क्षण में प्रभु वीरासन में बैठ करके ध्यान करते हैं तब सब उनको कोटी महायोगेश्वरी जैसा देखते हैं ॥ १४५ ॥ अनन्त ब्रह्माण्डों में भगवान् की जितनी निज शक्ति समूह हैं, प्रभु रुक्मिणी के वेश में उन सबको प्रकाशित कर रहे हैं ॥ १४६ ॥ शक्ति प्रकाश के छल से महाप्रभु लोक को शिक्षा भी कर रहे हैं जिससे कि पीछे कोई उनको शक्तियों की निन्दा न करे ॥ १४७ ॥ (शिक्षा यही है कि) लोक में और वेद में कथित जितनी भी विष्णु—शक्तियाँ हैं उन सबों का सन्मान करने से श्रीकृष्ण में दृढ़भक्ति होती है ॥ १४८ ॥ देवताओं के साथ द्रोह करने से श्रीकृष्ण को बड़ा दुःख होता है और समस्त देवगण सहित श्रीकृष्ण पूजा करने से ही उनको सुख होता है ॥ १४९ ॥ श्री कृष्णचन्द्र जो कुछ सिखाते हैं, वही सत्य है। परन्तु अभागे पापी जनों की बुद्धि इसे ग्रहण नहीं करती है ॥ १५० ॥ श्री विश्वम्भर प्रभु सब शक्तियों के स्वरूप में नाच रहे हैं। ऐसा मनोहर नृत्य किसी ने कभी नहीं देखा था ॥ १५२ ॥ उस समय जो देख रहे थे, जो प्रभु के साथ गा रहे थे, और जो सुन रहे थे, सब ही प्रेम सागर के तरङ्गों में बहे जा रहे थे ॥ १५२ ॥ (कारण कि) एक ही वैष्णव के नेत्रों का जितना जल है वही एक महान् बाढ के समान है समस्त वैष्णवों के नेत्रों के जल की बात तो दूर रहे ॥ १५३ ॥ प्रभु गौरसिंह आद्य शक्ति के वेश में नाच रहे हैं, और उनके चरण कमल के भ्रमर सब सुख से देख रहे हैं ॥ १५४ ॥

कम्प-स्वेद-पुलक-अश्रुर अन्त नाञि । मूर्त्तिमती भक्ति हैला चैतन्य गोसाञि ॥१५५॥
नाचेन ठाकुर धरि नित्यानन्द-हाथ । से कटाक्ष स्वभाव वर्णिते शक्ति का'त ॥१५६॥
सम्मुखे देउटि धरे पण्डित-श्रीमान् । चतुर्दिगे हरिदास करे सावधान ॥१५७॥
हेनइ समये नित्यानन्द हलधर । पड़िला मूर्च्छित हइ पृथिवी-उपर ॥१५८॥
कोथाय वा गेल बूड़ी बडाइर साज । कृष्ण रसे विह्वल हइला नागराज ॥१५९॥
जेइ मात्र नित्यानन्द पड़िला भूमिते । सकल वैष्णव-गण कान्दे चारि भिते ॥१६०॥
हुड़ा हुड़ि हैल कृष्ण प्रेमेर क्रन्दन । सकल कराय प्रभु श्रीशचीनन्दन ॥१६१॥
कारो गला धरि केहो कान्दे उच्च-रा'य । काहारो चरण धरि केहो गड़ि जाय ॥१६२॥
क्षणेके ठाकुर गोपीनाथे कोले करि । महा लक्ष्मी-भावे उठे खट्टार उपरि ॥१६३॥
सम्मुखे रहिला सभे जोड़-हस्त करि । "मोर स्तव पढ़" बोले गौराङ्ग श्रीहरि ॥१६४॥
जननी-आवेश' बुझिलेन सर्व जने । से-इ-रूपे सभे स्तुति पढ़े, प्रभु शुने ॥१६५ ।
केहो पढ़े लक्ष्मी स्तव, केहो चण्डी स्तुति । सभे स्तुति पढ़ेन-जाहार जेन मति ॥१६६॥
मालशी (राग)—"जय जय जगत्-जननि महा माया । दुःखित-जीवेरे देह' चरणेर छाया ॥१६७॥
जय जय अनन्त-ब्रह्माण्ड-कोटीश्वरि । तुमि युगे युगे धर्म राख अवतरि ॥१६८॥
ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वरे तोमार महिमा । बलिते ना पारे, अन्य कि दिबेक सीमा ॥१६९॥
जगत-स्वरूपा तुमि, तुमि सर्व-शक्ति । तुमि श्रद्धा, दया, लज्जा, तुमि विष्णु भक्ति ॥१७०॥
जत विद्या—सकल तोमार मूर्ति भेद । 'सर्व प्रकृतिर शक्ति तुमि' कहे वेद ॥१७१॥

---

प्रभु के कम्प, स्वेद, पुलक, अश्रु का अन्त नहीं है ! श्रीचैतन्य देव आज मूर्तिमती भक्ति हो गये हैं ॥१५५॥ वे प्रभु नित्यानन्द जी का हाथ पकड कर नाच रहे हैं, उनके उन कटाक्षों के स्वभाव को वर्णन करने की शक्ति भला किस में है ॥ १५६ ॥ श्रीमान पण्डित मशाल पकड़े हुए सामने खड़े हैं, और हरिदास चारों ओर सबको सावधान कर रहे हैं ॥ १५७ ॥ ऐसे ही समय में हलधर नित्यानन्द जी मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ १५८ ॥ उनकी बड़ी बूढ़ी सखी का वेश न जाने कहाँ चला गया ! नागराज अनन्त देव श्रीकृष्ण रस में विह्वल हो गये ! ॥ १५९ ॥ नित्यानन्द जी के भूमि पर गिरते ही सब वैष्णव लोग चारों ओर रोने लगे ॥ १६० ॥ श्रीकृष्ण प्रेम में रोने की उनमें एक होड़-सी मच गई—यह सब प्रभु श्रीशची नन्दन करा रहे हैं ॥ १६१ ॥ कोई किसी का गला पकड़ कर ऊँचे स्वर से रो रहा है तो कोई किसी के पाँव पकड़ कर लोट पोट हो रहा है ॥ १६२ ॥ क्षण भर में प्रभु गौरचन्द्र श्रीगोपीनाथ नामक श्री विग्रह को लेकर महा लक्ष्मी के भाव में सिंहासन पर चढ़ बैठे ॥ १६३ ॥ सब भक्त लोग हाथ जोडकर सामने खड़े हो गये । गौराङ्ग श्रीहरि बोले—"मेरी स्तुति पढ़ो" ॥ १६४ ॥ सब लोग समझ गये कि प्रभु में जगज्जननी का आवेश हुआ है अतएव सब उसी भाव के अनुसार स्तुति पढ़ते हैं और प्रभु सुनते हैं ॥ १६५ ॥ कोई लक्ष्मी-स्तुति पढ़ता है तो कोई चण्डी-स्तुति । अपनी-अपनी गति-मति के अनुसार सब ही स्तुति पढ़ते हैं ॥ १६६ ॥ स्तुतिः—"हे जगज्जननी महा माये ! तुम्हारी जय हो, जय हो । हम दुखित जीवों को श्रीचरण की छाया देवें ॥ १६७ ॥ हे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों की ईश्वरी ! तुम्हारी जय हो जय हो । तुम युग २ में अवतार लेकर धर्म की रक्षा करती हो ॥ १६८ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर भी तुम्हारी महिमा को नहीं कह सकते हैं, फिर और कौन उसकी सीमा को पा सकता है ॥ १६९ ॥ "तुम जगत्-स्वरूपा हो, तुम सर्व शक्ति हो । तुम श्रद्धा, दया, लज्जा हो । तुम ही विष्णु भक्ति हो ॥ १७० ॥ जितनी विद्याएं हैं, वे सब तुम्हारी भिन्न-भिन्न मूर्त्तियाँ ही

निखिल-ब्रह्माण्डे परिपूर्ण तुमि माता । के तोमार स्वरूप कहिते पारे कथा ॥१७२॥
तुमि त्रिजगत-हेतु गुण त्रयमयी । ब्रह्मादि तोमारे नाहि जाने जाने कोई ॥१७३॥
सर्वाश्रया तुमि सर्व जीवेर वसति । तुमि आद्या अविकारा परमा प्रकृति ॥१७४॥
जगत-आधार तुमि द्वितीय-रहिता । मही-रूपे तुमि सर्व जीव पालयिता ॥१७५॥
जल-रूपे तुमि सर्व जीवेर जीवन । तोमा' स्मङरिले खण्डे' अशेष-बन्धन ॥१७६॥
साधु जन गृहे तुमि लक्ष्मी मूर्त्तिमती । असाधुर घरे तुमि काल रूपाकृति ॥१७७॥
तुमि से कराह त्रिजगते सृष्टि-स्थिति । तोमा' ना भजिले पाय त्रिविध दुर्गति ॥१७८॥
तुमि श्रद्धा वैष्णवेर सर्वत्र उदया । राखह जननि ! चरणेर दिया छाया ॥१७९॥
तोमार मायाय मग्न सकल संसार । तुमि ना राखिले माता ! के राखिव आर ॥१८०॥
सभार उद्धार लागि तोमार प्रकाश । दुःखित-जीवेरे माता ! कर' निज-दास ॥१८१॥
ब्रह्मादिर वन्द्य तुमि सब-भूत-वुद्धि । तोमा' स्मङरिले सर्व-मंत्रादिर शुद्धि ॥१८२॥
एइ मत स्तुति करे सकल महान्त । वर-मुख महाप्रभु शुनये नितान्त ॥१८३॥
पुनः पुन सभे दण्ड प्रणाम करिया । पुन स्तुति करे श्लोक पढ़िया पढ़िया ॥१८४॥
"सभे लइलाङ माता ! तोमार शरण । शुभ दृष्टि कर' तोर पदे रहु मन" ॥१८५॥
एइ मत सभेइ करेन निवेदन । ऊर्द्ध बाहु करि सैभे करेन क्रन्दन ॥१८६॥
गृह माझे कान्दे सब पतिव्रता गण । आनन्द हइल चन्द्र शेखर भवन ॥१८७॥
आनन्दे सकल लोक वाह्य नाहि जाने । हेनइ समये निशि हैल अवसाने ॥१८८॥

---

हैं । वेद तुमको ही सर्व शक्तियों की मूल शक्ति कहते हैं ॥ १७१ ॥ "मा ! तुम निखिल ब्रह्माण्डों में व्याप्त हो । तुम्हारे स्वरूप को कौन वर्णन कर सकता है ॥ १७२ ॥ तुम ही त्रिलोक के हेतु त्रिगुणमयी प्रकृति हो । ब्रह्मादिक तुमको नहीं जानते हैं, विरला ही कोई जानता हो ॥ १७३ ॥ "तुम सब की आश्रय हो, सब जीवों की निधान हो । तुम आद्या, विकार रहित परमा प्रकृति हो ॥ १७४ ॥ तुम अद्वितीय जगत् की आधार हो ! पृथ्वी रूप से तुम ही सब जीवों को पालन करने वाली हो ॥ १७५ ॥ "जल रूप से तुम ही सब जीवों की जीवन हो । तुम्हारा स्मरण करने से अशेष बन्धन खण्डित हो जाते हैं ॥ १७६ ॥ साधु जनों के गृह में तुम मूर्त्तिमती लक्ष्मी हो और असाधु जनों के घर में तुम ही काल रूपिणी हो ॥ १७७ ॥ "तुम ही त्रिलोक को सृष्टि करने वाली हो, तुमको न भजने से जीव ( आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ) त्रिविध दुर्गति को प्राप्त होता है ॥ १७८ ॥ तुम ही वैष्णवों की सर्वत्र उदय होने वाली श्रद्धा हो । हे जननी ! हमें अपने श्रीचरणों की छाया देकर रक्षा करो ॥ १७९ ॥ "यह सारा संसार तुम्हारी माया में ही डूबा हुआ है, तुम ही नहीं बचाओगी मा ! तो और कौन बचायगा ? ॥ १८० ॥ सबके उद्धार के लिये ही तुम्हारा अवतार है । हे माता ! दुखित जीवों को अपना दास बनाओ ॥ १८१ ॥ "तुम ब्रह्मादिकों की भी वन्दनीया हो, तुम ही सब प्राणियों की वुद्धि हो । तुम्हारा स्मरण करने से मंत्रादिक सबों की शुद्धि हो जाती है" ॥ १८२ ॥ इस प्रकार सब महानुभाव स्तुति कर रहे हैं और वरदान को उद्यत महाप्रभु ध्यान पूर्वक सुन रहे हैं ॥ १८३ ॥ सब लोग बार-बार (दण्डवत) प्रणाम कर करके फिर श्लोक पढ़ते हुए स्तुति करते हैं ॥ १८४ ॥ "हे माता ! हम सबने तुम्हारी शरण ली है, ऐसी शुभ दृष्टि करो कि तुम्हारे चरण में हमारा मन रहे ॥ १८५ ॥ इस प्रकार सब ही निवेदन कर रहे हैं और भुजा ऊपर उठाकर रो रहे हैं ॥ १८६ ॥ घर भीतर पतिव्रता गण सब रो रही हैं । चन्द्र शेखर के भवन में आनन्द उमड़ रहा है ॥ १८७ ॥ उस

आनन्दे ना जाने केहो निशि भेल शेष। दारुण अरुण आसि भेल परवेश ॥१८९॥
पोहाइल निशि हैल नृत्य-अवसान। वाजिल सभार बुके जेन महा बाण ॥१९०॥
चमकित हइ सभे चारि दिगे चा'य। 'पोहाइल निशि' करि कान्दे उभरा'य ॥१९१॥
कोटि-पुत्र-शोकेओ एतेक दुःख नहे। जे दुःख जन्मिल सर्व-वैष्णव-हृदये ॥१९२॥
जे दुःखे वैष्णव-सब अरुणेरे चा'हे। प्रभुर कृपार लागि भस्म नाहि हये ॥१९३॥
ए रङ्ग रहिव हेन विषाद भाविया। अतएव गौरचन्द्र करिलेन इहा ॥१९४॥
कान्दे सर्व-भक्त गण विषाद भाविया। पतिव्रता गण कान्दे भूमिते पड़िया ॥१९५॥
जत नारायणी-शक्ति जगत-जननी। सेइ सब हइयाछे वैष्णव गृहिणी ॥१९६॥
अन्योऽन्ये कान्दे सब पतिव्रता गण। सभेइ धरेन शची देवीर चरण ॥१९७॥
चौदिगे उठिल विष्णु भक्तिर क्रन्दन। प्रेम मय हैल चन्द्र शेखर भवन ॥१९८॥
सहजेइ वैष्णवेर क्रन्दन उचित। जन्म जन्म जाने जारा कृष्णेर चरित ॥१९९॥
केहो बोले "आरे रात्रि! केने पोहाइला। हेन रसे केने कृष्ण! वञ्चित करिला" ॥२००॥
चौदिगे देखिया सब-वैष्णव-क्रन्दन। अनुग्रह करिलेन श्रीशचीनन्दन ॥२०१॥
माता-पुत्रे जेन हय स्नेह अनुराग। एइ मत सभारे दिलेन पुत्र-भाव ॥२०२॥
मातृ भावे विश्वम्भर सभारे धरिया। स्तन पान कराय परम स्निग्ध हैया ॥२०३॥
कमला, पार्वती, दया, महा नारायणी। आपने हइला प्रभु जगत जननी ॥२०४॥
सत्य करिलेन प्रभु आपनार गीता। 'आमि पिता, पितामह, आमि धाता, माता' ॥२०५॥

---

आनन्द में किसी को बाहर को कुछ सुध-बुध नहीं है। ऐसे ही समय में रात्रि शेष हो गई ॥ १८८ ॥ आनन्द में किसी को भी रात बीत जाने की खबर ही नहीं है। उधर अरुणोदय की घोर लालिमा ने आकर प्रवेश किया ॥ १८९ ॥ रात्रि शेष हुई तो नृत्य भी शेष हुआ यह सब की छाती में शेल सा आ चुभा ॥१९०॥ सब लोग चमक कर चारों ओर देखने लगे और "रात तो बीत गई" कहते हुए जोर २ से रोने लगे ॥ १९१ ॥ जो दुःख इस समय सब वैष्णव जनों के हृदय को हुआ, वह दुःख करोड़ो पुत्रों के शोक में भी नहीं है ॥१९२॥ जिस दुःख से वैष्णव लोग सूर्य की ओर देखने लगे ( उससे वह भस्म हो जाता ) परन्तु प्रभु की कृपा उस पर होने के कारण वह भस्म नहीं हो रहा है ॥ १९३ ॥ इस दुःख की भावना से उस सुख का रङ्ग पक्का हो जायगा सोचकर ही गौरचन्द्र ने ऐसा किया ॥ १९४ ॥ दुःख की भावना में सब भक्त लोग रो रहे हैं और पतिव्रता गण भूमि पर पड़ी रो रही हैं ॥ १९५ ॥ नारायणी शक्तिरूप जितनी जगत् जननी हैं वे ही सब वैष्णव गृहिणी हुई हैं ॥ १९६ ॥ सब पतिव्रता गण परस्पर में रो रही हैं और सभी शची देवी के चरण पकड़ रही हैं ॥ १९७ ॥ चारों ओर विष्णु भक्ति का क्रन्दन मच गया। चन्द्र शेखर का घर प्रेम मय हो गया ॥ १९८ ॥ जो जन्म जन्मान्तर से श्रीकृष्ण के चरित्र को जानते हैं, उन वैष्णवों का रोना सहज स्वभाव से उचित ही है ॥ १९९ ॥ कोई कहते हैं "अरी रात्रि! तू बीत क्यों गई? हे कृष्ण! ऐसे रस से हमें वञ्चित क्यों कर दिया?" ॥ २०० ॥ चारों ओर सब वैष्णवों को रोते देख श्री शचीनन्दन ने सब के ऊपर अनुग्रह किया ॥ २०१ ॥ उन्होंने माता-पुत्र में जो स्नेह अनुराग होता है वैसा पुत्रभाव सबको प्रदान किया ॥२०२॥ पश्चात् प्रभु विश्वम्भर ने परम स्निग्ध हो, सब भक्तों को उठा २ कर स्तन पान कराया ॥२०३॥ प्रभु स्वयं जगज्जननी कमला, पार्वती, दया, महानारायणी हो गये ॥ २०४ ॥ प्रभु अपनी गीता के इस वाक्य को सत्य कर रहे हैं कि "मैं ही पिता, पितामह, धाता और माता हूँ ॥ २०५ ॥ ( गीता० ९ । २७ ) वैष्णव वृन्द जो

तथाहि गीतायाम् (९ । १७ ।)—"पिताह मस्य जगतो माता धाता पितामहः" ॥
आनन्दे वैष्णव-सब करे स्तन पान । कोटि कोटि जन्म जारा महा भाग्यवान् ॥२०६॥
स्तन पाने सभार विरह गेल दूर । प्रेम रसे सभे मत्त हइला प्रचुर ॥२०७॥
ए सब लीलार कभू अवधि ना हय । 'आविर्भाव' 'तिरोभाव' मात्र वेदे कय ॥२०८॥
महाराज राजेश्वर गौराङ्ग सुन्दर । एहो रङ्ग करिलेन नदीया-भितर ॥२०९॥
निखिल ब्रह्माण्डे जत स्थूल सूक्ष्म आछे । सब चैतन्येर रूप—भेद कर' पाछे ॥२१०॥
इच्छाय काचये काच, इच्छाय घुचाय । इच्छाय करये सृष्टि, इच्छाय मिलाय ॥२११॥
इच्छा मय महेश्वर-इच्छा काच कांचे । तान इच्छा नाहि करे हेन कोन् आछे ॥२१२॥
तथापि ताँहार काच—सकलि सुसत्य । जीव तारिवार लागि ए सब महत्त्व ॥२१३॥
इहा ना बुझिया कोन पापी जना जना । प्रभुरे बोलये "गोपी" खाइया आपना' ॥२१४॥
अद्भुत गोपिका-नृत्य—चारि-वेद-धन । कृष्ण भक्ति हय इहा करिले श्रवण ॥२१५॥
हइला बड़ाइ—बूड़ी प्रभु नित्यानन्द । से लीलाय हेन लक्ष्मी-काचे गौरचन्द्र ॥२१६॥
जखने जे रूपे गौर सुन्दर विहरे । सेइ अनुरूप रूप नित्यानन्द धरे ॥२१७॥
प्रभु हइलेन गोपी, निताइ बड़ाइ । के बुझिव इहा—जार अनुभव नाइ ॥२१८॥
कृष्ण-अनुग्रहे से ए-सब-मर्म जानि । अल्प-भाग्ये नित्यानन्द स्वरूप ना चिनि ॥२१९॥
किवा योगी नित्यानन्द, किवा भक्त ज्ञानी । जार जेन मत इच्छा ना बोलये केनि ॥२२०॥
जे से के ने चैतन्येर नित्यानन्द नहे । तथापि से पाद पद्म रहुक हृदये ॥२२१॥
एत परिहारे ओ जे पापी निन्दा करे । तबे लाथि मारों तार शिरेर उपरे ॥२२२॥

---

कोटि २ जन्मों के महाभाग्यवान् हैं—सब बड़े आनन्द में स्तनपान कर रहे हैं ॥ २०६ ॥ स्तनपान करने से सबों का विरह दूर हो गया और प्रेम रस में सभी बड़े मतवाले हो गये ॥ २०७ ॥ इन सब लीलाओं की कभी कोई सीमा (समाप्ति) नहीं है । इनका केवल आविर्भाव तिरोभाव ही वेद कहते हैं ॥२०८॥ महाराज राजेश्वर श्री गौराङ्ग सुन्दर ने नदिया में यह भी (पूर्वोक्त) लीला विनोद किया ॥ २०९ ॥ अखिल ब्रह्माण्ड में जितने स्थूल सूक्ष्म पदार्थ हैं सब चैतन्य के ही रूप है—ऐसा न हो कि पीछे कहीं भेद करो ॥ २१०॥ (श्री-चैतन्य) अपने इच्छा से स्वांग सजते हैं, इच्छा से मिटा देते हैं, इच्छा से सृष्टि करते और इच्छा से लय कर देते हैं ॥ २११॥ वे इच्छामय महेश्वर हैं, इच्छानुसार स्वांग सजते हैं । ऐसा कौन है जो उनको इच्छानुसार न चले ॥ २१२ ॥ तथापि उनका स्वांग सब ही सुसत्य है जीवोद्धार के लिये ही आपका यह सब महत्व है ॥ २१३ ॥ यह (उपरोक्त तत्त्व) न समझ कर कोई २ पापी जन प्रभु को गोपी कहते हैं वे आत्मघात करते हैं ॥ २१४ ॥ प्रभु के गोपीभाव का अद्भुत नृत्य चारों वेदों का धन है । इसके श्रवण से कृष्णभक्ति होती है ॥ २१५ ॥ जिस लीला में गौरचन्द्र ने लक्ष्मी-वेश बनाया था उसमें प्रभु नित्यानन्द बड़ी बूढ़ी सखी बने थे ॥ २१६ ॥ श्री गौरसुन्दर जब जिस रूप में विहार करते हैं, श्री नित्यानन्द उस समय उसके अनुरूप अपना रूप बनाते हैं ॥ २१७ ॥ महाप्रभु गोपी बने तब श्री नित्यानन्द जी बड़ी बूढ़ी बने—जिसे अनुभव नहीं वह इसे क्या समझेगा ॥ २१८ ॥ श्रीकृष्ण की कृपा से यह सब रहस्य जाना जाता है । अल्प भाग्य से श्रीनित्यानन्द का स्वरूप नहीं पहिचाना जाता है ॥ २१९ ॥ श्री नित्यानन्द को कोई योगी, कोई भक्त, कोई ज्ञानी, जैसी जिसकी इच्छा, वैसा क्यों न कहें ॥ २२० ॥ और श्री नित्यानन्द श्री चैतन्यदेव के चाहे जो कुछ भी क्यों न हों, तथापि उनके वे चरण—कमल मेरे हृदय में सदा रहें ॥ २२१ ॥ इतना समाधान करने पर भी

मध्य खण्ड-कथा जेन अमृत-स्रवण। जहिं लक्ष्मी वेशे नृत्य कैला नारायण ॥२२३॥
नाचिला जननी भावे भक्ति शिखाइया। सभार पूरिला आश स्तन पियाइया ॥२२४॥
सप्त दिन श्रीआचार्य रत्नेर मन्दिरे। परम-अद्भुत तेज छिल निरन्तरे ॥२२५॥
चन्द्र सूर्य विद्युत्-एकत्र जेन ज्वले। देखये सुकृति-सव महा कुतूहले ॥२२६॥
जतेक आइसे लोक आचार्य मन्दिरे। चक्षु मेलिवारे शक्ति केहो नाहि धरे ॥२२७॥
लोके बोले "कि कारणे आचार्येर घरे। दुइ चक्षु मेलिते-फूटिया जेन पड़े" ॥२२८॥
शुनिया वैष्णव गण मने मने हासे। केहो आर किछु नाहि करये प्रकाशे ॥२२९॥
हेन से चैतन्य-माया परम-गहन। तथापिह केहो किछु ना बुझे कारण ॥२३०॥
ए मत अचिन्त्य लीला गौरचन्द्र करे। नवद्वीपे सर्व-शक्ति-सहिते विहरे ॥२३१॥
शुन शुन आरे भाइ! चैतन्येर कथा। मध्य खण्डे जे जे कर्म कैला जथा जथा ॥२३२॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ॥२३३॥

# अथ उन्नीसवाँ अध्याय

जय जय विश्वम्भर सर्व-वैष्णवेर नाथ। भक्ति दिया जीव प्रभु! कर' आत्म सात् ॥१॥
हेन मते नवद्वीपे प्रभु विश्वम्भर। क्रीड़ा करे, नहे सर्व-नयन-गोचर ॥२॥
आपने भक्तेर सब मन्दिरे मन्दिरे। नित्यानन्द-गदाधर-सहति विहरे ॥३॥

---

जो पापी उनकी निन्दा करता है, मैं उसके सिर पर लात मारता हूँ ॥ २२२ ॥ मध्यखण्ड की कथा जिसमें नारायण (गौरचन्द्र) ने लक्ष्मी वेश में नृत्य किया है, अमृत का झरना जैसा है ॥ २२३ ॥ प्रभु भक्ति की शिक्षा दे कर जननी भाव में नाचे और स्तन पान कराकर सबकी आशा पूरी की ॥ २२४ ॥ श्री चन्द्रशेखर आचार्य रत्न के घर में सात दिन तक निरन्तर एक परम अद्भुत प्रकाश बना रहा ॥ २२५ ॥ मानो तो चन्द्रमा सूर्य और विद्युत एक ठौर में चमक रहे हों। पुण्यशाली जन सब परम आनन्द पूर्वक दर्शन करते हैं ॥ २२६ ॥ आचार्य रत्न के घर में जितने भी लोग आते, उनमें से किसी की मजाल क्या जो घर के भीतर आँख तो खोल ले ॥ २२७ ॥ सब लोग कहते—"कारण क्या है कि आचार्य के घर भीतर आँख खोलते ही वे फूटने सी लगती हैं?" ॥ २२८ ॥ यह सुन वैष्णव गण मन ही मन हँसते हैं, कोई भी खोल कर कुछ नहीं बतलाते है ॥ २२९ ॥ श्री चैतन्य की वह माया ऐसी ही कुछ परम गहन है कि फिर भी (तेज के मारे आँखें फूटने लगने पर भी) कोई भी कारण को समझ नहीं पाता है ॥ २३० ॥ इस प्रकार श्री गौरचन्द्र अचिन्त्य लीला करते हैं और सर्व शक्ति सहित नवद्वीप में विहार करते हैं ॥ २३१ ॥ अरे भाइओ! श्री चैतन्य के मध्यखण्ड की कथा—जहाँ २ जो २-लीला की हैं—बार बार सुनो ॥ २३२ ॥ श्री कृष्ण चैतन्य एवं श्रीनित्यानन्द चन्द्र को अपना सर्वस्व जानकर यह वृन्दावन उनके चरण युगल में उनके गुण गान को समर्पण करता है ॥ २३३ ॥

इति श्री गौरांगस्य गोपिका नृत्य वर्णनं नाम अष्टादशोऽध्यायः

सब वैष्णवों के नाथ श्री विश्वम्भर चन्द्र की जय हो, जय हो। हे प्रभो! भक्ति देकर जीव को अपनाओ ॥ १ ॥ इस प्रकार नवद्वीप में श्री विश्वम्भर राय क्रीड़ा कर रहे हैं, तथापि उनकी लीलाएँ सब के नयन गोचर नहीं हैं ॥ २ ॥ प्रभु अपने भक्तों के घर २ श्री नित्यानन्द और श्री गदाधर के साथ विहार

प्रभुर आनन्दे पूर्ण भागवत गण । कृष्ण-परिपूर्ण देखे सकल-भुवन ॥४॥
निरवधि सभार आवेशे नाहि बाह्य । सङ्कीर्तन बिना आर नाहि कोन कार्य ॥५॥
सभा' हैते मत्त बड़ आचार्य गोसाञि । अगाध चरित्र, बुझे हेन केहो नाञि ॥६॥
जाने जन कथोक श्रीचैतन्य कृपाय । "चैतन्येर महा भक्त शान्ति पुर राय" ॥७॥
बाह्य हैले विश्वम्भर सर्व-वैष्णवेरे । महा भक्ति करेन, विशेष अद्वैतेरे ॥८॥
इहाते असुखी बड़ शान्ति पुर नाथ । मने मने गर्जे चित्ते ना पाय सोयाथ ॥९॥
"निरवधि चोरा मोरे विडम्बना करे । प्रभुता छाड़िया मोर चरणेते धरे ॥१०॥
बले नाहि पारों मुञि, प्रभु महाबली । धरियाओ लय मोर चरणेर धूली ॥११॥
भक्ति-बल सबे मोर आछये उपाय । भक्ति बिना विश्वम्भर जिनिल ना जाय ॥१२॥
तबे से 'अद्वैत सिंह' नाम लोके घोषे' । चूर्ण करों माया जबे अशेष विशेषे ॥१३॥
भृगुरे जिनिञा आश पाइयाछे चोरा । भृगु-हेन शत शत शिष्य आछों मोरा ॥१४॥
हेन क्रोध जन्माइब प्रभुर शरीरे । स्वहस्ते आपने जेन मोर शास्ति करे ॥१५॥
'भक्ति' बुझाइते से प्रभुर अवतार । 'हेन भक्ति ना मानिमु' एइ मंत्र सार ॥१६॥
भक्ति ना मानिले, क्रोधे आपना' पासरि । प्रभु मोरे शास्ति करि बेन चूले धरि" ॥१७॥
एइ मंत्र चिन्तिया अद्वैत महा रङ्गे । विदाय करिल प्रभु, हरिदास सङ्गे ॥१८॥
कोन कार्य लक्ष्य करि गृहेते आइला । आसिया मनेर मंत्र करिते लागिला ॥१९॥
निरवधि भावावेशे दोले मत्त हैया । वाखाने वाशिष्ठ-शास्त्र 'ज्ञान' प्रकाशिया ॥२०॥

---

करते हैं ॥ ३ ॥ प्रभु के आनन्द से भक्त वृन्द भी सब आनन्द से पूर्ण हो रहे हैं और सकल भुवन को कृष्ण से परिपूर्ण देख रहे हैं ॥ ४ ॥ उन सबों को सदा आवेश में रहने से बाह्य ज्ञान नहीं रहता । संकीर्तन के बिना उनका और कोई कार्य नहीं है ॥ ५ ॥ श्री अद्वैत गुसाँई सब से अधिक मत्त रहते हैं । उनका चरित्र अगाध है, जिसे समझने वाला कोई नहीं है ॥ ६ ॥ श्री चैतन्यचन्द्र की कृपा से कोई २ ही यह जानते हैं कि शान्तिपुर के नाथ श्रीअद्वैत श्री चैतन्य के महान् भक्त हैं ॥ ७ ॥ बाह्य ज्ञान आने पर श्री विश्वम्भर प्रभु सब वैष्णवों की बड़ी भारी भक्ति करते हैं, विशेष करके श्री अद्वैताचार्य की ॥ ८ ॥ इससे शान्तिपुरनाथ बड़े दुःखी रहते हैं, वे मन ही मन गर्जा करते हैं और चित्त में शान्ति नहीं पाते हैं ॥ ९ ॥ (वे मनमें सोचते हैं कि) "यह चोर (गौरचन्द्र) सदा मेरी विडम्बना करता है अपनी प्रभुताई को छोड़ कर मेरे चरण पकड़ता है ॥ १० ॥ "बल में तो मैं इनसे पार नहीं पाता—क्योंकि प्रभु महाबली हैं, मुझे पकड़ करके भी मेरे पाँव को धूल ले लेते हैं ॥ ११ ॥ केवल एक भक्ति बल ही मेरे लिये उपाय है । भक्ति बिना विश्वम्भर जीते नहीं जा सकते ॥ १२ ॥ "मेरे 'अद्वैतसिंह' नाम की लोक में तभी डंका बजेगी जब मैं प्रभु के छल-छिपाव को अशेष-विशेष प्रकार से चूर २ कर दूँगा ॥ १३ ॥ भृगु को जीतकर इनका साहस बढ़ गया है परन्तु भृगु जैसे तो मेरे सैकड़ों शिष्य हैं ॥ १४ ॥ "मैं प्रभु के शरीर में ऐसा क्रोध उत्पन्न करदूँगा कि जिससे वे अपने ही हाथों मुझे दण्ड दें ॥ १५ ॥ प्रभु का अवतार भक्ति समझाने के लिए ही है । ऐसी जो भक्ति है उसे मैं नहीं मानूँगा, बस यही मंत्र सार है ॥१६॥ "भक्ति न मानने पर प्रभु क्रोध में आकर अपने को भूल जायँगे और मेरे केशों को पकड़ कर मुझे दण्ड देंगे ॥ १७ ॥ ऐसा उपाय निश्चित करके श्री अद्वैताचार्य श्री हरिदास के साथ प्रभु के पास से विदा हुए ॥ १८ ॥ "किसी कार्य के उद्देश्य से वे घर आये और अपने मन में निश्चित किये हुए उपाय को करने लगे ॥ १९ ॥ वे सदा भावावेश में मत्त झूमते रहते और ज्ञान का महत्त्व

'ज्ञान विने किवा शक्ति धरे विष्णु भक्ति। अतएव सभार प्राण 'ज्ञान' सर्व शक्ति ॥२१॥
हेन 'ज्ञान' ना बुझिया कोन कोन जन। घरे धन हाराइया, चाहे गिया वन ॥२२॥
'विष्णु भक्ति' दर्पण, लोचन हय 'ज्ञान'। चक्षु हीन-जनेर दर्पणे कोन काम ॥२३॥
आदि वृद्ध, आमि पढिलाङ सर्व शास्त्र। बुझिलाङ सर्व-अभिप्राय 'ज्ञान' मात्र ॥२४॥
अद्वैत-चरित्र भाल बुझे हरिदास। व्याख्यान शुनिआ महा-अट्ट अट्टहास ॥२५॥
एइ मत अद्वैतेर चरित्र अगाध। सुकृतिर भाल, दुष्कृतिर कार्य बाध ॥२६॥
सर्व वाञ्छा कल्प तरु प्रभु विश्वम्भर। अद्वैत-सङ्कल्प चित्ते हइल गोचर ॥२७॥
एक दिन नगर भ्रमये प्रभु रङ्गे। देखये आपन सृष्टि नित्यानन्द-सङ्गे ॥२८॥
आपनारे 'सुकृति' करिया विधि माने'। 'मोर शिल्प चा'हे प्रभु सदय-नयने' ॥२९॥
दुइ चन्द्र जेन दुइ चलिया से जाय। मति-अनुरूप सभे दरशन पाय ॥३०॥
अन्तरिक्षे थाकि सब देखे देव गण। दुइ चन्द्र देखि–सभे गणे' मने मन ॥३१॥
आपन लोकेरे हैल वसुमती-ज्ञान। चान्द देखि पृथिवीरे हैल स्वर्ग-भाण ॥३२॥
नर-ज्ञान आपनारे सभार जन्मिल। चन्द्रेर प्रभावे नरे देव-बुद्धि हैल ॥३३॥
दुइ चन्द्र देखि सभे करेन विचार। 'कभु स्वर्गे नाहि दुइ चन्द्रेर अधिकार ॥३४॥
कोन देव बोले "शुन वचन आमार। मूल चन्द्र एक, एक प्रतिविम्ब तार ॥३५॥
कोन देव बोले "हेन बुझिये कारण। भाग चन्द्र विधि किवा करिल योजन ॥३६॥

प्रकाश करते हुए योगवाशिष्ठ शास्त्र की व्याख्या किया करते ॥ २० ॥ यथाः—"ज्ञान के बिना विष्णुभक्ति में भला क्या शक्ति रह जाती है, इसीलिए सब का प्राण, सबकी शक्ति 'ज्ञान' ही है ॥ २१ ॥ ऐसे ज्ञान के बिना समझे कोई २ जन बाहर अन्य चेष्टा करते है मानो वे अपने घर में धन भूलकर वन में जाकर ढूँढते हैं ॥ २२ ॥ विष्णुभक्ति तो दर्पण है और ज्ञान नेत्र है। नेत्रहीन जन को दर्पण से क्या काम ? ॥ २३ ॥ मैंने सब शास्त्र आदि से अन्त तक पढ़े हैं और उससे यही समझा है कि सब शास्त्रों का अभिप्राय ज्ञान ही है" ॥२४॥ श्री अद्वैत के चरित्र को श्री हरिदास जी भली भाँति समझते हैं, वे इस व्याख्या को सुनकर ठहाका मार कर हँसते हैं ॥ २५ ॥ इस प्रकार अद्वैत जी के चरित्र अगाध हैं जो सुकृतिवान् के लिये उत्तम (भक्ति में सहायक) हैं और दुष्कृतिवान् के कार्य में बाधक हैं ॥ २६ ॥ प्रभु विश्वम्भर सर्ववाञ्छा कल्पतरु हैं। वे अद्वैत के सङ्कल्प को मन में जान गये ॥ २७ ॥ एक दिन प्रभु श्री नित्यानन्द के साथ आनन्द से नगर में भ्रमण कर रहे हैं और अपनी सृष्टि को देखते जा रहे हैं ॥ २८ ॥ इससे विधाता अपने को सुकृतिशाली मान रहा है कि अहा ! प्रभु दया भरे नेत्रों से मेरी कारीगरी (सृष्टि) को देख रहे हैं ॥ २९ ॥ दोनों प्रभु चन्द्रमा जैसे हैं दोनों चले जा रहे हैं और लोग सब अपनी २ भावना के अनुसार उनका दर्शन पा रहे हैं ॥ ३० ॥ देवगण सब आकाश में स्थित होकर देख रहे हैं। दो चन्द्रमा देख कर वे मन २ में कुछ सोचने लगे ॥३१॥ वे अपने लोक को तो पृथ्वी समझने लगे और चाँद को देखकर पृथ्वी को स्वर्ग मानने लगे ॥ ३२ ॥ (इसी प्रकार) वे देवता सब अपने को तो मनुष्य समझने लगे, और चन्द्रमाओं के कारण मनुष्यों को देवता समझने लगे ॥ ३३ ॥ दो चन्द्रमा देखकर वे सब सोचते हैं कि स्वर्ग में तो दो चन्द्रमाओं का राज्य नहीं है (फिर ये दो कैसे हैं) ॥३४॥ कोई देवता बोला—"मेरे वचन सुनो ! एक तो मूल चन्द्रमा है और एक उसका प्रतिबिम्ब है ॥ ३५ ॥ दूसरा कोई देवता बोला—"दो होने का कारण ऐसा मालूम होता है कि विधाता ने एक चन्द्रमा के दो भाग कर दिये हैं" ॥ ३६ ॥ तीसरा कोई देवता बोला—"पिता पुत्र एक जैसे ही होते हैं।

केहो बोले "पिता-पुत्र एक रूप हय। एक विधु बुझि, एक चन्द्रेर तनय" ॥३७॥
वेदे तारे निश्चियिते जे प्रभुर रूप। ताहाते जे देव मोहे,' ए नहे कौतुक ॥३८॥
हेन मते नगर भ्रमये दुइ जन। नित्यानन्द, जगन्नाथ मिश्रेर नन्दन ॥३९॥
नित्यानन्द सम्बोधिया बोले विश्वम्भर। "चल आइ शान्ति पुर-आचार्येर घर" ॥४०॥
महारङ्गी दुइ प्रभु-परम-चञ्चल। सेइ पथे चलिलेन आचार्येर घर ॥४१॥
मध्य-पथे गङ्गार समीपे एक ग्राम। मुलुकेर काछे से 'ललितपुर' नाम ॥४२॥
सेइ ग्रामे गृहस्थ-संन्यासी एक आछे। पथेर समीपे घर-जाह्नवीर काछे ॥४३॥
नित्यानन्द-स्थाने प्रभु करये जिज्ञासा। "काहार् मण्डप जान,' कह कार् वासा" ॥४४॥
नित्यानन्द बोले "प्रभु! संन्यासि-आलय"। प्रभु बोले "तारे देखि, यदि भाग्य हय" ॥४५॥
हासि गेला दुइ प्रभु संन्यासीर स्थाने। विश्वम्भर संन्यासीरे करिला प्रणामे ॥४६॥
देखिया मोहन मूर्त्ति द्विजेर नन्दन। सर्वाङ्गे सुन्दर रूप, प्रफुल्ल वदन ॥४७॥
सन्तोषे संन्यासी करे बहु आशीर्वाद। "धन वंश सुविवाह हउ विद्या लाभ" ॥४८॥
प्रभु बोले "गोसाञि! ए नहे आशीर्वाद। हेन बोल 'तोरे हउ कृष्णेर प्रसाद' ॥४९॥
विष्णु भक्ति-आशीर्वाद-अक्षय अव्यय। जे बलिला गोसाञि! तोमार योग्य नय' ॥५०॥
हासिया संन्यासी बोले "पूर्वे जे शुनिल। साक्षात् ताहार आजि निदान पाइल ॥५१॥
भाल रे बलिते लोक ठेङ्गा लैया धाय। ए विप्र पुत्रेर सेइ मत व्यवसाय ॥५२॥
'धन-वर' दिल आमि परम-सन्तोषे। कोथा गेल उपकार, आरो आमा' दोषे" ॥५३॥

---

इनमें भी एक तो चन्द्रमा है, दूसरा उसका बेटा है" ॥३७॥ जिस प्रभु का रूप वेद निश्चित नहीं कर पाता उससे देवगण मोह को प्राप्त हो जायँ तो कोई आश्चर्य नहीं है ॥ ३८ ॥ इस प्रकार श्री नित्यानन्द और श्री जगन्नाथ मिश्र के पुत्र (श्री विश्वम्भर) दोनों नगर में भ्रमण कर रहे हैं ॥ ३९ ॥ ( इतने में ) श्री विश्वम्भर देव श्री नित्यानन्द जी को सम्बोधन करके बोले—"चलो, शान्तिपुर आचार्य के घर चलें" ॥ ४० ॥ दोनों प्रभु बड़े रङ्गीले है, बड़े चंचल है, वे उसी मार्ग से आचार्य के घर चल दिये ॥ ४१ ॥ आधे रास्ते पर गङ्गा के समीप और मुलुक के पास 'ललितपुर' नाम का एक गाँव पड़ा ॥ ४२ ॥ उस गाँव में एक गृहस्थ संन्यासी रहता था। उसका घर गङ्गा जी के समीप रास्ते के पास ही था ॥ ४३ ॥ ( उसे देख ) प्रभु ने नित्यानन्द जी से पूछा "जानते हो, यह किसका स्थान है ? कहो तो कौन इसमें रहते हैं ?" ॥४४॥ नित्यानन्द जी बोले—"प्रभु ! यह संन्यासी का स्थान है, प्रभु बोले-"यदि भाग्य हो तो उनके दर्शन करें ॥ ४५ ॥ हँसते २ दोनों प्रभु संन्यासी के स्थान पर गये। जाकर विश्वम्भर देव ने संन्यासी को प्रणाम किया ॥४६॥ ब्राह्मण के पुत्र की मोहनी मूर्त्ति सर्वांग सुन्दर रूप और प्रसन्न वदन को देखकर संन्यासी प्रसन्न होकर बहुत सा आशीर्वाद देने लगा कि "तुम्हें धन मिले, तुम्हारा वंश बढ़े, सुन्दर स्त्री के साथ तुम्हारा ब्याह हो और तुम्हें विद्या प्राप्त हो" ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ प्रभु बोले—"गुसांई ! यह तो आशीर्वाद नहीं है। ऐसा कहो कि तेरे ऊपर श्रीकृष्ण कृपा हो ॥ ४९ ॥ विष्णुभक्ति का आशीर्वाद ही अक्षय है, अव्यय है। जो आशीर्वाद तुमने दिया वह तो गुसांई जी ! तुम्हारे योग्य नहीं है" ॥ ५० ॥ संन्यासी हँसता हुआ बोला कि जो पहले सुना था आज उसका साक्षात् प्रमाण मिल गया ॥ ५१ ॥ भला कहने पर लोग लाठी लेकर दौड़ते हैं, इस विप्र के पुत्र का भी वैसा ही व्यवहार है ॥ ५२ ॥ मैंने परम संतुष्ट होकर धन प्राप्ति का वरदान दिया, तो उपकार मानना तो दूर रहा, उल्टा मुझे दोष देने लगा" ॥ ५३ ॥ संन्यासी फिर बोला—"ब्राह्मण कुमार ! सुनो

संन्यासी बोलये "शुन ब्राह्मण कुमार। केने तुमि आशीर्वाद निन्दिले आमार ॥५४॥
पृथिवीते जन्मिया जे ना कैल विलास। उत्तम कामिनी जार ना हइल पाश ॥५५॥
जार धन नाहि, तार जीवने कि काज। हेन 'धन-वर' दिते पाओ तुमि लाज ॥५६॥
हइल वा विष्णु भक्ति तोमार शरीरे। धन विना कि खाइवा? बोलत आमारे" ॥५७॥
हासे प्रभु संन्यासीर वचन शुनिया। श्रीहस्त दिलेन निज कपाले तुलिया ॥५८॥
व्यपदेशे महाप्रभु समारे शिखाय। 'भक्ति बिने केहो जेन किछुइ ना चाय ॥५९॥
"शुन शुन गोसाञि संन्यासि! जे खाइव। निज कर्मे जे आछे, से आपने मिलिव ॥६०॥
धन-वंश-निमित्त संसारे काम्य करे। बोल तार धन-वंश तवे केने मरे ॥६१॥
ज्वरेर लागिया केहो कामना ना करे। तवे केने ज्वर आसि पीड़ये शरीरे ॥६२॥
शुन शुन गोसाञि! इहार हेतु-'कर्म'। कोन महाजने से इहार जाने मर्म ॥६३॥
वेदेओ बुझाय स्वर्ग, बोले जना जना। मूर्ख-प्रति से केवल वेदेर करुणा ॥६४॥
विषय सुखेते बड़ लोकेर सन्तोष। चित्त बुझि कहे वेद, वेदेर कि दोष ॥६५॥
'धन पुत्र पाइ गङ्गा स्नान हरि नामे। शुनिञा चलये सब वेदेर कारणे ॥६६॥
जे-ते-मते गङ्गा स्नान हरि नाम लैले। द्रव्येर प्रभावे 'भक्ति' हइवेक हेले ॥६७॥
एइ वेद-अभिप्राय मूर्ख नाहि बुझे। कृष्ण भक्ति छाड़िया, विषय सुखे मजे ॥६८॥
भाल मन्द विचारिया बुझह गोसाञि। कृष्ण भक्ति-व्यतिरिक्त आर वर नाञि" ॥६९॥
संन्यासीर लक्ष्ये शिक्षा गुरु भगवान्। 'भक्ति योग' कहे वेद करिया प्रमाण ॥७०॥

---

तुमने मेरे आशीर्वाद की निन्दा क्यों की, उसे बुरा कैसे बताया? ॥ ५४ ॥ अरे! पृथ्वी पर जन्म लेकर जिसने भोग विलास नहीं किया, उत्तम कामिनी जिसके पास न हुई, धन न हुआ उसका जीवन से क्या काम? ऐसा धन का वरदान देने पर तुम लज्जा मानते हो ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ "अच्छा! तुम्हारे शरीर में विष्णु भक्ति हो भी गया तो धन बिना क्या खाओगे, बताओ तो मुझे?" ॥ ५७ ॥ संन्यासी के वचनों को सुनकर प्रभु हँसे और अपने श्रीहस्त से अपने ललाट को स्पर्श किया ॥ ५८ ॥ इस प्रसङ्ग के छल से महाप्रभु सबको यही शिक्षा दे रहे हैं कि भक्ति बिना कोई कुछ भी न चाहे ॥ ५९ ॥ महाप्रभु जी बोले—"हे संन्यासी गुसांई जी! सुनो जो मैं खाऊँगा। अपने भाग्य में जो है वह आप ही मिल जायगा (उसे ही खाऊँगा) ॥ ६० ॥ "(और सुनो) धन और वंश के लिए संसार कामना करता है फिर उनका (धन वंश का) नाश क्यों हो जाता है, बताओ तो सही ॥ ६१ ॥ और ज्वर को कोई नहीं चाहता है फिर क्यों ज्वर आकर शरीर को पीड़ा देता है ॥ ६२ ॥ "सुनो गुसांई जी! सुनो! इसका कारण है कर्म। विरले कोई महानुभाव ही इसका मर्म जानते हैं ॥ ६३ ॥ वेद भी स्वर्ग का वर्णन करता है और लोग भी सब कहते हैं, परन्तु इसे केवल मूर्खों के ऊपर वेद की करुणा समझो ॥ ६४ ॥ "(कारण कि) लोगों को विषय सुख में बड़ा ही सन्तोष है—इस चित्त वृत्ति को समझ करके ही वेद (स्वर्ग की) कहते हैं-इसमें वेद का क्या दोष है ॥ ६५ ॥ वेद ने कहा कि गङ्गा स्नान से, हरि नाम से, धन और पुत्र मिलते हैं यह सुनकर सब इस पर चलने लगते हैं ॥ ६६ ॥ "जिस किसी प्रकार से गङ्गा स्नान करने और हरि नाम लेने से वस्तु शक्ति के प्रभाव से सहज में ही भक्ति हो जायगी ॥ ६७ ॥ वेद के इस अभिप्राय को मूर्ख नहीं समझते हैं, और श्रीकृष्ण भक्ति को छोड़ कर विषय सुख को भजते हैं ॥ ६८ ॥ "गुसांई जी! नेक विचार कर भला बुरा समझो। श्रीकृष्ण भक्ति के बिना और दूसरा वरदान नहीं है" ॥ ६९ ॥ संन्यासी को लक्ष्य करके शिक्षागुरु भगवान् वेद के प्रमाण पर

जे कहे चैतन्य चान्द से-इ सत्य हय । पर निन्दा-पापे जीव ताहा नाहि लय ॥७१॥
हासये संन्यासी शुनि प्रभुर वचन । "ए वुझि पागल विप्र–मंत्रे र कारण ॥७२॥
हेन वुझि एइ से संन्यासी वुद्धि दिया । लइ जाय ब्राह्मण कुमार भाण्डाइया ॥७३॥
संन्यासी बोलये "हेन काल से हइल । शिशु अग्रे ते आमि किछु ना जानिल ॥७४॥
आमि करिलाङ जे पृथिवी पर्यटन । अयोध्या, मथुरा, माया, बदरिकाश्रम ॥७५॥
गुज्जराट, काशी, गया, विजया नगरी । सिंहल गेलाङ आमि, जत आछे पुरी ॥७६॥
आमि ना जानिल भाल मन्द हय का'य । दूधेर छाओयाल आजि आमारे शिखाय" ॥७७॥
हासि बोले नित्यानन्द "शुनह गोसाञि । शिशु-सङ्गे तोमार विचारे कार्य नाञि ॥७८॥
आमि से जानिये भाल तोमार महिमा । आमारे देखिया तुमि सब कर' क्षमा" ॥७९॥
आपनार श्लाघा शुनि संन्यासी सन्तोषे । भिक्षा करिवारे झाट बोलये हरिषे । ८०॥
नित्यानन्द बोले "कार्य गौरवे चलिव । किछु देह' स्नान करि पथेते खाइव" ॥८१॥
संन्यासी बोलये "स्नान कर' एइ खाने । किछु खाइ स्निग्ध हइ करह गमने" ॥८२॥
पातकी तारिते दुइ-प्रभु-अवतारे । रहिलेन दुइ प्रभु संन्यासीर घरे ॥८३॥
जाह्नवीर मज्जने घुचिल पथ श्रम । फलाहार करिते वसिला दुइ जन ॥८४॥
दुग्ध-आम्र पनसादि करि कृष्ण साथ । शेष खाये दुइ प्रभु संन्यासि-साक्षात् ॥८५॥
वाम पथि-संन्यासी–मदिरा पान करे । नित्यानन्द प्रति ताहा करे ठारे ठौरे ॥८६॥
"शुनह श्रीपाद ! किछु 'आनन्द' आनिव । तोमा' हेन अतिथि वा कोथाय पाइव" । ८७॥

---

भक्ति योग की शिक्षा दे रहे हैं ॥ ७० ॥ श्री चैतन्यचन्द्र जो कुछ कहते हैं वही सत्य है, परन्तु पराई निन्दा रूपी पाप के कारण जीव उसे पकड़ता नहीं है ॥ ७१ ॥ प्रभु के कथन को सुनकर संन्यासी हँसने लगा (और मन में कहने लगा कि) "ऐसा लगता है कि मंत्र के कारण यह ब्राह्मण पागल हो गया है" ॥ ७२ ॥ "ऐसा समझ में आता है कि इसके साथ का संन्यासी (नित्यानन्द) इस ब्राह्मण कुमार की बुद्धि को पलटकर इसे बहका कर ले जा रहा है ॥ ७३ ॥ फिर वह संन्यासी प्रकट रूप से बोला–"देखो, अब ऐसा जमाना आया है कि बालक के आगे मैं कुछ नहीं जानता ॥ ७४ ॥ "मैं पृथ्वी भर में घूमा अयोध्या, मथुरा, माया-पुरी (हरिद्वार) बदरिकाआश्रम, गुजरात, काशी, गया, विजयनगर, सिंहलद्वीप आदि सब पुरियों में गया ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ (फिर भी) मैं तो भले बुरे को जान न पाया सो यह दूध मुँहा बालक मुझे सिखा रहा है ॥ ७७ ॥ तब नित्यानन्द जी हँस कर बोले "गुसांई जी सुनो ! एक बालक के साथ तर्क-विचार करने की कोई जरुरत नहीं ॥७८॥ मैं तुम्हारी महिमा को अच्छी तरह जानता हूँ मेरी तरफ देख कर तुम सब क्षमा कर दो ॥७९॥ अपनी प्रशंसा सुनकर संन्यासी ने सन्तुष्ट होकर झटपट बड़े आनन्द के साथ भिक्षा (भोजन) करने के लिए कहा ॥ ८० ॥ नित्यानन्द जी बोले–"विशेष कार्य है, चलेंगे । हाँ कुछ दे दो, स्नान करके मार्ग में खा लेंगे" ॥ ८१ ॥ संन्यासी बोला "स्नान यहीं कर लो । कुछ खा पी कर, ठण्डे होकर, फिर चले जाना ॥ ८२ ॥ पापियों के उद्धार के लिए ही दोनों प्रभुओं का अवतार हुआ है, ( अतएव ) दोनों प्रभु संन्यासी के घर ठहर गये ॥ ८३ ॥ गङ्गा जी के स्नान से मार्ग की थकावट दूर हो गई । फिर दोनों जने फलाहार करने को बैठे ॥ ८४ ॥ दूध आम, कटहल आदि श्रीकृष्ण को निवेदन करके दोनों प्रभु संन्यासी के सामने प्रसाद पाने लगे ॥ ८५ ॥ संन्यासी बामपंथी था–मदिरा पीता था । वह नित्यानन्द जी से संकेत द्वारा मदिरा पीने को कहने लगा ॥ ८६ ॥ वह बोला 'सुनो श्रीपाद ! कुछ "आनन्द" लाऊँ ? तुम जैसे

देशान्तर कारि नित्यानन्द सब जाने। 'मद्यप संन्यासी' हेन जानिलेन मने॥८८॥
"आनन्द आनिब" न्यासी बोले बार बार। नित्यानन्द बोले "तबे लड़ से आमार" ॥८९॥
देखिया दोंहार रूप मदन-समान। संन्यासीर पत्नी चा'हे जुड़िया धेयान॥९०॥
संन्यासीरे निरोध करये तार नारी। "भोजनेते केने तुमि विरोध आचरि"॥९१॥
प्रभु बोले "कि आनन्द बोलये संन्यासी"। नित्यानन्द बोलये "मदिरा हेन वासि"॥९२॥
'विष्णु विष्णु' स्मरण करये विश्वम्भर। आचमन करि प्रभु चलिला सत्वर॥९३॥
दुइ प्रभु चञ्चल गङ्गाय झाँप दिया। चलिला आचार्य गृहे गङ्गाय भासिया॥९४॥
स्त्रैण मद्यपेरे प्रभु अनुग्रह करे। निन्दक वेदान्ती यदि-तथापि संहरे॥९५॥
न्यासी हैया मद्यपिये, स्त्री सङ्ग आचरे। तथापि ठाकुर गेला ताहार मन्दिरे॥९६॥
वाक्ये वाक्य कैला प्रभु शिखाइला धर्म। विश्राम करिया कैला भोजनेर कर्म॥९७॥
ना हये ए-जन्मे भाल, हैब आर जन्मे। सबे निन्दकेरे नाहि वासे भाल मर्मे॥९८॥
देखा नाहि पाय जत अभक्त संन्यासी। तार साक्षी जतेक संन्यासी काशी वासी॥९९॥
शेष खण्डे जखने चलिला प्रभु काशी। शुनिलेक जत काशी निवासी संन्यासी॥१००॥
शुनिञा आनन्द बड़ हैला न्यासि गण। देखिब चैतन्य, बड़ शुनि महा जन॥१०१॥
सभेइ वेदान्ती ज्ञानी, सभेइ तपस्वी। आजन्म काशीते वास, सभेइ यशस्वी॥१०२॥
एक दोषे सकल गुणेर गेल शक्ति। पढ़ाये वेदान्त, ना वाखाने विष्णु भक्ति॥१०३॥
अन्तरयामी गौरसिंह इहा सब जाने। गियाओ काशीते नाहि दिला दरशने॥१०४॥

---

अतिथि फिर मुझे कहाँ मिलेंगे॥ ८७॥ देश देशान्तर घूमने वाले नित्यानन्द जो सब कुछ जानते हैं, वे मन में समझ गये कि "यह संन्यासी शराबी है"॥ ८८॥ संन्यासी बार २ "आनन्द लाऊँ" "आनन्द लाऊँ" कहने लगा। नित्यानन्द जी बोले "तो हम भागेंगे॥८९॥ कामदेव के समान दोनों के सुन्दर रूप को देख कर संन्यासी की स्त्री बड़े एकाग्र मन से उनको देख रही थी॥ ९०॥ उसने संन्यासी को टोककर कहा कि "भोजन के समय तुम क्यों बाधा डाल रहे हो॥ ९१॥ तब प्रभु बोले—"संन्यासीजो 'आनन्द' 'आनन्द' क्या कह रहे हैं?" नित्यानन्द जी बोले "मदिरा को कहते होंगे। ९२॥ यह सुनते ही श्री विश्वम्भर ने श्री-विष्णु २ कहते हुए आचमन किया और तुरन्त ही चल दिये॥ ९३॥ दोनों प्रभु चंचल हैं, वे गङ्गा में कूद पड़े और बहते हुए अद्वैताचार्य के घर को चले॥ ९४॥ प्रभु स्त्री-सङ्गी और शराबी पर भी कृपा करते हैं परन्तु निन्दक यदि वेदान्ती भी हो तो भी उसका संहार करते हैं॥ ९५॥ संन्यासी होकर के भी वह शराब पीता था, स्त्री का सङ्ग करता था, फिर भी प्रभु उसके घर गये॥ ९६॥ उससे चार २ बातें की, उसको धर्म की शिक्षा दी, और उसके यहाँ विश्राम करके भोजन किया॥ ९७॥ चाहे उस (संन्यासी) का इस जन्म में भला न भी हो परन्तु दूसरे जन्म में तो होगा ही। प्रभु के हृदय में केवल एक निन्दक के लिए प्रेम नहीं है॥ ९८॥ (परन्तु) जितने अभक्त संन्यासी हैं वे कोई भी प्रभु का दर्शन नहीं पाते इसमें प्रमाण है—काशीवासी संन्यासी गण॥ ९९॥ (यह चरित्र) शेष खण्ड में आयगा कि जब प्रभु काशी को गये तो सब काशीवासी संन्यासियों ने भी यह सुना॥ १००॥ और सुनकर संन्यासी लोगों को बड़ा आनन्द हुआ कि "चैतन्य को देखेंगे सुनते हैं कि वह बड़ा महापुरुष है॥ १०१॥ वे सभी वेदान्ती हैं, ज्ञानी हैं, सभी तपस्वी हैं, जन्म से काशीवासी हैं, सभी यशस्वी हैं,॥ १०२॥ परन्तु एक दोष के कारण सब गुणों की शक्ति मारी गई (वह दोष यही था कि) वे वेदान्त तो पढ़ाते हैं पर विष्णु भक्ति को नहीं बखानते हैं॥ १०३॥ अन्त-

रामचन्द्र पुरीर मठेते लुकाइया। रहिलेन दुइ-मास वाराणसी गिया ॥१०५॥
विश्वरूप क्षौरेर दिवस-दुइ आछे। लुकाइया चलिला, देखये केहो पाछे ॥१०६॥
पाछे शुनिलेन सब संन्यासीर गण। चलिलेन चैतन्य, नहिल दरशन ॥१०७॥
सर्व-बुद्धि हरिलेक एक निन्दा पाप। पाछेओ काहारो चित्ते ना जन्मिल ताप ॥१०८॥
आरो बोले "आमरा सकल पूर्बाश्रमी। आमा' सभा' सम्भाषिया बिना गेला केनि ॥१०९॥
दुइ दिन लागि केने स्वधर्म छाड़िया। केने गेला 'विश्वरूपक्षौर' (से) लङ्घिया" ॥११०॥
भक्ति हीन हैले एइ मत बुद्धि हय। निन्दकेर पूजा शिव कभू नाहि लय ॥१११॥
काशीते जे पर निन्दे,' से शिवेर दण्ड्य। शिव-अपराधे विष्णु नहे तार वन्द्य ॥११२॥
सभार करिव गौर सुन्दर उद्धार। व्यतिरिक्त वैष्णव निन्दक दुराचार ॥११३॥
मद्यपेर घरे कैला स्नान (से) भोजन। निन्दा करे वेदान्ती ना पाइल दर्शन ॥११४॥
चैतन्येर दण्डे जार चित्ते नाहि भय। जन्मे जन्मे सेइ जीव यम दण्ड्य हय ॥११५॥
अज, भव, अनन्त, कमला सर्व माता। सभार श्रीमुखे निरवधि जार कथा ॥११६॥
हेन गौरचन्द्र-यशे जार नहे मति। व्यर्थ तार संन्यास, वेदान्त पाठे रति ॥११७॥
हेन मते दुइ प्रभु आपन-आनन्दे। सुखे दुइ चलिलेन जाह्नवी तरङ्गे ॥११८॥
महाप्रभु निरवधि करये हुङ्कार। "मुञि सेइ मुञि सेइ" बोले बारे बार ॥११९॥

यामी गौरसिंह यह सब जानते हैं इसीसे काशी जाकर भी उनको दर्शन नहीं देते हैं ॥ १०४ ॥ प्रभु काशी में जाकर श्री रामचन्द्रपुरी के मठ में दो महीने छिप कर रहे ॥ १०५ ॥ जब विश्वरूप क्षौर के दो दिन रहे तो प्रभु काशी छोड़ कर चल दिये कि कहीं पीछे से कोई देख न ले ॥१०६॥ पीछे से संन्यासियों को पता चला कि चैतन्य चले गये और दर्शन न हुए ॥ १०७ ॥ एक निन्दा पाप ने सब की बुद्धि हर ली, और पीछे भी किसी के चित्त में दुःख न हुआ ॥ १०८ ॥ उल्टा ऊपर से बोले–"हम सब पूर्वाश्रमी हैं फिर वह हम से सम्भाषण किये बिना क्यों चला गया ॥ १०९ ॥ दो दिन के लिये वह क्यों अपने विश्वरूप क्षौर स्वधर्म को त्याग करके चला गया ॥ ११० ॥ यति संन्यासियों के छः ऋतु के छः क्षौर होते हैं जिनके पृथक २ नाम हैं। वैशाखी पूर्णिमा को आचार्य क्षौर आसाढ़ी को व्यास क्षौर और भाद्रपदी को विश्वरूपक्षौर होता है। व्यास क्षौर करा कर संन्यासी चातुर्मास्य के लिये एक स्थान पर बैठता है और विश्वरूप क्षौर के बाद ही स्थान त्याग कर सकता है। यदि देश–काल–जन्य कोई बाधा आ पड़े तो बीच में भी विश्वरूप क्षौर करा कर स्थान त्याग कर सकता है, अन्यथा नहीं। इस स्वधर्म के त्याग का ही यहाँ उल्लेख है। ( इस प्रकार के उन्होंने जो वचन कहे सो ) ऐसी बुद्धि भक्ति शून्य होने से ही होती है। निन्दक की पूजा शिव जी कभी स्वीकार नहीं करते हैं ॥ १११ ॥ काशी में रहकर जो पराई निन्दा करता है वह शिव जी से दण्ड पाता है, शिव–अपराध के कारण ही विष्णु उसके वन्दनीय नहीं होते, अर्थात् विष्णु भक्ति उनको प्राप्त नहीं होती है ॥ ११२ ॥ दुराचारी वैष्णव निन्दक के अतिरिक्त प्रभु गौरसुन्दर सब का उद्धार करेंगे ॥११३॥ देखो शराबी के घर तो प्रभु ने स्नान और भोजन किया पर निन्दा करने वाले वेदान्तियों को दर्शन न मिला ॥ ११४ ॥ श्री चैतन्यचन्द्र के दण्ड का जिसके चित्त में भय नहीं है, वह जीव जन्म २ में यम के दण्ड का पात्र होता है ॥ ११५ ॥ जिनकी कथा ब्रह्मा, शिव, अनन्तदेव, सर्वमाता कमला आदि सबके मुखों पर रहती है ॥११६॥ ऐसे गौरचन्द्र के यश में जिसकी मति नहीं है, उसका संन्यास और वेदान्त पाठ में रति दोनों व्यर्थ हैं ॥११७॥ इस प्रकार दोनों प्रभु अपने आनन्द में गङ्गा जी के तरङ्गों में सुख से बहे जा रहे हैं ॥ ११८ ॥ महाप्रभु

"मोहोरे आनिल नाढ़ा शयन भाङ्गिया। एखने वाखाने' 'ज्ञान' भक्ति लुकाइया ॥१२०॥
तार शास्ति करों आजि देख परतेखे। के मने देखिव आजि ज्ञान योग राखे" ॥१२१॥
तर्जे गर्जे महाप्रभु गङ्गा स्रोते भासे। मौन हइ नित्यानन्द मने मने हासे' ॥१२२॥
दुइ प्रभु भासि जाय गङ्गार उपरे। अनन्त मुकुन्द जेन क्षीरोद सागरे ॥१२३॥
भक्ति योग-प्रभावे अद्वैत महाबल। बुझिलेन चित्तो "मोर हइवेक फल" ॥१२४॥
'आइसे ठाकुर क्रोधे' अद्वैत जानिया। ज्ञान योग वाखाने' अधिक मत्त हैया ॥१२५॥
चैतन्य भक्तेर के बुझिते पारे लीला। गङ्गा पथे दुइ प्रभु आसिया मिलिला ॥१२६॥
क्रोध मुख विश्वम्भर नित्यानन्द-सङ्गे। देखये—अद्वैत बोले ज्ञानानन्द-रङ्गे ॥१२७॥
प्रभु देखि हरिदास दण्डवत् हय। अच्युत प्रणाम करे—अद्वैत तनय ॥१२८॥
अद्वैत गृहिणी मने मने नमस्करे। देखिया प्रभुर मूर्त्ति चिन्तित-अन्तरे ॥१२९॥
विश्वम्भर-तेज जेन कोटि-सूर्य मय। देखिया सभार चित्ते उपजिल भय ॥१३०॥
क्रोध मुखे बोले प्रभु "आरे ओरे नाढ़ा। बोल देखि 'ज्ञान' 'भक्ति' दुइते के बाढ़ा"। ॥१३१॥
अद्वैत बोलये "सर्व-काल बड़ 'ज्ञान'। जार 'ज्ञान' नाहि तार भक्तिते कि काम ॥१३२॥
"ज्ञान बड़" अद्वैतेर शुनिञा वचन। क्रोधे वाह्य पासरिला श्रीशचीनन्दन ॥१३३॥
पिण्डा हैते अद्वैतेरे धरिया आनिया। स्वहस्ते किलाय प्रभु उठाने पाड़िया ॥१३४॥
अद्वैत गृहिणी पतिव्रता जगन्माता। सर्व-तत्त्व जानिआओ करये व्यग्रता ॥१३५॥

निरन्तर हुँकार कर रहे हैं और बार २ कह रहे हैं "मैं वही हूँ" "मैं वही हूँ" ॥ ११९ ॥ "मेरी निद्रा भग करके नाढा मुझे ले आया और अब वह भक्ति को दबा करके ज्ञान छाँट रहा है ॥ १२० ॥ तुम देख लेना प्रत्यक्ष में आज मैं उसको दण्ड दूँगा। देखूँ ज्ञानयोग आज कैसे उसको बचाता है ॥ १२१ ॥ महाप्रभु तरजते गरजते हुए गङ्गा के प्रवाह में बहे जा रहे हैं और नित्यानन्द जी चुप होकर मन ही मन में हँस रहे हैं ॥ १२२ ॥ दोनों प्रभु गङ्गा के ऊपर ऐसे बहते चले जा रहे हैं मानो तो क्षीर सागर के ऊपर अनन्त देव और मुकुन्द देव हों ॥ १२३ ॥ भक्ति योग के प्रभाव से अद्वैताचार्य महाबली हैं, वे अपने मन में समझ गये कि मुझे फल मिलेगा" ॥ १२४ ॥ अद्वैत प्रभु जान गये कि प्रभु क्रोध में भरे आ रहे हैं और वे और भी अधिक मत्त बनकर ज्ञान योग बखानने लगे ॥ १२५ ॥ श्री चैतन्य के भक्त की लीला कौन समझ समता है ? दोनों प्रभु गङ्गा के मार्ग से अद्वैत के घर आ पहुँचे ॥ १२६ ॥ नित्यानन्द जी के साथ क्रोध से लाल विश्वम्भर प्रभु ने देखा कि अद्वैत ज्ञानानन्द के रङ्ग में मस्त झूम रहे हैं ॥ १२७ ॥ प्रभु को देखकर हरिदास जी भूमि पर दण्डवत् पड़ गये और अद्वैत पुत्र अच्युत ने प्रणाम किया ॥ १२८ ॥ श्री अद्वैत जी की पत्नी मन २ मे प्रभु को नमस्कार करती हैं पर उनके क्रुद्ध मूर्त्ति को देखकर उसका अन्तस् चिन्तित हो जाता है ॥१२९॥ श्री विश्वम्भर प्रभु का तेज कोटि सूर्य के समान है, उसे देखकर सब के चित्त में भय उत्पन्न हो आता है ॥१३०॥ प्रभु क्रोधित होकर बोले—"अरे २ नाढा ! कहो तो सही ज्ञान और भक्ति में कौन बड़ा है ? ॥१३१॥ अद्वैत जी बोले—"सब काल में ज्ञान ही बड़ा है। जिसको ज्ञान नहीं उसको भक्ति से क्या लाभ ?" ॥१३२॥ "ज्ञान बड़ा है" ऐसे वचन श्री अद्वैत के सुनकर श्री शचीनन्दन क्रोध में अपनी सुध बुध भूल गए ॥ १३३ ॥ वे चबूतरे पर से श्री अद्वैत जी को पकड़ लाये और आंगन पर पटक कर अपने हाथ से मारने लगे ॥१३४॥ पतिव्रता, जगन्माता अद्वैत जी की स्त्री, सब तत्त्व को जानती हुई भी व्याकुल हो गई और कहने लगी ॥ १३५ ॥ "यह बूढ़ा ब्राह्मण है, यह बुड्ढ़ा ब्राह्मण है। इनके प्राणों को मत लो, मत लो, किसके सिखाने

"बूढ़ा विप्र, बूढ़ा विप्र, राख राख प्राण। काहार शिक्षाय एत कर' अपमान ॥१३६॥
एइ बूढ़ा बामनेरे, आर कि करिवा। कौन किछु हैले एड़ाईते ना पारिबा ॥१३७॥
पतिव्रता-वाक्य शुनि नित्यानन्द हासे'। भये कृष्ण स्मङरये प्रभु हरिदासे ॥१३८॥
क्रोधे प्रभु पतिव्रता-वाक्य नाहि शुने। तर्जे गर्जे अद्वैतेरे सदम्भ-वचने ॥१३९॥
"सूतिया आछिलु क्षीर सागरेर माझे। आरे नाढ़ा! निद्रा भङ्ग मोर तोर काजे ॥१४०॥
भक्ति प्रकाशिवि तुइ आमारे आनिया। एवे वाखानिसू ज्ञान, भक्ति लुकाइया ॥१४१॥
यदि लुकाइवि भक्ति तोर चित्त आछे। तवे मोर प्रकाश करिलि कोन काजे ॥१४२॥
तोहोर सङ्कल्प मुञि ना करों अन्यथा। तुञि मोरे विडम्वना करिसू सर्वथा" ॥१४३॥
अद्वैत एड़िया प्रभु वसिला दुयारे। प्रकाशे' आपन-तत्त्व करि हु हुङ्कारे ॥१४४॥
"आरे आरे कंस जे मारिल, सेइ मुञि। आरे नाढ़ा! सकल जानिस् देख तुञि ॥१४५॥
अज भव शेष रमा मोर करे सेवा। मोर चक्रे मारिल शृगाल-वासुदेवा ॥१४६॥
मोर चक्रे वाराणसी दहिल सकल। मोर वाणे मारिल रावण महावल ॥१४७॥
मोर चक्रे काटिल बाणेर बाहुगण। मोर चक्रे नरकेर लइल जीवन ॥१४८॥
मुञि से धरिलु गिरि दिया वाम हाथ। मुञि से आनिलु स्वर्ग हैते पारिजात ॥१४९॥
मुञि से छलिलु वलि करिलु प्रसाद। मुञि से हिरण्य मारि राखिलु प्रह्लाद" ॥१५०॥
एइ मत प्रभु निज-ऐश्वर्य प्रकाशे'। शुनिञा अद्वैत प्रेम सिन्धु माझे भासे ॥१५१॥
शास्ति पाइ अद्वैत परमानन्द मय। हाथे तालि दिया नाचे करिया विनय ॥१५२॥

---

से तुम इनका इतना अपमान कर रहे हो ? ॥ १३६ ॥ बूढ़े ब्राह्मण को छोड़ दो, और अधिक क्या करोगे ? कहीं कुछ हो गया तो तुम छूट नही सकोगे" ॥ १३७ ॥ पतिव्रता के वचनों को सुनकर नित्यानन्द जी तो हँसते हैं पर हरिदास प्रभु भयभीत होकर श्रीकृष्ण का स्मरण करते हैं ॥ १३८ ॥ क्रोध में प्रभु पतिव्रता के वचनों को नहीं सुन रहे हैं और अद्वैताचार्य के दम्भपूर्ण वचनों पर तर्जन-गर्जन करते जाते हैं ॥ १३९ ॥ "अरे नाढा ! मैं क्षीर सागर में सो रहा था। तेरे लिए ही मेरी निद्रा भंग हुई ॥ १४० ॥ तू तो मुझे लाकर भक्ति प्रकाशित करना चाहता था, पर अब भक्ति को दबाकर ज्ञान बखान रहा है ॥ १४१ ॥ यदि भक्ति को गुप्त करने की ही तेरे चित्त में थी तो फिर मुझे किस लिये प्रकट कराया ॥ १४२ ॥ "मैं तो तेरे सङ्कल्प को कभी झूठा नहीं करता, पर तू मेरे साथ सर्वथा विडम्बना ही करता है" ॥ १४३ ॥ फिर अद्वैत को छोड़ कर प्रभु द्वार पर जा बैठे और हुँ हुँकार करते हुए अपना तत्त्व प्रकाशित करने लगे ॥ १४४ ॥ "अरे ! अरे ! कस को जिसने मारा था वह मैं ही हूँ ! अरे नाढा ! तू तो यह सब जानता है ॥ १४५ ॥ ब्रह्मा, शिव, शेष, रमा मेरी सेवा करती हैं। मेरे सुदर्शन चक्र ने ही शृगाल-वासुदेव को मारा था ॥ १४६ ॥ मेरे चक्र ने ही उसकी सारी काशी को जला डाला था। मेरे वाण ने ही महाबली रावण को मारा था ॥ १४७ ॥ "मेरे चक्र ने ही बाणासुर की बाहुओं को काटा था। मेरे चक्र ने ही नरकासुर मारा था ॥ १४८ ॥ मैंने ही बाँये हाथ से गिरिराज को धारण किया था। मैं ही स्वर्ग से पारिजात वृक्ष ले आया था ॥ १४९ ॥ मैंने ही राजा बलि को छला था और उस पर कृपा की थी। मैंने ही हिरण्यकशिपु को मार प्रह्लाद की रक्षा की थी" ॥ १५० ॥ इस प्रकार प्रभु अपना ऐश्वर्य प्रकाशित कर रहे हैं जिसे सुन २ कर अद्वैत प्रेम सिन्धु में वहे जा रहे हैं ॥ १५१ ॥ दण्ड पाकर श्री अद्वैत परमानन्द मय हो रहे हैं और हाथों से तालो बजाते और विनती करते हुए नाचते जाते हैं ॥ १५२ ॥ ( विनती यथा:— ) "जैसा मैंने अपराध किया था, वैसा ही दण्ड भी पा

"जेन अपराध कैलु तेन शास्ति पाइलु । भालइ करिला प्रभु ! अल्पे एड़ाइलु ॥१५३॥
एखने से ठाकुरालि बलिये तोमार । दोष-अनुरूप शास्ति करिला आमार ॥१५४॥
इहाते से प्रभु ! भृत्ये चित्ते बल पाय" । बलिया आनन्दे नाचे शान्तिपुर राय ॥१५५॥
आनन्दे अद्वैत नाचे सकल अङ्गने । भ्रकुटी करिया बोले प्रभुर चरणे ॥१५६॥
"कोथा गेल एबे मोरे तोमार से स्तुति । कोथा गेल एबे तोर से सब ढाङ्गाति ॥१५७॥
दुर्वाशा ना हउ मुञि जारे कदर्थिबा । जार अवशेष-अन्न सर्वाङ्गे लेपिबा ॥१५८॥
भृगु-मुनि नहों मुञि जार पद धूली । वक्षे दिया हइबा श्रीवत्स-कुतूहली ॥१५९॥
मोर नाम 'अद्वैत'–तोमार शुद्ध दास । जन्मे जन्मे तोमार उच्छिष्ट मोर ग्रास ॥१६०॥
उच्छिष्ट-प्रभावे नाहि गणों तोर माया । करिलात शास्ति, एबे देह' पद-छाया" ॥१६१॥
एत बलि भक्ति करे शान्ति पुर नाथ । पड़िला प्रभुर पद लइया माथात ॥१६२॥
सम्भ्रमे उठिया कोले कैला विश्वम्भर । अद्वैतेरे कोले करि कान्दये निर्भर ॥१६३॥
अद्वैतेर भक्ति देखि नित्यानन्द राय । क्रन्दन करये जेन नदी बहि' जाय ॥१६४॥
भूमिते पड़िया कान्दे प्रभु हरिदास । अद्वैत-गृहिणी कान्दे, कान्दे जत दास ॥१६५॥
कान्दये अच्युतानन्द–अद्वैत तनय । अद्वैत भवन हैल कृष्ण प्रेममय ॥१६६॥
अद्वैतेरे मारिया लज्जित विश्वम्भर । सन्तोषे आपने देन अद्वैतेरे वर ॥१६७॥
"तिलार्द्ध को जे तोमार करिबे आश्रय । से केने पतङ्ग कीट पशु पक्ष नय ॥१६८॥
यदि मोर स्थाने करे शत अपराध । तथापि ताहारे मुञि करिमु प्रसाद" ॥१६९॥

---

लिया । हे प्रभो ! आप ने अच्छा ही किया । थोड़े ही में मैं छूट गया ॥ १५३ ॥ इस समय मैं आपकी ठकुराई की प्रशंसा करूँगा कि जो दोष के अनुसार मुझे दण्ड दिया ॥ १५४ ॥ 'इससे हे प्रभो ! सेवक को हृदय में बल मिलता है" । ऐसा कहकर शान्तिपुरनाथ आनन्द में नाचते हैं ॥ १५५ ॥ अद्वैत जी सारे आँगन भर में आनन्द से नाचते फिरते हैं और भौंह टेढी कर करके प्रभु के श्री चरणों में निवेदन भी करते जाते हैं ॥ १५६ ॥ (यथाः–) "इस समय मेरे प्रति तुम्हारी वे सब स्तुति कहाँ चली गईं ? वह सब ढोंग कहाँ चला गया ? ॥ १५७ ॥ मैं दुर्वासा नहीं कि जिसकी विडम्बना कर लोगे और जिसके जूठे को अपने सब अङ्गों में लगा लोगे ॥ १५८ ॥ न मैं भृगु मुनि ही हूँ कि जिसकी पद-धूली को वक्षस्थल पर धारण कर कौतुकी श्री वत्सधारी बन जाओगे ॥ १५९ ॥ "मेरा नाम है 'अद्वैत'–तुम्हारा शुद्धादास, 'तुम्हारा उच्छिष्ट ही जन्म २ में मेरा आहार है ॥ १६० ॥ उस उच्छिष्ट के प्रभाव से मैं तुम्हारी माया को कुछ भी नहीं समझता हूँ । अच्छा प्रभो ! दण्ड तो दे चुके अब अपनी पद की छाया भी तो दो ॥ १६१ ॥ इतना कह कर शान्तिपुर नाथ अपनी भक्ति प्रकट करते हैं और प्रभु के चरणों पर शीश रख कर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं ॥ १६२ ॥ हड़बड़ा कर श्री विश्वम्भर झट उठते हैं और अद्वैत को अपनी गोद में ले लेते हैं और लेकर खब रोते हैं ॥ १६३ ॥ श्री अद्वैत जी की भक्ति को देखकर श्री नित्यानन्द राय इतना रोते हैं कि उनके आँसुओं की नदी सी बहने लगती है ॥ १६४ ॥ श्री हरिदास जी भूमि पर पड़े रो रहे हैं, अद्वैत की पत्नी रो रही हैं, और सब सेवक लोग रो रहे हैं ॥ १६५ ॥ श्री अद्वैत जी के पुत्र श्री अच्युतानन्द भी रो रहे हैं, इस प्रकार अद्वैत भवन कृष्ण प्रेममय हो रहा है ॥ १६६ ॥ श्री अद्वैत को मार कर प्रभु विश्वम्भर बड़े लज्जित हो रहे हैं । (अतएव) श्री अद्वैत की सन्तुष्टि के लिए वे अपने आप ही उनको वर देते हैं ॥१६७॥ (यथाः-) "जो तिलार्ध भी तुम्हारा आश्रय लेगा, वह चाहे पतंग, कीट, पशु, पक्षी, क्यों न हो ॥ १६८ ॥ वह यदि

वर शुनि कान्दये अद्वैत महाशय। चरणे धरिया कहे करिया विनय ।।१७०।।
"जे तुमि बलिला प्रभु ! कभु मिथ्या नय। मोर एक प्रतिज्ञा शुनह महाशय ।।१७१।।
यदि तोरे ना मानिञा मोरे भक्ति करे। सेइ मोर भक्ति तवे ताहारे संहरे ।।१७२।।
तोर पाद पद्मे जार ना पशिवे मन। तोरे ना मानिले कभु नहे मोर जन ।।१७३।।
जे तोमारे सेवे प्रभु ! से मोर जीवन। ना पारों सहिते मुञि तोमार लङ्घन ।।१७४।।
यदि मोर पुत्र हय, हय वा किङ्कर। वैष्णवा पराधी, मुञि ना देखों गोचर ।।१७५।।
तोमारे लङ्घिया यदि कोटि देव भजे। सेइ देव ताहारे संहरे कौन व्याजे ।।१७६।।
मुञि नाहि बोलों, एइ वेदेर बाखान। सुदक्षिण-मरण ताहार परमाण ।।१७७।।
सुदक्षिण-नाम-काशी राजेर नन्दन। महा समाधिये शिव कैला आराधन ।।१७८।।
परम-सन्तोषे शिव बोले माग' वर। पाइबे अभीष्ट, अभिचार यज्ञ कर' ।।१७९।।
विष्णु भक्त-प्रति यदि कर' अपमान। तवे सेइ यज्ञ तोर लइव पराण ।।१८०।।
शिव कहिलेन व्याजे, से इहा ना बुझे। शिवाज्ञाय अभिचार यज्ञ गिया भजे ।।१८१।।
यज्ञ हैते उठे एक महा भयङ्कर। तिन कर चरण-त्रिशिर-रूप धर ।।१८२।।
ताल जङ्घ-परमान-बोले वर माग'। राजा बोले द्वारका पोड़ाह महा भाग ।।१८३।।
शुनिञा दुःखित हैला महा शैव मूर्त्ति। बुझिलेन इहार इच्छार नाहि पूर्त्ति ।।१८४।।
अनुरोधे गेला मात्र द्वार कार पाशे। द्वारका रक्षक चक्र खेदाड़िया आइसे ।।१८५।।

मेरे निकट सौ सौ अपराध भी करे तब भी मैं उस पर कृपा करूँगा" ।। १६९ ।। वर को सुनकर श्रीअद्वैत महाशय रोने लगे और श्री चरणों को पकड़ कर विनय पूर्वक कहने लगे कि ।।१७०।। "हे प्रभो ! जो तुमने कहा वह कभी मिथ्या नहीं है। परन्तु हे महाशय ! मेरी भी एक प्रतिज्ञा सुनो ।। १७१ ।(वह यही है कि) जो कोई तुमको न मान कर मेरी भक्ति करेगा तो वह मेरी भक्ति ही उसका नाश कर देगी ।।१७२।। "तुम्हारे चरण कमलों में जिसका मन नहीं लगेगा, वह तुम्हें न मानने के कारण मेरा भी भक्त कभी नहीं होगा ।। १७३ ।। हे प्रभो ! जो तुम्हारी सेवा करता है वह मेरा जीवन है। मैं तुम्हारी अवेहलना को सह नहीं सकता ।।१७४।। मेरा पुत्र हो अथवा मेरा दास हो, यदि वह वैष्णवापराधी है तो मैं उसको आँखों से कभी देख नहीं सकता ।। १७५ ।। "तुम्हारी अवेहलना करके जो कोई करोड़ों देवताओं को भी भजता है तो वे ही देवता कोई न कोई बहाने उसका नाश कर देते हैं ।। १७६ ।। यह मैं नहीं कहता हूँ, यह वेद का कथन है, सुदक्षिणा की मृत्यु इसका प्रमाण है ।। १७७ ।। सुदक्षिणा नामक काशीराज के पुत्र ने महासमाधि द्वारा शिव जी की आराधना की ।। १७८ ।। शिवजी परम सन्तुष्ट होकर बोले कि "वर माँगो, अभीष्ट मिलेगा, अभिचार (मारण) यज्ञ करो ।। १७९ ।। परन्तु यदि विष्णु-भक्त का अपमान करोगे तो वही यज्ञ तुम्हारे प्राणों को ले लेगा ।। १८० ।। शिवजी ने जो बात ढक करके कहा उसे वह नहीं समझ सका और उसने शिवजी की आज्ञा से अभिचार यज्ञ आरम्भ कर दिया ।। १८१ ।। उस यज्ञ में से एक महा भयंकर पुरुष तीन हाथ, तीन पाँव, तीन सिर वाला निकला ।। १८२ ।। ताल वृक्ष के बराबर उसकी जंघाएँ थीं। वह बोला 'वर माँग'। तो राजा बोला "हे महाभाग ! द्वारका को जला दो" ।। १८३ ।। यह सुन कर उस महाशैव मूर्त्ति को बड़ा दुःख हुआ और वह समझ गई कि इसकी इच्छा की पूर्त्ति नहीं होगी" ।। १८४ ।। फिर भी राजा के कहने से वह द्वारिका के पास तक गया ही था कि द्वारिका के रक्षक सुदर्शन चक्र उसे खदेड़ने के लिए दौड़े हुए आये ।। १८५ ।। "भागने से सुदर्शन से बच नहीं सकूँगा" यह विचार कर वह महाशैव पुरुष

पलाइले ना एड़ाइ सुदर्शन स्थाने। महाशैव पड़ि बोले चक्रेर चरणे ॥१८६॥
"यारे पलाइते नाहि पारिल दुर्वाशा। नारिल राखिते अज विष्णु दिगवासा ॥१८७॥
हेन महा वैष्णव तेजेर स्थाने मुञ्जि। कोथा पलाइव प्रभु! जे करिस् तुञ्जि ॥१८८॥
जय जय प्रभु मोर सुदर्शन-नाम। द्वितीय-शङ्कर-तेज जय कृष्ण धाम ॥१८९॥
जय महा चक्र जय वैष्णव प्रधान। जय दुष्ट भयङ्कर जय शिष्ट त्राण ॥१९०॥
स्तुति शुनि सन्तोषे बलिल सुदर्शन। पोड़ गिया यथा आछे राजार नन्दन ॥१९१॥
पुन सेइ महा भयङ्कर बाहुड़िया। चलिला काशीर राजपुत्र पोड़ाइया ॥१९२॥
तोमारे लङ्घिया प्रभु! शिव पूजा कैल। अतएव तार यज्ञ ताहारे मारिल ॥१९३॥
तेञ्जि से बलिलुँ प्रभु! तोमारे लङ्घिया। मोर सेवा करे, तारे मारिमुँ पुड़िया ॥१९४॥
तुमि मोर प्राण नाथ, तुमि मोर धन। तुमि मोर माता पिता, तुमि बन्धु-जन ॥१९५॥
जे तोमा' लङ्घिया करे मोरे नमस्कार। से जन काटिया शिर करे प्रतिकार ॥१९६॥
सूर्य्येरे साक्षात् करि राजा सत्राजित। भक्ति वशे सूर्य्य तार हइलेन मित ॥१९७॥
लङ्घिया तोमार आज्ञा आज्ञा भङ्ग-दुःखे। दुइ भाइ मारा जाय, सूर्य्य देखे सुखे ॥१९८॥
बलदेव शिष्यत्व पाइया दुर्योधन। तोमारे लङ्घिया पाय सवंशे मरण ॥१९९॥
हिरण्यकशिपु वर पाइया ब्रह्मार। लङ्घिया तोमारे गेल सवंशे संहार ॥२००॥
शिरश्छेदे शिव पूजियाओ दशानन। तोमा' लङ्घि पाइलेक सवंशे मरण ॥२०१॥
सर्व्व-देव-मूल तुमि, सभार ईश्वर। दृश्यादृश्य जत-सब तोमार किङ्कर ॥२०२॥

चक्र के चरणों पर पड़ गया (और बोला) ॥१८६॥ "जिससे दुर्वासा जी नहीं भाग सके और जिससे ब्रह्मा, विष्णु और शिव जी उनकी रक्षा न कर सके ॥ १८७ ॥ ऐसे उस महा वैष्णव तेज के आगे मैं कहाँ भाग सकूँगा। हे प्रभो! तुम्हें जो करना हो सो करो ॥ १८८ ॥ 'हे सुदर्शन नाम धारी मेरे प्रभो! तुम्हारी जय हो, जय हो। हे शङ्कर के द्वितीय तेज स्वरूप! हे श्रीकृष्ण के तेज स्वरूप! तुम्हारी जय हो ॥१८९॥ "हे महाचक्र! तुम्हारी जय हो! हे वैष्णव प्रधान तुम्हारी जय हो! हे दुष्टों के प्रति भयंकर तुम्हारी जय हो! हे सज्जनों के रक्षक! तुम्हारी जय हो ॥ १९० ॥ स्तुति सुन श्री सुदर्शन सन्तुष्ट होकर बोले कि "जहाँ राजा का पुत्र (सुदक्षिण) है वहाँ जाकर जलाओ ॥ १९१ ॥ तब वह महा भयङ्कर पुरुष लौट चला और काशी-राज के पुत्र को जलाकर चला गया ॥ १९२ ॥ हे प्रभो! तुमको उल्लंघन करके उसने शिव पूजा की थी अतएव उसके यज्ञ ने उसी को मार डाला ॥ १९३ ॥ इसीसे प्रभो! मैंने यह कहा कि जो तुम्हारा उल्लंघन करके मेरी सेवा करेगा उसे मैं जला मारूँगा ॥ १९४ ॥ 'हे प्रभो! तुम ही मेरे प्राणनाथ हो, तुम ही मेरे धन हो। तुम ही मेरे माता पिता हो, तुम ही मेरे बन्धुजन हो ॥ १९५ ॥ (अतएव) जो तुम्हारी अवज्ञा करके मुझे नमस्कार करता है, वह अपना सिर काट कर फिर चिकित्सा करता है ॥ १९६ ॥ "सत्राजित राजा ने सूर्यदेव का साक्षात्कार किया। सूर्यदेव भी उसकी भक्ति के वश में होकर उसके मित्र हो गये ॥१९७॥ परन्तु तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन कर उस आज्ञा भङ्ग के दुःख से दोनों भाई मारे गये और सूर्य-देव आनन्द से देखते ही रहे ॥ १९८ ॥ दुर्योधन श्री बलदेव जी का शिष्यत्व प्राप्त करके भी तुमको उल्लंघन करने से वंश सहित मारा गया ॥ १९९ ॥ हिरण्यकशिपु ब्रह्मा का वर पाकर के भी तुम्हारी अवहेलना के कारण वंश सहित मारा गया ॥ २०० ॥ रावण ने अपने मस्तकों को काट २ कर शिवजी की पूजा की परन्तु तुम्हारा उल्लंघन करके वह भी वंश सहित समाप्त हो गया ॥ २०१ ॥ (अतएव) तुम ही सब देव-

प्रभुरे लङ्घिया जे दासेरे भक्ति करे। पूजा खाइ सेइ दास ताहारे संहरे ॥२०३॥
तोमा' ना मानिञा जे शिवादि देव भजे। वृक्ष-मूल काटि जेन पल्लवेरे पूजे ॥२०४॥
देव, विप्र, यज्ञ, धर्म-सब मूल तुमि। जे तोमा ना भजे, तार पूज्य नहि आमि ॥२०५॥
महा तत्त्व अद्वैतेर शुनिञा वचन। हुङ्कार करिया बोले श्रीशचीनन्दन। २०६॥
"मोर एइ सत्य सभे शुन मन दिया। जेइ मोर पूजे मोरे सेवक लङ्घिया ॥२०७॥
से अधम जने मोरे खण्ड खण्ड करे। तार पूजा मोर गा'ये अग्नि हेन पड़े ॥२०८॥
जेइ मोर दासेर सकृत निन्दा करे। मोर नाम कल्प तरु ताहारे संहारे ॥२०९॥
अनन्त ब्रह्माण्ड जत-सब मोर दास। एतेके जे पर हिंसे' से-इ जाय नाश ॥२१०॥
तुमि त आमार निज देह हैते बड़। तोमारे लङ्घिया दैवे नाश हय दढ़ ॥२११॥
संन्यासीओ यदि अनिन्दक-निन्दा करे। अधः पाते जाय, सर्व धर्म घुचे तारे" ॥२१२॥
बाहु तुलि जगतेरे बोले गौर धाम। "अनिन्दक हइ सभे बोल कृष्ण नाम ॥२१३॥
अनिन्दक हइ जे सकृत 'कृष्ण' बोले। सत्य सत्य मुञि तारे उद्धारिमु हेले ॥२१४॥
एइ यदि महाप्रभु बलिला वचन। 'जय जय जय' बोले सर्व भक्त गण ॥२१५॥
अद्वैत कान्दये दुइ चरणे धरिया। प्रभु कान्दे अद्वैतेरे कोले ते करिया ॥२१६॥
अद्वैतेर प्रेमे भासे सकल मेदिनी। एइ मत महा चिन्त्य अद्वैत-काहिनी ॥२१७॥
अद्वैतेर वाक्य बुझिवार शक्ति जार। जानिह ईश्वर-सने भेद नाहि तार ॥२१८॥

---

ताओं के मूल में हो, सब के ईश्वर हो, जो कुछ भी दृश्यादृश्य है, वह सब तुम्हारे किंकर हैं ॥ २०२ ॥ प्रभु की अवहेलना कर जो दासों की भक्ति करता है, तो वे दास ही उसकी पूजा खाकर उसे भी खा जाते हैं ॥ २०३ ॥ तुमको न मान कर जो शिवादि देवताओं को भजते हैं, वे वृक्ष के मूल को काटकर पत्तियों को पूजते हैं ॥ २०४ ॥ "तुम ही देवता, ब्राह्मण, यज्ञ, धर्म सब के मूल में हो। जो तुमको नहीं भजता है, तो मैं भी उसका पूज्य नहीं" ॥ २०५ ॥ श्री अद्वैत के परम तत्त्व पूर्ण वचनों को सुनकर श्री शचीनन्दन हुँकार करते हुए बोले ॥ २०६ ॥ "सब लोग मेरे इस सत्य वचन को मन लगा कर सुनो कि जो मेरे सेवक को उल्लंघन करके मेरी पूजा करता है, वह अधम जन मेरे अङ्ग के टुकड़े २ करता है, उसकी पूजा मेरे शरीर पर अग्नि के समान पड़ती है ॥ २०७ ॥ २०८ ॥ "जो मेरे दास की एक बार भी निन्दा करता है, तो मेरा कल्पतरु नाम-उसका संहार कर देता है ॥२०९॥ जितने अनन्त ब्रह्माण्ड हैं वे सब मेरे दास हैं, इसी कारण जो दूसरे की हिंसा करते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं ॥ २१० ॥ और तुम तो मेरी देह से भी बड़े हो, तुम्हारी अवहेलना करने से अपने कर्मवश वह निश्चय की नष्ट हो जाता है ॥ २११ ॥ संन्यासी भी यदि कभी निन्दा न करने वाले पुरुष की निन्दा करता है तो उसका अधःपतन हो जाता है, उसके सब धर्म नष्ट हो जाते हैं" ॥ २१२ ॥ फिर भुजाओं को उठाकर श्री गौरचन्द्र जगत् के प्रति कहते हैं कि "तुम सब अनिन्दक होकर कृष्ण नाम कहो ॥ २१३ ॥ "अनिन्दक होकर जो एक बार भी 'कृष्ण' कहेगा मैं उसका सहज ही में उद्धार करूँगा यह सत्य है सत्य है ॥ २१४ ॥ जब यह वचन श्री मन्महाप्रभु बोले तो सब भक्त लोग 'जय ३' बोल उठे ॥ २१५ ॥ श्री अद्वैत जी प्रभु के दोनों चरणों को पकड़ कर रोने लगे और प्रभु अद्वैत जी को गोद में लेकर रोने लगे ॥ २१६ ॥ अद्वैताचार्य के प्रेम से पृथ्वी सब प्लावित सी हो गई इस प्रकार श्री अद्वैत की चरित्र कथा बड़ी अचिन्त्य है ॥ २१७ ॥ श्री अद्वैत के वचनों को समझने की जिसमें शक्ति हो उसका ईश्वर से भेद नहीं है समझना चाहिए ॥ २१८ ॥ श्री नित्यानन्द और श्री अद्वैत में जो परस्पर गाली गलौज होती

नित्यानन्द-अद्वैते जे गाला गाली बाजे। सेइ से परमानन्द-यदि जने बुझे ॥२१९॥
दुर्विज्ञेय विष्णु वैष्णवेर वाक्य कर्म। तान अनुग्रहे से बुझये तान मर्म ॥२२०॥
एइ मत जत आर हइल कथन। नित्यानन्दाद्वैत-प्रभु आर जत गण ॥२२१॥
इहा कहिवार शक्ति प्रभु बलराम। सहस्र वदने गाय एइ गुण ग्राम ॥२२२॥
क्षणे केइ बाह्य दृष्टि दिया विश्वम्भर। हासिया अद्वैत-प्रति बोलये उत्तर ॥२२३॥
"किछु नि चाञ्चल्य मुञि करियाछों शिशु"। अद्वैत बोलये "उपाधिक नहे किछु" ॥२२४॥
प्रभु बोले "शुन नित्यानन्द महाशय। रक्षिवा–चाञ्चल्य यदि मोर किछु हय" ॥२२५॥
नित्यानन्द चैतन्य अद्वैत हरिदास। परस्पर सभे सभा' चा'हि महाहास ॥२२६॥
अद्वैत गृहिणी महा सती पतिव्रता। विश्वम्भर महाप्रभु जारे बोले 'माता' ॥२२७॥
प्रभु बोले "शीघ्र गिया करह रन्धन। कृष्णेर नैवेद्य कर'–करिब भोजन ॥२२८॥
नित्यानन्द-हरिदास-अद्वैतादि सङ्गे। गङ्गा स्नाने विश्वम्भर चलिलेन रङ्गे ॥२२९॥
से सब आनन्द वेदे वर्णिव विस्तर। स्नान करि प्रभु सब आइलेन घर ॥२३०॥
चरण पाखालि महाप्रभु विश्वम्भर। कृष्णेरे करये दण्ड प्रणाम विस्तर ॥२३१॥
अद्वैत पड़िला विश्वम्भर-पद तले। हरिदास पड़िला अद्वैत-पद मूले ॥२३२॥
अपूर्व कौतुक देखि नित्यानन्द हासे'। धर्म सेतु हेन तिन विग्रह प्रकाशे' ॥२३३॥
उठि देखे ठाकुर–अद्वैत पद तले। आथे व्यथे उठि प्रभु 'विष्णु विष्णु' बोले ॥२३४॥
अद्वैतेर हाथे धरि नित्यानन्द-सङ्गे। चलिला भोजन गृहे विश्वम्भर रङ्गे ॥२३५॥

है, उसे यदि कोई समझ जाय तो वह परमानन्द लाभ करे ॥ २१९ ॥ श्री विष्णु और वैष्णव के वचन और कर्म दुर्विज्ञेय होते हैं। उनका मर्म उनकी ही कृपा से कोई समझ सकता है ॥ २२० ॥ इसी प्रकार से जो कुछ भी श्री नित्यानन्द, श्री अद्वैत और भक्तगण में वार्तालाप हुआ ॥ २२१ ॥ उसे कहने की शक्ति एक बलराम प्रभु में ही है। वे इन्हीं गुणगण को सहस्र मुख से गाया करते हैं ॥ २२२ ॥ कुछ देर में श्री विश्वम्भर की बाह्य दृष्टि होने पर वे हँस कर श्री अद्वैत के प्रति बोले ॥ २२३ ॥ मुझ शिशु ने कुछ चंचलता कर डाली है क्या ?" । श्री अद्वैत जी बोले "नहीं, स्वभाव से बाहर की कुछ नहीं" ॥ २२४ ॥ प्रभु बोले "महाशय नित्यानन्द जी सुनिए ! जब मुझमें कुछ चंचलता आवे तो आप मुझे सम्हाल लिया करें" ॥२२५॥ श्रीनित्यानन्द, श्री चैतन्यचन्द्र, श्री अद्वैत और श्री हरिदास एक दूसरे को देखते हैं और खूब हँसते हैं ॥ २२६ ॥ श्री अद्वैत–गृहिणी महासती पतिव्रता हैं, जिनको श्री विश्वम्भर महाप्रभु 'माता' कहते हैं ॥ २२७ ॥ उनसे प्रभु बोले "शीघ्र जाकर रसोई तैयार करो, और श्रीकृष्ण को निवेदन करो मैं भोजन करूँगा ॥२२८॥ ( इतना कह कर ) श्री विश्वम्भर, श्री नित्यानन्द, श्री हरिदास, श्री अद्वैतादि के साथ बड़े आनन्द में गङ्गा–स्नान को चले ॥ २२९ ॥ वह सब आनन्द वेद में विस्तार पूर्वक वर्णन होगा। स्नान करके सब प्रभु घर को लौट आये ॥ २३० ॥ महाप्रभु विश्वम्भर ने चरणों को धोकर श्रीकृष्ण को अनेक प्रणाम किया ॥ २३१ ॥ श्री-अद्वैत श्री विश्वम्भर के श्रीचरणों पर पड़ गये और श्री हरिदास श्रीअद्वैत के चरणों पर पड़ गये ॥२३२॥ इस अपूर्व कौतुक को देखकर श्री नित्यानन्द जी हँसने लगे इन तीन विग्रहों का प्रकाश धर्म का पुल बाँधने के लिए हुआ है ॥ २३३ ॥ महाप्रभु ने उठते समय जब श्री अद्वैत को अपने चरणों पर पड़ा देखा, तो हड़बड़ा कर "श्री विष्णु २" कहते हुए झट उठ खड़े हुए ॥ २३४ ॥ फिर अद्वैत जी का हाथ पकड़ कर श्री-नित्यानन्द के साथ विश्वम्भर आनन्द में भोजन-गृह को चले ॥ २३५ ॥ तीन प्रभु श्री विश्वम्भर श्रीनित्या-

भोजने वसिला तिन प्रभु एक ठाञि। विश्वम्भर नित्यानन्द आचार्य गोसाञि ॥२३६॥
स्वभाव चञ्चल तिन प्रभु निजा वेशे। उपाधिक नित्यानन्द प्रभु बाल्य रसे ॥२३७॥
द्वारे वसि भोजन करये हरिदास। जार देखिवार शक्ति-सकल प्रकाश ॥२३८॥
अद्वैत गृहिणी महासती योगेश्वरी। करे परिवेषण स्मङरि 'हरि हरि' ॥२३९॥
भोजन करेन तिन ठाकुर चञ्चल। दिव्य अन्न घृत दुग्ध पायस—सकल ॥२४०॥
अद्वैत देखिया हासे' नित्यानन्द-राय। एक वस्तु दुइ भाग,—कृष्णेर लीलाय ॥२४१॥
भोजन हइल पूर्ण, किछु मात्र शेष। नित्यानन्द हइला परम-बाल्या वेश ॥२४२॥
सर्व-घरे अन्न छड़ाइया हैल हास। प्रभु बोले 'हाय हाय,' हासे' हरिदास ॥२४३॥
देखिया अद्वैत क्रोधे अग्नि-हेन ज्वले। नित्यानन्द तत्त्व कहे क्रोधावेश-छले ॥२४४॥
"जाति नाश करिलेक एइ नित्यानन्द। कोथा हैते आसि हैल मद्यपेर सङ्ग ॥२४५॥
गुरु नाहि बोलय 'संन्यासी' करि नाम। जन्म वा ना जानिये निश्चय कोन् ग्राम ॥२४६॥
केहो त ना चिने, नाहि जानि कोन् जाति। ढुलिया ढुलिया बुले जेन माता-हाथी ॥२४७॥
घरे घरे पश्चिमार खाइयाछे भात। एखने आसिया हैल ब्राह्मणेर साथ ॥२४८॥
नित्यानन्द-मद्यपे करिव सर्व नाश। सत्य सत्य सत्य एइ शुन हरिदास" ॥२४९॥
क्रोधावेशे अद्वैत हइला दिगवास। हाथे तालि दिया नाचे, अट्ट अट्ट हास ॥२५०॥
अद्वैत-चरित्र देखि हासे गौर राय। हासि नित्यानन्द दुइ अङ्गुलि देखाय ॥२५१॥
शुद्ध-हास्य मय अद्वैतेर क्रोधावेशे। किवा वृद्ध किवा शिशु हासये विशेषे ॥२५२॥
क्षणेके हइल बाह्य, कैल आचमन। परस्पर सन्तोषे करिला आलिङ्गन ॥२५३॥

---

नन्द और श्री अद्वैताचार्य गुसांई, भोजन को एकत्र बैठे ॥२३६॥ अपने २ आवेश में तीनों प्रभुओं का चंचल स्वभाव है, परन्तु नित्यानन्द प्रभु में बाल्य भाव की अधिकता विशेष है ॥ २३७ ॥ श्री हरिदास जी द्वार पर बैठ कर भोजन कर रहे हैं सब प्रकाश स्वरूप के दर्शन करने की इनमें शक्ति है ॥२३८॥ महासती योगेश्वरी अद्वैत—गृहिणी 'हरि २' स्मरण करती हुई परोस रही हैं ॥ २३९ ॥ तीन चंचल प्रभु उत्तम भात घी, दूध, खीर आदि भोजन कर रहे है ॥ २४० ॥ श्रीअद्वैत को देख २ कर श्री नित्यानन्द जी हँस रहे हैं, ( ये दो).एक ही वस्तु के दो भाग हैं, श्रीकृष्ण की लीला से ॥ २४१ ॥ भोजन पूर्ण हुआ—थोड़ा सा ही शेष है कि श्री नित्यानन्द बालक के आवेश में आ गये ॥ २४२ ॥ और घर में सब भात बिखेर कर हँसने लगे। प्रभु 'हाय २' करते हैं, श्री हरिदास जी हँसते हैं ॥२४३॥ यह देख श्री अद्वैत क्रोध से अग्नि की तरह जलते हुए क्रोधावेश के छल से श्री नित्यानन्द तत्त्व बखानने लगे ॥२४४॥ "इस नित्यानन्द ने हमारी जाति बिगाड़ दी, न जाने कहाँ से इस शराबी का सङ्ग हुआ है ॥ २४५ ॥ न कोई इसका गुरु है, अपने को संन्यासी कहता है, जन्म भी न जाने किस गाँव का है कुछ पता नहीं ॥ २४६ ॥ "कोई इसे पहचानता भी नहीं। न जाने इसकी कौन सी जाति है, मतवाले हाथी की तरह झूमता झामता फिरा करता है ॥ २४७ ॥ इसने पश्चिम देश वासियों के घर २ में भात खाया है। यहाँ आकर अब ब्राह्मणों में मिल गया है ॥ ॥ २४८ ॥ "यह शराबी नित्यानन्द सर्वनाश करेगा हे हरिदास यह सत्य ३ है" ॥ २४९ ॥ क्रोध के आवेश में अद्वैत दिगम्बर हो गये और हाथों से ताली बजा २ कर नाचने और ठहाका मार २ कर हँसने लगे ॥ २५० ॥ श्री अद्वैत के चरित्र को देख २ कर श्री गौरसुन्दर हँसते हैं और नित्यानन्द जी हँसते हुए दो अंगुली दिखाते हैं ॥२५१॥ श्री अद्वैत का क्रोधावेश शुद्ध हास्यमय है इसी से क्या बूढ़े क्या बालक सब खूब हँसते हैं ॥२५२॥

नित्यानन्द-अद्वैते: हइल कोला कोलि । प्रेम रसे दुइ प्रभु महा कुतूहली ।।२५४।।
प्रभु विग्रहेर दुइ बाहु दुइ जन । प्रीत वइ अप्रीत नाहिक कोन क्षण ।।२५५।।
सबे जे कलह देख, से कृष्णेर लीला । बालकेर प्राय विष्णु-वैष्णवेर खेला ।।२५६।।
हेन मते महाप्रभु अद्वैत मन्दिरे । स्वानुभावा नन्दे हरि कीर्त्तन विहरे ।।२५७।।
इहा वलिवार शक्ति प्रभु बलराम । अन्य नाहि जानये ए सब गुण ग्राम ।।२५८।।
सरस्वती जाने बलरामेर कृपाय । सभार जिह्वाय सेइ भगवती गाय ।।२५९।।
ए सब कथार नाहि जानि अनुक्रम । जे-ते-मते गाइ मात्र कृष्णेर विक्रम ।।२६०।।
चैतन्य प्रियेर पा'य मोर नमस्कार । इहाते जे अपराध-क्षमिह आमार ।।२६१।।
अद्वैतेर गृहे प्रभु वञ्चि-कथो दिन । नवद्वीपे आइला—संहति करि तिन ।।२६२।।
नित्यानन्द, अद्वैत, तृतीय हरिदास । एइ तिन सङ्गे प्रभु आइला निज-वास ।।२६३।।
शुनिला वैष्णव सब "आइला ठाकुर"। धाइया आइला सभे-आनन्द-प्रचुर ।।२६४।।
देखि सर्व ताप हरे' से चन्द्र वदन । धरिया चरण सभे करेन क्रन्दन ।।२६५।।
विश्वम्भर महाप्रभु—सभार जीवन । सभार करिल प्रभु प्रेम-आलिङ्गन ।।२६६।।
सभेइ प्रभुर निज-विग्रह-समान । सभेइ उदार-भागवतेर प्रधान ।।२६७।।
सभेइ करिला अद्वैतेरे नमस्कार । जार भक्ति-कारणे चैतन्य-अवतार ।।२६८।।
आनन्दे हइला मत्त वैष्णव सकल । सभे करे प्रभु-सङ्गे कृष्ण कोलाहल ।।२६९।।
पुत्र देखि आइ हैला आनन्दे विह्वल । वधू-सङ्गे गृहे करे आनन्द मङ्गल ।।२७०।।

---

थोड़ी देर में उनको बाह्य ज्ञान हुआ तो उन्होंने आचमन की ओर दोनों प्रसन्न होकर परस्पर से मिले ।।२५३।। प्रेमरस में विशेष कौतुकी दोनों प्रभु श्री नित्यानन्द और श्री अद्वैत परस्पर आलिंगन कर रहे हैं ।। २५४ ।। ये दोनों श्री गौर विग्रह की दो भुजा हैं, इनमें परस्पर में प्रीति छोड़ के कभी अप्रीति नहीं है ।।२५५।। अत-एव जो इनमें कलह देखा जाता है वह श्रीकृष्ण की लीला है विष्णु और वैष्णवों के खेल बालकों के समान होते हैं ।। २५६ ।। इस प्रकार महाप्रभु श्री अद्वैत के भवन में अपने भाव के आनन्द में हरि—कीर्त्तन में विहार करते हैं ।। २५७ ।। इस विहार को वर्णन करने की शक्ति प्रभु श्री बलराम में ही है, और कोई इन सब गुण गण को नहीं जानते हैं ।। २५८ ।। हाँ, श्री बलराम जी की कृपा से सरस्वती जी जानती हैं, वही भगवती सबों की जिह्वाएँ द्वारा गान करती हैं ।। २५९ ।। मैं भी इन सब चरित्रों का क्रम नहीं जानता हूँ। मैं तो जैसे तैसे श्रीकृष्ण के विक्रम को गा देता हूँ ।। २६० ।। श्री चैतन्य के प्रिय जनों के चरणों में मेरा नम-स्कार है। इसमें जो मेरा अपराध हो, उसे वे क्षमा करें।। २६१ ।। अद्वैताचार्य के घर में कुछ दिन बिता कर प्रभु तीनों को साथ लेकर नवद्वीप में आये ।।२६२।। श्री नित्यानन्द, श्री अद्वैत और तीसरे श्री हरिदास इन तीनों के साथ प्रभु अपने भवन में आये ।। २६३ ।। सब वैष्णवों ने सुना कि प्रभु आ गये और सब बड़े आनन्द में दौड़े २ आये ।। २६४ ।। प्रभु के उस चन्द्रवदन के दर्शन करके सब के ताप दूर हुए। प्रभु ने सबों को अपना प्रेमालिंगन प्रदान किया ।। २६५ ।। २६६ ।। सभी प्रभु को अपने शरीर के समान हैं (कारण कि) सभी बड़े उदार भागवत—प्रधान हैं ।। २६७ ।। सभी ने श्री अद्वैत जी को नमस्कार किया कि जिनकी भक्ति के कारण चैतन्यावतार हुआ ।। २६८ ।। सब वैष्णव जन आनन्द में मतवाले हो गये और प्रभु के साथ 'कृष्ण २' कहते हुए कोलाहल मचाते हैं ।। २६९ ।। पुत्र को देखकर शची माता आनन्द में विह्वल हो जाती है, और वधू के साथ घर में आनन्द मङ्गल मनाती हैं ।। २७० ।। इसे वर्णन करने की शक्ति सहस्रवदन प्रभु

इहा बलिबार शक्ति सहस्र वदन। जे प्रभु आमार जन्म जन्मेर जीवन ॥२७१॥
'द्विज' 'विप्र' 'ब्राह्मण' जे हेन नाम भेद। एइ मत प्रभु 'नित्यानन्द' 'बलदेव ॥२७२॥
अद्वैत गृहेते प्रभु जत कैल केलि। इहा जे शुनये सेहो पाय सेइ मेलि ॥२७३॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ॥२७४॥

# अथ बीसवाँ अध्याय

जय जय गौरसिंह श्रीशची कुमार। जय सर्व ताप हर चरण तोमार ॥१॥
जय गदाधर-प्राण-नाथ महाशय। कृपा कर' प्रभु! हेन तोहे मन रय ॥२॥
हेन मते भक्त गोष्ठी ठाकुर देखिया। नाचे गाये कान्दे हासे' प्रेम पूर्ण हैया ॥३॥
एइ मत प्रति दिन अशेष कौतुक। भक्त-सङ्गे विश्वम्भर करे नाना रूप ॥४॥
एक दिन महाप्रभु नित्यानन्द-सङ्गे। श्रीनिवास गृहे वसि आछे नाना-रङ्गे ॥५॥
आइला मुरारि गुप्त हेनइ समय। प्रभुर चरणे दण्ड परणाम हय ॥६॥
शेषे नित्यानन्देरे करिया परणाम। सम्मुखे रहिला गुप्त महा ज्योतिर्धाम ॥७॥
मुरारि गुप्त रे प्रभु बड़ सुखी मने। अकपटे मुरारिरे कहेन आपने ॥८॥
जे करिला मुरारि! ना हय व्यवहार। व्यतिक्रम करिया करिला नमस्कार ॥९॥
कोथा तुमि शिखाइवा, जे ना इहा जाने। व्यवहारे हेन धर्म तुमि लङ्घ केने" ॥१०॥
मुरारि बोलये "प्रभु! जानों केन मते। चित्त तुमिलओ याइया आछ जेन मते ॥११॥

---

में ही कि जो प्रभु मेरे जन्म २ के जीवन हैं ॥ २७१ ॥ जिस प्रकार 'द्विज' 'विप्र' और 'ब्राह्मण' में नाम का ही भेद है वैसे ही प्रभु 'नित्यानन्द' और 'बलदेव' में भी समझो ॥ २७२ ॥ श्री अद्वैत के घर प्रभु ने जितनी लीलाएँ कीं, उनको जो कोई सुनेंगे वे भी उस लीला में मिल जायँगे ॥ २७३ ॥ श्री कृष्ण चैतन्य और श्री नित्यानन्द चन्द्र को अपना सर्वस्व जान कर यह वृन्दावन दास उनके श्री चरणों में उनके ही गुण गान को निवेदन करता है ॥ २७४ ॥

इति—अद्वैत गृह विलास वर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय।

हे श्री शचीकुमार! हे गौरसिंह! आप की जय हो, जय हो। आप के सर्वतापहर श्री चरणों की भी जय हो ॥ १ ॥ हे गदाधर के प्राणनाथ महाशय! आपकी जय हो। हे प्रभो! ऐसी कृपा कीजिए कि मन आप में लगा रहे ॥ २ ॥ इस प्रकार भक्त मंडली प्रभु के दर्शन कर प्रेमपूर्ण हो नाचती, गाती, रोती, हँसती है ॥ ३ ॥ इस प्रकार श्री विश्वम्भर भक्तों के साथ प्रति दिन अशेष कौतुक किया करते हैं ॥ ४ ॥ एक दिन महाप्रभु जी श्री नित्यानन्द के साथ श्रीवास के घर में नाना प्रकार के कौतुक करते हुए विराजमान हैं ॥५॥ उसी समय श्री मुरारि गुप्त वहाँ आये और उन्होंने प्रभु के श्री चरणों में प्रणाम किया ॥६॥ पश्चात् श्री नित्यानन्द जी प्रणाम करके महा तेजवान् मुरारि गुप्त सन्मुख खड़े हो गये ॥ ७ ॥ प्रभु मुरारि-गुप्त के प्रति मनमें बड़े प्रसन्न हुए और उससे निष्कपट भाव से कहने लगे ॥८॥ "हे मुरारि! जो तुमने किया यह उचित व्यवहार नहीं है। तुमने क्रम को त्याग करके नमस्कार किया ॥ ९ ॥ कहाँ तो तुमको व्यवहार न जानने वालों को सिखाना था और कहाँ तुमने स्वयं धर्म का उल्लंघन कर डाला भला ऐसा क्यों किया? ॥ १० ॥ मुरारि बोला—"प्रभो! मैं कैसे जानूँ। चित्त को तो आप लिये हुए हैं। आप जैसा करवाते हैं,

प्रभु बोले "भाल भाल आजि जाह घरे। सकल जानिवा कालि, वलिल तोमारे" ॥१२॥
सम्भ्रमे चलिला गुप्त सभय-हरिषे। शयन करिला गिया आपनार वासे ॥१३॥
स्वप्ने देखे-महा भागवतेर प्रधान। मल्ल वेशे नित्यानन्द चले आगुयान ॥१४॥
नित्यानन्द शिरे देखे महा नागफरणा। करे देखे श्रीहल मूसल ताल-बाणा ॥१५॥
नित्यानन्द मूर्त्ति देखे जेन हलधर। शिरे पाखा धरि पाछे जाय विश्वम्भर ॥१६॥
स्वप्ने प्रभु हासि बोले "जानिला मुरारि। आमि जे कनिष्ठ, मने बुझह विचारि" ॥१७॥
स्वप्ने दुइ प्रभु हासे' मुरारि देखिया। दुइ भाइ मुरारिरे गेला शिखाइया ॥१८॥
चैतन्य पाइया गुप्त करेन क्रन्दन। नित्यानन्द वलि श्वास छाड़े घने घन ॥१९॥
महा सती मुरारि गुप्त'र पतिव्रता। 'कृष्ण कृष्ण कृष्ण' बोले हइ सचकिता ॥२०॥
'बड़ भाइ नित्यानन्द' मुरारि जानिया। चलिला प्रभुर स्थाने आनन्दित हैया ॥२१॥
वसि आछे महाप्रभु कमल लोचन। दक्षिणे से नित्यानन्द प्रफुल्ल वदन ॥२२॥
आगे नित्यानन्देर चरणे नमस्करि। पाछे वन्दे विश्वम्भर-चरण मुरारि ॥२३॥
हासि बोले विश्वम्भर "मुरारि! ए केन"। मुरारि बोलये "प्रभु! लओयाइले जेन ॥२४॥
पवन-कारणे जेन शुष्क तृण चले। जीवेर सकल कर्म तोर शक्ति बले" ॥२५॥
प्रभु बोले "मुरारि! आमार प्रिय तुमि। अतएव तोमारे भाङ्गिल मर्म आमि" ॥२६॥
कहे प्रभु निज तत्त्व मुरारिर स्थाने। जो गाय ताम्बूल प्रिय-गदाधर-नामे ॥२७॥
प्रभु बोले "दास मोर मुरारी प्रधान"। एत बलि चर्वित ताम्बूल कैला दान ॥२८॥

---

वैसा ही करता हूँ ॥ ११ ॥ प्रभु बोले "अच्छा २! आज तो घर जाओ कल सब जान जाओगे यह तुमसे कहे देता हूँ" ॥ १२ ॥ मुरारि गुप्त सम्भ्रम में आकर चले। उनके मन में भय और हर्ष है। वे अपने घर जाकर सोये ॥ १३ ॥ महा भागवत प्रधान मुरारि गुप्त ने स्वप्न देखा कि श्री नित्यानन्द जी मल्ल वेश में चले जा रहे हैं ॥ १४ ॥ वे श्री नित्यानन्द जी के शिर पर एक बड़ा भारी नागफणि हाथों में हल-मूषल और ताल के चिन्ह वाली पताका देखते हैं ॥ १५ ॥ वे श्री नित्यानन्द मूर्त्ति को श्री हलधर जैसी देखते हैं और उनके पीछे मोर पङ्ख पहिने हुए श्री विश्वम्भर जा रहे हैं ॥ १६ ॥ स्वप्न में प्रभु हँस कर बोले "जान गये न मुरारि? मैं छोटा हूँ! मन में विचार कर देखो" ॥ १७ ॥ स्वप्न में दोनों प्रभु मुरारि को देख कर हँसे। इस प्रकार दोनों भाई मुरारि को शिक्षा देकर चले गये ॥ १८ ॥ ( नींद टूटने पर ) मुरारि गुप्त जब सचेत हुए तो रोने लगे और नित्यानन्द २ कह कर बारम्बार लम्बी सांस लेने लगे ॥ १९ ॥ मुरारि गुप्त की पत्नी बड़ी सती पतिव्रता हैं, वे चकित होकर कृष्ण ३ कहने लगीं ॥ २० ॥ यह जानकर कि श्री नित्यानन्द जी बड़े भाई हैं मुरारि को बड़ा आनन्द हुआ और वे प्रभु के पास चले ॥ २१ ॥ कमल लोचन महाप्रभु विराजमान हैं दाहिने ओर प्रसन्न वदन श्री नित्यानन्द हैं ॥ २२ ॥ मुरारि ने जाकर पहले श्री नित्यानन्द जी के चरणों में नमस्कार किया और पीछे श्री विश्वम्भर के चरणों की वन्दना की ॥ २३ ॥ श्रीविश्वम्भर हँस कर बोले "ऐसा क्यों मुरारि?" मुरारि बोला "आप ने जैसा कराया प्रभो!" ॥ २४ ॥ जैसे वायु के कारण सूखे तृण उड़ते हैं, वैसे ही आप को शक्ति से ही जीव के समस्त कर्म होते हैं ॥ २५ ॥ प्रभु बोले "मुरारि! तुम मेरे प्रिय हो। इसीसे तुम्हारे निकट मैंने यह रहस्य प्रकट किया" ॥ २६ ॥ प्रभु मुरारि के निकट अपना तत्त्व कहते हैं। प्रभु के प्रिय गदाधर जी ताम्बूल अर्पण करते हैं ॥ २७ ॥ प्रभु बोले "मुरारि मेरा प्रधान दास है", इतना कह कर प्रभु ने अपना चर्वित ताम्बूल उसको दिया ॥ २८ ॥ मुरारि ने बड़े

सम्भ्रमे मुरारी जोड़ हस्त करि लय। खाइया मुरारि महानन्दे मत्त हय ॥२९॥
प्रभु बोले "मुरारि! सकाले धोह हाथ"। मुरारी तुलिया हस्त दिलेक माथात ॥३०॥
प्रभु बोले "आरे बेटा! जाति गेल तोर। तोर अङ्गे उच्छिष्ट लागिल सब मोर" ॥३१॥
बलिते प्रभुर हैल ईश्वर-आवेश। दन्त कड़ मड़ि करि बोलये विशेष ॥३२॥
संन्यासी प्रकाशानन्द बसये काशीते। मोरे खण्ड खण्ड बेटा करे भाल मते ॥३३॥
पढ़ाये वेदान्त, मोर विग्रह ना माने'। कुष्ठ कराइलु' अङ्गे तभु नाहि जाने ॥३४॥
अनन्त ब्रह्माण्ड मोर जे अङ्गे ते वैसे। ताहा मिथ्या बोले बेटा के मन साहसे ॥३५॥
सत्य कहों मुरारि! आमार तुमि दास। जे ना माने' मोर अङ्ग, से-इ जाय नाश ॥३६॥
अज भवानन्द माझे विग्रह जे सेवे। जे विग्रह प्राण करि पूजे सर्व-देवे ॥३७॥
पुण्य पवित्रता पाय जे अङ्ग-परशे। ताहा मिथ्या बोले बेटा के मन साहसे ॥३८॥
सत्य सत्य करों तोरे एइ परकाश। सत्य मुञि, सत्य मोर दास तार दास ॥३९॥
सत्य मोर लीला कर्म, सत्य मोर स्थान। इहा मिथ्या बोले मोरे करे खाण खाण ॥४०॥
जे-यश-श्रवणे आदि-अविद्या-विनाश। पापी अध्यापके बोले 'मिथ्या से विलास' ॥४१॥
जे-यश श्रवण-रसे शिव दिगम्बर। जहा गाय आपने अनन्त महीधर ॥४२॥
जे-यश-श्रवणे शुक-नारदादि मत्त। चारि वेदे वाखाने' जे यशेर महत्त्व ॥४३॥
हेन पुण्य-कीर्त्ति-प्रति अनादर जार। से कभू ना जाने गुप्त! मोर अवतार ॥४४॥
गुप्त-लक्ष्ये सभारे शिखाय भगवान्। 'सत्य मोर विग्रह, सेवक, लीला स्थान' ॥४५॥

आदर सन्मान के साथ हाथ जोड़ कर उसे ले लिया और उसे खाकर वह महा आनन्द में मतवाला हो गया ॥ २९ ॥ प्रभु बोले "मुरारि! जल्दी हाथ धोओ"। तो उसने हाथ मस्तक से लगा लिया ॥३०॥ प्रभु बोले "बेटा! तेरी जाति चली गई (क्योंकि) तेरे सारे शरीर में मेरा जूठा लग गया ॥ ३१ ॥ कहते २ प्रभु को ईश्वर का आवेश हो आया, और दाँत पीसते हुए वे कुछ विशेष कहनेलगे ॥ ३२ ॥ 'काशी में प्रकाशानन्द संन्यासी रहता है। वह बेटा अच्छी तरह से मेरे टुकड़े २ करता है ॥ ३३ ॥ वह वेदान्त पढ़ाता है और मेरे विग्रह को नहीं मानता है। मैंने उसके शरीर में कोढ़ पैदा कर दिया तौ भी वह नहीं समझता है ॥ ३४ ॥ "मेरे जिस देह में अनन्त ब्रह्माण्डों का वास है, उसे वह बेटा किस साहस से मिथ्या कहता है? ॥ ३५ ॥ "मुरारि! तुम मेरे दास हो! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि जो मेरी देह को नहीं मानता है, वह नष्ट हो जाता है ॥ ३६ ॥ ब्रह्मा, शिव आदि जिस विग्रह की सेवा बड़े आनन्द से करते हैं, सब देवता अपना प्राण समझ करके जिस विग्रह को पूजा करते हैं ॥ ३७ ॥ जिस अङ्ग के स्पर्श से पुण्य और पवित्रता प्राप्त होती है, उसे किस साहस से वह बेटा मिथ्या कहता है ॥ ३८ ॥ मैं तुम्हारे निकट यह सत्य २ प्रकाश कर रहा हूँ कि मैं सत्य हूँ मेरे दास सत्य हैं, और मेरे दास के दास सत्य हैं ॥ ३९ ॥ मेरी लीला मेरे कर्म सत्य है, मेरा धाम सत्य है। जो इनको मिथ्या कहता है वह मेरे टुकड़े २ करता है ॥ ४० ॥ मेरे जिस यश के श्रवण से मूल अविद्या का विनाश होता है, उस विलास को वह पापी अध्यापक मिथ्या कहता है ॥ ४१ ॥ "जिस यश के श्रवण रूपी रस से शिव जी दिगम्बर हैं, जिसको स्वयं महीधर अनन्त देव गाते रहते हैं ॥ ४२ ॥ जिस यश के श्रवण में शुकदेव, नारदादि मतवाले बने हुए हैं, चारों वेद जिस यश के महत्त्व को बखानने हैं ॥ ४३ ॥ "ऐसा जो मेरा पुण्य यश है उसके प्रति जिसका अनादर भाव है वह, हे गुप्त! मेरे अवतार को कभी समझ नहीं सकता" ॥ ४४ ॥ भगवान् गौरचन्द्र मुरारि गुप्त को लक्ष्य करके सबको यही सिखा रहे हैं कि मेरा

आपनार तत्त्व प्रभु आपने शिखाय। इहा जे ना माने,' से आपने नाश जाय ॥४६॥
क्षणेके हइला बाह्य दृष्टि विश्वम्भर। पुन से हइला प्रभु अकिञ्चन वर ॥४७॥
'भाइ !' बलि मुरारिरे कैला आलिङ्गन। बड़ स्नेह करि बोले सदय-वचन ॥४८॥
"सत्य तुमि मुरारि ! आमार शुद्ध-दास। तुमि से जानिला नित्यानन्देर प्रकाश ॥४९॥
नित्यानन्दे जाहार तिलेक द्वेष रहे। दास हइलेओ सेइ मोर प्रिय नहे। ५०॥
घरे जाह गुप्त ! तुमि आमारे किनिला। नित्यानन्द तत्त्व गुप्त ! तुमि से जानिला" ॥५१॥
हेन मते मुरारी प्रभुर कृपा पात्र। ए कृपार पात्र सबे हनुमान् मात्र ॥५२॥
आनन्दे मुरारि गुप्त घरेरे चलिला। नित्यानन्द-सङ्गे प्रभु हृदये रहिला ॥५३॥
अन्तरे विह्वल गुप्त गेला निज वासे। एक बोले, आर करे, खल खली हासे' ॥५४॥
परम-उल्लासे बोले करिब भोजन। पतिव्रता अन्न आनि कैल निवेदन ॥५५॥
विह्वल मुरारि गुप्त चैतन्येर रसे। "खाओ खाओ' बलि अन्न फेले ग्रास ग्रासे ॥५६॥
घृत माखि अन्न सब पृथिवीते फेले। "खाओ खाओ खाओ कृष्ण !" एइ बोल बोले। ५७॥
हासे' पतिव्रता देखि गुप्तेर व्यभार। पुनः पुन अन्न आनि देइ बारे बार ॥५८॥
'महा भागवत गुप्त' पतिव्रता जाने। 'कृष्ण' बलि गुप्तेरे कराय सावधाने ॥५९॥
मुरारी दिले से प्रभु करये भोजन। कभु ना लङ्घये प्रभु गुप्तेर वचन ॥६०॥
जत अन्न देइ गुप्त, ताहा प्रभु खाय। बिहाने आसिया प्रभु गुप्तेरे जानाय ॥६१॥

---

विग्रह, मेरे सेवक, मेरी लीला और मेरे धाम सब सत्य हैं। ४५ ॥ प्रभु अपना तत्त्व आप ही सिखाते हैं, इसे जो नहीं मानता है, वह आप ही नष्ट हो जाता है ॥ ४६ ॥ कुछ समय पश्चात् श्री विश्वम्भर को बाह्य ज्ञान हुआ तो वे प्रभु फिर दीन अकिंचन बन गये ॥ ४७ ॥ उन्होंने मुरारि को 'भाई' कह कर आलिंगन किया और बड़े स्नेह के साथ दया से भरे हुए वचन कहा। ४८ ॥ "हे मुरारि ! तुम सचमुच में मेरे शुद्ध दास हो। तुमने ही श्री नित्यानन्द के प्रकाश (अवतार) को जाना है ॥ ४९ ॥ श्री नित्यानन्द जी से जिसका तिल भर भी द्वेष रहता है, वह दास होने पर भी मेरा प्रिय नहीं है ॥५०॥ "हे गुप्त ! तुम अब घर जाओ, तुमने मुझे मोल ले लिया है। (कारण कि) हे गुप्त ! तुमने ही नित्यानन्द तत्त्व को जाना है ॥ ५१ ॥ इस प्रकार मुरारि प्रभु के कृपा पात्र हैं। इस कृपा के मात्र केवल एक हनुमान जी ही हैं ॥ ५२ ॥ आनन्द में मग्न मुरारि गुप्त अपने घर को चले। उसके हृदय में श्री नित्यानन्द के सहित प्रभु विश्वम्भर स्थित हैं ॥५३॥ विह्वल हृदय से गुप्त अपने घर गये वे कहते कुछ हैं और करते कुछ और ही हैं और खिलखिला कर हँस पड़ते हैं ॥ ५४ ॥ (घर जाकर) वे बड़े उल्लास के साथ बोले—"मैं भोजन करूँगा"। पतिव्रता पत्नी ने भोजन लाकर निवेदन किया ॥ ५५ ॥ मुरारि गुप्त तो श्री चैतन्य के रस में विह्वल हैं। वे एक २ ग्रास अन्न (भात) का लेते हैं और 'खाओ २' कह कर फेंक देते हैं ॥ ५६ ॥ वे घी मिला हुआ भात सब जमीन पर फेंक रहे हैं, और "खाओ कृष्ण ! खाओ २"-यही बार २ कह रहे हैं ॥ ५७ ॥ पतिव्रता अपने पति गुप्त के व्यवहार को देखकर हँसती है और फिर २ भात ला ला कर बार २ देती जाती है ॥५८॥ पतिव्रता जानती हैं कि (मेरे पति) गुप्त बड़े भारी भक्त हैं। अतएव वह 'कृष्ण २' कह करके गुप्त को सावधान कराती हैं ॥ ५९ ॥ मुरारि का दिया हुआ प्रभु भोजन करते हैं। प्रभु गुप्त के वचनों की कभी अवहेलना नहीं करते ॥ ६० ॥ (अतएव) गुप्त ने जितना भी अन्न दिया वह सब प्रभु ने भोजन कर डाला और प्रातः आकर गुप्त को जनाया ॥ ६१ ॥ गुप्त जी श्री कृष्ण प्रेम के आनन्द में मग्न बैठे है—उसी समय पर प्रभु आ गये। प्रभु

बसिया आछेन गुप्त कृष्ण प्रेमानन्दे । हेन काले प्रभु आइला, देखि गुप्त वन्दे ॥६२॥
परम-आनन्दे गुप्त दिलेन आसन । बसिलेन जगन्नाथ मिश्रेर नन्दन ॥६३॥
गुप्त बोले "प्रभु ! केने विजया गमन" । प्रभु बोले "विष्टम्भेर चिकित्सा-कारण" ॥६४॥
"कौन् कौन् द्रव्य कालि करिला भोजन" पर । गुप्त बोले "कह देखि अजीर्ण-कारण ? पूर्व ॥६५॥
प्रभु बोले "आरे बेटा ! जानिबि के मने । 'खाओ खाओ' बलि अन्न फेलिलि जखने ।.६६॥
तुञ्नि पासरिलि जबे तोर पत्नी जाने । तुञ्नि दिलि मुञ्नि वा ना खाइमु केमने ॥६७॥
कि लागि चिकित्सा कर' अन्य वा पाचन । विष्टम्भ मोहोर तोर अन्नेर कारण । ६८॥
जल पाने अजीर्ण करिते नारे बल । तोर अन्ने अजीर्ण, औषध तोर जल" ॥६९।
एत बलि धरि मुरारिर जल पात्र । जल पिये प्रभु भक्ति रसे पूर्ण मात्र ॥७०॥
कृपा देखि मुरारि हइला अचेतन । महा प्रेमे गुप्त गोष्ठी करये क्रन्दन ॥७१॥
हेन प्रभु, हेन भक्ति योग, हेन दास । चैतन्य प्रसादे हैल भक्तिर प्रकाश ॥७२॥
मुरारि गुप्तेर दासे जे प्रसाद पाइल । सेइ नदियार भट्टाचार्य ना देखिल ॥७३॥
विद्या-धन प्रतिष्ठाय किछु नाहि करे । वैष्णवेर प्रसादे से भक्ति-फल धरे ॥७४॥
जे-से-केने नहे वैष्णवेर दासी दास । सर्वोत्तम से-इ—एइ वेदेर प्रकाश ॥७५॥
एइ मत मुरारीरे प्रति दिने दिने । कृपा करे महाप्रभु आपने आपने ॥७६॥
शुन शुन मुरारिर अद्भुत आख्यान । शुनिले मुरारि कथा पाइ भक्ति दान ॥७७॥
एक दिन महाप्रभु श्रीवास मन्दिरे । हुङ्कार करिया प्रभु निज-मूर्ति धरे ॥७८॥
शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म शोभे चारि कर । 'गरुड़ ! गरुड़ !' बलि डाके विश्वम्भर ॥७९॥

---

को देखकर गुप्त ने वन्दना की ॥ ६२ ॥ परम आनन्द में गुप्त ने प्रभु को आसन दिया । श्री जगन्नाथ मिश्र के पुत्र विराज गये ॥६३॥ तब गुप्त जी बोले—"कैसे विजय आगमन हुआ है ? प्रभु बोले—"अजीर्ण की चिकित्सा के लिए" ॥ ६४ ॥ गुप्त बोले "अजीर्ण का कारण तो कहिये । आप ने कल क्या २ पदार्थ भोजन किया था ? ॥ ६५ ॥ प्रभु बोले—"अरे बेटा ! तू भला जानेगा कैसे कि "खाओ २" कह २ कर तूने कितना अन्न फेंका था ? ॥ ६६ ॥ तू तो भूल गया है पर तेरी पत्नी सब जानती है । तूने जब दिया तो मैं कैसे न खाता ?" ॥ ६७ ॥ गुप्त बोला "तो फिर किसलिये चिकित्सा करते हैं, दूसरा पाचन क्या चाहिये ?" ॥ ६८ ॥ प्रभु बोले "जल पीने से अजीर्ण जोर नहीं करता है । तेरे अन्न से अजीर्ण हुआ है, और औषधि भी तेरा ही जल है" ॥ ६९ ॥ इतना कहकर मुरारि का जल-पात्र उठा लिया और भक्ति रस से पूर्ण प्रभु उसका जल पीने लगे ॥ ७० ॥ इस कृपा को देखकर मुरारि बेहोश हो गया । और गुप्त के परिवार महा प्रेम वश रोने लगे ॥७१॥ ऐसे हैं प्रभु, ऐसा है उनका भक्तियोग और ऐसे हैं उनके दास इस प्रकार भक्ति का प्रकाश श्री चैतन्य की कृपा से हुआ ॥ ७२ ॥ मुरारि गुप्त के दासों ने जो कृपा पाई उसे नदिया के भट्टाचार्य पंडितों ने देखा तक नहीं ॥ ७३ ॥ विद्या, धन, मान, प्रतिष्ठा इनसे कुछ नहीं होता है । भक्ति फल तो वैष्णवों की कृपा से ही फलता है ॥ ७४ ॥ वैष्णवों के दासी दास जो भी कोई क्यों न हों, वे सर्वोत्तम ही हैं यह वेद में प्रकट है ॥ ७५ ॥ इस प्रकार मुरारि के ऊपर महाप्रभु नित्य प्रति कृपा करते हैं ॥ ७६ ॥ भाइयो ! मुरारि की अद्भुत कथाओं को सुनो । उसे सुनने से भक्ति दान मिलता है ॥ ७७ ॥ एक दिन महा प्रभु ने श्रीवास के मन्दिर में हुँकार करते हुए अपनी मूर्ति प्रकट की ॥ ७८ ॥ उनकी चार भुजाओं में शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म शोभित हैं । वे प्रभु विश्वम्भर 'गरुड़' 'गरुड़' कह कर पुकारते हैं ॥ ७९ ॥ उसी समय मुरारि गुप्त

हेनइ समये गुप्त आविष्ट हइया। श्रीवास मन्दिरे आइला हुङ्कार करिया ॥८०॥
गुप्त-देहे हैल महा-वैनतेय-भाव। गुप्त बोले "मुञि सेइ गरुड़ महा भाग" ॥८१॥
'गरुड़! गरुड़!' बलि डाके विश्वम्भर। गुप्त बोले "मुञि एइ तोहोर किङ्कर" ॥८२॥
प्रभु बोले "बेटा! तुञि मोहोर वाहन"। "हय हय हय" गुप्त बोलये वचन ॥८३॥
गुप्त बोले "पासरिला तोमारे लइया। स्वर्ग हैते पारिजात आनिलुँ वहिया। ८४॥
पासरिला तोमा' लैया गेलुँ बाण पुरे। खण्ड खण्ड कैलुँ मुञि स्कन्देर मयूरे ॥८५॥
एइ मोर स्कन्धे प्रभु! आरोहण कर'। आज्ञा कर' निव कोन् ब्रह्माण्ड-भितर" ॥८६॥
गुप्त-स्कन्धे चढ़े मिश्र चन्द्रेर नन्दन। जय जय ध्वनि हैल श्रीवास भवन। ८७॥
स्कन्धे कमलार नाथ, वैद्येर नन्दन। रड़ दिया पाक फिरे सकल अङ्गन ॥८८॥
जय हुला हुलि देइ पतिव्रता गण। महा प्रेमे भक्त सब करये क्रन्दन ॥८९॥
केहो बोले 'जय जय' केहो बोले हरि'। केहो बोले जेन एइ रूप ना पासरि" ॥९०॥
केहो माल साट् मारे परम-उल्लासे। "भालरे ठाकुर मोर" बलि केहो हासे'। ९१॥
"जय जय मुरारि-वाहन विश्वम्भर"। बाहु तुलि केहो डाके करि उच्च स्वर ॥९२॥
मुरारिर कान्धे दोले गौराङ्ग सुन्दर। उल्लासे भ्रमये गुप्त बाड़ीर भितर। ९३॥
सेइ नवद्वीपे हय ए सब प्रकाश। दुष्कृति ना देखें गौरचन्द्रेर विलास ॥९४॥
धन-कुल-प्रतिष्ठाय कृष्ण नाहि पाइ। केवल भक्तिर वश चैतन्य गोसाञि ॥९५॥
जन्मे जन्मे जे-सब करिल आराधन। सुखे देखे एवे तार दास-दासी गण ॥९६॥

आवेश में भरे हुँकार करते हुए श्रीवास के भवन आ गये ॥ ८० ॥ उनकी देह में श्रेष्ठ गरुड़ जी का भाव आ गया और वे बोले "मैं ही वह महाभाग गरुड़ हूँ" ॥ ८१ ॥ प्रभु विश्वम्भर 'गरुड़ २' कह कर पुकारते हैं और मुरारि गुप्त कहते हैं—"यह रहा मैं आपका किंकर ॥ ८२ ॥ प्रभु कहते हैं—"अरे बेटा! तू ही तो मेरा वाहन है।" गुप्त कहते हैं—"हाँ २" ॥ ८३ ॥ गुप्त फिर कहते हैं—"भूल गये क्या? मैं आप को लेकर स्वर्ग से पारिजात वृक्ष अपनी पीठ पर उठा ले आया था ॥८४। "और भूल गये प्रभो? मैं आप को लेकर बाणासुर के नगर को गया था। मैंने ही स्कन्ध (कार्तिकेय) के मोर के टुकड़े २ किये थे ॥ ८५ ॥ आओ प्रभो! मेरे इस कन्धे पर चढ़ जाओ। और आज्ञा करो मैं कौन से ब्रह्माण्ड के भीतर ले चलूँ ॥ ८६ ॥ मिश्र नन्दन श्री विश्वम्भर मुरारि गुप्त के कन्धे पर चढ़ बैठे। श्रीवास भवन में जय जय ध्वनि होने लगी ॥ ८७ ॥ कन्धे पर कमलापति को लिये हुए वैद्य नन्दन मुरारि गोल घूमते हुए सारे आँगन में चक्कर देने लगे ॥ ८८ ॥ पतिव्रता स्त्रियाँ जय ध्वनि और हुलु ध्वनि दे रही हैं और भक्त जन सब महा प्रेम में रो रहे हैं ॥८९॥ कोई 'जय २' कहते हैं, कोई 'हरि २' पुकारते हैं। कोई कहते हैं कि "हे प्रभो! ऐसा करो कि हम इस रूप को कभी न भूलें ॥९०॥ कोई परम उल्लास में ताल ठोंकते और भुजा फटकारते हैं। कोई "वाहरे मेरे ठाकुर! कह २ कर हँसते हैं ॥ ९१ ॥ कोई भुजा उठाकर ऊँचे स्वर से कहते हैं—'श्री विश्वम्भर के वाहन मुरारि की जय हो, जय हो' ॥ ९२ ॥ श्री विश्वम्भर मुरारि के कन्धे पर झूम रहे हैं और गुप्त बड़े उल्लास के साथ घर भीतर चक्कर लगा रहे हैं॥ ९३ ॥ नवद्वीप वही है जहाँ ये सब लीलाएँ हो रही हैं, परन्तु दुष्ट जन श्री गौरचन्द्र के विलास को नहीं देख पा रहे हैं॥ ९४ ॥ (तात्पर्य) धन, कुल, मान, प्रतिष्ठा आदि से श्रीकृष्ण नहीं मिलते हैं। श्री चैतन्य गुसांई तो केवल एक भक्ति के वश में हैं॥ ९५ ॥ जिन्होंने जन्म २ प्रभु की आराधना की है। अब उनके दास दासी भी सुख से सब कुछ देख रहे हैं ॥ ९६ ॥ जिन्होंने देखा वे यदि कृपा

जेवा देखिलेक, से वा कृपा करि कहे। तथापिह दुष्कृतिर चिते नाहि लये ॥९७॥
मध्य खण्डे गुप्त-कान्धे प्रभुर उत्थान। सर्व-अवतारे गुप्त सेवक प्रधान ॥९८॥
ए सब लीलार कभु अवधि ना हय। 'आविर्भाव' तिरोभाव' एइ वेदे कय ॥९९॥
बाह्य पाइ नाम्बिला गौराङ्ग महा धीर। गुप्तेर गरुड़-भाव हइल सुस्थिर ॥१००॥
ए बड़ निगूढ़ कथा केहो केहो जाने। गुप्त-कान्धे महाप्रभु कैला आरोहणे ॥१०१॥
मुरारिरे कृपा देखि वैष्णव मण्डल। 'धन्य धन्य धन्य' बलि प्रशंसे सकल ॥१०२॥
धन्य भक्त मुरारी, सफल विष्णु भक्ति। विश्वम्भर लीलाय वहये जार शक्ति ॥१०३॥
एइ मत मुरारि गुप्तेर पुण्य कथा। अनेकत आछये जे कैला जथा जथा ॥१०४॥
एक दिन मुरारि परम-शुद्ध-मति। निज मने मने गणे' अवतार स्थिति ॥१०५॥
"साङ्गो पाङ्गे आछये यावत अवतार। तावत चिन्ति जे आमि निज प्रतिकार ॥१०६॥
ना बुझि कृष्णेर लीला कखन कि करे। तखने सृजये लीला, तखने संहारे ॥१०७॥
जे सीता लागिया मारे सवंशे रावण। आनिञा छाड़िला सीता के मन कारण ॥१०८॥
जे यादव गण निज-प्राणेर समान। साक्षाते देखये—तारा हाराय पराण ॥१०९॥
अतएव यावत आछये अवतार। तावत आमार देह त्याग प्रतिकार ॥११०॥
देह एड़िवार मोर एइ से समय। पृथिवीते यावत आछये महाशय" ॥१११॥
एतेक निर्वेद गुप्त चिन्ति मने मने। खरसान काति एक आनिल यतने ॥११२॥

करके कहते भी हैं तो भी दुष्टों का चित्त ग्रहण नहीं करता है ॥ ९७ ॥ मध्य खण्ड में गुप्त के कन्धे पर प्रभु के चढ़ने की कथा है। यह गुप्त सब अवतारों में प्रभु का प्रधान सेवक है ॥९८॥ इन सब लीलाओं की कभी समाप्ति नहीं होती है। इनका केवल 'आविर्भाव' और 'तिरोभाव' होता है यही वेद (शास्त्र) कहते हैं ॥९९॥ बाह्य सुध आने पर महाधीर श्री गौरांगचन्द्र कन्धे पर से उतरे और गुप्त का गरुड़ भाव भी शान्त हो गया ॥ १०० ॥ गुप्त के कन्धे पर प्रभु के चढ़ने की कथा बड़ी निगूढ़ है—इसे कोई २ ही जानते हैं ॥१०१॥ मुरारि पर प्रभु की कृपा देखकर सब वैष्णव मण्डल धन्य ३ कह २ कर प्रशंसा करते हैं ॥ १०२ ॥ "धन्य है भक्त मुरारि को ! इन की विष्णुभक्ति सफल है। यह इनकी ही शक्ति है कि विश्वम्भर को सहज में ही कन्धे पर चढ़ा लेते हैं ॥ १०३ ॥ मुरारि गुप्त के ऐसे २ पुण्य चरित जो जहाँ तहाँ प्रभु ने उनके साथ किये हैं अप्रकट हैं ॥ १०४ ॥ (यथा) एक दिन परम शुद्ध मतिमान् मुरारि अपने मन ही मन में अवतार की स्थिति पर विचार करते हैं ॥ १०५ ॥ (यथा) "जब तक प्रभु का अवतार अपने परिकर रूप अङ्ग उपाङ्गों के सहित (भूतल पर) विद्यमान् है तब तक मुझे अपने लिये उपाय सोच लेना चाहिए ॥ १०६ ॥ (कारण कि) श्री कृष्ण की लीला कुछ समझ में नहीं आती है न जाने वे किस समय क्या कर डालें। वे क्षण में तो लीला की रचना करते हैं और क्षण में उसे समाप्त कर देते हैं ॥ १०७ ॥ (यथा) जिस सीता जी के लिए वंश समेत रावण को मार डाला, उनको घर लाकर फिर न जाने किस कारण से छोड़ दिया ॥ १०८ ॥ "जो यादव-गण उनके प्राणों के समान थे, वे आपस में लड़ कट करके प्राणों को खोते हैं और प्रभु साक्षात् चुपचाप देखते रहते हैं ॥ १०९ ॥ अतएव जब तक प्रभु का अवतार प्रकट है तब तक मुझे अपने देह त्याग का उपाय कर लेना चाहिए ॥ ११० ॥ "जब तक महाशय गौर प्रभु पृथ्वी पर प्रकट हैं तभी तक मेरे शरीर त्याग करने का भी समय है ॥ १११ ॥ इस प्रकार वैराग्य प्राप्त मुरारि ने मन ही मन में सोचा और वे एक तेज धार की कटारी यत्नपूर्वक ले आये ॥ ११२ ॥ उसे लाकर घर भीतर रख दी। 'आज रात को देह छोड़

आनिञा थुइल काति घरेर भितरे। "निशाय एड़िब देह हरिष-अन्तरे" ।।११३।।
सर्व भूत-हृदय-ठाकुर विश्वम्भर। मुरारिर चित्त वृत्ति हइल गोचर ।।११४।।
सत्वरे आइला प्रभु मुरारि भवन। सम्भ्रमे करिला गुप्त चरण वन्दन ।।११५।।
आसने वसिया प्रभु कृष्ण कथा कहे। मुरारि गुप्तेरे हइ बड़इ सदये ।।११६।।
प्रभु बोले "गुप्त! वाक्य राखिबा आमार"। गुप्त बोले 'प्रभु! मोर शरीर तोमार" ।।११७।।
प्रभु बोले "ए-त सत्य?" गुप्त बोले "हय"। "काति-खानि देह' मोरे" प्रभु काणे कय ।।११८।।
"जे काति थुइला देह छाड़िवार तरे। ताहा आनि देह'-आछे घरेर भितरे" ।।११९।।
'हाय हाय' करि गुप्त महा दुःख माने। "मिथ्या कथा कहिल तोमारे कोन् जने" ।।१२०।।
प्रभु बोले "मुरारि! बड़त देखि भोल। परे कहिले कि आमि जानि हेन बोल ।।१२१।।
जे गढ़िया दिल काति, ताहा जानि आमि। ताहा जानि-जथा काति थुइयाछ तुमि" ।।१२२।।
सर्व भूत-अन्तर्यामी-जाने सर्व-स्थान। घरे गिया काटारि आनिला विद्यमान ।।१२३।।
प्रभु बोले 'गुप्त! एइ तोमार व्यभार। कोन् दोषे आमा' छाड़ि चाह जाइ बार ।।१२४।।
तुमि गेले काहारे लइया मोर खेला। हेन बुद्धि तुमि कार् स्थाने वा शिखिला ।।१२५।।
एखने मुरारि मोरे देह' एइ भिक्षा। आर कभु हेन बुद्धि ना करिवा शिक्षा" ।।१२६।।
कोले करि मुरारिरे प्रभु विश्वम्भर। हस्त तुलि दिला निज शिरेर उपर ।।१२७।।
"मोर माथा खाओ गुप्त! मोर माथा खाओ। यदि आर बार देह छाड़िवारे चाओ" ।।१२८।।
व्यथे व्यथे मुरारि पड़िला भूमि तले। पाखालिल प्रभुर चरण प्रेम जले ।।१२९।।
सुकृति मुरारि कान्दे धरिया चरण। गुप्त कोले करि कान्दे श्रीशचीनन्दन ।।१३०।।

दूँगा इस विचार से वे हृदय में प्रसन्न हैं ।। ११३ ।। सब प्राणियों के हृदय रूप प्रभु विश्वम्भर मुरारि की चित्त वृत्ति को जान गये ।। ११४ ।। प्रभु शीघ्रता करके मुरारि के घर आये। मुरारि ने सम्भ्रम पूर्वक प्रभु की चरण बन्दना की ।। ११५ ।। प्रभु आसन पर बैठ कर मुरारि के ऊपर बड़े ही दया युक्त होकर श्रीकृष्ण कथा कहते हैं ।। ११६ ।। प्रभु बोले—"गुप्त! मेरी बात रक्खोगे?" गुप्त बोले—"प्रभु! मेरा शरीर आपका ही है ।। ११७ ।। प्रभु बोले "यह बात सत्य है?", गुप्त बोले 'हाँ'! तब प्रभु कान में बोले 'कटारी मुझे दो' ।। ११८ ।। "जो कटारी देह छोड़ने के लिये रक्खी है, उसे लाकर दो वह घर भीतर रक्खी है' ।। ११९ ।। गुप्त ने 'हाय २' कहके बड़ा दुःख प्रकट किया और कहा 'आप से किसी ने मिथ्या बात कही है' ।। १२० ।। प्रभु बोले 'मुरारि! तुम तो बड़े भोले मालूम होते हो। अरे! किसी दूसरे ने मुझे नहीं कहा—मैं सब जानता हूँ ।। १२१ ।। 'जिसने कटार बना कर दी है, उसे मैं जानता हूँ, और तुमने उसे जहाँ रक्खी है वह जगह भी जानता हूँ' ।। १२२ ।। सर्वभूत अन्तर्यामी प्रभु सब स्थान जानते हैं, वे घर भीतर गये और कटारी सामने ले आये ।। १२३ ।। प्रभु बोले 'गुप्त! यह व्यवहार तुम्हारा! भला किस दोष के कारण मुझे छोड़ कर जाना चाहते हो? ।।१२४।। तुम्हारे चले जाने पर मैं किसके साथ लीला करूँगा? तुमने ऐसी बुद्धि किससे सीखी ।। १२५ ।। 'अब मुरारि! तुम मुझे यह भीख दो कि ऐसी बुद्धि फिर कभी नहीं सिखोगे' ।।१२६।। (ऐसा कह कर) प्रभु विश्वम्भर ने मुरारि को गोद में लेकर उसका हाथ उठा अपने सिर पर रक्खा ।। १२७ ।। (और कहने लगे) 'मेरे सिर की कसम है तुम्हें गुप्त! मेरे सिर की कसम है, जो तुम फिर कभी देह छोड़ने की इच्छा करो' ।। १२८ । हड़बड़ा कर मुरारि पृथ्वी पर गिर पड़ा और प्रभु के श्री चरणों को प्रेम-जल से धोने लगा ।। १२९ ।। सुकृतिशाली मुरारि श्री चरणों को पकड़ कर रो रहे हैं, और श्री शचीनन्दन गुप्त

जे प्रसाद मुरारि गुप्तेरे प्रभु करे। ताहा वाञ्छे रमा-अज-अनन्त-शङ्करे ॥१३१॥
ए सब देवता-चैतन्येर भिन्न नहे। इहारा अभिन्न-कृष्ण-वेदे एइ कहे ॥१३२॥
सेइ गौरचन्द्र शेष-रूपे मही धरे। चतुर्मुख रूपे सेइ प्रभु सृष्टि करे ॥१३३॥
संहारे' ओ गौरचन्द्र त्रिलोचन-रूपे। आपनारे स्तुति करे आपनार मुखे ॥१३४॥
भिन्न नाहि भेद नाहि ए सकल देवे। जे सकल देवे चैतन्येर पद सेवे ॥१३५॥
पक्षि-मात्र यदि बोले चैतन्येर नाम। सेहो सत्य जाइ वेक चैतन्येर धाम ॥१३६॥
संन्यासी ओ यदि नाहि माने' गौरचन्द्र। जानिह से दुष्ट गण जन्म जन्म अन्ध ॥१३७॥
"यद्यपिह ए सब प्रभुर गुप्त दास। तथापि गुप्तेर भाग्ये सभाकार आश ॥१३८॥
प्रभु हइ चाहे जे दासेर उप भोग। ताहाते नाहिक लाभ एइ भक्ति योग" ॥१३९॥
येन तपस्वीर वेशे थाके बाटो यार। एइ मत निन्दक-संन्यासी दुराचार ॥१४०॥
निन्दक-तपस्वी बाटो यारे नाहि भेद। दुइते निन्दक-बड़—एइ कहे वेद ॥१४१॥
( तथाहि नारदीये )—"प्रकटं पतितः श्रेयान् य एकोयात्यधः स्वयम्।
बकवृत्तिः स्वयं पापः पातयत्यपरानपि ॥१॥
हरन्ति दस्यवोऽकुट्यां विमोह्यास्त्रैर्नृणां धनम्। पवित्रै रतितीक्ष्णाग्रैर्वाणैरेवं वकव्रताः" ॥२॥
भालरे आइसे लोक तपस्वी देखिते। साधु निन्दा शुनि मरि जाय भाल मते ॥१४२॥
साधु निन्दा शुनिले सुकृति हय क्षय। जन्म जन्म अधः पात—चारि वेदे कय ॥१४३॥
बाटोयारे सबे मात्र एक जन्मे मारे। जन्मे जन्मे क्षणे क्षणे निन्दके संहरे' ॥१४४॥

---

को गोद में लेकर रो रहे हैं ॥ १३० ॥ जो कृपा प्रभु मुरारि गुप्त के ऊपर करते हैं उसकी लालसा लक्ष्मी, ब्रह्मा, शेष, और शङ्कर भी करते हैं ॥ १३१ ॥ ये सब देवता श्री चैतन्य से भिन्न नहीं हैं। वेद यही कहते हैं कि ये श्रीकृष्ण से अभिन्न हैं ॥ १३२ ॥ वे ही श्री गौरचन्द्र शेष रूप से पृथ्वी को धारण करते हैं, वे ही प्रभु ब्रह्मा रूप से सृष्टि करते हैं ॥ १३३ ॥ श्री गौरचन्द्र ही त्रिलोचन शिव रूप से संहार करते हैं। वे ही अपने मुख से अपनी स्तुति करते हैं ॥ १३४ ॥ जो सब देवता श्री गौरचन्द्र की सेवा करते हैं वे गौरचन्द्र से भिन्न नहीं हैं, और उनमें भेद नहीं है ॥ १३५ ॥ यदि एक पक्षी भी श्री चैतन्य का नाम मात्र लेवे तो यह सत्य है कि वह श्री चैतन्य के धाम को जायगा ॥ १३६ ॥ (और) यदि संन्यासी भी श्री गौरचन्द्र को नहीं मानते हैं तो उन दुष्टों को जन्म २ के अन्धे जानो ॥ १३७ ॥ अधिक पाठः—यद्यपि ये सब प्रभु के दास हैं तथापि गुप्त के भाग्य की अभिलाषा सब कोई करते हैं ॥ १३८ ॥ प्रभुता में लाभ नहीं है, अतएव वे प्रभु होकर के भी दास का आस्वादन चाहते हैं—यही भक्तियोग है ॥ १३९ ॥ जैसे तपस्वी के वेश में बटमार रहते हैं, वैसे ही निन्दक संन्यासी भी दुराचारी हैं ॥ १४० ॥ निन्दक तपस्वी और बटमार में भेद नहीं है तो भी दोनों में निन्दक ही बड़ा है यही वेद कहता है ॥ १४१ ॥ जैसा श्री नारद पुराण में कहा है कि—'जो प्रकट में पतित है वह अच्छा क्योंकि वह आप अकेला ही गिरता है परन्तु ढोंगी बगला तपस्वी तो पाप मूर्त्ति है, वह औरों को भी गिराता है ॥ १ ॥ जैसे डाकू लोग वन में अस्त्रों से मूर्च्छित करके लोगों के धन को लूट लेते हैं, ऐसे ही बगला भगत भी अपने दिखावटी पवित्र चरित्र के नुकीले वाणों से लोगों को मूर्च्छित करके उनका सर्वस्व हरण कर लेते हैं ॥ २ ॥ लोग तो बिचारे तपस्वी के दर्शन को आते हैं परन्तु साधु जनों की निन्दा सुन कर समाप्त हो जाते हैं ॥ ४२ ॥ साधु की निन्दा सुनने से सुकृति क्षय होती है और जन्म २ के लिए अधःपतन होता है ऐसा चारों वेद कहते हैं ॥ १४३ ॥ बटमार तो केवल एक जन्म में ही मारता है परन्तु

# अथ इक्कीसवाँ अध्याय

जय जय नित्यानन्द प्राण विश्वम्भर। जय गदाधर पति अद्वैत-ईश्वर ॥१॥
जय श्रीनिवास-हरिदास-प्रियङ्कर। जय गङ्गादास-वासुदेवेर ईश्वर ॥२॥
भक्त गोष्ठी-सहित गौराङ्ग जय जय। शुनिले चैतन्य कथा भक्ति लभ्य हय ॥३॥
हेन मते नवद्वीपे प्रभु विश्वम्भर। विहरे संहति नित्यानन्द गदाधर ॥४॥
एक दिन प्रभु करे नगर भ्रमण। चारि दिगे जत आप्त-भागवत गण ॥५॥
सार्वभौम पिता-विशारद महेश्वर। ताँहार जाङ्गाले गेला प्रभु विश्वम्भर ॥६॥
सेइ खाने देवानन्द पण्डितेर वास। परम सुशान्त विप्र मोक्ष-अभिलाष ॥७॥
ज्ञान वन्त तपस्वी आजन्म-उदासीन। भागवत पढ़ाय-तथापि भक्ति हीन ॥८॥
'भागवते महा-अध्यापक' लोके घोषे'। मर्म-अर्थना जानेन भक्ति हीन दोषे ॥९॥
जानिवार योग्यता आछये पुनि तान। कोन अपराधे नहे, कृष्ण से प्रमाण ॥१०॥
दैवे प्रभु भक्त सङ्गे सेइ पथे जाय। जे खाने ते तान व्याख्या शुनिवारे पाय ॥११॥
सर्व भूत हृदय-जानये सर्व तत्त्व। ना शुनये व्याख्या भक्ति योगेर महत्त्व ॥१२॥
कोपे बोले प्रभु 'बेटा कि अर्थ वाखाने'। भागवत-अर्थ कोन-जन्मेओ ना जाने ॥१३॥
ए-बेटार भागवते कोन् अधिकार। ग्रन्थ रूपे भागवत कृष्ण-अवतार ॥१४॥
सर्वे पुरुषार्थ 'भक्ति' भागवते हय। 'प्रेम रूप भागवत' चारि-वेद मय ॥१५॥

---

हे श्री नित्यानन्द प्राण श्री विश्वम्भर देव ! आपकी जय हो, जय हो। हे गदाधर पति ! हे श्री अद्वैत के ईश्वर ! आपकी जय हो ॥ १ ॥ हे श्री निवास और हरिदास के प्रियकारी ! आपकी जय हो। हे हे श्री गङ्गादास और वासुदेव के ईश्वर ! आपकी जय हो ॥ २ ॥ भक्त मण्डली सहित हे श्री गौरांगदेव ! आपकी जय हो, जय हो। श्री चैतन्यचन्द्र की कथा सुनने से भक्ति लाभ होती है ॥ ३ ॥ इस प्रकार नवद्वीप में विश्वम्भर प्रभु श्री नित्यानन्द और गदाधर के सहित विहार कर रहे हैं ॥ ४ ॥ एक दिन प्रभु नगर में भ्रमण कर रहे हैं। चारों ओर सब आत्मीय भक्तजन हैं ॥ ५ ॥ भ्रमण करते २ प्रभु विश्वम्भर सार्वभौम के पिता श्री विशारद महेश्वर के मोहल्ले में पहुँच गये ॥ ६ ॥ वहीं देवानन्द पण्डित का घर था। वे बड़े ही शान्त मोक्षाभिलाषी विप्र थे ॥ ७ ॥ वे ज्ञानवान् थे, तपस्वी थे, जन्म से उदासीन थे, वे भागवत् पढ़ाते थे तथापि स्वयं भक्ति हीन थे ॥८॥ लोग उनको भागवत् का महान् अध्यापक कहते थे, परन्तु भक्ति-हीनता दोष के कारण वे भागवत के मर्म को नहीं जानते थे ॥ ९ ॥ जानने की योग्यता तो उनमें थी परन्तु किस अपराध से वे जान नहीं पाते थे यह श्रीकृष्ण ही जानें ॥ १० ॥ दैवयोग से प्रभु भक्तों के साथ उसी मार्ग से जा निकले कि जहाँ से उनको व्याख्या सुनने में आती थी ॥ ११ ॥ सब प्राणियों के हृदय निवासी प्रभु सब तत्त्व जानते हैं। वे देवानन्द पण्डित की व्याख्या में भक्तियोग का महत्त्व नहीं सुन पाते हैं ॥ १२ ॥ तब प्रभु कोप करके बोले "यह बेटा क्या अर्थ बखान रहा है ! इसने भागवत् का अर्थ किसी जन्म में भी न जाना ॥ १३ ॥ इस बेटे का भागवत् में भला क्या अधिकार है ? श्री मद् भागवत् तो ग्रन्थ के रूप में श्रीकृष्ण का अवतार है ॥ १४ ॥ भागवत् में केवल भक्ति ही एक मात्र पुरुषार्थ है। भागवत् प्रेम रूप है, चतुर्वेदमय

चारि वेद 'दधि'—भागवत 'नवनीत'। मथिलेन शुके—खाइलेन परीक्षित ॥१६॥
मोर प्रिय शुक से जानेन भागवत। भागवते कहे मोर तत्त्व अभिमत ॥१७॥
मुञि, मोर दास, आर ग्रन्थ-भागवते। जार भेद आछे, तार नाश भाल मते" ॥१८॥
भागवत-तत्त्व प्रभु कहे क्रोधा वेशे। शुनिञा वैष्णव गण महानन्दे भासे ॥१९॥
"भक्ति विने भागवते जे आर बाखाने"। प्रभु बोले 'से अधम किछुइ ना जाने ॥२०॥
निरवधि भक्ति हीन ए-बेटा बाखाने'। आजि पूँथि चिरों एइ देख विद्यमाने" ॥२१॥
पूँथि चिरिबारे प्रभु क्रोधावेशे जाय। सकल वैष्णव गण धरिया रहाय ॥२२॥
'महाचिन्त्य भागवत सर्व शास्त्र राय। इहा ना बुझिये विद्या-तप-प्रतिष्ठाय ॥२३॥
'भागवत बुझि' हेन जार आछे ज्ञान। से ना जाने कभु भागवतेर प्रमाण ॥२४॥
भागवते अचिन्त्य-ईश्वर-बुद्धि जार। से जानये भागवत-अर्थ भक्ति सार ॥२५॥
सर्व गुणे देवानन्द पण्डित-समान। पाइते विरल बड़ हेन ज्ञान वान् ॥२६॥
से-सब लोकेर जाते भागवते भ्रम। ताते जे अन्येर गर्व, तार शास्ता यम। २७॥
भागवत पढ़ाइया कारो बुद्धि नाश। निन्दे' अवधूत चान्द जगत् निवास ॥२८॥
एइ मत प्रति दिन प्रभु विश्वम्भर। भ्रमये नगर सब सङ्गे अनुचर ॥२९॥
एक दिन ठाकुर पण्डित सङ्गे करि। नगर भ्रमण करे विश्वम्भर हरि ॥३०॥
नगरेर अन्ते आछे मद्यपेर घर। जाइते पाइला गन्ध प्रभु विश्वम्भर ॥३१॥
मद्य गन्धे वारुणीर हइल स्मरण। वलराम-भाव हैला शचीरनन्दन ॥३२॥

है ॥ १५ ॥ चारों वेद 'दधि' है, और भागवत् उसका 'नवनीत' है। इसे शुकदेव ने मथ करके निकाला और परीक्षित ने खाया। १६ ॥ मेरा प्यारा शुकदेव ही भागवत् को जानता है और मेरे हार्द तत्त्व को ही भागवत बखानता है ॥ १७ ॥ मुझ में, मेरे दास में, और भागवत् ग्रन्थ में जो भेद करता है, उसका सब प्रकार से नाश हो जाता है ॥ १८ ॥ इस प्रकार प्रभु क्रोध में भरे हुए भागवत् तत्त्व बखान रहे हैं, जिसे सुन २ कर वैष्णव गण महानन्द में बह रहे हैं ॥ १९ ॥ प्रभु फिर बोले "भागवत् में भक्ति के अतिरिक्त जो और कुछ बखानता है वह अधम कुछ भी नहीं जानता है ॥ २० ॥ "यह बेटा तो निरन्तर भक्ति हीन व्याख्या करता जा रहा है। आज मैं इसकी पोथी फाड़ डालूँगा तुम लोग प्रत्यक्ष देख लो" ॥ २१ ॥ क्रोधावेश में प्रभु गौरचन्द्र पोथी फाड़ने के लिये चले तो सब वैष्णवों ने पकड़ करके रोक लिया ॥ २२ ॥ प्रभु फिर बोले—"भागवत् परम अचिन्त्य है, सब शास्त्रों का राजा है। इसको विद्या एवं तप की प्रतिष्ठा से नहीं समझा जा सकता ॥ २३ ॥ जो यह समझता है कि "मैं भागवत जानता हूँ"—वह भागवत के प्रमाण को नहीं जानता है ॥ २४ ॥ "भागवत् में जिसकी अचिन्त्य ईश्वर बुद्धि है, वह भागवत् का अर्थ जो भक्ति सार है, उसे जानता है" ॥ २५ ॥ सब गुणों में देवानन्द पण्डित के समान ज्ञानवान कोई विरला ही मिलेगा ॥ २६ ॥ ऐसे ( देवानन्द जैसे ) भी लोगों का जब भागवत् के विषय में भ्रम है तो फिर औरों का जो भागवत जानने का गर्व है ( वह दण्डनीय है ) उनके दण्ड दाता यमराज हैं ॥ २७ ॥ भागवत् पढ़-पढ़ा करके भी किसी २ की बुद्धि नष्ट हो गई है जो वे जगन्निवास श्रीअवधूत चन्द्र की निन्दा करते हैं ॥ २८ ॥ इस प्रकार प्रति दिन प्रभु विश्वम्भर सब अनुचरों के सहित नगर में भ्रमण किया करते है ॥ २९ ॥ एक दिन विश्वम्भर हरि श्रीवास पण्डित को साथ लेकर नगर-भ्रमण कर रहे हैं ॥ ३० ॥ नगर की सीमा पर शराबियों के घर थे—उधर निकलते ही प्रभु विश्वम्भर को गन्ध आई ॥ ३१ ॥ मदिरा के गन्ध से वारुणी

बाह्य पासरिया प्रभु करये हुङ्कार। "उठों गिया" श्रीवासेरे बोले बार-बार ।।३३।।
प्रभु बोले "श्रीनिवास ! एइ उठों गिया"। माना करे श्रीनिवास चरणे धरिया ।।३४।।
प्रभु बोले "मोरेओ कि विधि प्रतिषेध"। तथापिह श्रीनिवास करये निषेध ।।३५।।
श्रीनिवास बोले "तुमि जगतेर पिता। तुमि क्षय करिते वा के आर रक्षिता ।।३६।।
ना बुझि तोमार लीला निन्दिव ये जन। जन्मे जन्मे दुःखे तार हइव मरण ।।३७।।
नित्य धर्ममय तुमि प्रभु सनातन। ए लीला तोमार बुझिवेक कोन जन ।।३८।।
यदि तुमि उठ प्रभु ! मद्यपेर घरे। प्रविष्ट हइमु मुञि गङ्गार भितरे" ।।३९।।
भक्तेर सङ्कल्प प्रभु ना करे लङ्घन। हासे प्रभु श्रीवासेर शुनिञा वचन ।।४०।।
प्रभु बोले "तोमार नाहिक जाते इच्छा। ना उठिव तोर वाक्य ना करिव मिछा" ।।४१।।
श्रीवास वचने सम्वरिया राम-भाव। धीरे धीरे राज पथे चले महा भाग ।।४२।।
मद्य पाने-मत्त-सब ठाकुरे देखिया। 'हरि हरि' बोले सब डाकिया डाकिया ।।४३।।
केहो बोले "भाल भाल निमाञि पण्डित। भाल भाव लागे भाल लागे नाट गीत" ।।४४।।
'हरि' बलि हाथे तालि दिया केहो नाचे। उल्लासे मद्यप गण आय तान पाछे ।।४५।।
महा-हरि-ध्वनि करे मद्यपेर गणे। एइ मत हय विष्णु-वैष्णव-दर्शने ।।४६।।
मद्यपेर चेष्टा देखि विश्वम्भर हासे। आनन्दे श्रीवास कान्दे देखि परकाशे ।।४७।।
मद्यपेओ सुख पाय चैतन्य देखिया। एकले निन्दये पापी संन्यासी हइया ।।४८।।

---

( पुष्प-मद ) का स्मरण हो आया तथा श्रीशचीनन्दन में बलराम भाव का आवेश हो आया ।। ३२ ।। प्रभु बाहर की सुध बुध भूल कर हुँकार करने लगे और बार २ श्रीवास से कहने लगे—"मैं तो भीतर जाता हूँ" ।। ३३ ।। प्रभु बोले—"श्रीवास ! मैं तो यह चला भीतर !" श्रीनिवास चरण पकड़ कर निवारण करने लगे ।। ३४ ।। प्रभु बोले—"क्या मेरे लिए भी विधि-निषेध ?" तथापि श्रीनिवास निषेध ही करते रहे ।। ३५ ।। श्रीनिवास बोले—"हे प्रभो ! तुम जगत् के पिता हो। तुम यदि मारो तो बचा कौन सकता है ।। ३६ ।। तुम्हारी लीला न समझ कर जो लोग निन्दा करेंगे, वे जन्म २ में दुःख भोग कर मरेंगे ।। ३७ ।। तुम प्रभु हो, सनातन हो, नित्य धर्ममय हो। तुम्हारी इस लीला ( मदिरा पानेच्छा ) को कौन समझेगा ? ।।३८।। यदि तुम प्रभो ! शराबियों के घर में घुसोगे, तो मैं भी जाकर गङ्गा में घुसूँगा" ।। ३९ ।। भक्त के संकल्प का प्रभु कभी उल्लंघन नहीं करते। ( अतएव ) प्रभु श्रीवास के वचन को सुनकर हँसने लगे ।। ४० ।। प्रभु बोले—"तुम्हारी जिसमें इच्छा नहीं है, वह मैं नहीं करूँगा, नहीं जाऊँगा। तुम्हारा वचन मिथ्या नहीं करूँगा" ।। ४१ ।। श्रीवास जी के वचनों से श्रीबलराम जी के भाव को दबा करके महा भाग गौर धीरे धीरे राजपथ पर चलने लगे ।। ४२ ।। महाप्रभु को देखकर मदिरा पीकर मतवाले बने हुए लोग सब पुकार २ कर "हरि २" कहने लगे ।। ४३ ।। कोई कहता है—"निमाइ पण्डित ? तुम बड़े अच्छे हो ! तुम्हारा भाव हमें अच्छा लगता है। तुम्हारा नाचना-गाना भी अच्छा लगता है" ।। ४४ ।। कोई "हरि बोल" कह कर हाथ से ताली बजाते हुए नाचने लगा और शराबी लोग मस्त होकर उसके पीछे पीछे चलने लगे ।। ४५ ।। वे मतवाले सब बड़े जोर से 'हरि'-ध्वनि करने लगे श्री विष्णु और वैष्णवों के दर्शन से ऐसा ही होता है। ४६ ।। शराबियों की चेष्टाओं को देखकर विश्वम्भर प्रभु हँसते हैं और श्रीवास प्रभु का प्रकाश देखकर आनन्द में रोते हैं ।। ४७ ।। ( अहा ! ) शराबी भी श्रीचैतन्य चन्द्र को देखकर सुख पाते हैं, केवल एक पापी ही संन्यासी होकर के भी निन्दा करते हैं ।। ४८ ।। श्रीचैतन्य चन्द्र के यश से जिसको दुःख होता

चैतन्य चन्द्रेर यशे जार आछे दुःख। कोनो जन्मे आश्रमे नाहिक तार सुख ॥४९॥
जे देखिल चैतन्य चन्द्रेर अवतार। हउक मद्यप, तभु तारे नमस्कार ॥५०॥
मद्यपेरे शुभ दृष्टि करि विश्वम्भर। निजा वेशे भ्रमे प्रभु नगरे नगर ॥५१॥
कथो दूरे देखिया पण्डित-देवानन्द। महा क्रोधे किछु तारे बोले गौरचन्द्र ॥५२॥
"देवानन्द पण्डितेर श्रीवासेर स्थाने। पूर्व-अपराध आछे' ताहा हैल मने ॥५३॥
जे-समये नाहि किछु प्रभुर प्रकाश। प्रेम शून्य जगत्, दुःखित सब दास ॥५४॥
यदि वा पढ़ाय केहो गीता भागवत। तथापि ना शुने केहो भक्ति अभिमत ॥५५॥
से-समये देवानन्द परम-महान्त। लोके बड़ अपेक्षित परम-सुशान्त ॥५६॥
भागवत-अध्यापना करे निरन्तर। आकुमार संन्यासीर प्राय व्रत धर ॥५७॥
दैवे एक दिन तथा गेला श्रीनिवास। भागवत शुनिते करिया अभिलाष ॥५८॥
अक्षरे अक्षरे भागवत प्रेम मय। शुनिञा द्रविल श्रीनिवासेर हृदय ॥५९॥
भागवत शुनिञा कान्दये श्रीनिवास। महा भागवत विप्र छाड़े घन श्वास ॥६०॥
पापिष्ठ पढ़ुया बोले "हइल जञ्जाल। पढ़िते ना पाइ भाइ ! व्यर्थ जाय काल" ॥६१॥
सम्बरण नहे ? श्रीनिवासेर क्रन्दन। चैतन्येर प्रिय देह जगत पावन ॥६२॥
पापिष्ठ पढ़ुया सब जुगति करिया। बाहिरे एड़िल निञा श्रीवासे टानिञा ॥६३॥
देवानन्द पण्डितो ना कैल निवारण। गुरु यथा भक्ति शून्य, तथा शिष्य गण ॥६४॥
वाह्य पाइ दुःखे श्रीनिवास गेला घर। ताहा सब जाने अन्तर्यामि-विश्वम्भर ॥६५॥

---

है उसे किसी जन्म और किसी आश्रम में सुख नहीं मिलेगा ॥ ४९ ॥ जिसने श्रीचैतन्य चन्द्र के अवतार के दर्शन किये, वह चाहे शराबी ही हो, तो भी उसे नमस्कार है ॥ ५० ॥ शराबियों के ऊपर शुभ दृष्टि करके प्रभु विश्वम्भर अपने आवेश में मग्न नगर भर में भ्रमण करते फिरते हैं ॥ ५१ ॥ कुछ दूर पर पण्डित देवानन्द को देखकर गौरचन्द्र बड़े क्रोध में आकर उनसे कुछ कहने लगे ॥ ५२ ॥ देवानन्द पण्डित का श्रीवास के निकट पूर्व समय का जो एक अपराध था, वह प्रभु को स्मरण हो आया ॥ ५३ ॥ जिस समय प्रभु ने अपने ऐश्वर्य का प्रकाश नहीं किया था, यह जगत् प्रेम शून्य था, सब दास दुखी थे ॥ ५४ ॥ जिस समय यदि कोई गीता-भागवत पढ़ाता भी था तो भी किसी के मुख से यह सुनने में नहीं आता था कि इनका अभिप्राय भक्ति में ही है ॥ ५५ ॥ उस समय देवानन्द ही बड़े महन्त थे, बड़े शान्त थे—लोगों में इनकी बड़ी पूछ थी ॥ ५६ ॥ ये निरन्तर भागवत् पढ़ाया करते, और कुमार अवस्था से ही संन्यासी के समान व्रत-धारी थे ॥ ५७ ॥ दैव योग से एक दिन भागवत सुनने की अभिलाषा से श्रीवास उनके यहाँ गये ॥ ५८ ॥ भागवत् के अक्षर २ प्रेममय है—उसे सुनकर श्रीनिवास का हृदय द्रवीभूत हो गया ॥ ५९ ॥ महा भागवत विप्र श्रीनिवास भागवत सुनकर रोने और लम्बी २ साँस लेने लगे ॥ ६० ॥ ( यह देखकर ) पापी विद्यार्थी वृन्द बोले—"बड़ी आफत आई। इसके मारे भाइओ ? हम तो पढ़ नहीं पाते हैं। हमारा समय नष्ट हो रहा है" ॥ ६१ ॥ श्रीनिवास का रोना बन्द ही नहीं हो रहा था। श्रीनिवास श्रीचैतन्य चन्द्र की प्रिय देह हैं, जगत्-पावन हैं ॥ ६२ ॥ तब पापी विद्यार्थियों ने परामर्श करके श्रीवास को खींच कर बाहर डाल दिया ॥ ६३ ॥ देवानन्द पण्डित ने भी उनको निवारण नहीं किया। जैसे गुरु भक्ति शून्य है वैसे ही शिष्य-गण भी हैं ॥ ६४ ॥ वाह्य ज्ञान होने पर श्रीनिवास दुखित होकर घर चले गये। अन्तर्यामी प्रभु विश्वम्भर यह सब जानते हैं ॥ ६५ ॥ ( अतएव ) देवानन्द को देखते ही यह सब स्मरण हो आया और प्रभु शचीनन्दन

देवानन्द-दरशने हइल स्मरण। क्रोध मुखे बोले प्रभु शचीरनन्दन ॥६६॥
"अये अये देवानन्द! बलिये तोमारे। तुमि एबे भागवत पढ़ाओ सभारे ॥६७॥
जे श्रीवास देखिते गङ्गार मनोरथ। हेन-जन गेला शुनिबारे भागवत ॥६८॥
कोन् अपराधे तारे शिष्य हाथाइया। बाड़ीर बाहिरे तारे एड़िले टानिया ॥६९॥
भागवत शुनिते जे कान्दे कृष्ण रसे। टानिञा फेलिते से ताहार योग्य आइसे ॥७०॥
बुझिलाङ तुमि जे पढ़ाओ भागवत। कोनो-जन्मे ना जान' ग्रन्थेर अभिमत ॥७१॥
परिपूर्ण करिया जे-सब जने खाय। तबे बहिर्देश गिया से सन्तोष पाय ॥७२॥
प्रेम मय भागवत पढ़ाइया तुमि। तत सुख ना पाइला कहिलाङ आमि" ॥७३॥
शुनिञा वचन देवानन्द विप्रवर। लज्जाय रहिल, किछु ना करे उत्तर ॥७४॥
क्रोधावेशे बलिया चलिला विश्वम्भर। दुःखिते चलिला देवानन्द निज-घर ॥७५॥
तथापिह देवानन्द बड़ पुण्यवन्त। बचनेओ प्रभु जारे करिलेन दण्ड ॥७६॥
चैतन्येर दण्ड महा सुकृति से पाय। जार दण्डे मरिले वैकुण्ठ पुरी जाय ॥७७॥
चैतन्येर दण्ड जे मस्तके करि लय। सेइ दण्ड तार तरे भक्ति योग हय ॥७८॥
चैतन्येर दण्डे जार चित्ते नाहि भय। जन्म जन्म से पापिष्ठ यम दण्डय हय ॥७९॥
भागवत, तुलसी, गङ्गाय, भक्त जने। चतुर्द्धा-विग्रह कृष्ण एइ-चारि-सने ॥८०॥
जीवन्यास करिले से मूर्ति पूज्य हय। जन्म मात्र ए चारि ईश्वर' वेदे कय ॥८१॥
चैतन्य कथार आदि अन्त नाहि जानि। जे-ते-मते चैतन्येर यश से बाखानि ॥८२॥

क्रोधित होकर बोले ॥ ६६ ॥ "अरे ओ देवानन्द! तुम अब सबको भागवत पढ़ाने लगे हो, इसलिये मैं तुमसे कहता हूँ—सुनो ॥ ६७ ॥ "जिन श्रीवास के दर्शन के लिये गंगा जी भी मनोरथ करती हैं—ऐसा जन तुम्हारे यहाँ भागवत सुनने को गया था ॥ ६८ ॥ किस अपराध के कारण तुमने उनको अपने शिष्यों के हाथों खिचवा कर घर के बाहर डाल दिया था? ॥ ६९ ॥ "भागवत सुनने पर जो श्रीकृष्ण के भक्ति रस में रोवे, क्या वह खींचकर बाहर फेंके जाने योग्य है ॥ ७० ॥ मैं समझ गया कि तुम जो भागवत पढ़ाते हो उसका अभीष्ट मत किसी जन्म में भी नहीं जानते हो ॥ ७१ ॥ जब लोग खूब पेट भर करके ठूँस लेते हैं, तो बाहर जाकर निवृत्त होने पर ही उनको सुख-आराम मिलता है ॥ ७२ ॥ ( परन्तु ) प्रेममय भागवत को पढ़ाकर-मैं तुमसे कहता हूँ कि तुमको उतना सुख भी तो नहीं मिला !! ( अधिक प्रेम-सुख तो दूर रहे ) ॥ ७३ ॥ यह ( व्यंग ) वचन सुनकर विप्रवर देवानन्द तो पानी २ हो गया और कुछ उत्तर न दे सका ॥ ७४ ॥ क्रोधावेश में ऐसा कहकर श्रीविश्वम्भर देव तो चले गये और देवानन्द भी दुःखी होकर अपने घर गया ॥ ७५ ॥ तथापि देवानन्द बड़ा पुण्यवान् ही है कि जिसको प्रभु ने अपने वचनों से दण्ड दिया ॥ ७६ ॥ जिनके दण्ड से मृत्यु प्राप्त होने पर जीव वैकुण्ठ पुरी को जाता है उन श्रीचैतन्य चन्द्र के दण्ड को वे ही पाते हैं जो बड़े सुकृतिशाली होते हैं ॥ ७७ ॥ श्रीचैतन्य के दण्ड को जो अपने मस्तक पर चढ़ा लेता है, तो वही दण्ड उसके लिये भक्ति योग हो जाता है ॥ ७८ ॥ श्रीचैतन्य के दण्ड का जिसके चित्त में भय नहीं है, वह पापी जन्म जन्म तक यम के दण्ड का भागी बनता है ॥ ७९ ॥ श्रीभागवत, तुलसी, गंगा और भक्त जन—इन चार स्थानों में श्रीकृष्ण के ही चार प्रकार के विग्रह हैं ॥ ८० ॥ मूर्ति तो प्राण-प्रतिष्ठा से पूज्य होती है परन्तु ये चार तो जन्म से ही ईश्वर हैं—ऐसा वेद कहता है ॥ ८१ ॥ मैं श्रीचैतन्य-कथा का आदि-अन्त कुछ नहीं जानता हूँ मैं तो जैसे-तैसे श्रीचैतन्य देव के यश का बखान करता हूँ ॥ ८२ ॥ श्रीचैतन्य चन्द्र के

चैतन्य दासेर पा'ये मोर नमस्कार। इथे अपराध किछु नहुक आमार ॥८३॥
मध्य खण्ड कथा जेन अमृतेर खण्ड। जे कथा शुनिले घुचे अन्तर पाखण्ड ॥८४॥
चैतन्येर प्रिय-देह नित्यानन्द राय। प्रभु-भृत्य-सङ्गे जेन ना छाड़े आमाय ॥८५॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ॥८६॥

# अथ बाइसवाँ अध्याय

जय जय गौरचन्द्र कृपार सागर। जय शची-जगन्नाथ-नन्दन सुन्दर ॥१॥
जय जय विश्वम्भर द्विज कुल मणि। शचीर नन्दन प्रभु करुणार खनि ॥२॥
जय जय शची सुत श्रीकृष्ण चैतन्य। कृष्ण नाम दिया प्रभु जगत् केला धन्य ॥३॥
हेन मते नवद्वीपे प्रभु विश्वम्भर। विहरे संहति नित्यानन्द गदाधर ॥४॥
वाक्य दण्ड देवानन्द पण्डितेरे करि। आइला आपन-घरे गौराङ्ग श्रीहरि ॥५॥
देवानन्द पण्डित चलिला निज-वासे। दुःख पाइलेन विप्र दुष्ट-सङ्ग-दोषे ॥६॥
देवानन्द-हेन साधु चैतन्येर ठांइ। सम्मुख हैते योग्य नहिल तथाइ ॥७॥
वैष्णवेर कृपाय से पाइ विश्वम्भर। भक्ति विने जप तप अकिञ्चित्कर ॥८॥
वैष्णवेर ठाञि जार हय अपराध। कृष्ण प्रेम हइलेओ तार प्रेम-बाध ॥९॥
आमि नाहि बलि—एइ वेदेर वचन। साक्षातेओ कहियाछे शचीरनन्दन ॥१०॥
जे शचीर गर्भे गौरचन्द्र-अवतार। वैष्णवापराध पूर्वे आछिल ताँहार ॥११॥

---

भक्तों के चरणों में मेरा नमस्कार है—वे इसमें मेरा कुछ अपराध न मानें ॥ ८३ ॥ मध्य खण्ड की कथा मानो तो अमृत का खण्ड है, जिस कथा के श्रवण से अन्तस् का पाखण्ड दूर होता है ॥ ८४ ॥ श्रीनित्यानन्द राय श्रीचैतन्य चन्द्र की प्रिय देह हैं। ( मेरी यही प्रार्थना है कि ) प्रभु और सेवक के संग से मैं कभी अलग न होऊँ ॥ ८५ ॥ श्रीकृष्ण चैतन्य और श्रीनित्यानन्द चाँद को अपना सर्वस्व जानकर वृन्दावन दास उनके ही युगल चरणों में उनका ही कुछ गुण-गान निवेदन करता है ॥ ८६ ॥

इति—देवानन्द-वाक्य-दण्ड-नामक इक्कीसवाँ अध्याय ॥

हे कृपा-सागर गौरचन्द्र ! आपकी जय हो, जय हो ! हे शची-जगन्नाथ-नन्दन गौर सुन्दर ! आपकी जय हो ॥ १ ॥ हे द्विज कुल मणि विश्वम्भर ! आपकी जय हो, जय हो। हे करुणा-खानि शचीनन्दन प्रभो ! आपकी जय हो ॥ २ ॥ हे श्रीशची सुत श्रीकृष्ण चैतन्य ! आपकी जय हो, जय हो। आप ने कृष्ण नाम प्रदान करके जगत् को धन्य कर दिया ॥ ३ ॥ इस प्रकार नवद्वीप में प्रभु विश्वम्भर श्रीनित्यानन्द और श्री गदाधर के साथ विहार करते हैं ॥ ४ ॥ गौरांग श्रीहरि देवानन्द पण्डित को वाक्य-दण्ड देकर अपने घर आये ॥ ५ ॥ देवानन्द पण्डित भी अपने घर को गये, दुष्ट-संग दोष के कारण इस ब्राह्मण को ( प्रभु के वचनों से ) बड़ा दुःख हुआ ॥ ६ ॥ देवानन्द जैसा साधु व्यक्ति भी श्रीचैतन्य देव के स्थान में ( जाकर ) उनके सम्मुख होने योग्य न हुआ ॥ ७ ॥ ( कारण कि ) वैष्णवों की कृपा से ही विश्वम्भर प्राप्त होते हैं। भक्ति के बिना केवल जप तप कुछ भी नहीं कर सकते ॥ ८ ॥ वैष्णवों के निकट जिसका अपराध होता है, उसमें श्रीकृष्ण-प्रेम होने पर भी उस प्रेम में बाधा पड़ जाती है ॥ ९ ॥ यह मैं नहीं कहता—यही वेद का वचन है। और श्रीशची नन्दन ने भी साक्षात् अपने मुख से यही कहा है ॥ १० ॥ जिन श्रीशची के गर्भ में

आपने से अपराध प्रभु घुचाइया । मा'येरे दिलेन प्रेम सभा' शिखाइया ॥१२॥
ए बड़ अद्भुत कथा शुन सावधाने । वैष्णवापराध घूचे इहार श्रवणे ॥१३॥
एक दिन महाप्रभु गौराङ्ग सुन्दर । आसिया वसिला विष्णु खट्टार उपर ॥१४॥
निज मूर्त्ति शिला-सब करि निज-कोले । आपना प्रकाशे गौरचन्द्र कुतूहले ॥१५॥
"मुञि कलियुगे कृष्ण, मुञि नारायण । मुञि राम रूपे कैलुँ सागर बन्धन ॥१६॥
सुतिया आछिलुँ क्षीर सागर-भितरे । मोर निद्रा भाङ्गिलेक नाढ़ार हुङ्कारे ॥१७॥
प्रेम भक्ति विलाइते मोहोर प्रकाश । माग' माग' आरे नाढ़ा ! माग' श्रीनिवास" ॥१८॥
देखि महा परकाश नित्यानन्द राय । ततक्षणे तुलि छत्र धरिला माथाय ॥१९॥
वाम दिगे गदाधर ताम्बूल जोगाय । चार दिगे भक्त गण चामर ढुलाय ॥२०॥
भक्ति योग विलाय गौराङ्ग महेश्वर । जाहार जाहाते प्रीत लय सेइ वर ॥२१॥
केहो बोले "मोर बाप बड़ दुष्ट मति । तार चित्त भाल हैले मोर अव्याहति" ॥२२॥
केहो मागे' गुरु प्रति, केहो शिष्य प्रति । केहो पुत्र, केहो पत्नी-जार जथा मति ॥२३॥
भक्त-वाक्य-सत्यकारी प्रभु विश्वम्भर । हासिया सभारे दिला प्रेम भक्ति-वर ॥२४॥
महाशय श्रीनिवास बोलेन "गोसाञि । आइरे देयाव भक्ति सभे एइ ठाञि" ॥२५॥
प्रभु बोले "इहा ना बलिबा श्रीनिवास । ताँरे नाहि दिमुँ प्रेम भक्तिर विलास ॥२६॥
वैष्णवेर ठाञि तान आछे अपराध । अतएव तान हैल प्रेम भक्ति बाध" ॥२७॥
महा वक्ता श्रीनिवास बोले आर बार । "ए कथाय प्रभु ! देह त्याग सभाकार ॥२८॥

---

से श्रीगौरचन्द्र का अवतार है, उनका भी पहले वैष्णव-अपराध रहा ॥ ११ ॥ प्रभु ने स्वयं उस अपराध को दूर करवा कर माता को प्रेम प्रदान किया और सबको शिक्षा दी ॥ १२ ॥ यह बड़ी अद्भुत कथा है सावधान होकर सुनो । इसके श्रवण से वैष्णवापराध मिट जाता है ॥ १३ ॥ एक दिन महाप्रभु गौरांग सुन्दर आकर विष्णु-सिंहासन पर बैठ गये ॥ १४ ॥ अपनी मूर्त्ति शालि ग्राम शिलाओं को अपनी गोद में लेकर श्रीगौरचन्द्र परम कौतूहल पूर्वक अपने स्वरूप को प्रकाशित करने लगे ॥ १५ ॥ ( यथा:- ) "मैं ही कलियुग में कृष्ण हूँ, मैं ही नारायण हूँ । मैंने ही राम रूप से सागर के ऊपर सेतु बन्धन किया था ॥१६॥ मैं क्षीर सागर में सो रहा था परन्तु नाढा के हुँकार से मेरी नींद टूट गई ॥ १७ ॥ प्रेम भक्ति वितरण करने के लिए ही मेरा प्रकाश है । अरे नाढा ! माँग, माँग ! श्रीनिवास ! माँग ले ॥ १८ ॥ प्रभु का महा प्रकाश देखकर श्रीनित्यानन्द राय ने तुरन्त छत्र उठाकर उनके मस्तक के ऊपर धारण किया ॥ १९ ॥ बाईं ओर से श्रीगदाधर ताम्बूल अर्पण करते हैं और भक्त वृन्द चारों ओर से चँवर ढुलाते हैं ॥ २० ॥ महेश्वर श्रीगौरांग भक्ति योग लुटाने लगे जिसकी जिसमें प्रीति है, वह वही वर माँग लेता है ॥ २१ ॥ कोई कहता है—"मेरे बाप की बड़ी दुष्ट मति है । उनकी मति सुधर जाय तो मेरी रक्षा हो जाय" ॥२२॥ ( इस प्रकार ) कोई गुरु के लिये, कोई शिष्य के लिये, कोई पुत्र के लिये, कोई पत्नी के लिये—जिसकी जैसी मति, वैसा वर माँगते हैं ॥ २३ ॥ प्रभु विश्वम्भर भक्तों के वचनों को सत्य करने वाले हैं—अतएव उन्होंने हँस २ कर सबको प्रेम भक्ति का वरदान दिया ॥ २४ ॥ महाशय श्रीनिवास कहते हैं "हे प्रभो ! शची माता को भी आज इस स्थान पर प्रेम भक्ति देनी चाहिये" ॥ २५ ॥ प्रभु बोले—"श्रीनिवास ! ऐसा मत कहो । मैं प्रेम भक्ति का विलास उनको नहीं दूँगा ॥ २६ ॥ "वैष्णव के निकट उनका अपराध है । अतएव उनके लिये प्रेम भक्ति का निषेध है अर्थात् वह नहीं मिल सकती" ॥ २७ ॥ श्रीनिवास जी बड़े

तुमि-हेन पुत्र जाँर गर्भे अवतार। ताँर कि नहिव प्रेम योगे अधिकार ॥२९॥
सभार जीवन आइ-जगतेर माता। माया छाड़ि प्रभु ! ताने हओ भक्ति दाता ॥३०॥
तुमि जाँर पुत्र प्रभु ! से सर्व जननी। पुत्र स्थाने मा'येर कि अपराध गणि ॥३१॥
यदि वा वैष्णव स्थाने थाके अपराध। तथापिह खण्डाइया करह प्रसाद" ॥३२॥
प्रभु बोले "उपदेश कहिते से पारि। वैष्णवापराध आमि खण्डाइते नारि ॥३३॥
जे-वैष्णव-स्थाने अपराध हय जार। पुन सेइ क्षमिले से घुचे, नारे आर ॥३४॥
दुर्वासार अपराध अम्बरीष-स्थाने। तुमि देख जान' क्षय हइल जे मने ॥३५॥
नाढ़ार स्थानेते आछे तान अपराध। नाढ़ा क्षमिले से हय प्रेमेर प्रसाद ॥३६॥
अद्वैत-चरण-धूलि लइले माथाय। हइवेक प्रेम भक्ति आमार आज्ञाय" ॥३७॥
तखने चलिला सभे अद्वैतेर स्थाने। अद्वैतेरे कहिलेन सब विवरणे ॥३८॥
शुनिञा अद्वैत करे श्रीविष्णु-स्मरण। "तोमरा लइते चाह आमार जीवन ॥३९॥
जाँर गर्भ मोहोर प्रभुर अवतार। से मोर जननी, मुञि पुत्र से ताँहार ॥४०॥
जे आइर चरण धूलिर आमि पात्र। से आइर प्रभाव ना जाने' तिल-मात्र ॥४१॥
विष्णु भक्ति स्वरूपिणी आइ जगन्माता। तोमरा वा मुखे केने आन' हेन कथा ॥४२॥
प्राकृत शब्देओ जे वा बलिवेक 'आइ। 'आइ'-शब्द प्रभावे ताहार दुःख नाइ ॥४३॥
जेन गङ्गा तेन आइ, किछु भेद नाइ। देवकी यशोदा जेइ वस्तु-से-इ आइ" ॥४४॥

भारी वक्ता हैं। वे फिर बोले-"हे प्रभो ! आपकी इस बात से तो हमारा देह-त्याग होगा ॥ २८ ॥ "भला जिनके गर्भ से आप जैसे पुत्र का अवतार हो, उनका प्रेम भक्ति में क्या अधिकार नहीं ? ॥ २९ ॥ श्रीशची माता सबकी जीवन हैं, जगत् की माता हैं। हे प्रभो ! आप कपट त्याग कर उनके लिये भी भक्ति दाता बनें ॥ ३० ॥ "आप जिनके पुत्र हैं, वे तो सबकी जननी हैं। पुत्र के निकट माता का क्या कोई अपराध गिना जाता है ॥ ३१ ॥ यदि उनका किसी वैष्णव के निकट कोई अपराध हो तो भी आप उसका खण्डन कर उन पर कृपा करें ॥ ३२ ॥ प्रभु बोले-"मैं केवल ( उपाय का ) उपदेश ही दे सकता हूँ पर वैष्णवापराध का खण्डन मैं भी नहीं कर सकता ॥ ३३ ॥ जिस वैष्णव के निकट जिसका अपराध होता है, वह उसी के क्षमा करने पर दूर होता है, औरों से नहीं होता ॥ ३४ ॥ "देखो, दुर्वासा का अपराध राजा अम्बरीष के निकट था। उसका जैसे क्षय हुआ वह तो तुम जानते ही हो ॥ ३५ ॥ उनका ( शची माता का ) अपराध नाढा ( श्री अद्वैत ) के निकट है। उसी नाढा के क्षमा करने पर उन्हें भी प्रेम का प्रसाद प्राप्त हो सकता है ॥ ३६ ॥ श्रीअद्वैत की चरण-धूलि मस्तक पर चढ़ाने से मेरी आज्ञा से उनको प्रेम भक्ति होगी" ॥३७॥ उसी समय सब लोग श्रीअद्वैत के पास गये और जाकर उनको सब वृत्तान्त सुनाया ॥ ३८ ॥ सुनते ही श्री अद्वैत "श्री विष्णु २" कहते हुए बोले-"तुम लोग मेरी जान लेना चाहते हो ॥ ३९ ॥ अरे ! जिनके गर्भ में से मेरे प्रभु का अवतार है, वे तो मेरी जननी हैं, मैं उनका पुत्र हूँ ॥ ४० ॥ "जिन अम्बा की चरण धूलि की मैं अभिलाषा करता हूँ, उन अम्बा का प्रभाव तो मैं तिल भर भी नहीं जानता ॥ ४१ ॥ जगन्माता शची तो विष्णु भक्ति स्वरूपिणी हैं। फिर तुम लोग मुख में ऐसी बात क्यों लाते हो ? ॥ ४२ ॥ प्राकृत भाषा में भी जो "आइ" (अम्मा) कहेंगे, तो उस "आइ" शब्द के प्रभाव से उसका दुःख नहीं रहेगा ॥४३॥ जैसी गंगाजी है, वैसी ही "आइ" है, कोई भेद नहीं है। श्री देवकी और यशोदा जी जो वस्तु हैं वही 'आइ' ॥ ४४ ॥ "आइ" का तत्व कहते २ आचार्य गुसाईं आविष्ट होकर गिर पड़े और बाह्य ज्ञान शून्य हो गये

कहिते आइर तत्त्व आचार्य गोसाञि। पड़िला आविष्ट हइ, बाह्य किछु नाञि ॥४५॥
बुझिया समय आइ आइला बाहिरे। आचार्य-चरण धूलि लइलेन शिरे ॥४६॥
परम-वैष्णवी आइ-मूर्तिमती भक्ति। विश्वम्भर गर्भे धरिलेन जाँर शक्ति ॥४७॥
आचार्य-चरण धूलि लइला जखने। विह्वले पड़िला, किछु बाह्य नाहि जाने ॥४८॥
'जय जय हरि' बोले वैष्णव मण्डल। अन्योन्ये करये चैतन्य कोलाहल ॥४९॥
अद्वैतेर बाह्य नाहि—आइर प्रभावे। आइर नाहिक बाह्य-अद्वैतानुरागे ॥५०॥
दोंहार प्रभावे दोंहे हइला विह्वल। 'हरि हरि हरि' बोले वैष्णव सकल ॥५१॥
हासे प्रभु विश्वम्भर खट्टार उपरे। प्रसन्न हइया प्रभु बोले जननीरे ॥५२॥
"एखने से विष्णु-भक्ति हइल तोमार। अद्वैतेर स्थाने अपराध नाहि आर" ॥५३॥
श्रीमुखेर अनुग्रह शुनिञा वचन। जय जय-हरि ध्वनि हइल तखन ॥५४॥
जननीर लक्ष्ये शिक्षा गुरु भगवान्। करायेन वैष्णवापराध-सावधान ॥५५॥
शूलपाणि-सम यदि वैष्णवेरे निन्दे। तथापिह नाश जाय-कहे शास्त्र वृन्दे ॥५६॥
तथाहि—"महद्विमाना स्वकृताद्धि माहक्।
नश्यात्स्य दूरादपि शूल पाणिः" ॥१॥ अनुवाद पूर्व हो चुका है
इहा ना मानिञा जे सुजन-निन्दा करे। जन्म जन्म से पापिष्ठ दैव-दोषे मरे ॥५७॥
अन्येर कि दाय, गौरसिंहेर जननी। ताहानेओ वैष्णवापराध' करि गणि ॥५८॥
वस्तु-विचारेते सेहो 'अपराध' नहे। तथापिह 'अपराध' करि प्रभु कहे ॥५९॥
"इहाने 'अद्वैत' नाम केने लोके घोषे'। द्वैत बलिलेन आइ कोन असन्तोषे ॥६०॥

---

॥ ४५ ॥ "आइ" ने भी देखा कि यही समय है, और वे बाहर आईं और उन्होंने आचार्य की चरण-धूलि शीश पर चढ़ा ली ॥ ४६ ॥ "आइ" परम वैष्णवी हैं, मूर्त्तिमती भक्ति हैं, विश्वम्भर को गर्भ में धारण करने की जिनकी सामर्थ्य है ॥ ४७ ॥ जिस समय उन्होंने आचार्य की चरण धूलि ली, उस समय वे विह्वल हो गईं और भूमि पर गिर कर बेसुध हो गईं ॥ ४८ ॥ तब वैष्णव मण्डली "जय जय" "हरि बोल" "हरि बोल" कहने लगे और परस्पर श्रीचैतन्य सम्बन्धी कोलाहल करने लगे ॥ ४९ ॥ 'आइ' के प्रभाव से श्री अद्वैत को बाह्य ज्ञान नहीं है और श्रीअद्वैत के अनुराग में 'आइ' को बाह्य ज्ञान नहीं है ॥ ५० ॥ दोनों के प्रभाव से दोनों विह्वल हो रहे हैं और सब वैष्णव जन हरि ३ बोल रहे हैं ॥ ५१ ॥ सिंहासन पर विराजमान विश्वम्भर प्रभु हंसते हैं और प्रसन्न होकर जननी से कहते हैं ॥ ५२ ॥ "अब तुम्हें विष्णु भक्ति हुई। श्रीअद्वैत के निकट अब अपराध नहीं रहा" ॥ ५३ ॥ श्री मुख के इस अनुग्रह-वचन को सुनते ही फिर "जय जय" और "हरि २" ध्वनि होने लगी ॥ ५४ ॥ भगवान् शिक्षा गुरु-हैं। वे जननी को लक्ष्य करके वैष्णवापराध से सावधान करा रहे हैं ॥ ५५ ॥ शास्त्र समूह भी कहते हैं कि शूलपाणि शिवजी के समान भी यदि वैष्णवों की निन्दा करता है तो वह भी नाश हो जाता है ॥ ५६ ॥ ( जैसा कि इस शास्त्र वाक्य में पहले कह आये हैं ) इसको न मान कर जो सज्जनों की निन्दा करते हैं, वे पापी जन्म २ में अपने कर्मों के दोष से मरते हैं ॥ ५७ ॥ औरों की तो क्या चले, स्वयं गौरसिंह की जननी का भी वैष्णवापराध माना गया ॥ ५८ ॥ यद्यपि वास्तव में विचार करने पर वह अपराध नहीं है, तथापि प्रभु उसे 'अपराध' करके ही कहते हैं ॥ ५९ ॥ शची माता ने किसी कारण से असंतुष्ट होकर कहा था—"लोग इनको अद्वैत क्यों कहते हैं—इनको तो 'द्वैत' कहना चाहिये ॥ ६० ॥ अब मैं वही कथा कहता हूँ। सावधान होकर सुनो।

सेइ कथा कहि शुन हइ सावधान। प्रसङ्गे कहिये विश्वरूपेर आख्यान ॥६१॥
प्रभुर अग्रज-विश्वरूप महाशय। भुवन दुर्लभ रूप महा तेजोमय ॥६२॥
सर्व शास्त्रे महाप्रभु परम-सुधीर। नित्यानन्द स्वरूपेर अभेद शरीर ॥६३॥
तान कथा बुझे हेन नाहि नवद्वीपे। शिशु भावे थाके प्रभु बालक-समीपे ॥६४॥
एक दिन सभाय चलिला मिश्रवर। पाछे विश्वरूप पुत्र परम-सुन्दर ॥६५॥
भट्टाचार्य सभाय चलिला जगन्नाथ। विश्वरूप देखि बड़ कौतुक सभा'त ॥६६॥
एक भट्टाचार्य बोले "कि पढ़ छाओयाल"। विश्वरूप बोले "किछु किछु सभाकार" ॥६७॥
शिशु-ज्ञाने केहो किछु ना बलिल आर। मिश्र पाइलेन दुःख, शुनि अहङ्कार ॥६८॥
निज-कार्य करि मिश्र चलिलेन घर। पथे विश्वरूपेरे मारिला एक चड़ ॥६९॥
"जे पुँथि पढ़िस् बेटा! ताहा ना बलिया। कि बोल बलिलि तुइ सभा-माझे गिया ॥७०॥
तोमारे त सभार हइल मूर्ख ज्ञान। आमारेओ दिल लाज कहि अप्रमाण ॥७१॥
परम-उदार जगन्नाथ महा भाग। घरे गेला पुत्रेरे करिया बड़ राग ॥७२॥
पुन विश्वरूप सेइ सभा माझे गिया। भट्टाचार्य-सभा'-प्रति बोलेन हासिया ॥७३॥
"तोमरा त आमारे जिज्ञासा ना करिला। बापेर स्थानेते मोर शास्ति कराइला ॥७४॥
जिज्ञासा करिते जाहा लय कारो मने। सभे मिलि ताहा जिज्ञासह आमा' स्थाने" ॥७५॥
हासि बोले एक भट्टाचार्य "शुन शिशु। आजि जे पढ़िले ताहा वाखानह किछु" ॥७६॥
वाखानये सूत्र विश्वरूप भगवान्। सभार चित्तेते व्याख्या हइल प्रमाण ॥७७॥

इस प्रसंग में पहले श्री विश्वरूप का आख्यान कहता हूँ ॥ ६१ ॥ श्री विश्वरूप महाशय प्रभु के बड़े भाई थे। उनका रूप बड़ा तेजोमय और भुवन-दुर्लभ था ॥ ६२ ॥ वे सब शास्त्रों के बड़े विद्वान् थे और श्रीनित्यानन्द स्वरूप से अभिन्न देह थे ॥ ६३ ॥ उनकी शास्त्र-व्याख्या को समझने वाला नवद्वीप में कोई नहीं था—तथापि वे प्रभु बालकों के समीप बालक-भाव से ही रहते थे ॥ ६४ ॥ एक दिन श्रीजगन्नाथ मिश्र वर जब सभा को गये तो परम सुन्दर पुत्र विश्वरूप भी पीछे लग गये ॥ ६५ ॥ श्रीजगन्नाथ जी भट्टाचार्य पण्डितों की सभा में गये, तो विश्वरूप को देख कर सभा को बड़ा कौतुक हुआ ॥६६॥ एक भट्टाचार्य बोला—"बालक! क्या पढ़ते हो ?" विश्वरूप ने उत्तर दिया—"थोड़ा २ सब में से मैं जो पढ़ता हूँ उसे मैं जानता हूँ। मैं जो शास्त्र बखानता हूँ, उसे औरों को नहीं कहता हूँ ॥ ६७ ॥ बालक समझ कर किसी ने कुछ नहीं कहा, पर उसके अहंकार युक्त वचन का सुनकर मिश्र जी को दुःख हुआ ॥ ६८ ॥ मिश्र जी अपना कार्य कर घर को चले और मार्ग में उन्होंने विश्वरूप को एक थप्पड़ मारा ॥ ६९ ॥ ( और वे बोले ) "बेटा! जिस पोथी को पढ़ता है उसे न बता कर तूने सभा में जाकर यह क्या शब्द कहा ? ॥ ७० ॥ सभा ने यह जाना कि तुम मूर्ख हो और तुमने एक असत्य बात कह कर मुझे भी लज्जित कर दिया" ॥ ७१ ॥ भाग्य शाली परम उदार श्रीजगन्नाथ तो पुत्र के ऊपर बड़ा क्रोध करके घर चले गये ॥ ७२ ॥ और विश्वरूप फिर से उस सभा में जा पहुँचे और हँस करके भट्टाचार्य पण्डितों से बोले ॥ ७३ ॥ आप लोगों ने मुझसे पूछा-ताछा तो कुछ की नहीं, वैसे ही पिता जी से मुझको दण्ड दिलवाया ॥ ७४ ॥ जिस किसी के मन में जो कुछ पूछना हो वह सब मिलकर मुझसे पूछ लें" ॥ ७५ ॥ एक भट्टाचार्य हँसकर बोला, "सुनो बालक! आज तुमने जो पढ़ा उसकी व्याख्या करो" ॥ ७६ ॥ भगवान् विश्वरूप ने सूत्र की व्याख्या की, और सबों ने उस व्याख्या को प्रमाण-युक्त माना ॥ ७७ ॥ सब बोले—"सूत्र की अच्छी व्याख्या की"। प्रभु बोले—"मैंने तो थोड़ा

सभेइ बोलेन "सूत्र भाल वाखानिला" । प्रभु बोले 'भाण्डाइलु', किछु ना बुझिला" ॥७८॥
जत वाखानिल सब करिला खण्डन । विस्मय सभार चित्तो हइल तखन ॥७९॥
एइ मत तिन बार करिया खण्डन । पुन सेइ तिन बार करिला स्थापन ॥८०॥
'परम सुबुद्धि' करि सभे वाखानिल । विष्णु माया मोहे केहो तत्त्व ना जानिल ॥८१॥
हेन मते नवद्वीपे वैसे विश्वरूप । भक्ति शून्य लोके देखि ना पाय कौतुक ॥८२॥
व्यवहार मदे मत्त सकल संसार । ना करे वैष्णव-यश-मङ्गल-विचार ॥८३॥
पुत्रादिर महोत्सवे करे धन-व्यय । कृष्ण पूजा कृष्ण धर्म केहो ना जानय ॥८४॥
जत अध्यापक सब-तर्क से वाखाने' । कृष्ण भक्ति कृष्ण पूजा—किछुइ ना माने ॥८५॥
यदि वा पढ़ाय केहो भागवत गीता । केहो ना वाखाने' भक्ति, करे सूक्ष्म चिन्ता ॥८६॥
सर्व-स्थाने विश्वरूप ठाकुर वेड़ाय । भक्ति योग ना शुनिञा बड़ दुःख पाय ॥८७॥
सकले अद्वैतसिंह पूर्ण-कृष्ण शक्ति । पढ़ाइया वाशिष्ठ, वाखान' कृष्ण भक्ति ॥८८॥
अद्वैतेर व्याख्या बुझे, हेन कोन् आछे । वैष्णवेर अग्रगण्य नदियार माझे ॥८९॥
चारि दिगे विश्वरूप पाय मनो दुःख । अद्वैतेर स्थाने सबे पाय प्रेम सुख ॥९०॥
निरवधि थाके प्रभु अद्वैतेर सङ्गे । विश्वरूप-सहित अद्वैत वैसे रङ्गे ॥९१॥
परम-बालक प्रभु गौराङ्ग सुन्दर । कुटिल-कुन्तल, वेश अति मनोहर ॥९२॥
मा'ये बोले "विश्वम्भर ! जाह रड़ दिया । तोमार भाइरे झाट आनह डाकिया" ॥९३॥
मा'येर आदेशे प्रभु धाय विश्वम्भर । रुत्वरे आइला—यथा अद्वैतेर घर ॥९४॥

---

दिया गर आप लोग न समझ पाये" ॥ ७८ ॥ ( ऐसा कह कर ) जो कुछ व्याख्या की थी उसे सब खण्डन कर डाला, तब तो सबके चित्त में बड़ा विस्मय हुआ ॥ ७९ ॥ इस प्रकार तीन बार खण्डन करके फिर उसी की तीन बार स्थापना कर दी ॥ ८० ॥ तब तो "तुम परम सुबुद्धि मान् हो" कह कर सब प्रशंसा करने लगे, परन्तु विष्णु माया से मोहित होने से तत्त्व ( यथार्थ बात ) कोई न जान पाया ॥ ८१ ॥ इस प्रकार श्रीविश्वरूप नवद्वीप में बास करते हैं पर लोगों को भक्ति शून्य देखकर आनन्द नहीं पाते हैं ॥ ८२ ॥ सब संसार व्यवहार के मद मे मतवाला बना हुआ है और वैष्णवों के मंगल मय यश का विचार नहीं करता है ॥ ८३ ॥ ( यथा:– ) पुत्रादिकों के महोत्सव में तो संसार धन व्यय करता है पर कृष्ण-पूजा, कृष्ण-धर्म को कोई नहीं जानता है ॥ ८४ ॥ जितने भी अध्यापक हैं वे केवल तर्क पूर्ण व्याख्या ही करते हैं, श्रीकृष्ण भक्ति और श्रीकृष्ण पूजा—कुछ भी नहीं मानते हैं ॥ ८५ ॥ यदि कोई भागवत, गीता आदि पढ़ाते भी हैं, तो वे भी भक्ति को नहीं बखानते हैं, केवल सूक्ष्म विचार ही किया करते हैं ॥ ८६ ॥ प्रभु विश्वरूप (इन) सब स्थानों में आते जाते रहते हैं परन्तु भक्तियोग की चर्चा कहीं भी न सुन पाने से बड़ा दुःख पाते हैं ॥८७॥ उस समय श्रीकृष्ण की पूर्ण शक्ति रूप श्रीअद्वैत सिंह ही एक ऐसे थे जो योग वाशिष्ठ, पढ़ाते हुए भी श्री कृष्ण भक्ति बखाना करते थे ॥ ८८ ॥ श्रीअद्वैत की व्याख्या समझ सके ऐसा ( नदिया में ) कौन है ? वे नदिया में वैष्णवों में अग्रगण्य हैं ॥ ८९ ॥ चारों ओर से विश्वरूप मन में केवल दुःख ही पाते हैं, केवल एक श्रीअद्वैत के निकट ही उन्हें प्रेम भक्ति का सुख मिलता है ॥ ९० ॥ ( अतएव ) वे सदा श्रीअद्वैत प्रभु के साथ रहते हैं, और श्रीअद्वैत भी श्रीविश्वरूप के साथ बड़े आनन्द में रहते हैं ॥ ९१ ॥ ( उस समय ) गौर सुन्दर निपट बालक हैं, घुँघराले केश हैं, मनोहर वेश है ॥ ९२ ॥ मा शची कहती हैं–"विश्वम्भर ! जा तो दौड़कर ! अपने भाई को झट बुला कर ले आ" ॥ ९३ ॥ माता के आदेश पर प्रभु विश्वम्भर दौड़

बसियाछे अद्वैत वेढ़िया भक्त गण। श्रीवासादि करिया जतेक महाजन ॥९५॥
विश्वम्भर बोले "भाइ! भात खाओसिया। विलम्ब ना कर," बोले हासिया हासिया ॥९६॥
हरिल सभार चित्त प्रभु विश्वम्भर। सभेइ चा' हेन रूप परम-सुन्दर ॥९७॥
मोहित हइया चा'हे अद्वैत-आचार्य। सेइ मुख चा'हे सब परिहरि कार्य। ९८॥
एइ मत प्रति दिन मा'येर आदेशे। विश्वरूप डाकिवार छले प्रभु आइसे ॥९९॥
चिन्तये अद्वैत मने-देखि विश्वम्भर। "मोर चित्त हरे' शिशु परम-सुन्दर ॥१००॥
मोर चित्त हरिते कि पारे अन्य जन। एव वा मोहोर प्रभु मोहे' मोर मन ॥१०१॥
सर्व भूत-हृदय ठाकुर विश्वम्भर। चिन्तिते' अद्वैत झाट चलि जाय घर ॥१०२॥
निरवधि विश्वरूप अद्वैतेर सङ्गे। छाड़िया संसार सुख गोङायेन रङ्गे ॥१०३॥
विश्वरूप-कथा आदि खण्डे से विस्तार। अनन्त-चरित्र नित्यानन्द कलेवर ॥१०४॥
ईश्वरेर इच्छा सर्वे ईश्वर से जाने। विश्वरूप संन्यास करिला कथो दिने।'१०५॥
जगते विदित नाम 'श्रीशङ्करारण्य'। चलिला अनन्त-पथे वैष्णवाग्रगण्य। १०६॥
करि दण्ड ग्रहन चलिला विश्वरूप। आइर विदरे निरवधि शोके बुक ॥१०७॥
मने मने गणे' आइ हइया सुस्थिर। "अद्वैत से मोर पुत्र करिला बाहिर" ॥१०८॥
तथापिह आइ वैष्णवापराध-भये। किछु ना बोलये मने महा दुःख पाये ॥१०९॥
विश्वम्भर देखि सब पासरिला दुःख। प्रभुओ मा'येर बड़ बाढ़ायेन सुख ॥११०॥
दैवे कथो दिने प्रभु करिला प्रकाश। निरवधि अद्वैतेर संहति विलास ॥१११॥

---

कर जाते हैं और शीघ्र ही श्रीअद्वैत के घर जा पहुँचते हैं ॥ ९४ ॥ श्रीवास आदि जितने भक्त महानुभाव हैं, वे सब श्रीअद्वैत को घेर कर बैठे हैं ॥ ९५ ॥ विश्वम्भर आकर कहते हैं–"भैय्या! भात खाने चलो, देर मत करो"–ऐसा हँस २ कर बोले ॥ ९६ ॥ प्रभु विश्वम्भर सबका चित्त हर लेते हैं सभी उस परम सुन्दर रूप को देखने लगते हैं ॥ ९७ ॥ श्री अद्वैताचार्य भी मोहित होकर देखते हैं,–सब कार्य त्याग कर उस मुख को देखते हैं ॥ ९८ ॥ इस प्रकार प्रति दिन माता के आदेश से विश्वरूप को बुलाने के बहाने प्रभु आते (जाते) हैं ॥ ९९ ॥ उनको देखकर श्रीअद्वैत मन में चिन्ता करते हैं कि "यह बालक तो परम सुन्दर है, यह तो मेरा चित्त हरण कर लेता है" ॥ १०० ॥ "मेरे चित्त को और कौन हर सकता है ? क्या यह मेरा प्रभु है जो मेरे मन को मोह रहा है ?" ॥ १०१ ॥ ऐसी चिन्ता में पड़े हुए श्रीअद्वैत को चट्ट छोड़कर झट्ट ही सर्व-भूत अन्तर्यामी प्रभु विश्वम्भर चले जाते हैं ॥ १०२ ॥ उधर श्रीविश्वरूप संसार के सुख को छोड़कर निरन्तर श्री अद्वैताचार्य के साथ अपना दिन आनन्द से बिताते हैं ॥ १०३ ॥ श्रीविश्वरूप की कथा आदि खण्ड में विस्तार से वर्णित है। श्रीनित्यानन्द से अभिन्न श्रीविश्वरूप के अनन्त चरित्र हैं ॥१०४॥ ईश्वर की इच्छा ईश्वर ही जानते हैं,विश्वरूप ने भी कुछ दिनों में संन्यास ले लिया ॥ १०५ ॥ जगत् में वे श्री शङ्करारण्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। वैष्णव-प्रधान श्री शंकरारण्यम् अनन्त के पथ पर चल दिये ॥१०६। श्रीविश्वरूप दण्ड ग्रहण करके चले गए, इधर शची माता की छाती शोक से निरन्तर विदीर्ण होने लगी ॥ १०७ ॥ शची माता सुस्थिर होने पर, मन-मन में विचार करती हैं कि "इस अद्वैत ने ही मेरे पुत्र को ब हर निकाला है" ॥ १०८ ॥ तथापि वैष्णवापराध के भय से शची माता कुछ नहीं कहती हैं, पर उनके मन में बड़ा भारी दुःख है ॥ १०९ ॥ श्रीविश्वम्भर को देख २ कर वे सब दुःख भूल जाती हैं और प्रभु भी माता जी का बड़ा सुख बढ़ाते हैं ॥ ११० ॥ दैवयोग से कुछ दिनों में प्रभु ने अपना आत्म-प्रकाश किया और

छाड़िया ससार सुख प्रभु विश्वम्भर। लक्ष्मी परिहरि थाके अद्वैतेर घर ॥११२॥
ना रहे गृहेते पुत्र-हेन देखि आइ। "एहो पुत्र निला मोर आचार्य गोसाञि" ॥११३॥
सेइ दुःखे सबे एइ बलिलेन आइ। "के बोले 'अद्वैत'–द्वैत' ए बड़ गोसाञि ॥११४॥
चन्द्र सम एक पुत्र करिया बाहिर। एहो पुत्र ना दिलेन करि बारे स्थिर ॥११५॥
अनाथिनी-मोरे त काहारो नाहि दया। जगतेरे अद्वैत, मोरे से द्वैत-माया" ॥११६॥
सबे एइ अपराध, आर किछु नाञि। इहार लागिया भक्ति ना देन गोसाञि ॥११७॥
ए-काले जे वैष्णवेरे 'बड़' 'छोट' बोले। निश्चिन्ते थाकुक् से जानिब कथो काले ॥११८॥
जननीर लक्ष्ये शिक्षा गुरु भगवान्। वैष्णवापराध करायेन सावधान ॥११९॥
चैतन्य सिंहेर आज्ञा करिया लङ्घन। ना बुझि वैष्णव निन्दे' पाइब बन्धन ॥१२०॥
ए कथार हेतु किछु शुन मन दिया। जे निमित्त गौरचन्द्र करिलेन इहा ॥१२१॥
त्रिकाल जानेन प्रभु श्रीशचीनन्दन। जाने-सेबिबेक अद्वैतेरे दुष्ट गण ॥१२२॥
अद्वैतेरे गाइबेक 'श्रीकृष्ण' करिया। जत किछु वैष्णवेर वचन लङ्घिया ॥१२३॥
जे बलिब अद्वैतेरे 'परम-वैष्णव'। ताहारेइ वेढ़िया लङ्घिब पापी-सब ॥१२४॥
से-सब-गणेर पक्ष अद्वैत धरिते। अतएव शक्ति नाहि–ए दण्ड देखिते ॥१२५॥
सकल सर्वज्ञ-चूड़ामणि विश्वम्भर। जानिला-'विलम्बे हइबेक बहुतर ॥१२६॥
अतएव दण्ड देखाइया जननीरे। साक्षी करिलेन अद्वैतादि वैष्णवेरे ॥१२७॥

---

श्रीअद्वैत के सहित निरन्तर भक्ति-विलास करने लगे ॥ १११ ॥ प्रभु विश्वम्भर संसार-सुख तथा श्री लक्ष्मी देवी को त्याग कर श्रीअद्वैत के घर रहने लगे ॥ ११२ ॥ यह देखकर कि पुत्र घर पर नहीं रहता है शची मा बोलीं–"मेरे इस पुत्र को भी आचार्य गुसाँई ने ले लिया" ॥ ११३ ॥ केवल इसी दुःख के कारण शची माता बोलीं–"इन गुसाँई को अद्वैत ( अर्थात् द्वैत-भाव-शून्य समदर्शी ) कौन कहता है, ये तो बड़े "द्वैत" ( भेद भाव कारी ) हैं ॥ ११४ ॥ इन्होंने चन्द्रमा के समान मेरे एक पुत्र को घर से बाहिर किया, अब इस पुत्र को स्थिर नहीं रहने देते हैं ॥ ११५ ॥ "मुझ अनाथिनी पर किसी की दया नहीं है। इसीसे जगत् का अद्वैत मेरे लिये द्वैत माया है" ( भेद भाव का मूल है ) ॥११६॥ बस शची माता का केवल यही अपराध था, और कुछ नहीं था, कि जिसके लिए प्रभु ने उनको भक्ति प्रदान नहीं की थी ॥ ११७ ॥ फिर आज कल जो वैष्णवों को 'बड़ा' "छोटा" करके कहते है, वे भले ही निश्चिन्त रहें, पर कुछ दिन में सब जान जायँगे ( कि इस अपराध का क्या परिणाम होता है ) ॥ ११८ ॥ अतएव जननी को लक्ष्य करके शिक्षा गुरु भगवान् गौरचन्द्र वैष्णवापराध से सावधान कराते हैं ॥ ११९ ॥ श्रीचैतन्य सिंह की आज्ञा को उल्लंघन करके जो विना समझे-बूझे वैष्णवों की निन्दा करते हैं, वे बन्धन में पड़ेंगे ॥ १२० ॥ जिस कारण से श्री गौरचन्द्र ने ऐसा (माता को दण्ड) किया, इस कथा का जो हेतु है, उसे ध्यान पूर्वक सुनो ॥ १२१ ॥ प्रभु श्रीशचीनन्दन तीनों काल को जानने वाले हैं। वे जानते हैं कि दुष्ट लोग श्रीअद्वैत की सेवा करेंगे ॥ १२२ ॥ वे वैष्णवों के सब वचनों का उल्लंघन करके श्रीअद्वैत को 'श्रीकृष्ण' कह कर गायँगे ॥ १२३ ॥ और जो श्रीअद्वैत को "परम वैष्णव" कहेंगे, उसी को सब पापी घेर कर सतायँगे ॥ १२४ ॥ परन्तु इस दण्ड को देख लेने के पश्चात् फिर श्रीअद्वैत उन सब लोगों का पक्ष नहीं ले सकेंगे ॥ १२५ ॥ सब सर्वज्ञों के चूड़ामणि श्रीविश्वम्भर जान गये कि विलम्ब के कारण बहुत से ( ऐसे लोग ) हो जायँगे ॥ १२६ ॥ अतएव माता के प्रति दण्ड दिखला कर श्रीअद्वैतादि वैष्णवों को साक्षी बना लिया ॥ १२७ ॥ जिसके गण ( परिकर )

वैष्णवेर निन्दा करिबेक जार गण। तार रक्षा-समर्थ नहिव कोन जन ॥१२८॥
वैष्णव निन्दक गण जाहार आश्रय। आपनेइ एड़ाइते ताहार संशय ॥१२९॥
बड़ अधिकारी हय—आपने एड़ाय। क्षुद्र हैले—गण सह अधः पाते जाय ॥१३०॥
चैतन्येर दण्ड बुझि बारे शक्ति कार। जननीर लक्ष्ये दण्ड करिला सभार ॥१३१॥
जे वा जन अद्वैतेरे 'वैष्णव' बलिते। निन्दा करे, द्वन्द्व करे, मरे भाल मते ॥१३२॥
सर्व प्रभु गौराङ्ग सुन्दर महेश्वर। एइ बड़ स्तुति जे 'ताहान अनुचर' ॥१३३॥
नित्यानन्द स्वरूपे से निष्कपट हैया। कहिलेन गौरचन्द्र 'ईश्वर' करिया ॥१३४॥
नित्यानन्द-प्रसादे से गौरचन्द्र जानि। नित्यानन्द-प्रसादे से वैष्णवेर चिनि ॥१३५॥
नित्यानन्द-प्रसादे से निन्दा जाय क्षय। नित्यानन्द-प्रसादे से विष्णु भक्ति हय ॥१३६॥
निन्दा नाहि नित्यानन्द-सेवकेर मुखे। अहर्निश चैतन्येर यश गाय सुखे ॥१३७॥
नित्यानन्द भृत्य सर्व दिगे सावधान। नित्यानन्द भृत्येर 'चैतन्य' धन प्राण ॥१३८॥
अल्प-भाग्ये नाहि हय नित्यानन्द-दास। जाहारा लखोयाय गौरचन्द्रेर प्रकाश ॥१३९॥
जे जन शुनये विश्वरूपेर आख्यान। से हय अनन्त दास नित्यानन्द प्राण ॥१४०॥
नित्यानन्द विश्वरूप-अभेद-शरीर। आइ इहा जाने, आर कोन महा धीर ॥१४१॥
जय नित्यानन्द-गौरचन्द्रेर शयन। जय जय नित्यानन्द सहस्र वदन ॥१४२॥
गौड़ देश-इन्द्र जय नित्यानन्द-राय। के पाय चैतन्य विने तोमार कृपाय ॥१४३॥
नित्यानन्द-हेन प्रभु हाराय जाहार। कोथाओ जीवने सुख नाहिक ताहार ॥१४४॥

---

वैष्णवों की निन्दा करेंगे, उसकी रक्षा करने को कोई समर्थ नहीं होगा ॥ १२८ ॥ जिसके आश्रय में वैष्णव निन्दक गण है, उसको स्वयं अपने को बचाने में संशय है ॥ १२९ ॥ वह यदि बड़ा अधिकारी है तो अपने को बचा लेता है, और यदि क्षुद्र है तो अपने परिकर सहित अधोगति को प्राप्त होता है ॥१३० ॥ श्रीचैतन्य के दण्ड को समझने की किसकी शक्ति है। प्रभु ने जननी को लक्ष्य बनाकर सबको दण्ड दिया ॥ १३१ ॥ जो जन श्रीअद्वैत को "वैष्णव" कहने पर निन्दा करता है, कलह मचाता है, वह समूल नष्ट हो जाता है ॥ १३२ ॥ श्रीगौरांग सुन्दर सबके प्रभु हैं, महेश्वर हैं। उनका अनुचर होना ही सबसे बड़ी स्तुति है ॥१३३॥ श्रीगौरचन्द्र ने नित्यानन्द स्वरूप के लिये निष्कपट भाव से "ईश्वर" कहा है ॥ १३४ । श्रीनित्यानन्द की कृपा से (मैं) श्रीगौरचन्द्र को जानता हूँ और श्रीनित्यानन्द की ही कृपा से (मैं) वैष्णवों को पहचानता हूँ ॥ १३५ ॥ श्रीनित्यानन्द की कृपा से निन्दा-दोष का क्षय होता है। श्रीनित्यानन्द की कृपा से विष्णु भक्ति होती है ॥ १३६ ॥ श्रीनित्यानन्द के सेवकों के मुख में निन्दा नहीं होती। वे तो दिन-रात सुख से श्रीचैतन्य का यश गाया करते हैं ॥ १३७ । श्रीनित्यानन्द का सेवक सब ओर से सावधान रहता है। नित्यानन्द के सेवक के धन, प्राण "श्रीचैतन्य" होते हैं ॥ १३८ ॥ श्रीनित्यानन्द का दास कोई अल्प भाग्य से नहीं होता है। जो श्रीगौरचन्द्र के आत्म प्रकाश को मानते हैं ॥ १३९ ॥ और जो जन श्रीविश्वरूप की कथा को सुनते हैं, वे श्री अनन्त देव श्रीनित्यानन्द के दास एवं प्राण होते हैं ॥ १४० ॥ श्रीनित्यानन्द और श्रीविश्वरूप के शरीर में भेद नहीं—ये दोनों एक ही हैं—यह शची माता जानती हैं और कोई २ महानुभाव जानते हैं ॥१४१॥ श्रीगौरचन्द्र की शय्या श्रीनित्यानन्द की जय हो। सहस्र वदन श्रीनित्यानन्द की जय हो, जय हो ॥ १४२ ॥ गौड़-देश के इन्द्र श्रीनित्यानन्द राय की जय हो। तुम्हारी कृपा के बिना श्रीचैतन्य देव को कौन पा सकता है ॥ १४३ ॥ जिसने श्रीनित्यानन्द जैसे प्रभु को गवाँ दिया है उसके लिये जीवन में कहीं भी सुख नहीं है

हेन दिन हइब कि चैतन्य-निताइ। देखिब कि पारिषद-सङ्गे एक-ठाँइ ॥१४५॥
आमार प्रभुर प्रभु गौराङ्ग सुन्दर। ए बड़ भरसा चित्ते धरिये अन्तर ॥१४६॥
अद्वैत चरणे मोर एइ नमस्कार। तान प्रिय ताहे मति रहुक आमार ॥१४७॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ॥१४८॥

# अथ तेईसवाँ अध्याय

जय जय श्रीकृष्ण चैतन्य गुण निधि। जय विश्वम्भर जय भवादिर विधि ॥१॥
जय जय नित्यानन्द-प्रिय द्विज राज। जय जय चैतन्येर भकत-समाज ॥२॥
हेन मते नवद्वीपे प्रभु विश्वम्भर। क्रीड़ा करे, नहे सर्व-नयन-गोचर ॥३॥
दिने दिने महानन्द नवद्वीप पुरी। वैकुण्ठ नायक विश्वम्भर अवतरि ॥४॥
प्रियतम नित्यानन्द सङ्गे कुतूहले। भकत समाजे निज-नाम-रसे खेले ॥५॥
प्रति दिन निशा भागे करये कीर्त्तन। भक्त-विने थाकिते ना पाय अन्य जन ॥६॥
एत बड़ विश्वम्भर शक्तिर महिमा। त्रिभुवने लङ्घिते ना पारे केहो सीमा ॥७॥
अगोचरे दूरे थाकि मिलि दश-पाँचे। मन्द मात्र बोले, यम घरे जाय पाछे ॥८॥
केहो बोले 'कलियुगे किसेर वैष्णव। जत देख-हेर पेट-पोषा गुला सब" ॥९॥
केहो बोले "ए-गुलार बान्धि हाथ-पा'य। जले फेलि, जीये यदि, तबे धन्य गाय ॥१०॥

॥ १४४ ॥ क्या ऐसा भी दिन होगा कि जब पार्षदों के सहित श्रीचैतन्य-नित्यानन्द के एक ठौर में दर्शन करूँगा ? ॥ १४५ ॥ मेरे प्रभु के प्रभु श्रीगौरांग सुन्दर हैं—बस मैं अपने अन्तस् चित् में यही एक बड़ा भरोसा रखता हूँ ॥ १४६ ॥ श्रीअद्वैत के चरणों में मेरा यह नमस्कार है। उनके प्रिय में मेरी मति बनी रहे ॥ १४७ ॥ श्रीकृष्ण चैतन्य और श्रीनित्यानन्द चाँद को अपना सर्वस्व जानकर वृन्दावन दास उनके चरण युगल का यश गान करता है । १४८ ॥

इति—शची देवी का वैष्णवापराध खण्डन नामक बाइसवाँ अध्याय ॥

गुण निधि श्रीकृष्ण चैतन्य की जय हो। विश्वम्भर की जय हो। महादेव आदि के जो विधाता (ईश्वर) हैं उनको जय हो। श्रीनित्यानन्द के प्रिय द्विजराज की जय हो। श्रीकृष्ण चैतन्य के भक्त समाज को जय हो जय हो ॥ १ ॥ २ ॥ इस प्रकार विश्वम्भर प्रभु नवद्वीप में क्रीड़ा कर रहे हैं, पर उसका दर्शन सर्व साधारण को नहीं होता है ॥३॥ नवद्वीप पुरी में दिन प्रति दिन महा आनन्द हो रहा हैं। (कारण कि) वैकुण्ठ नायक विश्वम्भर देव अवतार लेकर अपने प्रियतम नित्यानन्द सहित भक्त समाज में अपने नाम का कौतुहल पूर्वक रसास्वादन करते हुये क्रीड़ा कर रहे हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ वे प्रति दिन रात्रि के समय कीर्तन करते हैं। उसमें भक्त जनों के अतिरिक्त और कोई नहीं रहने पाता है ॥ ६ ॥ विश्वम्भर देव की शक्ति की इतनी बड़ी महिमा है कि कोई उसका उल्लंघन नहीं कर सकता (अर्थात् संकीर्तन स्थल पर और कोई प्रवेश कर नहीं सकता) ॥ ७ ॥ (अतः कीर्तन से) दूर जहाँ दिखायी न दें, वहाँ रहकर दस पाँच लोग निन्दा करते हैं, ऐसे लोग पीछे नरक को ही प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥ कोई कहता है "कलियुग में वैष्णव कैसा ? जितने (वैष्णव) देखते हो, सब अपना पेट पालने वाले हैं" ॥ ९ ॥ कोई कहता है "इनके हाथ-पाँवों को बाँध कर इन्हें जल में फेंक दो। जो ये जीते रह जायँ तो हम इनको धन्य (वैष्णव) कहेंगे, ॥ १० ॥

केहो बोले आरे भाइ ! जानिह निश्चित । ग्राम-खान लुटाइब निमाञि पण्डित" ।।११।।
भय देखायेन सभे देखिवार तरे । अन्तरे नाहिक भाग्य, चातुरी किसेरे ।।१२।।
सङ्कीर्त्तन करे प्रभु शचीर नन्दन । जगतेर चित्त वृत्ति करये शोधन ।।१३।।
देखिते ना पाय लोक, करे अनुताप । सभेइ 'अभाग्य' बलि छाड़ये निश्वास ।।१४।।
केहो वा काहारो ठाञि परिहार करे । सङ्गोपे कीर्त्तन गिया देखिवार तरे ।।१५।।
'प्रभु से सर्वज्ञ' इहा सर्व-दासे जाने । एइ भये केहो कारे ना लय से-स्थाने ।।१६।।
एक ब्रह्मचारी सेइ नवद्वीपे वैसे । तपस्वी परम साधु वसये निर्दोषे ।।१७।।
सर्व काल पय-पान, अन्न नाहि खाय । शुनिते कीर्त्तन विप्र देखिवारे चाय ।।१८।।
प्रभु से दुयार दिया करये कीर्त्तन । प्रवेशिते नारे भक्त-विने अन्य जन ।।१९।।
सेइ विप्र प्रति दिन श्रीवासेर स्थाने । नृत्य देखिवार लागि साधये आपने ।।२०।।
"तुमि यदि एक दिन कृपा कर' मोरे । आपने लइया जाओ वाड़ीर भितरे ।।२१।।
तवे से देखिते पाङ पण्डितेर नृत्य । लोचन सफल करों, हङ कृत्य कृत्य" ।।२२।।
एइ मत प्रति दिन साधये ब्राह्मण । आर दिन श्रीनिवास वलिला ये वचन ।।२३।।
"तोमारे त जानि सर्व काल बड़ भाल । ब्रह्मचर्ये फलाहारे गोङाइला काल ।।२४।।
कोन पाप नाहि जानि तोमार शरीरे । देखिवार तोमार आछये अधिकारे ।।२५।।
प्रभुर से आज्ञा नाहि केहो जाइ वार । 'संगोपे थाकिवा' एइ वलिलुँ तोमारे ।।२६।।
एत वलि ब्राह्मणेरे लइया चलिला । एक दिगे आड़ हइ संगोपे थाकिला ।।२७।।

---

कोई कहता है" अरे भाई ! यह निश्चय जान लो कि यह निमाइ पंडित गाँव लुटवा देगा" ।। ११ ।। इस प्रकार वे सब लोग कीर्तन के दर्शन पाने के लिये भय दिखलाते हैं, पर उनका सौभाग्य कहाँ जो दर्शन पा सकें, फिर चतुराई से क्या होता है ।। १२ ।। शचीनन्दन प्रभु संकीर्तन करते हैं—उसके द्वारा जगत् की चित्त वृत्ति का शोधन करते हैं ।। १३ ।। लोग उस संकीर्तन को देख नहीं पाते हैं, इससे बड़ा पछतावा करते हैं, अपने को 'अभागा' कहकर सभी लम्बी साँसें छोड़ते हैं ।। १४ ।। कोई तो छिप कर संकीर्तन जा देखने के लिये किसी के निकट प्रार्थना करते हैं ।। १५ ।। ( परन्तु ) प्रभु के सब भक्त जन यह जानते हैं कि वे प्रभु सर्वज्ञ हैं । इस भय के कारण कोई किसी को संकीर्तन के स्थान पर नहीं ले जाता है ।। १६ ।। उसी नवद्वीप में एक ब्रह्मचारी रहता था । वह बड़ा तपस्वी साधु था तथा निर्दोष जीवन बिताता था ।। १७ ।। वह सदा दूध ही पीता और अन्न नहीं खाता था, वह प्रभु का कीर्तन देखना-सुनना चाहता था ।। १८ ।। परन्तु वे प्रभु तो द्वार बन्द करके ही कीर्तन किया करते । वहाँ भक्त बिना और कोई प्रवेश ही नहीं कर पाता था ।।१९।। वह ब्राह्मण संकीर्तन के दर्शन कर पाने के लिये प्रति दिन श्रीवास के निकट चिरौरी-कीया करता ।। २० ।। (वह कहा करता कि) "यदि तुम एक दिन कृपा करके मुझे अपने घर के भीतर ले चलो तो कहीं मैं निमाई पंडित का वह नृत्य देख सकूँ, और अपने लोचन सफल करूँ, और कृत कृत्य हो जाऊँ" ।। २१ ।। २२ ।। इस प्रकार वह ब्राह्मण नित्य प्रति श्रीवास को मनाया करता । अन्त में एक दिन श्रीवास ने यह बचन कहा, "मैं तुम्हें जानता हूँ, तुम तो सदा से ही बड़े सज्जन हो, ब्रह्मचर्य-सहित फलाहार करते हुये तुमने अपनी आयु बिताई है ।। २३ ।। २४ ।। ( "अतएव ) मैं जानता हूँ कि तुम्हारे शरीर में कोई पाप नहीं है और ( संकीर्तन ) देखने का तुमको अधिकार है ।। २५ ।। पर वहाँ जाने के लिये किसी को प्रभु की आज्ञा नहीं है । (अतएव) छिप करके रहना—यह मैं तुमसे कह रखता हूँ" ।। २६ ।। इतना कहकर वे ब्राह्मण को ले

नृत्य करे चतुर्दश भुवनेर नाथ। चतुर्दिगे महाभाग्य वन्त वर्ग साथ ॥२८॥
'कृष्ण राम मुकुन्द मुरारि वनमाली। सभेइ गायन्त हइ महा कुतूहली ॥२९॥
नित्यानन्द-गदाधर धरिया बेड़ाय। आनन्दे अद्वैत सिंह चारि दिगे धाय ॥३०॥
परानन्द सुखे केहो बाह्य नाहि जाने। वैकुण्ठ नायक नृत्य करये आपने ॥३१॥
हरि बोल हरि बोल हरि बोल भाइ। इहा बइ आर किछु शुनिते ना पाय ॥३२॥
अश्रु, कम्प, लोम हर्ष, सघन-हुँकार। के कहिते पारे विश्वम्भरेर विकार ॥३३॥
सर्वज्ञेर चूड़ामणि विश्वम्भर-राय। जाने 'विप्र लुकाइया आछये एथाय' ॥३४॥
रहिया रहिया बोले प्रभु विश्वम्भर। "आजि केने प्रेम योगे ना पाङ निर्भर ॥३५॥
केहो कि आसिया आछे बाड़ीर भितरे। किछु नाहि बुझों, सत्य कह देखि मोरे ॥३६॥
भय पाइ श्रीनिवास बोलये वचन। पाषण्डेर इथे प्रभु! नाहि आगमन ॥३७॥
सबे एके ब्रह्मचारी-बड़ सुब्राह्मण। सर्व काल पयःपान–निष्पाप-जीवन ॥३८॥
देखिते तोमार नृत्य श्रद्धा तांर बड़। निभृते आछये प्रभु! जानिञाछ दढ़" ॥३९॥
शुनि क्रोधावेगे बोले प्रभु विश्वम्भर। 'झाट झाट बाड़ीर बाहिर निञा कर' ॥४०॥
मोर नृत्य देखिते उहान कोन शक्ति। पयःपान करिले कि मोहे हय भक्ति" ॥४१॥
दुइ भुज तुलि प्रभु अङ्गुलि देखाय। पयः पाने केहो मोरे देखिते ना पाय ॥४२॥
चण्डालेहो मोहोर शरण यदि लय। सेहो मोर, मुञि तार, जानिह निश्चय ॥४३॥
संन्यासीओ यदि मोर ना लय शरण। सेहो मोर नहे, सत्य बलिलुँ वचन ॥४४॥

चले। वह जाकर एक ओर ओट में छिप रहा ॥ २७ ॥ (उधर) चतुर्दश भुवन पति प्रभु नृत्य कर रहे हैं, साथ में चारों ओर महा भाग्यवान गण हैं ॥ २८ ॥ सब बड़े कौतुहल पूर्वक गा रहे हैं" कृष्ण राम मुरारि बनमाली" ॥ २९ ॥ नित्यानन्द गदाधर को पकड़े हुये घूम रहे हैं और अद्वैताचार्य चारों ओर आनन्द में चक्कर काट रहे हैं ॥ ३० ॥ परानन्द सुख में तल्लीन किसी को बाहर की सुध नहीं है। स्वयं वैकुण्ठ नायक आप जो नृत्य कर रहे हैं ॥ ३१ ॥ "हरि बोल हरि बोल हरि बोल भाई" इस धुन को छोड़ और कुछ सुनायी नहीं पड़ता ॥ ३२ ॥ विश्वम्भर देव के अश्रु, कम्प, रोम हर्ष, गम्भीर हुँकार आदि भाव विकारों को कौन वर्णन कर सकता है ॥ ३३ ॥ विश्वम्भर राय सर्वज्ञ-शिरोमणि हैं। जानते हैं कि यहाँ एक विप्र छिप कर बैठा है ॥ ३४ ॥ (अतएव) रुक रुक कर विश्वम्भर प्रभु कहते हैं "आज कीर्तन में उत्तरोत्तर अधिक प्रेम क्यों नहीं प्राप्त हो रहा है ॥ ३५ ॥ कुछ समझ में नहीं आता। क्या कोई बाहर का आदमी घर भीतर आया है–सच तो बताओ मुझे" ॥ ३६ ॥ श्रीवास डर कर कहने लगे, "प्रभो! यहाँ कोई निन्दक विमुख तो नहीं आया है ॥ ३७ ॥ केवल मात्र एक ब्रह्मचारी,-जो बड़ा सज्जन ब्राह्मण है, सदा दूध ही पीता है, जीवन जिसका निष्पाप है, आप के दर्शन के लिये उसमें बड़ी श्रद्धा है–वह तो एकान्त में अवश्य बैठा हुआ है प्रभो!" ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ सुनते ही क्रोधावेश में भर कर विश्वम्भर प्रभु बोले "तुरन्त निकाल बाहर करो घर से उसे ॥ ४० ॥ मेरा नृत्य देखने की उसमें शक्ति ही क्या है ? दूध पीने से ही क्या मुझमें भक्ति हो जाती है ॥ ४१ ॥ फिर दोनों भुजाओं को ऊपर उठाकर अंगुली से अपने को दिखलाते हुए बोले, "दूध पीने से कोई मुझे नहीं पाता है। पर यदि चण्डाल भी मेरी शरण लेवे, तो वह भी मेरा है और मैं उसका हूँ यह निश्चय जान लो॥ और यदि संन्यासी भी मेरी शरण नहीं लेता है तो वह भी मेरा नहीं है, यह मैंने सत्य कहा है ॥ ४२–४४ ॥ भला राजेन्द्र बानरों और गोपों ने कौन सा तप किया था ? बताओ तो सही,

गजेन्द्र-वानर-गोप कि तप करिल। बोल देखि तारा मोरे कि तपे पाइल ॥४५॥
असुरेओ तप करे, कि हय ताहार। बिने मोर शरण लइले नाहि पार" ॥४६॥
प्रभु बोले "पयःपाने मोरे नाहि पाइ। सकल करिमु चूर्ण, देखिवा एथाइ" ॥४७॥
महा भये ब्रह्मचारी हइला बाहिर। मने मने चिन्तये ब्राह्मण महाधीर ॥४८॥
"एइ मोर भाग्य बड़ जे किछु देखिलुँ। अपराध-अनुरूप शास्तिओ पाइलुँ ॥४९॥
अद्भुत देखिलुँ नृत्य, अद्भुत क्रन्दन। अपराध-अनुरूप पाइलुँ तर्जन" ॥५०॥
सेवक हइले एइ मत बुद्धि हय। सेवके से प्रभुर सकल दण्ड सय ॥५१॥
एइ मत चिन्तिया चलिले विप्र वर। जानि लेन अन्तर्यामी श्रीगौर सुन्दर ॥५२॥
डाकिया आनिया पुन करुणा सागर। पाद पद्म दिला ताँर मस्तक-उपर ॥५३॥
प्रभु बोले "तप' करि ना कारेह बल। 'विष्णु भक्ति सर्व श्रेष्ठ' जानिह केवल ॥५४॥
एक पुस्तक में अतिरिक्त पाठ—"आनन्दे क्रन्दन करे सेइ विप्रवर।
प्रभुर करुणा गुण स्मरे निरन्तर" ॥
'हरि' वलि सन्तोषे सकल भक्त गण। दण्डवत् हइया पड़िला ततक्षण ॥५५॥
श्रद्धा करि जे जन शुनये ए रहस्य। गौरचन्द्र प्रभु ताँरे मिलिव अवश्य ॥५६॥
ब्रह्म चारि-प्रति कृपा करिया ठाकुर। आनन्द आवेशे नृत्य करेन प्रचुर ॥५७॥
सेइ विप्र-चरणे आमार नमस्कार।
चैतन्येर दण्डे हैल हेन बुद्धि जार ॥५८॥ रस के परिवर्तन में ऐसा पाठ है।
एइ मत प्रति-निशा करये कीर्तन। देखिवार शक्ति नाहि धरे अन्य जन ॥५९॥

---

उन्होंने किस तप के बल से मुझे पाया? ॥ ४५ ॥ "असुर भी तो तप करता है, पर उसका फल क्या होता है? बिना मेरी शरण लिये उद्धार नहीं है" ॥ ४६ ॥ प्रभु फिर बोले, "पय-पान से मैं नहीं मिलता हूँ। मैं सबका गर्व चूर्ण कर दूँगा—यहीं देख लोगे ॥ ४७ ॥ अत्यन्त भयभीत होकर वह ब्रह्मचारी निकल बाहर हुआ। वह महाधीर ब्राह्मण मन-ही-मन सोचने लगा कि "यही मेरा सौभाग्य है कि मैं कुछ देख तो पाया। और जैसा अपराध किया, वैसा दण्ड भी मिल गया! ओह! अद्भुत नृत्य, अद्भुत कीर्तन देखा! अपराध जैसा, वैसी ही भर्त्सना भी मिली" ॥ ४८–५० ॥ (ग्रन्थकार कहते हैं कि) सेवक की ऐसी ही बुद्धि होती है—सेवक प्रभु के दिये हुये सब दण्डों को सह लेता है ॥ ५१ ॥ ऐसा मन में सोचता हुआ वह विप्र चल रहा था कि अन्तर्यामी श्रीगौर सुन्दर जान गये और करुणा सागर प्रभु ने पुनः उसको बुलवा कर अपना चरण कमल उसके मस्तक पर अर्पण कर दिया ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ प्रभु बोले—"मैं तप करता हूँ—इसका बल मत रखो। बस इतना सुनिश्चित जान लो कि विष्णु भक्ति ही श्रेष्ठ है। (तात्पर्य तपस्या से विष्णु भक्ति प्राप्त नहीं होती—वह तो विष्णु-वैष्णव कृपा से ही प्राप्त होती है) ॥ ५४ ॥ (प्रभु के ऐसे वचन सुनकर) समस्त भक्त जनों ने 'हरि' ध्वनि करके आनन्द प्रकट किया वह ब्रह्मचारी भी तत्काल भूमि पर दण्डवत् पड़ कर प्रणाम करने लगा ॥ जो जन इस रहस्य को श्रद्धा पूर्वक श्रवण करेंगे, उन्हें गौरचन्द्र प्रभु अवश्य ही मिलेंगे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ब्रह्मचारी पर कृपा करके प्रभु आनन्द के आवेश में प्रचुर नृत्य करने लगे ॥५७॥ उस ब्राह्मण के चरण में मेरा नमस्कार है कि जिसकी श्रीचैतन्य देव के दण्ड के प्रति ऐसी सुबुद्धि हुई (निन्दा-द्वेष नहीं हुआ) ॥ ५८ ॥ इस प्रकार प्रभु प्रति रात्रि कीर्तन करते हैं, पर उसे देखने की शक्ति (भक्तों को छोड़) औरों की नहीं है ॥ ५९ ॥ नदिया वासी सब मन-ही-मन में बड़े दुःखी हैं और निन्दकों

अन्तरे दुःखित लोक सब नदीयार। सभे पाषण्डीरे मन्द बोलये अपार ॥६०॥
"पापिष्ठ निन्दक बुद्धि नाशेर लागिया। हेन महोत्सवे देखिवारे नारे गिया ॥६१॥
पापिष्ठ-पाषण्डि सब सबे निन्दा जाने। वञ्चित हइया मरे ए हेन कीर्त्तने ॥६२॥
पाप-पाषण्डीर लागि निमाञि पण्डित। भालरे ओ द्वार नाहि देन कदाचित् ॥६३॥
तेंहो से कृष्णेर भक्त-जानेन सकल। ताहान हृदय पुनि परम-निर्मल ॥६४॥
आमरा सभेर यदि ताँरे भक्ति थाके। तबे नृत्य देखिव अवश्य कौन पाके" ॥६५॥
कौन नगरिया बोले "वसि थाक भाइ। नयन भरिया देखिबाङ एइ ठाँइ ॥६६॥
संसार उद्धार लागि निमाञि पण्डित। नदियार माझे आसि हइला विदित ॥६७॥
घरे घरे नगरे नगरे प्रति द्वारे। करिबेन सङ्कीर्त्तन बलिल सभारे ॥६८॥
भाग्यवन्त नगरिया सर्व-अवतारे। पण्डितेर गण सब निन्दा करि मरे ॥६९॥
दिवस हइले सब नगरिया गण। प्रभु देखिवार तरे करेन गमन ॥७०॥
केह्रो वा नूतन द्रव्य, कारो हाथे कला। केह्रो घृत, केह्रो दधि, केह्रो दिव्य माला ॥७१॥
लइया चलेन सभे प्रभु देखिवारे। प्रभु देखि सर्व जन दण्डवत् करे ॥७२॥
प्रभु बोले "कृष्ण भक्ति हउक सभार। कृष्ण-गुण-नाम बइ ना बलिह आर" ॥७३॥
आपने सभारे प्रभु करे उपदेश। "कृष्ण नाम महा मंत्र शुनह विशेष ॥७४॥
'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे" ॥७५॥
प्रभु बोले "कहिलाङ एइ महामंत्र। इहा गिया जप' सभे करिया निर्बन्ध ॥७६॥
इहा हैते सर्व सिद्धि हइव सभार। सर्व क्षण बोल, इथे विधि नाहि आर ॥७७॥

को खूब खरी खोटी सुनाते हैं ॥ ६० ॥ (कि) "ये पापी निन्दक लोग, बुद्धि भ्रष्ट होने के कारण, ऐसे महोत्सव के दर्शन को न जाकर, केवल मात्र निन्दा करना ही जानते हैं और ऐसे संकीर्तन से वंचित ही रह जाते हैं ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ "कदाचित्" इन पापी-निन्दकों के कारण ही निमाई पंडित भलों को भी भीतर नहीं आने देते हैं ॥ ६३ ॥ परन्तु वे तो श्रीकृष्ण के भक्त हैं–सब जानते हैं। उस पर उनका हृदय भी परम निर्मल है। यदि हम सबों को उन पर भक्ति बनी रहेगी तो हम उनका नृत्य किसी-न-किसी प्रकार अवश्य देख पायँगे" ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ एक नगर वासी बोला–'बैठे रहो भाई! यहीं देख लेना नेत्र भर कर ॥ निमाइ पंडित संसार के उद्धार के लिये नदिया में आकर प्रकट हुये हैं ॥ वे नगर २ में, घर २ में, द्वार २ प्रति संकीर्तन करेंगे–यह मैं तुमसे कहे देता हूँ" ॥ ६६–६८ ॥ (ग्रन्थकार कहते हैं कि) नगरवासी जन सभी अवतारों में भाग्यवान हैं। यह तो पंडितों का ही दल है जो निन्दा कर करके मरता है। दिन निकल आने पर सब नगरवासी प्रभु के दर्शनार्थ गमन करते हैं ॥ ६९ ॥ ७० ॥ कोई तो नवीन वस्तु भेंट लेकर, कोई हाथ में केला लेकर, कोई घी, कोई दही, कोई सुन्दर माला लेकर प्रभु के दर्शन के लिये चलते हैं तथा दर्शन करने पर सब लोग दण्डवत् प्रणाम करते हैं ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ प्रभु कहते हैं, "तुम सबको कृष्ण-भक्ति मिले। तुम सब श्रीकृष्ण के गुण और नाम के अतिरिक्त और कुछ न बोला करो" ॥ ७३ ॥ प्रभु आप ही सब को उपदेश करते हैं कि "ध्यान पूर्वक कृष्ण-नाम-महा मंत्र सुनो, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे' ॥ यह महा मंत्र मैंने कहा इसे सब निश्चित संख्या में नियम पूर्वक सब जपा करें ॥ ७४–७६ ॥ "इससे ही सबको सर्व सिद्धि प्राप्त हो जायगी। इसे सब समय कीर्तन किया करो। इसके लिये (देश-काल-पात्रादि की) कोई विधि नहीं है ॥ ७७ ॥ बस, अपने गृह के द्वार पर

दश पाँचे मिलि निज दुयारे बसिया। कीर्तन करिह सभे हाथे तालि दिया ॥७८॥
'हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः। गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन' ॥७९॥
कीर्त्तन कहिल एइ तोमा' सभाकारे। स्त्रीये पुत्र बापे मिलि कर' गिया घरे" ॥८०॥
प्रभु-मुखे मंत्र पाइ सभार उल्लास। दण्डवत् करि सभे गेला निज-वास ॥८१॥
निरवधि सभेइ जपेन कृष्ण नाम। प्रभुर चरण काय मने करे ध्यान ॥८२॥
सन्ध्या हैले आपन दुयारे सभे मिलि। कीर्त्तन करेन सभे दिया कर तालि ॥८३॥
एइ मत नगरे नगरे सङ्कीर्त्तन। कराइते लागि लेन शचीरनन्दन ॥८४॥
सभारे उठिया प्रभु आलिङ्गन करे। आपन गलार माला देइ सभाकारे ॥८५॥
दन्ते तृणकरि प्रभु परिहार करे। "अहर्निश भाइ सब! बोलह कृष्णेरे ॥८६॥
प्रभुर देखिया आर्ति कान्दे सर्व जन। काय मनो वाक्ये लइलेन सङ्कीर्त्तन ॥८७॥
परम-आनन्दे सब नगरिया गण। हाथे तालि दिया बोले 'राम नारायण' ॥८८॥
मृदङ्ग मन्दिरा शंख आछे सर्व घरे। दुर्गोत्सव काले वाद्य बाजाबार तरे ॥८९॥
सेइ सब वाद्य एबे कीर्त्तन समये। गायेन बा'येन सभे आनन्द हृदये ॥९०॥
हरिओ राम राम हरिओ राम राम। एइ मत नगरे उठिल ब्रह्म-नाम ॥९१॥
खोला बेचा श्रीधर जायेन सेइ पथे। दीर्घ करि हरि नाम बलिते बलिते ॥९२॥
शुनिञा कीर्त्तन आरम्भिला महा नृत्य। आनन्दे विह्वल हैला चैतन्येर भृत्य ॥९३॥
देखिया ताहान सुख नगरिया गण। बेढिया चौदिगे सभे करेन कीर्त्तन ॥९४॥
गड़ा गड़ि जायेन श्रीधर प्रेम रसे। बहिर्मुख-सकल दूरे ते थाकि हासे' ॥९५॥
कोन पापी बोले "हेर्-देख भाइ-सब। खोला वेचा मुनिसाओ हइल वैष्णव ॥९६॥

---

दस पाँच जने मिलकर हाथ से ताली देते हुये सब कीर्तन किया करें, ("हरि) हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः। गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन"। यह कीर्तन मैंने तुम सबों को बतला दिया। घर जा, स्त्री, पुत्र, पिता, सब मिलकर यह कीर्तन करो" ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ प्रभु के श्रीमुख से महा मंत्र प्राप्त करके सबको बड़ा उल्लास हुआ और वे दण्डवत्-प्रणाम कर अपने घरों को चले गये ॥ अब तो सब वाणी से निरन्तर कृष्ण नाम जपते हैं और चित से प्रभु का ध्यान करते हैं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ सन्ध्या होने पर अपने द्वार पर सब मिलकर हाथ से ताली बजाते हुये कीर्तन करते है ॥ इस प्रकार श्रीशचीनन्दन नगर २ में संकीर्तन कराने लगे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ( उपदेश के पश्चात् ) प्रभु उठकर सब को आलिंगन करते हैं और अपने गले की मालाएँ देते हैं ॥ ८५ ॥ और दाँतों में तिनका दबा कर प्रभु निहोरा करके कहते हैं, "भाइयो! अहर्निश कृष्ण-कीर्तन किया करो" ॥ ८६ ॥ प्रभु की आतुरता को देखकर सब लोग रो पड़ते हैं और काय-मन-वाक्य से संकीर्तन को अपनाते हैं ॥ ८७ ॥ सब नगरवासी बड़े आनन्द के साथ हाथों से ताली देते हुये 'राम नारायण' कहते हैं ॥ ८८ ॥ सब के घरों में दुर्गा-उत्सव के समय बजाने के लिये मृदंग, शंख, मजीरा, वाद्य हैं ही ॥ वे ही सब वाद्य अब संकीर्तन के समय कानन्द भरे हृदय से सब बजाते और गाते हैं ॥ ८९ ॥ ९० ॥ "हरि ओ राम राम, हरि ओ राम"—इस प्रकार (नदिया) नगर में ब्रह्म नाम की ध्वनि छा गयी ॥ ९१ ॥ केला का फल-फूल-साग बेचने वाला श्रीधर उस मार्ग से जोर २ से हरि नाम लेता हुआ जा रहा था। उसने संकीर्तन सुना तो महा नृत्य आरम्भ कर दिया। श्रीचैतन्य का भृत्य आनन्द में विह्वल हो गया ॥ ९२-९४ ॥ उसके सुख को देख कर नागरिक लोग उसे चारों ओर से घेर कर कीर्तन करने लगे ॥ ९५ ॥

परिधान-वस्त्र नाहि, पेटे नाहि भात। लोकेरे जानाय 'भाव हइल आमा' त' ॥९७॥
नगरिया गुला बोले "मागि खाइ मरे। अकालेइ दुर्गोत्सव आनिलेक घरे" ॥९८॥
एइ मत पाषण्डीरा वलये सदाय। प्रति दिन नगरिया गण 'कृष्ण' गाय ॥९९॥
एक दिन दैवे काजि सेइ पथे जाय। मृदङ्ग मन्दिरा शंख शुनिवारे पाय ॥१००॥
हरि नाम-कोलाहल चतुर्दिगे मात्र। शुनिञा स्मङरे काजि आपनार शास्त्र ॥१०१॥
काजि बोले "धर धर आजि करों कार्य। आजि वा कि करे तोर निमाञि-आचार्य" ॥१०२॥
आथे व्यथे पलाइल नगरिया गण। महा त्रासे केश केहो ना करे बन्धन ॥१०३॥
जाहारे पाइल काजि, मारिल ताहारे। भाङ्गिल मृदङ्ग, अनाचार कैल द्वारे ॥१०४॥
काजि बोले "हिन्दु यानि हइल नदिया। करिमुँ इहार शास्ति नागालि पाइया ॥१०५॥
क्षमा करिजाङ आजि, दैवे हैल राति। आर दिन लागि पाइलेइ लैब जाति ॥१०६॥
एइ मत प्रति दिन दुष्ट गण लेया। नगर भ्रमये काजि कीर्त्तन चाहिया ॥१०७॥
दुःखे सब नगरिया थाके लुकाइया। हिन्दु-काजी सब आरो मारे कदर्थिया ॥१०८॥
केहो बोले "हरि नाम लैब मने मने। हुड़ा हुड़ि वलियाछे के मन पुराणे ॥१०९॥
लंघिले वेदेर वाक्य एइ शास्ति हय। 'जाति' करियाओ ए-गुलार नाहि भय ॥११०॥
निमाञि पण्डित जे करेन अहंकारे। सब चूर्ण हइवेक काजिर दुयारे ॥१११॥

प्रेम रस में भरे श्रीधर धरती पर लोट-पोट हो गये। यह देख दूर खड़े बहिर्मुख लोग सब हँसने लगे ॥९६॥ एक पापी बोला, "देखो रे देखो भाइयो! साग बेचने वाला यह आदमी भी वैष्णव हो गया! तन में पहनने को कपड़ा नहीं, पेट में भात नहीं, पर दुनिया को जताता है कि मुझे प्रेम आ गया" ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ (दुष्ट) नागरिक लोग भी बोले-"हाँ! माँग २ कर पेट भरने से तो यह मरा जा रहा है, उस पर असमय में ही दुर्गा-उत्सव (अर्थात् नाचना-गाना) घर में बुला लाया है" ॥ ९९ ॥ इस प्रकार निन्दक लोग नित्य बकने लगे पर (सज्जन) नागरिक गण नित्य प्रति ही कृष्ण-कीर्तन करने लगे ॥ १०० ॥ दैवयोग से एक दिन काजी उस मार्ग से जा रहा था तो उसे मृदंग, मजीरा, शंख की ध्वनि सुनायी पड़ी ॥ १०१ ॥ चारों ओर केवल हरि नाम का कोलाहल सुनकर काजी को अपने शास्त्र (कुरान) का स्मरण हो आया ॥ १०२ ॥ वह बोल उठा, "पकड़ो, पकड़ो इन्हें! आज मैं कार्य करूँगा (दण्ड दूँगा)। देखूँ तो आज तुम्हारा आचार्य निमाई क्या कर लेता है।" नागरिक लोग घबड़ा कर इधर-उधर भागने लगे। डर के मारे उनके केश खुल गये पर उन्हें कोई बाँधता नहीं है ॥ १०३ ॥१०४॥ जो भी काजी के हाथ आ गया, उसे उसने मारा-पीटा, मृदंग फोड़ डाला और भी अनाचार द्वार पर किया ॥ १०५ ॥ काजी बोला, "ओह! नदिया में तो हिन्दुओं का राज्य हो गया! मेरे हाथ तो आ जायँ, अच्छी तरह दण्ड दूँगा। आज तो क्षमा किये जाता हूँ। संयोग से रात भी हो आयी है, लेकिन दूसरे दिन ऐसी कुछ खबर मिली तो जाति ले लूँगा" ॥ १०६ ॥ इस प्रकार प्रति दिन काजी दुष्ट लोगों को लेकर, कहीं कीर्तन तो नहीं हो रहा है, यह देखते हुये नगर में घूमने लगा ॥ १०७ ॥ दुःख के मारे नागरिक लोग सब छिप २ कर रहते हैं। उस पर हिन्दु काजी (पंडित नाम धारी) लोग भी उलटा-सीधा कहकर इनको डराते हैं ॥ १०८ ॥ कोई कहता है—"हरि नाम तो मन-ही-मन में लेना चाहिये। यह हो-हल्ला मचाना किस पुराण में कहा है ॥ १०९ ॥ वेद का वचन न मानने से यही सजा मिलती है। इनको अपनी जाति चले जाने का भी तो कोई भय नहीं है ॥ ११० ॥ वह निमाई पंडित जो बड़ा ही अहंकार करता है। वह सब भी काजी के आगे चूर हो जायगा ॥ १११ ॥ और वह नित्यानन्द

नगरे नगरे जे बुलेन नित्यानन्द। देख तार कोन दिन वाहि राय रङ्ग ॥११२॥
उचित बलिते हइ आमरा पाषण्ड। धन्य नदियाय एत उपजिल भण्ड ॥११३॥
भये केहो किछु नाहि करे प्रत्युत्तर। प्रभु स्थाने गिया सभे करिला गोचर ॥ ११४ ॥
"काजिर भयेते आर ना करि कीर्त्तन। प्रतिदिन बुलेलइ सहस्रेक जन ॥ ११५ ॥
नवद्वीप छाड़िया जाइव अन्य स्याने। गोचरिल एइ दुइ तोमार चरणे ॥११६॥
कीर्त्तनेर वाध शुनि प्रभु विश्वम्भर। क्रोधे हइलेन प्रभु रुद्र-मूर्त्तिधर ॥११७॥
हुँकार करये प्रभु शचीरनन्दन। कर्णधरि 'हरि' बोले नगरिया गण ॥११८॥
प्रभु बोले "नित्यानन्द! हस्रो सावधान। एइ क्षणे चल सर्व-वैष्णवेर स्थान ॥११९॥
सर्व नवद्वीपे आजि करिमु कीर्त्तन। देखों मोरे कौन कर्म करे कौन जन ॥१२०॥
देखि आजि काजिर पोड़ाङ घर द्वार। कौन कर्म करे देखों राजा वाताहार ॥१२१॥
प्रेमभक्ति वृष्टि आजि करिव विशाल। पाषण्डीर गणेर हइव आजि काल ॥१२२॥
चल चल भाइ सव नगरियागण। सर्वत्र आमार आज्ञा करह कथन ॥१२३॥
कृष्णेर रहस्य आजि देखिवेक जेइ। एको महाद्वीप लइ आसिवेक सेइ ॥१२४॥
भाङ्गिया काजिर घर काजिर दुयारे। कीर्त्तन करमुँ, देखों कौन कर्म करे ॥१२५॥
अनन्त ब्रह्माण्ड मोर सेवकेर दास। मुञि विद्यमानेओ कि भयेर प्रकाश ॥१२६॥
तिलार्द्धेको भय केहोना करिह मने। विकाले आसिवे ज्ञाट करिया भोजने ॥१२७॥
ततक्षणे चलिलेन नगरियागण। आनन्दे डूबिला सभे किसेर भोजन ॥१२८॥
"निमाञि पण्डित आजि नगरे नगरे। नाचिवेन" ध्वनि हैल प्रति घरे घरे ॥१२९॥

---

तो मोहल्ले २ में घूमता फिरता है। देख लेना उसका भी कोई दिन रंग (नशा) उतर जायगा ॥ ११२ ॥ देखो तो सही हम उचित बात कहते हैं तो निन्दक कहलाते हैं! धन्य इस नदिया को इतने ढोंगी उपजे हैं यहाँ" ॥ ११३ ॥ डर के मारे कोई इनको उत्तर नहीं देते हैं पर (एक दिन) उन्होंने जाकर प्रभु के निकट सब बातें निवेदन कर दीं ॥ ११४ ॥ "हम काजी के भय से अब और कीर्तन नहीं करते हैं। वह प्रति दिन हजारों सिपाहियों को लेकर घूमता फिरता है ॥ ११५ ॥ हम तो अब नवद्वीप छोड़ कर अन्यत्र चले जायँगे–यह हमने आपके चरण युगल में निवेदन कर दिया" ॥ ११६ ॥ कीर्तन पर यह प्रतिबन्ध (रोक-थाम) सुनकर प्रभु विश्वम्भर क्रोध के कारण रुद्र स्वरूप हो गये ॥ ११७ ॥ प्रभु शचीनन्दन हुँकार करने लगे और नगरवासी जन 'हरि' ध्वनि करने लगे ॥ ११८ ॥ प्रभु बोले–"नित्यानन्द! सावधान हो जाओ! इसी समय हम सब वैष्णवों के निकट चलें ॥ ११९ ॥ मैं आज सारे नवद्वीप में कीर्त्तन करूँगा। देखूँ कौन मेरा क्या कर लेता है ॥ १२० ॥ देख लेना आज काजी का घर-द्वार सब जला दूँगा। देखूँ उसका राजा मेरा क्या बिगाड़ लेता है ॥१२१ ॥ 'आज मैं प्रेम भक्ति की बड़ी भारी वर्षा करूँगा और निन्दकों के लिये काल स्वरूप बन जाऊँगा ॥ १२२ ॥ जाओ सब नागरिक भाइयो जाओ, और सर्वत्र मेरी आज्ञा को सुनादो-कि जो कोई आज श्रीकृष्ण के रहस्य को देखना चाहे वह एक बड़ा सा दीपक लेकर आवे ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ 'मैं काजी का घर तोड़ फोड़ दूँगा और उसके द्वार पर ही कीर्त्तन करूँगा देखूँ वह क्या करता है। अनन्त ब्रह्माण्ड मेरे सेवक का दास है। मेरे विद्यमान रहते भय किस बात का? आधा तिल बराबर भी कोई अपने मन में भय न करे, बस शीघ्र ही भोजन करके सायंकाल को सब यहाँ आ जावें ॥ १२५ ॥ १२७ ॥ नागरिक गण तुरन्त ही चल पड़े। वे आनन्द में डूब रहे [illegible] भोजन कैसा? (कौन करे) ॥ १२८ ॥

जार नृत्यना देखिया नदियार लोक। कत कोटि सहस्र करिया आछे शोक ॥१३०॥
हेन जन नाचिवेन नगरे नगरे। आनन्दे देउटि बान्धे प्रति घरे घरे ॥१३१॥
बापे वान्धिलेओ पुत्र बान्धे आपनार। केहो कारे हरिषे ना पारे राखिबार ॥१३२॥
ता'-बड़ता'-बड़ करि सभेइ वान्धेन। बड़ बड़ भाण्डे तैल करिया लयेन ॥१३३॥
अनन्त अर्बुदलक्ष लोक नदियार। देउटिर संख्या करिबारे शक्ति कार ॥१३४॥
इथि मध्ये जे जे व्यवहारे बड़ हय। सहस्रेको साजाइया कौन जन लय ॥१३५॥
हइल देउटिमय नवद्वीपपुर। स्त्री-बाल वृद्धेरो रङ्ग बाढ़िल प्रचुर ॥१३६॥
एहो शक्ति आनेर किहय कृष्ण-विने। तभु पापी लोक ना जानिल एतदिने ॥१३७॥
ईषत् आज्ञाय मात्र सर्व नवद्वीप। चलिला देउटि लइ प्रभुर समीप ॥१३८॥
शुनि सर्व वैष्णव आइला ततक्षण। सभारे करेन आज्ञा शचीरनन्दन ॥१३९॥
"आगे नृत्य करिबेन आचार्य गोसाञि। एक सम्प्रदाय गाइवेन तान ठाञि ॥१४०॥
मध्ये नृत्य करि जाइवेन हरिदास। एक सम्प्रदाय गाइवेन तान पाश ॥१४१॥
तबे नृत्य करिवेन श्रीवास पण्डित। एक सम्प्रदाय गाइवेन तानभित ॥१४२॥
नित्यानन्ददिगे मात्र चाहिलेन प्रभु। नित्यानन्द बोले "तोमाना छाड़ि वकभु ॥१४३॥
धरिया बुलिव प्रभु! एइ कार्य मोर। तिलेको हृदये पद ना छाड़िव तोर ॥१४४॥
स्वतंत्र नाचिते प्रभु! मोर कोन् शक्ति। यथातुमि, तथाआमि, एइ मोर भक्ति" ॥१४५॥
प्रेमानन्द धारा देखि नित्यानन्द-अङ्गे। आलिगन करि राखिलेन निज-सङ्गे ॥१४६॥

---

'निमाइ पण्डित आज नगर २ ( मोहल्ला २ ) में संकीर्तन करेंगे' यह ध्वनि घर २ में होने लगी ॥ १२९ ॥ जिनके नृत्य को देखने न पाकर कितने करोड़ नदियावासी दुखित थे, आज वही व्यक्ति नगर २ में नृत्य करेगा इस आनन्द में घर २ में लोग मसाल बनाने लगे ॥ १३० ॥ १३१ ॥ बाप के मसाल बना लेने पर भी बेटा अपनी मसाल अलग बनाता है। हर्ष के मारे कोई किसी को नहीं रोकता है ॥ १३२ ॥ वह उस से बड़ा तो वह उससे बड़ा इस तरह सब लोग मसाल बनाते हैं और बड़े २ पात्रों में तेल ले लेते हैं ॥ १३३ ॥ नदिया में अनन्त अरब मनुष्य थे किसकी सामर्थ्य जो उनकी मसालों की गिनती कर सके ॥ १३४ ॥ इनमें भी जो व्यवहार में बड़ी थीं ऐसे २ हजारों मसालों को कोई सजा गुजा लेता है ॥ १३५ ॥ नवद्वीप पुरी द्वीप शिखामयी हो गयी। स्त्री बाल, वृद्धों का आनन्द रङ्ग भी खूब बढ़ चला ॥ १३६ ॥ यह शक्ति क्या श्री-कृष्ण के अतिरिक्त किसी दूसरे की हो सकती है तब भी पापी लोगों को इतने दिनों तक इसका ज्ञान न हुआ ॥ १३७ ॥ एक छोटी सी आज्ञा होते ही समस्त नवद्वीप मसालों को लिये प्रभु के समीप चल पड़ा ॥ १३८ ॥ सुनते ही वैष्णव जन भी तुरन्त वहां आ पहुँचे। उन सब के प्रति शचीनन्दन प्रभु ने यह आदेश किया ॥ १३९ ॥ (कि) 'गोसाईं अद्वैताचार्य तो आगे २ नृत्य करेंगे एक दल उनके पास रहकर कीर्तन करेगा मध्य में हरिदास नृत्य करते हुए जायँगे एक दल उनके पास कीर्त्तन करेगा। उसके पश्चात् श्रीवास पण्डित नृत्य करेंगे एक दल उनके पास कीर्तन करेगा'। १४० ॥ १४२ ॥ नित्यानन्द जी की ओर प्रभु ने केवल दृष्टि ही डाली तो वे बोल उठे 'मैं तुम्हें कभी नहीं छोड़ूँगा। ( तुम जब नृत्य करोगे तो ) मैं तुमको सम्हाले पीछे २ घूमूँगा प्रभो! यह कार्य मेरा मैं तो तिल भर समय के लिये भी अपने हृदय पर से तुम्हारे चरण को हटने नहीं दूँगा। मेरी क्या शक्ति कि मैं तुम्हें छोड़ कर स्वतंत्र नाच सकूँ, जहाँ तुम वहीं मैं यही मेरी भक्ति है' ॥ १४३ ॥ १४५ ॥ श्री नित्यानन्द के अङ्ग में प्रेमानन्द की धारा (प्रवाहित होते) देख प्रभु ने उनको आलिगन करके अपने साथ ही रक्खा ॥ १४६ ॥ इस प्रकार जिसके चित्त में जैसा उमङ्ग उठा वैसा

एइ मत जार जैन चित्तेर उल्लास। केहोवा स्वतंत्रनाचे, केहो प्रभु पाश ।।१४७।।
मनदिया शुन भाइ ! नगर कीर्त्तन। जे कथा शुनिले कर्म बन्धेर खण्डन ।।१४८।।
गदाधर, वक्रेश्वर, मुरारि, श्रीवास। गोपीनाथ, जगदीश, विप्र-गङ्गादास ।।१४६।।
रामाइ, गोविन्दानन्द, श्रीचन्द्र शेखर। वासुदेव, श्रीगर्भ, श्रीमुकुन्द, श्रीधर ।।१५०।।
गोविन्द, जगदानन्द, नन्दन- आचार्य। शुक्लाम्बर-आदि जे जे जाने रह कार्य।।१५१।।
अनन्त चैतन्यभृत्य कत जानि नाम। वेदव्यास द्वारे व्यक्त हइव पुराण ।।१५२।।
साङ्गोपाङ्ग-अस्त्र पारिषदे प्रभु नाचे। इहा वर्णिबारे कि नरेर शक्ति आछे। १५३।
अवतारो एमत कि आछे अद्भुत। जाहा प्रकाशिलेन हइया शचीसुत ।।१५४।।
तिले तिले बाड़े विश्वम्भरेर उल्लास। अपराह्न आसिया हइल परकाश ।।१५५।।
भकतगणेर चित्ते हइल आनन्द। सुख सिन्धु माझे भासे सब भक्तवृन्द ।।१५६।।
नगरे नाचिब प्रभु कमलार कान्त। देखिया जीवेर दुःख घुचिब नितान्त ।।१५७।।
स्त्री बालक वृद्ध किबा स्थावर जङ्गम। से नृत्य देखिले सर्व बन्धेर मोचन ।।१५८।।
काहारो नाहिक बाह्य आनन्द आवेशे। गोधूलि समय आसि हइल प्रवेशे ।।१५६।।
कोटि कोटि लोक आसि आछये दुयारे। परशिया ब्रह्माण्ड श्रीहरि ध्वनि करे ।। ६०।
हुँकार करिला प्रभु शचीरनन्दन। सुखे परिपूर्ण हैल सभार श्रवण। १६१।।
हुँकारेर सुखे सभे हइला विह्वल। 'हरि' बलि सभे दीप ज्वालिल सकल ।।१६२।।
लक्ष कोटि दीप सब चारिदिगे ज्वले। लक्ष कोटि लोक चारिदिगे 'हरि' बोले ।।१६३।

ही कोई स्वतंत्र नाचते हैं तो कोई प्रभु के समीप नाचते हैं ।। १४७ ।। भाइयो ! नदिया नगर कीर्त्तन का वृत्तान्त एकाग्र मन से सुनो जिस कथा के सुनने से कर्म बन्धन टूट जाते हैं ।। १४८ ।। गदाधर, वक्रेश्वर, मुरारि, श्रीवास, गोपीनाथ, जगदीश, गङ्गादास ब्राह्मण, रामाई, गोविन्दानन्द, श्री चन्द्रशेखर, वासुदेव, श्रीगर्भ, श्रीधर, श्रीमुकुन्द, गोविन्द, जगदानन्द, नन्दनाचार्य, शुक्लाम्बर, आदि प्रभु के रहस्य कार्य के ज्ञाता जो अनन्त श्री चैतन्य दास हैं उनके नाम तो वेद व्यास द्वारा पुराण में व्यक्त होंगे मैं भला कितने नामों को जानता हूं ।। १४६ ।। १५२ ।। प्रभु अङ्ग उपङ्ग अस्त्र और पार्षदों के सहित नृत्य कर रहे हैं इसे वर्णन करने को मनुष्य में भला क्या शक्ति (यहाँ अङ्ग तुल्य नित्यानन्द एवं अद्वैताचार्य हैं। उपाङ्ग अर्थात् अङ्ग के अङ्ग तुल्य श्रीवास पण्डित आदि हैं। अस्त्र तुल्य भगवन्नाम है और पार्षद हैं गदाधर गोविन्द आदि) ।। १५३ ।। अन्य अवतारों में ऐसी अद्भुत बात क्या है जैसी शचीनन्दन बन करके प्रभु ने प्रकाशित की है ।। १५४ ।। पल २ में विश्वम्भर प्रभु का आनन्द बढ़ता जाता है इतने ही में तीसरे पहर का समय हो गया ।। १५५ ।। भक्त लोगों के चित्त में आनन्द उमड़ आया और वे सुख के सागर में बह चले ।।१५६।। (सुख यह कि ) प्रभु कमलाकान्त आज नगर में नृत्य करेंगे जिसके दर्शन कर जीवों के दुःख का निपट नाश हो जायगा ।। १५७ ।। स्त्री बालक वृद्ध ही नहीं स्थावर जंगम जिस किसी ने वह नृत्य देखा, उसी के समस्त बन्धन कट गये ।। १५८ ।। आनन्द के आवेश में किसी को बाह्य सुधि नहीं है कि इतने ही में गोधूलि वेला हो आयी ।। १५६ ।। करोड़ों लोग द्वार पर आ पहुँचे और ब्रह्माण्ड स्पर्शी हरिध्वनि करने लगे ।। १६० ।। प्रभु शचीनन्दन ने भी हुँकार किया जिससे सब के कर्ण सुख से भरपूर हो गया ।। १६१ ।। हुँकार के सुख से सब विह्वल हो गये और 'हरि' ध्वनि करते हुए सबने मसालें जला लीं ।। १६२ ।। लाखों करोड़ों मसालें चारों ओर जल उठीं लाखों करोड़ों लोग चारों ओर 'हरि' ध्वनि करने लगे ।। १६३ ।। अहा क्या शोभा उस

किशोभा हइल से बलिते शक्ति कार। किसुखेर नाजानि हइल अवतार ॥ १६४ ॥
किवा चन्द्रशोभा करे,किवादिन मणि। किवा तारागण ज्वले, किछुइ काजानि ॥१६५॥
सवे ज्योतिर्मय देखि सकल आकाश। ज्योतिरूपे कृष्ण किवा करिला प्रकाश ॥ १६६ ॥
'हरि' बलि डाकिलेन गौराङ्गसुन्दर। सकल-वैष्णवगण हइला सत्वर ॥ १६७ ॥
करिते लागिला प्रभु बेढ़िया कीर्तन। सभार अङ्गेते माला श्री फागु चन्दन ॥ १६८ ॥
करताल मन्दिरा सभार शोभे करे। कोटि सिंह जिनिजा सभेइ शक्ति धरे ॥ १६९ ॥
चतुर्दिगे आपक-विग्रह भक्त गण। बाहिर हइला प्रभु श्री शचीनन्दन ॥ १७० ॥
प्रभु मात्र बाहिर हइला नृत्य रसे। 'हरि' बलि सर्व लोक महानन्दे भासे ॥ १७१ ॥
संसारेर ताप हरे' श्रीमुख देखिया। सर्व लोक 'हरि' बोले आलग हइया ॥ १७२ ॥
जिनिजा कन्दर्प-कोटि लावण्येर सीमा। हेन नाहि,जाहा दिया करिब उपमा ॥ १७३ ॥
तथा पिहृ बलि तान कृपा-अनुसारे। अन्यथा से रूप कहिबारे के वा पारे ॥ १७४ ॥
ज्योतिर्मय कनक-विग्रह वेद-सार। चन्दने भूषित जेन चन्द्रेर आकार ॥ १७५ ॥
चाँचर-चिकुरे शोभे मालतीर माला। मधुर मधुर हासे' जिनि सर्व कला ॥ १७६ ॥
ललाटे चन्दन शोभे फागुविन्दु-सने। बाहु तुलि 'हरिहरि' बोले श्रीवदने ॥ १७७ ॥
आजानु लम्बित माला सर्व-अङ्गे होले। सर्व अंग तिते प्रद्यन पनेर जले ॥ १७८ ॥
दुइ महा भुज जेन कनकेर स्तम्भ। पुलकेर शोभा जेन कनक-कदम्ब ॥ १७९ ॥

समय हुई-कौन उसे बखान सकता है ! न जाने कौन-से सुख का अवतार उस समय हो गया ॥ १६४ ॥ वह क्या चन्द्रमा की चाँदनी छा रही थी, अथवा सूर्य का प्रकाश हो रहा था अथवा तारागणों ही जल रहे थे-कुछ कहा नहीं जाता ॥ १६५ ॥ बस, गगन मण्डल ज्योतिर्मय दिखायी दे रहा था। अथवा तो ज्योति रूप से क्या श्री कृष्ण ही प्रकाशमान हो रहे थे ! १६६ ॥ 'हरि' नाम के घोस द्वारा गौराँग सुन्दर ने आह्वान किया जिससे समस्त वैष्णव मंडली में त्वरा मच गयी ॥ १६७ ॥ ये सब प्रभु को घेर कर कीर्तन करने लगे। सब के शरीरों में माला, कुंकुम और चन्दन और हाथों में करताल ओ मजीरा शोभा दे रहे हैं तथा सब करोजें सिंहों को विजय करने वाली शक्ति धारण किये हुये हैं ॥ १६८-१६९ ॥ प्रभु शचीनन्दन चारों ओर अपने विग्रह स्वरूप भक्तजनों से घिरे हुये बाहर निकले ॥ १७० ॥ प्रभु के नृत्य-रस-विभोर हो बाहर निकलते ही 'हरि' घोष करती हुई सारी जनता महा आनन्द की धारा में बह चली ॥ १७१॥ श्री मुख के दर्शन कर करके सब लोग अपने संसार के ताप को शान्त करते थे और उच्च स्वर से 'हरि हरि' बोलते थे ॥ १७२ ॥ प्रभु का रूप कोटि-कन्दर्प-विजयी था उसमें लावण्यता की सीमा थी। उसकी उपमा देने योग्य कोई वस्तु नहीं है ॥ १७३ ॥ तथापि उनकी कृपा के अनुसार कुछ बखानता हूं, नहीं तो कृपा के बिना उस रूप को कोई क्या बखान सकता है ॥ १७४ ॥ गौर चन्द्र की देह ज्योतिर्मय सुवर्ण विग्रह हैं, वेदों का सार-स्वरूप हैं। उनके अंग चन्दन से चर्चित हैं, घुँघराले केशों पर मालती की माला शोभा दे रही है। वे अपने मधुर २ हास्य से कलाओं के सौन्दय-माधुर्य को पराजित कर रहे हैं ॥ १७५-१७६ ॥ उनके ललाट पर चन्दन के मध्य में कुंकुम-बिन्दु शोभा दे रहा है। वे दोनों भुजाओं को ऊपर उठाकर श्री मुख से 'हरि हरि' बोल रहे हैं। घुटने तक की लम्बी माला सब अंगों के ऊपर भूल रही है और कमल नयनों के जल से सब अंग भीज रहे हैं ॥१७७-१७८॥ उनकी दोनों बड़ो २ भुजाएँ मानो तो सुवर्ण के स्तम्भ हैं तथा अंगों में पुलक की शोभा सुवर्ण-कदम्ब के सुमनों के समान है ॥ १७९ ॥ अधर लाल लाल सुरंग हैं, दन्त-पंक्ति अति

सुरङ्ग अधर अति सुन्दर दर्शन । श्रुति मूले शोभा करे भ्रूभङ्ग-पत्तन ॥ १८० ॥
गजेन्द्र जिनिजा स्कन्ध,हृदय सुपीन । ताहि शोभे शुल्क यज्ञसूत्र अति क्षीण ॥ १८१ ॥
चरणारविन्दु-रमा तुलसीर स्थान । परम-निर्मल-सूक्ष्म-वास परिधान ॥ १८२ ॥
उन्नत नासिका, सिंह-ग्रीव मनोहर । सभा' हैते सुपीत सुदीर्घ कलेवर ॥ १८३ ॥
जे-से खाने थाकिया सकल लोक वोले । "अइ ठाकुरेर केश शोभे नाना फूले ॥ १८४ ॥
एतेक लेकिर से हइल समुच्चय । सरिषाओ पड़िलेओ तल नाहि हय ॥ १८५ ॥
तथापिह हेन कृपा हइल तखन । सभेइ देखेन सुखे प्रभुर वदन ॥ १८६ ॥
प्रभुर श्रीमुख देखि सब नारीगण । हुला हुलि दिया 'हरि' बोले अनुक्षण ॥ १८७ ॥
कान्दिर सहित कला सकल दुयारे । पूर्ण-घट शोभे नारिकेल आम्रसारे ॥ १८८ ॥
घटेर प्रदीप ज्वले परम-सुन्दर । दधि दूर्बा धान्य दिव्य-बाटार उपर ॥ १८९ ॥
एइमत नदियार प्रति द्वारे द्वारे । हेन नाहि जानि इहा कौन जन करे ॥ १९० ॥
बले स्त्री-पुरुष सर्व लोक प्रभु-सङ्गे । केहो काहो ना जाने परमानन्द-रङ्गे ॥ १९१ ॥
चोरेर आछिल चित्त—एइ अवसरे । आजि चुरि करिवाङ प्रति घरे घरे ॥ १९२ ॥
सेइ चोर पासरिल आयन वेभार । 'हरि' वइ मुखे कारो ना आइसे आर ॥ १९३ ॥
हइल सकल पथ खइ-कड़ि-मय । के वा करे, केवा फेले, हेन रङ्ग हय ॥ १९४ ॥
स्तुति-हेन ना मानिहए-सकल कथा । एइ मत हये—कृष्ण. विहरये यथा ॥ १९५ ॥
नव-लक्ष प्रासाद द्वार का रत्न मय । निमेषे हइल, एइ भागवते कय ॥ १९६ ॥

---

सुन्दर है तथा भ्रकुटि का विस्तार कर्ण पर्यन्त शोभा दे रहा है ॥ १८० ॥ उनका स्कन्ध देश गजेन्द्र को परास्त करता है, उन्नत, पुष्ट वक्षस्थल है उस पर अति सूक्ष्म शुल्क यज्ञोपवीत शोभित है ॥ १८१ ॥ श्री चरणाविंद लक्ष्मी एवं तुलसी के निवास स्थान है। वे परम स्वच्छ औ सूक्ष्म वस्त्र धारण किये हुये है।१८२॥ नासिका उन्नत है, सिंह की ग्रीवा सदृश बाँकी ग्रीवा मनोहर है। वर्ण ( उपास्थित ) सब लोगों से अधिक गौर है और कलेवर सब से दीर्घ ( ऊँचा ) है ॥ १८३ ॥ ( इस कारण ) जो जो जहाँ पर हैं वह वहीं से वे सब कहते हैं" वह देखो प्रभु के केश नाना प्रकार के पुष्पों से सशोभित हो रहे हैं" ॥ १८४ ॥ वहाँ लोगों का इतना विशाल समुदाय ( भीड़ ) हो गया कि सरसों का दाना गिरे तो नीचे भूमि पर न पहुँच सके ॥ १८५ ॥ तथापि उस समय ऐसी कृपा हुई कि सभी बड़े सुख से प्रभु का दर्शन कर पा रहे थे ॥ १८६ ॥ प्रभुके मुख का दर्शन कर स्त्रियां हुलु ध्वनि करती हुई क्षण २ में 'हरि बोलती हैं ॥ १८७ ॥ वहाँ द्वार २ पर फल सहित कदली-वृक्ष, तथा श्री फल औ आम्रपल्लव सहित जल पूर्ण घट शोभित थे ॥ १८८ ॥ घृत के प्रदीप बड़े सुन्दर जल रहे थे तथा दिव्य पात्रों में दही, दूब, धान आदि सजाये हुये रक्खे थे ॥ १८९ । इस प्रकार की सजावट नदिया के द्वार २ पर थी—न मालूम कौन यह सब कर रहा था ॥ १९० ॥ स्त्री-पुरुष सभी प्रभु के साथ २ लगे फिरते थे, परमानन्द में रंगे कोई किसी को जानता-पहिचानता भी न था ॥ १९१ ॥ चोर के मन में था कि आज इस अवसर पर घर २ में चोरी करे परन्तु वह चोर भी अपना कार्य भूल गया। 'हरि' नाम को छोड़ और कुछ किसी के मुख में आता ही न था ॥ १९२-१९३ ॥ मार्ग सारा खील और कौड़ियों से बिछ गया—कौन कर रहा है, कौन बरसा रहा है, किसी का ध्यान नहीं, सब आनन्द में ऐसे मस्त हो रहे हैं ॥१९४॥ इन सब बातों को कोई कोरी स्तुति न समझे। वास्तव में जहाँ श्रीकृष्ण विहार करते हैं वहाँ ऐसी ही अद्भुत बातें सब होती हैं ॥१९५॥ देखो, द्वारिका

जे-काले यादव-सङ्गे सेइ द्वार काय। जल केलि करि लेन एइ द्विज राय ॥ १९७ ॥
जगते विदित हय लवण सागर। इच्छा मात्र हइल अमृत-जल-धर ॥ १९८ ॥
हरि वंशे कहेन ए सब गोप्य-कथा। एतेके सन्देह किछु ना करिह एथा ॥ १९९ ॥
से-इ प्रभु नाचे निज कीर्त्तने बिह्वल। आपनेइ उपसन्न सकल मंगल ॥ २०० ॥
भागी रथी तीरे प्रभु नृत्य करि जाय। आगे पाछे 'हरि' बलि सर्व लोक धाय ॥ २०१ ॥
आचार्य गोसाञि आगे जब कथो लैया। नृत्य करि चलिलेन परानन्द हैया ॥ २०२ ॥
तबे हरि दास कृष्ण सुखेर सागर। आज्ञाय चलिला नृत्य करिया सुन्दर ॥ २०३ ॥
तबे नृत्य करिया चलिला श्री निवास। कृष्ण सुखे परि पूर्ण जाहार विलास ॥ २०४ ॥
एइ मत भक्तगण आगे नाचि जाय। सभारे बेढ़िया एक सम्प्रदाय गाय ॥ २०५ ॥
सकल-पश्चाते प्रभु गौरांग सुन्दर। जायेन करिया नृत्य अति मनोहर ॥ २०६ ॥
मधु-कण्ठ हइलेन सर्व भक्तगण। कभु नाहि गाये—सेहो हइल गायन ॥ २०७ ॥
मुरारी, गोविन्द-दत्त, रामजि, मुकुन्द। वक्रेश्वर वासुदेव आदि जत वृन्द ॥ २०८ ॥
सभेइ नाचेन प्रभु बेढ़िया गायेन। आनन्दे पूर्णित प्रभु-संहति जायेन ॥ २०९ ॥
नित्यानन्द गदा धर जाय दुइ-पाशे। प्रेम-सुधा सिन्धु-माझे दुइ जन भासे ॥ २१० ॥
चलिलेन महा प्रभु नाचिते नाचिते। लक्ष कोटि लोक धाय प्रभुर देखिते ॥ २११ ॥
कोटि कोटि महा ताप ज्वलिते लागिल। चन्द्रेर किरण सर्व शरीरे हइल ॥ २१२ ॥
चतुर्दिगे कोटि कोटि महा दीप ज्वले। कोटि कोटि लोक चतुर्दिगे 'हरि' बोले ॥ २१३ ॥

---

में नौ लाख रत्नमय महल पलक मारते प्रकट हो गये थे—यह बात तो भागवत ही कहती है ॥ १९६ ॥ जिस समय यादवों को लेकर इसी द्विजराज ( गौर सुन्दर ) ने जल विहार किया था, तो संसार में लवण सागर के नाम से विख्यात समुद्र भी प्रभु की इच्छा मात्र से अमृत जलमय हो गया था ॥ १९७-१९८ ॥ हरिवंश में यह सब गुप्त चरित वर्णित हैं। इससे यहाँ भी कुछ सन्देह नहीं करना चाहिये ॥ १९९ ॥ वही प्रभु आज निज ( नाम के ) कीर्तन में विह्वल होकर नृत्य कर रहे हैं। अतएव उनकी सेवा में समस्त मङ्गल स्वयं ही उपस्थित हो रहे हैं ॥ २०० ॥ प्रभु भागीरथी गङ्गा के तीर पर नृत्य करते हुये जा रहे हैं और उनके आगे पीछे सब लोग 'हरि' ध्वनि करते हुए भागे जा रहे हैं ॥ २०१ ॥ सबके आगे २ अद्वैताचार्य गुसाँई कुछ भक्तों को लेकर परा-आनन्द में विभोर, नृत्य करते हुये चले जा रहे हैं ॥ २०२ ॥ उनके पीछे कृष्ण सुख के सागर हरिदास प्रभु की आज्ञा से नृत्य करते हुये चले हैं ॥ २०३ ॥ फिर चले हैं नृत्य करते हुये श्रीनिवास, जिनकी गति विलास से परिपूर्ण सुख छलक रहा है ॥ २०४ ॥ इस प्रकार आगे २ भक्तजन नृत्य करते २ चले हैं और उन सबको घेर कर एक २ मण्डली गाती हुई चली है ॥ २०४ ॥ सबके पीछे प्रभु गौर सुन्दर अति मनोहर नृत्य करते हुये चले हैं ॥ २०६ ॥ समस्त भक्त जनों के कण्ठ सुमधुर होगये हैं। जो कभी गाते नहीं थे, वे भी मधुर गान करने लगे हैं ॥ २०७ ॥ मुरारि, गोविन्ददत्त, रामाई, मुकुन्द, वक्रेश्वर, वासुदेव आदि भक्तगण सब प्रभु को घेर कर नाचते और गाते हैं ॥ २०८-२०९ ॥ प्रभु के दोनों पार्श्व में नित्यानन्द और गदाधर चल रहे हैं, दोनों प्रेम सुधासागर में बहे आ रहे हैं ॥ २१० ॥ प्रभु चले नाचते २ और लाखों करोड़ों लोग दौड़े चले प्रभु को देखने ॥ २११ ॥ करोड़ों बड़ी २ मसालें जलने लगीं परन्तु उनसे सब के शरीरों पर ( उष्ण नहीं ) चन्द्र की-सी शीतल किरणें पड़ने लगीं ॥ २१२ ॥ चारों ओर करोड़ों दीपक जल रहे हैं और करोड़ों लोग चारों ओर हरि २ बोल रहे हैं ॥ २१३ ॥ नृत्य के

देखिया प्रभुर नृत्य अपूर्व विकार। आनन्दे विह्वल लोक सब नदियार ॥ २१४ ॥
क्षणे हय प्रभु-अङ्ग सब धूलामय। नयनेर जले क्षणे सब पाखालय ॥ २१५ ॥
से कम्प से धर्म से वा पुलक देखिते। पाषण्डीर चित्त वृत्ति करये नाचिते ॥ २१६ ॥
नगरे उठिल महा-कृष्ण-कोलाहल। 'हरि' बलि ठाजि ठाजि नाचये सकल ॥ २१७ ॥
'हरि ओ राम राम हरि ओ रामराम।' 'हरि'बलि नाचये सकल भाग्यवान् ॥ २१८ ॥
ठाजि ठाजि एइ मत मेलि दश-पाँचे। केहो गाय, केहोबा' य, केहो माझे नाचे ॥२१९॥
लक्ष लक्ष कोटि कोटि हइल सम्प्रदाय। आनन्दे नाचिया सर्व नव द्वीपे जाय ॥ २२० ॥
'हरये नमः कृष्ण जादवाय नमः। गोपाल गोविन्द राम श्री मधु सूदन'॥ २२१ ॥
केहो केहो नाचये हइया एक मेलि। दशे-पाँचे-नाचे केहो दिया कर तालि ॥ २२२ ॥
दुइ हाथ जोड़ा दीप तेलेर भाजने। ए बड़ अद्भुत तालि दिलेक केमने ॥ २२३ ॥
हेन बुझि-बैकुण्ठ आइला नव द्वीपे। वैकुण्ठ-स्वभाव-धर्म पाइलेक लोके ॥ २२४ ॥
जीव मात्र चतुर्भुज हइल सकल। ना जानिल केहो, कृष्ण आनन्दे विह्वल ॥ २२५ ॥
हस्त जे हइल चारि, ताहो नाहि जाने। आपनार स्मृतिगेल तबे तालि केने ॥ २२६ ॥
हेनमते वैकुण्ठेर सुख नव, द्वीपे। नाचिया जायेन सभे गङ्गार समीपे ॥ २२७ ॥
विजय करिला जेन नन्द घोषेर बाला। वाम हाथे, वांशी गले कदम्बेर माला ॥२२८ ॥
एइ मत कीर्त्तन करिया सर्व लोक। पास रिल देह-धर्म-जत दुःख शोक ॥ २२९ ॥

समय प्रभु के श्री अङ्ग में अपूर्व विकारों के दर्शन कर नदिया के सब लोग आनन्द में विह्वल हो गये ॥ २१४ ॥ क्षण में तो प्रभु का सर्वाङ्ग धूल में सन जाता है और दूसरे क्षण में नयनों के जल से सब धुल जाता है ॥ २१५ ॥ प्रभु के श्री अङ्ग के वे कम्प, वे प्रस्वेद, वे पुलक सब अपूर्व थे—उन्हें देख निन्दकों की चित्त वृत्ति भी नाचने को करती थी ॥ २१६ ॥ ( उस समय ) नगर भर में कृष्ण नाम का महा कोलाहल छा गया। सब लोग जहाँ तहाँ हरि कीर्तन करते हुये नाचने लगे ॥ २१७ ॥ '' हरि ओ राम राम, हरि ओ राम'' कीर्तन करते हुये और ''हरि'' नाम का घोष करते हुये सब भाग्यवान नाच रहे हैं ॥ २१८ ॥ इस प्रकार ठौर ठौर पर दस-पाँच जने मिलकर कोई गाते हैं कोई बजाते हैं और कोई मध्य में नाचते हैं ॥२१९॥ ऐसे २ लाखों करोड़ों दल बन गये। वे आनन्द में नाचते हुये सारे नवद्वीप में घूमने लगे ॥ २२० ॥ (हरि) ''हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः। गोपाल गोविन्द राम श्री मधुसूदन।'' ( कहीं यह कीर्तन हो रहा है ) ॥ २२१ ॥ कोई कोई एक साथ मिलकर नाचते हैं दस पाँच गाते हैं और कोई ताली बजाते हैं ॥ २२२ ॥ ( परन्तु ) यह बड़े आश्चर्य की बात है कि उनके दो हाथों में से एक में तो मसाल और दूसरे में तेल का पात्र है—फिर ताली कैसे बजाते हैं ? ॥ २२३ ॥ ऐसा प्रतीत होता है कि वैकुण्ठ ही नवद्वीप में उतर आया है, इसी से नवद्वीप वासियों को भी वैकुण्ठ का स्वभाव और धर्म प्राप्त हो गया है ॥ २२४ ॥ इसी कारण जीव सब चतुर्भुज हो गये, पर इसका ज्ञान किसी को न हुआ, क्योंकि सभी श्रीकृष्ण के आनन्द में विह्वल थे ॥ २२५ ॥ ( पुनः यह शंका भी उचित नहीं कि ) जब उनको यह ज्ञान ही नहीं है कि हमारे चार हाथ हो गये हैं, जब ऐसे वे अपनी सुध-बुध भूल बैठे हैं, तो फिर ताली कैसे बजाई ? ( यह प्रभु की अचिन्त्य लीला-शक्ति का वैभव है ) ॥ २२६ ॥ इस प्रकार वैकुण्ठ का सुख नवद्वीप में प्रकट हो रहा है। सब लोग गङ्गा के किनारे किनारे नाचते जा रहे हैं ॥ २२७ ॥ प्रभु ऐसे लगते हैं कि नन्दराय के लाला ही बायें हाथ में वंशी लिये और गले में कदम्ब की माला पहने चले जा रहे हों ॥ २२८ ॥ इस प्रकार कीर्तन करते हुये

गड़ा गड़ि जाय केहो माल शब्द पूरे । काहारो जिह्वाय नाना मत वाक्य स्फुरे ।। २३० ।।
केहो बोले 'एवेकाजि वेटा गेल कोथा । लागि पाङ एखने छिड़िया फेलों माथा' ।।२३१।।
रड़ दिया आय केहो पाषण्डी धरिते । केहो पाषण्डीर नामे किलाय माटिते ।।२३२।।
ना जानि वा कत जने मृदङ्ग बाजाय । ना जानि वा महानन्दे कत जने गाय ।।२३३।।
हेन प्रेम वृष्टि हैल सर्व-नदियाय । वैकुण्ठ सेवको जाहा चाहे सर्वथाय ।।२३४।।
जे सुखे विह्वल अज अनन्त शङ्कर । हेन रसे भासे सर्व-नदिया नगर ।।२३५।।
गङ्गा तीरे तीरे प्रभु वैकुण्ठेर राय । साङ्गोपाङ्ग-अस्त्र-पारिषदे नाचि आय ।।२३६।।
पृथिवीर आनन्दे नाहिक समुच्चय । आनन्दे हइला सर्व दिग पथमय ।।२३७।।
तिल-मात्र अनाचार हेन भूमि नाञ्चि । परम उद्यान हैल सर्व ठाञ्चि ठाञ्चि ।।२३८।।
नाचिया आयेन प्रभु गौराङ्ग सुन्दर । बेड़िया गायेन चतुर्दिशे अनुचर ।।२३९।।
"तुया चरणे मन लागहुँ रे । सारङ्गधर । तुया चरणे मन लागहुँ रे" ।।२४०।।
चैतन्यचन्द्रेर एइ आदि सङ्कीर्त्तन । भक्तगण गाय नाचे श्रीशचीनन्दन ।।२४१।।
कीर्त्तन करेन सभे ठाकुरेर सने । कोन् दिके आइ' इहा केहो नाहि जाने ।।२४२।।
लक्ष कोटि लोके जे करये हरि ध्वनि । ब्रह्माण्ड भेदये जेन हेन मत शुनि ।।२४३।।
ब्रह्मलोक शिवलोक वैकुण्ठ पर्यन्त । कृष्ण सुखे पूर्ण हैल, नाहि तार अन्त ।।२४४।।
स पार्षदे सर्व देव आइला देखिते । देखिया मूर्च्छित हैला समार सहिते ।।२४५।।

सब लोग दुःख शोक आदि सब देह के धर्मों को भूल गये ।। २२९ ।। कोई भूमि पर लोट पोट होते हैं तो कोई जोर से उछलते हैं और किसी के मुख से नाना प्रकार के वचन निकलते हैं ।। २३० ।। कोई कहता है "अब वह काजी बेटा कहाँ गया ? हाय आ जाय तो सिर उड़ा दूँ" ।। २३१ ।। कोई निन्दकों को पकड़ने के लिये दौड़ता है तो कोई निन्दकों का नाम ले लेकर मिट्टी पर ही लात चलाता है ।। २३२ ।। न जाने कितने लोग मृदङ्ग बजा रहे थे और न जाने कितने महा आनन्द में गा रहे थे ( अर्थात् उनकी संख्या अपार थी ) ।। २३३ ।। समस्त नदिया में ऐसी प्रेम की वर्षा हुई कि वैकुण्ठ वासी भी इस सुख की निपट चाहना करने लगे ।। २३४ ।। ब्रह्मा, शेष और शङ्कर जिस सुख में रहते हैं, उसी रस में समस्त नदिया नगर बहा जा रहा है ।। २३५ ।। वैकुण्ठनाथ प्रभु गङ्गा के किनारे २ अपने अङ्ग, उपाङ्ग, अस्त्र और पार्षदों के सहित नाचते २ जा रहे हैं ।। २३६ ।। पृथ्वी में अपार आनन्द छाया हुआ है, आनन्द के कारण सब दिशायें मार्ग बन गयी हैं अर्थात् सब ओर से आनन्द पूर्ण जनता आ रही है । तिल मात्र भी अन्य भाव वहाँ नहीं रहा । सर्वत्र फुलवाड़ी के समान परम आनन्द व्याप्त हो गया ।। २३७-२३८ ।। प्रभु गौर सुन्दर नाचते हुये जा रहे हैं और अनुचर जन चारों ओर से घेर कर गा रहे हैं ।। २३९ ।। "हे सारङ्गधर ! तुम्हारे चरणों में मन लगे, तुम्हारे चरणों में मन लगे" यह है आदि ( नजर ) संकीर्तन श्रीचैतन्यचन्द्र का । इसे भक्त लोग गाते हैं और शचीनन्दन नाचते हैं ( सारङ्ग-पद्म, शंख या धनुष । अथवा सारङ्गधर-भक्त प्रतिपालक ) ।। २४०-२४१ ।। सब प्रभु के साथ कीर्तन कर रहे हैं । कोई नहीं जानता है कि वह किस तरफ जा रहा है ।। २४२ ।। लाखों करोड़ों लोग जो 'हरि' ध्वनि कर रहे है वह मानो तो ब्रह्माण्ड को भेदन कर रही हो—ऐसी घनघोर ध्वनि सुनायी पड़ रही है ।। २४३ ।। ब्रह्म लोक, शिव लोक, वैकुण्ठ लोक पर्यंत जो कृष्ण-सुख से परिपूर्ण हो गया उस सुख का अन्त नहीं है ।। २४४ ।। समस्त देवतागण पार्षदों के सहित ( संकीर्तन ) दर्शन करने को आये और दर्शन कर करके सब मूर्छित हो गये ।। २४५ ।। कुछ देर में सचेत

चैतन्य पाइया क्षणे सर्व्व देवगण। नर-रूपे विशाइया करये कीर्तन ॥२४६॥
अज, भव, वरुण, कुवेर, देवराज। यम-सोम आदि जत देवेर समाज ॥२४७॥
ब्रह्मसुख-स्वरूप अपूर्व्व देखि रङ्ग। सभे हैला नर रूपे चैतन्येर सङ्ग ॥२४८॥
देवे नरे एकत्र हइया 'हरि' बोले। आकाश पूरिया सब महा-दीप ज्वले ॥२४९॥
कदलक-वृक्ष प्रति दुयारे दुयारे। पूर्ण-घट, धान्य, दूर्वा, दीप, आम्र सारे ॥२५०॥
नदियार सम्पत्ति वर्णिते शक्ति कार। असंख्य नगर घर चत्वर जाहार ॥२५१॥
एको जाति लोक जाथे अर्बुद अर्बुद। इहा संख्या करिवेक केमन अबुध ॥२५२॥
अवतरिवेन प्रभु जानिञा विधाता। सकल एकत्र करि थुइलेन तथा ॥२५३॥
स्त्री ये जत जयकार दिया बोले हरि। ताहि लक्ष वत्सरे ओ वर्णिलेना पारि ॥२५४॥
जे-सब देखये प्रभु नाचिया जाइते। तारा आर चित्त वृत्ति ना पारे धरिते ॥२५५॥
से कारुण्य देखिते, से क्रन्दन शुनिते। परम-लम्पट पड़े कान्दिया भूमिते ॥२५६॥
'बोल बोल' बलि नाचे गौरांग सुन्दर। सर्व-अंगे शोभे माला अति मनोहर ॥२५७॥
यज्ञ सूत्र, त्रिकच्छ-वसन परिधान। धूलाय धूसर प्रभु कमल-नयान ॥२५८॥
मन्दाकिनी-हेन प्रेम-धारेर गमन। चान्देरे ना लय मन देखिसे वदन ॥२५९॥
सुन्दर नासाते बहे अविरत धार। अति क्षीण देखि जेन मुकुतार हार ॥२६०॥
सुन्दर चाँचर केश-विचित्र बन्धन। तहि मालतीर माला अति-सुशोभन ॥२६१॥
'जनम जनम प्रभु ! देह' एइ दान। हृदये रहुक एइ केलि अविराम ॥२६२॥

होने पर सब देवता लोग मनुष्य रूप में कीर्तन में सम्मिलित हो गये ॥ २४६ ॥ ब्रह्मा, शिव, कुबेर वरुण, इन्द्र, यम, सोम आदि समस्त देव समाज, ब्रह्मानन्द सुख के समान अपूर्व लीला के दर्शन करके मनुष्य रूप से सब श्रीचैतन्य देव के साथ हो लिये ॥ २४७-२४८ ॥ अब तो देवता और मनुष्य एकत्र मिलकर 'हरि' कीर्तन कर रहे हैं, बड़े २ मसालों का प्रकाश आकाश में व्याप्त हो रहा है ॥ २४९ ॥ द्वार द्वार पर कदली-वृक्ष, जल पूर्ण घट, दूब, दीप, आम्र-पल्लवादि शोभा दे रहे हैं ॥ २५० ॥ नदिया का वैभव वर्णन करने की सामर्थ्य भला किसमें है। असंख्य नगर, घर, चौराह, बाजार हैं। २५१॥ एक ही जाति के लोग जहाँ अरबों में हों, वहाँ इन सब नगर,घर आदि की यदि कोई गिनती करना चाहे तो वह मूर्ख ही बन जायगा ॥२५२॥ प्रभु यहाँ अवतार लेंगे जानकर विधाता ने इसे ( नदिया को ) सब प्रकार से परिपूर्ण कर रक्खा है ॥२५३॥ ( समग्र वर्णन तो दूर रहे ) केवल जय जयकार करती हुई 'हरि' ध्वनि करने वाली स्त्रियों का ही वर्णन मैं लाख वर्षों में भी नहीं कर सकता ॥ २५४ ॥ जो सब लोग प्रभु को नाचते हुये जाते देख लेते हैं उनकी फिर दूसरी चित्त वृत्ति बनती ही नहीं ॥ २५५ ॥ प्रभु की इस करुण दशा को देख और उनके क्रन्दन को सुनकर बड़ा से बड़ा लम्पट भी रोते हुये भूमि पर गिर जाता है ॥ २५६ ॥ 'हरि बोलो हरि' कहते हुये गौराङ्ग सुन्दर नाच रहे हैं, सर्वाङ्ग में अत्यन्त मनोहर मालाएँ शोभा दे रही हैं ॥ २५७ ॥ स्कन्ध देश पर यज्ञोपवीत पड़ा हुआ है, कटि देश में नटवर की भाँति त्रिकच्छ बसन है। प्रभु कमल नयन धूल से धूसर बने हुये हैं ॥२५८॥ मन्दाकिनी गङ्गा की भाँति नयनों से प्रेमाश्रु की धाराएँ बह रही हैं। श्री मुख के दर्शन कर चन्द्रमा भी तुच्छ लगता है ॥२५९॥ सुन्दर नासिका से भी निरन्तर पतली-सी धार बह रही है जो हृदय पर मोती के हार के समान शोभा दे रही है ॥२६०॥ सुन्दर घुँघराले केश हैं, विचित्र रूप से बँधे हुये हैं। उन पर मालती की माला अत्यन्त शोभायमान हैं ॥२६१॥ "अहा प्रभो ! मुझे तो जन्म २ के लिये

एइ मत वर मागे' सकल भुवन। नाचिया आयेन प्रभु श्रीशचीनन्दन ॥२६३॥
प्रियतम सब आगे नाचि नाचि जाय। आपने नाचये पाछे वैकुण्ठेर राय ॥२६४॥
चैतन्य प्रभु से भक्त बाढ़ाइते जाने। जेन करे भक्त तेन करये आपने ॥२६५॥
एइ मत महाप्रभु नाचिते नाचिते। सभार सहित आइसेन गङ्गा पथे ॥२६६॥
वैकुण्ठ नायक नाचे सर्व नदियाय। चतुर्दिगे भक्तगण पुण्य-कीर्ति गाय ॥२६७॥
"हरि बोल मुगधा। हरि बोलरे। जाहे नाहि हय शमन-भयरे" ॥२६८॥
एइ सब कीर्त्तने नाचेन गौरचन्द्र। ब्रह्मादि सेवये जाँर पादपद्म द्वन्द्व ॥२६९॥

पाहिड़ा ( राग )

नाचे विश्वम्भर, सभार ईश्वर, भागीरथी—तीरे—तीरे।
जार पद धूलि, हइ कुतूहली, सभेइ धरये शिरे ॥२७०॥
शिव शिव नाचे विश्वम्भर ॥ ध्रु ॥
अपूर्व विकार, नयने सु-धार, हुँकार गर्जन धुनि।
हासिया हासिया, श्रीभुज तुलिया, बोले 'हरि हरि' वाणी ॥२७१॥
मदन-सुन्दर, गौर कलेवर, दिव्य वास परिधान।
चाँचर चिकुरे, माला मनोहरे, जेन देखि पाँच बाण ॥२७२॥
चन्दन-चर्चित, श्री अङ्ग शोभित, गले दोले वनमाला।
ढुलिया पड़ये प्रेमे थिर नहे, आनन्दे शचीर बाला ॥२७३॥
काम शरासन, भ्रू युग पत्तन, भाले मलयज-विन्दु।
मुकुता-दशन, श्रीयुत वदन, प्रकृति करुणासिन्धु ॥२७४॥

---

यही वरदान दो कि आपकी यह लीला मेरे हृदय में अविच्छिन्न रूप से विजयी रहे"—ऐसा वरदान सब-के-सब जन माँगते हैं और प्रभु श्री शचीनन्दन नाचते हुये चले जाते हैं ॥२६२—२६३॥ अपने प्रियतम जन आगे २ नाचते हुये चले जाते हैं और आप वैकुण्ठनाथ प्रभु पीछे २ नाचते जाते हैं ॥२६४॥ वे चैतन्य प्रभु अपने भक्तों का मान बढ़ाना जानते हैं। इसी कारण जैसा भक्त लोग करते हैं, वैसा ही आप भी करते हैं ॥२६५॥ इस प्रकार प्रभु नाचते २ सबों के साथ, गङ्गा के मार्ग पर आ गये ॥२६६॥ सारी नदिया में वैकुण्ठनायक प्रभु नाचते हैं और उनके चारों ओर भक्तगण उनकी पुण्य कीर्ति का गान करते हैं ॥२६७॥ "हे मुग्ध जनो ! हरि बोलो, गोविन्द बोलो, जिससे काल का भय न रहे," इस प्रकार के सब कीर्तन में वे प्रभु गौर चन्द्र नृत्य कर रहे हैं कि ब्रह्मादि देवगण जिनके चरण कमलों की सेवा करते हैं ॥२६८—२६९॥ पहाड़ी राग ॥ अर्थ ॥ वैकुण्ठ के ईश्वर विश्वम्भर देव गङ्गा के किनारे २ नाचते हुये जा रहे हैं। सब लोग बड़ा ही आश्चर्य मनाते हुये उनकी चरण-धूली को अपने शीश पर चढ़ाते हैं ( शिव ! शिव ! विश्वम्भर नाच रहे हैं ) ॥ ध्रु० ॥२७०॥ उनके अङ्गों में अपूर्व भाव-विकार प्रकट हो रहे हैं, नयनों से अश्रु-धाराएँ बह रही हैं, उनका हुँकार और गर्जन भी सुनायी पड़ रहा है। वे हँस २ कर अपनी भुजाओं को उठाकर 'हरि हरि उच्चारण कर रहे हैं ॥२७१॥ वे कामदेव के समान सुन्दर हैं, गौर शरीर है दिव्य वस्त्र धारण किये हुये हैं। घुंघराले केशों पर मनोहर माला कामदेव के पाँच बाण जैसे प्रतीत होते हैं ॥२७२॥ चन्दन-चर्चित श्री अंग बड़ा शोभायमान है गले में वनमाला लटक रही है। शचि के लाला प्रेमवश स्थिर नहीं रह पाते हैं, झूमते हुये ढुलक पड़ते हैं ॥२७३॥ भ्रकुटी क्या कामदेव के धनुष तना हुये हैं। भाल पर

क्षणे शत शत, विकार अद्भुत, कत करिव निश्चय ।
अश्रु कम्प घर्म, पुलक वैवर्ण्य, ना जानि कतेक हय ।।२७५।।
त्रिभङ्ग हइया, कबहुँ रहिया, अंगुली मुरली बा'य ।
जिनि मत्तगज, चलइ सहज, देखि नयन जुड़ाय ।।२७६।।
अति मनोहर, यज्ञ सूत्र धर, सदय हृदये शोभे ।
ए बुझि अनन्त, हइ गुणवन्त, रहिला परश-लोभे ।।२७७।
नित्यानन्दचान्द, माधव--नन्दन, शोभा दुइ-पाशे ।
जत प्रियगण,करये कीर्त्तन,सभा' चा'हि चा'हि हासे' ।।२७८।।
जाहार कीर्त्तन,करि अनुक्षण, शिव दिगम्बर भेला ।
से प्रभु विहरे, नगरे नगरे, करिया कीर्त्तन-खेला ।।२७९।।
जे करे जे केश, जे अंगे जे वेश, कमला लालन करे ।
से प्रभु धूलाय, गड़ागड़ि जाय, प्रति--नगरे नगरे ।।२८०।।
लाख कोटि दीपे,चान्देर आलोके, ना जानि कि भेल सुखे ।
सकल संसार, हरि बइ आर, ना बोलइ कारो मुखे।।२८१।।
अपूर्व कौतुक, देखि सर्व लोक, आनन्दे हइल भोर ।
सभेइ सभार, चा'हिया वदन,बोले "भाइ हरि बोल" ।।२८२।।
प्रभुर आनन्द, जाने नित्यानन्द, जखन जे रूप हय ।
पड़िबार बेले, दुइ बाहु मेले, जेन अंगे प्रभु रय ।२८३।।

चन्दन का बिन्दु शोभित है, मोती-तुल्य दर्शन हैं, मुख मण्डल श्रीसम्पन्न है, स्वभाव से वे करुणा सिन्धु हैं अथवा यथार्थ करुणा सिन्धु तो वे ही हैं ।।२७४।। उनमें क्षण २ में शत शत अद्भुत भाव विकार प्रकाशित हैं--अश्रुकम्प, प्रस्वेद, पुलक, वैवर्ण ( रंग--बदय ) न जाने कितने होते रहते हैं, मैं कितना निश्चय करके बताऊँ ।।२७५।। कभी ( श्यामसुन्दर के भाव में ) त्रिभङ्ग खड़े होकर अपने श्रीमुख के समीप इस प्रकार उँगलियों को चलाते हैं जैसे तो मुरली बजा रहे हों । उनकी सहज चाल भी मत्त गजराज की चाल को परास्त कर देती है--देखकर नेत्र शीतल हो जाते हैं ।।२७६ ।। उनके करुणापूर्ण हृदय के ऊपर अति मनोहर यज्ञोपवीत शोभा पा रहा है । लगता है मानो तो स्वयं शेषनाग ही, स्पर्श-सुख के लोभ से, गुणवन्त अर्थात् गुण ( सूत्र ) का रूप धारण कर हृदय पर विराज रहे हों । २७७।। आपके दोनों ओर नित्यानन्द चन्द्र और माधव नन्दन ( गदाधर ) शोभा दे रहे हैं । जितने प्रियजन हैं, वे सब कीर्तन कर रहे हैं और निहार २ कर हँस रहे हैं ।।२७८।। जिनका कीर्तन क्षण २ में करते हुये शिवजी ( देह-सुधि भूल ) दिगम्बर हो गये ( हो जाते हैं ), वही प्रभु आज नगर २ अपना कीर्तन रूपी खेल खेल रहे हैं ।।२७९।। जिन हस्तों की, जिन केशों की, जिन अंगों की, जिस वेश-भूषा की स्वयं कमलादेवी बड़े आदर-यत्न से सेवा करती हैं, वे ही प्रभु नगर २ में धूळ में लोट-पोट हो रहे हैं ।।२८०।। लाखों करोड़ों दीपक ( मसाल ) जल रहे हैं, चाँदनी भी छिटक रही है । इनके प्रकाश में न जाने कैसा अपूर्व रस उमड़ रहा है कि समस्त संसार 'हरि' नाम के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं बोल रहा है ।।२८१।। समस्त लोग इस अपूर्व कौतुक ( लीला ) को देख आनन्द में विभोर हो गये और एक दूसरे का मुख देखते हुये सभी यही कहते हैं, "भाई ! हरि बोल" ।।२८२।। जिस समय जिस प्रकार का जो भी आनन्द प्रभु को होता है, उसे सब नित्यानन्द जानते हैं । इसी कारण प्रभु के ( आनन्द-विह्वल हो ) गिरते समय अपनी दोनों भुजाओं को बढ़ाकर अपने अङ्क में सम्हाल

नित्यानन्द धरि, वीरासन करि, क्षणे महाप्रभु वैसे ।
वाम कक्षे तालि,दिया कुतूहली, हरि हरि' वलि हासे' ॥२८४॥
अकपटे क्षणे, कहये आपने, "मुञि देव नारायण ।
कंसासुर मारि,मुञि से कंसारि, वलि छलिया वामन '॥२८५॥
सेतु-बन्ध करि,रावण संहारि,मुञि से राघव-राय ।'
करिया हुँकार, तत्त्व आपनार,कहि चारि दिगे चा'य ॥२८६॥
केबुझे से तत्त्व,अचिन्त्य महत्त्व, सेइ क्षणे कहे आन ।
दन्ते तृण धरि, 'प्रभु प्रभु' वलि, मागये भकति-दान ॥२८७॥
जखने जे करे, गौराङ्ग सुन्दरे, सब मनोहर लीला ।
आपन वदने, आपन चरणे, अंगुलि धरिया खेला ॥२८८॥
वैकुण्ठ-ईश्वर, प्रभु विश्वम्भर, सब नवद्वीपे नाचे ।
श्वेत द्वीप नाम, नव द्वीप ग्राम, वेदे प्रकाशिव पाछे ॥२८९॥
मन्दिरा मृदङ्ग, करताल शंख ना जानि कतेक बाजे ।
महा-हरिध्वनि, चतुर्दिगे शुनि, माझे शोभे द्विजराजे ॥२९०॥
जय जय जय, नगर कीर्त्तन, जय विश्वम्भर-नृत्य ।
विंश-पद गीत, चैतन्य चरित, जय चैतन्येर भृत्य ॥२९१॥
जेइ-दिगे चा'य,विश्वम्भर राय, सेइ दिगे प्रेमे भासे ।
श्रीकृष्णचैतन्य, नित्यानन्द चान्द,गाय वृन्दावन दासे ॥२९२॥
शिव शिव वलि नाचे बाहु तुलि जानि ना से तत्त्व कारण—
शिव शिव नाचे विश्वम्भर ॥ अति सुमङ्गलं शिव शिवोच्चारणम् ॥२९३॥

---

लेते हैं ॥२८३॥ क्षण भर में महाप्रभु नित्यानन्द को पकड़े हुये वीरासन से बैठ जाते हैं और अपने बाँये बगल को बजाते हुये 'हरि हरि' कहते हुये हँसते हैं ॥२८४। फिर तुरन्त ही कपट ( आत्म-गोपन ) को त्याग कर आप ही आप कहने लगते हैं "मैं नारायण देव हूँ। कंसासुर मारने वाला मैं कंसारि हूँ। बलि को छलने वाला मैं वामनदेव हूँ ॥२८५॥ सेतु-बन्धन करके रावण को मारने वाला मैं ही राघव राजा राम हूँ।" इस प्रकार हुँकार करते हुये अपना तत्त्व बखानते हैं और चारों ओर निहारते हैं ॥२८६॥ ( परन्तु ) कौन समझता है उनके उस तत्त्व और अचिन्त्य महत्त्व को। फिर वे उसी समय दूसरी प्रकार की बातें कहने लगते हैं। दाँतों में तिनका दबाकर "प्रभो ! प्रभो" पुकारते हुये उनसे भक्ति-दान की याचना करने लगते हैं ॥२८७॥ ( परन्तु ) जिस समय जो भी गौर सुन्दर करते हैं वे सब मनोहर लीला ही होते हैं—( वैसा ही सहज ) जैसा ( बालक का ) अपने मुँह में अपना पाँव दे उँगलियों को पकड़ कर खेलना होता है।२८८। वैकुण्ठ के ईश्वर प्रभु विश्वम्भर समस्त नवद्वीप में नाचते हैं। इस नवद्वीप ग्राम का श्वेतद्वीप नाम वेद में पीछे प्रकाशित होगा ॥२८९॥ न जाने कितने मजीरा, मृदङ्ग, करताल, शङ्ख बज रहे हैं। महान् 'हरि' ध्वनि चारों ओर सुनायी दे रही है और मध्य में द्विजराज प्रभु शोभा दे रहे हैं ॥२९०॥ इस नगर कीर्तन की जय हो, जय हो, जय हो। श्री विश्वम्भर देव के नृत्य की जय हो। श्री चैतन्य देव के भृत्यों की जय हो। इस बीस पद वाले गीत में श्री चैतन्य चरित ( नगर-कीर्तन ) वर्णित हुआ ॥२९१॥ जिस ओर विश्वम्भर देव दृष्टि करते हैं उसी ओर लोग प्रेम में बहने लगते है। यह वृन्दावनदास श्रीकृष्ण-

हेन-महारङ्गे प्रति-नगरे नगर। कीर्त्तन करेन सर्व लोकेर ईश्वर ॥२६४॥
अविच्छिन्न हरिध्वनि सर्वलोके करे। ब्रह्माण्ड भेदिया ध्वनि जाय वैकुण्ठेरे ॥२६५॥
शुनिञा वैकुण्ठनाथ प्रभु विश्वम्भर। सन्तोषे पूर्णित सब हय कलेवर ॥२६६॥
पुनः पुन 'बोल बोल' बोले विश्वम्भर। उल्लासे उठये प्रभु आकाश-उपर ॥२६७॥
मत्तसिंह जिनि कत तरङ्ग प्रभुर। देखिते सभार हर्ष बाढ़ये प्रचुर ॥२६८॥
गङ्गा तीरे तीरे पथ आछे नदीयाय। आगे सेइ पथे नाचि जाय गौरराय ॥२६९॥
आपनार घाटे आगे बहु नृत्य करि। तबे माधाइर घाटे गेला गौरहरि ॥३००॥
बारकोना-घाटे नगरिया-घाटे गिया। गङ्गार नगर दिया गेला सिमुलिया ॥३०१॥
लक्ष कोटि महा-दीप चतुर्दिगे ज्वले। लक्ष कोटि लोक चतुर्दिगे 'हरि' बोले ॥३ २।
चन्द्रेर आलोक अति अपूर्व देखिते। दिवा निशि एको केहो नारें निश्चयिते ॥३०३॥
सकल दुयार शोभा करे सुमङ्गले। रम्भा, पूर्ण-घट, आम्रसार, दीप ज्वले ॥३०४॥
अन्तरिक्षे थाकि जत स्वर्ग देवगण। चम्पक मल्लिका पुष्प करे वरिषण ॥३०५॥
पुष्प वृष्टि हैल नवद्वीप-वसुमती। पुष्परूपे जिह्वार से करिल उन्नति ॥३०६॥
सुकुमार-पदाम्बुज प्रभुर जानिञा। जिह्वा प्रकाशिला देवी पुष्परूप हञा ॥३०७॥
आगे नाचे अद्वैत श्रीवास हरिदास। पाछे नाचे गौरचन्द्र सकल-प्रकाश ॥३०८॥
जे नगरे प्रवेश करये गौरराय। गृह वित्त परिहरि शुनि लोक धाय ॥३०९॥

---

चैतन्य एवं नित्यानन्दचन्द्र का गान करता है ॥२९२॥ शिव ! शिव ! विश्वम्भर देव नाच रहे हैं। 'शिव' 'शिव' उच्चारण अत्यन्त ही सुमङ्गलमय है ॥२९३॥ इस प्रकार परम आनन्द विनोद के साथ सब लोकों के ईश्वर प्रति नगर २ में कीर्तन कर रहे हैं ॥२९४॥ सब लोग निरन्तर अखण्डित 'हरि' ध्वनि कर रहे हैं, जो ध्वनि ब्रह्माण्ड को भेदन करके वैकुण्ठ को जा रही है ॥२९५॥ उसे सुन सुनकर वैकुण्ठनाथ प्रभु विश्वम्भर का श्री अङ्ग सन्तोष से पूर्ण हो जाता है ॥२९६॥ वे बार बार 'बोलो, बोलो' कह उठते हैं तथा हर्षोल्लास से बहुत ऊँचे आकाश में उछल जाते हैं ॥२९७॥ प्रभु के आनन्द की अनेक तरंगें हैं ( यथा नृत्य, गर्जन, हुँकार ) ये तरंगें मत्त सिंह को भी मात कर देती हैं। देखकर सबको अतिशय हर्ष होता है ॥२९८॥ नदिया में गङ्गा के किनारे २ मार्ग है। गौराराय पहले उसी मार्ग से नाचते २चले हैं ॥२९९॥ गौर हरि पहले अपने घाट पर खूब नृत्य करके फिर माधाइ घाट पर गये ॥३००॥ फिर बारा कोना घाट और नगरिया घाट जाकर गङ्गा नगर होते हुये सिमुलिया ( सीमन्त द्वीप नौ द्वीपों में से एक ) पहुँचे। ३०१॥ लाखों करोड़ों बड़े २ दीपक चारों ओर जल रहे हैं और लाखों करोड़ों लोग चारों ओर 'हरि हरि' बोल रहे हैं ॥३०२॥ चन्द्रमा की चाँदनी कुछ अपूर्व ही दिखायी पड़ती है। दिन है या रात—कोई निश्चय नहीं कर सकता है—दोनों एक हो गये से लगते हैं ॥३०३। सब द्वारों पर माँगलिक पदार्थ शोभा दे रहे हैं—केला है, जल पूर्ण घट हैं, आम्र-पल्लवादि हैं, दीपक जल रहे हैं ॥३०४॥ स्वर्ग के देवगण सब अन्तरिक्ष में स्थित होकर चम्पक, मल्लिका आदि पुष्पों की वर्षा करते हैं ॥३०५॥ पुष्पों की वर्षा होने पर नव द्वीप को भूमि ने पुष्प रूप से ( मानो तो ) अपनी जिह्वा प्रकट कर दी। प्रभु के चरण कमल सुकुमार समझ कर पृथ्वी देवी ने पुष्प रूप से अपनी जिह्वा प्रकाशित करदी ।३०६॥ आगे २ क्रम से श्री अद्वैत, श्री वास और हरिदास नाच रहे हैं और पीछे गौरचन्द्र नाच रहे हैं. सबके हृदय में बड़ा उल्लास है ॥३०८। जिस नगर में गौराराय प्रवेश करते हैं, वहाँ के लोग सुनते ही गृह-सम्पत्ति छोड़कर दौड़ जाते हैं ॥३०९॥ जगत के जीवन

देखिया से चन्द्रमुख जगत् जीवन। दण्डवत् हइया पड़ये सर्वजन ॥३१०॥
नारी गण हुलाहुली दिया बोले हरि। स्वामी, पुत्र, गृह, वित्त सकल पासरि ॥३११॥
अर्बुद अर्बुद नगरिया नदियार। कृष्ण-रस—उन्माद हैल सभा कार ॥३१२॥
केहो नाचे गाय केहो बोले 'हरि हरि'। केहो गड़ागड़ि जाय आपना' पासरि ॥३१३॥
केहो केहो नानामत वाद्य वा'य मुखे। केहो कारो कान्धे उठे परानन्द सुखे ॥३१४॥
केहो कारो चरण धरिया पड़ि कान्दे। केहो कारो चरण आपन केशे बान्धे ॥३१५॥
केहो दण्डवत्-हय काहारो चरणे। केहो कोला कोलि वा करये कारो सने ॥३१६॥
केहो बोले "मुञि एइ निमाञि पण्डित। जगत-उद्धार लागि हइलुँ विदित" ॥३१७॥
केहो बोले "आमि श्वेत द्वीपेर वैष्णव।" केहो बोले"आमि वैकुण्ठेर पारिषद ॥३१८॥
केहो बोले"एबे काजि बेटा गेल कोथा। नागालि पाइले आजि चूर्ण करों माथा"॥३१९॥
पाषण्डी धरिते केहो रड़ दिया जाय। "धर धर एइ पाप पाषण्डी पलाय" ॥३२०॥
वृक्षेर उपरे गिया केहो केहो चड़े। यूथे यूथे केहो केहो लाफ दिया पड़े ॥३२१॥
पाषण्डीरे क्रोध करि केहो भाङ्गे डाल। केहो बोले"एइ मुञि पाषण्डीर काल"॥३२२॥
अलौकिक शब्द केहो उच्च करि बोले। यमराजा बान्धिया आनिते केहो चले ॥३२३॥
सेइ खाने थाकि बोले "आरे यमदूत। बोल गिया जथा तोर आछे सूर्य सुत ॥३२४॥
वैकुण्ठनायक अवतरि शची-घरे। आपनि कीर्त्तन करे नगरे नगरे ॥३२५॥
जे-नाम-प्रभावे तोर धर्मराज यम। जे-नामे तरिल अजामिल विप्राधम ॥३२६॥

स्वरूप प्रभु के मुखचन्द्र के दर्शन कर सब लोग दण्डवत् प्रणाम करते हैं ॥३१०॥ स्त्रियाँ हुलु ध्वनि करती हुई 'हरि' बोलती हैं। वे पति, पुत्र, गृह-सम्पत्ति सब भूल जाती हैं ॥३११॥ नदिया में अरबों नगर वासी हैं। वे सब कृष्ण-रस में उन्मत्त हो गये ॥३१२॥ कोई नाचते गाते हैं, कोई 'हरि हरि' कहते हैं, कोई अपने को भूल भूमि पर लोट पोट हो जाते हैं ॥३१३॥ कोई मुख से नाना प्रकार के बाजों का स्वर निकालते हैं, कोई परमानन्द सुख में किसी के कन्धे पर चढ़ बैठते हैं ॥३१४॥ कोई किसी के चरण पकड़ रोते हैं, तो कोई किसी के चरणों को अपने केशों से बाँध लेते हैं ॥३१५॥ कोई किसी के चरणों पर दण्डवत् पड़ जाता है तो कोई किसी को हृदय से सटा लेता है ॥३१६॥ कोई कहता है 'मैं ही निमाइ पण्डित हूँ। मैं जगत् के उद्धार के लिये प्रकट हुआ हूँ ॥३१७॥ कोई कहता है "मैं श्वेत द्वीप का वैष्णव हूँ", कोई कहता है, 'मैं वैकुण्ठ का पार्षद हूँ', ॥३१८॥ कोई कहता है 'अब वह काजी बेटा गया कहाँ? हाथ लो आजाय खोपड़ी चूर चूर न करदूँ तो' ॥३१९॥ कोई निन्दक दुष्ट को पकड़ने के लिये दौड़ता है और चिल्ला-चिल्ला कर कहता है 'पकड़ो, पकड़ो' यह पापी दुष्ट बच कर भागा जा रहा है ॥३२०॥ कोई २ वृक्षों पर चढ़ जाते हैं और वहाँ से फिर झुण्ड के झुण्ड नीचे कूद पड़ते हैं ॥३२१॥ कोई दुष्टों के ऊपर क्रोध करते हुये वृक्ष की डाल तोड़ लेता है तो कोई कहता है 'यह देखो, मैं ही दुष्टों का काल हूँ' ॥३२२॥ कोई बड़े ऊँचे स्वर से अलौकिक शब्द करता है कोई तो यमराज को बाँध लाने के लिये चल देता है ॥३२३॥ वहीं से पुकार कर वह कहता है 'अरे यमदूत! जाकर अपने मालिक सूर्य पुत्र यम से कह दे कि वैकुण्ठनायक प्रभु शची के गृह मे अवतीर्ण होकर अपने आप नगर २ में कीर्तन कर रहे हैं ॥३२४-३२५॥ जिस नाम के प्रभाव से तेरा यम धर्मराज ( कहलाता ) है, जिस नाम से अधम विप्र अजामिल तर गया, उसी नाम को प्रभु ने सबके मुख से बुलवाया है और जो बोल नहीं सकते उन्होंने वह नाम सुना है। इस कारण यदि तुम प्राणी-मात्र

हेन नाम सर्व मुखे प्रभु बोलाइल। उच्चारणे शक्ति नाहि, से ताहा शुनिल ।।३२७।।
प्राणि-मात्र केहो यदि कर अधिकार। मोर दोष नाहि तबे करिमु संहार ।।३२८।।
झाट कह गिया जथा आछे चित्रगुप्त। पापीर लिखन सब झाट करु लुप्त ।।३२९।।
जे-नाम-प्रभावे तीर्थ-राज वाराणसी। जाहा गाय शुद्ध सत्त्व श्वेतद्वीप वासी ।।३३०।।
सर्व-वन्द्य महेश्वर जे-नाम-प्रभावे। हेननाम सर्व लोके शुने बोले एवे ।।३३१।।
हेन नाम लओ, छाड़, पर-अपकार। भज विश्वम्भर, नहे करिमु संहार ।।३३२।।
आर जन-दश-विशे रड़ दिया जाय। "धर-धर कोथा काजि भाण्डिया पलाय ।३३३।।
कृष्णेर कीर्त्तन जे जे पापी नाहि माने। कोथा गेले से-सकल पाषण्डी एखने ।।३३४।।
माटि ते किलाय केहो 'पाषण्डी' बलिया। 'हरि बलि बुले पुन हुङ्कार करिया ।।३३५।।
एइ मत कृष्णेर उन्मादे सर्वक्षण। किवा बोले किवा करे नाहिक स्मरण ।।३३६।।
नगरिया-सकलेर उन्माद देखिया। मरये पाषण्डी सब ज्वलिया-पुड़िया ।।३३७।।
सकल पाषण्डी मेलि गणे' मने मने। "गोसाञि करेन काजि आइसे एखने ।।३३८।।
कोथा जाय रंग ढंग,कोथा जाय डाक। कोथा जाय नाट गीत,कोथा जाय जाँक ।।३३९।।
कोथा जाय कला-पोता घट,आम्रसार। ए सकल वचनेर शुधि तवे धार ।।३४०।।
जत देख महाताप दिउटि सकल। जत देख हेर सब भावक-मण्डल ।।३४१।।
गण्ड गोल शुनिञा आइसे काजि जवे। सभार गङ्गाय झाँप देखिबाङ तवे ।।३४२।।
केहो बोले "मुञि तवे कूलिते थाकिया। नगरिया-सब देङ गलाय वान्धिया ।।३४३।।

---

में किसी पर अपना अधिकार दिखाओगे तो, मेरा दोष नहीं, मैं तुम्हें मार डालूँगा' ।।३२६।। 'अतएव फौरन दौड़कर जाओ जहाँ चित्रगुप्त हैं और कह दो उससे कि वह पापियों का लेखा-जोखा सब रद्द करदे' ।।३२८।। अरे ! जिस नाम के प्रभाव से वाराणसी तीर्थराज बना हुआ है, जिस नाम को शुद्ध सत्त्व देह धारी श्वेत द्वीप वासी गाते हैं' ।।३२९।। जिस नाम के प्रभाव से महेश्वर शिव सबके वन्दनीय बने हुये हैं, ऐसे नाम को अब सब लोग कहते और सुनते हैं ।।३३०।। तुम भी ऐसे नाम का गान करो,छोड़ो पर-अपकार करना और विश्वम्भर का भजन करो, नहीं तो मैं तुमको मार डालूँगा' ।।३३१-३३२।। और कोई दस-बीस जने दौड़ कर जाते हैं और कहते हैं 'पकड़ो, पकड़ो, इस काजी को' यह हमसे बच कर कहाँ भागा जा रहा है। श्रीकृष्ण के कीर्तन को न मानने वाले वे पापी निन्दक लोग अब सब कहाँ छिप गये ?' ।।३३३-३३४।। कोई 'पाखण्डी, पाखण्डी' कहते हुये जमीन पर ही लात चलाते हैं और 'हरि' कहते, हुँकार करते हुये चक्कर लगाते हैं ।।३३५।। इस प्रकार लोग कृष्ण-प्रेम में उन्मत्त होकर क्या क्या कहते हैं, क्या क्या करते हैं-इनको उनको कुछ सुध ही नहीं है।।३३६।। सब नगर वासियों के इस उन्माद को देखकर दुष्ट निन्दक लोग सब मिलकर मन-ही मन मनाते हैं कि 'भगवान करे, अभी काजी आजावे' ।।३३७-३३८।। बस, फिर यह रङ्ग ढङ्ग, यह पुकार-हुँकार, यह नृत्य-गीत, यह ऐंठ-अकड़ सब न जाने कहाँ उड़ जायँगे ।।३३९।। 'और ये गढ़े हुये केले के वृक्ष, घड़े, आम के पत्ते भी सब न जाने कहाँ चले जायँगे। ये जो हमारे लिये ऐसी २ आवाजें कस रहे हैं,इन सब का बदला हम तभी उतारेंगे ।।३४०।। इनके इस हो-हल्ला को सुनकर जब काजी आयगा तो जितनी तुम ये बड़ी २ मसालें देखते हो और ये जो सब भावुक मण्डलियाँ दिखायी पड़ती हैं, ये सब गङ्गा में कूदते हुये नजर आयँगे' ।।३४१-३४२।। और कोई कहता है-'मैं तब किनारे पर खड़ा रह कर इन सब नगर वासियों के गले में रस्सी बाँध बाँध कर देता जाऊँगा' ।।३४ ।। कोई कहता है,

केहो बोले "चल जाइ कीजिरे कहिते।" केहो बोले "युक्तनहे एमत करिते" ॥३४४॥
केहो बोले "भाइ सब ! एक युक्ति आछे। सभे रड़ दिया जाइ भावकेर काछे ॥३४५॥
आइसे करिया काजि वचन तोलाइ। तवे एक जना ओना रहिव तार ठाँइ ॥३४६॥
एइ मत पाषण्डी आपना' खाय मने। चैतन्येर गण मत्त श्रीहरि कीर्त्तने ॥३४७॥
सभार अङ्गे ते शोभे श्रीचन्दनमाला। आनन्दे गायेन 'कृष्ण' सभे हइ भोला ॥३४८॥
नदियार एकान्त नगर सिमुलिया। नाचिते नाचिते प्रभु उत्तरि लासिया ॥३४९॥
अनन्त अर्बुद हरि हरि ध्वनि शुनि। हुँकार करिया नाचे द्विज-कुल-मणि ॥३५०॥
से कमल-नयने वाकत आछे जल। कतेक वा धारा बहे परम-निर्मल ॥३५१॥
कम्प भावे उठे पड़े अन्तरिक्ष हैते। कान्दे नित्यानन्द प्रभु ना पारे धरिते ॥३५२॥
शोये वा जे हय मूर्च्छा आनन्द-सहित। प्रहरेक धातु नाहि, सभे चमकित ॥३५३॥
एइ मत अपूर्व देखिया सर्व जन। सभेइ बोलेन "ए पुरुष नारायण" ॥३५४॥
केहो बोले "नारद प्रह्लाद शुक जेन।" केहो बोले "जे-तेहउ-मनुष्य नहेन" ॥३५५॥
एइ मत बोले जेन जार अनुभव। अत्यन्त तार्किक बोले "परम वैष्णव" ॥३५६॥
वाह्य नाहि प्रभुर "परम-भक्ति-रसे। बाहु तुलि हरि-बोल हरि-बोल घोषे" ॥३५७॥
श्रीमुखेर वचन शुनिञा एक बारे। सर्व लोके हरि ध्वनि बोले उच्च स्वरे ॥३५८॥
गौर सुन्दर जाये जे-दिगे नाचिया। सेइ दिगे सर्व लोक चलये धाइया ॥३५९॥
काजिर बाड़ीर पथ धरिला ठाकुर। वाद्य कोलाहल काजि शुनये प्रचुर ॥३६०॥

'चलो, चलें काजी से कहने' तो कोई कहता है 'ऐसा करना ठीक नहीं होगा' ॥३४४॥ कोई कहता है, "भाइयो ! एक युक्ति तो यह है कि हम सब दौड़ते हुये इन भावुकों के पास जायँ और झूठ मूठ में ही 'काजी आ गया' कहके हल्ला उड़ा दें परन्तु हममें से कोई एक जगह न रहे' ॥३४५–४६॥ इस प्रकार दुष्ट निन्दक लोग मन के लड्डू खाते हैं और श्रीचैतन्यदेव के गण श्रीहरि-संकीर्तन में मस्त हैं ॥३४७॥ सबके अङ्गों पर चन्दन और मालाएँ सुशोभित हैं और सब आनन्द में सब कुछ भूल श्रीकृष्ण-कीर्तन कर रहे हैं ॥३४८॥ नदिया के एक कोने में सिमुलिया नगर है,प्रभु नाचते २ वहाँ पहुँचे ॥३४९॥ अनन्त अरब हरि नाम की ध्वनि सुनकर द्विज कुल शिरोमणि विश्वम्भर देव हुँकार करते हुये नाचते हैं ॥३५०॥ न जाने प्रभु के उन कमलनयनों में कितना जल भरा हुआ है कि उनमें से कितनी २ परम निर्मल धाराएँ बही चली जा रही हैं ॥३५१॥ प्रभु काँपते हुये कभी ऊपर शून्य में उठ जाते हैं और फिर गिर पड़ते हैं । नित्यानन्द प्रभु उनको पकड़ कर रख नहीं सकते,इसलिये रोने लग जाते हैं ॥३५२॥ प्रभु की वह आनन्दमयी मूर्च्छा सहसा भङ्ग नहीं होती—एक पहर तक अचेत रहते हैं, सभी चमक उठते हैं ॥३५३॥ ऐसा अपूर्व भाव देख सभी कहते हैं, 'यह पुरुष तो नारायण है', कोई कहता है 'यह जो हो सो हो'पर मनुष्य नहीं है' ॥३५४–५५॥ इस प्रकार जिसका जैसा अनुभव, वह वैसा ही कहता है । अत्यन्त तार्किक कहता है 'यह परम वैष्णव है' ॥३५६॥ प्रभु को ( सचेत होने पर भी ) वाह्य-सुधि नहीं है और वे परम भक्ति रस में भरे भुजाओं को उठा 'हरि बोल, हरि बोल' का घोष करते हैं ॥३५७॥ श्रीमुख के वचन एक बार सुनते ही सब लोग ऊँचे स्वर से हरि-ध्वनि करते हैं ॥३५८॥ गौराङ्ग सुन्दर जिधर भी नाचते चले जाते हैं, उधर ही सब लोग दौड़ पड़ते हैं ॥३५९॥ ( अब ) प्रभु ने काजी के घर का रास्ता पकड़ा । काजी ने भी गाने बजाने का घोर कोलाहल सुना ॥३६०॥ काजी बोला-'जानते हो भाइयो ! यह कैसा गाना-बजाना है ? क्या किसी का ब्याह

एबा नहे–मोरे लंघि हिन्दुयानि करे। तबे जाति निमु आजि सभार नगरे ॥३७८॥
( एइमत युक्ति काजि करे सर्व-गणे। महावाद्य कोलाहल शुनि ततक्षणे ) ॥३७७॥
सर्व लोक चूड़ामणि प्रभु विश्वम्भर। आइला नाचिते यथा काजिर नगर ॥३८०॥
कोटि कोटि हरिध्वनि महा कोलाहल। स्वर्ग-मर्त्य-पातालादि पूरिल सकल ॥३८१॥
शुनिञा कम्पित काजिगण-सहेधाय। सर्व-भये जेन भेक इन्दुर पलाय ॥३८२॥
पूरिल सकल स्थान विश्वम्भर-गणे। भये पलाइने के होदिग नाहि जाने ॥३८३॥
माथार फेलिया पाग केहो सेइ मेले। अलक्षिते नाचये, अन्तरे प्राण हाले ॥३८४॥
आर दाड़ि आछे से हइया अधोमुख। नाचे माथा नाहि तोले, तार हाले बुक ॥३८५॥
अनन्त अर्बुद लोक केबा कारे चिने। आपनार देहमात्र केहो नाहि जाने ॥३८६॥
सभेइ नाचेन सभे गायेन कौतुके। ब्रह्माण्ड पूरिया 'हरि' बोले सर्व लोके ॥३८७॥
आसिया काजिर द्वारे प्रभु विश्वम्भर। क्रोधावेशे हुंकार करये बहुतर ॥३८८॥
क्रोधे बोले प्रभु 'आरे काजि बेटा कोथा। झाट आन' धरिया काटिया फेलों माथा ॥३८९॥
निर्यवन करों आजि सकल भुवन। पूर्वे जेन वध कैलुं से काल यवन ॥३९०॥
प्राण लजा कोथा काजि गेल दिया द्वार। घर भाङ्ग भाङ्ग'' प्रभु बोले बारे बार ॥३९१॥
सर्वभूत–अन्तर्यामी श्री शचीनन्दन। आज्ञा लंघिबेक हेन आछे कोन जन ॥३९२॥
महामत्त सर्व लोक चैतन्येर रसे। घरे उठिलेन सभे प्रभुर आदेशे ॥३९३॥

आज्ञा को भङ्ग करके हिन्दुपना दिखा रहा है। तो आज मैं नगर में सबों की जाति ले लूंगा' ॥३७७–३७८॥ ( इस प्रकार काजी अपने लोगों के साथ परामर्श करता है और उसे कीर्तन-वाद्य का महा कोलाहल सुनायी पड़ता है ) ॥३७६॥ सर्व लोक चूड़ामणि नाचते २ काजी के मोहल्ला में आ पहुँचे। करोड़ों हरि नामों की ध्वनि के महान् कोलाहल ने स्वर्ग, मृत्यु, पाताल आदि सब लोकों को परिपूर्ण कर दिया ॥३८०–३८१॥ जिसे सुनकर काँपता हुआ काजी अपने गणों के साथ भागा मानो तो सर्प के भय से चूहा भाग रहा हो ॥३८२॥ परन्तु चारों ओर सब स्थानों में विश्वम्भर देव के गण छा गये हैं इससे डर कर भागते हुओं को यह सूझ नहीं पड़ता कि किस ओर जायँ' ॥३८३॥ कोई ( सिपाही ) तो अपने सिर को पगड़ी फेंक भीड़ में शामिल होकर नाचने लगता है, पर लोगों की दृष्टि से बचता हुआ। फिर भी उसके प्राणों में हलचल मची हुई है ॥३८४॥ जिसकी दाड़ी है वह मुँह नीचा करके नाचता है, सिर ऊपर को नहीं उठाता है और डर के मारे उसकी छाती धुक्-धुक् करती है ॥३८५॥ अनन्त अरब लोगों के समुदाय में कौन किसको पहचानता है, जब उन्हें अपनी ही देह की सुध-बुध नहीं है ॥३८६॥ सब ही आनन्द में रँगे हुये नाच रहे, गा रहे हैं और ब्रह्माण्ड-व्यापिनी 'हरि' ध्वनि उद्घोषित कर रहे हैं ॥३८७॥ इतने में ही प्रभु विश्वम्भर काजी के द्वार पर आ पहुँचे और क्रोधावेश में बारम्बार हुँकार करने लगे ॥३८८॥ प्रभु क्रोधित होकर बोले, 'अरे ! काजी बेटा कहाँ है ? ले आओ झट् ! मैं उसका सिर उड़ा डालूँगा ॥३८९॥ आज मैं समस्त लोकों को यवनों से शून्य कर दूंगा जैसे पहले काल यवन का वध किया था ॥३९०॥ वह काजी द्वार बन्द कर अपने प्राणों को लेकर कहाँ गया ? तोड़ो-फोड़ो घर को प्रभु बार २ कहने लगे ॥३९१॥ श्रीशचीनन्दन तो सब प्राणियों के अँन्तर्यामी ईश्वर हैं, फिर उनकी आज्ञा का उल्लंघन कर सके, ऐसा भला कौन है ? ॥३९२॥ अतएव प्रभु का आदेश होते ही सब लोगों ने धावा बोल दिया। श्रीचैतन्य देव के ही आवेश में सब लोग बड़े ही मतवाले हो गये ॥३९३॥ कोई घर फोड़ने लगे, कोई किवाड़ तोडने

केहो घर भाङ्गे केहो भाङ्गये दुयार। केहो लाथि मारे केहो करये हुंकार ॥३९४॥
आम्र-पनसेर डाल भाङ्गि केहो फेले। केहो कदलक-बन भङ्गि 'हरि' बोले ॥३९५॥
पुष्पेर उद्याने लक्ष लक्ष लोक गिया। उपाड़िया फेले सब हुंकार करिया ॥३९६॥
पुष्पेर सहित डाल छिण्ड़िया छिण्डिया। 'हरि' बलि श्रुति मूलेदिया ॥३९७॥
एकटि करिया पत्र सर्वलोके निले। किछु ना रहिल आर काजिर बाड़ीते ॥३९८॥
भङ्गिलेन सब जत बाहिरेर घर। प्रभु बोले "अग्नि देह' बाड़ीर भितर ॥३९९॥
पुड़िया मरुक सर्वगणेर सहिते। सर्व बाड़ी बेढ़ि अग्नि देह' चारिभिते ॥४००॥
देखों मोरे कि केर उद्धार नर-पति। देखों आजि कोन् जने केर अव्याहृति ॥४०१॥
यम काल मृत्यु-मोर सेबकेर दास। मोर दृष्टिपाते हय सभार प्रकाश ॥४०२॥
सङ्कीर्तन-आरम्भे मोहोर अवतार। कीर्त्तनविरोधि-पापी करिमु संहार ॥४०३॥
सर्व पात कीओ यदि करये कीर्त्तन। अवश्य ताहार मुजि करिमु स्मरण ॥४०४॥
तपस्वी संन्यासी ज्ञानी योगी जेजेजन। संहारिमु सब यदि ना करे कीर्त्तन ॥४०५॥
अग्नि देह' घरे तोरा ना करिह भय। आजि सब यवनेर करिमु प्रलय' ॥४०६॥
देखिया प्रभुर क्रोध सर्व भक्तगण। गलाय बान्धिया वस्त्र पड़िला तखन ॥४०७॥
उर्द्धबाहु करिया सकल भक्तगण। प्रभुर चरणारविन्दे करे निवेदन ॥४०८॥
"तोमार प्रधान अंश प्रभु संकर्षण। ताँहार अकाले क्रोधना हय करबन ॥४०९॥
जे-काले हइल सर्व सृष्टिर संहार। संकर्षण क्रोधे हन रुद्र-अवतार। ४१०॥
जे रुद्र सकल सृष्टि क्षणेके संहरे। शेषे तिँहो आसि मिले तोमार शरीरे ॥४११॥

लगे। कोई लात चलाते हैं, कोई हुँकार करते हैं ॥३९४॥ किसी ने आम की तो किसी ने कठहल की डालें तोड़-मरोड़ डालीं, किसी ने केला का वन तहस-नहस कर दिया और लगे 'हरि हरि' ध्वनि करने ॥३९५॥ लाखों लोग फुलवाड़ी में घुस गये और हुँकार करते हुये लगे पौधाओं को उखाड़ने ॥३९६॥ उन्होंने फूल-पत्तियों के सहित डालों को छिन्न-भिन्न कर दिया और कर्ण मूल पर हाथ रख कर हरि बोल कहते हुये नाचने लगे ॥३९७॥ एक एक पत्ता लेने पर भी काजी के घर में कुछ न बचा। तब फिर बाहर के सब घरों को भी तोड़ फोड़ दिया ॥३९८॥ तब प्रभु बोले—'लगा दो घर में आग' घर को घेर कर चारों ओर से आग लगा दो। काजी अपने सब गणों के सहित जल मरे ॥३९९–४००॥ 'देखूँ तो सही, उसका राजा मेरा क्या कर लेता है। देखूँ आज कौन इन्हें बचाता है ॥४०१॥ यम, काल, मृत्यु ये सब मेरे सेवक के दास हैं। मेरे दृष्टि देने पर ही ये सब अपने कार्य का प्रकाश करते हैं ॥४०२॥ 'संकीर्तन आरम्भ करने के लिये ही मेरा अवतार है, अतः इस कीर्तन के विरोध करने वाले पापियों का मैं संहार करूँगा ॥४०३॥ परन्तु यदि सब प्रकार का पाप करने वाला पातकी भी मेरा कीर्तन करेगा तो मैं उसे अवश्य स्मरण करूँगा ॥४०४॥ 'यदि तपस्वी, संन्यासी, ज्ञानी, योगी जो जो लोग मेरा कीर्तन नहीं करेंगे तो मैं उन सबका संहार कर डालूँगा ॥३०५॥ तुम लोग इसके घर में आग लगा दो—डरो मत। मैं आज सब यवनों का प्रलय कर दूँगा ॥४०६॥ प्रभु के क्रोध को देखकर भक्त लोग सब गले पर वस्त्र लपेट भूमि पर पड़ गये और भुजाओं को उठाकर प्रभु के श्री चरणकमलों के समीप निवेदन करने लगे ॥४०७–४०८॥ प्रभु! आपके प्रधान अंश संकर्षण देव हैं। उनको असमय पर कभी क्रोध नहीं होता है ॥४०९॥ जब समस्त सृष्टि के विनाश का काल आ पहुँचता है, तब उन संकर्षण के कोप से रुद्र का अवतार होता है ॥४१०॥ जो रुद्र समस्त सृष्टि

अंशांशेर क्रोधे जार सकल संहरे। से तुमि करिले क्रोध कोन् जन तरे॥४१२॥
'अक्रोध परमानन्द तुमि' वेदे गाय। वेदवाक्य प्रभु घुचाइते ना जुपाय॥४१३॥
ब्रह्मादि ओ तोमार क्रोधेर नहे पात्र। सृष्टि-स्थिति-प्रलय तोमार लीला-मात्र॥४१४॥
करिलात काजिर अनेक अपमान। आर यदि घटे तवे संहारिह प्राण॥४१५॥
"जय विश्वम्भर महाराज राजेश्वर। जय सर्वलोक नाथ श्रीगौर सुन्दर॥४१६॥
जय जय अनन्त शयन रमाकान्त।" बाहु तुलि स्तुति करे सकल महान्त॥४१७॥
हासे महाप्रभु सर्वदासेर वचने। 'हरि' बलि नृत्य रसे चलिला तखने॥४१८॥
काजिरे करिया दण्ड सर्व-लोक-राय। संकीर्त्तन रसे सर्व गणे नाचि जाय॥४१९॥
मृदङ्ग मन्दिरा वाजे शंख करताल। 'राम कृष्ण जय ध्वनि गोविन्द गोपाल'॥४२०॥
काजिर भाङ्गिया घर सर्व-नगरिया। महानन्दे 'हरि' बलि जायेन नाचिया॥४२१॥
पाषण्डीर हइल परम चित्तभङ्ग। पाषण्डी विषाद भावे,' वैष्णवेर रङ्ग॥४२२॥
"जय कृष्ण मुकुन्द मुरारि बनमाली।" गाय सब नगरिया दिया हाथे ताली॥४२३॥
जय-कोलाहल प्रति नगरे नगरे। भासये सकल लोक आनन्द सागरे॥४२४॥
केवा कौन् दिगे नाचे, केवा गाय वा'य। हेन नाहि जानि कौन् दिगे केवा धाय॥४२५॥
आगे नृत्य करिया चलये भक्तगण। शेषे चले महाप्रभु श्रीशचीनन्दन॥४२६॥
कीर्त्तनीया—ब्रह्मा शिव अनन्त आपनि। नृत्यकरे सर्व-वैकुण्ठेर चूड़ामणि॥४२७॥

---

का क्षण भर में विनाश कर देते हैं वे भी अन्त में आकर आपके शरीर में लीन हो जाते हैं॥४११॥ इस प्रकार जिनके अंश ( संकर्षण ) के अंश ( रुद्र ) के ही क्रोध से सारी सृष्टि का संहार हो जाता है. वे आप ( सर्वांशी ) यदि कोप करें तो फिर भला कौन बचा सकता है॥४१२॥ 'आपको तो वेद में 'अक्रोध परमानन्द' स्वरूप कहकर गान किया गया है सो यह वेद-वाक्य, प्रभो ! मिटाने के योग्य नहीं है॥४१३॥ ब्रह्मा आदि भी आपके क्रोध के पात्र नहीं हैं। यह सृष्टि, स्थिति, प्रलय तो आपकी एक लीला मात्र है॥४१४॥ 'खूब अपमान काजी का कर डाला। यदि आगे फिर ऐसा घटे (अर्थात् संकीर्तन का विरोध करे) तो आप उसका प्राण लेवें॥४१५॥ सब महन्त लोग भुजाओं को उठाकर स्तुति करते हैं। ( इतना निवेदन कर ) 'महाराज राजेश्वर विश्वम्भर की जय हो ! सर्व लोक नाथ श्री गौर सुन्दर की जय हो ! शेषशायी रमाकान्त की जय हो'॥४१६-४१७॥ महाप्रभो अपने दासों के बचनों को सुनकर हँसते हैं और 'हरि' कह कर अपने नृत्य के आनन्द में चल देते हैं॥४१८॥ इस प्रकार काजी को दण्ड देकर सब लोकों के नाथ, संकीर्तन-रस में निमग्न, अपने गणों के साथ नाचते हुये चले जा रहे हैं॥४१९॥ मृदङ्ग, मजीरा, शंख, करताल बज रहे हैं, 'राम कृष्ण गोविन्द गोपाल' की जय-ध्वनि हो रही है॥४२०॥ सब नागरिक लोग काजी के घर को तोड़-फोड़ कर, बड़े आनन्द में भरे, 'हरि' ध्वनि करते हुये नाचते २ जा रहे हैं॥४२१॥ दुष्ट निन्दकों के चित्त को भारी चोट पहुँची है, उनमें उदासी छा गयी है और वैष्णवों को आनन्द हो रहा है॥४२२॥ 'जय कृष्ण मुकुन्द मुरारि बनमाली'—इसे सब नागरिक जन ताली दे दे कर गाते हैं॥४२३॥ नगर २ में जय जयकार का कोलाहल मच रहा है। सब लोग आनन्द-सागर में बहे जा रहे हैं॥४२४॥ उन्हें यह ज्ञान नहीं कि कौन किधर नाच रहा है, कौन गा रहा, बजा रहा और कौन किधर चला जा रहा है॥४२५॥ आगे २ भक्त लोग नाचते हुये चले जा रहे हैं और सबसे पीछे कमलनयन प्रभु चले जा रहे हैं॥४२६॥ आज स्वयं ब्रह्मा, शिव, शेष कीर्तनियाँ है और सब वैकुण्ठों के चूड़ामणि प्रभु नृत्यकारी हैं

इहाते सन्देह किछु ना करिह मने। सेइ प्रभु कहियाछे कृपाय आपने ॥४२८॥
अनन्त अर्बुद लोक सङ्गे विश्वम्भर। प्रवेश करिला शंख वणिक्‌-नगर ॥४२९॥
शांखवणिकेर पुरे उठिल आनन्द। 'हरि' बलि बाजाय मृदङ्ग घन्टाशंख ॥४३०॥
पुष्पमय पथे नाचि चले विश्वम्भर। चतुर्दिगे ज्वले दीप परम-सुन्दर ॥४३१॥
से चन्द्रे र शोभाओ कि कहिवारे पारि। जाहाते कीर्त्तन करे गौराङ्ग श्रीहरि ॥४३२॥
प्रतिद्वारे पूर्णकुम्भ रम्भा आम्रसार। नारीगणे 'हरि' बलि देइ जयकार ॥४३३॥
एइमत सकल नगरे शोभा करे। आइला ठाकुर तंतु वायेर नगरे ॥४३४॥
उठिल मंगल ध्वनि जय कोलाहल। तन्तुवाय-सब हैला आनन्दे विह्वल ॥४३५॥
नाचे सब नगरिया दिया करताली। "हरि बोलि मुकुन्द गोपाल बनमाली ॥४३६॥
सर्व मुखे हरिनाम शुनि प्रभु हासे'। नाचिया चलिला प्रभु श्री धरेर वासे ॥४३७॥
भाङ्गा एक घर मात्र श्रीधरेर सार। उत्तरिला गिया प्रभु ताहार दुयार ॥४३८॥
सबे एक लौह पात्र आछये दुयारे। कत ठाञि तालि ताहा चोरे ओ ना हरे ॥४३९॥
नृत्य करे महा प्रभु श्रीधर-अङ्गने। जल पूर्ण पात्र प्रभु देखिला आपने ॥४४०॥
भक्त प्रेम बुझाइते श्रीशचीनन्दन। लौह पात्र तुलि लइलेन ततक्षण ॥४४१॥
जल पिये महाप्रभु सुखे आपनार। कार शक्ति आछे ताहा 'नय' करिवार ॥४४२॥
'मइलुँ मइलुँ' बलि डाकये श्रीधर। "मोरे संहारिते से आइला मोर घर ॥४४३॥
बलिया मूर्च्छित हैला सुकृति श्रीधर। प्रभु बोले "शुद्ध मोर आजि कलेवर ॥४१॥

॥४२७॥ मेरे इस कथन में कोई सन्देह न करे-यह ( मुझे ) स्वयं प्रभु ने ही कृपा करके कहा है ॥४२८॥ ( इस प्रकार नाचते-गाते हुये ) अनन्त अरब लोगों के साथ विश्वम्भर देव ने शंख बनिकों के नगर में प्रवेश किया ॥४२९। शंख बनिकों के नगर में आनन्द का कोलाहल मच गया। लोग 'हरि' ध्वनि करते हुये मृदङ्ग, घण्टा, शंख बजाने लगे ॥४३०॥ प्रभु विश्वम्भर पुष्पमय पथ पर नाचते चले जा रहे हैं। चारों ओर बड़े सुन्दर दीपक जल रहे हैं ॥४३१॥ उस चन्द्रमा की शोभा भी क्या कुछ कही जा सकती है कि जिसके प्रकाश में गौराङ्ग श्री हरि नृत्य कर रहे हों ? ॥४३२॥ द्वार द्वार प्रति जल पूर्ण घट, कदली, आम्र-पल्लव शोभा दे रहे हैं और नारीगण 'हरि' ध्वनि करती हुई जय जयकार करती हैं ॥४३३॥ इस प्रकार सारा नगर शोभायमान था। प्रभु चलते २ बुनकरों के नगर में आये ॥४३४॥ ( उनके आते ही ) मङ्गल ध्वनि होने लगी,जय जयकार का कोलाहल छा गया। बुनकर लोग सब आनन्द में विह्वल होगये ॥४३५॥ सब नगरवासी लोग ताली बजाते हुये नाचने लगे और 'हरि बोल मुकुन्द गोपाल वनमाली' गाने लगे ॥४३६॥ सबों के मुख से हरिनाम सुनकर प्रभु हँसे और फिर श्रीधर के घर की ओर नाचते हुये चल दिये ॥४३७॥ एक टूटी-फूटी झोंपड़ी ही श्रीधर का सर्वस्व था। प्रभु उसके द्वार जा लगे ॥४३८॥ उसके द्वार पर केवल मात्र एक लोहा का पात्र रक्खा हुआ है, उसमें भी कई जगह टाँके लगे हुये हैं। ऐसा वह पात्र है कि चोर भी न चुरावे। ४३९॥ महाप्रभु श्रीधर के आँगन पर नृत्य कर रहे हैं। प्रभु ने जल पूर्ण उस लोहे के पात्र को देखा ॥४४०॥ भक्ति-प्रेम की महिमा प्रकट करने के लिये श्रीशचीनन्दन प्रभु ने उस लोहे के पात्र को तुरन्त उठा लिया ॥४४१॥ अपने सुख में मगन प्रभु उस जल को पीने लगे। भला किसकी शक्ति है जो उनको मना कर सके ॥४४२॥ श्रीधर चिल्ला कर कहने लगा-'मर गया ! मैं तो मर गया ! मुझे मारने के लिये ही यह मेरे घर आया है' ॥४४३॥ इतना कह कर पुण्यशाली श्रीधर मूर्च्छित होगया।

आजि मोर भक्ति हैल कृष्णेर चरणे। श्रीधरेर जलपान करिलों जखने ॥४४५॥
एखने से विष्णु भक्ति हइल आमार।" कहिते कहिते पड़े नयने सु-धार ॥४४६॥
'वैष्णवेर जल-पाने विष्णु भक्ति हय।' सभारे बुझाय प्रभु गौराङ्ग सदय ॥४४७॥
"प्रार्थयेद् वैष्णवस्यान्नं प्रयत्नेन विचक्षणः। सर्वपाप विशुद्धयर्थं तदभावे जलं पिबेत् ॥४४८॥
भक्त वात्सल्य देखि सर्व भक्तगण। सभार उठिल महा-आनन्द-क्रन्दन ॥४४९॥
नित्यानन्द गदाधर पड़िला कान्दिया। अद्वैत श्रीवास कान्दे भूमिते पड़िया ॥४५०॥
कान्दे हरिदास गङ्गादास वक्रेश्वर। मुरारि मुकुन्द कान्दे श्री चन्द्रशेखर ॥४५१॥
गोविन्द गोविन्दानन्द श्री गर्भ श्रीमान्। कान्दे काशीश्वर श्रीजगदानन्द राम ॥४५२॥
जगदीश गोपीनाथ कान्देन नन्दन। शुक्लाम्बर गरुड़ कान्दये सर्वजन ॥४५३॥
लक्ष कोटि लोक कान्दे शिरे दिया हाथ। "कृष्णरे ठाकुर मोरि अनाथेर नाथ ॥४५४॥
कि हैल वलिते नारि श्रीधरेर वासे। सर्वभावे प्रेम भक्ति हइल प्रकाशे ॥४५५॥
'कृष्ण' बलि कान्दे सर्व जगत् हरिषे। संकल्प हइल सिद्ध, गौरचन्द्र हासे' ॥४५६॥
श्रीदेख सब भाइ ! एइ भक्तेर महिमा। भक्त वात्सल्येर प्रभु करिलेन सीमा ॥४५७॥
लौहमय जल पात्र बाहिरेर जल। परम-आदरे पान कैलेन सकल ॥४५८॥
परमार्थे पान-इच्छा हइल जखने। शुद्धामृत भक्त-जले हइल तखने ॥४५९॥
भक्ति बुझाइते से एमत पात्रे जल। परमार्थे वैष्णवेर सकल निर्मल ॥४६०॥

---

प्रभु कहने लगे 'आज मेरी काया शुद्ध होगयी ॥४४४॥ जैसे ही मैंने श्रीधर का जल पिया वैसे ही श्रीकृष्ण के चरण में आज मेरी भक्ति होगई ॥४४५॥ 'अब वह विष्णु-भक्ति मेरी हो गयी।' ऐसा कहते २ प्रभु के नयनों से अश्रुओं की धाराएँ बह चलीं ॥४४६॥ गौराङ्ग प्रभु इस लीला के द्वारा सबको यही जतला रहे हैं कि वैष्णव के जल पीने से विष्णु भक्ति प्राप्त होती है ॥४४७॥ तथाहि पद्म पुराणे—आदि खण्डे (३१–११२) श्लोकः—( अर्थ )—चतुर व्यक्ति समस्त पापों से विशुद्ध होने के लिये प्रयत्न पूर्वक वैष्णव के अन्न के निमित्त प्रार्थना करे। अन्न के अभाव में उनका जल ही पान करे ॥४४८॥ प्रभु की भक्त वत्सलता का प्रत्यक्ष दर्शन करके भक्तजनों की सभा में अतिशय आनन्दो द्रेक के कारण क्रन्दन का कोलाहल मच गया ॥४४९॥ नित्यानन्द और गदाधर रोते हुये गिर पड़े। अद्वैताचार्य, श्रीवास भी भूमि पर लोट कर रोने लगे ॥४५०॥ हरिदास, गङ्गादास, वक्रेश्वर, मुरारि, मुकुन्द, श्री चन्द्रशेखर, गोविन्द, गोविन्दानन्द, श्रीगर्भ, श्रीमान्, काशीश्वर, जगदानन्द, राम, जगदीश, गोपीनाथ, नन्दनाचार्य, शुक्लाम्बर, गरुड़ आदि सब भक्त लोग रोने लगे ॥४५१–५२–५३॥ लाखों-करोड़ों लोग सिर पर हाथ दिये रो रहे हैं और 'हे कृष्ण ! हे मेरे प्रभो ! हे अनाथों के नाथ !' कह के पुकार रहे हैं ॥४५४॥ श्रीनिवास के निवास-स्थान में क्या कहूँ क्या हो गया कि सहसा सर्व भावों के सहित प्रेम का प्रकाश हो गया ॥४५५॥ ( वह ऐसे कि ) सब जगत् "कृष्ण-कृष्ण" कहकर रो रहा है और गौरचन्द्र हँस रहे हैं कारण कि उनका संकल्प ( सबके मुख से नाम लिवाने का ) सिद्ध जो हो गया ॥४५६॥ देखो भाइयो ! इस श्रीधर भक्त की महिमा जिसके निकट प्रभु ने भक्त-वत्सलता की सीमा प्रकट कर दिखायी ॥४५७॥ एक तो पात्र लोहे का, उस पर जल भी बाहर का अशुद्ध, पर ऐसा जल भी प्रभु ने परम आदर के सहित सब पान कर लिया ॥४५८॥ जिस समय परमार्थ-दृष्टि से उस जल को पीने की इच्छा हुई, उसी समय भक्त का वह जल शुद्ध अमृत जैसा हो गया ॥४५९॥ भक्त को समझाने के लिये ही वह ऐसे एक पात्र का जल था—परन्तु वस्तुतः परमार्थ दृष्टि से वैष्णवों की तो सब ही वस्तुएँ

दाम्भिकेर रत्नपात्र दिव्य-जल-सने। आछुक पिवार कार्य, ना देखे नयने ॥४६१॥
जे-से द्रव्य सेवकेर सर्व भावे खाय। नैवेद्यादि–विधिरो अपेक्षा नाहि चाय ॥४६२॥
अल्प देखि दासे ना दिल ओवले खाय। तार साक्षी ब्राह्मणेर खुद द्वारकाय ॥४६३॥
अवशेषो सेवकेर करे आत्मसाथ। तार साक्षी वनवासे युधिष्ठिर–शाक ॥४६४॥
सेवक कृष्णेर पिता माता पत्नी भाइ। दास बइ कृष्णेर द्वितीय आर नाइ ॥४६५॥
जे रूप चिन्तये, दासे, से-इ रूप हय। दासे कृष्ण करिवारे पायरे विक्रय ॥४६६॥
'सेवक वत्सल प्रभु' चारि वेदे गाय। सेवकेर स्थाने प्रभु प्रकाश सदाय ॥४६७॥
नयन भरिया देख दासेर प्रभाव। हेन दास्य भावे कृष्णे कर' अनुराग ॥४६८॥
अल्प हेन ना मानिह 'कृष्णदास' नाम। अल्प–भाग्येदास नाहि करे भगवान् ॥४६९॥
बहुकोटि जन्म जे करिल निज धर्म। अहिंसाय अमायाय करे सर्व कर्म्म ॥४७०॥
अहर्निश दास्य भावे जे करे प्रार्थन। गंगा लभ्य हय काले वलि 'नारायण'॥४७१॥
तवे हय मुक्त–सर्वबन्धेर विनास। मुक्त हैले सेइ हय गोविन्देर दास ॥४७२॥
एइ व्याख्या करे भाष्य कारेर समाजे। मुक्त–सवो लीलातनु करि कृष्ण भजे ॥४७३॥
अतएव भक्त हय ईश्वर समान। भक्त स्थाने पराभव मागे' भगवान् ॥४७४॥
अनन्त–ब्रह्माण्डे यत आछे स्तुति माला। 'भक्त' हेन स्तुतिर ना धरे केहो कला ॥४७५॥

---

निर्मल है ॥४६०॥ परन्तु दाम्भिक लोगों के रत्न-पात्र के सुन्दर जल का पीना तो दूर रहा, प्रभु उसके प्रति दृष्टि तक नहीं देते ॥४६१॥ ( और ) सेवक की तो जैसी–कैसी वस्तु भी सर्व भाव सहित प्रभु ग्रहण कर लेते हैं–नैवेद्यादि समर्पण की कोई विधि की अपेक्षा नहीं रखते ॥४६२॥ अपनी वस्तु को अल्प अथवा तुच्छ समझ कर यदि दास स्वयं नहीं भी देता है तो प्रभु उसे बल पूर्वक छीन कर खा लेते हैं–इसका प्रमाण है द्वारिका में ब्राह्मण के चाँवल ॥४६३॥ ( और तो और ) सेवक का तो शेष उच्छिष्ट भी उदरस्थ कर लेते हैं–इसका प्रमाण है वनवास काल में युधिष्ठिर का साग ॥४६४॥ सेवक जन तो श्रीकृष्ण का पिता, माता, पत्नी, भाई सब ही है। दास के बिना श्रीकृष्ण का अपना दूसरा कोई नहीं है ॥४६५॥ जो भी रूप का चिन्तन दास करता है प्रभु वही रूप धारण कर लेते हैं। दास तो कृष्ण को बेच तक सकता है। ४६६॥ चारों वेद प्रभु को 'सेवक वत्सल' कह कर गाते हैं। सेवकजन के निकट ही प्रभु का सदा प्रकाश होता है ॥४६७॥ दास के प्रभाव को आज नेत्र भर कर देख लो और श्रीकृष्ण के इस दास्य भाव में प्रेम करो ॥४६८॥ 'कृष्णदास' नाम को कोई छोटा न समझना, ( कारण कि ) छोटे भाग्य वालों को भगवान् अपना दास नहीं बनाते ॥४६९॥ जो करोड़ों जन्मों तक स्वधर्म का पालन करता है,हिंसा और कपट रहित हो सब धर्मों को करता है तथा अहर्निश दास्य भाव से जो प्रार्थना किया करता है उसको अन्त काल में गङ्गा की प्राप्ति होती है और उसके मुख से 'नारायण' नाम निकलता है ॥४७०–७१॥ तब उसके सब बन्धन नष्ट हो जाते हैं और वह मुक्त हो जाता है। मुक्त हो जाने पर वही तब गोविन्द का दास होता है। ४७२॥ यह व्याख्या ब्रह्मसूत्र के भाष्यकार ( श्रीशङ्कराचार्य ) अपनी समाज में करते हैं कि मुक्त गण भी लीला-देह धारण करके श्रीकृष्ण का भजन करते हैं ॥४७३॥ तथा चोक्तं सर्वज्ञ भाष्य कृद्भिः–'मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते' ॥२॥ ( अर्थः–मुक्त पुरुष गण भी स्वेच्छा पूर्वक शरीर ग्रहण करके भगवान् का भजन करते हैं। ) अतएव भक्त ईश्वर के समान होता है। 'भक्त के निकट भगवान् पराजय चाहते हैं' ॥४७४॥ अनन्त ब्रह्माण्ड में जितनी भी स्तुतियों का समूह है, 'भक्त' नाम मात्र में जो स्तुति है, उसका

'दास'–नामे ब्रह्मा शिव हरिष सभार। धरणीधरेन्द्रो चाहे दास–अधिकार ॥४७६॥
ए सब ईश्वर–तुल्य स्वभावेइ भक्त। तथापिह भक्त हइवारे अनुरक्त ॥४७७॥
हेन भक्त अद्वैतेरे बलिते हरिषे। पापी सब दुख पाय निज–कर्म–दोषे ॥४७८॥
कृष्णेर सन्तोष बड 'भक्त' हेन नामे। कृष्णचन्द्र बइ भक्त आर के वा जाने ॥४७९॥
उदर–भरण लागि एबे पापी सब। लओलाय ईश्वर आमि'–मूले जरद्गव ॥४८०॥
गर्दभ–शृगाल–तुल्य शिष्यगण लैया। केहो बोले "आमि रघुनाथ, भाव' गिया" ॥४८१॥
कुक्कुरेर भक्ष्य देह—इहारे लइया। बोलाय 'ईश्वर' विष्णु माया मुग्ध हैया ॥४८२॥
सर्व–प्रभु गौरचन्द्र श्रीशचीनन्दन। देख ताँर शक्ति एइ भरिया नयन ॥४८३॥
इच्छा मात्र कोटि कोटि समृद्ध हइल। कत कोटि महादीप ज्वलिते लागिल ॥४८४॥
केवा रुइलेक कला प्रति घरे घरे। केवा गाय वा'य केवा पुष्प वृष्टि करे ॥४८५॥
करिलेन मात्र श्री धरेर जल-पान। कि हइल ना जानि प्रेमेर अधिष्ठान ॥४८६॥
भक्त वात्सल्य देखि त्रिभुवन कान्दे। भूमिते लोटाय केहो केश नाहि बान्धे ॥४८७॥
श्रीधर कान्दये तृण धरिया दशने। उच्चकरि 'हरि' बोले सजल-नयने ॥४८८॥
"कि जल करिल पान त्रिदेशर राय।" नाचये श्रीधर कान्दे करे "हाय हाय ॥४८९॥
भक्त-जल पान करि प्रभु विश्वम्भर। श्रीधर–अङ्गने नाचे वैकुण्ठ ईश्वर ॥४९०॥
प्रियगणे चतुर्दिगे गाय महारसे। नित्यानन्द गदाधर शोभे दुइ पाशे ॥४९१॥

---

कला ( अंश ) भी कोई नहीं है अर्थात् 'भक्त' सम्बोधन से उत्तम कोई स्तुति नहीं है ॥४७५॥ 'दास' नाम से तो ब्रह्मा, शिव सबको हर्ष होता है। धरणी धर शेष भी 'दास' पदवी की आकांक्षा करते हैं ॥४७६॥ यद्यपि ये सब ( ब्रह्मा, शिव, शेष ) ईश्वर के ही तुल्य हैं तथा स्वभाव से भक्त ही हैं तथापि भक्त बनने में इनकी बड़ी प्रीती है ॥४७७॥ ऐसा है दास-भक्त का स्वरूप इसे वर्णन करते हुये अद्वैताचार्य हर्ष को प्राप्त हो रहे हैं ॥४७८॥ ( इसी कारण ) श्रीकृष्ण को 'भक्त' इस पदवी से बड़ा सन्तोष होता है और श्रीकृष्ण-चन्द्र बिना और कौन भक्ति ( की महिमा ) को जानता है ॥४७९॥ परन्तु इस समय तो पापी लोग सब अपना पेट भरने के लिये 'मैं ईश्वर हूँ' ऐसा कहते हैं पर हैं वे महा मूर्ख ॥४८०॥ कोई तो गधा और गीदड़ जैसे शिष्यों को लेकर कहता है 'मैं ही रघुनाथ हूँ, ऐसी भावना करो' (कुत्तों का भोजन) इस देह को लेकर वे विष्णु माया से मोहित हो ईश्वर बनते हैं ॥४८१–८२॥ गौरचन्द्र श्रीशचीनन्दन ( ही ) सबके प्रभु हैं—नेत्र भर कर उनकी शक्ति को देख लो ॥४८३॥ उनकी इच्छा मात्र से कोटि २ वैभव का प्रकाश हो गया—न जाने कितनी कोटि महाद्वीप जलने लगे ॥४८४॥ किसने घर घर में केले के वृक्ष लगा दिये ? किसने गाया, किसने बजाया, किसने ये फूल बरसाये ॥४८५॥ ( यह सब कार्य प्रभु की लीला-शक्ति से ही हुये ) प्रभु ने श्रीधर का जल केवल पिया ही तो था, परन्तु न जाने यह क्या हुआ कि सर्वत्र प्रेम का विस्तार हो गया। त्रिभुवन रोने लगा प्रभु का भक्तवात्सल्य देख। लोग भूमि पर लोट पोट हो गये, उनके केश खुल गये हैं पर कोई नहीं बाँधता है ॥४८६–८७॥ श्रीधर दाँतों में तृण दबा कर रोता है और अश्रु पूर्ण नेत्रों से उच्च स्वर से 'हरि' ध्वनि करता है ॥४८८॥ 'देवताओं के नाथ ने यह कैसा जल पी लिया' कहता हुआ श्रीधर 'हाय हाय' करता है, रोता है और नाचता है ॥४८९॥ प्रभु विश्वम्भर भक्त के जल को पीकर भक्त के आँगन में वैकुण्ठ के ईश्वर आप नाचते हैं ॥४९०॥ प्रिय परिकर सब चारों ओर प्रेम रस के आनन्द से गाते हैं। नित्यानन्द और गदाधर प्रभु के दोनों ओर शोभा देते हैं ॥४९१॥ केले का खोला ( गुदा )

खोला बेचा–सेवकेर देख भाग्य-सीमा। ब्रह्मा शिव कान्दे जार देखिया महिमा ॥४९२॥
धने जने पाण्डित्ये कृष्णेरे नाहि पाइ। केवल भक्तिर वश चैतन्य गोसाञि ॥४९३॥
जलपाने श्रीधरेर अनुग्रह करि। नगरे आइला पुन गौराङ्ग श्रीहरि ॥४९४॥
नाचे गौरचन्द्र भक्ति रसेर ठाकुर। चतुर्दिगे हरिध्वनि शुनिञा प्रचुर ॥४९५॥
सर्व लोक जिने नवद्वीपेर शोभाय। हरि–बोल शुनिमात्र सभार जिह्वाय ॥४९६॥
जे सुखे विह्वल शुक नारद शंकर। से सुखे विह्वल सब नदीया नगर ॥४९७॥
सर्व नदियाय नाचे त्रिभुवन–राय। गादिगाछा–पारडाङ्गा आदि दिया जाय ॥४९८॥
'एक निशा' हेन ज्ञान ना करिह मने। कत कल्प गेल सेइ निशिर कीर्तने ॥४९९॥
चैतन्य चन्द्रेर किछु असम्भव नय। भ्रूभङ्गे जाहार हय ब्रह्मार प्रलय ॥५००॥
महा भाग्यवाने से सबतत्त्वजाने। सूक्ष्म तर्क वादी पापी किछुइ ना माने ॥५०१॥
जे नगरे नाचे वैकुण्ठेर अधिराज। ताहारा भासये परानन्द–सिन्धु–माझ ॥५०२॥
से हुंकार से गर्जन से प्रेमेर जल। देखिया कान्दये स्त्री पुरुष सकल। ५०३॥
केहो बोले "शचीर चरणे नमस्कार। हेन महा पुरुष जन्मिला गर्भे जाँर ॥५०४॥
केहो बोले "जगन्नाथ मिश्र पुण्यवन्त।" केहो बोले "नदियार भाग्येर नाहि अन्त ॥५०५॥
"एइ मत लीला प्रभु कत कल्प केला। सभेबोले आजि रात्रि प्रभात ना हइला ॥५०६॥
एइःमत बलि सभे देइ जयकार। सर्व लोक 'हरि' बइ ना बोलये जार ॥५०७॥
प्रभु: देखि सर्व लोक दण्डवत् हैया। पड़ये पुरुष–स्त्रीये बालक लइया ॥५०८॥

बेचने वाले सेवक के भाग्य की सीमा को देखो। जिसकी महिमा को देखकर ब्रह्मा शिव भी प्रेम के अश्रु बहाते हैं ॥४९२॥ धन से, जन से, पण्डिताई से कृष्ण नहीं मिलते हैं। श्रीचैतन्य गुसाँई तो केवल भक्ति के वश में होते हैं ॥४९३॥ जलपान के द्वारा श्रीधर पर अनुग्रह करके गौराङ्ग श्रीहरि फिर नगर में आये ॥४९४॥ भक्ति-रस के ठाकुर गौरचन्द्र नाचते हैं और चारो ओर प्रचुर हरि ध्वनि सुनायी देती है ॥४९५॥ नवद्वीप अपनी शोभा से सब लोकों को पराजित कर रहा है सबकी जिह्वाओं से केवल 'हरि बोल' सुनायी दे रहा है ॥४९६॥ जिस सुख में शुक, नारद, शंकर विह्वल रहते हैं, उसी सुख में सब नदिया नगर विह्वल हो रहा है ॥४९७। 'त्रिभुवनराय प्रभु समस्त नदिया में नृत्य करते हैं, 'गादिगाछा' 'पारडांगा' आदि सब स्थानों में होकर जाते हैं ॥४९८॥ यह नगर-संकीर्तन केवल एक रात्रि भर का ही कोई न समझे। न जाने कितने कल्प उस एक रात्रि के कीर्तन में बीत गये ॥४९९॥ श्रीचैतन्यचन्द्र के लिये कुछ भी असम्भव नहीं है–उनके तो एक भ्रू-भङ्गी से ब्रह्मा ( सौ कल्प की आयु वाला ) का प्रलय हो जाता है ॥५००॥ इन सब तत्त्वों को कोई भाग्यवान ही जानता है। सूक्ष्म तर्क वादी पापी तो कुछ भी नहीं मानता है ॥५०१॥ जिस २ नगर में वैकुण्ठ के अधीश्वर गौरचन्द्र नाचते हैं वे नगर परानन्द के सागर में बहने लगते हैं ॥५०२॥ प्रभु का वह हुंकार, वह गर्जन' वह प्रेमाश्रु-जल ये सब देखकर सब स्त्री पुरुष रोने लगते हैं ॥५०३॥ कोई कहता है 'शची माता के चरणों में नमस्कार है जिनके गर्भ से ऐसे महापुरुष प्रकट हुये हैं' । ५०४॥ कोई कहता है 'जगन्नाथ मिश्र पुण्यवान हैं'। कोई कहता है 'नदिया के भाग्य की सीमा नहीं है' ॥५०५॥ इस प्रकार प्रभु ने कितने ही कल्प लीला कीन्ही है सब कहते हैं कि आज रात्रि का प्रभात नहीं हुआ है ॥५०६॥ इस प्रकार कहते हुये सब जय जयकार करते हैं। सब लोग 'हरि' नाम को छोड़ मुख से और कुछ नहीं बोलते हैं ॥५०७॥ प्रभु को देख सब लोग पुरुष और स्त्री बालक को लेकर दण्डवत् पड़ कर प्रणाम करते

शुभदृष्टि गौरचन्द्र करि सभा कारे। स्वानुभावानन्दे प्रभु कीर्त्तने विहरे ॥५०९॥
ए सब लीलार कभु नाहि परिच्छेद। 'अविर्भाव' 'तिरोभाव' एइ कहे वेद ॥५१०॥
जे खाने जे रूपे भक्तगणे करे ध्यान। सेइ खाने से-इ रूपे प्रभु विद्यमान ॥५११॥
"यद् यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति। तत्तद् वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय" ॥५१२॥
अद्यापिह चैतन्य ए सब लीला करे। जार भाग्ये थाके से देखये निरन्तरे ॥५१३॥
मध्यखण्ड-कथा बड़ अमृतेर खण्ड। जे कथा शुनिले घुचे अन्तर पाषण्ड ॥५१४॥
भक्त लागि प्रभुर सकल अवतार। भक्त वइ कृष्ण-मर्म ना जानये आर ॥५१५॥
कोटि जन्म यदि योग तप करि मरे। भक्ति विने कौन कर्म फल नाहि धरे ॥५१६॥
हेन 'भक्ति' विने-भक्त-सेविले ना हय। अतएव भक्त-सेवा सर्वशास्त्रे कय ॥५१७॥
आदिदेव जय जय नित्यानन्दराय। चैतन्य कीर्त्तन स्फुरे जाहार कृपाय ॥५१८॥
केहो बोले "नित्यानन्द बलराम-सम"। केहो बोले "चैतन्येर बड़ प्रियतम" ॥५१९॥
केहो बोले,'महातेजी अंशअधिकारी। केहो बोले "कौन रूप बुझिते ना पारि" ॥५२०॥
किवा योगी नित्यानन्द किवा भक्त ज्ञानी। जार जेन मत इच्छा ना बोलये केनि ॥५२१॥
जे से केने चैतन्येर नित्यानन्द नहे। तभु से चरणधन रहुक हृदये ॥५२२॥
एत परि हारे ओ जे पापी निन्दा करे। तवे लाथि मारों तार शिरेर उपरे ॥५२३॥
चैतन्य प्रियेर पा'ये मोर नमस्कार। अवधूतचन्द्र प्रभु हउक आमार ॥५२४॥

---

है ॥५०८॥ गौरचन्द्र प्रभु सबों के प्रति शुभ दृष्टि से अवलोकन करते हुये स्वानुभव के आनन्द में कीर्तन में विहार करते हैं ॥५०९॥ इन सब लीलाओं का कभी लोप नहीं होता। वेद इनका 'आविर्भाव' और 'तिरोभाव' होना ही बतलाता है ॥५१०॥ जहाँ कहीं भी भक्त जिस रूप का ध्यान करता है, वहीं उस रूप में प्रभु विद्यमान रहते हैं ॥५११॥ तथाहि ( भा० ३।९।११ ) ( अर्थ—"हे प्रभो ! वेदों ने तुम्हारे नाना प्रकार के रूपों का गान किया है अतएव तुम 'उरुगाय' हो। तुम्हारे भक्त लोग तुम्हारे उन उन रूपों में से जिस २ रूप का स्वेच्छा पूर्वक ध्यान करते हैं तुम उनके निकट उन उन रूपों से प्रकट होते हो ॥५१२॥ ) आज भी श्री चैतन्य देव ये सब लीला कर रहे हैं, जिसका भाग्य होता है वह उन लीलाओं को निरन्तर देखता है ॥५१३॥ मध्य खण्ड की कथा अमृत की डली है। इस कथा के सुनने से अन्तः करण का दम्भ-कपट-दूर हो जाता है ॥५१४॥ भक्त के लिये ही प्रभु के सब अवतार होते हैं, भक्त के अतिरिक्त श्रीकृष्ण के मर्म को और कोई नहीं जानता है। ५१५॥ योग और तप कर करके कोटि जन्म क्यों न बिता देवे पर भक्ति बिना कोई कर्म फलीभूत नहीं होता है ॥५१६॥ ऐसी 'भक्ति' भक्त की सेवा किये बिना प्राप्त नहीं होती। इसीसे भक्त-सेवा के लिये सब शास्त्र कहते हैं ॥५१७॥ आदि देव नित्यानन्दराय की जय हो, जय हो। इनकी कृपा से ही श्री चैतन्यदेव की लीला को गाने की स्फुरणा होती है ॥५१८॥ कोई कहता है नित्यानन्द बलराम के समान हैं।" कोई कहता है "चैतन्यदेव के बड़े प्रियतम हैं" ॥५१९॥ कोई कहता है, "वे महान् तेजस्वी अधिकारी अर्थात् श्रेष्ठ पात्र हैं" कोई कहता है "हम तो समझ नहीं पाते उनका क्या स्वरूप है ॥५२०॥ नित्यानन्द जीव हैं, भक्त हैं, ज्ञानी हैं, अथवा श्री चैतन्यदेव के नित्यानन्द कुछ नहीं हैं—इस प्रकार जैसा जिसके मन में आवे, वैसा वह कहा करे, किन्तु फिर भी मेरे हृदय में तो उनके ही चरण निधि के रूप में विराजे रहें ॥५२१-५२२। इस प्रकार दोष का परिहार करने पर भी जो पापी नित्यानन्द की निन्दा करता है, मैं उसके सिर पर लात मारता हूँ। ५२३॥ श्रीचैतन्यदेव के प्रियजनों के चरणों में मेरा

चैतन्येर कृपाय से नित्यानन्द चिनि। नित्यानन्द जानाइले गौरचन्द्र जानि ।।५२५।।
नित्यानन्द गौरचन्द्र—श्रीराम लक्ष्मण। नित्यानन्द गौरचन्द्र—कृष्ण संकर्षण ।।५२६।।
नित्यानन्द स्वरूपे से चैतन्येर भक्ति। सर्व भावे करिते धरये प्रभु शक्ति ।।५२७।।
चैतन्येर जत प्रिय सेवक-प्रधान। ताहारा से ज्ञाता नित्यानन्देर आख्यान ।।५२८।।
तबे जे देखह हेन आन्योऽन्ये वाजे। रङ्ग करे कृष्णचन्द्र केहो नाहि बुझे ।।५२९।।
इहाते जे एक वैष्णवेर पक्ष लय। अन्य वैष्णवेरे निन्दे से-इ आय क्षय ।।५३०।।
सर्व भावे भजे कृष्ण जे कारे ना निन्दे। सेइ से गणना पाय वैष्णवेर वृन्दे ।।५३१।।
अद्वैतेरे चरणे मोर एइ नमस्कार। तान प्रिय ताहे मति रहुक आमार ।।५३२।।
सर्व गोष्ठी सहित गौराङ्ग जय जय। शुनि लेइ मध्य खण्ड भक्ति लभ्य हय ।।५३३।।
अद्वैतेरे पक्ष हैया निन्दे गदाधर। से अधम कभो नहे अद्वैत किंकर ।।५३४।।
चैतन्य चन्द्रेर कथा अमृत मधुर। सकल जीवेर मने वाढ़ुक प्रचुर ।।५३५।।
शुनिले चैतन्य कथा जार हय सुख। से अवश्य देखिवेक चैतन्य श्री मुख ।।५३६।।
श्री कृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ।।५३७।।

नमस्कार है। ( वे यही आशीर्वाद करें कि ) अवधूत चन्द्र ( श्री नित्यानन्द ) ही ( सदा ) मेरे प्रभु होवें ।।५२४।। श्री चैतन्य की कृपा से मैं नित्यानन्द को जानता हूँ और नित्यानन्द के बतलाने से गौरचन्द्र को जानता हूँ ।।५२५।। नित्यानन्द और गौरचन्द्र,लक्ष्मण और राम हैं, वे ही बलराम और कृष्ण हैं ।।५२६।। नित्यानन्द के स्वरूप में श्रीचैतन्यदेव की भक्ति सर्वभाव से सम्पादन करने के लिये उनमें ईश्वर-शक्ति विराजमान है ।।५२७।। श्रीचैतन्य के जितने प्रिय प्रधान सेवक हैं, वे सब नित्यानन्द की कथा के ज्ञाता हैं ।।५२८।। फिर भी उन सेवकों में जो कहीं परस्पर विरोध दिखायी देता है, वह केवल श्रीकृष्णचन्द्र का एक कौतुक-रङ्ग है—इसे कोई नहीं समझ पाता है ।।५२९।। इस कारण जो एक वैष्णव का पक्ष लेता है और दूसरे वैष्णव की निन्दा करता है, वह नाश को प्राप्त होता है ।।५३०।। वैष्णवों में उसी की गिनती होती है अथवा वैष्णव लोग उसे ही वैष्णव मानते हैं जो किसी की निन्दा न करता हुआ सर्व भाव से श्रीकृष्ण को भजता है ।।५३१।। श्री अद्वैत प्रभु के चरणों में यह मेरा नमस्कार है। ( और यही प्रार्थना है कि ) जो उनको प्रिय हैं उनमें मेरी भी मति रहे ।।५३२।। समस्त परिकरों के सहित श्री गौराङ्गदेव की जय हो, जय हो। श्रीचैतन्यदेव की कथा सुनने से भक्ति लाभ होती है ।।५३३।। श्री अद्वैत का पक्ष लेकर जो गदाधर की निन्दा करता है, वह अधम कभी अद्वैत का किङ्कर नहीं कहा जा सकता है ।।५३४।। श्री चैतन्यचन्द्र की कथा अमृत से भी अति मधुर है। यह कथा समस्त जीवों के हृदय में खूब बढ़े फले-फूले ।।५३५।। जिसे श्रीचैतन्यदेव की कथा सुनकर सुख होता है, वह अवश्य ही श्रीचैतन्य प्रभु के श्री मुख का दर्शन करेगा ।।५३६।। श्रीकृष्णचैतन्य और श्रीनित्यानन्दचन्द्र मेरे जीवन स्वरूप हैं। वृन्दावनदास उनके युगल पदों का ही गुणगान करता है ।।५३७।।

श्रीचैतन्य भागवते मध्य खण्डे श्रीधर जलपानादि दर्शनं
नाम त्रयोविंशतितमो अध्यायः ।।२३।।

---

# अथ चौबीसवाँ अध्याय

जय जय जय गौर-सिंह महा धीर। जय जय शिशु-पाल जय-दुष्ट-वीर ॥ १ ॥
जय जगन्नाथ पुत्र श्रीशचीनन्दन। जय जय जय पुण्य-श्रवण-कीर्त्तन ॥ २ ॥
जय जय श्रीजगदानन्देर जीवन। जय हरिदास-काशीश्वर-प्राण-धन ॥ ३ ॥
जय कृपासिन्धु दीनबन्धु सर्व-तात। जे बोले 'तोमार' प्रभु ! तारहओ नाथ ॥ ४ ॥
हेन मते नवद्वीपे विश्वम्भर-राय। विदित-कीर्त्तन प्रभु हइला सदाय ॥ ५ ॥
हेन से हइला प्रभु हरि संकीर्त्तने। नाम शुनि मात्र प्रभु पड़े जे-ते स्थाने ॥ ६ ॥
कि नगरे कि चत्वरे किवा जले वने। निरन्तर अश्रु धारा वहे श्रीनयने ॥ ७ ॥
आप्तगणे रक्षिया बुलेन निरन्तर। भक्ति रस मय हइलेन विश्वम्भर ॥ ८ ॥
केहो मात्र कोन रूपे यदि बोले हरि। शुनि लेइ पड़े प्रभु आपना' पासरि ॥ ९ ॥
महा कम्प अश्रु हय पुलक सर्वाङ्ग। गड़ागड़ि जायेन नगरे महारङ्ग ॥ १० ॥
जे आवेश देखिले ब्रह्मादि धन्य हय। ताहा देखे नदियार लोक-समुच्चय ॥ ११ ॥
शेषे अति मूर्च्छा देखि मिलि सर्व दासे। आलग करिया निञा चलि लैन वासे ॥ १२ ॥
तवे द्वार दिया जे करेन संकीर्त्तन। से सुखे पूर्णित हय अनन्त भुवन ॥ १३ ॥
जत सब भाव हय-अकथ्य सकल। हेन नाहि बुझि प्रभु किरसे विह्वल ॥ १४ ॥
क्षणे बोले 'मुञि सेइ मदनगोपाल।' क्षणे बोले 'मुञि कृष्णदास सर्वकाल' ॥ १५ ॥

---

महाधीर गौरसिंह की जय हो जय हो जय हो। सज्जन बालक और दुष्ट संहारक वीर की जय हो जय हो ॥ १ ॥ श्री जगन्नाथ पुत्र श्री शचीनन्दन की जय हो जिनकी कथा का श्रवण कीर्तन पुण्यप्रद है उनकी जय हो, जय हो, जय हो ॥ २ ॥ श्री जगदानन्द के जीवन स्वरूप की जय हो। हरिदास और काशीश्वर के प्राणधन स्वरुप की जय हो ॥ ३ ॥ दीनबन्धु कृपा सिन्धु सर्व पिता की जय हो। हे प्रभो ! आप से यही प्रार्थना है कि जो "मैं तुम्हारा" ऐसा कहे उसके आप नाथ बनो ॥ ४ ॥ इस प्रकार नवद्वीप में प्रभु विश्वम्भर राय के कीर्तन की कथा सब को विदित हो गयी और उनकी आलोचना सर्वत्र होने लगी ॥ ५ ॥ उस हरि-संकीर्तन के समय से प्रभु की ऐसी अवस्था हो गयी कि हरि नाम सुनते ही प्रभु जहाँ तहाँ गिर पड़ते ॥ ६ ॥ क्या नगर में ( विचरते समय ) क्या चबूतरे में ( बैठे समय ) क्या जल में ( न्हाते समय ), क्या वन में, सर्वत्र निरन्तर श्री नेत्रों से अश्रु धाराएँ बहती रहती हैं ॥७॥ आप्तजनों के द्वारा रक्षित होकर प्रभु निरन्तर विचरण किया करते हैं। विश्वम्भर प्रभु भक्तिरसमय होगये।'७॥ कोई यदि किसी रूप से 'हरि' मात्र कह देता तो उसे सुनते ही प्रभु अपने को भूल पृथ्वी पर गिर पड़ते ॥८॥ उनके सर्वाङ्ग में महान् कम्प और पुलक हो जाते, अश्रु बहने लगे, और वे नगर में महाआनन्द में लोट-पोट होने लगते ॥१०॥ जिस ( प्रेम के ) आवेश को देख पाने पर ब्रह्मादि अपने को धन्य मानें, वह आवेश आज नदिया के समस्त लोग देख रहे हैं ॥११॥ अन्त में उनकी अति मूर्च्छा ( जो भङ्ग नहीं हो रही थी ) को देखकर सब भक्त लोग उनको ( जन-समुदाय के मध्य से ) अलग करके घर ले जाते ॥१२॥ फिर वहाँ द्वार बन्द करके जो संकीर्तन करते, उस सुख से अनन्त भुवन पूरित हो जाता ॥१३॥ जितने भी सब भाव है, और जो वाणी से कहे नहीं जा सकते, वे सब भाव प्रभु में प्रकट होते। यह ज्ञात नहीं होता कि प्रभु कौन से ( अपूर्व ) रस में विह्वल हैं ॥१४॥ अभी एक क्षण में तो कहते हैं 'मैं ही वह मदनगोपाल हूँ' और

'गोपी गोपी गोपी, मात्र कोन दिन जपे'। शुनिले कृष्णेर नाम ज्वले महा कोपे ॥१६॥
'कोथाकार कृष्ण तोर महा दस्यु से। शठ धृष्ट कितव—भजे वा तारे के ॥१७॥
स्त्री जित हइया स्त्रीर काटे नाक काण। लुब्धकेर प्राय लैल बालिर पराण ॥१८॥
कि कार्य आमार सेवा चोरेर कथाय।' जे कृष्ण बोलये तारे खेदाड़िया जाय ॥१९॥
'गोकुल गोकुल' मात्र बोले क्षणे क्षणे। 'वृन्दावन वृन्दावन' बोले कोन दिने ॥२०॥
'मथुरा मथुरा' कोन दिन बोले मुखे। कोन दिन पृथिवी ते नखे अङ्क लेखे ॥२१॥
क्षणे पृथिवीते लेखे त्रिभङ्ग आकृति। चा'हिया रोदन करे, भासे सब क्षिति ॥२२॥
क्षणे बोले 'भाइ सब! बड़ देखि बन। पाले पाले सिंह व्याघ्र भल्लु केर गण' ॥२३॥
दिवसेरे बोले रात्रि, रात्रिरे दिवस। एइ मत प्रभु हइलेन भक्ति रस ॥२४॥
प्रभुर आवेश देखि सर्व भक्त गण। अन्योन्ये गला धरि करेन क्रन्दन ॥२५॥
जे आवेश देखिते ब्रह्मार अभिलाष। सुखे देखे ताहा सर्व-वैष्णवेर दास ॥२६॥
छाड़िया आपन बास प्रभु विश्वम्भर। वैष्णवेर घरे प्रभु थाके निरन्तर ॥२७॥
बाह्य-चेष्टा ठाकुर करेन कोन क्षणे। से केवल जननीर सन्तोष कारणे ॥२८॥
सुखमय हइलेन सर्व भक्तगण। विनि-ठाकुरेओ सभे करेन कीर्त्तन ॥२९॥
नित्यानन्द मत्तसिंह सर्व नदियाय। घरे घरे बुले प्रभु अनन्त लीलाय ॥३०॥
प्रभु-सङ्गे गदाधर थाकेन सर्वथा। अद्वैत लइया सर्व-वैष्णवेर कथा ॥३१॥
एक दिन अद्वैत नाचेन गोपी भावे। कीर्त्तन करेन सभे महा अनुरागे ॥३२॥

---

फिर दूसरी क्षण में कहते हैं—'मैं सब समय के लिये कृष्णदास हूँ' ॥१५॥ किसी दिन केवल "गोपी, गोपी, गोपी" जपते रहते हैं, उस समय जो कहीं कृष्ण का नाम सुन लेते हैं तो अत्यन्त क्रोध से लाल हो जाते है ॥१६॥ ( और कहने लगते हैं ) "कहाँ का वह तेरा कृष्ण महा डाकू, शठ, धृष्ट, कपटी! उसे कौन भजे ॥१७॥ स्त्री के वश में होकर वह स्त्री के नाक-कान काटता है। उसने व्याध की भाँति बालि के प्राण ले लिये ॥१८॥ "उस चोर की वार्ता से मेरा क्या प्रयोजन।" ( ऐसा कह ) जो 'कृष्ण' कहता उसको खदेड़ने दौड़ते हैं ॥१९॥ कभी क्षण २ में 'गोकुल, गोकुल' कहते हैं तो किसी दिन 'वृन्दावन, वृन्दावन' ही कहते रहते हैं ॥२०॥ किसी दिन 'मथुरा, मथुरा' कहते हैं और किसी दिन नख से पृथ्वी पर अंक लिखते हैं ॥२१॥ कभी पृथ्वी पर त्रिभङ्ग-मूर्त्ति अङ्कित करते हैं और उसे देख २ कर रोते हैं। अश्रु जल से भूमि जलमय हो जाती है ॥२२॥ कभी कहते हैं—"भाइयो! एक बड़ा भारी वन दिखायी देता है—उसमें झुण्ड के झुण्ड सिंह, बाघ और भालुओं के दल हैं ॥२३॥ कभी दिन को रात और रात को दिन कहते हैं। यह दशा भक्ति रस में डूब कर प्रभु की हो गई ॥२४॥ प्रभु के इस तन्मय आवेश को देख सब भक्त लोग एक दूसरे का कण्ठ पकड़ कर रोते हैं ॥२५॥ जिस प्रेमावेश को देखने की ब्रह्मा को अभिलाषा बनी ही रहती है, उसको वैष्णवों के दास सब सुखपूर्वक देखते हैं ॥२६॥ अब प्रभु विश्वम्भर अपने निवास-गृह को त्याग कर वैष्णवों के गृह में ही निरन्तर निवास करते हैं ॥२७॥ कभी कभी प्रभु व्यवहार की बातें भी करते हैं परन्तु वह केवल माता के सन्तोष के लिये ॥२८॥ सब भक्त लोग महान् सुख से पूर्ण हो गये और प्रभु के पास न होने पर भी सब कीर्तन करते हैं ॥२९॥ प्रभु अनन्तदेव नित्यानन्द, मतवाले सिंह की भाँति, सारी नदिया में घर घर में घूमते फिरते हैं ॥३०॥ प्रभु ( विश्वम्भर ) के साथ सदा गदाधर रहते हैं तथा अद्वैताचार्य के साथ सब वैष्णवों की कथा-वार्ता चलती है ॥३१॥ एक दिन श्री अद्वैत गोपी भाव में नाच रहे हैं और सब

आर्त्ति करि नाचये अद्वैत महाशय। पुनः पुन दन्ते तृण करिया पड़य ॥३३॥
गड़ागड़ि जायेन अद्वैत प्रेम रसे। चतुर्दिगे भक्तगण गायेन उल्लासे ॥३४॥
दुइ प्रहरेओ नृत्य नहे सम्वरण। श्रान्त हइलेन सब भागवत गण ॥३५॥
सभे मेलि आचार्येर स्थिर कराइया। वसिलेन चतुर्दिगे आचार्य वेढ़िया ॥३६॥
किछु स्थिर हइ यदि आचार्य वसिला। श्रीवास-रामाइ आदि तवे स्नाने गेला ॥३७॥
आर्त्ति योग आचार्येर पुनः पुन बाढ़े। एकेश्वर श्रीवास-अङ्गने गड़ि पाड़े ॥३८॥
कार्यान्तरे निज गृहे छिला विश्वम्भर। अद्वैतेर आर्त्ति चित्ते हइल गोचर ॥३९॥
भक्त-आर्त्ति-पूर्णकारी सदानन्द राय। आइला अद्वैत यथा गड़ागड़ि जाय ॥४०॥
अद्वैतेर आर्त्ति देखि धरि ताँर करे। द्वार दिया वसिलेन गिया विष्णु घरे ॥४१॥
हासिया ठाकुर बोले 'शुनह आचार्य। कि तोमार इच्छा बोलु किवा चाह कार्य ॥४२॥
अद्वैत बोलये 'तुमि सर्व वेद सार। तोमारेइ चाहो प्रभु! कि चाहिव आर' ॥४३॥
हासि बोले प्रभु 'आमि एइत साक्षात्। आर कि आमारे चाह बोलह आमा'त' ॥४४॥
अद्वैत बोलये 'प्रभु! कहिला सुसत्य। एइ तुमि प्रभु! सर्व वेदान्तेर तत्त्व ॥४५॥
तथापिह विभव देखिते किछु चाइ।' प्रभु बोले 'कि इच्छा बोलह मोर ठाँइ' ॥४६॥
अद्वैत बोलये 'प्रभु! पूर्वे अर्जुनेरे। जाहा देखाइला तथि इच्छा बड़ धरे' ॥४७॥
बलिते अद्वैत मात्र देखे एक: रथ। चतुर्दिगे सैन्य देखे महा-युद्ध-पथ ॥४८॥

---

रथेर उपरे देखे श्यामल-सुन्दर। चतुर्भुज शंख-चक्र-गदा-पद्मधर ॥४९॥

वैष्णव लोग बड़े प्रेम से कीर्तन कर रहे हैं ॥३२॥ अद्वैत महाशय आर्त्तभाव को प्रकट करते हुये नाच रहे हैं, बारम्बार दाँतों में तिनका लेकर भूमि पर गिर पड़ते हैं ॥३३॥ अद्वैत प्रेम रस में भरे हुये भूमि पर लोट पोट होते हैं और चारों ओर भक्त लोग उल्लास सहित गान करते हैं ॥३४॥ दो पहर तक भी अद्वैत का नृत्य शान्त नहीं हुआ, परन्तु सब भागवत जन श्रान्त हो ( थक ) गये ॥३५॥ तब सबों ने मिल कर आचार्य को स्थिर किया और वे उनको चारों ओर से घेर कर बैठ गये ॥३६॥ जब आचार्य कुछ स्थिर होकर बैठ गये, तब श्रीनिवास, रामाई आदि भक्त लोग स्नान करने को गये ॥३७॥ ( परन्तु ) आचार्य अद्वैत की आर्त्तता ( व्याकुलता ) पुनः उमड़ उठी और वे अकेले वहाँ श्रीवास के आँगन में आतुर भाव से लोट-पोट होने लगे ॥३८॥ विश्वम्भरदेव किसी कार्य वश अपने गृह में थे, अद्वैत की आतुरता उनके मन को विदित हो गयी ॥३९॥ भक्त की आर्त्त पुकार को सुन उसकी वाञ्छा पूर्ण करने वाले सदानन्द स्वरूप प्रभु वहाँ आ गये जहाँ अद्वैत धरती पर लोट पोट हो रहे थे ॥४०॥ अद्वैत की व्याकुल अवस्था देखकर उन्हें पकड़ प्रभु विष्णु मन्दिर के द्वार पर जा बैठे ॥४१॥ प्रभु हँसकर बोले "सुनो आचार्य" तुह्मारी क्या इच्छा है, क्या कार्य है, बोलो" ॥४२॥ अद्वैत बोले—"तुम सब वेदों के सार तत्त्व हो। मैं तुमको ही चाहता हूँ प्रभो! तुम्हें छोड़ और भला क्या चाहूँगा" ॥४३॥ प्रभु हँस कर बोले, "तो मैं तो तुह्मारे सन्मुख प्रत्यक्ष हूँ ही। और मुझे क्या चाहते हो, कहो मुझसे" ॥४४॥ अद्वैत बोले—"प्रभो यह तो सत्य है कि यह तुम ही वह सर्व वेदान्त के तत्त्व हो। तथापि तुह्मारी कुछ विभूति देखने की इच्छा है" ॥४६॥ अद्वैत बोले, "प्रभो! पूर्व काल में अर्जुन को जो दिखाया था वही देखने की मेरी भी बड़ी इच्छा है" ॥४७॥ ऐसा कहते ही अद्वैत क्या देखते हैं कि एक रथ है, चारों ओर सेनाएँ हैं, महायुद्ध का क्षेत्र है ॥४८॥ और देखते हैं:— रथ के ऊपर श्यामसुन्दर, चतुर्भुज स्वरूप हैं, शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुये हैं ॥४९॥ उसी क्षण

अनन्त-ब्रह्माण्ड-रूप देखे सेइ क्षणे । चन्द्र सूर्य सिन्धु गिरि नदी उपवने ॥५०॥
कोटि चक्षु बाहु मुख देखे पुनः पुन । सम्मुखे देखये स्तुति करये अर्जुन ॥५१॥
महा अग्नि जेन ज्वले सकल वदन । पोड़े जल पतङ्ग-पाषण्ड-दुष्टगण ॥५२॥
जे पापिष्ठ परनिन्दे परद्रोह करे । चैतन्येर मुखाग्निते से-इ पूड़ि मरे ॥५३॥
ए रूप देखिते अन्य कारो शक्ति नाञि । प्रभुर कृपाय देखे आचार्य गोसाञि ॥५४॥
प्रेम सुखे अद्वैत कान्देन अनुरागे । दन्ते तृण करि पुनः पुन दास्य मागे ॥५५॥
परम-आनन्द प्रभु नित्यानन्दराय । पर्यटन सुखे भ्रमे सर्व नदीयाय ॥५६॥
प्रभुर प्रकाश सब जाने नित्यानन्द । जानि लेन प्रभु हइयाछे विश्व-अङ्ग ॥५७॥
सत्वरे आइला जथा आछेन ठाकुर । विष्णु गृहे द्वार दिया गर्जेन प्रचुर ॥५८॥
नित्यानन्द आगमन जानि विश्वम्भर । द्वार घुचाइला, प्रभु हइला भितर ॥५९॥
अनन्त-ब्रह्माण्ड-रूप नित्यानन्द देखि । दण्डवत् हइया पड़िला बूजि आँखि ॥६०॥
प्रभु बोले 'उठ नित्यानन्द मोर प्राण । तुमि से जानह मोर सकल आख्यान ॥६१॥
जे तोमारे प्रीत करे मुञि सत्य तार । तोमा' वइ प्रियतम नाहिक आमार ॥६२॥
तुमि आर अद्वैते जे करे भेद बुद्धि । भालमते ना जाने से अवतार-शुद्धि" ॥६३॥
नित्यानन्द अद्वैत देखिया विश्वराय । आनन्दे कान्दिया विष्णु गृहे गड़ि जाय ॥६४॥
हुँकार गर्जन करे श्रीशचीनन्दन । देख देख करि प्रभु डाके घने घन ॥६५॥
'प्रभु प्रभु' बलि स्तुति करे दुइजन । विश्वमूर्त्ति देखिया आनन्दमय मन ॥६६॥

---

फिर अनन्त ब्रह्माण्डों वाला विराट रूप दिखायी देता है। जिसमें-चन्द्र-सूर्य सिन्धु-पर्वत, नदी-वन उपवन हैं। कोटि २ नेत्र हैं, बाहु हैं, मुख हैं। अर्जुन उस रूप को पुनः २ देखते हैं। उसके सामने अर्जुन की स्तुति करते हुये देखते हैं ॥५०-५१॥ उस विराट रूप के मुख समूह महा अग्नि की भाँति प्रज्वलित हो रहे थे। उसमें जितने दुष्ट निन्दक जन थे वे पतङ्ग की भाँति जल रहे थे ॥५२॥ जो पापी हैं, परनिन्दक हैं, परद्रोही हैं, वे चैतन्य देव की मुखाग्नि में भस्म हो रहे हैं ॥५३॥ ऐसा रूप दर्शन करने की किसी में शक्ति नहीं है। यह तो प्रभु की कृपा से ही आचार्य गुसाँई देख रहे हैं ॥५४॥ अद्वैत प्रेम सुख के आवेश में रोने लगे और दाँतों में तृण ले पुनः पुनः प्रभु की दासता की याचना करने लगे ॥५५॥ परमानन्द स्वरूप प्रभु नित्यानन्द-राय समस्त नदिया में भ्रमण करने के सुख में मगन रहते हैं ॥५६॥ वे विश्वम्भर प्रभु के ऐश्वर्य प्रकाश को जानते हैं। वे यह जान गये कि प्रभु ने अपने विश्व रूप को प्रकट किया है ॥५७॥ वे शीघ्रता पूर्वक वहाँ आये जहाँ विष्णु-मन्दिर के द्वार पर बैठे प्रभु विश्वम्भर प्रचुर गर्जना कर रहे थे ॥५८॥ नित्यानन्द का आगमन जानकर प्रभु ने द्वार खोल दिया और प्रभु नित्यानन्द भीतर गये ॥५९॥ नित्यानन्द ने उनका अनन्त ब्रह्माण्डमय विश्व रूप का दर्शन किया तथा नेत्र मूँद कर दण्डवत् भूमि पर पड़ गये ॥६०॥ प्रभु बोले—'मेरे प्राण नित्यानन्द' उठो! तुम तो मेरी समस्त कथा जानते हो ॥६१॥ जो तुमसे प्रीति करता है मैं सचमुच में उसी का हूँ। तुम्हारे अतिरिक्त अन्य मेरा प्रियतम नहीं है ॥६२॥ तुम में और अद्वैत में जो भेद-बुद्धि करता है, वह अवतार-तत्त्व को भली भाँति नहीं जानता है' ॥६३॥ नित्यानन्द और अद्वैत को देख विश्व के महाराजा ( विश्वम्भर ) आनन्द से क्रन्दन करते हुये विष्णु-मन्दिर में लोट पोट होने लगे ॥६४॥ श्रीशचीनन्दन हुँकार व गर्जन करते हैं और 'देखो देखो' कहकर बार २ पुकारते हैं ॥६५॥ दोनों जने नित्यानन्द और अद्वैत 'प्रभो! प्रभो!' कहकर स्तुति करते हैं। विश्वरूप के दर्शन से उनके मन आनन्दमय

ए सब कौतुक हय श्रीवास मन्दिरे। तथापि देखिते शक्ति अन्य नाहि धरे ॥६७॥
अद्वैतेर श्रीमुखेर ए सकल कथा। इहा जे ना मानये से दुष्कृति सर्वथा ॥६८॥
'सर्व महेश्वर गौरचन्द्र' जे ना बोले। वैष्णवेर अदृश्य से पापी सर्व काले ॥६९॥
आमार प्रभुर प्रभु गौराङ्ग सुन्दर। एइ से भरसा आमि धरि जे अन्तर ॥७०॥
नवद्वीपे हेन सब प्रकाशेर स्थान। तथापिह भक्त बइ ना जानये आन ॥७१॥
भक्तियोग भक्तियोग भक्तियोग धन। 'भक्ति' एइ–कृष्णनाम-स्मरण-क्रन्दन ॥७२॥
'कृष्ण' वलि कान्दिले से कृष्ण नाथ मिले। धने कुले किछु नहे 'कृष्ण' ना भजिले ॥७३॥
मध्य खण्ड-कथा बड़ अमृतेर खण्ड। जे कथा शुनिले खण्डे अन्तर-पाखण्ड ॥७३॥
दुइ-ठाकुरेर विश्वरूप–दरशन। इहा जे शुनये तारे मिले कृष्ण धन ॥७५॥
क्षणे के सकल सम्वरिया गौरचन्द्र। चलिलेन निज गृहे लइ भक्त वृन्द ॥७६॥
विश्वरूप देखिया अद्वैत नित्यानन्द। काहारो नाहिक बाह्य,–परम आनन्द ॥७७॥
विभव-दर्शन-सुखे मत्त दुइ जन। धूलाय जायेन गड़ि सकल अङ्गन ॥७८॥
केहो नाचे केहो गाय दिया करतालो। ढुलिया ढुलिया बुले दुइ महाबली ॥७९॥
एइ मते दुइ जन महा कुतूहली। शेषे दुइ जनेइ बाजिल गालागाली ॥८०॥
अद्वैत बोलये "अवधूत मातालिया। एथा कोन् जन तोके आनिल डाकिया। ८१॥
दुयार भाङ्गिया आसि साम्भाइलि केने। 'संन्यासी' वलिया तोरे बोले कोन् जने ॥८२॥
हेन जाति नाहि ना खाइला आर घरे। जाति आछे' हेन कोन् जने बोले तोरे ॥८३॥

---

हो रहे हैं ॥६६॥ यह सब कौतुक श्रीवास के गृह मन्दिर में हो रहा है तथापि अन्य किसी में इसके दर्शन करने की शक्ति नहीं है ॥६७॥ यह सब बातें अद्वैताचार्य के अपने श्रीमुख की कही हुई हैं। इनको जो नहीं मानता है, वह सर्वथा दुष्कृति ( पापी ) है ॥६८॥ "सर्व महेश्वर गौरचन्द्र" को जो नहीं मानता है, वह वैष्णव के देखने योग्य नहीं है, और सबके निकट वह पापी है ॥६९॥ मेरे हृदय में केवल यही एक भरोसा है कि मेरे प्रभु ( नित्यानन्द ) के प्रभु गौराङ्ग सुन्दर हैं ॥७०॥ नवद्वीप प्रभु के ऐसी २ सब लीलाओं के प्रकाश का स्थान है, तथापि भक्त बिना इसे और कोई नहीं जानता है ॥७१॥ भक्ति योग (ही) भक्ति योग ( ही ) भक्ति योग ( ही परम ) धन है। और भक्ति है–कृष्ण नाम का स्मरण क्रन्दन ॥७२॥ "कृष्ण" कह कर रोने से वह नाथ कृष्ण मिलता है। 'कृष्ण' को न भजने से धन व कुल से कुछ नहीं प्राप्त होता है। ॥७३। मध्य खण्ड की कथा अमृत की बड़ी मीठी डली है जिस कथा को सुनने से अन्तःकरण की मलिनता नष्ट हो जाती है ॥७४॥ दोनों प्रभुओं के विश्वरूप–दर्शन की कथा जो सुनता है, उसे कृष्ण धन प्राप्त होता है ॥७५॥ थोड़ी देर में गौर चन्द्र ने अपना विश्वरूप गोपन कर लिया और भक्तों को लेकर अपने घर को चले ॥७६॥ विश्वरूप के दर्शन करके अद्वैत और नित्यानन्द को बाह्य-ज्ञान नहीं है वे परमानन्द में निमग्न हैं ॥७७॥ वैभव दर्शन के सुख से दोनों मतवाले बने हुये सारे आँगन के धूल में लोटते फिरते हैं। ७८॥ कभी कोई नाचता है तो कोई हाथ से ताली बजाता हुआ गाता है, दोनों महाबली झूमते झामते हुए फिरते हैं ॥७९। इस प्रकार दोनों जने महा कौतुहल पूर्ण हैं–होते होते अन्त में दोनों में प्रणय–कलह मच गया। वे एक दुसरे को प्रेम भरी गालियाँ देने लगे। ( इन गलियों में श्लेष है जो उनके तत्त्व स्वरूप का बोधक है ) ॥७८॥ अद्वैत बोले–"अरे मतवाले अवधूत ! यहाँ तुझे कौन बुला लाया है ? तू दरवाजा तोड़ कर भीतर क्यों घुसा ? तुझे कौन संन्यासी कहता है ? ॥८१-८२॥ "ऐसी जाति नहीं जिसके घर में तूने न

वैष्णव सभाय केने महा मातोयाल । झाट नाहि पलाइले नहिबेक भाल" ।।८४।।
नित्यानन्द बोले "आरे नाढ़ा ! वसि थाक । किलाइया पाड़ों पाछे देखाइ प्रताप ।।८५।।
आरे बूढ़ा बामना ! तोमार भय नाइ । अमि अवधूत-मत्त ठाकुरेर भाइ ।।८६।।
स्त्रीये पुत्रे गृहे तुमि परम संसारी । परम हंसेर पथे आमि अधिकारी ।।८७।।
आमि मारिले ओ तुमि बलिते ना पार । आमा'सने अकारणे तुमि गर्व कर ।।८८।।
शुनिञा अद्वैत क्रोधे अग्नि-हेन ज्वले । दिगम्बर हइया अशेष -मन्द बोले ।।८९।।
'मत्स्य खाय माँस खाय केमत संन्यासी । वस्त्र एड़िलाम एइ आमि दिग्वासी ।।९०।।
कोथा माता पिता कोन् देशे वा वसति । के जानये इहा से बलुक देखि आसि ।।९१।।
एक चोरा आसिया एतेक करे पाक । खाइमु शुषिमु संहारिमु सब थाक ।।९२।।
सारे बलि 'संन्यासी' जे किछु नाहि चाय । बोलाय'संन्यासी',दिने तिन वार खाय ।।९३।।
श्रीनिवास पण्डितेर मूले जाति नाञि । कोथाकार अवधूते आनि दिला ठाञि ।।९४।।
अवधूत करिब सकल जाति नाश । कोथा हैते मद्यपेर हइल प्रकाश" ।।९५।।
कृष्ण-प्रेम सुधारसे मत्त दुइ जन । अन्योन्ये कलह करेन अनुक्षण ।।९६।।
इथि एक जनेर हइया पक्ष जेइ । अन्य जने निन्दा करे, क्षय जाय सेइ ।।९७।।
हेन प्रेम कलहेर मर्म ना जानिया । एक निन्दे आर वन्दे से मरे पुड़िया ।।९८।।
अद्वैतेर पक्ष हइ 'निन्दे' गदाधर । से अधम कभू नहे अद्वैत किङ्कर ।।९९।।

खाया हो । तेरी कोई जाति है, ऐसा कौन तुझे कहता है ।।८३।। अरे महा मतवाले ! तू वैष्णवों की सभा में क्यों ? झट् भाग जा, नहीं तो अच्छा नहीं होगा' ।। ८४ ।। नित्यानन्द बोले, "अरे नाढा ! चुप बैठा रह ! नहीं तो अभी मरम्मत करके जमीन पर पटक दूँगा—फिर अपना प्रताप दिखाऊँगा ।।८५।। अरे बूढ़े बामन ! तुम्हें भय नहीं है, मैं मतवाला अवधत प्रभु का भाई हूँ ।।८६।। "तुम स्त्री-पुत्र-गृह सहित परम संसारी हो । मैं परम हंस ( सन्यास ) के पथ का अधिकारी हूँ ।।८७।। मेरे मारने पर भी तुम्हें कुछ कहने का अधिकार नहीं है, तुम अकारण ही मेरे सामने गर्व ( शेखी ) दिखाते हो" ।।८८।। यह सुनकर अद्वैत क्रोध से आग-बबूला होगये और दिगम्बर ( शिव स्वरूप जो ठहरे ) होकर खुब ही खरी खोटी कहने लगे ।।८९।। "यह मछली खाता है, माँस खाता है ( यौगिक क्रियाएँ ) यह कैसा संन्यासी है । ( परम हंस तो मैं हूँ ) मैने वस्त्र उतार फेंके हैं—यह देखो मैं दिगम्बर हूँ ।।९०।। "न जाने कहाँ इसके माता-पिता हैं, किस देश का यह निवासी है—कोई जानता हो तो आकर यहाँ बतावे तो सही ।।९१।। एक चोर यह ( कहीं से आकर ) यहाँ इतना ढोंग मचा रहा है । यह सब बन्द करो । नहीं तो खा जाऊँगा, सोख जाऊँगा,संहार कर डालुँगा ।।९२।। "अरे ! संन्यासी तो उसे कहते हैं जो कुछ नहीं चाहता है, पर यह दिन में तीन बार खाता है, फिर भी अपने को 'संन्यासी' कहता है ।।९३।। इस श्रीनिवास पंडित की भी अपनी कोई जाति नहीं है, तभी तो, वहाँ के एक अवधत को लाकर अपने घर में घुसा रक्खा है ।।९४।। यह अवधूत सब की जाति का नाश करेगा ( भक्त बना ) न जाने कहाँ से यह मद्यप ( प्रेम-मद का ) आ प्रकट हुआ है" ।।९५।। कृष्ण प्रेम रूप सुधा के रस से दोनों जने मतवाले हो रहे हैं और परस्पर से क्षण २ में कलह करते हैं ।।९६।। इसमें एक जने का पक्ष लेकर जो दूसरे की निन्दा करता है, वह नाश को प्राप्त होता है ।।९७।। ऐसे प्रेम-कलह का मर्म न समझ कर, जो एक की निन्दा करता है और दूसरे की वन्दना, वह ( अपराध-अग्नि से ) जल कर भस्म हो जाता है ।।९८।। ( इसी प्रकार ) अद्वैत का पक्ष लेकर जो गदाधर की निन्दा-

ईश्वरे से ईश्वर कलहेर पात्र। के बुझये विष्णु-वैष्णवेर लीला मात्र ॥१००॥
सकल वैष्णव प्रति अभेद देखिया। जे कृष्ण-चरण भजे से जाय तरिया ॥१०१॥
भक्त गोष्ठी सहिते गौराङ्ग जय जय। विष्णु आर वैष्णव समान दुइ हय ॥१०२॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावन दास तछु पद युगे गान ॥१०३॥

इति श्रीचैतन्य भागवते मध्य खण्डे विश्वरूप दर्शनादि वर्णनं
नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

## पच्चीसवाँ अध्याय

जय जय सर्व लोक नाथ गौरचन्द्र। जय धर्म-वेद-विप्र-संन्यासि महेन्द्र ॥ १ ॥
जय शची-गर्भ-रत्न-करुणासागर। जय नित्यानन्द-प्रभु जय विश्वम्भर ॥ २ ॥
भक्त गोष्ठी सहिते गौराङ्ग जय जय। शुनिले चैतन्य कथा भक्ति लभ्य हय ॥ ३ ॥
मध्य खण्ड कथा भक्ति रसेर निधान। नव द्वीपे जे क्रीड़ा करिला सर्व प्राण ॥ ४ ॥
निरवधि करे प्रभु हरि सङ्कीर्त्तन। आपन ऐश्वर्य प्रकाशये अनुक्षण ॥ ५ ॥
नृत्य करे महाप्रभु निज नामावेशे। हुँकार करिया क्षणे महा अट्ट हासे ॥ ६ ॥
प्रेम रसे निरवधि गड़ागड़ि जाय। ब्रह्मार वन्दित अङ्ग पूर्णित धूलाय ॥ ७ ॥
प्रभुर आनन्द-आवेशेर नाहि अन्त। नयन भरिया देखे सब भाग्यवन्त ॥ ८ ॥
बाह्य हैले वैसेन सकल गण लैया। कोन् दिन गङ्गा जले विहरये गिया ॥ ९ ॥
कोन दिन नृत्य करि बसेन अङ्गने। घरे स्नान करायेन सर्व भक्त गणे ॥ १० ॥

करना है, वह अधम कभी भी अद्वैत का दास नहीं है ॥९९॥ जहाँ ईश्वर ही ईश्वर के कलह का पात्र हो—विष्णु तथा वैष्णवों की ऐसी लीला को कौन समझेगा—वह लीला एक लीला मात्र ही है—(कारण शून्य) ॥१००॥ अतएव सब वैष्णवों में अभेद-दृष्टि रखके जो श्रीकृष्ण चरण को भजता है, वह तर जाता है ॥१०१॥ भक्त वृन्दों के सहित गौराङ्ग प्रभु की जय हो, जय हो, विष्णु और वैष्णव दोनों समान ही होते हैं ॥१०२॥ श्रीकृष्ण चैतन्य और श्रीनित्यानन्दचन्द्र मेरे प्राण हैं। वृन्दावनदास उनके युगल चरणों का गुणगान करता है ॥१०३॥

सब लोकों के नाथ गौरचन्द्र की जय हो, जय हो। धर्म, वेद, ब्राह्मण एवं संन्यासियों के अधीश्वर की जय हो ॥१॥ शची माता के गर्भ से प्रकट रत्न स्वरूप करुणा के सागर की जय हो ॥२॥ भक्त मंडली सहित गौरांगदेव की जय हो जय हो। श्री चैतन्यदेव की कथा सुनने से भक्ति लाभ होती है ॥३॥ नवद्वीप में सबके प्राण स्वरूप गौरचन्द्र ने जो लीलाएँ की हैं वही मध्य खण्ड की कथा है और यह भक्ति-रस का भण्डार है ॥४॥ प्रभु निरन्तर हरि संकीर्त्तन करते रहते हैं तथा अपने ऐश्वर्य को क्षण क्षण में प्रकाशित करते हैं। ५॥ अपने ही नाम के आवेश में महाप्रभु नृत्य करते हैं, क्षण में हुँकार करते हैं और क्षण में अट्टहास करते हैं ॥६॥ प्रेम रस में विह्वल हो भूमि पर निरन्तर लोट-पोट होते रहते हैं। ब्रह्मा के द्वारा वन्दित उनका श्रीअङ्ग धूल से भर जाता है ॥७॥ प्रभु के आनन्द-आवेश का अन्त नहीं है। भाग्यवान् सब लोग नेत्र भर कर दर्शन करते हैं ॥८॥ बाह्य-चेतना प्राप्त होने पर प्रभु सब भक्त जनों को लेकर बैठ जाते हैं। किसी दिन जाकर गङ्गा के जल में विहार करते हैं ॥९॥ किसी दिन नृत्य करके आँगन में ही बैठ जाते हैं और भक्त लोग घर में ही उनको स्नान करा देते हैं ॥१०॥ जब तक प्रभु का आनन्दमय

जत क्षण प्रभुर आनन्द नृत्य हये। तत क्षण 'दुःखी' पुण्यवती जल बहे ॥११॥
क्षणेके देखिया नृत्य सजल-नयने। पुनः पुन गङ्गा जल वहि' वहि' आने' ॥१२॥
सारि करि चतुर्दिगे एडे कुम्भ गण। देखिया सन्तोष बड़ श्रीशचीनन्दन ॥१३॥
श्रीवासेर स्थाने प्रभु जिज्ञासे' आपने। 'प्रतिदिन गङ्गा जल कोन् जने आने'?' ॥१४॥
श्रीवास बोलये'प्रभु ! 'दुःखी' वहि' आने'। प्रभु बोले 'सुखी' करि बोल सर्व जने ॥१५॥
ए जनेर 'दुःखी' नाम कभु योग्य नहे। सर्व काल 'सुखी' हेन मोर चित्ते लये' ॥१६॥
एतेक कारुण्य शुनि प्रभुर श्रीमुखे। कान्दिते लागिला भक्तगण प्रेम सुखे ॥१७॥
सभे 'सुखी' बलिलेन प्रभुर आज्ञाय। दासी-बुद्धि श्रीवास ना करे सर्वथाय ॥१८॥
प्रेम जोगे सेवा करिले से कृष्ण पाइ। माथा मुड़ाइले यमदण्ड ना एड़ाइ ॥१९॥
कुले रूपे धने वा विद्याय किछु नहे। प्रेमयोगे भजिले से कृष्ण तुष्ट हये ॥२०॥
जतेक कहेन तत्त्व वेदे भागवते। सब देखायेन गौरसुन्दर साक्षाते ॥२१॥
दासी हइ जे प्रसाद दुःखीरे हइल। वृथा-अभिमानी सब ताहा ना देखिल ॥२२॥
कि कहिब श्रीवासेर भाग्येर महिमा। जार दास-दासीर प्रसादे नाहि सीमा ॥२३॥
एक दिन नाचे प्रभु श्रीवास मन्दिरे। सुखे श्रीनिवास आदि सङ्कीर्त्तन करे ॥२४॥
दैवे व्याधि योगे गृहे श्रीवास नन्दन। परलोक हइलेन देखे नारीगण ॥२५॥
आनन्दे करेन नृत्य श्रीशचीनन्दन। श्रीवासेर गृहे महा उठिल क्रन्दन ॥२६॥

---

नृत्य होता रहता है, तब तक पुण्यवती "दुःखी" ( श्रीवास की एक दासी ) जल ढोती है ॥११॥ वह क्षण भर के लिये सजल नेत्रों से प्रभु का नृत्य देख लेती है और फिर गङ्गा जल ढो ढो कर लाती है। ऐसा वह बार बार करती है ॥१२॥ वह गङ्गा जल पूर्ण घटों को पंक्ति में सजा कर चारों ओर रख देती है। इन्हें देखकर श्रीशचीनन्दन को बड़ा ही सन्तोष होता है ॥१३॥ ( एक दिन ) स्वयं प्रभु ने श्रीवास से पूछा "यह गङ्गा जल नित्य प्रति कौन लाता है ?" ॥१४॥ श्रीवास बोला—"प्रभो ! 'दुःखी' ढोकर लाती है।" प्रभु बोले—"उसको सब लोग 'सुखी' कहा करें। इस जन के लिये 'दुःखी' नाम कभी योग्य नहीं है। मेरा चित्त तो यही कहता है कि वह सब काल में सुखी है" ॥१५–१६॥ प्रभु के श्रीमुख से इतनी करुणापूर्ण वचन सुनकर भक्त लोग प्रेम के सुख में विह्वल हो रोने लगे ॥१७॥ प्रभु की आज्ञा से अब सब 'दुःखी' को 'सुखी' कहने लगे। श्रीवास ने तो उसको दासी समझना सर्वथा ही त्याग दिया ॥१८॥ प्रेम योग के द्वारा सेवा करने से ही वह कृष्ण प्राप्त होता है, केवल सिर मुड़ाने से ( संन्यासी बनने से ) ही यम के दण्ड से नहीं बच सकता है ॥१९॥ कुल, रूप, धन अथवा विद्या द्वारा कोई ( परमार्थ ) लाभ नहीं होता है। प्रेम पूर्वक भजने से ही वह कृष्ण प्रसन्न होते हैं ॥२०॥ जो कुछ तत्त्व ( भगवद्-रहस्य ) वेद और भागवत कहते हैं, वह सब गौर सुन्दर साक्षात् दर्शाते हैं ॥२१॥ दासी होकर ( भी ) जो भगवत्प्रसाद ( कृपा ) दुःखी को प्राप्त हुआ, उसे ( पूर्वोक्त कुल, रूप, धनादि के कारण ) वृथा अभिमान करने वालों ने आँखों से देखा तक नहीं ॥२२॥ श्रीवास के भाग्य की महिमा का क्या वर्णन करूँ, जिसके दास दासी तक के ऊपर प्रभु-प्रसाद की सीमा नहीं है ॥२३॥ एक दिन प्रभु श्रीवास-गृह में नृत्य कर रहे थे और श्रीवासादि भक्त जन सुख से संकीर्त्तन कर रहे थे ॥२४॥ दैवयोग से श्रीवास के पुत्र का रोग के कारण परलोक वास हो गया, यह घर में स्त्रियों ने देखा ( और रोने लगीं ) ॥२५॥ श्री शचीनन्दन अपने आनन्द में नृत्य कर रहे थे कि श्रीवास के गृह में महा क्रन्दन ध्वनि होने लगी ॥२६॥

सत्वरे आइला गृहे पण्डित श्रीवास। देखे पुत्र हइयाछे परलोक वास ॥२७॥
परम गम्भीर भक्त महा-तत्त्व-ज्ञानी। स्त्री गणेरे प्रबोधिते लागिला आपनि ॥२८॥
"तोमराम सब जान' कृष्णेर महिमा। सम्वर' क्रन्दन सभे चित्ते देह' क्षमा ॥२९॥
अन्त काले सकृत शुनिले जाँर नाम। अति महा पातकि ओ जाय कृष्ण धाम ॥३०॥
हेन प्रभु आपने साक्षाते करे नृत्य। गुण गाय जत ताँर ब्रह्मा-आदि भृत्य ॥३१॥
ए समये जाहार हइल परलोक। इहाते कि जुयाय करिते आर शोक ॥३२॥
कोन काले ए शिशुर भाग्य पाइ जबे। 'कृतार्थ' करिया आपनारे मानि तबे ॥३३॥
यदि वा संसार धर्म नार' सम्वरिते। विलम्बे कान्दिह जार येन लय चित्ते ॥३४॥
अन्य जेन केहो ए आख्यान ना शुनये। पाछे ठाकुरेर नृत्य सुख भङ्ग हये ॥३५॥
कल रव शुनि यदि प्रभु वाह्य पाय। तबे आजि गङ्गा प्रवेशिमु सर्वथाय" ॥३६॥
सभे स्थिर हइलेन श्रीवास वचने। चलिलेन श्रीवास प्रभुर सङ्कीर्तने ॥३७॥
परानन्दे संकीर्त्तन करये श्रीवास। पुनः पुन बाढ़े आरो विशेष उल्लास ॥३८॥
श्रीनिवास पण्डितेर एमन महिमा। चैतन्येर पार्षदेर एइ गुण-सीमा ॥३९॥
स्वानुभावानन्दे नृत्य करे गौरचन्द्र। कथोक्षणे रहिलेन लइ भक्त वृन्द ॥४०॥
परम्परा शुनि लेन सर्व भक्त गण। पण्डितेर पुत्रे हैला वैकुण्ठ गमन ॥४१॥
तथापिह केहो किछु व्यक्त नाहि करे। दुःख बड़ पाइलेन सभेइ अन्तरे ॥४२॥
सर्वज्ञेर चूड़ामणि श्रीगौर सुन्दर। जिज्ञासेन प्रभु सर्व जनेर अन्तर ॥४३॥

---

श्रीवास पण्डित शीघ्रता से गृह में आये तो देखा कि पुत्र की मृत्यु हो गई है ॥२७॥ वे बड़े गम्भीर भक्त और बड़े तत्त्व ज्ञानी हैं। वे आप ही स्त्रियों को प्रबोध देने लगे ॥२८॥ वे बोले "तुम लोग तो सब श्रीकृष्ण की महिमा को जानती हो, अतएव रोना बन्द कर चित्त को स्थिर करो। २९॥ देखो, अन्त समय पर एक बार भी जिनके नाम को सुन कर अत्यन्त महा पातकी भी श्रीकृष्ण के धाम को चला जाता है, ऐसे प्रभु आपः स्वयं यहाँ नृत्य कर रहे हैं और ब्रह्मा आदि सब दास उनका गुणगान कर रहे हैं ॥३०॥३१॥ ऐसे समय पर जिसकी मृत्यु हुई हो, उसके लिये क्या शोक करना उचित है ॥३२॥ यदि किसी समय इस बालक का जैसा भाग्य मुझे प्राप्त हो जावे तो मैं अपने को तभी कृतार्थ मानूँगा ॥३३॥ जो यदि संसार के इस धर्म को ( रोने को ) नहीं छोड़ सकती हो, तो वह धीरे २ रोवे जिसके मन में आवे ॥३४॥ और कोई उनके इस रोने को न सुन पावे नहीं तो प्रभु के नृत्य सुख में बाधा पहुँचेगी ॥३५॥ तुह्मारे क्रन्दन के कोलाहल को सुनकर यदि प्रभु को वाह्य-ज्ञान हो आया (अर्थात् प्रेमावेश भङ्ग हो गया) तो मैं आज अवश्य मेव गङ्गा में प्रवेश कर जाऊँगा ॥३६॥ 'श्रीवास के इन वचनों से सब स्त्रियाँ शान्त, स्थिर हो गयीं, और श्रीवास प्रभु के संकीर्तन में चले गये ॥३७॥ श्रीवास परानन्द में संकीर्तन कर रहे हैं, पुनः पुनः उनके हृदय का उल्लास अधिकाधिक विशेष होता जा रहा है ॥३८॥ श्रीनिवास पण्डित की ऐसी ही महिमा है। श्री चैतन्यदेव के पार्षद के गुणों की यही सीमा है ( कि प्रभु के सुख-दुःख के अतिरिक्त उनका अपना कोई दूसरा सुख-दुःख ही नहीं है ) ॥३९॥ गौरचन्द्र स्वानुभव के आनन्द में नृत्य कर रहे हैं। भक्त वृन्दों के साथ कुछ समय इस प्रकार बीत गया ॥४०॥ धीरे २ एक से दूसरे को खबर होते होते समस्त भक्तों ने यह सुन लिया कि श्रीवास पण्डित के पुत्र का स्वर्गवास हो गया ॥४१॥ सभी के हृदय में बड़ा भारी दुःख हुआ, तथापि किसी ने कुछ भी बाहर प्रकट नहीं किया ॥४२॥ ( परन्तु ) श्री गौरसुन्दर

प्रभु बोले "आजि मोर चित्तकेन करे। कोन दुःख हइयाछे पण्डितेर घरे ॥४४॥
पण्डित बोलये "प्रभु ! मोर कोन् दुःख। जार घरे सुप्रसन्न तोमार श्री मुख" ॥४५॥
शेषे आछिलेन जत सकल महान्त। कहिलेन पण्डितेर पुत्रेर वृत्तान्त ॥४६॥
सम्भ्रमे बोलये प्रभु 'कह कत क्षण ?' शुनिलेन 'चारि दण्ड रजनी जखन ॥४७॥
तोमार आनन्द भङ्ग-भये श्रीनिवास। काहारे ओ इहा नाहि करेन प्रकाश ॥४८॥
परलोक हइयाछे आड़ाइ प्रहर। एबे आज्ञा देह' कार्य करिते सत्वर' ॥४९॥
शुनि श्रीवासेर अति अद्भुत कथन। 'गोविन्द गोविन्द' प्रभु करेन स्मरण ॥५०॥
प्रभु बोले "हेन सङ्ग छाड़िब केमते ?" एतबलि महाप्रभु लागिला कान्दिते ॥५१॥
'पुत्र शोक ना जानिल जे मोहोर प्रेमे। हेन सब सङ्ग मुञि छाड़ि मुँ केमने' ॥५२॥
एतबलि महाप्रभु कान्दये निर्भर। त्याग-वाक्य शुनि सभे चिन्तेन अन्तर ॥५३॥
ना जानि कि परमाद पड़ये कखन। अन्योन्ये चिन्तये सकल भक्तगण ॥५४॥
गारस्थ छाड़िया प्रभु करिब संन्यास। तार ध्वनि करि कान्दे छाड़ि दीर्घ श्वास ॥५५॥
स्थिर हइलेन यदि ठाकुर देखिया। सत्कार करिते शिशु जायेन लइया ॥५६॥
मृत-शिशु-प्रति प्रभु जिज्ञासे' आपने। 'श्रीवासेर घर छाड़ि जाह कि कारणे ॥५७॥
शिशु बोले 'प्रभु ! जेन निर्बन्ध तोमार। अन्यथा करिते शक्ति आछये काहार' ॥५८॥
मृत-पुत्र उत्तर करये प्रभु-सने। परम अद्भुत शुने सर्व भक्त गणे ॥५९॥
शिशु बोले 'ए देहेते जतेक दिवस'। निर्बन्ध आछिल भुञ्जिलाङ सेइ रस ॥६०॥

जो सर्वज्ञों के शिरोमणि हैं, वे प्रभु स्वयं ही सबसे पूछने लगे ॥४३॥ प्रभु बोले—"आज मेरा चित्त न जाने कैसा २ हो रहा है। क्या श्रीवास के घर से कोई दुःख तो नहीं आ पड़ा ?" ॥४४। श्रीवास पण्डित बोले—"प्रभो ! मेरे कौन-सा दुःख ? जिसके घर में आपका यह सुप्रसन्न मुख है" ॥४५॥ ( परन्तु ) वहाँ जो अन्य महापुरुष गए थे उन्होंने पण्डित के पुत्र के स्वर्गवास होने का वृत्तान्त कह सुनाया ॥४६॥ प्रभु ने सम्भ्रम सहित पूछा "कितनी देर हुई ?" तो भक्त लोगों ने सुनाया कि यह चार पल रात्रि की बात है। परन्तु आपके आनन्द के भङ्ग हो जाने के भय से श्रीवास ने इसे किसी के निकट प्रकाश नहीं किया ॥४७-४८॥ "उसे परलोक बास हुये अब ढाई पहर हो चुके हैं। अब आप आज्ञा देवें तो उसका अन्तिम कार्य शीघ्र किया जाय" ॥४९॥ श्रीवास की इस अद्भुत वार्ता को सुनकर प्रभु "गोविन्द, गोविन्द" स्मरण करने लगे ॥५०॥ फिर प्रभु बोले—"ऐसा सङ्ग कैसे छोड़ूँगा ?" इतना कह कर महाप्रभु रोने लगे ॥५१॥ "जिन्होंने मेरे प्रेमवश पुत्र-शोक को न जाना, ऐसों का सङ्ग मैं कैसे छोड़ूँगा" ॥५२॥ इतना कह कर प्रभु और अधिक रोने लगे। ( उनके श्रीमुख से ) त्याग की बात सुनकर सब भक्त लोग मन में सोचने लगे कि न जाने क्या विपत्ति कब आ पड़े। सब भक्त लोग परस्पर में यही चिन्ता चर्चा करने लगे। उन्हें लगा कि प्रभु गृहस्थ का त्याग करके संन्यास लेंगे। इस दुःख से वे उच्च स्वर से रुदन करने लगे और दीर्घ निःश्वास छोड़ने लगे ॥५३-५४-५५॥ जब उन्होंने देखा कि प्रभु स्थिर हो गये हैं तो वे अन्तिम संस्कार के लिये बालक को ले जाने लगे ॥५६॥ उस समय प्रभु ने मृत शिशु से आप ही प्रश्न किया "तुम क्यों श्रीवास का घर छोड़ कर जा रहे हो ?" ॥५७॥ वह मृत बालक चेतन होकर बोल उठा "प्रभो ! आपके विधि-विधान से भला उसे उलटने की शक्ति किसमें है ?" इस प्रकार मृत पुत्र प्रभु को उत्तर देने लगा। यह परम अद्भुत वार्ता सब भक्त लोग सुनने लगे ॥५८-५९॥ बालक फिर कहने लगा—"इस देह मे जितने दिन का संयोग था,

निर्वन्ध घुचिल आर रहिते ना पारि। एवे चलिलाङ अन्य निर्वन्धित पुरी ।।६१।।
केवा कार बाप प्रभु ! के कार नन्दन। सभे आपनार कर्म करये भुञ्जन ।।६२।।
जत दिन भाग्य छिल पण्डितेर घरे। आछिलाङ, एवे चलिलाङ अन्य-पुरे ।।६३।।
सपार्षदे तोमार चरणे नमस्कार। अपराध ना लइह, विदाय आमार ।।६४।।
एत वलि नीरव हइला शिशु-काय। एमत कौतुक करे श्रीगौराङ्ग-राय ।।६५।।
मृत-पुत्र-मुखे शुनि अपूर्व कथन। आनन्द सागरे भासे सर्व भक्त गण ।।६६।।
पुत्र शोक दूरे गेल श्रीवास गोष्ठीर। कृष्ण प्रेमानन्दे सभे हइला अस्थिर ।।६७।।
कृष्ण प्रेमे श्रीनिवास गोष्ठीर सहिते। प्रभुर चरण धरि लागिला कान्दिते ।।६८।।
'जन्म जन्म तुमि पिता माता पुत्र प्रभु। तोमार चरण जेन ना पासरि कभु ।।६९।।
जे खाने से खाने प्रभु ! केने जन्म नहे। तोमार चरणे जेन प्रेम भक्ति रहे ।।७०।।
चारि भाइ प्रभुर चरणे काकु करे। चतुर्दिगे भक्तगण कान्दे उच्च स्वरे ।।७१।।
कृष्ण प्रेमे चतुर्दिगे उठिल क्रन्दन। कृष्ण प्रेममय हैल श्रीवास भवन ।।७२।
प्रभु बोले 'शुन शुन श्रीवास पण्डित। तुमि त सकल जान' संसार चरित ।७३।।
ए सब संसार दुःख तोमार कि दाय। जे तोमारे देखे, सेहो कभु नाहि पाय ।।७४।।
आसि नित्यानन्द-दुइ नन्दन तोमार। चित्ते किछु तुमि व्यथा ना भाविह आर' ।।७५।।
श्री मुखेर परम कारुण्य वाक्य शुनि। चतुर्दिगे भक्तगण करे जय ध्वनि ।।७६।।
सर्व-गण-सह प्रभु बालक लइया। चलिलेन गङ्गा तीरे कीर्त्तन करिया ।।७७।।

---

उसका सुख भोग लिया। वह संयोग पूरा हो गया सो अब और टिक नहीं सकता है। अब मैं कर्म-बन्धन से शून्य अन्य लोक के लिये चला ।।६०-६१।। "प्रभो ! कौन किसका बाप है और कौन किसका पुत्र ? सभी अपने २ कर्मों का भोग भोगते हैं ।।६२।। जितने दिन के लिये पण्डित के घर में रहने का भाग्य था, उतने दिन रहा, अब अन्य लोक को जा रहा हूँ ।।६३।। पार्षदों के सहित आपके श्री चरणों में नमस्कार है। आप लोग मेरा अपराध न मानें, मुझे बिदा दें' । ६४।। इतना कहकर बालक का शरीर मौन हो गया। ऐसा कौतुक श्री गौराङ्गराय करते हैं ।।६५।। मृत पुत्र के मुख से अपूर्व वार्ता सुन कर सब भक्तजन आनन्द सागर में बहने लगे ।।६६।। श्रीवास के परिवार का पुत्र-शोक दूर होगया और कृष्ण प्रेम के आनन्द से सब विह्वल होगये ।।६७।। कृष्ण प्रेम में श्रीवास अपने परिवार सहित प्रभु के श्री चरणों को पकड़ कर रोने लगा ।।६८।। ( वह बोला ) "जन्म जन्म में तुम्हीं हमारे पिता, माता, पुत्र, प्रभु हो ! तुम्हारे चरण हम कभी न भूलें ।।६९।। हे प्रभो ! जहाँ कहीं भी हमारा जन्म क्यों न हो, तुम्हारे श्री चरणों में यह प्रेम भक्ति बनी रहे" ।।७०।। इस प्रकार चारों भाई प्रभु के चरणों में काकुति-मिनति करने लगे। चारों ओर भक्त लोग उच्च स्वर से रुदन करने लगे ।।७१।। कृष्ण-प्रेम में चारों ओर क्रन्दन-कोलाहल छा गया और श्रीवास का भवन कृष्ण प्रेममय हो गया ।।७२।। प्रभु बोले—"सुनो-सुनो श्रीवास पण्डित ! तुम तो संसार के चरित ( स्वभाव ) सब जानते हो ।।७३।। संसार के इन सब दुःखों से तुम्हारी भला क्या हानि ? हानि तो उसकी भी नहीं होती जो तुम्हारा दर्शन ही कर लेता है ।।७४।। देखो मैं और नित्यानन्द-ये दो तुम्हारे पुत्र हैं, तुम अपने चित्त में कुछ शोक दुःख मत करना" ।। ७४-७५ ।। श्री मुख से ऐसे परम करुणापूर्ण वाक्यों को सुनकर चारों ओर भक्त लोग जय जयकार करने लगे ।। ७६ ।। प्रभु सब भक्तों के सहित बालक को लेकर कीर्तन करते हुये गङ्गा के किनारे गये ।। ७७।। वहाँ बालक का यथोचित अन्तिम संस्कार करके

यथोचित क्रिया करि,करि गङ्गा स्नान। 'कृष्ण'बलि सभे गृहे करिला पयान ॥ ७८ ॥
प्रभु भक्तगणे सभे गेला निज घर। श्रीवासेर गोष्ठी सब हइला विह्वल ॥ ७९ ॥
ए सब निगूढ़ कथा जे करे श्रवण। अवश्य मिलये तारे कृष्ण प्रेमधन ॥ ८० ॥
श्रीनिवास चरणे रहुक नमस्कार। गौरचन्द्र नित्यानन्द नन्दन जाहार ॥ ८१ ॥
ए सब अद्भुत सेइ नवद्वीपे हय। तथापिह भक्त–बिने अन्ये ना जानय ॥ ८२ ॥
मध्य खण्डे परम अद्भुत सब कथा। मृत देहे तत्त्वज्ञान कहाइ लेन' यथा ॥ ८३ ॥
हेन मते नवद्वीपे श्रीगौर सुन्दर। विहरये सङ्कीर्तन सुखे:निरन्तर ॥ ८४ ॥
प्रेमरसे प्रभुर संसार नाहि स्फुरे। अन्येर कि दाय विष्णु पुजिते ना पारे ॥ ८५ ॥
स्नान करि वैसे प्रभु श्रीविष्णु पूजिते। प्रेम जले सकल श्री अङ्ग वस्त्र तिते ॥ ८६ ॥
बाहिर हइया प्रभु से वस्त्र छाड़िया। पुन अन्य वस्त्र परि विष्णु पूजे गिया ॥ ८७ ॥
पुन प्रेमानन्द जले तिते से बसन। पुन बाहिराइ अङ्ग करे प्रक्षालन ॥ ८८ ॥
एइ मत वस्त्र-परिवर्त करे मात्र। प्रेमे विष्णु पुजिवारे नारे तिल मात्र ॥ ८९ ॥
शेषे गदाधर-प्रति वलिलेन वाक्य। "तुम विष्णु पूज, मोर नाहिक ये भाग्य "॥ ९० ॥
एइ मत वैकुण्ठ नायक भक्ति रसे। विहरये नवद्वीपे रात्रिये दिवसे ॥ ९१ ॥
एक दिन शुक्लाम्बर ब्रह्मचारि-स्थाने। कृपाय ताहाने अन्न मागिला आपने ॥ ९२ ॥
"तोर अन्न खाइते आमार इच्छा बड़। किछु भय ना करिह बलिलाङ दृढ़ ॥ ९३ ॥
एइ मत महाप्रभु बोले बार बार। शुनि शुक्लाम्बर काकु करने अपार ॥ ९४ ॥

---

गङ्गा में स्नान किया और'कृष्ण कृष्ण' कहते हुये सब घर के लिये चल दिये ॥७७॥ प्रभु भी भक्तों के साथ अपने घर को गये। श्री वास का परिवार सब विह्वल हो गया ॥७९॥ यह सब निगूढ़ कथा जो श्रवण करता है उसे अवश्य कृष्ण प्रेम धन प्राप्त होता है।८०॥ श्री वास के चरणों में मेरा कोटि २ नमस्कार है जिनके गौरचन्द्र और नित्यानन्द जैसे आनन्द दाता पुत्र हैं ॥८१॥ यह सब अद्भुत चरित नवद्वीप में हो रहे हैं, तथापि भक्त बिना और कोई नहीं जानता है ॥८२॥ मध्य खण्ड की सब कथाएँ बड़ी अद्भुत हैं-यथा यह कथा जिसमें मृतात्मा के मुख से तत्त्व ज्ञान कहलाया गया है ॥८३॥ इस प्रकार श्री गौर सुन्दर नवद्वीप में निरन्तर संकीर्तन के सुख में विहार कर रहे हैं ॥८४॥ प्रेम रस के आवेश में प्रभु को संसार का स्फुरण नहीं होता। अन्य सांसारिक वार्ता तो दूर रही विष्णु-पूजन तक प्रभु से नहीं बनता है।८५॥ जैसे ही प्रभु स्नान करके विष्णु-पूजन के लिये बैठते हैं वैसे ही नेत्रों से प्रेमाश्रुधाराएँ बहने लगती हैं जिनसे कि वस्त्र भीग जाता है ॥८६॥ प्रभु मन्दिर से बाहर होकर उस गीले वस्त्र को उतार दूसरा वस्त्र पहन कर विष्णु-पूजन करने लगते हैं ॥८७॥ तो पुनः प्रेमानन्द के जल से वह वस्त्र भीग जाता है और प्रभु पुनः बाहर निकल कर अपने अङ्गों को धोते हैं ॥८८॥ इस प्रकार प्रभु वस्त्र ही केवल बदलते रह जाते हैं किन्तु प्रेम विवश होकर तिलभर भी विष्णु-पूजन नहीं कर पाते हैं ॥८९॥ अन्त में हार कर गदाधर से कहते हैं "तुम्हीं विष्णु की पूजा करो-मेरा यह भाग्य नहीं है" ॥९०॥ इस प्रकार वैकुण्ठनाथ भक्ति रस में बिभोर नवद्वीप में रात्रि–दिवस विहार करते हैं ॥९१॥ एक दिन शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के निकट प्रभु ने उस पर कृपा करने के लिये उनसे भोजन माँगा ॥९१॥ वे बोले तुम्हारा अन्न ( भात ) खाने की मेरी बड़ी इच्छा है। तुम ( अन्न देने में ) कुछ भय मत करो-मैं ठीक कह रहा हूँ" ॥९३॥ इस प्रकार महाप्रभु जब बारम्बार कहने लगे तो सुन कर शुक्लाम्बर अनेक काकुति मिनति करने लगा ॥९४॥ वह बोला"मैं

"भिक्षुक अधम मुञि पापिष्ठ गर्हित । तुमि धर्म सनातन, मुञि से पतित ।। ९५ ।।
मोरे कोथा दिबे प्रभु ! चरणे छाया । कीट तुल्य नहीं मोरे एत बड़ माया ।। ९६ ।।
प्रभु बोले"माया" हेन ना वासिह मने । बड़ इच्छा बसे मोर तोमार रन्धने ।। ९७ ।।
साचरे नैवेद्य गिया करह वासाय । आजि आमि मध्याह्ने आइब सर्वथाय ।। ९८ ।।
तथापिह शुक्लाम्बर भय पाइ मने । युक्ति जिज्ञासिलेन सकल भक्त स्थाने ।। ९९ ।।
सभे बलिलेन "तुमि केने कर" भय । परमार्थे ईश्वरेर केहो भिन्न नय ।। १०० ।।
विशेषे जे जन ताने सर्वभावे भजे । सर्वकाल तान अन्न आपनेइ खोजे ।। १०१ ।।
आपने शूद्रार पुत्र विदुरेर स्थाने । अन्न मागि खाइलेन स्वभाव-कारणे ।। १०२ ।।
भक्त स्थाने मागि खाय प्रभुर स्वभाव । देह' गिया तुम बड़ करि अनुराग ।। १०३ ।।
तथापिह तुमि यदि भय वास मने । आउग करिया तुमि करिह रन्धने ।। १०४ ।।
बड़ भाग्य तोमार, एमत कृपा जारे । शुनि विप्र हरिषे आइला निज घरे ।। १०५ ।।
स्नान करि शुक्लाम्बर अति सावधाने । सुवासित जल तप्त करिला आपने ।। १०६ ।।
तण्डुल सहित तवे दिव्य गर्भ थोड़ । आलगोछे दिया विप्र कैला कर जोड़ ।। १०७ ।।
"जय कृष्ण गोविन्द गोपाल वन माली । बलिते लागिला शुक्लाम्बर कुतूहली ।। १०८ ।।
सेइ क्षणे भक्त-अन्ने रमा जगन्माता । दृष्टिपात करिलेन महापतिव्रता ।। १०९ ।।
सेइ ततक्षणे सर्वामृत हैल सेइ अन्न । स्नान करि प्रभु आसि हैला उपसन्न ।। ११० ।।
सङ्गे नित्यानन्द आदि आप्त कथो जन । तिता-वस्त्र एड़िलेन श्रीशचीनन्दन ।। १११ ।।

---

तो अधम भिक्षुक हूँ, बड़ा ही निन्दित पापी हूँ । आप स्वयं सनातन धर्म स्वरूप हो, मैं तो पतित हूँ ।।९५।। मैं तो एक कीट समान भी नहीं हूँ । कहाँ तो प्रभो ! आप को मुझपर अपने श्री चरणों की छाया करनी चाहिये थी, और कहाँ मेरे प्रति आप इतनी बड़ी माया फैला रहे हो ! " ।९६। प्रभु बोले, "इसे तुम'माया' ( छल ) मत समझो सचमुच मे तुम्हारे हाथ की रसोई पाने के लिये मेरी बड़ी इच्छा हो रही है ।।९७।। तुम शीघ्र ही घर जाकर नैवेद्य प्रस्तुत करो । आज मैं मध्याह्न में अवश्य ही तुम्हारे घर आऊँगा ।।९८।। तथापि शुक्लाम्बर के मन में भय हो आया और उसने सकल भक्तों के निकट उपाय पूछा ।।९९।। सभी बोले-"तुम क्यों भय करते हो ? परमार्थ दृष्टि से ईश्वर के लिये तो कोई दूसरा है ही नहीं । विशेष करके, जो जन उनको सर्वभाव से भजता है, उसका अन्न तो सदाकाल से वे आप ही खोजते आये हैं ।।१००-१०१।। "अपने इस स्वभाव के कारण उन्होंने आपही सुदामा और विदुर के निकट भोजन माँग कर खाया ।।१०२।। भक्त के निकट माँग खाना तो प्रभु का स्वभाव ही है,इसलिये तुम उन्हें भोजन पाक करके खिलाओ ।।१०३।। "तथापि यदि तुम्हारे मन में भय ही होता है तो तुम उनके लिये प्रहराश में रसोई बनाओ ।।१०४।। यह तुम्हारा बड़ा भाग्य है जो प्रभु तुम पर ऐसी कृपा कर रहे हैं" । यह सुन विप्र हर्षित होकर अपने घर आयो ।।१०५।। शुक्लाम्बर ने बड़ी सावधानी से स्नान किया । फिर सुगन्धित जल गर्म किया और उसमें चाँवल के साथ केला के नवीन मृदुल फूल मिला कर पात्र को स्पर्श किये बिना अलग से डाल दिया" और फिर शुक्लाम्बर आनन्द में"जय कृष्ण गोविन्द गोपाल बनमाली" की धुन बोलने लगा ।।१०६-१०७-१०८।। उसी क्षण महापतिव्रता जगत्माता लक्ष्मी देवी ने भक्त के अन्न के प्रति दृष्टि-पात किया ।।१०९।। और तत्क्षण वह अन्न सब अमृतमय होगया । प्रभु भी स्नान करके आ उपस्थित हुये ।।११०।। प्रभु के साथ नित्यानन्द आदि कुछ आप्तजन हैं । श्रीशचीनन्दन ने गीले वस्त्र बदले ।।१११।। भक्त की इच्छा को पूर्ण करने वाले

आपने लइया अन्न तार इच्छा पालि'। शुक्लाम्बर देखिया हासेन कुतूहली ॥११२॥
गंगार अग्रेते घर गङ्गार सम्मुखे। विष्णु–निवेदन करिलेन बड़ सुखे ॥११३॥
हासि वसिलेन प्रभु आनन्द भोजने। नयन भरिया देखे सर्व भृत्य गणे ॥११४॥
ब्रह्मादिर यज्ञ भोक्ता जे गौर सुन्दर। सेहो ध्याने, एमत साक्षाते सुदुष्कर ॥११५॥
हेन प्रभु बोले "जन्म आवत आमार। एमन अन्नेर स्वादु नाहि पाइ आर ॥११६॥
किवा गर्भ थोड़ स्वादुता पारि वलिते। आलगोछे एमत वा रान्धिला के मते ॥११७॥
तुमि हेन जन से आमार वन्धु-कुल। तुमि सब लागि से आमार आवि मूल ॥११८॥
शुक्लाम्बर-प्रति देखि कृपार वैभव। कान्दिते लागिला अन्योन्ये भक्त सब ॥११९॥
एइ मत प्रभु पुनः पुन आस्वादिया। करिलेन भोजन आनन्द युक्त हैया ॥१२०॥
जे प्रसाद पायेन भिक्षुक शुक्लाम्बर। देखुक अभक्त सब पापी कोटीश्वर ॥१२१॥
धने जने पाण्डित्ये चैतन्य नाहि पाइ। 'भक्ति रसे वश प्रभु' चारि वेदे गाइ ॥१२२॥
वसिलेन प्रभु प्रेम-भोजन करिया। ताम्बूल खायेन प्रभु हासिया हासिया ॥१२३॥
पत्र लइ भृत्यगण भूलिला आनन्दे। ब्रह्मा शिव अनन्त जे पत्र शिरे वन्दे ॥१२४॥
कि आनन्द हइल से भिक्षुकेर घरे। एमत कौतुक करे श्रीगौर सुन्दरे ॥१२५॥
कृष्ण कथा प्रसंग करिया कथो क्षण। सेइखाने महाप्रभु करिला शयन ॥१२६॥
भक्त गण करि लेन तथाइ शयन। तथि मध्ये अद्भुत देखये एक जन ॥१२७॥
ठाकुरेर एकशिष्य श्रीविजय दास। से महापुरुष किछु देखिला प्रकाश ॥१२८॥

---

प्रभु ने अपने आप ही पाकान्न लिया और शुक्लाम्बर को देखकर कौतुकी प्रभु हँसने लगे ।११२॥ शुक्लाम्बर की कुटिया गङ्गा के सन्मुख थी। प्रभु ने बड़े आनन्द से नैवेद्य को विष्णु भगवान को निवेदन किया ॥११३॥ प्रभु हँसते हुए आनन्द से भोजन के लिये बैठ गये। सब भृत्यगण नेत्र भर कर दर्शन करने लगे ॥११४॥ जो गौर सुन्दर ब्रह्मादिकों के यज्ञ के भोक्ता हैं—परन्तु ध्यान में ही, इस प्रकार साक्षात् भोक्ता के दर्शन उनको भी दुर्लभ हैं। ११५। ऐसे वे प्रभु बोले "अपने जन्म से लेकर आज तक मैंने पहले कभी ऐसा स्वादिष्ट भोजन नहीं किया ॥ ११६ ॥ इसमें केला के 'गर्भ थोड़' (नवीन मृदुल फूल ) का स्वाद तो कुछ कहा नहीं जासकता। बिना स्पर्श किये अलग से ही ऐसी सुन्दर रसोई तुमने कैसे बनाली ॥११७॥ तुम जैसे जन ही मेरे बन्धु-परिवार हो। तुम सब लोग ही मेरे अवतार के मूल कारण हो ॥११८॥ शुक्लाम्बर प्रति प्रभु की ऐसी विशेष कृपा को देखकर अन्य सब भक्त आनन्द के आँसू बहाने लगे ॥११९॥ इस प्रकार प्रभु ने पुनः पुनः आस्वादन करते हुये बड़े आनन्दित होकर भोजन किया ॥१२०॥ जो प्रसाद ( कृपा ) एक भिक्षुक शुक्लाम्बर को प्राप्त हुआ उसे करोड़पति परन्तु पापी अभक्त लोग देख तो लें कि धन, जन, पण्डित्य से श्री चैतन्यदेव नहीं प्राप्त होते हैं। भक्ति रस के ही वशीभूत प्रभु हैं" यही चारों वेद गाते हैं ।१२१॥प्रभु प्रेम का भोजन करके बैठे और हँस हँस कर पान खाने लगे ॥१२२॥ पत्तल ( जिसमें प्रभु ने भोजन किया था ) को लेकर भृत्य लोग आनन्द में आत्महारा हो गये। क्यों न हों—वह पत्तल ही ऐसा है जिसको ब्रह्मा, शिव, शेष भी शीश झुकाते हैं ॥१२४॥ उस भिक्षुक के घर में कैसा अपूर्व आनन्द हुआ ! ऐसा कौतुक करते हैं श्रीगौरसुन्दर ॥१२५॥ कुछ समय तक श्रीकृष्ण–कथा की चर्चा करके महाप्रभु ने वहीं विश्राम किया ॥१२६॥ भक्त लोगों ने भी वहीं शयन किया। उनमें से एक जने को एक कुछ अद्भुत बात दिखायी दी ॥१२७॥ महाप्रभु का एक शिष्य था श्रीविजयदास। उस महापुरुष को प्रभु के ऐश्वर्य के कुछ प्रकाश का

नवद्वीपे तेनमत नाहि आँखरिया । प्रभुरे अनेक पुँथि दियाछे लिखिया ॥१२९॥
'आँखरिया-विजय' करिया सभे घोषे । मर्म नाहि जाने लोक भक्ति-हीन-दोषे ॥१३०॥
शयने ठाकुर तान अङ्गे दिला हस्त । विजय देखेन अति अपूर्व समस्त ॥१३१॥
हेम-स्तम्भ-प्राय हस्त दीर्घ सुवलन । परिपूर्ण देखे तहि रत्न-अभरण ॥१३२॥
श्रीरत्न मुद्रिका जत अंगुलीर मूले । ना जानि कि कोटि सूर्य चन्द्र मणिज्वले ॥१३३॥
आब्रह्म पर्यन्त सब देखे ज्योतिर्मय । हस्त देखि परानन्द हइला विजय ॥१३४॥
विजय उद्योग मात्र करिला डाकिते । श्री हस्त दिलेन प्रभु ताँहार मुखेते ॥१३५॥
प्रभु बोले "जत दिन मुञि थाको एथा । तावत काहारे पाछे कह एइ कथा ॥१३६॥
एनबलि हासे' प्रभु विजय चा'हिया । विजय उठिला महा हुङ्कार करिया ॥१३७॥
विजयेर हुङ्कारे जागिला भक्त गण । धरेन विजय तभु न पाय धरण ॥१३८॥
कथोक्षण उन्माद करिया महाशय । शेषे हैला परानन्द-मूर्च्छित तन्मय ॥१३९॥
भक्त सब बुझिलेन—विभव—दर्शन । सर्व-गण लागिलेन करिते क्रन्दन ॥१४०॥
सभारे जिज्ञासे' प्रभु "कि बोल इहार । आचम्बिते विजयेर बड़ त हुङ्कार ॥१४१॥
प्रभु बोले "जानिलाङ गङ्गार प्रभाव । विजयेर विशेष गङ्गाय अनुराग ॥१४२॥
नहे शुक्लाम्बर गृहे देव-अधिष्ठान । किवा देखिलेन इहा कृष्ण से प्रमाण' ॥१४३॥
एत बलि विजयेर अङ्गे दिया हस्त । चेतन करिल, हासे' वैष्णव समस्त ॥१४४॥
उठियाओ विजय हइला जड़-प्राय । सप्त दिन भ्रमिलेन सर्व नदियाय ॥१४५॥

---

दर्शन किया ॥१२८॥ नवद्वीप में उसके समान सुन्दर लेखक कोई नहीं था। उसने प्रभु को अनेक पुस्तकें लिखकर दी थीं ॥१२९॥ आखरिया विजय ( लेखक विजय ) के नाम से सब पुकारते थे। उसके हृदय के भाव को न जान कर लोग उसे भक्तिहीन कहकर दोष देते थे ॥१३०। निद्रा में प्रभु ने अपना एक हस्त उसके शरीर पर रख दिया तब तो विजय को सब कुछ अत्यन्त अपूर्व दिखायी देने लगा ॥१३१॥ वह श्री हस्त सुवर्ण के स्तम्भ के सदृश है, दीर्घ है, सुडौल है, और रत्न के अलङ्कारों से परिपूर्ण ॥१३२॥ सब उँगलियों के मूल में रत्नमयी दिव्य मुद्रिका है। न जाने कितने कोटि सूर्य चन्द्र का तेज उन मणियों में है ॥१३३॥ उसे समस्त ब्रह्माण्ड ज्योतिर्मय दिखायी देने लगा। श्रीहस्त के दर्शन कर विजय परमानन्द में डूब गया ॥१३४॥ विजय ने आवाज देना चाहा ही था कि प्रभु ने अपना श्रीहस्त उसके मुख पर रख दिया ॥१३५॥ प्रभु बोले-',जब तक मैं यहाँ हूँ तब तक किसी को यह वृत्त नहीं सुनाना ॥१३६॥ इतना कह प्रभु विजय की ओर देखते हुये हँसने लगे। विजय एक बड़ा भारी हुँकार कर उठा ॥१३७॥ विजय के हुँकार से भक्त लोग जाग उठे। वे विजय को पकड़ते हैं पर वह पकड़ में नहीं आता है। १३८॥ कुछ समय महाशय विजय उन्मत्त रहे, फिर परानन्द में तन्मय होकर मूर्छित हो गये ॥१३९॥ भक्त लोग समझ गये कि कुछ वैभव का दर्शन हुआ है और सब रोने लगे ॥१४०॥ प्रभु सबसे पूछते हैं "बताओ तो यह क्या बात है ? अचानक विजय ने बड़ा हुँकार किया ॥१४१॥ फिर आप ही प्रभु बोले "समझ गया यह गङ्गा का प्रभाव है, विजय का गङ्गा के प्रति विशेष अनुराग जो है ॥१४२॥ अथवा तो शुक्लाम्बर के गृह में कोई देवता का निवास है। अथवा तो श्रीकृष्ण के कोई चमत्कार का दर्शन हुआ है" ॥१४३॥ इतना कहकर विजय के शरीर पर श्रीहस्त फेर कर उसे सचेत किया। प्रभु का यह कौतुक देख वैष्णव लोग सब हँसने लगे ॥१४४॥ विजय सचेत होकर उठता तो सही पर प्रायः जड़ ( ज्ञान रहित ) हो गया और सात दिन सारी नदिया में

आहार पानी निद्रा रहित देह धर्म । भ्रमये विजय, केहो नाहि जाने मर्म ॥१४६॥
कथोदिने बाह्य-चेष्टा जानिला विजय । शुक्लाम्बर गृहे हेन सब रङ्ग हय ॥१४७॥
शुक्लाम्बर-भाग्य बलिबारे शक्तिकार । गौरचन्द्र अन्न-परिग्रह कैला जार ॥१४८॥
एइ मत भाग्यवन्त-शुक्लाम्बर-घरे । गोष्ठीर सहित गौर सुन्दर विहरे ॥१४९॥
विजयेर कृपा,—शुक्लाम्बरान्न-भोजन । इहार श्रवणे मात्र मिले भक्ति धन ॥१५०॥
हेन मते नवद्वीपे श्रीगौर सुन्दर । सर्व वेदवन्द्य लीला करे निरन्तर ॥१५१॥
एइमत प्रति वैष्णवेर घरे घरे । प्रतिदिन नित्यानन्द-संहति विहरे ॥१५२॥
निरवधि प्रेम रसे शरीर विह्वल । 'भाव' नामे जत ताहा प्रकाशे सकल ॥१५३॥
मत्स्य कूर्म नरसिंह बराह वामन । रघुसिंह बौद्ध कल्कि श्रीनन्दनन्दन ॥१५४॥
एइ मत जत अवतार से सकल । सेइ रूप हय प्रभु स्वभाव वत्सल ॥१५५॥
ए सकल भाव हइ, लुकाय तखने । सबेना घूचिल राम भाव चिर दिने ॥१५६॥
महामत्त हैला प्रभु हलधर—भावे । 'मद आन' 'मद आन' महा उच्च डाके ॥१५७॥
नित्यानन्द जानेन प्रभुर समीहित । घट भरि गङ्गा जल दिला सावहित ॥१५८॥
हेन से हुङ्कार शुनि हेन से गर्जन । नवद्वीप-आदि करि काँपे त्रिभुवन ॥१५९॥
हेन से करेन महा ताण्डव प्रचण्ड । पृथिवी ते पड़िले पृथिवी हय खण्ड ॥१६०॥
टलमल करे भूमि ब्रह्माण्ड सहिते । भय पाय भृत्य सब से नृत्य देखिते ॥१६१॥
बलराम-वर्णना गायेन सभे गीत । शुनिञा हयेन प्रभु आनन्दे मूर्च्छित ॥१६२॥

---

घूमता फिरा ॥१४५॥ खाना पीना-सोना आदि देह के धर्म सब छूट गये । केवल घूमता रहता है विजय, कोई इसके रहस्य को नहीं जानता है । १४६॥ कुछ दिन पश्चात् विजय को बाह्यज्ञान हुआ । शुक्लाम्बर के गृह में ऐसे सब कौतुक होते हैं ॥१४७॥ शुक्लाम्बर के भाग्य को वर्णन करने की शक्ति भला किसमें है,गौरचन्द्र ने जिसका अन्न ग्रहण किया ॥१४८॥ इस प्रकार भाग्यवान् शुक्लाम्बर के घर में गौरसुन्दर अपनी गोष्ठी सहित बिहार करते हैं ॥१४९॥ शुक्लाम्बर का भोजन और विजय पर कृपा-इनकी कथा सुनने मात्र से भक्ति धन प्राप्त होता है ॥१५०॥ इस प्रकार गौरचन्द्र नवद्वीप में सर्व वेदों द्वारा बन्दित लीलाओं को निरन्तर करते रहते हैं ॥१५१॥ इसी प्रकार प्रत्येक वैष्णव के घर घर प्रभु अपनी कृपा का प्रकाश करते हैं ॥१५२॥ निरन्तर प्रेम रसास्वादन में प्रभु का शरीर विह्वल रहता है, 'भाव' के जितने प्रकार हैं वे सब प्रभु में प्रकाशित होते हैं ॥१५३॥ मत्स्य, कूर्म, नरसिंह, बाराह, बामन, रघुनाथ, बुद्ध, कल्कि, श्रीकृष्ण आदि जितने भी अवतार हैं, उन सबों का रूप भक्त वत्सल प्रभु ( अपने भिन्न २ भावों के भक्तों के लिये ) धारण करते हैं ॥१५४-१५५॥ इस सब अवतारों का भाव प्रकाश होता और तुरन्त ही लोप हो जाता परन्तु एक समय बलराम का भाव बहुत दिन तक नहीं गया ॥१५६॥ प्रभु हलधर बलराम के भाव में महामत्त हो गये, और 'मद लाओ' 'मद लाओ' कहकर जोर २ से पुकारने लगे ॥१५७॥ नित्यानन्द प्रभु का मन्तव्य ( अभिप्राय ) समझ लेते हैं । अतएव उन्होंने घड़ा में गङ्गाजल भरकर सावधानी से प्रभु को दिया ॥१५८॥ प्रभु उस समय ऐसा हुँकार ऐसी गर्जना करते थे कि उसे सुन नवद्वीप आदि से लेकर त्रिभुवन काँपने लगता ॥१५९॥ और प्रभु ऐसा प्रचण्ड ताण्डव नृत्य करते और पृथ्वी पर ऐसे आ पड़ते कि भय होता कि पृथ्वी के टुकड़े २ न हो जायँ ॥१६०॥ भूमि ब्रह्माण्ड सहित डगमगाने लगती और उस ताण्डव नृत्य को देखकर सब दास भक्त भयभीत हो जाते ॥१६१॥ बलराम का वर्णन करते वाला गीत सब गाते जिसे सुनकर प्रभु

आर्य्यातर्ज्जो पढ़ेन परम-मत्त-प्राय । ढुलिया ढुलिया सब-अङ्गने वेड़ाय ॥१६३॥
कि सौन्दर्य प्रकाश हइल राम-भावे । देखिते देखिते कारो आर्त्ति नाहि भागे ॥१६४॥
'बलराम' बलि प्रभु डाके घनेघन । बरज-बालक सङ्ग-देह' दरशन ॥१६५॥
सेइ क्षणे नित्यानन्द प्रकाश करिया । आइला प्रभुर काछे संगेर सङ्गिया ॥१६६॥
श्रीदाम—सुदाम-आदि बरज-राखाल । सुबल लवङ्ग आर अर्जुन विशाल ॥१६७॥
सकलेर गला प्रभु धरिया आपने । कान्दिया पड़िला भूमे नाहिक चेतने" ॥१६८॥
अति-अनिर्वचनीय देखि मुखचन्द्र । घनघन डाके 'नित्यानन्द नित्यानन्द' ॥१६९॥
कदाचित् कखन प्रभुर बाह्य हय । 'प्राण जाय मोर' सबे एइ कथा कय ॥१७०॥
प्रभु बोले "बाप कृष्ण राखिलेन प्राण । मारिलेन हेन देखि जेठा बलराम" ॥१७१॥
एतेक बलिया प्रभु हेन मूर्च्छा जाय । देखि त्रासे भक्त गण कान्दे उच्चरा'य ॥१७२॥
जेइ क्रीड़ा करे प्रभु से महा अद्भुत । नाना भावे नृत्य करे जगन्नाथ सुत ॥१७३॥
कखनो वा विरह प्रकाश हेन हये । अकथ्य अद्भुत प्रेम सिन्धु जेन बहे ॥१७४॥
हेन से डाकिया प्रभु करेन रोदन । शुनिले विदीर्ण हय अनन्त भुवन ॥१७५॥
आपनार रसे प्रभु आपने विह्वल । आपना' पासरि जेन कहेन सकल ॥१७६॥
पूर्वे जेन गोपी सब कृष्णेर विरहे । पायेन मरण भय चन्द्रेर उदये ॥१७७॥
सेइ सब भाव प्रभु करिया स्वीकार । कान्देन सभार गेला धरिया अपार ॥१७८॥
भावावेशे प्रभुर देखिया विह्वलता । रोदन करेन गृहे शची जगन्माता ॥१७९॥

आनन्द में मूर्छित हो जाते ॥१६२॥ परम मतवाला के समान 'आर्य-तर्जा ( बंगला भाषा के छन्दों बद्ध विशेष गीत) पढ़ते और सारे आँगन में झूम झूम कर विचरते ॥१६३॥ बलराम के भाव में प्रभु में कैसा अपूर्व सौन्दर्य का प्रकाश हुआ कि उसके दर्शन कर करके दर्शकों की तृप्ति नहीं होती, लालसा बढ़ती ही जाती ॥१६४॥ गौरचन्द्र वे बलराम ब्रज बालकों के साथ दर्शन देउ इस प्रकार बार-बार कहने लगे उसी क्षण में नित्यानन्द प्रभु साथी बालकों को श्री दाम सुदाम, सुवल लवंग, अर्जुन,विशाल आदि ब्रज बालक रूप से प्रकटकर प्रभु के पास आये हैं। प्रभु सब के गला पकड़कर रोदन करते हुए भूमि पर गिरे है ॥१६५-६८॥ उनका मुखचन्द्र अत्यान्त अनिर्वचनीय दिखाई देता और वे बार बार नित्यानन्द-नित्यानन्द पुकारते ॥१६९॥ कदाचित जब कभी प्रभु को बाह्य-चेतना हो आती तो "मेरे प्राण निकले जाते हैं" बस यही कहा करते ॥१७०॥ प्रभु ( दास्य भाव में ) कहते "बाप कृष्ण ने तो प्राणों की रक्षा की । ताऊ बलराम तो मारे ही डालते हैं ॥१७१॥ इतना कहकर प्रभु मूर्छित हो गये । देखकर भक्त लोग भयभीत हो उच्च स्वर से क्रन्दन करने लगे ॥१७२॥ जो भी क्रीड़ा प्रभु करते हैं, वही महा अद्भुत होती है, जगन्नाथ सुत गौरचन्द्र नाना भाव से नृत्य ( क्रीड़ा ) करते हैं ॥१७३॥ कभी प्रभु में विरह का ऐसा प्रकाश होता है मानो तो अकथनीय अद्भुत प्रेम का सिन्धु बह रहा हो ॥१७४॥ ऐसा डकराते हुये प्रभु रोते हैं जिसे सुनकर अनन्त भुवन विदीर्ण हो जायँ ॥१७५॥ अपने रस में प्रभु आप ही विह्वल हो जाते हैं और मानो अपने को भूल कर ही सब बातें कहने लगते हैं ॥१७६॥ पूर्वकाल में जैसे गोपियाँ श्रीकृष्ण के विरह में चन्द्रोदय को देख कर मृत्यु के समान प्राप्त होती थीं ॥१७७॥ उन्हीं सब भावों को प्रभु भी स्वीकार करके सब का गला पकड़ कर अत्यधिक रुदन करते थे ॥१७८॥ भावावेश में प्रभु की विह्वलता देख कर घर भीतर जगन्माता शची रुदन करती थीं ॥१७९॥ इस प्रकार प्रभु अपूर्व प्रेम भक्ति का प्रकाश करते थे, मनुष्य में उसे वर्णन करने की भला क्या

एइ मत प्रभुर अपूर्व प्रेम भक्ति। मनुष्य कि ताहा वर्णिवारे धरे शक्ति ॥१८०॥
नाना रूपे नाट्य प्रभु करे दिने दिने। जे भाव प्रकाश प्रभु करेन जखने ॥१८१॥
एक दिन गोपी-भावे जगत्-ईश्वर। 'वृन्दावन गोपी गोपी' बोले निरन्तर ॥१८२॥
कोनो योगे तहि एक पढुया आछिल। भाव-मर्म ना जानिञा से उत्तर दिल ॥१८३॥
'गोपी गोपी'केने बोल निमाञि पंडित।'गोपी गोपी'छाड़ि'कृष्ण'बोलह त्वरित ॥१८४॥
कि पुण्य जन्मिब'गोपी गोपी'नाम लैले। 'कृष्ण'नाम लइले से पुण्य वेदे बोले' ॥१८५॥
भिन्न भाव प्रभुर से, अज्ञे नाहि वुझे। प्रभु बोले 'दस्यु कृष्ण', कौनजने भजे ॥१८६॥
कृतघ्न हइया 'वालि' मारे दोष बिने। स्त्रीजित हइया काटे स्त्रीर नाक-काणे ॥१८७॥
सर्वस्व लइया 'वलि' पाठाय पाताले। कि हइव आमार ताहार नाम लैले' ॥१८८॥
एत वलि महाप्रभु स्तम्भ हाथे लैया। पढुया मारिते जाय भावाविष्ट हैया ॥१८९॥
आथे व्यथे पढुया उठिया दिल रड़। पाछे धाय महाप्रभु बोले 'धर धर' ॥१९०॥
देखिया प्रभुर क्रोध ठेङ्गा हाथ धाय। सत्वरे संशय मानि पढुया पलाय ॥१९१॥
भिन्न-भावे धाय प्रभु, ना जाने पढुया। प्राण लैया महा-त्रासे जाय पलाइया ॥१९२॥
आथे व्यथे धाइया प्रभुर भक्तगण। आनिलेन धरिया प्रभुरे ततक्षण ॥१९३॥
सभे मिलि स्थिर कराइलेन प्रभुरे। महाभये पढुया पलाञा गेल दूरे ॥१९४॥
सत्वरे चलिला जथा पढुयार गण। सर्व-अङ्गे धर्म, श्वास वहे घने घन ॥१९५॥

---

शक्ति है ॥१८०॥ जब जिस भाव का प्रकाश प्रभु करते थे तब उसी प्रकार का नाट्य-अभिनय करते थे। इस प्रकार दिन प्रति दिन नाना प्रकार का नाट्य प्रदर्शन करते थे ॥१८१॥ एक दिन जगत् के ईश्वर गौर सुन्दर गोपी भाव के आवेश में 'वृन्दावन, गोपी गोपी' शब्द निरन्तर कहने लगे ॥१८२॥ संयोग वश वहाँ पर एक विद्यार्थी बैठा था, वह प्रभु के भाव का रहस्य न समझ कर बोल उठा ॥१८३॥ 'निमाइ पण्डित ! तुम 'गोपी गोपी' क्यों कह पहे हो ? 'गोपी गोपी' कहना छोड़ 'कृष्ण' कहो शीघ्रता से ॥१८४॥ 'गोपी गोपी' नाम लेने से भला क्या पुण्य होगा। पुण्य तो कृष्ण नाम लेने से होता है, यही वेद कहता है' ॥१८५॥ वह अज्ञ विद्यार्थी प्रभु के उस निम्न भाव ( गोपी भाव ) को नहीं समझा। प्रभु बोले—'कृष्ण तो दस्यु ( डाकू ) है, ऐसे को कौन मनुष्य भजेगा' ॥१८६॥ वह कृतघ्न है, उसने बिना किसी अपराध के बालि को मार डाला। 'उसने स्त्री के बश में होकर शूर्पणखा के नाक-कान काट डाले ॥१८७॥ उसने बालि का सर्वस्व हरण करके उसे पाताल को भेज दिया। उसका नाम लेने से भला मुझे क्या पुण्य मिलेगा' ॥१८८॥ इतना कह कर प्रभु एक डण्डा उठा कर भाव के आवेश में उस विद्यार्थी को मारने चले। १८९॥ विद्यार्थी हड़बड़ा कर उठ भागा और पीछे २ महाप्रभु दौड़े 'पकड़ो २ कहते हुए' ॥१९०॥ प्रभु को क्रोधित हो हाथ में डंडा ले द्रौड़ले हुये देख विपत्ति की शंका से विद्यार्थी शीघ्रता से भाग चला ॥१९१॥ प्रभु तो किसी दूसरे भाव से दौड़े आ रहे हैं इस रहस्य को न जान कर बेचारा विद्यार्थी अपनी जान लेकर अत्यन्त भयभीत होकर भागा जा रहा है ॥१९२॥ प्रभु के भक्त लोग हड़बड़ा कर भागे और प्रभु को पकड़ कर लाये सब ने मिल-मिला कर प्रभु को शान्त किया ॥१९३॥ विद्यार्थी तो मारे डर के दूर भाग गया और भाग कर वह शीघ्रता पूर्वक विद्यार्थी वृन्द में जा पहुँचा ॥१९४॥ उसका सारा शरीर पसीने से लथपथ होगया और लम्बी लम्बी साँसें चलने लगी। विद्यार्थी गण सम्भ्रम के साथ उसके साथ उसके भय का कारण पूछने लगे ॥१९५॥ वह बोला "पूछते क्या हो ! भाग्य से जान बच गयी। लोग

सम्भ्रमे जिज्ञासे' सभे भयेर कारण । 'कि जिज्ञास आजि भाग्ये रहिल जीवन ॥१९६॥
सभे बोले'बड़ साधु निमाञि पण्डित' । देखिते गेलाङ आजि ताहार वाड़ी त ॥१९७॥
देखिलाङ वसि मात्र जपे' एइ नाम । अहर्निश 'गोपी गोपी' ना बोलये आन ॥१९८॥
ताहे आमि वलिलाङ'किकर' पण्डित । 'कृष्ण कृष्ण'बोल-जेन शास्त्रेर विहित ॥१९९॥
एइ वाक्य शुनि महा क्रोधे अग्नि हैया । ठेङ्गा हाथे आमारे आनिल खेदाड़िया ॥२००॥
कृष्णेरेह हइल जतेक गालागालि । ताहा आर मुखे आमि आनिते ना पारि ॥२०१॥
रक्षा पाइलाङ आजि परमायु गुणे । कहिलाङ एइ आजिकार विवरणे' ॥२०२॥
शुनिञा हासये सब महा-मूर्ख गणे । वालिगते लागिल जार जेन लय मने ॥२०३॥
केहो बोले 'भाल त 'वैष्णव' बोले लोके । ब्राह्मण लंघिते आइसेन महाकोपे' ॥२०४॥
केहो बोले 'वैष्णव' वा वलिव के मने । 'कृष्ण' हेन नाम त ना बोलये 'वदने' ॥२०५॥
केहो बोले'शुनिलाङ अद्भुत आख्यान । वैष्णवे जपिव मात्र 'गोपी गोपी'नाम' ॥२०६॥
केहो बोले 'एत वा सम्भ्रम केने करि । आमरा कि ब्राह्मणेर तेज नाहि धरि ॥२०७॥
तेंहो से ब्राह्मण,आमरा कि विप्र नहि । तेंहो मारिते वा आमरा केने वा सहि ॥२०८॥
राजा त नहेन तेंहो मारिवेन केने । आमराओ समवाय हओ सर्व जने ॥२०९॥
यदित तेंहो मारिते धायेन पुनर्वार । आमरा--सकल तवे ना सहिव आर ॥२१०॥
तिंहो नवद्वीपे जगन्नाथमिश्र--पुत्र । आमराह नहि अल्प--मानुषेर सूत्र ॥२११॥
हेर सभे पढ़िलाङ कालि तान सने । आजि तिंहो 'गोसाञि' वा हइला के मने ॥२१२॥
एइ मत युक्ति करिलेन पापिगण । जानिलेन अन्तर्यामी श्रीशचीनन्दन ॥२१३॥

---

सब निमाइ पण्डित को बड़ा साधु ( सज्जन ) कहते हैं, इसलिये मैं आज उसे देखने उसके घर गया था ॥१९६-९७॥ "जाकर देखा कि वह बैठकर के 'गोपी-गोपी' नाम का जप कर रहा है । वह अहर्निश 'गोपी गोपी' नाम का छोड़ और कुछ नहीं करता है ॥१९८॥ मैं उससे बोला "यह क्या करते हो पण्डित ? 'कृष्ण कृष्ण' बोलो जो शास्त्र का विधान है ॥१९९॥ "इस वचन को सुनकर वह तो क्रोध से लाल हो हाथ में लाठी लेकर मेरे पीछे दौड़ा और मुझे खदेड़ता हुआ यहाँ पहुँचा दिया ॥२००॥ कृष्ण को उसने जैसी जैसी गालियाँ दी वह मैं मुँह तक ला भी नहीं सकता ॥२०१॥ "वह तो मेरी आयु शेष थी, इसी से बच आया । यह मैंने आज का वृत्तान्त सुनादिया ॥२०२॥ यह सुनकर वे सब महामूर्ख हँसे और जिसके मन में आया वैसा ही कहने लगे ॥२०३॥ कोई बोला, "अच्छा वैष्णव उसे लोग कहते हैं ! ब्राह्मण पर अत्यंत कोप करके उसे मारने दौड़ता है ॥२०४॥ "कोई कहता है,, उसे वैष्णव ही कैसे कहें । 'कृष्ण जैसा नाम भी जो मुख से नहीं कहता ॥२०५॥ एक कोई और बोला, 'यह तो बड़ी अद्भुत बात सुनी कि वैष्णवी होकर वह केवल 'गोपी गोपी, नाम लेता है" ॥२०६॥ एक और बोला-' अरे ! उससे हम इतना डरें ही क्यों ? हम लोगों में क्या ब्रह्मतेज नहीं ? ॥२०७॥ "यह ब्राह्मण है तो क्या हम ब्राह्मण नहीं हैं । हम उसकी मार को सहें क्यों ॥२०८॥ वह राजा तो नहीं है, फिर क्यों हमें मारेगा ? हम भी सब जने मिल जायँ ॥२०९॥ "वह यदि फिर दूसरी बार मारने को आवे तो हम सब, और अधिक नहीं सहन करेंगे ॥२१०॥ वह नवद्वीप में यदि जगन्नाथ मिश्र का पुत्र है तो हम भी किसी छोटे आदमी के पूत नहीं हैं" देखो तो सही ! कल तक हम सब साथ २ पढ़े, फिर आज वह "गुसांई" कैसे हो गया ॥२११-२१२॥ इस प्रकार की युक्ति पापी लोगों ने की । अन्तर्यामी श्री शचीनन्दन जान गये ॥२१३॥ एक दिन महाप्रभु बैठे हुये हैं ।

एक दिन महाप्रभु आछेन-वसिया। चतुर्दिगे सकल पार्षदगण लैया ॥२१४॥
एक वाक्य अद्भुत बलिला आचम्बित। केहो ना बुझिल अर्थ, सभे चमकित ॥२१५॥
"करिल पिप्पलि खण्ड कफ निवारिते। उलटिया आरो कफ वाढ़िल देहेते ॥२१६॥
बलि अट्ट अट्ट हासे' सर्वलोक नाथ। कारण ना बुझि भय जन्मिल सभा'त ॥२१७॥
नित्यानन्द बुझिलेन प्रभुर अन्तर। जानिलेन—'प्रभु शीघ्र छाड़ि बेन घर ॥२१८॥
विषादे हइला मग्न नित्यानन्द-राय। 'हइब संन्यासि-रूप प्रभु सर्वथाय ॥२१९॥
ए सुन्दर केशेर हइब अन्तर्द्धान। दुःखे नित्यानन्देर विकल हैल प्राण ॥२२०॥
क्षणेके, ठाकुर नित्यानन्द-हाथे धरि। निभृते बसिला गिया गौराङ्ग श्रीहरि ॥२२१॥
प्रभु बोले "शुन नित्यानन्द महाशय। तोमारे कहिये निज हृदय-निश्चय ॥२२२॥
भाल से आइलाङ आमि जगत् तारिते। तरण नाहिल अइलाङ संहारिते ॥२२३॥
आमारे देखिया कोथा पाइब बन्ध-नाश। एक गुण बन्ध आरो हैल कोटि-पाश ॥२२४॥
आमारे मारिते जबे करिलेक मने। तथ नेइ पड़िगेल अशेष-बन्धने ॥२२५॥
भाल लोक राखिते करलुँ अवतार। आपने करिलुँ सर्व जीवेर संहार ॥२२६॥
देख कालि शिखा-सूत्र सब मुड़ाइया। भिक्षा करि वेड़ाइमु संन्यास करिया ॥२२७॥
जे जे जने चाहियाछे मोरे मारि बारे। भिक्षुक हइमु कालि ताहार दुयारे ॥२२८॥
तबे मोरे देखि से-इ धरिब चरण। एइ मते उद्धारिब सकल भुवन ॥२२९॥
संन्यासीरे सर्व लोके करे नमस्कार। संन्यासीरे केहो आर ना करे प्रहार ॥२३०॥

---

उनके चारों ओर पार्षदगण बैठे हुये हैं" ॥२१४॥ उस समय प्रभु ने एक बात बड़ी विचित्र कही, उसका अर्थ कोई नहीं समझ सका और सब चौंक पड़े ॥२१५॥ वह बात यह थी ! "पिपला के एक टुकड़े का सेवन किया तो कफ दूर करने के लिये, पर होगया उल्टा शरीर में कफ और बढ़ गया ॥२१६॥ (भावार्थः- संसार दोष निवारण करने के लिये नाम संकीर्तन रूपी भक्ति धर्म का प्रचार किया गया परन्तु यह न समझ कर जीव भगवान और भक्त की निन्दा करके उस अपराध से संसार में और भी अधिक बँधता जा रहा है) ऐसा कह कर सब लोगों के नाथ गौर सुन्दर खिल खिला कर हँसने लगे। लोग इसका कारण न समझ भयभीत हो गये ॥२१७॥ नित्यानन्द प्रभूके अभिप्राय को समझ गये वे जान गये कि 'प्रभु शीघ्र ही गृह त्याग करेंगे ॥२१८॥ नित्यानन्द राय विसाद में डूब गये। "प्रभु निश्चय ही संन्यासी बनेंगे" ये सुन्दर केश अन्तर्द्धान हो जायँगे" इस दुःख से श्रीनित्यानन्द के प्राण व्याकुल हो गये ॥२१९-२०॥ थोड़ी देर में प्रभु गौरांग श्रीहरि, श्रीनित्यानन्द का हस्त पकड़ एकान्त में जा बैठे और बोले-"नित्यानन्द महाशय ! सुनो। तुमसे अपने हृदय का निश्चय कहता हूँ" २२०-२१॥ "मैं अच्छा आया जगत को तारने ! तार तो सका नहीं, संहार होने लगा ॥२२२॥ (कारण) कहाँ तो मुझे देख लोगों का संसार-बन्धन नष्ट होना चाहिये था। परन्तु हुआ यह कि एकलड़ बन्धन की जगह करोड़ों पाश होगये ॥२२३॥ क्योंकि जब (लोगोंने) मुझे मारने का संकल्प किया तभी उनके बन्धन अशेष हो गये ॥२२४-२२५॥ "अच्छा अवतार लिया मैंने लोक रक्षा के लिये कि अपने आप ही सब जीवों का संहार कर दिया ॥२२६॥ "अब देखो कल ही मैं शिखा-सूत्र सब त्याग संन्यास ले कर भिक्षा माँगता हुआ घूमूँगा ॥२२७॥ जिन जिन लोगों ने मुझे मारने का विचार किया है, मैं कल उनके द्वार पर भिक्षुक बन कर खड़ा हूँगा ॥२२८॥ "तब मुझे देखकर वे ही मेरा चरण पकड़ेंगे। इस प्रकार मैं सब लोगों का उद्धार करूँगा ॥२२९॥ संन्यासी को सभी लोग नमस्कार करते हैं, उस पर

संन्यासी हइया कालि प्रति घरे-घरे। भिक्षा करि बुलों–देखों के मोहरे मारे ॥२३१॥
तोमारे कहिलु एइ आपन हृदय। गारि हस्त बास आमि छाड़िब निश्चय ॥२३२॥
इथे तुमि किछु दुःख ना भविह मने। विधि देह' तुमि मोरे संन्यास करने ॥२३३॥
जे रूप कराह तुमि, सेइ हइ आमि। एतेके विधान देह, अवतार जानि ॥२३४॥
जगत् उद्धार यदि चाह करि वारे। इहाते निषेध नाहि करिबे आमारे ॥२३५॥
इथे मने दुःख ना भाविह कोन क्षण। तुमि त जानह अवतारेर कारण" ॥२३६॥
शुनि नित्यानन्द श्रीशिखार अन्तर्द्धान। अन्तरे विदीर्ण हैल मन देह प्राण ॥२३७॥
कोन् विधि दिब किछुना आइसे वदने। 'अवश्य करिव प्रभु, जानि लेन मने ॥२३८॥
नित्यानन्द बोले'प्रभु ! तुमि इच्छामय। जे तोमार इच्छा प्रभु ! सेइ से निश्चय ॥२३९॥
विधि वा निषेध के तोमारे दिते पारे। सेइ सत्य जे तोमार आछये अन्तरे ॥२४०॥
सर्व लोकपाल तुमि सर्व लोकनाथ। भाल हय जे मते से विदित तोमा' त ॥२४१॥
जे रूपे करिबे तुमि जगत्-उद्धार। तुमि से जानह ताहा के जानये आर ॥२४२॥
स्वतंत्र परमानन्द तोमार चरित्र। तुमि जे करिव से-इ हइव निश्चित ॥२४३॥
तथापि कह सर्व सेवकेर स्थाने। के वा कि बोलेन ताहा शुनह आपने ॥२४४॥
तबे जे तोमार इच्छा करवि ताहारे। के तोमार इच्छा प्रभु ! विरोधिते पारे ॥२४५॥
नित्यानन्द-वाक्ये प्रभु सन्तोष हइला। पुनः पुन आलिङ्गन करिते लागिला। २४६॥
एइ मत नित्यानन्द सङ्गे युक्ति करि। चलिलेन वैष्णव समाजे गौर हरि ॥२४७॥

---

कोई प्रहार नहीं करता है ॥२३०॥ "संन्यासी होकर कल मैं घर घर में भिक्षा माँगता डोलूँगा, देखूँ कौन मुझे मारता है ॥२३१॥ तुमको मैंने अपने हृदय की बात कहदी कि गृह का बास मैं निश्चय ही छोड़ूँगा ॥२३२॥ "इसमें तुम मन में कुछ दुःख नहीं मानना। अब तुम मुझे संन्यास ग्रहण के लिये आज्ञा दो ॥२३३॥ जैसा तुम मुझसे कराते हो, वैसा ही मैं होता हूँ। मेरे इस अवतार के रहस्य को तुम जानते हो, इसलिये संन्यास के लिये आज्ञा दो ॥२३४॥ "यदि जगत का उद्धार करना चाहते हो तो इस कार्य के लिये तुम मुझे निषेध न करना ॥२३५॥ इससे तुम मन में किसी समय भी दुःख न मानना। तुम तो मेरे अवतार का कारण जानने ही हो ॥२३६॥ प्रभु अपनी शिखा का मुँडन करदेंगे-इस बात को सुन कर श्रीनित्यानन्द के मन, देह, प्राण भीतर से फट गये ॥२३७॥ क्या आज्ञा दें–मुख में कुछ भी न आया। मन में समझ गये कि प्रभु अवश्य गृह-त्याग करेंगे ॥२३८॥ नित्यानन्द बोले "प्रभो ! तुम इच्छामय हो। तुम्हारी जो इच्छा है वही मेरा निश्चय है ॥२३९॥ तुम्हारे लिये विधि-निषेध की व्यवस्था कौन दे सकता है। जो तुम्हारे हृदय का संकल्प है वही सत्य ( विधि ) है ॥२४०॥ तुम सर्व लोक पालक, सर्व लोकनाथ हो। जैसा श्रेय होता है वह आपको विदित है ॥२४१॥ जिस प्रकार से तुम जगत का उद्धार करोगे, वह तुम्हीं जानते हो, और कौन जानता है ॥२४२॥ "तुम्हारा चरित स्वतन्त्र है परमानन्दमय है। तुम जो करना चाहोगे वह निश्चय ही होगा ॥२४३॥ तथापि आप एक वार अपने सब सेवकों के सन्मुख अपना विचार प्रकट करें, और कौन क्या कहता है, उसे आप सुनें ॥२४४॥ "फिर जो आपकी इच्छा हो वही करें, कौन इच्छा का विरोध कर सकता है" ॥२४५॥ श्रीनित्यानन्द के वचनों से प्रभु को संतोष हुआ। वे उनको पुनः पुन आलिंगन करने लगे। २४६॥ इस प्रकार नित्यानन्द के साथ परामर्श करके गौर हरि वैष्णव समाज ( भक्त लोगों ) के समीप चले ॥२४७॥ नित्यानन्द जानते हैं कि प्रभु गृह-त्याग करेंगे" इसलिये उनकी देह

'गृह छाड़िबेन प्रभु' जानि नित्यानन्द । वाक्य नाहि स्फुरे देहे हइल निष्पन्द ।।२४८।
स्थिर हइ नित्यानन्द मने मने गणे' । "प्रभु गेले आइ प्राण धरिब के मने ।।२४९।
के मते बंचिब आइ काल-दिन राति । एतेके चिन्तिते मूर्च्छा पाय महामति ।।२५०।।
भाविया आइर दुःख नित्यानन्दराय । निभृते बसिया प्रभु कान्दये सदाय ।।२५१।।
मुकुन्देर बासाय आइला गौरचन्द्र । देखिया मुकुन्द हैला परम-आनन्द ।।२५२।।
प्रभु बोले 'गाओ किछु कृष्णेर मङ्गल । मुकुन्द गायेन, प्रभु शुनिञा विह्वल ।।२५३।।
'बोल बोल' हुङ्कार करये द्विजमणि । पुण्यवन्त-मुकुन्देर शुनि दिव्य-ध्वनि ।।२५४।।
क्षणेके करिला प्रभु भाव-सम्वरण । मुकुन्देर सङ्गे तबे कहेन कथन ।।२५५।।
प्रभु बोले 'मुकुन्द ! शुनह किछु कथा । बाहिर हइब आमि, ना रहिब एथा ।।२५६।।
गारि हस्त आमि छाड़िबाङ सुनिश्चित । शिखा सूत्र छाड़िया चलिब जे-ते भित' ।।२५७।
श्रीशिखार अन्तर्धान शुनिञा मुकुन्द । पड़िला विरहे, सब घुचिल आनन्द ।।२५८।।
काकु करि बोलये मुकुन्द महाशय । यदि प्रभु ! एमत से करिबा निश्चय ।।२५९।।
दिन-कथो एइ रूपे करह कीर्त्तने । तबे प्रभु ! करिह 'से जे तोमार मने' ।।२६०।।
मुकुन्देर काकु शुनि गौराङ्ग सुन्दर । चलिलेन जथाय आछेन गदाधर । २६१।।
सम्भ्रमे चरण वन्दिलेन गदाधर । प्रभु बोले 'शुन किछु आमार उत्तर ।।२६२।।
ना रहिब गदाधर ! आमि गृहवासे । जे-ते-दिगे चलिबाङ कृष्णेर उद्देशे ।।२६३।।
शिखा-सूत्र सर्वथाय आमिना राखिब । माथा मुण्डाइया जे-ते दिगे चलियाब' ।।२६४।।
श्रीशिखार अन्तर्द्धान शुनि गदाधर । वज्रपात जेन हैल शिरेर ऊपर ।।२६५।।

---

निश्चल हो गयी, वाणी से वचन नहीं निकलता ।।२४८।। वे स्थिर होकर मन ही मन सोचने लगे, "प्रभु चले जायँगे तो माता शची कैसे प्राण बचा सकेंगी । कैसे वह समय-दिन रात बितायँगी ।' यह सोचते ही महाधीर नित्यानन्द को मूर्च्छा आने लगी ।।२४९-२५०।। नित्यानन्दराय माता के दुःख की चिन्ता में एकान्त में बैठ निरन्तर रोने लगे ।।२५१।। गौरचन्द्र मुकुन्द के घर गये । प्रभु के दर्शन कर मुकुन्द को बड़ा आनन्द हुआ । २५२।। प्रभु बोले 'कृष्ण का कोई मङ्गल गीत गाओ ।' मुकुन्द गाता है और प्रभु सुन सुन कर विह्वल होते हैं ।।२५३।। पुण्यशाली मुकुन्द के दिव्य-सङ्गीत को सुनकर द्विज मणि गौर बोलो बोलो 'कहते हुए हुँकार करते हैं' ।।२५४।। कुछ समय पश्चात् प्रभु ने अपना भाव समेट लिया और मुकुन्द के साथ बात करने लगे ।।२५५।। प्रभु बोले 'मुकुन्द ! एक बात सुनो ! मैं चला जाऊँगा, यहाँ नहीं रहूँगा मैं निश्चय ही गृहस्थ त्याग करूँगा और शिखा सूत्र को त्याग जिधर इच्छा उधर चला जाऊँगा ।।२५६-२५७।। श्री शिखा सूत्र त्याग की बात सुनकर मुकुन्द विरह में डूब गया, सारा आनन्द उड़ गया ।।२५८।। मुकुन्द महाशय गिड़गिड़ा कर विनती करने लगा,—'प्रभो ! यदि आपने ऐसा ही निश्चय किया है है तो कुछ दिन इसी प्रकार यहाँ कीर्तन करें फिर प्रभो ! वही करें जो आपके मन में है' ।।२५९-६०।। मुकुन्द की विनती सुनकर गौराङ्ग सुन्दर गदाधर के निकट चले ।।२६१।। गदाधर ने आदर पूर्वक प्रभु की चरण वन्दना की । प्रभु बोले—'सुनो कुछ मेरा उत्तर' ।।२६२।। 'गदाधर ! मैं अब घर में नहीं रहूँगा । श्रीकृष्ण के उद्देश्य से जिधर मन करेगा उधर जाऊँगा ।।२६३।। मैं शिखा सूत्र बिल्कुल नहीं रक्खूँगा, सिर मुँड़ा कर जिधर इच्छा उधर चला जाऊँगा ।।२६४।। श्री शिखा लोप की बात सुनकर गदाधर के मस्तक पर मानो वज्रपात होगया ।।२६५।। व्यथित हृदय से गदाधर बोला—'तुम्हारी बातें सब अद्भुत होती हैं

अन्तरे दुःखित हइ बोले गदाधर। "जतेक अद्भुत सेइ तोमार उत्तर ॥२६६॥
शिखा-सूत्र घुचाइलेइ से कृष्ण पाइ। गृहस्थ तोमार मते वैष्णव कि नाइ ॥२६७॥
माथा मुडाइले से सकल देखि हये। तोमार से मत, ए वेदेर मत नहे ॥२६८॥
अनाथिनी-मा'येरे वा के मते छाड़िबे। प्रथमे त जननी-बधेर भागी हबे ॥२६९॥
तुमि गेले सर्वथा जीवन नाहि तान। सबे अवशिष्ट आछ तुमि ताँर प्राण ॥२७०॥
घरे थाकिले कि ईश्वरेर प्रीत नहे। गृहस्थ मे सभार प्रीतिर स्थलि हये ॥२७१॥
तथापिह माथा मुडाइया स्वास्थ्य पाओ। जे तोमार इच्छा ताइ कर' चल जाओ ॥२७२॥
एइ मत आप्त-वैष्णवेर स्थाने स्थाने। 'शिखा-सूत्र घुचाइमु" वलिला आपने ॥२७३॥
सभेइ शुनिञा श्रीशिखार अन्तर्द्धान। मूर्च्छित पड़िला कारो देहे नाहि ज्ञान ॥२७४॥
करिबेन महाप्रभु शिखार मुण्डन। श्रीशिखा स्मङरि कान्दे सर्व भक्तगण ॥(ध्रु)१॥२७५॥
केहो बोले 'से सुन्दर चाँचर चिकुरे। आर माला गाँथिया कि ना दिब उपरे ॥२७६॥
केहो बोले 'ना देखिया से केश बन्धन। के मते रहिब एइ पापिष्ठ जीवन ॥२७७॥
'से केशेर दिव्य गन्ध ना लइब आर। एत बलि शिरे कर हनि आपनार ॥२७८॥
केहो बोले 'से सुन्दर केशे आरबार। आमलक दिया कि ना करिब संस्कार' ॥२७९॥
'हरि हरि' वलि केहो कान्दे उच्च स्वरे। डुबिलेन भक्तगण दुःखेर सागरे ॥२८०॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावनदास तनु पदयुगे गान ॥२८१॥

---

॥२६६॥ श्री शिखा सूत्र त्याग देने से ही यदि कृष्ण मिलते हों, तो फिर तुह्मारे मत से गृहस्थ वैष्णव ही नहीं है ॥२६७॥ 'सिर मुँड़ाने पर ही वह सब होता है ( अर्थात् श्रीकृष्ण मिलते हैं, आत्मोद्धार होता है इत्यादि )' यही तुह्मारा मत है न ? परन्तु यह वेद का मत नहीं है ॥२६८॥ बताओ तो अनाथिनी माँ को कैसे छोड़ोगे ? प्रथम आरम्भ मे ही जननी-बध का भागी बनना पड़ेगा ॥२६९॥ "तुम चले जाओगे तो उनका जीवन सर्वथा नहीं रहेगा। एक मात्र तुम ही उनके प्राण शेष रह गये हो ॥२७०॥ घर में रहने से क्या ईश्वर प्रसन्न नहीं होते हैं ? गृहस्थ तो सब आश्रमों का ही प्रीति का पात्र है ॥२७१॥ तथापि सिर मुँड़ा कर ही आपको शान्ति मिलती है तो तुह्मारी इच्छा, वही करो, चले जाओ" ॥२७२॥ इस प्रकार आत्मीय वैष्णव जनों के घर-घर में जाकर प्रभु ने कहा कि 'मैं शिखा-सूत्र को दूर करूँगा' ॥२७३॥ श्री शिखा-लोप की बात सुनकर सब मूर्च्छित हो पड़े–किसी को देह का भान न रहा ॥२७४॥ ( रामकली राग ) महाप्रभु शिखा का मुंडन करेंगे। श्री शिखा का स्मरण कर सब भक्त गण क्रन्दन करते हैं ॥(ध्रु०) कोई कहता है 'उन सुन्दर घुँघराले केशों पर क्या माला गूँथ कर नहीं पहनायेंगे ॥२७५-२७६॥ कोई बोला 'उनके शीश पर वे केश-बन्धन न देखकर यह पापी जीवन कैसे भी नहीं रह सकेगा ॥२७७॥ उन केशों का दिव्य गन्ध नहीं प्राप्त हो सकेंगे' ऐसा कहकर हाथों से अपना सिर पीटता है ॥२७८॥ कोई कहता है "उन सुन्दर केशों को आँवलों से क्या फिर संस्कार नहीं कर सकूँगा ?" ॥२७९॥ कोई 'हरि हरि' कहता हुआ ऊँचे स्वर से रोता है। इस प्रकार भक्तगण दुःख-सागर में डूब गये ॥२८०॥ श्रीकृष्ण चैतन्य और श्रीनित्यानन्द चन्द्र मेरे जीवन हैं। वृन्दावनदास उनके पद युगल का गुण गान करता है ॥२८१॥

इति श्रीचैतन्य भागवते मध्य खण्डे भक्त दुःख वर्णनं नाम
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

# अथ षड्विंशोऽध्याय

जय जय महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य। नित्यानन्द अद्वैतादि जत भक्त धन्य ॥१॥
जय जय विश्वम्भर श्रीशचीनन्दन। जय जय गौरसिंह पतित पावन ॥२॥
एइ मत अन्योन्ये सर्व भक्त गण। प्रभुर विरहे सभे करेन क्रन्दन ॥३॥
"कोथा जाइबेन प्रभु संन्यास करिया। कोथा वा आमरा सब देखिबाङ गिया ॥४॥
संन्यास करिले ग्रामे ना आसिवे आर। कोन दिगे जायेन वा करिया विचार ॥५॥
एइ मत भक्तगण भावे' निरन्तरे। अन्न पानी कारो आर रोचये शरीरे ॥६॥
सेवकेर दुःख प्रभु सहिते ना पारे। प्रसन्न हइया प्रभु प्रबोधे' सभारे ॥७॥
प्रभु बोले "तोमरा चिन्तह कि कारण। तुमि सब जथा, तथा आमि सर्व क्षण ॥८॥
तोमा'सभार ज्ञान'अमि संन्यास करिया। चलिबाङ आमि तोमा'सभारे छाडिया ॥९॥
सर्वथा तोमरा इहा ना भाविह मने। तोमा' सभा' आमि ना छाड़िब कोन क्षणे ॥१०॥
सर्व काल तोमरा–सकल मोर सङ्ग। एइ जन्म हेन ना जानिवा–जन्म जन्म ॥११॥
एइ जन्मे जेन तुमि सब आमा सङ्गे। निरवधि आछ सङ्कीर्त्तन-सुख-रङ्गे ॥१२॥
एइ मत आछे'आर दुइ अवतार। कीर्त्तन–आनन्द रूप हइब आमार ॥१३॥
ताहाते ओ तुमि सब एई मत रङ्गे। कीर्तन करिबा महासुखे आम सङ्गे ॥१४॥
लोक रक्षा–निमित्त से आमार संन्यास। एते के तोमरा सब चिन्ता कर' नाश ॥१५॥
एतेक वलिया प्रभु धरिया सभारे। प्रेम–आलिङ्गन प्रभु पुनः पुन करे ॥१६॥
प्रभु वाक्ये भक्त-सब किछु स्थिर हैला। सभा प्रबोधिया प्रभु निज वासे गेला ॥१७॥

हे महाप्रभु! हे कृष्ण चैतन्य! आपकी जय हो, जय हो, नित्यानन्द, अद्वैतादि भक्त वृन्द की जय हो ॥१॥ हे श्री शचीनन्दन विश्वम्भर! आपकी जय हो, जय हो। हे पतित पावन श्री गौरसिंह आप की जय हो, जय हो ॥२॥ इस प्रकार प्रभु के विरह में सब भक्त गण परस्पर में ( कहते-सुनते हुये ) क्रन्दन करते हैं ॥३॥ "हाय! प्रभु संन्यास लेकर कहाँ तो जायँगे और हम भी सब कहाँ जाकर उनको देख पायँगे ॥४॥ संन्यास लेने पर तो वह गाँव में नहीं जायँगे। क्या वे सोच–विचार कर किसी निश्चित स्थान को जायँगे ॥५॥ इस प्रकार भक्तगण निरन्तर सोचते रहते हैं, अन्न-जल किसी को सुहाता नहीं है ॥६॥ सेवक जनों का दुःख प्रभु सहन नहीं कर सकते, अतः एक प्रसन्न होकर सबों को समझाते-बुझाते हैं। ७॥ प्रभु कहते हैं "तुम सब किस लिये चिन्ता करते हो? जहाँ तुम सब हो, वहीं मैं सब समय हूँ ॥८॥ तुम लोग सोचते हो कि मैं संन्यास लेकर तुम लोगों को छोड़ कर जा रहा हूँ ॥९॥ 'ऐसा तुम लोग अपने मन मे बिल्कुल मत सोचो। तुम सब को मैं किसी समय भी नहीं छोड़ूँगा ॥१०॥ तुम लोग केवल इसी जन्म मे ही मेरे संग नहीं हो, जन्म जन्म से, सब समय, तुम मेरे संग ही हो ॥११॥ "जिस प्रकार इस जन्म में तुम सब मेरे साथ निरन्तर संकीर्तन-सुख का आनन्द ले रहे हो, उसी प्रकार मेरे दो और अवतार "कीर्तन–आनन्द-रूप" होंगे ॥१२-१३॥ उनमें भी तुम सब इसी प्रकार आनन्द से मेरे साथ महा सुख पूर्वक कीर्तन करोगे ॥१४॥ लोक-रक्षा के निमित्त ही यह मेरा संन्यास है, इसलिये तुम सब चिन्ता छोड़ दो" ॥१५॥ इतना कह कर प्रभु एक-एक भक्त को पकड़ २ कर वार २ प्रेमालिंगन करने लगे ॥१६॥ प्रभु के वचन से भक्त लोग कुछ स्थिर हुये। प्रभु भी सब को प्रबोध करके अपने गृह को गये ॥१७॥ एक दूसरे के मुँह से

परम्परा ए सकल यतेक आख्यान। शुनिञा शचीर देहे नाहि रहे प्राण ॥१८॥
प्रभुर संन्यास शुनि शची जगन्माता। हेन दुःख जन्मिल—ना जाने आछे कोथा-॥१९॥
मूर्च्छित हइया क्षणे पड़े पृथिवीते। निरवधि धारा वहे ना पारे राखिते ॥२०॥
वसिया आछेन प्रभु कमल लोचन। कहिते लागिला शची करिया क्रन्दन ॥२१॥
ना जाइय ना जाइय बाप ! आमारे छाड़िया। पाप जीउ आछे तोर श्रीमुख देखिया ॥२२॥
कमल—नयन तोर श्रीचन्द्र—वदन। अधर सुरङ्ग, कुन्द-मुकता-दशन ॥२३॥
अमिया वरिखे येन सुन्दर वचन। केमने वञ्चिव ना देखि गजेन्द्र—गमन ॥२४॥
अद्वैत—श्रीवास—आदि तोर अनुचर। नित्यानन्द आछे तोर प्राणेर दोसर ॥२५॥
परम वान्धव गदाधर—आदि सङ्गे। गृहे रहि कीर्त्तन करह तुमि रङ्गे ॥२६॥
धर्म बुझाइते बाप ! तोर अवतार। जननी छाड़िवा कोन् धर्म वा विचार ॥२७॥
तुमि धर्ममय जदि जननी छाड़िवा। के मते जगते तुमि धर्म बुझाइवा" ॥२८॥
प्रेम शोके कहे शची, शुने विश्वम्भर। प्रेमे ते रोधित कण्ठ ना करे उत्तर ॥२९॥
"तोमार अग्रज आमा' छाड़िया चलिला। वैकुण्ठे तोमार वाप गमन करिला ॥३०॥
तोमा' देखि सकल सन्ताप पासरिलुँ। तुमि गेले प्राण मुञि सर्वथा छाड़िमु ॥३१॥
प्राणेर गौराङ्ग हेर बाप, अनाथिनी छाड़िते न जुयाय।
सभा' लञाकर' निज अङ्गने कीर्त्तन, नित्यानन्द आछेन सहाय ॥धु॥३२॥
( तोमार ) प्रेममय दुइ आँखि, दीर्घभुज दुइ देखि, वचने ते अमिया वरिषेहे।

होती हुई ये सब बातें शची माता के कानों में पहुँचीं—सुन कर सची माता के देह में प्राण नहीं रहे। १८॥ प्रभु संन्यास लेंगे—यह सुन कर शची माता को इतना दुःख हुआ कि उन्हें यह ज्ञान न रहा कि वह कहाँ है ॥१९॥ वे क्षण क्षण में मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ती और नेत्रों से निरन्तर अश्रु बहा करते-जो रोके न रुकते ॥२०॥ कमल लोचन प्रभु समीप ही बैठे हुये हैं। शची माता रोती हुई उन से कहने लगीं ॥२१॥ भाटियारी राग—"बेटा ! मुझे छोड़ कर न जाना, न जाना ! यह पापी जीव तेरे श्रीमुख को देख कर ही बचा हुआ है ॥२२॥ गौराङ्ग, न जाना" तेरा मुख चन्द्रमा के समान हैं, नेत्र कमल—तुल्य हैं सुन्दर सुलाल अधर हैं, दशन कुन्द और मुक्ता सदृश हैं ॥२३॥ "तेरे सुन्दर वचन से अमृत-वर्षा सी होती है। तेरी चाल गजेन्द्र समान है। ऐसा तुझे न देख कर मैं कैसे बच रहूँगी ॥२४॥ अद्वैत-श्रीवासादि तेरे अनुचर हैं। नित्यानन्द तो तेरा दूसरा प्राण है ॥२५॥ गदाधर तेरा परम बन्धु है। इन सब के साथ घर में ही रहकर आनन्द से कीर्तन करो ॥२६॥ बेटा ! धर्म का मर्म समझाने के लिये तेरा अवतार है। परन्तु जन्म दायिनी माता को त्यागने में कौन सा धर्म का विचार है ॥२७॥ तुम धर्म स्वरूप होकर के भी यदि जननी को छोड़ जाओगे तो फिर जगत् में धर्म का उपदेश करोगे' ॥२८॥ प्रेम के कारण शोकातुर हो कर शची कह रही है और विश्वम्भर सुन रहे हैं प्रभु का कण्ठ प्रेम के कारण रुक गया है और वे उत्तर नहीं दे रहे हैं ॥२९॥ शची फिर कहने लगीं- "तुम्हारा बड़ा भाई ( विश्वरूप ) मुझे छोड़ संन्यासी हो गया। तुम्हारे पिता भी वैकुण्ठ चले गये ॥३०॥ पर तुमको देख कर ही मैं यह सब संताप भूली हुई हूँ। तुम भी यदि चले गये तो मैं प्राण अवश्य ही छोड़ दूँगी ॥३१॥ करुण भाटियारी राग ॥ — "देखो बेटा। मेरे प्राणों के गौराँग ! अनाथिनी (माँ) को छोड़ना उचित नहीं है। सब भक्तों को लेकर अपने आँगन में कीर्तन करो। नित्यानन्द तुम्हारे सहायक हैं ॥ ( ध्रु० ) ॥३२॥ ये तुम्हारी दो प्रेममयी आँखें, ये तुम्हारी दीर्घ दो भुजाएँ—इन्हें मैं

बिनि-दीपे घर मोर, तोमार अङ्गेते उजारे, राङ्गा पाये कत मधु वैसे हे" ।।३३।।
प्रेम शोके कहे शची, विश्वम्भर शुने वसि, (येन) रघुनाथे कौशल्या बुझाय ।
श्रीचैतन्य नित्यानन्द, सुखदाता सदानन्द, वृन्दावनदास रस गाय ।।३४।।
एइ मत विलाप करये शचीमाता । मुख तुलि ठाकुर ना कहे एको कथा ।।३५।।
विवर्ण हइला शची-अस्थि-चर्म-सार । शोकाकुली देवी किछुना करे आहार ।।३६।।
प्रभु देखे जननीर जीवन ना रहे । निभृते बसिया ताने गोप्य-कथा कहे ।।३७।।
प्रभु बोले "माता ! तुमि स्थिर कर' मन । शुन जत जन्म आमि तोमार नन्दन ।।३८।।
चित्त दिया शुनह आपन गुण ग्राम । कोनो काले आछिल तोमार पृश्नि--नाम ।।३९।।
तथाय आछिला तुमि आमार जननी । तबे तुमि स्वर्गे हैला अदिति आपनि ।।४०।।
तबे आमि हइलुँ वामन--अवतार । तथाओ आछिला तुमि जननी आमार ।।४१।।
तबे तुमि देवहूति हैला आर बार । तथाओ कपिल आमि नन्दन तोमार ।।४२।।
त्रेते त कौशल्या हैला आर बार तुमि । तथाओ तोमार पुत्र रामचन्द्र आमि ।।४३।।
तबे तुमि मथुराय देवकी हइला । कंसासुर अन्तःपुरे बन्धने आछिला ।।४४।।
तथाओ आमार तुमि आछिला जननी । तुमि सेइ देवकी--पुत्र आमि ।।४५।।
आरो दुइ जन्म एइ सङ्कीर्तनारम्भे । हइब तोमार पुत्र आनि अविलम्बे ।।४६।।
एइमत तुमि मोर माता जन्मे जन्मे । तोमार आमार कभु त्याग नाहि मर्मे ।।४७।।
अमायाय एइ सब कहिलाङ कथा । आर तुमि मने दुख ना भाव सर्वथा ।।४८।।

---

देखा करती हूँ। तुम्हारे वचनों से अमृत बरसा करता है ( उसे मैं पिया करती हूँ ) तुम्हारे इस कंचन काया से मेरे घर में बिना दीपक के उजाला रहता है । और तुम्हारे लाल लाल चरण कमलों में कितना मधु- भरा रहता है ।।३३।। प्रेम और शोक में भरी हुई शची कहती जाती हैं । और विश्वम्भर सुनते जाते हैं । लगता है, कौशल्या रघुनाथजी को समझा रही हो सुखदाता तथा सदानन्द स्वरूप श्रीचैतन्य एवं नित्यानन्द का लीला--रस वृन्दावन दास गाता है ।।३४।। इस प्रकार शची माता विलाप करती हैं, परन्तु प्रभु मुख उठा कर एक भी बात नहीं कहते हैं ।।३५।। रोते रोते शची माता का रंग बदल गया । शरीर अस्थि--चर्म मात्र रह गया । शोकाकुल देवी ( माता ) कुछ भी भोजन नही करती हैं ।।३६।। प्रभु ने देखा कि अब जननी का जीवन नहीं रहेगा । इस लिये एक दिन एकांत में बैठकर उनसे गुप्त-कथा कहने लगे ।।३७।। प्रभु बोले "माता ! तुम चित को स्थिर करो । सुनो, मैं अपने सब अवतार-जन्म में तुम्हारा ही पुत्र हूँ । ।।३८।। मन लगाकर अपने गुणों को सुनो किसी समय में तुम्हारा पृश्नि नाम था ।।३९। "तब तुम मेरी जननी थी । फिर स्वयं तुम ही स्वर्ग में अदिति हुई, तब मैं तुमसे वामन रूप में प्रकट हुआ ।।४०।। फिर एक बार तुम देवहुति हुई । वहाँ मैं कपिल नाम से तुम्हारा पुत्र हुआ ।।४१-४२।। "फिर एक दूसरे बार तुम कौशल्या हुई, वहाँ मैं तुम्हारा पुत्र रामचन्द्र हुआ ।।४३।। फिर तुम मथुरा में देवकी हुई । तुम वहाँ कंस के अन्तःपुर में बन्धन में थीं । वहाँ भी तुम मेरी जननी हुईं थीं । तुम वही देवकी हो और मैं वही देवकी--पुत्र हूँ ।।४४-४५।। "इस संकीर्तन कार्य के लिये मेरे और दो जन्म शीघ्र ही होंगे--उनमें भी मैं तुम्हारा पुत्र हूँगा ।।४६।। इस प्रकार तुम जन्म-जन्मान्तर से मेरी माता हो । इस कारण वस्तुतः तुम्हारा मेरा कभी बिछोह नहीं है ।।४७।। "मैंने निष्कपट भाव से सब रहस्य कथा तुमको कह दी अब तुम चित्त से दुःख को सर्वथा निकाल दो ।।४८। "प्रभु ने जब यह रहस्य कथा कही तो सुन कर शची माता का मन कुछ

कहिलेन प्रभु अति रहस्य कथन । शुनिञा शचीर किछु स्थिर हैल मन ॥४९॥
एइ मत आछेन ठाकुर विश्वम्भर । सङ्कीर्तन-आनन्द करेन निरन्तर ॥५०॥
स्वेच्छामय महेश्वर कखने कि करें । ईश्वरेर मर्म केहो बुझिते ना पारे ॥५१॥
निरवधि परानन्द सङ्कीर्तन-रङ्गे । हरिषे थाकेन सर्व-वैष्णवेर सङ्गे ॥५२॥
परानन्दे विह्वल सकल भक्तगण । पासरि रहिला सभे प्रभुर गमन ॥५३॥
सर्व वेदे मने भावे' जाहारे देखिते । क्रीड़ा करे भक्तगण से-प्रभु-सहिते ॥५४॥
जे-दिन चलिव प्रभु संन्यास करिते । नित्यानन्द स्थाने ताहा कहिला निभृते ॥५५॥
"शुन शुन नित्यानन्द स्वरूप गोसाञि । ए कथा भाङ्गिवे सवे पञ्च-जन-ठाञि ॥५६॥
एइ सङ्क्रमण-उत्तरायण-दिवसे । निश्चय चलिव आमि करिते संन्यासे ॥५७॥
इन्द्राणि निकटे काटोया-नामे ग्राम । तथा आछे केशव भारती शुद्ध नाम ॥५८॥
तान स्थाने आमार संन्यास सुनिश्चित । ए-पञ्च-जनारे कथा कहिवा विदित ॥५९॥
आमार जननी, गदाधर, ब्रह्मानन्द । श्री चन्द्रशेखराचार्य, अपर मुकुन्द ॥६०॥
एइ कथा नित्यानन्द स्वरूपेर स्थाने । कहिलेन प्रभु इहा केहो नाहि जाने ॥६१॥
पञ्च-जन-स्थाने मात्र ए सब कथन । कहिलेन नित्यानन्द प्रभुर गमन ॥६२॥
सेइ दिन प्रभु सर्व-वैष्णवेर सङ्गे । सर्व दिन गोङाइला सङ्कीर्तनरंगे ॥६३॥
परम-आनन्दे प्रभु करिया भोजन । सन्ध्याय करिला गङ्गा देखिते गमन ॥६४॥
गङ्गा नमस्करिया वसिला गङ्गातीरे । क्षणेक थाकिया पुन आइलेन घरे ॥६५॥
आसिया वसिला गृहे गौराङ्ग सुन्दर । चतुर्दिगे वसिलेन सर्व अनुचर ॥६६॥
से-दिने चलिव प्रभु केहो नाहि जाने । कौतुके आछेन सभे ठाकुरेर सने ॥६७॥

स्थिर हुआ ॥४९॥ इस प्रकार विश्वम्भर प्रभु ( गृह में ) निवास कर रहे हैं, वे निरन्तर संकीर्तन के आनन्द में लीन रहते हैं ॥५०॥ आप स्वेच्छामय महेश्वर हैं, कब क्या कर डालें, ईश्वर का अभिप्राय कोई समझ नहीं सकता है ॥५१॥ प्रभु सब वैष्णवों के साथ निरन्तर संकीर्तन के रङ्ग में परमानन्द में प्रफुल्लित रहते हैं ॥५२॥ भक्तगण भी परानन्द में विह्वल हुये प्रभु के गृह-त्यागने की बात सब भूल गये ॥५३॥ समस्त देवता लोग जिनके दर्शन करने का मनोरथ करते रहते हैं, उस प्रभु के साथ भक्तगण क्रीड़ा किया करते हैं ॥५४॥ जिस दिन प्रभु संन्यास ग्रहण के लिये घर से निकलेंगे वह आपने श्रीनित्यानन्द को एकान्त में बतला दिया ॥५५॥ "सुनो सुनो नित्यानन्द स्वरूप गुसांई ! यह भेद केवल पाँच जनों को ही बताना कि मैं इस संक्रान्ति को, उत्तरायण के पवित्र काल में,सन्यास लेने को निश्चय ही चला जाऊँगा ॥५६-५७॥ "इन्द्राणि के निकट काटोया नामक ग्राम में सुन्दर नाम वाले केशव भारती रहते हैं ॥५८॥ उनके निकट मेरा सन्यास ग्रहण सुनिश्चित है । यह बात इन पाँच जनों को सूचित कर देना-मेरी जननी, गदाधर,ब्रह्मानन्द, श्री चन्द्र-शेखर आचार्य और मुकुन्द" ॥५९-६०॥ इतनी बात प्रभु ने नित्यानन्द स्वरूप के निकट कहा—इस का पता किसी को न लगा ॥६१॥ नित्यानन्द ने भी प्रभु के जाने की सूचना केवल वे ही पाँच जनों को दी ॥६२॥ वह दिन (अर्थात् संक्रान्ति का दिन ) सारा प्रभु ने समस्त वैष्णवों के संग सङ्कीर्तन के आनन्द में व्यतीत किया ॥६३॥ फिर बड़े आनन्द से भोजन करके संध्या समय गङ्गाजी के दर्शन करने को गये ॥६४॥ प्रभु गङ्गा को नमस्कार करके गङ्गा के तीर पर बैठ गये । कुछ समय वहाँ बैठ कर फिर घर को आये ॥६५॥ घर में आकर गौरांग सुन्दर बैठ गये, चारों ओर सब अनुचर गण बैठे ॥६६॥ कोई नहीं जानते हैं

श्रीधरेर पदार्थ कि हइब अन्यथा। ए लाउ भोजन आजि करिब सर्वथा ।।८४।।
एतेक चिन्तिया भक्त वात्सल्य राखिते। जननीरे बलिलेन रन्धन करिते ।।८५।।
हेनइ समये आर कोन पुण्यवान्। दुग्ध भेट आनिञा दिलेन विद्यमान ।।८६।।
हासिया ठाकुर बोले "बड़ भाल भाल। दुग्ध-लाउ पाक गिया करह सकाल" ।।८७।।
सन्तोषे चलिला शची करिते रन्धन। हेन भक्तवत्सल श्रीशचीर नन्दन ।।८८।।
एइ मते महानन्दे वैकुण्ठ-ईश्वर। कौतुके आछेन रात्रि द्वितीय प्रहर ।।८९।।
सभारे विदाय दिला प्रभु विश्वम्भर। भोजने बसिला आसि त्रिदश-ईश्वर ।।९०।।
भोजन करिया प्रभु मुख शुद्धि करि। चलिला शयन गृहे गौराङ्ग श्रीहरि ।।९१।।
योगनिद्रा प्रति दृष्टि करिला ईश्वर। निकटे शुइया हरिदास गदाधर ।।९२।।
आइ जाने-आजि प्रभु करिब गमन। आइर-नाहिक निद्रा, कान्दे अनुक्षण ।।९३।।
दण्ड चार रात्रि आछे' ठाकुर जानिया। उठिलेन चलिबारे सामग्री लइया ।।९४।।
गदाधर हरिदास उठिलेन जानि। गदाधर बोलेन "चलिब सङ्गे आमि ।।९५।।
प्रभु बोले "आमार नाहिक कारो सङ्ग। एक अद्वितीय से आमार सर्व रङ्ग ।।९६।।
आइ जानि लेन मात्र प्रभुर गमन। दुआरे वसिया, रहिलेन ततक्षण ।।९७।।
जननीरे देखि प्रभु धरि तान कर। बसिया कहेन ताने प्रबोध-उत्तर ।।९८।।
"विस्तर करिला तुमि आमार पालन। पढ़िलाङ शुनिलाङ तोमार कारण ।।९९।।
आपनार तिलार्द्ध को ना लाइला सुख। आजन्म आमार तुमि बाढ़ाइला भोग ।।१००।।
दण्डे दण्डे जत तुमि करिला आमार। आमि कोटि कल्पेओ नारिब शुधिबार ।।१०१।।

---

इस लौकी का भोजन आज ही करूँगा" ।।८३-८४।। इस प्रकार मन में निश्चय करके भक्त वत्सलता की रक्षा के लिये प्रभु ने जननी से उसका साग बना देने के लिये कहा ।।८५।। इतने में किसी पुण्यवान् व्यक्ति ने दूध लाकर आगे भेंट कर दिया तो प्रभु हँस कर बोले—"वाह ! वाह बड़ा अच्छा हुआ ! माँ ! तुम जाकर शीघ्रता से दूध और लौकी का खीर बनालो" ।।८६-८७।। सुन कर प्रसन्न हो शचीमाता भोजन बनाने को चली गयीं ऐसे भक्त वत्सल हैं श्री शचीनन्दन ।।८८।। इस प्रकार महा-आनन्द में वैकुण्ठेश्वर गौर दो पहर रात्रि तक कौतुक करते रहे ।।८९।। फिर सब को विदा करके, देवों के देव प्रभु विश्वम्भर भोजन करने बैठे ।।९०।। भोजन कर प्रभु ने मुख-शुद्धि किया और फिर गौरांग हरि शयन-गृह को चले ।।९१।। ईश्वर ( गौर ) ने योग माया के प्रति दृष्टि किया । ( अर्थात् योग निद्रा को स्वीकार कर सो गये ) पास में सो रहे हैं हरिदास और गदाधर ।।९२।। शची माता जानती है कि आज प्रभु चले जायेंगे, अतः माता को नींद नहीं है, क्षण क्षण में रोती हैं ।।९३।। प्रभु ने जाना कि अब चार दंड रात्रि शेष है । वे उठे और साथ चलने का सामान लिया ।।९४।। यह जान कर गदाधर और हरिदास भी उठ खड़े हुये, गदाधर बोला "मैं तो सङ्ग चलूँगा" ।।९५।। प्रभु बोले "मेरा सङ्ग किसी से नहीं है । मेरा सङ्ग तो सदा से एक अद्वितीय है ।।९६।। माता शची ने भी प्रभु का चलना जान लिया । वह तत्क्षण द्वार पर आ बैठी रही ।।९७।। माता को देखकर प्रभु ने उनका हाथ पकड़ लिया और बैठ कर उनको प्रबोध-वचन कहने लगे ।।९८।। "माँ ! तुमने मेरा पर्याप्त पालन किया तुम्हारे कारण ही मैं पढ़ा लिखा ।।९९।। "तुमने अपने दुःख की ओर आधा तिल भर भी ध्यान नहीं दिया और मेरे जन्म से ही मुझे सुख देने में लगी रही ।।१००।। तुमने पल पल में मेरी जो जो सेवा की है उसका ऋण मैं कोटि २ कल्पों में भी नहीं चुका सकूँगा ।।१०१।। "उसके लिये मैं

तोमार सादृगुण्य से ताहार प्रतिकार। आमि पुन जन्म जन्म ऋणी से तोमार ।।१०२।।
शुन माता ! ईश्वरेर आधीन संसार। स्वतन्त्र हइते शक्ति नाहिक काहार ।।१०३।।
संयोग वियोग अत करे सेइ नाथ। तान इच्छा बुझिवारे शक्ति आछे कात ।।१०४।।
दश दिन अन्तरे कि एखने वा आमि। चलिलेओ कोन् चिन्ता ना करिह तुमि ।।१०५।।
व्यवहार परमार्थ जतेक तोमार। सकल आमाते लागे, सब मोर भार ।।१०६।।
बुके हाथ दिया प्रभु बोले बार बार। "तोमार सकल भार आमार आमार ।।१०७।।
जत किछु बोले प्रभु, शची सब शुने। उत्तर ना स्फुरे कान्दे अश्रु–नयने ।।१०८।।
पृथिवी-स्वरूपा हैला शची जगन्माता। के बुझये कृष्णेर अचिन्त्य सर्वकथा ।।१०९।।
जननीर पद-धूली लइ प्रभु शिरे। प्रदक्षिण करि ताने चलिला सत्वरे ।।११०।।
चलिलेन वैकुण्ठ नायक गृह हैते। संन्यास करिया सर्वजीव उद्धारिते ।।१११।।
शुन शुन आरेभाइ ! प्रभुर संन्यास। जे कथा शुनिले कर्मबन्ध जाय नाश ।।११२।।
प्रभु चलिलेन मात्र शची जगन्माता। जड़ हइलेन, किछु नाहि स्फुरे कथा ।।११३।।
भक्त गण ना जानेन ए सब वृत्तान्त। ऊषःकाले स्नान करि जनेक महान्त ।।११४।।
प्रभु नमस्करिते आइला प्रभुघरे। आसिया देखेन आइ वाहिर–दुयारे ।।११५।।
अग्र सेइ बलिलेन श्रीवास उदार। "आइ केने रहियाछे बाहिर–दुयार ।।११६।।
जड़ आय आइ, किछु ना स्फुरे उत्तर। नयनेर धारा मात्र वहे निरन्तर ।।११७।।
क्षणेके बलिया आइ "शुन बाप–सब। विष्णुर द्रव्येर भागी सकल वैष्णव ।।११८।।

---

जन्म जन्म में तुम्हारा ऋणी ही रहूँगा। उसका प्रतिकार तो एक मात्र तुम्हारी उदारता ही है ।।१०२।। सुनो माता ! यह संसार ईश्वर के आधीन है। स्वतन्त्र होने की शक्ति किसी में नहीं है ।।१०३।। "जो कुछ भी संयोग-वियोग होता है, वह सब उसी प्रभु की इच्छा से होता है। उस की इच्छा को समझने की शक्ति भला किसमें है ।।१०४।। अतएव दस दिन पीछे अथवा अभी मैं चला भी जाऊँ तो तुम कोई चिन्ता न करना ।।१०५।। "( और एक बात सुनो ) तुम्हारा इस लोक का व्यवहार और परमार्थ–जो कुछ भी हो, वह तुम्हारी ओर से मैं ही पूरा करूँगा–मेरे उपर उनका सारा भार रहा ।।१०६।। अपने वक्षस्थल पर हाथ रखकर प्रभु बारम्बार कहते हैं "तुम्हारा सारा भार मेरा मेरा है" ।।१०७।। इस प्रकार जो कुछ प्रभु कहते हैं, शचीमाता सब सुनती जाती हैं। उत्तर कुछ सूझता नहीं, केवल रोती झरझर आँसू बहाती हैं ।।१०८।। पृथ्वी के समान सर्वसहा हो गयीं जगन्माता शची। श्रीकृष्ण के सभी चरित अचिन्त्य हैं, कौन समझ सकता है ।।१०९।। प्रभु ने जन्मदायिनी माता की चरण धूलि शीश पर धारण की और उनकी प्रदक्षिणा करके शीघ्रता पूर्वक चल दिये ।।११०।। वैकुण्ठनाथ गृह से चल दिये, सर्वस्व त्याग कर सब जीवों का उद्धार करने चल दिये ।।१११।। अरे भाइयो ! सुनो, सुनो, प्रभु की संन्यास–कथा सुनो। जिस कथा को सुनने से कर्म–बन्धन नष्ट हो जाते हैं ।।११२।। प्रभु के चले जाते ही जगन्माता शची जड सदृश हो गयीं-वाणी बन्द हो गई ।।११३।। भक्त लोगों को यह सब वृत्तान्त मालूम नहीं। उषा काल में स्नान कर कुछ विशिष्ट भक्त लोग प्रभु–को नमस्कार करने प्रभु के गृह आये तो देखा कि शची माता बाहर द्वार पर बैठी हैं ।।११४-११५।। उदारमना श्री वास पहले ही बोल उठे-"माता क्यों बाहर के द्वार पर बैठी हैं" ।।११६।। माता तो जड़-प्राय हो रही हैं, मुख से बात नहीं निकलती नेत्रों से केवल धारा ही बही जा रही है ।।११७।। कुछ समय पश्चात् माता बोलीं–"सुनो बेटाओ विष्णु की वस्तु के भागीदार सकल वैष्णव हैं ।।११८।। अतः

एतेके जे किछु द्रव्य आछये ताहान । तो मस सभरे हय शास्त्रेर प्रमाण ॥११९॥
एतेके तोमरा–सभे आपने मिलिया । जेन इच्छा तेन कर' "मोजङ चलिया ॥१२०॥
शुनि मात्र भक्तगण प्रभुर गमन । भूमिते पड़िला सभे हइ अचेतन ॥१२१॥
कि हइल से वैष्णव गणेर विषाद । कान्दिते लागिला सभे करि आर्त्तनाद ॥१२२॥
अन्योन्ये सभेइ सभार धरि गला । विविध विलाप सभे करिते लागिला ॥१२३॥
"कि दारुण निशि पोहाइल गोपीनाथ" । वलिया कान्देन सभे शिरे दिया हाथ ॥१२४॥
"ना देखिया से श्रीमुख वञ्चिव के मने । किवा कार्य ए ना आर पापिष्ठ जीवने ॥१२५॥
आचम्बिते केने हेन हैल वज्रपात" । गड़ा गड़ि जाय केहो करे आत्मघात ॥१२६॥
सम्वरण नहे भक्तगणेर क्रन्दन । हइल क्रन्दनमय प्रभुर भवन ॥१२७॥
जे भक्त आइसे प्रभु देखिवार तरे । से–इ आसि डुवे महा विरह–सागरे ॥१२८॥
कान्दे सब भक्तगण भूमि ते पाडिया । "संन्यास करिते प्रभु गेलेन चलिया ॥१२९॥
कथोक्षणे भक्तगण हइ किछु शान्त । शची देवी वेढ़ि सब वसिला महान्त ॥१३०॥
"अनाथेर नाथ प्रभु गेलेन चलिया । आमा सवे विरह समुद्रे फेलाइया ॥१३१॥
कान्दे सब भक्तगण हइया अचेतन, हरि हरि वलि उच्च स्वरे ।
किवा मोर धन जन, किवा मोर जीवन, प्रभु छाड़ि गेला सवाकारे ॥१३२॥
माथाय दिया हात, बुके मारे निर्घात, हरि हरि प्रभु विश्वम्भर ।
संन्यास करिते गेला, आमा सभा ना वलिया, कान्दे भक्त धूलाय धूसर ॥१३३॥
प्रभुर अङ्गने पड़ि, कान्दे मुकुन्द मुरारि, श्रीधर गदाधर गङ्गादास ।

---

यहाँ जो कुछ भी द्रव्य उस का है, वह शास्त्र प्रमाण के अनुसार तुम लोगों का ही है ॥११९॥ अतएव तुम लोग सब मिलकर जैसी इच्छा वैसी करो । मैं तो चली जाती हूँ ॥१२०॥ भक्त लोग प्रभु का चले जाना सुनते ही अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े ॥१२१॥ ऐसा घोर विषाद वैष्णव जनों में उत्पन्न हुआ कि सब आर्त्तनाद करते हुए क्रन्दन करने लगे ॥१२२॥ एक दूसरे का गला पकड़ पकड़ सब लोग नाना प्रकार के विलाप करने लगे ॥१२३॥ "हे गोपीनाथ प्रभो ! आज की रात का शेष कैसा दारुण ( दुःखदायी ) हुआ" कह कर सब रोते और अपने शरीर पर आघात करते हैं ॥१२४॥ "वह श्रीमुख न देख कैसे जीयेंगे ? अब इस पापी जीवन से क्या प्रयोजन ? अचानक क्यों यह वज्रपात हुआ ॥१२५॥ ऐसा विलाप करते हुये भूमि पर लोट पोट हो जाते हैं और आर्त्तनाद करते हैं ॥१२६॥ भक्त लोगों का क्रन्दन रुकता नहीं है । प्रभु का भवन उनके क्रन्दन-पुकार से व्याप्त हो गया ॥१२७॥ जो भक्त प्रभु के दर्शन के लिये आता है वही महा विरह सागर में डूब जाता है ॥१२८॥ सब भक्त गण भूमि पर पड़े पड़े रोते हैं और यही कहते हैं कि "हाय ! प्रभु संन्यास लेने के लिये चले गये ॥१२९॥ कुछ समय में भक्तगण कुछ शान्त हुए और वे सब महानुभाव शची देवी को घेर कर बैठ गये ॥१३०॥ अनाथ के नाथ श्री प्रभु हम सबको विरह रूपी सागर में फेंक कर चले गये हैं । भक्त गण ऊँचे स्वर से हरि, हरि बोलते हुये क्रन्दन करते हुये अचेतन हो गये ॥१३१॥ हम सबके धन, जन व जीवन में प्रयोजन क्या है । प्रभु सबको छोड़ कर चले गये हैं । इस प्रकार कहने लगे ॥१३२॥ हाय २ प्रभु विश्वम्भर हम सबको न कह कर संन्यास लेने चले गये ऐसा कहते हुये भक्त लोग माथा पर हाथ देकर छाती पर कराघात कर धूलि में लोट पोट होगये ॥१३३॥ मुकुन्द, मुरारी, श्रीधर, गदाधर, गङ्गादास, श्रीवास के जितने गण हैं और श्री आचार्य, श्री हरीदासजी प्रभु के आँगन में पड़े २

श्रीवासेर गण जत, तारा कान्दे अविरत, श्रीआचार्य कान्दे हरिदास ॥१३४॥
शुनिया क्रन्दन रव, नदियार लोक सब, देखिते आइसे सब धाञा।
ना देखि प्रभुर मुख, सबे पाय महाशोक, कान्दे सबे माथे हात दिया ॥१३५॥
नागरिया जत भक्त, तारा कान्दे अविरत, बाल वृद्ध नाहिक विचार।
कान्दे सब स्त्री पुरुषे, पाषण्डीर गण हासे, निमाइरे ना देखिमु आर' ॥१३६॥
कथोक्षणे सर्व नवद्वीपे हैल ध्वनि। 'संन्यास करिते प्रभु गेला द्विजमणि' ॥१३७॥
शुनि सर्व लोकेर लागिल चमत्कार। धाइया आइला सर्वलोक नदीयार ॥१३८॥
आसि सर्व लोक देखे प्रभुर वाड़ीते। शून्य वाड़ी सभे लागिया छेन कान्दिते ॥१३९॥
तखने से 'हाय हाय' करे सर्वलोक। परम निन्दक पाषण्डि ओ पाय शोक ॥१४०॥
'पापिष्ठ आमरा ना चिनिल हेन जन।' अनुताप भावि सभे करेन क्रन्दन ॥१४१॥
भूमिते पड़िया कान्दे नगरिया गण। 'आर ना देखिब बाप। से चन्द्रवदन' ॥१४२॥
केहो बोले 'चल घर-द्वारे अग्नि दिया। काणे परि कुण्डल चलिब जोगी हैया ॥१४३।
हेन प्रभु नवद्वीप छाड़िल जखन। आर केने आछे आमा' सभार जीवन' ॥१४४॥
कि स्त्री पुरुष जे शुनिल नदीयार। सभेइ विषाद वइ ना भावये आर ॥१४५॥
प्रभु से जानये जारे राखि जेमते। सर्व जीव उद्धार पाइव हेनमते ॥१४६॥
निन्दा द्वेष जाहार मनेते जे आछिल। प्रभुर लिषये सर्व जीवेर खण्डिल ॥१४७॥
सर्व जीवनाथ गौरचन्द्र जय जय। भाल रङ्ग सभा' उद्धारिला दयामय ॥१४८॥
शुन शुन आरे भाइ! प्रभुर संन्यास। जे कथा शुनिले कर्म बन्धन जाय नाश ॥१४९॥

---

रोने लगे ॥१३४॥ क्रन्दन का शब्द सुनकर नदिया के सब लोग दौड़कर देखने को आये! वे सब वहाँ गौरचन्द्र के मुख कमल को न देखकर मस्तक पर हाथ देकर बड़े शोक के साथ रोने लगे ॥ १३५॥ नगर वासी जितने भक्त गण वे सब निरन्तर रोने लगे बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सब रुदन करने लगे केवल पाखण्डी लोग हँसे ॥१३६॥ अल्प समय में समस्त नवद्वीप में यह हल्ला हो गया कि 'द्विजमणि प्रभु संन्यास लेने के लिये चले गये' ॥१३७॥ सुनकर सब लोग चौंक पड़े और नदिया के सब लोग दौड़े आये ॥१३८॥ सब लोग प्रभु के घर पर आकर देखते हैं कि गृह शून्य है और सब लोग रो रहे हैं ॥१३९॥ तब तो सब लोग 'हाय हाय' करने लगे। परम निन्दक दुष्ट जनों को भी बड़ा शोक हुआ ॥१४०॥ 'हम पापियों ने ऐसे पुरुष को नहीं पहचाना' कहते हुए अनुतप्त हृदय से सब रोने लगे ॥१४१। नगर वासी भूमि पर पड़े रोते हैं—'हाय बेटा! अब वह चन्द्रमुख नहीं देख पायँगे' ॥१४२॥ कोई कहता है 'चलो घर-द्वार में आग देकर, कान में कुण्डल पहन ( कन फटा ) योगी बन कर चलेंगे ॥१४३॥ जब ऐसे प्रभु नवद्वीप छोड़ कर चले गये तो फिर हम सब लोगों का जीवन ही अब क्यों रहे ॥१४४॥ नदिया के स्त्री या पुरुष जिसने भी सुना, वही दुःखी और अन्य सब कुछ भूल गया ॥१४५॥ प्रभु यह जानते हैं कि किसका उद्धार कैसे होगा। (वस्तुतः) सब जीवों का उद्धार इसी प्रकार से ( संन्यास-ग्रहण-जनित करुण रस से ) होगा ॥१४६॥ ( इसी संन्यास-वार्ता ने ) प्रभु के सम्बन्ध में जिसके मन में जो निन्दा, द्वेष, प्रभृति पाप था, उसे शोक-सन्ताप की ज्वाला से भस्म करके, सब लोगों का मानस निर्मल कर दिया ॥१४७॥ ( अतः ) सब जीवों के नाथ गौर चन्द्र की जय हो, जय हो। अच्छी लीला ( संन्यास ) कौतुक के द्वारा दयामय! तुमने सबका उद्धार किया। १४८॥ अरे भाइयो! सुनो रे प्रभु की संन्यास-कथा को ॥१४९॥ इस कथा को सुनने से कर्म के बन्धन नष्ट होजाते

गङ्गार हइया पार श्रीगौर सुन्दर। सेइ दिने आइलेन कन्टक–नगर ॥१५०॥
जारे जारे आज्ञा प्रभु करिया आछिला। ताँहाराओ अल्पे अल्पे आसिया मिलिला ॥१५१॥
अवधूत चन्द्र, गदाधर, श्रीमुकुन्द। श्रीचन्द्रशेखराचार्य, आर ब्रह्मानन्द ॥१५२॥
आइलेन प्रभु जथा केशव भारती। मत्त-सिंह-प्राय प्रिय वर्गेर संहति ॥१५३॥
अद्‌भुत देहेर ज्योति देखिया ताहान। उठिलेन केशव भारती पुण्यवान् ॥१५४॥
दण्डवत्-प्रणाम करिया प्रभु ताने। कर जोड़ करि स्तुति करेन आपने ॥१५५॥
'अनुग्रह तुमि मोरे कर' महाशय। पतितपावन तुमि महा कृपामय ॥१५६॥
तुमि से दिवारे पार' कृष्ण प्राणनाथ। निरवधि कृष्णचन्द्र वसये तोमा'त ॥१५७॥
कृष्ण दास्य बइ जेन मोर नहे आन। हेन उपदेश तुमि मोरे देह' दान' ॥१५८॥
प्रेम जले श्रङ्ग भासे प्रभर कहिते। हुङ्कार करिया शेषे लागिला नाचिते ॥१५९॥
गाइते लागिला मुकुन्दादि भक्तगण। निजावेशे मत्त नाचे श्रीशचीनन्दन ॥१६०॥
अर्बुद अर्बुद लोक शुनि सेइ क्षणे। आसिया मिलिला नाहि जानि कोथा-हते ॥१६१॥
देखिया प्रभुर रूप मदन सुन्दर। एक दृष्ट्ये पान सभे करेन निर्भर ॥१६२॥
अकथ्य अद्‌भुत धारा प्रभुर नयने। ताहो कि कहिल हय अनन्त-वदने ॥१६३॥
पाकदिया नृत्य करिते जे छूटे जल। ताहा तेइ लोक ,स्नान करिल सकल ॥१६४॥
सर्व लोक तितिल प्रभुर प्रेम-जले। स्त्री-पुरुषे बाल-वृद्ध 'हरि हरि' बोले ॥१६५॥
क्षणे कम्प क्षणे स्वेद क्षणे मूर्च्छा हय। आछाड़ देखिते सर्वलोके पाय भय ॥१६६॥

---

हैं ॥१४६। गङ्गा पार करके श्री गौर सुन्दर उसी दिन कन्टक नगर में आ पहुँचे ॥१५०॥ जिन जिनके लिये प्रभु ने आज्ञा किया था, वे भी एक-एक करके वहाँ प्रभु से आ मिले ॥१५१॥ अवधूत चन्द्र नित्यानन्द गदाधर, श्रीमुकुन्द, श्रीचन्द्रशेखराचार्य और ब्रह्मानन्द प्रभु से आ मिले ॥१५२॥ प्रभु प्रिय परिकरों के सहित मतवाले सिंह की भाँति केशव भारती के समीप आ पहुँचे ॥१५३॥ उनकी देह की अद्‌भुत कान्ति को देखकर पुण्यवान् केशव भारती उठ खड़े हुए ॥१५४॥ प्रभु ने उनको दण्डवत् प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़कर आप ही उनकी स्तुति करने लगे ॥१५५॥ 'महाशय! आप मुझ पर कृपा करें। आप पतित पावन हैं, कृपामय हैं ॥१५६॥ आप प्राणनाथ श्रीकृष्ण को दे सकते हैं ( क्योंकि ) आपके हृदय में श्रीकृष्ण अविच्छिन्न निवास करते हैं ॥१५७॥ 'कृष्ण-दास बिना मेरी अन्य गति-मति न हो—ऐसा उपदेश आप मुझे दान करें ॥१५८॥ कहते २ प्रभु का श्रीअङ्ग प्रेम-जल ( अश्रु-स्वेद ) से पूरित हो गया और अन्त में वे हुँकार करते हुये नृत्य करने लगे ॥१५९॥ मुकुन्दादि भक्तगण गाने लगे और श्रीशचीनन्दन अपने आवेश में नाचने लगे ॥१६०॥ सुनकर उसी क्षण अरब-अरब लोग न जाने कहाँ से आ सम्मिलित हुये ॥१६१॥ प्रभु का कामदेव के समान सुन्दर रूप को देख सब लोग इकटक दृष्टि से उसका अतिशय पान करने लगे ॥१६२॥ प्रभु के नेत्रों से अद्‌भुत अवर्णनीय धाराएँ बह रही हैं, उसका वर्णन करने के लिये तो अनन्त वदन अथवा शेषजी की आवश्यकता होगी ॥१६३॥ चक्कर देकर नृत्य करते समय जो जल धाराएँ नेत्रों की चारों ओर छूटती हैं उनसे ही लोगों का स्नान हो जाता है ॥१६४॥ प्रभु के नेत्रों के प्रेम जल से सब लोग तरर-बतर होगये। स्त्री-पुरुष, बाल, वृद्ध सब "हरि हरि' ध्वनि करने लगे ॥१६५॥ प्रभु के शरीर में क्षण में कम्पन होता है, क्षण में स्वेद बहने लगता है और क्षण में मूर्च्छा आ जाती है और जब पछाड़ खाकर गिरते हैं तो देख कर सब लोग भयभीत हो जाते हैं। ॥१६६॥ अनन्त ब्रह्माडों के नाथ अपने ही दास्यभाव

अनन्त-ब्रह्माण्ड-नाथ निज-दास्य भावे । दन्ते तृण करि सभा'स्थाने भक्ति मागे' ॥१६७॥
से कारुण्य देखिया कान्दये सर्वलोक । संन्यास शुनिजा सभे भावे' महाशोक ॥१६८॥
से कारुण्य देखिया कान्दये सर्वलोक । सन्यास शुनिजा सभे भावे' महाशोक ॥१६८॥
केमने धरिव प्राण इहार जननी । आजि तान पोहाइल कि काल-रजनी ॥१६९॥
कोन् पुण्यवती हेन पाइलेक निधि । कोन् वा दारुण दोषे हरिलेक विधि ॥१७०॥
आमरा-सभेर प्राण विदरे देखिते । भार्या वा जननी प्राण राखिव केमते ॥१७१॥
एइ मत नारीगण दुःख भावि कान्दे । सर्वलोक पड़िलेन चैतन्येर फान्दे ॥१७२॥
क्षणेक सम्बरि नृत्य वैसे विश्वम्भर । वसिलेन चतुर्दिगे सर्व अनुचर ॥१७३॥
देखिया प्रभुर भक्ति केशव भारती । आनन्द सागरे पूर्ण हइ करे स्तुति ॥१७४॥
"जे भक्ति तोमार आमि देखिल नयने । ए शक्ति अन्येर नहे ईश्वरेर विने ॥१७५॥
तुमिसे जगत गुरु जानिल निश्चय । तोमार गुरुर जोग्य केहो कभु नय ॥१७६॥
तभु तुमि लोक शिक्षा निमित्त कारणे । करिवा आमारे गुरु, हेन लय मने ॥१७७॥
प्रभु बोले "माया मोरे ना कर' प्रकाश । हेन दीक्षा देह'जेन हइ कृष्ण दास ॥१७८॥
एइ मत कृष्ण कथा–आनन्द–प्रसङ्गे । वञ्चिलेन से निशा ठाकुर सभा सङ्गे ॥१७९॥
पोहाइले निशि सर्व भुवनेर पति । आज्ञा करिलेन चन्द्र शेखरेर प्रति ॥१८०॥
"विधि जोग्य जत कर्म सब कर' तुमि । तोमारेइ प्रतिनिधि करिलाङ आमि ॥१८१॥
प्रभुर आज्ञाय चन्द्रशेखर–आचार्य । करिते लागिला सर्व विधि जोग्य कार्य ॥१८२॥
नाना ग्राम हइते से नाना उपायन । आसिते लागिल अति अकथ्य–कथन ॥१८३॥

के आवेश में दाँतों में तिनका लेकर सब से हरि-भक्ति की याचना करते हैं ॥१६७॥ प्रभु के उस करुण-कातर भाव को देख कर सब लोग रोते हैं और संन्यास की चर्चा सुन कर तो सब महाशोक में डूब जाते हैं ॥१६८॥ "इनकी माता कैसे प्राण रखेगी ! आज तो उसके लिये काल रात्रि ही भोर हुआ है ॥१६९॥ किस पुण्यवती ने ऐसी निधि पायी और फिर किस भयंकर दोष के कारण उसकी निधि विधाता ने हरण कर ली ॥१७०॥ हम सब लोगों के प्राण ही जब यह देख फट रहे हैं तो फिर उनकी माता व पत्नी कैसे प्राण रख सकेंगे" ॥१७१॥ इस प्रकार स्त्रियाँ शोक करती हुई रोती है। सब लोग श्रीचैतन्य के प्रेम में फँस गये ॥१७२॥ कुछ समय में विश्वम्भर प्रभु अपना नृत्य समाप्त कर बैठ गये और चारों ओर सब अनुचर बैठ गये ॥१७३॥ प्रभु की भक्ति देखकर केशव भारती आनन्द सागर से पूर्ण होकर स्तुति करने लगे ॥१७४॥ "जो भक्ति तुममें मैंने आँखों से देखी, वह भक्ति ईश्वर के अतिरिक्त और किसी में नहीं हो सकती ॥१७५॥ मैं निश्चय जान गया कि तुम वही जगद्गुरु हो । तुम्हारा गुरु बनने योग्य कोई कभी नहीं हो सकता है ॥१७६॥ फिर भी लगता है मुझे कि तुम लोक शिक्षा के निमित्त ही मुझे गुरु करना चाहते हो ॥१७७॥ प्रभु बोले "मेरे प्रति माया का प्रकाश न करें अर्थात् मुझे कृपा से वंचित न करें। मुझे तो ऐसी दीक्षा देवें जिससे कृष्ण का प्रकाश हो अर्थात् वे मिलें ॥१७८॥ इस प्रकार कृष्ण कथा करते हुए आनन्द पूर्वक वह रात्रि प्रभु ने सब के साथ बितायी ॥१७९॥ रात्रि बीतने पर सब लोकों के पति ने चन्द्रशेखर को आज्ञा दी कि 'संन्यासी–विधि के उपयुक्त जो सब कर्म हैं उसे आप करें। आप को ही मैंने अपना प्रतिनिधि नियत किया" ॥१८०-८१॥ प्रभु की आज्ञा से चन्द्रशेखर आचार्य संन्यास विधि के समुचित कार्य सब करने लगे ॥१८२॥ तब एक अति अद्भुत बात हुई कि समीप के गाँव 'ग्रामग्राम' से नाना सामग्री अपने आप

दधि, दुग्ध, घृत, मुद्ग, ताम्बूल, चन्दन । पुष्प, यज्ञसूत्र, वस्त्र, आने सर्व जन ॥१८४॥
नाना विध भक्ष्य द्रव्य लागिल आसिते । हेन नाहि जानि के आनये कोन् भिते ॥१८५॥
परम-आनन्दे सभे करे हरि ध्वनि । त्रिविध लोकेर मुखे अन्य नाहि शुनि ॥१८६॥
तबे महाप्रभु सर्व जगतेर प्राण । वसिला करिते श्रीशिखार अन्तर्द्धान ॥१८७॥
नापित वसिला आसि सम्मुखे जखने । क्रन्दनेर कलरव उठिल तखने ॥१८८॥
क्षुर दिते से सुन्दर चाँचर चिकुरे । हाथ नाहि देय नापित क्रन्दन मात्र करे ॥१८९॥
नित्यानन्द-आदि करि जत भक्तगण । भूमिते पड़िया सभे करेन क्रन्दन ॥१९०॥
भक्तेर कि दाय, जत व्यवहारि-लोक । ताहाराओ कान्दिते लागिला करि शोक ॥१९१॥
केहो बोले "कोन् विधि सृजिल संन्यास" । एत बलि नारी गण छाड़े महाश्वास ॥१९२॥
अगोचरे थाकि सब कान्दे देवगण । अनन्त ब्रह्माण्डमय हइल क्रन्दन ॥१९३॥
हेन से कारुण्य रस गौरचन्द्र करे । शुष्क-काष्ठ-पाषाणादि द्रवये अन्तरे ॥१९४॥
ए सकल लीला जीव-उद्धार-कारण । एइ तार साक्षी देख कान्दे सर्वजन ॥१९५॥
प्रेम रसे परम चञ्चल गौरचन्द्र । स्थिर नहे निरवधि भाव अश्रु कम्प ॥१९६॥
'बोल बोल' करि प्रभु उठे विश्वम्भर । गायेन मुकुन्द, प्रभु नाचे मनोहर ॥१९७॥
वसिलेओ प्रभु स्थिर हइते ना पारे । प्रेमरसे महाकम्प' वहे अश्रु धारे ॥१९८॥
'बोल बोल' करि प्रभु करये हुङ्कार । क्षौर कर्म नापित ना पारे करिबार । १९९॥
कथं-कथमपि सर्वदिन-अवशेषे । क्षौर कर्म निर्वाह हइल प्रेमरसे ॥२००॥

---

आने लगी ॥१८३॥ दही, दूध, घी, मूँग, पान, चन्दन, पुष्प, यज्ञोपवीत, वस्त्र आदि सब लोग लाते हैं । और नाना प्रकार के खाद्य पदार्थ भी आने लगे । कोई नहीं जानता कि कौन किधर से ला रहा है ॥१८४-८५॥ बड़े आनन्द के साथ सब हरिध्वनि कर रहे हैं, बालक, युवा व वृद्ध-तीनों प्रकार के लोगों के मुख से हरि नाम को छोड़ और कुछ नहीं सुनाजाता है ॥१८६॥ तब सर्व जगत के प्राण महाप्रभु श्रीशिखा का मुण्डन कराने के लिये बैठे ॥१८७॥ जब नाई आकर सामने बैठा तो क्रन्दन की करुण ध्वनि छा गई ॥१८८। नाई उन सुन्दर घुँघराले केशों पर उस्तरा चलाने के लिये हाथ नहीं उठाता है, बस बैठा रोता ही रोता है ॥१८९॥ नित्यानन्द आदि जितने भक्तगण थे वे भी सब भूमि पर लोटते हुये क्रन्दन करते हैं ॥१९०॥ भक्तों की क्या चले, संसारी लोग भी सब शोक करते हुये रोने लगे ॥१९१॥ कोई स्त्री कहती है "किस विधाता ने इस संन्यास का सर्जन किया" । ऐसा कह स्त्रियाँ लम्बी २ साँस लेती हैं ॥१९२॥ देवता लोग अदृश्य रह कर रुदन करते हैं, अनन्त ब्रह्माण्ड क्रन्दनमय होगया ॥१९३॥ गौर चन्द्र ने ऐसा करुणा-रस का विस्तार किया कि शुष्क काष्ठ पाषाण भी अन्तर में द्रवित हो गये ॥१९४॥ ये सकल लीलाएँ जगत् के उद्धार के लिये हैं, इसकी साक्षी देख लो यह कि सब लोग रो रहे हैं ॥१९५॥ गौरचन्द्र भी श्रीकृष्ण के प्रेम रस में परम चंचल हुये स्थिर नहीं रहते हैं, उनमें अश्रु, कम्प आदि भाव निरन्तर प्रकट हो रहे हैं ॥१९६॥ और वे प्रभु विश्वम्भर 'बोलो बोलो' कहते हुये बारम्बार उठ पड़ते हैं । मुकुन्द गाने लगता है और प्रभु मनोहर नृत्य करने लगते हैं । १९७॥ बैठने पर भी प्रभु स्थिर नहीं हो पाते हैं, प्रेम रस से भरे अत्यन्त कम्पायमान होते हैं और उनके नेत्रों से अश्रुओं की धाराएँ बह चलती हैं ॥१९८॥ प्रभु "बोलो बोलो" कहते हुये हुँकार करते हैं और बेचारा नापित क्षौर कर्म कर नहीं सकता है ॥१९९॥ समस्त दिन उस कीर्तन के प्रेम रस के प्रवाह से व्यतीत होने पर अन्त में जैसे,-तैसे क्षौर-कर्म पूर्ण हुआ ॥२००॥ तब सब लोकों के नाथ ने गंगा स्नान

तबे सर्व लोक नाथ करि गङ्गा स्नान । आसिया वसिला जथा संन्यासेर स्थान ।।२०१।।
सर्व दिक्षा गुरु गौरचन्द्र वेदे बोले । केशव भारती-स्थाने ताहा कहे छले ।।२०२।।
प्रभु बोले "स्वप्ने मोरे कोन महाजन । कर्णे संन्यासेर मंत्र करिल कथन ।।२०३।।
बुझ देखि ताहा तुमि किवा हय नहे । एत बलि प्रभु ताँरकर्णे मंत्र कहे ।।२०४।।
छले प्रभु कृपा करि ताँरे शिष्य कैल । भारतीर चित्ते महाविस्मय जन्मिल ।।२०५।।
भारती बोलेन "एइ महा मन्त्रवर । कृष्णेर प्रसादे कि तोमार अगोचर ।।२०६।।
प्रभुर आसाज्ञाय तबे केशव भारती । सेइ मंत्र प्रभुरे कहिला महामति ।।२०७।।
चतुर्दिगे हरिनाम सुमङ्गल शुनि । संन्यास करिला वैकुण्ठेर चूड़ामणि ।।२०८।।
परिलेन अरुण-वसन मनोहर । ताहाते हइला कोटि-कन्दर्प-सुन्दर ।।२०९।।
सर्व अङ्ग श्रीमस्तक चन्दने लेपित । मालाय पूर्णित श्रीविग्रह सुशोभित ।।२१०।।
दण्ड कमण्डलु दुइ श्री हस्ते उज्वल । निरवधि निज प्रेमे आनन्दे बिह्वल ।।२११।।
कोटि कोटि चन्द्र जिनि शोभे श्रीवदन । प्रेम धारे पूर्ण दुइ कमल—लोचन ।।२१२।।
कि संन्यासि-रूपेर हइल परकाश । पूर्ण करि ताहा कहिबेन वेदव्यास ।।२१३।।
सहस्र नामेते जे कहिला वेदव्यास । कोनो अवतारे प्रभु करेन संन्यास । २१४।।
एइ ताहा सत्य करिलेन द्विजराज । ए मर्म जानये सर्व—वैष्णव—समाज ।।२१५।।
तथाहि ( महाभारते दान धर्मे ) सहस्रनाम स्तोत्रे ।
"संन्यासकृत् शमः शान्तो निष्ठा शान्तिः परायणम्" ।।२१६।।

किया और फिर सन्यास ग्रहण के लिये आ बैठे ।।२०१।। वेद कहता है कि सब शिक्षा गुरु गौरचन्द्र हैं। वे ही केशव भारती से भेद छिपा कर बोले'किसी महापुरुष ने स्वप्न में मेरे कान में संन्यास-मंत्र कहा था। आप देखें तो सही कि वह वैसा ही है या नहीं" ।।२०२-२०३।। ऐसा कह कर प्रभु ने उनके कर्ण में मंत्र सुनाया। इस व्याज ( बहाना ) से प्रभु ने कृपा करके उनको शिष्य बनाया ।।२०४।। केशव भारती के चित्त में बड़ा विस्मय हुआ। वे बोले—"यह महामन्त्रवर श्रीकृष्ण की कृपासे तुम्हारे अगोचर नहीं है" ।।२०५-६।। तब प्रभु की आज्ञा से महामतिवान केशव भारती ने वही मंत्र प्रभु को श्रवण कराया ।।२०७।। चारों ओर परम मंगलमय हरि नाम ध्वनि होने लगी। इस प्रकार वैकुण्ठनाथ ने संन्यास ग्रहण किया ।।२०८।। प्रभु ने मनोहर अरुण वस्त्र धारण किया जिससे वे कोटि-कन्दर्प-सुन्दर हो गये ।।२०९।। उनके समस्त अंग और श्रीमस्तक चन्दन से चर्चित हैं और श्रीविग्रह मालाओं से सुशोभित है ।।२१०।। दोनों उज्ज्वल श्रीहस्त में दण्ड-कमण्डलु हैं। अपने प्रेम में आप निरन्तर विह्वल हो रहे हैं ।।२११।। श्रीमुख कोटि २ चन्द्रमाओं की शोभा को पराजय कर रहा है तथा दोनों कमल लोचन प्रेमाश्रु धाराओं से पूर्ण है ।।२१२।। कैसा यह उनका संन्यासी रूप का प्रकाश हुआ इसे पूर्ण रूप से वेदव्यास ही कहेंगे ।।२१३।। वेदव्यास ने जो ( विष्णु ) सहस्रनाम में कहा है कि "कोई अवतार में प्रभु संन्यास ग्रहण करते हैं"—उसे ही यहाँ द्विजराज ( गौर सुन्दर ) ने सत्य किया। इस रहस्य को सर्व-वैष्णव-समाज जानती है ।।२१४–१५। तथाहि ( महाभारत दानधर्म ) सहस्रनाम स्तोत्र:—"संन्यास कृत्, शमः, शान्तो, निष्ठा, शान्तिः, परायणम्" अर्थः—( वे भगवान् श्रीविष्णु ) संन्यासकारी हैं, 'शम' अर्थात् श्रीहरि के रहस्य के आलोचनाकारी हैं,' शान्त' अर्थात् श्रीकृष्ण से भिन्न अन्य विषय प्रति उदासीन हैं, 'निष्ठा' अर्थात् हरि कीर्तन प्रधान भक्ति में ही सम्यक् अवस्थित हैं, 'शान्ति' अर्थात् अपने प्रभाव से भक्ति विरोधी दल का शमन करने वाले है, तथा परायण'

तवे नाम थुइवारे केशव भारती। मने मने लागिला चिन्तते महामति ॥२१७॥
"चतुर्दश भुवने ते एमत वैष्णव। आमार नयने नाहि हय अनुभव ॥२१८॥
एतेके कोथाओ जेना थाके हेन नाम। थुइले से इहान, आमार पूर्ण काम ॥२१९॥
मूले भारतीर शिष्य 'भारती' से हये। इहाने त ताहा थुइवारे जोग्य नहे' ॥२२०॥
भाग्यवान् न्यासिवर एतेक चिन्तिते। शुद्धा सरस्वती तान आइला जिह्वाते ॥२२१॥
पाइया उचित नाम केशव भारती। प्रभु-वक्षे हस्त दिया बोले शुद्ध मति ॥२२२॥
"जत जगतेरे तुमि कृष्ण' बोलाइया। कराइला चैतन्य-कीर्त्तन प्रकाशिया ॥२२३॥
एतेके तोमार नाम 'श्रीकृष्ण चैतन्य। सर्व लोक तोमा' हैते जाते हैल धन्य'' ॥२२४॥
एइ जदि न्यासिवर वलिला वचन। जय ध्वनि पुष्प वृष्टि हइल तखन ॥२२५॥
चतुर्दिगे महा हरि ध्वनि-कोलाहल। करिया आनन्दे भासे वैष्णव-सकल ॥२२६॥
भारतीरे सर्व भक्त करिला प्रणाम। प्रभुओ हइला तुष्ट लभिया स्व-नाम ॥२२७॥
'श्रीकृष्ण चैतन्य नाम हइल प्रकाश। दण्डवत् हइया पड़िला सर्व दास ॥२२८॥
हेन मते संन्यास करिया प्रभु धन्य। प्रकाशिला आत्म नाम श्रीकृष्ण चैतन्य ॥२२९॥
ए सकल कथार अवधि नाहि हय। 'आविर्भाव' 'तिरोभाव' मात्र वेदेकय ॥२३०॥
सर्व काल चैतन्य सकल लीला करे। कृपाय जखन जे देखायेन जाहारे ॥२३१॥
आरकत लीला रस हैल सेइ स्थाने। नित्यानन्द स्वरूपे से सर्व तत्त्व जाने ॥२३२॥
ताँहार आज्ञाय आमि कृपा-अनुरूपे। किछु मात्र सूत्र आमि लिखिल पुस्तके ॥२३३॥

अर्थात् समस्त भावों के आश्रय हैं ॥२१६॥ तदनन्तर, महामतिमान केशव भारती मन ही मन सोचने लगे कि इनका नाम करण क्या किया जाय ॥२१७॥ चौदहों भुवन में इनके जैसा कोई वैष्णव हो—यह तो मेरे नेत्रों को अनुभव नहीं होता है। अर्थात् ऐसा मुझे दिखायी नहीं देता ) ॥२१८॥ इसलिये इनका नाम भी कोइ ऐसा रक्खा जाय जैसा नाम कहीं न हो, तभी मेरी इच्छा पूर्ण होगी। वैसे मूल परम्परा की दृष्टि से तो 'भारती' का शिष्य 'भारती' ही होता है परन्तु वह नाम इनके योग्य नहीं हैं' ॥२१९–२२०॥ भाग्यवान संन्यासी श्रेष्ठ भारती के इस प्रकार चिन्ता करने पर विशुद्ध ज्ञान रूपिणी सरस्वती देवी उनकी जिह्वा पर उदित हुईं और केशव भारती को उपयुक्त नाम की प्राप्ति होगयी। तब निर्मल मति भारती प्रभु के वक्षस्थल पर हस्त रख कर बोले। २२१–२२२। "जिस हेतु तुमने कृष्ण कीर्तन का प्रकाश करके जगत् से 'कृष्ण' नाम बुलवाया तथा ( सोये हुए ) जीवों को चेतन किया, इसलिये तुम्हारा नाम 'श्रीकृष्ण चैतन्य' हैं। सब लोक तुमसे धन्य हुआ' । २२३–२२४॥ संन्यासी श्रेष्ठ के ऐसे वचन कहने पर जय जयकार होने लगी और पुष्प बरसने लगे। चारों ओर हरि ध्वनि का महाकोलाहल हो उठा और वैष्णव लोग सब आनन्द में बह चले ॥२२५–२६॥ केशव भारती को सब भक्तों ने प्रणाम किया। प्रभु भी अपना नाम प्राप्त करके सन्तुष्ट हुये ॥२२७। प्रभु का श्रीकृष्ण चैतन्य नाम प्रकाशित हुआ। सब दास भक्तों ने दण्डवत् पड़कर प्रभु को प्रणाम किया ॥२२८॥ इस प्रकार प्रभु ने संन्यास ग्रहण करके अपने धन्य नाम 'श्रीकृष्ण चैतन्य' को प्रकाशित किया ॥२२९॥ इन सब लीला चरितों की समाप्ति नहीं है। वेद इनका केवल 'आविर्भाव' और 'तिरोभाव' मात्र कहते हैं ॥२३०॥ श्रीकृष्ण चैतन्य सब काल में सब ही लीलाएँ करते रहते हैं। उनको उतनी ही कोई देख पाता है जिन पर वे कृपा करके जितनी दिखा दें ॥२३१॥ उस स्थान में और भी कितनी २ लीलाओं का आनन्द हुआ, उन सबके रहस्य को नित्यानन्द स्वरूप ही जानते हैं ॥२३२॥ उनकी

सर्व वैष्णवेर पाये मोर नमस्कार। इथे अपराध किछु नहुक आमार ॥२३४॥
वेदे इहा कोटि कोटि मुनि वेदव्यासे। वर्णिवेन नाना मते अशेष विशेषे। २३५॥
एइ मते मध्य खण्डे प्रभुर संन्यास। जे कथा शुनिले हय चैतन्येर दास ॥२३६॥
मध्य खण्डे ईश्वरेर संन्यास-ग्रहण। इहार श्रवणे मिले कृष्ण प्रेम धन ॥२३७॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द दुइ प्रभु। एइ वाँछा इहा जेन ना पासरि कभु ॥२३८॥
हेन दिन इइव कि चैतन्य नित्यानन्द। देखिव वेष्टित चतुर्दिगे भक्त वृन्द ॥२३९॥
आमार प्रभुर प्रभु श्रीगौर सुन्दर। ए बड़ भरसा चित्ते धरि निरन्तर ॥२४०॥
मुखेह जे जन बोले 'नित्यानन्ददास'। से अवश्य देखिवेक चैतन्य-प्रकाश ।२४१॥
चैतन्येर प्रियतम नित्यानन्द-राय। प्रभु भृत्य सङ्गे जेन ना छोड़ आमाय ।२४२॥
जगतेर प्रेम दाता हेन नित्यानन्द। तान हञा जेन भजों प्रभु गौरचन्द्र ॥२४३॥
संसारेर पार हइ भक्तिर सागरे। जे डूविव से भजुक निताइ चाँदेरे ॥२४४॥
काष्ठेर पुतली जेन कुहके नाचाय। एइमत गौरचन्द्र मोरे जे बोलाय ॥२४५॥
पक्षी जेन आकाशेर अन्त नाहि पाय। जत शक्ति थाके तत दूर उड़ि जाय ॥२४६॥
एइ मत चैतन्य कथार अन्त नाइ। जार जत दूर शक्ति सभे तत गाइ ॥२४७।
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चाँद जान। वृन्दावनदास तछु पदजुगे गान ॥२४८॥

इति श्रीचैतन्य भागवते मध्य खण्डे श्रीचैतन्य संन्यास वर्णनं नाम
षड्विंशोऽध्यायः ।२६॥

---

आज्ञा से, उनकी कृपा से जितना जाना वह कुछ मैंने सूत्र रूप से पुस्तक में लिख दिया ॥२३३॥ सब वैष्णवों के चरणों में मेरा नमस्कार है। इसमें वे मेरे कोई अपराध को ग्रहण न करें ॥२३४॥ वेद में (य चरित) कोटि २ वेदव्यास मुनि नाना प्रकार से अशेष-विशेष रूप से वर्णन करेंगे ॥२३५॥ इस प्रकार मध्य खण्ड में प्रभु का संन्यास वर्णित है। इसकी कथा श्रवण करने से श्रीचैतन्य का दास होता है। २३६ मध्यखण्ड में ईश्वर के संन्यास का वर्णन है। इसके श्रवण से कृष्ण-प्रेम-धन प्राप्त होता है ॥२३७॥ श्रीकृष्ण चैतन्य एवं नित्यानन्द इन दोनों प्रभु को मैं कभी न भूलूँ-यही मेरी एक मात्र वाञ्छा है ।२३८॥ क्या ऐसा दिन होगा जब श्री चैतन्य एवं नित्यानन्द प्रभु को चारों ओर भक्त वृन्दों से वेष्टित दर्शन करूँ ॥२३९॥ मेरे प्रभु (नित्यानन्द) के प्रभु श्री गौरसुन्दर हैं इसका मेरे चित्त में निरन्तर बड़ा भारी भरोसा है ॥२४०॥ मुख से भी जो अपने को 'नित्यानन्द दास' कहता है, वह अवश्य श्री चैतन्यदेव का दर्शन करे ॥२४१॥ श्रीचैतन्य के प्रियतम नित्यानन्दराय हैं। प्रभु अपने भृत्य नित्यानन्द राय के सहित कभी मुझे त्याग न करें ।२४२॥ जगत् के प्रेमदाता जो नित्यानन्द हैं, उनका होकर मैं गौरचन्द्र को भज सकूँ, (यही प्रार्थना है) ॥२४३॥ भवसागर से पार होकर भक्ति-सागर में जो डूबना चाहता हो वह नित्यानन्द का भजन करे ॥२४४॥ नट जैसे कठपुतली को नचाता है, उसी प्रकार गौरचन्द्र ही मेरे मुँह से बुलवाते ॥२४५॥ पक्षी की जितनी शक्ति होती है उतनी दूर तक वह उड़ता है पर आकाश का अन्त नहीं पाता ॥२४६॥ इसी प्रकार श्रीचैतन्य-कथा का भी अन्त नहीं है। जिसकी जितनी शक्ति होती है, उतना गाता है ॥२४७॥ श्रीकृष्ण चैतन्य एवं नित्यानन्दचन्द्र मेरे प्राण स्वरूप हैं। वृन्दावनदास उनके पद युगल का गुण-गान करता है ॥२४८॥ ॥ मध्यखण्ड समाप्त ॥

---

मुद्रक—जा०डा०भरतिया, श्रीकृष्ण पब्लिशिङ्ग हाउस प्रेस, मथुरा।
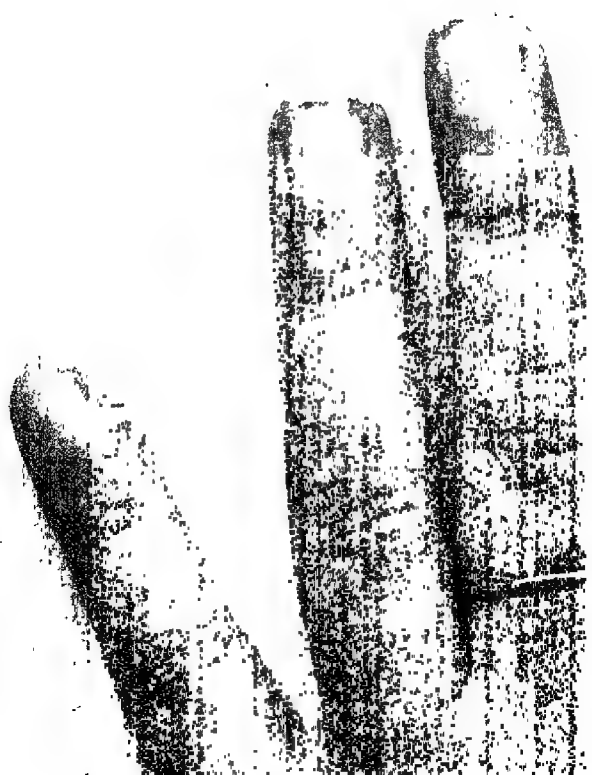
॥ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ॥

# श्री चैतन्यभागवत

## अन्त्यखण्ड

व्यासावतार, महाकवि—

## श्रीलवृन्दावनदास ठाकुर विरचित

अनुवादक-पण्डित रामलालजी

संशोधक-श्री प्रियाचरणशरणदासजी

अर्थ सहायक-वैष्णवदासानुदासी रानी सरस्वतीदेवीजी

राजवाटी (मुंगेर)


प्रकाशक—

कृष्णदास

( कुसुमसरोवर वाले )

मथुरा

भज–निताइ गौर राधेश्याम ।
जप–हरे कृष्ण हरे राम ॥

वैष्णवजगत प्राण,गुरुगौरांगनिष्ठ,नित्यधामप्राप्त, मुँगेरनिवासी,
वैष्णवदासानुदास श्रीमान् रघुनन्दनप्रसादसिंहजी
( राजा, सर ) के टी० के पुनीतस्मरण में यह
( अन्त्यखंड ) सादर समर्पित ।

मूल्य २॥)

❀ श्री श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्रो जयति ❀

# ❀ श्री श्री चैतन्य भागवत ❀

## अन्त्य खण्ड—प्रथमोऽध्याय:

अवतीर्णौ स्वकारुण्यौ परिछिन्नौ सदीश्वरौ । श्रीकृष्णचैतन्यनित्यानन्दौ द्वौ भ्रातरौ भजे ॥१॥
नमस्त्रिकालसत्याय जगन्नाथसुताय च । सभृत्याय सपुत्राय सकलत्रायते नम: ॥ २ ॥

जय जय श्रीकृष्ण चैतन्य लक्ष्मीकान्त । जय जय नित्यानन्द-वल्लभ-एकान्त ॥१॥
जय जय वैकुंठ-ईश्वर न्यासिराज । जय जय जय श्रीभक्त समाज ॥२॥
जय जय पतितपावन गौरचन्द्र । दान देह' हृदये तोमार पद-द्वन्द्व ॥३॥
"जय जय शेष-रमा-अज-भव नाथ । जीव प्रतिकर' प्रभु शुभ दृष्टि पात" ॥४॥
शेषखण्ड-कथा भाइ शुन एक-चित्ते । नीलाचले गौरचन्द्र आइला येमते । ॥५॥
करिया सन्यास वैकुण्ठेर अधीश्वर । से रात्रि आछिला प्रभु कन्टक-नगर ॥६॥
करिलेन मात्र प्रभु सन्यास-ग्रहण । मुकुन्देरे आज्ञा हैल करिते कीर्तन ॥७॥
'बोल बोल' बलि प्रभु आरम्भिला नृत्य । चतुर्दिगे गाइते लागिला सब भृत्य ॥८॥
श्वास, हास, स्वेद, कम्प, पुलक, हुंकार । ना जानि कतेक हय अनन्त विकार ॥९॥
कोटि-सिंह-प्राय येन विशाल गर्जन । आछाड़ देखिते भय पाय सर्वजन ॥१०॥
कोन् दिगे दण्ड कमण्डलु वा पड़िल । निज प्रेमे वैकुंठेर पति मत्त हैल ॥११॥
नाचिते नाचिते प्रभु गुरुरे धरिया । आलिंगन करिलेन बड़ तुष्ट हैया ॥१२॥
पाइया प्रभुर अनुग्रह-आलिङ्गन । भारतीर विष्णुभक्ति हइल तखन ॥१३॥

---

लक्ष्मीकान्त श्रीकृष्णचैतन्य की जय हो २ और नित्यानन्द के एकान्त वल्लभ की जय हो ॥ १ ॥ वैकुण्ठ ईश्वर सन्यासीराज की जय हो २ और आपके श्रीभक्त समाज की जय हो, जय हो ॥ २ ॥ पतित-पावन गौरचन्द्र की जय हो २, आप अपने चरण-कमलों को हमारे हृदय में प्रदान करो ॥३॥ शेष-रमा-ब्रह्मा-शिव के नाथ की जय हो २, हे प्रभो ! जीवों पर आप शुभ दृष्टिपात करो ॥ ४ ॥ अरे भाइयो शेष खण्ड की कथाओं को एकाग्र चित्त से सुनो, जिस प्रकार नीलाचल में गौरचन्द्र आये ॥ ५ ॥ सन्यास करके वैकुण्ठ-नायक उस रात्रि को कन्टक नगर ( काटोया ) में ही रहे ॥ ६ ॥ प्रभु ने सन्यास मात्र ग्रहण करते ही मुकुन्द को कीर्तन करने की आज्ञा दी ॥ ७ ॥ "बोलो-बोलो" कहकर प्रभु ने नृत्य आरम्भ किया सब चारों ओर से सब भृत्य गाने लगे ॥ ८ ॥ श्वास-हास-स्वेद-कम्प-पुलक-हुङ्कार आदि न जाने कितने अनन्त विकार हो रहे हैं ॥ ९ ॥ कोटि सिंहों के तुल्य जैसे विशाल गर्जना करते थे तथा पछाड़ों को देखते ही सब लोग डर गये ॥ १० ॥ न जाने दण्ड कमण्डलु किस ओर गिरे, वैकुंठनाथ तो निज प्रेम में मत्त हो रहे थे ॥११॥ नाचते-नाचते गौरचन्द्र ने गुरुजी को पकड़ लिया और बड़े सन्तुष्ट होकर आलिङ्गन किये ॥ १२ ॥ गौरचन्द्र के

वाह्य दूरे गेल भारतीर प्रेम रसे  गडा गड़ि जाय वस्त्र ना सम्वरे शेषे  १५।
भारतीरे कृपा हल प्रभुर देखिया  सर्व-गण 'हरि' बोले डाकिया डाकिया ॥१६॥
सन्तोषे गुरुर सङ्गे प्रभु करे नृत्य। देखिया परम सुखे गाय सब भृत्य ॥१७॥
चारि-वेदे ध्याने यारे देखिते दुष्कर। तांर सङ्गे साक्षाते नाचये न्यासिवर ॥१८॥
केशव-भारती-पाये बहु नमस्कार। अनन्त-ब्रह्माण्ड-नाथ शिष्य-रूपे जार ॥१९॥
एइमत सर्व-रात्रि गुरुर संहति। नृत्य करिलेन वैकुण्ठेर अधि पति ॥२०॥
प्रभात हइले प्रभु वाह्य प्रकाशिया। चलिलेन गुरु-स्थाने बिदाय करिया ॥२१॥
"अरण्ये प्रविष्ट मुञि हइमू सर्वथा। प्राण नाथ मोर कृष्णचन्द्र पाङ यथा" ॥२२॥
गुरु बोले "आमिह चलिब तोमा सङ्गे। थाकिब तोमार सङ्गे सङ्कीर्तन-रङ्गे ॥२३॥
कृपा करि प्रभु सङ्गे लइलेन ताने। अग्रे गुरु करिया चलिया प्रभु वने ॥२४॥
तवे चन्द्रशेखर-आचार्य कोले करि। उच्चस्वरे कान्दिते लागिला गौर हरि ॥२५॥
"गृहे चल तुमि सर्व-वैष्णवेर स्थाने। कहिआ सभारे आमि चलिलाङ वने ॥२६॥
गृहे चल तुमि-दुःख ना भाविह मने। तोमार हृदये आमि वन्दी सर्वक्षणे ॥२७॥
तुमि मोर पिता मुञि नन्दन तोमार। जन्म जन्म तुमि प्रेम-संहति आमार ॥२८॥
एतेक बलिया ताने ठाकुर चलिला। मूर्च्छागत हइ चन्द्रशेखर पड़िला ॥२९॥

---

अनुग्रह रूप आलिङ्गन को पाते ही उसी समय भारती जी को विष्णु भक्ति हो गई ॥ १३ ॥ फेरी देकें दंड-कमण्डलु को दूर फेंककर सुकृति केशव भारती ने हरि २ कहकर नृत्य किया ॥ १४ ॥ प्रेमातिरेक में—केशव भारतीजी का वाह्य ज्ञान दूर चला गया और अन्त में वस्त्रों को न सँभार सके आप लोट-पोट होने लगे॥१५॥ ऐसा देखकर भारती के ऊपर प्रभु की कृपा हुई और सब भक्तवृन्द ऊँचे स्वर से हरि-हरि कह रहे हैं ॥१६॥ गुरु के साथ बड़े सन्तोष से गौरचन्द्र नाच रहे हैं और सब दास बड़े सुख से गान कर रहे हैं ॥ १७ ॥ चार वेदों द्वारा जिसको ध्यान में देखना दुष्कर है आज साक्षात् रूप में उसी के साथ न्यासिवर नाच रहे हैं ॥१८॥अनन्त ब्रह्माण्डनाथ जिसके शिष्य हैं ऐसे केशव भारती के चरणों को अनन्त कोटि नमस्कार है॥१९॥ इस प्रकार वैकुण्ठनाथ ने गुरु के साथ सब रात्रि नृत्य किया॥२०॥प्रभात होते ही प्रभु ने वाह्य ज्ञान प्रकाश किया और गुरु के स्थान से बिदा होकर चल दिये ॥ २१ ॥ आप कहने लगे—मैं सर्वथा वन में प्रवेश करूँगा जिससे मैं प्राणनाथ कृष्णचन्द्र को प्राप्त करलूँ ॥ २२ ॥ गुरु ने कहा मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा जिससे तुम्हारे साथ संकीर्तनानन्द में रहूँ ॥ २३ ॥ प्रभु ने कृपा करके उनको भी साथ ले लिया। गुरुजी को आगे करके प्रभु वन को चले हैं ॥ २४ ॥ तब गौरहरि चन्द्रशेखर आचार्य की गोद भरकर ऊँचे स्वर से रोने लगे ॥ २५ ॥ तुम घर को जाओ और सब वैष्णवों के स्थानों में कह देना कि मैं वन को चला गया हूँ ॥ २६ ॥ तुम घर को जाकर मनमें दुःख मत पाना मैं तो तुम्हारे हृदय में सदा ही वन्दी हूँ ॥ २७ ॥ तुम मेरे पिता हो और मैं तुम्हारा पुत्र हूँ तथा तुम मेरे जन्म-जन्म के प्रेम सहचर हो ॥ २८ ॥ उनसे इस प्रकार कहकर

कृष्णेर अचिन्त्य शक्ति बूझने ना याय। अतएव से विरहे प्राण रक्षा पाय ॥३०॥
क्षणेके चैतन्य पाइ श्रीचन्द्रशेखर। नवद्वीप-प्रति तिंहो गेलेन सत्वर ॥३१॥
भक्तगणे कहिल प्रभुर जत कथा। शुनिञा भक्त गण मने भावे व्यथा ॥३२॥
तबे नवद्वीपे चन्द्रशेखर आइला। सभा स्थाने कहिलेन "प्रभु बने गेला" ॥३३॥
श्रीचन्द्रशेखर-मुखे शुनि भक्तगण। अतिनादे लागिलेन करिते क्रन्दन ॥३४॥
शुनिञा हइला मात्र, अद्वैत मूर्छित। प्राण नाहि देह, प्रभु पड़िला भूमित ॥३५॥
शची देवी शोके रहिलेन जड़ हैया। कृत्रिम पुतली येन आछे दाण्डाइया ॥ ३६ ॥
भक्त पत्नी सब यत पतिव्रता गण। भूमिते पड़िया सभे करेन क्रन्दन ॥ ३७ ॥
कोटि मुख हइलेओ से सब विलाप। वर्णिते ना पारि तां सभार अनुताप ॥ ३८ ॥
अद्वैत बोलये 'मोर ना रहे जीवन'। विदरे पाषाण काष्ठ शुनिसे क्रन्दन ॥ ३९ ॥
अद्वैत बोलये 'आर कि कार्य जीवने। से-हेन ठाकुर मोर छाड़िल यखने ॥ ४० ॥
प्रविष्ट हइमु आजि सर्वथा गङ्गाय। दिने लोक धरिबेक, चलिमु निशाय' ॥ ४१ ॥
एइ मत विरहे सकल भक्तगण। सभार हइल बड़ि चित्त उच्चाटन ॥ ४२ ॥
कोन मते चित्ते केहो स्वास्थ्य नाहि पाय। देह एड़िवारे सभे निरवधि चाय ॥ ४३ ॥
यद्यपिह सभेइ परम-महा-धीर। तभो केहो कारो करिवारे नारे स्थिर ॥ ४४ ॥
भक्तगण देह त्याग भाविला निश्चय। जानि सभा प्रबोधि आकाश वाणी हय ॥ ४५ ॥

---

गौरचन्द्र चल दिये तब चन्द्रशेखर मूर्छित होकर गिर पड़े ॥ २९ ॥ देखो कृष्ण की अचिन्त्य शक्ति समझ में नहीं आती सो इस विरह में भी प्राण-रक्षा हो गई ॥ ३० ॥ कुछ क्षण में श्रीचन्द्रशेखरजी चैतन्य होकर शीघ्र नवद्वीप की ओर चल दिये ॥ ३१ ॥ जाकर भक्तवृन्दों से प्रभु के सब प्रसंग कहे, सुनते ही भक्तों के मनमें बड़ी व्यथा हुई ॥ ३२ ॥ इस प्रकार चन्द्रशेखर नवद्वीप में आगे और सब भक्तों के स्थान में कहा कि गौरचन्द्र वन को चले गये ॥ ३३ ॥ भक्तवृन्द चन्द्रशेखर के मुख से यह सुनकर आर्तस्वर से रुदन करने लगे ॥ ३४ ॥ सुनते ही तुरन्त अद्वैत प्रभु मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े और देह में प्राण नहीं रहे ॥३५॥ शचीदेवी शोक से जड़ होकर खड़ी रह गई, जैसे कृत्रिम ( बनावटी ) पुतली खड़ी हो ॥ ३६ ॥ पतिव्रता शिरोमणि सब भक्त पत्नियाँ भूमि पर गिर पड़ीं और क्रन्दन करने लगीं ॥ ३७ ॥ करोड़ों मुख होने पर भी उन सब का विलाप, अनुताप वर्णन नहीं हो सकेगा ॥ ३८ ॥ श्रीअद्वैत ने कहा कि मेरा जीवन नहीं रहेगा, उस रोने को सुनकर पाषाण व काष्ठ भी विदीर्ण होते थे॥३९॥अद्वैत ने कहा और जीवन का क्या काम है, जबकि ऐसे दयालु प्रभु मेरे को छोड़ गये ॥ ४० ॥ मैं आज ही गङ्गा में प्रवेश करूँगा, सो दिन में लोग पकड़ लेंगे इससे रात्रि को चलूँगा ॥४१॥ इस प्रकार प्रभु के विरह में सब भक्तवृन्दों के चित्त में बड़ा उच्चाटन हुआ ॥ ४२ ॥ किसी प्रकार से चित्त में कोई भी स्वस्थता को नहीं पाते व निरन्तर सब लोग देह छोड़ने की ही निरन्तर इच्छा करते थे ॥ ४३ ॥ यद्यपि सब लोग बड़े महाधीर थे तथापि कोई किसी को स्थिर नहीं कर पाता था ॥ ४४ ॥ भक्तवृन्दों ने देह त्याग करने का निश्चय कर लिया ऐसा जानकर सबको प्रबोध करने

सेइ प्रभु एइ दिन दुइ-चारि व्याजे । आसिया मिलिब तोमा सभार समाजे ॥ ४७ ॥
देह त्याग केही किछु ना भाविह मने पूर्ववत सभे विहरिवा प्रभु-सने ॥ ४८ ॥
शुनिआ आकाशवाणी महा-भक्तगण । देह त्याग प्रति सभे छाड़िलेन मन ॥ ४९ ॥
करि अवलम्बन प्रभुर गुण नाम । शची वेढ़ि भक्तगण थाके अविराम ॥ ५० ॥
तबे गौरचन्द्र सन्यासीर चूड़ामणि । चलिला पश्चिम-मुखे करि हरि ध्वनि ॥ ५१ ॥
नित्यानन्द गदाधर मुकुन्द संहति । गोविन्द पश्चाते, आगे केशव भारती ॥ ५२ ॥
चलिलेन मात्र प्रभु मत्त-सिंह-प्राय । लक्ष कोटि लोक पाछे पाछे कान्दि जाय ॥ ५३ ॥
चतुर्दिगे वन भाङ्गि लोक सब धाय । सभारे करेन प्रभु कृपा अमायाय ॥ ५४ ॥
सभे घर याइ लइ गिया हरि नाम । सभार हउक कृष्णचन्द्र धन प्राण ॥ ५५ ॥
ब्रह्मा-शिव-शुकादि ये रस वाञ्छा करे । हेन रस हउ तोमा सभार शरीरे ॥ ५६ ॥
वर शुनि सर्वलोक कान्दे उच्च स्वरे । पर वश-प्राय सभे आइलेन घरे ॥ ५७ ॥
राढ़े आसि गौरचन्द्र हइला प्रवेश । अद्यापिह सेइ भाग्ये धन्य राढ़-देश ॥ ५८ ॥
राढ़-देश भूमि यत देखिते सुन्दर । चतुर्दिगे अश्वत्थ-मण्डली मनोहर ॥५९॥
स्वभाव-सुन्दर स्थान शोभे गावी गणे । देखिया आविष्ट प्रभु हय सेइ क्षणे ॥ ६० ॥

---

के लिए आकाशवाणी हुई ॥ ४५ ॥ हे अद्वैतादि भक्तवृन्द ! सब लोग सुख से कृष्णचन्द्र का आराधन करो ॥ ४६ ॥ और वे ही गौरचन्द्र दो-चार दिन के अनन्तर तुम सब की समाज में आकर मिल जावेंगे ॥४७॥ कोई कभी देह त्याग करने का मनमें विचार न करना, कारण कि पहिली तरह सब प्रभु के साथ विहार करोगे ॥ ४८ ॥ श्रेष्ठ भक्तवृन्दों ने आकाशवाणी सुनकर देह त्याग करने का विचार छोड़ दिया ॥ ४९ ॥ भक्तवृन्द प्रभु के गुण तथा नाम का अवलम्बन करते हुए शचीदेवी को घेरकर रात्रि दिन रहने लगे ॥ ५० ॥ तदनन्तर सन्यासी शिरोमणि श्रीगौरचन्द्र हरि ध्वनि करते २ पश्चिम को मुख करके चलने लगे ॥ ५१ ॥ आगे केशव भारती और पीछे नित्यानन्द, गदाधर, मुकुन्द तथा गोविन्द संग में थे ॥ ५२ ॥ मत्त सिंह के तुल्य गौरचन्द्र के मात्र चलते ही लाखों करोड़ों लोग ऐसे हुए पीछे २ जो चलने लगे ॥५३॥ सब लोग चारों ओर से वन को भेद करके दौड़े आये, प्रभु गौरचन्द्र ने निष्कपट रूप से सब पर कृपा की ॥ ५४ ॥ सब अपने २ घरों को जाओ और हरिनाम लो तुम सब का प्राण-धन कृष्णचन्द्र हो ॥ ५५ ॥ ब्रह्मा-शिव-शुकादि जिस प्रेमरस की वाञ्छा करते हैं वह प्रेमरस तुम सबके शरीर में हो ॥ ५६ ॥ वरदान सुनकर सब लोग ऊँचे स्वर से रोने लगे और परमवश की भाँति सब अपने घर को आये ॥ ५७ ॥ गौरचन्द्र ने आकर राढ़ देश में प्रवेश किया उसी भाग्य से राढ़ देश आज भी धन्य है ॥ ५८ ॥ राढ़ देश की जहाँ तक भूमि है वह देखने में सुन्दर है, जिसके चारों ओर अश्वत्थ ( पीपल ) मण्डली कैसी मनोहर लग रही है ॥ ५९ ॥ ऐसे प्राकृत सुन्दर स्थान है, गौओं के झुण्ड शोभा दे रहे हैं, जिन्हें देखते ही तत्क्षण प्रभु आविष्ट हो गये थे

'बोल बोल' बलि प्रभु आरम्भिला नृत्य। चतुर्दिगे गाइते लागिला सब भृत्य ॥ ६१ ॥
हुङ्कार गर्जन करे वैकुण्ठेर राय। जगतेर चित्तवृत्ति शुनि शोध याय ॥ ६२ ॥
एइ मत प्रभु धन्य करि राढ़-देश। सर्व पथे चलि लेन करि नृत्या वेश ॥ ६३ ॥
प्रभु बोले 'वक्रेश्वर' आछेन ये बने। तथाइ याइमूँ मुञि थाकिमूँ निर्जने ॥ ६४ ॥
एतेक बलिया प्रेमावेशे चलियाय। नित्यानन्द-आदि सब पाछे पाछे धाय ॥ ६५ ॥
अद्भुत प्रभुर नृत्य, अद्भुत कीर्तन। शुनि मात्र धाइया आइसे सर्वजन ॥ ६६ ॥
यद्यपिह कोन देशे नाहि संकीर्तन। केहो नाहि देखे कृष्ण प्रेमेर क्रन्दन ॥ ६७ ॥
तथापि प्रभुर देखि अद्भुत क्रन्दन। दण्डवत् हइया पड़ये सर्व जन ॥ ६८ ॥
तथि-मध्ये केहो केहो परम पामर। तारा बोले 'एत केने कान्देन विस्तर'' ॥ ६९ ॥
सेहो सब जन एबे प्रभुर कृपाय। सेइ प्रेम स्मडरिया कान्दे गड़ियाय ॥ ७० ॥
सकल भुवन एबे गाय गौरचन्द्र। तथापिह सबे नाहि गाय भूतवृन्द ॥ ७१ ॥
श्रीकृष्णचैतन्य-नामे विमुख ये जन। निश्चय जानिह सेइ पापी भूतगण ॥ ७२ ॥
हेन मते नृत्य-रसे वैकुण्ठेर नाथ। चलिया यायेन सर्व-भक्त वर्ग-साथ ॥ ७३ ॥
दिन-अवशेषे प्रभु एक धन्य ग्रामे। रहिलेन पुण्यवन्त-ब्राह्मण आश्रमे ॥ ७४ ॥
भिक्षा करि महाप्रभु करिला शयन। चतुर्दिगे वेढ़िया शुइला भक्तगण ॥ ७५ ॥
प्रहर-खानेक निशा थाकिते ठाकुर। सभा छाड़ि पलाइया गेला कथो दूर ॥ ७६ ॥

॥६०॥गौरचन्द्र बोलो २ कहकर नृत्य करने लगे तथा उनके चारों ओर सब सेवकगण गान करने लगे ॥६१॥ बैकुण्ठनाथ हुङ्कार गर्जन करने लगे, जिसे सुनकर जगत् की चित्तवृत्ति शुद्ध हो गई ॥ ६२ ॥ इस प्रकार प्रभु राढ़ देश को धन्य करते हुए पूरे मार्ग भर आवेश में नाचते हुए चलने लगे ॥ ६३ ॥ प्रभु ने कहा जिस वन में वक्रेश्वर ( महादेव ) हैं, मैं वहीं जाकर निर्जन स्थान में रहूँगा ॥ ६४ ॥ इस प्रकार कहकर प्रभु प्रेमावेश में चले जा रहे थे तथा नित्यानन्द आदि सब पीछे २ दौड़ रहे थे ॥ ६५ ॥ प्रभु के अद्भुत कीर्तन नृत्य को मात्र सुनते ही सब लोग दौड़कर आते थे ॥६६॥ यद्यपि संकीर्तन किसी देश में नहीं होता था और न किसी ने कृष्ण प्रेम में रोना ही देखा है तथापि प्रभु के अद्भुत रुदन को देखकर सब लोग दण्डवत् प्रणाम करते थे॥६७-६८॥उनमें भी जो कोई २ अति पामर (नीच) थे वे कहते थे कि इतना अधिक क्यों रोते हैं ? ॥६९॥ तब वे भी सब लोग प्रभु की कृपा से उस प्रेम का स्मरण करके रोते तथा लोट-पोट होते थे ॥ ७० ॥ इस समय सब भुवनवासी गौर गुणगान करते हैं, केवल भूतों के समूह ही नहीं गाते ॥ ७१ ॥ श्रीकृष्णचैतन्य के नाम से जितने मनुष्य विमुख हैं निश्चय ही उन्हें पापी भूतगण जानो ॥ ७२ ॥ इस प्रकार बैकुंठनाथ सब भक्तवृन्दों के साथ नृत्यावेश में चले जा रहे थे ॥ ७३ ॥ दिन छिपने पर प्रभु ने एक धन्य ग्राम में एक पुण्य-वान ब्राह्मण के आश्रम में विश्राम किया ॥ ७४ ॥ भोजन करके महाप्रभु ने शयन किया तब भक्तवृन्द चारों ओर से उन्हें घेरकर सोये ।.७५॥ गौरचन्द्र एक प्रहर रात्रि रहने पर सबको छोड़कर कुछ दूर भाग (पलायन)

शेषे सभे उठिया चाहेन भक्तगण । ना देखिया प्रभु सभे करेन क्रन्दन ॥७७॥
सर्व ग्राम विचार करिया भक्तगण । प्रान्तर-भूमिते तबे करिला गमन ॥ ७८ ॥
निज प्रेम-रसे वैकुण्ठेर अधीश्वर । प्रान्तरे रोदन करे करि उच्च स्वर ॥ ७९ ॥
कृष्ण रे प्रभु रे आरे कृष्ण मोर बाप । बलिया रोदन करे सर्व-जीव-नाथ ॥ ८० ॥
हेन से डाकिया कान्दे न्यासी चूड़ामणि । क्रोशेकेर पथ जाय रोदनेर ध्वनि ॥ ८१ ॥
कथो दूरे थाकिया सकल भक्तगण । शुनेन प्रभुर अति अद्भुत क्रन्दन ॥ ८२ ॥
चलि लेन सभे क्रन्दनेर अनुसारे । देखि लेन सभे प्रभु कान्दे उच्च स्वरे ॥ ८३ ॥
प्रभुर कान्दने कान्दे सर्व भक्तगण । मुकुन्द लागिला तबे करिते कीर्तन ॥ ८४ ॥
शुनिला कीर्तन प्रभु लागिला नाचिते । आनन्दे गायेन सभे बेढ़ि चारि भिते ॥ ८५ ॥
एइ मत सर्व-पथे नाचिया नाचिया । यायेन पश्चिम-मुखे आनन्दित हैया ॥ ८६ ॥
क्रोश-चारि सकले आछेन वक्रेश्वर । सेइ स्थाने फिरि लेन श्रीगौरसुन्दर ॥ ८७ ॥
नाचिया यायेन प्रभु पश्चिमाभिमुखे । पूर्व-मुख पुन हइलेन निज सुखे ॥ ८८ ॥
पूर्व मुखे चलिया यायेन नृत्य-रसे । अन्तर-आनन्दे प्रभु अट्ट अट्ट हासे ॥ ८९ ॥
बाह्य प्रकाशिया प्रभु निज कुतूहले । बलि लेन आमि चलिलाङ नीलाचले ॥९०॥
जगन्नाथ प्रभुर हइल आज्ञा मोरे । नीलाचले तुमि झाट आइस सत्वरे ॥ ९१ ॥
एत बलि चलिलेन हइ पूर्व-मुख । भक्तगण पाइलेन परानन्द सुख ॥९२॥

---

कर चले गये ॥ ७६ ॥ पीछे जब सब भक्त उठे तो ढूँढ़ने लगे तथा प्रभु को न देखकर सब क्रन्दन करने लगे ॥ ७७ ॥ भक्तवृन्दों ने सब गाम में अन्वेषण करके पीछे निर्जन प्रदेश ( भूमि ) में ढूँढ़ने के लिये गमन किया ॥ ७८ ॥ वैकुंठाधिपति अपने प्रेमरस से निर्जन भूमि में ऊँचे स्वर से रोदन कर रहे थे ॥ ७९ ॥ सब जीवों के नाथ ( गौरचन्द्र ) "अरे ओ कृष्ण अरे मेरे बाप" ऐसे बार २ कहकर रो रहे थे ॥ ८० ॥ सन्यासी चूड़ामणि ( गौर ) ऐसे ऊँचे स्वर से रोते थे कि रोने की ध्वनि मार्ग में एक कोस दूर तक सुनाई पड़ती थी ॥ ८१ ॥ सब भक्तवृन्द ने कुछ दूर पर ही प्रभु की अति विचित्र रोदन ध्वनि सुनी ॥ ८२ ॥ सब लोग रोदन की ओर चल दिये, पहुँचने पर सबने प्रभु को ऊँचे स्वर से रोते हुए ऐसे देखा ॥८३॥ प्रभु के रोने पर सब भक्त रोने लगे तब पीछे से मुकुन्द कीर्तन करने लगे ॥८४॥ कीर्तन सुनकर गौरचन्द्र नाचने लगे उनको चारों ओर घेरकर सब भक्तवृन्द भी गाने लगे ॥ ८५ ॥ इस प्रकार मार्ग भर नाचते २ आनन्दित होकर पश्चिम को मुख करके जा रहे थे ॥ ८६ ॥ जब वक्रेश्वर ( महादेव ) केवल चार कोस रहे तभी श्रीगौरसुन्दर उसी स्थान से लौट पड़े ॥ ८७ ॥ गौरचन्द्र पश्चिमाभिमुख होकर नाचते जाते थे फिर अपने प्रेमानन्द सुख से पूर्व को मुख कर लिया ॥ ८८ ॥ पूर्व को मुख करके नृत्यावेश में चलने लगे और हृदय में आनन्दित होकर प्रभु अट्ट-अट्ट हँसने लगे ॥ ८९ ॥ गौरचन्द्र ने अचानक ही कुतूहल से बाह्य ज्ञान प्रकाश करके कहा कि मैं नीलाचल ( जगन्नाथ ) जाऊँगा ॥ ९० ॥ जगन्नाथ प्रभु की मुझे आज्ञा हुई है कि तुम नीलाचल-पुरी को शीघ्र ही चले जाओ ॥ ९१ ॥ ऐसे कहकर पूर्व को मुख करके चल दिये तथा भक्तवृन्द ने परानन्द

तान इच्छा तिंहो से जानेन सर्व मात्र । तान अनुग्रहे जाने तान कृपापात्र ॥ ९३ ॥
कि इच्छाय चलि लेन वक्रेश्वर-प्रति । केनेवा ना गेला बूझे काहार शकति ॥ ९४ ॥
हेन बूझि, करि प्रभु वक्रेश्वर-व्याज । धन्य करि लेन सर्व राढ़ेर समाज ॥ ९५ ॥
गंगा-मुख हइया चलिला गौरचन्द्र । निरवधि देहे निज प्रेमेर आनन्द ॥ ९६ ॥
भक्ति शून्य सर्व देश, ना जाने कीर्तन । कारो मुखे नाहि कृष्ण नाम-उच्चारण ॥ ९७ ॥
प्रभु बोले हेन देशे आइलाङ केने । 'कृष्ण' हेन नाम कारो ना शुनि वदने ॥ ९८ ॥
केने हेन देशे मुञि करिलूँ प्रयाण । ना राखिमु देह मुञि छाड़ों एइ प्राण ॥ ९९ ॥
हेनइ समये गरु राखे शिशु गण । तार मध्ये सुकृति आछये एक जन ॥ १०० ॥
हरि ध्वनि करिते लागिला आचम्बित । शुनिञा हइला प्रभु अति हरषित ॥ १०१ ॥
'हरि बोल' वाक्य प्रभु शुनि शिशु मुखे । विचार करिते लागिलेन महा सुखे ॥१०२॥
दिन-तिन-चारि यत देखिलाङ ग्राम । काहारो मुखेते ना शुनिलूँ हरि नाम ॥१०३॥
आचम्बिते शिशु मुखे शुनि हरि ध्वनि । कि हेतु इहार सभे कह देखि शुनि ॥१०४॥
प्रभु बोले 'गङ्गा कत दूर एथा हैते' । सभे बलिलेन 'एक प्रहरेर पथे ॥१०५॥
प्रभु बोले 'ए महिमा केवल गङ्गार । अतएव एथा हरिनामेर संचार ॥१०६॥
गङ्गार बातास किवा लागियाछे एथा । अतएव शुनिलाङ हरि-गुण-गाथा ॥१०७॥
गङ्गार महिमा व्याख्या करिते ठाकुर । गङ्गा-प्रति अनुराग बाढ़िल प्रचुर ॥१०८॥

---

सुख पाया ॥ ९२ ॥ उनकी इच्छा से ही उन्हें सब जान पाते हैं, उनके कृपापात्र भी उनके अनुग्रह से ही उन्हें जान पाते हैं ॥ ९३ ॥ किस इच्छा से वक्रेश्वर के प्रति गये और फिर किस निमित्त से नहीं गये, यह किस की सामर्थ्य है जो यह समझे ? ॥ ९४ ॥ समझ में यह आता है कि प्रभु ने वक्रेश्वर का छल करके सब राढ़ देश की समाज को धन्य कर दिया ॥ ९५ ॥ बिना रुके देह में निज प्रेम का आनन्द चल रहा था, इस प्रकार गौरचन्द्र गङ्गा की ओर मुख करके चले आ रहे थे ॥ ९६ ॥ किसी के मुख से कृष्ण नाम का उच्चारण नहीं होता सभी देश-भक्ति शून्य था कीर्तन जानते ही नहीं ॥ ९७ ॥ प्रभु ने कहा—"ऐसे देश में कैसे आ गया ? जहाँ कृष्ण नाम किसी के मुख से नहीं सुन पड़ता ? ॥"९८॥ मैं ऐसा देश में क्यों आ गया ? अब मैं इस देह को नहीं रक्खूँगा तथा इन प्राणों को छोड़ दूँगा ॥ ९९ ॥ वहाँ उस समय गौ-रक्षक शिशु-वृन्दों के बीच में एक सुकृतिजन था ( वह )॥ १०० ॥ अकस्मात् हरिध्वनि करने लगा सुनते ही गौरचन्द्र बड़े प्रसन्न हुए ॥ १०१ ॥ प्रभु ( गौरचन्द्र ) बालक के मुख से हरि बोल शब्द सुनकर बड़े सुख पूर्वक विचार करने लगे कि ॥ १०२ ॥ तीन-चार दिन से जितने गाँव देखे वहाँ किसी के मुख से हरिनाम नहीं सुना ॥ १०३ ॥ अकस्मात् शिशु के मुख से हरिध्वनि सुनी है सो सब लोग विचार करके कहो कि इसका क्या हेतु है ? ॥१०४॥ प्रभु ने कहा कहा—"यहाँ से गङ्गा कितनी दूर है ?" तब सबने कहा "प्रभो ! एक पहर का मार्ग है"॥१०५॥प्रभु ने कहा "यह महिमा केवल गङ्गा की ही है इसी से यहाँ हरिनाम का चलन है"॥१०६॥ कारण कि गङ्गा का पवन यहाँ आ लग ही लगा, उससे हरि गुणों को कथा सुन रहा हूँ ॥१०७॥ गङ्गा की

प्रभु बोले 'आजि आमि सर्वथा गङ्गाय । मज्जन करिब' एत बलि चलियाय ॥१०६॥
मत्त-सिंह-प्राय चलिलेन गौर सिंह । पाछे धाइलेन सब चरणेर भृङ्ग ॥११०॥
गङ्गा दरशनावेशे प्रभुर गमन । लाग नाहि पाय केहो यत भक्तगण ॥१११॥
सबे एक नित्यानन्दसिंह करि सङ्गे । सन्ध्या काले गङ्गा तीरे आइलेन रङ्गे ॥११२॥
नित्यानन्द सङ्गे करि गङ्गाय मज्जन । 'गङ्गा-गङ्गा' बलि बहु करिला क्रन्दन ॥११३॥
पूर्ण करि करिलेन गङ्गा जल पान । पुनः पुन स्तुति करि करेन प्रणाम ॥११४॥
'प्रेमरस स्वरूप तोमार दिव्य जल । शिव से तोमार तत्त्व जानेन सकल ॥११५॥
सकृत तोमार नाम करिले श्रवण । तार विष्णु भक्ति हय, कि पुन भक्षण ॥११६॥
तोमार प्रसादे से 'श्रीकृष्ण' हेन नाम । स्फुरये जीवेर मुखे, इथे नाहि आन ॥११७॥
कीट पक्षी शृगाल कुक्कुर यदि हय । तथापि तोमार यदि निकटे वसय ॥११८॥
तथापि ताहार यत भाग्येर उपमा । अन्यत्रेर कोटीश्वर नहे तार समा ॥११९॥
पतित तारिते से तोमार अवतार । तोमार समान तुमि वइ नाइ आर ॥१२०॥
एइ मत स्तुति करे श्रीगौरसुन्दर । शुनिञा जाह्नवी-देवी लज्जित-अन्तर ॥१२१॥
ये प्रभुर पादपद्मे वसति गङ्गार । से प्रभु करये स्तुति,-हेन अवतार ॥१२२॥
ये शुनये गौराङ्गेर गङ्गा-प्रति स्तुति । तार हय श्रीकृष्णचैतन्ये रति मति ॥१२३॥

---

महिमा की व्याख्या करते २ गौरचन्द्र का गङ्गा के प्रति विशेष अनुराग बढ़ गया ॥ १०८ ॥ प्रभु ने कहा आज मैं सर्वथा गङ्गा में मज्जन करूँगा ऐसे कहकर चलने लगे ॥ १०६ ॥ मत्त सिंह की तरह गौरसिंह चल रहे थे और पीछे २ सब चरणों के भृङ्ग ( दास ) दौड़े जा रहे थे ॥ ११० ॥ प्रभु का गमन गंगा दर्शन के आवेश में हो रहा था सो भक्तवृन्द में से कोई भी साथ नहीं चल पाता था ॥ १११ ॥ केवल एक नित्यानन्द सिंह का संग करके सन्ध्या के समय आनन्द से गंगा तट पर आये ॥ ११२ ॥ नित्यानन्द के साथ गंगा में मज्जन किया और गंगा-गंगा करकर बहुत क्रन्दन किया॥११३॥पेट भरकर गंगाजल पान किया और बार २ स्तुति करते हुए प्रणाम किया ॥ ११४ ॥ हे दिव्यजल तुम प्रेमस्वरूप हो केवल शिवजी ही तुम्हारे तत्त्व को पूरी तरह जानते हैं ॥ ११५ ॥ एक बार तुम्हारा नाम सुनने से ही विष्णु-भक्ति हो जाता है तो फिर जल-पान का फल तो और विशेष ही होगा ॥ ११६ ॥ तुम्हारी ही कृपा से श्रीकृष्ण नाम जीवों के मुख में स्फुरन होता है इसमें अन्यथा नहीं है ॥११७॥ कीड़ा,पक्षी,गीदड़, कुत्ता होकर भी यदि तुम्हारे निकट बसे ॥११८॥ तो भी उनके भाग्य की जितनी उपमा है दूसरी जगह कोटीश्वर भी उसके समान नहीं है ॥ ११६ ॥ पतितों को उद्धार करने के लिये ही तुम्हारा अवतार हुआ तुम्हारे समान तुम्हीं हो और दूसरा नहीं है ॥ १२० ॥ इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर स्तुति कर रहे थे जिसे सुनकर गंगादेवी हृदय में लज्जित हो रही थी ॥ १२१ ॥ जिस प्रभु के चरण-कमलों में गङ्गा का निवास है-इस अवतार में वे ही प्रभु (उसकी) स्तुति करते हैं॥१२२॥ गौरचन्द्र की गंगा के प्रति स्तुति को जो सुनेंगे उनको श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्र में प्रीति बुद्धि होगी ॥ १२३ ॥

नित्यानन्द-संहति से निशा सेइ-ग्रामे । आछिलेन कोन पुण्यवन्तेर आश्रमे ॥१२४॥
तबे आरदिने कथोक्षणे भक्त गण । आसिया प्रभुर पाइलेन दरशन ॥१२५॥
तबे प्रभु सर्व भक्तगण करि रङ्गे । नीलाचल- प्रति शुभ करिलेन रङ्गे ॥१२६॥
प्रभु बोले "शुन नित्यानन्द महामति । सत्वरे चलह तुमि नवद्वीप-प्रति ॥१२७॥
श्रीवासादि यत आछे भागवत गण । सभार करह गिया दुःख विमोचन ॥१२८॥
एइ कथा तुमि गिया कहिओ सभारे । आमि याइ नीलाचल चन्द्र देखिबारे ॥१२९॥
सभार अपेक्षा आमि करि शान्ति पुरे । रहिबाङ श्रीअद्वैत-आचार्येर घरे ॥१३०॥
ताँ सभा लइया तुमि आसिबा सत्वरे । आमि याइ हरिदासेर फुलिया नगरे ॥१३१॥
नित्यानन्दे पाठाइया श्रीगौर सुन्दर । चलिलेन महाप्रभु फुलिया-नगर ॥१३२॥
प्रभुर आज्ञाय महामल्ल नित्यानन्द । नवद्वीपे चलिलेन परम आनन्द ॥१३३॥
प्रेमरसे महामत्त नित्यानन्दराय । हुंकार गर्जन प्रभु करये सदाय ॥१३४॥
मत्त-सिंह-प्राय प्रभु आनन्दे विह्वल । विधि-निषेधेर पार विहार सकल ॥१३५॥
क्षणेके कदम्ब वृक्षे करि आरोहण । बाजाय मोहन वेणु त्रिभङ्ग मोहन ॥१३६॥
क्षणेके देखिया गोष्ठे गड़ागड़ि याय । वत्स प्राय हइया गाभीर दुग्ध खाय ॥१३७॥
आपना आपनि सर्व पथे नृत्य करे । बाह्य नाहि जाने डूबि आनन्द-सागरे ॥१३८॥
कखनो वा पथे बसि करेन रोदन । हृदय विदरे ताहा करिते श्रवण ॥१३९॥
कखनो हासेन अति महा अट्टहास । कखनो वा शिरे वस्त्र वान्धि दिगवास ॥१४०॥

---

महाप्रभु नित्यानन्द के साथ उस रात्रि को उसी गाँव में किसी पुण्यवान के आश्रम में रहे ॥१२४॥ तब दूसरे दिन कुछ देर पर भक्तवृन्द ने आकर प्रभु के दर्शन पाये ॥ १२५ ॥ तब गौरचन्द्र सब भक्तवृन्द साथ में लेकर आनन्द से नीलाचल के प्रति गमन किया ॥ १२६ ॥ प्रभु बोले—"हे श्रेष्ठ बुद्धि वाले श्रीनित्यानन्दजी सुनो तुम शीघ्र नवद्वीप को चले जाओ ॥ १२७ ॥ वहाँ श्रीवास आदि जितने भक्तवृन्द हैं जाकर उन सबके दुख को दूर करो ॥ १२८ ॥ सबसे जाकर तुम यह कहना कि मैं नीलाचलचन्द्र के दर्शन के निमित्त जा रहा हूँ ॥ १२९ ॥ मैं सबकी अपेक्षा करके श्रीअद्वैत आचार्य के घर शान्तिपुर में ठहरूँगा ॥ १३० ॥ तुम उन सबको लेकर शीघ्र आ जाना अब मैं हरिदासजी के यहाँ फुलिया नगर को जाता हूँ ॥ १३१ ॥ श्रीमहाप्रभु नित्यानन्द को भेजकर फुलिया नगर को चल दिये ॥ १३२ ॥ प्रभु की आज्ञा पाकर महा मत्तमल्ल नित्यानन्दजी बड़े आनन्द से नवद्वीप को चले ॥ १३३ ॥ प्रेमरस में महा मतवाले श्रीनित्यानन्दराय सदा हुङ्कार-गर्जन करते रहते थे ॥ १३४ ॥ मत्तसिंह के तुल्य नित्यानन्दजी आनन्द में विह्वल थे उनका विहार सब विधि निषेध से परे था ॥ १३५ ॥ क्षण में ही कदम्ब वृक्ष पर चढ़कर त्रिभङ्ग होकर मनमोहनी वंशी बजाने लगते थे तो ॥ १३६ ॥ दूसरे ही क्षण गोष्ठ को देखकर लोट-पोट होने लगते थे तथा बछड़ा के समान गौ का दूध पीने लगते ॥ १३७ ॥ अपने आप ही सब मार्ग में नृत्य करते जाते थे बाह्य ज्ञान नहीं था—आनन्द सागर में मग्न हो रहे थे ॥ १३८ ॥ अथवा कभी मार्ग में बैठकर ऐसा रुदन करते थे कि सुनते ही हृदय विदीर्ण

कखनो वा स्वानु भावे अनन्त आवेशे । सर्प-प्राय हइया गङ्गार स्रोते भासे ॥१४१॥
अनन्तेर भावे प्रभु गङ्गार भितरे । भासिया यायेन अति देखि मनोहरे ॥१४२॥
अचिन्त्य अगम्य नित्यानन्देर महिमा । त्रिभुवने अद्वितीय कारुण्येर सीमा ॥१४३॥
एइमत गङ्गा मध्ये भासिया भासिया । नवद्वीपे प्रभु-घाटे मिलिला आसिया ॥१४४॥
आपना सम्बरि नित्यानन्द-महाशय । प्रथमे उठिला आसि प्रभुर आलय ॥१४५॥
आसि देखे आइर द्वादश-उपवास । सबे कृष्ण शक्ति बले देहे आछे श्वास ॥१४६॥
यशोदार भावे आइ परम विह्वल । निरवधि नयने वहये प्रेमजल ॥१४७॥
यारे देखे आइ ताहारेइ वार्ता लय । मथुरार लोक कि तोमरा सब हय ॥ १४८ ॥
कह कह राम कृष्ण आछेन केमने । बलिया मूर्च्छित हइ पड़ये तखने ॥ १४९ ॥
क्षणे बोले आइ "ओइ शुनि शिङ्गा बाजे । अक्रूर आइला किवा पुन गोष्ठ माझे"॥१५०॥
एइ मत आइ कृष्ण-विरह-सागरे । डुबिया आछेन बाह्य नाहि कलेवरे ॥ १५१ ॥
नित्यानन्द महाप्रभु हेनइ समये । आइर चरणे आसि दण्डवत् हय ॥ १५२ ॥
नित्यानन्द देखि सब भागवत गण । उच्च स्वरे लागिलेन करिते क्रन्दन ॥ १५३ ॥
"बाप-बाप" बलि आइ हइला मूर्च्छित । ना जानिये केबा वा पड़ये कोन्‌भित ॥१५४॥
नित्यानन्द महाप्रभु सभा करि कोले । सिंचिलेन सभार शरीर प्रेम जले ॥१५५॥
शुभ-वाणी नित्यानन्द कहेन सभारे । सत्वरे चलह सभे प्रभु देखिवारे ॥ १५६ ॥

---

हो जाता था ॥१३९॥ कभी बड़े जोर से अट्टहास करके हँसते थे अथवा कभी उत्तरीय वस्त्र उतारकर शिर पर बाँधकर दिगंबर (नग्न) हो जाते थे ॥१४०॥ और कभी अपने अनन्त स्वरूप के आवेश में सर्प के तुल्य होकर गङ्गा के प्रवाह में दिखाई पड़ते थे ॥ १४१ ॥ अनन्त भाव से नित्यानन्दजी गङ्गा के भीतर घुसते हुए देखने में अत्यन्त मनोहर लगते थे ॥ १४२ ॥ नित्यानन्द की महिमा चिन्तन बुद्धि के परे है, तीनों भुवनों में कारुण्य की सीमा है, उनके समान दूसरा नहीं है ॥ १४३ ॥ इस प्रकार गङ्गा के बीच में घुसे २ नवद्वीप में महाप्रभु घाट पर जाकर निकले ॥१४४॥ अपने को सँभाल कर (सम्बरन) करके श्रीमान् नित्यानन्द पहिले आकर महाप्रभु के घर पहुँचे हैं ॥ १४५ ॥ आकर देखा कि शची माता को बारह उपवास हो गये थे केवल कृष्ण शक्ति से ही देह में श्वास था ॥ १४६ ॥ शचीदेवी यशोदा के भाव में विह्वल हो रही थी और निरन्तर नेत्रों से प्रेमजल की धारा बह रही थी ॥ १४७ ॥ शचीदेवी जिसको देखती थी उसी से पूछती थी कि क्या तुम सब मथुरावासी हो ? ॥ १४८ ॥ कहो २ राम कृष्ण कैसे हैं ? इस प्रकार कहकर उसी समय वे मूर्छित होकर गिर पड़ती थी ॥ १४९ ॥ शचीदेवी कहतीं—"अरे सुना वह सींगा बजाता है, क्या गोकुल में अक्रूर फिर आ गया है ? ॥ १५० ॥ इस प्रकार शची कृष्ण के विरह सागर में डूब रही थीं उन्हें शरीर का वाह्य ज्ञान नहीं था ॥ १५१ ॥ नित्यानन्द महाप्रभु उसी समय में पहुँचकर शची माता के चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया ॥१५२॥ सब भक्तवृन्द-नित्यानन्द को देखकर बड़े ऊँचे स्वर से क्रन्दन करने लगे और॥१५३॥ "बाप २" कहकर शचीदेवी मूर्छित हो गईं तथा कौन किस ओर पड़ा है ? यह पता नहीं ॥१५४॥ नित्यानन्द महाप्रभु ने सबको गोदी में लेकर सबके शरीर को प्रेमजल से सिंचन किया ॥ १५५ ॥ नित्यानन्द ने

शान्तिपुर गेला प्रभु आचार्येर घरे । आमि आसिलाङ तोमा सभारे निबारे ॥ १५७ ॥
चैतन्य विरहे जीर्ण सब भक्तगण । पूर्ण हैला शुनि नित्यानन्देर वचन ॥ १५८ ॥
सभेइ हइला अति आनन्दे विह्वल । उठिल परमानन्द कृष्ण कोलाहल ॥ १५९ ॥
ये दिवसे गेला प्रभु करिते सन्यास । से दिवस अवधि आइर उपवास ॥ १६० ॥
द्वादस-उपवास तान-नाहिक भोजन । चैतन्य-प्रभावे सबे, आछये जीवन ॥ १६१ ॥
देखि नित्यानन्द बड़ दुःखित-अन्तर । आइरे प्रबोधि बोले मधुर उत्तर ॥ १६२ ॥
'कृष्णेर रहस्य कोन् ना जान' बा तुमि । तोमारे वा किबा कहिबारे जानि आमि ॥१६३॥
तिलार्द्धे ओ चित्ते नाहि करिह विषाद । वेदेओ कि पाइबेन तोमार प्रसाद ॥ १६४ ॥
वेदे यारे निरवधि करे अन्वेषण । से प्रभु तोमार पुत्र-सभार जीवन ॥ १६५ ॥
हेन प्रभु वक्षे हाथ दिया आपनार । आपने सकल भार लइल तोमार ॥ १६६ ॥
व्यवहार परमार्थ यतेक तोमार । मोर दाय प्रभु बलियाछे, बार बार ॥ १६७ ॥
भाल हय येमते प्रभुसे सब जाने । सुखे थाक तुमि देह समर्पिया ताने ॥ १६८ ॥
शीघ्र गिया कर माता कृष्णेर रन्धन । आनन्दित हउक सकल भक्तगण ॥ १६९ ॥
तोमार हस्तेर अन्ने सभाकार आश । तोमार उपासे हय कृष्ण उपवास ॥ १७० ॥
तुमि ये नैवेद्य कर करिया रन्धन । मोहोर एकान्त ताहा खाइबारे मन ॥ १७१ ॥
तबे आइ शुनि नित्यानन्देर वचन । पासरि विरह गेला करिते रन्धन ॥ १७२ ॥

---

सब भक्तों से अति शुभ वाणी से कही कि "तुम सब ही गौरचन्द्र के दर्शन करने को शीघ्र चलो ॥ १५६ ॥ गौराङ्ग प्रभु शान्तिपुर में आचार्य के घर गये हैं और मैं तुम सबको लिवाने के लिये आया हूँ" ॥१५७॥ सब भक्त चैतन्य के विरह में जीर्ण हो रहे थे सो नित्यानन्दजी के वचनों को सुनकर संतुष्ट हुए ॥ १५८ ॥ सब लोग आनन्द में विह्वल हो गये और परम आनन्द देने वाला ( कृष्ण ) कहकर कोलाहल करने लगे ॥१५९॥ जिस दिन प्रभु ने सन्यास लेने को गमन किया था उसी दिन से माता शचीदेवी के उपवास हो रहे थे॥१६०॥श्रीशचीदेवी को बिना भोजन के कई दिन हो गये थे केवल चैतन्यदेव के प्रभाव से ही जीवन रहा था ॥ १६१ ॥ यह देखकर नित्यानन्दजी के हृदय में बड़ा दुःख हुआ, और माता को प्रबोध करके मधुर वचन बोले ॥ १६२ ॥ कृष्ण के कौन से रहस्य हैं जो तुम नहीं जानती हो तथा मुझे तुमसे क्या कहने योग्य ज्ञान है ? ॥ १६३ ॥ तिल मात्र भी मन में विषाद मत करो, कारण तुम्हारा सा अनुग्रह तो क्या वेदों को प्राप्त है ? ॥ १६४ ॥ निरवधि वेद जिसे ढूँढ़ते हैं वे ही चराचर के जीवन प्रभु आपके पुत्र हैं ( धन्य है आपको ) ॥ १६५ ॥ ऐसे प्रभु ने वक्षस्थल में हाथ देकर तुम्हारा सब भार अपने ऊपर ले लिया है ॥ १६६ ॥ "जितना तुम्हारा सांसारिक व पारमार्थिक भार है वह मेरे ऊपर है" श्रीप्रभु ने इस प्रकार बार २ कहा है ॥ १६७ ॥ जिस प्रकार तुम्हारा भला होगा, वह सदा गौरचन्द्र भली भाँति जानते हैं तुम सुख पूर्वक उनको देह सौंप दो ॥ १६८ ॥ हे माता ! जल्दी जाकर कृष्ण के निमित्त रसोई करो जिससे सब भक्तवृन्द आनन्दित हो ॥ १६९ ॥ तुम्हारे हाथ के अन्न की सबको आशा है तुम्हारे उपवास करने से कृष्ण का भी उपवास होता है ॥ १७० ॥ रसोई करके तुम जो नैवेद्य कराती तो उसे खाने का मेरा भी मन है ॥ १७१ ॥ तब नित्यानन्द

मोर दाय प्रभु बलियाछे बार-बार। आर बार आसि लोक करिमूँ उद्धार ॥ १७३ ॥
कृष्णेर नैवेद्य करि आइ पुण्यवती। अग्रे दिया नित्यानन्द स्वरूपेर प्रति ॥ १७४ ॥
तबे आइ सर्व-वैष्णवेरे आगे दिया। करिलेन भोजन सभारे सन्तोषिया ॥ १७५ ॥
परम-आनन्द हइलेन भक्तगण। द्वादश-उपासे आइ करिला भोजन ॥ १७६ ॥
तबे सर्व भक्तगण नित्यानन्द सङ्गे। प्रभु देखिवारे सज्ज हइलेन रङ्गे ॥ १७७ ॥
ए सब आख्यान यत नवद्वीपवासी। शुनि लेन "गौरचन्द्र हइला सन्यासी" ॥ १७८ ॥
शुनिञा अद्भुत नाम 'श्रीकृष्णचैतन्य'। सर्व लोक 'हरि' बलि बोले 'धन्य धन्य' ॥१७९॥
फुलिया-नगरे प्रभु आछेन शुनिञा। देखिते चलिला सर्व लोक हर्ष हञा ॥१८०॥
किवा वृद्ध किवा शिशु कि पुरुष नारी। आनन्दे चलिला सभे बलि 'हरिहरि' ॥१८१॥
पूर्वे ये पाषण्डी सब करिल निन्दन। ताराओ सपरि करे करिल गमन ॥१८२॥
गूढ़रूपे नवद्वीपे लइलेन जन्म। ना जानिञा निन्दा करिलाङ तान धर्म ॥१८३॥
एबे लइ गिया तान चरणे शरण। तबे सब अपराध हइबे खण्डन ॥१८४॥
एइमत बलि लोक महानन्दे याय। हेन नाहि जानि लोक कत पथे धाय ॥१८५॥
अनन्त अर्बुद लोक हैल खेया घाटे। खेयारि करिते पार पडिल सङ्कटे ॥१८६॥
केहो बान्धे भेला केहो घट बूके करे। केहोवा कलार गाछ धरिया सांतरे ॥१८७॥
कत्तक वा हइल लोक नाहि समुच्चय। ये येमते पारे सेइमते पार हय ॥१८८॥
सहस्र सहस्र लोक एको नाये चड़े। कथोदूर गिया मात्र नौका डूबि पड़े ॥१८९॥

---

के वचन सुनकर माता विरह भूलकर रसोई करने लगी ॥ १७२ ॥ पुण्यवती माता शचीदेवी ने कृष्ण को निवेदन करके प्रथम नित्यानन्द स्वरूप को भोजन कराये ॥ १७३-१७४ ॥ उसके पीछे वैष्णवों को प्रसाद देकर सबको सन्तुष्ट करके पीछे स्वयं भी भोजन किया ॥ १७५ ॥ भक्तवृन्द बड़े आनन्दित हुए, अहो शची माता ने द्वादस उपवास के पश्चात् भोजन किये ॥१७६॥ तब सब भक्तवृन्द नित्यानन्द के साथ गौरचन्द्र को देखने के लिये आनन्द से सजने लगे ॥१७७॥ जब समस्त नवद्वीपवासियों ने यह सब बात सुनी कि गौरचन्द्र सन्यासी होगये और॥१७८॥श्रीकृष्णचैतन्य ऐसा अद्भुत नाम हुआ ऐसा सुनकर सब हरि २ बोलकर धन्य-धन्य कहने लगे ॥ १७९ ॥ गौरचन्द्र फुलिया नगर में हैं यह सुनकर सब लोग आनन्दित होकर दर्शन करने चले॥१८०॥ क्या वृद्ध क्या बालक क्या पुरुष क्या स्त्री सब ही हरि २ कहकर आनन्द में चल दिये ॥ १८१ ॥ पहिले जिन पाखण्डियों ने निन्दा की थी उनने भी कुटुम्ब सहित गमन किया ॥ १८२ ॥ नवद्वीप धाम में गुप्त रूप से जन्म लेकर उनके धर्म-कर्म को न समझकर ही निन्दा की थी ॥ १८३ ॥ अब जाकर उनके चरण-कमलों की शरण लेंगे तब ही सब अपराध नष्ट होंगे ॥ १८४ ॥ इस प्रकार मनुष्य बड़े आनन्द के साथ जा रहे थे, मार्ग में कितने लोग दौड़ रहे थे यह जानना कठिन था ॥१८५॥ नौका के घाट पर अनन्त अर्बुद (असंख्य) मनुष्य हो गये थे, मल्लाह लोग पार करने के लिये संकट में पड़ गये ॥ १८६ ॥ कोई नौका विशेष बाँधते थे तो कोई घड़े को छाती के नीचे लगायकर तथा कोई केला के वृक्ष को पकड़कर तैर रहे थे ॥१८७॥ कितने लोग जमा हुए यह कुछ निश्चय नहीं है और जिससे जैसे हो सका उसी प्रकार पार हुआ ॥ १८८ ॥

भासे मत्तलोक 'हरि' बोले उच्चस्वरे । तथापिह चित्ते केहो विषाद ना करे ॥१९०॥
हेन से आनन्द जन्मि-आछये अन्तरे । सर्व लोक भासे येन आनन्द सागरे ॥१९१॥
ये ना जाने सांतरिते, सेहो भासे सुखे । ईश्वर-प्रभावे कूल पाय विनि-दुखे ॥ १९२ ॥
कत दिगे लोक पार हय नाहि जानि । सबे एक चतुर्दिगे शुनि हरि ध्वनि ॥ १९३ ॥
एइ मत आनन्दे चलिल सब लोक । पासरिया सबे क्षुधा तृष्णा गृह शोक ॥ १९४ ॥
आइल सकल लोक फुलिया-नगरे । ब्रह्माण्ड स्पर्शिया 'हरि' बोले उच्च स्वरे ॥ १९५ ॥
शुनिया अपूर्व अति उच्च हरि ध्वनि । बाहिर हइला सर्व न्यासि-शिरोमणि ॥ १९६ ॥
कि अपूर्व शोभा से कहन ना जाय । कोटि चन्द्र येन आसि करिल उदय ॥१९७॥
सर्वदा श्रीमुखे हरे कृष्ण हरे हरे । बलिते आनन्दधारा निरवधि झरे ॥ १९८ ॥
चतुर्दिगे सर्वलोक दण्डवत् हय । के कार उपरे पड़े नाहि समुच्चय ॥ १९९ ॥
कन्टक भूमिते लोक नाहि करे भय । आनन्दित सर्वलोक दण्डवत् हय ॥ २०० ॥
सर्व लोके त्राहि त्राहि बोले हाथ तुलि । एइ मत करे गौरचन्द्र कुतूहली ॥ २०१ ॥
अनन्त अर्बुद लोक एतसे हइल । कि प्रान्तर किवा ग्राम सकल पूरिल ॥ २०२ ॥
नाना ग्राम हैते लोक लागिल आसिते । केहो नाहि याय घरे से मुख देखिते ॥ २०३ ॥
हइते लागिल बड़ लोकेर गहल । फुलिया-नगर पूर्ण हइल सकल ॥ २०४ ॥
देखि गौरचन्द्रेर श्रीमुख मनोहर । सर्वलोक पूर्ण हैल बाहिर अन्तर ॥ २०५ ॥

---

हजारों २ लोग एक ही नौका पर चढ़ जाते थे जिससे कुछ दूर पर ही जाकर नाव डूब जाती ॥१८९॥ जल में गिरे हुए सभी मनुष्य ऊँचे स्वर से हरि-हरि बोलते थे तो भी किसी के चित्त में विषाद नहीं था ॥१९०॥ उनके अन्तर में ऐसा प्रेमानन्द उत्पन्न हो रहा था जैसे सब लोग आनन्द सागर में डूब रहे हों ॥ १९१ ॥ जो तैरना नहीं जानते हैं वे भी सुख पूर्वक पानी में पड़े थे, अहो ईश्वर इच्छा से बिना दुःख के पार पहुँच रहे थे ॥१९२॥ मनुष्य कितनी ओर से पार हो जा रहे थे जान नहीं पड़ता था केवल चारों ओर से एक हरि ध्वनि सुनाई दे रही थी ॥ १९३ ॥ इस भाँति सब लोग तृष्णा, गृह कर्म व शोक आदि को भूलकर आनन्द में जा रहे थे ॥ १९४ ॥ ब्रह्माण्ड स्पर्शकारी ऊँचे स्वर से हरि २ बोलते २ सब लोग फुलिया नगर में आये हैं ॥ १९५ ॥ अत्यन्त अपूर्व उच्च हरि ध्वनि सुनकर सब सन्यासियों में शिरोमणि ( श्रीगौर ) बाहिर आये ॥ १९६ ॥ कहते नहीं बनता था जैसे करोड़ों चन्द्रमा एक साथ उदय हुए हों कैसी अपूर्व शोभा थी ॥१९७॥ सदा श्रीमुख कमल से "हरे कृष्ण हरे हरे" कहते २ नेत्रों से निरन्तर आनन्द की अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी ॥ १९८ ॥ चारों ओर से सब लोग दण्डवत् प्रणाम कर रहे थे कौन किसके ऊपर गिरता था इसका कोई पता नहीं ? ॥ १९९ ॥ कांटों वाली भूमि से भी लोग भय नहीं करते थे आनन्दित होकर सब लोग दण्डवत् कर रहे थे ॥ २०० ॥ मनुष्य हाथ उठाय २ कर "रक्षा करो रक्षा करो" कह रहे थे, गौरचन्द्र ऐसा कुतूहल ( खेल ) कर रहे थे ॥ २०१ ॥ इतने असंख्य मनुष्य एकत्र हो गये कि क्या मैदान और क्या गाँव सब जगह भर गये ॥ २०२ ॥ उस मुख कमल के दर्शन के लिये अनेक गाँवों से लोग आने लगे, परन्तु कोई घर को लौटकर नहीं जाता था ॥ २०३ ॥ बहुत लोगों की भीड़ होने लगी जिससे फुलिया नगर सम्पूर्ण भर

तबे प्रभु कृपा दृष्टि करिया सभारे । चलि लेन शान्तिपुर-आचार्येर घरे ॥ २०६ ॥
सम्भ्रमे आचार्य देखि निज प्राणनाथ । पादपद्मे पड़िलेन हइ दण्डपात ॥ २०७ ॥
आर्तनादे लागिलेन क्रन्दन करिते । ना छाड़ेन पादपद्म दुइ बाहु हैते ॥ २०८ ॥
श्रीचरण अभिषेक करि प्रेम जले । आनन्दे मूर्च्छित हइलेन पद तले ॥ २०९ ॥
दुइ हस्ते तुलि प्रभु लइलेन कोले । आचार्य भासिला ठाकुरेर प्रेम जले ॥ २१० ॥
स्थिर हइ ठाकुर वसिला कथोक्षणे । उठिल परमानन्द अद्वैत भवने ॥ २११ ॥
दिगम्बर शिशुरूप अद्वैत तनय । नाम श्रीअच्युतानन्द महा ज्योतिर्मय ॥ २१२ ॥
परम सर्वज्ञ तिंहो अतर्क्य प्रभाव । योग्य अद्वैतेर पुत्र सेइ महाभाग ॥ २१३ ॥
धूलाय धूसर अङ्ग हासिते हासिते । जानिञा आइला प्रभु-चरण देखिते ॥ २१४ ॥
आसिया पड़िला गौरचन्द्र-पद तले । धूलार सहित प्रभु लइलेन कोले ॥ २१५ ॥
प्रभु बोले 'अच्युत आचार्य मोर पिता । से सम्बन्धे तोमाय आमाय दुइ-भ्राता' ॥ २१६ ॥
अच्युत बोलेन 'तुमि दैवे जीव-सखा । सबे के तोमार बाप एइ नाहि लेखा' ॥२१७॥
हासे प्रभु भक्तगण अच्युत-वचने । विस्मय सभार बड़ उपजिल मने ॥ २१८ ॥
'ए सकल कथात शिशुर कभू नय । ना जानि जन्मियाछेन कोन् महाशय ?' ॥२१९॥
हेनइ समये श्रीअनन्त नित्यानन्द । आइला नदिया हैते सङ्गे भक्तवृन्द ॥ २२० ॥
श्रीवासादि-भक्तगण देखिया ठाकुर । लागिलेन हरिध्वनि करिते प्रचुर ॥ २२१ ॥

---

गया ॥ २०४ ॥ श्रीगौरचन्द्र के मनोहर श्रीमुख दर्शन करके सब लोग बाहिर-भीतर से पूर्ण आनन्द मग्न हो गये ॥ २०५ ॥ तब गौरचन्द्र ने सबके ऊपर कृपा दृष्टि की और शान्तिपुर में आचार्य के घर के लिये चल दिये ॥२०६॥ एकाएक (सम्भ्रम) से अपने प्राणनाथ को देखकर अद्वैत आचार्य दण्डवत् होकर चरण-कमलों में गिरे तथा ॥२०७॥ आर्त स्वर से रोने लगे और दोनों भुजाओं से चरण-कमलों को पकड़कर छोड़ते नहीं थे ॥ २०८ ॥ प्रेमाश्रु जल से श्रीचरण-कमलों का अभिषेक करके चरणों के नीचे ही आनन्द से मूर्च्छित हो गये ॥ २०९ ॥ दोनों हाथों से उठाकर आचार्य को प्रभु ने गोदी में ले लिया और गौरचन्द्र के प्रेमजल से भीज रहे हैं ॥ २१० ॥ कुछ क्षण में गौरचन्द्र स्थिर होकर बैठे तब अद्वैत भवन में विशेष प्रेमानन्द उठ पड़ा ॥ २११ ॥ महा ज्योतिस्वरूप श्रीअच्युतानन्द नामक एक दिगम्बर ( वस्त्र रहित ) शिशु श्रीअद्वैत के पुत्र थे ॥ २१२ ॥ वे महाभाग बड़े सर्वज्ञ थे तथा उनका प्रभाव तर्क रहित था (वास्तव में) आपही अद्वैत के योग्य पुत्र थे ॥ २१३ ॥ अङ्ग में धूलि लिपटी थी तथा हँस रहे थे, प्रभु को आया हुआ जानकर चरण दर्शन करने को आये ॥ २१४ ॥ आकर गौरचन्द्र के चरणों में गिर पड़े तब गौरचन्द्र ने धूलि में लिपटा हुआ ही गोद में ले लिया ॥ २१५ ॥ प्रभु ने कहा "अच्युत ! आचार्य मेरे पिता हैं उस सम्बन्ध से मैं और तुम दोनों भाई हैं" ॥ २१६ ॥ अच्युत ने कहा "भाग्यवश ही आप जीवों के सखारूप में प्रकट हुए थे आपका पिता कोई है इसका लेख ( शास्त्र में ) नहीं है ॥ २१७ ॥ गौरचन्द्र व भक्तवृन्द अच्युतानन्द के वचन को सुनकर हँस पड़े तथा सबके मनमें बड़ा विस्मय उत्पन्न हुआ ॥ २१८ ॥ यह सब शब्द शिशु के कभी नहीं हैं, न जाने किसी महाशय ने यह जन्म लिया है ॥ २१९ ॥ उसी समय श्रीअनन्तदेव नित्यानन्दजी भक्तवृन्दों के सा

दण्डवत हइया सकल भक्तगण । क्रन्दन करेन सभे धरि श्रीचरण ॥ २२२ ॥
सभारे करिला प्रभु आलिङ्गन-दान । सभेइ प्रभुर निज-प्राणेर समान ॥ २२३ ॥
आर्तनादे क्रन्दन करेन भक्तगण । शुनिआ पवित्र हय सकल भुवन ॥ २२४ ॥
कृष्ण प्रेमानन्दे कान्दे ये सुकृति जन । से ध्वनि श्रवणे सर्व-बन्ध विमोचन ॥ २२५ ॥
चैतन्य कृपाय व्यक्त हैल हेन धन । ब्रह्मादि-दुर्लभ रस भुन्जे ये-ते-जन ॥ २२६ ॥
भक्तगण देखि प्रभु परम-हरिषे । नृत्य आरम्भिला प्रभु निज-प्रेम-रसे ॥ २२७ ॥
सत्वरे गाइते लागिलेन भक्तगण । 'बोल-बोल' बलि प्रभु गर्जे घनेघन ॥ २२८ ॥
धरिया, बूलेन नित्यानन्द महाबली । अलक्षिते अद्वैत लयेन पद धूली ॥ २२९ ॥
अश्रु, कम्प, पुलक, हुङ्कार, अट्टहास । किबा से अद्भुत अङ्ग भङ्गीर प्रकाश ॥ २३० ॥
किबा से मधुर पद-चालन-भङ्गिमा । किबा से श्रीहस्त-चालनादिर महिमा ॥ २३१ ॥
कि कहिब से वा प्रेमरसेर माधुरी । आनन्दे तुलिया बाहु बोले 'हरिहरि' ॥ २३२ ॥
रसमय नृत्य अति अद्भुत-कथन । देखिया परमानन्दे डुबे भक्तगण ॥ २३३ ॥
हाराइ याछिला प्रभु सर्व भक्तगण । हेन प्रभु पुनर्वार दिला दरशन ॥ २३४ ॥
आनन्दे नाहिक बाह्य काहारो शरीरे । प्रभु वेढ़ि सभेइ उल्लासे नृत्य करे ॥ २३५ ॥
केवा कार गाये पड़े केवा कारे धरे । केवा कार चरण धरिया वक्षे करे ॥ २३६ ॥
केवा कारे धरि कान्दे, केवा किबा बोले । केहो किछु ना जाने प्रेमेर कुतूहले ॥ २३७ ॥

---

नवद्वीप से आ पहुँचे ॥ २२० ॥ श्रीवासादि भक्तवृन्द ने गौरचन्द्र को देखकर विशेष रूप से हरिध्वनि करना आरम्भ किया ॥ २२१ ॥ सब भक्तवृन्द ने दण्डवत् होकर श्रीगौर के चरण-कमलों को पकड कर रुदन करने लगे ॥ २२२ ॥ श्रीगौर प्रभु ने सबको आलिङ्गन किया कारण कि सब ही तो उनके अपने प्राणों के समान हैं ॥२२३॥ आर्तनाद से भक्तवृन्द के रुदन सुनकर समस्त भुवनवासी पवित्र हो गये ॥२२४॥ कृष्ण प्रेमानन्द से सुकृतिजन रोते हैं इस ध्वनि के सुनने से सब बन्धन छूट जाते हैं ॥ २२५ ॥ ऐसा प्रेमधन चैतन्यचन्द्र की कृपा से ही प्रकट हुआ था जो ब्रह्मादिकों को दुर्लभ रस है उसे साधारण प्राणी भोग रहे थे ॥ २२६ ॥ श्रीप्रभु ने भक्तवृन्द को देखकर अपने निज प्रेमरस में बड़े हर्ष से नाचना प्रारम्भ किया ॥ २२७ ॥ तब शीघ्र ही भक्तवृन्द गाने लगे और गौरचन्द्र "बोलो २" कहकर बार-बार वेग से गर्जने लगे ॥ २२८ ॥ महाबली नित्यानन्दजी उन्हें पकड़कर घूमने लगे तब श्रीअद्वैतजी ने प्रभु की चरण रज छुपकर ले ली ॥ २२९ ॥ अश्रु-कम्प-पुलक-हुङ्कार-अट्टहास आदि कैसे २ अद्भुत अङ्ग-भंगी का प्रकाश कर रहे थे ॥ २३० ॥ अहो चरणों के चलाने की भङ्गिमा (टेढ़ाई) कैसी मधुर थी तथा श्रीहस्त चालन की महिमा कैसी अद्भुत थी ॥ २३१ ॥ और आनन्द से दोनों बाहु उठाकर हरि २ बोलने की उस प्रेम माधुरी का क्या कहना ? ॥२३२॥ रसमय नृत्य की तो अति अद्भुत कथा है जिसे देखकर भक्तवृन्द बड़े आनन्द सागर में मग्न हो रहे थे ॥ २३३ ॥ सब भक्तवृन्द तो गौरप्रभु को खो ही चुके थे ऐसे प्रभु ने पुनर्वार कृपा करके ही दर्शन दिया था ॥ २३४ ॥ इस आनन्द में किसी को शरीर में बाह्य ज्ञान नहीं था तथा सब लोग प्रभु को घेरकर प्रसन्नता से नाच रहे थे २३५ कोई किसी के शरीर पर गिरता तो कोई किसी को पकड़ता या अथवा कोई किसी के

से पार्षदे नृत्य करे वैकुण्ठ-ईश्वर । ए मत अपूर्व हय पृथिवी-भितर ।। २३८ ।।
"हरिबोल हरिबोल हरिबोल भाइ' । इहा बइ आर किछु शुनिते ना पाइ ।। २३९ ।।
कि आनन्द हइल से अद्वैत भवने । से मर्म जानेन सबे सहस्र वदने ।। २४० ।।
आपने ठाकुर तबे धरि जने जने । सर्व-वैष्णवेरे करे प्रेम-आलिङ्गने ।। २४१ ।।
पाइया वैकुण्ठनाथेर आलिङ्गन । विशेष आनन्दे मत्त हय भक्तगण ।। २४२ ।।
'हरि' बलि सर्व-गणे करे सिंहनाद । पुनः पुनः बाढ़े आरो सभार उन्माद ।। २४३ ।।
सांगोपाङ्गे नृत्य करे वैकुण्ठेर पति । पद भरे टलमल करे वसुमती ।। २४४ ।।
नित्यानन्द महाप्रभु परम-उद्दाम । चैतन्य वेढ़िया नाचे महा ज्योतिर्धाम ।। २४५ ।।
आनन्दे अद्वैत नाचे करये हुङ्कार । सुमेइ-चरण धरे-जे पाय याहार ।। २४६ ।।
नवद्वीप येन हैल आनन्द-प्रकाश । सेइमत नृत्य, गीत, सकल विलास ।। २४७ ।।
कथोक्षणे महाप्रभु श्रीगौरसुन्दर । स्वानुभावे वैसे विष्णु खट्टार ऊपर ।। २४८ ।।
जोड़ हाथे सभे रहिलेन चारि-भिते । प्रभु लागिलेन निज तत्त्व प्रकाशिते ।। २४९ ।।
मुञि कृष्ण मुञि राम मुञि नारायण । मुञि मत्स्य मुञि कूर्म वराह वामन ।। २५० ।।
मुञि पृश्निगर्भ हयग्रीव महेश्वर । मुञि बौद्ध कल्कि हंस मुञि हलधर ।। २५१ ।।
मुञि नीलाचल-चन्द्र कपिल नृसिंह । दृश्यादृश्य सब मोर चरणेर भृङ्ग ।। २५२ ।।
मोर यश गुण ग्राम बोले सर्ववेदे । मोहोरे से अनन्त ब्रह्माण्ड कोटि सेवे ।। २५३ ।।

---

चरण पकड़कर अपनी छाती से लगाता था ।। २३६ ।। कोई किसी को पकड़कर रोता था कोई अंट-संट बोलता था और कोई आवेश (प्रेम) में बेसुध हो रहा था ।। २३७ ।। पार्षदों सहित वैकुंठनाथ नाच रहे थे ऐसा अपूर्व आनन्द पृथ्वी पर हो रहा था ।। २३८ ।। भाई हरि बोलो ! हरि बोलो ! इसके अतिरिक्त और कुछ सुन नहीं पड़ता था ।। २३९ ।। अद्वैत भवन में क्या विलक्षण आनन्द हुआ उसके भेद को केवल सहस्र-वदन ( अनन्तदेव ) ही जानते हैं ।। २४० ।। इसके पीछे स्वयं गौरचन्द्र ने प्रत्येक आला को पकड़कर सभी वैष्णवों को प्रेमालिङ्गन दिया ।। २४१ ।। वैकुण्ठनायक ( गौरचन्द्र ) का आलिङ्गन पाकर भक्तवृन्द विशेष आनन्द में मत्त हो गये ।। २४२ ।। हरि २ कहकर सब भक्तों ने सिंह की तरह हुङ्कार की तथा सभी को पुनः पुनः और अधिक उन्माद बढ़ने लगा ।। २४३ ।। वैकुण्ठनाथ (गौरचन्द्र) अंग व उपांग के साथ नृत्य करते थे तो चरणों की पटक से पृथ्वी डोलती थी ।।२४४।।महा ज्योतिस्वरूप नित्यानन्द महाप्रभु गौरचन्द्र को घेरकर बड़ा उद्दण्ड नृत्य कर रहे थे ।। २४५ ।। अद्वैतप्रभु हुङ्कार करके आनन्द में नाचते थे तथा जो जिसके चरण पाते धर लेते थे ।। २४६ ।। जैसा नवद्वीप में आनन्द प्रकाशित हुआ था उसी प्रकार नृत्य गीत आदि सब विलास यहाँ किये ।। २४७ ।। कुछ क्षण में श्रीमहाप्रभु गौरसुन्दर निज भाव में ( ईश्वर भाव से ) विष्णु के सिंहासन पर बैठे हैं ।। २४८ ।। सब भक्तवृन्द चारों ओर हाथ जोड़कर खड़े हो गये तब गौरचन्द्र अपने तत्त्व का प्रकाश करने लगे ।। २४९ ।। मैं ही कृष्ण हूँ, मैं ही राम हूँ, मैं ही नारायण हूँ, मैं ही मत्स्य हूँ और मैं ही कूर्म वराह-वामन अवतारी हूँ ।। २५० ।। मैं ही पृश्निगर्भ-हयग्रीव-महेश्वर-बौद्ध-कल्कि-हंस-हलधर ( बलराम ) नीलाचल-चन्द्र, कपिल, नृसिंह सब मैं ही हूँ और दृश्य-अदृश्य-प्राकृत-अप्राकृत सब मेरे चरण-

मोर यश गुण ग्राम बोले सर्व वेदे । मोहोरे से अनन्त ब्रह्माण्ड कोटि सेवे ॥२५३॥
मुजि सर्व-काल रूपी भक्त गण बिने । सकल आपद खण्डे' मोहोर स्मरणे ॥२५४॥
द्रौपदीर लज्जा हैते मुजि उद्धारिलूँ । जउ गृहे मुजि पञ्च-पाण्डवे राखिलूँ ॥२५५॥
वृकासुर वधि मुजि राखिलूँ शङ्कर । मुजि उद्धारिलूँ मोर गजेन्द्र किङ्कर ॥२५६॥
मुजि से करिलूँ प्रह्लादेर विमोचन । मुजि से करिलूँ गोपवृन्देरे रक्षण ॥२५७॥
मुजि से करिलूँ पूर्व अमृत मन्थन । वञ्चिया असुर, रक्षा कैलूँ देवगण ॥२५८॥
मुजि से वधिलूँ मोर भक्त द्रोही कंस । मुजि से करिलूँ दुष्ट रावण निर्वंश ॥२५९॥
मुजि से धरिलूँ वाम-हाथे गोवर्धन । मुजि से करिलूँ कालि-नागेर दमन ॥२६०॥
मुजि करों सत्ययुगे तपस्या-प्रचार । त्रेता युगे यज्ञ लागि करों अवतार ॥२६१॥
एइ मुजि अवतीर्ण हइया द्वापरे । पूजा धर्म बुझाइलूँ सकल लोकेरे ॥२६२॥
कत मोर अवतार वेदेओ ना जाने । सम्प्रति आइलूँ मुजि कीर्तन कारणे ॥२६३॥
कीर्तन- आरम्भे प्रेम भक्तिर विलास । अतएव कलियुगे आमार प्रकाश ॥२६४॥
सर्व वेदे पुराणे आश्रय मोर चाय । भक्तेर आश्रमे मुजि थाकों सर्वदाय ॥२६५॥
भक्त बइ आमार द्वितीय आर नाइ । भक्त मोर पिता माता बन्धु पुत्र भाइ ॥२६६॥
यद्यपि स्वतन्त्र आमि स्वतन्त्र-विहार । तथापिह भक्तवश-स्वभाव आमार ॥२६७॥
तोमरा से जन्म-जन्म संहति आमार । तोमा 'सभा' लागि मोर सर्व अवतार ॥२६८॥

---

कमलों के रसास्वादक भृङ्ग ( दास ) हैं ॥२५१-२५२॥ सब वेद मेरे ही यश तथा गुण समूह का वर्णन करते हैं और अनन्तकोटि ब्रह्माण्डवासी मेरी ही सेवा करते हैं ॥२५३॥ मैं भक्तों को छोड़कर सबका कालस्वरूप हूँ, मेरे स्मरण करने से सब आपत्ति नष्ट होती हैं ॥ २५४ ॥ द्रौपदी की लज्जा से मैंने ही उद्धार किया लाख के घर से पाँचों पाण्डवों की रक्षा करने वाला मैं ही हूँ ॥ २५५ ॥ वृकासुर को मारकर शङ्कर की रक्षा करने वाला मैं हूँ अपने दास गजेन्द्र का उद्धार करने वाला मैं ही हूँ ॥ २५६ ॥ मैंने ही प्रह्लाद को दुःखों से छुड़ाया मैं ही गोपवृन्द की रक्षा करने वाला हूँ ॥ २५७ ॥ पूर्वकाल में मैंने ही अमृत मन्थन किया और असुरों को हटा कर देवताओं को अमृत देकर रक्षा की थी ॥ २५८ ॥ मैंने ही अपने भक्तों के द्रोही कंस का वध किया था मैंने ही दुष्ट रावण का नाश किया था ॥ २५९ ॥ मैंने ही बायें हाथ पर गोवर्द्धन धारण किया था, मैंने ही कालिय नाग का दमन किया था ॥ २६० ॥ सत्ययुग में तपस्या का प्रचार मैं ही करता हूँ त्रेता युग में यज्ञ के निमित्त अवतार लेता हूँ ॥ २६१ ॥ वही मैं ही द्वापर में अवतीर्ण होकर सब लोकों को पूजा रूप धर्म का बोध कराता हूँ ॥ २६२ ॥ मेरे कितने अवतार हैं इसको वेद भी नहीं जानता, इस समय मैं कीर्तन प्रचार के कारण से आया हूँ ॥२६३॥ कीर्तन के आरम्भ होने से प्रेम भक्ति का विलास: आनन्द होता है इसी से कलियुग में मेरा प्रकाश हुआ है ॥२६४॥ वेद-पुराण सब मेरा आश्रय चाहते हैं भक्तों के आश्रम में मेरा निवास सर्वदा रहता है ॥ २६५ ॥ भक्तों के बिना मेरा और दूसरा कोई नहीं है भक्त ही मेरे पिता-बन्धु, पुत्र व भाई हैं ॥ २६६ ॥ यद्यपि मैं स्वतन्त्र हूँ मैं स्वतन्त्र विहारी हूँ तथापि भक्तों के वशीभूत रहने का मेरा स्वभाव है ॥ २६७ ॥ तुम सब मेरे जन्म-जन्म के सङ्गी हो तुम ही सबके

एइ मत प्रभु तत्त्व कहे करुणाय शुनि सब भक्तगण कान्दे ऊर्द्ध रय । २७०
पुनः पुन सभे दण्ड प्रणाम करिया उठेन पडेन काकु करेन कान्दिया २७१
कि आनन्द हइल से अद्वैतेर घरे ये रस हइल पूर्वे नदिया नगरे १७२
पूर्ण मनोरथ हइलेन भक्तगण । यतेक पूर्वेर दुःख हइल खण्डन ॥२७३॥
प्रभु से जानेन भक्त दुःख खण्डाइते । हेन प्रभु दुःखी जीव ना भजे केमते ॥२७४॥
करुणासागर गौरचन्द्र महाशय । दोष नाहि देखे प्रभु गुण मात्र लय ॥२७५॥
क्षणेके ऐश्वर्य सम्वरिया महाधीर । बाह्य प्रकाशिया प्रभु हइलेन स्थिर ॥२७६॥
सभारे लइया प्रभु गङ्गा स्नाने गेला । जाह्नवी ते बहुविध जल क्रीड़ा कैला ॥२७७॥
सभार सहित आइलेन करि स्नान । तुलसी रे प्रदक्षिण करि जल दान ॥२७८॥
विष्णु गृहे प्रदक्षिण नमस्कार करि । सभा लइ भोजने वसिला गौरहरि ॥२७९॥
मध्ये वसिलेन प्रभु नित्यानन्द सङ्गे । चतुर्दिगे सर्व-गण वसिलेन रङ्गे ॥२८०॥
सर्वाङ्गे चन्दन-प्रभु प्रफुल्ल-वदन । भोजन करेन चतुर्दिगे भक्तगण ॥२८१॥
वृन्दावन-मध्ये येन गोपगण-सङ्गे । राम कृष्ण भोजन करेन सेइ रङ्गे ॥२८२॥
सेइ सब कथा प्रभु सभारे कहिया । भोजन करेन प्रभु हासिया हासिया ॥२८३॥
कार शक्ति आछे इहा सब वर्णिवारे । ताहार कृपाय येइ बोलान याहारे ॥२८४॥

---

निमित्त मेरे सब अवतार होते हैं ॥ २६८ ॥ तुम सबको तिलमात्र छोड़कर मैं कहीं भी नहीं रहता हूँ तुम यह सब सत्य जानो ॥ २६९ ॥ इस प्रकार श्रीप्रभु गौरचन्द्र ने कृपा करके अपना तत्त्व वर्णन किया जिसे सुनकर सब भक्तवृन्द ऊँचे स्वर से रोने लगे ॥ २७० ॥ बार-बार सब लोग दण्डवत् प्रणाम करके उठते गिरते थे तथा रो-रो कर और बिनती करते थे ॥२७१॥ जो प्रेमानन्द पहिले नदिया नगर में हुआ था आज उसी प्रेमानन्द की वर्षा श्रीअद्वैत के घर में हुई ॥ २७२ ॥ भक्तवृन्द के मनोरथ पूर्ण हुए तथा पिछले समस्त दुःख नष्ट हो गये ॥ २७३ ॥ प्रभु ही भक्तों का दुःख नष्ट कराना जानते हैं—ऐसे प्रभु को भी दुखी जीव नहीं भजते ॥ २७४ ॥ श्रीमान् गौरचन्द्र करुणा के समुद्र हैं तथा महान् हृदय वाले हैं ॥ २७५ ॥ कुछ क्षण में महा धैर्यवान् प्रभु ने ऐश्वर्य छुपा लिया और बाह्य ज्ञान प्रकाश करके स्थिर हो गये ॥ २७६ ॥ सब भक्तों को लेकर गौरचन्द्र ने गङ्गा स्नान के लिये गमन किया और जान्हवी में बहुत प्रकार की जल-क्रीड़ा की ॥२७७॥ सब के साथ स्नान करके आये और तुलसी में जल देकर प्रदक्षिणा की ॥२७८॥ विष्णु-मन्दिर की परिक्रमा करके नमस्कार की तब सबको लेकर श्रीगौरहरि भोजन करने बैठे ॥ २७९ ॥ गौरहरि नित्यानन्दजी के साथ बैठे थे तथा चारों ओर सब भक्तवृन्द प्रेम से बैठे थे ॥ २८० ॥ श्रीप्रभु के सर्वाङ्ग में चन्दन लग रहा था तथा भक्तों से चारों ओर से घिरे हुए बड़े प्रसन्न मुद्रा में भोजन कर रहे थे ॥ २८१ ॥ जिस प्रकार वृन्दावन में गोपवृन्द के साथ श्रीरामकृष्ण भोजन करते थे उसी आनन्द से यहाँ भी कर रहे थे ॥ २८२ ॥ प्रभु यही सब बात सबसे कहते जाते थे तथा भोजन करते जाते थे ॥ २८३ ॥ यह किसकी शक्ति है जो यह सब वर्णन कर सके-जिस पर कृपा करें वही कह सकता है ॥ २८४ ॥ भोजन करके प्रभु इटे है

मध्य मध्य वृद्ध सब हैला शिशु मति । एइ मत हय विष्णु भक्तिर शकति ॥२८६॥
ये सुकृति जन शुने ए सब आख्यान । ताहारे मिलये गौरचन्द्र भगवान् ॥२८७॥
पुन प्रभु-सङ्गे भक्तगण-दरशन । पुनर्बार ऐश्वर्य्य आवेशे सङ्कीर्त्तन ॥२८८॥
सर्व्व वैष्णवेर प्रभु संहति भोजन । इहा ये शुनये तारे मिले प्रेम धन ॥२८९॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान ॥२९०॥

इति श्रीचैतन्य भागवते अन्त्य खण्डे आचार्य्यगृहे पुनः सम्मेलनं नाम
प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

## अथ द्वितीयोऽध्यायः

जय जय गौरचन्द्र जय सर्व्व प्राण । जय दुष्ट भयङ्कर जय शिष्ट-त्राण ॥१॥
जय शेष रमा अज भवेर ईश्वर । जय कृपासिंधु दीनबन्धु न्यासिवर ॥ २ ॥
भक्तगोष्ठी-सहित गौराङ्ग जय जय । कृपा कर प्रभु येन तोहे मन रय ॥३॥
हेन मते श्रीगौरसुन्दर शान्ति पुरे । करिला अशेष रङ्ग अद्वैतेर घरे ॥ ४ ॥
बहुविध आपन रहस्य कथा-रङ्गे । सुखे प्रभु रात्रि गोङाइला भक्त-सङ्गे ॥५॥
पोहाइल निशा प्रभु करि नित्य कृत्य । वसिलेन चतुर्दिगे वेढ़ि सब भृत्य ॥६॥
प्रभु बोले आमि चलिलाङ नीलाचले । किछु दुःख ना भाविह तोमरा-सकले ॥७॥
नीलाचल चन्द्र देखि आमि पुनर्बार । आसिया हइब सङ्ग तोमा सभाकार ॥८॥

---

थे कि भक्तगण पात्र में बचा हुआ महाप्रसाद लूटकर खा गये ॥ २८५ ॥ शान्त शिष्ट बुद्धिमान् वृद्धगण भी सब शिशु-बुद्धि से हो गये विष्णु-भक्ति की ऐसी ही शक्ति है ॥ २८६ ॥ जो पुण्यवान यह सब कथायें सुनेंगे उनको श्रीगौरचन्द्र भगवान् अवश्य मिलेंगे ॥२८७॥ भक्तगण को श्रीप्रभु का दर्शन, पुनर्वार ऐश्वर्य आवेश से संकीर्तन और सब वैष्णवों का प्रभु के साथ में भोजन इन प्रसङ्गों को जो सुनेंगे तिनको प्रेम-धन अवश्य मिलेगा ॥ २८८-२८९ ॥ श्रीवृन्दावनदास ठाकुर (ग्रन्थकार) श्रीकृष्णचैतन्य एवं नित्यानन्दचन्द्र को जानकर अर्थात् हृदय में धारण करके उनके चरण युगलों की महिमा गान करते हैं ॥ २९० ॥

सब जीवों के प्राण गौरचन्द्र की जय हो २ दुष्टों को भयदाता व शिष्टों के रक्षक की जय हो २ ॥१॥ शेष-रमा-ब्रह्मा-शिव के ईश्वर की जय हो सन्यासियों में श्रेष्ठ कृपासिन्धु दीनबन्धु की जय हो २ ॥२॥ भक्तमण्डली के सहित श्रीगौराङ्गदेव की जय हो २ हे प्रभो ! ऐसी कृपा करें जिसमें तुम में मन स्थिर रहे ॥ ३ ॥ इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर ने शान्तिपुर में श्रीअद्वैत के घर पर अनेक प्रकार से आमोद-प्रमोद किये ॥ ४ ॥ श्रीगौरचन्द्र ने अपने अनेक प्रकार की रहस्य कथाओं के रङ्ग प्रसङ्ग में भक्तवृन्दों के साथ सुख से सभी रात्रि व्यतीत की ॥ ५ ॥ रात्रि व्यतीत होने पर प्रभु ने नित्य कृत्य किया तथा सेवकगण उन्हें चारों ओर से घेरकर बैठ गये ॥ ६ ॥ प्रभु ने कहा मैं नीलाचल (जगन्नाथपुरी) को जाता हूँ तुम सब मनमें कुछ दुःख न मानना ॥ ७ ॥ मैं नीलाचलचन्द्र ( जगन्नाथ ) के दर्शन करके तुम सबों के साथ शीघ्र ही दुबारा

सभे गिया सुखे गृहे करह कीर्तन । जन्म जन्म तुमि सब आमार जीवन ॥९॥
भक्तगण बोले प्रभु ये तोमार इच्छा । कार शक्ति ताहा करिबारे पारे मिछा ॥१०॥
तथापिह हइयाछे दुर्घट समय । से राज्ये एखने केहो पथ नाहि वय ॥११॥
दुइ राजाय हइयाछे अत्यन्त बिवाद । महायुद्ध स्थाने स्थाने परम प्रमाद ॥१२॥
यावत उत्पात किछु उपशम हय । तावत विश्राम कर यदि चित्ते लय ॥१३॥
प्रभु बोले ये से केने उत्पात ना हय । अवश्य चलिब आमि करिल निश्चय ॥१४॥
बूझि लेन अद्वैत प्रभुर चित्त वृत्त । चलिबेन नीलाचले, नहिला निवृत्त ॥१५॥
जोड़ हाथे सत्य कथा लागिला कहिते । के पारे तोमार पथ-निरोध करिते ॥१६॥
सर्व विघ्न-किंकरेर किङ्कर तोमार । तोमार करिते विघ्न शकित आछे कार ॥१७॥
यखने करिया आछ चित्त नीलाचले । तखने चलिबा प्रभु महा कुतूहले ॥१८॥
शुनिला अद्वैत वाक्य प्रभु सुखी हैला । परम सन्तोषे 'हरि' बलिते लागिला ॥१९॥
सेई क्षणे महाप्रभु मत्त सिंह-गति । चलि लेन शुभ करि नीलाचल-प्रति ॥२०॥
धाइया चलिला पाछे सब भक्तगण । केहो नाहि पारे सम्बरिबारे क्रन्दन ॥२१॥
कथोदूरे गिया प्रभु श्रीगौरसुन्दर । सभा प्रबोधेन बलि मधुर उत्तर ॥२२॥
चित्ते केहो कोनो किछु ना भाविह व्यथा । तोमा सभा आमि नाहिं छाड़िब सर्वथा ॥२३॥
कृष्ण नाम लइ सभे बसि गिया घरे । आमिह आसिब दिन कथोक-भितरे ॥२४॥

---

आ मिलूँगा ॥ ८ ॥ सब लोग अपने २ घर जाकर सुख से कीर्तन करना तुम सब ही तो मेरे जन्म २ के जीवन सङ्गी हो ॥ ९ ॥ भक्तवृन्द बोले—"प्रभो ! जो तुम्हारी इच्छा है उसको मिथ्या करने की किसकी सामर्थ्य है ॥ १० ॥ तथापि यह दुर्घट अनुपयुक्त समय है इस समय उस राज्य में कोई मार्ग नहीं चलता है अर्थात् मार्ग बन्द है । ११ ॥ दोनों राजाओं में अत्यन्त विवाद हो रहा है, इस कारण जगह-जगह पर महायुद्ध व बड़ा प्रमाद हो रहा है ॥ १२ ॥ यदि मनमें ठीक जान पड़े तो उत्पात कुछ शान्त होने तक यहीं विश्राम करिये ॥ १३ ॥ प्रभु ने कहा "कैसा भी उत्पात क्यों न हो मैं तो अवश्य जाऊँगा यह निश्चय कर लिया" ॥१४॥ प्रभु की चित्तवृत्ति को अद्वैत समझ गये कि नीलाचल को अवश्य जाँयगे निवृत्त नहीं होंगे ॥ १५ ॥ वे हाथ जोड़कर सत्य कथा कहने लगे कि तुम्हारा मार्ग रोकने की किसकी सामर्थ्य है ॥ १६ ॥ सब विघ्न तो आपके दासों के आज्ञाकारी दास हैं, आपके साथ विघ्न करने की किसकी सामर्थ्य है ॥१७॥ जिस समय नीलाचल जाने के चित्त में विचार कर लिया है प्रभो ! उसी समय बड़े आनन्द से चलोगे ॥१८॥ श्रीअद्वैतजी के वाक्य सुनकर प्रभु प्रसन्न हुए और परम सन्तोषपूर्वक "हरि हरि" कहने लगे ॥ १९ ॥ उसी क्षण मतवाले सिंह की गति से महाप्रभु यात्रा आरम्भ करके नीलाचल की ओर चल दिये ॥ २० ॥ सब भक्तगण पीछे दौड़कर चले तथा कोई रोने को रोक नहीं पाते थे—सब अधीर हो रहे थे ॥ २१ ॥ श्रीगौरसुन्दर प्रभु ने कुछ दूर जाकर मधुर वचन कहकर सबको प्रबोधन कर समझाया ॥ २२ ॥ मनमें कोई किसी प्रकार का व्यथा मत मानना, देखो मैं तुम्हें कभी नहीं छोडूँगा ॥ २३ ॥ जाओ सब लोग घर में बैठकर कृष्ण नाम लेना मैं भी कुछ दिन के भीतर ही आ जाऊँगा ॥२४॥ ऐसा कहकर महाप्रभु ने एक-एक करके

ए बलि महाप्रभु सर्व वैष्णवेरे । प्रत्येके प्रत्येके धरि आलिङ्गन करे ॥२५॥
प्रभुर नयन जले सर्व भक्त गण । सिंचित हइया अङ्ग करेन क्रन्दन ॥२६॥
एइ मत नाना रूपे सभा' प्रबोधिया । चलिलेन प्रभु दक्षिणाभि मुख हैया ॥२७॥
कान्दिया कान्दिया प्रेमे सर्व भक्त गण । उठेन पड़ेन पृथिवीते अनुक्षण ॥२८॥
येन गोपीगण कृष्ण मथुरा चलिले । डूबिलेन महाशोक समुद्रेर जले ॥२९॥
ये रूपे रहिल ताँहा सभार जीवन । सेइ मत विरहे रहिला भक्तगण ॥३०॥
दैवे से-इ प्रभु, भक्तगणो सेइ सब । उपमाओ से-इ से, से-इ से अनुभव ॥३१॥
ये करेन मने कृष्ण इच्छाय से हय । विष वा अमृत भक्षिलेओ किछुनय ॥३२॥
ये मते याहारे कृष्णचन्द्र राखे मारे । ताहा बइ आर केहो करिते ना पारे ॥३३॥
हेन मते गौराङ्ग सुन्दर नीला चले । आइ सेन चलिया आपन कुतूहले ॥३४॥
नित्यानन्द, गदाधर, मुकुन्द, गोविन्द । संहति जगदानन्द आर ब्रह्मानन्द ॥३५॥
पथे प्रभु परीक्षा करेन सभा' प्रति । "कि सम्बल आछे कह काहार संहति ॥३६॥
केवा कि दियाछे कारे पथेर सम्बल । निष्कपटे मोर स्थाने कहत सकल" ॥३७॥
सभे बोले "प्रभु बिना तोमार आज्ञाय । कार द्रव्य लैते शक्ति आछेवा काहाय ॥३८॥
शुनिया ठाकुर बड़ सन्तोष हइला । शेषे सेइ लक्ष्ये तत्त्व कहिते लागिला ॥ ३९ ॥
प्रभु बोले काहारो ये किछु ना लइला । इहाते आमार बड़ सन्तोष हइला ॥ ४० ॥
भोक्तव्य अदृष्ट थाके ये-दिने लिखन । अरण्येओ आसि मिले अवश्य तखन ॥४१॥

---

सब वैष्णवों को आलिंगन किया ॥२५॥ प्रभु के नेत्र जल से अङ्ग सिंचित होकर सब भक्तवृन्द क्रन्दन कर रहे थे ॥२६॥ इस प्रकार अनेक भाँति से सबको समझाकर प्रभु ने दक्षिण को मुख करके गमन किया॥२७॥ सब भक्तगण प्रेम में रोते हुए क्षण-क्षण में पृथ्वी पर गिरते और उठकर पुनः गिर पड़ते थे ॥ २८ ॥ जिस प्रकार गोपीवृन्द श्रीकृष्णचन्द्र के मथुरा जाने पर महा शोक समुद्र के जल में डूब गई थी ॥ २९ ॥ तथा जिस प्रकार उन सब गोपियों का जीवन रहा उसी प्रकार के विरह में भक्तवृन्दों के प्राण रहे ॥ ३० ॥ दैव-योग से वे ही प्रभु हैं तथा सब भक्त भी वे ही हैं और उपमा भी वही है तथा वही अनुभव भी है ॥३१॥ जो कुछ श्रीकृष्ण विचार करते हैं उनकी इच्छा वही होती है न विष खाने से कुछ होता है और न अमृत से ही ॥ ३२ ॥ कृष्णचन्द्र जिसको चाहे जैसे रक्खें अथवा मारें उनके अतिरिक्त और कोई कुछ नहीं कर सकता ॥ ३३ ॥ इस भाँति गौराङ्गसुन्दर अपनी इच्छा से लीलाचल चले आये ॥ ३४ ॥ साथ में नित्यानन्द, गदाधर, मुकुन्द, गोविन्द जगदानन्द व ब्रह्मानन्द थे ॥ ३५ ॥ प्रभु ने मार्ग में सबकी परीक्षा ली कि किसी के पास क्या पूँजी है सो कहो ॥ ३६ ॥ किसी ने किसी से मार्ग व्यय लिया दिया हो तो निष्कपट भाव से मुझसे कह दो ॥ ३७ ॥ सबने कहा "प्रभो तुम्हारी आज्ञा के बिना किसी से द्रव्य लेने की किसकी सामर्थ्य है" ॥३८॥ सुनकर गौरचन्द्र बड़े सन्तुष्ट हुए और तब वे उसी लक्ष्य को रखकर सिद्धान्त कहने लगे ॥३९॥ प्रभु ने कहा "जो किसी से किसी ने जो कुछ नहीं लिया है इससे मुझे बड़ा सन्तोष हुआ है" ॥ ४० ॥

प्रभु यारे ये-दिने वा ना लिखे आहार । राजपुत्र हउ तभो उपवास तार ॥४२॥
थाकिलेओ खाइते ना पारे आज्ञा-विने । अकस्मात् कन्दल करये कारो सने ॥४३॥
क्रोध करि बोले 'मुञि ना खाइमूँ भात' । दिव्य करि रहे निज शिरे दिये हाथ ॥४४॥
अथवा सकल द्रव्य हैल विद्यमान । आचम्बिते देहे ज्वर हैल अधिष्ठान ॥४५॥
ज्वर वेदनाय कोथा थाकिल भक्षण । अतएव ईश्वरेर इच्छा से कारण ॥४६॥
त्रिभुवने कृष्ण दियाछेन अन्न छत्र । ईश्वरेर इच्छा थाके मिलिव सर्वत्र ॥४७॥
आपने ईश्वर सर्व जनेरे शिखाय । इहाते विश्वास यार सेइ सुख पाय ॥४८॥
ये-ते-मते केने कोटि प्रयत्न ना करे । ईश्वरेर इच्छा हइलसे फल धरे ॥४९॥
हेन मते प्रभु तत्त्व कहिते कहिते । उत्तरिला आसि आटिसारा नगरेते ॥५०॥
सेइ आटिसारा-ग्रामे महा भाग्यवान् । आछेन परम साधु-श्रीअनन्त नाम ॥५१ ।
रहिलेन आसि प्रभु ताँहार आलय । कि कहिब आर ताँर भाग्य-समुच्चय ॥५२॥
अनन्त पण्डित अति परम उदार । पाइया परमानन्द बाह्य नाहि आर ॥ ५३ ॥
बैकुण्ठेर पति आसि अतिथि हइला । सन्तोषे भिक्षार सज्ज करिते लागिला ॥५४॥
सर्व-गण-सह प्रभु करिलेन भिक्षा । सन्यासीर भिक्षा धर्म कराइला शिक्षा ॥५५॥
सर्व रात्रि कृष्ण-कथा-कीर्तन-प्रसङ्गे । आछिलेन अनन्त पण्डित गृहे रङ्गे ॥५६॥
शुभ दृष्टि अनन्त पण्डित प्रति करि । प्रभाते चलिला प्रभु बलि 'हरि-हरि' ॥५७॥

---

जिस दिन प्रारब्ध में भोजन करना लिखा है, वह वह वन में भी उसी समय आकर अवश्य मिलता है ॥ ४१ ॥ प्रभु ने जिस दिन जिसको आहार नहीं लिखा चाहे वह राजपुत्र ही क्यों न हो, तो भी उसको उपवास ही करना पड़ेगा ॥ ४२ ॥ बिना आज्ञा के भक्ष्य पदार्थ घर में रहते भी नहीं खा सकते हैं किसी से अकस्मात् कलह हो जावेगी ॥ ४३ ॥ यदि कोई क्रोध करके कहे कि आज मैं अन्न नहीं खाऊँगा इस प्रकार शपथ करके अपने मस्तक पर हाथ धरकर बैठ जाते ॥ ४४ ॥ अथवा सब द्रव्य ( भक्ष्य पदार्थ ) विद्यमान होने पर यदि अकस्मात् देह में ज्वर का अधिष्ठान हो जावे ॥ ४५ ॥ तो ज्वर की पीड़ा से भोजन को मन कहाँ करता है ? इसलिये ईश्वर की इच्छा ही ( भोजन मिलने में ) कारण है ॥ ४६ ॥ कृष्णचन्द्र ने तीनों भुवनों में अन्न का सदाव्रत दे रक्खा है सो ईश्वर की इच्छा से सब जगह मिलेगा ॥ ४७ ॥ स्वयं ईश्वर ही ( गौरचन्द्र ) ने सब मनुष्यों को यह शिक्षा दी इस पर जिसका विश्वास होगा वह सुख पावेगा ॥ ४८ ॥ चाहे जिस प्रकार से भी कोई करोड़ों उपाय क्यों न करे--ईश्वर इच्छा से भी वह सफल होता है ॥ ४९ ॥ इस प्रकार प्रभु गौरचन्द्र तत्त्व कहते २ आटिसारा नामक नगर में आ पहुँचे ॥ ५० ॥ उस आटिसारा ग्राम में एक महाभाग्यवान श्रीअनन्त नामक बड़े साधु रहते थे ॥५१॥ प्रभु आकर उनके घर पर ठहरे, अहो उनके भाग्य की महिमा का क्या कहना ! ॥ ५२ ॥ श्रीअनन्त पंडित अत्यन्त उदार थे उन्हें परम आनन्द हुआ तथा बाह्य ज्ञान जाता रहा ॥ ५३ ॥ श्रीबैकुण्ठपति आकर अतिथि हुए हैं, यह जानकर सन्तोष पूर्वक रसोई की तैयारी करने लगे ॥ ५४ ॥ सब भक्तों के साथ प्रभु ने भिक्षा की और सन्यासियों को भिक्षा धर्म की शिक्षा दी ॥ ५५ ॥ अनन्त पंडित के घर में बड़े आनन्द से सब रात्रि कृष्ण कथा व कीर्तन के प्रसङ्ग में रहे ॥५६॥

देखि सर्व ताप हर श्रीचन्द्रवदन । हरि बलि सर्व लोके डाके अनुक्षण ।।५८।।
योगेन्द्र-हृदये अति दुर्लभ चरण । हेन प्रभु चलियाय देखे सर्व जन ।। ५९ ।।
एइ मत प्रभु जाह्नवीर कूले-कूले । आइ लेन छत्र-भोग महा कुतूहले ।। ६० ।।
सेइ छत्र भोगे गङ्गा हइ शतमुखी । बहिते आछेन सर्व लोके करि सुखी ।। ६१ ।।
जलमय शिवलिङ्ग आछे सेइ स्थाने । 'अम्बुलिङ्ग घाट' करि बोले सर्व जने ।। ६२ ।।
अम्बुलिङ्ग शङ्कर हइला ये निमित्त । सेइ कथा कहि शुन हइ एक चित्त ।। ६३ ।।
पूर्वे भगीरथ करि गङ्गा आराधन । गङ्गा आनि लेन वंश-उद्धार कारण ।। ६४ ।।
गङ्गा विरहे शिव विह्वल हइया । शिव आइलेन शेषे गङ्गा स्मङरिया ।। ६५ ।।
गङ्गारे देखिया शिव सेइ छत्र भोगे । विह्वल हइला अति गङ्गा अनुरागे ।। ६६ ।।
गङ्गा देखि मात्र शिव गङ्गाय पड़िला । जलरूपे शिव जाह्नवीते मिसाइला ।। ६७ ।।
जगन्माता जाह्नवीओ देखिया शङ्कर । पूजा करिलेन भक्ति करिया विस्तर ।। ६८ ।।
शिव से जानेन गङ्गा भक्तिर महिमा । गङ्गा ओ जानेन शिव भक्तिर ये सीमा ।। ६९ ।।
गङ्गाजल-स्पर्शे शिव हैला जलमय । गङ्गा ओ पाइया शिव करिला विनय ।। ७० ।।
जलरूपे शिव रहिलेन सेइ स्थाने । 'अम्बुलिङ्ग घाट' बलि घोषे सर्व जने ।। ७१ ।।
गङ्गा-शिव-प्रभावे से छत्र भोग-ग्राम । हइला परम धन्य महातीर्थ नाम ।। ७२ ।।
तथि-मध्ये विशेष महिमा हैल आर । पाइया चैतन्यचन्द्र-चरण-विहार ।। ७३ ।।

---

अनन्त पण्डित की ओर शुभ दृष्टि करके प्रभु प्रभात होने पर हरि २ कहते हुए चल दिये ।।५७।। समस्त ताप दूर करने वाले श्रीचन्द्रमुख को देखकर सब लोग प्रतिक्षण हरि २ जोर से चिल्ला रहे थे ।। ५८ ।। जिन चरणों का दर्शन योगेन्द्रों को भी दुर्लभ है उन्हीं प्रभु को चलते हुए सब मनुष्य देख रहे थे ।। ५९ ।। इस प्रकार गङ्गाजी के किनारे २ चलकर छत्र भोग नामक स्थान में प्रभु आनन्द से आ पहुँचे ।। ६० ।। उस छत्र भोग में गङ्गाजी शतधारा होकर बहती हुई सब लोगों को सुखी करती हैं ।। ६१ ।। उस स्थान में जलरूप में शिवलिङ्ग है सब लोग अम्बुलिङ्ग घाट कहकर बोलते हैं ।। ६२ ।। जिस कारण से शङ्करजी जलमय लिङ्ग होकर प्रगट हुए वह कथा कहता हूँ एक चित्त होकर सुनो ! ।। ६३ ।। पहिले भगीरथजी अपने वंश उद्धार के निमित्त गङ्गाजी की आराधना करके जब गंगाजी को लाये।।६४।।तब गंगा के विरह में शिवजी विह्वल होकर उन्हें स्मरण करते हुए आये ।। ६५ ।। उस छत्र भोग में शिवजी गंगा को देखकर उनके अनुराग से अति विह्वल हो गये और ।। ६६ ।। गंगा को देखकर ही शिवजी ( गंगा में ) कूद पड़े और जलरूप होकर शिवजी गंगा में मिल गये ।। ६७ ।। जगत् माता गंगा ने भी शंकर को देखकर विशेष भक्ति पूर्वक प्रेमानन्द से पूजा की ।। ६८ ।। शिवजी ही गंगा भक्ति की महिमा जानते हैं और गंगाजी भी शिव भक्ति की सीमा को जानती है ।। ६९ ।। गंगाजल के स्पर्श से शिवजी जलमय हुए थे तथा गंगाजी ने शिवजी को पाकर विनय करी ।। ७० ।। उस स्थान में शिवजी जलरूप में रहते हैं तथा सर्व साधारण अम्बुलिंग घाट कहकर पुकारते हैं ।। ७१ ।। वह छत्र भोग नाम का ग्राम गंगा व शिव के प्रभाव से परम धन्य महातीर्थ स्थान हो गया ।।७२।।

छत्र भोग गेला प्रभु अम्बुलिङ्ग घाटे । शतमुखी गङ्गा प्रभु देखिला निकटे ॥७४॥
देखिया हइला प्रभु आनन्दे विह्वल । 'हरि' बलि हुङ्कार करेन कोलाहल ॥७५॥
आछाड़ खायेन नित्यानन्द कोले करि । सर्व-गणे जय दिया बोले 'हरि-हरि' ॥७६॥
आनन्द-आवेशे प्रभु सर्व-गण लैया । सेइ घाटे स्नान करिलेन सुखी हैया ॥७७॥
अनेक कौतुके प्रभु करिलेन स्नाने । वेद व्यास ताहा सब लिखिब पुराणे ॥७८॥
स्नान करि महाप्रभु उठिलेन कूले । येइ वस्त्र परे सेइ तिते प्रेम जले ॥७९॥
पृथिवीते बहे एक शतमुखी धार । प्रभुर नयने बहे शतमुखी आर ॥८०॥
अपूर्व देखिया सभे हासे भक्तगण । हेन महाप्रभु गौरचन्द्रेर क्रन्दन ॥ ८१ ॥
सेइ ग्रामे अधिकारी रामचन्द्र-खान । यद्यपि विषयी तभु महा भाग्यवान् ॥ ८२ ॥
अन्यथा प्रभुर सङ्गे तान देखा केने । दैवगति आसिया मिलिला सेइ स्थाने ॥ ८३ ॥
देखिया प्रभुर तेज भय हैल मने । दोला हैते सत्वरे नामिला सेइ क्षणे ॥ ८४ ॥
दण्डवत् हइया पड़िला भूमि तले ।प्रभुर नाहिक बाह्य प्रेमानन्द जले ॥ ८५ ॥
'हा-हा जगन्नाथ' प्रभु बोले घने घन । पृथिवीते पड़ि घन करये क्रन्दन ॥ ८६ ॥
देखिया प्रभुर आर्ति रामचन्द्र खान । अन्तरे विदीर्ण हैल सज्जनेर प्राण ॥ ८७ ॥
कोन मते ए आर्तिर हय सम्वरण। कान्दे आर एइमत चिन्ते मने मन ॥ ८८ ॥
त्रिभुवने हेन आछे देखि से क्रन्दन । विदीर्ण ना हय काष्ठ-पाषाणेर मन ॥ ८९ ॥

---

उनमें चैतन्यचन्द्र के चरण-कमलों के विहार से और भी विशेष महिमा हो गई ॥ ७३ ॥ छत्र भोग ग्राम में प्रभु अम्बुलिंग घाट पर गये और निकट में प्रभु ने शतमुखी गंगा के दर्शन किये ॥७४॥ देखकर प्रभु आनन्द से विह्वल हो गये और हरि २ कहकर हुंकार सहित कोलाहल किये हैं ॥ ७५ ॥ नित्यानन्द को जेट भरकर पछाड़ खाये तथा भक्तवृन्द "जय जय" करके हरि २ बोलने लगे ॥७६॥ प्रभु गौरचन्द्र ने सब भक्तों के साथ आनन्द आवेश में सुख पूर्वक उसी घाट पर स्नान किया ॥ ७७ ॥ प्रभु ने स्नान के समय अनेक कौतुक किये उन सबको वेदव्यासजी पुराण में लिखेंगे ॥७८॥किनारे पर आगये वह जो भी वस्त्र पहिनते थे वही अश्रुजल में भीज जाता था॥७९॥एक शतमुखी धारा तो पृथ्वी पर बहती थी और दूसरी शतमुखी धारा प्रभु के नेत्रों से बह रही थी॥८०॥इस अपूर्व रीति को देखकर सब भक्तवृन्द हँसते थे, उन गौरचन्द्र महाप्रभु का रोना ऐसा था ॥ ८१ ॥ उस गाम का अधिकारी रामचन्द्र खान था यद्यपि वह विषयी था तथापि बड़ा भाग्यवान था ॥ ८२ ॥ अन्यथा प्रभु के साथ उसका मिलन क्यों होता ? सो दैवगति से उस स्थान में वह आकर मिला ॥ ८३ ॥ प्रभु का तेज देखकर उसके मनमें भय हो गया तथा उसी क्षण पालकी से शीघ्र उतर पड़ा ॥८४॥ और दण्डवत् होकर भूमि पर गिर पड़ा, प्रभु के भी प्रेमाश्रु बहने लगे व बाह्य ज्ञान नहीं रहा ॥ ८५ ॥ प्रभु 'हा जगन्नाथ २" जोर-जोर से बार-बार बोलते तथा पृथ्वी पर गिरकर बहुत रुदन करते थे ॥ ८६ ॥ प्रभु का दुःख देखकर सज्जन रामचन्द्र खान के प्राण भीतर से विदीर्ण होने लगे॥ ८७ ॥ यह आर्ति किस प्रकार से सम्वरण (शान्त) होय ऐसे मन ही मनमें चिन्तन करके रोने लगे ॥८८॥ ऐसा क्रन्दन देखकर तीनों लोकों

नाना यत्ने दृढ़-भक्तियोग-चित्त हैया । प्रभुर रन्धन विप्र करिलेन गिया ॥१०६॥
नाम मात्र ठाकुर से करेन भोजन । निजा वेशे अवकाश नाहि ताँर क्षण ॥१०७॥
भिक्षा करे प्रभु प्रियवर्ग-सन्तोषार्थे । निरवधि प्रभुर भोजन परमार्थे ॥१०८॥
विशेषे चलिला ये अवधि जगन्नाथे । नाम से भोजन प्रभु करे सेइ हैते ॥१०९॥
निरवधि जगन्नाथ प्रति आर्ति करि । आइलेन सर्व पथ आपना पासरि ॥११०॥
कारे बलि रात्रि दिन पथेर सञ्चार । किवा जल किवा स्थल पार वा ओपार ॥१११॥
किछुइ ना जाने प्रभु डूबि भक्तिरसे । प्रियवर्ग राखे निरवधि रहि पाशे ॥११२॥
ये आवेश महाप्रभु करेन प्रकाश । ताहा के कहिते पारे विने वेदव्यास ॥११३॥
ईश्वरेर चरित्र बूझिते शक्ति कार । कखन किरूपे कृष्ण करेन विहार ॥११४॥
कारे वा करेन आर्ति, कान्देन काहारे । ए मर्म जानिते नित्यानन्द शक्ति धरे ॥११५॥
निज-भक्ति-रसे डूबि वैकुण्ठेर राय । आपना ना जाने प्रभु आपन-लीलाय ॥११६॥
आपनेइ जगन्नाथ भावेन आपने । आपने करिया आर्ति लओयायेन जने ॥११७॥
यदि कृपादृष्टि ना करेन जीव प्रति । तवे कार आछे ताने जानिते शकति ॥११८॥
नित्यानन्द-आदि सर्व प्रियवर्ग लैया । भोजन करिते प्रभु वसिलेन गिया ॥११९॥
किछु मात्र अन्न प्रभु परिग्रह करि । उठिलेन हुङ्कार करिया गौरहरि ॥१२०॥
आविष्ट हइला प्रभु करि आचमन । 'कत दूरे जगन्नाथ' बोले घने घन ॥१२१॥

---

का फल प्रत्यक्ष पा गया ॥ १०५ ॥ अनेक यत्न करके भक्ति-योग में मन को दृढ़ करके वह ब्राह्मण प्रभु निमित्त रन्धन करने गया ॥ १०६ ॥ उस भोजन में से प्रभु ने नाम मात्र को भोजन किया कारण कि उनके प्रेमावेश से एक क्षण को भी अवकाश नहीं था ॥१०७॥ प्रभु ने प्रियजनों के सन्तोष के लिये कुछ खा लिया कारण कि सदा ही प्रभु का भोजन तो परमार्थ ही है ॥ १०८ ॥ विशेष कर जबसे जगन्नाथ के लिये चले तब से तो प्रभु नाम मात्र को ही भोजन करते थे ॥ १०९ ॥ और अपने को भुलाकर निरन्तर श्रीजगन्नाथ के प्रति अपनी दीनता दरसाते हुए पूरा मार्ग गमन किया॥११०॥रात दिन किसे कहते हैं चलाचल मार्ग में, कैसे चले जा रहे थे, क्या जल, क्या थल-क्या इस पार-क्या उस पार-भक्तिरस में डूबे होने से प्रभु को कुछ भी पता नहीं था-प्रियवर्ग ही निरन्तर उनके पास रहकर देख-रेख करते थे ॥१११-११२॥ जो आवेश महाप्रभुजी प्रकाश करते थे उसे वेदव्यास बिना कौन कह सकता है ? ॥ ११३ ॥ ईश्वर के चरित्र को समझने की किस में सामर्थ्य है कारण कृष्णचन्द्र कब किस रूप में विहार करें ॥ ११४ ॥ किसके प्रति प्रीति करते हैं किसके लिये रोते हैं इस मर्म को समझने में श्रीनित्यानन्द ही समर्थ हैं ॥ ११५ ॥ श्रीवैकुण्ठनाथ अपने भक्तिरस से डूबकर अपनी लीला द्वारा अपने को ही नहीं पहिचानते थे ॥ ११६ ॥ आप ही स्वयं जगन्नाथ हैं आपही भावना करते हैं और स्वयं ही दया करके लोगों को ग्रहण भी कराते हैं ॥११७॥ यदि जीव के प्रति कृपादृष्टि न करें तो ऐसा कौन है जो उन्हें जानने की अपनी सामर्थ्य रक्खे ॥ ११८ ॥ नित्यानन्द आदि सब प्रिय-वर्गों के साथ गौरप्रभु भोजन करने बैठे ॥ ११९ ॥ गौरहरि प्रभु बहुत थोड़ा अन्न ग्रहण करके हुंकार करते हुए उठ खड़े हुए ॥ १२० ॥ आचमन करने के अनन्तर प्रभु को आवेश हो गया और बार २ कहने लगे कि

मुकुन्द लागिला मात्र कीर्तन करिते । आरम्भिला वैकुण्ठेर ईश्वर नाचिते ॥१२२॥
पुण्यवन्त यत-यत छत्र भोगवासी । सबे देखे नृत्य करे वैकुण्ठ विलासी ॥१२३॥
अश्रु, कम्प, हुङ्कार, पुलक, स्तम्भ, घर्म । कत हय के जाने से विकारेर मर्म ॥१२४॥
किबा से अद्भुत नयनेर प्रेम-धार । माघ मासे येन गङ्गार अवतार ॥१२५॥
पाक दिया नृत्य करिते ये छुटे जल । ताहा तेइ लोक स्नान करिल सकल ॥१२६॥
इहारे से कहि प्रेमरस-अवतार । ए शक्ति चैतन्यचन्द्र बिने नाहि आर ॥१२७॥
एइ मते गेल रात्रि तृतीय प्रहर । स्थिर हइलेन प्रभु श्रीगौरसुन्दर ॥१२८॥
सकल लोकेर चित्ते 'येन क्षण प्राय' । सबार निस्तार हैल चैतन्य कृपाय ॥१२९॥
हेनइ समये कहे रामचन्द्रखान । नौका आसि घाटे प्रभु हैल विद्यमान ॥१३०॥
सेइ क्षणे 'हरि' बलि श्रीगौरसुन्दर । उठि लेन गिया प्रभु नौकार उपर ॥१३१॥
शुभ दृष्टे लोकेर विदाय दिया घरे । चलिलेन प्रभु नीलाचल निज पुरे ॥१३२॥
प्रभुर आज्ञाय श्रीमुकुन्द महाशय । कीर्तन करेन प्रभु नौकाय विजय ॥१३३॥
अबुध नाइया बोले हइल संशय । बुझिलाङ आजि आर प्राण नाहि रय ॥१३४॥
कूले उठिले से बाघे लइया पलाय । जले पड़िले से नील कुम्भीरे खाय ॥१३५॥
निरन्तर ए पानीते डाकाइत फिरे । पाइलेइ धन प्राण दुइ नाश करे ॥१३६॥
एतेके यावत उड़ियार देश पाइ । तावत नीरव हओ सकल गोसाञि ॥१३७॥

---

"जगन्नाथ कितनी दूर में हैं ?" ॥ १२१ ॥ तब मुकुन्द एक पद कीर्तन करने लगे व वैकुण्ठपति ने नृत्य करना आरम्भ कर दिया ॥ १२२ ॥ अहो वैकुण्ठविलासी ( गौरहरि ) नाच रहे हैं, ऐसा सभी पुण्यवान छत्र-भोगवासियों ने देखा ॥ १२३ ॥ अश्रु-कम्प-हुङ्कार-पुलक-स्तम्भ-घर्म ( प्रस्वेद ) आदि विकारों के मर्म को कौन जाने कि कितने हो रहे थे ॥ १२४ ॥ अहो अद्भुत नेत्रों से कैसी अपूर्व प्रेम की धारा बह रही थी, मानों माघों के महीने में गङ्गाजी उतर आई हों ॥ १२५ ॥ फेरी देकर नृत्य करने समय जो जल छूट रहा था उसी से सब लोगों का स्नान हो गया ॥ १२६ ॥ इसी कारण से ही इन्हें प्रेम का अवतार कहते हैं और यह शक्ति श्रीचैतन्यचन्द्र के सिवाय और किसी ( अवतार ) में नहीं है ॥ १२७ ॥ इस प्रकार तीन प्रहर रात बीतने पर श्रीगौरसुन्दर कुछ स्थिर हुए ॥ १२८ ॥ परन्तु सब ( उपस्थित ) मनुष्यों को मालूम हुआ मानों क्षण मात्र ही बीता है—श्रीचैतन्यदेव की कृपा से सबका निस्तार हो गया ॥ १२९ ॥ उसी समय पर रामचन्द्रखान ने कहा "प्रभो ! घाट पर नौका आ गई है (उपस्थित है) ॥१३०॥ तब श्रीगौरसुन्दर प्रभु 'हरि २' कहते हुए उठकर नौका पर जा बैठे ॥ १३१ ॥ प्रभु ने शुभ दृष्टिपात करके सब लोगों को निज २ घर जाने को विदा दी और स्वयं निज धाम नीलाचल को चल दिये और ॥ १३२ ॥ श्रीगौरसुन्दर आज्ञा से श्रीमुकुन्द महाशय श्रीकृष्ण की नौका विजय लीला ( नौका खण्ड ) गान करने लगे ॥ १३३ ॥ मूर्ख नाविकों (मल्लाहों) ने कहा—समझ गये आज और प्राण नहीं रहेंगे, ऐसा सन्देह हुआ कि ॥१३४॥ किनारे पर जावें तो बाघ लेकर भाग जावेगा और जल में कूदें तो कहीं मगर खा जायगा ॥ १३५ ॥ इस पानी में हर समय डाकू फिरते हैं—यदि मिल जावें तो धन और प्राण दोनों का नाश कर देते ॥ १३६ ॥ इसलिये हे सब

सङ्कोच हइल सभे नाइयार बोले । प्रभु से भासेन निरवधि प्रेम जले ॥१३८॥
क्षणेके उठिला प्रभु करिया हुङ्कार । सभाके बोलेन 'कैने भयकर कार ॥१३९॥
एइ ना सम्मुखे सुदर्शन चक्र फिरे । वैष्णव जनेर निरवधि विघ्न हरे ॥१४०॥
किछु चिन्ता नाहि, कर कृष्ण सङ्कीर्तन । तोरा किना देख हेर फिरे सुदर्शन' ॥१४१॥
शुनिआ प्रभुर वाक्य सर्व भक्तगण । आनन्दे लगिला सभे करिते कीर्तन ॥१४२॥
व्यपदेशे महाप्रभु कहेन सभारे । निरवधि सुदर्शन भक्त रक्षा करे ॥१४३॥
जे पापिष्ठ वैष्णवेर पत्त हिंसा करे । सुदर्शन-अग्नि ते से पापी पुड़ि मरे ॥१४४॥
विष्णु चक्र सुदर्शन रक्षक थाकिते । कार शक्ति आछे भक्त जनेरे लंघिते ॥१४५॥
एइ मत श्रीगौरचन्द्रेर गोप्य कथा । तान कृपा जारे सेइ बूझये सर्वथा ॥१४६॥
हेन मते महाप्रभु सङ्कीर्तन रसे । प्रवेश हइला आसि श्रीउत्कल देशे ॥१४७॥
उत्तरिला गिया नौका श्रीप्रयाग घाटे । नौका हैते महाप्रभु उठिलेन तटे ॥१४८॥
प्रवेश करिला गौरचन्द्र ओड्र देशे । इहा ये शुनये से भासये प्रेम रसे ॥१४९॥
आनन्दे ठाकुर ओड्र देश हइ पार । सर्व-गण-सहित हइला नमस्कार ॥१५०॥
सेइ स्थाने आछे ताँर 'गङ्गाघाट' नाम । ताहिँ गौरचन्द्र प्रभु करिलेन स्नान ॥१५१॥
युधिष्ठिर-स्थापित महेश तथा आछे । स्नान करि ताँरे नमस्करि लेन पाछे ॥१५२॥
ओड्र देशे प्रवेश करिला गौरचन्द्र । गण-सह हइलेन परम आनन्द ॥१५३॥

---

गुसाँइयो ! जब तक उड़िया देश में पहुँच जावें तब तक सब चुप्प हो रहो ॥ १३७ ॥ मल्लाहों के कहने से सबको संकोच हुआ, परन्तु प्रभुजी तो निरन्तर प्रेमजल में ही डूब रहे थे ॥ १३८ ॥ और तुरन्त उठकर प्रभु हुङ्कारते हुए सबसे बोले कि क्यों किसी का डर करते हो ? ॥ १३९ ॥ क्या यह नहीं है कि वैष्णवजनों के सम्मुख विघ्नहरन करने को सुदर्शन-चक्र निरन्तर घूमता रहता है ? ॥१४०॥ कुछ चिन्ता नहीं ! कृष्ण नाम संकीर्तन करो ! तुम लोग क्या नहीं देखते यह सुदर्शन चक्र फिर रहा है ॥१४१॥ भक्तवृन्द प्रभु के वाक्य को सुनकर सब ही आनन्द से कीर्तन करने लगे ॥ १४२ ॥ व्यपदेश ( छल ) करके महाप्रभु सबसे कहने लगे कि सुदर्शन चक्र तो निरन्तर भक्तों की रक्षा करता रहता है ॥ १४३ ॥ जो पापी वैष्णवों की हिंसा करते हैं वे ( पापी ) सुदर्शन चक्र की अग्नि में दग्ध होकर मरते हैं ॥ १४४ ॥ श्रीविष्णु के सुदर्शन चक्र के रक्षक रहते हुए किसकी सामर्थ्य है जो भक्तों का लंघन व हिंसा करे ? ॥ १४५ ॥ श्रीगौरचन्द्र की ऐसी ही गुप्त कथायें हैं जिन पर उनकी कृपा है वे ही ठीक समझते हैं ॥ १४६ ॥ इस प्रकार महाप्रभु संकीर्तन रस में प्रविष्ट हुए और श्री उत्कल देश में आ पहुँचे ॥ १४७ ॥ नौका (मन्त्रेश्वर नदी की) श्रीप्रयाग घाट पर जाकर लगी और महाप्रभुजी नौका से तट पर उतर गये ॥ १४८ ॥ श्रीगौरचन्द्र ने उत्कल देश में प्रवेश किया इस कथा को जो सुनेंगे वे प्रेमरस में डूब जाँयगे ॥ १४९ ॥ श्रीगौरचन्द्र आनन्द पूर्वक उत्कल देश के पार पर जाकर सब भक्तों के साथ नमस्कार की ॥ १५० ॥ वहीं पास में गङ्गा घाट नामक एक घाट है उस पर गौरचन्द्र ने सब गण सहित स्नान किया ॥ १५१ ॥ वहाँ पर युधिष्ठिर के स्थापित किये हुए महादेव हैं सो स्नान करके उन्हें नमस्कार किया ॥ १५२ ॥ उत्कल देश में प्रवेश करते ही श्रीगौरचन्द्र भक्तों सहित बड़े आनन्दित हुए ॥१५३॥

एक देव स्थाने प्रभु थुइया सभारे । आपने चलिला प्रभु भिक्षा करिवारे ॥१५४॥
यार घरे गिया प्रभु उपसन्न हय । से विग्रह देखिते काहार मोह नय ॥१५५॥
आंचल पातेन प्रभु श्रीगौर सुन्दर । सभेइ तण्डुल आनि देयेन सत्वर ॥१५६॥
भक्ष्य द्रव्य उत्कृष्ट ये थाके यार घरे ! सभेइ सन्तोषे आनि देयेन प्रभुरे ॥१५७॥
'जगतेर अन्नपूर्णा' ये लक्ष्मीर नाम । से लक्ष्मी मागेन याँर पाद पद्म स्थान ॥१५८॥
हेन प्रभु आपने सकल घरे घरे । न्यासिरूपे भिक्षा-छले जीव धन्य करे ॥१५९॥
भिक्षा करि प्रभु हइ हरषित-मन । आइलेन यथा वसि आछे भक्तगण ॥१६०॥
भक्ष्य द्रव्य देखि सभे लागिला हासिते । सभेइ बोलेन "प्रभु पारिबा पुषिते" ॥१६१॥
सन्तोषे जगदानन्द करिला रन्धन । सभार संहति प्रभु करिला भोजन ॥१६२॥
सर्व रात्रि सेइ ग्रामे करि सङ्कीर्तन । उषः काले महाप्रभु करिला गमन ॥१६३॥
कथो-दूरे गेले मात्र दानी दुराचार । राखिलेन, दान चाहे, ना देय याइवार ॥१६४॥
देखिया प्रभुर तेज पाइल विस्मय । जिज्ञासिल "तोमार कतेक लोक हय" ॥१६५॥
प्रभु कहे जगते आमार केहो नय । आमिह काहारो नाहि-कहिल निश्चय ॥१६६॥
एक आमि, दुइ नाहि सर्वथा आमार । कहिते नयने वहे अविरत धार ॥१६७॥
दानी बोले 'गोसाञि करह शुभ तुमि । ए-सभार दान पाइले छाड़ि दिब आमि' ॥१६८॥
शुभ करिलेन प्रभु 'गोविन्द' बलिया । कथो दूर सभा छाड़ि वसिलेन गिया ॥१६९॥
सभा परिहरि प्रभु करिला गमन । हरिष-विषाद हइलेन भक्तगण ॥१७०॥

---

गौरप्रभु एक देव मन्दिर में सबको रखकर स्वयं भिक्षा करने के लिये गये ॥ १५४ ॥ प्रभु जिसके घर जाकर उपस्थित होते थे वहाँ आपके उस श्रीविग्रह को देखकर किसी को मोह नहीं होता था ? ।.१५५॥श्रीगौरसुन्दर प्रभु अञ्चल (वस्त्र) फैलाते और सब लोग शीघ्र ही चावल लाकर डाल देते थे ॥ १५६ ॥ जिसके घर में जो भी उत्कृष्ट भक्ष्य द्रव्य थी सब ही ने प्रसन्न होकर लाकर प्रभु को दी ॥१५७॥ जिस लक्ष्मी का नाम "जगत् की अन्नपूर्णा" है वह लक्ष्मी जिनके चरण-कमलों में स्थान माँगती है, ऐसे प्रभु सबके घर २ में सन्यासी रूप से भिक्षा के बहाने जीवों को धन्य कर रहे थे ॥ १५८-१५९ ॥ भिक्षा करके प्रभु प्रसन्न मन से जहाँ भक्तवृन्द बैठे थे वहाँ आये ॥ १६० ॥ भक्ष्य द्रव्य देखकर सब हँसने लगे और सब ही बोले "प्रभु पोषण करने में" समर्थ हैं ॥ १६१ ॥ प्रसन्न होकर सन्तुष्ट मन से जगदानन्द ने रसोई करी तब सबके साथ प्रभु ने भोजन किया ॥ १६२ ॥ सब रात्रि उस ग्राम में संकीर्तन करके प्रातः (उषाकाल) में महाप्रभु ने गमन किया ॥ १६३ ॥ कुछ थोड़ी दूर जाने पर दुराचारीदानियों ने रोक लिये और जाने नहीं देते हैं तथा दान चाहते हैं ॥१६४॥ प्रभु का तेज देखकर विस्मित हुए और जिज्ञासा की कि तुम्हारे साथ कितने लोग हैं ? ॥१६५॥ प्रभु ने कहा जगत् में मेरा कोई नहीं है और मैं भी किसी का नहीं हूँ यह निश्चय कहता हूँ॥१६६॥मैं एक ही हूँ सदा से मेरा दूसरा नहीं है। इस प्रकार कहते २ नेत्रों से अटूट धारा बहने लगी ॥१६७॥दानी ने कहा प्रभु! तुम शुभ गमन करो और इन सबको तो मैं दान मिलने पर छोड़ूँगा ॥ १६८ ॥ "गोविन्द" कहकर प्रभु ने गमन किया और सबको छोड़कर कुछ दूर पर जा विराजे ॥ १६९ ॥ सबको छोड़कर प्रभु ने गमन किया

देखिया प्रभुर अति निरपेक्ष खेला। अन्योन्ये सर्वगणे हासिते लागिला ॥१७१॥
पाछे प्रभु सभा छाड़ि करेन गमन। एतेके विषाद आसि धरिलेक मन ॥१७२॥
प्रबोधिया नित्यानन्द बोले चिन्ता नाञि। आमा सभा छाड़ि ना याइवेन गोसाञि ॥१७३॥
दानी बोले तोमरात सन्यासीर नह। एतेके आमार ये उचित दान देह ॥१७४॥
कथो-दूरे प्रभु सर्व पार्षद छाड़िया। हेट माथा करि मात्र कान्देन वसिया ॥१७५॥
काष्ठ-पाषाणादि द्रवे शुनिञा क्रन्दन। अद्भुत देखिया दानी गणे मने मन ॥१७६॥
दानी बोले ए पुरुष नर कभू नय। मनुष्येर नयने कि एत जल हय ॥१७७॥
सभारे जिज्ञासे दानी प्रणति करिया। के तोमरा, कार लोक, कहत भाङ्गिया ॥१७८॥
सभे बलिलेन अइ ठाकुर सभार। 'श्रीकृष्णचैतन्य' नाम शुनिआछ याँर ॥१७९॥
सभेइ उँहार भृत्य आमरा-सकल। कहिते सभार आँखि वाहि पड़े जल ॥१८०॥
देखिया सभार प्रेम मुग्ध हैल दानी। दानीर नयन दुइ वहि पड़े पानी ॥१८१॥
आथे व्यथे दानी गिया प्रभुर चरणे। दण्डवत् हइ बोले विनय वचने ॥१८२॥
कोटि-कोटि जन्मे यत, आछिल मङ्गल। तोमा देखि आजि पूर्ण हइल सकल ॥१८३॥
अपराध क्षमा कर करुणासागर। चल नीलाचल गिया देखह सत्वर ॥१८४॥
दानी प्रति करि प्रभु शुभ दृष्टिपात। 'हरि' बलि चलिलेन सर्व जीव नाथ ॥१८५॥
सभार करिब गौरसुन्दर उद्धार। विना पापी वैष्णव निन्दक दुराचार ॥१८६॥

---

इससे भक्तवृन्द हर्ष व विषाद से भर गये ॥ १७० ॥ प्रभु के अति निरपेक्ष-खेल ( लीला ) को देखकर परस्पर सब भक्तवृन्द हँसने लगे ॥ १७१ ॥ हाय कहीं पीछे से प्रभु सबको छोड़कर चले न जाय इसी विषाद ने सबके मन पकड़ लिये ॥ १७२ ॥ सबको समझाकर नित्यानन्दजी ने कहा "चिन्ता मत करो हम सबको छोड़कर गोसाईं गौरचन्द्र नहीं जाँयगे ॥ १७३ ॥ दानी ने कहा तुम लोग तो सन्यासी के कोई नहीं हो इसलिये जो मेरा उचित दान है देओ ॥ १७४ ॥ प्रभु कुछ दूर पर सब पार्षदों को छोड़ कर नीचा मस्तक करके बैठ कर केवल रोने लगे ॥ १७५ ॥ रोना सुनकर काष्ठ व पाषाण आदि भी पिघल जाते थे, इस प्रकार अद्भुत रोना देखकर दानी मन ही मन सोचने लगा ॥ १७६ ॥ दानी ने कहा यह पुरुष कभी मनुष्य नहीं हो सकता भला मनुष्य के नेत्रों से क्या इतना जल हो सकता है ॥ १७७ ॥ दानी ने प्रणति ( प्रणाम ) करके सबसे पूछा कि तुम कौन हो और किसके लोग व साथी हो, समझाकर तो कहो ? ॥ १७८ ॥ सबने कहा "जिनका "श्रीकृष्णचैतन्य" नाम सुना होगा वे यही हम सबके ठाकुर ( प्रभु ) हैं और ॥ १७९ ॥ हम सब उन्हीं के दास हैं तथा वे हमारे सर्वस्व हैं ऐसा कहते २ सबके नेत्रों से जल गिरने लगा ॥ १८० ॥ सबके प्रेम को देखकर दानी मुग्ध हो गया तथा उसके दोनों नेत्रों से जल की धारा बहने लगी ॥ १८१ ॥ और गिरते-पड़ते प्रभु के चरणों में दण्डवत् होकर दानी ने विनय पूर्वक कहा ॥ १८२ ॥ करोड़ों जन्मों के जितने ( शुभ कर्म ) मङ्गल रहे आज तुम्हारे दर्शन करके सब पूर्ण हुए ॥ १८३ ॥ हे करुणासागर ! अपराध क्षमा करो. आइये शीघ्र ही नीलाचलचन्द्र के दर्शन कीजिये ॥ १८४ ॥ प्रभु ने दानी के प्रति शुभ दृष्टिपात की और सब जीवों के स्वामी हरि २ कहकर चल दिये ॥ १८५ ॥ दुराचारी, वैष्णव-निन्दक पापियों को

असुर द्रविल चैतन्येर गुण नाम अत्यन्त दुष्कृति पापी मे इ नाहि मान ।।१८७।।
हेन मते नीलाचले वैकुण्ठेर नाथ । आइसेन सभारे करिया दृष्टिपात ।।१८८।।
निज प्रेमानन्दे प्रभु पथ नाहि जाने । अहर्निश सुविह्वल प्रेमरस-पाने ।।१८९।।
एइ मते महाप्रभु चलिया आसिते । कथो-दिने उत्तरिला सुवर्ण रेखाते ।।१९०।।
सुवर्ण रेखार जल परम-निर्मल । स्नान करिलेन प्रभु वैष्णव-सकल ।।१९१।।
स्नान करि स्वर्ण रेखा-नदी धन्य करि । चलिलेन श्रीगौरसुन्दर नरहरि ।।१९२।।
रहिला अनेक पाछे नित्यानन्दचन्द्र । संहति ताँहार सबे श्रीजगदानन्द ।।१९३।।
कथो-दूरे गौरचन्द्र वसिलेन गिया । नित्यानन्द स्वरूपेर अपेक्षा करिया ।।१९४।।
चैतन्य-आवेशे मत्त नित्यानन्द-राय । विह्वलेर प्राय व्यवसाय सर्वथाय ।।१९५।।
कखनो हुङ्कार करे, कखनो रोदन । क्षणे महा अट्टहास, क्षणे वा गर्जन ।।१९६।।
क्षणे वा नदीर माझे एड़ेन साँतार । क्षणे सर्व-अङ्गे धूला माखेन अपार ।।१९७।।
क्षणे वा ये आछाड़ खायेन प्रेमरसे । चूर्ण हय अङ्ग हेन सर्व लोक वासे ।।१९८।।
आपना आपनि नृत्य करे कोन क्षणे । टलमल करये पृथिवी सेइ क्षणे ।।१९९।।
ए सकल कथा ताने किछु चित्र नय । अवतीर्ण आपने अनन्त महाशय ।।२००।।
नित्यानन्द कृपाय ए सब शक्ति हय । निरवधि गौरचन्द्र याहार हृदय ।।२०१।।
नित्यानन्द स्वरूपे थुइया एक-स्थाने । चलिलेन जगदानन्द भिक्षा अन्वेषणे ।।२०२।।

---

छोड़कर श्रीगौरसुन्दर और सबका उद्धार करेंगे ।। १८६ ।। चैतन्य के गुण व नाम के प्रभाव से असुर भी द्रवीभूत होते थे, केवल जो अत्यन्त दुष्कृति पापी थे वे ही नहीं माने ।। १८७ ।। इस प्रकार श्रीवैकुण्ठनाथ सबके ऊपर शुभ दृष्टिपात करते हुए नीलाचल आ गये ।। १८८ ।। अपने प्रेमानन्द में प्रभु को मार्ग भी नहीं जान पड़ता क्योंकि प्रेमरस पान में दिन रात्रि विशेष विह्वल रहते थे ।। १८९ ।। इस प्रकार श्रीमहाप्रभु चलकर कुछ दिन में सुवर्ण रेखा नदी के तट पर उतरे ।। १९० ।। सुवर्ण रेखा के परम निर्मल जल में श्रीप्रभु व सब वैष्णवों ने स्नान किया ।। १९१ ।। स्नान से स्वर्ण रेखा नदी को धन्य करके नरों में श्रेष्ठ श्रीगौरसुन्दर चल दिये ।। १९२ ।। श्रीनित्यानन्दचन्द्र तो बहुत पीछे थे, उनके साथ केवल श्रीजगदानन्दजी रह गये ।। १९३ ।। कुछ दूर जाकर श्रीगौरचन्द्र बैठ गये और श्रीनित्यानन्द स्वरूप की बाट देखने लगे ।। १९४ ।। श्रीनित्यानन्दराय तो श्रीचैतन्य के प्रेमावेश में मत्त हो रहे थे और बिलकुल विह्वलों के जैसा उनका आचरण हो रहा था ।। १९५ ।। कभी हुंकार करते थे तो कभी रोदन करते और क्षण में जोर से हँसते तो कभी गर्जन करते थे ।। १९६ ।। क्षण में ही नदी में तैरने लगते तो दूसरे ही क्षण में सब अङ्ग में अपार धूलि मल लेते ।। १९७ ।। क्षण में ही जो प्रेमरस में पछाड़ खाते तो सब लोग ऐसा समझते कि अङ्ग चूर २ हो गया ।।१९८।। कभी किसी क्षण में आप ही आप नृत्य करते तो उस समय पृथ्वी डगमगाने लगती ।।१९९।। ये सब बातें उनके लिये कुछ विचित्र नहीं हैं क्योंकि स्वयं अनन्त महाशय ही आप अवतीर्ण हुए हैं ।।२००।। यह सब सामर्थ्य श्रीनित्यानन्द की कृपा से होती है क्योंकि श्रीगौरचन्द्र उनके हृदय में निरन्तर स्थित रहते है ।। २०१ ।। श्रीनित्यानन्दस्वरूप को एक स्थान में ठहराकर जगदानन्दजी भिक्षा लेने गये ।। २०२ ।। गौर-

ठाकुरेर दण्ड श्रीजगदानन्द वहे । दण्ड थुइ नित्यानन्द-स्वरूपेरे कहे ॥२०३॥
'ठाकुरेर दण्डे मन दिह सावधाने । भिक्षा करि आमिह आसिव एइ क्षणे' ॥२०४॥
आथे व्यथे नित्यानन्द दण्ड धरि करे । वसिलेन सेइ स्थाने विह्वल-अन्तरे ॥२०५॥
दण्ड हाथे करि हासे नित्यानन्द-राय । दण्डेर संहित कथा कहेन लीलाय ॥२०६॥
अये दण्ड आमि यारे वहिये हृदये । से तोमारे वहिवेक ए-त युक्त नहे ॥२०७॥
एत वलि बलराम परम प्रचण्ड । फेलि लेन दण्ड भाङ्गि करि तिन खण्ड ॥२०८॥
ईश्वरेर इच्छा, मात्र ईश्वर से जाने । केने भाङ्गिलेन दण्ड, जानिव केमने ॥२०९॥
नित्यानन्द ज्ञाता गौरचन्द्रेर अन्तर । नित्यानन्देरे ओ जाने श्रीगौरसुन्दर ॥२१०॥
आगे येन दुइ भाइ श्रीराम लक्ष्मण । दोंहार अन्तर दोंहे जाने अनुक्षण ॥२११॥
एक वस्तु दुइ भाग भक्ति बुझाइते । गौरचन्द्र जानि सबे नित्यानन्द हैते ॥२१२॥
बलराम बिने अन्य चैतन्येर दण्ड । भाङ्गिबारे पारे हेन के आछे प्रचण्ड ॥२१३॥
सकल बुझाय छले श्रीगौरसुन्दरे । ये जानये मर्म, सेइ जन सुखे तरे ॥२१४॥
दण्ड भाङ्गि नित्यानन्द आछेन वसिया । क्षणेके जगदानन्द मिलिला आसिया ॥२१५॥
भग्न दण्ड देखि महा हइला विस्मित । अन्तरे जगदानन्द हइला चिन्तित ॥२१६॥
वार्ता जिज्ञासेन 'दण्ड भाङ्गिलेक के' । नित्यानन्द बोले दण्ड धरिलेक ये ॥२१७॥
आपनार दण्ड प्रभु भाङ्गिला आपने । ताँर दण्ड भाङ्गिते कि पारे अन्य जने ॥२१८॥

---

चन्द्र के दण्ड को श्रीजगदानन्दजी वहन करते थे सोई दण्ड को रखकर नित्यानन्दस्वरूप से कहने लगे ॥२०३॥'गौरचन्द्र के दण्ड को मन देकर सावधानी से रखना,क्योंकि मैं भिक्षा करके कुछ देर में आऊँगा' ॥ २०४ ॥ जैसे-तैसे नित्यानन्द दण्ड हाथ में लेकर विह्वल मन से उसी स्थान में बैठ गये ॥ २०५ ॥ नित्यानन्दराय दण्ड को हाथ में लेकर हँसे और उससे हँसी में कहने लगे ॥ २०६ ॥ अरे दण्ड ! जिससे मैं अपने हृदय वहन ( धारण ) करता हूँ वह तुझे वहन करें ( लिये-लिये फिरें ) यह उचित नहीं है॥२०७॥ इस प्रकार कहकर परम प्रचण्ड बलराम ( नित्यानन्द ) ने दण्ड को तोड़कर तीन टुकड़े करके फेंक दिया ॥ २०८ ॥ ईश्वर की इच्छा केवल ईश्वर ही जाने कि दण्ड क्यों तोड़ दिया, अन्य पुरुष कैसे जानेंगे ? ॥ २०९ ॥ श्रीगौरचन्द्र के मन की बात नित्यानन्दजी जानते हैं और नित्यानन्द के अन्तर को श्रीगौरसुन्दर जानते हैं ॥ २१० ॥ पूर्व में जिस प्रकार श्रीराम व लक्ष्मण दोनों भाई दोनों की अन्तरङ्ग बातें दोनों ही प्रत्येक क्षण में जानते थे ॥ २११ ॥ भक्ति का ज्ञान कराने के लिये ही एक वस्तु दो भाग में है सो श्रीनित्यानन्दजी के द्वारा ही लोग गौरचन्द्र को भली प्रकार जान सकते हैं॥२१२॥ भला ऐसा कौन बलवान् है, जो श्रीबलराम के अतिरिक्त श्रीचैतन्य के दण्ड को तोड़ सके ॥ २१३ ॥ श्रीगौरसुन्दर सबको छल से समझाते हैं, जो मर्म जान लेंगे वे ही मनुष्य सुख से तरेंगे॥२१४॥दंड को तोड़कर श्रीनित्यानन्द वहाँ आकर बैठ गये तब कुछ क्षण पीछे जगदानन्द आकर उनसे मिले ॥२१५॥ जगदानन्द दण्ड टूटा हुआ देखकर बड़े विस्मित हुए तथा मनमें बड़े चिन्तित हुए ।२१६॥ पूँछने लगे कि दण्ड किसने तोड़ा ? श्रीनित्यानन्द बोले 'जो दण्ड रखते थे'॥२१७॥ अपने दण्ड को प्रभु ने स्वयं तोड़ दिया क्या कोई अन्य जन उनके दण्ड को तोड़ सकता है ? ॥ २१८ ॥

शुनि विप्र आर ना करिला प्रत्युत्तर । भाङ्गा दण्ड लइ भाङ्ग चलिला सत्वर ॥२१९॥
वसिया आछेन यथा श्रीगौर सुन्दर । भाङ्गा दण्ड फेलि दिल प्रभुर गोचर ॥२२०॥
प्रभु बोले "कह दंड भाङ्गिले केमने । पथे ना कि कन्दल करिला कारो सने" ॥२२१॥
कहिला जगदानन्द पण्डित सकल । "भाङ्गिलेन दंड नित्यानन्द सुविह्वल" ॥२२२॥
नित्यानन्द प्रति प्रभु जिज्ञासे आपनि । "कि लागि भाङ्गिला दंड कह देखिशुनि" ॥२२३॥
नित्यानन्द बोले "भाङ्गियाछि बांश-खान" । नापार' क्षमिते, कर' ये शास्ति प्रमाण ।२२४।
प्रभु बोले "याहे सर्व-देव-अधिष्ठान । से तोमार मते कि हइल बांश खान ॥२२५॥
के बूझिते पारे गौरसुन्दरेर लीला । मने करे एक मुखे पाते आर खेला ॥२२६॥
एतेके ये बोले बूझि कृष्णेर हृदय । से-इसे अबुध इहा जानिह निश्चय ॥२२७॥
मारिबेन हेन यारे आछये अन्तरे । ताहारे ओ देखि येन महा प्रीति करे ॥२२८॥
प्राण-सम अधिक वा ये सकल जन । ताहारे ओ देखि येन निरपेक्ष-मन ॥२२९॥
एइमत अचिन्त्य अगम्य लीला मात्र । तान अनुग्रहे बूझे तान कृपा पात्र ॥२३०॥
दण्ड भाङ्गिलेन आपनेइ इच्छा करि । शेषे क्रोध व्यञ्जिते लागिला गौरहरि ॥२३१॥
प्रभु बोले सबे दण्ड मात्र छिल सङ्ग । ताहो आजि कृष्णेर इच्छाते हैल भङ्ग ॥२३२॥
एतेके आमार सङ्गे कारो सङ्ग नाइ । तोमरा वा आगे चल आमि वा आग्वाइ ॥२३३॥
द्विरुक्ति करिते आज्ञा शक्ति आछे कार । सबेइ हइला शुनि चिन्तित अपार ॥२३४॥

---

ऐसा सुनकर विप्र (जगदानन्द) ने कुछ प्रत्युत्तर नहीं किया टूटे ही दंड को लेकर शीघ्र ही चल दिये ॥२१९॥ जहाँ श्र गौरसुन्दर विराजमान थे वहाँ प्रभु के सामने लायकर टूटा हुआ दण्ड फेंक दिया ॥ २२० ॥ प्रभु ने कहा कहिये दण्ड कैसे तोड़ दिया क्या मार्ग में किसी के साथ कलह किये थे ॥ २२१ ॥ जगदानन्दजी सब कह सुनाया कि अति विह्वल नित्यानन्दजी ने दण्ड तोड़ डाला ॥ २२२ ॥ श्रीप्रभु गौरचन्द्र ने नित्यानन्दजी से पूछा कि आपने किसलिये दण्ड तोड़ दिया देखें कहो तो सुने ॥ २२३ ॥ श्रीनित्यानन्दजी ने कहा "प्रभो मैंने तो बाँस मात्र तोड़ा है यदि क्षमा न कर सकते हैं तो जो चाहो दण्ड दो" ॥ २२४ ॥ श्रीगौरचन्द्र ने कहा "जो सब देवों का अधिष्ठान है वह तुम्हारे मनमें क्या बाँस मात्र ही है" ॥ २२५ ॥ श्रीगौरसुन्दर की लीला को कौन समझ सकेंगे जो मनसे एक प्रकार का खेल करते हैं और मुख से अन्य खेल प्रकाशित करते हैं ॥ २२६ ॥ इसलिये जो ऐसा कहते हैं कि हम कृष्ण के हृदय को समझते हैं वे ही मूर्ख हैं इसको निश्चय जानो ॥२२७॥ जिसे हृदय में मारने का भी विचार करें उसको भी देखकर प्रभु बहुत प्रीति करते हैं ॥२२८॥ जो भक्तजन उन्हें प्राणों से भी प्रिय हैं उनको भी देखकर (ऊपर से) निरपेक्ष मन से व्यवहार करते हैं ॥ २२९ ॥ इस प्रकार प्रभु की सभी लीला अचिन्त्य व अगम्य हैं उनके (प्रभु के) अनुग्रह से उनके कृपापात्र ही समझते हैं ॥ २३० ॥ आपने ही तो दण्ड तोड़ने की इच्छा की और अन्त में आप ही गौरहरि क्रोध भी दिखाने लगे ॥ २३१ ॥ प्रभु ने कहा "केवल दण्ड मात्र ही मेरे संग में था सो आज कृष्ण की इच्छा से वह भी भंग हो गया" ॥ २३२ ॥ इसलिये अब किसी से मेरा सङ्ग नहीं होगा या तो तुम आगे चलो अथवा मैं आगे जाऊँ ॥ २३३ ॥ आज्ञा होने पर दुबारा बोलने की किसकी सामर्थ्य है सुनकर सब ही बड़े चिन्तित

मुकुन्द बोलेन तबे तुमि चल आगे । आमरा-सभार किछु कृत्य आछे-पाछे ॥२३५॥
'भाल' बलि चलिलेन श्रीगौरसुन्दर । मत्त-सिंह-प्राय गति लखिते दुष्कर ॥२३६॥
मुहूर्ते के गेला प्रभु जलेश्वर-ग्रामे । बरावर गेला जलेश्वर-देव-स्थाने ॥२३७॥
जलेश्वर पूजिते आछेन विप्रगणे । गन्ध-पुष्प-धूप-दीप माल्यादि आसने ॥२३८॥
बहुविध वाद्य उठियाछे कोलाहल । चतुर्दिगे नृत्य गीत परम मङ्गल ॥२३९॥
देखि प्रभु क्रोध पासरि लेन सन्तोषे । सेइ वाद्ये प्रभु मिशाइला प्रेमरसे ॥२४०॥
निज प्रिय शङ्करेर विभव देखिया । नृत्य करे गौरचन्द्र परानन्द हैया ॥२४१॥
शिवेर गौरव बुझायेन गौरचन्द्र । एतेके शंकर प्रिय सर्व भक्तवृन्द ॥२४२॥
ना माने चैतन्य पथ बोलाय 'वैष्णव' । शिवेरे अमान्य करे व्यर्थ तार सब ॥२४३॥
करिते आछेन नृत्य जगत जीवन । पर्वत विदरे हेन हुङ्कार गर्जन ॥२४४॥
देखि शिवदास सब हइला विस्मित । सभेइ बोलेन शिव हइला विदित ॥२४५॥
आनन्दे अधिक सभे करे गीत वाद्य । प्रभुओ नाचेन तिलार्द्धेको नाहि बाह्य ॥२४६॥
कथोक्षणे भक्तगण आसिया मिलिला । आसियाइ मुकुन्दादि गाइते लागिला ॥२४७॥
प्रियगण देखि प्रभु अधिक आनन्दे । नाचिते लागिला, बेढ़ि गाय भक्तवृन्दे ॥२४८॥
से विकार कहिते वा शक्ति आछे कार । नयने वहये सुर धुनी-शत-धार ॥२४९॥
एवे से शिवेर पुर हइल सफल । याहे नृत्य करे वैकुण्ठेर अधीश्वर ॥२५०॥

---

हुए ॥ २३४ ॥ मुकुन्द ने कहा तब तो आप आगे चलो कारण हम सबों का पीछे कुछ काम शेष है ॥२३५॥ "अच्छा" कहकर, लक्ष्य करने में दुष्कर मत्त सिंह के तुल्य गति से श्रीगौरसुन्दर चल दिये ॥ २३६ ॥ एक मुहूर्त में गौरचन्द्र जलेश्वर ग्राम में पहुँचकर सीधे जलेश्वर नामक शिवजी के मन्दिर तक चले गये ॥२३७॥ ब्राह्मण गण आसन-गन्ध-फूल-धूप-दीप-माला आदि से जलेश्वर की पूजा कर रहे थे ॥२३८॥ अनेक प्रकार से बहुत से बाजों का कोलाहल हो रहा था तथा चारों ओर परम मंगलमय नृत्य गीत हो रहे थे ॥ २३९ ॥ वे सन्तुष्ट हुए और बाजे के साथ प्रेमपूर्वक मिल गये यह देखकर प्रभु का क्रोध शान्त हो गया ॥ २४० ॥ अपने प्रिय शंकर के वैभव को देखते ही अत्यन्त प्रसन्न होकर गौरचन्द्र नाचने लगे ॥ २४१ ॥ शिवजी के गौरव को गौरचन्द्र समझने लगे-इसीलिये सब भक्तवृन्दों के शिवजी प्रिय हैं ॥ २४२ ॥ चैतन्य मार्ग को न मानकर जो वैष्णव कहाते हैं और शिवजी की अमान्यता करते हैं उनका सब कृत्य (पूजा-पाठ) व्यर्थ है ॥ २४३ ॥ जगत् प्राण श्रीगौर सुनकर नृत्य करते थे और ऐसी हुङ्कार व गर्जन करते थे जिससे पर्वत विदीर्ण हो जाते ॥ २४४ ॥ देखकर सब शिव-भक्त विस्मित हुए और सभी कहने लगे कि शिवजी प्रत्यक्ष हुए हैं ॥ २४५ ॥ आनन्द से सब ही और अधिक गीत व वाद्य बजाते थे और प्रभु नाच रहे थे जिन्हें आधे तिल मात्र भी बाह्य ज्ञान नहीं था ॥ २४६ ॥ कुछ क्षण में भक्तगण भी आयकर मिल गये और आते ही मुकुन्दादिक गान करने लगे ॥ २४७ ॥ प्रियगणों को देखकर प्रभु और अधिक आनन्द से नाचने लगे तथा भक्तवृन्द उन्हें घेरकर गान करने लगे ॥ २४८ ॥ उन प्रेम-विकारों को कहने की किसमें सामर्थ्य है नेत्रों से सुरधुनी ( गङ्गा ) की सौ-सौ धारा जैसी बह रही थीं ॥ २४९ ॥ जहाँ श्रीवैकुण्ठनाथ ने नृत्य किया ऐसा

कथा क्षण प्रभु परानन्द प्रकाशिया । स्थिर हइ रहिलेन प्रिय गोष्ठी लैया ॥२५१॥
सभा प्रति करिलेन प्रेम-आलिङ्गन । सबेइ निर्भय हैला परानन्द-मन ॥२५२॥
नित्यानन्द देखि प्रभु लइलेन कोले । बलिते लागिला तौर किछु कुतूहले ॥२५३॥
कोथा तुमि आमारे करिबे सम्बरण । ये मते आमार हय सन्यास-रक्षण ॥२५४॥
आरो आमा पागल करिते तुमि चाओ । आर यदि कर तबे मोर माथा खाओ ॥२५५॥
येन कर तुमि आमा तेन आमि हइ । सत्य-सत्य एइ आमि सभा स्थाने कइ ॥२५६॥
सभारे शिखाय गौरचन्द्र भगवान् । नित्यानन्द प्रति सभे हओ सावधान ॥२५७॥
मोर देह हैते नित्यानन्द देह बड़ । सत्य-सत्य सभारे कहिलुँ एइ दढ़ ॥२५८॥
'नित्यानन्द स्थाने यार हय अपराध । मोर दोष नाहि, तार प्रेम भक्ति-बाध ॥२५९॥
नित्यानन्दे याहार तिलेक द्वेष रहे । भक्त हइलेओ आमार प्रिय नहे ॥२६०॥
आत्म स्तुति शुनि नित्यानन्द महाशय । लज्जाय रहिला प्रभु माथा ना तोलय ॥२६१॥
परम-आनन्द हैला सर्व भक्तगण । हेन लीला करे प्रभु श्रीशचीनन्दन ॥२६२॥
एइ मत जलेश्वरे से रात्रि रहिया । उषः काले चलिला सकल भक्त लैया ॥२६३॥
बाँशधाय पथे एक शाक्त न्यासि वेश । आसिया प्रभुरे पथे करिल आदेश ॥२६४॥
'शाक्त' हेन प्रभु जानिलेन निज मने । सम्भाषिते लागिलेन मधुर वचने ॥२६५॥
प्रभु बोले कह-कह कोथा तुमि सब । चिरदिने आजि देखिलाङ ये बान्धव ॥२६६॥

---

वह शिव पुर सफल हो गया ॥ २५० ॥ कुछ क्षण में श्रीगौरप्रभु परानन्द प्रकाश करके स्थिर हुए और प्रिय-गोष्ठी को लेकर थम गये (स्थिर हुए) ॥ २५१ ॥ सबको प्रेम से आलिङ्गन किया जिससे सभी निर्भय होकर परमानन्दित हुए ॥ २५२ ॥ श्रीगौर प्रभु ने नित्यानन्दजी को देखकर अंक में भर लिया और कुतूहल पूर्वक उनसे कुछ कहने लगे ॥ २५३ ॥ कहाँ तो यह बात कि तुम मुझे सम्हालो जिसमें मेरे सन्यास की रक्षा हो ( यह तुम्हारा कर्तव्य है ) ॥ २५४ ॥ उल्टा मुझे तुम पागल और बनाना चाहते हो यदि ऐसा फिर करो तो मेरा मस्तक खाओ ॥ २५५ ॥ तुम मुझे जैसा बनाते हो वैसा ही मैं बनता हूँ यह मैं सभों के सामने सत्य कहता हूँ ॥ २५६ ॥ श्रीभगवान् गौरचन्द्र ने आज्ञा ( शिक्षा ) दी, सबको सिखाते हैं कि नित्यानन्दजी की ओर सब भक्त सावधानी रक्खें ॥ २५७ ॥ मेरे शरीर से नित्यानन्दजी का शरीर श्रेष्ठ है यह दृढ़ बात मैं सबके सम्मुख सत्य ही कहता हूँ ॥ २५८ ॥ श्रीनित्यानन्द के प्रति जिसका अपराध होगा उसे प्रेम-भक्ति कभी नहीं मिलेगी इसमें मुझे दोष न देना ॥ २५९ ॥ श्रीनित्यानन्द के प्रति जिसका तिलमात्र भी द्वेष रहेगा वह भक्त होने पर भी मेरा प्रिय कदापि नहीं है ॥ २६० ॥ श्रीप्रभु नित्यानन्द महाशय अपनी प्रशंसा सुनकर लज्जा से मस्तक नहीं उठा रहे थे ॥ २६१ ॥ सब भक्तों को बड़ा आनन्द हुआ श्रीशचीनन्दन प्रभु ऐसी विलक्षण लीला करते हैं ॥२६२॥ इस भाँति उस रात्रि जलेश्वर में रहकर प्रातःकाल में सब भक्तों को साथ लेकर चल दिये॥२६३॥बाँशधा के पथ में जाते समय मार्ग में न्यासी वेशधारी एक शाक्त ने आकर प्रभु को आदेश किया ॥ २६४ ॥ यह शाक्त है ऐसा प्रभु ने अपने मनमें जान लिया तो भी मधुर वचनों से उससे सम्भाषण करने लगे ॥ २६५ ॥ गौरचन्द्र बोले कहो तुम सब कहाँ रहते हो, हे बांधव ! तुम्हें आज बहुत दिन में देखा है ?

प्रभुर मायाय शाक्त मोहित हइल । आपनार तत्त्व मत कहिते लागिल ॥२६७॥
यत-यत शाक्त वैसे यत-यत देशे । सब कहे एके-एके शुनि प्रभु हासे ॥२६८॥
शाक्त बोले चल झाट मठेते आमार । सभेइ 'आनन्द' आजि करिब अपार ॥२६९॥
पापी शाक्त मदिरारे बोलये 'आनन्द' । बूझिया हासेन गौरचन्द्र नित्यानन्द ॥२७०॥
प्रभु बोले आसि आमि 'आनन्द' करिते । आगे गिया तुमि सज्ज करह त्वरिते ॥२७१॥
शुनिजा चलिल शाक्त हइ हरषित । एइ मत ईश्वरेर अगाध चरित ॥२७२॥
'पतित पावन कृष्ण' सर्व वेदे कहे । अतएव शाक्त-सह प्रभु कथा कहे ॥२७३॥
लोके बोले 'ए शाक्तेर हइल उद्धार । ए-शाक्त-परसे अन्य शाक्तेर निस्तार ॥२७४॥
एइ मत श्रीगौरसुन्दर भगवान् । नाना मते करिलेन सर्व-जीव-त्राण ॥२७५॥
हेन मते शाक्तेर सहित रस करि । आइला रेमुणा-ग्रामे गौराङ्ग श्रीहरि ॥२७६॥
रेमुणाय देखि निज मूर्ति गोपीनाथ । विस्तर करिला नृत्य भक्तगण साथ ॥२७७॥
आपनार प्रेमे मत्त पासरि आपना । रोदन करेन अति करिया करुणा ॥२७८॥
से करुणा शुनिते पाषाण काष्ठ द्रवे । एवे ना द्रविल धर्मध्वजि-गण सवे ॥२७९॥
कथो दिने महाप्रभु श्रीगौरसुन्दर । आइलेन याजपुर-ब्राह्मण नगर ॥२८०॥
यहि आदि वराहेर अद्भुत प्रकाश । याँर दरशने हय सर्व-बन्ध-नाश ॥२८१॥
महातीर्थ-बहे यथा नदी वैतरणी । याँर दरशने पाप पलाय आपनि ॥२८२॥

---

॥ २६६ ॥ प्रभु की माया से शाक्त मोहित होकर अपने समस्त गुप्त भेद ( तत्त्व ) को कहने लगा ॥ २६७ ॥ जिन-जिन प्रान्तों में जो-जो शाक्त रहते थे, एक २ करके सब बतलाये तथा सुनकर प्रभु हँसे ॥ २६८ ॥ शाक्त ने कहा शीघ्र से हमारे मठ में चलो आज सब मिलकर "आनन्द" करेंगे ॥ २६९ ॥ पापी शाक्त मदिरा को आनन्द कहता था, यह समझकर गौरचन्द्र व नित्यानन्द दोनों हँसने लगे ॥ २७० ॥प्रभु ने कहा मैं 'आनन्द' के लिये आता हूँ तुम आगे जाकर शीघ्र आयोजन करो ॥ २७१ ॥ शाक्त सुनकर प्रसन्न होता हुआ चला गया इस प्रकार ईश्वर के अपार चरित्र हैं ॥ २७२ ॥ सब वेद कृष्ण को पतित-पावन कहते हैं, इसी कारण से प्रभु ने शाक्त से वार्त्तालाप किया था ॥ २७३ ॥ लोगों ने कहा इस शाक्त का उद्धार होगया और इस शाक्त के स्पर्श होने से अन्य शाक्तों का भी निस्तार होगा ॥ २७४ ॥ इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर भगवान् ने अनेक प्रकार से "सर्व लोक-कल्याण" के काम किये ॥ २७५ ॥ इस प्रकार शाक्त के साथ आनन्द वार्त्ता करके श्रीगौरहरि ने रेमुणा ग्राम में आगमन किया ॥ २७६ ॥ रेमुणा में अपनी ही स्वरूप श्री गोपीनाथ को देखकर भक्तवृन्दों के साथ विशेष रूप से नृत्य किया ॥ २७७ ॥ अपने प्रेम में मस्त अपने को ही भूलकर अत्यन्त करुणा करके प्रभु रोदन करने लगे ॥ २७८ ॥ उस करुणापूर्ण रोने को सुनकर पाषाण काष्ठ द्रवीभूत हो गये उस समय केवल "धर्म्म के ध्वजा-रक्षक गण" ही नहीं पिघले ॥ २७९ ॥ कुछ दिन में श्रीगौरसुन्दर महाप्रभु याजपुर नामक ब्राह्मणों के नगर में आ पहुँचे ॥२८०॥ यहाँ जिसमें आदिवराह का अद्भुत स्वरूप प्रकाश है जिसके दर्शन करने से बन्धन नष्ट हो जाते हैं ॥ २८१ ॥ जहाँ महा तीर्थरूप वैतरणी नदी बह रही

जन्तुमात्र ये नदीर हइलेइ पार । देव गणे देखे चतुर्भुजेर आकार ॥२८३॥
नाभिगया-विरजा देवीर यथा स्थान । यथा हैते क्षेत्र-दश-योजन-प्रमाण ॥२८४॥
याजपुरे यतेक आछये देव स्थान । लक्ष वत्सरे ओ नारि लैते सब नाम ॥२८५॥
देवालय नाहि हेन नाहि तथि स्थान । केवल देवेर वास याजपुर ग्राम ॥२८६॥
प्रथमे दशाश्वमेधि घाटे न्यासि मणि । स्नान करिलेन भक्त-संहति आपनि ॥२८७॥
तबे प्रभु गेला आदिवराह-सम्भाषे । विस्तर करिला नृत्य-गीत प्रेमरसे ॥२८८॥
बड़ सुखी हैला प्रभु देखि याजपुर । पुनः पुन बाढ़े आनन्दावेश प्रचुर ॥२८९॥
के जाने कि इच्छा तान धरिलेक मने । सबा' छाड़ि एका पलाइलेन आपने ॥२९०॥
प्रभु ना देखिया सभे हइल विकल । देवालये चाहि चाहि बूलेन सकल ॥२९१॥
ना पाइया कोथाओ प्रभुर अन्वेषण । परम चिन्तित हइलेन भक्तगण ॥२९२॥
नित्यानन्द बोले "सभे स्थिर कर' चित्त । जानिलाङ प्रभु गियाछेन ये निमित्त ॥२९३॥
निभृते ठाकुर सब याजपुर-ग्राम । देखिबेन यत यत आछे देवस्थान ॥२९४॥
आमराओ 'सभे भिक्षा करि' एइ ठांइ । आजि थाकि, कालि प्रभु पाइब एथाइ ॥२९५॥
सेइ मत करिलेन सबभक्त गण । भिक्षा करि आनि सभे करिला भोजन ॥२९६॥
प्रभुओ बूलिया सब याजपुर-ग्राम । देखिया यतेक याजपुर-पुण्यस्थान ॥२९७॥
सर्व भक्तगण यथा आछेन वसिया । आर दिने सेइ स्थाने मिलिला आसिया ॥२९८॥

---

है जिसके दर्शन करते ही पाप स्वयं भाग जाते हैं ॥ २८२ ॥ प्राणीमात्र इस नदी के पार होते ही चतुर्भुज रूप में देवगणों को भी दीखने लगता है ॥ २८३ ॥ याजपुर के अन्तर्गत नाभिगया है जहाँ विरजा देवी का स्थान है वहाँ से श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र ( जगन्नाथ ) दशयोजन यानी ४० कोस दूर है ॥ २८४ ॥ याजपुर में जितने देवताओं के स्थान हैं उन सबके लाख वर्ष में भी नाम नहीं लिये जा सकते हैं ॥२८५॥ जहाँ देवालय न हो ऐसा वहाँ कोई स्थान ही नहीं था याजपुर ग्राम में केवल देवताओं का ही निवास है॥२८६॥ प्रथम स्वयं सन्यासियों में शिरोमणि श्रीगौर ने भक्तवृन्दों के साथ दशाश्वमेध घाट पर स्नान किया ॥ २८७ ॥ तब प्रभु गौरचन्द्र आदिवराह के दर्शन को गये और अपने ही प्रेमरस में विशेष नृत्य व गान किया॥२८८॥ याजपुर को देखकर प्रभु बड़े प्रसन्न हुए और उनका बारम्बार विशेष प्रेमानन्द आवेश बढ़ता जाता था॥२८९॥ कौन जाने कि उनके मनमें क्या इच्छा उठी जिससे सबको छोड़कर वहाँ से आप अकेले ही भाग खड़े हुए ॥ २९० ॥ प्रभु को न देखकर सब विह्वल हो गये और सब देवालयों में अन्वेषण करते २ भ्रमण करने लगे ॥ २९१ ॥ प्रभु को ढूँढने पर जब कहीं पता न चला तो सब भक्तवृन्द बड़े चिन्तित हुए ॥२९२॥ श्रीनित्यानन्द ने कहा "सब लोग मन स्थिर करो जिस कारण से गौरचन्द्र गये हैं मैं जान गया ॥ २९३ ॥ याजपुर ग्राम के अन्तर्गत एकान्त में समस्त ठाकुर हैं सो जितने देवस्थान हैं उन सबके दर्शन करेंगे ॥ २९४ ॥ हम लोग सब आज भिक्षा करके इसी जगह में रहेंगे प्रभु कल यहीं मिलेंगे ॥ २९५ ॥ सब भक्तों ने उसी प्रकार किया,भिक्षा लाकर सबने भोजन किया॥२९६॥प्रभु गौरचन्द्र भी समस्त याजपुर ग्राम में भ्रमण करके जितने पुण्य स्थान वहाँ थे उन सबको देखकर जहाँ समस्त भक्त बैठे थे दूसरे दिन वहीं पर आकर मिलने लगे

सभा लइ प्रभु याजपुर धन्य करि  चलिलेन 'हरि' वलि गौराङ्ग श्रीहरि  ३००
हेन मते महानन्दे श्रीगौर सुन्दर  आइलेन कथोदिन कटक-नगर  ३०१
भाग्यवती-महानदी जले करि स्नान । आइलेन प्रभु साक्षिगोपालेर स्थान ..३०२..
देखि साक्षिगोपालेर लावण्य मोहन । आनन्दे करेन प्रभु हुङ्कार गर्जन ॥३०३॥
'प्रभु' वलि नमस्कार करेन स्तवन । अद्भुत करेन प्रेम-आनन्द-क्रन्दन ॥३०४॥
यार मंत्रे सकल मूर्ति ते वैसे प्राण । सेइ प्रभु-श्रीकृष्ण चैतन्यचन्द्र नाम ॥३०५॥
तथापिह निरवधि करे दास्य लीला । अवतार हैले हय एइमत खेला ॥३०६॥
तवे प्रभु आइलेन श्रीभुवनेश्वर । गुप्त काशी-वास यथा करेन शङ्कर ॥३०७॥
सर्वतीर्थ-जल यथा बिन्दु बिन्दु आनि । 'विन्दु सरोवर' शिव सृजिला आपनि ॥३०८॥
'शिव-प्रिय सरोवर' जानि श्रीचैतन्य । स्नान करि विशेषे करिला अति धन्य ॥३०९॥
देखिलेन गिया प्रभु प्रकट शङ्कर । चतुर्दिगे शिवध्वनि करे अनुचर ॥३१०॥
चतुर्दिगे सारि सारि घृतदीप ज्वले । निरवधि अभिषेक हइतेछे जले ॥३११॥
निज-प्रिय-शङ्करेर देखिया विभव । तुष्ट हइलेन प्रभु, सकल वैष्णव ॥३१२॥
ये चरण-रसे शिव वसन ना जाने । हेन प्रभु नृत्य करे शिव- विद्यमाने ॥३१३॥
नृत्य गीत शिव-अग्रे करिया आनन्द । से रात्रि रहिला सेइ ग्रामे गौरचन्द्र ॥३१४॥

---

॥ २९७-२९८ ॥ जैसे तैसे भक्तवृन्द 'हरि-हरि' कहते हुए आश्चर्य करके सब ही उठ खड़े हुए ॥ २९९ ॥ सब को लेकर श्रीगौरहरि याजपुर को धन्य करके "हरि-हरि" बोलते हुए चल दिये ॥ ३०० ॥ इस प्रकार बड़े आनन्द से श्रीगौरसुन्दर कुछ दिन में कटक नगर में आ पहुँचे ॥ ३०१ ॥ भाग्यवती महानदी के जलमें स्नान करके साक्षीगोपाल के स्थान में गौरहरि आये ॥ ३०२ ॥ साक्षीगोपाल की मोहक सुन्दर लावण्य को देखकर प्रभु प्रेमानन्द से हुंकार व गर्जन करने लगे ॥ ३०३ ॥ हे प्रभो ! कहकर नमस्कार व स्तुति की और प्रेमानन्द में अद्भुत क्रन्दन (रुदन) करने लगे ॥३०४॥ जिसके मन्त्र से सब मूर्तियों में प्राण प्रतिष्ठा होती है वे ही प्रभु जगत् में श्रीकृष्णचैतन्य नाम से प्रकट हुए हैं ॥ ३०५ ॥ तथापि निरन्तर दास के समान लीला करते हैं कारण अवतार होने पर ऐसा ही खेल करते हैं ॥ ३०६ ॥ तब प्रभु गौरचन्द्र श्रीभुवनेश्वर नामक गुप्तकाशी में आये, जहाँ श्रीशिवजी वास करते हैं ॥ ३०७ ॥ जहाँ सब तीर्थों का बिन्दु-बिन्दु जल लाकर शिवजी ने स्वयं "विन्दु सरोवर" सृजन किया था ॥ ३०८ ॥ उसे शिव का प्रिय सरोवर जानकर श्रीचैतन्यदेव ने स्नान करके विशेष रूप से अति धन्य कर दिया ॥ ३०९ ॥ प्रभु ने जाकर श्रीशंकर के प्रकट दर्शन किये वहाँ चारों ओर सेवकगण शिव २ ध्वनि कर रहे थे ॥ ३१० ॥ चारों ओर पंक्ति की पंक्ति घी के दीपक जल रहे थे तथा निरन्तर जल से अभिषेक हो रहा था ॥ ३११ ॥ अपने प्रिय शिवजी का वैभव देखकर श्री-प्रभु व समस्त वैष्णवगण सन्तुष्ट हुए ॥ ३१२ ॥ जिसके चरणारविन्द के रस में मस्त होकर शिवजी को वस्त्र धारण का ज्ञान नहीं है ऐसे प्रभु शिव के सम्मुख नृत्य करने लगे ॥ ३१३ ॥ शिवजी के आगे आनन्द-पूर्वक नृत्य गान करके श्रीगौरचन्द्र उस रात्रि को उसी ग्राम में रहे ॥ ३१४ ॥ जिस प्रकार शिवजी को वह

सेइ स्थान शिव पाइलेन येन मते । सेइ कथा शुन स्कन्द पुराणेर मते ॥३१५॥
काशीमध्ये पूर्वे शिव पार्वती-सहिते । आछिला अनेक काल परम-निभृते ॥३१६॥
तबे गौरी-सह शिव गेला त कैलाश । नर-राजा गणे काशी करये बिलास ॥३१७॥
तबे काशीराज नामे हैला एक राजा । काशीपुर भोगकरे करि शिव पूजा ॥३१८॥
दैवे आसि कालपाश लागिल ताहारे । उग्र-तपे शिव पूजे कृष्ण जिनिबारे ॥३१९॥
प्रत्यक्ष हइला शिव तपेर प्रभावे । "वर माग" बलिलेन, राजा बर मागे ॥३२०॥
"एक वर मागों प्रभु तोमार चरणे । येन मुजि कृष्ण जिनिबारे पारों रणे" ॥३२१॥
भोलानाथ शङ्करेर चरित्र अगाध । के बूझे कि रूपे कारे करेन प्रसाद ॥३२२॥
तारे बलिलेन "राजा चल युद्धे तुमि । तोर पाछे सर्व-गण-सह आछि आमि ॥३२३॥
तोरे जिनिबेक हेन कार शक्ति आछे । पाशुपत-अस्त्र लइ मुजि तोर पाछे ॥३२४॥
पाइया शिवेर बल सेइ मूढ़मति । चलिला हरिषे युद्धे कृष्णेर संहति ॥३२५॥
शिवो चलिलेन तार पाछे सर्व-गणे । तार पक्ष हइ युद्ध करिवार मने ॥३२६॥
सर्वभूत-अन्तर्यामी देवकी-नन्दन । सकल वृत्तान्त जानिलेन सेइक्षण ॥३२७॥
जानिञा वृत्तान्त निजचक्र-सुदर्शन । एड़िलेन कृष्णचन्द्र सभार दलन ॥३२८॥
कारो अव्याहति नाहिं सुदर्शन-स्थाने । काशीराज-मुण्ड गिया काटिल प्रथमे ॥३२९॥
शेषे तार सम्बन्धे सकल वाराणसी । पूड़िया-झाड़िया करिलेन भस्म राशि ॥३३०॥
वाराणसी दाह देखि क्रुद्ध महेश्वर । पाशुपत अस्त्र एड़िलेन भयङ्कर ॥३३१॥

स्थान प्राप्त हुआ वह कथा स्कन्द पुराण के अनुसार सुनो ॥ ३१५ ॥ पूर्व में पार्वती सहित श्रीशिवजी अनेक समय तक एक परम एकान्त स्थान पर काशी में रहे॥३१६॥पीछे से गौरी सहित श्रीशिवजी तो कैलाश को चले गये तत्पश्चात् मनुष्य व राजागण काशी में विलास करने लगे ॥ ३१७ ॥ तब काशीराज नामक एक राजा हुआ जो शिवजी की पूजा करके काशीपुरी को भोग करने लगा॥३१८॥दैववश आय कर उसको काल-पाश ने घेर लिया सो कृष्ण को जीतने के लिये उग्र तप द्वारा शिवजी की पूजा करने लगा ॥ ३१९ ॥ तप के प्रभाव से शिवजी प्रत्यक्ष हुए और कहा कि "वर माँगो" तब राजा ने वर माँगा ॥ ३२० ॥ प्रभो तुम्हारे चरणों में एक वर माँगता हूँ कि जिसमें मैं रण में कृष्ण को जीत सकूँ ॥ ३२१ ॥ भोलानाथ शंकर के अपार चरित्र हैं कौन जाने किस प्रकार से कृपा करते हैं ॥ ३२२ ॥ उससे कहा हे राजा ! तू युद्ध को चल तेरे पीछे मैं सब गणों ( भूत प्रेतादि ) सहित हूँ ॥ ३२३ ॥ तुझे जीतने की किसमें सामर्थ्य है मैं तेरे पीछे पाशुपत अस्त्र लेकर उपस्थित हूँ ॥ ३२४ ॥ वह मूढ़मति शिव का बल पाकर प्रसन्न हो कृष्ण के साथ युद्ध करने के लिये चल दिया ॥ ३२५ ॥ शिवजी भी उसका पक्ष लेकर उसके पीछे सब गणों के साथ युद्ध करने के विचार से चल दिये ॥३२६॥ देवकीनन्दन सब प्राणियों के भीतर की जानने वाले उसी क्षण सब वृत्तान्त जान गये ॥ ३२७ ॥ वृत्तान्त जानकर श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने सुदर्शन चक्र को सबके दलन ( नष्ट ) करने के लिये छोड़ दिया ॥ ३२८ ॥ सुदर्शन चक्र के आगे किसी की रोक नहीं चलती सो प्रथम ही काशीराज का सिर काट दिया ३२९ अन्त में उसके सम्बन्ध से समस्त काशी को दग्ध करके पूर्ण रूप से भस्म राशि

पाशुपत-अस्त्र कि करिब चक्र-स्थाने । चक्र-तेज देखि पलाइल सेइक्षणे ॥३३२॥
शेषे महेश्वर प्रति जायेन धाइया । चक्र-भये शङ्करो जायेन पलाइया ॥३३३॥
चक्र-तेजे व्यापिलेक सकल भुवन । पलाइले दिग ना पायेन त्रिलोचन ॥३३४॥
पूर्वे येन चक्रतेजे दुर्वाशा पीड़ित । हइलेन, शिवेरो हइल सेइ रीत ॥३३५॥
शेषे शिव बूझिलेन सुदर्शन-स्थाने । रक्षा करिबेक हेन नाहि कृष्ण बिने ॥३३६॥
एतेक चिन्तिया वैष्णवाग्र त्रिलोचन । भये त्रस्त हइ गेला गोविन्द-शरण ॥३३७॥
जय जय महाप्रभु देवकीनन्दन । जय सर्व व्यापि सर्व जीवेर शरण ॥३३८॥
जय जय सुबुद्धि कुबुद्धि सर्व दाता । जय जय स्रष्टा हर्ता सभार रक्षिता ॥३३९॥
जय जय अदोष दरशि कृपासिन्धु । जय जय सन्तप्तजनेर एकबन्धु ॥३४०॥
जय सर्व अपराध-भंजन-शरण । दोष 'क्षमा कर' प्रभु लइलूँ शरण" ॥३४१॥
शुनि शङ्करेर स्तव सर्वजीवनाथ । चक्र-तेज निवारिया हइला साक्षात ॥३४२॥
चतुर्दिगे शोभा करे गोप गोपीगण । किछु क्रोध-हास्य-मुखे बोलेन वचन ॥३४३॥
'केने शिव तुमित जानह मोर शुद्धि । एत काले तोमार ये हइल कुबुद्धि ॥३४४॥
कोन् कीट् काशीराज अधम नृपति । तार लागि युद्धकर' आमार संहति ॥३४५॥
एइ ये देखह मोर चक्रसुदर्शन । तोमाकेह ना सहे' याहार पराक्रम॥३४६॥
ब्रह्म-अस्त्र पाशुपत-अस्त्र आदि यत । परम अव्यर्थ महा-अस्त्र आर कत ॥३४७॥

---

कर दिया ॥ ३३० ॥ काशी को दग्ध देखते ही क्रुद्ध होकर महेश्वर ने अति भयंकर पाशुपत अस्त्र को छोड़ दिया ॥ ३३१ ॥ चक्र के आगे पाशुपत अस्त्र की क्या चले है सो चक्र के तेज को देखकर तुरन्त भाग गया ॥ ३३२ ॥ तब शिवजी की ओर भी चक्र दौड़ा—उसके भय से शङ्करजी भी भागे ॥ ३३३ ॥ सुदर्शन चक्र के तेज से सब भुवन डर गये सो शिवजी के भागने को कोई दिशा नहीं मिली ॥ ३३४ ॥ पहिले जिस प्रकार दुर्वाशा ऋषि चक्र के तेज से पीड़ित हुए थे उसी प्रकार आज शिव की भी वही गति हुई ॥ ३३५ ॥ अन्त में शिवजी जान गये कि सुदर्शन से कृष्ण बिना कोई रक्षा करने में समर्थ नहीं है ॥ ३३६ ॥ वैष्णवाग्रगण्य श्रीशिवजी इस प्रकार चिन्तन करके भय से त्रस्त हो गोविन्द की शरण में गये,स्तुति भी की ॥३३७॥ "महाप्रभु देवकी नन्दन की जय हो, सर्वान्तर्यामी सब जीवों को शरण देने वाले आपकी जय हो २॥३३८॥सुबुद्धि कुबुद्धि के दाता जय हो, २ सृष्टि पालन व संहारकर्त्ता की जय हो २ ॥३३९॥अदोषदर्शी कृपासिंधु की जय हो जय हो तथा दुःखी जनों के एक मात्र बन्धु आपकी जय हो, जय हो॥३४०॥ सब अपराध नष्ट करने वाले व शरणागत वत्सल प्रभु की जय हो प्रभो ! अपराध क्षमा करो आपकी शरण हूँ ॥ ३४१ ॥ सब जीवों के स्वामी, शिवजी की स्तुति सुनकर चक्र का तेज शान्त करके प्रगट हुए ॥ ३४२ ॥ आपके चारों ओर गोप व गोपियों के समूह शोभा दे रहे थे तथा कुछ क्रोध मिश्रित हास्य मुख से वचन बोले ॥३४३॥ क्यों शिवजी ? तुम तो मेरे शुद्ध स्वरूप ( तात्पर्य ) को जानते हो तब इस समय तुम्हें यह कुबुद्धि क्यों हो गई ॥ ३४४ ॥ अधम काशीराज तुच्छ कीड़ा है जिसके लिये तुमने मेरे साथ युद्ध किया ॥ ३४५ ॥ देखते हो यह मेरा सुदर्शन चक्र है जिसका पराक्रम तुम भी सहन नहीं कर पाते ॥ ३४६ ॥ ब्रह्मास्त्र, पाशुपत आदि जितने भी

सुदर्शन स्थाने कारो नाहि प्रतिकार यार अस्त्र तारे चाहे करिते संहार ३४८
हेन त ना देखि आमि पृथिवी-भितरे । तोमा बइ आमारे ये करे अनादरे ॥३४९॥
शुनिञा प्रभुर किछु सक्रोध-उत्तर । अन्तरे कम्पित बड़ हइला शङ्कर ॥३५०॥
तबे शेषे धरिया प्रभुर श्रीचरण । करिते लागिला शिव आत्म निवेदन ॥३५१॥
तोमार अधीन प्रभु सकल संसार । स्वतन्त्र हइते शक्ति आछये काहार ॥३५२॥
पवने चालाय येन शुष्क तृण गण । एइ मत अस्वतंत्र सकल भुवन ॥३५३॥
ये कराह प्रभु तुमि सेइ जीवे करे । हेन के वा आछे ये तोमार माया तरे ॥३५४॥
विशेषे दियाछ प्रभु मोरे अहङ्कार । आपनार बड़ बइ नाहि देखों आर ॥३५५॥
तोमार मायाय मोरे कराय दुर्गति । कि करिमूँ प्रभु मुञि अ-स्वतंत्रमति ॥३५६॥
तोर पादपद्म मोर एकान्त जीवन । अरण्ये थाकिमूँ चिन्ति तोमार चरण ॥३५७॥
तथापिह मोरे से लओयाओ अहङ्कार । मुञि कि करिमू प्रभु ये इच्छा तोमार ॥३५८॥
तथापिह प्रभु मुञि कैलूँ अपराध । सकल क्षमिया मोरे करह प्रसाद ॥३५९॥
ए मत कुबुद्धि मोर येन आर नहे । एइ वर देह प्रभु हइया सदये ॥३६०॥
येन अपराध कैलूँ करि अहङ्कार । हइल ताहार शास्ति, शेष नाहि आर ॥३६१॥
एबे आज्ञा कर प्रभु थाकिमू कोथाय । तोमा बइ आर वा बलिब कार पाय ॥३६२॥
शुनिञा शिवेर वाक्य ईषत् हासिया । बलिते लागिला प्रभु कृपायुक्त हैया ॥३६३॥
शुनि शिव तोमारे दिलाङ दिव्य स्थान । सर्व गोष्ठी सह तथा करह प्रयाण ॥३६४॥

---

बड़े अचूक ( परम अव्यर्थ ) महाअस्त्र हैं वे भी सुदर्शन चक्र की रोक नहीं कर सकते उनके स्वामी (अस्त्रधारी) को ही मारने को उद्यत होता है ॥ ३४७-३४८ ॥ पृथ्वी पर तुम्हारे अतिरिक्त मैं और किसी को नहीं देखता जो मेरा अनादर करे ॥ ३४९ ॥ प्रभु के कुछ क्रोध भरे शब्द सुनकर शिवजी मनमें बड़े कम्पित हुए ॥ ३५० ॥ तब अन्त में प्रभु के चरण-कमल पकड़ कर शिवजी आत्म निवेदन करने लगे ॥३५१॥ हे प्रभो ! सब संसार तुम्हारे आधीन है स्वतन्त्र होने की किसमें सामर्थ्य है ॥३५२॥ जिस प्रकार वायु सूखे तिनकों को उड़ाती है उसी प्रकार समस्त भुवन परतन्त्र हैं ॥ ३५३ ॥ हे प्रभो ! तुम जो कराते हो जीव वही करते हैं ऐसा कौन है जो तुम्हारी माया के पार कर जा सके ॥ ३५४ ॥ तथा प्रभु ने तो मुझे अहङ्कार विशेष रूप से दिया है जिससे मैं अपने से बड़ा किसी को नहीं दीखता हूँ ॥ ३५५ ॥ आपकी माया ही प्रभो ! मेरी दुर्गति कर रही है मैं क्या करूँ मैं स्वतन्त्र बुद्धि वाला हूँ ॥३५६॥ आपके चरण-कमल ही मेरे एकमात्र जीवन हैं—वन में पड़ा हुआ उन्हीं का ध्यान करता रहता हूँ ॥ ३५७ ॥ तो भी मुझसे वही अहङ्कार ही कराते हो, प्रभो ! मैं क्या करूँ—जो आपकी इच्छा ॥३५८॥ तथापि प्रभो ! मैंने अपराध किया है सब क्षमा करके मेरे ऊपर अनुग्रह करिये ॥ ३५९ ॥ मुझसे ऐसी कुबुद्धि जिससे फिर न बन पड़े, दया करके प्रभो ! यही वर दीजिये ॥ ३६० ॥ मैंने अहंकार करके जो अपराध किया उसका उचित दण्ड ही पाया अब और अहंकार शेष नहीं रहा है॥३६१॥प्रभो ! आज्ञा करो मैं कहाँ रहूँ ? और आपके अतिरिक्त किसके चरणों में निवेदन करूँ ? ॥ ३६२ ॥ शिवजी के वाक्यों को सुनकर प्रभु हँसे तथा कृपा करके बोले ॥३६३॥ हे शिवजी सुनो !

एकाम्रक बन-नाम-स्थान मनोहर । तथाइ हइया तुमि कोटि लिङ्गेश्वर ॥३६५॥
सेहो वाराणसी-प्राय सुरम्य नगरी । सेइ स्थाने आमार आछये गोप्य पुरी ॥३६६॥
सेइ स्थान शिव ! आजि कहि तोमा स्थाने । से पुरीर मर्म मोर केहो नाहि जाने ॥३६७॥
सिन्धु तीरे वट-मूले नीलाचल-नाम । क्षेत्र-श्रीपुरुषोत्तम-अति रम्य स्थान ॥३६८॥
अनन्त ब्रह्माण्ड काले जखन संहरे । तबु से स्थानेर किछु करिते ना पारे ॥३६९॥
सर्व-काल सेइ स्थाने आमार वसति । प्रतिदिन आमार भोजन हय तथि ॥३७०॥
सेइ स्थान-प्रभावे योजन दश भूमि । ताहाते वसये यत जन्तु कीट क्रमि ॥३७१॥
सभारे देखये चतुर्भुज देव गणे । 'मरण मंगल' करि कहिये ये स्थाने ॥३७२॥
निद्रा तेओ ये स्थाने समाधि फल हय । शयने प्रणाम-फल यथा वेदे कय ॥३७३॥
प्रदक्षिण-फल पाय करिले भ्रमण । कथा मात्र यथा हय आमार स्तवन ॥३७४॥
हेन से क्षेत्रेर अति प्रभाव निर्मल । मत्स्य खाइलेओ पाय हविष्येर फल ॥३७५॥
निज-नामे स्थान मोर हेन प्रियतम । ताहाते यतेक वैसे, से-इ मोर सम ॥३७६॥
से स्थाने नाहिक यमदण्ड-अधिकार । आमि करि भालमन्द विचार सभार ॥३७७॥
हेन ये आमार पुरी, ताहार उत्तरे । तोमारे दिलाङ स्थान रहिवार तरे ॥३७८॥
भुक्ति-मुक्तिप्रद सेइ स्थान मनोहर । तथा तुमि ख्यात हैवा 'श्रीभुवनेश्वर' ॥३७९॥
शुनिञा अद्भुत पुरी-महिमा शङ्कर । पुनः श्रीचरण धरि करिला उत्तर ॥३८०॥

---

तुम्हें एक दिव्य स्थान देता हूँ वहाँ सब गणों सहित पधारो ॥ ३६४ ॥ एकाम्रक वन नामक मनोहर स्थान है वहाँ तुम कोटि लिङ्गेश्वर नाम से रहो ॥ ३६५ ॥ वह भी वाराणसी ( काशी ) के तुल्य सुन्दर नगरी है और उसी जगह मेरी एक गोपनीय पुरी भी है॥३६६॥वह स्थान है, हे शिव ! आज मैं तुमसे उसे कहता हूँ मेरी उस पुरी के मर्म को कोई नहीं जानता ॥ ३६७ ॥ समुद्र के तट पर वट के मूल अति रम्य स्थान नीलाचल नामक श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र है ॥ ३६८ ॥ जिस समय काल अनन्त ब्रह्माण्डों का नाश करता है तब भी उस स्थान का कुछ भी नहीं कर पाता ॥ ३६९ ॥ उस स्थान में सदा ही मेरा निवास है वहीं नित्य प्रति मेरा भोजन होता है॥३७०॥उस स्थान के प्रभाव से दश योजन भूमि में (अर्थात् ४० कोस में) जितने जन्तु कृमि आदि रहते हैं ॥ ३७१ ॥ सबको देवगण चतुर्भुज स्वरूप में देखते हैं उस स्थान में शरीर छोड़ना शुभ कहा है ॥ ३७२ ॥ उस स्थान में नींद लेने से समाधि का फल होता है तथा लेटने से प्रणाम करने का फल वेदों में कहा है ॥ ३७३ ॥ भ्रमण करने से प्रदक्षिणा का फल प्राप्त होता है और जहाँ कथा मात्र से मेरी स्तुति होती है ॥ ३७४ ॥ उस क्षेत्र का ऐसा अति निर्मल प्रभाव है कि वहाँ मछली खाने पर भी हविष्य अन्न का फल प्राप्त होता है ॥ ३७५ ॥ मेरे ही नाम वाला वह स्थान इतना सर्वाधिक प्रिय है उसमें जितने प्राणी रहते हैं वे सब मेरे ही समान हैं ॥ ३७६ ॥ उस स्थान में यमराज को दण्ड देने का अधिकार नहीं है वहाँ तो सबके भले-बुरे कर्मों का विचार मैं ही करता हूँ ॥३७७॥ ऐसी जो मेरी पुरी है उसके उत्तर दिशा में तुम्हारे रहने को स्थान देता हूँ ॥ ॥ ३७८ ॥ वह स्थान भोग तथा मोक्ष ( भुक्ति मुक्ति ) देने वाला व मनोहर है वहाँ तुम श्रीभुवनेश्वर नाम से विख्यात होगे ॥३७९॥ शिवजी, पुरी की अद्भुत महिमा सुनकर

शुन प्राणनाथ मोर एक निवेदन । मुञि से परम अहंकृत सर्व क्षण ॥३८१॥
एतेके तोमाके छाड़ि मुञि अन्य स्थाने । थाकिले कुशल मोर नाहिक कखने ॥३८२॥
तोमार निकटे से थाकिले मोर मन । दुष्ट-सङ्गे भिन्न मन नहिब कखन ॥३८३॥
एतेके मोहोर यदि थाके भृत्य-ज्ञान । तबे मोरे निज क्षेत्रे देह एक स्थान ॥३८४॥
क्षेत्रेर महिमा शुनि श्रीमुखे तोमार । बड़ इच्छा हैल तथा थाकिते आमार ॥३८५॥
निकृष्ट हइया प्रभु सेविमु तोमारे । तथाइ तिलेक स्थान देह' प्रभु मोरे ॥३८६॥
क्षेत्र वास प्रति मोर बड़ लय मन । एत बलि महेश्वर करेन क्रन्दन ॥३८७॥
शिव-वाक्ये तुष्ट हइ श्रीचन्द्रवदन । बलिते लागिला तारे करि आलिङ्गन ॥३८८॥
"शुन शिव तुमि मोर निज-देह-सम । ये तोमार प्रिय, से आमार प्रियतम ॥३८९॥
यथा तुमि, तथा आमि, इथे नाहि आन । सर्वक्षेत्रे तोमारे दिलाङ आमि स्थान ॥३९०॥
क्षेत्रेर पालक तुमि सर्वथा आमार । सर्वक्षेत्रे तोमारे दिलाङ अधिकार ॥३९१॥
एकाम्रक वन ये तोमारे दिल आमि । ताहातेइ परिपूर्ण रूपे थाक तुमि ॥३९२॥
सेइ क्षेत्र आमार परम प्रियतम । मोर प्रीते तथाइ थाकिबे सर्वक्षण ॥३९३॥
ये आमार भक्त हइ तोमा ना, आदरे । से आमारे मात्र येन विडम्बना करे" ॥३९४॥
हेनमते शिव पाइलेन सेइ स्थान । अद्यापिह विख्यात भुवनेश्वर-नाम ॥३९५॥
शिव प्रिय बड़ कृष्ण ताहा बुझाइते । नृत्य करे गौरचन्द्र शिवेर अग्रेते ॥३९६॥
यत किछु कृष्ण कहियाछेन पुराणे । एबे ताहा देखायेन साक्षात् आपने ॥३९७॥

---

पुनः श्रीचरण-कमलों को पकड़कर कहने लगे ॥ ३८० ॥ हे प्राणनाथ ! मेरा एक निवेदन सुनिये मैं सब समय विशेष अहंकार में रहता हूँ ॥ ३८१ ॥ इस कारण आपको छोड़कर अन्य स्थान में रहूँ तो मेरी कभी कुशल न होगी ॥ ३८२ ॥ सो मेरा मन आपके पास ही रहने का है जिसमें इस दुष्ट ( अहंकार ) से मेरा मन अन्य प्रकार का न हो जावे ॥ ३८३ ॥ इतने पर यदि आप मुझे अपना दास मानते हैं तो मुझे अपने क्षेत्र में एक स्थान दीजिये ॥ ३८४ ॥ आपके श्रीमुख से क्षेत्र की महिमा सुनकर वहाँ रहने की मेरी बड़ी इच्छा हो गई है ॥ ३८५ ॥ प्रभो ! निकृष्ट होकर आपकी सेवा करूँगा, हे प्रभु ! मेरे लिये वहाँ एक तिल मात्र स्थान दीजिये॥३८६॥क्षेत्र में वास करने की मेरी बड़ी उत्कंठा है सो ऐसा कहकर महेश्वर (शिव) रुदन करने लगे ॥ ३८७ ॥ चन्द्रमा के समान मुखाकृति वाले श्रीप्रभु, शिव के वचन सुनकर बड़े सन्तुष्ट हुए तथा उन्हें आलिङ्गन करके बोले—॥ ३८८ ॥ हे शिवजी सुनो तुम मेरे निज देह के समान हो जो तुम्हारे प्रिय हैं वे मुझे अत्यन्त प्रिय हैं ॥ ३८९ ॥ जहाँ तुम हो वहाँ मैं हूँ इसमें अन्य बात नहीं हैं मैं तुम्हें समस्त क्षेत्र में स्थान देता हूँ ॥ ३९० ॥ तुम मेरे क्षेत्र के सदा के लिये पालक ( रक्षक ) हो—मैं तुम्हें सब क्षेत्र का अधिकार देता हूँ ॥ ३९१ ॥ मैंने तुमको जो एकाम्रक वन दिया है तुम परिपूर्ण रूप से वहीं रहो ॥ ३९२ ॥ वह क्षेत्र मेरा अत्यन्त प्रिय है मेरी प्रसन्नता के लिये सर्वदा वहीं रहो ॥ ३९३ ॥ जो मेरा भक्त होकर तुम्हारा आदर नहीं करेगा सो ( भक्ति दिखाकर ) मेरी विडम्बना मात्र ही करता ॥ ३९४ ॥ इस प्रकार शिवजी को वह स्थान प्राप्त हुआ जो आज तक भुवनेश्वर नाम से विख्यात है ॥ ३९५ ॥ वह दिखाने के लिये कि शिवजी कृष्ण

'शिव राम गोविन्द' बलिया गौर-राय। हाथे तालि दिया नृत्य करेन सदाय ॥३९८॥
आपने भुवनेश्वर गिया गौरचन्द्र। शिव पूजा करिलेन लइ भक्तवृन्द ॥३९९॥
शिक्षागुरु ईश्वरेर शिक्षा ये ना माने। निज-दोषे दुख पाय सेइ सब जने ॥४००॥
सेइ शिवग्रामे प्रभु भक्तगण सङ्गे। शिवलिङ्ग देखि देखि भ्रमिलेन रङ्गे ॥४०१॥
परम निभृत एक देखि शिवस्थान। सुखी हैला श्रीगौर सुन्दर भगवान् ॥४०२॥
सेइ ग्रामे यतेक आछये देवालय। सकल देखिला श्रीगौराङ्ग महाशय ॥४०३॥
एइमते सर्व-पथे सन्तोषे आसिते। उत्तरिला आसि प्रभु कमल पुरेते ॥४०४॥
श्री देउलध्वज मात्र देखिलेन दूरे। प्रवेशिला प्रभु निज-आनन्द-सागरे ॥४०५॥
अकथ्य अद्भुत प्रभु करेन हुङ्कार। विशाल गर्जन कम्प सर्व-देह-भार ॥४०६॥
प्रासादेर दिगे मात्र चा'हिते चा'हिते। चलिलेन प्रभु श्लोक पढ़िते पढ़िते ॥४०७॥
श्रीमुखेर अर्द्ध-श्लोक शुन सावधाने। ये लीला करिला गौरचन्द्र भगवाने ॥४०८॥
"प्रासादाग्रे निवसति पुरः स्मेरवक्त्रारविन्दो। मामालोक्य स्मितसुवदनो बालगोपालमूर्त्तिः" ॥१॥
प्रभु बोले "देख प्रासादेर अग्रमूले। हासेन आमारे देखि श्रीबाल गोपाले ॥४०९॥
एइ श्लोक पुनः पुन पढ़िया पढ़िया। आछाड़ खायेन प्रभु विवश हइया ॥४१०॥
से दिनेर ये आछाड़ ये आर्ति क्रन्दन। अनन्तेर जिह्वाय वा से हय वर्णन ॥४११॥
चक्र प्रति दृष्टि मात्र करेन सकले। सेई श्लोक पढ़िया पड़ेन भूमितले ॥४१२॥

---

को बड़े प्रिय हैं श्रीगौरचन्द्र ने शिवजी के आगे नृत्य किया ॥ ३९६ ॥ जो कुछ श्रीकृष्ण ने पुराणों में कहा है उस समय वह सब स्वयं साक्षात् दिखाय रहे थे ॥ ३९७ ॥ श्रीगौरचन्द्र ने शिव, राम, गोविन्द कहकर हाथ से ताली दे-देकर ही सदा नृत्य करते थे ॥ ३९८ ॥ स्वयं गौरचन्द्र ने भक्तवृन्दों के साथ भुवनेश्वर गये और वहाँ सबने शिवजी की पूजा की ॥ ३९९ ॥ जो शिक्षागुरु-भगवान् की शिक्षा नहीं मानते वे सब लोग अपने दोष से दुख पाते हैं ॥ ४०० ॥ उस शिव ग्राम में भक्तवृन्दों के साथ गौरचन्द्र शिवलिङ्गों के दर्शन करते-करते बड़े आनन्द में घूमते रहे थे ॥ ४०१ ॥ एक बड़े एकान्त स्थान में एक शिव मन्दिर को देखकर श्रीगौरसुन्दर भगवान् बड़े प्रसन्न हुए ॥ ४०२ ॥ उस ग्राम में जितने देवालय थे उन सबको श्रीगौराङ्ग सुन्दर ने देखा ॥ ४०३ ॥ इस प्रकार सब मार्ग बड़ी प्रसन्नता से चलकर प्रभु कमलपुर में आये ॥ ४०४ ॥ श्री देव-मन्दिर की ध्वजा दूर ही से देखते ही श्रीप्रभु अपने प्रेमानन्द सागर में डूब गये ॥ ४०५ ॥ श्रीगौरचन्द्र प्रभु अकथनीय व अद्भुत हुङ्कार करने लगे, विशाल गर्जन के साथ शरीर में कम्प व सात्विक भार प्रगट किये ॥ ४०६ ॥ प्रभु ( प्रासाद ) मन्दिर की ओर देखते-देखते तथा श्लोक पढ़ते-पढ़ते प्रेमानन्द से चल रहे थे ॥ ४०७ ॥ श्रीमुख से निकले आधे श्लोक को सावधानी से सुनो, गौरचन्द्र भगवान् ने तत्पश्चात् जो लीला की, वह सुनो ॥ ४०८ ॥ सुन्दर हँस मुख बालगोपाल मूर्ति विकसित कमल नेत्रों से मेरी ओर देखते हुए प्रासाद ( मन्दिर ) के आगे ही उपस्थित है ॥ १ ॥ प्रभु ने कहा "देखो मन्दिर के अग्रभाग में बैठकर श्रीबालगोपाल कृष्ण मुझको देखकर हँस रहे हैं ॥ ४०९ ॥ इस श्लोक को बारंबार पाठ करके गौरसुन्दर विवश होकर पछाड़ खाने लगे ॥४१०॥ उस दिन की पछाड़ खाना व आर्ति क्रन्दन क्या अनन्त

एइ मत दण्डवत् हइते हइते । सर्व पथे आइसेन प्रेम प्रकाशिते ॥४१३॥
इहारे से बलि प्रेममय अवतार । ए शक्ति चैतन्य बइ दुइ नाइ आर ॥४१४॥
पथे यत देखये सुकृति नर गण । तारा बोले एइ त साक्षात् नारायण ॥४१५॥
चतुर्दिगे वेढ़िया आइसे भक्तगण । आनन्द धाराय पूर्ण सभार नयन ॥४१६॥
सबे चारि दण्डेर पथ प्रेमेर आवेशे । प्रहर-तिनेते आसि हइला प्रवेशे ॥४१७॥
आइलेन मात्र प्रभु आठार नालाय । सर्व भाव सम्बरण कैला गौरराय ॥४१८॥
स्थिर हइ वसिलेन प्रभु सभा लैया । सभारे बोलेन अति विनय करिया ॥४१९॥
तोमरा त आमार करिला बन्धु-काज । देखाइला आनि जगन्नाथ महाराज ॥४२०॥
एबे आगे तोमरा चलह देखिबारे । आमि वा याइब आगे, ताहा बोल मोरे ॥४२१॥
मुकुन्द बोलेन तबे तुमि आगे जाओ । 'भाल' बलि चलिलेन श्रीगौराङ्ग राओ ॥४२२॥
मत्त सिंह-गति जिनि चलिला सत्त्वर । प्रविष्ट हइला आसि पुरीर भितर ॥४२३॥
प्रवेश हइला गौरचन्द्र नीलाचले । इहा ये शुनये से भासये प्रेम जले ॥४२४॥
ईश्वर-इच्छाय सार्वभौम सेइ काले । जगन्नाथ देखिते आछेन कुतूहले ॥४२५॥
हेन काले गौरचन्द्र जगत जीवन । देखिलेन जगन्नाथ सुभद्रा सङ्कर्षण ॥४२६॥
देखि मात्र प्रभु करे परम हुंकार । इच्छा हैल जगन्नाथ कोले करिबार ॥४२७॥
लाफ देन महाप्रभु आनन्दे विह्वल । चतुर्दिगे छूटे सब नयनेर जल ॥४२८॥

---

( शेष ) की जिह्वा द्वारा वर्णन हो सकता है ? ॥४११॥ चक्र के प्रति सबने दृष्टिमात्र की और उस श्लोक का पाठ करके सब भूमि पर गिर पड़े ॥ ४१२ ॥ इस प्रकार दण्डवत् करके गिरते पड़ते सब मार्ग में प्रेम प्रकाश करते हुए आये ॥ ४१३ ॥ प्रेममय अवतार इसी को ही कहते हैं यह शक्ति चैतन्यचन्द्र के अतिरिक्त और किसी में नहीं है ॥ ४१४ ॥ मार्ग में जितने पुण्यात्मा स्त्री-पुरुष देखते थे वे कहते "यही तो साक्षात् नारायण हैं" ॥ ४१५ ॥ भक्तवृन्द उन्हें चारों ओर से घेरे हुए आ रहे थे और प्रेमानन्द अश्रुधारा से सबके नेत्र पूर्ण थे ॥ ४१६ ॥ केवल चार घड़ी का मार्ग था, जो प्रेमावेश से तीन प्रहर में पूरा हुआ ॥ ४१७ ॥ श्रीप्रभु गौरसुन्दर ने अठारह नाला पर आते ही सब भावों को रोक ( सम्वरण ) कर लिया ॥ ४१८ ॥ श्रीप्रभु गौरचन्द्र सबको लेकर स्थिर होकर बैठे और अत्यन्त विनय पूर्वक सबसे बोले ॥ ४१९ ॥ तुम लोगों ने तो मेरे साथ सगे भाई का जैसा काम किया जो मुझे लाकर श्रीजगन्नाथजी महाराज के दर्शन कराये ॥ ४२० ॥ अब दर्शन करने के लिये तुम लोग आगे जाओगे कि मैं आगे जाऊँ सो मुझसे कहो ॥ ४२१ ॥ श्रीमुकुन्द ने कहा "तब तो तुम ही आगे जाओ" यह सुनते ही 'अच्छा' कहकर श्रीगौराङ्गराय ने गमन किया ॥४२२॥ मत्त सिंह की गति से तेज चलकर पुरी में आकर प्रवेश किया ॥ ४२३ ॥ नीलाचल में गौरचन्द्र के प्रवेश की कथा जो सुनेंगे वे प्रेमजल में डूब जायँगे ॥ ४२४ ॥ ईश्वर की इच्छा से श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य अनायास ही श्रीजगन्नाथ दर्शन के लिये उसी समय आये थे ॥ ४२५ ॥ उसी समय जगत् जीवन श्रीगौरचन्द्र ने जगन्नाथ, सुभद्रा व सङ्कर्षण ( बलराम ) के दर्शन किये ॥ ४२६ ॥ देखते मात्र ही श्रीप्रभु विशेष जोर से हुङ्कार करने लगे और जगन्नाथजी को भेंट भर लें ऐसी इच्छा हुई ॥ ४२७ ॥ महाप्रभु आनन्द में विह्वल

हृदये चिन्तिला सार्वभौम महाशय  एइ शक्ति मनुष्येर कोन काले नय  ४३१।
ए हुङ्कार ए गर्जन ए प्रेमेर धार  यत किछु अलौकिक शक्तिर प्रचार ॥४३२॥
एइ जन हेन बूझि-श्रीकृष्णचैतन्य । एइ मत चिन्ते सार्वभौम महा धन्य ॥४३३॥
सार्वभौम निवारणे सब-पड़िहारी । रहिलेन दूरे सभे महाभय करि ॥४३४॥
प्रभु से हइयाछेन अचेतन प्राय । देखि मात्र जगन्नाथ-निज-प्रिय-काय ॥४३५॥
कि आनन्दे मग्न हैला वैकुण्ठ-ईश्वर । वेदेओ ए सब तत्त्व जानिते दुष्कर ॥४३६॥
सेइ प्रभु गौरचन्द्र चतुर्व्यूह-रूपे । आपने वसियाछेन सिंहासने सुखे ॥४३७॥
आपनेइ उपासक हइ करे भक्ति । अतएव के बूझिवे ईश्वरेर शक्ति ॥४३८॥
आपनार तत्त्व प्रभु आपने से जाने । वेदे भागवते एइ मत से वाखाने ॥४३९॥
तथापि ये लीला प्रभु करेन जखने । ताहि कहे वेदे जीव-उद्धार-कारणे ॥४४०॥
मग्न हइलेन प्रभु वैष्णव-आवेशे । बाह्य दूरे गेल प्रेमसिन्धु-मास्रे भासे ॥४४१॥
आवरिया सार्वभौम आछेन आपने । प्रभुर आनन्द मूर्च्छा ना हय खण्डने ॥४४२।
शेषे सार्वभौम युक्ति करिलेन मने । प्रभु लइ जाइवारे आपन भवने ॥४४३॥
सार्वभौम बोले 'भाइ पड़िहारि गण । सभे तुलि लह एइ पुरुष रतन' ॥४४४॥

---

होकर उछलने लगे थे और नेत्रों का जल चारों ओर छूट रहा था ॥ ४२८ ॥ तथा एक क्षण में ही आनन्द-विभोर हो मूर्च्छित होकर गिर पड़े अहो ईश्वर के अगाध चरित्रों को कौन समझ सकता है ॥ ४२९ ॥ मूर्ख रक्षकगण मारने को दौड़े तब सार्वभौम भट्टाचार्य जैसे-तैसे (प्रभु की) पीठ पर निवारणार्थ गिर पड़े ॥४३०॥ सार्वभौम महाशय ने हृदय में विचार किया कि इस प्रकार मनुष्य की शक्ति तो किसी काल में नहीं होती है ॥ ४३१ ॥ ऐसी हुंकार-ऐसी गर्जना-ऐसी प्रेमानन्द की अश्रुधारा आदि जो कुछ हैं सब अलौकिक शक्ति का ही प्रकाश है ॥४३२॥ "यह मनुष्य स्यात् श्रीकृष्णचैतन्य है-ऐसा समझ पड़ता है"। महा धन्य सार्वभौम इस प्रकार विचार कर रहे थे ॥४३३॥ सार्वभौम के निवारण करने पर सब रक्षकगण दूर हो गये और खड़े डरे ॥ ४३४ ॥ अपने प्रियविग्रह जगन्नाथ को देखते मात्र ही श्रीगौरचन्द्र अचेतन ( जड़ ) के तुल्य ही हो गये ॥ ४३५ ॥ वैकुण्ठनाथ श्रीगौर ने न जाने किस आनन्द में मग्न हुए ? इन सब तत्त्वों को जानना वेदों को भी दुष्कर है ॥ ४३६ ॥ गौरचन्द्र प्रभु ही चतुर्व्यूह रूप से स्वयं सिंहासन पर सुख से विराज रहे थे और ॥ ४३७ ॥आप ही उपासक होकर भक्ति कर रहे थे इसी कारण से ईश्वर की शक्ति को कौन समझ सके ॥ ४३८ ॥ अपने तत्त्व को प्रभु आप ही जानते हैं वेद व भागवत इस प्रकार व्याख्या करते हैं ॥४३९॥ तथापि जिस समय प्रभु जो लीला करते हैं उसे वेद जीवों के उद्धार का कारण ही बतलाते हैं ॥४४०॥ गौरचन्द्र वैष्णव आवेश में मग्न हो गये-बाह्य ज्ञान जाता रहा तथा प्रेमसिन्धु में डूब गये ॥ ४४१ ॥ सार्वभौम स्वयं आवरण ( सम्हाल ) कर रहे थे परन्तु प्रभु की आनन्द मूर्च्छा नहीं टूटती थी ॥ ४४२ ॥ तब अन्त में सार्वभौम ने प्रभु को अपने भवन में ले जाने के लिये मनमें विचार किया ॥ ४४३ ॥ प्रहरियों को सम्बोधन

पाण्डु विजयेर यत निज भृत्य गण । सभे प्रभु कोले करि करिला गमन ॥४४५॥
के बुझिबे ईश्वरेर चरित्र गहन । हेन रूपे सार्वभौम मन्दिरे गमन ॥४४६॥
चतुर्दिगे हरिध्वनि करिया-करिया । वहिया आनेन सभे हरिष हइया ॥४४७॥
हेनइ समये सर्व-भक्त सिंहद्वारे । आसिया मिलिला सभे हरिष-अन्तरे ॥४४८॥
परम अद्भुत सभे देखेन आसिया । पिपीलिका गण येन अन्न जाय लैया ॥४४९॥
एइ मत प्रभुके अनेक लोक धरि । लइया जायेन सभे महानन्द करि ॥४५०॥
सिंह द्वार नमस्करि सर्व भक्तगण । हरिषे प्रभुर पाछे करिला गमन ॥४५१॥
सर्व-लोके धरि सार्वभौमेर मन्दिरे । आनिलेन कपाट पड़िल तबे द्वारे ॥४५२॥
प्रभुर आसिया ये मिलिला भक्तगण । देखि हैला सार्वभौम हरषित-मन ॥४५३॥
यथा योग्य-सम्भाषा करिया सभा सने । वसिलेन, सन्देह भाङ्गिल ततक्षणे ॥४५४॥
बड़ सुखी हैला सार्वभौम महाशय । आर ताँर किबा भाग्यफलेर उदय ॥४५५॥
जार कीर्तिमात्र सर्व वेदे व्याख्या करे । अनायासे ईश्वर आइला मन्दिरे ॥४५६॥
नित्यानन्द देखि सार्वभौम महाशय । लइला चरण धूलि करिया विनय ॥४५७॥
मनुष्य दिलेन सार्वभौम सभा सने । चलिलेन सभे जगन्नाथ-दरशने ॥४५८॥
ये मनुष्य जाय देखाइते जगन्नाथ । निवेदन करे से करिया जोड़ हाथ ॥४५९॥
स्थिर हइ जगन्नाथ सभेइ देखिबा । पूर्व-गोसाञिर मत केहो ना करिबा ॥४६०॥

करके कहा "हे भाई ! इस पुरुष रत्न को सब मिलकर उठा लो" ॥ ४४४ ॥ पाण्डु विजय (रथयात्रा) समय के डोरी खींचने वाले जितने अपने खास भृत्य हैं उन्होंने प्रभु को गोदी में लेकर गमन किया ॥ ४४५ ॥ ईश्वर के गहन ( गम्भीर ) चरित्रों को कौन समझ सके ? देखो इस प्रकार सार्वभौम के मन्दिर में प्रभु ने गमन किया ॥ ४४६ ॥ चारों ओर हरिध्वनि करते-करते सब अति प्रसन्न चित्त से वहन करके ले जा रहे थे ॥ ४४७ ॥ उसी समय सिंह द्वार पर सब भक्त आकर मिले तथा सबके मन प्रसन्न हुआ ॥ ४४८ ॥ सबने परम अद्भुत दृश्य आकर देखा—जैसे पिपीलिका ( चींटी ) गण अन्न लेकर जा रही हों ॥ ४४९ ॥ इस प्रकार प्रभु को अनेक लोग उठाकर बड़े आनन्द पूर्वक ले जा रहे थे ॥ ४५० ॥ सिंह द्वार पर नमस्कार करके सब भक्त-वृन्दों ने प्रसन्न हो प्रभु के पीछे-पीछे गमन किया ॥ ४५१ ॥ जब सब लोग प्रभु को उठाकर सार्वभौम के मन्दिर में ले आये तब दरवाजे में किवाड़ लगा दी ॥४५२॥ यह देखकर कि प्रभु के भक्तगण भी आ गये हैं ( आकर मिल गये हैं ) सार्वभौम का मन प्रसन्न हुआ ॥ ४५३ ॥ सबसे यथायोग्य प्रणाम व सम्भाषण करके बैठ गये और तत्क्षण सब सन्देह मिट गया ॥४५४॥ महाशय सार्वभौमजी बड़े सुखी हुए, देखो कैसा भाग्योदय हुआ ॥ ४५५ ॥ कि जिनकी केवल कीर्ति मात्र का ही सब वेद व्याख्या करते हैं वे ईश्वर स्वयं बिना प्रयास के उनके मन्दिर में आ गये ॥४५६॥ महाशय सार्वभौम श्रीनित्यानन्द को देखकर अति विनय पूर्वक उनकी चरण धूलि ली ॥ ४५७ ॥ सार्वभौमजी ने उन सबके साथ एक मनुष्य कर दिया तब जगन्नाथ दर्शन के लिये सब गये ॥४५८॥ जो मनुष्य जगन्नाथ दर्शन कराने को गया था उसने हाथ जोड़कर निवेदन किया ॥ ४५९ ॥ सब लोग स्थिर होकर जगन्नाथ के दर्शन करना और पहिले गुसाँई की तरह कोई मत

कि रूपे तोमरा, किछु ना पारि बूझिने । स्थिर हइ देख, तबे जाइ देखाइते ॥४६१॥
जे रूप तोमार करिलेन एक जने । जगन्नाथ दैवे रहिलेन सिंहासने ॥४६२॥
विशेषे वा कि कहिब ये देखिल तान । से आछाड़े अन्येर कि देहे रहे प्राण ॥४६३॥
ए तेके तोमरा सब अचिन्त्य कथन । सम्वरिया देखिबा, करिलूँ निवेदन ॥४६४॥
शुनि सभे हासिते लागिला भक्तगण । 'चिन्ता नाहि' बलि सभे करिला गमन ॥४६५॥
आसि देखिलेन चतुर्व्यूह जगन्नाथ । प्रकट-परमानन्द भक्तगण-साथ ॥४६६॥
देखि सभे लागिलेन करिते क्रन्दन । दण्डवत् प्रदक्षिण करेन स्तवन ॥४६७॥
प्रभुर गलार माला ब्राह्मण आनिया । दिलेन सभार गले सन्तोषित हैया ॥४६८॥
आज्ञा-माला पाइ सभे आनन्दित-मने । आइला सत्वरे सार्वभौमेर भवने ॥४६९॥
प्रभुर आनन्द मूर्च्छा हइल ये मते । बाह्य नाहि तिलेक, आछेन सेइ मते ॥४७०॥
बसिया आछेन सार्वभौम पद तले । चतुर्दिगे भक्तगण 'राम-कृष्ण' बोले ॥४७१॥
अचिन्त्य अगम्य गौरचन्द्रेर चरित । तिन-प्रहरेओ बाह्य नहे कदाचित ॥४७२॥
क्षणेके उठिला सर्व-जगत-जीवन । हरिध्वनि करिते लागिला भक्तगण ॥४७३॥
स्थिर हइ प्रभु जिज्ञासेन सभा स्थाने । कह देखि आजि मोर कोन् विवरणे ॥४७४॥
शेषे नित्यानन्द प्रभु कहिते लागिला । जगन्नाथ देखि मात्र तुमि मूर्च्छा गेला ॥४७५॥
दैवे सार्वभौम आछिलेन सेइ स्थाने । धरि तोमा आनिलेन आपन-भवने ॥४७६॥

---

करना ॥ ४६० ॥ तुम लोग किस प्रकार हो कुछ समझ में नहीं आता यदि स्थिर होकर दर्शन करो तो मैं दर्शन कराने जाऊँ ॥ ४६१ ॥ तुम्हारे एक जन ने जैसा किया उससे जगन्नाथजी दैववश ही सिंहासन पर स्थित रहे ॥ ४६२ ॥ और अधिक क्या कहूँ जिसने देखा वे ही जाने; देखो ऐसी पछाड़ खाने मे क्या दूसरे की देह में प्राण रह सकता ? ॥४६३॥ तुम सबके इतना अचिन्त्य कथन है, इसीलिये मैं निवेदन करता हूँ कि जरा सम्हल कर दर्शन करना ॥ ४६४ ॥ सब भक्तवृन्द सुनकर हँसने लगे और 'चिन्ता मत करो' यों कहकर सबने गमन किया ॥ ४६५ ॥ सबने आकर जगन्नाथ-चतुर्व्यूह का दर्शन किया तथा भक्तगणों को परम आनन्द (मूर्तिमान्) हुआ ॥४६६॥ देखकर सब रोने लगे तथा बार-बार दण्डवत् प्रदक्षिणा व अनेक प्रकार से स्तुति की ॥ ४६७ ॥ सन्तुष्ट होकर प्रभु ( जगन्नाथ ) के गले की माला ब्राह्मण ने लाकर सबके गले मे दी ॥ ४६८ ॥ माला रूप प्रभु आज्ञा पाकर सब लोग आनन्दित मन से शीघ्र सार्वभौम के भवन में आये ॥४६९॥ प्रभु को जैसी आनन्द मूर्च्छा हुई थी उसी प्रकार थी उन्हें तिलमात्र भी बाह्य ज्ञान नहीं था ॥४७०॥ सार्वभौम तो प्रभु के चरणों के नीचे बैठा गये तथा भक्तगण चारों ओर घेरकर 'रामकृष्ण' बोलने लगे॥४७१॥ श्रीगौरचन्द्र के चरित्र चिन्तन के परे व मन बुद्धि के अगोचर हैं सो प्रभु को तीन पहर में भी कदाचित् बाह्य ज्ञान नहीं हुआ ॥ ४७२ ॥ तब तुरन्त ही एक क्षण में सब जगत् के जीवन श्रीगौर उठ बैठे तथा सब भक्तगण हरिध्वनि करने लगे ॥ ४७३ ॥ श्रीगौरचन्द्र ने स्थिर होकर सबसे पूँछा कि मेरे आज के विवरण को कुछ कहो तो, देखें ॥ ४७४ ॥ अन्त में श्रीनित्यानन्द प्रभु ने कहा कि आप जगन्नाथ को देखते मात्र ही मूर्च्छित हो गये ॥ ४७५ ॥ दैवयोग से सार्वभौम वहाँ थे सो आपको उठवाकर भवन में

आनन्द-आवेशे तुमि हइ परवश । बाह्य ना जानिला तिन-प्रहर दिवस ॥४७७॥
एइ सार्वभौम नमस्करेन तोमारे । आथे व्यथे प्रभु सार्वभौम कोले करे ॥४७८॥
प्रभु बोले जगन्नाथ बड़ कृपामय । आनिलेन मोरे सार्वभौमेर आलय ॥४७९॥
परम सन्देह चित्ते आछिल आमार । किरूपे पाइब आमि संहति तोमार ॥४८०॥
कृष्ण ताहा पूर्ण करिलेन अनायासे । एत बलि सार्वभौम चाहि प्रभु हासे ॥४८१॥
प्रभु बोले शुन आजि आमार आख्यान । जगन्नाथ आमि देखिलाङ विद्यमान ॥४८२॥
जगन्नाथ देखि चित्त हइल आमार । धरि आनि वक्ष-माझे थुइ आपनार ॥४८३॥
धरिते गेलाङमात्र जगन्नाथ आमि । तबे कि हइल शेषे आर नाहि जानि ॥४८४॥
दैवे सार्वभौम आजि आछिला निकटे । अतएव रक्षा हैल ए-महा-सङ्कटे ॥४८५॥
आजि हैते आमि एइ बलि दढ़ाइया । जगन्नाथ देखिबाङ बाहिरे थाकिया ॥४८६॥
अभ्यन्तरे आर आमि प्रवेश नहिब । गरुड़ेर पाछे रहि ईश्वर देखिब ॥४८७॥
भाग्ये आमि आजि ना धरिलूँ जगन्नाथ । तबेत सङ्कट आजि हइत आमात ॥४८८॥
नित्यानन्द बोले 'बड़ एड़ाइले भाल । वेला नाहि एबे, स्नान करह सकल' ॥४८९॥
प्रभु बोले नित्यानन्द सम्वरिबा मोरे । देह आमि एइ समर्पिलाङ तोमारे ॥४९०॥
तबे कथोक्षणे स्नान करि प्रेम सुखे । वसिलेन सभार सहित हास्य मुखे ॥४९१॥
बहुविध महाप्रसाद आनिला सत्वरे । सार्वभौम थुइलेन प्रभुर गोचरे ॥४९२॥
महाप्रसाद देखि प्रभु करि नमस्कार । बसिला भुञ्जिते लइ सब परिवार ॥४९३॥

---

लिवा लाये ॥ ४७६ ॥ आप प्रेमानन्द आवेश में विवश हो गये और दिन में तीन पहर तक बाह्य ज्ञान नहीं रहा ॥ ४७७ ॥ "ये ही सार्वभौम आपको नमस्कार कर रहे हैं। श्रीप्रभु ने शीघ्र ही सार्वभौम की भेंट भर ली ॥ ४७८ ॥ श्रीप्रभु ने कहा कि जगन्नाथ बड़े कृपालु हैं देखो मुझे सार्वभौम के स्थान में ले आये ॥ ४७९ ॥ मेरे चित्त में बड़ा सन्देह था कि श्रीसार्वभौम का साथ मुझे कैसे मिलेगा ॥ ४८० ॥ कृष्ण ने विना प्रयास के ही उसे पूर्ण कर दिया इस प्रकार कहते हुए सार्वभौम की ओर देखकर प्रभु हँसे ॥ ४८१ ॥ प्रभु ने कहा मेरा प्रसङ्ग सुनो; मैंने जगन्नाथ देव को जब सम्मुख पाया ॥ ४८२ ॥ श्रीजगन्नाथदेव को देखते ही मेरे मनमें आई कि मैं अपने वक्षःस्थल के भीतर उन्हें धारण करलूँ ॥ ४८३ ॥ मैं उन्हें (जगन्नाथ को) आज पकड़ने गया ही था उसके पीछे क्या हुआ सो मुझे कुछ नहीं मालूम रहा॥४८४॥आज दैवयोग से सार्वभौम पास ही थे अतः इस महा संकट से रक्षा हो गई ॥ ४८५ ॥ मैं दृढ़ता पूर्वक कहता हूँ कि आज से श्रीजगन्नाथ दर्शन बाहिर से करूँगा ॥ ४८६ ॥ अब मैं कभी भीतर प्रवेश न करूँगा–वरन् गरुड़-स्तम्भ के पीछे से भगवद् दर्शन किया करूँगा ॥ ४८७ ॥ भाग्यवश आज मैंने श्रीजगन्नाथदेव को पकड़ा नहीं अन्यथा मेरे लिये बड़ा संकट उपस्थित हो जाता॥४८८॥नित्यानन्द जी ने कहा "यह बड़ा अच्छा हुआ जो नहीं पकड़ा अब समय नहीं है शीघ्र ही स्नान करिये ॥ ४८९ ॥ प्रभु बोले हे नित्यानन्द ! मुझे सम्हालना, यह देह मैंने तुम्हें सोंप दी है ॥ ४९० ॥ तब कुछ देर में प्रेम से सुख पूर्वक स्नान करके-हँसते हुए सबके साथ बैठ ॥ ४९१ ॥ अनेक प्रकार का महाप्रसाद लाकर सार्वभौम ने महाप्रभुजी के सम्मुख शीघ्र रख दिया ४९२

प्रभु बोले 'विस्तर लाफर मोरे देह' । पिठा पाना छेना बड़ा तोमरा सभे लह ॥४६४॥
एइ मत बलि प्रभु महा प्रेमरसे । लाफरा खायेन प्रभु भक्तगण हासे ॥४६५॥
जन्म-जन्म सार्वभौम प्रभुर पार्षद । अन्यथा अन्येर नाहि हय ए सम्पद ॥४६६॥
सुवर्ण थाली ते अन्न आनिञा आपने । सार्वभौम देन, प्रभु करेन भोजने ॥४६७॥
से भोजने यतेक हइल प्रेम रङ्ग । व्यास वर्णिवेन ताहा चैतन्येर सङ्ग ॥४६८॥
अशेष कौतुके करि भोजन-विलास । वसिलेन प्रभु, भक्तगण चारि-पाश ॥४६९॥
नीलाचले प्रभुर भोजन महारङ्ग । इहार श्रवणे हय चैतन्येर सङ्ग ॥५००॥
शेष खण्डे चैतन्य आइला नीलाचले । ए आख्यान शुनिले भासये प्रेमजले ॥५०१॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान ॥५०२॥

इति श्रीचैतन्यभागवते अन्त्यखण्डे श्रीचैतन्य-सार्वभौम-सम्मेलनं नाम
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

## तृतीयोऽध्यायः

जय जय श्रीकृष्णचैतन्य गुण धाम । जय जय नित्यानन्द स्वरूपेर प्राण ॥ १ ॥
जय जय वैकुण्ठनायक कृपासिन्धु । जय जय न्यासि चूड़ामणि दीनबन्धु ॥ २ ॥
भक्त गोष्ठी सहित गौराङ्ग जय जय । शुनिले चैतन्य कथा भक्ति लभ्य हय ॥ ३ ॥
शेषखण्ड-कथा भाइ शुन एक चित्ते । श्रीगौरसुन्दर विहरिला येन मते ॥ ४ ॥

---

गौरप्रभु ने महाप्रसाद को देखकर नमस्कार किया और सब परिवार को लेकर भोजन करने बैठे ॥ ४६३ ॥ प्रभु ने कहा विशेष करके लाफरा साग तो मुझको दो और सब मीठा पाना तथा छेना बड़ा तुम लोग ले लो ॥ ४६४ ॥ इस प्रकार कहकर प्रभु बड़े प्रेमरस से लाफरा खाने लगे और भक्तगण हँसने लगे ॥४६५॥ सार्वभौम पिछले जन्मों में प्रभु के पार्षद रहे हैं अन्यथा दूसरे को यह सम्पत्ति प्राप्त नहीं होती ॥ ४६६ ॥ सार्वभौम स्वयं ही सुवर्ण की थाली में लाकर अन्न देते थे और प्रभु भोजन करते थे ॥४६७॥ उस भोजन पान के समय जितना प्रेमानन्द हुआ चैतन्यदेव के उस प्रसङ्ग को व्यास वर्णन करेंगे ॥ ४६८ ॥ अगणित कौतुकों के साथ भोजन विलास करके महाप्रभुजी विराज गये और भक्तवृन्द चारों ओर घेरकर बैठ गये ॥४६९॥ नीलाचल में प्रभु का भोजन विलास बड़े आनन्द से हुआ था जिसके सुनने से चैतन्यचन्द्र का सङ्ग प्राप्त होगा॥५००॥शेष खण्ड में गौरचन्द्र नीलाचल में आये इस प्रसङ्ग के सुनते ही मनुष्य प्रेमजल में डूबने लगते हैं ॥ ५०१ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र तथा नित्यानन्द को जानकर ही वृन्दावनदास उनके पद द्वन्द का गान करता है ॥ ५०२ ॥

---

गुणों के धाम श्रीकृष्णचैतन्य की जय हो जय हो और नित्यानन्द स्वरूप के प्राण प्रभु की जय हो जय हो ॥ १ ॥ वैकुंठनायक गौरचन्द्र कृपासिन्धु की जय हो,सन्यासियों के चूड़ामणि और दीनबन्धु की जय हो जय हो ॥ २ ॥ भक्तमण्डली के सहित गौराङ्ग प्रभु की जय हो, जय हो चैतन्यचन्द्र की कथाओं के सुनने से भक्ति प्राप्त होती है ३ भाइयो शेष खण्ड की कथा को एकाग्र मनसे सुनो जिस भाँति श्रीगौरसुन्दर

अमृतेर अमृत चैतन्यचन्द्र कथा । ब्रह्मा शिव ये अमृत वाञ्छेन सर्वथा ॥ ५ ॥
अतएव श्रीचैतन्य कथार श्रवणे । सभार सन्तोष हय, दुष्टगण बिने ॥ ६ ॥
शुन शेषखण्ड-कथा चैतन्य रहस्य । इहार श्रवणे कृष्ण पाइये अवश्य ॥ ७ ॥
हेन मते श्रीगौरसुन्दर नीलाचले । आत्म-सङ्गोपन करि आछे कुतूहले ॥ ८ ॥
यदि तिंहो व्यक्त ना करेन आपनारे । तबे कार शक्ति आछे ताँरे जानिबारे ॥ ९ ॥
दैवे एक दिन सार्व्वभौमेर सहिते । वसिलेन प्रभु ताँरे लइया निभृते ॥ १० ॥
प्रभु बोले शुन सार्वभौम महाशय । तोमारे कहिये आमि आपन-हृदय ॥ ११ ॥
जगन्नाथ देखिते ये आइलाङ आमि । उद्देश्य आमार मूल-एथा आछ तुमि ॥१२॥
जगन्नाथ आमार कि कहिबेन कथा । तुमि से आमार बन्ध छिण्डाबे सर्वथा ॥१३॥
तोमाते से वैसे श्रीकृष्णेर पूर्ण शक्ति । तुमि से दिबारे पार कृष्ण प्रेम भक्ति ॥१४॥
एतेके तोमार आमि लइलूँ आश्रय । ताहा कर ये रूपे आमार भाल हय ॥१५॥
कि विधि करिमूँ मुजि, थाकिमूँ कि रूपे । के मते ना पड़ोँ मुजि ए संसार कूपे ॥१६॥
सर्व उपदेश मोरे कह अमायाय । 'तोमारि से आमि' इहा जान सर्वथाय ॥१७॥
एइ मत अनेक-प्रकार माया करि । सार्वभौम-प्रति कहिलेन गौरहरि ॥१८॥
ना जानिआ सार्वभौम ईश्वरेर मर्म्म । कहिबारे लागिला जीवेर यत धर्म ॥१९॥
सार्व्वभौम बोलेन कहिला यत तुमि । सकल तोमार भाल वासिलाङ आमि ॥२०॥
ये तोमार हइयाछे भक्तिर उदय । अत्यन्त अपूर्व से कहिल कभू नय ॥२१॥

---

ने विहार किया ॥ ४ ॥ चैतन्यचन्द्र की कथा अमृत है देखो ब्रह्मा व शिव भी इस अमृत की सदा वाञ्छा करते रहते हैं ॥ ५ ॥ अतएव इसी से श्रीचैतन्यचन्द्र की कथाओं को सुनकर बड़ा सन्तोष होता है-केवल दुष्टों को नहीं होता ॥ ६ ॥ श्रीचैतन्यदेव की रहस्यमयी शेष खंड कथा सुनिये-इसके सुनने से कृष्ण प्राप्ति अवश्य होगी ॥ ७ ॥ इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर ने नीलाचल में अपने को कुतूहल से ही आत्म-गोपन कर लिया ॥ ८ ॥ यदि वे ही अपने को प्रकाश में न लाना चाहें तो उनको जानने की किसमें सामर्थ्य है ॥९॥ श्रीप्रभु दैववश एक दिन सार्व्वभौम के पास एकान्त में बैठे थे ॥ १० ॥ प्रभु ने कहा "हे सार्व्वभौम महाशय सुनो मैं अपने हृदय की बात तुमसे कहता हूँ" ॥ ११ ॥ मैं जगन्नाथ दर्शन के लिये आया हूँ उसमें मेरा मूल उद्देश्य तो आपका यहाँ होना ही है ॥ १२ ॥ जगन्नाथ तो मुझसे कुछ बोलेंगे ही नहीं आप ही मेरे बन्धनों को पूर्ण रीत्या छेदन कर दोगे ॥ १३ ॥ आप में श्रीकृष्ण की पूर्ण शक्ति विराजती है और आप ही उस कृष्ण प्रेम भक्ति को देने में समर्थ हैं ॥ १४ ॥ इसी कारण मैंने आपका आश्रय लिया है अब जिसमें मेरा उपकार हो वह आप करें ॥ १५ ॥ मेरे लिये क्या करणीय है-मैं किस प्रकार आचरण करूँ जिससे मैं संसार-कूप में न गिरूँ, सभी उपदेश मुझे समझाकर कहें-मैं तो आप ही का हूँ पूर्ण रीत्या यही आप जानें ॥ १६-१७ ॥ इस भाँति श्रीगौरहरि ने अनेक प्रकार छल करके सार्व्वभौम भट्टाचार्य से कहा ॥ १८ ॥ सार्व्वभौम भट्टाचार्य, ईश्वर ( महाप्रभु ) के मर्म को न जानकर जीव के समस्त धर्मों को कहने लगे ॥ १९ ॥ सार्व्वभौम ने कहा "तुमने जो कुछ कहा है सब मैंने भली प्रकार समझ लिया है २० तुममें भक्ति का

बड़इ कृष्णेर कृपा हैयाछे तोमारे । सबे एक खानि करियाछ अव्यभारे ॥२२॥
परम सुबुद्धि तुमि हइया आपने । तबे तुमि सन्यास करिला कि कारणे ॥२३॥
बूझ देखि विचारिया कि आछे सन्यासे । प्रथमेइ बद्ध हय अहङ्कार-पाशे ॥२४॥
दण्ड धरि महाज्ञानी हय आपनारे । काहारे ओ बोल हस्त जोड़ नाहि करे ॥२५॥
जार पद धूलि लैते वेदेर विहित । हेन जन नमस्करे, तभू नहे भीत ॥२६॥
सन्यासीर धर्म वा बलिब सेहो नहे । बूझ एइ भागवते येन मत कहे ॥२७॥

तथाहि ( भा० ११।२६।१६; ३।२६।३४ )

"प्रणमेद्दण्डवद्भूमावाश्वचाण्डालगोखरम्" । "प्रविष्टो जीवकलया तत्रैव भगवानिति" ॥१॥

ब्राह्मणादि कुक्कुर चाण्डाल अन्त करि । दण्डवत् करिबेक बहुमान्य धरि ॥२८॥
एइ से वैष्णव धर्म-सभारे प्रणति । सेइ धर्मध्वजी, यार इथे नाहि रति ॥२९॥
शिखा सूत्र घुचाइया सबे एइ लाभ । नमस्कार करे आसि महामहा भाग ॥३०॥
प्रथमे शुनिला एइ एक अपचय । एबे आर शुन सर्वनाश बुद्धि क्षय ॥३१॥
जीवेर स्वभाव-धर्म ईश्वर भजन । ताहा छाड़ि आपनाके बोले 'नारायण' ॥३२॥
गर्भवासे ये ईश्वरेर करिलेन रक्षा । याहार प्रसादे हैल बुद्धि ज्ञान शिक्षा ॥३३॥
जार दास्य लागि शेष अज भव रमा । पाइया ओ निरवधि करेन कामना ॥३४॥
सृष्टि स्थिति प्रलय जाहार दासे करे । लाजो नाहि हेन 'प्रभु' बोले आपनारे ॥३५॥

---

जो उदय हुआ है वह अत्यन्त अपूर्व है ऐसा पूर्व में किसी ने कहा भी नहीं है ॥ २१ ॥ तुम पर श्रीकृष्ण की बड़ी पूर्ण कृपा है, केवल यह व्यवहार तुमने ठीक नहीं किया ॥२२॥ तुम स्वयं बड़े बुद्धिमान हो तो भी तुमने सन्यास क्यों ग्रहण किया ? ॥ २३ ॥ देखो विचार कर समझो कि सन्यास क्या वस्तु है ? क्योंकि सन्यास लेने पर मनुष्य अहङ्कार की फाँसी में पड़ जाता है ॥ २४ ॥ दण्ड धारण करके मनुष्य अपने को बड़ा ज्ञानी मान बैठता है तथा किसी को भी हाथ जोड़कर प्रणाम नहीं करता ॥ २५ ॥ जिनकी चरण धूलि लेने की वेदों में आज्ञा है ऐसे जन भी यदि नमस्कार करें तो भी उसे भय नहीं होता ॥२६॥ सन्यासी धर्म मैं कहूँ, वही नहीं, श्रीभागवत में जैसा वर्णन किया है वह भी समझना ॥ २७ ॥ श्रीभगवान् जीवकला रूप से सब देहधारियों में प्रविष्ट हैं यह विचार कर कुत्ता, चाण्डाल, गौएँ, गधा पर्यन्त सबको भूमि में गिरकर दण्डवत् प्रणाम करे ॥ १ ॥ ब्राह्मण से चांडाल पर्यन्त सब प्राणियों को बहुमान करके दंडवत् करे ॥ २८ ॥ "सबको प्रणाम करना" यही वैष्णव धर्म है इसमें जिसकी रीति नहीं है वही पाखंडी है ॥ २९ ॥ शिखा व सूत्र ( जनेऊ ) दूर करने का केवल यह लाभ है कि बड़े २ महाभाग भी आकर नमस्कार करते हैं ॥ ॥ ३० ॥ यह पहिला अपहार सुनाया अब बुद्धिनाशक व सर्वनाशकारी दूसरा और सुनो ॥ ३१ ॥ ईश्वर का भजन जीव का स्वाभाविक धर्म है उसको छोड़कर वह अपने को "नारायण" कहता है ॥३२॥ देखो गर्भवास में जिस ईश्वर ने रक्षा की व जिसकी कृपा से बुद्धि व ज्ञान की शिक्षा हुई॥३३॥जिनकी शेष ब्रह्मा शिव व लक्ष्मी भी दास्यता को पायकर भी सेवा के लिये निरन्तर कामना करते हैं ॥ ३४ ॥ सृष्टि, पालन, संहार जिनके दास करते हैं—सो अपने को "वह प्रभु" कहने में लाज तो नहीं आती ३५ नींद आने

निद्रा हैले 'आपने के' इहाओ ना जाने । आपनारे 'नारायण' बोले हेन जने ॥३६॥
'जगतेर पिता कृष्ण' सर्व वेदे कहे । पितारे ये भक्ति करे से सुपुत्र हये ॥३७॥

तथाहि श्रीगीतायाम् (९।१७) "पिताऽहमस्य जगतो माता धाता पितामहः" ॥२॥

गीता शास्त्रे अर्जुनेर सन्यास लक्षण । शुन एइ ये कहियाछेन नारायण ॥३८॥

तथाहि गीता ( ६।१ )

"अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः । स सन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः" ॥३॥

निष्काम हइया करे ये कृष्ण भजन । ताहारे से बलि 'योगी' 'सन्यासी' लक्षण ॥३९॥
विष्णु क्रिया ना करिया परान्न खाइले । किछु नहे साक्षातेइ एइ वेदे बोले ॥४०॥

तथाहि भागवते ४ स्कन्धे २९ अध्याये ४९-५० श्लोके

"तत्कर्म हरितोषं यत् सा विद्या तन्मतिर्यया । हरिर्देहभृतमात्मा स्वयं प्रकृतिरीश्वरः" ॥४॥

तारारे से बलि धर्म कर्म सदाचार । ईश्वरेर प्रीति जन्मे सम्मत सभार ॥४१॥
ताहारे से बलि विद्या मन्त्र अध्ययन । कृष्ण पादपद्मेते कराय स्थिर मन ॥४२॥
सभार जीवन कृष्ण, जनक सभार । हेन कृष्ण ये ना भजे, सब व्यर्थ तार ॥४३॥
यदि बोल शङ्करेर मत सेहो नहे । ताँर अभिप्राय दास्य, ताँरि मुखे कहे ॥४४॥

तथाचाह श्रीशङ्कराचार्यप्रभुः ( षट्पदी स्तोत्रे )-

"सत्यपि भेदापगमे नाथ ! तवाहं न मामकीनस्त्वम् । सामुद्रोहि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः" ॥५॥

यद्यपिह जगते ईश्वरेर भेद नाञि । सर्वमय-परिपूर्ण आछे सर्व ठाञि ॥४५॥

---

पर "आप कौन हैं ?" यह तक तो जानते नहीं ऐसे मनुष्य अपने को "नारायण" कहते हैं ॥ ३६ ॥ जगत् पिता कृष्ण हैं ऐसा सब वेदों में कहा है सो पिता की भक्ति करते हैं वही सुपुत्र होते हैं ॥ ३७ ॥ (अर्थ पू०) गीता शास्त्र में श्रीनारायण ने अर्जुन से जो सन्यास का लक्षण कहा है वह सुनो ॥ ३८ ॥ स्वर्गादि कर्म फल की कामना न करके जो शास्त्र विहित अवश्य कर्तव्य कर्म करता है, वही प्रकृत सन्यासी व यथार्थ योगी है, अग्निहोत्र प्रभृति कर्म परित्यागी यती वेशधारी सन्यासी नहीं हैं तथा शारीरिक कर्म परित्यागी भी योगी नहीं हैं ॥ ३ ॥ निष्काम होकर जो कृष्ण का भजन करता है उसी को योगी व सन्यासी का लक्षण कहते हैं ॥ ३९ ॥ विष्णु क्रिया न करके दूसरों का अन्न खाने वाले कुछ नहीं हैं अर्थात् उसकी कोई संज्ञा नहीं है, वेद ऐसा स्पष्ट कहते हैं ॥४०॥ जिससे हरि सन्तुष्ट हों वह कर्म है तथा जिसके द्वारा श्रीहरि में बुद्धि लगे वही विद्या है, क्योंकि श्रीहरि देहधारी मात्रों के आत्मा व ईश्वर हैं कारण वे स्वयं स्वतन्त्र रूप से सब प्राणियों के कारण स्वरूप माता पिता हैं ॥ ४ ॥ उसी को सर्व सम्मत धर्म कर्म व सदाचार कहते हैं जिससे ईश्वर में प्रीति उत्पन्न हो ॥ ४१ ॥ विद्या मन्त्र व अध्ययन उसी को कहते हैं जिससे श्रीकृष्णचन्द्र के चरण-कमलों में मन स्थिर हो ॥ ४२ ॥ कृष्णचन्द्र सब प्राणियों के जीवन व पिता हैं ऐसे कृष्ण को जो नहीं भजते उनका सब किया हुआ व्यर्थ है ॥ ४३ ॥ यदि कहो कि शङ्कराचार्य का यह मत है, सो भी नहीं है उनका अभिप्राय तो प्रभु के दास्य पद में है-यह उनके मुख की उक्ति है ॥ ४४ ॥ हे नाथ ! जगत् और आप में भेद न रहने पर भी मैं जानता हूँ कि मैं आपके अधीन हूँ, किन्तु आप मेरे आधीन नहीं हो । तरङ्ग व तरङ्गमय समुद्र परस्पर अलग नहीं है यह सुनिश्चित है; परन्तु तरङ्ग समुद्र की है किन्तु समुद्र तरङ्गों का

तभो तोमा हइते से हइयाछि आमि । आमा हैते नाहि कभू हइयाछ तुमि ॥४६॥
येन समुद्रेर से तरङ्ग लोके बोले । 'तरङ्गेर समुद्र' ना हय कोन-काले ॥४७॥
अतएव जगत तोमार, तुमि पिता । इहलोके परलोके तुमि से रक्षिता ॥४८॥
याहा हैते हय जन्म, ये करे पालन । तारे ये ना भजे, वर्ज्य हय सेइ जन ॥४९॥
एइ शङ्करेर श्लोक—एइ अभिप्राय । इहा ना जानिआ माथा कि कार्ये मुड़ाय ॥५०॥
सन्यासी हइया निरवधि 'नारायण' । बलिबेक प्रेम भक्ति योगे अनुक्षण ॥५१॥
ना बूझिया शङ्कराचार्येर अभिप्राय । भक्ति छाड़ि माथा मुड़ाइया दुःख पाय ॥५२॥
अतएव तोमारे से कहिलाङ आमि । हेन पथे प्रविष्ट हइला केने तुमि ॥५३॥
यदि कृष्ण भक्तियोगे करिब उद्धार । तबे शिखा-सूत्र-त्यागे कोन् लभ्य आर ॥५४॥
यदि बोल माधवेन्द्र-आदि महाभाग । ताँराओ करियाछेन शिखा-सूत्र-त्याग ॥५५॥
तथापिह तोमार सन्यास करिबार । ए समये केमते हइल अधिकार ॥५६॥
से सब महान्तगण त्रिभाग-वयसे । ग्राम्य-रस भुञ्जिया से करिला सन्यासे ॥५७॥
यौवन-प्रवेश मात्र सकले तोमार । केमते हइल सन्यासेर अधिकार ॥५८॥
परमार्थे सन्यासे कि करिब तोमारे । येइ भक्ति हइयाछे तोमार शरीरे ॥५९॥
योगेन्द्रादि-सभेर ये दुर्लभ प्रसाद । तबे केने करियाछ ए मत प्रमाद ॥६०॥
शुनि भक्तियोग सार्वभौमेर वचन । बड़ सुखी हैला गौरचन्द्र नारायण ॥६१॥
प्रभु बोले शुनि सार्वभौम महाशय । 'सन्यासी' आमारे नाहि जानिह निश्चय ॥६२॥

---

कदापि नहीं हो सकता है ॥ ५ ॥ यद्यपि जगत् व ईश्वर में भेद नहीं है तथापि सर्वमय भगवान् सब जगह परिपूर्ण रूप से विराजमान हैं ॥ ४५ ॥ तभी मैं आपसे ही उत्पन्न हुआ हूँ और मुझसे आप उत्पन्न नहीं हुए हो ॥ ४६ ॥ जैसे 'समुद्र की तरङ्ग' मनुष्य कहते हैं परन्तु 'तरङ्गों का समुद्र' कभी नहीं होता ॥ ४७ ॥ अतः जगत् आपका है आप पिता हो और इस लोक व परलोक में तुम ही रक्षा करने वाले हो ॥ ४८ ॥ जिससे जन्म हो तथा जो पालनकर्त्ता है उसका जो भजन नहीं करता है वह मनुष्य ( वर्ज्य ) पाखण्डी है ॥ ४९ ॥ यह श्लोक श्रीशङ्कराचार्य का है इसका अर्थ न जानकर माथा किस लिये मुड़ाते हैं ? ॥ ५० ॥ सन्यासी होकर निरन्तर प्रेम-भक्ति से क्षण २ में नारायण का नाम बोलें ॥ ५१ ॥ श्रीशङ्कराचार्य के इस अभिप्राय को न जानकर भक्ति को छोड़कर माथा मुड़ाकर दुःख पाते हैं ॥ ५२ ॥ अतः मैं तुमसे कहता हूँ कि इस मार्ग में क्यों प्रविष्ट हुए (मुझे ?) ॥ ५३ ॥ यदि श्रीकृष्णचन्द्र भक्तियोग के द्वारा उद्धार करते तो शिखा-सूत्र त्यागने से क्या लाभ ॥५४॥ यदि कहो कि श्रीमाधवेन्द्रपुरी आदि महाभागों ने भी शिखा-सूत्र का त्याग किया है ? ॥ ५५ ॥ तथापि इस समय तुम्हें सन्यास करने का अधिकार कैसे हुआ ? ॥ ५६ ॥ उन सब महात्माओं ने आयु के तीसरे "भाग में-विषय सुख भोगकर सन्यास" ग्रहण किया ॥ ५७ ॥ तुम्हारा तो अभी यौवन में ही प्रवेश मात्र है कहो सो किस प्रकार सन्यास का अधिकार हुआ ? ॥५८॥ सन्यास तुम्हारा क्या परमार्थ सिद्ध करेगा ? तुम्हारे शरीर में तो यह भक्ति उदय हुई है॥५९॥ जो अनुग्रह योगेन्द्रादि को भी दुर्लभ है वह तुम्हें प्राप्त है तब ऐसा प्रमाद क्यों किया ? ॥६०॥ भक्तियोग पूर्ण सार्वभौम के वचनों

कृष्णेर विरहे मुञि विक्षिप्त हइया । बाहिर हइलुँ शिखा सूत्र मुड़ाइया ॥६३॥
'सन्यासी' करिया ज्ञान छाड़ मोर प्रति । कृपा कर येन मोर कृष्णे हय मति ॥६४॥
प्रभु हइ निज-दास मोहे हेन मते । ए मायाय दासे प्रभु जानिब केमते ॥६५॥
यदि तिंहो नाहि जानायेन आपनारे । तबे कार शक्ति आछे जानिते ताँहारे ॥६६॥
ना जानिआ सेवके यतेक कथा कय । ताहातेओ ईश्वरेर महाप्रीति हय ॥६७॥
सर्व काल भृत्य सङ्गे प्रभु क्रीड़ा करे । सेवकेर निमित्ते आपने अवतरे ॥६८॥
ये मते सेवके भजे कृष्णेर चरणे । कृष्ण सेइमत दास भजेन आपने ॥६९॥
एइ ताँर स्वभाव ये-सेवक-वत्सल । इहा ताँरे निवारिते कार आछे बल ॥७०॥
हासे प्रभु सार्वभौम चाहिया-चाहिया । ना बूझेन सार्वभौम माया मुग्ध हैया ॥७१॥
सार्वभौम बोलेन आश्रमे बड़ तुमि । शास्त्र मते तुमि वन्द्य, उपासक आमि ॥७२॥
तुमि ये आमारे स्तव कर युक्त नहे । इहाते आमार पाछे अपराध हये ॥७३॥
प्रभु बोले 'छाड़' मोरे ए सकल माया । सर्वभावे तोमार लइलुँ मुञि छाया ॥७४॥
हेन मते प्रभु भृत्य सङ्गे करे खेला । के बूझिते पारे गौर सुन्दरेर लीला ॥७५॥
प्रभु बोले मोर एक आछे मनोरथ । तोमार श्रीमुखे शुनिबाङ भागवत ॥७६॥
यतेक संशय चित्ते आछये आमार । तोमा बइ घुचाइब हेन नाहि आर ॥७७॥
सार्वभौम बोले तुमि सकल विद्याय । परम प्रवीण, आमि जानि सर्वथाय ॥७८॥
कोन् भागवत-अर्थ ना जान वा तुमि । तोमारे वा कोन् रूपे प्रबोधिब आमि ॥७९॥

---

को सुनकर गौरचन्द्र नारायण बड़े प्रसन्न हुए ॥६१॥ गौरचन्द्र ने कहा सार्वभौम महाशय सुनो मुझे निश्चय ही सन्यासी मत जानो ॥६२॥ मैं तो कृष्ण के विरह में विक्षिप्त होकर शिखा सूत्र मुड़ाय कर घर से बाहिर हुआ हूँ ॥६३॥ मेरे प्रति सन्यासी का भाव छोड़ दो तथा और ऐसी कृपा करो जिससे मेरी बुद्धि कृष्ण में लगे ॥६४॥ प्रभु होकर अपने दास को इस प्रकार मोहित करते हैं ऐसी माया से दासगण कैसे प्रभु को जानें ? ॥६५॥ यदि प्रभु अपने को न जनावें तो किस की शक्ति है कि उन्हें जान सके ? ॥६६॥ प्रभु को न पहिचान कर सेवक जो कुछ कहते हैं उससे भी प्रभु को बड़ी प्रसन्नता ( प्रीति ) होती है ॥६७॥ प्रभु सब समय दास के साथ क्रीड़ा करते हैं और सेवक के निमित्त से ही स्वयं अवतार भी धारण करते हैं ॥६८॥ जिस प्रकार सेवक श्रीकृष्ण के चरणों को भजते हैं उसी प्रकार कृष्ण स्वयं दासों का भजन करते हैं॥६९॥यह उनका स्वभाव है कि आप भक्तवत्सल हैं इससे उनका निवारण करने में कौन समर्थ है ॥७०॥ सार्वभौम की ओर देख-देख कर प्रभु गौरचन्द्र हँस रहे थे और सार्वभौम माया मुग्ध हो नहीं समझे हैं ॥७१॥ सार्वभौम ने कहा आश्रम में तुम बड़े हो और शास्त्रानुसार से तुम पूज्य हो तथा मैं उपासक हूँ ॥७२॥ तुम जो मेरी स्तुति करते हो यह योग्य नहीं है इससे मुझे अपराध लगेगा ॥७३॥ प्रभु ने कहा मेरे प्रति इन सब माया को छोड़ो मैं सब प्रकार से तुम्हारे पीछे हूँ ॥७४॥ प्रभु दासों के साथ इस प्रकार खेल करते हैं ऐसे गौरसुन्दर की लीला को कौन समझ सकेगा ? ॥ ७५ ॥ प्रभु ने कहा मेरा एक मनोरथ है कि तुम्हारे श्रीमुख से भागवत श्रवण करूँ ॥ ७६ ॥ मेरे मनमें जितने संशय हैं तुम्हारे बिना ऐसा दूसरा नहीं है जो उनको दूर करें ॥ ७७ ॥ सार्वभौम

तबे श्रीवैकुण्ठनाथ ईषत् हासिया  बलिलेन एक श्लोक अष्ट-आखरिया ८२

तथाहि भागवते १ स्कन्धे ७ अध्याये १० श्लोके—

"आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः" ॥६॥

सरस्वती पति गौरचन्द्रेर अग्रेते। कृपाय लागिला सार्वभौम बाखानिते ॥८३॥

सार्वभौम बोले श्लोकार्थ एइ सत्य। कृष्ण पद भक्ति से सभार मूल तत्त्व ॥८४॥

सर्वकाल परिपूर्ण हय ये-ये जन। अन्तरे बाहिरे जार नाहिक बन्धन ॥८५॥

सर्व विध मुक्त सब करे कृष्ण भक्ति। हेन कृष्ण गुणेर स्वभाव महाशक्ति ॥८६॥

हेन कृष्ण-गुण-नाम मुक्त-सबो गाय। इथे अनादर जार, से-इ नाश जाय ॥८७॥

एइ मत नाना मत पक्ष तोलाइया। व्याख्या करे सार्वभौम आविष्ट हइया ॥८८॥

त्रयोदश प्रकार श्लोकार्थ बाखानिया। रहिलेन 'आर शक्ति नाहिक' बलिया ॥८९॥

ईषत् हासिया गौरचन्द्र प्रभु कहे। यत बाखानि ला तुमि, सब सत्य हये ॥९०॥

एबे शुन आमि किछु करिये व्याख्यान। बूझ देखि बिचारिया-हय कि प्रमाण ॥९१॥

तखने विस्मित सार्वभौम महाशय। आरो अर्थ मनुष्येर शक्तिते कि हय ॥९२॥

आपनार अर्थ प्रभु आपने बाखाने। याहा केहो कोनो कल्पे उद्देश ना जाने ॥९३॥

---

ने कहा तुम सर्व विद्याओं में परम प्रवीण हो मैं अच्छी तरह से जानता हूँ ॥ ७८ ॥ तुम भागवत के कौन से अर्थ नहीं जानते मैं तुम्हें किस प्रकार ज्ञात करा सकूँ ? ॥ ७९ ॥ तथापि परस्पर में भक्ति का विचार करेंगे यही सज्जनों के चित्त में स्वाभाविक व्यवहार है ॥८०॥ अच्छा कहो ! देखें तो तुम्हारे किस स्थान में सन्देह है उसको यथाशक्ति व्याख्यान करूँगा ॥ ८१ ॥ ताके पीछे बैकुण्ठनाथ ने कुछ हँसकर- आठ अक्षर में विश्राम वाला एक श्लोक ( अनुष्टुप छन्द में ) कहा ॥ ८२ ॥ जो विधि निषेध के अतीत हैं तथा जिनकी अहङ्कार ग्रन्थि छिन्न-भिन्न हो गई हैं ऐसे अपने ही में रमण वाले आत्माराम मुनिगण भी अमित पराक्रम भगवान् में फल की कामना से शून्य भक्ति का अनुष्ठान करते हैं क्योंकि श्रीहरि के गुण ही इस प्रकार के हैं ॥ ६ ॥ सरस्वती पति श्रीगौरचन्द्र के सम्मुख कृपा पूर्वक सार्वभौम भट्टाचार्यजी व्याख्या करने लगे ॥८३॥ सार्वभौम ने कहा श्लोक का सत्य अर्थ यह है कि कृष्णचन्द्र के चरणों में भक्ति हो यही सबका मूल तत्त्व है ॥ ८४ ॥ जो मनुष्य सदा परिपूर्ण हैं जिनके भीतर-बाहिर का कोई बन्धन नहीं है इस प्रकार के मुक्त पुरुष भी कृष्ण भक्ति करते हैं श्रीकृष्ण के गुण व स्वभाव की ऐसी ही महाशक्ति है ॥ ८५-८६ ॥ ऐसे कृष्ण के गुण व नामों को मुक्त पुरुष भी गाते हैं इसमें जिसकी आदर- बुद्धि नहीं है वे नष्ट हो जावेंगे ॥ ८७ ॥ यों अनेक प्रकार का पक्ष उठाकर आवेश में आकर सार्वभौम ने व्याख्या की ॥ ८८ ॥ तेरह प्रकार से श्लोक के अर्थ की व्याख्या करके और सामर्थ्य नहीं है ऐसा कहकर रुक गये ॥८९॥ कुछ हँसकर श्रीगौरचन्द्र प्रभु ने कहा कि तुमने जितने प्रकार से व्याख्या की सब सत्य है ॥ ९० ॥ सुनो अब मैं कुछ व्याख्या करता हूँ, विचार करके देखो कि ठीक प्रमाण है या नहीं ? ॥९१॥ तब तो सार्वभौम महाशय बड़े विस्मित होकर

व्याख्या शुनि सार्वभौम परम विस्मित । मने गणे एइ किबा ईश्वर विदित ॥९४॥
श्लोक व्याख्या करे प्रभु करिया हुङ्कार । आत्मभावे हइला षड्भुज-अवतार ॥९५॥
प्रभु बोले सार्वभौम कि तोर विचार । सन्यासे कि आमार नाहिक अधिकार ॥९६॥
'सन्यासी' कि आमि हेन तोर चित्ते लय । तोर लागि एथा मुञि हइलूँ उदय ॥९७॥
बहु जन्म मोर प्रेमे तेजिलि जीवन । अतएव तोरे मुञि दिलूँ दरशन ॥९८॥
सङ्कीर्तनारम्भे एइ मोर अवतार । अनन्त-ब्रह्माण्डे मुञि बइ नाहि आर ॥९९॥
जन्म-जन्म तुमि मोर शुद्ध-प्रेम-दास । अतएव तोरे मुञि हइलूँ प्रकाश ॥१००॥
साधु उद्धारिमु दुष्ट विनाशिमु सब । चिन्ता किछु नाहि तोर, पढ़ मोर स्तव ॥१०१॥
अपूर्व षड्भुज-मूर्ति-कोटि सूर्यमय । देखि मूर्च्छा गेला सार्वभौम महाशय ॥१०२॥
शंख चक्र गदा पद्म श्रीहल मूषल । रत्न-मणि-परिपूर्ण श्रीअङ्ग उज्वल ॥१०३॥
श्रीवत्स कौस्तुभ हार वक्षे शोभा करे । वाम-कक्षे शिंगा वेत्र मुरली जठरे ॥१०४॥
विशाल करेन प्रभु हुंकार गर्जन । आनन्दे षड्भुज गौरचन्द्र नारायण ॥१०५॥
बड़ सुखी प्रभु सार्वभौमेरे अन्तरे । 'उठ' बलि श्रीहस्त दिलेन ताँर शिरे ॥१०६॥
श्रीहस्त परशे विप्र पाइला चेतन । तथापि आनन्दे जड़, ना स्फुरे वचन ॥१०७॥
करुणा समुद्र प्रभु श्रीगौरसुन्दर । पादपद्म दिला ताँर हृदय-उपर ॥१०८॥

---

बोले "क्या मनुष्य को शक्ति से और भी अर्थ हो सकते हैं ? ॥ ९२ ॥ अपना अर्थ प्रकाश करने में श्रीप्रभु ने ऐसी व्याख्या की जिसका आभास मात्र ही किसी कल्प में किसी को नहीं मिला था ॥ ९३ ॥ सार्वभौम व्याख्या सुनकर विस्मित हुए और मनमें विचारने लगे "क्या यह ईश्वर प्रगट हुए हैं ?" ॥ ९४ ॥ श्रीप्रभु हुङ्कार करते हुए श्लोक की व्याख्या कर रहे थे तथा ईश्वर भाव में आकर षड्भुज स्वरूप प्रगट किया ॥९५॥ प्रभु ने कहा "हे सार्वभौम ! तुम्हारा क्या विचार है ? क्या सन्यास में मेरा अधिकार नहीं है ?" ॥ ९६ ॥ तुम तो यही सोचते होगे कि क्या मैं सन्यासी हूँ ? परन्तु मैं तो तुम्हारे लिये ही यहाँ प्रगट हुआ हूँ ॥९७॥ तुमने अनेक जन्मों से मेरे प्रेम में प्राण त्यागे हैं इस कारण मैंने तुम्हें दर्शन दिये ॥ ९८ ॥ मेरा यह अवतार नाम संकीर्तन आरम्भ कराने के लिये हुआ है अनन्त ब्रह्माण्डों में मेरे अतिरिक्त दूसरा नहीं है ॥ ९९ ॥ तुम मेरे जन्म-जन्मान्तर के शुद्ध प्रेमिक दास हो इसी कारण मैं तुम्हारे निमित्त प्रगट हुआ हूँ ॥१००॥ मैं साधु उद्धार तथा सब दुष्टों का विनाश करूँगा तुम कुछ चिन्ता न करके मेरी स्तुति पाठ करो ॥ १०१ ॥ कोटि सूर्य प्रकाशमय षड्भुज मूर्ति को देखते ही सार्वभौम महाशय मूर्च्छित हो गये ॥१०२॥ हाथों में शंख-चक्र-गदा-कमल हल व मूसल शोभा पा रहे थे तथा उज्वल श्रीअङ्ग में रत्न व मणियाँ प्रचुर मात्रा में शोभित थ वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिन्ह तथा कौस्तुभ हार शोभित थे, बाईं बगल में शींग और वेत्र, उदर में वंशी खोंस रक्खी थी ॥ १०३-१०४ ॥ श्रीषड्भुज नारायण प्रभु आनन्दित हो विशाल हुङ्कार व गर्जना कर रहे थे ॥ १०५ ॥ श्रीप्रभु सार्वभौम के प्रति मनमें बड़े प्रसन्न थे और 'उठो' यों कहकर उनके मस्तक पर श्रीहस्त रख दिया ॥ १०६ ॥ श्रीहस्त कमल के स्पर्श से ब्राह्मण को चेतना प्राप्त हुई तथापि अति आनन्द से जड़वत हो रहे थे और मुख से शब्द नहीं निकलते थे ॥ १०७ ॥ करुणासिन्धु प्रभु श्रीगौरसुन्दर ने सार्वभौम के

पाइ श्रीचरण सार्वभौम महाशय। हइला केवल परानन्द प्रेममय ॥१०९॥
दृढ़ करि पादपद्म धरि प्रेम फान्दे। आजि से पाइलूं चित्तचोर बलि कान्दे ॥११०॥
आर्तनादे सार्वभौम करेन रोदन। धरिया अपूर्व पादपद्म रमा-धन ॥१११॥
प्रभुरे ! श्रीकृष्णचैतन्य प्राणनाथ। मुञि-अधमेरे प्रभु कर दृष्टिपात ॥ ११२ ॥
तोमारे से मुञि पापी शिखाइलूं धर्म। ना जानिञा तोमार अचिन्त्य शुद्ध कर्म ॥११३॥
हेन केबा आछे प्रभु तोमार मायाय। महायोगेश्वर-आदि मोह नाहि पाय ॥११४॥
से तुमि जे आमारे मोहिबा कोन् शक्ति। एइ देह तोमार चरणे प्रेम भक्ति। ११५॥
जय जय श्रीकृष्णचैतन्य प्राणनाथ। जय जय शची-पुण्यवती-गर्भ जात ॥११६॥
जय जय श्रीकृष्णचैतन्य सर्व प्राण। जय जय वेद-विप्र-साधु-धर्म-त्राण ॥११७॥
जय जय वैकुण्ठादि लोकेर ईश्वर। जय जय शुद्ध सत्त्व रूप न्यासीवर ॥११८॥
परम सुबुद्धि सार्वभौम महामति। श्लोक पढ़ि-पढ़ि पुनः पुन करे स्तुति ॥११९॥

तथाहि (श्रीचैतन्यचन्द्रोदयनाटके षष्ठाङ्के)—
कालान्नष्टं भक्तियोगं निजं यः प्रादुष्कर्तुं कृष्णचैतन्यनामा।
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे गाढं गाढं लीयतां चित्तभृङ्गः ॥७॥

काल वशे भक्ति लुकाइया दिने-दिने। पुनर्वार निज भक्ति-प्रकाश-कारणे ॥१२०॥
श्रीकृष्णचैतन्य-नाम प्रभु अवतार। ताँर पादपद्मे चित्त रहुक आमार ॥१२१॥

---

ऊपर चरण-कमल स्पर्श करा दिया ॥ १०८ ॥ श्रीचरन-कमल पाकर सार्वभौम महाशय शुद्ध प्रेमानन्द में निमग्न हो गये ॥ १०९ ॥ प्रेमपाश में चरन-कमलों को दृढ़ करके पकड़ लिया और बोले कि अहो आज मैंने उस चित्त चोरा को पाया" यों कहकर रुदन करने लगे ॥ ११० ॥ लक्ष्मी के प्राणधन अपूर्व चरण-कमलों को पकड़ कर आर्त स्वर से सार्वभौम रुदन करने लगे ॥१११। हे प्रभो ! प्राणनाथ ! श्रीकृष्णचैतन्य मुझ अधम के ऊपर शुभ दृष्टिपात करो ॥ ११२ ॥ तुम्हारे अचिन्त्य शुद्ध कर्म को न जानकर मैं पापी तुम्हें धर्म सिखाने लगा ॥ ११३ ॥ हे प्रभो ! ऐसा कौन है जो तुम्हारी माया से मोहित न हो—महायोगेश्वरादि भी मोह को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ११४ ॥ सो भला मुझे मोहने में आपकी क्या शक्ति प्रदर्शन है ? मुझे तो अपने श्रीचरणों की प्रेम-भक्ति दीजिये ॥ ११५ ॥ प्राणनाथ श्रीकृष्णचैतन्य की जय हो जय हो, पुण्यवती शची के गर्भजात श्रीप्रभु की जय हो २ ॥ ११६ ॥ सब चराचर जीवों के प्राण श्रीकृष्णचैतन्य की जय हो २, वेद, विप्र, साधु व धर्म के रक्षक की जय हो २ ॥ ११७ ॥ वैकुण्ठादिक लोकों के ईश्वर की जय हो २, शुद्ध सत्त्वरूप सन्यासी श्रेष्ठ प्रभु की जय हो जय हो ॥ ११८ ॥ बड़े सुबुद्धि व महामति सार्वभौम बारम्बार पढ़-पढ़कर स्तुति कर रहे हैं ॥ ११९ ॥ जो काल के प्रभाव से लुप्त प्राय अपने असाधारण भक्तियोग को पुनः प्रगट करने के लिये श्रीकृष्णचैतन्य नाम धारण करके आविर्भूत हुए हैं उनके चरण-कमलों में मेरा चित्तरूप भौंरा प्रगाढ़ रूप से लिपट जावे ॥ ७ ॥ समय के वश से जो भक्ति दिनोदिन लुप्त प्राय होती गई उस अपनी भक्ति के प्रकाश करने के लिये प्रभु श्रीकृष्णचैतन्य नाम से पुनः अवतीर्ण हुए हैं उनके चरण-कमलों में मेरा

तथाहि (श्रीचैतन्यचन्द्रोदयनाटके षष्ठाङ्के) —
"वैराग्यविद्यानिजभक्तियोगशिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः ।
श्रीकृष्णचैतन्यशरीरधारी कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये" ॥ ८ ॥

वैराग्य सहित निज भक्ति बुझाइते । ये प्रभु कृपाय अवतीर्ण पृथिवीते ॥१२२॥
श्रीकृष्णचैतन्य-तनु-पुरुष पुराण । त्रिभुवने नाहि याँर अधिक समान ॥१२३॥
हेन कृपासिन्धुर चरण-गुण-नाम । स्फुरुक् आमार हृदयेते अविराम ॥ १२४ ॥
एइ मत सार्वभौम शतश्लोक करि । काकु करे चैतन्येर पादपद्म धरि ॥ १२५ ॥
पतित तारिते से तोमार अवतार । मुञि-पतितेरे प्रभु करह उद्धार ॥ १२६ ॥
बन्दी करियाछ मोरे अशेष बन्धने । विद्या धने कुल-तोमा जानिमु केमने ॥ १२७ ॥
एबे एइ कृपा कर सर्व जीव-नाथ । अहर्निश चित्त येन रहये तोमात ॥ १२८ ॥
अचिन्त्य अगम्य प्रभु तोमार विहार । तुमि ना जानाइले जानिते शक्ति कार ॥ १२९ ॥
आपनेइ दारु ब्रह्मरूपे नीलाचले । वसिया आछह भोजनेर कुतूहले ॥ १३० ॥
आपन प्रसाद कर आपने भोजन । आपने आपना देखि करह क्रन्दन ॥ १३१ ॥
आपने आपना देखि हओ महामत्त । एतेके के बूझे प्रभु तोमार महत्त्व ॥ १३२ ॥
आपने से आपनारे जान तुमि मात्र । आर जाने ये जन तोमार कृपापात्र ॥ १३३ ॥
मुञि छार तोमारे वा जानिमु केमने । याते मोह माने अज-भव-देवगणे ॥ १३४ ॥
एइ मत अनेक करिया काकुवाद । स्तुति करे सार्वभौम पाइया प्रसाद ॥ १३५ ॥

चित्त निरन्तर स्थिर रहे ॥ १२०-१२१ ॥ जो एक करुणासागर पुराण ( प्राचीन ) पुरुष वैराग्य—विद्या एवं अपने भक्तियोग की शिक्षा देने के निमित्त श्रीकृष्णचैतन्य रूप से प्रगट हुए हैं मैं उन्हीं के शरणापन्न हूँ ॥ ८ ॥ वैराग्य-सहित अपनी भक्ति समझाने के लिये जो प्रभु कृपा करके पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं। १२२॥ जो श्रीकृष्णचैतन्य विग्रहधारी पुराण पुरुष हैं तीनों लोकों में कोई जिनसे अधिक है और न समान हो हैं ॥१२३॥ उन कृपासिन्धु श्रीकृष्णचैतन्य चरण के गुण व नाम मेरे हृदय में निरन्तर स्फुरण होते रहें॥१२४॥ इस प्रकार सार्वभौम ने सौ श्लोक द्वारा चैतन्य के चरण-कमलों को पकड़कर विनती की ॥ १२५ ॥ पतितों को तारने के लिये आपका अवतार है सो प्रभो ! मुझ पतित का भी उद्धार करो ॥ १२६ ॥ विद्या धन कुल आदि अनेक बन्धनों से मैं बन्दी हो रहा हूँ—इसलिये मैं आपको कैसे जान सकता हूँ ? ॥१२७॥ हे सर्व प्राणेश्वर ! अब ऐसी कृपा करो जिसमें मेरा यह मन रात-दिन आपही में रहे ॥ १२८ ॥ हे प्रभो ! आपका विहार चिन्ता के परे है अर्थात् मन बुद्धि का भी विषय नहीं है—आपके बिना जताये किसकी शक्ति है जो जान ले ॥ १२९ ॥ आप ही नीलाचल में दारु ब्रह्मरूप में ( काष्ठ मूर्ति से ) भोजन के निमित्त लीला से ही विराजमान हो ॥ १३० ॥ आप ही प्रसाद प्रस्तुत करते हो तथा आप ही भोजन करते हो और आपही अपने को देखकर क्रन्दन भी करते हो ॥ १३१ ॥ अपने को आपही देखकर बड़े मत्त होते हो, प्रभो ! इस कारण आपके महत्त्व को कौन समझ सके ? ॥ १३२ ॥ अपने को केवल आप ही जानते हो अथवा वे दास जानते हैं जिन्हें आपकी कृपा है ॥ १३३ ॥ जिनके जानने में ब्रह्मा शिव व देवगण भी मोहित होते हैं, आपको मैं तुच्छ जीव किस प्रकार जान सकूँगा ॥ १३४ ॥ इस प्रकार सार्वभौम प्रभु अनुग्रह

शुनिला षड्भुज गौरचन्द्र नारायण । हाँसि सार्वभौम प्रति बलिला वचन ॥ १३६ ॥
शुन सार्वभौम तुमि आमार पार्षद । एतेके देखिला तुमि एतेक सम्पद ॥१३७॥
तोमार निमित्ते मोर एथा आगमन । अनेक करिया आछ मोर आराधन ॥१३८॥
भक्तिर महिमा तुमि यतेक कहिला । इहाते आमारे बड़ सन्तोष करिला ॥१३९॥
यतेक कहिला तुमि-सब सत्य कथा । तोमार मुखेते केने आसिबे अन्यथा ॥१४०॥
शत श्लोक करि तुमि ये कैले स्तवन । ये जन करये इहा श्रवण पठन ॥१४१॥
आमाते ताहार भक्ति हइबे निश्चय । 'सार्वभौम शतक' बलि लोके येन कय ॥१४२॥
ये किछु देखिला तुमि प्रकाश आमार । सङ्गोप करिबा पाछे जाने केहो आर ॥१४३॥
यनेक दिवस मुञि थाकों पृथिवीते । तावत निषेध कैलूँ काहार कहिते ॥१४४॥
आमार द्वितीय देह-नित्यानन्द चन्द्र । भक्ति करि सेविह ताँहार पद द्वन्द ॥१४५॥
परम निगूढ़ तिंहो केहो नाहि जाने । आमि यारे जानाइ से-इसे जाने ताने ॥१४६॥
एइ सब तत्त्व सार्वभौमेर कहिया । रहिलेन आपन ऐश्वर्य सम्वरिया ॥१४७॥
चिनि निज प्रभु सार्वभौम महाशय । बाह्य आर नाहि हैला परमानन्दमय ॥१४८॥
ये शुनये ए सब चैतन्य-गुण-ग्राम । से जाय संसार तरि श्रीचैतन्य धाम ॥१४९॥
परम निगूढ़ ए सकल कृष्ण कथा । इहार श्रवणे कृष्ण पाइये सर्वथा ॥१५०॥
हेन मते करि सार्वभौमेरे उद्धार । नीलाचले करे प्रभु कीर्त्तन-विहार ॥१५१॥

---

पाकर अनेक रूप से नम्रतापूर्वक स्तुति करने लगे ॥ १३५ ॥ षड्भुज नारायण श्रीगौरचन्द्र विनती सुनकर सार्वभौम से हँसकर बोले—॥ १३६ ॥ हे सार्वभौम सुनो ! तुम मेरे पार्षद हो इसी से यह सम्पत्ति रूप दर्शन तुम्हें मिला है ॥ १३७ ॥ यहाँ मेरा आगमन तुम्हारे ही निमित्त हुआ है क्योंकि पूर्व० में मेरा बहुत आराधन तुमने किया था ॥१३८॥ तुमने भक्ति की जो महिमा वर्णन की है उससे मैं अति प्रसन्न हूँ॥१३९॥ तुमने जो कुछ कहा वह सब सत्य है तुम्हारे मुख से अन्यथा असत्य क्यों आवेगा ? ॥ १४० ॥ जिन सौ श्लोकों द्वारा तुमने मेरा स्तवन किया है उन्हें जो प्राणी पाठ अथवा श्रवण करेगा ॥ १४१ ॥ उसकी भक्ति मुझमें निश्चय होगी संसार में "सार्वभौम शतक" के नाम से यह प्रसिद्ध होगा ॥ १४२ ॥ तुमने जो कुछ मेरा प्रकाश देखा है उसे भली प्रकार से गुप्त रखना-पीछे से कोई और न जानें ॥ १४३ ॥ मैं पृथ्वी पर जितने दिन रहूँ तब तक किसी से कहने का मैं निषेध करता हूँ ॥ १४४ ॥ मेरा दूसरा देह नित्यानन्दचन्द्र हैं उनके चरण-कमलों की भक्ति पूर्वक सेवा करना ॥१४५॥ वे भी बड़े निगूढ़ गम्भीर हैं, उनको भी कोई नहीं जानता ? जिसे जनाता हूँ केवल वे ही उन्हें जानते हैं ॥ १४६ ॥ सार्वभौम के प्रति इन सब तत्त्वों को कह कर तथा अपने ऐश्वर्य को सम्वरण करके थम गये ॥ १४७ ॥ सार्वभौम महाशय अपने प्रभु को पहिचानकर परम आनन्द मग्न हो गये तथा बाह्य ज्ञान नहीं रहा ॥ १४८ ॥ चैतन्य प्रभु के इन सब गुणों को जो सुनेंगे वे संसार पार कर श्रीचैतन्य के धाम को प्राप्त होंगे ॥१४९॥ कृष्ण की यह सब कथा परम गुप्त व गम्भीर है, इसके सुनने से कृष्णचन्द्र की सर्वथा प्राप्त होगी ॥१५०॥ इस प्रकार प्रभु सार्वभौम का उद्धार करके नीलाचल में कीर्तन विहार करने लगे १५१ निरन्तर नृत्य गीत व प्रेमानन्द रस के आवेश से प्रभु को रात

निरवधि नृत्य-गीत-आनन्द आवेशे। रात्रि दिना ना जानेन प्रभु प्रेमरसे ॥१५२॥
नीलाचल वासी यत अपूर्व देखिया। सर्वलोक 'हरि' बोले डाकिया-डाकिया ॥१५३॥
'एइ त सचल जगन्नाथ' सभे बोले। हेन नाहि ये प्रभुरे देखिया ना भोले ॥१५४॥
जे पथे जायेन चलि श्रीगौरसुन्दर। सेइ दिगे हरिध्वनि शुनि निरन्तर ॥१५५॥
जेखाने पड़ये प्रभुर चरण युगल। से स्थानेर धूलि लूट करेन सकल ॥१५६॥
धूलि लुटि पाय मात्र ये सुकृति जन। ताहार आनन्द हय अकथ्य कथन ॥१५७॥
कि से श्री विग्रहेर सौन्दर्य अनुपाम। देखिते सभार चित्त हरे अविराम ॥१५८॥
निरवधि श्रीआनन्दधार श्रीनयने। 'हरेकृष्ण' नाम मात्र शुनि श्रीवदने ॥१५९॥
चन्दन मालाय परिपूर्ण कलेकर। मत्तसिंह जिनि गति परम सुन्दर ॥१६०॥
पथे चलितेओ ईश्वरेर वाह्य नाजि। भक्ति-रसे विहरेन चैतन्य गोसाञि ॥१६१॥
कथो दिन बिलम्बे परमानन्दपुरी। आसिया मिलिला तीर्थ-पर्यटन करि ॥१६२॥
दूरे प्रभु देखिया परमानन्दपुरी। सम्भ्रमे उठिला प्रभु गौराङ्ग श्रीहरि ॥१६३॥
प्रिय भक्त देखि प्रभु परम-सन्तोषे। नृत्य करे स्तुति करे महा प्रेमावेशे ॥१६४॥
वाहु तुलि बलिते लागिला हरि-हरि। देखिलाङ नयने परमानन्दपुरी ॥१६५॥
आजि धन्य लोचन, सफल आजि जन्म। सफल आमार आजि हैल सर्व धर्म ॥१६६॥
प्रभु बोले आजि मोर सफल सन्यास। आजि माधवेन्द्र मोरे हइला प्रकाश ॥१६७॥
एत बलि प्रिय भक्त लइ प्रभु कोले। सिञ्चिलेन अङ्ग तान पद्मनेत्र जले ॥१६८॥

---

दिन कब बीतते हैं नहीं जान पड़ता॥१५२॥समस्त नीलचलवासी अपूर्वता देखकर ऊँचे स्वर से हरि २ कहते थे ॥ १५३ ॥ सब लोग कहते थे ये ही तो सचल जगन्नाथ हैं, इतना कहने पर भी ऐसा नहीं जो प्रभु को देखकर भ्रान्त हो जावे ॥ १५४ ॥ श्रीगौरसुन्दर जिस मार्ग में भी चले जाते थे उसी ओर से निरन्तर हरि-ध्वनि सुनाई देती थी ॥ १५५ ॥ जिस जगह में भी श्रीप्रभु के युगल चरण पड़ते थे उस स्थान को धूलि को सब लूट लेते थे ॥१५६॥ धूलि का कणिकामात्र पाते ही सुकृतिजन को अकथनीय आनन्द होता था ॥१५७॥ श्रीविग्रह का कैसा अनुपमेय सौन्दर्य है जिसे देखने पर तुरन्त ही सबका मन खो जाता था ॥ १५८ ॥ श्रीमुख से केवल "हरे कृष्ण" नाम ही निरन्तर सुन पड़ता था तथा श्रीनेत्रों से निरन्तर प्रेमाश्रु की आनन्द-धारा बह रही थी ॥ १५९ ॥ चन्दन व माला से श्रीविग्रह भरा परिपूर्ण था तथा उनकी चाल मत्त सिंह की चाल जैसी थी ॥ १६० ॥ मार्ग चलने में भी प्रभु को वाह्य ज्ञान नहीं रहता था श्रीचैतन्य गुसाईं केवल भक्तिरस में ही विहार करते थे ॥१६१॥ कुछ दिन पश्चात् श्रीपरमानन्दपुरी तीर्थ पर्यटन करके मिले ॥१६२॥ श्रीगौराङ्ग प्रभु दूर से ही श्रीपरमानन्दपुरी को देखकर शीघ्रता से उठे ॥ १६३ ॥ श्रीप्रभु प्रियभक्त को देखकर परम सन्तुष्ट हुए तथा बड़े प्रेमावेश में आकर नृत्य व स्तुति करने लगे ॥ १६४ ॥ बाहु उठाकर 'हरि-हरि" कहने लगे और बोले अहो नेत्रों से परमानन्दपुरी के दर्शन हुए ॥ १६५ ॥ आज मेरे नेत्र धन्य हुए तथा मेरा जन्म सफल हुआ और मेरे सब धर्माचरण सफल हुए ॥ १६६ ॥ प्रभु ने कहा आज मेरा सन्यास लेना सफल हुआ अहो आज मुझे श्रीमाधवेन्द्रपुरी जी का प्रकाश प्राप्त हुआ ॥ १६७ ॥ यों कहकर प्रभु ने प्रिय-

पुरी प्रथमेइ मात्र श्रीमुख देखिया । आनन्दे आछेन आत्मविस्मृत हइया ॥१६९॥
कथोक्षणे अन्योन्ये करेन प्रणाम । परमानन्द पुरी-चैतन्येर प्रियधाम ॥१७०॥
परम-सन्तोष प्रभु ताँहारे पाइया । राखिलेन निजसङ्गे पार्षद करिया ॥१७१॥
निज प्रभु चिनिञा परमानन्द पुरी । रहिला आनन्दे पादपद्म सेवा करि ॥१७२॥
माधव पुरीर प्रिय शिष्य महाशय । श्रीपरमानन्दपुरी-तनु प्रेममय ॥१७३॥
दामोदर स्वरूप मिलिला कथोदिने । रात्रि दिन याँहार विहार प्रभु-सने ॥१७४॥
दामोदर स्वरूप सङ्गीत रसमय । यांर ध्वनि शुनिले प्रभुर नृत्य हय ॥१७५॥
दामोदर स्वरूप परमानन्द पुरी । शेषे खण्डे एइ दुइ सङ्गे अधिकारी ॥१७६॥
एइमत अल्पे अल्पे यत भक्तगण । नीलाचले आसि सभे हइला मिलन ॥१७७॥
ये ये पार्षदेर जन्म उत्कले हइला । ताहाराओ अल्पे अल्पे आसिया मिलिला ॥१७८॥
मिलिला प्रद्युम्नमिश्र-प्रेमेर शरीर । परमानन्द रामानन्द-दुइ महाधीर ॥१७९॥
दामोदर पण्डित श्रीशङ्कर पण्डित । कथोदिने आसिया हइला उपनीत ॥१८०॥
श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारी-नृसिंहेर दास । यांहार शरीरे श्रीनृसिंह-परकाश ॥१८१॥
'कीर्तन विहारी नरसिंह न्यासीरूपे' । जानिञा रहिला आसि प्रभुर समीपे ॥१८२॥
भगवान् आचार्य आइला महाशय । कर्णेतेओ यांरे नाहि परशे विषय ॥१७३॥
एइमत यतेक सेवक यथाछिला । सभेइ प्रभुर पाशे आसिया मिलिला ॥१८४॥
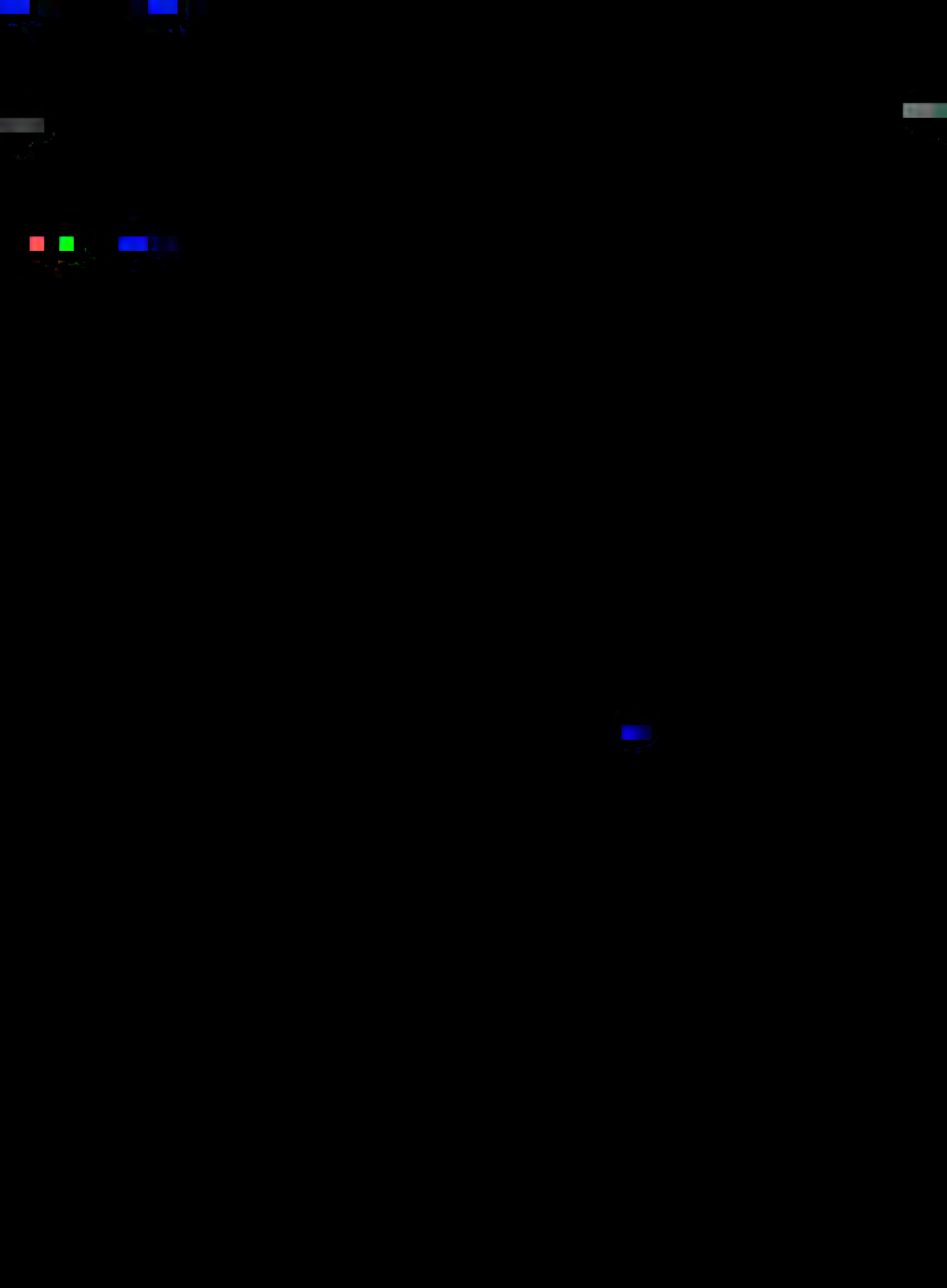
---

भक्त को गोदी में लिया और उनके अङ्ग को अपने नेत्र कमलों के जल से सींच दिया ॥ १६८ ॥ श्रीमुख पर प्रथम दृष्टि पड़ते ही श्रीपुरी महाशय आनन्द में अपने ही को भूल गये ॥ १६९ ॥ कुछ देर तक परस्पर प्रणाम करते रहे श्रीपरमानन्दपुरी श्रीचैतन्य प्रभु के प्रिय पात्र हैं ॥ १७० ॥ उनको पायकर प्रभु बड़े सन्तुष्ट हुए और अपने पार्षद रूप में अपने साथ में रख लिया ॥ १७१ ॥ श्रीपरमानन्दपुरी जी श्रीमहाप्रभु को अपना स्वामी पहिचानकर आनन्द से चरण-कमलों की सेवा करने के लिये वहीं ठहर गये ॥ १७२ ॥ श्री-माधवेन्द्रपुरी के प्रिय शिष्य श्रीपरमानन्दपुरी महाराय का शरीर प्रेममय था ॥ १७३ ॥ कुछ दिन पश्चात् श्रीस्वरूप दामोदर आकर मिले, प्रभु के साथ जिनका विहार दिन रात्रि होता था ॥१७४॥ श्रीदामोदरस्वरूप संगीत रसमय थे, जिनकी ध्वनि सुनते ही प्रभु नृत्य करने लगते थे ॥ १७५ ॥ श्रीदामोदरस्वरूप व परमा-नन्दपुरी दोनों ही एक साथ शेषखण्ड की लीलाओं के प्रधानपात्र हैं ॥ १७६ ॥ इस प्रकार धीरे-धीरे सभी भक्तवृन्द का नीलाचल में आकर श्रीप्रभु से मिलन हुआ ॥ १७७ ॥ जिन पार्षदों का जन्म उत्कल देश में हुआ था वे सब भी धीरे-धीरे आकर मिलने लगे ॥१७८॥ प्रेममय शरीरधारी प्रद्युम्न मिश्र तथा दो बड़े धीर परमानन्द व रामानन्द भी आयकर मिले ॥ १७९ ॥ श्रीदामोदर पण्डित व श्रीशङ्कर पण्डित भी कुछ दिन पश्चात् आयकर उपस्थित हुए ॥१८०॥ श्री प्रद्युम्न ब्रह्मचारी नृसिंहदेव के सेवक थे-उनके शरीर में नृसिंह देव का प्रकाश था ॥१८१॥ कीर्तनबिहारी श्रीप्रभु को सन्यासी रूप में नृसिंहदेव समझ कर ही उनके समीप रहने लगे ॥ १८२ ॥ श्री भगवान् आचार्य महाशय भी जिनके कानों को भी विषय ने स्पर्श नहीं किया था ॥ १८३ ॥ इस प्रकार जहाँ-जहाँ भी प्रभु के सेवक थे वे सभी प्रभु के पास आकर मिलने लगे १८४

मालाय पूरित वक्ष-अति मनोहर । चतुर्दिगे वेढ़िया आछये अनुचर ॥२०२॥
समुद्रेर तरङ्ग निशाय शोभे अति । हासि दृष्टि करे प्रभु तरङ्गेर प्रति ॥२०३॥
गङ्गा यमुनार यत भाग्येर उदय । एवे ताहा पाइलेन सिन्धु महाशय ॥२०४॥
हेन मते सिन्धुतीरे वैकुण्ठ-ईश्वर । वसति करेन लइ सब अनुचर ॥२०५॥
सर्वरात्रि सिन्धुतीरे परम-विरले । कीर्तन करेन प्रभु महा कुतूहले ॥२०६॥
ताण्डव पंडित प्रभु निज-प्रेम-रसे । ताण्डव करेन देखि सभे सुखे भासे ॥२०७॥
रोमहर्ष, अश्रु, कम्प, हुङ्कार, गर्जन । स्वेद बहुविध वर्ण हय क्षणे क्षण ॥२०८॥
यत भक्ति विकार-सकल एकेवारे । परिपूर्ण हय आसि प्रभुर शरीरे ॥२०९
यत भक्ति विकार-सभेइ मूर्तिमन्त । सभेइ ईश्वर कला-महा ज्ञानवन्त ॥२१०॥
आपने ईश्वर नाचे वैष्णव-आवेशे । जानि सभे निरवधि थाके प्रभु-पाशे ॥२११॥
अतएव तिलार्द्धो विच्छेद प्रेम-सने । नाहिक श्रीगौरसुन्दर कोनोक्षणे ॥२१२॥
यत शक्ति ईषत लीलाय करे प्रभु । सेह आर अन्ये सम्भावना नहे कभू ॥२१३॥
इहाते से तान शक्ति सम्भावना हय । सर्ववेदे ईश्वरेर एइ तत्त्व कय ॥२१४॥
ये प्रेम प्रकाशे' प्रभु चैतन्य गोसाञि । ताँहा वइ अनन्त ब्रह्माण्डे आर नाञि ॥२१५॥
एतेके श्रीगौरचन्द्र प्रभुर उपमा । ताँहा वइ आर काहाँ दिते नाहि सीमा ॥२१६॥

---

श्रीमस्तक तथा सर्वाङ्ग में चन्दन शोभित था व श्रीमुख से निरन्तर "हरे कृष्ण २" उच्चारण कर रहे थे ॥ २०१ ॥ अति मनोहर वक्षस्थल मालाओं से परिपूर्ण हो रहा था तथा भक्तवृन्द चारों ओर घेरकर बैठे थे ॥ २०२ ॥ रात्रि में समुद्र की तरंगें अत्यन्त शोभा दे रही थीं प्रभु ने हँसते हुए तरङ्गों की ओर देखा॥२०३॥ ( भगवत सांनिध्य से ) गंगा-यमुना का जो सौभाग्य उदय हुआ था इस समय वही भाग्योदय समुद्र महाशय को प्राप्त हुआ ॥ २०४ ॥ इस भाँति बैकुण्ठनाथ श्रीगौरचन्द्र समुद्र तट पर सब भक्तों को लेकर निवास करते थे ॥ २०५ ॥ समस्त रात्रि समुद्र के तट पर बड़े एकान्त में महाप्रभु अति आनन्द में कीर्तन करते थे ॥ २०६ ॥ ताण्डवाचार्य्य प्रभु अपने प्रेमरस में ताण्डव ( उद्दण्ड नृत्य ) कर रहे और तथा सब भक्तवृन्द देखकर सुख में डूब जाते थे ॥ २०७ ॥ क्षण क्षण में रोमहर्ष ( रोंगटा खड़ा होना ) अश्रु-कम्प-हुङ्कार-गर्जन-स्वेद आदि अनेक प्रकार का वर्ण बदलता था ॥ २०८ ॥ भक्ति के समस्त विकार एक ही साथ श्रीप्रभु के शरीर में पूर्णरूप से विकसित होते थे ॥ २०९ ॥ भक्ति के समस्त विकार स्पष्ट ही मूर्त्तरूप धारण कर लिये थे क्योंकि सभी तो भगवत् कला तथा ज्ञानस्वरूप हैं ॥ २१० ॥ स्वयं प्रभु वैष्णव वेश में नाचते थे, यही जानकर सभी प्रभु के पास ही निरन्तर वास करते थे ॥ २११ ॥ इस कारण प्रभु श्रीगौरसुन्दर को आधे तिलमात्र समय के लिये भी प्रेम प्रसंग से बिछोह नहीं था ॥ २१२ ॥ जो शक्ति श्री प्रभु लीलामात्र में प्रकाश करते थे किसी अन्य पुरुष में उसकी कभी सम्भावना भी नहीं होती ॥ २१३ ॥ इसी से उनकी समस्त शक्ति का अन्दाज किया जा सकता है—सम्पूर्ण वेद ईश्वर के इसी तत्त्व को कहते हैं ॥२१४॥ प्रेमावतार श्रीचैतन्यचन्द्र गुसाईं जैसा प्रेम प्रकाशित करते थे वैसा तो अनन्त ब्रह्माण्डों में उनके अतिरिक्त दूसरा नहीं कर सकता ॥ २१५ ॥ इसी कारण श्रीप्रभु गौरचन्द्र की उपमा उनके अतिरिक्त अन्य किसी से

सबे यारे शुभ दृष्टि करेन आपने । से-इसे ताहान शक्ति धरे तत्त्वो जाने ॥२१७॥
अतएव सर्वभावे ईश्वर-शरण । लइले से भक्तिहय, खसइये बन्धन ॥२१८॥
ये प्रभुरे अज-भव-आदि ईशगणे । पूर्ण हइया ओ निरवधि भावे मने ॥२१९॥
हेन प्रभु आपने सकल-भक्त-सङ्गे । नृत्य करे आपनार प्रेमयोग-रङ्गे ॥२२०॥
से सब भक्तेर पाय मोर नमस्कार । गौरचन्द्र सङ्गे याँर कीर्तन-विहार ॥२२१॥
हेन मते सिन्धुतीरे श्रीगौरसुन्दर । सर्वरात्रि नृत्य करे अति मनोहर ॥२२२॥
निरवधि गदाधर थाकेन संहति । प्रभु-गदाधरेर विच्छेद नाहि कति ॥२२३॥
कि भोजने कि शयने किवा पर्यटने । गदाधर प्रभुरे सेवेन अनुक्षणे ॥ २२४ ॥
गदाधर पड़ेन सम्मुखे भागवत । शुनि प्रेमरसे प्रभु हय महामत्त ॥ २२५ ॥
गदाधर-वाक्ये मात्र प्रभु सुखी हय । भ्रमे गदाधर सङ्गे वैष्णव आलय ॥ २२६ ॥
एक दिन प्रभु पुरी गोसाञिर मठे । वसिलेन गिया तान परम निकटे ॥ २२७ ॥
परमानन्दपुरीरे प्रभुर बड़ प्रीत । पूर्वे येन श्रीकृष्ण-अर्जुन दुइ मीत ॥ २२८ ॥
कृष्ण कथा वाक्ये-वाक्ये रहस्य-प्रसङ्गे । निरवधि पुरी-सङ्गे थाके प्रभु रङ्गे ॥ २२९ ॥
पुरी गोसाञिर कूपे भाल नैल जल । अन्तर्यामी प्रभु ताहा जानिल सकल ॥ २३० ॥
पुरी गोसाञिरे प्रभु पूछिला आपनि । 'कूपे जल केमत हइल ताहा शुनि' ॥ २३१ ॥
पुरी बोले 'प्रभु बड़ अभागिया कूप' । जल हैल येन घोल कर्दमेर रूप ॥ २३२ ॥

---

देने में मर्यादा नहीं रहती ॥ २१६ ॥ जिस पर वे शुभ दृष्टि करें वही उनकी शक्ति के द्वारा भागवत्-तत्त्व को जान सकता है ॥ २१७ ॥ अतएव सर्व भाव से ईश्वर शरण लेने पर भक्ति उदय होकर बन्धन नष्ट कर देती है ॥ २१८ ॥ जिन प्रभु की ब्रह्मा, शिव आदि ईशगण अपने में पूर्ण होकर भी निरन्तर अपने मनमें भावना करते रहते हैं ॥ २१९ ॥ वे ही प्रभु अपने सब भक्तों के साथ अपने ही प्रेमरङ्ग में स्वयं नृत्य करते थे ॥ २२० ॥ श्रीप्रभु गौरचन्द्र के साथ जिनका कीर्तन विहार हुआ उन सब भक्तों के चरणों में मेरी नमस्कार है ॥ २२१ ॥ इस प्रकार सिन्धु के तट पर श्रीगौरसुन्दर सब रात्रि अति मनोहर नृत्य करते थे ॥२२२॥ श्रीगदाधरजी साथ सदा ही रहते थे, गौर गदाधर का विच्छेद कभी नहीं होता था ॥ २२३ ॥ क्या भोजन क्या शयन अथवा पर्यटन में श्रीगदाधरजी हर समय प्रभु की सेवा में रहते थे ॥ २२४ ॥ श्रीगदाधरजी सामने ही बैठकर भागवत पाठ करते और श्रीगौरचन्द्र प्रेमरस में बड़े मत्त होकर सुनते थे ॥ २२५ ॥ श्रीप्रभु श्रीगदाधरजी के वाक्यों से ही सुख पाते थे तथा उन्हीं के साथ वैष्णव स्थानों में भ्रमण भी करते थे ॥२२६॥ एक दिन श्रीगौरचन्द्र पुरी गुसाईं के मठ में जाकर उनके बहुत समीप में आकर बैठ गये ॥ २२७ ॥ श्रीपरमानन्दपुरी पर श्रीप्रभु का बड़ा प्रेम था जैसी पूर्व में श्रीकृष्ण व अर्जुन में मित्रता थी ॥ २२८ ॥ श्रीप्रभु कृष्ण कथा रहस्य प्रसंग में उत्तर प्रत्युत्तर के आनन्द के निमित्त ही पुरी के संग निरन्तर रहते थे ॥ २२९ ॥ अन्तर्यामी प्रभु यह सब जान गये कि पुरी गोस्वामी के कूप का जल अच्छा नहीं रहा ॥२३०॥ पुरी गुसाईं से श्रीप्रभु ने स्वयं पूछा कि कुए का जल कैसा हो गया यह तो बताओ ? ॥ २३१ ॥ श्रीपुरी ने कहा "प्रभो कुँआ बड़ा अभागा है-देखिये कीचड़ घुला जैसा जल हो रहा है" ॥ २३२ ॥ सुनकर प्रभु हाय-हाय करने

शुनि प्रभु 'हाय-हाय' करिते लागिला। प्रभु बोले जगन्नाथ कृपण हइला ॥ २३३ ॥
पुरीर कूपेर जल परशिबे ये। सर्व पाप थाकितेओ तरिबेक से ॥ २३४ ॥
अतएव जगन्नाथ देवेर मायाय। नष्ट जल हैल-येन केहो नाहि खाय ॥ २३५ ॥
एत बलि महाप्रभु आपने उठिला। तुलिया श्रीभुज दुइ कहिते लागिला ॥ २३६ ॥
महाप्रभु जगन्नाथ मोरे एइ वर। गङ्गा प्रवेशुक एइ कूपेर भितर ॥ २३७ ॥
भोगवती गङ्गा येन बहे पातालेते। ताँरे आज्ञा कर एइ कूपे प्रवेशिते ॥ २३८ ॥
सर्व भक्तगण श्रीमुखेर वाक्य शुनि। उच्च करि बलिते लागिला हरिध्वनि ॥ २३९ ॥
तबे कथोक्षणे प्रभु वासाय चलिला। भक्तगण सभे गिया शयन करिला ॥ २४० ॥
सेइ क्षणे गङ्गादेवी आज्ञा करि शिरे। पूर्ण हइ प्रवेशिला कूपेर भितरे ॥ २४१ ॥
प्रभाते उठिया सभे देखेन अद्भुत। परम निर्मल-जले परिपूर्ण कूप ॥ २४२ ॥
आश्चर्य देखिया 'हरि' बोले भक्तगण। पुरी गोसाञि हइला आनन्दे अचेतन ॥२४३॥
गङ्गार विजय सभे बूझिया कूपते। कूप प्रदक्षिण सभे लागिला करिते ॥ २४४ ॥
महाप्रभु शुनिञा आइला सेइ क्षणे। जल देखि परम आनन्द युक्त मने ॥ २४५ ॥
प्रभु बोले शुनह सकल भक्तगण। ए कूपेर जले कैले स्नान वा भक्षण ॥ २४६ ॥
सत्य सत्य हैब तार गङ्गा स्नान फल। कृष्णे भक्ति हैब तार परम निर्मल ॥२४७॥
सर्व भक्तगण श्रीमुखेर वाक्य शुनि। उच्च करि बलिते लागिला हरिध्वनि ॥२४८॥
पुरी गोसाञिर प्रीते सेई दिव्य जले। स्नान-पान करे प्रभु महाकुतूहले ॥ २४९ ॥

---

लगे और बोले कि 'जगन्नाथ कृपण हो गये' ॥२३३॥ "श्रीपुरी के कूँए का जल जो छुएगा वह सब पापयुक्त होकर भी पापों से रहित हो जायगा" ॥२३४॥ इसी कारण जगन्नाथदेव की माया से जल नष्ट होगया जिसमें कोई पी न सके ॥२३५॥ इतना कहकर श्रीमहाप्रभु स्वयं उठे और दोनों श्रीभुजा ऊपर उठाकर कहने लगे ॥ २३६ ॥ "हे महाप्रभो ! हे जगन्नाथ !" मुझे यही वर दो कि इस कूँए में गङ्गा का प्रवेश हो जाय ॥२३७॥ "भोगवती गंगा जो पाताल में बहती हैं उन्हें इस कूप में प्रवेश करने की आज्ञा दो" ॥२३८॥ सब भक्तवृन्द श्रीमुख के वाक्य सुनकर ऊँचे स्वर से हरिध्वनि करने लगे ॥२३९॥ तब कुछ क्षण पीछे श्रीगौर प्रभु अपने निवास स्थान को चले गये और सब भक्तगण शयन करने चले गये ॥ २४० ॥ उसी क्षण में गंगादेवी आज्ञा के शिर पर धारण करके कूँए के भीतर पूर्ण रूप से प्रविष्ट हो गईं ॥ २४१ ॥ प्रभात में सबने उठकर अचम्भे में देखा कि अति निर्मल जल से कुआ परिपूर्ण हो रहा है ॥२४२॥ इस आश्चर्य घटना को देखकर भक्तगण "हरि-हरि" ध्वनि करने लगे-तथा श्रीपुरी गुसाईं तो आनन्द से अचेतन हो गये ॥ २४३ ॥ सब लोग कूप में गंगा का आगमन समझकर उसकी प्रदक्षिणा करने लगे ॥ २४४ ॥ सुनते ही महाप्रभुजी उसी क्षण आये और जल को देखकर मनमें बड़े आनन्दित हुए ॥ २४५ ॥ प्रभु ने कहा "हे भक्तवृन्द सुनो ! इस कूप के जल में स्नान व पान करने पर गंगा स्नान का फल होगा तथा उसकी कृष्ण में परम निर्मल भक्ति होगी यह मैं सत्य ही कहता हूँ ॥ २४६-२४७ ॥ सब भक्तगण श्रीमुख के वचन सुनकर "हरि-हरि" ध्वनि ऊँचे स्वर से करने लगे ॥२४८॥ पुरी गुसाईं के प्रीत्यर्थ श्रीप्रभु उसी दिव्य जल में बड़े आनन्द से स्नान व

प्रभु बोले आमि ये आछिये पृथिवीते। जानिह केवल पुरी गोसाञिर प्रीते ॥ २५० ॥
पुरी गोसाञिर आमि-नाहिक अन्यथा। पुरी बेचिलेइ आमि बिकाइ सर्वथा ॥२५१॥
सकृत ये देखे पुरी गोसाञिरे मात्र। सेहो हइबेक श्रीकृष्णेर प्रेम पात्र ॥ २५२ ॥
पुरीर महिमा प्रभु कहिया सभारे। कूप धन्य करि प्रभु चलिला बासारे ॥ २५३ ॥
ईश्वरे से जाने भक्त महिमा बाढ़ाइते। हेन प्रभु ना भजे कृतघ्न केन-मते ॥ २५४ ॥
भक्त रक्षा लागि प्रभु करे अवतार। निरवधि भक्त सङ्गे करेन विहार ॥ २५५ ॥
अकर्तव्यो करे प्रभु सेवक राखिते। तार साक्षी बालि-बध सुग्रीव निमित्ते ॥ २५६ ॥
दास्य प्रभु सेवकेर करे निजानन्दे। अजय चैतन्यसिंह जिने भक्तवृन्दे ॥ २५७ ॥
भक्तगण सङ्गे प्रभु समुद्रेर तीरे। सर्व वैकुण्ठादिनाथ कीर्तने विहरे ॥ २५८ ॥
बासा करिलेन प्रभु समुद्रेर तीरे। विहरेन प्रभु भक्ति-आनन्द-सागरे ॥ २५९ ॥
एइ अवतारे समुद्र कृतार्थ करिते। अतएव लक्ष्मी जन्मि लेन ताहा हैते ॥ २६० ॥
नीलाचल वासीर ये किछु पाप हय। अतएव सिन्धु स्नाने सब जाय क्षय ॥ २६१ ॥
अतएव गङ्गादेवी वेगवती हैया। सेइ भाग्ये सिन्धु-माझे मिलिला आसिया ॥ २६२ ॥
हेन मते सिन्धु तीरे श्रीकृष्णचैतन्य। वैसेन सकल मते सिन्धु करि धन्य ॥ २६३ ॥
जे समये ईश्वर आछिला नीलाचले। तखने प्रताप रुद्र नाहिक उत्कले ॥ २६४ ॥
युद्धरसे गियाछेन विजया नगरे। अतएव प्रभु ना देखिलेन सेइ बारे ॥ २६५ ॥

पान करने लगे ॥ २४९ ॥ श्रीप्रभु ने कहा "मैं जो पृथ्वी पर केवल पुरी गुसाईं की प्रीति के कारण ही हूँ–यही समझो ॥ २५० ॥ मैं कदापि पुरी गुसाईं के बाहर नहीं हूँ यदि वे मुझे बेच भी दें तो मैं अवश्य बिक जाऊँ ॥ २५१ ॥ यदि कोई श्रीपुरी गोस्वामी को एक बार भरके देखें वह श्रीकृष्ण प्रेम का अधिकारी हो जावेगा ॥ २५२ ॥ सबके सन्मुख पुरी गोस्वामी की महिमा बखान कर श्रीप्रभु पाइ उस कूप को धन्य करके अपने निवास स्थान को चले गये ॥ २५३ ॥ भक्ति की महिमा बढ़ाना तो ईश्वर ही जानता है। हाय ! ऐसे प्रभु को भी कृतघ्न जीव क्यों नहीं भजते थे ॥ २५४ ॥ भक्तों की रक्षा के लिये प्रभु-अवतार धारण करते हैं और भक्तों के साथ ही निरन्तर विहार करते हैं ॥ २५५ ॥ दास की रक्षा के लिये प्रभु अकर्तव्य कर्म भी करते हैं, सुग्रीव के निमित्त बालि का बध इस बात के प्रमाण में साक्षी है ॥ २५६ ॥ प्रभु अपने आनन्द में सेवकों की दास्यता करते हैं–अजय चैतन्य सिंह को भक्तवृन्द जीत लेते हैं ॥ २५७ ॥ सब वैकुण्ठादिकों के स्वामी श्रीगौरचन्द्र समुद्र के तट पर सब भक्तों के साथ कीर्तन में विहार करते थे ॥ २५८ ॥ श्रीप्रभु गौरचन्द्र के निवास समुद्र तट पर रहा हुआ था तथा वे भक्ति के आनन्द सागर में विहार करते थे ॥२५९॥ इस अवतार में प्रभु ने समुद्र को कृतार्थ किया इसी कारण लक्ष्मी ने समुद्र से जन्म लिया ॥ २६० ॥ अतएव नीलाचलवासियों का जो कुछ भी पाप वह समुद्र में स्नान करने से सब क्षय हो जाता था ॥ २६१ ॥ इसी कारण से गंगाजी शीघ्रगामी बनकर उसी पाप-प्रक्षालन के भाग्य से समुद्र में आयकर मिलती हैं ॥ २६२ ॥ इस भाँति श्रीकृष्णचैतन्य ने सब प्रकार से समुद्र को धन्य करने के लिये सिन्धु तट पर आकर वास किया ॥ २६३ ॥ जिस समय श्रीगौरचन्द्र प्रभु नीलाचल आये उस समय प्रताप रुद्र ( राजा ) उत्कल देश में नहीं

ठाकुरो थाकिया कथो दिन नीलाचले । पुन गौड़ देशे आइलेन कुतूहले ॥ २६६ ॥
गङ्गा प्रति महा अनुराग बाढाइया । अति शीघ्र गौड़देशे आइला चलिया ॥ २६७ ॥
सार्वभौम भ्राता विद्यावाचस्पति नाम । शान्त दान्त धर्मशील महा भाग्यवान् ॥२६८॥
सर्व-परिषद सङ्गे श्रीगौरसुन्दर । आचम्बिते आसि उत्तरिला ताँर घर ॥ २६९ ॥
वैकुण्ठनायक गृहे अतिथि पाइया । पड़िलेन वाचस्पति दण्डवत् हइया ॥ २७० ॥
हेन से आनन्द हैल विप्रेर शरीरे । कि विधि करिब ताहा किछुइ ना स्फुरे ॥ २७१ ॥
प्रभुओ ताँहारे करिलेन आलिङ्गन । प्रभु बोले शुन किछु आमार वचन ॥ २७२ ॥
चित्त मोर हइयाछे मथुरा देखिते । कथो दिन गङ्गा स्नान करिमू एथाते ॥ २७३ ॥
निभृते आमारे एक खानि दिवा स्थान । येन कथोदिन मुञि करों गङ्गा स्नान ॥२७४॥
तबे शेषे मोरे मथुराय चालाइबा । मोरे चाह तबे इहा अवश्य करिबा ॥ २७५ ॥
शुनिञा प्रभुर वाक्य विद्यावाचस्पति । लागिलेन कहिते हइया नम्र मति ॥ २७६ ॥
विप्र बोले भाग्य सर्व वंशेर आमार । यथाय चरण धूलि आइल तोमार ॥ २७७ ॥
मोर घर द्वार यत-सकल तोमार । सुखे थाक तुमि केहो ना जानिब आर ॥ २७८ ॥
शुनि ताँर वाक्य प्रभु सन्तोष हइला । तान भाग्ये कथोदिन तथाइ रहिला ॥ २७९ ॥
सूर्येर उदय कि कखनो गोप्य हय । सर्वलोकशुनिलेक चैतन्य-विजय ॥ २८० ॥
नवद्वीप-आदि सर्वदिगे हैल ध्वनि । 'वाचष्पति घरे आइला न्यासी चूड़ामणि' ॥२८१॥
शुनिञा लोकेर हैल चित्ते उल्लास । सशरीरे येन हैल वैकुण्ठेते वास ॥२८२॥

---

थे ॥ २६४ ॥ युद्ध के निमित्त विजय नगर गये थे इसी कारण उस समय प्रभु दर्शन न कर सके ॥ २६५ ॥ ठाकुर भी कुछ दिन नीलाचल में रहकर फिर कुतूहल पूर्वक गौड़ देश में आ गये । २६६ ॥ गंगा के प्रति बड़ा अनुराग बढ़ाकर अति शीघ्र चलकर गौड़ देश में आये ॥ २६७ ॥ विद्या वाचस्पति नामक श्रीसार्वभौम के एक भाई महाभाग्यवान् शान्त-दान्त व धर्मशील थे ॥२६८॥ श्रीगौरसुन्दर सब पार्षदों के साथ अकस्मात् उनके घर पर आकर उतरे ॥ २६९ ॥ श्रीविद्यावाचस्पतिजी वैकुण्ठनायक को अतिथि रूप से अपने घर पर पाकर दण्डवत् होकर गिरे ॥ २७० ॥ उन ब्राह्मण के शरीर में इतना आनन्द हुआ कि क्या सेवा करें वह कुछ भी स्फुरण नहीं हुआ ? ॥ २७१ ॥ प्रभु ने भी उनको आलिङ्गन किया और बोले कि मेरी कुछ बात सुनो ॥ २७२ ॥ मथुरा देखने को मेरा मन है, परन्तु कुछ दिन यहाँ रहकर गंगा स्नान करूँगा ॥ २७३ ॥ मुझे कोई एकान्त स्थान दो जहाँ कुछ दिन रहकर मैं गंगा स्नान करूँ ? ॥ २७४ ॥ तब अन्त में मुझे मथुरा भिजवा देना—जो मुझे प्रेम करते हो तो इतना प्रबन्ध अवश्य कर दो ॥ २७५ ॥ श्रीप्रभु के वाक्य सुनकर श्रीविद्यावाचस्पति जी नम्रतापूर्वक यों बोले—॥२७६॥ ब्राह्मण ने कहा मेरे सब वंश के अहोभाग्य जो आपकी चरण धूलि का यहाँ आगमन हुआ ॥ २७७ ॥ जो कुछ मेरा घर-द्वार है सब आपही का है, आप सुखपूर्वक रहें—किसी अन्य व्यक्ति को आपका पता न लगेगा ॥ २७८ ॥ उनके वचन सुनकर प्रभु को सन्तोष हुआ तथा उनके भाग्य से कुछ दिन वहीं रहे ॥ २७९ ॥ क्या कभी सूर्य का उदय भी गुप्त रूप से हो सकता था ? श्रीचैतन्यदेव का शुभागमन सब लोगों को विदित हो गया ॥ २८० ॥ नवद्वीप आदि सब दिशाओं में

आनन्दे सकल लोक बोले 'हरि-हरि' । स्त्री पुत्र देह गेह सकल पासरि ॥ २८३ ॥
अन्योन्ये सर्वलोके करे कोलाहल । 'चल देखि गिया तान चरण युगल' ॥२८४॥
एत बलि सर्वलोक परम-उल्लासे । चलिलेन केहो कारो रहि ना सम्भाषे ॥२८५॥
अनन्त अर्बुद लोक बलि 'हरि-हरि' । चलिलेन देखिवारे गौराङ्ग श्रीहरि ॥२८६॥
पथ नाहि पाय केहो लोकेर गहले । वन डाल भाङ्गि लोक दश दिगे चले ॥२८७॥
शुन-शुन आरे भाइ चैतन्य-आख्यान । ये रूपे करिला सर्वलोक परित्राण ॥२८८॥
वन डाल कन्टक भाङ्गिया लोक जाय । तथापि आनन्दे केहो दुःख नाहि पाय ॥२८९॥
लोकेर गहले यत अरण्य आछिल । क्षणेके सकल दिव्य पथमय हैल ॥२९०॥
शेषे सर्व लोक सर्व दिगे पथे जाय । हेन रङ्ग करे प्रभु श्रीगौराङ्ग राय ॥२९१॥
केहो बोले मुञि तान धरिया चरण । मागिमु येमते मोर खण्डये बन्धन ॥ २९२ ॥
केहो बोले मुञि ताने देखिले नयने । तवेइ सकल पाङ मागिमु वा केने ॥ २९३ ॥
केहो बोले मुञि तान ना जानों महिमा । यत निन्दा करियाछों, तार नाहि सीमा ॥२९४॥
एबे तान पादपद्म धरिया हृदये । मागिमु-किरूपे मोर से पाप घूचये ॥ २९५ ॥
केहो बोले "पुत्र मोर परम जुयार । मोर एइ वर येन ना खेलाइ आर ॥ २९६ ॥
केहो बोले मोर एइ वर काय मने । ताँर पादपद्म येन ना छाड़ों कखने ॥ २९७ ॥
केहो बोले धन्य-धन्य मोर एइ वर । कभु येन ना पासरों श्रीगौरसुन्दर ॥ २९८ ॥

---

ध्वनि हो गई कि न्यासी चूड़ामणि ( गौर ) वाचस्पति के घर में आये हैं ॥ २८१ ॥ सुनकर लोगों के चित्त में बड़ी प्रसन्नता हुई—मानो शरीर से ही बैकुण्ठ में पहुँच गये हों ॥ २८२ ॥ स्त्री-पुत्र देह-गेह आदि सबको भूलकर आनन्द से सब लोग हरि-हरि बोलने लगे—॥ २८३ ॥ परस्पर में सब लोग कोलाहल करने लगे कि चलकर उनके चरण-कमलों के दर्शन करें ॥ २८४ ॥ इस प्रकार कहकर सब लोग उल्लास से चल दिये—कोई किसी से बोलता भी नहीं है ॥ २८५ ॥ असंख्यों मनुष्य हरि-हरि बोलते हुए श्रीगौराङ्ग हरि के दर्शन के लिये चल पड़े ॥ २८६ ॥ लोगों की भीड़ के कारण किसी को मार्ग नहीं मिलता था वन की डालियाँ तोड़-तोड़कर दशों ओर को चलने लगे ॥ २८७ ॥ हे भाई सुनो ! श्रीचैतन्य कथा सुनो जिस तरह से सब लोगों का उद्धार हुआ था ॥ २८८ ॥ मनुष्य वन के डाली व काँटें तोड़ते हुए जा रहे थे तो भी कोई दुःख नहीं मानते थे, सभी आनन्दित थे ॥ २८९ ॥ मनुष्यों की भीड़ के कारण तुरन्त ही वन में सुन्दर मार्ग बन गया ॥ २९० ॥ अन्त में लोगों की भीड़ मार्ग में सब ओर से चलने लगी है अहो श्रीप्रभु गौराङ्गराय ने ऐसा खेल किया ॥२९१॥ कोई कहता कि मैं उनके चरण पकड़कर यह मागूँगा जिसमें मेरा बन्धन नष्ट हो जाय ॥२९२॥ कोई कहता कि उनको नेत्र भर से देखलूँ तो सब मिल जायगा—मुख से क्या माँगू ? ॥ २९३ ॥ कोई कहता कि मैं तो उनकी महिमा नहीं जानता था न जाने कितनी निन्दा मैंने उनकी की थी, जिसकी कुछ सीमा नहीं ॥२९४॥ "अब उनके चरण-कमलों को हृदय में धारण करके मागूँगा कि वह पाप किस प्रकार दूर होगा ?" ॥ २९५ ॥ कोई कहता कि मेरा पुत्र बड़ा जुवारी है मुझे यह वर दो कि वह और न खेले ॥ २९६ ॥ कोई कहता कि तन-मन से मैं यही वर माँगता हूँ कि उनके चरण-कमल किसी काल में विस्मरण न हों ॥ २९७ ॥

एइ मत बलिया आनन्दे सर्व जन । चलिया जायेन सभे परानन्द मन ॥ २९९ ॥
क्षणेके आइल सब लोक खेया घाटे । खेयारि करिते पार पड़िल सङ्कटे ॥ ३०० ॥
सहस्र-सहस्र लोक एको नाये चढ़े । बड़-बड़ नौका सेइ क्षणे माझि पड़े ॥ ३०१ ॥
नाना दिगे लोक खेयारि रे वस्त्र दिया । पार हइ जाय सभे आनन्दित हैया ॥ ३०२ ॥
नौका ये ना पाय, तारा नाना बुद्धि करे । घट बूके दिया केहो गङ्गाय साँतरे ॥ ३०३ ॥
केहो वा कलार गाछ बान्धि करे भेला । केहो केहो साँतरिया जाय करि खेला ॥ ३०४ ॥
चतुर्दिगे सर्वलोक करे हरिध्वनि । ब्रह्माण्ड भेदये येन हेन मत शुनि ॥ ३०५ ॥
सत्वरे आसिला वाचस्पति महाशय । करिलेन अनेक नौकार समुच्चय ॥ ३०६ ॥
नौकार अपेक्षा आर केहो नाहि करे । नाना मते पार हय ये जेमते पारे ॥ ३०७ ॥
हेन आकर्षिल मन श्रीचैतन्यदेवे । एहो कि ईश्वर-बिने अन्येते सम्भवे ॥ ३०८ ॥
हेन मते गङ्गा पार हइ सर्वजन । सभेइ धरेन वाचस्पतिर चरण ॥ ३०९ ॥
परम सुकृति तुमि महाभाग्यवान् । जार घरे आइला चैतन्य भगवान् ॥ ३१० ॥
एतेके तोमार भाग्य के बलिते पारे । एखने निस्तार कर आमा सभा कारे ॥ ३११ ॥
भव कूपे पतित पापिष्ठ आमि-सब । एक ग्रामे-ना जानिल तान अनुभव ॥ ३१२ ॥
एखने देखाओ तान चरण युगल । तबे आमि पापी सब पाइये सकल ॥ ३१३ ॥
देखिया लोकेर आर्ति विद्यावाचस्पति । सन्तोषे रोदन करे विप्र महामति ॥ ३१४ ॥

---

कोई कहता कि मुझे तो धन्याति धन्य यह वर मिले जैसे मैं श्रीगौरसुन्दर को कभी न भूलूँ ॥ २९८ ॥ इस प्रकार आनन्द से कहते हुए सब लोग आनन्दातिरेक मन से चले जा रहे थे ॥ २९९ ॥ तत्काल ही सब लोग गङ्गा पर जाने के लिये खेवा घाट पर पहुँच गये तब मल्लाह पार करने के लिये संकट में पड़ गये ॥ ३०० ॥ हजारों २ लोक एक ही नौका में चढ़ जाते जिससे बड़ी २ नाव भी टूट गई ॥३०१॥ अनेक ओर से मनुष्य मल्लाहों को वस्त्र देकर सब बड़े प्रसन्न मन से पार हो-होकर जा रहे थे ॥ ३०२ ॥ जिसे नौका नहीं मिली वे अनेक प्रकार की युक्ति करते थे–कोई घड़ा छाती के नीचे लगाकर पार होते थे ॥ ३०३ ॥ कोई केले के वृक्षों को बाँधकर नौका बनाते अथवा कोई अन्य खेल (खेल में ही) तैर जाते थे ॥३०४॥ चारों ओर से सब मनुष्य हरिध्वनि कर रहे थे–ऐसा सुन पड़ता था मानों ब्रह्माण्ड ही फोड़ दिया हो ॥ ३०५ ॥ वाचस्पति महाशय ने शीघ्र आकर बहुत सी नौकाएँ इकट्ठी की ॥ ३०६ ॥ नौका की अपेक्षा कोई नहीं कर रहा था क्योंकि जिसको जो उपाय सूझता विविध प्रकार से पार हो रहा था ॥ ३०७ ॥ इस प्रकार श्रीचैतन्यदेव ने सबके मन खींच लिये यह भी ईश्वर के बिना क्या अन्य से सम्भव है ॥ ३०८ ॥ इस प्रकार सब लोगों ने गङ्गा पार होकर श्रीवाचस्पति जी के चरण छूए ॥ ३०९ ॥ तुम महाभाग्यवान् व परम पुण्यशाली हो जिनके घर श्रीचैतन्य भगवान् पधारे ॥ ३१० ॥ इसी से तुम्हारे भाग्य का कौन वर्णन कर सकता है–अब हम सब का निस्तार करो ॥ ३११ ॥ हम सब पापी भवकूप में पड़े हैं एक गाँव में रहकर भी उनका (श्रीचैतन्यदेव का) अनुभव न कर सके ? ॥ ३१२ ॥ अब उनके श्रीयुगल चरणों का दर्शन करवा दीजिये तभी तो हम सब पापियों को सब कुछ मिल जावेगा ॥ ३१३ ॥ महाबुद्धिमान् ब्राह्मण श्रीविद्यावाचस्पति मनुष्यों की

सभा लइ आइलेन आपन मन्दिरे । लक्ष कोटि लोक महा हरिध्वनि करे ॥ ३१५ ॥
हरिध्वनि मात्र शुनि सभार वदने । आर वाक्य केहो नाहि बोले नाहि शुने ॥ ३१६ ॥
करुणासागर प्रभु श्रीगौरसुन्दर । सभा उद्धारिते हइयाछेन गोचर ॥ ३१७ ॥
हरिध्वनि शुनि प्रभु परम सन्तोषे । हइलेन बाहिर लोकेर भाग्यवशे ॥ ३१८ ॥
कि से श्रीविग्रहेर सौन्दर्य मनोहर । से रूपेर उपमा-सेइ से कलेवर ॥ ३१९ ॥
सर्वदाय प्रसन्न श्रीमुख विलक्षण । आनन्द धाराय पूर्ण दुइ श्रीनयन ॥ ३२० ॥
भक्तगणे लेपियाछे सर्वाङ्गे चन्दन । मालाय पूर्णित वक्ष, गजेन्द्र गमन । ३२१ ॥
आजानुलम्बित दुइ श्रीभुज तुलिया । 'हरि' बलि सिंहनाद करेन गर्जिया ॥ ३२२ ॥
देखिया प्रभुरे चतुर्दिगे सर्व लोके । 'हरि' बलि नृत्य सभे करेन कौतुके ॥ ३२३ ॥
दण्डवत् हइ सभे पड़े भूमि तले । आनन्दे हइया मग्न 'हरि-हरि' बोले ॥ ३२४ ॥
दुइ बाहु तुलि सर्व लोक स्तुति करे । 'उद्धारह प्रभु आमि-सब-पापिष्ठेरे ॥ ३२५ ॥
ईषत् हासिया प्रभु सर्वलोक प्रति । आशीर्वाद करेन कृष्णेते हउ मति ॥ ३२६ ॥
बोल कृष्ण भज कृष्ण शुन कृष्ण नाम । कृष्ण हउ सभार जीवन धन प्राण ॥ ३२७ ॥
सर्व लोक 'हरि' बोले शुनि आशीर्वाद । पुनः पुन सभेइ करेन स्तुति वाद ॥ ३२८ ॥
जगत-उद्धार-लागि तुमि गूढ़ रूपे । अवतीर्ण हैला शची गृहे नवद्वीपे ॥ ३२९ ॥
आमि-सब पापिष्ठ तोमारे ना चिनिया । अन्धकूपे पड़िलाङ आपना खाइया ॥ ३३० ॥

आर्त दशा देखकर शान्त होकर रुदन करने लगा ॥३१४॥ सबको लेकर अपने स्थान पर आये वहाँ असंख्यों मनुष्य ऊँचे स्वर से हरिध्वनि करने लगे ॥३१५॥ सबके मुख से केवल हरिध्वनि ही सुनाई पड़ती थी दूसरा वाक्य न कोई बोलता न सुनता था ॥३१६॥ करुणासिन्धु श्रीगौरसुन्दर प्रभु सबका उद्धार करने के निमित्त प्रत्यक्ष हुए ॥ ३१७ ॥ हरिध्वनि सुनकर प्रभु बड़े प्रसन्न हुए और लोगों के भाग्य से ही बाहिर आये ॥३१८॥ श्रीविग्रह का कैसा मनोहर सौन्दर्य था—उस रूप की उपमा वही कलेवर ही है ॥ ३१९ ॥विलक्षण श्रीमुख हर समय प्रसन्न रहता तथा दोनों श्रीनयन कमल आनन्दधारा से पूर्ण रहते थे ॥३२०॥ भक्तगणों ने उनके सब अङ्गों में चन्दन लेपन किया हुआ था वक्षस्थल मालाओं से पूर्ण हो रहा था तथा उनकी गती गजेन्द्र जैसी थी ॥ ३२१ ॥ वे अपनी घुटनों तक लम्बी दोनों भुजाओं को उठाकर हरि-हरि बोलकर गर्जना करके सिंहनादकर रहे थे ॥ ३२२ ॥ श्रीप्रभु के दर्शन करके चारों ओर से घिरकर सब लोग हरि-हरि कहते हुए अति कौतुक से नृत्य करने लगे ॥ ३२३ ॥ दण्डवत् होकर सब भूमि पर गिर पड़ते तथा आनन्द में मग्न होकर "हरि-हरि" बोलते थे ॥ ३२४ ॥ दोनों भुजा उठाकर सब मनुष्य स्तुति करते कि प्रभो ! हम सब पापियों का उद्धार करो ॥ ३२५ ॥ कुछ हँसकर प्रभु ने सब लोगों के प्रति आशीर्वाद किया कृष्ण में तुम्हारी बुद्धि होय ॥ ३२६ ॥ कृष्ण कहो, कृष्ण भजो व कृष्ण नाम सुनो सबके प्राण-जीवन धन श्रीकृष्णचन्द्र होंय ॥३२७॥यह आशीर्वाद सुनकर सब लोग "हरि-हरि" बोलने लगे तथा सब बार-बार स्तुति करने लगे ॥ ३२८ ॥ जगत् उद्धार करने के लिये आप गुप्त रूप से नवद्वीप धाम में श्रीशचीदेवी के घर में अवतीर्ण हुए ॥ ३२९ ॥ हम पापियों ने आपको नहीं पहिचाना और अपने को खाकर ( आत्म हत्या करके ) अन्धकूप में गिरे ॥ ३३० ॥ और पर

एइ मत सर्वदिगे लोक स्तुति करे  हेन रङ्ग करेन श्रीगौराङ्ग सुन्दरे  ३३२
मनुष्ये हइल परिपूर्ण सर्व ग्राम  नगर चत्वर प्रान्तरेओ नाहि स्थान  ३३३
देखिते सभार पुनः पुन इच्छा बाढ़े . सहस्र-सहस्र लोक एको वृक्षे चढ़े .. ३३४ ..
गृहेर उपरे वा कतेक लोक चढ़े । ईश्वर-इच्छाय घर भाङ्गिया ना पड़े ॥ ३३५ ॥
देखि मात्र सर्वलोक श्रीचन्द्रवदन । 'हरि' बलि सिंहनाद करे घने घन ॥ ३३६ ॥
नाना दिग थाकि लोक आइसे सदाय । श्रीमुख देखिया केहो घर नाहि जाय ॥३३७॥
नाना रङ्ग जाने प्रभु श्रीगौरसुन्दर । लुकाइया गेला प्रभु कुलिया नगर ॥ ३३८ ॥
नित्यानन्द-आदि जन कथो सङ्ग लैया । चलिलेन वाचस्पतिरेओ ना कहिया ॥ ३३९ ॥
कुलियाय आइलेन वैकुण्ठ-ईश्वर । एथा सर्वलोक हैल परम कातर ॥ ३४० ॥
चतुर्दिगे वाचस्पति लागिला चाहिते । कोथा गेला प्रभु, नाहि पायेन देखिते ॥ ३४१ ॥
विचार करिया विप्र प्रभु ना पाइया । कान्दिते लागिला ऊर्द्ध वदन करिया ॥ ३४२ ॥
विरले आछेन प्रभु बाड़ीर भितरे । एइ ज्ञान हइयाछे सभार अन्तरे ॥ ३४३ ॥
बाहिर हयेन प्रभु हरिनाम शुनि । अतएव सभे बोले महा हरिध्वनि ॥ ३४४ ॥
कोटि-कोटि लोक हेन हरिध्वनि करे । स्वर्ग-मर्त्य-पातालादि सर्वलोक पूरे ॥ ३४५ ॥
कथोक्षणे वाचस्पति आसिया बाहिरे । प्रभुर वृत्तान्त सब कहिला सभारे ॥ ३४६ ॥
कत रात्र्ये कोन दिगे हेन नाहि जानि । मुञि-पापिष्ठेरे वंचि गेला न्यासि मणि ॥३४७॥

---

हितकारी करुणा सागर आप ऐसी कृपा करो जिससे आपको फिर न भूलें ॥ ३३१ ॥ इस प्रकार सब ओर से मनुष्य स्तुति कर रहे थे-श्रीगौरसुन्दर ने ऐसी प्रेम लीला की ॥ ३३२ ॥ मनुष्यों से सम्पूर्ण गाँव इतना पूरी तरह से भर गया कि मुहल्ले, चौराहे बाहर मैदानों में भी स्थान नहीं रहा ॥ ३३३ ॥ सभी की इच्छा दर्शन करने के लिये बारम्बार होती थी इस कारण हजारों २ लोग एक-एक वृक्ष पर चढ़े थे ॥ ३३४ ॥ घरों के ऊपर कितने मनुष्य चढ़े हुए थे, परन्तु ईश्वर इच्छा से घर टूटकर नहीं गिरे ॥ ३३५ ॥ सब लोग श्रीचन्द्र-मुख दर्शन करते ही "हरि-हरि" बोलकर बड़े जोर से सिंहनाद करने लगे ॥ ३३६ ॥ मनुष्य अनेक ओरों से बराबर चले ही आ रहे थे, परन्तु श्रीमुख दर्शन करके कोई भी अपने घर के नहीं जाता था ॥ ३३७ ॥ श्री-गौरसुन्दर प्रभु अनेक पकार से खेल करते थे–सोई प्रभु छुपकर कुलिया नगर को चले गये ॥३३८॥ श्रीवाच-स्पति से भी नहीं कहा और श्रीनित्यानन्द आदि कुछ जनों को साथ लेकर चल दिये ॥ ३३९ ॥ वैकुण्ठनाथ तो कुलिया नगर पहुँच गये, परन्तु यहाँ सब लोग बड़े कातर हो रहे थे ॥ ३४० ॥ श्रीवाचस्पति चारों ओर देखने लगे "प्रभु कहाँ चले-देखते नहीं पड़ते ?" ॥ ३४१ ॥ ढूँढ़ने पर प्रभु जब नहीं मिले तो वे ब्राह्मण ऊपर मुख करके रोने लगे ॥३४२॥ सबको यह ज्ञान पड़ता था कि श्रीप्रभु घर में भीतर एकान्त में हैं ॥३४३॥ श्रीप्रभु हरि नाम सुनकर बाहर निकलेंगे इसीलिये सब जोर २ से हरिध्वनि करने लगे ॥ ३४४ ॥ असंख्यों मनुष्य इतनी हरिध्वनि कर रहे थे जिससे स्वर्ग मृत्युलोक व पाताल आदि सब लोक भर गये ॥ ३४५ ॥ कुछ देर में वाचस्पतिजी बाहर आकर प्रभु का सब वृत्तान्त सबसे कहा ॥ ३४६ ॥ मुझ पापी को छोड़कर श्रीप्रभु

सत्य कहि भाइ सब तोमा सभा स्थाने। ना जानि चैतन्य गियाछेन कोन् खाने ॥३४८॥
यत-मते वाचस्पति कहेन लोकेरे। प्रतीत काहारो नाहि जन्मये अन्तरे ॥ ३४९ ॥
लोकेर गहल देखि आछेन विरले। एइ ज्ञाने सभेइ आछेन कुतूहले ॥ ३५० ॥
केहो केहो साधे वाचस्पतिरे विरले। आमारे देखाओ आमि केवल एकले ॥ ३५१ ॥
सर्वलोक साधे वाचस्पतिरे चरणे। एक बार मात्र ताँरे देखिले नयने ॥ ३५२ ॥
तबे सभे घर जाइ आनन्दित हैया। एइ वाक्य प्रभु-स्थाने जानाइबा गिया ॥ ३५३ ॥
कभू ना लंघिब प्रभु तोमार वचन। ये मते आमरा पापी पाइ दरशन ॥ ३५४ ॥
यत-मते वाचस्पति प्रबोधिया कय। काहारो चित्तेते आर प्रत्यय ना हय ॥ ३५५ ॥
कथोक्षणे सर्व लोक देखा ना पाइया। वाचस्पतिरेओ बोले मुखर हइया ॥ ३५६ ॥
घरे लुकाइया वाचस्पति न्यासि मणि। आमा सभा भाण्डिला कहिया मिथ्या वाणी ॥३५७॥
आमरा तरिले वा उहान कौन दुःख। आपनेइ तरि मात्र हइबा कोन् सुख ॥३५८॥
केहो बोले सुजनेर एइ से धर्म हय। संसार उद्धार करे हइया सदय ॥ ३५९ ॥
आपनार भाल हउ ये-ते-जन देखे। सुजने आपना छाड़ियाओ पर राखे ॥ ३६० ॥
केहो बोले व्यवहारे मिष्ट द्रव्य आनि। एका उपभोग कैले अपराध गणि ॥ ३६१ ॥
एत मिष्ट त्रिभुवने अति अनुपाम। एकेश्वर इहा कि करिते योग्य पान ॥ ३६२ ॥
केहो बोले 'विप्र किछु कपट-हृदय। पर-उपकारे तत नहेन सदय ॥ ३६३ ॥

---

न जाने कितनी रात्रि में किस ओर चल दिये ? ॥ ३४७॥ हे भाइयो ! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ न मालूम श्रीचैतन्यदेव किधर चले गये ॥ ३४८ ॥ श्रीवाचस्पति जितने प्रकार से भी मनुष्यों से कहते, परन्तु किसी के मनमें बिश्वास नहीं होता था ॥ ३४९ ॥ प्रभु मनुष्यों की भीड़ देखकर एकान्त में हैं ऐसा समझकर सब लोग कुतूहल में खड़े रहे ॥ ३५० ॥ कोई २ श्रीवाचस्पति से एकान्त में प्रार्थना करते, मैं तो अकेला ही हूँ मुझे दर्शन करा दीजिये ॥ ३५१ ॥ सर्व लोग वाचस्पति के चरणों में प्रार्थना करते थे कि नेत्रों से केवल एक बार देखते ही आनन्दित होकर सब लोग घर को चले जाँयगे, ये वाक्य प्रभु के पास जाकर बताइये ॥३५२-३५३॥ "प्रभु आपके वचनों का कभी उलंघन नहीं करेंगे" जैसे भी हो हम पापियों को दर्शन मिले॥३५४॥ जितने प्रकार से भी वाचस्पति समझाकर कहते थे, परन्तु किसी के चित्त में फिर भी विश्वास नहीं होता था ॥ ३५५ ॥ कुछ क्षण में सब लोग दर्शन न पाने पर मुखर ( अप्रिय वक्ता ) होकर वाचस्पति से दुर्वचन कहने लगे ॥ ३५६ ॥ "वाचस्पति ने गौरचन्द्र को घर में छिपाकर हमसे झूँठ कहकर सबको धोखा दिया है" ॥ ३५७ ॥ हमारे तर जाने से उन्हें क्या दुःख है तथा अपने मात्र तरने में क्या सुख है ? ॥ ३५८ ॥ किसी ने कहा कि सज्जनों का तो यह धर्म है कि सदय होकर सबका उद्धार ही करा करें ॥३५९॥ साधारण जन अपना ही भला देखते हैं, परन्तु सुजन अपनी छोड़ दूसरे की रक्षा करते हैं ॥ ३६० ॥ कोई कहता— "व्यवहार में मीठी द्रव्य लाकर अकेले ही उपभोग करना अपराध में गणना है" ॥ ३६१ ॥ परन्तु यह पदार्थ तो तीनों लोकों में अभूतपूर्व मीठा है इसका अकेले ही आस्वादन करना क्या उचित है ? ॥ ३६२ ॥ कोई कहता "ब्राह्मण के हृदय में कुछ कपट है, परोपकार में उतनी दया नहीं है" ३६३ एक तो वाचस्पतिजी

एके वाचस्पति दुखी प्रभुर विरहे । आरे सभे एमत दुर्यश-वाणी कहे ।। ३६४ ।।
दुइ मते दुखी विप्र परम उदार । ना जानेन कोन् मते हय प्रतिकार ।। ३६५ ।।
हेनइ समये एक आसिया ब्राह्मण । वाचस्पति-कर्णमूले कहिल वचन ।। ३६६ ।।
चैतन्य गोसाञि गेला कुलिया नगर । एवे जे जुयाय ताहा करह सत्वर ।। ३६७ ।।
शुनि मात्र वाचस्पति परम-सन्तोषे । ब्राह्मणेर आलिङ्गन दिलेन हरिषे ।। ३६८ ।।
तत्क्षणे आइलेन सर्वलोक यथा । सभारेइ आसि कहिलेन गोप्य कथा ।। ३६९ ।।
तोमरा सकल लोक तत्त्व ना जानिया । दोष देओ आमारे 'थुइयाछि लुकाइया' ।।३७०।।
एवे एइ शुनिलाङ कुलिया नगरे । आछेन आसिया कहिलेन विप्रवरे ।। ३७१ ।।
सभे चल, यदि सत्य हय ए वचन । तवे से आमारे सभे वलिह ब्राह्मण ।।३७२।
सर्वलोक 'हरि' बलि वाचस्पति-सङ्गे । सेइक्षणे सभे चलिलेन महारङ्गे ।। ३७३ ।।
'कुलिया नगरे आइलेन न्यासि मणि' । सेइक्षणे सर्वदिगे हैल महाध्वनि ।। ३७४ ।।
सबे गङ्गा मध्ये नदियाय कुलियाय । शुनि मात्र सर्वलोके महानन्दे धाय ।। ३७५ ।।
वाचस्पति-ग्रामे छिल यतेक गहल । तार कोटि-कोटि गुणे पूरिल सकल ।। ३७६ ।।
कुलियार आकर्षण ना जाय कथन । ताहा वर्णिवारे शक्त सहस्र वदन ।। ३७७ ।।
लक्ष-लक्ष नौका वा आइल कोथा हैते । ना जानि कतेक पार हय कत-मते ।।३७८।।
कतेक वा नौका डूबे गङ्गार भितरे । तथापि सभेइ तरे केहो नाहि मरे ।। ३७९ ।।
नौका डूबिलेइ मात्र गङ्गा हय स्थल । हेन चैतन्येर अनुग्रह इच्छा बल ।। ३८० ।।

---

प्रभु विरह में दुखी थे दूसरे सब लोग ऐसी अनुपयुक्त वाणी बोल रहे थे ।।३६४।। परम उदार ब्राह्मण दोनों प्रकार से दुखी थे किस प्रकार प्रतीकार होगा यह समझ नहीं पड़ता था ।। ३६५ ।। ऐसे समय में एक ब्राह्मण ने श्रीवाचस्पति के कान में यों कहा—।। ३६६ ।। श्रीचैतन्यदेव तो कुलिया नगर पहुँच गये अब जो उचित हो वह शीघ्र करो ।। ३६७ ।। श्रीवाचस्पतिजी सुनते ही बड़े सन्तुष्ट हुए और प्रसन्न हो ब्राह्मण को आलिङ्गन किया ।। ३६८ ।। जहाँ भीड़ थी तुरन्त ही वहाँ आये और सबसे गुप्त प्रसंग की बात कह सुनाई ।। ३६९ ।। तुम लोग तत्त्व बात न जानकर मुझे दोष दे रहे हो कि प्रभु को छुपा रक्खा है ।। ३७० ।। मैंने अभी यह सुना है कि प्रभु कुलिया नगर में हैं इस ब्राह्मण ने आकर कहा है ।। ३७१ ।। वहीं सब चलो—मेरी यह बात अब सत्य निकले तभी मुझे ब्राह्मण कहना ।। ३७२ ।। उसी क्षण सब लोग "हरि-हरि" बोलते हुए श्रीवाचस्पति को साथ लेकर बड़े आनन्द से चल पड़े ।। ३७३ ।। सन्यासी-चूड़ामणि कुलिया नगर में आये हैं यह महाध्वनि उसी क्षण सब ओर फैल गई ।। ३७४ ।। "नवद्वीप कुलिया के बीच में केवल गङ्गाजी तो हैं" यह सुनते मात्र ही सब लोग बड़े आनन्द से दौड़े ।। ३७५ ।। श्रीवाचस्पतिजी के ग्राम में जितनी भीड़ थी उससे करोड़ गुनी अधिक सब ओर भर गई ।। ३७६ ।। कुलिया नगर का आकर्षण कहा नहीं जाता उसका वर्णन करने में शेषजी की सामर्थ्य है ।। ३७७ ।। न जाने कहाँ से लाखों नौकाएँ आ गईं और न जाने कितने मनुष्य किस २ प्रकार से पार हो रहे थे ।। ३७८ ।। न जाने कितनी नावें गङ्गा में डूब गईं तो भी पार सब ही हो रहे थे कोई मरा नहीं ।३७९ नौका डूबते ही गङ्गा स्थल हो जाती थी ऐसा श्रीचैतन्यदेव की इच्छा

ये प्रभुर नाम गुण सकृत ये गाय । से संसार अब्धि तरे वत्सपद प्राय ॥३८१॥
हेन प्रभु देखिते साक्षाते ये आइसे । ताहारा जे गङ्गा तरिबेन चित्र किसे ॥ ३८२ ॥
लक्ष-लक्ष लोक भासे जाह्नवीर जले । सभे पार हयेन परम-कुतूहले ॥ ३८३ ॥
गङ्गाय हइया पार आपना आपनि । कोलाकोलि करि सभे करे हरिध्वनि ॥ ३८४ ॥
खेयारिर कत वा हइल उपार्जन । कत-कत हाट वा वसिल सेइ क्षण ॥ ३८५ ॥
चतुर्दिगे जार ये इच्छा से-इ किने । हेन नाहि जानि इहा करे कोन् जने ॥ ३८६ ॥
क्षणेके कुलिया ग्राम नगर प्रान्तर । परिपूर्ण हैल, स्थल नाहि अवसर ॥ ३८७ ॥
अनन्त अर्बुद लोक करे हरिध्वनि । बाहिर ना हय, गुप्ते आछे न्यासि मणि ॥३८८॥
क्षणेके आइला महाशय वाचस्पति । तिंहो नाहि पायेन प्रभुर कोथा स्थिति ॥३८९॥
कथोक्षणे वाचस्पति मात्र एकेश्वर । डाकि आनाइला प्रभु श्रीगौरसुन्दर ॥३९०॥
देखि मात्र प्रभु विशारदेर नन्दन । दण्डवत् हइया पड़िला सेइ क्षण ॥ ३९१ ॥
चैतन्येर अवतार वर्णिया-वर्णिया । श्लोक करि पढ़े विप्र प्रणति करिया ॥ ३९२ ॥
संसार-उद्धार-लागि ये चैतन्य रूपे । तारि लेन यतेक पतित भव-कूपे ॥ ३९३ ॥
से गौर सुन्दर कृपा समुद्रेर पाय । जन्म-जन्म मोर चित्त वसुक सदाय ॥ ३९४ ॥
संसार-सागरे मग्न जगत देखिया । निरवधि वर्षे प्रेम कृपायुक्त हैया ॥ ३९५ ॥
हेन से अतुल कृपामय गौर धाम । स्फुरुक आमार हृदये ते अविराम ॥ ३९६ ॥

---

का अनुग्रह था ॥ ३८० ॥ जो एक बार भी श्रीप्रभु के नाम गुण-गान करता है वह संसार रूपी समुद्र को गोवत्स पद की तरह तर जाता है ॥ ३८१ ॥ जो ऐसे प्रभु के साक्षात् दर्शनों को ही आयेंगे उनके भला गङ्गा तरने में क्या विचित्रता थी ॥ ३८२ ॥ लाखों ही मनुष्य गंगाजल में प्रवेश करते थे और सब ही बड़े कुतूहल से पार होते थे ॥ ३८३ ॥ गंगाजी को पार करके परस्पर आलिङ्गन करके सब लोग प्रेमानन्द से हरिध्वनि करते थे ॥ ३८४ ॥ मलाहों ने न जाने कितना उपार्जन किया तथा उसी क्षण कितने हाट बाजार लग गये ॥ ३८५ ॥ चारों ओर जिसकी जो इच्छा है वही मोल ले रहा है परन्तु यह मालूम नहीं पड़ता कि कौन क्या कर रहा है ? ॥ ३८६ ॥ एक क्षण में कुलिया ग्राम के गली, बाजार, मैदानों की जगह सब भर गई कि वहाँ तिल धरने को जगह नहीं रही ॥ ३८७ ॥ असंख्य मनुष्य हरिध्वनि कर रहे थे तथा न्यासिमणि (गौर) प्रभु गुप्त हो रहे थे बाहिर नहीं होते थे ॥ ३८८ ॥ क्षण में ही श्रीवाचस्पति महाशय भी आ गये परन्तु उन्हें भी पता नहीं लगा कि प्रभु कहाँ हैं ? ॥ ३८९ ॥ कुछ क्षण में ही श्रीगौरसुन्दर प्रभु ने अकेले वाचस्पति को ही टेर कर बुलाया ॥ ३९० ॥ विशारद पुत्र श्रीवाचस्पतिजी श्रीगौर प्रभु को देखते ही तत्क्षण दण्डवत् प्रणाम की ॥ ३९१ ॥ चैतन्यावतार का बखान श्लोक बद्ध रचना करते करते जाते और दण्डवत् प्रणाम करते जाते अर्थात् प्रत्येक श्लोक पाठ पर दण्डवत् प्रणाम करते थे ॥३९२॥ जिनने संसार के उद्धार के लिये चैतन्यरूप से प्रगट होकर संसार-कूप में सभी गिरे हुओं को तार दिया ॥३९३॥ उन कृपासिन्धु श्रीगौरसुन्दर के चरण-कमलों में मेरा चित्त जन्म-जन्म में सर्वदा निवास करे ॥ ३९४ ॥ जो जगत् के मनुष्यों को संसार समुद्र में मग्न देखकर कृपा करके निरन्तर प्रेम की वर्षा करते हैं ॥ ३९५ ॥ ऐसे वे अतुल कृपामय धाम श्री

एइ मत श्लोक पढ़ि करे विप्र स्तुति । पुनः पुन दण्डवत् हय वाचस्पति ॥ ३९७ ॥
विशारद-चरणे आमार नमस्कार । सार्वभौम विद्या वाचस्पति पुत्र याँर ॥३९८॥
वाचस्पति देखि प्रभु श्रीगौरसुन्दर । कृपादृष्ट्ये वसिवारे बलिला उत्तर ॥३९९॥
डाण्डाइया कर जुड़ि बोले वाचस्पति । मोर एक निवेदन शुन महामति ॥४००॥
स्वच्छन्द परमानन्द तुमि दयामय । सर्व कर्म तोमार आपन इच्छामय ॥४०१॥
आपन इच्छाय 'थाक चलह आपने । आपने जानाह, सेजि लोके तोमा' जाने ॥४०२॥
एतेके तोमार कर्मे तुमिसे प्रमाण । विधिवा नेषेध के तोमारे दिवे आन ॥४०३॥
सबे मोरे सर्वलोक तत्त्व ना जानिया । दोषेन अन्तरे क्रूर आमारे बलिया ॥४०४॥
तोमारे आपन घरे मुञि लुकाइया । थुइयाछों लोके बोले तत्त्व ना जानिया ॥४०५॥
तुमि प्रभु । तिलार्द्धेक बाहिर हइले । तबे मोरे 'ब्राह्मण' करिया लोके बोले ॥४०६॥
हासिते लागिला प्रभु विप्रेर वचने । ताँर इच्छा पालिया चलिला सेइक्षणे ॥४०७॥
येइ मात्र महाप्रभु बाहिर हइला । सेइ सभे आनन्द सागरे मग्न हैला ॥४०८॥
चतुर्दिगे लोक दण्डवत् हइ पड़े । यार येन-मत स्फुरे, सेइ स्तुति पढ़े ॥४०९॥
अनन्त अर्बुद लोक हरि ध्वनि करे । भासिल सकल लोक आनन्दसागरे ॥४१०॥
सहस्र-सहस्र कीर्तनीआ-सम्प्रदाये । स्थाने-स्थाने सभेइ परमानन्दे गाय ॥४११॥
अहर्निश परमानन्द कृष्णनाम ध्वनि । सकल भुवन पूर्ण कैला न्यासिमणि ॥४१२॥

---

गौरसुन्दर मेरे हृदय में निरन्तर ( सर्वदा ) स्फुरण हों ॥ ३९६ ॥ ब्राह्मण इस प्रकार श्लोक पाठ करके स्तुति कर रहे थे । श्रीवाचस्पतिजी ने इस प्रकार बारम्बार दण्डवत् प्रणाम की ॥ ३९७ ॥ पण्डित महेश्वर विशारदजी के चरणों में मेरा नमस्कार है अहो सार्वभौम व विद्यावाचस्पति जिनके पुत्र हैं ॥ ३९८ ॥ श्रीगौरसुन्दर प्रभु ने वाचस्पतिजी को देखकर कृपादृष्टि करके बैठने के लिये कहा ॥ ३९९ ॥ खड़े होकर वाचस्पति ने हाथ जोड़कर कहा—महामति प्रभो ! मेरा एक निवेदन सुनिये ॥ ४०० ॥ आप स्वच्छन्द, परम आनन्दमय व दयामय हो आपके सब कर्म आपकी इच्छा से ही होते हैं ॥ ४०१ ॥ अपनी इच्छा से ही रहते हो अथवा अपनी इच्छा से ही चले जाते हो और जिन मनुष्यों पर अपने को प्रगट करने हों वे जान पाते हैं ॥ ४०२ ॥ अतः अपने कर्मों के आप ही साक्षी हो—आपको विधि निषेध और कौन करेगा ॥ ४०३ ॥ सच्ची बात न जानकर सब लोग अपने मनमें मुझे क्रूर कहकर मेरे ऊपर दोषारोपण करते थे ॥ ४०४ ॥ अपने घर में तुम्हें छुपाकर मैंने रख लिया—सब ही मनुष्य असली बात न जानकर ही ऐसा कहते थे ॥४०५॥ हे प्रभो ! आप आधे तिल मात्र समय के लिये थोड़ा बाहर आ जाँय तभी ( आपको देखकर ) मनुष्य मुझे ब्राह्मण कहेंगे ॥ ४०६ ॥ प्रभु ब्राह्मण के वचन सुनकर हँसे और उनकी इच्छा पूरी करने को तुरन्त बाहर आ गये ॥ ४०७ ॥ श्रीमहाप्रभु के बाहर होते ही उसी क्षण सब मनुष्य आनन्द सागर में डूब गये ॥ ४०८ ॥ चारों ओर मनुष्य दण्डवत् होकर गिरे जिसको जो भी स्तुति फुरन होती वही पाठ करता था ॥ ४०९ ॥ असंख्य मनुष्य हरिध्वनि करते थे सभी मनुष्य आनन्दसागर में डूब गये ॥ ४१० ॥ हजारों २ कीर्तनियों की टोलियाँ सब जगह-जगह बड़े आनन्द में गान कर रही थी ४११ दिन राति परम कृष्ण नाम ध्वनि से

ब्रह्मलोक-शिवलोक-आदि यत लोक । ये सुखेर कलालेशे सभेइ अशोक ॥४१३॥
योगीन्द्र मुनीन्द्र मत्त ये सुखेर लेशे । ताहा करायेन पृथिवीते न्यासि वेशे ॥४१४॥
हेन सर्व शक्ति समन्वित भगवान् । ये पापिष्ठ मायावशे बोले अप्रमाण ॥४१५॥
तार जन्म कर्म विद्या ब्रह्मण्य आचार । सब मिथ्या सेइ पापी शोच्य सभाकार ॥४१६॥
भज-भज अरे भाइ चैतन्य चरणे । अविद्या बन्धन खण्डे याहार श्रवणे ॥४१७॥
जाहार स्मरणे सर्व-ताप-विमोचन । भज-भज हेन न्यासि मणिर चरण ॥४१८॥
एइ मत चतुर्दिगे देखि सङ्कीर्तन । आनन्दे भासेन प्रभु लइ सर्व-गण ॥४१९॥
आनन्दधाराय पूर्ण श्रीगौरसुन्दर । येन चतुर्दिगे बहे जाह्नवीर जल ॥४२०॥
बाह्य नाहि परानन्द सुखे आपनार । सङ्कीर्तन-आनन्द-विह्वल-अवतार ॥४२१॥
येइ सम्प्रदाय प्रभु देखेन सम्मुखे । ताहातेइ नृत्य करे परानन्द-सुखे ॥४२२॥
ताहारा कृतार्थ हेन माने आपनारे । हेन मते रङ्ग करे श्रीगौरसुन्दरे ॥४२३॥
विह्वलेर अग्रगण्य नित्यानन्द-राय । कखनो धरिया ताँरे आपने नाचाय ॥४२४॥
आपने कखनो नृत्य करे ताँर सङ्गे । आपने विह्वल आपनार प्रेम रङ्गे ॥४२५॥
नृत्य करे महाप्रभु करि सिंहनाद । ये नाद श्रवणे खण्डे सकल विषाद ॥४२६॥
यार रसे मत्त-वस्त्र ना जाने शङ्कर । हेन प्रभु नाचे सर्वलोकेर भितर ॥४२७॥
अनन्त ब्रह्माण्ड हय यार शक्तिवशे । से प्रभु नाचये पृथिवीते प्रेमरसे ॥४२८॥

---

सन्यासी चूड़ामणि ने सब भुवन ( लोक ) पूर्ण कर दिये ॥ ४१२ ॥ ब्रह्मलोक शिवलोक आदि जितने लोक हैं वे सब जिस सुख की कला के लेश मात्र से ही शोक रहित हैं ॥ ४१३ ॥ जिस सुख के लेश मात्र अंश से योगीन्द्र व मुनीन्द्र मतवाले हो जाते हैं उसी सुख को पृथ्वी पर सन्यासी वेश से प्रसारित करा रहे थे ॥ ४१४ ॥ ऐसे सर्व शक्तियुक्त भगवान् हैं, जो पापी माया के वशीभूत हो, उनको अप्रमाण कहता है॥४१५॥ उसके जन्म-कर्म विद्या ब्राह्मणत्व व आचार-विचार सब मिथ्या हैं वह पापी सबसे अधिक शोचनीय है ॥ ४१६ ॥ भजो ! भजो ! हे भाई श्रीचैतन्य चरणों को भजो, जिनके यश-श्रवण से अविद्या का बन्धन नष्ट हो जाता है ॥ ४१७ ॥ जिनके स्मरण करने से सब दाह मिट जाती हैं ऐसे सन्यासी शिरोमणि ( गौरचन्द्र ) के चरण-कमलों का भजन करो ॥ ४१८ ॥ इस प्रकार चारों ओर संकीर्तन होते देखकर सब भक्तों के साथ प्रभु आनन्द-विभोर हो गये ॥ ४१९ ॥ जिस प्रकार गंगाजी का जल चारों ओर बढ़ता है, उसी प्रकार श्री-गौरसुन्दर आनन्दधारा से परिपूर्ण हो रहे थे ॥ ४२० ॥ निज परमानन्द सुख में उन्हें बाह्य ज्ञान नहीं रहा, क्योंकि वे संकीर्तन आनन्द के विह्वल अवतार थे ॥ ४२१ ॥ श्रीप्रभु जिस टोली को सामने देखते उसी के साथ नाचते हुए परमानन्द सुख पाते थे ॥ ४२२ ॥ वे टोलियाँ भी अपने को कृतार्थ मानती थीं इस भाँति श्रीगौरसुन्दर खेल करते थे ॥ ४२३ ॥ विह्वलों के अग्रगण्य श्रीनित्यानन्दराय कभी उनको पकड़कर स्वयं नचाने लगते थे ॥ ४२४ ॥ कभी उनके साथ आप भी नृत्य करते और प्रेमरङ्ग में आपही विह्वल हो जाते ॥ ४२५ ॥ श्रीमहाप्रभु सिंहनाद करके नृत्य करते थे उस नाद के सुनने से सब विषाद नष्ट हो जाते थे॥४२६॥ जिनके रस से मतवाले होकर शिवजी वस्त्र नहीं पहिनते वही प्रभु सब लोगों की टोलियों में भी नाचते थे

ये प्रभु देखिते सर्व वेदे काम्य करे। से प्रभु नाचये सर्वजनेर गोचरे ॥४२६॥
एइ मत सर्वलोक महानन्दे भासे। संसार तरिल चैतन्येर परकाशे ॥४३०॥
यतेक आइसे लोक चतुर्दिग हैते। सभेइ आसिया देखे प्रभुरे नाचिते ॥४३१॥
वाह्य नाहि प्रभुर विह्वल प्रेमरसे। देखि सर्वलोक सुख-सिन्धु-माझे भासे ॥४३२॥
कुलियार प्रकाशे यतेक पापी छिल। उत्तम मध्यम नीच-सभे पार हैल ॥४३३॥
कुलिया ग्रामेते चैतन्येर परकाश। इहार श्रवणे छिण्डे सर्व-कर्म-पाश ॥४३४॥
सकल जीवेरे प्रभु दरशन दिया। सुखमय चित्तवृत्ति सभार करिया। ४३५॥
तबे सब आपन पार्षद गण लैया। वसिलेन महाप्रभु वाह्य प्रकाशिया ॥४३६॥
हेनइ समये एक आसिया ब्राह्मण। दृढ़ करि धरिलेन प्रभुर चरण ॥४३७॥
विप्र बोले प्रभु मोर एक निवेदन। आछे, ताहा कहों यदि खाणि देह मन ॥ ४३८ ॥
भक्तिर प्रभाव मुञि पापी ना जानिया। बहु निन्दा करियाछों आपना खाइया ॥ ४३९ ॥
कलियुगे किसेर वैष्णव, कि कीर्तन। एइ मत अनेक वल्गिलुँ अनुक्षण ॥ ४४० ॥
एवे प्रभु! से पापिष्ठ कर्म स्मङरिते। अनुक्षण चित्त मोर दहे सर्व मते ॥४४१॥
संसार-उद्धार-सिंह तोमार प्रताप। कह मोर केमते खण्डये सेइ पाप ॥ ४४२ ॥
शुनि प्रभु अकैतव विप्रेर वचन। हासिया उपाय कहे श्रीशचीनन्दन ॥ ४४३ ॥
शुन विप्र विष करि ये मुखे भक्षण। सेइ मुखे करि यदि अमृत-ग्रहण ॥ ४४४ ॥

॥ ४२७ ॥ अनन्त ब्रह्माण्ड जिनकी शक्ति के वश में रहते हैं वे ही प्रभु प्रेमरस में आकर पृथ्वी पर नाचते थे ॥ ४२८ ॥ जिन प्रभु के दर्शन के लिये सब वेद कामना करते हैं वे ही प्रभु सब जनों के सामने नाच रहे थे ॥ ४२९ ॥ इस प्रकार सब लोग बड़े प्रेमानन्द में डूब रहे थे अहो श्रीचैतन्यदेव के प्रकाश में संसार तर गया ॥ ४३० ॥ जितने मनुष्य चारों ओर से आ रहे थे वे सब ही प्रभु को नाचते हुए देखते थे ॥ ४३१ ॥ प्रभु को बाह्य ज्ञान नहीं था, प्रेमरस में विह्वल हो रहे थे यह देखकर सब लोग सुख-सिन्धु में डूब गये॥४३२॥ कुलिया ग्राम के आस-पास जितने उत्तम-मध्यम व नीच प्रकार के पापी मनुष्य थे वे सब ही पार हो गये ॥ ४३३ ॥ कुलिया ग्राम में श्रीचैतन्यदेव का प्रकाश हुआ सुनकर सब कर्मों का बन्धन टूट जाते हैं ॥४३४॥ सब जीवों को प्रभु ने दर्शन देकर उनकी चित्तवृत्ति सुखमय कर दी ॥ ४३५ ॥ तब श्रीप्रभु बाह्य दशा में आकर अपने सब पार्षदों के साथ बैठ गये ॥ ४३६ ॥ उसी समय एक ब्राह्मण ने आकर प्रभु के चरण दृढ़ता से पकड़ लिये ॥ ४३७ ॥ ब्राह्मण ने कहा "प्रभो मेरा एक निवेदन है यदि क्षमा मान देओ तो कहूँ ?" ॥ ४३८ ॥ भक्ति का प्रभाव न जानकर मुझ पापी ने (आत्म-हत्या करके) बहुत निन्दा की ॥ ४३९ ॥ "कलियुग में कैसा वैष्णव और कैसा कीर्तन है ?" इसी प्रकार हर समय बकता रहता था ॥ ४४० ॥ हे प्रभो! उन पाप कर्मों को अब स्मरण करते हुए क्षण-क्षण में मेरा चित्त सब तरह से जलता है ॥४४१॥ आपका प्रताप संसार उद्धार करने के लिये सिंहरूप हैं, सो मेरा वह पाप किस प्रकार नाश होगा—बताइये ? ॥ ४४२ ॥ ब्राह्मण के अकपट वचन सुनकर श्रीशचीनन्दन हँसकर उपाय बताने लगे ॥ ४४३ ॥ हे ब्राह्मण! सुनो जिस जिस मुख से विष भक्षण किये हो यदि उसी मुख से अमृत भी ग्रहण करो तो विष जीर्ण होकर देह अमर

विषो हय जीर्ण, देह हयत अमर । अमृत प्रभावे एवे शुनह उत्तर ॥ ४४५ ॥
ना जानिञा यत तुमि करिले निन्दन । से केवल विष तुमि करिले भोजन ॥ ४४६ ॥
परम-अमृत एवे कृष्ण-गुण-नाम । निरवधि सेइ मुखे कर तुमि पान ॥ ४४७ ॥
ये मुखे करिले तुमि वैष्णव निन्दन । सेइ मुखे कर तुमि वैष्णव वन्दन ॥ ४४८ ॥
सभा हैते भक्तिर महिमा बाढ़ाइया । गीत कवित्व विप्र कर तुमि गिया ॥ ४४९ ॥
कृष्ण-यश-परानन्द-अमृते तोमार । निन्दा-विष यत सब करिब संहार ॥ ४५० ॥
एइ कहि सभारे, तोमारे ना केवल । ना जानिञा निन्दा करिलेक ये सकल ॥४५१॥
आर यदि निन्दा-कर्म कभू ना आचरे । निरवधि विष्णु-वैष्णवेर स्तुति करे ॥४५२॥
ए सकल पाप घूचे एइशे उपाये । कोटि प्रायश्चित्ते ओ अन्यथा नाहि जाये ॥४५३॥
चल विप्र कर गिया भक्तिर वर्णन । तबे से तोमार सर्व-पाप-विमोचन ॥४५४॥
सकल वैष्णव श्रीमुखेर वाक्य शुनि । आनन्दे करेन जय-जय हरिध्वनि ॥४५५॥
निन्दा पातकेर एइ प्रायश्चित्त सार । कहिलेन श्रीगौरसुन्दर अवतार ॥४५६॥
एइ आज्ञा ये ना माने, निन्दे साधुजन । दुख सिन्धु-माझे भासे सेइ पापिगण ॥४५७॥
चैतन्येर आज्ञा ये मानये वेद सार । सुखे सेइ गण हय भवसिन्धु-पार ॥४५८॥
विप्रेरे करिते प्रभु तत्त्व-उपदेश । सेक्षणे पण्डित-देवानन्देर प्रवेश ॥ ४५९ ॥
गृहवासे जखने आछिला गौरचन्द्र । तखने जतेक करिलेन परानन्द ॥ ४६० ॥
से समये देवानन्द पण्डितेर मने । नहिल विश्राम, ना देखिला ते-कारणे ॥४६१॥

---

हो जायगा, सुनो यही इसका उत्तर ॥ ४४४-४४५ ॥ अनजाने में जानकर तुमने जितनी निन्दा की वह तुमने केवल विष ही खाया ॥ ४४६ ॥ अब उसी मुख से परम अमृतमय कृष्ण के गुण व नामों का पान ( गान ) करो ॥४४७॥ जिस मुख से तुमने वैष्णवों की निन्दा की थी, उसी मुख से तुम वैष्णव वन्दना करो ॥४४८॥ हे विप्र ! सबके सामने भक्ति की महिमा का विस्तार करो तथा पद रचना करके गान करो ॥ ४४९ ॥ कृष्ण यश का परानन्द अमृत तुम्हारे निन्दारूप विष का सम्पूर्ण नाश कर देगा ॥४५०॥ यह बात मैं केवल तुम्हारे लिये ही नहीं वरन उन सभी के लिये कहता हूँ जिनने भी अनजान में वैष्णव निन्दा की हो ॥ ४५१ ॥ यदि निन्दा कर्म फिर कभी आचरण नहीं करोगे तथा विष्णु व वैष्णवों की निरन्तर स्तुति करते रहोगे तो॥४५२॥ इसी उपाय से यह सब पाप दूर हो जायेंगे अन्यथा करोड़ों प्रायश्चित्त करने पर भी वे नहीं जाँयगे ॥४५३॥ हे विप्र ! जाओ भक्ति का वर्णन करो तब ही तुम्हारे सब पाप दूर होंगे ॥ ४५४ ॥ श्रीमुख के वाक्य सुनकर सब वैष्णव आनन्द से जय हो, जय हो कहकर हरिध्वनि करने लगे ॥४५५॥ श्रीगौरसुन्दर अवतार ने वैष्णव निन्दा के पाप के प्रायश्चित्त का यह सार कहा ॥ ४५६ ॥ इस आज्ञा को न मानकर जो पापी साधु-भक्त की निन्दा करेगा वह दुःख समुद्र में ही डुबकी लगावेगा ॥४५७॥ जो श्रीचैतन्यदेव की आज्ञा को वेदों का सार रूप मानेगा वह भक्त होकर सुख-पूर्वक संसार समुद्र पार हो जावेगा ॥ ४५८ ॥ श्रीप्रभु ब्राह्मण को तत्त्व उपदेश कर ही रहे थे कि उसी क्षण में देवानन्द पण्डितजी का आगमन हुआ ॥ ४५९ ॥ जिस समय श्री-गौरचन्द्र गृहस्थ थे उस समय परम आनन्द के जितने खेल प्रभु ने किये थे ॥ ४६० ॥ उस समय पंडित

देखिबार योग्यता आछये पुनि तान । तबे केने ना देखिला, कृष्ण से प्रमाण ॥४६२॥
सन्यास करिया यदि ठाकुर चलिला । तान भाग्ये वक्रेश्वर आसिया मिलिला ॥४६३॥
वक्रेश्वर पण्डित-चैतन्य,प्रियपात्र । ब्रह्माण्ड पवित्र जाँर स्मरणेइ मात्र ॥४६४॥
निरवधि कृष्णप्रेम-विग्रह विह्वल । जाँर नृत्ये देवासुर-मोहित सकल ॥४६५॥
अश्रु, कम्प, स्वेद, हास्य, पुलक, हुङ्कार । वैवर्ण्य,आनन्द मूर्च्छा-आदि ये विकार ॥४६६॥
चैतन्य कृपाय मात्र नृत्ये प्रवेशिले । सकल आसिया वक्रेश्वर-देहे मिले ॥४६७॥
वक्रेश्वर पण्डितेर उद्दाम विकार । सकल कहिते शक्ति आछये काहार ॥४६८॥
दैवे देवानन्द पण्डितेर भाग्यवशे । रहिलेन ताँहार आश्रमे प्रेमरसे ॥ ४६९ ॥
देखिया ताँहार तेजःपूर्ण कलेवर । त्रिभुवने अतुलित विष्णुभक्ति घर ॥ ४७० ॥
देवानन्द पण्डित परम सुखी मने । अकैतवे प्रेमभावे करेन सेवने ॥ ४७१ ॥
वक्रेश्वर पण्डित नाचेन यतक्षण । वेत्र हस्ते आपने बुलेन ततक्षण ॥ ४७२ ॥
आपने करेन सब लोक एक-भिते । रहिले आपने धरि राखेन कोलेते ॥ ४७३ ॥
ताँहार अङ्गेर धूला बड़ भक्ति-मने । आपनार सर्व-अङ्गे करेन लेपने ॥ ४७४ ॥
ताँर सङ्गे थाकि, ताँर शुनिञा प्रकाश । तखने जन्मिल प्रभु चैतन्ये विश्वास ॥४७५॥
वैष्णव सेवार फल कहये पुराणे । तार साक्षी एइ सभे देख विद्यमाने ॥ ४७६ ॥
आजन्म धार्मिक उदासीन ज्ञानवान् । भागवत अध्यापना बिने नाहि आन ॥४७७॥

---

देवानन्द के मनमें विश्वास नहीं होता था उसी कारण से दर्शन भी नहीं किये थे ॥ ४६१ ॥ उनकी देखने की योग्यता थी फिर भी क्यों नहीं देखा–यह तो कृष्ण ही जाने ॥४६२॥ जब श्रीगौरचन्द्र सन्यास लेने चले गये, तब उनके भाग्य से श्रीवक्रेश्वरजी आकर मिल गये ॥ ४६३ ॥ श्रीवक्रेश्वर पण्डितजी श्रीचैतन्यदेव के प्रियपात्र थे जिनके स्मरण मात्र करने से ब्रह्माण्ड पवित्र हो जाता है ॥ ४६४ ॥ जिनका कृष्ण-प्रेममय विग्रह निरन्तर विह्वल रहता था तथा जिनके नृत्य पर देवता व असुर सभी प्रकृति के मनुष्य मोहित हो जाते थे ॥ ४६५ ॥ अश्रु-कम्प-स्वेद-हास्य-पुलक-हुङ्कार-वैवर्ण्य-आनन्द मूर्च्छा आदि प्रेम के जितने विकार हैं, वे श्रीचैतन्यदेव की कृपा से उनके नृत्य आरम्भ करते ही श्रीवक्रेश्वरजी के देह में सब आकर प्रगट हो जाते थे ॥ ४६६-४६७ ॥ श्रीवक्रेश्वर पण्डितजी के उद्दाम प्रेम विकार को सम्पूर्ण रीति से कहने की कौन की सामर्थ्य है ? ॥ ४६८ ॥ दैवयोग से देवानन्द पण्डित के भाग्य से ही वे उनके आश्रम में प्रेमरस में विभोर हो (कुछ काल के लिये) ठहरे ॥ ४६९ ॥ त्रिभुवन में तुलना रहित विष्णुधारी उनके तेजः पूर्ण शरीर को देखकर श्रीदेवानन्द पण्डित मनमें प्रसन्न हुए और उनने कपट शून्य प्रेमभाव से उनकी सेवा की ॥ ४७०-४७१ ॥ श्रीवक्रेश्वर पण्डित जितनी देर नाचते रहे उतनी देर तक स्वयं हाथ में बेत लेकर घूमते रहे ॥ ४७२ ॥ आपही कभी दर्शकों को एक ओर करते तो कभी अपनी जेट में उन्हें भरते थे ॥ ४७३ ॥ उनके अंग की धूलि को विशेष भक्ति पूर्वक मनसे अपने सब अङ्गों में लेपन करते थे तथा ॥ ४७४ ॥ उनके संग में रहकर तथा उनके भाव प्रकाशन को देख-सुन कर ही उन्हें उन दर्शकों को श्रीचैतन्यदेव में विश्वास उत्पन्न हुआ ॥४७५॥ वैष्णव सेवा का जो फल पुराणों में कहा है वह सब प्रत्यक्ष देखलो यही सब उसके साक्षी उपस्थित

शान्त दान्त जितेन्द्रिय निर्लोभ निर्विषय । प्राय आर कतेक वा गुण ताने हय ।।४७८।।
तथापिह गौरचन्द्रे नहिल विश्वास । वक्रेश्वर-प्रसादे से कुबुद्धि-विनाश ।।४७९।।
'कृष्णसेवा हैतेओ वैष्णवसेवा बड़' । भागवत-आदि सर्वशास्त्रे कैल दढ़ ।।४८०।।
तथाहि "सिद्धिर्भवति वा नेति संशयोऽच्युतसेविनाम् । निःसंशयस्तु तद्भक्तपरिचर्यारतात्मनाम्" ।।६।।
एतेके वैष्णवसेवा परम उपाय । भक्तसेवा हैते से सभेइ कृष्ण पाय ।।४८१।।
वक्रेश्वर पण्डितेर सङ्गेर प्रभावे । गौरचन्द्र देखिते चलिला अनुरागे ।।४८२।।
वसिया आछेन गौरचन्द्र भगवान् । देवानन्द पण्डित हइला विद्यमान ।।४८३।।
दण्डवत् देवानन्द पण्डित करिया । रहिलेन एक-भिते संकोचित हैया ।।४८४।।
प्रभुओ ताहाने देखि सन्तोष हइला । विरल हइया ताने लइया वसिला ।।४८५।।
पूर्वे तान यत किछु छिल अपराध । सकल क्षमिया प्रभु करिला प्रसाद ।।४८६।।
प्रभु बोले "तुमि ये सेविला वक्रेश्वर । अतएव हैला तुमि आमार गोचर ।।४८७।।
वक्रेश्वर पण्डित-कृष्णेर पूर्ण शक्ति । से-इ कृष्ण पाय, ये ताहारे करे भक्ति ।।४८८।।
वक्रेश्वर-हृदये कृष्णेर निज घर । कृष्ण नृत्य करेन नाचिते वक्रेश्वर ।।४८९।।
ये ते-स्थाने यदि वक्रेश्वर-सङ्ग हय । सेइ स्थान सर्वतीर्थ-श्रीवैकुण्ठमय ।।४९०।।
शुनि विप्र-देवानन्द प्रभुर वचन । जोड़हस्ते लागिलेन करिते स्तवन ।।४९१।।
"जगत-उद्धार लागि तुमि कृपामय । नवद्वीप-माझे आसि हइला उदय ।।४९२।।

---

।। ४७६ ।। जो जन्म से ही बड़े धार्मिक ज्ञानवान् व जगत् से उदासीन थे भागवत पठन पाठन के अतिरिक्त और कुछ न करते थे ।। ४७७ ।। तथा शान्त, दान्त, जितेन्द्रिय, निर्लोभ व विषय शून्य भी थे-प्राय और भी कितने ही गुण उनमें थे ।। ४७८ ।। तथापि श्रीगौरचन्द्र में उन्हें विश्वास नहीं हुआ था अब श्रीवक्रेश्वर अनुग्रह से उनकी वह कुबुद्धि नष्ट हो गई ।। ४७९ ।। कृष्ण सेवा से भी वैष्णवों की सेवा श्रेष्ठ है इसको भागवत आदि सब शास्त्रों ने पुष्ट किया है ।। ४८० ।। जो केवल मात्र अच्युत भगवान् की सेवा करते हैं, उनको सिद्धि होती है अथवा नहीं होती उनके विषय में ऐसा संशय है, परन्तु जिनका चित्त उस भगवान् के भक्तों की सेवा में निरत है उनके लिये इस प्रकार का संशय कदापि होता ही नहीं ।। ६ ।। इसी से वैष्णव सेवा ही परम उपाय है जो भक्तों की सेवा करेंगे वे सब ही कृष्णचन्द्र को प्राप्त होंगे ।। ४८१ ।। श्रीवक्रेश्वर पण्डित के सङ्ग के प्रभाव से श्रीदेवानन्दजी गौरचन्द्र के दर्शन करने को बड़े अनुराग से चले ।। ४८२ ।। श्रीगौरचन्द्र भगवान् विराजमान थे तब ही देवानन्द पण्डित सामने आ उपस्थित हुए तथा ।। ४८३ ।। ( देवानन्द पण्डित ने ) दण्डवत् की और संकुचित होकर एक ओर को खड़े हो गये ।। ४८४ ।। श्रीगौर-चन्द्र भी उनको देखकर सन्तुष्ट हुए तथा उनके साथ एकान्त में बैठे ।। ४८५ ।। उनका जो कुछ पहिला अपराध था वह श्रीगौरचन्द्र ने क्षमा करके अनुग्रह किया ।। ४८६ ।। श्रीप्रभु बोले "तुमने जो श्रीवक्रेश्वर की सेवा की है, इसी से तुम मेरे सम्मुख हो ।। ४८७ ।। श्रीपण्डित वक्रेश्वरजी कृष्ण की पूर्ण शक्ति हैं जो उनकी भक्ति करता है वही कृष्ण ( दर्शन ) लाभ करता है ।। ४८८ ।। श्रीवक्रेश्वर का हृदय श्रीकृष्ण का निज घर है वक्रेश्वर के नाचने पर कृष्ण भी नृत्य करते हैं ।। ४८९ ।। जिस-जिस स्थान में श्रीवक्रेश्वर का संग होय वह सब स्थान श्रीभागवतमय तीर्थ हैं ।। ४९० ।। देवानन्द ब्राह्मण श्रीप्रभु के वचन सुनकर हाथ जोड़कर

मुञि पापी दैव दोषे तोमा ना जानिलूँ । तोमार परमानन्दे वंचित हइलूँ ॥४६३॥
सर्व-भूत-कृपालुता तोमार स्वभाव । एइमागों 'तोमाते हउक अनुराग' ॥४६४॥
एक निवेदन मोर तोमार चरणे । करिमू उपाय तार बलिबा आपने ॥४६५॥
मुञि अ-सर्वज्ञ-सर्वज्ञेर ग्रन्थ लैया । भागवत पढ़ाङ आपने अज्ञ हैया ॥४६६॥
किवा बाखानिमु पढ़ाइमु 'वा केमने । इहा प्रभु आज्ञा मोरे करिबा आपने ॥४६७॥
शुनि तान वाक्य गौरचन्द्र भगवान् । कहिते लागिला भागवतेर प्रमाण ॥४६८॥
"शुन विप्र भागवते एइ बाखानिबा । 'भक्ति' बिनु आर किछु मुखे ना आनिबा ॥४६९॥
आद्य-मध्य-अन्त्ये भागवते एइ कय । विष्णुभक्ति नित्य सिद्ध अक्षय अव्यय ॥५००॥
अनन्त ब्रह्माण्डे सबे सत्य विष्णुभक्ति । महाप्रलये ओ यार थाके पूर्ण शक्ति ॥५०१॥
मोक्ष दिया भक्ति गोप्य करे नारायणे । हेन भक्ति ना जानि कृष्णेर कृपा बिने ॥५०२॥
भागवत शास्त्रे से भक्तिर तत्त्व कहे । तेञि भागवतसम कोन शास्त्र नहे ॥५०३॥
येन रूप मत्स्य-कूर्म-आदि अवतार । आविर्भाव तिरोभाव येन ता' समार ॥५०४॥
एइमत भागवत कारो कृत नय । आविर्भाव तिरोभाव आपनेइ हय ॥५०५॥
भक्ति योगे भागवत व्यासेर जिह्वाय । स्फुर्ति से हइल मात्र कृष्णेर कृपाय ॥५०६॥
ईश्वरेर तत्त्व येन बूझये ना याय । एइ मत भागवत-सर्व शास्त्रे गाय ॥५०७॥
'भागवत बूझि' हेन यार आछे ज्ञान । से-इ नाहि बूझे भागवतेर प्रमाण ॥५०८॥

स्तुति करने लगे—॥ ४६१ ॥ हे कृपामय तुम जगत् उद्धार के निमित्त नवद्वीप में आकर प्रगट हुए हो ॥४६२॥ मैं पापी अपने दुर्दैव के दोष से आपको पहिचान नहीं सका तथा आपकी परम आनन्दमयी लीलाओं से वंचित रहा ॥ ४६३ ॥ आपका स्वभाव तो सब जीवों पर दया करने का है अब मैं आपसे यही माँगता हूँ कि आप में मेरा अनुराग हो ॥ ४६४ ॥ आपके चरणों में एक और निवेदन करता हूँ उसका भी उपाय कृपा करके आप स्वयं बतावें ॥ ४६५ ॥ "मैं तो सर्वज्ञ नहीं हूँ परन्तु सर्वज्ञों का ग्रन्थ भागवत पढ़ाता हूँ" और स्वयं मूर्ख हूँ ? ॥ ४६६ ॥ तो कैसे इसकी व्याख्या करूँ व किस प्रकार पढ़ाऊँ ? प्रभो यह मेरे लिये स्वयं आज्ञा कीजिये ॥ ४६७ ॥ गौरचन्द्र भगवान् उनके वाक्य सुनकर भागवत के ही प्रमाण कहने लगे ॥ ४६८ ॥ हे विप्र ! सुनो भागवत की इस प्रकार व्याख्या करो कि भक्ति के अतिरिक्त मुख से कुछ मत कहना ॥ ४६९ ॥ भागवत के आदि मध्य व अन्त में यही कहा है अक्षय तथा व्यय रहित विष्णु भक्ति ही नित्य सिद्ध है ॥ ५०० ॥ अनन्त ब्रह्माण्डों में केवल विष्णु-भक्ति ही सत्य है महाप्रलय में भी उसकी पूर्ण शक्ति रहती है ॥ ५०१ ॥ नारायण मोक्ष देकर भक्ति को छुपा लेते हैं ऐसी भक्ति को कृष्ण की कृपा बिना नहीं जान सकते ॥ ५०२ ॥ भागवत शास्त्र में उसी भक्ति का तत्त्व कहा है इसी भागवत के समान कोई शास्त्र नहीं है ॥ ५०३ ॥ जिस प्रकार मत्स्य कूर्म आदि होते हैं तथा उन सब का आविर्भाव तिरोभाव जैसे होता है ॥ ५०४ ॥ इसी प्रकार भागवत भी किसी की रचित नहीं है अपनी इच्छा से ही प्रगट व अप्रगट होते हैं ॥५०५॥ कृष्ण की कृपा से ही भक्ति-योग के द्वारा श्रीव्यासजी की जिह्वा पर श्रीभागवत का स्फुरण मात्र हुआ था ॥ ५०६ ॥ ईश्वर का तत्त्व जिस प्रकार समझा नहीं जाता उसी प्रकार का भागवत तत्त्व भी

अज्ञ हइ भागवते ये लय शरण । भागवत-अर्थ तार हय दरशन ॥५०९॥
प्रेममय भागवत-कृष्णेर श्रीअङ्ग । याहाते कहेन यत गोप्य कृष्ण-रङ्ग ॥५१०॥
वेदशास्त्र पुराण कहिया वेदव्यास । तथापि चित्तेर नाहि पायिला प्रकाश ॥५११॥
यखने श्रीभागवत जिह्वाय स्फुरिल । ततक्षणे चित्तवृत्ति प्रसन्न हइल ॥५१२॥
हेन ग्रन्थ पढ़ि केहो पड़ये सङ्कटे । शुन विप्र तोमारे कहिये अकपटे ॥५१३॥
आद्य-मध्य-अवसाने तुमि भागवते । भक्तियोग मात्र वाखानिह सर्वमते ॥५१४॥
तबे आर तोमार नहिब अपराध । सेइक्षणे चित्तवृत्त्ये पाइब प्रसाद ॥५१५॥
सकल शास्त्रेर मात्र 'कृष्णभक्ति' कय' । विशेषत भागवत-भक्तिरस मय ॥५१६॥
चल तुमि याह अध्यापना कर' गिया । कृष्णभक्ति-अमृत सभारे बुझाइया ॥५१७॥
देवानन्द पण्डित प्रभुर वाक्य शुनि । दण्डवत् प्रणाम करिला भाग्य' मानि ॥५१८॥
प्रभुर चरण काय-मने करि ध्यान । चलिलेन विप्र करि अनेक प्रणाम ॥५१९॥
सभारेइ एइ भागवतेर व्याख्यान । कहिलेन श्रीगौरसुन्दर भगवान् ॥५२०॥
'भक्तियोग' मात्र भागवतेर व्याख्यान । आद्य-मध्य-अन्त्ये कभू ना बुझाने आन ॥५२१॥
ना वाखाने भक्ति, भागवत ये पढाय । व्यर्थ वाक्य व्ययकरे, अपराध पाय ॥५२२॥
मूर्तिमन्त भागवत-भक्तिरस मात्र । इहा बूझे-ये हय कृष्णेर कृपापात्र ॥५२३॥
भागवत पुस्तको थाकये यार घरे । कोन अमङ्गल नाहि याय तथाकारे ॥५२४॥

---

है यही सर्व शास्त्र कहते हैं ॥ ५०७ ॥ "मैं भागवत को समझता हूँ" जो ऐसा समझता है वही भागवत के तथ्य प्रमाण को नहीं समझता ॥ ५०८ ॥ जो मूर्ख बनकर भागवत की शरण लेता उसी को भागवत का दिव्य अर्थ देख पड़ेगा ॥ ५०९ ॥ भागवत प्रेममय है तथा श्रीकृष्ण का श्रीअङ्ग ही है जिसमें कृष्ण के समस्त गुप्त प्रेमरङ्ग वर्णन हुआ है॥५१०॥वेदव्यासजी ने वेद-शास्त्र व पुराणों की रचना की परन्तु चित्त में प्रकाश नहीं हुआ ॥ ५११ ॥ जिस समय श्रीमद्भागवत जीभ पर स्फुरण हुई उसी क्षण चित्तवृत्ति खिल उठी॥५१२॥ ऐसे ग्रन्थ को भी पढ़कर कोई २ सङ्कट में पड़ जाते हैं, हे विप्र ! सुनो तुमसे निष्कपट होकर कहता हूँ॥५१३॥ तुम सब प्रकार से भागवत के आदि मध्य व अन्त में एक मात्र भक्ति-योग की व्याख्या करना ॥ ५१४ ॥ तब तुमसे और अपराध नहीं होगा तथा उसी क्षण चित्तवृत्ति में प्रसन्नता पाओगे ॥ ५१५ ॥ वैसे तो सब ही शास्त्रों में केवल कृष्ण-भक्ति का ही वर्णन है, परन्तु भागवत तो विशेष रूप से भक्ति रसमय ग्रन्थ है ॥५१६॥ कृष्ण-भक्ति का अमृत सब को समझाओ—बस इसी प्रकार जाकर सबको भागवत पढ़ाना ॥५१७॥ देवानन्द पण्डित ने प्रभु के वाक्य सुनकर अपना बड़ा भाग्य माना और दण्डवत् प्रणाम की ॥ ५१८ ॥ प्रभु के चरणों को शरीर व मन से ध्यान करके तथा अनेक प्रणाम करके पंडित देवानन्द चल दिये ॥ ५१९ ॥ श्रीगौरसुन्दर भगवान ने श्रीमद्भागवत की यह प्रशंसा सब ही से कही ॥ ५२० ॥ भागवत की व्याख्या के आदि मध्य व अन्त में एक मात्र भक्ति-योग के सिवाय अन्य कुछ भी कभी बोध मत कराना ॥ ५२१ ॥ जो भागवत पढ़ाते और भक्ति का वर्णन नहीं करते वे शब्दों का व्यर्थ व्यय तो करते ही हैं—साथ ही अपराध कमाते हैं ॥ ५२२ ॥ श्रीभागवत तो साकार भक्तिरस ही है इसे तो वही समझेगा जो ( भागवत का )

भागवत पूजिले कृष्णेर पूजा हय। भागवत-पठन-श्रवणे भक्ति पाय ॥ ४२५ ॥
दुइ स्थाने 'भागवत' नाम शुनि मात्र। ग्रन्थ भागवत आर कृष्ण कृपापात्र ॥ ४२६ ॥
नित्य पूजे पड़े शुने चाहे भागवत। सत्य-सत्य सेहो हइवेक सेइ मत ॥ ४२७ ॥
हेन भागवत कोन दुष्कृति पढ़िया। नित्यानन्द निन्दा करे तत्त्व ना जानिया ॥ ४२८ ॥
भागवत रस-नित्यानन्द मूर्तिमन्त। इहा जाने ये हय परम भाग्यवन्त ॥ ४२९ ॥
निरवधि नित्यानन्द सहस्र वदने। भागवत रस से गायेन अनुक्षणे ॥ ४३० ॥
आपनेइ नित्यानन्द अनन्त यद्यपि। तथापिह पार नाहि पायेन अद्यापि ॥ ४३१ ॥
हेन भागवत हेन अनन्त अपार। इहाते कहिल सबे भक्तिरस सार ॥ ४३२ ॥
देवानन्द पण्डितेर लक्ष्ये सभा कारे। भागवत अर्थ बुझाइलेन ईश्वरे ॥ ४३३ ॥
एइ मत ये-ये जन आइसे बूझिते। सभारेइ प्रतिकार करिला सुरीते ॥ ४३४ ॥
कुलिया ग्रामेते आसि श्रीकृष्णचैतन्य। हेन नाहि जारे प्रभु ना करिला धन्य ॥४३५॥
सर्व लोक सुखी हैला प्रभुरे देखिया। पुनः पुन सभे देखे नयन भरिया ॥४३६॥
मनोरथ पूर्ण हैल देखि सर्वलोक। आनन्दे भासये पासरिया दुःख-शोक ॥४३७॥
ए सब विलास ये शुनये हर्ष-मने। श्रीचैतन्य सङ्ग पाय सेइ सब जने ॥४३८॥
यथा तथा जन्मुक-सभार श्रेष्ठ हय। कृष्ण-यश शुनिले कखनो मन्द नय ॥४३९॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान ॥४४०॥

इति श्रीचैतन्यभागवते अन्त्यखण्डे नीलाचलविलासादि-वर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

कृपापात्र होगा ॥ ४२३ ॥ जिसके घर में भागवत की पोथी विराजमान है उसके होने से ऐसा कौन अमङ्गल है जो न जावे ॥ ४२४ ॥ भागवत की पूजा करने से श्रीकृष्ण की पूजा हो जाती है तथा भागवत के पाठ व श्रवण करने से भक्ति लाभ होती है ॥ ४२५ ॥ "भागवत" शब्द दो बातों ही के लिये सुना जाता है—एक तो ग्रन्थ भागवत दूसरा कृष्ण-भक्त ॥ ४२६ ॥ जो नित्य भागवत पूजन-पाठ व श्रवण करता है वह सत्य में भागवत ही हो जाता है मैं सत्य कहता हूँ ॥ ४२७ ॥ ऐसी भागवत को कोई पापी मनुष्य पढ़कर तत्त्व न समझने से नित्यानन्द की निन्दा करते हैं ॥ ४२८ ॥ भागवत का रस तो मूर्तिमान नित्यानन्द है इसको जो जानता है वह बड़ा भाग्यवान है ॥ ४२९ ॥ श्रीशेषजी सहस्र मुखों से निरन्तर भागवत रस को आदर से गान करते रहते हैं ॥ ४३० ॥ यद्यपि श्रीशेषजी स्वयं नित्यानन्द स्वरूप ही हैं तथापि आज तक इसका पार नहीं पा सके ॥ ४३१ ॥ भागवत ऐसी अनन्त अपार है इसमें केवल भक्ति रस का सार ही वर्णन किया है ॥ ४३२ ॥ श्रीप्रभु पाद ने देवानन्द पण्डित को लक्ष्य करके सभी को भागवत के अर्थ ज्ञान कराया ॥४३३॥ इस प्रकार जितने भी मनुष्य पूछने आते हैं उन सभी को अच्छी प्रकार से समझाते थे ॥ ४३४ ॥ कुलिया ग्राम में आने पर ऐसा कोई नहीं हुआ जिसे श्रीचैतन्य प्रभु ने धन्य न किया हो ॥४३५॥ प्रभु के दर्शन करके सब मनुष्य सुखी हुए सब मनुष्य नेत्र भरकर बारम्बार दर्शन कर रहे थे ॥ ४३६ ॥ दर्शन करके सब मनुष्य पूर्ण मनोरथ हो गये आनन्द में डूब गये तथा दुःख-शोक जाता रहा ॥ ४३७ ॥ जो इन सब विलासों को प्रसन्न मनसे सुनेगा वे सभी श्रीचैतन्यचन्द्र सङ्ग लाभ करेंगे ॥ ४३८ ॥ चाहे कहीं भी जन्म हो वे सभी श्रेष्ठ हैं क्योंकि कृष्ण-यश सुनना कभी बुरा नहीं होता ॥४३९॥ श्रीवृन्दावनदास ठाकुर (ग्रन्थकार) श्रीकृष्ण-चैतन्य एवं नित्यानन्दचन्द्र को हृदय में धारण करके उनके युगल चरण-कमल की महिमा गान करते हैं ॥४४०॥

# चतुर्थोऽध्यायः

जय जय जय कृपासिन्धु गौरचन्द्र । जय जय सकल-मङ्गल-पद द्वन्द्व ॥ १ ॥
जय जय श्रीकृष्णचैतन्य न्यासिराज । जय जय चैतन्येर भकत समाज ॥ २ ॥
हेन मते प्रभु सर्व जीव उद्धारिया । मथुराय चलिलेन भक्तगोष्ठी लैया ॥ ३ ॥
गङ्गा तीरे-तीरे प्रभु लइलेन पथ । स्नान-पाने गङ्गार पूरिल मनोरथ ॥ ४ ॥
गौड़ेर निकटे गङ्गा तीरे एक ग्राम । ब्राह्मण समाज-तार 'रामकेलि' नाम ॥ ५ ॥
दिन-चारि-पाँच प्रभु सेइ पुण्य स्थाने । आसिया रहिला येन केहो नाहि जाने ॥ ६ ॥
सूर्येर उदय कि कखनो गोप्य हय । सर्वलोक शुनिलेन चैतन्य विजय ॥ ७ ॥
सर्वलोक देखिते आइसे हर्ष-मने । स्त्री-बालक-वृद्ध-आदि सज्जन-दुर्जने ॥ ८ ॥
निरवधि प्रभुर आवेशमय अङ्ग । प्रेमभक्ति बिनु आर नाहि कोनो रङ्ग ॥ ९ ॥
हुङ्कार, गर्जन, कम्प, पुलक, क्रन्दन । निरन्तर आछाड़ पड़ये घने घन ॥ १० ॥
निरवधि भक्तगण करेन कीर्तन । तिलार्द्धेको अन्य कार्य नाहि कोनो क्षण ॥ ११ ॥
हेन से क्रन्दन प्रभु करेन डाकिया । लोके शुने क्रोशेकेर पथे त थाकिया ॥ १२ ॥
यद्यपिह भक्तिरसे अज्ञ सर्वलोक । तथापिह प्रभु देखि सभार सन्तोष ॥ १३ ॥
दूरे थाकि सर्वलोक दण्डवत करि । सभे मेलि उच्च करि बोले 'हरि-हरि' ॥ १४ ॥
शुनि मात्र प्रभु हरिनाम लोक मुखे । विशेषे उल्लास बाड़े परानन्द सुखे ॥ १५ ॥
'बोल बोल बोल' प्रभु बोले बाहु तुलि । विशेषे बोलेन सभे हइ कुतूहली ॥ १६ ॥

---

कृपासिन्धु गौरचन्द्र की जय हो ३ सकल मंगलस्वरूप आपके युगल चरणों की जय हो जय हो ॥१॥ सन्यासिराज श्रीकृष्णचैतन्य की जय हो जय हो और चैतन्यचन्द्र के भक्त समाज की जय हो २ ॥२॥ इस प्रकार गौरचन्द्र सब जीवों का उद्धार करके भक्तमण्डली के साथ मथुरा को चल दिये ॥ ३ ॥ गौरचन्द्र ने गङ्गा के किनारे २ मार्ग गहण किया और स्नान-पान करके गङ्गा के मनोरथ पूर्ण किये ॥ ४ ॥ गौड़ नगर के निकट गङ्गा के किनारे रामकेलि नामक एक ग्राम उसमें ब्राह्मण समाज रहती थी ॥५॥ श्रीप्रभु उस पुण्य स्थान में चार-पाँच दिन इस प्रकार आकर रहे जिससे कोई पहिचान न ले ॥ ६ ॥ सूर्य का उदय भी भला कभी गुप्त रह सकता है, सो सब लोगों को श्रीचैतन्यदेव का आगमन ज्ञात हो गया ॥ ७ ॥ स्त्री, बालक,वृद्ध आदि सभी तरह के भले-बुरे मनुष्य प्रसन्न मन से दर्शन करने को आने लगे ॥८॥ श्रीप्रभु का शरीर निरन्तर आवेश में रहा था-प्रेम-भक्ति के अतिरिक्त अन्य कोई भाव नहीं था ॥९॥ हुङ्कार-गर्जन-कम्प-पुलक व क्रन्दन होता रहता-पछाड़ खा-खाकर बारम्बार गिरते थे ॥ १० ॥ भक्तगण निरन्तर कीर्तन करते रहते थे अर्ध तिल मात्र समय के लिये भी किसी समय दूसरा काम नहीं करते थे ॥११॥ श्रीप्रभु ऐसे ऊँचे स्वर से रुदन करते थे कि एक कोस दूर मार्ग में खड़े होकर मनुष्य सुन लेते ॥ १२ ॥ यद्यपि जन साधारण भक्तिरस से अभिज्ञ ही थे तथापि श्रीप्रभु को देखकर सब प्रसन्न होते थे ॥ १३ ॥ सब मनुष्य दूर से ही दण्डवत् प्रणाम करते थे तथा सब मिलकर ऊँचे स्वर से हरि २ बोलने लगते १४ मनुष्यों के मुख से हरि नाम सुनने पर द

हेन से आनन्द प्रकाशेन गौर-राय । यवनेओ बोले 'हरि' अन्येर कि दाय ॥ १७ ॥
यवनेओ दूरे थाकि करे नमस्कार । हेन गौरचन्द्रेर कारुण्य अवतार ॥ १८ ॥
तिलार्द्धे को प्रभुर नाहिक अन्य कर्म्म । निरन्तर लओयायेन सङ्कीर्तन धर्म्म ॥१९॥
चतुर्दिगे थाकि लोक आइसे देखिते । देखिया काहारो चित्त ना लय जाइते ॥२०॥
सभे मेलि आनन्दे करेन हरिध्वनि । निरन्तर चतुर्दिगे आर नाहि शुनि ॥ २१ ॥
निकटे यवन राजा-परम दुर्वार । तथापिह चित्ते भय ना जन्मे काहार ॥ २२ ॥
निर्भय हइया सर्वलोक बोले 'हरि' । दुःख-शोक घर-द्वार सकल पासरि ॥ २३ ॥
कोटोयाल गिया कहिलेक राजा स्थाने । एक न्यासी आसियाछे रामकेलि ग्रामे ॥२४॥
निरवधि करये हिन्दुर सङ्कीर्तन । ना जानि ताँहार स्थाने मिले कत जन ॥२५॥
राजा बोले 'कह-कह सन्यासी केमन । कि खाय, कि नाम, कैछे देहेर गठन ॥२६॥
कोटोयाल बोले 'शुन शुनह गोसाञि । ए मत अद्भुत कभु देखि शुनि नाञि ॥२७॥
सन्यासीर शरीरेर सौन्दर्य देखिते । कामदेव-सम हेन ना पारि बलिते ॥ २८ ॥
जिनिञा कनक कान्ति, प्रकाण्ड शरीर । आजानुलम्बित भुज नाभि सुगभीर ॥ २९ ॥
सिंह-ग्रीव, गजस्कन्ध, कमल-नयान । कोटि चन्द्रो से मुखेर ना करि समान ॥ ३० ॥
सुरङ्ग अधर, मुक्ता जिनिञा दशन । काम-शरासन येन भ्रू भङ्ग-पत्तन ॥ ३१ ॥
सुन्दर सुपीन वक्ष लेपित-चन्दन । महाकटितटे शोभे अरुण-वसन ॥ ३२ ॥

---

महाप्रभु को परानन्द-सुख के कारण विशेष प्रसन्नता होती थी ॥१५॥ प्रभु भुजाएँ उठाकर "बोल-बोल-बोल" कहते और कुतूहलवश सभी ओर जोर-जोर से हरिध्वनि करते ॥ १६ ॥ श्रीगौरराय ने ऐसा आनन्द प्रकाशित किया कि दूसरों की तो क्या बात है यवन भी हरि २ कह रहे थे ॥ १७ ॥ यवन भी दूर खड़े होकर नमस्कार कर रहे थे श्रीगौरचन्द्र का ऐसा करुणाशील अवतार है ॥ १८ ॥ श्रीप्रभु अर्ध तिल समय को भी अन्य कर्म से नहीं बिताते थे-निरन्तर संकीर्तन धर्म का ही पालन कराते रहते थे॥१९॥चारों ओर से मनुष्य देखने को चले आ रहे थे और दर्शन करके किसी का चित्त जाने को नहीं होता था ॥ २० ॥ सब मनुष्य एक साथ मिलकर हरिध्वनि कर रहे थे चारों ओर निरन्तर और कुछ भी सुनाई नहीं पड़ता था ॥ २१ ॥ पास में ही अति दुर्दमनीय यवन राज का स्थान था तथापि किसी के मनमें भय नहीं होता था ॥२२॥ सब मनुष्य दुःख-शोक-घर-द्वार आदि को भूलकर निर्भय होकर हरि २ बोल रहे थे ॥ २३ ॥ कोतवाल ने राज-दर्बार में जाकर कहा कि रामकेलि ग्राम में एक सन्यासी आया है ॥ २४ ॥ निरन्तर हिन्दु-संकीर्तन कराता है न मालूम उसके पास कितने आदमी आ जाते हैं ? ॥ २५ ॥ राजा ने पूँछा कहो सन्यासी कैसा है ? क्या खाता है, क्या नाम है तथा उसकी देह गठन कैसी है ॥ २६ ॥ कोतवाल बोला "प्रभो ! सुनो, ऐसा अद्भुत पुरुष कभी देखा न सुना" ॥ २७ ॥ सन्यासी के शरीर की सुन्दरता कामदेव के समान दीखती है-कुछ कहा नहीं जाता ॥ २८ ॥ स्वर्ण की कान्ति को भी जीतने वाला बड़े आकार का शरीर है, भुजाएँ घुटनों तक हैं तथा नाभि देश गम्भीर है ॥ २९ ॥ सिंह की सी ग्रीवा, हाथी के से कन्धे व कमल समान नेत्र हैं करोड़ों चन्द्रमा भी उसके मुख के समानता नहीं करते ॥ ३० ॥ सुन्दर रङ्गीन होठ हैं, मोतियों की पंक्ति का

अरुण कमल येन चरण युगल । दश नख येन दश दर्पण निर्मल ॥ ३३ ॥
कोनो वा राज्येर कोनो राजार नन्दन । ज्ञान पाइ न्यासी हइ करये भ्रमण ॥ ३४ ॥
नवनीत हैते ओ कोमल सर्व अङ्ग । ताहाते अद्भुत शुन आछाड़ेर रङ्ग ॥ ३५ ॥
एक दण्डे पड़ेन आछाड़ शत-शत । पाषाण भाङ्गये तभू अङ्ग नहे क्षत ॥ ३६ ॥
निरन्तर सन्यासीर उर्द्ध रोमावली । पनसेर प्राय अङ्गे पुलक मण्डली ॥ ३७ ॥
क्षणे-क्षणे सन्यासीर हेन कम्प हय । सहस्र जनेओ धरिवारे शक्त नय ॥ ३८ ॥
दुइ लोचनेर जल अद्भुत देखिते । कत नदी वहे हेन ना पारि वलिते ॥ ३९ ॥
कखनो वा सन्यासीर हेन हास्य हय । अट्ट-अट्ट हास्ये प्रहरेक क्षमा नय ॥ ४० ॥
कखनो मूर्च्छित हय शुनिञा कीर्तन । सभे भय पाय, किछु ना थाके चेतन ॥४१॥
बाहु तुलि निरन्तर बोले हरिनाम । भोजन शयन आर नाहि किछु काम ॥ ४२ ॥
चतुर्दिगे हैते लोक आइसे देखिते । काहारो ना लय चित्त घरेरे आइते ॥४३॥
कत देखियाछे आमि-सब योगी ज्ञानी । ए मत अद्भुत कभू नाहि देखि शुनि ॥४४॥
कहिलाङ एइ महाराज तोमा स्थाने । देश धन्य हैल ए पुरुष आगमने ॥४५॥
ना खाय ना लय कारो, ना करे सम्भाष । सबे निरवधि एक कीर्तन विलास ॥४६॥
यद्यपि यवन राजा परम दुर्वार । कथा शुनि चित्ते बड़ हैल चमत्कार ॥ ४७ ॥
केशव-खाने राजा डाकि आनाइया । जिज्ञासये राजा बड़ विस्मय हइया ॥४८॥

---

जीतने वाले दाँत हैं, कामदेव के धनुष के समान उसके भौंओं का चलना है ॥ ३१ ॥ चन्दन लगाये हुए- सुन्दर अति स्थूल वक्षस्थल है तथा सुन्दर कमर में गेरुआ वस्त्र शोभा पा रहा है॥३२॥ रक्त कमल जैसे दोनों चरण हैं दसों नख दसों दर्पण जैसे थे ॥३३॥ किसी राज्य के किसी राज-पुत्र जान पड़ते हैं जो सन्यासी बन कर भ्रमण कर रहे हैं ॥ ३४ ॥ शरीर के सब अङ्ग माखन से भी कोमल हैं उस पर भी अद्भुत पछाड़ें खाता है यह विलक्षणता सुनो ॥ ३५ ॥ एक दण्ड में सौ-सौ बार पछाड़ें खाते हैं जिससे पत्थर टूट जाते हैं तो भी शरीर में चोट नहीं करती ॥ ३६ ॥ उस सन्यास के शरीर में पुलक होने पर रोमावली ( बाल ) बराबर खड़ी रहती हैं जैसे कटहल पर बाल खड़े होते हैं ॥ ३७ ॥ क्षण-क्षण में उस सन्यासी को ऐसी कम्प होती है कि हजारों भी पकड़ने में सामर्थ नहीं होते ॥ ३८ ॥ दोनों नेत्रों का जल अभूतपूर्व दीखता है-कह नहीं सकते कितनी नदियाँ बहती हैं ॥ ३९ ॥ कभी उ सन्यासी को ऐसी हँसी आती है कि एक पहर (३ घंटे) तक अट्टहास रुकता ही नहीं ॥४०॥ कभी कीर्तन सुनकर मूर्च्छित हो जाता है-सब डर जाते हैं कि चेतना ही नहीं रही ॥ ४१ ॥ भुजाएँ उठाकर निरन्तर हरि नाम बोलते रहते हैं-भोजन शयन से कुछ काम ही नहीं है ॥ ४२ ॥ चारों ओर से मनुष्य देखने चले आते हैं, कोई घर लौटने का मन नहीं करता है ॥ ४३ ॥ न जाने कितने जोगी ज्ञानी ( सन्यासी ) हम सबने देखे हैं-परन्तु ऐसा अद्भुत न तो कभी देखा न सुना ॥ ४४ ॥ हे महाराज ! आपसे यह इसलिये कहता हूँ कि इस पुरुष के आने से देश धन्य हो गया ॥ ४५ ॥ न कुछ खाता है न किसी से कुछ लेता है और न किसी से कुछ बोलता ही है केवल निरन्तर एक कीर्त्तन का ही आनन्द लेता है ॥ ४६ ॥ यवन राजा बड़ा दुर्दमनीय है तथापि यह कथा सुनकर मनमें बड़े अचम्भे

केमत ताँहार कथा, केमत मनुष्य । केमत गोसाञि तिंहो कहिवा अवश्य ॥५०॥
चतुर्दिगे थाकि लोग ताँहारे देखिते । कि निमित्त आइसे, कहिबे भालमते ॥५१॥
शुनिञा केशवखान-परम सज्जन । भय पाइ लुकाइया कहेन कथन ॥५२॥
के बोले 'गोसाञि' एक भिक्षुक सन्यासी । देशान्तरि गरीब वृक्षेर तलवासी ॥५३॥
राजा बोले गरीब ना बोल कभू ताने । महादोष हय इहा शुनिलेओ काणे ॥५४॥
हिन्दु जारे बोले 'कृष्ण' 'खोदाय' यवने । से-इ तिंहो, निश्चय जानिह सर्व जने ॥५५॥
आपनार राज्ये से आमार आज्ञा रहे । ताँर आज्ञा सर्व देशे शिरे करि बहे ॥५६॥
एइ निज राज्येइ आमारे कत जने । मन्द करिवारे लागियाछे मने-मने ॥ ५७ ॥
ताँहारे सकल देशे काय-वाक्य-मने । ईश्वर नहिले बिना-अर्थे भजे केने ॥५८॥
छय मास आजि आमि जीविका ना दिले । नाना युक्ति करिबेक सेवक-सकले ॥५९॥
आपनार खाइ लोक ताहाने सेविते । चाहे ताहा केहो नाहि पाय भाल मते ॥ ६०॥
अतएव तिंहो सत्य जानिह ईश्वर । 'गरीब' करिया ताँरे ना बोल उत्तर ॥६१॥
राजा बोले एइ मुञि बलिलूँ सभारे । केहो पाछे उपद्रव करये ताँहारे ॥६२॥
येखाने ताहान इच्छा, थाकुन सेखाने । आपनार शास्त्र मत करुन विधाने ॥६३॥
सर्वलोक लइ सुखे करुन कीर्तन । कि विरले थाकुन, ये लय ताँर मन ॥६४॥

---

में पड़ गया ॥४७॥ राजा ने केशवखान को बुलवाया और विस्मित होकर पूँछने लगा ॥४८॥ "केशवखान ! जिसे 'श्रीकृष्णचैतन्य' नाम से पुकारते हैं उसके विषय में तुम्हारी क्या राय है बताओ ?" ॥ ४९ ॥ उसकी क्या कथा है, वह कैसा है, वह कैसा गुसाइँ है ? यह सब ठीक-ठीक अवश्य कहो ॥ ५० ॥ उसे देखने को मनुष्य चारों ओर से ( आकर ) उपस्थित हैं ? वह किस निमित्त आया है ? अच्छी तरह से कहो ? ॥५१॥ परम सज्जन केशवखान राजा के शब्द सुनकर भयभीत हुआ और यथार्थ तथ्य छुपाकर बोला—॥ १५२ ॥ "गुसाइँ कौन कहता है ? वह तो एक भीख माँगने वाला गरीब परदेशी सन्यासी है जो वृक्षों के नीचे रहता है" ॥५३॥ राजा ने कहा उसे गरीब कभी मत कहो, यह तो कान से सुनकर भी बड़ा दोष होगा ॥५४॥ जन-साधारण का ऐसा निश्चय हैं कि हिन्दू जिसे कृष्ण कहते हैं व यवन खुदा कहते हैं यह वह ही हैं ॥५५॥ हमारी आज्ञा तो अपने ही राज्य में चलती है परन्तु उनकी आज्ञा को सब देशों में शिर पर धारण करते है ॥ ५६ ॥ अपने ही राज्य में कितने ही मनुष्य मन ही मन मेरा बुरा करने को लगे हुए हैं ॥ ५७ ॥ ईश्वर हुए बिना सभी देशवासी बिना स्वार्थ के मन-वचन शरीर से भला उसकी क्यों सेवा करते ? ॥ ५८ ॥ यदि छः महीने तक मैं सेवकों को वेतन न दूँ तो ( मेरे विरुद्ध ) अनेक युक्तियाँ प्रयोग करने लगेंगे ॥ ५९ ॥ परन्तु मनुष्य अपना खाकर उसकी सेवा करते हैं–फिर भी उन्हें भली प्रकार सेवा कर नहीं मिलती ॥६०॥ अतः उसे सचमुच ईश्वर ही जानो सो उसके लिये "गरीब" शब्द मत प्रयोग करो ॥ ६१ ॥ राजा ने कहा यह मैं इसलिए सबसे कहता हूँ कि पीछे कोई उसके साथ उपद्रव करे ॥ ६२ ॥ वह जहाँ रहना चाहे इच्छा-नुसार रहे और अपने शास्त्र के अनुसार व्यवहार करे ॥ ६३ ॥ चाहे सब मनुष्यों को लेकर सुख से कीर्तन

काजी बा कोटाल बा ताँहाके कोनो जने । किछु बलिलेइ तार लइमुँ जीवने ॥६५॥
एइ आज्ञा दिया राजा गेला अभ्यन्तर । हेन रङ्ग करायेन श्रीगौरसुन्दर ॥ ६६ ॥
जे हुसेन-साहा सर्व उड़ियार देशे । देवमूर्ति भाङ्गिलेक देउल-विशेषे ॥ ६७ ॥
हेन यवने ओ मानिलेक गौरचन्द्र । तथापिह एबे ना मानये यत अन्ध ॥ ६८ ॥
माथा मुड़ाइया सन्यासीर वेश धरे । चैतन्येर यश शुनि पोड़ये अन्तरे ॥ ६९ ॥
जार यश अनन्त-ब्रह्माण्डे परिपूर्ण । जार यशे अविद्या समूह करे चूर्ण ॥ ७० ॥
जार यशे शेष रमा अज भव मत्त । जार यश गाय चारि वेदे करि तत्त्व ॥ ७१ ॥
हेन श्रीचैतन्य-यशे यार असन्तोष । सर्वगुण थाकिलेओ तार सर्व दोष ॥ ७२ ॥
सर्व-गुण-हीन यदि चैतन्य चरणे । स्मरण करिले पाय वैकुण्ठ भुवने ॥ ७३ ॥
शुन-शुन आरे भाइ मंगल आख्यान । जाहा गाय आदि देव शेष भगवान् ॥ ७४ ॥
शुन-शुन अरे भाइ शेषखण्ड लीला । ये रूपे खेलिला कृष्ण सङ्कीर्तन खेला ॥ ७५ ॥
शुनिआ राजार मुखे सुसत्य वचन । तुष्ट हइलेन यत सज्जनेर गण ॥ ७६ ॥
सभे मेलि एक स्थाने बसिया निभृते । लागिलेन युक्तिवाद-मन्त्रणा करिते ॥ ७७ ॥
स्वभावेइ राजा महा-काल-यवन । महा तमोगुण बुद्धि जन्मे सर्वक्षण ॥ ७८ ॥
ओड्र देशे कोटि-कोटि प्रतिमा प्रासाद । भाङ्गिलेक कत कत करिल प्रमाद ॥ ७९ ॥
दैवे आसि सत्त्वगुण उपजिल मने । तेञि भाल कहिलेक आमा-सभा स्थाने ॥ ८० ॥

---

करे अथवा एकान्त में रहे जैसा उसका मन हो सो करे ॥ ६४ ॥ काजी अथवा कोतवाल अथवा कोई अन्य मनुष्य ही यदि उसको कुछ कहेगा तो मैं उसको प्राण दण्ड दूँगा ॥ ६५ ॥ यह आज्ञा देकर राजा भीतर चला गया, श्रीगौरसुन्दर ऐसा खेल कराते रहते हैं ॥ ६६ ॥ जिस हुसेनशाह ने सब उड़िया देश में मन्दिरों में देवमूर्तियों को विशेष रूप से भंग की थी ॥ ६७ ॥ ऐसा यवन भी श्रीगौरचन्द्र को मान गया तो भी अब जितने अन्धे सांसारिक हैं वे नहीं मानते ॥ ६८ ॥ मस्तक मुड़ाकर सन्यासी का वेश धारण करके श्रीचैतन्य-देव का यश सुनकर मनमें डाह करते हैं ॥ ६९ ॥ जिनका यश अनन्त ब्रह्माण्डों में परिपूर्ण हो रहा है—जिनका यश अविद्या के समूह को चूर्ण कर देता है ॥७०॥ जिसके यश से श्रीशेषजी, श्रीलक्ष्मीजी, ब्रह्माजी, शिव मत्त हैं और जिसके यश को चार वेद तत्त्व करके गान करते हैं ॥७१॥ ऐसे श्रीचैतन्यदेव के यश से जिसे प्रसन्नता नहीं होती उसमें सर्व सद्गुण होने पर भी उसका यह बहुत बड़ा दोष है ॥ ७२ ॥ और यदि सर्व गुणहीन होते हुए भी श्रीचैतन्य चरण का स्मरण करता है तो वैकुण्ठ प्राप्त होगा ॥ ७३ ॥ हे भाई सुनो ! जिस मङ्गलस्वरूप आख्यान को आदिदेव शेष भगवान् गाते हैं, उसे सुनो ॥७४॥ हे भाई (श्रीचैतन्य प्रभु की) अन्तिम लीला का भाग सुनो जिस प्रकार उन्होंने कृष्ण संकीर्तन का खेल खेला था वह सुनो॥७५॥ राजा के मुख से सुन्दर सत्य वचन सुनकर जितने सज्जन मनुष्य थे सभी बड़े प्रसन्न हुए ॥ ७६ ॥ सब मिलकर एक गुप्त स्थान में बैठकर युक्ति करके सलाह करने लगे ॥ ७७ ॥ राजा स्वभाव से ही बड़ा काल-यवन स्वरूप था उसको विशेष रूप से महातमोगुण बुद्धि बड़ी जल्दी उत्पन्न होती थी ॥ ७८ ॥ उड़ीसा देश में करोड़ों मूर्ति व मन्दिर तुड़वा दिये और कितना उत्पात किया था ॥७९॥ दैववश ही उसके मनमें सत्त्व

आर कोन पात्र आसि कुमन्त्रणा दिले । आर बार कुबुद्धि आसिया पाछे मिले ॥ ८१ ॥
जानि कदाचित कहे केमन गोसाञि । आन गिया सभे चाहे देखि एइ ठाञि ॥ ८२ ॥
अतएव गोसाञिरे पाठाइ कहिया । 'राजार निकट-ग्रामे कि कार्य रहिया' ॥ ८३ ॥
एइ युक्ति करि सभे एक सुब्राह्मण । पाठाइया सङ्गोपे दिलेन ततक्षण ॥ ८४ ॥
निजानन्दे महाप्रभु मत्त सर्वक्षण । प्रेमरसे निरवधि हुङ्कार गर्जन ॥ ८५ ॥
लक्ष कोटि लोक मेलि करे हरिध्वनि । आनन्दे नाचेन माझे प्रभु न्यासीमणि ॥ ८६ ॥
अन्य कथा अन्य कार्य नाहि कोनक्षण । अहर्निश बोलेन बोलान सङ्कीर्तन ॥ ८७ ॥
देखिया विस्मित बड़ हइला ब्राह्मण । कथा कहिवारे अवसर नाहि क्षण ॥ ८८ ॥
अन्य-जन-सहित कथार कोन् दाय । निज पारिषदेइ सम्भाषा नाहि पाय ॥ ८९ ॥
किवा दिवा किवा निशि किवा निज पर । किवा जल किवा स्थल कि ग्राम प्रान्तर ॥९०॥
किछुइ ना जाने प्रभु निज-प्रेमरसे । अहर्निश निज-प्रेम-सिन्धु-माझे भासे ॥ ९१ ॥
प्रभु-सङ्गे कथा कहिवारे नाहि क्षण । भक्तगण-स्थाने कथा कहिल ब्राह्मण ॥ ९२ ॥
विप्र बोले तुमि-सब गोसाञिरगण । समय पाइले एइ कहिओ कथन ॥ ९३ ॥
'राजार निकट-ग्रामे कि कार्य रहिया । एइ कथा सभे पाठाइलेन कहिया ॥ ९४ ॥
एइ कथा कहि विप्र गेला निज स्थाने । प्रभुरे करिया कोटि-दण्ड परणामे ॥ ९५ ॥
कथा शुनि ईश्वरेर पारिषदगणे । सभे किछु चिन्तायुक्त हइलेन मने ॥ ९६ ॥

---

गुण उत्पन्न हो गया इसी कारण वह हम लोगों के सम्मुख अच्छी तरह बोला ॥ ८० ॥ परन्तु यदि पीछे से उसे कोई कुमन्त्रणा देवे और फिर पीछे से उसमें कुबुद्धि हो जावे ॥ ८१ ॥ न जाने कदाचित् यह कह बसे कि "वह गुसाईं कैसा है ? यहीं बुला लाओ–सब यहीं देखलें" ॥८२॥ इसलिये गुसाईं को यों कहला भेजें कि "राजा के ग्राम ( राजधानी ) के पास आपको रहने का क्या काम है ?" ॥ ८३ ॥ ऐसी युक्ति करके सबने उसी समय गुप्त रूप से एक योग्य ब्राह्मण को ( उन गोसाईं के साथ ) भेज दिया ॥ ८४ ॥ श्रीमहाप्रभुजी तो अपने ही आनन्द में सब समय मस्त रहते थे तथा निरन्तर प्रेमरस में हुङ्कार व गर्जन करते रहते थे ॥ ८५ ॥ असंख्यों मनुष्य ( लाखों करोड़ों ) मिलकर हरिध्वनि करते और सन्यासी शिरोमणिजी प्रभु उनके बीच में आनन्द से नाच रहे थे ॥ ८६ ॥ दिन रात सङ्कीर्त्तन ही करते और कराते थे, इसके अतिरिक्त किसी क्षण भी न कुछ कहना और न कुछ करना ही था ॥८७॥ ब्राह्मण यह देखकर बड़ा विस्मित हुआ कि बात करने के लिये कोई समय ही नहीं मिलता ॥ ८८ ॥ जब उन्हीं के पार्षद ( साथी ) ही सम्भाषण का अवसर नहीं पाते तो किसी अन्य व्यक्ति को उनसे बात करने का दाँव कैसे मिले ? ॥ ८९ ॥ क्या दिन क्या रात क्या अपना क्या पराया, क्या जल क्या स्थल क्या ग्राम क्या मैदान ? अपने प्रेमरस में श्रीप्रभु को कुछ भी समझ नहीं पड़ता था–दिन राति अपने ही प्रेमसिन्धु में डूबे रहते थे ॥ ९०-९१ ॥ श्रीप्रभु से बात कहने का अवसर ब्राह्मण को नहीं मिला तब उसने भक्तों से ही कहा ॥ ९२ ॥ ब्राह्मण ने कहा हे भाई आप सब प्रभु के सेवक हो समय पाते ही यह बात उनसे कहना कि ॥ ९३ ॥ राजा के सभी सेवकों ने यह कहला भेजा है कि राजधानी के पास रहने का उनका क्या काम है ? ॥९४॥ यह बात कहकर व प्रभु को करोड़ों दण्डवत्

ईश्वरेर स्थाने से कहिते नाहि क्षण । बाह्य नाहि प्रकाशेन श्रीशचीनन्दन ॥ ९७ ॥
बोल-बोल हरि बोल हरि बोल हरि । एइ मात्र बोले प्रभु दुइ बाहु तुलि ॥ ९८ ॥
चतुर्दिगे महानन्दे कोटि-कोटि लोके । तालि दिया 'हरि' बोले परम कौतुके ॥ ९९ ॥
यार सेवकेर नाम करिले स्मरण । सर्व विघ्न दूर हय, खण्डये बन्धन ॥ १०० ॥
याहार शक्तिते जीव बोले करे चले । 'परंब्रह्म नित्य-शुद्ध' यारे वेदे बोले ॥ १०१ ॥
याहार मायाय जीव पासरि आपना । बद्ध हइ पाइयाछे संसार वासना ॥ १०२ ॥
से प्रभु आपने सर्वजीव उद्धारिते । अवतरियाछे भक्तिरसे पृथिवीते ॥ १०३ ॥
कोन् वा ताहाने राजा, कारे ताँर भय । 'यम-काल-आदि याँर भृत्य' वेदे कय ॥ १०४॥
स्वच्छन्दे करेन सभा लइ सङ्कीर्तन । सर्व-लोक-चूड़ामणि श्रीशचीनन्दन ॥१०५॥
आछुक ताहान भय, ताँहाने देखिते । यतेक आइसे लोक चतुर्दिग हैते ॥१०६॥
ताहाराइ केहो भय ना करे राजारे । हेनसे आनन्द दियाछेन सभाकारे ॥१०७॥
यद्यपिह सर्वलोक परम-अज्ञान । तथापिह देखिया चैतन्य भगवान् ॥ १०८ ॥
हेन से आनन्द जन्मे लोकेर शरीरे । 'यम' करि भय नाहि, कि दाय राजारे ॥१०९॥
निरन्तर सबलोक बोले हरिध्वनि । कारो मुखे आर कोनो शब्द नाहि शुनि ॥११०॥
हेन मते महाप्रभु वैकुण्ठ-ईश्वर । सङ्कीर्तन करे सर्वलोकेर भितर ॥ १११ ॥
मने किछु चिन्ता पाइलेन भक्तगण । जानिलेन अन्तर्यामी श्रीशचीनन्दन ॥ ११२ ॥

---

प्रणाम करके ब्राह्मण अपने स्थान को लौट गया ॥ ९५ ॥ श्रीप्रभु-पार्षद यह बात सुनकर मनमें सभी कुछ चिन्तायुक्त हो गये ॥ ९६ ॥ श्रीप्रभु से यह बात कहने को अवकाश नहीं मिलता था क्योंकि श्रीशचीनन्दन को बाह्य ज्ञान होता ही न था ॥९७॥ "बोलो-बोलो, हरि बोलो ! हरि बोलो ! अरे हरि बोलो !" बस इतना ही श्रीप्रभु दोनों भुजा उठाकर बोलते थे ॥ ९८ ॥ चारों ओर बड़े आनन्दपूर्वक असंख्यों मनुष्य परम कौतुक से तालियाँ बजा २ कर हरि बोल रहे थे ॥ ९९ ॥ जिसके सेवकों के नाम स्मरण करने से सब विघ्न दूर हो बन्धन नष्ट हो जाते हैं॥१००॥जिसकी शक्ति से जीव बोलता चलता और काम करता है-वेद जिसे परमब्रह्म नित्य शुद्ध कहते हैं ॥ १०१ ॥ जिसकी माया में गिरकर जीव अपने स्वरूप को भूलकर संसार-वासनाओं में पड़ता और बँध जाता है ॥१०२॥ वे ही प्रभु स्वयं सब जीवों को भक्तिरस द्वारा उद्धार करने के लिये पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं ॥ १०३ ॥ वेद, यमराज व काल ( मृत्यु ) आदि को जिसका सेवक बताते हैं, उनको कैसा वह राजा ? किसका भय ? ॥ १०४ ॥ सर्वलोक चूड़ामणि श्रीशचीनन्दन स्वतन्त्रता पूर्वक सबको साथ लेकर कीर्तन करते थे ॥ १०५ ॥ चारों ओर से जितने मनुष्य उन्हें देखने को आते थे उनको तो भय की सम्भावना थी॥१०६॥परन्तु सबको ऐसा आनन्द मग्न कर दिया था कि वे भी कोई राजा को भय नहीं करते थे ॥ १०७ ॥ यद्यपि सब मनुष्य बड़े अज्ञानी थे तथापि श्रीचैतन्य भगवान को देखकर मनुष्यों के शरीरों में ऐसा आनन्द होता था कि राजा की तो बात ही क्या यमराज का भी भय नहीं था॥१०८-१०९॥ सब मनुष्य निरन्तर हरिध्वनि कर रहे थे किसी के मुख से दूसरा शब्द सुन नहीं पड़ता था ॥ ११० ॥ इस प्रकार वैकुण्ठ-नाथ श्रीमहाप्रभु सब मनुष्यों में घिरकर हरिनाम संकीर्तन कर रहे थे ॥१११॥ अन्तर्यामी प्रभु श्रीशचीनन्दन

ईषत हासिया किछु बाह्य प्रकाशिया । लागिला कहिते प्रभु माया घुचाइया ॥ ११३ ॥
प्रभु बोले तुमि-सब भय पाओ मने । राजा आमा देखिबारे निबेक कारणे ॥ ११४ ॥
'आमा' चाहे हेन जन आमिओ ता चाङ । सबे आमा चाहे हेन कोथाओ ना पाङ॥११५॥
तोमरा इहाते केने भय पाओ मने । राजा आमा चाहे मुञि जाइमुँ आपने ॥ ११६ ॥
राजा वा आमारे केने बलिव चाहिते । कि शक्ति राजार एवा बोल उच्चारिते ॥११७॥
आमि यदि बोलाइ से राजार मुखेते । तबे से बलिब राजा आमारे चाहिते ॥ ११८ ॥
आमा देखिबारे शक्ति कोन् वा ताहार । वेदे अन्वेषिया देखा ना पाय आमार ॥११९॥
देव-ऋषि राज-ऋषि पुराणे भारते । आमा अन्वेषणे, केहो ना पाय देखिते ॥ १२० ॥
संकीर्तन-आरम्भे मोहोर अवतार । उद्धार करिमुँ सर्व पतित संसार ॥ १२१ ॥
ये दैत्य यवने मोरे कभू नाहि माने । ए-युगे ताराओ कान्दिवेक मोर नामे ॥ १२२ ॥
यतेक अस्पृश्य दुष्ट यवन चण्डाल । स्त्री-शूद्र आदि यत अधम राखाल ॥ १२३ ॥
हेन भक्तियोग दिमुँ ए-युगे सभारे । सुर मुनि सिद्ध ये निमित्त काम्य करे ॥ १२४ ॥
विद्या-धन-कुल-आदि तपस्यार मदे । ये मोर भक्तेर स्थाने करे अपराधे ॥ १२५ ॥
सेइ-सब जन हबे ए-युगे वंचित । सबे तारा ना मानिबे आमार चरित ॥ १२६ ॥
पृथिवी-पर्यन्त यत आछे देश ग्राम । सर्वत्र संचार हइवेक मोर नाम ॥ १२७ ॥
पृथिवीते आसिया आमिह इहा चाङ । खोजे हेन जन मोरे कोथाओ ना पाङ ॥१२८॥

---

ने जान लिया कि भक्तों को कुछ चिन्ता हो गई है ॥ ११२ ॥ श्रीप्रभु माया को दबाकर बाहर में चेत करके कुछ थोड़े हँसे ॥ ११३ ॥ प्रभु ने कहा कि तुम लोग मनमें डर रहे हो कि राजा मुझे देखने को बुलावेगा ॥ ११४ ॥ जो मुझे ढूँढ़ता हो ऐसे आदमी को मैं भी ढूँढ़ता हूँ, परन्तु मुझ ही को जो चाहता हो ऐसा मनुष्य कहीं नहीं मिलता ॥११५॥ इस विषय में तुम लोग मनमें क्यों भय मानते हो यदि राजा मुझे चाहेगा तो मैं स्वयं चला जाऊँगा ॥ ११६ ॥ मुझे क्यों देखना चाहेगा ? उसकी क्या शक्ति है जो वह मुझे बुलावे ॥११७॥यदि मैं राजा के मुख से बुलवाऊँगा तभी तो वह मुझे देखने को बुलावेगा ॥११८। वेद मुझे ढूँढ़ने पर भी देख नहीं पाते उसकी क्या सामर्थ्य है ? चारों वेद तक भी मुझको अन्वेषण करते हैं, परन्तु साक्षात दर्शन नहीं प्राप्त हुए हैं ॥ ११९ ॥ देवर्षि राजर्षि पुराण व महाभारत आदि मुझे ढूँढ़ते हैं परन्तु कोई देख नहीं पाया ॥ १२० ॥ संकीर्त्तन आरम्भ करने को मेरा अवतार हुआ है अतः संसार के सब पतितों का मैं उद्धार करूँगा ॥ १२१ ॥ जो दैत्य यवन मुझे कभी नहीं मानते थे वे भी इस युग में मेरा नाम लेकर प्रेम में रोवेंगे ॥ १२२ ॥ जितने अस्पृश्य ( अछूत ) दुष्ट यवन चण्डाल स्त्री-शूद्र ग्वालों आदि नीच जाति वाले हैं उन सबको इस युग में ऐसी भक्ति दान करूँगा जिसकी देवता मुनि व सिद्धगण भी कामना करते हैं ॥ १२३-१२४ ॥ विद्या-धन-कुल-तपस्या आदि के अहङ्कार में जो मेरे भक्तों के प्रति अपराध करते हैं ॥१२५॥ केवल वे ही सब लोग इस युग में वंचित होंगे व मेरे चरित्रों को नहीं मानेंगे ॥१२६॥ पृथ्वी के ऊपर जितने देश व ग्राम हैं सब जगह मेरे नाम का प्रचार होगा ॥१२७॥ पृथ्वी पर आकर मैं भी ऐसे मनुष्यों की इच्छा करता हूँ कि जो मेरा खोज करें परंतु वे कहीं नहीं मिलते हैं ॥ १२८॥सो राजा मुझे क्यों देखना चाहेगा-यह

गजा मोर कोथा नाहिबेक देखिवारे । ए कथा सकल मिथ्या, कहिल समारे ॥१२६॥
बाह्य प्रकाशिला प्रभु एतेक कहिया । भक्त-सबौ सन्तोषित हइला शुनिया ॥१३०॥
एइ मत प्रभु कथो दिन सेइ ग्रामे । निर्भये आछेन निज-कीर्तन-विधाने ॥१३१॥
ईश्वरेर इच्छा बुझिवारे शक्ति कार । ना गेलेन मथुरा, फिरिला आर बार ॥१३२॥
भक्त-गण-स्थाने एहि कहिलेन कथा । आमि चलिलाङ नीलाचल चन्द्र यथा ॥१३३॥
एत बलि स्वतन्त्र परमानन्द राय । चलिला दक्षिण मुखे कीर्तन-लीलाय ॥१३४॥
निजानन्दे रहिया-रहिया गङ्गा तीरे । कथोदिने आइलेन अद्वैत-मन्दिरे ॥१३५॥
पुत्रेर महिमा देखि अद्वैत आचार्य । आविष्ट हइ आछेन छाड़ि सर्व कार्य ॥ १३६ ॥
हेनइ समये गौरचन्द्र भगवान् । अद्वैतेर गृहे आसि हैला अधिष्ठान ॥ १३७ ॥
ये निमित्त अद्वैत आविष्ट पुत्र सङ्गे । से बड़ अद्भुत कथा, कहि शुन रङ्गे ॥१३८॥
योग्य पुत्र अद्वैतेर-सेइ से उचित । 'श्रीअच्युतानन्द' नाम-जगत-विदित ॥१३९॥
दैवे एक दिन एक उत्तम सन्यासी । अद्वैत-आचार्य-स्थाने मिलिलेन आसि ॥१४०॥
अद्वैत देखिया न्यासी संकोचे रहिला । अद्वैत न्यासीरे नमस्करि वसाइला ॥१४१॥
अद्वैत बोलेन 'भिक्षा करह गोसाञि' । न्यासी बोले 'भिक्षा देह' आनि याहा चाइ ॥१४२॥
किछु मोर जिज्ञासा आछये तोमा स्थाने । सेइ भिक्षा मोर, ताहा कहिबा आपने ॥१४३॥
आचार्य बोलेन आगे करह भोजन । शेषे ये जिज्ञासा ताहा कहिब कथन ॥ १४४ ॥
न्यासी बोले 'आगे आछे जिज्ञासा आमार' । आचार्य बोलेन 'बोल जे इच्छा तोमार'॥१४५॥

---

बात सब झूँठ है-सबसे प्रभु ने कह दिया॥१२६॥श्रीप्रभु ने इतना कहकर बाह्य चेतना प्रकाशित की, यह सुन-कर भक्तगण भी प्रसन्न हुए॥१३०॥इस प्रकार श्रीप्रभु ने उसी ग्राम में कुछ दिन रहकर नियमित से अपना कीर्त्तन कार्य चलाते रहे ॥ १३१ ॥ ईश्वर की इच्छा जान लेने की किसमें सामर्थ्य है सो वे मथुरा को नहीं गये,दूसरी बार में लौटकर गये॥१३२॥भक्तों से इतना ही कहा कि मैं नीलाचलचन्द्र के पास जाता हूँ(अर्थात् पुरी जाता हूँ) ॥ १३३ ॥ परम आनन्द के अधिष्ठाता (श्रीगौर प्रभु) यों कहकर लीला से हरि कीर्त्तन करते हुए दक्षिण को चल दिये ॥ १३४ ॥ अपने आनन्द में गंगा के किनारे ठहरते ठहरते कुछ दिन में श्रीअद्वैता-चार्य्य जी घर पर पहुँच गये ॥१३५॥ श्रीअद्वैताचार्य्य जी सब काम छोड़कर अपने पुत्र के खेल में आविष्ट हो रहे थे ॥ १३६ ॥ ऐसे ही समय पर श्रीभगवान् गौरचन्द्र श्रीअद्वैतजी के घर पर उपस्थित हुए ॥ १३७ ॥ जिस कारण से श्रीअद्वैताचार्य्यजी, पुत्र में आविष्ट हो रहे थे वह बड़ी अद्भुत कथा है उसे कहता हूँ प्रेम से सुनो ॥ १३८ ॥ श्रीअद्वैत के योग्य पुत्र को ऐसा ही उचित था-उनका जगत् विख्यात "अच्युतानन्द" नाम था ॥ १३९ ॥ दैवयोग से एक दिन एक उत्तम सन्यासी अद्वैताचार्य के स्थान पर आया ॥१४०॥ श्री-अद्वैताचार्य को देखकर सन्यासी संकोच से खड़ा रहा तब श्रीअद्वैतजी ने सन्यासी को नमस्कार करके बैठाया ॥१४१॥ अद्वैत ने कहा 'हे गुसाइं जी भिक्षा ( भोजन ) करो, सन्यासी ने कहा मैं जो चाहूँ सो भिक्षा दो ॥ १४२ ॥ आपसे मुझे कुछ पूँछना है उसे ही आप बतादें, बस यही मेरी भिक्षा है ॥१४३॥ श्री-आचार्यजी ने कहा पहिले भोजन कीजिये तब जो पूछना हो उसे कहिये ॥ १४४ ॥ सन्यासी बोला "पहिले

सन्यासी बोलेन एइ केशव भारती । चैतन्येर के हयेन कह मोर प्रति ॥ १४६ ॥
मने-मने चिन्तेन अद्वैत महाशय । व्यवहार परमार्थ-दुइ पक्ष हय ॥ १४७ ॥
यद्यपिह ईश्वरेर माता-पिता नाई । तथापिह 'देवकीनन्दन' करि गाई ॥ १४८ ॥
परमार्थे गुरुओ ताहार केहो नाइ । तथापिह ये करे प्रभु, ताइ सभे गाइ ॥ १४९ ॥
प्रथमेइ परमार्थ कि कार्य कहिया । व्यवहार कहियाइ याइ प्रबोधिया ॥ १५० ॥
एत भावि बलिलेन अद्वैत महाशय । केशव भारती चैतन्येर गुरु हय ॥ १५१ ॥
देखितेछ गुरु तान केशव भारती । आर केने तवे जिज्ञासह आमा प्रति ॥१५२॥
एइ मात्र अद्वैत बलिते सेइक्षणे । धाइया अच्युतानन्द आइला सेइ स्थाने ॥१५३॥
पाँच-वर्ष वयस-मधुर दिगम्बर । खेला खेलि सर्व अङ्ग धूलाय धूसर ॥ १५४ ॥
अभिन्न-कार्तिक येन सर्वाङ्ग सुन्दर । सर्वज्ञ परम भक्त सर्वशक्ति धर ॥ १५५ ॥
'चैतन्येर गुरु आछे' वचन शुनिया । क्रोधावेशे कहे किछु हासिया-हासिया ॥१५६॥
कि बलिला बाप ! बोल देखि आरबार । 'चैतन्येर गुरु आछे' विचार तोमार ॥१५७॥
कोन् वा साहसे तुमि ए मत वचन । जिह्वाय आनिला एत अद्भुत कारण ॥१५८॥
तोमार जिह्वाय यदि एमत आइल । हेन बुझि-एखने से कलिकाल हैल ॥ १५९ ॥
अथवा चैतन्य माया-परम दुस्तर । याहाते पायेन मोह ब्रह्मादि शङ्कर ॥ १६० ॥
बुझिलाङ विष्णु माया हइल तोमारे । केवा चैतन्येर माया तरिवारे पारे ॥१६१॥

---

मुझे पूँछना है" तब आचार्यजी ने कहा 'जो आपकी इच्छा कहिये ?' ॥ १४५ ॥ सन्यासी ने पूँछा कि यह केशव भारती श्रीचैतन्यदेव के कौन हैं ? सो मुझसे कहिये ? ॥१४६॥ श्रीअद्वैताचार्य महाशय मन ही मन विचार करने लगे कि व्यवहार और परमार्थ दो पक्ष हैं ॥ १४७ ॥ यद्यपि भगवान् के माता-पिता नहीं है तथापि "देवकीनन्दन" कहकर गान किये जाते हैं ॥ १४८ ॥ इसी प्रकार यद्यपि परमार्थ में उनका कोई गुरु नहीं है तथापि प्रभु ने जो लीला की है, उसी को सब गान करते हैं ॥१४९॥ अतः परमार्थ विषय को प्रथम ही क्यों कहूँ ? इसे व्यावहारिक बात कहकर ही प्रबोध कराऊँ ॥१५०॥ यह विचार करके श्रीअद्वैत महाशय ने कहा कि केशव भारतीजी श्रीचैतन्यदेव के गुरु होते हैं ॥१५१॥ यह देखते हुए भी कि केशवभारती उनके गुरु हैं फिर मुझसे क्यों पूँछते हो ? ॥ १५२ ॥ श्रीअद्वैताचार्य के इतना कहते ही उसी क्षण दौड़कर अच्युतानन्द उसी स्थान पर आ गये ॥ १५३ ॥ सुन्दर दिगम्बर वेष था पाँच वर्ष की अवस्था थी, खेल में सब अङ्ग धूलि से धूसरित हो रहे थे ॥ १५४ ॥ स्वयं कार्तिकेय के समान उनके सर्वाङ्ग सुन्दर थे-सब तत्त्वों के ज्ञाता परमभक्त तथा सर्व शक्ति वाले थे ॥ १५५ ॥ "चैतन्य के गुरु हैं" यह वचन सुनते ही कुछ हँसते हुए क्रोध के आवेश में बोले—॥ १५६ ॥ पिताजी, आपने क्या कहा—फिर दुबारा तो कहिये ? श्रीचैतन्यदेव के गुरु हैं—क्या यही आपका निर्णय है ? ॥ १५७ ॥ किस साहस के कारण यह शब्द आप अपनी जिह्वा पर लाये यह तो बड़ी विलक्षण बात है ॥ १५८ ॥ जब आपकी जिह्वा पर ऐसी बात आ गई तो मेरे विचार में इस समय कलिकाल ही आ उपस्थित हुआ ॥ १५९ ॥ अथवा श्रीचैतन्यदेव की माया बड़ी ही दुस्तर है, जिससे ब्रह्मा शंकर आदि भी मोह को प्राप्त हो जाते हैं ॥१६०॥ समझ में आता है कि आपको भी विष्णु

'चैतन्येर गुरु आछे' बलिला यखने । मायावश बिने इहा कहिला केमने ॥ १६२ ॥
अनन्त ब्रह्माण्ड यबे चैतन्य-इच्छाय । सब चैतन्येर लोम कूपेते मिशाय ॥ १६३ ॥
जल क्रीड़ा परायन चैतन्य गोसाञि । विहरेन आत्मक्रोड़ आर दुइ नाञि ॥ १६४ ॥
यत-यत महामुनि-महा-अभिमान । उद्देशो ना थाके कारो कोथाकार नाम ॥ १६५ ॥
पुन सेइ चैतन्येर अचिन्त्य-इच्छाय । नाभि-पद्म हैते ब्रह्मा हयेन लीलाय ॥ १६६ ॥
हइयाओ नाथा के देखिते किछु शक्ति । तबे शेषे करेन एकान्त भावे भक्ति॥ १६७ ॥
तबे भक्तिवशे तुष्ट हइया ताहाने । तत्त्व-उपदेश प्रभु कहेन आपने ॥ १६८ ॥
तबे सेइ ब्रह्मा प्रभु-आज्ञा करि शिरे । सृष्टि करि सेइ ज्ञान कहेन सभारे ॥ १६९ ॥
सेइ ज्ञान सनकादि पाइ ब्रह्मा हैते । प्रचार करेन तबे कृपाय जगते ॥ १७० ॥
याहा हैते हय आसि ज्ञानेर प्रचार । तान गुरु केमते बोलह आछे आर ॥ १७१ ॥
बाप तुमि, तोमा हैते शिखिबाङ कोथा । शिक्षा गुरु हइ केने बोलह अन्यथा ॥ १७२ ॥
एत बलि श्रीअच्युतानन्द मौन हैला । शुनिञा अद्वैत परानन्दे प्रवेशिला ॥ १७३ ॥
'बाप-बाप' बलि धरि करिलेन कोले । सिञ्चिलेन अच्युतेर अङ्ग प्रेमजले ॥ १७४ ॥
तुमिसे जनक बाप मुञि से तनय । शिखाइते पुत्र रूपे हइले उदय ॥ १७५ ॥
अपराध करिलूँ, क्षमह बाप मोरे । आर ना बलिमु, एइ कहिलूँ तोमारे ॥१७६॥
आत्म स्तुति शुनि श्रीअच्युत महाशय । लज्जाय रहिला प्रभु माथा ना तोलाय ॥१७७॥

---

माया लग गई है, श्रीचैतन्यदेव की माया को कौन तर सकता है ॥१६१॥ जिस समय वह बोले कि "चैतन्य के गुरु हैं" यह शब्द बिना माया के वशवर्ती हुए कह ही कैसे सकते थे ॥ १६२ ॥जब श्रीचैतन्यदेव की इच्छा से ही अनन्त ब्रह्माण्ड उनके रोमकूप से मिल जाते हैं ॥ १६३ ॥ श्रीचैतन्य प्रभु जलक्रीड़ा परायण हैं, वे अपने से आप ही क्रीड़ा करते हैं कोई दूसरा नहीं है ॥ १६४ ॥ जितने भी बड़े २ अभिमानी महामुनि हैं उनका पता भी नहीं रहता किसका क्या नाम है ॥१६५॥ फिर उन्हीं चैतन्यदेव की अचिन्त्य इच्छा से जब लीला से ही नाभि कमल से ब्रह्मा का जन्म होता है ॥ १६६ ॥ जन्म होने पर भी जब देखने की उनमें कुछ शक्ति नहीं हुई तब अन्त में एकनिष्ठ भाव से भक्ति की ॥१६७॥ तब उनकी भक्ति से सन्तुष्ट हो स्वयं प्रभु ने उन्हें तत्त्व उपदेश किया ॥१६८॥ तब उन्हीं ब्रह्मा ने प्रभु आज्ञा शिरोधार्य करके सृष्टि रचना की और सबसे उसी ज्ञान का कथन किया ॥ १६९ ॥ उसी ज्ञान को सनकादि ऋषियों ने ब्रह्मा से प्राप्त करके कृपावत्सल हो संसार में प्रचार किया ॥ १७० ॥ जिनके अस्तित्त्व से ही ज्ञान की उत्पत्ति होकर प्रचार होता है उन्हीं का कोई दूसरा व्यक्ति गुरु है यह कैसे कह दिया ॥ १७१ ॥ आप तो पिता हैं—आपको मैं क्या शिक्षा दूँ ? आप शिक्षा गुरु (आचार्य) होकर ऐसे क्यों कहते हैं ? ॥ १७२ ॥ इतना कहकर श्रीअच्युतानन्द मौन हो गये, परन्तु श्रीअद्वैत प्रभु यह सुनकर परम आनन्द में प्रविष्ट हो गये ॥१७३॥ बाप ! बाप ! कहकर उठाकर गोद में ले लिया और अच्युतजी के श्रीअङ्ग को प्रेमजल से सिञ्चन करने लगे ॥ १७४ ॥ हे बाप ! तुम ही जनक ( पिता ) हो मैं तनय हूँ केवल शिक्षा देने को पुत्र रूप से उदय हुए हो ॥ १७५ ॥ अपराध हो गया, बाप ! मुझे क्षमा करो तुम्हारे आगे प्रतिज्ञा करता हूँ फिर न कहूँगा ॥ १७६ ॥ महाशय श्रीअच्युतानन्दजी

शुनिआ सन्यासी श्रीअच्युत वचन । दण्डवत् हइया पड़िला सेइक्षण ॥ १७८ ॥
स्वामी बोले योग्य-योग्य अद्वैत नन्दन । येन पिता, तेन पुत्र-अचिन्त्य-कथन ॥ १७६ ॥
ए त ईश्वरेर शक्ति बिने अन्य नहे । बालकेर मुखे कि एमत कथा हये ॥ १८० ॥
शुभ लग्ने आइलाङ अद्वैत देखिते । अद्भुत महिमा देखिलाङ नयनेते ॥ १८१॥
पुत्रेर सहिते अद्वैतेरे नमस्करि । पूर्ण हइ सन्यासी चलिलेन बलि 'हरि' ॥ १८२ ॥
इहाने से बलि योग्य अद्वैतनन्दन । ये चैतन्येर-पादपद्मे एकान्त शरण ॥ १८३ ॥
अद्वैतेरे भजे, गौरचन्द्रे करे हेला । पुत्र हउ अद्वैतेर, तभू तिंहो गेला ॥ १८४ ॥
पुत्रेर महिमा देखि अद्वैत आचार्य । पुत्र कोले करि कान्दे छाड़ि सर्व कार्य ॥१८५॥
पुत्रेर अंगेर धूला आपनार अङ्गे । लेपेन अद्वैत अति परानन्द रङ्गे ॥१८६॥
'चैतन्येर पार्षद जन्मिला मोर घरे' । एत बलि नाचे प्रभु तालि दिया करे ॥१८७॥
पुत्र कोले करि नाचे अद्वैत गोसाञि । त्रिभुवने याँहार भक्तिर सम नाञि ॥१८८॥
पुत्रेर महिमा देखि अद्वैत विह्वल । हेन काले उपसन्न सर्व-सुमङ्गल ॥१८६॥
सपार्षदे श्रीगौरसुन्दर सेइ क्षणे । आसि आविर्भाव हैला अद्वैत-भवने ॥ १६० ॥
प्राणनाथ इष्टदेव-देखिया अद्वैत । दण्डवत हैया पड़िलेन पृथिवीत ॥ १६१ ॥
'हरि' बलि श्रीअद्वैत करेन हुङ्कार । परानन्दे देह पासरिला आपनार ॥ १६२ ॥
जय जयकार-ध्वनि करे नारी गणे । उठिल परमानन्द अद्वैत-भवने ॥ १६३ ॥

अपनी स्तुति सुनकर लज्जित हो गये व ऊपर को सिर नहीं उठाया ॥ १७७ ॥ सन्यासी ने श्रीअच्युतानन्द के वचन सुनकर उसी क्षण दण्डवत् प्रणाम किया ॥ १७८ ॥ सन्यासी ने कहा श्रीअद्वैत के पुत्र अति ही योग्य है जैसे पिता वैसे ही पुत्र, दोनों की बात अचिन्त्य है ॥ १७६ ॥ क्या बालक के मुख से ऐसी बात निकल सकती है, यह तो ईश्वर शक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ॥ १८० ॥ मैं श्रीअद्वैत दर्शन के लिये शुभ लग्न में आया जो नेत्रों से ऐसी अद्भुत महिमा देखी ॥ १८१ ॥ सन्यासीजी पुत्र के सहित श्रीअद्वैत को नमस्कार करके हरि २ कहकर आनन्द मग्न होकर चल दिये॥१८२॥ अच्युतानन्दजी श्रीचैतन्य चरण-कमल के एकान्तिक शरण हैं इसी से तो, उनको श्रीअद्वैत के योग्य पुत्र कहते हैं ॥१८३॥ यदि श्रीअद्वैत का भजन कर और श्रीगौरचन्द्र की अवहेलना करे तो वह नष्ट हो गया फिर चाहे वह अद्वैत का ही पुत्र क्यों न हो? ॥ १८४ ॥ श्रीअद्वैताचार्यजी ने पुत्र की महिमा देखकर सब काम छोड़कर गोदी में ले लिया और रोने लगे ॥ १८५ ॥ और पुत्र के अङ्ग की धूलि अपने अङ्ग में बड़े प्रेम से लेपन करने लगे ॥ १८६ ॥ "मेरे घर में श्रीचैतन्य-पार्षद ने जन्म लिया है" यों कहकर प्रभु ताली बजाकर नाचने लगे ॥१८७॥ श्रीअद्वैत गुसांई पुत्र को गोद में लेकर नाच रहे थे, उनकी भक्ति की समानता त्रिभुवन में नहीं है ॥ १८८ ॥ पुत्र की महिमा देखकर श्रीअद्वैतजी विह्वल हो रहे थे ऐसे समय में सर्व सुमङ्गल आकर उपस्थित हुए ॥ १८६ ॥ पार्षदों सहित श्रीगौरसुन्दर उसी क्षण श्रीअद्वैत के भवन में आकर उपस्थित हुए ॥ १६० ॥ श्रीअद्वैत प्रभु ने अपने प्राणनाथ इष्टदेव (गौरचन्द्र) को देखकर पृथ्वी में दण्डवत् गिरकर प्रणाम किया ॥ १६१ ॥ श्रीअद्वैताचार्य हरि २ कहकर हुङ्कार करने लगे तथा परमानन्द में अपनी देह को भूल गये ॥ १६२ ॥ नारीगण ने जय-

प्रभुओ करिया अद्वैतेरे निजकोले । सिञ्चिलेन अङ्ग ताँर प्रेमानन्द जले ॥१९४॥
पादपद्म वक्षे धरि आचार्य गोसाञि । रोदन करेन अति बाह्य किछु नाञि ॥१९५॥
चतुर्दिगे भक्तगण करेन क्रन्दन । कि अद्भुत प्रेम हैल ना जाय वर्णन ॥१९६॥
स्थिर हइ क्षणेके अद्वैत महाशय । वसिते आसन दिला करिया विनय ॥१९७॥
वसिलेन महाप्रभु उत्तम-आसने । चतुर्दिगे शोभा करे पारिषद गणे ॥१९८॥
नित्यानन्द-अद्वैते हइल कोलाकोली । दुँहा देखि अन्तरे दोंहे कुतूहली ॥१९९॥
आचार्येरे नमस्करिलेन भक्तगण । आचार्य सभारे कैला प्रेम-आलिङ्गन ॥२००॥
ये आनन्द उपजिल अद्वैतेर घरे । वेदव्यास विने ताहा वर्णिते ना पारे ॥२०१॥
क्षणेके अच्युतानन्द-अद्वैत कुमार । प्रभुर चरणे आसि हैला नमस्कार ॥२०२॥
अच्युतेरे कोले करि श्रीगौरसुन्दर । प्रेमजले धुइलेन ताँर कलेवर ॥२०३॥
अच्युतेरे प्रभु ना छाड़ेन वक्ष हैते । अच्युतो प्रविष्ट हैला चैतन्य-देहेते ॥२०४॥
अच्युतेरे कृपा देखि सर्व भक्तगण । प्रेमे सभे लागिलेन करिते क्रन्दन ॥२०५॥
यत चैतन्येर प्रिय पारिषदगण । अच्युतेर प्रिय नहे, हेन नाहि जन ॥२०६॥
नित्यानन्द स्वरूपेर प्राणेर समान । गदाधर पण्डितेर शिष्येर प्रधान ॥२०७॥
इहारे से वलि योग्य अद्वैतनन्दन । येन पिता, तेनपुत्र, उचित मिलन ॥२०८॥
एइमत श्रीअद्वैत गोष्ठीर सहिते । आनन्दे डुविला प्रभु पाइया साक्षाते ॥२०९॥

---

जयकार ध्वनि की तब अद्वैत भवन में विशेष आनन्द कोलाहल हुआ ॥ १९३ ॥ प्रभु श्रीगौरचन्द्र ने भी श्रीअद्वैत को अपनी गोदी में करके प्रेमानन्द के जल से उनके अङ्गों को सिंचन कर दिया ॥ १९४ ॥ श्री-आचार्य गुसांई श्रीगौरचन्द्र के चरण-कमलों को वक्षस्थल पर धारण करके अत्यन्त रोदन करने लगे बाह्य ज्ञान नहीं रहा ॥ १९५ ॥ भक्तगण भी चारों ओर क्रन्दन करने लगे बड़ा अनोखा प्रेम उदय हुआ जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ १९६ ॥ क्षण भर में श्रीअद्वैत महाशयजी सावधान हुए और विनय करके बैठने को आसन दिया ॥ १९७ ॥ श्रीमहाप्रभुजी उत्तम आसन पर विराजमान हुए तथा चारों ओर पार्षद-गण शोभा पा रहे थे ॥ १९८ ॥ तब श्रीनित्यानन्द व श्रीअद्वैत ने परस्पर आलिङ्गन किया दोनों एक दूसरे को देखकर मनमें आश्चर्य करते थे ॥ १९९ ॥ सब भक्तों ने श्रीआचार्य को नमस्कार किया तथा उन्होंने सब को आलिङ्गन किया ॥ २०० ॥ जो आनन्द अद्वैत गृह में हुआ उसको वेदव्यास के अतिरिक्त और कौन वर्णन कर सकता है ॥ २०१ ॥ एक क्षण में ही अद्वैत के पुत्र अच्युतानन्द ने श्रीप्रभु के चरणों में आकर नमस्कार किया ॥ २०२ ॥ श्रीगौरसुन्दर अच्युतानन्द को गोदी में लेकर उसके शरीर को प्रेमजल से धोने लगे ॥ २०३ ॥ अच्युतानन्द को प्रभु छाती से नहीं हटाते थे और अच्युत भी श्रीचैतन्यदेव के शरीर से चिपक गये ॥ २०४ ॥ अच्युत के ऊपर श्रीप्रभु की कृपा को देखकर सब भक्तवृन्द प्रेम में रोने लगे ॥ २०५ ॥ श्रीचैतन्यदेव के प्रिय पार्षदों में ऐसा कोई मनुष्य नहीं था जिसे अच्युतानन्द प्रिय न हों ॥ २०६ ॥ वे श्री-श्रीनित्यानन्दस्वरूप के प्राणों के समान थे, श्रीगदाधर पण्डित के शिष्यों में प्रधान थे ॥ २०७ ॥ इनको वे (भक्तगण) श्रीअद्वैताचार्य के योग्य पुत्र कहते थे जैसे पिता वैसे पुत्र दोनों का मिलन उचित ही था २०८

श्रीचैतन्य कथोदिन अद्वैत-इच्छाय । रहिला अद्वैत घरे कीर्तन-लीलाय ॥२१०॥
प्राणनाथ गृहे पाइ आचार्य गोसाञि । ना जाने आनन्दे आछेन कोन् ठाञि ॥२११॥
किछु स्थिर हइया अद्वैत महा मति । आइ-स्थाने लोक पाठाइला शीघ्र गति ॥२१२॥
दोला लइ नवद्वीपे आइला सत्त्वरे । आइरे वृत्तान्त कहे चलिवार तरे ॥२१३॥
प्रेम-रस-समुद्रे डुबिया आछे आइ । कि वोलेन कि शुनेन वाह्य किछु नाइ॥२१४॥
सम्मुखे जाहारे आइ देखेन ताहारे । जिज्ञासेन "मथुरार कथा कह मोरे ॥२१५॥
राम कृष्ण केमत आछेन मथुराय । पापी कंस केमत वा करे व्यवसाय ॥२१६॥
चोर अक्रूरेर कथा कह जान' के । राम कृष्ण मोर चूरि करिलेक ये ॥२१७॥
शुनिलाङ पापी कंस मरिगेल हेन । मथुरार राजा कि हइल उग्रसेन ॥२१८॥
"रामकृष्ण" बलिया कखनो डाके आइ । "झाट गावी दोह' दुग्ध वेचिवारे चाइ" ॥२१९॥
हाथे वाड़ि करिया कखनो आइ धाय । "धर धर सभे, एइ ननी चोरा जाय"॥२२०॥
कोथा पलाइबा आजि एड़िमू वान्धिया । एत बलि धाय आइ आविष्ट हइया ॥२२१॥
कखनो बोलेन आइ सम्मुखे देखिया । "चल याइ यमुनाय स्नान करि गिया" ॥२२२॥
कखनो ये उच्च करि करेन क्रन्दन । संसार द्रवये ताहा करिते श्रवण ॥२२३॥
अविच्छिन्न-धारा दुइ नयनेते झरे । से काकु शुनिते काष्ठ-पाषाण विदरे ॥२२४॥
कखनो वा ध्याने कृष्ण साक्षात्कार करि । अट्ट अट्ट हासे' आइ आपना' पासरि ॥२२५॥

---

इस प्रकार श्रीअद्वैताचार्य श्रीप्रभु को साक्षात् पाकर अपनी गोष्ठी सहित आनन्द में डूब गये ॥ २०९ ॥ श्रीअद्वैतजी की इच्छा से श्रीप्रभु ने कुछ दिन उनके घर में निवास किया ॥२१०॥ श्रीआचार्य गुसांई अपने प्राणनाथ को घर में ही पाकर आनन्द में यह नहीं जानते हैं कि मैं कहाँ हूँ ? ॥ २११ ॥ तब महामति श्री-अद्वैत ने कुछ स्थिर होकर शची माता के पास शीघ्रता से आदमी भेजे ॥ २१२ ॥ वे शीघ्र ही पालकी लेकर नवद्वीप में आये और शचीदेवी से चलने के लिये सब वृतान्त कहा ॥ २१३ ॥ श्रीशची माता तो प्रेमरस के समुद्र में डूब गईं–कौन बोला–क्या सुना–कुछ होश नहीं रहा ॥ २१४ ॥ श्रीशची माता अपने सामने जिसको देखतीं उसी से पूँछती कि मुझसे मथुरा की बात कहो ? ॥ २१५ ॥ मथुरा में रामकृष्ण किस प्रकार हैं तथा पापी कंस कैसा व्यवसाय कर रहा है ? ॥ २१६ ॥ जो जानते हो तो कोई अक्रूर चोर की बात कहो जो मेरे रामकृष्ण को चोरी करके ले गया ? ॥ २१७ ॥ सुनती हूँ कि पापी कंस मर गया, क्या मथुरा का राजा उग्रसेन हो गया ? ॥ २१८ ॥ कभी माता "रामकृष्ण" को टेरकर बुलाती थीं कि जल्दी गौ दुहो, दूध बेचने को चाहिये ॥ २१९ ॥ कभी माता हाथ में छड़ी लेकर "अरे पकड़ो-पकड़ो यह माखन-चोर भाग रहा है" ॥ २२० ॥ "कहाँ–भाग कर जायगा–आज बाँध कर ही छोड़ूँगी" यों कह आवेश में दौड़ती थीं ॥२२१॥ कभी माता सामने किसी को देखकर कहतीं "स्नान करने जमुना जी चलो" ॥२२२॥ कभी ऊँचे स्वर से रोदन (क्रन्दन) करतीं तो उसे सुनकर संसार पिघल जाता ॥२२३॥ दोनों नेत्रों से अटूट धारा बहती थी तथा उनकी करुण ध्वनि सुनकर काष्ठ-पाषाण भी फटते थे ॥२२४॥ कभी ध्यान में कृष्ण का साक्षात्कार करके अपने को भूलकर शचीदेवी जोर से हँसती थीं २२५ ऐसा वह आनन्द-हास्य परम अद्भुत था कभी

हेन से आनन्द-हास्य-अद्भुत परम । दुइ-प्रहरेओ कभू नहे उपशम ॥२२६॥
कखनो ये आइ हये आनन्द मूर्च्छित । प्रहरेक बातु नाहि थाके कदाचित ॥२२७॥
कखनो वा हेन कम्प उपजे आसिया । पृथिवीते केहो येन तोले आछाड़िया ॥२२८॥
आइर ये कृष्णावेश-कि तार उपमा । आइ बइ अन्य आर नाहि तार सीमा ॥२२९॥
गौरचन्द्र- श्रीविग्रहे यत कृष्णभक्ति । आइरेओ प्रभु दियाछेन सेइ शक्ति ॥२३०॥
अतएव आइर ये भक्तिर विकार । ताहा वर्णिवेक सब-हेन शक्तिकार ॥२३१॥
हेन मते परानन्द समुद्र-तरङ्गे । भासेन दिवस निशि आइ महारङ्गे ॥ २३२ ॥
कदाचित आइर ये किछु वाह्य हय । सेहो विष्णु पूजा लागि-जानिह निश्चय ॥२३३॥
कृष्णेर प्रसङ्गे आइ आछेन वसिया । हेनइ समये शुभ वार्ता हैल-गिया ॥ २३४ ॥
शान्तिपुरे आइलेन श्रीगौरसुन्दर । चल आइ झाट आसि देखह सत्वर ॥ २३५ ॥
वार्ता शुनि ये सन्तोष हइलेन आइ । ताहार अवधि आर कहिवारे नाइ ॥ २३६ ॥
वार्ता शुनि प्रभुर यतेक भक्तगण । सभेइ हइला अति परानन्द-मन ॥ २३७ ॥
गङ्गादास पण्डित-प्रभुर प्रियपात्र । आइ लइ चलिलेन सेइक्षण मात्र ॥ २३८ ॥
श्रीमुरारि गुप्त-आदि यत भक्तगण । सभेइ आइर सङ्गे करिला गमन ॥ २३९ ॥
सत्वरे आइला शची-आइ शान्तिपुरे । वार्ता शुनिलेन प्रभु श्रीगौरसुन्दरे ॥ २४० ॥
श्रीगौरसुन्दर प्रभु आइरे देखिया । सत्वरे पड़िला दूरे दण्डवत हैया ॥ २४१ ॥
पुनः पुन प्रदक्षिण हइया हइया । दण्डवत हय श्लोक पढ़िया-पढ़िया ॥२४२॥

---

दो प्रहर के लिये भी बन्द नहीं होता था ॥ २२६ ॥ यदि कभी माता को आनन्द-मूर्च्छा हो जाती तो कदाचित् एक प्रहर तक होश ही नहीं होता था ॥ २२७ ॥ कभी ऐसा कम्प हो उठता कि जैसे कोई पृथ्वी पर पछाड़कर उठाता हो ॥ २२८ ॥ माताजी को जो कृष्णावेश है उसकी क्या उपमा है ? माता के अतिरिक्त उसकी और कोई सीमा नहीं है ॥ २२९ ॥ श्रीगौरचन्द्र के श्रीविग्रह में जितनी कृष्ण-भक्ति थी प्रभुने माताजी को भी वही शक्ति दे दी थी ॥ २३० ॥ इसी कारण माताजी में भक्ति के जितने विकार उदित होते थे उन सबको वर्णन कर सके ऐसी किस में शक्ति है ? ॥२३१॥ इस प्रकार माताजी परम आनन्द समुद्र की तरङ्गों में बड़े प्रेम से दिन-रात्रि डूबी रहती थीं ॥ २३२ ॥ कदाचित् माताजी को कभी कुछ वाह्य ज्ञान होता तो वह केवल विष्णु-पूजा के निमित्त ही जानिये ॥ २३३ ॥ जब श्रीप्रभु के आगमन की शुभ वार्त्ता हुई तथा आप कृष्ण प्रसङ्ग में ही बैठी थीं ऐसे समय पर "श्रीगौरसुन्दर शान्तिपुर में आये हुए हैं,हे माताजी! चलो-चल के देखलो" ? ॥२३४-२३५॥ इस वार्ता को सुनकर माताजी को जो सन्तोष हुआ उसकी अवधि कहते नहीं बनती ॥२३६॥ बात सुनकर प्रभु के जितने भक्तवृन्द हैं सब ही मनमें विशेष आनन्दित हुए ॥ २३७ ॥ प्रभु के प्रियपात्र पण्डित गङ्गादासजी माताजी को लेकर उसी क्षण तुरन्त चल दिये ॥२३८॥ श्रीमुरारी गुप्त आदि जितने भक्त थे वे सब ही श्रीमाताजी के साथ चल दिये ॥ २३९ ॥ श्रीमाताजी शीघ्र ही शान्तिपुर में आ गईं श्रीगौर प्रभु ने भी यह बात सुनी ॥ २४० ॥ प्रभु श्रीगौरसुन्दर शची माता को देखकर दूर से दण्डवत् होकर पृथ्वी पर लेट गये ॥२४१॥ बारम्बार प्रदक्षिणा करके श्लोक पढते जाते थे और दण्डवत् प्रणाम

तुमि विश्व जननी केवल भक्तिमयी । तोमारे से गुणातीत-सत्त्वरूपा कहि ॥ २४३ ॥
तुमि यदि शुभदृष्टि कर जीव-प्रति । तबे से जीवेर हय कृष्णे रति मति ॥ २४४ ॥
तुमि से केवल मूर्तिमती विष्णु भक्ति । याहा हैते सब हय-तुमि सेइ शक्ति ॥ २४५ ॥
तुमि गङ्गा देवकी यशोदा देवहूति । तुमि पृश्नि अनसूया कौशल्या अदिति ॥२४६॥
यत देखि सब तोमा हैते से उदय । पालह तुमि से तोमाते से लीनो हय ॥ २४७ ॥
तोमार प्रभाव वलिवार शक्तिकार । सभार हृदये पूर्ण वसति तोमार ॥ २४८ ॥
श्लोक बन्धे एइ मत करिया स्तवन । दण्डवत हय प्रभु धर्म्म-सनातन ॥ २४९ ॥
कृष्ण वइ-ओ कि पितृ-मातृ-गुरु-भक्ति । करिवारे ए मत धरये केहो शक्ति ॥ २५० ॥
आनन्दाश्रु-धारा बहे सकल अङ्गे ते । श्लोक पढ़ि नमस्कार हय बहुमते ॥ २५१ ॥
आइ बोल-देखि मात्र श्रीगौर बदन । परानन्दे जड़ हइलेन सेइक्षण ॥ २५२ ॥
रहियाछे आइ येन कृत्रिम-पुतली । स्तुति करे वैकुण्ठ-ईश्वर कुतूहली ॥ २५३ ॥
प्रभु बोले विष्णुभक्ति ये किछु आमार । केवल एकान्त सब प्रसाद तोमार ॥ २५४ ॥
कोटि दास-दासेरो ये सम्बन्ध तोमार । सेह जन प्राण हैते बल्लभ आमार ॥ २५५ ॥
यारे को ये जन तोमा करिव स्मरण । तार कभू नहिवेक संसार बन्धन ॥ २५६ ॥
सकल पवित्र करे ये गङ्गा तुलसी । तानाओ हयेन धन्य तोमारे परशि ॥ २५७ ॥
तुमि यत करियाछ आमार पालन । आमार शक्तिये ताहा ना हय शोधन ॥ २५८ ॥

---

करते थे ॥ २४२ ॥ तुम केवल भक्तिमयी विश्वजननी हो और तुम्हें तीनों गुणों से ऊपर शुद्ध सत्त्वस्वरूप कहते हैं ॥ २४३ ॥ यदि तुम जीवों के प्रति शुभ दृष्टि करती हो तो उनकी कृष्ण में रति व मति होती है ॥ २४४ ॥ तुम केवल वह मूर्तिमती विष्णु-भक्ति हो, जिसके द्वारा सब कुछ होता है तुम वही शक्ति हो ॥ २४५ ॥ तुम ही गङ्गा, देवकी, यशोदा व देवहूति हो तथा तुम ही पृश्नि, अनुसूया, कौशल्या व अदिति हो ॥ २४६ ॥ जो कुछ प्रगट में दृष्टिगोचर होता है वह सब तुम ही से उत्पन्न होता है–तुम ही पालन करती तथा तुम ही में लय हो जाता है ॥ २४७ ॥ तुम्हारे प्रभाव कहने की किस में शक्ति है और सब ही के हृदय में तुम निवास करती हो ॥ २४८ ॥ इस प्रकार श्लोक बद्ध स्तुति करके नित्य स्वरूप प्रभु ने दण्डवत् प्रणाम किया ॥ २४९ ॥ क्या कृष्ण के अतिरिक्त और किसी में इस प्रकार पिता-माता-गुरु भक्ति करने की सामर्थ्य है ? ॥ २५० ॥ सब अङ्गों से आनन्द-जल की धारा बहती थी तथा वह इस प्रकार से श्लोक पढ़ते और नमस्कार करते थे ॥ २५१ ॥ श्रीगौरचन्द्र का मुख देखते ही श्रीमाताजी तत्क्षण परमानन्द से जड़ हो गईं ॥ २५२ ॥ जब वैकुण्ठनाथ श्रीमाताजी की कुतूहल पूर्वक स्तुति कर रहे थे तो वे ( माताजी ) तो गढ़ी हुई पुतली के समान होकर रह गईं ॥ २५३ ॥ प्रभु ने कहा मेरे जो कुछ विष्णु-भक्ति है वह सब केवल एक मात्र तुम्हारे ही अनुग्रह से है ॥ २५४ ॥ अगणित दासानुदास से जो तुम्हारा सम्बन्ध है रखता वह सब जन मुझे प्राणों से भी प्रिय हैं॥२५५॥जो मनुष्य एक बार भी तुम्हारा स्मरण करेगा उसे कभी संसार बन्धन नहीं होगा ॥ २५६ ॥ जो गङ्गा व तुलसी सबको पवित्र करती हैं वे भी तुम्हें स्पर्श करके धन्य होती हैं ॥ २५७ ॥ मेरा तुमने जितना पालन किया है अर्थात् मैं स्वयं अपने बल से उससे ऋणमुक्त नहीं हो सकता २५८

आइर सन्तोषे सभे हेन से हइला । परानन्दे ये हेन सभेइ मिशाइला ॥२७५॥
ए सब आनन्द पड़े शुने येइ जन । अवश्य मिलये तारे प्रेम भक्ति धन ॥२७६॥
'प्रभुरे दिवेन भिक्षा आइ भाग्यवती' । प्रभु स्थाने अद्वैत लइला अनुमति ॥२७७॥
सन्तोषे चलिला आइ करिते रन्धन । प्रेमयोगे चिन्ति 'गौरचन्द्र नारायण' ॥२७८॥
कतेक प्रकार आइ करिला रन्धन । नाम नाहि जानि हेन रान्धिला व्यञ्जन ॥२७९॥
आइ जाने-प्रभुर सन्तोष बड़ शाके । विंशति प्रकार शाक रान्धिला एतेके ॥२८०॥
एक एक व्यंजन-प्रकार दश-बिंश । रान्धिलेन आइ अति चित्तेर सन्तोषे ॥२८१॥
अशेष प्रकारे आइ रन्धन करिया । भोजनेर स्थाने सब थुइलेन लैया ॥२८२॥
श्रीअन्न व्यंजन सब उपस्कार करि । सभार उपरे दिला तुलसी मंजरी ॥२८३॥
चतुर्दिगे सारि करि श्रीअन्न व्यजन । मध्ये पातिलेन अति उत्तम आसन ॥२८४॥
आइलेन महाप्रभु करिते भोजन । संहति लइया सब पारिषदगण ॥२८५॥
देखि प्रभु श्रीअन्न-व्यंजनेर उपस्कार । दण्डवत् हइया करिला नमस्कार ॥२८६॥
प्रभु बोले "ए अन्नेर थाकुक भोजन । ए अन्न देखिले हय बन्धविमोचन ॥२८७॥
कि रन्धन-इहा त कहिल किछु नय । ए अन्नेर गन्धेओ कृष्णेते भक्ति हय ॥२८८॥
बुझिलाङ-कृष्ण लइ सर्व परिवार । ए अन्न करियाछेन आपने स्वीकार" ॥२८९॥

---

गोते लगा रहे थे ॥ २७२ ॥ श्रीअद्वैताचार्य प्रभु ( श्रीभागवत की ) देवकी स्तुति पाठ करके श्रीमाताजी को दण्डवत् करने लगे-उनके दण्डवत् करने का अन्त नहीं होता था ॥ २७३ ॥ श्रीहरिदास ठाकुर श्रीमुरारी-गुप्त, श्रीगर्भ, श्रीनारायण, श्रीजगदीश पण्डित, श्रीगोपीनाथ आदि भक्तवृन्द सभी श्रीमाताजी के सन्तुष्ट होने से ऐसे हो गये मानो सभी परमानन्द में मिल गये हों ॥ २७४-२७५ ॥ जो मनुष्य इस सब आनन्द-वार्ता को पढ़ेगा अथवा सुनेगा उसे प्रेम-भक्तिरूपी धन अवश्य मिलेगा ॥२७६॥ श्रीअद्वैताचार्य ने श्रीप्रभु से अनुमति ले ली कि उन्हें सौभाग्यवती माताजी भिक्षा पकावेंगी ॥ २७७ ॥ प्रसन्न होकर माताजी रन्धन करने को गईं तथा श्रीगौर नारायण का प्रेम-योग से चिंतन करती जाती थीं ॥२७८॥ श्रीमाताजी ने कितने प्रकार का रन्धन किया इन सब व्यंजनों का लेखक नाम भी नहीं जानता ॥ २७९ ॥ श्रीमाताजी ने सोचा कि श्रीप्रभु को शाकों ( सागों ) से बड़ा प्रेम है अतः उनके बीस प्रकार के साग रन्धन किये ॥ २८० ॥ श्री-माताजी ने अपने चित्त के अत्यन्त सन्तोष के लिये एक वस्तु को दस-बीस प्रकार से रन्धन किया ॥ २८१ ॥ श्रीमाताजी ने अनेक प्रकार से रसोई करके भोजन गृह में सबको ले जाकर रख दिया ॥ २८२ ॥ श्रीअन्न ( भात ) व्यंजनादि सबको एकत्र उपस्थित करके उनके ऊपर तुलसी मंजरी दे करके भोग लगाया ॥ २८३ ॥ चारों ओर श्रीअन्न व्यंजन सजाकर बीच में अति उत्तम आसन बिछा दिया ॥२८४॥ भोजन करने के लिये महाप्रभु पधारे संग में सब पार्षदों को भी लिये थे ॥२८५॥ श्रीअन्न व्यंजनों का भोग-प्रसाद देखकर श्रीप्रभु ने ( श्रीठाकुर भोग को ) दण्डवत् होकर नमस्कार की ॥ २८६ ॥ श्रीप्रभु ने कहा "इस अन्न के भोजन तो दूर रहे केवल दर्शनमात्र से ( जीव ) बन्धन मुक्त हो जाँयगे ॥ २८७ ॥ क्या अद्भुत रन्धन (रसोई) हुआ है इसका कुछ कहना ही क्या इस अन्न की गन्ध मात्र से ही श्रीकृष्ण में भक्ति हो जावेगी ॥२८८॥ जान पड़ता

एत बलि प्रभु अन्न-प्रदक्षिण करि । भोजने वसिला श्रीगौराङ्ग नरहरि ॥२९०॥
प्रभुर आज्ञाय सब पारिषदगण । वसिलेन चतुर्दिगे देखिते भोजन ॥२९१॥
भोजन करेन श्रीवैकुण्ठ-अधिपति । नयन भरिया देखे आइ भाग्यवती ॥२९२॥
प्रत्येके प्रत्येके प्रभु सकल व्यंजन । महा आमोदिया नाथ करेन भोजन ॥२९३॥
सभा हैते भाग्यवन्त-श्रीशाक व्यंजन । पुनः पुन याहा प्रभु करेन ग्रहण ॥२९४॥
शाकेते देखिया बड़ प्रभुर आदर । हासेन प्रभुर यत सब अनुचर ॥२९५॥
शाकेर महिमा प्रभु सभारे कहिया । भोजन करेन प्रभु ईषत् हासिया ॥२९६॥
प्रभु बोले "एइ ये अच्युता-नामे शाक । इहार भोजने हय कृष्णे अनुराग ॥२९७॥
पटोल-वास्तुक-काल-शाकेर भोजने । जन्म जन्म विहरये वैष्णवेर सने ॥२९८॥
सालिञ्चा हिलंचा-शाक भक्षण करिले । आरोग्य थाकये तारे कृष्णभक्ति मिले ॥२९९॥
एइमत शाकेर महिमा कहि कहि । भोजन करेन प्रभु आनन्दित हइ ॥३००॥
यतेक आनन्द हैल ए दिन भोजने । सबे इहा जाने प्रभु-सहस्र वदने ॥ ३०१ ॥
एइ यश सहस्र-जिह्वाय निरन्तर । गायेन अनन्त आदिदेव महीधर ॥ ३०२ ॥
सेइ प्रभु कलियुगे-अवधूत-राय । सूत्रमात्र लिखि आमि ताहान आज्ञाय ॥ ३०३ ॥
वेदव्यास आदि करि यत मुनिगण । एइ सब यश लये करेन वर्णन ॥ ३०४ ॥
ए यशेर यदि करे श्रवण पठन । तबे से जीवेर खण्डे अविद्या बन्धन ॥ ३०५ ॥

---

है स्वयं श्रीकृष्णचन्द्र ने सपरिवार इस अन्न को ग्रहण किया है ॥ २८९ ॥ वस्तुओं में निहत्य श्रीप्रभु ने इस प्रकार कहकर अन्न की प्रदक्षिणा की और भोजन करने को बैठे ॥ २९० ॥ प्रभु की आज्ञा से सब पार्षदवृन्द चारों ओर बैठ गये और भोजन लीला देखने लगे ॥ २९१ ॥ श्रीवैकुण्ठनाथ भोजन कर रहे थे और भाग्यवती माताजी नेत्र भरकर उन्हें देख रही थीं ॥ २९२ ॥ श्रीप्रभु सभी व्यंजनों से बनी प्रत्येक वस्तु को बड़ा आनन्द प्रकाश करते हुए भोजन करने लगे ॥ २९३ ॥ उन सभी पदार्थ में श्रीशाक व्यंजन बड़े भाग्यवन्त थे जिन्हें श्रीप्रभु बारम्बार ग्रहण करते थे ॥ २९४ ॥ शागों में प्रभु का विशेष आदर को देखकर प्रभु के सभी सेवक हँसने लगे ॥ २९५ ॥ श्रीप्रभु सबसे शागों की महिमा कहते जाते और कुछ २ हँसते हुए भोजन करते जाते थे ॥ २९६ ॥ प्रभु ने कहा "यह जो 'अच्युता' नाम का शाग है इसका भोजन से कृष्ण का अनुराग होता है" ॥ २९७ ॥ पटोल-बथुआ व काल नामक शाग के भोजन करने से जन्म-जन्म में वैष्णवों के साथ विहार करने को मिलता है ॥ २९८ ॥ सालिंचा व हिलंचा नामक शागों के भक्षण करने से आरोग्य रहता है जिससे कृष्ण-भक्ति मिलती है ॥ २९९ ॥ इस प्रकार श्रीप्रभु ने शागों की महिमा कह-कह कर प्रसन्नता पूर्वक भोजन किया ॥ ३०० ॥ जितना आनन्द उस दिन भोजन में आया उसे केवल सहस्रमुखी अनन्तदेव ही जानते हैं ॥ ३०१ ॥ इसी यश को पृथ्वीधारी आदिदेव श्रीअनन्तजी सहस्र जीभों से निरन्तर गान करते रहते हैं ॥ ३०२ ॥ कलियुग में वे ही प्रभु श्रीअनन्तदेव अवधूतराय ( नित्यानन्द ) हैं सो मैं उन्हीं की आज्ञा से सूत्र मात्र लिख रहा हूँ ॥ ३०३ ॥ वेदव्यास से आरम्भ करके जितने मुनिगण हैं, वे सब इन्हीं यशों का वर्णन करते हैं ॥ ३०४ ॥ यदि इस यश का जो श्रवण व पाठ करेंगे तो उन जीवों का अविद्या जनित बन्धन

हेन-रङ्गे महाप्रभु करिया भोजन । वसिलेन गिया प्रभु करि आचमन ॥ ३०६ ॥
मुखवास हरीतकी दिल भक्तगण । पुष्पमाला-आदि दिल सुगन्धि चन्दन ॥ ३०७ ॥
आचमन करि मात्र ईश्वर वसिला । भक्तगण अवशेष लूटिते लागिला ॥ ३०८ ॥
केहो बोले ब्राह्मणेर इहाते कि दाय । शूद्र आमि, आमारे से उच्छिष्ट जुयाय ॥३०९॥
आर केहो बोले 'आमि नहिये ब्राह्मण' । आड़े थाकि लइ केहो करे पलायन ॥३१०॥
केहो बोले शूद्रेर उच्छिष्ट योग्य नहे । 'हय' 'नय' विचारिया बूझ-शास्त्रे कहे ॥३११॥
केहो बोले आमि अवशेष नाहि चाइ । शुधू पातखानि मात्र आमि लइ याइ ॥३१२॥
केहो बोले आमि पात फेलि सर्वकाल । तोमरा ये लह से केवल ठाकुराल ॥३१३॥
एइ मत कौतुके चपल भक्तगण । ईश्वर अधरामृत करेन भोजन ॥ ३१४ ॥
आइर रन्धन-ईश्वरेर अवशेष । कार वा इहाते लोभ ना जन्मे विशेष ॥ ३१५ ॥
परानन्दे भोजन करिया भक्तगण । प्रभुर सम्मुखे सभे करिला गमन ॥ ३१६ ॥
वसिया आछेन प्रभु श्रीगौरसुन्दर । चतुर्दिगे वसिलेन सर्व-अनुचर ॥ ३१७ ॥
मुरारि गुप्तेरे प्रभु सम्मुखे देखिया । बलिलेन ताँरे किछु ईषत् हासिया ॥ ३१८ ॥
पढ़ [illegible] : राघवेन्द्र वर्णियाछ तुमि । अष्ट-श्लोक करियाछ शुनि आछि आमि ॥३१९॥
ईश्वरेर आज्ञा गुप्त-मुरारि शुनिया । पढ़िते लागिला श्लोक भावाविष्ट हैया ॥३२०॥

तथाहि ( श्रीचैतन्यचरिते २ य प्रक्रमे ७ म सर्गे )-

"अग्रे धनुर्द्धरवरः कनकोज्ज्वलाङ्गो ज्येष्ठानुसेवनरतो वरभूषणाढ्यः ।
शेषाख्यधाम-वरलक्ष्मणनाम यस्य रामं जगत्त्रयगुरुं सततं भजामि" ॥६॥

---

टूट जायगा ॥ ३०५ ॥ श्रीमहाप्रभु ने इस प्रकार आनन्द से भोजन प्रसाद पाया और आचमन करके अपने स्थान पर जा बिराजे ॥ ३०६ ॥ भक्तगणों ने पुष्पमाला आदि सुगन्ध चन्दन व मुखवास (ताम्बूल) हरीतकी प्रदान की ॥ ३०७ ॥ आचमन करके श्रीगौरचन्द्र विराजे ही थे कि भक्तगण अवशेष ( भोजन ) लूटने लगे ॥ ३०८ ॥ कोई कहता "इसमें ब्राह्मणों का क्या अधिकार है मैं शूद्र हूँ, हमें उच्छिष्ट मिलना युक्तियुक्त है ॥ ३०९ ॥ कोई कहता कि मैं ब्राह्मण ही हूँ नहीं तथा कोई बीच से ही ( झपट कर ) लेकर भागता था ॥ ३१० ॥ कोई कहता कि यह उच्छिष्ट शूद्र के योग्य नहीं है तो उत्तर मिलता कि "है या नहीं" शास्त्र क्या कहता है, उसे विचारो ? ॥ ३११ ॥ कोई कहता "मुझे अवशेषान्न नहीं चाहिये केवल पत्तल मात्र दे दो तो ले जाऊँ" ॥ ३१२ ॥ कोई कहता "हम तो सदा ही पत्तल उठाने वाले हैं,हमारा व्यवसाय है, तुम तो केवल ठकुराई के कारण लेना चाहते हो ?" ॥३१३॥ इस प्रकार चंचल भक्तमण्डली श्रीप्रभु का अधरामृत प्रसाद भोजन कर रहे हैं ॥ ३१४ ॥ एक तो श्रीमाताजी की बनाई हुई रसोई-दूसरे महाप्रभु की अधरामृत प्रसादी-भला किसको उसमें विशेष लोभ न जन्मेगा ॥ ३१५ ॥ भक्तगण ने परम आनन्द से भोजन करके पश्चात् श्रीप्रभु के सम्मुख गमन किया ॥३१६॥ श्रीगौरसुन्दर प्रभु बिराजमान हो रहे थे तथा सेवकगण उनके चारों ओर बैठ गये ॥ ३१७ ॥ मुरारीगुप्त को सामने देखकर श्रीप्रभु कुछ हँसकर बोले-॥ ३१८ ॥ हे गुप्त जी ! मैंने सुना है कि तुमने श्री राघवेन्द्रजी के (यश में) एक अष्टक (आठ श्लोक का) की रचना की है ॥३१९॥ श्री मुरारी गुप्त प्रभु की आज्ञा सुनकर भावाविष्ट हो श्लोक का पाठ करने लगे ३२० जिनके आगे

"हत्वा खर-त्रिशिरसौ सगणौ कबन्धं श्रीदण्डकाननमदूषणमेव कृत्वा ।
सुग्रीवमैत्रमकरोद्विनिहत्य शत्रुं रामं जगत्त्रयगुरुं सततं भजामि" ।।२।।

एइ मत अष्ट श्लोक मुरारि पढ़िला । प्रभुर आज्ञाय व्याख्या करिते लागिला ।। ३२१ ।।
"दूर्वादल श्यामल-कोदण्ड दीक्षागुरु । भक्तगण-प्रतिवाञ्छातीत-कल्पतरु ।। ३२२ ।।
हास्य मुखे रत्नमय-राज-सिंहासने । वसिया आछेन श्रीजानकीदेवी वामे ।। ३२३ ।।
अग्रे महाधनुर्द्धर अनुज लक्ष्मण । कनकेर प्राय ज्योति कनक भूषण ।। ३२४ ।।
आपने अनुज हइ श्रीअनन्त धाम । ज्येष्ठेर सेवाय रत-श्रीलक्ष्मण-नाम ।। ३२५ ।।
सर्व महागुरु हेन श्रीरघुनन्दन । जन्म-जन्म भजों मुञि ताँहार चरण ।। ३२६ ।।
भरत शत्रुघ्न दुइ चामर ढुलाय । सम्मुखे कपीन्द्रगण पुण्य कीर्तिगाय ।। ३२७ ।।
ये प्रभु करिला गुह-चण्डालेरे मित । जन्म-जन्म भजों मुञि ताँहार चरित ।। ३२८ ।।
गुरु-आज्ञा शिरे धरि छाड़ि निज राज्य । वन भ्रमिलेन ये करिते सुर कार्य ।। ३२९ ।।
बालि मारि सुग्रीवेरे राज्य भार दिया । मित्र-पद दिला ताने करुणा करिया ।। ३३० ।।
ये प्रभु करिला अहल्यार विमोचन । भजों हेन त्रिभुवन गुरुर चरण ।। ३३१ ।।
दुस्तर तरंग-सिन्धु-ईषत् लीलाय । कपि-द्वारे ये बान्धिल लक्ष्मण सहाय ।। ३३२ ।।
इन्द्रादिर अजय रावण वंश-सने । ये प्रभु मारिल भजों ताहार चरणे ।। ३३३ ।।

---

धनुषधारियों में अग्रगण्य, सुवर्ण के तुल्य विशेष उज्वलांग, अग्रज की अनुकूल सेवा में लगे हुए, उत्कृष्ट अलंकारों से अलंकृत, साक्षात् शेष स्वरूप एवं सबसे श्रेष्ठ,लक्ष्मण नामधारी कोई महापुरुष विराजमान हैं, मैं उस त्रिलोकी के गुरु रामचन्द्रजी का भजन करता हूँ ।।१।। जिन्होंने स्वजन सहित खर व त्रिशिरा नामक राक्षसों को मारकर दण्डकारण्य शत्रु से शून्य किया व शत्रु को मारकर सुग्रीव से मित्रता की थी, मैं उन्हीं त्रिलोकी के गुरु श्रीरामचन्द्र का निरन्तर भजन करता हूँ ।।२।। इस प्रकार श्रीमुरारी गुप्त ने आठों श्लोक पढ़े और प्रभु की आज्ञा से व्याख्या करने लगे।।३२१।।दूर्वादल श्याम धनुष के दीक्षागुरु भक्तगणों के प्रति वांछातीत फल प्रदान में कल्पतरु श्रीराम हास्यमुख से रत्नमय राजसिंहासन पर विराजमान हैं । आपके बांई ओर श्री-जानकीदेवी तथा आगे बड़े धनुषधारी छोटे भाई लक्ष्मण हैं श्रीलक्ष्मण नामक श्रीअनन्तधाम आपकी द्युति कनक के तुल्य है और आप कनक वर्ण के भूषण पहर कर स्वयं अनुज होकर बड़े भाई राम की सेवा में संरत हैं ऐसे श्रीरघुनन्दन सबके प्रधान गुरु हैं, मैं उनके चरण-कमलों को जन्म-जन्म भजूँ ।। ३२२ से ३२६।। भरत शत्रुघ्न दोनों चँवर डुलाते हैं सामने कपीन्द्रगण पुण्य कीर्ति का गान करते हैं और जिन प्रभु ने गुहक चाण्डाल से मित्रता की मैं उनके चरित्रों को जैसे जन्म-जन्म में भजन करूँ ।।३२७-३२८।। पिता की आज्ञा शिर पर रखकर अपने राज्य को त्याग कर देवताओं के कार्य करने के लिये जिन्होंने वन में भ्रमण किया तथा बालि को मारकर सुग्रीव को राज्य का भार दिया, आपने करुणा करके सुग्रीव को मित्र पद प्रदान किया तथा जिस प्रभु ने अहिल्या का विमोचन किया मैं ऐसे त्रिभुवन के गुरु श्रीराम के चरण-कमलों का भजन करता हूँ ।। ३२९ से ३३१ ।। जिन प्रभु ने लीलामात्र से कपियों के द्वारा दुस्तर तरङ्गों युक्त समुद्र में पुल बाँधा और इन्द्र आदि देवताओं के अजेय रावण को वंश के सहित लक्ष्मण की सहायता से वध किया ऐसे प्रभु के चरण-कमलों में निरन्तर भजन करता हूँ ।। ३३२-३३३ ।। जिनकी कृपा से धर्मपरायण विभीषण

यवनेओ याँर कीर्ति श्रद्धा करि शुने भजों हेन राघवेन्द्र-प्रभुर चरणे ॥ ३३५ ॥
दुष्टक्षय लागि निरन्तर धनुर्द्धर पुत्रेर समान प्रजा पालने तत्पर ॥ ३३६ ॥
याँहार कृपाय सब अयोध्या निवासी । स-शरीरे हइलेन श्रीवैकुण्ठवासी ॥ ३३७ ॥
याँर नाम-रसे महेश्वर दिगम्बर । रमा याँर पादपद्म सेवे निरन्तर ॥ ३३८ ॥
'परंब्रह्म जगन्नाथ' वेदे याँरे गाय । भजों हेन जगद्गुरु-राघवेन्द्र-पाय ॥ ३३९ ॥
एइ मत अष्ट श्लोक आपनार कृत । पढ़िला मुरारि राम-महिमा-अमृत ॥ ३४० ॥
शुनि तुष्ट हइ तबे श्रीगौरसुन्दर । पादपद्म दिला ताँर मस्तक-उपर ॥ ३४१ ॥
शुन गुप्त एइ तुमि आमार प्रसादे । जन्म-जन्म रामदास हओ निर्विरोधे ॥ ३४२ ॥
क्षणेके ये करिबेक तोमार आश्रय । सेहो राम पदाम्बुज पाइब निश्चय ॥ ३४३ ॥
मुरारि गुप्तेरे चैतन्येर वर शुनि । सभेइ करेन महा-जय जय ध्वनि ॥ ३४४ ॥
एइ मते कौतुके आछेन गौरसिंह । चतुर्दिगे शोभे सब चरणेर भृङ्ग ॥ ३४५ ॥
हेनइ समये कुष्ठ रोगी एक जन । प्रभुर सम्मुखे आसि दिल दरशन ॥ ३४६ ॥
दण्डवत हइया पड़िल आर्तनादे । दुइ बाहु तुलि महा आर्ति करि कान्दे ॥ ३४७ ॥
संसार-उद्धार लागि तुमि महाशय । पृथिवीर माझे आसि हइला उदय ॥ ३४८ ॥
पर-दुःख देखि तुमि स्वभावे कातर । एतेके आइलूँ मुञि तोमार गोचर ॥ ३४९ ॥

---

इच्छा न होते हुए भी लंकेश्वर हुए तथा जिनकी कीर्ति यवन भी श्रद्धापूर्वक सुनते हैं ऐसे राघवेन्द्र प्रभु के चरणों का मैं भजन करता हूँ॥३३४-३३५॥जो दुष्टों के नाश करने को निरन्तर धनुष धारण करते हैं तथा जो पुत्र समान प्रजा पालन करने में तत्पर हैं तथा जिनकी कृपा से सब अयोध्या निवासी शरीर सहित श्रीवैकुण्ठवासी हुए, जिनके नाम के रस से महेश्वर दिगम्बर हैं लक्ष्मीजी निरन्तर जिनके चरण-कमलों की सेवा करती हैं, वेद जिनको परमब्रह्म जगन्नाथ कहकर गान करते हैं ऐसे जगद्गुरु श्रीराघवेन्द्र के चरण-कमलों का मैं बारम्बार भजन करता हूँ ॥ ३३६ से ३३९ ॥ इस प्रकार श्रीमुरारी गुप्त ने स्वरचित राम महिमामृत रूप आठ श्लोकों के अष्टक का पाठ किया ॥ ३४० ॥ तब श्रीगौरसुन्दर सुनकर बड़े प्रसन्न हुए तथा उनके मस्तक के ऊपर अपने चरण-कमल अर्पण किये ॥ ३४१ ॥ हे गुप्त सुनो ! मेरी कृपा से तुम निर्विरोध प्रत्येक जन्म में श्रीरामदास होओगे ॥ ३४२ ॥ जो मनुष्य एक क्षण के लिये तुम्हारा आश्रय करेगा वह भी श्री रामजी के चरण-कमल निश्चय पावेगा ॥३४३॥ श्रीमुरारी गुप्त के प्रति श्रीचैतन्यदेव का वरदान सुनकर सब ऊँचे स्वर से जय २ ध्वनि करने लगे ॥ ३४४ ॥ श्रीगौरसिंह इस प्रकार कौतुक से विराजमान थे तथा उनके चरणों के चारों ओर भक्तमण्डली भौंरों की तरह शोभा पा रही थी ॥ ३४५ ॥ ऐसे ही समय एक कुष्ठ रोगी प्रभु के सामने आया ॥ ३४६ ॥ आर्तनाद करके वह दण्ड के समान गिर पड़ा तथा दोनों भुजाएँ उठाकर बड़े दीन स्वर में रोने लगा ॥ ३४७ ॥ हे महाशय ! आप संसार उद्धार के निमित्त पृथ्वी पर प्रगट हुए हो॥३४८॥आप स्वभाव से ही पर दुःख देखकर कातर (द्रवित) होते हो इसी कारण से मैं आपके सम्मुख आया हूँ ॥ ३४९ ॥ कुष्ठ रोग से पीड़ित हूँ उसकी ज्वाला से मैं दिन रात जलता रहता हूँ। हे प्रभो ! इससे

कुष्ठरोगे पीड़ित, ज्वालाय मुञि मरों । बोलह उपाय प्रभु कोन् मते तरों ॥ ३५० ॥
शुनि महाप्रभु कुष्ठरोगीर वचन । बलिते लागिला क्रोधे तर्जन-वचन ॥ ३५१ ॥
घूच घूच महापापि विद्यमान हैते । तोरे देखिलेओ पाप जन्मये लोकेते ॥ ३५२ ॥
परम-धार्मिक यदि देखे तोर मुख । से दिवसे ताहार अवश्य हय दुःख ॥ ३५३ ॥
वैष्णव निन्दक तुञि पापी दुराचार । इहा हैते दुःख तोर कत आछे आर ॥ ३५४ ॥
एइ ज्वाला सहिते ना पार दुष्ट मति । केमते करिबा कुम्भी पाकेते वसति ॥३५५॥
ये 'वैष्णव' नामे हय संसार पवित्र । ब्रह्मादि गायेन ये वैष्णव चरित्र ॥ ३५६ ॥
ये वैष्णव भजिले अचिन्त्य कृष्ण पाइ । ये वैष्णव पूजा हैते बड़ आर नाइ ॥३५७॥
शेष रमा अज भव निज देह हैते । वैष्णव कृष्णेर प्रिय कहे भागवते ॥३५८॥

तथाहि भागवते ११ स्कन्धे १४ अध्याये १५ श्लोके—

"न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः । न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्" ॥३॥

हेन वैष्णवेर निन्दा करे ये-ये जन । सेइ पाय दुःख-जन्म जीवन मरण ॥३५९॥
विद्या कुल तप-सब विफल ताहार । वैष्णव निन्दये ये-ये पापी दुराचार ॥३६०॥
पूजाओ ताहार कृष्ण ना करे ग्रहण । वैष्णवेर निन्दा करे ये पापिष्ठ जन ॥३६१॥
ये वैष्णव नाचिते पृथिवी धन्य हय । यार दृष्टिमात्र दश दिगे पाप क्षय ॥३६२॥
ये वैष्णव जन बाहु तुलिया नाचिते । स्वर्गेरो सकल विघ्न घूचे भालमते ॥३६३॥
हेन महाभागवत श्रीवास पण्डित । तुञि पापी निन्दा केलि ताँहार चरित ॥३६४॥

---

छूटने के उपाय बतलाइये ॥ ३५० ॥ कुष्ठ रोगी के वचन सुनकर महाप्रभु क्रोध से फटकारते हुए बोले॥३५१॥ अरे महापापी ! सामने से दूर हो दूर हो ! मनुष्यों में तुझे देखते ही पाप उदय होता है ? ॥ ३५२ ॥ यदि कोई परम धार्मिक भी तेरे मुख को देख लेगा तो उस दिन उसे अवश्य दुःख मिलेगा ॥ ३५३ ॥ तू वैष्णवों की निन्दा रूप बुरा आचरण करने वाला पापी है इससे तुझे अभी आगे और भी कितने ही दुःख पड़ेंगे ॥३५४॥ अरे दुष्ट बुद्धि ! इसी ज्वाला को नहीं सह पाता तो कुम्भीपाक नरक में कैसे वास करेगा ॥ ३५५॥ जिन वैष्णवों के नाम से संसार पवित्र होता है जिन वैष्णवों के चरित्रों को ब्रह्मादि ने भी गाया है ॥३५६॥ जिन वैष्णवों की सेवा से अचिन्त्य कृष्ण भी प्राप्त होते हैं जिन वैष्णवों की पूजा से अन्य पूजा श्रेष्ठ नहीं है ॥३५७॥भागवत का वचन है कि भगवान् कृष्ण को वैष्णवगण शेष,लक्ष्मी,ब्रह्मा,शिवजी तथा अपनी देह से भी अधिक प्रिय हैं ॥ ३५८ ॥ हे उद्धव ! ब्रह्मा, शिव, संकर्षण, लक्ष्मी व मेरा अपना आत्मा भी उतनी प्रिय नहीं है जितने तुम प्रिय हो ॥ ३ ॥ ऐसे वैष्णवों की जो निन्दा करता है वही जन्म (जीवन) मरण के दुःखों को बार २ पाता है ॥ ३५९ ॥ जो पापी दुराचारी वैष्णवों की निन्दा करता है उसका कुल-विद्या तथा तप सब निष्फल है ॥ ३६० ॥ जो पापिष्ठ जन वैष्णवों की निन्दा करता है उसकी की हुई पूजा को भगवान् (कृष्ण) ग्रहण नहीं करते हैं ॥ ३६१ ॥ जिन वैष्णवों के नाचने से पृथ्वी धन्य होती है और जिन्हों की दृष्टि-मात्र से दशों दिशाओं के पाप नष्ट होते हैं ॥ ३६२ ॥ जिन वैष्णवों के भुजा उठाकर नाचने से स्वर्ग के सब विघ्न अच्छी तरह दूर हो जाते हैं ॥ ३६३ ॥ ऐसे भक्ति शिरोमणि श्रीवास पण्डित हैं अरे दुष्ट तूने उनके

एतेके आमार द्रष्य योग्य नह तुमि  तोमार निष्कृति करिवारे नारि आमि  ३६६
सेइ कुष्ठरोगी शुनि प्रभुर उत्तर  दन्ते तृण करि बोले हइया कातर ।।३६७।।
किछु ना जानिलूँ मुजि आपना खाइया । वैष्णवेर निन्दा कैलूँ प्रमत्त हइया ।।३६८।।
अतएव तार शास्ति पाइलूँ उचित । एखने ईश्वर तुमि-चिन्त मोर हित ।।३६९।।
साधुर स्वभाव धर्म-दुखित उद्धारे । कृत-अपराधेरे साधु से दया करे ।।३७०।।
एतेके शरण मुजि लइलूँ तोमार । तुमि उपेक्षिले मोर नाहिक निस्तार ।।३७१।।
याहार ये प्रायश्चित्त-तुमि सर्व ज्ञाता । प्रायश्चित्त बोल मोरे-तुमि सर्व पिता ।।३७२।।
वैष्णव जनेर येन निन्दन करिलूँ । उचित ताहार बोल शास्तिओ पाइलूँ ।।३७३।।
प्रभु बोले वैष्णव निन्दये येइ जन । कुष्ठरोग कोन तार शास्तिये लिखन ।।३७४।।
आपातत किछु दुःख पाइयाछ मात्र । आर केबा आछे यम यातनार पात्र ।।३७५।।
चौराशि-सहस्र यम यातना परलोके । पुनः पुन करि भुञ्जे वैष्णव निन्दके ।।३७६।।
चल कुष्ठरोगि तुमि श्रीवासेर स्थाने । सत्वरे पड़ह गिया ताँहार चरणे ।।३७७।।
ताँर ठाञि तुमि करियाछ अपराध । निष्कृति तोमार तिंहो करिले प्रसाद ।।३७८।।
काँटा फुटे ये मुखे से-इसे मुखे जाय । पाये काँटा फुटिले कि कान्धे बाहिराय ।।३७९।।
एइ कहिलाङ आमि निस्तार-उपाय । श्रीवास पण्डित क्षमिले से दुःख जाय ।।३८०।।

---

चरित्र की निन्दा की ।। ३६४ ।। इसलिये तेरी देह में कुष्ठ ज्वाला का दुख क्या है ? अभी मूल दण्डदाता धर्मराज तो अन्त में दण्ड देगा ।।३६५।। इसलिये तुम मेरे देखने योग्य नहीं हो–मैं तुम्हारे कर्म भी शेष नहीं करूँगा ।। ३६६ ।। वह कुष्ठ रोगी श्रीप्रभु का उत्तर सुनकर ही दाँतों से तिनुका पकड़ कर बड़ा कातर होकर बोला ।। ३६७ ।। प्रभो ! मतवाले मैंने ही वैष्णव निन्दा करके अपने आपको ही खाया और कुछ नहीं जाना ।। ३६८ ।। अतएव मैंने उसका उचित दण्ड पा लिया–अब तो हे ईश्वर आप ही मेरे ( कल्याण की ) चिन्ता करो ? ।। ३६९ ।। दुःखितों का उद्धार करना साधु का स्वाभाविक धर्म है, उनके ( दुःखितों के ) किये हुए अपराधों पर तो साधु दया ही करते हैं ।।३७०।। इस कारण अब आपकी शरण हूँ–आप ही उपेक्षा करेंगे तो मेरा निस्तार नहीं है ।। ३७१ ।। जिसका जो प्रायश्चित है आप सब जानते हैं कृपा करके (मेरे लिये) प्रायश्चित बतावें–आप सबके पिता हैं ।। ३७२ ।। वैष्णवजनों की जो मैंने निन्दा की उसका उचित दण्ड भी क्या मैंने नहीं पाया–आप कहें ? ।। ३७३ ।। श्रीप्रभु ने कहा जो मनुष्य वैष्णवों की निन्दा करे उसके लिये क्या कोई कुष्ठ रोग ही दण्ड विधान में लिखा है ? ।। ३७४ ।। स्वतः कुछ दुःख मात्र पाये हो, परन्तु यम यातना का पात्र क्या कोई और होगा ? ।। ३७५ ।। परलोक में वैष्णव निन्दक ८४ हजार प्रकार की यम यातनाएँ एक के पीछे एक करके भोगता है ।। ३७६ ।। हे कुष्ठी तुम शीघ्र ही श्रीवास के स्थान को जाओ तथा उनके चरणों में पड़ो ।। ३७७ ।। तुमने उनका अपराध किया है, तुम्हारे कृत्य को वे ही निःशेष करके अनुग्रह करेंगे ।। ३७८ ।। काँटा जहाँ लगता है वहीं से बाहिर होता है–पैर में काँटा लगकर कहीं कन्धे से निकलता है ? ।। ३७९ ।। मैंने तुम्हारे तरण का उपाय बता दिया श्रीवास पण्डित के क्षमा करने पर ही यह

महा-शुद्ध बुद्धि तिंहो ताँर स्थाने गेले। क्षमिबेन सर्व दोष, निस्तारिबे हेले ॥२८१॥
शुनिञा प्रभुर अति सुसत्य वचन। महा जय जय ध्वनि कैला भक्तगण ॥२८२॥
सेइ कुष्ठरोगी शुनि प्रभुर वचन। दण्डवत् हइया चलिला सेइ क्षण ॥२८३॥
सेइ कुष्ठरोगी पाइ श्रीवास प्रसाद। मुक्त हैल-खण्डिल सकल अपराध ॥२८४॥
यतेक अनर्थ हय वैष्णव निन्दाय। आपने कहिला एइ श्रीवैकुंठराय ॥२८५॥
तथापिह वैष्णवेर निन्दे येइ जन। तार शास्ता आछेन चैतन्य-नारायण ॥२८६॥
वैष्णवे-वैष्णवे ये देखह गाला गालि। परमार्थे नहे इथे कृष्ण कुतूहली ॥२८७॥
सत्यभामा-रुक्मिणीये गाला गालि येन। परमार्थे एक ताँना, देखि भिन्न हेन ॥२८८॥
एइ मत वैष्णवे-वैष्णवे भिन्न नाञि। भिन्न करायेन रङ्ग चैतन्य गोसाञि ॥२८९॥
इथे येइ एक वैष्णवेर पक्ष लय। आर वैष्णवेर निन्दे सेइ जाय क्षय ॥२९०॥
एक हस्त ईश्वरेर सेवये केवल। आर हस्ते दुःख दिले तार कि कुशल ॥२९१॥
एइ मत सर्व भक्त-कृष्णेर शरीर। इहा बूझे, ये हय परम-महाधीर ॥२९२॥
अभेद दृष्टिये सर्व-वैष्णव पूजिया। ये कृष्ण-चरण भजे, से जाय तरिया ॥२९३॥
ये गाय ये शुने ए सकल पुण्य-कथा। वैष्णवापराध तार ना जन्मे सर्वथा ॥२९४॥
हेन मते श्रीगौरसुन्दर शान्तिपुरे। आछेन परमानन्दे अद्वैत-मन्दिरे ॥२९५॥
माधवपुरीर आराधना पुण्य तिथि। दैवयोगे उपसन्न हैल आसि तथि ॥२९६॥

---

दुःख जावेगा ॥ २८० ॥ वे भी बड़े शुद्ध बुद्धि वाले हैं उनके पास जाने पर सब दोषों को क्षमा करके अनायास ही निस्तार कर देंगे ॥ २८१ ॥ श्रीप्रभु की अति सुन्दर व सत्य वाणी सुनकर भक्तवृन्द ऊँचे स्वर से जय जय ध्वनि करने लगे ॥ २८२ ॥ उस कुष्ठरोगी ने प्रभु के वचन सुनकर ही दण्डवत् की और तुरन्त चल दिया ॥ २८३ ॥ वह कुष्ठरोगी श्रीवासजी का अनुग्रह पाकर ( रोग ) मुक्त हो गया तथा उसके सब अपराध नष्ट हो गये ॥ २८४ ॥ वैष्णवों की निन्दा से जितने अनर्थ होते हैं श्रीवैकुंठनाथ ने वे सब स्वयं कह दिये ॥ २८५ ॥ तथापि जो मनुष्य वैष्णवों की निन्दा करेगा उसको दण्ड देने वाले श्रीचैतन्यनारायण ही हैं ॥ २८६ ॥ ( लेखक कहते हैं कि ) वर्तमान में वैष्णवों में जो गाली-गलौज तुम देखते हो उससे परमार्थ पर कुछ हानि नहीं होती—यह सब तो कौतुकी कृष्ण ही करता है ॥ २८७ ॥ सत्यभामा व रुक्मिणी में जैसे गाली-गलौज होती, परन्तु परमार्थ में वे दोनों एक हैं केवल देखने में ही वे अलग दीखती हैं ॥२८८॥ इसी प्रकार वैष्णव भी भिन्न नहीं है परन्तु श्रीचैतन्य प्रभु ने खेल के लिये यह भिन्नता कराई है ॥ २८९ ॥ इसलिये जो एक वैष्णव का पक्ष ले और दूसरे वैष्णव की निन्दा करे तो वह नष्ट हो जावेगा ॥ २९० ॥ जो ईश्वर के एक हाथ की तो सेवा करे और दूसरे हाथ को दुःख दे तो उसकी क्या कुशल होगी ? ॥ २९१ ॥ इस प्रकार सभी भक्तगण श्रीकृष्ण के अङ्ग हैं इसे जो समझते हैं वे ही महाश्रेष्ट धैर्यवान हैं ॥ २९२ ॥ जो अभेद दृष्टि से सब वैष्णवों का पूजन करके कृष्ण चरण-कमलों को भजते हैं वे ही तर जाते हैं ॥२९३॥ इस सम्पूर्ण पुण्य कथा को जो गान करेंगे अथवा सुनेंगे उनमें वैष्णव अपराध कभी नहीं जन्मेगा ॥२९४॥ इस भाँति शान्तिपुर में श्रीअद्वैत मन्दिर में श्रीगौरसुन्दर बड़े आनन्द में रहे ॥ २९५ श्रीमाधवेन्द्रपुरीजी

माधवेन्द्र-अद्वैते यद्यपि भेद नाञि । तथापि ताहान शिष्य-आचार्य गोसाञि ।।३६७।।
माधवपुरीर देहे श्रीगौरसुन्दर । सत्य-सत्य-सत्य विहरये निरन्तर ।।३६८।।
माधवेन्द्रपुरीर अकथ्य विष्णु-भक्ति । कृष्णेर प्रसादे सर्वकाल पूर्ण शक्ति ।।३६९।।
ये मते अद्वैत शिष्य हइलेन तान । चित्त दिया शुन सेइ मङ्गल-आख्यान ।।४००।।
ये समये ना छिल चैतन्य-अवतार । विष्णुभक्ति शून्य सब आछिल संसार ।।४०१।।
तखनेओ माधवेन्द्र चैतन्य कृपाय । प्रेम-सुखसिन्धु-माझे भासेन सदाय ।।४०२।।
निरवधि देहे रोम हर्ष, अश्रु, कम्प । हुङ्कार, गर्जन, महाहास्य, स्तम्भ, घर्म्म ।।४०३।।
निरवधि गोविन्देर ध्याने नाहि बाह्य । आपने ओ ना जानेन-कि करेन कार्य ।।४०४।।
पथे चलि जाइतेओ आपना आपनि । नाचेन परमानन्दे करि हरि ध्वनि ।।४०५।।
कखनो वा हेन से आनन्द मूर्च्छा हय । दुइ-तिन प्रहरेओ देहे बाह्य नय ।।४०६।।
कखनो वा विरहे ये करेन रोदन । गङ्गाधारा बहे येन-अद्भुत कथन ।।४०७।।
कखनो हासेन अति अट्ट-अट्ट हास । परानन्द रसे क्षणे हय दिगवास ।।४०८।।
एइ मत कृष्ण सुखे माधवेन्द्र सुखी । सबे भक्तिशून्य लोक देखि बड़ दुखी ।।४०९।।
कृष्ण यात्रा, अहो रात्रि कृष्ण-संकीर्तन । इहार उद्देशो नाहि जाने कोन जन ।।४१०।।
'धर्म-कर्म' लोक सब एइ मात्र जाने । मङ्गल चण्डीर गीते करे जागरणे ।।४११।।
देवता जानेन सबे 'षष्ठी विषहरि' । ताओ ये पूजेन सेहो महादम्भ करि ।।४१२।।

---

के आराधना की पुण्य तिथि दैवयोग से उसी बीच में आकर उपस्थित हुई ।। ३९६ ।। यद्यपि श्रीमाधवेन्द्रपुरी व अद्वैत आचार्य में भेद नहीं है तथापि आचार्य प्रभु उनके शिष्य हैं ।। ३९७ ।। श्रीमाधवेन्द्रपुरी जी के शरीर में सत्य ही श्रीगौरसुन्दर निरन्तर विहार करते थे ।। ३९८ ।। श्रीमाधवेन्द्रपुरी जी की विष्णुभक्ति अकथनीय है, श्रीकृष्ण के अनुग्रह से उनमें सदैव पूर्ण शक्ति विराजती थी ।।३९९।। जिस प्रकार श्रीअद्वैतजी उनके शिष्य हुए उस मङ्गल आख्यान को चित्त लगाकर सुनो ।।४००।। जिस समय श्रीचैतन्य प्रभु का प्रकट अवतार नहीं हुआ था उस समय समस्त जगत् विष्णु भक्ति से शून्य था।।४०१।।उस समय भी श्रीचैतन्यदेव की कृपा से श्रीमाधवेन्द्रपुरीजी सदा ही प्रेम सुखसिन्धु में विभोर रहते थे ।। ४०२ ।। उनके शरीर में रोमें खड़े होना-अश्रु, कम्प, हुङ्कार, गर्जन, महा हँसी, जड़ता व खेद होना आदि विकार निरन्तर होते रहते थे ।। ४०३ ।। गोविन्द के ध्यान में निरन्तर रहने से बाह्य ज्ञान नहीं रहता था तथा स्वयं भी नहीं जानते थे कि क्या कार्य करते हैं ।। ४०४ ।। मार्ग में जाते-जाते आप ही आप बड़े आनन्द से हरिध्वनि करके नाचने लगते ।। ४०५ ।। कभी २ ऐसी आनन्द मूर्च्छा होती कि दो-तीन पहर तक होश नहीं होता ।। ४०६ ।। कभी विरह में जो रुदन करते तो मानो गङ्गाधारा ही बहती थी, यह बड़ी अद्भुत बात है ।।४०७।। कभी ऊँचे स्वर से अट्ट-अट्ट हँसी हँसते तो क्षण में ही परानन्द रस में दिगम्बर (नग्न) हो जाते थे ।। ४०८ ।। इस प्रकार माधवेन्द्रपुरी कृष्ण के सुख में सुखी थे, परन्तु संसार को भक्ति शून्य देखकर मन में बड़े दुःखी थे ।। ४०९ ।। कभी श्रीकृष्ण की चन्दनयात्रा आदि करते तो कभी दिन-राति कृष्ण नाम संकीर्तन ही करते-परन्तु कोई भी मनुष्य इनका उद्देश्य नहीं जान पाता था ।। ४१० ।। सब लोग केवल इतना ही धर्म-कर्म जानते थे कि

'धन वंश बाढुक' करिया काम्य मने । मद्य-मांसे दानव पूजये कोन जने ॥४१३॥
योगिपाल भोगिपाल महीपालेर गीत । इहाइ शुनिते सर्वलोक आनन्दित ॥४१४॥
अति बड़ सुकृति से स्नानेर समय । गोविन्द-पुण्डरीकाक्ष-नाम उच्चारय ॥४१५॥
कारे बा 'वैष्णव' बलि, कि वा सङ्कीर्तन । केने वा कृष्णेर नृत्य, केने वा क्रन्दन ॥४१६॥
विष्णु मायावशे लोक किछुइ ना जाने । सकल जगत बद्ध महातमोगुणे ॥४१७॥
लोक देखि दुःख भावे श्रीमाधवपुरी । हेन नाहि तिलार्द्ध सम्भाषा यारे करि ॥४१८॥
सन्यासीर सने वा करेन सम्भाषण । सेहो आपनारे मात्र बोले नारायण ॥४१९॥
ए दुःखे सन्यासि सङ्गे ना कहेन कथा । हेन स्थान नाहि, कृष्णभक्ति शुनि यथा ॥४२०॥
'ज्ञानी योगी तपस्वी विरक्त' ख्याति यार । कारो मुखे नाहि दास्य-महिमा-प्रचार ॥४२१॥
यत अध्यापक सब तर्क से बाखाने । तारा बोल कृष्णेर विग्रह नाहि माने ॥४२२॥
देखिते शुनिते दुःखी श्रीमाधवपुरी । मनेमने चिन्ते-वनवास गिया करि ॥४२३॥
लोक मध्ये भ्रमि केने वैष्णव देखिते । से वैष्णव-नाम बोल ना शुनि जगते ॥४२४॥
अतएव ए सकल लोक-मध्य हैते । बने जाइ यथा लोक ना पाइ देखिते ॥४२५॥
एतेके से वन भाल ए सब हइते । वने कथा नहे अवैष्णवेर सहिते ॥४२६॥
एइ मत मनो दुःख भाविते चिन्तिते । ईश्वर-इच्छाय देखा अद्वैत-सहिते ॥४२७॥

---

मङ्गलचण्डी के गीत गाकर रात्रि जागरण कर लेते थे ॥ ४११ ॥ पष्ठी विषहरी को ही केवल देवता जानते थे और उसे भी जो पूजते तो बड़े दम्भ से ॥ ४१२ ॥ धन व वंश बढ़े ऐसी कामना करके कोई २ मनुष्य मद्य-मांस से दानवों को पूजते थे ॥ ४१३ ॥ योगिपाल, भोगिपाल व महीपाल आदि गायनों को ही सुनकर सब संसार प्रसन्न हो जाता था ॥ ४१४ ॥ जो कोई बहुत बड़ा पुण्यात्मा सुकृति होता वह स्नान करते समय गोविन्द पुण्डरीकाक्ष आदि नाम उच्चारण कर लेता ॥ ४१५ ॥ "वैष्णव" किसे कहते हैं ? संकीर्तन क्या है ? तथा कृष्ण प्रेम में नृत्य व क्रन्दन क्यों करें ? विष्णुमाया के वश में पड़े मनुष्य कुछ भी नहीं जानते थे तथा सब संसार महा तमोगुण में बँध रहा था ॥ ४१६-४१७ ॥ मनुष्यों को देखकर माधवेन्द्रपुरी जी दुःख की भावना करते थे-ऐसा कोई नहीं था; जिससे अर्द्ध तिलमात्र समय को भी सम्भाषण करलें ॥ ४१८ ॥ यदि कभी सन्यासियों के साथ सम्भाषण करते तो वे अपने को नारायण ही कहते थे ॥ ४१९ ॥ इसी दुःख से सन्यासियों से भी बात नहीं करते थे ऐसी कोई जगह नहीं थी जहाँ कुछ कृष्ण-भक्ति भी सुनते ॥ ४२० ॥ जो विख्यात ज्ञानी, योगी व विरक्त तपस्वी थे उनमें से किसी के मुख से भी दास्य-भक्ति की महिमा का प्रचार नहीं होता था ॥ ४२१ ॥ जितने अध्यापक थे वे सब तर्क व्याख्या ही करते व तारा २ बोलते थे, कृष्ण विग्रह को नहीं मानते थे ॥ ४२२ ॥ श्रीमाधवेन्द्रपुरी यह सब देख सुनकर बड़े दुःखी थे और मन ही मन सोचते कि बन में जाकर रहें ॥ ४२३ ॥ संसार में वैष्णव ढूँढ़ने को भ्रमण किया, परन्तु वैष्णव का नाम व शब्द भी जगत् में सुनने को नहीं मिले ॥ ४२४ ॥ इस कारण इन सब मनुष्यों के बीच वन को चला जाऊँ जहाँ यह मनुष्य देख न पड़ें ॥ ४२५ ॥ इन सबसे तो वन ही अच्छा क्योंकि वहाँ अवैष्णवों से कथा प्रसङ्ग तो न होगा ? ॥ ४२६ ॥ इस प्रकार मनमें दुःख की भावना व चिन्तन करते २

विष्णुभक्ति शून्य देखि सकल संसार । अद्वैत-आचार्य दुःख भावेन अपार ।।४२८।।
तथापि अद्वैतसिंह कृष्णेर कृपाय । दृढ़करि विष्णुभक्ति वाखाने सदाय ।।४२९।।
निरन्तर पढ़ायेन गीता भागवत । भक्ति वाखानेन मात्र-ग्रन्थेर ये मत ।।४३०।।
हेनइ समये माधवेन्द्र महाशय । अद्वैतेर गृहे आसि हइला उदय ।।४३१।।
देखिया अद्वैत तान वैष्णव लक्षण । प्रणाम हइया पड़िलेन सेइक्षण ।।४३२।।
माधवेन्द्रपुरी ओ अद्वैत करि कोले । सिञ्चिलेन अङ्ग तान प्रेमानन्द जले ।।४३३।।
अन्योऽन्ये कृष्ण कथा रसे दुइ जन । आपनार देह कारो नाहिक स्मरण ।।४३४।।
माधवपुरीर प्रेम-अकथ्य कथन । मेघ-दरशने मूर्च्छा हय सेइ क्षण ।।४३५।।
कृष्ण नाम शुनिलेइ करेन हुङ्कार । दण्डेके सहस्र हय कृष्णेर विकार ।।४३६।।
देखिया ताँहार विष्णुभक्तिर उदय । बड़सुखी हैला अद्वैत महाशय ।।४३७।।
ताँर ठाञि उपदेश करिला ग्रहण । हेन मते माधवेन्द्र-अद्वैत-मिलन ।।४३८।।
माधवपुरीर आराधनार दिवसे । सवस्व निःक्षेप करे अद्वैत हरिषे ।।४३९।।
दैवे सेइ पुण्य-तिथि आसिया मिलिला । सन्तोषे अद्वैत सज्ज करिते लागिला ।।४४०।।
श्रीगौरसुन्दरो सब-पारिषद सने । बड़ सुखी हइलेन सेइ पुण्य दिने ।।४४१।।
सेइ तिथि पूजिबारे आचार्य गोसाञि । यत सज्ज करिलेन, तार अन्त नाञि ।।४४२।।
नाना दिग हैते सज्ज लागिल आसिते । हेन नाहि जानि के आनये कोन् भिते ।।४४३।।

---

ईश्वर की इच्छा से श्रीअद्वैतजी से भेंट हो गई।। ४२७ ।। सब संसार को विष्णु भक्ति से शून्य देखकर अद्वैत आचार्य को अपार दुःख की भावना होती थी ।। ४२८ ।। तथापि श्रीअद्वैतसिंह कृष्ण-कृपा से विष्णु भक्ति की दृढ़ता से सदा व्याख्या करते थे ।। ४२९ ।। निरन्तर गीता व भागवत को पढ़ाते थे तथा ग्रन्थों के अनुसार ही ठीक व्याख्या करते थे ।। ४३० ।। ऐसे ही समय श्रीमहाशय माधवेन्द्रपुरीजी श्रीअद्वैतजी के घर पर आकर पहुँचे ।।४३१।। उनमें वैष्णव लक्षण देखकर श्रीअद्वैतजी ने तत्क्षण उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया ।। ४३२ ।। श्रीमाधवेन्द्रपुरी जी ने भी श्रीअद्वैत प्रभु को गोद में समेट कर उनके अङ्ग को प्रेमानन्द जल से सिंचन कर दिया ।। ४३३ ।। कृष्ण कथा रस से परस्पर में दोनों को अपनी-अपनी देह का किसी को स्मरण नहीं रहा ।। ४३४ ।। श्रीमाधवपुरीजी के प्रेम की कथा तो अकथनीय थी—वे नीलमेघ को ही देखकर तत्क्षण मूर्च्छित हो जाते थे ।। ४३५ ।। कृष्ण नाम सुनते ही हुङ्कार करते थे तथा एक दण्ड ( समय ) से कृष्णप्रेम के सहस्रों विकार होते थे ।। ४३६ ।। उनमें विष्णु भक्ति का ऐसा विकास देखकर श्रीअद्वैत महाशय बड़े सुखी हुए ।। ४३७ ।। तथा उनसे उपदेश ग्रहण किया; इस प्रकार माधवेन्द्रपुरी व अद्वैत आचार्य का मिलन हुआ।। ४३८ ।। श्रीमाधवपुरी आराधन के दिन श्रीअद्वैत प्रभु प्रसन्न होकर सर्वस्व निक्षेप ( लुटा देते ) कर देते थे ।। ४३९ ।। दैवयोग से पुण्य तिथी अब फिर आई थी सो सन्तुष्ट होकर श्रीअद्वैत प्रभु सामिग्री एकत्रित करने लगे ।। ४४० ।। श्रीगौरसुन्दर भी अपने सब पार्षदों के साथ उस पुण्य तिथी में बड़े प्रसन्न हुए ।।४४१।। श्रीआचार्य प्रभु ने उस तिथि की पूजा के लिये जितनी सामिग्री जुटाई उसका अन्त नहीं है।।४४२।। अनेकन दिशाओं से सामिग्री आने लगी यह कुछ जान नहीं पड़ता कि कौन किस ओर से ला रहा है। ४४३

माधवेन्द्रपुरी प्रति प्रीति सभाकार। सभेइ लइलेन यथायोग्य अधिकार ॥४४४॥
आइ लइलेन यत रन्धनेर भार। आइ वेढ़ि सर्व-वैष्णवेर परिवार ॥४४५॥
नित्यानन्द-महाप्रभु सन्तोष अपार। वैष्णव पूजिते लइलेन अधिकार ॥४४६॥
केहो बोले 'आमि-सब घषिब चन्दन'। केहो बोले 'आमि माला करिब ग्रन्थन' ॥४४७॥
केहो बोले 'जल आनिवार मोर भार। केहो बोले 'मोर दाय स्थान-उपस्कार' ॥४४८॥
केहो बोले 'मुजि यत वैष्णव चरण। मोर भार सकल करिव प्रक्षालन' ॥४४९॥
केहो वान्धे पताका, चान्दोया केहो टानि। केहो वा भाण्डारी केहो द्रव्य देय आनि॥४५०॥
कथो जने लागिला करिते सङ्कीर्तन। आनन्दे करेन नृत्य आरो कथोजन ॥४५१॥
कथोजन आरो 'हरि' बोलये कीर्तने। शङ्ख घन्टा बाजायेन आरो कथोजने ॥४५२॥
कथोजन करे तिथि पूजिवार कार्य। केहो वा हइला तिथि पूजार आचार्य ॥४५३॥
एइ मत परानन्द रसे भक्तगण। सभेइ करेन कार्य-पार येन मन ॥४५४॥
खाओ पिओ आनो नेह देह हरिध्वनि। इहा बइ चतुर्दिगे आर नाहि शुनि ॥४५५॥
शङ्ख, घन्टा, मृदङ्ग, मन्दिरा करताल। सङ्कीर्तन सङ्गे ध्वनि वाजये विशाल ॥४५६॥
परानन्दे काहारो नाहिक बाह्य ज्ञान। अद्वैत भवन हैल श्रीवैकुण्ठ धाम ॥४५७॥
आपने श्रीगौरचन्द्र परम सन्तोषे। सम्भारेर सज्ज देखि बूलेन हरिषे ॥४५८॥
तण्डुल देखेन प्रभु घर-दुइ-चारि। पर्वत प्रमाण देखे काष्ठ-सारि सारि ॥४५९॥

---

श्रीमाधवेन्द्रपुरी के प्रति सबकी प्रीति थी सो सब ही ने यथायोग्य सामिग्री जुटाने का अधिकार ग्रहण किया ॥ ४४४ ॥ श्रीमाताजी ने रसोई सिद्ध करने का समस्त भार अपने ऊपर ले लिया तथा उन्हें घेरकर सब वैष्णव परिवार जुट गया ॥ ४४५ ॥ श्रीनित्यानन्द महाप्रभु ने अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक वैष्णव पूजन का अधिकार ग्रहण किया ॥ ४४६ ॥ कोई कहता "मैं सब चन्दन घिसूँगा" कोई कहता "मैं माला ग्रन्थन करूँगा" ॥ ४४७ ॥ कोई कहता "जल लाने का भार मेरे ऊपर है" कोई कहता "स्थान साफ करना मेरा काम है" ॥ ४४८ ॥ कोई कहता "जितने वैष्णव हैं उनके चरणों को प्रक्षालन करना मेरा काम है"॥४४९॥ कोई पताका बाँध रहा था तथा कोई चँदोवा तान रहा था और कोई भण्डारी बना तो कोई वस्तुऐं ला-ला कर दे रहा था ॥ ४५० ॥ कुछ मनुष्य सङ्कीर्तन करने लगे और कुछ जन आनन्द से नृत्य करने लगे॥४५१॥ तथा दूसरे कुछ जन सङ्कीर्तन में हरि २ बाल रहे थे तथा और भी कुछ दूसरे मनुष्य शङ्ख घन्टा बजा रहे थे ॥ ४५२ ॥ कुछ मनुष्य तिथि पूजा के लिये काम कर रहे थे और कोई तिथि पूजा के आचार्य बने ॥४५३॥ इस प्रकार सभी भक्तगण जिसके मन में अच्छा लगा बड़े आनन्दपूर्वक सब ही कार्यों में लगे हुए थे।४५४॥ खाओ, पीओ, लाओ, लेओ-देओ व हरिध्वनि इनके अतिरिक्त चारों ओर और अन्य कुछ सुन नहीं पड़ता था ॥ ४५५ ॥ सङ्कीर्तन के साथ शङ्ख-घन्टा-मृदङ्ग-मँजीरा-करताल विशाल ध्वनि से बज रहे थे ॥ ४५६ ॥ किसी को प्रेमानन्द में बाह्य ज्ञान नहीं था—अद्वैत भवन श्रीवैकुण्ठधाम ही बन गया था ॥ ४५७ ॥ स्वयं श्रीगौरचन्द्र सामिग्री के आयोजन को देखकर बड़े सन्तुष्ट हुए और हर्ष से फूले नहीं समाते थे ॥ ४५८ ॥ श्रीप्रभु ने दो-चार कोठों में चाँवल देखे और काष्ठ के पर्वत जैसे ढेर के ढेर देखे ॥ ४५९ ॥ रसोई राँधने के

घर दुइ-चारि प्रभु देखे चिपीटक  सहस्र सहस्र कान्दी देखे कदलक  ४६२
ना जानि कतेक नारिकेल गुया पान  कोथा हैते आसिया हइल विद्यमान  ४६३
पटोल वास्तुक शाक थोड़ आलू मान । कत घर भरियाछे-नाहिक प्रमाण ॥४६४॥
सहस्र-सहस्र घड़ा देखे दधि दुग्ध । क्षीर इक्षुदण्ड अंकुरेर सने मुद्ग ॥४६५॥
तैल वा लवण गुड़ देखे प्रभु यत । सकलि अनन्त-लिखिबारे पारि कत ॥४६६॥
अति-अमानुषि देखि सकल सम्भार । चिते येन प्रभु हइलेन चमत्कार ॥४६७॥
प्रभु बोले ए सम्पत्ति मनुष्येर नय । 'आचार्य महेश' हेन मोर चित्ते लय ॥४६८॥
मनुष्येरो ए मत कि सम्पत्ति सम्भवे । ए सम्पत्ति सकले सम्भवे महादेवे ॥४६९॥
बुझिलाङ-आचार्य महेश-अवतार । एइ मत हासि प्रभु बोले बार-बार ॥४७०॥
छले अद्वैतेरे तत्त्व महाप्रभु कय । ये हय सुकृति से परमानन्दे लय ॥४७१॥
तान वाक्ये अनादर अनास्था याहार । तारे श्रीअद्वैत हय अग्नि-अवतार ॥४७२॥
यद्यपि अद्वैत कोटि-चन्द्र-सुशीतल । तथापि चैतन्य विमुखेर कालानल ॥४७३॥
सकृत् ये जन बोले 'शिव' हेन नाम । सेहो कोनो प्रसङ्गे, ना जाने तत्त्व तान ॥४७४॥
सेइ क्षणे सर्व पाप हैते शुद्ध हय । वेदे शास्त्रे भागवते एइ तत्त्व कय ॥४७५॥

---

( हंडे व परातें ) पाँच घरों में भरे देखे और दो-चार घरों में धोवा मूँग की दाल देखी ॥ ४६० ॥ पाँच-सात घरों में अनेक भाँति के वस्त्र देखे और दश-बारह घरों में प्रभु ने केला व पात देखे हैं ॥ ४६१ ॥ श्री-प्रभु ने दो-चार घरों में चिवड़ा (चावल के बने) देखे व हजारों २ केले की गहर के झौरे देखे ॥ ४६२ ॥ न जाने कितने नारियल, सुपारी, पान कहाँ-कहाँ से आ गये ॥ ४६३ ॥ परवल, बथुआ, थोड़, आलू, मान-कचू आदि के शागों से कितने घर भरे थे इसकी कोई गिनती नहीं थी ॥ ४६४ ॥ क्षीर, इक्षुदण्ड, अंकुर-युक्त मूँग व दही-दूध के सहस्र-सहस्र घड़ा देखे हैं ॥ ४६५ ॥ तेल, नमक, गुड़ आदि जितने पदार्थ प्रभु ने देखे वे सब ही अनन्त थे कितना लिखा जाय ? ॥ ४६६ ॥ सभी सामिग्री को मनुष्य सामर्थ्य से अत्यन्त बाहर देखकर मानो प्रभु के मन में अचरज हुआ ॥ ४६७ ॥ प्रभु ने कहा यह सम्पत्ति मनुष्य की नहीं है, मेरे चित्त में ऐसा जँचता है कि आचार्य प्रभु महेश हैं ॥ ४६८ ॥ मनुष्यों में क्या ऐसा सम्पत्ति सम्भव है, यह सम्पत्ति तो केवल महादेव को ही सम्भव है ॥ ४६९ ॥ समझ गया आचार्य प्रभु महेश के अवतार हैं इस प्रकार गौरचन्द्र बार-बार हँसकर कहने लगे ॥ ४७० ॥ श्रीमहाप्रभुजी ने छल से अद्वैत के तत्त्व को कह दिया जो सुकृति मनुष्य होंगे वे परम आनन्द से ग्रहण करेंगे ॥४७१॥ प्रभु के वाक्यों में जिनको अनादर व अनास्था है उनके लिये अद्वैत प्रभु अग्नि के अवतार हैं ॥ ४७२ ॥ यद्यपि अद्वैतचन्द्र करोड़ों चन्द्रमाओं से भी सुशीतल हैं तथापि चैतन्य से विमुखों के लिये कालरूप अग्नि हैं ॥ ४७३ ॥ एक बार जो जन उनके तत्त्व को जाने बिना भी यदि किसी प्रसङ्गवश 'शिव' ऐसा नाम लेंगे तो उसी क्षण सब पापों से मुक्त होकर शुद्ध हो जाँयगे ऐसा तत्त्व वेद भागवत शास्त्रों में कहा ॥ ४७४-४७५ ॥ शिव का नाम सुनकर जिनको दुःख

हेन शिव-नाम शुनि यार दुःख हय । सेइजन अमङ्गल समुद्रे भासय ॥४७६॥

तथाहि भागवते ४ स्कन्धे ४ अध्याये १४ श्लोके—

"यद्द्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां सकृत् प्रसङ्गादघमाशु हन्ति तत् ।
पवित्रकीर्तिं तमलंघ्यशासनं भवानहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः" ॥४॥

श्रीवदने कृष्णचन्द्र बलेन आपने । शिव ये ना पूजे से वा मोरे पूजे केने ॥४७७॥

मोर प्रिय शिव प्रति अनादर यार । केमते वा मोरे भक्ति हइब ताहार ॥४७८॥

तथाहि "कथं वा मयि भक्तिं स लभतां पापपुरुषः । यो मदीयं परं भक्तं शिवं सम्पूजयेन्नहि" ॥५॥

अतएव सर्वाद्य श्रीकृष्ण पूजि तबे । प्रीते शिवपूजि पूजिबेक सर्व-देवे ॥४७९॥

तथाहि स्कन्दपुराणे—

"प्रथमं केशवं पूजां कृत्वा देवमहेश्वरम् । पूजनीया महाभक्त्या ये चान्ये सन्ति देवताः" ॥६॥

हेन 'शिव' अद्वैतेरे बोले साधुगणे । सेहो श्रीचैतन्यचन्द्र-इङ्गित-कारणे ॥४८०॥

इहाते अबुधगण महाकलि करे । अद्वैतेर माया ना बुझिया भलि मरे ॥४८१॥

सम्भार देखिया प्रभु महाहर्ष मन । आचार्येर प्रशंसा करेन अनुक्षण ॥४८२॥

एके-एके देखि प्रभु सकल सम्भार । कीर्तनस्थली ते आइलेन पुनर्बार ॥४८३॥

प्रभु मात्र आइलेन सङ्कीर्तन स्थाने । परानन्द पाइलेन सर्व भक्तगणे ॥४८४॥

ना जानि के कोन् दिगे नाचे गाय बाय । ना जानि के कोन् दिगे महानन्दे धाय॥४८५॥

नव-नव वस्तु सब देखे प्रभु यत । सकल अनन्त-लेखिबारे पारि कत ॥४८६॥

---

हो वे मनुष्य अमङ्गल के समुद्र में गोते लगाते हैं ॥ ४७६ ॥ शिव नाम के दो अक्षर जो समुद्भूत व सुप्रसिद्ध हैं किसी प्रसंगवश वाक्य द्वारा एक बार उच्चारण मात्र होने पर मानव समूह के सब पापों को विनाश कर देते हैं जिनकी कीर्तिकलाप परम पवित्र है तथा आज्ञा अनुलंघनीय है यदि उस शिव से आप द्वेष करते हो तो आप शिव से अतिरिक्त अमङ्गल स्वरूप हो ॥ ४ ॥ श्रीमुख से स्वयं श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा है कि जो शिवजी को नहीं पूजते वे मुझे क्यों पूजते हैं ? ॥४७७॥ मेरे प्रिय शिव के प्रति जो अनादर करता है उन्हें मेरी भक्ति किस प्रकार होगी ? ॥ ४७८ ॥ जो मेरे परमभक्त शिव की सम्यक् प्रकार से पूजा नहीं करते साक्षात् पापरूप वे पुरुष किस प्रकार मेरी भक्ति लाभ करेंगे अर्थात् कदापि नहीं ॥५॥ इसलिये सबसे प्रथम श्रीकृष्ण का पूजन करे तब पीछे से प्रीतिपूर्वक शिव का पूजन करे तब और सब देवताओं का पूजन ही करे ॥ ४७९ ॥ प्रथम केशव की पूजा करे तब महेश्वर की पूजा करे उसके पश्चात् अन्य सभी देवताओं की बड़ी भक्ति के साथ पूजा करना उचित है ॥ ६ ॥ यों साधुगण श्रीअद्वैत को "शिव" सम्बोधन करते हैं—यह केवल श्रीचैतन्यचन्द्र के इङ्गित ( इशारे ) के कारण ही है ॥ ४८० ॥ इस प्रसंग में मूर्खगण विशेष कलह करते हैं तथा अद्वैत माया न समझकर कपाल दोष से मरते हैं ॥ ४८१ ॥ श्रीप्रभु सामिग्री समुच्चय को देखकर बड़े हर्षित मन से क्षण-क्षण में आचार्य की प्रशंसा कर रहे थे ॥ ४८२ ॥ श्रीप्रभु सब सामिग्री को एक-एक करके देखकर पुनर्वार कीर्तन स्थली में आये ॥ ४८३ ॥ संकीर्तन स्थान में श्रीप्रभु के आते ही सब भक्तवृन्द परम आनन्दित हुए ॥ ४८४ ॥ न जाने कौन किस ओर नाचता, गाता अथवा बजाता था पता नहीं कौन किधर दौड़ रहा था ४८५ श्रीप्रभु ने जितने पदार्थ देखे वे सब नवीन-नवीन व अनन्त

सभे करे जय जय-महा हरिध्वनि । 'बोल बोल हरि-बोल' आर नाहि शुनि ॥४८७॥
सर्व-वैष्णवेर अङ्ग चन्दने भूषित । सभार सुन्दर वक्ष-मालाय पूरित ॥४८८॥
सभेइ प्रभुर पारिषदेर प्रधान । सबे नृत्य गीत करे प्रभु विद्यमान ॥४८९॥
महानन्दे उठिल श्रीहरि सङ्कीर्तन । ये शुनि पवित्र करे अनन्त भुवन ॥४९०॥
नित्यानन्द महामल्ल प्रेम सुखमय । बाल्यभावे नृत्य करिलेन अतिशय ॥४९१॥
विह्वल हइया अति आचार्य गोसाञि । यत नृत्य करिलेन-तार अन्त नाञि ॥४९२॥
नाचिलेन अनेक ठाकुर-हरिदास । सभेइ नाचेन अति पाइया उल्लास ॥४९३॥
महाप्रभु श्रीगौरसुन्दरो सर्व शेषे । नृत्य करिलेन अति अशेष विशेषे ॥४९४॥
सर्व परिषद् प्रभु आगे नाचाइया । शेषे नृत्य करेन आपने सभा लैया ॥४९५॥
मण्डली करिया नृत्य करे भक्तगण । मध्ये नाचे महाप्रभु श्रीशचीनन्दन ॥४९६॥
एइ मत सर्व दिन नाचिया गाइया । रहिलेन महाप्रभु सभारे लइया ॥४९७॥
तबे शेष आज्ञा माँगि अद्वैत-आचार्य । भोजनेर करिते लागिला सर्व कार्य ॥४९८॥
बसिलेन महाप्रभु करिते भोजन । मध्ये प्रभु-चतुर्दिगे सर्व भक्तगण ॥४९९॥
चतुर्दिगे भक्तगण येन तारामय । मध्ये कोटि-चन्द्र येन प्रभुर उदय ॥५००॥
दिव्य अन्न बहुविध पिष्टक व्यंजन । माधवेन्द्र-आराधना-आइर रन्धन ॥५०१॥
माधवपुरीर कथा कहिया-कहिया । भोजन करेन प्रभु सर्व-गण लैया ॥५०२॥
प्रभु बोले 'माधवेन्द्र-आराधना-तिथि । भक्ति हय गोविन्दे, भोजने कैले इथि' ॥५०३॥

थे कहाँ तक लिखें ? ॥ ४८६ ॥ सभी महा हरिध्वनि करके जय-जय बोल रहे थे, "बोलो, बोलो, हरि बोलो" इसके सिवाय कुछ सुन नहीं पड़ता था ॥ ४८७ ॥ सब वैष्णवों के अङ्ग चन्दन से शोभित हो रहे थे तथा सबके सुन्दर वक्षस्थल मालाओं से लदे हुए थे ॥ ४८८ ॥ सब ही श्रीप्रभु के पारिषदों में प्रधान थे तथा सब ही प्रभु के सामने नाच-गा रहे थे ॥ ४८९ ॥ श्रीहरिसंकीर्तन ध्वनि बड़े आनन्द से हो उठा जिसको सुनकर अनन्त भुवन पवित्र हो गये ॥ ४९० ॥ प्रेमसुख स्वरूप महामल्ल श्रीनित्यानन्द प्रभु ने बाल्यभाव में बहुत ही नृत्य किया ॥ ४९१ ॥ आचार्य गोस्वामी ने अत्यन्त विह्वल होकर जितना नृत्य किया उसका अन्त नहीं था ॥ ४९२ ॥ श्रीहरिदास ठाकुर तो बहुत ही नाचे और उल्लास पाकर सब ही ने अत्यन्त नृत्य किया ॥४९३॥ श्रीमहाप्रभु गौरसुन्दर ने सबके शेष में विशेष प्रकार से अति अपार नृत्य किया ॥ ४९४ ॥ श्रीप्रभु ने पहिले सब पार्षदों को नचाया तब अन्त में सबको लेकर आपने नृत्य किया ॥ ४९५ ॥ भक्तवृन्द गोलाकार मंडली बनाकर नाच रहे थे तथा उनके बीच में श्रीशचीनन्दन नाचते थे ॥ ४९६ ॥ इस प्रकार श्री महाप्रभु सबको लेकर दिन भर नाचते-गाते रहे। ४९७।तब अन्त में श्रीअद्वैताचार्य आज्ञा माँगकर भोजन कराने के लिये समस्त समाधान करने लगे ॥४९८॥ भोजन करने के लिये महाप्रभु बैठ गये-बीच में प्रभु व चारों ओर भक्त मंडली थी ॥ ४९९ ॥ भक्तगण चारों ओर तारों के समान थे उनके बीच में श्रीप्रभु करोड़ों चन्द्रमा के समान उदय हुए ॥ ५०० ॥ श्रीमाधवेन्द्रपुरी की आराधना तिथि पर श्रीशची माता ने अनेक प्रकार के दिव्य अन्न (चाँवल) पिष्टक आदि व्यंजन बनाये थे। श्रीमहाप्रभु सब भक्तों के साथ श्रीमाधवेन्द्रपुरी जी का चरित्र

एइमत रंगे प्रभु करिया भोजन । वसिलेन गिया प्रभु करि आचमन ॥५०४॥
तबे दिव्य सुगन्धि चन्दन दिव्य माला । प्रभुर सम्मुखे आनि अद्वैत थुइला ॥५०५
तबे प्रभु नित्यानन्द स्वरूपेरे आगे । दिलेन चन्दन माला महा-अनुरागे ॥५०६॥
तबे प्रभु सर्व-वैष्णवेरे जने जने । श्रीहस्ते चन्दनमाला दिलेन आपने ॥५०७॥
श्रीहस्तेर प्रसाद पाइया भक्तगण । सभार हइल परानन्दमय मन ॥५०८॥
उच्चकरि सभेइ करेन हरि ध्वनि । किवा से आनन्द हैल कहिते ना जानि ॥५०९॥
अद्वैतेर ये आनन्द-अन्त नाहि तार । आपने वैकुण्ठपुर नाथ गृहे यार ॥५१०॥
ए सकल रङ्ग प्रभु करिलेन यत । मनुष्येर शक्ति इहा वर्णिबेक कत ॥५११॥
एक दिवसेर यत चैतन्य विहार । कोटि-वत्सरे ओ ताहा नारि वर्णिबार ॥५१२॥
पक्षी येन आकाशेर अन्त नाहि पाय । यत दूर शक्ति तत दूर उड़ि जाय ॥५१३॥
एइमत चैतन्य यशेर अन्त नाइ । तिंहो यत शक्ति देन सभे तत गाइ ॥५१४॥
काष्ठेर पुतली येन कुहके नाचाय । एइमत गौरचन्द्र मोरे से बोलाय ॥५१५॥
ए सब कथार अनुक्रम नाहि जानि । ये-ते-मते चैतन्येर यशसे बाखानि ॥५१६॥
सर्व-वैष्णवेर पा' ये मोर नमस्कार । इथे अपराध किछु नहुक आमार ॥५१७॥
ए सकल पुण्य कथा ये करे श्रवण । अवश्य मिलये तारे कृष्ण प्रेम धन ॥५१८॥

---

कहते जाते और भोजन करते जाते थे ॥ ५०१-५०२ ॥ श्रीमहाप्रभु ने कहा "आज श्रीमाधवेन्द्रपुरी जी की आराधना तिथि है इसमें भोजन करने से गोविन्द में भक्ति होगी" ॥ ५०३ ॥ इस प्रकार श्रीप्रभु आनन्द से भोजन करके आचमन किया और जाकर बैठ गये ॥ ५०४ ॥ तब श्रीअद्वैतप्रभु ने दिव्य सुगन्धि, चन्दन व दिव्य माला श्रीमहाप्रभु के सामने लाकर रख दीं ॥५०५॥ तब श्रीमहाप्रभु ने बड़े अनुराग से पहिले नित्यानन्द स्वरूप को चन्दन व माला प्रदान की ॥ ५०६ ॥ उसके पीछे श्रीप्रभु ने प्रत्येक वैष्णव को अपने श्रीहस्त-कमल से चन्दन व माला दीं ॥ ५०७ ॥ श्रीप्रभु के हाथ से प्रसाद पाकर सब भक्तों का मन पर-आनन्दमय हो गया ॥ ५०८ ॥ सब ही ऊँचे स्वर से हरिध्वनि करने लगे; सो कैसा अपूर्व आनन्द हुआ-कहते नहीं बनता ॥ ५०९ ॥ श्रीअद्वैत को जो आनन्द था उसका अन्त नहीं था क्योंकि स्वयं वैकुण्ठनाथ ही उनके घर में थे ॥ ५१० ॥ यह सब आनन्द जितना श्रीप्रभु ने किया-मनुष्य शक्ति इसका कितना वर्णन करेगी॥५११॥ श्रीचैतन्यदेव के एक दिन के विहार का वर्णन करोड़ों वर्षों में भी नहीं कहा जा सकेगा ॥५१२॥ जिस प्रकार पक्षी अपनी शक्ति भर उड़कर भी आकाश का अन्त नहीं पाता ॥ ५१३ ॥ इसी प्रकार श्रीचैतन्यचन्द्र के यश का अन्त नहीं है उसे भी जिसमें जितनी सामर्थ्य वे देते हैं उतना ही वह गा सकता है ॥ ५१४ ॥ काठ की पुतली को बाजीगर जिस तरह नचाता है, इसी प्रकार श्रीगौरचन्द्र मुझसे जो बुलवाते हैं ॥ ५१५ ॥ मैं इन सब कथाओं का अनुक्रम ( आनुपूर्विक-सम्बन्ध ) नहीं जानता हूँ, बस जिस किसी प्रकार से श्रीचैतन्यदेव का यश बखान करता हूँ ॥ ५१६ ॥ मैं सब वैष्णवों के चरण-कमलों में नमस्कार करता हूँ-मेरा इसमें कुछ अपराध न बन जाय ॥५१७॥ इन सब पवित्र कथाओं को जो श्रवण करेंगे उनको कृष्ण प्रेमरूपी धन अवश्य मिलेगा ॥५१८॥ वृन्दावनदास (ग्रन्थकार) श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्र एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र को समझ कर अर्थात

श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द्जान । वृन्दावन दास तछु पदयुगे गान ॥५१९॥
इति श्रीचैतन्यभागवते अन्त्यखण्डे अद्वैतगृहविलासवर्णनं नाम
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

## पञ्चमोऽध्यायः

जय जय श्रीगौरसुन्दर सर्वगुरु । जय जय भक्तजन वांछा कल्पतरु ॥१॥
जय जय न्यासिमणि श्रीवैकुण्ठनाथ । जीव प्रति कर' प्रभु शुभ दृष्टिपात ॥२॥
भक्तगोष्ठी सहिते गौराङ्ग जय जय । जय जय श्रीकरुणासिन्धु दयामय ॥३॥
शेषखण्ड कथा भाइ शुन एकमने । श्रीगौरसुन्दर विहरिलेन येमने ॥४॥
कथोदिन थाकि प्रभु अद्वैतेर घरे । आइला कुमार हट्ट-श्रीवास मन्दिरे ॥५॥
कृष्ण-ध्यानानन्दे वसि आछेन श्रीवास । आचम्बिते ध्यानफल सम्मुखे प्रकाश ॥६॥
निज प्राणनाथ देखि श्रीवास पण्डित । दण्डवत् हइया पड़िला पृथिवीत ॥७॥
श्रीचरण वक्षे करि पण्डित-ठाकुर । उच्चस्वरे दीर्घस्वासे कान्देन प्रचुर ॥८॥
गौराङ्गसुन्दर श्रीवासेरे करि कोले । सिंचिलेन अङ्ग तार निज-प्रेमजले ॥९॥
सुकृति श्रीवासगोष्ठी प्रभुर प्रसादे । सभे प्रभु देखि ऊर्द्ध बाहु करि कान्दे ॥१०॥
वैकुण्ठनायक गृहे पाइया श्रीवास । हेन नाहि जानेन कि जन्मिल उल्लास ॥११॥
आपने माथाय करि उत्तम आसन । दिलेन, वसिला तथि कमल लोचन ॥१२॥
चतुर्दिगे वसिलेन पारिषदगण । सभेइ गायेन कृष्ण नाम अनुक्षण ॥१३॥
गृहे जयकार करे पतिव्रतागण । आनन्दस्वरूप हैल श्रीवास भवन ॥१४॥

---

हृदय में धारण करके उन्हीं के युगल चरण-कमलों की महिमा गान करता है ॥ ५१९ ॥

समस्त जीवों के गुरु श्रीगौरसुन्दर की जय हो २ और भक्तजनों की वाञ्छापूर्ण कल्पतरु की जय हो २ ॥१॥ न्यासिमणि-श्रीवैकुण्ठनाथ की जय हो २, हे प्रभो ! जीवों के प्रति शुभ दृष्टिपात करो ॥ २ ॥ भक्तगोष्ठी सहित श्रीगौराङ्गप्रभु की जय हो २, और दयामय श्रीकरुणासागर की जय हो २ ॥३॥ हे भाई ! जिस प्रकार श्रीगौरसुन्दर ने विहार किया था उसे शेषखण्ड की कथा में एकाग्र मन से सुनो ॥ ४ ॥ श्रीप्रभु कुछ दिन अद्वैतजी के घर रहकर कुमारहट्ट में श्रीवासजी के घर आये ॥ ५ ॥ श्रीवासजी कृष्ण के ध्यानानन्द में बैठे थे अकस्मात् ही ध्यान का फल सामने प्रगट देखा ॥ ६ ॥ श्रीवास पण्डित अपने प्राणनाथ को देखते ही दण्डवत् होकर पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ७ ॥ श्रीवास पण्डित महाप्रभुजी के चरणों को वक्षस्थल से लगाकर लम्बी साँस लेते हुए ऊँचे स्वर से बहुत रोये ॥ ८ ॥ तथा श्रीगौराङ्गसुन्दर ने श्रीवासजी को गोदी में लेकर अपने प्रेमानन्द जल से उनके अङ्ग को भिगो दिया ॥ ९ ॥ सुकृती श्रीवास की गोष्ठी के सब साथी श्रीचैतन्यप्रभु की कृपा पाकर उन्हें देखकर भुजा उठाकर रोने लगे ॥१०॥ श्रीवासपण्डित का अपने घर में वैकुण्ठनायक को पाकर कितना अपूर्व उल्लास हुआ उसे वे जान ही न पाये ॥ ११ ॥ स्वयं मस्तक में लाकर उत्तम आसन दिया उस पर कमल लोचन ( गौर ) विराजमान हो गये १२ चारों ओर पार्षदगण बैठ गये थे

प्रभु आइलेन मात्र पण्डितेर घर । वार्ता पाइ आइलेन आचार्य-पुरन्दर ॥ १५ ॥
ताहाने देखिया प्रभु 'पिता' करि बोले । महाप्रेमे प्रभु ताने करिलेन कोले ॥ १६ ॥
परम सुकृती से आचार्य-पुरन्दर । प्रभु देखि कान्दे अति हइ अमम्बर ॥ १७ ॥
बासुदेवदत्त आइलेन सेइ क्षणे । शिवानन्दसेन-आदि आप्त वर्ग सने ॥ १८ ॥
प्रभुर परम प्रिय-बासुदेवदत्त । प्रभुर कृपाय से जानेन सर्व तत्त्व ॥ १९ ॥
जगतेर हितकारी-बासुदेवदत्त । सर्व भूते कृपालु-चैतन्य रसे मत्त ॥ २० ॥
गुणग्राही अदोषदरशी सभा प्रति । ईश्वरे वैष्णवे यथायोग्य रति मति ॥ २१ ॥
बासुदेवदत्त देखि श्रीगौरसुन्दर । कोले करि कान्दिते लागिला बहुतर ॥ २२ ॥
बासुदेवदत्त धरि प्रभुर चरण । उच्च स्वरे लागिलेन करिते क्रन्दन ॥ २३ ॥
बासुदेव कान्दिते के आछे हेन जन । शुष्क-काष्ठ पाषाण ये ना करे क्रन्दन ॥२४॥
बासुदेवदत्तेर यतेक गुण सीमा । बासुदेवदत्त बिनु नाहिक उपमा ॥ २५ ॥
हेन से प्रभुर प्रीति दत्तेर विषय । प्रभु बोले 'आमि बासुदेवेर निश्चय' ॥ २६ ॥
आपने श्रीगौरचन्द्र बोले बार-बार । ए शरीर बासुदेवदत्तेर आमार ॥ २७ ॥
दत्त आमा यथा बेचे तथाइ विकाइ । सत्य-सत्य इहाते अन्यथा किछु नाइ ॥ २८ ॥
बासुदेवदत्तेर बातास यार गाय । लागियाछे, तारे कृष्ण रक्षिब सदाय ॥ २९ ॥
सत्य आमि कहि-शुन वैष्णव मण्डल । ए देह आमार-बासुदेवेर केवल ॥ ३० ॥

---

सभी क्षण क्षण पर कृष्ण नाम का गान कर रहे थे ॥ १३ ॥ पतिव्रता स्त्रियाँ घर में जयकार कर रही थीं, श्रीवास का भवन प्रेमानन्दस्वरूप हो रहा था ॥ १४ ॥ श्रीवास के घर श्रीगौरचन्द्र आये हैं यह बात सुनते ही श्रीपुरन्दर आचार्य वहाँ शीघ्रता से आये ॥ १५ ॥ श्रीप्रभु उनको देखते ही पिता कहकर बोले तथा प्रभु ने बड़े प्रेम से उनको जेट भर ली ॥ १६ ॥ श्रीपुरन्दराचार्य बड़े पुण्यशाली थे-श्रीप्रभु को देखकर अपने आपको सँभाल न सके ॥ १७ ॥ उसी समय श्रीबासुदेवदत्त भी आ गये, श्रीशिवानन्दसेन आदि सभी आत्मीयगण इनके साथ थे ॥१८॥ श्रीबासुदेवदत्तजी श्रीगौरचन्द्र के बड़े प्रिय थे प्रभु की कृपा से सब तत्त्व वे जानते थे ॥ १९ ॥ श्रीबासुदेवदत्त जगत् का हित करने वाले थे-श्रीचैतन्य रस में मत्त सब प्राणियों पर दया करते थे ॥ २० ॥ वे गुणग्राही व अदोषदर्शी थे, वे ईश्वर और वैष्णवों में यथायोग्य प्रेमबुद्धि रखते थे ॥ २१ ॥ श्रीगौरसुन्दर श्रीबासुदेव को देखकर गोदी में लेकर बहुत रोने लगे, तब ॥ २२ ॥ बासुदेवदत्त ने प्रभु के चरण को पकड़ लिया और ऊँचे स्वर से क्रन्दन करने लगे ॥ २३ ॥ श्रीबासुदेवजी के रोते समय ऐसा कौन मनुष्य है जो शुष्क काष्ठ पाषाण आदि वत् होगा जो रोया न हो ? ॥ २४ ॥ श्रीबासुदेवदत्त के गुणों की जो पराकाष्ठ है उनके सिवाय और कोई उपमा नहीं थी ॥ २५ ॥ श्रीप्रभु कहते थे कि मैं निश्चय ही बासुदेवदत्त का हूँ । देखो दत्त के विषय में प्रभु की ऐसी प्रीति थी॥२६॥श्रीगौरचन्द्र स्वयं बार-बार कहते थे कि मेरा यह शरीर बासुदेवदत्त का ही है ॥ २७ ॥ दत्त मुझे जहाँ बेचेंगे वहीं मैं बिक जाऊँगा-मैं सत्य कहता हूँ इसमें अन्यथा कुछ नहीं है ॥२८॥ बासुदेवदत्त की पवन जिसके शरीर लगेगी श्रीकृष्णचन्द्र उसकी सदा ही रक्षा करेंगे ॥ २९ ॥ हे वैष्णवों सुनो ! मैं सत्य कहता हूँ मेरा यह शरीर केवल बासुदेवदत्त का है

वासुदेवदत्तेरे प्रभुर कृपा शुनि । आनन्दे वैष्णवगण करे जयध्वनि ॥ ३१ ॥
भक्त बाढ़ाइते गौरसुन्दर से जाने । येन करे भक्त तेन करेन आपने ॥ ३२ ॥
एइ मत रङ्गे प्रभु श्रीगौरसुन्दरे । कथोदिन रहिलेन श्रीवासेर घरे ॥ ३३ ॥
चैतन्येर अति प्रिय-श्रीवास रामाञि । दुइ चैतन्येर देह, द्विधा किछु नाञि ॥३४॥
श्रीवास रामाइ-दुइ भाइ गुण गाय । विह्वल हइया नाचे श्रीवैकुण्ठराय ॥३५॥
सङ्कीर्तन-भागवत पाठ-व्यवहारे । विदूषक लीलाय कि अशेष-प्रकारे ॥ ३६ ॥
जन्मायेन प्रभुर सन्तोष श्रीनिवास । जार घरे प्रभुर सर्वाद्य-परकाश ॥ ३७ ॥
एक दिन प्रभु श्रीनिवासेर सहिते । व्यवहार-कथा किछु कहेन निभृते ॥३८॥
प्रभु बोले तुमि देखि कोथाओ ना जाओ । केमते वा कुलाइवा, केमते कुलाओ ॥३९॥
श्रीवास बोलेन प्रभु कोथाओ जाइते । नाहि लय मोर चित्त बलिलूँ तोमाते ॥४०॥
प्रभु बोले परिवार अनेक तोमार । निर्वाह केमते तबे हइबे समार ॥४१॥
श्रीवास बोलेन यार अदृष्टे ये थाके । से-इ हइबेक, मिलिबेक ये-ते-पाके ॥४२॥
प्रभु बोले 'तुमि तबे करह सन्यास । इहा ना पारिमु मुञि बोले श्रीनिवास ॥४३॥
प्रभु बोले सन्यास ग्रहन ना करिबा । भिक्षा करितेओ कारो द्वारे ना जाइबा ॥४४॥
केमते करिबा परिबारेर पोषण । किछुइ त ना बूझों मुञि तोमार वचन ॥४५॥
ए काले त कोथाओ ना गेले ना आइले । घटमात्र द्वारे आसि काहुके ना मिले ॥४६॥

॥ ३० ॥ वासुदेवदत्त के ऊपर प्रभु की कृपा को सुनकर वैष्णवगण आनन्द से जय जय ध्वनि करने लगे ॥३१॥ भक्त को बढ़ावा देना तो श्रीगौरसुन्दर ही जानते हैं; जैसे भक्त करते हैं वैसे ही आप करते हैं ॥३२॥ इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर प्रभु ने कुछ दिन तक श्रीवास के घर में आनन्द से निवास किया ॥ ३३ ॥ श्रीवास व रामाइ दोनों ही भाई गुण-गान करते थे और श्रीवैकुण्ठराय विह्वल होकर नाचते थे ॥ ३४ ॥ श्रीवास व रामाइ श्रीचैतन्यदेव को दोनों ही अत्यन्त प्रिय थे दोनों श्रीचैतन्य के देह थे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है॥३५॥ संकीर्तन-भागवत पाठ-विदूषक लीला आदि द्वारा अनेक प्रकार से श्रीनिवासजी प्रभु को सन्तुष्टता उदय कराते थे उन्हीं के घर में तो प्रभु का सबसे पहिले प्रकाश हुआ था ॥ ३६-३७ ॥ एक दिन प्रभु ने एकान्त में बैठकर श्रीनिवासजी से कुछ व्यवहार की बात कही ॥ ३८ ॥ प्रभु ने कहा "मैं देखता हूँ तुम कहीं भी तो नहीं जाते हो फिर कैसे निर्वाह करते हो तथा कैसे निर्वाह करोगे ? ॥ ३९ ॥ श्रीवास बोले "हे प्रभो.! आप से सत्य कहता हूँ मेरा चित्त कहीं जाने को नहीं करता ?" ॥ ४० ॥ प्रभु ने कहा "तुम्हारा परिवार भी तो बहुत है तब सबका निर्वाह कैसे होगा ?" ॥ ४१ ॥ श्रीवास ने कहा "जिसके भाग्य में जो होगा वही होगा तथा जिस किसी प्रकार से भी अवश्य मिलेगा" ॥ ४२ ॥ प्रभु ने कहा ऐसा ही है तो तुम सन्यास ग्रहण कर लो, तब श्रीवास ने कहा मैं यह भी नहीं करूँगा ॥ ४३ ॥ प्रभु बोले सन्यास भी ग्रहण करोगे नहीं और भिक्षा करने को भी किसी के द्वार पर नहीं जाओगे ॥ ४४ ॥ तब किस प्रकार से परिवार का पोषण करोगे, तुम्हारे वचनों से मैं तो कुछ भी नहीं समझा ॥ ४५ ॥ आजकल के समय में तो कहीं न जाने से तो कुछ मिलता नहीं-कहीं से आकर दरवाजे पर नहीं मिलता ? ॥ ४६ ॥ यदि तुम्हारे द्वार पर आकर न

ना मिलिल यदि आसि तोमार दुयारे । तबे तुमि कि करिबा बोल देखि मोरे ॥४७॥
श्रीवास बोलेन हाथे तिन तालि दिया । "एक दुइ तिन एइ कहिलूँ भाङ्गिया" ॥४८॥
प्रभु बोले "एक दुइ तिन ये करिला । कि अर्थ इहार कह केने तालि दिला" ॥४९॥
श्रीवास बोलेन "एइ दढान आमार । तिन-उपासेओ यदि ना मिले आहार ॥५०॥
तबे सत्य कहों-घट बान्धिया गलाय । प्रवेश करिमूँ मुञि सर्वथा गङ्गाय" ॥५१॥
एइ मात्र श्रीवासेर शुनिञा वचन । उठिला हुङ्कार करि श्रीशचीनन्दन ॥५२॥
प्रभु बोले "कि बलिलि पण्डित-श्रीवास । तोर कि अन्नेर दुःखे हइब उपास ॥५३॥
यदि कदाचित् वा लक्ष्मी ओ भिक्षा करे । तथापिह दारिद्र नहिब तोर घरे ॥५४॥
आपने ये गीता शास्त्रे बलियाछों मुञि । ताहो कि श्रीवास एबे पासरिलि तुञि ॥५५॥

तथाहि गीतायाम् ९।२२

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते । तेषां नित्याभियुक्तानां योग-क्षेमं वहाम्यहम्" ॥१॥

"ये ये जने चिन्ते' मोरे अनन्य हइया । तारे भक्ष्य देउँ मुञि माथाय बहिया ॥५६॥
जेइ मोरे चिन्ते, नाहि जाय कारो द्वारे । आपने आसिया सर्वसिद्धि मिले तारे ॥५७॥
धर्म अर्थ काम मोक्ष-आपने आइसे । तथापिह ना चाय ना लय मोर दासे ॥५८॥
मोर सुदर्शन चक्र राखे मोर दास । महाप्रलये ओ यार नाहिक विनाश ॥५९॥
ये मोहार दासेरे ओ करये स्मरण । तहारेओ करों मुञि पोषण पालन ॥६०॥
सेवकेर दास से मोहोर प्रिय बड़ । अनायासे से-इसे मोहोरे पाय दढ़ ॥६१॥

मिले तो बताओ तुम क्या करोगे, देखें तो ॥४७॥ हाथ से तीन ताली बजाकर श्रीवास ने कहा; एक-दो-तीन यह स्पष्ट कह देता हूँ ॥ ४८ ॥ प्रभु बोले एक-दो-तीन जो तुमने कहा उसका क्या अर्थ है तथा ताली क्यों बजाई ? ॥ ४९ ॥ श्रीवासने कहा मेरी यह दृढ़ प्रतिज्ञा है कि देखिये तीन दिन उपवास होने पर भी यदि आहार नहीं मिलेगा तो मैं सत्य कहता हूँ गले में घट बाँधकर मैं गंगा में अवश्य प्रवेश कर जाऊँगा ॥ ५०-५१ ॥ श्रीवास की इतनी बात सुनते ही श्रीशचीनन्दन हुङ्कार करके उठे ॥ ५२ ॥ प्रभु बोले श्रीवास पण्डित ! क्या कहा अहो तुम्हें अन्न के दुःख से क्या उपवास होगा ॥ ५३ ॥ यदि कदाचित् तुम्हारे घर में लक्ष्मी भी भिक्षा करें तो भी तुम्हारे घर में दरिद्रता नहीं होगी ॥ ५४ ॥ स्वयं मैंने ही गीताशास्त्र में जो कहा है उसे क्या श्रीवास तुम इस समय भूल गये ? ॥ ५५ ॥ जो मनुष्य मेरा ही अखण्ड चिन्तन व सर्व भाव से मेरी ही उपासना करते हैं उन मुझमें नित्य अखण्ड युक्त हुए का योग ( उपस्थित सामग्री की रक्षा ) व क्षेम ( आवश्यकीय सामग्री की उपस्थिति ) मैं वहन करता हूँ ॥ १ ॥ जो भी जन अनन्य भाव से मेरा चिन्तन करते हैं, अपने सिर पर रखकर मैं उनको भोजन देता हूँ ॥ ५६ ॥ तथा जो मेरा चिन्तन करता है और किसी के द्वार पर भी नहीं जाता उसे सभी सिद्धियाँ स्वयं आकर मिलती हैं ॥ ५७ ॥ धर्म अर्थ काम व मोक्ष ये चारों पदार्थ आप ही आ जाते हैं तथापि मेरा दास न तो उन्हें चाहता है और न लेता ही है ॥ ५८ ॥ मेरा सुदर्शन चक्र उसकी रक्षा करता है तथा महाप्रलय में भी उस ( भक्त ) का नाश नहीं होता ॥ ५९ ॥ जो मेरे दास का भी स्मरण करता है मैं उसका भी पालन पोषण करता हूँ ॥ ६० ॥ जो मे

अद्वैतेरे तोमारे आमार एइवर 'जराग्रस्त नहिब दोंहार कलेवर" ।६४
राम पण्डितेरे डाकि श्रीगौरसुन्दर प्रभु बोले "शुन राम ! आमार उत्तर ६५
ज्येष्ठभाइ-श्रीवासेरे तुमि सर्वथाय, सेविबे ईश्वरबुद्धे आमार आज्ञाय ॥६६॥
प्राण सम तुमि मोर, श्रीराम पण्डित । श्रीवासेर सेवा ना छाड़िबा कदाचित् ॥६७॥
शुनिला प्रभुर वाक्य श्रीवास श्रीराम । अन्त नाहि आनन्दे, हइला पूर्णकाम ॥६८॥
अद्यापिह श्रीवासेरे चैतन्य कृपाय । द्वारे सब उपसन्न हैतेछे लीलाय ॥६९॥
कि कहिब श्रीवासेर उदार चरित्र । त्रिभुवन हय यार स्मरणे पवित्र ॥७०॥
सत्य सेविलेन चैतन्येरे श्रीनिवास । यार घरे चैतन्येर सकल विलास ॥७१॥
हेन रङ्गे श्रीवास मन्दिरे गौरराय । रहिलेन कथोदिन श्रीवास-इच्छाय ॥७२॥
ठाकुर पण्डित सर्वगोष्ठीर सहिते । आनन्दे भासेन प्रभु देखिते देखिते ॥७३॥
कथोदिन थाकि प्रभु श्रीवासेर घरे । तबे गेला पानीहाटी-राघव मन्दिरे ॥७४॥
कृष्ण कार्ये आछेन श्रीराघव पण्डित । सम्मुखे श्रीगौरचन्द्र हइला विदित ॥७५॥
प्राणनाथ देखिया श्रीराघव पण्डित । दण्डवत् हइया पड़िला पृथिवी ते ॥७६॥
दृढ़ करि धरि रमावल्लभ-चरण । आनन्दे राघवानन्द करेन क्रन्दन ॥७७॥

---

सेवकों का दास है वह मेरा बड़ा प्रिय है; यह दृढ़ सत्य है कि वह मुझे अनायास ही पा जाता है ॥६१॥ मेरे सेवक को भक्ष्य पदार्थों की क्या चिन्ता सबसे ऊपर मैं जिसकी पोषण कर्त्ता विद्यमान हूँ ॥ ६२ ॥ हे श्रीवास ! तुम सुख से घर में बैठो—सब तुम्हारे द्वार पर आप ही आप आ जावेगा ॥ ६३ ॥ अद्वैत आचार्य व तुम्हारे लिये मेरा यह वरदान है कि तुम दोनों के शरीर जराग्रस्त नहीं होंगे ॥ ६४ ॥ श्रीगौरसुन्दर ने रामपण्डित को बुला कर कहा "हे राम ! मेरी बात सुनो ॥ ६५ ॥ तुम अपने बड़े भाई श्रीवासजी की सेवा मेरी आज्ञा से सर्वथा ईश्वर बुद्धि से करना ॥ ६६ ॥ हे श्रीराम पण्डित ! तुम मेरे प्राणों के समान हो श्रीवास की सेवा करना कभी मत छोड़ना ॥ ६७ ॥ श्री प्रभु के वाक्य सुनकर श्रीवास व श्रीराम के आनन्द का अन्त नहीं रहा वे पूर्ण काम हो गये ॥ ६८ ॥ आज तक भी श्रीवास के द्वार पर श्रीचैतन्य कृपा से सब पदार्थ स्वतः ही उपस्थित होते हैं ।६९॥ श्रीवास के उदार चरित्र के विषय में मैं क्या कहूँ जिनके स्मरण करने से तीनों लोक पवित्र हो जाते हैं ॥ ७० ॥ श्रीवास ने श्रीचैतन्य देव की सच्ची सेवा की है उनके घर में श्रीचैतन्यप्रभु का सब आनन्द है ॥ ७१ ॥ इस प्रकार श्रीवासजी की इच्छा से कुछ दिन श्रीगौरसुन्दर उनके घर में रहे ॥ ७२ ॥ श्रीवास पण्डित सब गोष्ठी सहित श्रीगौरचन्द्र को देख-देख कर आनन्द सागर में गोता लगाते थे ॥ ७३ ॥ श्री प्रभु कुछ दिन श्रीवास के घर में रहकर फिर पानी-हाटी ग्राम में राघव पण्डित के घर गये ॥ ७४ ॥ श्रीराघव पण्डित श्रीकृष्ण सेवा में लगे हुए थे; कि श्रीगौरचन्द्र उनके सम्मुख उपस्थित हुए ॥७५॥ श्रीराघव पण्डित अपने प्राणनाथ को देखते ही दण्डवत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े ॥७६॥ श्रीलक्ष्मीपति के चरणों को दृढ़ता से पकड़कर श्रीराघवानन्द आनन्द से क्रन्दन करने लगे और ७७ । श्री

प्रभुओ राघव पण्डितेरे करि कोले । सिञ्चिलेन अङ्ग तान नयनेर जले ॥७८॥
हेन से आनन्द हैल राघव शरीरे ; कोन् विधि करिवेन ताहा नाहि स्फुरे ॥७९॥
राघवेर भक्ति देखि श्रीवैकुण्ठनाथ । राघवेरे करिलेन शुभ दृष्टिपात ॥८०॥
प्रभु बोले राघवेर आलये आसिया । पासरिलूँ सब दुःख राघव देखिया ॥८१॥
गङ्गाय मज्जन कैले ये सन्तोष हय । सेइ सुख पाइलाङ राघव-आलय ॥८२॥
हासि बोले प्रभु शुन राघव पण्डित । कृष्णेर रन्धन गिया करह त्वरित ॥८३॥
आज्ञा पाइ श्रीराघव परम सन्तोषे । चलिलेन रन्धन करिते प्रेमरसे ॥८४॥
चित्तवृत्ति यतेक मानस आपनार । सेइरूपे पाक विप्र करिला अपार ॥८५॥
आइलेन महाप्रभु करिते भोजन । नित्यानन्द सङ्गे आर यत आप्तगण ॥८६॥
भोजन करेन गौरचन्द्र लक्ष्मीकान्त । सकल व्यंजन प्रभु प्रशंसे एकान्त ॥८७॥
प्रभु बोले राघवेर कि सुन्दर पाक । एमत कोथाओ आमि नाहि खाइ शाक ॥८८॥
राघवो प्रभुर प्रीति शाकेत जानिञा । रान्धियाछेन शाक विविध आनिञा ॥८९॥
एइ मत रंगे प्रभु करिया भोजन । वसिलेन आसि प्रभु करि आचमन ॥९०॥
राघव मन्दिरे शुनि श्रीगौरसुन्दर । गदाधरदास धाइ आइला सत्वर ॥९१॥
प्रभुर परम प्रिय-गदाधरदास । भक्ति सुखे पूर्ण यार विग्रह प्रकाश ॥९२॥
प्रभुओ देखिया गदाधर सुकृतिरे । श्रीचरण तुलिया दिलेन तान शिरे ॥९३॥
पुरन्दर पण्डित परमेश्वरदास । जाहार विग्रहे गौरचन्द्रेर प्रकाश ॥९४॥

---

प्रभु ने भी राघव पण्डित को गोदी में करके नेत्रों के जल से उनके अङ्ग को सिंचन किया ॥ ७८ ॥ श्रीराघव के शरीर में ऐसा आनन्द हुआ है कि उन्हें यही नहीं सूझता था कि क्या करें ? ॥ ७९ ॥ श्रीवैकुंठनाथ ने राघव की भक्ति देखकर उनके ऊपर शुभ दृष्टिपात की ॥ ८० ॥ श्रीप्रभु ने कहा कि राघव के घर जाकर उन्हें देखकर सब दुःख भूल गया ॥ ८१ ॥ गङ्गाजी में स्नान करने से जो सन्तोष होता है वही सुख राघव के घर में मुझे मिला ॥ ८२ ॥ हँसकर श्रीप्रभु ने कहा-कि राघव पण्डितजी सुनो ! अब शीघ्रता से तुम कृष्ण के लिये रसोई करो ॥ ८३ ॥ श्रीराघव पंडित आज्ञा पाकर बड़े सन्तुष्ट हुए और प्रेमरस से रसोई करने लगे ॥ ८४ ॥ अपने मनमें जहाँ तक भावना थी ब्राह्मण ने उसी के अनुसार अनेक प्रकार की अपार रसोई सिद्ध की ॥ ८५ ॥ श्रीनित्यानन्दजी और जितने आत्मीयगण वहाँ थे सबको साथ लेकर श्रीमहाप्रभुजी भोजन करने को आये ॥ ८६ ॥ श्रीलक्ष्मीकान्त गौरचन्द्र ने भोजन किया और सब व्यंजनों की प्रभु ने बारंबार प्रशंसा की ॥ ८७ ॥ प्रभु ने कहा "अहो राघव पंडित की कैसी सुन्दर रसोई है ऐसे शाग तो मैंने कहीं भी नहीं खाये ॥ ८८ ॥ राघव पंडित ने भी श्रीप्रभु की प्रीति शागों में जानकर अनेक प्रकार के शाग लायकर रन्धन किये थे ॥ ८९ ॥ श्रीप्रभु इस प्रकार आनन्द से भोजन करके पीछे आचमन करके विराजे हैं ॥ ९० ॥ श्रीगौरसुन्दर राघव के मन्दिर में हैं यह सुनते ही गदाधरदासजी जल्दी से दौड़कर आये ॥ ९१ ॥ गदाधरदासजी प्रभु के परम प्रिय थे वे प्रभु के प्रकट विग्रह की भक्ति सुख से पूर्ण थे ॥ ९२ ॥ तथा श्रीप्रभु ने भी सुकृती श्रीगदाधरजी को देखते ही अपना श्रीचरण उठाकर उनके मस्तक पर दे दिया ॥ ९३ ॥ जिनके शरीर

सत्वरे धाइया आइलेन सेइ क्षणे । प्रभु देखि प्रेमयोगे कान्दे दुइजने ॥९५॥
रघुनाथ वैद्य आइलेन ततक्षणे । परम वैष्णव, अन्त नाहि यार गुणे ॥९६॥
एइ मत यथायथ वैष्णव आछिला । सभेइ प्रभुर स्थाने आसिया मिलिला ॥९७॥
पानी हाटी ग्रामे हैल परम-आनन्द । आपने साक्षाते यथा प्रभु गौरचन्द्र ॥९८॥
राघव पण्डित प्रति श्रीगौरसुन्दर । निभृते करिला किछु रहस्य-उत्तर ॥९९॥
राघव तोमारे आमि निज गोप्य कइ । आमार द्वितीय नाहि नित्यानन्द बइ ॥१००॥
एइ नित्यानन्द सेइ करायेन आमारे । से-इ करि आमि, एइ बलिल तोमारे ॥१०१॥
आमार सकल कर्म्म-नित्यानन्द-द्वारे । एइ आमि अकपटे कहिल तोमारे ॥१०२॥
येइ आमि, से-इ नित्यानन्द, भेद नाइ । तोमारे घरेइ सब जानिबा एथाइ ॥१०३॥
महा-योगेन्द्रेरो याहा पाइते दुर्लभ । नित्यानन्द हैते ताहा हइब सुलभ ॥१०४॥
एतेके हइया तुमि महा सावधान । नित्यानन्द सेविह-येहेन भगवान् ॥१०५॥
मकरध्वज कर प्रति श्रीगौरचन्द्र। बलिलेन सेविह राघव पद द्वन्द्व ॥१०६॥
राघव पण्डित प्रति ये प्रीति तोमार । से केवल सुनिश्चित जानिह आमार ॥१०७॥
हेन मते पानी हाटी-ग्राम धन्य करि । आछिलेन कथोदिन गौराङ्ग श्रीहरि ॥१०८॥
तबे प्रभु आइलेन वराह नगरे । महाभाग्यवन्त एक ब्राह्मणेर घरे ॥१०९॥
सेइ विप्र बड़ सुशिक्षित भागवते । प्रभु देखि भागवत लागिला पढ़िते ॥११०॥
शुनिआ ताहान भक्तियोगेर पठन । आविष्ट हइला गौरचन्द्र नारायण ॥१११॥

में श्रीगौरचन्द्र का प्रकाश है ऐसे श्रीपुरन्दर पंडित व परमेश्वरदासजी भी उसी क्षण शीघ्र दौड़कर आये प्रभु को देखकर प्रेमयोग से दोनों रोने लगे ॥ ९४-९५ ॥ उसी क्षण रघुनाथ वैद्य भी आये जिनके गुणों का अन्त नहीं ऐसे वे परम वैष्णव थे ॥ ९६ ॥ इस प्रकार जहाँ जितने वैष्णव थे, वे सब ही श्रीप्रभु (गौरचन्द्र) के स्थान पर आ मिले ॥ ९७ ॥ पानी हाटी नामक ग्राम में बड़ा आनन्द हुआ क्योंकि श्रीगौरचन्द्र प्रभु स्वयं ही वहाँ बिराजमान थे ॥ ९८ ॥ श्रीगौरसुन्दर ने राघव पंडित से एकान्त में कुछ रहस्यमय वचन कहे॥९९॥ हे राघव ! मैं तुमसे अपनी एक गुप्त बात कहता हूँ कि श्रीनित्यानन्द के बिना मेरा कोई दूसरा नहीं है॥१००॥ यह श्रीनित्यानन्दजी मुझसे जो कराते हैं वही मैं करता हूँ ? यह मैं तुम से सत्य कहता हूँ ॥ १०१ ॥ मेरे सभी कर्म श्रीनित्यानन्द के द्वारा होते हैं यह मैंने निष्कपट रूप से तुमसे कहा ॥ १०२ ॥ जो मैं हूँ वही नित्यानन्दजी हैं इसमें भेद नहीं है; तुम अपने घर पर ही इसी जगह यह सब जान लोगे ॥ १०३ ॥ महा योगीराजों को भी जिसकी प्राप्ति दुर्लभ है, वह पदार्थ श्रीनित्यानन्दजी के द्वारा सबको सुलभता से प्राप्त होगा॥ १०४ ॥ इसलिये तुम विशेष सावधान होकर श्रीभगवान् के समान श्रीनित्यानन्दजी की सेवा करोगे ॥ १०५ ॥ श्रीगौरचन्द्र ने मकरध्वज के प्रति कहा कि तुम राघव के युगल चरणों की सेवा करना ॥ १०६ ॥ राघव पण्डित के प्रति जो तुम्हारी प्रीति होगी वह निश्चय रूप से मेरे प्रति ही जानना ॥ १०७ ॥ इस प्रकार श्रीगौराङ्ग हरि ने पानी हाटी ग्राम को धन्य करने के लिये वहाँ कुछ दिन निवास किया ॥ १०८ ॥ तब श्री प्रभु वराह नगर में एक बड़े भाग्यवान् ब्राह्मण के घर आये ॥ १०९ ॥ वह ब्राह्मण श्रीमद्भागवत का

'बोल बोल' बोले प्रभु वैकुण्ठेर राय । हुङ्कार गर्जन प्रभु करेन सदाय ॥११२॥
सेहो विप्र पढ़े परानन्दे मग्न हैया । प्रभुओ करेन नृत्य बाह्य पासरिया ॥११३॥
भक्तिर महिमा श्लोक शुनिते शुनिते । पुनः पुन आछाड़ पड़ेन पृथिवीते ॥११४॥
हेन से करेन प्रभु प्रेमार प्रकाश । आछाड़ देखिते सर्वलोके पाय त्रास ॥११५॥
एइमत रात्रि तिनप्रहर-अवधि । भागवत शुनिला नाचिला गुण-निधि ॥११६॥
बाह्य पाइ वसिलेन श्रीशचीनन्दन । सन्तोषे विप्रेर करिलेन आलिङ्गन ॥११७॥
प्रभु बोले "भागवत एमत पढ़िते । कभू नाहि शुनि आर काहारो मुखेते ॥११८॥
एतेके तोमार नाम भागवताचार्य । इहाबइ आर कोन ना करिह कार्य" ॥११९॥
विप्र प्रति प्रभुर पदवी योग्य शुनि । सभे करिलेन महा-जय-हरि ध्वनि ॥१२०॥
एइमत प्रति-ग्रामे ग्रामे गङ्गातीरे । रहिया रहिया प्रभु भक्तेर मन्दिरे ॥१२१॥
सभारि करिया मनोरथ पूर्ण काम । पुन आइलेन प्रभु नीलाचल धाम ॥१२२।
गौड़देशे पुनर्वार प्रभुर विहार । इहा ये शुनये तार दुख नहे आर ॥१२३॥
सब नीलाचल-देशे उपजिल ध्वनि । पुन आइलेन प्रभु न्यासि चूड़ामणि ॥१२४॥
महानन्दे सर्वलोक 'जय जय' बोले । "आइला सचल-जगन्नाथ नीलाचले" ॥१२५॥
शुनि सब उत्कलेर पारिषदगण । सार्वभौम-आदि आइलेन सेइक्षण ॥१२६॥
चिरदिन प्रभुर विरहे भक्तगण । आनन्दे प्रभुरे देखि करेन क्रन्दन ॥१२७॥

---

बड़ा विद्वान था श्रीप्रभु को देख कर वह भागवत पाठ करने लगा ॥ ११० ॥ उसका भक्तियोग विषय का पाठ सुनकर श्रीभगवान गौरचन्द्र प्रेमाविष्ट हो गये ॥ १११ ॥ श्रीप्रभु वैकुण्ठनाथ "बोल ! बोल !" कह कर विशेष रूप से हुङ्कार व गर्जन करने लगे ॥ ११२ ॥ वह विप्र भी विशेष आनन्द में मग्न होकर पाठ करने लगा तथा श्री प्रभु भी बाह्य ज्ञान भूलकर नाँचने लगे ॥ ११३ ॥ भक्ति की महिमा पूर्ण श्लोक सुन सुन कर बारबार पृथ्वी पछाड़ खाकर गिरते थे ॥ ११४ ॥ श्रीप्रभु ने प्रेमाभक्ति का ऐसा प्रकाश किया कि उनकी पछाड़ा को देखकर सब दर्शक लोग दुःखी हुए ॥ ११५ ॥ इस प्रकार तीन पहर रात्रि तक श्रीगुण निधान प्रभु ने भागवत सुनकर नृत्यकिया ॥ ११६ ॥ तथा श्रीशचीनन्दन प्रभु ने बाह्य दशा प्राप्त करके सन्तुष्ट होकर ब्राह्मण को आलिङ्गन किया ॥ ११७ ॥ श्रीप्रभु ने कहा "श्रीमद्भागवत को इस प्रकार का पाठ कभी अन्य किसी के मुख से नहीं सुना ॥११८॥ इसलिये अब से तुम्हारा नाम भागवताचार्य हुआ, इसके अतिरिक्त और कोई कार्य मत करना ॥ ११९ ॥ विप्र के प्रति प्रभु-दत्त योग्य पदवी सुनकर सब ऊँचे स्वर से जययुक्त हरि-ध्वनि करने लगे ॥ १२० ॥ इस प्रकार गंगा के किनारे के प्रत्येक ग्राम में भक्तों के घरों में निवास करते हुए तथा सबके मनोरथ व कामना पूर्ण करते करते पुनः नीलाचल में पधारे ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ श्रीप्रभु के गौड़ देश में इस दूसरी बार का विहार को जो सुनेंगे उन्हें फिर दुःख नहीं होगा ॥ १२३ ॥ समग्र नीलाचल प्रदेश में यह ध्वनि हो गई कि सन्यासियों में चूड़ामणि श्रीगौर पुनः लौटकर आ गये हैं ॥ १२४ ॥ सब जन साधारण बड़े आनन्द से जय ध्वनि करके कह रहे थे कि "नीलाचल में सचल जगन्नाथ आगये हैं ॥ १२५ ॥ उत्कल देश वासी सार्वभौम आदि सब पारिषदगण यह सुनते ही तत्क्षण आकर उपस्थित हुए ॥ १२६ ॥

अमुओ सभारे महाप्रेमे करि कोले । सिंचिला सभार अङ्ग नयनेर जले ॥१२८॥
हेनमते श्रीगौरसुन्दर नीलाचले । रहिलेन काशीमिश्र-गृहे कुतूहले ॥१२९॥
निरन्तर नृत्य गीत आनन्द-आवेश । प्रकाशेन गौरचन्द्र, देखे सर्वदेश ॥१३०॥
कखनो नाचेन जगन्नाथेर सम्मुखे । तिलार्द्धेको बाह्य नाहि निजानन्दसुखे ॥१३१॥
कखनो नाचेन काशीमिश्रेर मन्दिरे । कखनो नाचेन महाप्रभु सिन्धु तीरे ॥१३२॥
एइमत निरन्तर प्रेमेर विलास । तिलार्द्धेको अन्य कर्म नाहिक प्रकाश ॥१३३॥
पाणिशङ्ख बाजिले उठेन सेइक्षणे । कपाट फेटिले जगन्नाथ-दरशने ॥१३४॥
जगन्नाथ देखिते ये प्रकाशेन प्रेम । अकथ्य अद्भुत-गङ्गाधारा वहे येन ॥१३५॥
देखिया अद्भुत सब उत्कलेर लोक । कारो देहे आर नाहि रहे दुख शोक ॥१३६॥
ये-दिगे चैतन्य महाप्रभु चलियाय । सेई-दिगे सर्वलोक 'हरि हरि' गाय ॥१३७॥
प्रतापरुद्रेर स्थाने हइल गोचर । "नीलाचले आइलेन श्रीगौरसुन्दर" ॥१३८॥
सेइक्षणे शुनि मात्र नृपति प्रतापे । कटक छाड़िया आइलेन जगन्नाथ ॥१३९॥
प्रभुरे देखिते से राजार बड़ प्रीत । प्रभु से ना देन दरशन कदाचित् ॥१४०॥
सार्वभौम-आदि सभा' स्थाने राजा कहे । तथापि प्रभुरे केहो ना जानाय भये ॥१४१॥
राजा बोले "तुमिसब यदिकर भय । अगोचरे आमारे देखाह महाशय" ॥१४२॥
देखिया राजार आर्ति सर्व भक्तगणे । सभे मेलि एइ युक्ति भाविलेन मने ॥१४३॥

श्रीप्रभु के बहुत दिनके विरही भक्तगण उनके दर्शन करके आनन्द से रो रहे थे ॥ १२७ ॥ श्रीप्रभु ने भी बड़े प्रेम से सबको गोद में लेकर उनके अङ्गों को अपने नेत्र जल ( आँसुओं ) से सींच दिया ॥१२८॥ इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर नीलाचल में काशी मिश्र के घर में आनन्दपूर्वक रहे ॥१२९॥ श्रीगौरचन्द्र आनन्द के आवेश में निरन्तर नृत्य गीत प्रकाश करते और सब देश देखता था ॥ १३० ॥ कभी श्रीजगन्नाथजी के सामने नाचते तो निजानन्द सुख में अर्द्ध तिलमात्र भी बाह्य ज्ञान नहीं रहता था ॥ १३१ ॥ श्रीमहाप्रभु कभी श्रीकाशी मिश्र के भवन में नाचते तो कभी समुद्र तट पर नृत्य करते थे ॥ १३२ ॥ इसी भाँति निरन्तर प्रेम के विलास में रहते थे तिलमात्र समय के लिये भी अन्य कर्म नहीं करते थे ॥ १३३ ॥ उसी समय शङ्ख बज उठे तथा जगन्नाथ दर्शन के लिये कपाट खुल गये ॥ १३४ ॥ श्रीजगन्नाथ दर्शन करके गङ्गाजी की धारा जैसे बहे इस प्रकार अकथ व अद्भुत प्रेम प्रदर्शन किया—॥ १३५ ॥ ऐसा अद्भुत प्रेम देखकर किसी उत्कलवासी के शरीर में दुःख शोक नहीं रहा ॥ १३६ ॥ श्रीचैतन्य महाप्रभु जिस ओर को जाते उसी ओर से सब मनुष्य हरि-हरि गान करने लगते थे ॥ १३७ ॥ राजा प्रतापरुद्र के स्थान में यह समाचार ज्ञात हुआ कि श्रीगौरसुन्दर नीलाचल में आ गये हैं ॥ १३८ ॥ राजा प्रतापरुद्र प्रभु आगमन सुनते ही तत्क्षण कटक राजधानी छोड़कर जगन्नाथपुरी आ गये ॥ १३९ ॥ श्री प्रभु के दर्शन करने की राजा की बड़ी इच्छा थी, परन्तु श्रीप्रभु राजा को कदाचित् दर्शन नहीं देते थे ॥ १४० ॥ राजा ने सार्वभौम आदि सबसे कहा परन्तु भय के कारण श्रीप्रभु को कोई नहीं बतलाता था ॥ १४१ ॥ राजा ने कहा 'आप लोग यदि भय करते हो, तो महाप्रभु के अगोचर मुझे दर्शन करा दें १४२ सब भक्तों

ये-समये प्रभु नृत्य करेन आपने । बाह्य ज्ञान दैवे नाहि थाकये तखने ॥१४४॥
राजाओ परम भक्त-सेइ अवसरे । देखिबेन प्रभुरे, थाकिया अगोचरे ॥१४५॥
एइ युक्ति सबे कहिलेन राजा स्थाने । राजा बोले 'ये-ते-मते देखों मात्र ताने' ॥१४६॥
दैवे एक दिन नृत्य करेन ईश्वर । शुनि राजा एकेश्वर आइला सत्वर ॥१४७॥
आड़े थाकि देखे राजा नृत्य करे प्रभु । परम अद्भुत-याहा नाहि देखि कभु ॥१४८॥
अविच्छिन्न कत धारा वहे श्रीनयने । कम्प स्वेद वैवर्ण्य पुलक क्षणे-क्षणे ॥१४९॥
हेन से आछाड़ प्रभु पड़ेन भूमिते । हेन नाहि ये बा त्रास ना पाय देखिते ॥१५०॥
हेन से करेन प्रभु हुङ्कार गर्जन । शुनिजा प्रतापरुद्र धरेन श्रवण ॥१५१॥
कखनो करेन हेन रोदन विरहे । राजा देखे पृथिवीते येन नदी वहे ॥१५२॥
एइ मत कत हय अनन्त विकार । कत याय कत हय लेखा कत तार ॥१५३॥
निरवधि दुइ महाबाहुदण्ड तुलि । 'हरि बोल' बलिया नाचेन कुतूहली ॥१५४॥
एइ मत नृत्य प्रभु करि कथोक्षणे । बाह्य प्रकाशिया वसिलेन सर्व-गणे ॥१५५॥
राजाओ चलिला अलक्षिते सेइ क्षणे । देखिया प्रभुर नृत्य महानन्द मने ॥१५६॥
देखिया अद्भुत नृत्य अद्भुत विकार । राजार मने ते हैल सन्तोष अपार ॥१५७॥
सबे एक खानि मात्र धरिलेक मने । सेइ तान अनुग्रह हइबार कारणे ॥१५८॥
प्रभुर नासाय यत दिव्य धारा वहे । निरवधि नाचिते श्रीमुखे लाला हये ॥१५९॥

---

ने राजा की गिड़गिड़ाहट देखकर ही सब मिलकर मनमें यह युक्ति विचारी कि ॥ १४३ ॥ जिस समय श्री-गौरचन्द्र स्वयं नृत्य करते हैं उस समय दैववश उन्हें बाह्य ज्ञान नहीं रहता है सोई ॥ १४४ ॥ राजा भी बड़ा भक्त है उसी अवसर में गुप्त स्थान में रहकर प्रभु के दर्शन कर लेंगे" ॥ १४५ ॥ यह युक्ति सबने राजा से कही; यह सुनकर राजा बोला कि "जिस भाँति मैं भी दर्शन मात्र हो जावें" ॥ १४६ ॥ दैववश श्रीगौरचन्द्र एक दिन नृत्य करने लगे यह सुनते ही राजा अकेला ही शीघ्र आया ॥ १४७ ॥ राजा आड़ में होकर श्री-प्रभु को नृत्य करते देखने लगा, बड़ा अद्भुत था जैसा पूर्व में कभी नहीं देखा था ॥ १४८ ॥ श्रीनेत्रों से कितनी अटूट धार वह रही थी तथा क्षण २ में कम्प स्वेद पुलक व ( वैवर्ण्य ) शरीर का रङ्ग बदलता था ॥ १४९ ॥ श्रीप्रभु पृथ्वी पर ऐसी पछाड़ खाकर गिरते थे, जिसे देखकर दुःख न हो ऐसा कोई भी नहीं था ॥ १५० ॥ श्रीगौरचन्द्र ऐसी गर्जना व हुङ्कार करते थे, जिसे सुनकर राजा प्रतापरुद्र कान बन्द करता था ॥ १५१ ॥ कभी विरह में इतना रुदन करते थे कि राजा ने देखकर समझा मानों पृथ्वी पर नदी बहने लगी ॥ १५२ ॥ इस प्रकार न जाने कितने अनन्त विकार हो रहे थे; इसकी कुछ गिनती नहीं थी कि कितने विकार उठते व कितने शांत होते थे ॥ १५३ ॥ दोनों विशाल भुजदण्डों को निरन्तर उठाकर हरि बोल कहते हुए कुतूहल से नाच रहे थे ॥ १५४ ॥ इस प्रकार कुछ समय तक श्रीप्रभु नृत्य करके बाह्य ज्ञान में आ गये, सब भक्तों के साथ बैठ गये ॥ १५५ ॥ राजा भी तत्क्षण ही अलक्षित रूप से चला गया और श्रीप्रभु का नृत्य देखकर मनमें अति आनन्द पाया ॥ १५६ ॥ अद्भुत नृत्य व विकारों को देखकर राजा के मनमें सन्तोष हुआ १५७ केवल मात्र एक सन्देह मनमें उत्पन्न हुआ उसके होने का कारण भी एक मात्र

धूलाय लालाय नासिकार प्रेम धारे। सकल श्रीअङ्ग व्याप्त कीर्तन विकारे ॥१६०॥
ए सकल कृष्णभाव ना बूझि नृपति। ईषत् सन्देह तान धरिलेक मति ॥१६१॥
कारो स्थाने इहा राजा ना करि प्रकाश। परम सन्तोषे राजा गेला निज-वास ॥१६२॥
प्रभुरे देखिया राजा महासुखी हैया। थाकिलेन गृहे गिया शयन करिया ॥१६३॥
आपने श्रीजगन्नाथ न्यासिरूप धरि। निज सङ्कीर्तन क्रीड़ा करे अवतरि ॥१६४॥
ईश्वर-मायाय राजा मर्म नाहि जाने। सेइ प्रभु जानाइते लागिला आपने ॥१६५॥
सुकृति प्रतापरुद्र रात्रे स्वप्न देखे। स्वप्ने गियाछेन जगन्नाथेर सम्मुखे ॥१६६॥
राजा देखे-जगन्नाथ अङ्ग धूलामय। दुइ श्रीनयने येन गङ्गाधारा वय ॥१६७॥
दुइ नासिकाय जल पड़े निरन्तर। श्रीमुखेर लाला पड़े, तिते कलेवर ॥१६८॥
स्वप्ने राजा मने चिन्ते ए किरूप लीला। बूझिते ना पारि जगन्नाथेर कि खेला ॥१६९॥
जगन्नाथ-चरण स्पर्शिते राजा चाय। जगन्नाथ बोले राजा एत ना जुयाय ॥१७०॥
कर्पूर कस्तूरी गन्ध चन्दन कुंकुमे। लेपित तोमार अङ्ग सकल उत्तमे ॥१७१॥
आमार शरीर देख-धूला लाला-मय। आमा परशिते कि तोमार योग्य हय ॥१७२॥
आमि ये नाचिते आजि तुमि गियाछिला। घृणा कैले मोर अङ्ग देखि धूला लाला॥१७३॥
सेइ धूला लाला देख सर्वाङ्गे आमार। तुमि महाराजा-महाराजार कुमार ॥१७४॥
आमारे स्पर्शिते कि तोमार योग्य हय। एत बलि भृत्य चाहि हासे दयामय ॥१७५॥

---

उनका अनुग्रह था ॥ १५८ ॥ श्रीप्रभु की नाक से जितनी दिव्य धारा बह रही थी तथा निरन्तर नाचने से श्रीमुख से जो लार गिरती थी ॥ १५९ ॥ उनके श्रीअङ्ग में कीर्तन विकार तथा धूलि लार व नाक से बहा हुआ पानी आदि ही दिखाई देते थे ॥ १६० ॥ क्या यही सब कृष्ण-भावना है ? राजा की बुद्धि में ऐसा कुछ सन्देह हुआ ॥ १६१ ॥ परन्तु राजा ने यह सन्देह किसी पर प्रकाशित नहीं किया और बड़े सन्तुष्ट होकर अपने निवास को चला गया ॥ १६२ ॥ प्रभु के दर्शन करके राजा बड़ा सुखी हुआ और घर पहुँचकर शयन किया ॥ १६३ ॥ स्वयं श्रीजगन्नाथ ने सन्यासी रूप धारण किया है; आप ही अवतार लेकर सङ्कीर्तन क्रीड़ा कर रहे हैं ॥ १६४ ॥ ईश्वर की माया से राजा मर्म जान नहीं सका तब स्वयं ही मर्म बताने लगे ॥ १६५ ॥ सुकृति प्रतापरुद्र ने रात्रि में स्वप्न देखा कि मैं जगन्नाथ के सामने गया हूँ ॥ १६६ ॥ राजा ने देखा कि जगन्नाथजी का अङ्ग धूलिमय हो रहा है और दोनों श्रीनेत्रों से गङ्गा की धारा बह रही है ॥ १६७ ॥ निरन्तर दोनों नासिकाओं से जल व श्रीमुख से लार गिर रही है जिससे शरीर भीग रहा है ॥ १६८ ॥ स्वप्न में राजा ने मन ही मन चिन्तवन किया कि यह कैसी लीला है समझ में नहीं आती ॥ १६९ ॥ राजा ने जगन्नाथजी चरण स्पर्श करने चाहे-तब जगन्नाथ ने कहा "राजा ऐसा उचित नहीं है" ॥१७०॥ तुम्हारे अङ्ग में कर्पूर कस्तूरी सुगन्धित चन्दन व कुंकुम आदि सब उत्तम पदार्थ लेपन हो रहे हैं और ॥ १७१ ॥ मेरा शरीर तो धूलि व लारमय देखते हो मुझे स्पर्श करना क्या तुम्हें उचित है ? ॥ १७२ ॥ आज मेरे नाचने के समय तुम गये थे, तब मेरे अङ्ग में धूलि व लार देखकर घृणा की थी ॥ १७३ ॥ वही धूल व लार मेरे अंग पर अब भी देख रहे हो फिर तुम तो महाराज हो तथा महाराज के कुमार हो १७४ मुझे स्पर्श करना

सेइक्षणे देखे राजा सेइ सिंहासने । चैतन्यगोसाञि वसि आछेन आपने ॥१७६॥
सेइमत सकल श्रीअङ्ग धूलामय । राजारे बोलेन हासि "एत योग्यनय ॥१७७॥
तुमि ये आमारे घृणा करि गेला मने । आर तुमि आमा' परशिबा कि कारणे" ॥१७८॥
एइमत प्रतापरुद्रेरे कृपा करि । हासेन श्रीगौराङ्ग सुन्दर नरहरि ॥१७९॥
राजार हइल कथोक्षणे जागरण । जागिया लागिला राजा करितेक्रन्दन ॥१८०॥
"महा-अपराधी मुञि पापी दुराचार । ना जानिलूँ ईश्वर चैतन्य-अवतार ॥१८१॥
जीवेर वा कोन शक्ति ताहाने जानिते । ब्रह्मादिर मोह हय याँहार मायाते ॥१८२॥
एतेके क्षमह प्रभु मोर अपराध । निज दास करि मोरे करह प्रसाद ॥१८३॥
आपने श्रीजगन्नाथ-चैतन्यगोसाञि । राजा जानिलेन, इथे किछु भेद नाञि ॥१८४॥
विशेष उत्कण्ठा हैल प्रभुरे देखिते । तथापि ना पारे केहो देखा कराइते ॥१८५॥
दैवे एकदिन प्रभु पुष्पेर उद्याने । वसिया आछेन कथो पारिषद-सने ॥१८६॥
एकाकी प्रतापरुद्र गिया सेइ स्थाने । दीर्घ हइ पड़िलेन प्रभुर चरणे ॥१८७॥
अश्रु कम्प पुलके राजार अन्त नाञि । आनन्दे मूर्च्छित हइलेन सेइ ठाञि ॥१८८॥
विष्णुभक्ति चिह्न प्रभु देखिया राजार । "उठ" बलि श्रीहस्त दिलेन अङ्गे तांर ॥१८९॥
श्रीहस्त परशे राजा पाइया चेतन । प्रभुर चरण धरि करेन क्रन्दन ॥१९०॥
"त्राहि त्राहि कृपासिन्धु सर्व जीवनाथ । मुञि-पातकीरे कर' शुभदृष्टि पात ॥१९१॥

---

क्या तुम्हें उचित है ? यों कहकर दास को देखकर दयामय हँस रहे हैं ॥ १७५ ॥ उसी क्षण राजा ने देखा कि उसी सिंहासन पर श्रीचैतन्य प्रभु स्वयं विराज रहे हैं और पहिली तरह ही सब श्रीअङ्ग धूलिमय हैं तब हँसकर राजा से बोले "ऐसा उचित नहीं है"॥१७६-१७७॥जब तुम मुझे मन में घृणा करके जा चुके तो फिर तुम मुझे क्यों छूना चाहते हो ? ॥ १७८ ॥ इस प्रकार प्रतापरुद्र पर कृपा करके नरहरि श्रीगौरांगसुन्दर हँस रहे थे ॥ १७९ ॥ कुछ क्षण में राजा को जागरण हो गया और जागते ही राजा क्रन्दन करने लगा ॥१८०॥ मैं महाअपराधी, पापी व दुराचारी हूँ—मैंने ईश्वरावतार श्रीचैतन्य को नहीं पहिचाना ॥ १८१ ॥ अहो जिनकी माया से ब्रह्मादिक को भी मोह होता है उनको जानने की जीव की क्या शक्ति है ॥ १८२ ॥ प्रभो ! इसी कारण मेरा अपराध क्षमा करो और तथा अपना दास मानकर मेरे ऊपर कृपा करो ॥ १८३ ॥ राजा समझ गया कि स्वयं जगन्नाथ ही श्रीचैतन्य प्रभु हैं इसमें कुछ भी भेद नहीं है ॥१८४॥ प्रभु के दर्शन करने की विशेष उत्कण्ठा हुई, परन्तु कोई दर्शन नहीं करा पाते ॥ १८५ ॥ दैववश एक दिन श्रीप्रभु फूलों के बगीचे में कुछ पारपदों के साथ विराजमान थे ॥ १८६ ॥ प्रतापरुद्र अकेला ही उस स्थान पर गया और लम्बा होकर प्रभु के चरणों में लेट गया ॥ १८७ ॥ राजा के शरीर में प्रेमाश्रु कम्प पुलकादिकों का अन्त नहीं था तथा उसी जगह आनन्द में मूर्च्छित हो गया ॥ १८८ ॥ श्रीप्रभु ने राजा के शरीर में विष्णुभक्ति के चिन्हों को देखे और अपनी श्रीहस्त उसके अंग में देकर कहा कि "उठो" ॥ १८९ ॥ श्रीहस्त के स्पर्श से राजा को चेतना आई और प्रभु चरण पकड़कर रोने लगा ॥१९०॥ हे कृपा के सागर सब जीवों के स्वामी रक्षा करो २ और मुझ पातकी के ऊपर शुभ दृष्टिपात करो ॥ १९१ ॥ हे स्वतन्त्र विहारी ! कृपासिन्धो ! रक्षा करो - हे

त्राहि त्राहि स्वतंत्र विहारि कृपासिन्धु । त्राहि त्राहि श्रीकृष्ण चैतन्य दीनबन्धु ॥१९२॥
त्राहि त्राहि सर्ववेद गोप्य रमाकान्त । त्राहि त्राहि भक्तजन वल्लभ एकान्त ॥१९३॥
त्राहि त्राहि महाशुद्ध सत्त्व रूप धारि । त्राहि त्राहि सङ्कीर्तन लम्पट मुरारि ॥१९४॥
त्राहि त्राहि अविज्ञात तत्त्व-गुण-नाम । त्राहि त्राहि परम कोमल सुखधाम ॥१९५॥
त्राहि त्राहि अज-भव वन्द्य-श्रीचरण । त्राहि त्राहि सन्यास धर्मेर विभूषण ॥१९६॥
त्राहि त्राहि श्रीगौरसुन्दर महाप्रभु । एइ कृपाकर' नाथ ना छाड़िबा कभु" ॥१९७॥
शुनि प्रभु प्रतापरुद्रेर काकुवाद । तुष्ट हइ प्रभु ताने करिला प्रसाद ॥१९८॥
प्रभु बोले "कृष्णभक्ति हउक तोमार । कृष्ण कार्य बिने तुमि ना करिह आर ॥१९९॥
निरन्तर गिया कर कृष्ण सङ्कीर्तन । तोमार रक्षिता-विष्णु चक्र-सुदर्शन ॥२००॥
तुमि, सार्वभौम, आर रामानन्दराय । तिनेर निमित्त मुञि आइलुँ एथाय ॥२०१॥
सबे एक खानि वाक्य करिबा आमार । मोरे ना करिबा कोथाओ प्रचार ॥२०२॥
ए से नहे आमार प्रचार कर तुमि । तबे एथा छाड़ि सत्य चलिवाङ आमि ॥२०३॥
एत बलि आपन गलार माला दिया । विदाय दिलेन ताने सन्तोष हइया ॥२०४॥
चलिला प्रतापरुद्र आज्ञा करि शिरे । दण्डवत पुनः पुन करिया प्रभुरे ॥२०५॥
प्रभु देखि नृपति हइला पूर्ण काम । निरवधि करेन चैतन्य पद-ध्यान ॥२०६॥
प्रतापरुद्रेर प्रभु-सह दरशन । इहा ये शुनये तारे मिले प्रेमधन ॥२०७॥
हेन मते श्रीगौरसुन्दर नीलाचले । रहिलेन कीर्तन विहार कुतूहले ॥२०८॥

---

दीनबन्धो श्रीकृष्णचैतन्यदेव रक्षा करो, रक्षा करो ॥ १९२ ॥ सब वेदों से छुपे हुए गोप्य रमाकान्त रक्षा करो २ और हे भक्तजनों के एक मात्र प्रियतम रक्षा करो २ ॥ १९३ ॥ ( माया के ) तीनों गुणों से अतीत विशेष शुद्ध सत्त्वरूपधारी रक्षा करो २, हे संकीर्तन-प्रेमी मुरारी रक्षा करो २ ॥१९४॥ जिसके नाम के गुण तत्त्व को कोई नहीं जानता ऐसे आप रक्षा करो, रक्षा करो ॥ १९५ ॥ हे ब्रह्मा व शिव के बन्दनीय श्रीचरण वाले रक्षा करो २ तथा सन्यास धर्म विभूषण प्रभो रक्षा करो २ ॥ १९६ ॥ हे श्रीगौरसुन्दर महाप्रभो रक्षा करो २ और हे नाथ ऐसी कृपा करो कि मुझे कभी छोड़ मत देना ॥ १९७ ॥ श्रीप्रभु गौरचन्द्र प्रतापरुद्र की विनती सुनकर सन्तुष्ट हुए तथा उनके ऊपर अनुग्रह किया ॥ १९८ ॥ प्रभु ने कहा "तुमको कृष्ण-भक्ति होवे अब कृष्ण कार्य के अतिरिक्त अन्य कार्य तुम मत करना ॥ १९९ ॥ तुम जाकर निरन्तर कृष्ण संकीर्तन किया करना; विष्णु का सुदर्शन तुम्हारा रक्षक है ॥ २०० ॥ तुम सार्वभौम और रायरामानन्द के निमित्त ही मैं यहाँ आया हूँ ॥ २०१ ॥ तुम सब मेरी एक आज्ञा का अवश्य पालन करना कि तुम मेरा कहीं भी प्रचार न करोगे ॥२०२॥ ऐसा न हो कि तुम मेरा प्रचार करो तो मैं सत्य कहता हूँ कि यह स्थान छोड़कर मैं कहीं अन्यत्र चला जाऊँगा ॥२०३॥ ऐसा कहकर प्रभु ने अपने गले की माला प्रदान की और उनके ऊपर सन्तुष्ट होकर विदा किया ॥ २०४ ॥ प्रभु को बारम्बार दण्डवत् प्रणाम करके व उनकी आज्ञा मस्तक पर धारण करके प्रतापरुद्र चला गया ॥२०५॥ प्रभु के दर्शन करके राजा के मनोरथ पूर्ण हो गये तथा श्रीचैतन्य चरणों का निरन्तर ध्यान करने लगा ॥ २०६ ॥ श्रीप्रतापरुद्र प्रभु के दर्शन की इस कथा को जो सुनेंगे उनको प्रेम

उत्कले जन्मियाछिला यत अनुचर । सभे चिनिलेन निज प्राणेर ईश्वर ॥२०९॥
श्रीप्रद्युम्न मिश्र कृष्ण सुखेर सागर । आत्मपद जारे दिला श्रीगौरसुन्दर ॥२१०॥
श्रीपरमानन्द-महापात्र महाशय । जार तनु श्रीचैतन्य भक्ति रसमय ॥२११॥
काशी मिश्र परम-विह्वल कृष्ण रसे । आपने रहिला प्रभु जाहार आवासे ॥२१२॥
एइ मत प्रभु सर्व भृत्य करि सङ्गे । निरवधि गोङायेन सङ्कीर्तन-रङ्गे ॥२१३॥
यत यत उदासीन श्रीचैतन्यदास । सभे करिलेन आसि नीलाचले वास ॥२१४॥
नित्यानन्द-महाप्रभु-परम उद्दाम । सर्व नीलाचले भ्रमे महाज्योति धाम ॥२१५॥
निरवधि परानन्द रसे उनमत्त । लखिते ना पारे केहो-अविज्ञात तत्त्व ॥२१६॥
सदाइ जपेन नाम-श्रीकृष्णचैतन्य । स्वप्नेओ नाहिक नित्यानन्द मुखे अन्य ॥२१७॥
येन रामचन्द्रे लक्ष्मणेर रति मति । सेइ मत नित्यानन्दो श्रीचैतन्य प्रति ॥२१८॥
नित्यानन्द प्रसादे से सकल संसार । अद्यापिह गाय श्रीचैतन्य-अवतार ॥२१९॥
हेन मते महाप्रभु चैतन्य निताइ । नीलाचले वसति करेन दुइ भाइ ॥२२०॥
एक दिन श्रीगौरसुन्दर नरहरि । निभृते वसिला नित्यानन्द सङ्गे करि ॥२२१॥
प्रभु बोले शुन नित्यानन्द महामति । सत्वरे चलह तुमि नवद्वीप-प्रति ॥२२२॥
प्रतिज्ञा करिया आछि आमि निज मुखे । मूर्ख नीच दरिद्र भासाब प्रेमसुखे ॥२२३॥
तुमिओ थाकिला यदि मुनि धर्म करि । आपन-उद्दाम-भाव सब परिहरि ॥२२४॥

---

धन प्राप्त होगा ॥२०७॥ इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर ने नीलाचल धाम में कुतूहल पूर्वक कीर्तन बिहार से निवास किया ॥ २०८ ॥ उत्कल देश में जितने सेवकों का जन्म हुआ था उन सबने अपने प्राणनाथ को पहिचान लिया ॥ २०९ ॥ श्रीप्रद्युम्न मिश्रजी कृष्ण सुख के सागर थे जिनको श्रीगौरसुन्दर आत्म-पद प्रदान किया ॥ २१० ॥ महाशय परमानन्दजी महापात्र थे जिनका शरीर श्रीचैतन्यचन्द्र की भक्तिरस पूरित था ॥ २११ ॥ काशी मिश्र कृष्ण रस में बड़े विह्वल रहते थे उन्हीं के घर में स्वयं प्रभु ने निवास किया था ॥ २१२ ॥ इस प्रकार श्रीप्रभु गौरचन्द्र सब भृत्यों के साथ निरन्तर संकीर्तन रङ्ग में समय ही व्यतीत करते थे ॥ २१३ ॥ श्रीचैतन्यदेव के जितने उदासी दास थे उन सबने नीलाचल में आकर निवास किया ॥ २१४ ॥ महाज्योति-स्थान श्रीनित्यानन्द महाप्रभु बड़े उद्दाम स्वभाव के थे—वे समग्र नीलाचल में भ्रमण करते थे॥२१५॥वे निरन्तर परानन्द रस में उन्मत्त थे, परन्तु गुप्त तत्त्व को कोई समझ नहीं पाता था ॥ २१६ ॥ सदा ही श्रीकृष्ण-चैतन्य नाम का जप करते रहते थे तथा स्वप्न में भी उनके मुख से अन्य शब्द नहीं निकलता था ॥ २१७ ॥ जिस प्रकार लक्ष्मण की श्रीरामचन्द्रजी में प्रेम बुद्धि थी उसी प्रकार नित्यानन्दजी की श्रीचैतन्यचन्द्र में थी ॥ २१८ ॥ उन्हीं श्रीनित्यानन्द कृपा से सब संसार आज पर्यन्त श्रीचैतन्य चन्द्र का अवतार गाथा गाता है ॥ २१९ ॥ इस भाँति, चैतन्यमहाप्रभु व नित्यानन्दप्रभु दोनों भाइयों ने नीलाचल में निवास किया ॥ २२० ॥ एक दिन नरहरि श्रीगौरसुन्दर नित्यानन्द के साथ एकान्त में विराजमान थे ॥ २२१ ॥ गौरचन्द्र ने कहा हे महामति नित्यानन्दजी सुनो आप शीघ्र ही नवद्वीप को जावें ॥ २२२ ॥ मैं अपने मुख से प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि मूर्ख नीच व दरिद्रों को भी प्रेम सुख में डुबाऊँगा ॥ २२३ ॥ यदि आप अपने सब उद्दामभाव को

तबे मूर्ख नीच यत पतित संसार । बोल देखि आर केबा करिब उद्धार ॥२२५॥
भक्तिरस दाता तुमि, तुमि सम्बरिले । तबे अवतार वा कि निमित्त करिले ॥२२६॥
एतेके आमार वाक्य यदि सत्य चाओ । तबे अविलम्बे तुमि गौड़देशे जाओ ॥२२७॥
मूर्ख नीच पतित दुःखित यत जन । भक्ति दिया कर गिया संसार मोचन॥२२८॥
आज्ञा पाइ नित्यानन्दचन्द्र सेइ क्षणे । चलिलेन गौड़देशे लइ निज-गणे ॥२२९॥
रामदास गदाधरदास महाशय । रघुनाथ वैद्य-ओझा-भक्ति रसमय ॥२३०॥
कृष्णदास पण्डित परमेश्वरदास । पुरन्दर पण्डितेर परम उल्लास ॥२३१॥
नित्यानन्द स्वरूपेर यत आप्तगण । नित्यानन्द सङ्गे सबे करिला गमन ॥२३२॥
चलिलेन नित्यानन्द गौड़देश-प्रति । सब पारिषदगण करिया संहति ॥२३३॥
पथे चलितेइ नित्यानन्द महाशय । सर्व-परिषद करिलेन प्रेममय ॥२३४॥
सभार हइल आत्म विस्मृति अत्यन्त । कार देहे कत भाव नाहि हय अन्त ॥२३५॥
प्रथमेइ वैष्णवाग्र गण्य रामदास । तान देहे हइलेन गोपाल-प्रकाश ॥२३६॥
मध्य पथे रामदास त्रिभंग हइया । आछिला प्रहर-तिन बाह्य पासरिया ॥२३७॥
हइला राधिकाभाव-गदाधरदासे । दधि के के निब बलि महा अट्टहासे ॥२३८॥
रघुनाथ-वैद्य-उपाध्याय महामति । हइलेन मूर्तिमती येहेन रेवती ॥२३९॥
कृष्णदास परमेश्वरदास-दुइ जन । गोपाल-भावे हैं हैं करे सर्वक्षण ॥२४०॥
पुरन्दर पण्डित गाछेते गिया चड़े । 'मुञिरे अङ्गद' बलि लाफ दिया पड़े ॥२४१॥

---

त्याग कर मौन होकर रहेंगे तो मूर्ख नीच आदि संसार में जितने पतित हैं तब उनका कौन दूसरा उद्धार करेगा ? ॥ २२४-२२५ ॥ भक्तिरस के दाता आप ही हो यदि आप ही सम्बरण करोगे तो फिर अवतार ही किसी निमित्त लिया ? ॥२२६॥ इसलिये यदि मेरे वाक्य को आप सत्य करना चाहते हो तो बिना देर किये आप गौड़देश को शीघ्र ही जावें ॥२२७॥ और जितने मूर्ख नीच दरिद्र व पतित दुःखीजन हैं, उनको जाकर भक्ति प्रदान करके मुक्त करो ॥ २२८ ॥ आज्ञा पाकर तत्क्षण अपने भक्तगणों को लेकर श्रीनित्यानन्द चन्द्र गौड़देश को चल दिये ॥२२९॥ रामदास-महाशय गदाधरदास-भक्तिरसमय रघुनाथ वैद्य उपाध्याय-कृष्णदास पण्डित-परमेश्वरदास व पुरन्दर पण्डित को विशेष आनन्दोल्लास हुआ ॥ २३०-२३१ ॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप के जितने आत्मीयगण थे उन सभी ने प्रभु के साथ ही गमन किया ॥ २३२ ॥ सब पार्षदों को संग लेकर श्रीनित्यानन्द प्रभु गौड़देश की ओर चल दिये ॥ २३३ ॥ महाशय नित्यानन्द ने मार्ग में चलते-चलते ही सब पार्षदों को प्रेममय कर दिया ॥ २३४ ॥ सबकी अत्यन्त आत्म-विस्मृति हो गई और किस देह में कितने भाव होते थे सो उनका अन्त नहीं था ॥ २३५ ॥ प्रथम ही वैष्णवों में अग्रगण्य रामदासजी के शरीर में गोपाल का प्रकाश हुआ ॥ २३६ ॥ रामदासजी बीच मार्ग में त्रिभंग होकर बाह्य ज्ञान को भूलकर तीन पहर तक खड़े रहे ॥ २३७ ॥ गदाधरदासजी को राधिका ( गोपिका ) भाव हो गया, वे बड़े अट्टहास के साथ बोलने थे "दही लो- कोई दही" ॥ २३८ ॥ महामति रघुनाथ वैद्य ऐसे हो गये मानों मूर्तिमती रेवती महारानी हैं ॥२३९॥ कृष्णदास व परमेश्वरदास दोनों गोपालभाव में सब समय 'है ! है !' शब्द उच्चारन करते रहते थे

एइ मत नित्यानन्द श्रीअनन्तधाम । सभारे दिलेन भाव परम-उद्दाम ॥२४२॥
दण्ड-पथ छाड़ि सभे क्रोश दुइ चारि । जायेन दक्षिण-वामे आपना पासरि ॥२४३॥
कथोक्षणे पथ जिज्ञासेन लोकस्थाने । 'बोल भाइ गङ्गातीरे जाइव केमने ॥२४४॥
लोक बोले हाय-हाय पथ पासरिला । दुइ-प्रहरेर पथ फिरिया आइला ॥२४५॥
लोक वाक्ये फिरिया जायेन यथा पथ । पुन पथ छाड़िया जायेन सेइ मत ॥२४६॥
पुन पथ जिज्ञासा करेन लोकस्थाने । लोक बोले 'पथ रैल दशक्रोश वामे' ॥२४७॥
पुन हासि सभेइ चलेन पथ यथा । निज देह ना जानेन, पथेर का कथा ॥२४८॥
यत देह धर्म्म-क्षुधा तृष्णा भय दुख । काहारो नाहिक-पाइ परानन्द सुख ॥२४९॥
पथे यत लीला करिलेन नित्यानन्द । के वर्णिव-केवा जाने-सकलि अनन्त ॥२५०॥
हेन मते नित्यानन्द श्रीअनन्त धाम । आइलेन गङ्गातीरे पानीहाटी ग्राम ॥२५१॥
राघवपण्डित गृहे सर्वाद्य आसिया । रहिलेन सकल पार्षदगण लैया ॥२५२॥
परम आनन्द हैला राघव पण्डित । श्रीमकरध्वज-कर गोष्ठीर सहित ॥२५३॥
हेन मते नित्यानन्दे पानी हाटी ग्रामे । रहिलेन सकल-पार्षदगण-सने ॥२५४॥
निरन्तर परानन्दे करेन हुङ्कार । विह्वलता बइ देहे बाह्य नाहि आर ॥२५५॥
नृत्य करिवारे इच्छा हइल अन्तरे । गायक सकल आसि मिलिल सत्वरे ॥२५६॥
सुकृति माधव घोष-कीर्तने तत्पर । हेन कीर्तनिया नाहि पृथिवी भितर ॥२५७॥

---

॥ २४० ॥ पुरन्दर पण्डित वृक्षों पर चढ़ जाते थे मैं "अङ्गद हूँ" यह कहकर कूद पड़ते थे ॥ २४१ ॥ इस प्रकार श्रीअनन्तधाम नित्यानन्द प्रभु ने सबको परम उद्दामभाव प्रदान कर दिया ॥२४२॥ पगडण्डी छोड़कर सभी अपने आपको भूलकर २-४ कोश दाँये बाँये चले जाते थे ॥ २४३ ॥ थोड़ी ही देर में कभी लोगों के पास मार्ग पूँछते कि "भाई गङ्गातट को कैसे जावें" ॥ २४४ ॥ लोगों ने कहा "हाय ! हाय ! मार्ग भूल गये देखो दोपहर का मार्ग फिरकर आ गये हो !" ॥ २४५ ॥ लोगों के वाक्यों से सीधे मार्ग को फिरकर जाते, परन्तु दुबारा मार्ग छोड़कर उसी प्रकार फिर चलने लगते ॥ २४६ ॥ मनुष्यों से पुनर्वार मार्ग पूँछा, तब लोगों ने कहा "मार्ग तो दश कोश बाईं ओर को रह गया" ॥ २४७ ॥ फिर हँसकर सब लोग मार्ग की ओर चल दिये, जिनको अपने देह का ही ज्ञान नहीं है तो मार्ग की क्या बात है ? ॥ २४८ ॥ शरीर के जितने धर्म हैं-क्षुधा ( भूख ) प्यास भय दुख आदि वे कुछ भी नहीं थे—सब परानन्द सुख को प्राप्त हो रहे थे ॥ २४९ ॥ श्रीनित्यानन्दजी ने जितनी लीला की, वे अनन्त हैं उन्हें कौन जाने ? कौन वर्णन करे ? ॥ २५० ॥ इस प्रकार श्रीअनन्तधाम नित्यानन्द प्रभु गङ्गा के किनारे पर पानी-हाटी नामक ग्राम में आये ॥ २५१ ॥ सबसे पहिले राघव पण्डित के घर में आकर सब पार्षदों को लेकर ठहरे ॥ २५२ ॥ श्रीमकरध्वज-कर आदि की गोष्ठी सहित राघव पण्डित बड़े आनन्दित हुए ॥ २५३ ॥ इस प्रकार नित्यानन्द प्रभु ने सब पार्षदों के साथ पानी हाटी नामक ग्राम में निवास किया ॥ २५४ ॥ तथा परानन्द में निरन्तर हुङ्कार करने लगते थे और विह्वलता के अतिरिक्त देह में अन्य बाह्य ज्ञान नहीं था ॥ २५५ ॥ आपके मन में नाँचने की इच्छा हुई तब सब गायक लोग भी शीघ्र ही आकर इकट्ठे हो गये ॥२५६॥ सुकृती माधव घोष कीर्तन में

जाहारे कहेन-वृन्दावनेर गायन । नित्यानन्द स्वरूपेर महा प्रियतम ॥२५८॥
माधवगोविन्द बासुदेव-तिन भाइ । गाइते लागिला, नाचे ईश्वर-निताइ ॥२५९॥
हेन से नाचेन अवधूत महाबल । पद भरे पृथिवी करये टलमल ॥२६०॥
निरवधि 'हरिवलि' करेन हुङ्कार । आछाड़ देखिते लोके लागे चमत्कार ॥२६१॥
जाहारे करेन दृष्टि नाचिते-नाचिते । सेइ प्रेमे ढलिया पड़ेन पृथिवीते ॥२६२॥
परिपूर्ण प्रेमरसमय नित्यानन्द । संसार तारिते करिलेन शुभारम्भ ॥२६३॥
यतेक आछये प्रेमभक्तिर बिकार । सब प्रकाशिया नृत्य करेन अपार ॥२६४॥
कथोक्षणे वसिलेन खट्टार उपरे । आज्ञा हैल अभिषेक करिवार तरे ॥२६५॥
राघवपण्डित-आदि पारिषद्‌गणे । अभिषेक करिते लागिला सेइ क्षणे ॥२६६॥
सहस्र-सहस्र घट आनि गङ्गाजल । नाना गन्धे सुवासित करिया सकल ॥२६७॥
सन्तोषे सभेइ देन श्रीमस्तको परि । चतुर्दिगे सभेइ बोलेन 'हरि-हरि' ॥२६८॥
सभेइ पड़ेन अभिषेक मन्त्र-गीत । परानन्दे सभेइ हइला आनन्दित ॥२६९॥
अभिषेक कराइया नूतन वसन । पराइया लेपिलेन श्रीअङ्गे चन्दन ॥२७०॥
दिव्य-दिव्य वनमाला तुलसी-सहिते । पीन-वक्ष पूर्ण करिलेन नाना मते ॥२७१॥
तबे दिव्य-खट्टा स्वर्णे करिया भूषित । सम्मुखे आनिञा करिलेन उपनीत ॥२७२॥
खट्टाय वसिला महाप्रभु नित्यानन्द । छत्र धरिलेन शिरे श्रीराघवानन्द ॥२७३॥
जयध्वनि करिते लागिला भक्तगण । चतुर्दिगे हैला महा आनन्द-क्रन्दन ॥२७४॥

---

तत्पर थे–पृथ्वी पर वैसा कीर्त्तनियाँ नहीं था ॥ २५७ ॥ जो वृन्दावन लीलाओं के गवइये कहे जाते थे-वे श्रीनित्यानन्दस्वरूप के,अत्यन्त प्रिय थे ॥ २५८ ॥ माधव, गोविन्द,बासुदेव घोष नामक तीनों भाई गाने लगे और नित्यानन्द प्रभु नाचने लगे ॥ २५९ ॥ सो महाबली अवधूत प्रभु ऐसा नाँचे कि चरणों के विन्यास स पृथ्वी डोलने लगी ॥ २६० ॥ निरन्तर हरि २ कहकर हुङ्कार करते थे और पछाड़ों को देखकर तो लोगों का चमत्कार लगता था ॥ २६१ ॥ जिसके ऊपर नाचते २ कृपादृष्टि डालते वे ही प्रेम से ढुलक कर, पृथ्वी पर गिर पड़ता था ॥ २६२ ॥ प्रेमरस से परिपूर्ण श्रीनित्यानन्दजी ने संसार उद्धार करने का शुभारम्भ कर दिया ॥ २६३ ॥ प्रेमभक्ति के जितने विकार हैं वे सबको प्रकाश करते हुए अपार नृत्य किया ॥ २६४ ॥ कुछ देर में सिंहासन के ऊपर जाकर विराजमान हुए तब अभिषेक करने के लिये भक्तों को आज्ञा हुई ॥ २६५ ॥ सो तत्क्षण राघव पण्डित आदि जितने पार्षद थे, वे सब अभिषेक करने लगे ॥ २६६ ॥ हजारों २ घड़ा गङ्गाजल लाकर अनेक सुगन्धि द्रव्यों से सुवासित किये तथा सब लोग प्रसन्न होकर श्रीमस्तक के ऊपर देने लगे चारों ओर सब लोग "हरि-हरि" उच्चारण कर रहे थे ॥ २६७-२६८ ॥ सब ही अभिषेक के मन्त्र गीत पाठ कर रहे थे तथा सब ही प्रेमानन्द से आनन्दित हो रहे थे॥२६९॥ अभिषेक कराके नये वस्त्र धारण कराये और श्रीअङ्ग में सुगन्धित चन्दन का लेपन किया ॥ २७० ॥ तुलसी सहित दिव्य वन के फूलों की मालाएं अनेक प्रकार से विशाल वक्षस्थल पर भर दी ॥ २७१ ॥ उसके पीछे दिव्य सिंहासन को सुवर्ण से भूषित करके सामने लाकर उपस्थित किया ॥ २७२ ॥ श्रीनित्यानन्द महाप्रभु ने सिंहासन पर विराजमान हुए–श्री

'आहि-आहि' सभेइ बोलेन बाहु तुलि । कारो बाह्य नाहि, सभे महाकुतूहली ॥२७५॥
दयालु-सधानन्दे प्रभु नित्यानन्दराय । प्रेमदृष्टि-वृष्टि करि सर्वदिगे चाय ॥२७६॥
आज्ञा करिलेन शुन राघवपण्डित । कदम्बेर माला गाँथि आनह त्वरित ॥२७७॥
बड़ प्रीति आमार कदम्ब पुष्प प्रति । कदम्बेर बने नित्य आमार वसति ॥२७८॥
करजोड़ करिया राघवानन्द कहे । 'कदम्ब पुष्पेर योग ए समये नहे' ॥२७९॥
प्रभु बोले बाड़ी गिया चाह भाल-मने । कदाचित् फुटिया वा थाके कोनस्थाने ॥२८०॥
बाड़ीर भितरे गिया चाहेन राघव । विस्मित हइला देखि महा-अनुभव ॥२८१॥
जम्बीरेर वृक्षे सब कदम्बेर फूल । फुटिया आछये अति-परम अतुल ॥२८२॥
कि अपूर्व वर्ण सेवा कि अपूर्व गन्ध । से पुष्प देखिले क्षय याय सर्व बन्ध ॥२८३॥
देखिया कदम्ब पुष्प राघव पण्डित । बाह्य दूरे गेल, हैला महा-आनन्दित ॥२८४॥
आपना सम्वरि माला गाँथिया सत्वरे । आनिलेन नित्यानन्द प्रभुर गोचरे ॥२८५॥
कदम्बेर माला देखि नित्यानन्दराय । परम सन्तोषे माला दिलेन गलाय ॥२८६॥
कदम्ब मालार गन्धे सकल वैष्णव । विह्वल हइला देखि महा-अनुभव ॥२८७॥
आर महा-आश्चर्य हइल कथोक्षणे । अपूर्व दनार गन्ध पाय सर्व जने ॥२८८॥
दमनक पुष्पेर सुगन्धे मनोहरे । दशदिग व्याप्त हैल सकल मन्दिरे ॥२८९॥
हासि नित्यानन्द बोले आरे भाइ सब । बोल देखि कि गन्धेर पाओ अनुभव ॥२९०॥

राघवानन्द ने उनके मस्तक पर छत्र धारण किया ॥ २७३ ॥ भक्तगण जय जय ध्वनि करने लगे तथा चारों ओर प्रेमानन्द में रोदन करने लगे ॥ २७४ ॥ सब लोग भुजायें उठाकर त्राहि-त्राहि बोल रहे थे—किसी को बाह्य ज्ञान नहीं था, सभी प्रेममग्न थे ॥ २७५ ॥ श्रीप्रभु नित्यानन्दराय निज अनुभव के आनन्द में प्रेमदृष्टि की वृष्टि करते हुए सब ओर देख रहे थे ॥ २७६ ॥ तथा उनने आज्ञा की हे राघवपण्डित सुनो ! कदम्ब के फूलों की माला गूँथकर शीघ्र ले आओ ॥ २७७ ॥ कदम्ब के फूलों से मेरी बड़ी प्रीति है तथा कदम्ब के वन में ही मेरा नित्य निवास रहता है ॥ २७८ ॥ हाथ जोड़कर राघवानन्द ने कहा "प्रभो कदम्ब के फूलों का योग इस समय में नहीं है ॥ २७९ ॥श्रीनित्यानन्द प्रभु ने आज्ञा की कि घर में जाकर अच्छे प्रकार से देखो कदाचित् किसी स्थान पर खिल रहे ॥ २८० ॥ घर के भीतर जाकर राघवपंडित ढूँढने लगे और विशेष अनुभव किया व बड़े विस्मित हुए ॥ २८१ ॥ जम्भीरी नीबू के वृक्ष में कदम्ब के ही सब फूल अति विशेष रूप से खिल रहे थे ॥ २८२ ॥ कैसा अपूर्व वर्ण था व कैसी अपूर्व सुगन्धि थी उन पुष्पों के देखते ही सब बन्धन नष्ट होते थे ॥ २८३ ॥ राघवपंडित कदम्ब के फूलों को देखकर बड़े आनन्दित हुए तथा बाह्य ज्ञान जाता रहा ॥ २८४ ॥ अपने को सम्हाल कर शीघ्र माला ग्रन्थन की और श्रीनित्यानन्द प्रभु के सम्मुख ले आये ॥ २८५ ॥ श्रीनित्यानन्दराय ने कदम्ब के फूलों की माला देखते ही बड़े सन्तुष्ट हो गले में पहिन ली ॥ २८६ ॥ कदम्ब फूलों की माला की गन्ध से सभी वैष्णव विह्वल हो गये—उन्हें नित्यानन्द-शक्ति का महा अनुभव हुआ ॥ २८७ ॥ और कुछ ही क्षण में दूसरा महा आश्चर्य हुआ कि सब लोगों को अपूर्व दौना मरुआ (दमनक) पुष्प की सुगन्धि आ रही थी ॥ २८८। दमनक पुष्पों की सुगन्धि मन को हरण करने वाले

करजोड़ करि सभे लागिला कहिते । 'अपूर्व दनार गन्ध पाइ चारिभिते' ॥२९१॥
सभार वचन शुनि नित्यानन्दराय । कहिते लागिला गोप्य परम कृपाय ॥२९२॥
प्रभु बोले शुन सभे परम रहस्य । तोमरा सकल इहा जानिवा अवश्य ॥२९३॥
चैतन्य गोसाञि आजि शुनिते कीर्तन । नीलाचल हैते करिलेन आगमन ॥२९४॥
सर्वाङ्गे परिया दिव्य दमनक-माला । एक वृत्ते अवलम्ब करिया रहिला ॥२९५॥
सेइ श्रीअङ्गेर दिव्य-दमनक-गन्धे । चतुर्दिगे पूर्ण हइ आछये आनन्दे ॥२९६॥
तोमा सभाकार नृत्य कीर्तन देखिते । आपने आइसे प्रभु नीलाचल हैते ॥२९७॥
एतेके तोमरा सर्व कार्य परि हरि । निरवधि 'कृष्ण' गाओ आपना पासरि ॥२९८॥
निरवधि श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्र-यशे । सभार शरीर पूर्ण हउ प्रेमरसे ॥२९९॥
एतबलि 'हरि' बलि करये हुङ्कार । सर्वदिगे कृष्ण प्रेम करिला विस्तार ॥३००॥
नित्यानन्दस्वरूपेर प्रेम दृष्टिपाते । सभार हइल आत्म विस्मृति देहेते ॥३०१॥
शुन शुन आरे भाइ नित्यानन्द शक्ति । ये रूपे दिलेन सर्व जगतेरे भक्ति ॥३०२॥
ये भक्ति गोपिकागणेर कहे भागवते । नित्यानन्द हैते ताहा पाइल जगते ॥३०३॥
नित्यानन्द वसिया आछेन सिंहासने । सम्मुखे करये नृत्य पारिषद गणे ॥३०४॥
केहो गिया वृत्तेर उपर-डाले चड़े । पाते-पाते वेड़ाय, तथापि नाहि पड़े ॥३०५॥
केहो-केहो प्रेम-सुखे हुङ्कार करिया । वृत्तेर उपरे थाकि पड़े लाफ दिया ॥३०६॥

---

थी-सुगन्धि से मन्दिर की दशों दिशाएं व्याप्त हो रही थीं ॥ २८९ ॥ श्रीनित्यानन्दजी ने हँसकर कहा कि "हे भाइयो बताओ किस गन्ध का अनुभव हो रहा है ? ॥ २९० ॥ सब लोग हाथ जोड़कर कहने लगे कि चारों ओर से अपूर्व दमनक पुष्प की सुगन्धि प्राप्त हो रही है ॥ २९१ ॥ श्रीनित्यानन्दराय सबके वचन सुनकर बड़ी कृपा करके गोपनीय प्रसंग कहने लगे ॥ २९२ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु ने कहा "सब-लोग इस गुप्त रहस्य को सुनो, तुम सबको यह अवश्य जानना चाहिये॥२९३॥आज श्रीचैतन्य प्रभु ने कीर्तन सुनने के लिये नीलाचल से आगमन किया है ॥ २९४ ॥ सब अङ्ग में दिव्य दमनक पुष्पों की माला पहिनकर एक वृक्ष को अवलम्बन करके विराजमान रहे ॥ २९५ ॥ उन्हीं के श्रीअङ्ग के दोने के फूलों की दिव्य सुगन्धि चारों ओर आनन्द से पूर्ण हो रही है ॥ २९६ ॥ तुम सब का नृत्य कीर्तन देखने के लिये ही श्रीप्रभु गौरचन्द्र स्वयं नीलाचल से आये थे ॥ २९७ ॥ इसलिये तुम लोग सब काम छोड़कर व अपने आपको भुलाकर निरन्तर कृष्ण नाम व गुणगान करो ॥ २९८ ॥ श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्र यश में प्रेमरस से सबके शरीर निरन्तर पूर्ण रहें ॥ २९९ ॥ इतना कहकर हरि-हरि बोलते हुए हुङ्कार करने लगे तथा सब दिशाओं में कृष्णप्रेम का विस्तार कर दिया ॥ ३०० ॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप के प्रेम भरी दृष्टिपात से सबको अपनी २ देह की स्मृति ( याद ) नहीं रही ॥ ३०१ ॥ हे भाइयो सुनो ! श्रीनित्यानन्दजी की शक्ति को मन लगाकर सुनो, जिस तरह से उनने संसार को भक्ति प्रदान की थी ॥ ३०२ ॥ श्रीमद्भागवत में जिसको श्रीगोपीगण की भक्ति कहा है वही संसार में श्रीनित्यानन्दजी के द्वारा मिली ॥३०३॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु सिंहासन पर विराजमान थे और सामने पार्षदगण नृत्य कर रहे थे ।३०४। कोई वृक्षों की डालियों पर चढ़कर पत्ते-पत्ते पर घूमते परन्तु गिरते नहीं

केहो वा हुङ्कार करि वृक्षमूल धरि । उपाड़िया फेले वृक्ष वलि 'हरि हरि' ॥३०७॥
केह वा गुवाक वने जाय रड़ दिया । गाछ-पांच-सात गुया एकत्र करिया ॥३०८॥
हेन से देहेते जन्मियाछे प्रेमबल । तृण प्राय उपाड़िया फेलाय सकल ॥३०९॥
अश्रु, कम्प, स्तम्भ, घर्म्म, पुलक, हुङ्कार । स्वरभङ्ग, वैवर्ण्य, गर्जन, सिंहसार ॥३१०॥
श्रीआनन्द मूर्च्छा-आदि यत प्रेमभाव । भागवते कहे यत कृष्ण-अनुराग ॥३११॥
सभार शरीरे पूर्ण हइल सकल । हेन नित्यानन्दस्वरूपेर प्रेम-बल ॥३१२॥
ये दिगे देखेन नित्यानन्द महाशय । सेइ-दिगे महा प्रेमभक्ति वृष्टि हय ॥३१३॥
याहारे चा'हेन, से-इ प्रेमे मूर्च्छा पाय । वस्त्र ना सम्वरे, भूमि पड़ि गड़ि याय ॥३१४॥
नित्यानन्द स्वरूपेरे धरिबारे याय । हासे' नित्यानन्द प्रभु बसिया खट्टाय ॥३१५॥
यत पारिषद नित्यानन्देर प्रधान । सभारे हइल सर्व-शक्ति-अधिष्ठान ॥३१६॥
सवज्ञता वाकयसिद्ध हइल सभार । सभे हइलेन येन कन्दर्प-आकार ॥३१७॥
सभे जारे परश करेन हस्त दिया । से-इ हय विह्वल सकल पासरिया ॥३१८॥
एइमत पानी हाटी ग्रामे तिन-मास । करे नित्यानन्द प्रभु भक्तिर विलास ॥३१९॥
तिन-मास कारो बाह्य नाहिक शरीरे । देह-धर्म तिलार्द्धेको काहारो ना स्फुरे ॥३२०॥
तिन-मास केहो नाहि करिल आहार । सबे प्रेम सुखे नृत्य बइ नाहि आर ॥३२१॥
पानी हाटी ग्रामे यत हैल प्रेमसुख । चारिवेदे वर्णिवेन से सब कौतुक ॥३२२॥

थे, यह अद्भुत प्रेमबल था ॥३०५॥ कोई-कोई प्रेमसुख से हुङ्कार करके वृक्ष के ऊपर से कूद पड़ते हैं ॥३०६॥ कोई हुङ्कार करके वृक्ष की जड़ पकड़कर उखाड़ लेते और "हरि-हरि" कहते हुए फेंक देते थे ॥ ३०७ ॥ कोई कोई सुपारी के वन में दौड़कर जाते और पाँच-सात सुपारी वृक्षों को इकट्ठा करके सबको एक साथ तिनके की तरह उखाड़ कर फेंक रहे थे उनके शरीर में ऐसा प्रेमबल आ गया था ॥३०८-९॥ आँसू, कम्प, जड़ता, घाम, पुलक, हुंकार, स्वरभंग, वैवर्ण्य, सिंह समान गर्जन व आनन्द में मूर्च्छा होना आदि प्रेम के जितने भाव भागवत में कहे हैं वे सब कृष्ण अनुराग में एक ही साथ सबके शरीर में पूर्णरूप से उदय हुए थे, श्रीनित्यानन्द स्वरूप के प्रेम में इस प्रकार का बल था ॥ ३१० से ३१२ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु जिस ओर देखते उसी ओर विशेष प्रेम-भक्ति की वर्षा हो जाती थी ॥ ३१३ ॥ जिनकी ओर देखते वही प्रेम में मूर्च्छित हो जाता वस्त्रों की सम्हाल नहीं रहती और पृथ्वी पर लोट-पोट हो जाता था ॥ ३१४ ॥ (जब उठकर) नित्यानन्दस्वरूप को पकड़ने के लिये जाते तो नित्यानन्द प्रभु सिंहासन पर बैठे हुए हँसते थे ॥३१५॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु के जितने प्रधान पार्षद थे उन सब में सब शक्तियों का अधिष्ठान हो गया ॥ ३१६ ॥ सबको सर्वज्ञता व वाक्य सिद्ध शक्ति हो गई तथा जैसे कामदेव के आकार के हो गये ॥ ३१७ ॥ वे सब लोग जिसको हाथ से स्पर्श कर देते वही सब कुछ भूलकर विह्वल हो जाता था ॥ ३१८ ॥ इस प्रकार नित्यानन्द प्रभु ने पानीहाटी ग्राम में तीन महीना रहकर भक्ति का विलास किया ॥ ३१९ ॥ तीन मास तक किसी के शरीर में बाह्य ज्ञान नहीं रहा और तिलमात्र भी देह धर्म किसी को स्फुरण नहीं हुआ ॥ ३२० ॥ किसी ने तीन महीने तक आहार नहीं किया केवल प्रेम सुख से नृत्य के अतिरिक्त अन्य कार्य नहीं था ३२१ पानी हाटी

एको दण्डे नित्यानन्द करिलेन यत । ताहा वर्णिवार शक्ति आछे कार कत ॥३२३॥
क्षणे क्षणे आपने करेन नृत्य रङ्ग । चतुर्दिगे लइ सब पारिषद सङ्ग ॥३२४॥
कखनो वा आपने वसिया वीरासने । नाचायेन सकल सेवक जने जने ॥३२५॥
एको सेवकेर नृत्ये हेन रंग हय । चतुर्दिगे देखि येन प्रेमवन्या मय ॥३२६॥
महाझड़े पड़े येन कदलक-वन । एइमत प्रेमसुखे पड़े सर्वजन ॥३२७॥
आपने ये हेन महाप्रभु नित्यानन्द । सेइमत करिलेन सर्वभक्त वृन्द ॥३२८॥
निरवधि श्रीकृष्ण चैतन्य-सङ्कीर्तन । करायेन करेन लइया सर्व-गण ॥३२९॥
हेनसे लागिला प्रेम प्रकाश करिते । से-इ हय विह्वल ये आइसे देखिते ॥३३०॥
ये सेवक यखन ये इच्छा करे मने । से-इ आसि उपसन्न हय सेइ क्षणे ॥३३१॥
एइमत परानन्दे प्रेम सुखरसे । क्षण हेन केहो ना जानिल तिन-मासे ॥३३२॥
तवे महाप्रभु नित्यानन्द कथोदिने । अलङ्कार परिते हइल इच्छा मने ॥३३३॥
इच्छामात्र सर्व-अलंकार सेइक्षणे । उपसन्न आसिया हइल विद्यमाने ॥३३४॥
सुवर्ण रजत मरकत मनोहर । नानाविध बहुमूल्य कतेक प्रस्तर ॥३३५॥
मणि सुप्रवाल पट्टवास मुक्ताहार । सुकृति सकले दिया करे नमस्कार ॥३३६॥
कथो ना निर्मित कथो करिया निर्माण । परिलेन अलंकार-येन इच्छा तान ॥३३७॥
दुइ हस्ते सुवर्णेर अंगद वलय । पुष्ट करि परिलेन आत्म-इच्छामय ॥३३८॥
सुवर्ण मुद्रिका रत्ने करिया खिचन । दश-श्रीअंगुले शोभाकरे विभूषण ॥३३९॥

ग्राम में जितना प्रेम सुखमय कौतुक हुआ उसे चारों वेद वर्णन करेंगे॥३२२॥एक २ दण्ड में श्रीनित्यानन्दजी ने जितने प्रेममय कौतुक किये थे उन्हें वर्णन करने की किसमें सामर्थ्य है ॥ ३२३ ॥ क्षण २ में सब पार्षदों को साथ लेकर चारों ओर आप नृत्यरंग करते फिरते थे ॥ ३२४ ॥ कभी आप वीरासन से बैठ जाते और प्रत्येक सेवक को नृत्य कराते थे ॥ ३२५ ॥ एक ही सेवक के नाच में ऐसा रङ्ग आता जैसे चारों ओर ने प्रेम की बाढ़ हो ॥ ३२६ ॥ जैसे भारी झड़ लगने से केले का वन गिर पड़ता है इसी तरह प्रेमसुख से सब लोग गिर पड़े ॥ ३२७ ॥ श्रीनित्यानन्द महाप्रभु जैसे थे उसी प्रकार के सब भक्तवृन्द कर दिये ॥ ३२८ ॥ सब भक्तों को लेकर निरन्तर श्रीकृष्णचैतन्य नाम का संकीर्तन करते व कराते थे ॥ ३२९ ॥ प्रेम का ऐसा प्रकाश करने लगे कि जो दर्शन के लिये आता वही विह्वल हो जाता था ॥ ३३० ॥ उनके सेवक जिस समय मन में जो भी इच्छा करते उसी क्षण वही वस्तु आकर उपस्थित हो जाती थी ॥ ३३१ ॥ इस प्रकार परम आनन्दमय प्रेम-सुख में सब ने तीन महीने का समय एक क्षण के समान ही माना ॥ ३३२ ॥ तब कुछ दिन पीछे श्रीनित्यानन्द महाप्रभु के मन में अलंकार पहरने की इच्छा हुई ॥ ३३३ ॥ इच्छा होते ही उसी क्षण सब अलंकार सामने उपस्थित हो गये ॥ ३३४ ॥ अनेकन प्रकार के बहुमूल्य वाले अनेक ही मनोहर अलंकार सोना, चाँदी, मरकतमणि, सुन्दर मूँगा, मोतियों के हार रेशमी वस्त्र आदि मनोहर अलंकारों को पुण्यशील जन दे देकर नमस्कार कर रहे थे ॥ ३३५-३३६ ॥ अनेक बने हुए व अनेक अपनी इच्छानुसार बनवाकर अलंकार धारण किये ॥ ३३७ ॥ मोटे-मोटे सोने के अंगद व वलय दोनों हाथों में अपनी इच्छानुसार पहिरे

जाह्नवीर दुइ कूले यत आछे ग्राम । सर्वत्र फिरेन नित्यानन्द ज्योतिर्धाम ।।३५६।।
दरशन-मात्र सर्वजीव मुग्ध हय । नाम तनु दुइ-नित्यानन्द रसमय ।।३५७।।
पाषण्डीओ देखिलेइ मात्र करे स्तुति । सर्वस्व दिवारे सेइक्षणे लय मति ।।३५८।।
नित्यानन्दस्वरूपेर शरीर मधुर । सभारेइ कृपादृष्टि करेन प्रचुर ।।३५९।।
कि भोजने कि शयने किवा पर्यटने । क्षणेको ना जाय व्यर्थ सङ्कीर्तन विने ।।३६०।।
येखाने करेन नृत्य कृष्ण सङ्कीर्तन । तथाय विह्वल हय शतशत जन ।।३६१।।
गृहस्थेर शिशु सब किछुइ ना जाने । ताहाराओ महा-महा-वृक्ष धरि टाने ।।३६२।।
हुङ्कार करिया वृक्ष फेले उपाड़िया । 'मुञिरे गोपाल' बलि बेड़ाय धाइया ।।३६३।।
हेन से सामर्थ्य एको शिशुर शरीरे । शत जने मिलियाओ धरिते ना पारे।।३६४।।
श्रीकृष्णचैतन्य जय नित्यानन्द बलि । सिंहनाद करे शिशु हइ कुतूहली ।।३६५।।
एइ मत नित्यानन्द-बालक जीवन । विह्वल करिते लागिलेन शिशुगण ।।३६६।।
मासेकेओ एको शिशु ना करे आहार । देखिते लोकेर चित्ते लागे चमत्कार ।।३६७।।
हइलेन विह्वल सकल भक्तवृन्द । सभार रक्षक हइलेन नित्यानन्द ।।३६८।।
पुत्र प्राय करि प्रभु सभारे धरिया । करायेन भोजन आपने हस्त दिया ।।३६९।।
कारेओ वा बान्धिया राखेन निज-पाशे । मारेन बान्धेन तभू अट्टअट्ट हासे ।।३७०।।
एक दिन गदाधरदासेर मन्दिरे । आइलेन, तान प्रीति करिवार तरे ।।३७१।।

---

तदनन्तर श्रीनित्यानन्द व सब पार्षदों ने मिलकर भक्तों के घर-घर में पर्यटन करने का खेल किया ।। ३५५ ।। ज्योतिर्मय श्रीनित्यानन्द प्रभु ने गङ्गा के दोनों किनारों पर जितने ग्राम थे उन सब में भ्रमण किया ।।३५६।। दर्शनमात्र से ही सब जीव मुग्ध हो जाते थे कारण कि आपके नाम व तनु दोनों ही नित्यानन्द रसमय हैं ।। ३५७ ।। पाखंडी मात्र केवल दर्शन करते ही स्तुति करने तथा उसी क्षण सर्वस्व देने की बुद्धि हो जाती थी ।। ३५८ ।। श्रीनित्यानन्दस्वरूप का शरीर मधुर था वे सब ही पर प्रचुर कृपादृष्टि करते थे ।।३५९।। क्या भोजन, क्या शयन, क्या पर्यटन में संकीर्तन के बिना एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाता था ।।३६०।। जिस स्थान में कृष्ण नाम सङ्कीर्तन व नृत्य करते उस स्थान में शत २ जन विह्वल हो जाते थे ।। ३६१ ।। गृहस्थियो के जो शिशु कुछ नहीं जानते वे भी बड़े वृक्षों को पकड़कर खींचते थे ।। ३६२ ।। तथा वृक्षों को उखाड़कर फेंकते और कहते कि मैं ही गोपाल हूँ ऐसे कहते हुए दौड़े २ फिरते थे ।। ३६३ ।। एक २ शिशु के शरीर में ऐसी सामर्थ्य हो रही थी, यदि सौ जने मिलकर पकड़े तो पकड़ नहीं पाते ।।३६४।। शिशुगुण जय श्रीकृष्णचैतन्य जय श्रीनित्यानन्द ऐसा कुतूहल पूर्वक जय बोलकर सिंहनाद करते थे ।।३६५।। इस प्रकार बालकों के जीवन-स्वरूप नित्यानन्द प्रभु-शिशुगणों को विह्वल करने लगे ।। ३६६ ।। एक भी शिशु ने एक महीना भर आहार नहीं किया था यह देखकर मनुष्यों को चमत्कार लगता था ।। ३६७ ।। समस्त भक्तवृन्द विह्वल होगये, श्री-नित्यानन्द प्रभु ही सबके रक्षक थे ।। ३६८ ।। नित्यानन्द प्रभु ने सबको पकड़कर पुत्र की भाँति अपने हाथ से भोजन कराया ।। ३६९ ।। किसी २ को बाँधकर अपने पास में रखते, किसी को मारते अथवा बाँधते तो भी वे अट्ट २ हँसते थे ३७० एक दिन श्रीनित्यानन्द प्रभु, गदाधरदास के मन्दिर में उनको प्रसन्न करने

गोपीभावे गदाधरदास महाशय । हइया आछेन अति परानन्दमय ॥३७२॥
मस्तके करिया गङ्गाजलेर कलस । निरबधि डाकेन 'के निबेक गो-रस' ॥३७३॥
श्रीबालगोपाल मूर्ति तान देवालय । आछेन परम लावण्येर समुच्चय ॥३७४॥
देखि बालगोपालेर मूर्ति मनोहर । प्रीते नित्यानन्द लैला वक्षेर उपर ॥३७५॥
अनन्त हृदये देखि श्रीबालगोपाल । सर्वगणे हरिध्वनि करेन विशाल ॥३७६॥
हुङ्कार करिया नित्यानन्द-मल्ल-राय । करिते लागिला नृत्य गोपाल-लीलाय ॥३७७॥
दानखण्ड गायेन माधवानन्द घोष । शुनि अवधूतसिंह परम सन्तोष ॥३७८॥
भाग्यवन्त माधवेर हेन दिव्य-ध्वनि । शुनिते आविष्ट हय अवधूत मणि ॥३७९॥
सुकृति श्रीगदाधरदास करि सङ्गे । दानखण्ड नृत्य प्रभु करे निज रङ्गे ॥३८०॥
गोपीभावे बाह्य नाहि गदाधरदासे । निरबधि आपनारे 'गोपी' हेन बासे ॥३८१॥
दानखण्ड लीला शुनि नित्यानन्दराय । ये नृत्य करेन, ताहा वर्णन ना जाय ॥३८२॥
प्रेम भक्ति विकारेर यत आछे नाम । सब प्रकाशिया नृत्ये करे अनुपाम ॥३८३॥
विद्युतेर प्राय नृत्य गतिर भङ्गिमा । किवा से अद्भुत भुज चालन-महिमा ॥३८४॥
किवा से नयन भङ्गी, कि सुन्दर हास । किवा से अद्भुत शिर-कम्पन-विलास ॥३८५॥
एकत्र करिया दुइ चरण सुन्दर । किवा जोड़-जोड़ लाफ देन मनोहर ॥३८६॥
ये-दिगे चाहेन नित्यानन्द प्रेमरसे । सेइ-दिगे स्त्री-पुरुषे कृष्ण सुखे भासे ॥३८७॥
हेन से करेन कृपादृष्टि अतिशय । परानन्दे देह-स्मृति कारो ना थाकय ॥३८८॥

के निमित्त आये ॥ ३७१ ॥ महाशय गदाधरदासजी गोपीभाव में अत्यन्त परम आनन्दमय हो रहे थे॥३७२॥ मस्तक पर गंगाजल का कलश लेकर निरवधि चिल्लाते रहते "कोई गोरस लो, गोरस लो" ॥ ३७३ ॥ उनके देवालय में परम लावण्य राशि श्रीबालगोपाल की मूर्ति थी ॥ ३७४ ॥ बालगोपाल की मनोहर मूर्ति को देखकर श्रीनित्यानन्द ने प्रसन्नतापूर्वक अपने वक्षस्थल पर ले ली ॥ ३७५ ॥ श्रीबालगोपाल को अनन्तदेव के हृदय पर देखकर सब भक्तों ने विशाल रूप से हरिध्वनि की ॥ ३७६ ॥ मल्लों के राजा श्रीनित्यानन्द प्रभु हुङ्कार करके गोपाल लीला में नृत्य करने लगे ॥३७७॥ माधवानन्द घोष ने दान लीला का गान किया जिसे सुनकर अवधूत सिंह ( नित्यानन्द ) बड़े सन्तुष्ट हुए ॥ ३७८ ॥ भाग्यवान माधव घोष को ऐसी दिव्यध्वनि थी जिसे सुनते ही अवधूत शिरोमणि आविष्ट हो जाते थे ॥३७९॥ पुण्यवान श्रीगदाधरदास को संग लेकर श्रीनित्यानन्द प्रभु अपने आनन्द में दानखण्डोचित नृत्य करने लगे ॥ ३८० ॥ गदाधरदास को गोपीभाव में बाह्य ज्ञान नहीं था वे निरन्तर ही गोपीभाव में रहते थे ॥ ३८१ ॥ श्रीनित्यानन्दराय ने दानखण्ड लीला सुनकर जो नृत्य किया उसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ३८२ ॥ प्रेम-भक्ति के जितने विकार हैं उन सबको प्रकाश करके अनुपम नृत्य किया ॥ ३८३ ॥ नृत्य गीत की भङ्गिमा बिजली के तुल्य थी उसमें भुजा सञ्चाल की महिमा भी बड़ी अद्भुत थी ॥ ३८४ ॥ कैसी अद्भुत नेत्र भङ्गी थी, कैसा सुन्दर हास था तथा कैसा अद्भुत शिर का चालन-विलास था ॥ ३८५ ॥ दोनों सुन्दर चरणों को इकट्ठा करके कैसे जोर-जोर से मनोहर उछाल ले रहे थे ३८६ प्रेमरस भरी दृष्टि से श्रीनित्यानन्द प्रभु जिस ओर देखते उसी ओर के

ये भक्ति वाञ्छेन योगीन्द्रादि-मुनिगणे । नित्यानन्दप्रसादे ता भुंजे ये-ते-जने ॥३८९॥
हस्ति सम जन ना खाइले तिन दिन । चलिते ना पारे, देह हय अति क्षीण ॥३९०॥
एक मास एको शिशु ना करे आहार । तथापिह सिंह प्राय सर्व व्यवहार ॥३९१॥
हेन शक्ति प्रकाशेन नित्यानन्दराय । तथापि ना बूझे केहो चैतन्य मायाय ॥३९२॥
एइ मत कथो दिन प्रेमानन्द रसे । गदाधरदासेर मन्दिरे प्रभु बसे ॥३९३॥
वाह्य नाहि गदाधरदासेर शरीरे । निरवधि 'हरिबोल' बोलाय सभारे ॥३९४॥
सेइ ग्रामे काजी आछे परम दुर्वार । कीर्तनेर प्रति द्वेष करये अपार ॥३९५॥
परानन्दे मत्त गदाधर महाशय । निशा भागे गेला सेइ काजीर आलय ॥३९६॥
ये काजीर भये लोक पलाय अन्तरे । निर्भये चलिला निशा भागे तार घरे ॥३९७॥
निरवधि हरि-ध्वनि करिते करिते । प्रविष्ट हइला गिया काजीर बाड़ीते ॥३९८॥
देखे मात्र रहिया काजीर सर्व-गणे । काहारो बलिते किछु ना आइसे वदने ॥३९९॥
गदाधर बोले 'अरे काजी बेटा कोथा । झाट 'कृष्ण' बोल, नहे छिरडों एइ माथा' ॥४००॥
अग्नि-हेन क्रोधे काजी हइल बाहिर । गदाधरदास देखि मात्र हैल स्थिर ॥४०१॥
काजी बोले गदाधर तुमि केने एथा । गदाधर बोलेन आछये किछु कथा ॥४०२॥
श्रीचैतन्य नित्यानन्द प्रभु अवतरि । जगतेर मुखे बोलाइला 'हरि-हरि' ॥४०३॥
सबे तुमि मात्र नाहि बोल हरिनाम । ताहा बोलाइते आइलाङ तोमा स्थान ॥४०४॥

---

स्त्री-पुरुष कृष्ण सुख में डूब जाते थे ॥ ३८७ ॥ उनने ऐसी अतिशय कृपादृष्टि की जिसके कारण किसी को भी परानन्द में अपनी देह की सुधि नहीं रही ॥३८८॥ जिस भक्ति की बांछा योगीन्द्र आदि मुनिगण करते हैं वही श्रीनित्यानन्द के अनुग्रह से सर्व साधारण जन भोग रहे थे ॥ ३८९ ॥ तीन दिन तक न खाने से हाथी के समान मनुष्य भी नहीं चल पाता है तथा देह अत्यन्त क्षीण हो जाती है ॥ ३९० ॥ एक मास तक किसी शिशु ने भी आहार नहीं किया तो भी उनके सभी व्यवहार सिंह के बल के समान होते रहे ॥३९१॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु ने ऐसी शक्ति का प्रकाश किया तथापि श्रीचैतन्य की माया से कोई भी समझ नहीं सका ॥ ३९२ ॥ इस प्रकार कुछ दिन श्रीनित्यानन्द प्रभु प्रेमानन्द रस में गदाधरदास के घर में रहे ॥३९३॥ गदाधरदास के शरीर में वाह्य ज्ञान नहीं था तथा सब ही से निरन्तर "हरि बोल" इस प्रकार कहलाते रहते थे ॥ ३९४ ॥ उसी ग्राम में एक बड़ा दुष्ट काजी रहता था वह कीर्तन के प्रति अपार द्वेष करता था ॥ ३९५ ॥ महाशय गदाधरदासजी तो प्रेमानन्द में मस्त रहते सो वे एक रात्रि को उसी काजी के घर गये ॥ ३९६ ॥ जिस काजी के भय से मनुष्य अदृश्य होकर भाग जाते थे उसी के घर में रात को चले गये ॥३९७॥ निरन्तर हरिध्वनि करते २ काजी के घर में गदाधरदासजी प्रविष्ट हो गये ॥ ३९८ ॥ काजी के सब लोग केवल देखते ही रह गये और किसी के मुख से कोई शब्द तक न निकला ॥३९९॥ गदाधरदास ने कहा "अरे काजी बेटा कहाँ है शीघ्र कृष्ण २ बोल ! नहीं तेरा मस्तक के छेदन कर दूँगा" ॥४००॥ अग्नि के तुल्य क्रोध से जलता हुआ काजी बाहिर आया, परन्तु गदाधरदास के देखते मात्र ही स्थिर हो गया ॥ ४०१ ॥ काजी ने कहा "हे गदाधर तुम यहाँ क्यों आये" तब गदाधर ने कहा कुछ बात है ४०२ व नित्यानन्द

परम-मङ्गल हरि-नाम बोल तुमि। तोमार सकल पाप उद्धारिब आमि ॥४०५॥
यद्यपिह काजी महा-हिंसक-चरित। तथापि ना बोले किछु, हइल स्तम्भित ॥४०६॥
हासि बोले काजी शुन दास-गदाधर। कालि बलिबाङ 'हरि' आजि जाह घर ॥४०७॥
हरि नाम मात्र शुनिलेन तार मुखे। गदाधरदास पूर्ण हैला प्रेम सुखे ॥४०८॥
गदाधरदास बोले आर कालि केने। एइ त बलिला 'हरि' आपन बदने ॥४०९॥
आर तोर अमङ्गल नाहि कोन क्षणे। यखने करिला हरिनामेर ग्रहणे ॥४१०॥
एत बलि परम-उन्मादि-गदाधर। हाथे तालि दिया नृत्य करे बहुतर ॥४११॥
कथोक्षणे आइलेन आपन मन्दिरे। नित्यानन्द-अधिष्ठान जाहार शरीरे ॥४१२॥
एइ मत गदाधरदासेर महिमा। चैतन्य-पार्षद-मध्ये जाहार गणना ॥४१३॥
ये काजीर बातास ना लय साधु जने। पाइलेइ मात्र जाति लय सेइक्षणे ॥४१४॥
हेन काजी दुर्वार देखिले जाति लय। हेन जने कृपादृष्टि कैला महाशय ॥४१५॥
हेन जन पासरिल सर्व हिंसा धर्म्म। इहारे से बलि कृष्ण आवेशेर कर्म्म ॥४१६॥
सत्य कृष्णभाव हय जाहार शरीरे। अग्नि-सर्प व्याघ्र ओ लंघिते नारे तारे ॥४१७॥
ब्रह्मादिरो अभीष्ट ये सब कृष्ण भाव। गोपीगणे व्यक्त ये सकल अनुराग ॥४१८॥
इङ्गिते से सब भाव नित्यानन्दराय। दिलेन सकल प्रियगणेरे कृपाय ॥४१९॥
भज भाइ हेन नित्यानन्देर चरण। जाहार प्रसादे हय चैतन्य-शरण ॥४२०॥

प्रभु ने अवतार लेकर जगत् के मुख से हरि २ बुलवा रहे हैं ॥ ४०३ ॥ केवल मात्र तुमने ही हरिनाम नहीं बोला है वही बुलवाने को तुम्हारे पास आया हूँ ॥ ४०४ ॥ तुम परम मंगलमय हरि नाम बोलो मैं तुमको सब पापों से उद्धार कर दूँगा॥४०५॥यद्यपि काजी बड़ा हिंसक चरित्र वाला था तथापि उसने कुछ नहीं कहा और स्तम्भित हो रहा ॥ ४०६ ॥ काजी ने हँसकर कहा "हे गदाधरदास सुनो आज तो तुम घर को जाओ मैं कल हरिनाम लूँगा ॥ ४०७ ॥ उसके मुख से हरिनाम मात्र सुनते ही गदाधरदासजी प्रेमानन्द सुख में पूर्ण हो गये ॥४०८॥ गदाधरदास ने कहा "कल की क्यों कहते हो ! अभी तो तुमने अपने ही मुख से 'हरि' बोला है" ॥ ४०९ ॥ जब तुमने हरिनाम ग्रहण कर लिया तो अब कभी तुम्हारा अमगल नहीं होगा ॥४१०॥ परम उन्मत्त गदाधर ने यों कहकर हाथ से ताली बजाते हुए बहुत नृत्य किया ॥ ४११ ॥ जिनके शरीर में नित्यानन्द का अधिष्ठान था ऐसे गदाधरदास कुछ समय में अपने मन्दिर में आ पहुँचे ॥ ४१२ ॥ श्रीचैतन्य-पार्षदों में जिनकी गणना थी ऐसे गदाधरदासजी की इस प्रकार की महिमा है ॥ ४१३ ॥ जिस काजी की हवा भी साधु जनों को नहीं लगती थी—उसकी हवा लगने मात्र से ही उसी क्षण जाति लय हो जाती थी ॥ ४१४ ॥ ऐसे दुष्ट काजी को देखते ही जाति भ्रष्ट होती थी ऐसे जन पर भी श्रीगदाधरदास ने कृपादृष्टि की ॥ ४१५ ॥ जब ऐसे दुष्ट जन भी हिंसा धर्म छोड़ दें इसी को कहते हैं "कृष्णावेश का कार्य" ॥ ४१६ ॥ जिसके शरीर में सच्चा कृष्णभाव हो उसे अग्नि, सर्प व व्याघ्र भी लंघन नहीं कर सकते ॥ ४१७ ॥ ब्रह्मादिकों के अभीष्ट जो सब कृष्णभाव हैं और गोपीगणों में जो सब अनुराग व्यक्त हैं, वे सब भाव व अनुराग नित्यानन्दराय ने अपनी नयन भङ्गी से सब प्रियदासों को कृपा करके प्रदान कर दिये ॥४१८ ४१९॥ हे

शुभ यात्रा करिलेन नवद्वीप प्रति   पारिषदगण सब चलिला सहति   ४२२ ।
तबे आइलेन प्रभु खड़दह ग्रामे   पुरन्दर पण्डितेर देवालय स्थाने ।।४२३।।
खड़दह ग्रामे प्रभु नित्यानन्द-राय । यत नृत करिलेन-कथन ना जाय ।।४२४।।
पुरन्दर पण्डितेर परम उन्माद । वृक्षेर उपरे चढ़ि करे सिंहनाद ।।४२५।।
बाह्य नाहि श्रीचैतन्य दासेर शरीरे । व्याघ्र ताड़ाइया जाय वनेर भितरे ।।४२६।।
कखनो चढ़ेन सेइ व्याघ्रेर उपरे । कृष्णेर प्रसादे व्याघ्र लंघिते ना पारे ।।४२७।।
महा अजगर सर्प लइ निज कोले । निर्भये चैतन्यदास थाके कुतूहले ।।४२८।।
व्याघ्रेर सहित खेला खेलेन निर्भय । हेन कृपा करे अवधूत महाशय ।।४२९।।
सेवक वत्सल प्रभु नित्यानन्द-राय । ब्रह्मार दुर्लभ रस ईङ्गिते भुञ्जाय ।।३३०।।
चैतन्यदासेर आत्म विस्मृति सर्वथा । निरन्तर कहेन आनन्द-मनः कथा ।।४३१।।
दुइ तिन दिन मज्जिलेर भितरे । थाकेन, कोथाओ दुःख ना हय शरीरे ।।४३२।।
जड़ प्राय अलक्षित-वेश-व्यवहार । परम उद्दाम सिंह विक्रम अपार ।।४३३।।
चैतन्यदासेर यत भक्तिर विकार । कत वा कहिते पारि-सकल अपार ।।४३४।।
योग्य श्रीचैतन्यदास मुरारि पण्डित । यार वातासेओ कृष्ण पाइये निश्चित ।।४३५।।
एबे केहो बोलाय 'चैतन्यदास' नाम । स्वप्नेहो ना बोले श्रीचैतन्य गुण ग्राम ।।४३६।।

---

भाई ! ऐसे श्रीनित्यानन्दजी के चरण-कमलों की सेवा करो, अहो जिनकी कृपा से श्रीचैतन्यदेव की शरण मिलती है ।।४२०।। उसके कुछ दिन पीछे श्रीनित्यानन्द प्रभु के मनमें श्रीशची माता के दर्शन करने की इच्छा हुई ।। ४२१ ।। नवद्वीप के लिये शुभ यात्रा की सब पार्षदगण भी साथ मे चले ।। ४२२ ।। (मार्ग मे) श्रीनित्यानन्द प्रभु खड़दह ग्राम में पुरन्दर पण्डित के देव स्थान पर आ पहुँचे ।। ४२३ ।। खड़दह ग्राम में श्रीप्रभु नित्यानन्दराय ने जितना नृत्य किया वह कहने में नहीं आता ।। ४२४ ।। पुरन्दर पण्डित को ऐसा प्रेमोन्माद हुआ कि वे वृक्ष पर चढ़कर सिंह के तुल्य शब्द करने जाते थे।।४२५।। श्रीचैतन्यदास के शरीर में बाह्य ज्ञान नहीं रहा वे व्याघ्रों को ताड़न करते हुए वन में चले जाते थे ।।४२६।। कभी उन व्याघ्रों के ऊपर चढ़ जाते, परन्तु कृष्ण कृपा से व्याघ्र उनका लंघन नहीं करते थे।।४२७।।बड़े भयंकर अजगर सर्प को अपनी गोद में लेकर श्रीचैतन्यदास कुतूहल से निर्भय बैठ जाते थे ।।४२८।। तथा व्याघ्रों के साथ निर्भय होकर खेल-खेलते थे-श्री अवधूत महाशय की ऐसी कृपा हुई ।। ४२९ ।। सेवक वत्सल श्रीनित्यानन्द प्रभु ब्रह्मादिकों के लिये भी दुर्लभ रस को अपनी इङ्गित ( नेत्र भंगी ) मात्र से ही भोग करा रहे थे ।।४३०।। श्रीचैतन्यदास को आत्म विस्मृति सर्वथा रहती थी वे निरन्तर अपने प्रेमानन्द भरे मन की कथा से ही कहते रहते थे ।। ४३१ ।। तथा जल के भीतर डुबकी लगाकर दो-तीन दिन तक रह जाते परन्तु शरीर में कभी दुःख नहीं होता था ।। ४३२ ।। उनका व्यवहार जड़ तुल्य व अदृश्य वेश में होता था तथा उनका पराक्रम उद्दण्ड सिंह के समान अपार था ।। ४३३ ।। श्रीचैतन्यदास के शरीर में जितने भक्तिविकार थे वे कितने कहे जाँय, सभी अपार-थे।।४३४।। श्रीमुरारि पण्डित ही श्रीचैतन्यचन्द्र के योग्य दास थे जिनके शरीर के पवन लगने से भी कृष्ण प्राप्ति

अद्वैतेर प्राणनाथ-श्रीकृष्णचैतन्य । याँर भक्ति प्रसादे अद्वैत सत्य धन्य ॥४३७॥
जय खड्ग अद्वैतेर ये चैतन्य भक्ति । याहार प्रसादे अद्वैतेर सर्व शक्ति ॥४३८॥
साधुलोक अद्वैतेर ए महिमा घोषे । केहो इहा अद्वैतेर निन्दा-हेन वासे ॥४३९॥
सेहो छार बोलाय 'चैतन्यदास' नाम । से पापी केमने जाय अद्वैतेर स्थान ॥४४०॥
ए पापीरे 'अद्वैतेर लोक' बोले ये । अद्वैतेर हृदय ना जाने कभू से ॥४४१॥
राक्षसेर नाम येन कहे 'पुण्यजन' । एइ मत ए सब चैतन्यदास गण ॥४४२॥
कथो दिन थाकि नित्यानन्द खड़दहे । सप्तग्राम आइलेन सर्व-गण-सहे ॥४४३॥
सेइ सप्तग्रामे आछे सप्त-ऋषि-स्थान । जगते विदित से 'त्रिवेणीघाट' नाम ॥४४४॥
सेइ गङ्गाघाटे पूर्वे सप्त-ऋषिगण । तप करि पाइलेन गोविन्द चरण ॥४४५॥
तिन देवी सेइ स्थाने एकत्र मिलन । जाह्नवी यमुना सरस्वतीर सङ्गम ॥४४६॥
प्रसिद्ध 'त्रिवेणीघाट' सकल-भुवने । सर्वपाप क्षय हय जार दरशने ॥४४७॥
नित्यानन्द महाप्रभु परम-आनन्दे । सेइ घाटे स्नान करिलेन सर्व-वृन्दे ॥४४८॥
उद्धारनदत्त भाग्यवन्तेर मन्दिरे । रहिलेन महाप्रभु त्रिवेणीर तीरे ॥४४९॥
काय-मनो-वाक्ये नित्यानन्देर चरण । भजिलेन अकैतवे दत्त-उद्धारन ॥४५०॥
नित्यानन्दस्वरूपेर सेवा-अधिकार । पाइलेन उद्धारण, किबा भाग्य आर ॥४५१॥
जन्म-जन्म नित्यानन्दस्वरूप ईश्वर । जन्म-जन्म उद्धारणो ताँहार किंकर ॥४५२॥

---

निश्चय थी ॥ ४३५ ॥ आजकल यदि कोई "चैतन्यदास" नामधारी हों तो भी "श्रीचैतन्य गुणग्राम" स्वप्न में भी नहीं कहते ॥ ४३६ ॥ श्रीअद्वैत के प्राणनाथ श्रीकृष्णचैतन्य थे जिनकी भक्ति के प्रसाद से श्री-अद्वैतचन्द्र सत्य ही धन्य हो गये ॥ ४३७ ॥ अद्वैत की श्रीचैतन्यचन्द्र में जो खड्गरूप भक्ति थी उसी की कृपा से ही श्रीअद्वैत की सब शक्ति थी ॥ ४३८ ॥ साधु लोग श्रीअद्वैत की इस महिमा का ऊँचे स्वर से घोषित करते थे, परन्तु कोई २ इसके कारण उनकी निन्दा भी करते थे ॥ ४३९ ॥ वे तुच्छ जन भी अपना नाम चैतन्यदास कहलाते थे वे पापी किस प्रकार अद्वैत के स्थान में जा सकेंगे ? ॥ ४४० ॥ ऐसे पापियों को "अद्वैत के जन" कहते हैं वे कभी अद्वैत के हृदय को नहीं जानते ॥४४१॥ राक्षसों को जैसे कोई पुण्यजन कहे इसी प्रकार यह सब चैतन्यदास कहे जाते हैं॥४४२॥नित्यानन्द प्रभु कुछ दिन खड़दह ग्राम में रहकर पीछे सब भक्तों सहित सप्त ग्राम में आए ॥ ४४३ ॥ उस सप्त ग्राम में सप्त ऋषियों का स्थान है और जगत् में त्रिवेणी घाट नाम से विदित है ॥ ४४४ ॥ पहिले सप्त ऋषियों ने उसी गङ्गा घाट पर तप करके गोविन्द चरणारविन्द प्राप्त किये थे ॥४४५॥ भागीरथी (गङ्गा) जमुना व सरस्वती देवियों का उसी स्थान पर एकत्र मिलन है ॥ ४४६ ॥ सब लोकों में त्रिवेणी घाट प्रसिद्ध है जिसके दर्शन से सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥४४७॥ श्रीनित्यानन्द महाप्रभु ने सब भक्तों के साथ परम आनन्द से उसी घाट पर स्नान किया ॥ ४४८ ॥ त्रिवेणी के तट पर भाग्यवान् उद्धारनदत्त के घर पर महाप्रभु ( श्रीनित्यानन्द प्रभु ) ने निवास किया ॥ ४४९ ॥ उद्धारनदत्त ने निष्कपट मन वाणी व कर्म द्वारा श्रीनित्यानन्द चरण-कमलों की सेवा की ॥४५०॥ उद्धारन-दत्त को श्रीनित्यानन्दस्वरूप की सेवा का अधिकार प्राप्त हो गया है और क्या भाग्य होगा ॥ ४५१ ॥

जतेक वणिक्-कुल उद्धारन हैते । पवित्र हइल, द्विधा नाहिक इहाते ॥४५३॥
वणिक् तारिते नित्यानन्द-अवतार । वणिकेरे दिला प्रेमभक्ति-अधिकार ॥४५४॥
सप्तग्रामे प्रति-वणिकेर घरे-घरे । आपने श्रीनित्यानन्द कीर्तन विहरे ॥४५५॥
वणिक् सकल नित्यानन्देर चरण । सर्व भावे भजिलेन लइया शरण ॥४५६॥
वणिक्-सभेर कृष्ण भजन देखिते । मने चमत्कार पाय सकल जगते ॥४५७॥
नित्यानन्द महाप्रभुर महिमा अपार । वणिक् अधम मूर्ख ये कैल उद्धार ॥४५८॥
सप्तग्रामे महाप्रभु नित्यानन्दराय । गण-सह सङ्कीर्तन करेन लीलाय ॥४५९॥
सप्तग्रामे यत हैल कीर्तन विहार । शतवत्सरे ओ ताहा नारि वर्णिवार ॥४६०॥
पूर्वे येन सुख हैल नदिया नगरे । सेइ मत सुख हैल सप्तग्राम पुरे ॥४६१॥
रात्रि दिने क्षुधा तृष्णा नाहि निद्रा भय । सर्वदिगे हैल हरि सङ्कीर्तन मय ॥४६२॥
प्रति-घरे घरे प्रति-नगरे-चत्वरे । नित्यानन्द महाप्रभु कीर्तन विहरे ॥४६३॥
नित्यानन्दस्वरूपेर आवेश देखिते । हेन नाहि ये विह्वल ना हय जगते ॥४६४॥
अन्येर किदाय, विष्णुद्रोही ये यवन । ताहाराओ पादपद्मे लइल शरण ॥४६५॥
यवनेर नयने देखिते प्रेम धार । ब्राह्मणेर आपनारे जन्मये धिक्कार ॥४६६॥
जय जय अवधूतचन्द्र महाशय । याँहार कृपाय हेन सब रङ्ग हय ॥४६७॥
एइ मत सप्तग्रामे, आम्बुया-मुलुके । विहरेन नित्यानन्दस्वरूप कौतुके ॥४६८॥

---

नित्यानन्दस्वरूप जन्म-जन्म के ईश्वर हैं और उद्धारनदत्त भी उनके जन्म-जन्म के दास थे ॥ ४५२ ॥ उद्धारनदत्त के सम्बन्ध से जहाँ तक वैश्य कुल था सब पवित्र हो गया इसमें द्विधा ( सन्देह ) नहीं है ॥ ४५३ ॥ नित्यानन्द का अवतार वणिकों के उद्धार करने को हुआ है और वणिकों के लिये प्रेम भक्ति का अधिकार दे दिया ॥४५४॥ स्वयं श्रीनित्यानन्द प्रभु ने सप्त ग्राम के प्रत्येक वैश्य के घर में कीर्तन विहार किया ॥४५५॥ सब वणिकों ने नित्यानन्द प्रभु के चरणों की शरण लेकर सब प्रकार से सेवा की ॥ ४५६ ॥ सब वैश्यों को कृष्ण भजन करते देखकर सब जगत् के मन में चमत्कार हुआ ॥ ४५७ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु की अपार महिमा है जिनने अधम व मूर्खों वणिकों का उद्धार कर दिया ॥ ४५८ ॥ श्रीनित्यानन्द महाप्रभु भक्तों के सहित सप्तग्राम में लीला से ही संकीर्तन करने लगे ॥ ४५९ ॥ सप्तग्राम में जितना कीर्तन विहार हुआ वह सौ वर्ष में भी वर्णन नहीं हो सकता ॥ ४६० ॥ जैसे पहिले नदिया नगर में सुख हुआ था उसी प्रकार सप्तग्राम पुर में हुआ ॥४६१॥ रात्रि अथवा दिन में भूख, प्यास, नींद, भय कुछ नहीं प्रतीत होता सब दिशाऐं हरि संकीर्तनमय हो गईं ॥ ४६२ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु प्रत्येक घर में, बाजार-बाजार व चौराहे-चौराहे पर प्रेम से कीर्तन विहार करते थे ॥ ४६३ ॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप के आवेश को देखकर जगत् में ऐसा कोई नहीं था जो विह्वल न हो गया हो ॥ ४६४ ॥ दूसरों की तो क्या बात है जो विष्णुद्रोही यवन थे वे भी उनके चरण-कमलों की शरण में आये ॥ ४६५ ॥ यवनों के नेत्रों की प्रेमधारा देखकर ब्राह्मण अपने को बार २ धिक्कारते थे ॥ ४६६ ॥ महाशय श्रीअवधूतचन्द्र की जय हो २ जिनकी कृपा से ऐसा आनन्द हो रहा था ॥ ४६७ ॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप ने सप्तग्राम व आम्बुयामुलुक ( अम्बिका नगर ) में कौतुकपूर्ण विहार किया

तबे कथो दिने आइलेन शान्तिपुरे । आचार्य गोसाजि प्रिय विग्रहेर घरे ॥४६९॥
देखिया अद्वैत नित्यानन्देर श्रीमुख । हेन नाहि जानेन जन्मिल कोन् सुख ॥४७०॥
'हरि' बलि लागिलेन करिते हुङ्कार । प्रदक्षिण दण्डवत् करेन अपार ॥४७१॥
नित्यानन्दस्वरूपो अद्वैत करि कोले । सिंचिलेन अङ्ग तान प्रेमानन्द जले ॥४७२॥
दोंहे दोंहा देखि बड़ हइला विवश । जन्मिल अत्यन्त अनिर्वचनीय रस ॥४७३॥
दोंहे दोंहा धरि गड़ि यायेन अङ्गने । दोंहे चाहे धरिबारे दोंहार चरणे ॥४७४॥
कोटि सिंह जिनि दोंहे करे सिंहनाद । सम्वरन नहे दुइ प्रभुर उन्माद ॥४७५॥
तबे कथोक्षणे दुइ-प्रभु हैला स्थिर । बसिलेन एक स्थाने हइ महाधीर ॥४७६॥
कर जोड़ करिया अद्वैत महामति । सन्तोषे करेन नित्यानन्द प्रति स्तुति ॥४७७॥
तुमि नित्यानन्द-मूर्ति नित्यानन्द-नाम । मूर्तिमन्त तुमि चैतन्येर गुण ग्राम ॥४७८॥
सर्व-जीव-परित्राण तुमि महा हेतु । महाप्रलयेते तुमि सत्य धर्म सेतु ॥४७९॥
तुमिसे बुझाओ चैतन्येर प्रेम भक्ति । तुमिसे चैतन्य वक्षे धर पूर्ण शक्ति ॥४८०॥
ब्रह्मा-शिव नारदादि 'भक्त' नाम यार । तुमिसे परम उपदेष्टा समाकार ॥४८१॥
विष्णु भक्ति सभेइ लयेन तोमा हैते । तथापिह अभिमान ना स्पर्शे तोमाते ॥४८२॥
पतित पावन तुमि दोष दृष्टि शून्य । तोमारे से जाने यार आछे बहु पुण्य ॥४८३॥
सर्व यज्ञमय एइ विग्रह तोमार । अविद्या बन्धन खण्डे स्मरणे याहार ॥४८४॥

---

॥ ४६९ ॥ उसके कुछ दिन पीछे शान्तिपुर में प्रिय विग्रह आचार्य प्रभु के घर पर आये ॥ ४६९ ॥ श्रीनित्यानन्द के श्रीमुख को देखकर श्रीअद्वैत प्रभु नहीं जानते थे कितना सुख उत्पन्न हुआ ? ॥ ४७० ॥ हरि र प कहकर हुङ्कार करने लगे और अनेक प्रदक्षिणा व दण्डवत् करने लगे ॥ ४७१ ॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप ने भी श्रीअद्वैत को गोद में लेकर उनके अङ्ग को प्रेमानन्द जल से सिंचन कर दिया ॥ ४७२ ॥ दोनों एक दूसरे को देखकर बड़े विवश हो गये तथा अत्यन्त अनिर्वचनीय रस उदय हो गया ॥ ४७३ ॥ दोनों एक दूसरे को पकड़कर आंगन में लोट-पोट होने लगे तथा परस्पर में चरण छूने का प्रयत्न करने लगे ॥ ४७४ ॥ दोनों कोटि सिंहों को पराजय करने वाला सिंहनाद करते थे तथा दोनों प्रभुओं का प्रेमोन्माद सम्वरण नहीं हो रहा था ॥ ४७५ ॥ तब कुछ देर पीछे दोनों प्रभु स्थिर हुए तथा महाशान्त होकर एक स्थान पर बिराजे गये ॥ ४७६ ॥ महामति श्रीअद्वैत प्रभु ने प्रसन्न होकर श्रीनित्यानन्द प्रभु की स्तुति करने लगे ॥ ४७७ ॥ आप नित्यानन्द नामधारी मूर्तिमान् नित्यानन्द हो आप ही श्रीचैतन्यदेव के गुण समूह हो ॥ ४७८ ॥ सब जीवों के परित्राणकारी प्रधान कारण आप ही हो और महाप्रलय में भी सत्य व धर्म के रक्षक स्वरूप आप ही हो ॥ ४७९ ॥ श्रीचैतन्य की प्रेम-भक्ति का प्रबोध आप ही कराते हो तथा आप ही श्रीचैतन्य की पूर्ण शक्ति को अपने वक्ष में धारण करते हो ॥ ४८० ॥ ब्रह्मा, शिव नारद आदि जितने भक्त नामधारी हैं आप ही उनके उपदेशक हो ॥ ४८१ ॥ सभी ने आप से ही विष्णु-भक्ति ली है तथापि आपको इसका अभिमान नहीं है ॥४८२॥ आप पतित पावन,दोष दृष्टि रहित हो आपको वे ही जान पाते हैं जिनके बहुत पुण्य होते हैं॥४८३॥ आपके यह श्रीविग्रह सर्व यज्ञमय है जिसके स्मरण मात्र से अविद्या का बन्धन नष्ट हो जाता है ४८४

यदि तुमि प्रकाश ना कर आपनारे । तबे कार शक्ति आछे जानिते तोमारे ॥४८५॥
अक्रोध परमानन्द तुमि महेश्वर । सहस्र बदन आदिदेव महीधर ॥४८६॥
रक्ष-कुल-हन्ता तुमि श्रीलक्ष्मणचन्द्र । तुमि गोपपुत्र हलधर मूर्तिमन्त ॥४८७॥
मूर्ख नीच अधम पतित उद्धारिते । तुमि अवतीर्ण हइयाछ पृथिवीते ॥४८८॥
ये भक्ति वाञ्छये योगेश्वर-सब मने । तोमा हैते ताहा पाइबेक ये ते-जने ॥४८९॥
कहिते अद्वैत नित्यानन्देर महिमा । आनन्द आवेशे पासारिलेन आपना ॥४९०॥
अद्वैत से ज्ञाता नित्यानन्देर प्रभाव । ए मर्म जानये कोन-कोन महाभाग ॥४९१॥
तबे ये कलह हेर अन्योऽन्ये बाजे । से केवल परानन्द, यदि जने बुझे ॥४९२॥
अद्वैतेर वाक्य बुझिवार शक्ति जार । जानिह-ईश्वर-सने भेद नाहि तार ॥४९३॥
हेन मते दुइ महाप्रभु निज रङ्गे । विहरेन कृष्ण कथा-मङ्गल-प्रसङ्गे ॥४९४॥
अनेक रहस्य करि अद्वैत-सहित । अशेष प्रकारे तान जन्माइया प्रीत ॥४९५॥
तबे अद्वैतेर स्थाने लइ अनुमति । नित्यानन्द आइलेन नवद्वीप-प्रति ॥४९६॥
सेइ मत सर्वाग्रे आइला आइ-स्थाने । आसि नमस्करिलेन आइर चरणे ॥४९७॥
नित्यानन्दस्वरूपेरे देखिया शची आइ । कि आनन्द पाइलेन-तार अन्त नाइ ॥४९८॥
आइ बोले बाप तुमि सत्य अन्तर्यामी । तोमारे देखिते इच्छा करिलाङ आमि ॥४९९॥
मोर चित्त जानि तुमि आइला सत्वर । के तोमा चिनिते पारे संसार भितर ॥५००॥

---

यदि आप ही अपने को प्रकाश न करो तो आपको जानने की किसमें सामर्थ्य है ? ॥ ४८५ ॥ तुम क्रोध रहित परमानन्दमय महेश्वर हो तथा आप ही पृथ्वी को धारण करने वाले सहस्र मुख शेष हो ॥ ४८६ ॥ आपही राक्षस कुल नाशक श्रीलक्ष्मणचन्द्र हो और आपही गोप पुत्र मूर्तिमन्त बलराम हो ॥ ४८७ ॥ मूर्ख नीच अधम पतितों के उद्धार करने के लिये आप पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हो ॥ ४८८ ॥ बड़े २ योगेश्वर जिस भक्ति की केवल मन में ही वांछा करते हैं आपके द्वारा वह भक्ति जिस किसी साधारण जन को भी प्राप्त होगी ॥ ४८९ ॥ श्रीअद्वैत आचार्य श्रीनित्यानन्द प्रभु की महिमा कहते २ प्रेमानन्द आवेश में अपने को ही भूल गये ॥ ४९० ॥ श्रीअद्वैत आचार्य ही श्रीनित्यानन्द के प्रभाव को जाने हैं इस मर्म को कोई २ महाभाग ही जानते हैं ॥ ४९१ ॥ पीछे से जो परस्पर में कलह होता है वह केवल परम आनन्दमय है -यदि कोई समझे तो ॥ ४९२ ॥ श्रीअद्वैत के वाक्यों को समझने की जिसकी शक्ति है उसका ईश्वर के साथ में भेद नहीं है-ऐसा जानो ॥ ४९३ ॥ इस प्रकार दोनों महाप्रभु अपने २ रङ्ग में कृष्ण कथा रूप मंगल प्रसंगों द्वारा विहार करते हैं ॥४९४॥ सब प्रकार से श्रीअद्वैत प्रभु को प्रीति उपजाकर उनके साथ अनेक रहस्यमय बातें की ॥ ४९५ ॥ तब श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीअद्वैतजी से आज्ञा लेकर नवद्वीप के प्रति आये ॥ ४९६ ॥ पहिले की भाँति सबसे प्रथम श्रीशची माता के पास आये और माता के चरणों में नमस्कार किये ॥४९७॥ श्रीशची माता श्रीनित्यानन्दस्वरूप को देखकर कैसे आनन्द को प्राप्त हुईं उसका अन्त नहीं है ॥ ४९८ ॥ श्रीशची माता ने कहा "हे वत्स ! तुम सत्य ही अन्तर्यामी हो कारण मैंने तुमको देखने की इच्छा की थी ॥ ४९९ ॥ मेरे मन की जानकर ही तुम शीघ्र ही आ गये हो तुम्हें संसार में कौन पहिचान सकेगा ? ॥५००॥

कथो दिन थाक बाप एइ नवद्वीपे । येन तोमा देखों मुञि दशे पक्षे मासे ॥५०१॥
मुञि-दुःखितेर इच्छा तोमारे देखिते । दैवे तुमि आसियाछ दुःखित तारिते ॥५०२॥
शुनिञा आइर वाक्य हासे नित्यानन्द । जे जाने आइर प्रभावेर आदि अन्त ॥५०३॥
नित्यानन्द बोले शुन आइ सर्व माता । तोमारे देखिते मुञि आसियाछों एथा ॥५०४॥
मोर इच्छा तोमा देखि थाकिब एथाय । रहिलाङ नवद्वीपे तोमार आज्ञाय ॥५०५॥
हेन मते नित्यानन्द आइ सम्भाषिया । नवद्वीपे भ्रमेन आनन्द युक्त हैया ॥५०६॥
नवद्वीपे नित्यानन्द प्रति घरे-घरे । सब पारिषद-सङ्गे कीर्तन विहरे ॥५०७॥
नवद्वीपे आसि महाप्रभु नित्यानन्द । हइलेन कीर्तने आनन्द मूर्तिमन्त ॥५०८॥
प्रति घरे-घरे सब पारिषद-सङ्गे । निरवधि विहरेन संकीर्तन रङ्गे ॥५०९॥
परम मोहन संकीर्तन मल्ल-वेश । देखिते सुकृति पाय आनन्द विशेष ॥५१०॥
श्रीमस्तके शोभे बहुविध पट्टवास । तदुपरि बहुविध माल्येर विलास ॥५११॥
कण्ठे बहुविध मणि-मुक्ता-स्वर्ण हार । श्रुति मूले शोभे मुक्ता काञ्चन अपार ॥५१२॥
सुवर्णेर अङ्गद वलय शोभे करे । ना जानि कतेक माला शोभे कलेवरे ॥५१३॥
गोरोचना-चन्दने लेपित सर्व अङ्ग । निरवधि बालगोपालेर प्राय रङ्ग ॥५१४॥
कि अपूर्व लौह दण्ड धरेन लीलाय । पूर्ण दश अङ्गुलि सुवर्ण मुद्रिकाय ॥५१५॥
शुक्ल नील पीत-बहुविध पट्टवास । परम विचित्र परिधानेर विलास ॥५१६॥

---

हे वत्स ! इस नवद्वीप में कुछ दिन तो रहो जिससे तुम्हें १०-१५ दिन व एक महीना तक तो देख सकूँ ॥५०१॥ मुझ दुखिया के देखने की तुम्हें इच्छा तो हुई—अब यहाँ के दुखियों का उद्धार करने के लिये तुम दैवयोग से ही आ गये हो ॥ ५०२ ॥ जो शची माता के प्रभाव को आदि से अन्त तक जानते थे ऐसे श्रीनित्यानन्द श्री माताजी के वाक्य सुनकर हँसने लगे ॥ ५०३ ॥ श्रीनित्यानन्दजी ने कहा 'सर्व जगत् माता सुनो, मैं तुम्हारे दर्शन के लिये यहाँ आया हूँ" ॥ ५०४ ॥ तुम्हें देखने के लिये मेरी इच्छा है यहाँ नवद्वीप में रहूँ परन्तु आपकी आज्ञा की अपेक्षा है—॥ ५०५ ॥ इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु श्री माताजी से वार्तालाप करके आनन्दपूर्वक नवद्वीप में भ्रमण करने लगे ॥५०६॥ सब पार्षदों के साथ श्रीनित्यानन्द प्रभु नवद्वीप के अन्तर्गत प्रत्येक घर में कीर्तन विहार करने लगे ॥ ५०७ ॥ श्रीनित्यानन्द महाप्रभु नवद्वीप में आकर कीर्तन में मूर्तिमन्त आनन्दस्वरूप ही हो गये ॥ ५०८ ॥ सब पार्षदों के साथ प्रत्येक घर में निरन्तर संकीर्तन रङ्ग में ही विहार करने लगे ॥ ५०९ ॥ सुकृति पुण्यात्मा जनों को उनका परममोहन संकीर्तन मल्ल वेश देखकर विशेष आनन्द होता था ॥ ५१० ॥ श्रीमस्तक के ऊपर बहुत प्रकार के रेशमी वस्त्र शोभा दे रहे थे उनके ऊपर अनेक भाँति की मालायें शोभा दे रही थीं ॥ ५११ ॥ कंठ में बहुत प्रकार के मणि-मोती व सोने के हार तथा कानों में मोती व सोने के अपार अलंकार शोभित थे ॥५१२॥ सोने के अङ्गद व वलय हाथों में शोभित थे और शरीर में न जाने कितनी मालाएँ शोभा दे रही थीं ॥५१३॥ सब अङ्ग में गोरोचनयुक्त चन्दन का लेप किये थे तो सदा बालगोपाल के तुल्य रूप रंग किये हुए थे ॥५१४॥ दशों अँगुली सोने की मुद्रिकाओं से पूर्ण थीं तथा लीला से ही लौहदंड धारण किये हुए थे ॥५१५॥ सफेद नीले व पीले वर्णों के परम विचित्र रेशमी वस्त्रों

वेत्र वंशी छरिका जठर पटे शोभे । जार दरशने ध्याने जग-मन लोभे' ॥५१७॥
रजत-नूपुर-मल्ल शोभे श्रीचरणे । परम मधुर ध्वनि, गजेन्द्र गमने ॥५१८॥
ये-दिगे चा'हेन महाप्रभु नित्यानन्द । सेइ-दिगे हय कृष्ण-रस मूर्तिमन्त ॥५१९॥
हेनमते नित्यानन्द परम-कौतुके । आछेन चैतन्य-जन्मभूमि-नवद्वीपे ॥५२०॥
नवद्वीप-येहेन मथुरा-राजधानी । कत-मत लोक आछे, अन्त नाहि जानि ॥५२१॥
हेन सब सुजन आछेन, याहा देखि । सर्वमहापाप हैते मुक्त हय पापी ॥५२२॥
तार मध्ये दुर्जनो ये कथो कथो वसे । सर्व-धर्म घूचे तार छायार परशे ॥५२३॥
ताहाराओ नित्यानन्द प्रभुर कृपाय । कृष्ण-पथे रत हैल अति अमायाय ॥५२४॥
आपने चैतन्य कथो करिला मोचन । नित्यानन्द-द्वारे उद्धारिला त्रिभुवन ॥५२५॥
चोर-दस्यु-पतित-अधम-नामधार । नाना मते नित्यानन्द करिला उद्धार ॥५२६॥
शुन शुन नित्यानन्द प्रभुर आख्यान । चोर दस्यु येमते करिला परित्राण ॥५२७॥
नवद्वीपे वैसे एक ब्राह्मणकुमार । ताहार समान चोर दस्यु नाहि आर ॥५२८॥
यत चोर दस्यु तार महासेनापति । नाम से ब्राह्मण, अति परम कुमति ॥५२९॥
पर-बधे दयामात्र नाहिक शरीरे । निरन्तर दस्युगण-संहति विहरे ॥५३०॥
नित्यानन्द स्वरूपेर अङ्गे अलङ्कार । सुवर्ण प्रवाल मणि मुक्ता दिव्य हार ॥५३१॥
प्रभुर श्रीअङ्गे देखि बहुविध धन । हरिते हइल दस्यु ब्राह्मणेर मन ॥५३२॥

के पहरकर शोभा पाते थे ॥ ५१६ ॥ वेत, वंशी व छड़ी कटि वस्त्र में शोभा दे रहे थे जिसके दर्शन व ध्यान से जगत्वासियों के मन लुभाता था ॥ ५१७ ॥ श्रीचरणों में चाँदी के नूपुर तथा मड़वाँ (कड़े) शोभा दे रहे थे जो गजेन्द्र की सी चाल चलने पर परम मधुर ध्वनि देते थे ॥५१८॥ श्रीनित्यानन्द महाप्रभु जिस ओर देखते उसी ओर को मूर्तिमन्त कृष्ण प्रेमरस उदय हो जाता था ॥५१९॥ इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु परम कौतुक पूर्वक चैतन्यचन्द्र की जन्मभूमि नवद्वीप में रहे ॥५२०॥ जिस प्रकार मथुरा राजधानी है उसी प्रकार नवद्वीप भी है, उसमें कितने प्रकार के मनुष्य रहते उनका अन्त नहीं जाना जा सकता ॥ ५२१ ॥ तथा सब ऐसे सज्जन रहे कि जिनके दर्शन से पापी बड़े २ पापों से मुक्त हो जाते थे ॥ ५२२ ॥ परन्तु उनके बीच में कितने ही दुर्जन भी रहते थे जिनकी छाया स्पर्श होते ही सब धर्म दूर भग जाते थे ॥ ५२३ ॥ वे दुष्ट भी श्रीनित्यानन्द प्रभु की कृपा से अति निष्कपट भाव से कृष्ण मार्ग में रत हो गये ॥ ५२४ ॥ स्वयं श्रीचैतन्य-देव ने कितनेक प्राणियों का मोचन किया ? परन्तु श्रीनित्यानन्दजी के द्वारा तीनों भुवनों का उद्धार करा दिया ॥५२५॥ चोर, डाकू, पतित-अधम आदि जिनकी संज्ञा थी उनको श्रीनित्यानन्द प्रभु ने अनेकों प्रकार से उद्धार कर दिया ॥ ५२६ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु ने जिस भाँति चोर, डाकुओं का परित्राण किया था उस आख्यान को सुनो ॥ ५२७ ॥ नवद्वीप में एक ब्राह्मण कुमार रहता था उसके समान चोर, डाकू दूसरा नहीं था तथा ॥ ५२८ ॥ जितने चोर व डाकू थे उनका वह प्रधान सेनापति था वह नाम लेने को तो ब्राह्मण था परन्तु अत्यन्त दुर्बुद्धि था ॥ ५२९ ॥ दूसरे के वध करने में शरीर में नाम मात्र दया नहीं थी तथा निरन्तर डाकुओं के साथ रहता था ॥ ५३० ॥ नित्यानन्दस्वरूप के अङ्ग पर सुवर्ण प्रवाल मणि मोती व दिव्य हार

मायाकरि निरवधि नित्यानन्द-सङ्गे । भ्रमये ताहान धन हरिवार रङ्गे ॥२३३॥
अन्तरे परम दुष्ट विप्र भाल नय । जानिलेन नित्यानन्द अन्तर हृदय ॥२३४॥
हिरण्य पण्डित-नामे एक सुब्राह्मण । सेई नवद्वीपे वैसे महा अकिंचन ॥२३५॥
सेइ भाग्यवन्तेर मन्दिरे नित्यानन्द । थाकिला विरले प्रभु हइया असङ्ग ॥२३६॥
सेइ दुष्ट ब्राह्मण-परम दुष्ट मति । लइया सकल दस्यु करये युगति ॥२३७॥
अरे भाइ सभे आर केने दुःख पाइ । चण्डी माये निधि मिलाइला एक ठाँइ ॥२३८॥
एइ अवधूतेर देहेते अलङ्कार । सोणा मुक्ता हीरा कसा वइ नाइ आर ॥२३९॥
कत लक्ष टाकार पदार्थ नाहि जानि । चण्डीमाये एक ठाञि मिलाइला आनि ॥२४०॥
शून्य-बाड़ी-खाने थाके हिरण्येर घरे । काढ़िया आनिब एक दण्डेर भितरे ॥२४१॥
ढाल खाँड़ा लइ सभे हओ समवाय । आजि गिया हाना दिब कथोक निशाय ॥२४२॥
एइ मत युक्ति करि सब दस्युगण । सभे निशाभाग करि करिल गमन ॥२४३॥
खाँड़ा छुरि त्रिशूल लइया जने-जने । आसिया वेढ़िल नित्यानन्द येइ स्थाने ॥२४४॥
एक स्थाने रहिया सकल दस्युगण । आगे चर पाठाइया दिल एक जन ॥२४५॥
नित्यानन्द महाप्रभु करेन भोजन । चतुर्दिगे हरिनाम लय भक्तगण ॥२४६॥
कृष्णानन्दे मत्त नित्यानन्द भृत्यगण । केहो करे सिंहनाद केहो वा गर्जन ॥२४७॥
क्रन्दन करये केहो परानन्द रसे । केहो करतालि दिया अट्ट-अट्ट हासे ॥२४८॥

---

आदि अलङ्कार थे ॥ २३१ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु के श्रीअङ्ग पर बहुत धन को देखकर डाकू ब्राह्मण के मनमें उन्हें हरण करने की इच्छा हुई ॥२३२॥ वह निरन्तर छल करके श्रीनित्यानन्दजी के संग में उनके अलंकारों को हरने के विचार में भ्रमण करता रहता था ॥२३३॥ यह ब्राह्मण भला नहीं है अन्तर में बड़ा दुष्ट है यह अन्तर्यामी श्रीनित्यानन्द प्रभु ने उसके हृदय की बात जान ली ॥ २३४ ॥ हिरण्य पण्डित नाम के एक सज्जन व बड़े अकिंचन ब्राह्मण वहीं नवद्वीप में रहते थे ॥ २३५ ॥ उसी भाग्यवान के घर में श्रीनित्यानन्द प्रभु अकेले ही ठहरे, सङ्गहीन होकर निवास किया ॥ २३६ ॥ परम दुष्ट बुद्धि वाले उस दुष्ट ब्राह्मण ने सब डाकुओं के साथ युक्ति की ॥ २३७ ॥ "अरे भाइयो ! सब लोग और क्यों दुःख पाते हो देखो माता चण्डी ने एक स्थान में ही निधि मिला दी है ॥ २३८ ॥ इस अवधूत की देह पर सोना, मोती, हीरा, रूचिन अलङ्कारों के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है ॥ २३९ ॥ न जाने कितने लक्ष रुपयों का माल है देखो चण्डी माता ने एक स्थान में ही लाकर मिला दिया ॥ २४० ॥ वे हिरण्य पण्डित के घर में एक शून्य स्थान में रहते हैं सो एक घड़ी में निकलवा लावें ॥ २४१ ॥ तुम सब लोग ढाल, तलवार लेकर इकट्ठे हो जाओ, आज कुछ रात्रि होने पर जाकर आक्रमण करेंगे ॥ २४२ ॥ सब डाकूवृन्द ऐसी युक्ति करके रात्रि के समय में सभी ने इकट्ठे होकर गमन किया ॥ २४३ ॥ सबने जिस स्थान में श्रीनित्यानन्द प्रभु थे वहाँ खड्ग, छुरी, त्रिशूल ले लेकर घेर लिया ॥ २४४ ॥ सब डाकुओं ने एक स्थान में रहकर आगे एक जन जासूस भेज दिया ॥ २४५ ॥ ( वह क्या देखता है कि:- ) श्रीनित्यानन्द प्रभु भोजन कर रहे हैं और चारों ओर भक्तगण हरिनाम ले रहे हैं ॥ २४६ ॥ श्रीनित्यानन्दजी के सेवक वृन्द कृष्ण प्रेमानन्द में मत्त थे कोई सिंहनाद कर

'है है हाय हाय' करे कोन जन। कृष्णानन्दे निद्रा नाहि, सभेइ चेतन ॥५४९॥
चर आसि कहिलेक दस्युगण स्थाने। 'भात खाय अवधूत, जागे सर्व जने' ॥५५०॥
दस्युगण बोले सभे शुउक खाइया। आमाराओ वसि सभे हाना दिब गिया ॥५५१॥
वसिल सकल दस्यु एक-वृक्ष तले। परधन पाइवेक-एइ कुतूहले ॥५५२॥
केहो बोले 'मोहोर सोनार ताड़ वाला'। केहो बोले 'मुञि निमु मुकुतार माला' ॥५५३॥
केहो बोले 'मुञि निमु कर्ण-आभरण'। 'छरि सब निमु मुञि' बोले कोन जन ॥५५४॥
केहो बोले 'मुञि निमु रूपार नूपुर'। सभे एइ मन कला खायेत प्रचुर ॥५५५॥
हेनइ समये नित्यानन्देर इच्छाय। निद्रा भगवती आसि चापिला सभाय ॥५५६॥
सेइ क्षणे महा घुमाइया दस्युगण। सभेइ हइल अति महा अचेतन ॥५५७
निद्राय सकल दस्यु हइल मोहित। रात्रि पोहाइल, तभु नाहिक सम्बित ॥५५८॥
काक रवे जागिलेक सब दस्युगण। रात्रि नाहि देखि सभे हैल दुःखि-मन ॥५५९॥
व्यथे व्यथे ढाल खांड़ा फेलाइया वने। सत्वरे चलिल सब दस्यु गङ्गा स्नाने ॥५६०॥
शेषे सब दस्युगण निज स्थाने गेल। सभेइ सभारे गालि पाड़िते लागिल ॥५६१॥
केहो बोले 'तुइ आगे पड़िलि शुइया'। केहो बोले 'तुइ वड़ आछिलि जागिया' ॥५६२॥
केहो बोले कलह करह केने आर। लज्जा धर्म चण्डी आजि राखिल सभार ॥५६३॥
दस्यु सेनापति ये ब्राह्मण दुराचार। से बोलये कलह करह केने आर ॥५६४॥

---

रहे हैं व कोई कोई गर्जना कर रहे हैं॥ ५४७॥ कोई परम आनन्दरस में क्रन्दन कर रहे हैं तथा कोई ताली बजा बजाकर अट्टअट्ट हँस रहे हैं॥ ५४८॥ कोई जन "है-है-हाय हाय" कर रहे हैं, कृष्ण प्रेमानन्द में निद्रा नहीं है सब ही जाग रहे हैं॥ ५४९॥ जासूस ने डाकुओं में जाकर कहा कि अवधूत तो भात खाय रहे हैं और सब लोग जाग रहे हैं॥ ५५०॥ डाकू बोले सबको खाकर सोने दो तब तक हम भी बैठे हैं पीछे जाकर आक्रमण करेंगे॥ ५५१॥ दूसरे का धन प्राप्त होगा इसी लालसा में सब डाकू एक वृक्ष के नीचे बैठ गये॥ ५५२॥ एक ने कहा "सोने के ताडक वाला मैं लूँगा" दूसरा बोला मोतियों की माला तो मैं लूँगा॥ ५५३॥ कोई कहता "कानों के आभरणों को मैं लूँगा" कोई बोला मैं सब छड़ी लूँगा॥ ५५४॥ किसी ने कहा "मैं तो चाँदी के नूपुरों को लूँगा" इस प्रकार सब ही मनमोदक खूब ही खा रहे थे॥५५५॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु की इच्छा से उसी समय निद्रादेवी ने आकर सब को दबा लिया॥ ५५६॥ तत्क्षण विशेष नींद आ जाने से सब डाकूगण बड़े अचेत हो गये॥ ५५७॥ सब डाकू निद्रा से ऐसे मोहित हुए कि सब रात्रि बीत गई तब भी चेत नहीं हुआ॥ ५५८॥ कौवाओं के शब्द से सब डाकू जगे, यह देखकर कि रात नहीं रही सब ही मन में बड़े दुःखी हुए॥ ५५९॥ जैसे-तैसे ढाल,तलवार आदि को वन में फेंककर सब डाकू शीघ्र गङ्गा स्नान करने को चल दिये॥ ५६०॥ अन्त में सब डाकूगण अपने २ स्थान को चले गये तथा परस्पर में गाली बकते जाते थे॥ ५६१॥ कोई बोला "देख तू पहिले पड़कर सो गया" कोई कहता "तू तो बड़ा जाग रहा था"?॥५६२॥ किसी ने कहा अब कलह क्यों कर रहे आज चण्डी माता ने सबका लज्जा धर्म की रक्षा की॥ ५६३॥ तब डाकुओं का सेनापति जो दुराचारी ब्राह्मण था बोला "अब और

ये हइल से हइल चण्डीर इच्छाय। एक दिन गेले कि सकल दिन जाय ॥५६५॥
बुझिलाङ चण्डी आसि मोहिला आपने। बिनि-चण्डी-पूजिया गेलाङ ये-कारणे ॥५६६॥
भाल करि आजि सभे मद्य मांस दिया। चल सभे एक ठाञि चण्डी पूजि गिया ॥५६७॥
एतेक करिया युक्ति सब दस्युगण। मद्य मांस दिया सभे करिल पूजन ॥५६८॥
आर दिन दस्युगण काचि नाना अस्त्र। आइलेक वीर-छाँदे परि नील वस्त्र ॥५६९॥
महानिशा-सर्वलोक आछये शयने। हेनइ समये बेढ़िलेक दस्युगणे ॥५७०॥
बाड़ीर निकटे थाकि दस्युगण देखे। चतुर्दिगे अनेक पाइक बाड़ी राखे ॥५७१॥
चतुर्दिगे अस्त्रधारी पदातिक गण। निरवधि हरिनाम करेन ग्रहण ॥५७२॥
परम प्रकाण्ड मूर्ति-सभेइ उद्दण्ड। नाना-अस्त्रधारी सभे-परम प्रचण्ड ॥५७३॥
सर्व दस्युगण देखे तार एको जने। शत जनो मारिते पारये सेइ क्षणे ॥५७४॥
सभार गलाय माला, सर्वाङ्गे चन्दन। सभारि बदने निरवधि सङ्कीर्तन ॥५७५॥
नित्यानन्द महाप्रभु आछेन शयने। चतुर्दिगे 'कृष्ण' गाय सेइ-सब-जने ॥५७६॥
दस्युगण देखि बड़ हइल विस्मित। बाड़ी छाड़ि लड़ि वसिलेन एक भित ॥५७७॥
सर्व दस्युगणे युक्ति लागिल करिते। कोथाकार पदातिक आइल एथाते ॥५७८॥
केहो बोले अवधूत केमते जानिया। काहार पाइक आनिआछये मागिया ॥५७९॥
केहो बोले भाइ अवधूत बड़ 'ज्ञानी'। माझे माझे अनेक लोकेर मुखे शुनि ॥५८०॥

---

कलह क्यों करते हो ॥ ५६४ ॥ भाई चण्डी माता की इच्छा से जो हुआ सो हुआ एक दिन खाली गया तो क्या सब दिन ही ऐसे जाँयगे ? ॥ ५६५ ॥ समझ लिया आज स्वयं देवी ने आकर मोह कर दिया क्योंकि बिना चण्डी पूजन किये गये थे ॥ ५६६ ॥ सो आज अच्छी तरह मदिरा मांस देकर एक स्थान में जाकर सब चण्डी पूजें ॥ ५६७ ॥ इस प्रकार सब डाकुओं ने युक्ति करके मद्य मांस द्वारा चण्डी का पूजन किया ॥ ५६८ ॥ दूसरे दिन डाकूवृन्द अनेक अस्त्रों से सजकर और नीले वस्त्र पहिनकर वीर वेश में आये॥५६९॥ भयंकर अँधेरी रात्रि थी वे सब लोग सो रहे थे, ऐसे समय में डाकुओं ने आकर घेरा दिया ॥ ५७० ॥ घर के समीप में खड़े होकर डाकुओं ने देखा कि चारों ओर को अनेक पहरुआ गृह-रक्षा कर रहे हैं ॥ ५७१ ॥ सब चारों ओर को अस्त्रधारी पैदल सिपाही निरन्तर हरिनाम ग्रहण कर रहे हैं ॥५७२॥ सब ही बड़े प्रकाण्ड शरीरधारी उद्दण्ड हैं और अनेक अस्त्र धारण किये हैं, सब बड़े प्रचण्ड रूप में हैं ॥ ५७३ ॥ सब डाकू देखते थे कि उनमें से एक २ जन उसी क्षण में सौ २ डाकुओं को मार सकता है ॥ ५७४ ॥ सबके गले में माला है व सबके अङ्गों पर चन्दन लगा हुआ है और निरन्तर सबके मुख से हरिनाम संकीर्तन हो रहा है ॥ ५७५ ॥ तथा श्रीनित्यानन्द महाप्रभु सो रहे, हैं और चारों ओर वे पहरी लोग कृष्ण नाम गान कर रहे हैं ॥ ५७६ ॥ डाकू देखकर बड़े विस्मित हुए और मकान को छोड़कर एक ओर दूर हटकर बैठ गये ॥५७७॥ सब डाकू युक्ति करने लगे कि यहाँ इतने पैदल सिपाही कहाँ से आ गये ॥ ५७८ ॥ किसी ने कहा "अवधूत किसी प्रकार जान गये इसलिये किसी से प्रार्थना करके पैदल बुला लिये ॥ ५७९ ॥ किसी ने कहा "अरे भाई बीच २ में अनेक लोगों के मुख से सुना है कि ये अवधूत बड़े ज्ञानी हैं" ॥ ५८० ॥ अवधूत महाशय

अन्यथा ये सब देखि पदातिक गण मनुष्येर प्राय त ना देखि एक जन ॥५८२॥
हेन बुझि एइ सब शक्तिर कारणे 'गोसाञि' करिया सभे बोलये उहाने ॥५८३॥
आर केहो बोले तुमि अबुध ये भाइ। ये खाय ये परे सेवा केमत गोसाञि ॥५८४॥
सकल दस्युर सेनापति ये ब्राह्मण। से बोलये जानिलाङ सकल कारण ॥५८५॥
यत बड़-बड़ लोक चारि दिग हैते। सभेइ आइसे अवधूतेरे देखिते ॥५८६॥
कोन दिग हैते कोन विश्वास नस्कर। आसियाछे, तार पदातिक बहुतर ॥५८७॥
अतएव पदातिक सकल भावक। एइसे कारणे 'हरि-हरि' करे जप ॥५८८॥
एवा नहे-तोला-पदातिक आनि थाके। तबे कतदिन एडाइब एइ पाके ॥५८९॥
अतएव चल सभे आजि घरे जाइ। चापे चुपे दिन दश थाकि गिया भाइ ॥५९०॥
एत बलि सब दस्युगण गेल घरे। अवधूतचन्द्र प्रभु स्वच्छन्दे विहरे ॥५९१॥
नित्यानन्द चरण भजये ये-ये जने। सर्व दुःख खण्डे ताहा सभार स्मरणे ॥५९२॥
हेन नित्यानन्द प्रभु विहरे आपने। ताहाने करिते विघ्न पारे कोन् जने ॥५९३॥
अविद्या खण्डये याँर दासेर स्मरणे। से प्रभुर विघ्न करिबेक कोन जने ॥५९४॥
सर्वगण-सह विघ्ननाथ याँर दास। याँर अंश रुद्र करे जगत विनाश ॥५९५॥
याँर अंश चलिते भुवन कम्प हय। हेन प्रभु नित्यानन्द, कारे तान भय ॥५९६॥
सर्व नवद्वीपे करे स्वच्छन्दे कीर्तन। स्वच्छन्दे करेन क्रीड़ा भोजन शयन ॥५९७॥

---

बड़े ज्ञानवान् हैं सो अपनी रक्षा आप ही करते होंगे ॥ ५८१ ॥ अन्यथा जो प्यादे दीख रहे हैं उनमें से एक भी मनुष्य जैसे तो दीखते नहीं हैं ॥ ५८२ ॥ ऐसी समझ में आती है कि इन्हीं सब शक्तियों के कारण ही सब लोग इनको ( प्रभु ) कहते हैं ॥ ५८३ ॥ अन्य किसी ने कहा भैया तुम बड़े अज्ञानी हो जो पदार्थ खाते हैं और अलंकार पहिनते हैं वे कैसे गुसाँई ? ॥ ५८४ ॥ सब डाकुओं का सेनापति जो ब्राह्मण है वह बोला कि सब कारण जान लिया ॥ ५८५ ॥ चारों ओर जितने बड़े सब लोग हैं ये सब अवधूत के दर्शन के लिये आये हैं ॥ ५८६ ॥ किसी ओर से कोई राज कर्मचारी लश्कर समेत आये हैं पैदल उन्हीं के मालूम होते हैं ॥ ५८७ ॥ इसी से सब पैदल भक्तिमान् हैं इसी निमित्त से "हरि-हरि" जप कर रहे हैं ॥ ५८८ ॥ अथवा ऐसा न होकर यों होय कि कहीं से भाड़े पर पैदल रक्खे हों यदि ऐसा ही है तो इस प्रकार कितने दिन बितावेंगे ? इसी से चलो आज घर को चलें और भाइयो ! जाकर दश दिन चुपचाप रहो ॥ ५८९-५९० ॥ यों कहकर सब डाकू अपने २ घर चले गये तथा अवधूतचन्द्र (नित्यानन्द) प्रभु स्वच्छन्द विहरने लगे ॥५९१॥ जो-जो जन नित्यानन्द प्रभु के चरणों की सेवा करते हैं उनके स्मरण मात्र से सब दुःख नष्ट हो जाते हैं ॥ ५९२ ॥ ऐसे श्रीनित्यानन्द प्रभु स्वयं विहार करते थे उसमें विघ्न कर सकें ऐसा कौन है ? ॥५९३॥ जिनके दास का स्मरण मात्र से ही अविद्या नष्ट हो जाती है उस प्रभु के आगे विघ्न करें ऐसा कौन है ? ॥ ५९४ ॥ सब गणों के सहित विघ्ननाथ ( गणेश ) जिनके दास हैं और जिनके अंश रुद्र जगत् का विनाश करते हैं ॥ ५९५ ॥ जिनके अंश ( शेष नाग ) के हिलने से सब भुवन कम्पायमान होते हैं ऐसे श्रीनित्यानन्द प्रभु हैं

सर्व-अङ्गे सकल अमूल्य अलंकार। येन देखि बलदेव-नन्देर कुमार ॥५९८॥
कर्पूर ताम्बूल प्रभु करेन भोजन। ईषत् हासिया मोहे त्रिजगत-मन ॥५९९॥
अभय-परमानन्द बुले सर्व स्थाने। अभय-परमानन्द भक्त गोष्ठीसने ॥६००॥
आर बार युक्ति करि पापी दस्युगणे। आइलेक नित्यानन्द प्रभुर भवने ॥६०१॥
दैवे सेइ दिने महा-मेघे अन्धकार। महा-घोर-निशा-नाहि लोकेर संचार ॥६०२॥
महा भङ्कर निशा चोर दस्युगण। दश पाँच अस्त्र एको जनेर काचन ॥६०३॥
प्रविष्ट हइल मात्र बाडीर भितरे। सभे हैल अन्ध, केहो देखिते ना पारे ॥६०४॥
किछु नाहि देखे, अन्ध हैल दस्युगण। सभेइ हइल हत-प्राण-बुद्धि-मन ॥६०५॥
केहो गिया पड़े गड़ खाइर भितरे। जोंके पोके डांसे तारे कामड़ाइ मारे ॥६०६॥
उच्छिष्ट गर्त्तेते केहो-केहो गिया पड़े। तथा ओ मरये बिछा-पोकेर कामड़े ॥६०७॥
केहो-केहो पड़े गिया कांटा भितरे। गाये पाये कांटा फुटे, नड़िते ना पारे ॥६०८॥
खालेर भितरे गिया पड़े कोन जन। हाथ पाओ भाङ्गि पड़े, करये क्रन्दन ॥६०९॥
सेइ खाने कारो कारो गाये हैल ज्वर। सब दस्युगण चिन्ता पाइल अन्तर ॥६१०॥
हेनइ समये इन्द्र परम-कौतुकी। करिते लागिला महाझड़ वृष्टि तथि ॥६११॥
एके मरे दस्यु जोंक-पोकेर कामड़े। विशेषे मरये आरो महावृष्टि-झड़े ॥६१२॥
शिला वृष्टि पड़े सब अङ्गेर उपरे। प्राणो नाहि जाय, भासे दुःखेर सागरे ॥६१३॥

---

उनको किसी का भय नहीं है ॥ ५९६ ॥ सर्व नवद्वीप में स्वाधीनता से कीर्तन-भोजन-शयन व क्रीड़ा आदि करते थे ॥ ५९७ ॥ सब अङ्ग में सब अमूल्य अलंकार धारण किये थे, देखने में ऐसे लगते थे मानों नन्द के कुमार श्रीबलदेवजी हों ॥ ५९८ ॥ कर्पूर सहित ताम्बुल भक्षण करते ईषत् हँस दें तो तीन लोकवासियों के मन को मोहित करते थे ॥ ५९९ ॥ भय रहित परम आनन्दमय भक्त गोष्ठी के साथ निर्भय होकर परम आनन्दमय प्रभु सब जगह भ्रमण करते थे ॥ ६०० ॥ पापी डाकूगण युक्ति करके श्रीनित्यानन्द प्रभु के भवन में दुबारा फिर आये ॥६०१॥ दैववश उसी दिन विशेष मेघ होने के कारण अन्धकार था, अति घोर रात्रि में लोगों का संचार भी नहीं था ॥ ६०२ ॥ रात्रि बड़ी भयंकर होने से चोर डाकूगण दश-पाँच अस्त्रों को लेकर एक २ जने सजे हुए थे ॥ ६०३ ॥ घर के भीतर प्रविष्ट होते हीं सब अन्धे हो गये कोई किसी को देख नहीं पाता था ॥ ६०४ ॥ डाकू अन्धे हो गये कुछ दीखता न था तथा सबके प्राण बुद्धि व मन नष्ट हो रहे थे ॥ ६०५ ॥ कोई जाकर घर की मोरी में गिर पड़ा उसे जोंक, कीड़ा व डाँस डंक मार रहे थे ॥ ६०६ ॥ कोई २ उच्छिष्ट डालने के गड्डे में गिर पड़ा वहाँ भी कीड़े काट रहे थे ॥ ६०७ ॥ कोई जाकर काँटों में गिर पड़ा सो शरीर व पाँवों में काँटे लगने से चल फिर नहीं पाता ॥ ६०८ ॥ कोई खाल ( खड्डे ) में जा पड़ा है जिससे हाथ-पाँव टूटने पर क्रन्दन कर रहा था ॥६०९॥ उसी जगह किसी २ के शरीर में ज्वर हो गया सो मन ही मन सब डाकू चिन्ता में पड़ गये ॥ ६१० ॥ ऐसे ही समय पर परम कौतुकी इन्द्र इस स्थान पर विशेष झड़ व वर्षा करने लगा ॥ ६११ ॥ एक तो डाकू जोंक, कीड़ों के खाने से मर रहे थे और ऊपर से भी विशेष भयंकर वृष्टि व झड़ में मरने लगे ॥ ६१२ ॥ सब अङ्गों पर शिलाओं की वर्षा होने लगी जिससे

अन्ध हइयाछे किन्तु ना पाय देखिते  मरे दस्युगण महा झड वृष्टि शीते ६१६

नित्यानन्द द्रोहे आसियाछे ए लागिया  क्रोधे इन्द्र विशेषे मारेन दुःख दिया ॥६१७॥

कथोक्षणे दस्यु सेनापति ये ब्राह्मण । अकस्मात् भाग्ये तार हइल स्मरण ॥६१८॥

मने भावे विप्र नित्यानन्द नर नहे । सत्य एहो ईश्वर मनुष्ये सत्य कहे ॥६१९॥

एक दिन मोहिलेन सभारे निद्राय । तथापिह ना बुझिलूँ ईश्वर मायाय ॥६२०॥

आर दिन महाद्भुत पदातिक गण । देखाइल, तभो मोर नहिल चेतन ॥६२१॥

योग्य मुञि-पापिष्ठेर ए सब दुर्गति । हरिते प्रभुर धन येन कैलूँ मति ॥६२२॥

ए महा संकटे मोरे के करिब पार । नित्यानन्द बइ मोर गति नाहि आर ॥६२३॥

एत भावि विप्र नित्यानन्देर चरण । चिन्तिया एकान्त भावे लइल शरण ॥६२४॥

से चरण चिन्तिले आपद नाहि आर । सेइक्षणे कोटि अपराधीरो निस्तार ॥६२५॥

कारुण्यशारदा रागेण गीयते ।

कारुण्य-शरण श्रीपदारविन्द जानि । एत चिन्ति स्तुति करे सर्व सार मानि ॥६२६॥

रक्ष-रक्ष नित्यानन्द श्रीबालगोपाल । रक्षा कर प्रभु तुमि सर्व जीव पाल ॥६२७॥

ये जन आछाड़ प्रभु पृथिवीते खाय । पुनश्च पृथिवी तारे हयेन सहाय ॥६२८॥

---

दुःख के समुद्र में डूबते थे, परन्तु प्राण नहीं जा रहे थे ॥ ६१३ ॥ एक दम विशेष गर्जन के साथ ऐसी बिजली गिरती थी कि अपने को भूलकर सब लोग डरके मारे मूर्च्छित हो जाते थे ॥ ६१४ ॥ भयंकर वृष्टि से सब डाकू निरन्तर भाग रहे थे—तथा विशेष शीत लगने से सबके शरीर काँप रहे थे ॥ ६१५ ॥ प्रथम तो डाकू अन्ध हो रहे थे कुछ देख नहीं पाते थे दूसरे भयकर झड़ वृष्टि व शीत से मर रहे थे ॥ ६१६ ॥ डाकूगण श्रीनित्यानन्दजी के साथ द्रोह करने के निमित्त से आये थे यह विचार करके इन्द्र विशेष क्रोधयुक्त हो दुःख देकर मार रहा था ॥ ६१७ ॥ कुछ देर में डाकुओं के ब्राह्मण सेनापति को भाग्यवश अकस्मात् स्मरण हुआ ॥६१८॥ विप्र ने मनमें विचार किया कि नित्यानन्द मनुष्य नहीं हैं सत्य ही यह ईश्वर हैं और मनुष्य जो यह कहते हैं कि ये ईश्वर हैं उनका कहना ध्रुव सत्य है ॥ ६१९ ॥ एक दिन तो सबको निद्रा मोहित कर दिया तथापि ईश्वर की माया से समझ नहीं सका ॥ ६२० ॥ दूसरे दिन बड़े अद्भुत प्यादों के दर्शन कराये तब भी मुझे चेत ( ज्ञान ) नहीं हुआ ॥ ६२१ ॥ हमारे सदृश पापियों की यह सब दुर्गति अत्यन्त योग्य है कारण नित्यानन्द प्रभु के धन को हरण करने की मतियाँ थीं ॥ ६२२ ॥ इस घोर संकट से मुझे कौन पार करेगा ? प्रभु नित्यानन्द के बिना मेरी अन्य गति नहीं है ॥ ६२३ ॥ इस प्रकार ऐसे मनमें चिन्तन करके विप्र ने एकान्त भाव से श्रीनित्यानन्द प्रभु के चरण-कमलों की शरण ली ॥ ६२४ ॥ उन चरण-कमलों के चिन्तन करते ही उसी क्षण में करोड़ों २ अपराधयुक्त अपराधियों का निस्तार हो जाता है और फिर आपदा नहीं आती॥६२५॥वह श्रीचरण-कमलों को करुणासिन्धु व शरणागतवत्सल जानकर व सबका सार मानकर स्तुति करता है ॥ ६२६ ॥ हे श्रीबालगोपाल नित्यानन्द प्रभो रक्षा करो २, प्रभो तुम सब जीवों के पालक हो

एइमत ये तोमाते अपराध करे । शेषे सेहो तोमार स्मरणे दुःख तरे' ॥६२६॥
तुमिसे जीवेर क्षम' सर्व अपराध । पतित जनेरे तुमि करह प्रसाद ॥६३०॥
तथापि यद्यपि मुञि ब्रह्मघ्न गोवधी । मोरे बड़ आर प्रभु ! नाहि अपराधी ॥६३१॥
सर्व महापातकीओ तोमार शरण । लइले, खण्डये तार सकल बन्धन ॥६३२॥
जन्मावधि तुमिसे जीवेर राख प्राण । अन्तेओ तुमिसे प्रभु कर' परित्राण ॥६३३॥
ए सङ्कट हैते प्रभु कर' आजि रक्षा । यदि जीउ प्रभु ! तबे हैल एइ शिक्षा ॥६३४॥
जन्म जन्म प्रभु तुमि, मुञि तोर दास । किवा जीउ मरों एइ हउ मोर आश" ॥६३५॥
कृपामय नित्यानन्द चन्द्र अवतार । शुनि करिलेन दस्युगणेर उद्धार ॥६३६॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान ॥६३७॥

इति श्रीचैतन्यभागवते अन्त्यखण्डे श्रीनित्यानन्द विलास-वर्णनं नाम
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

## षष्ठोऽध्याय

एइमत चिन्तिते सकल दस्युगण । सभार हइल दुइचक्षु-विमोचन ॥१॥
नित्यानन्द स्वरूपेर स्मरण-प्रभावे । झड़ वृष्टि आर कारो देहे नाहि लागे ॥२॥
कथोक्षणे पथ देखि सब दस्युगण । मृतप्राय हइ सभे करिल गमन ॥३॥
सभे घर गिया सेइमते दस्युगण । गङ्गा स्नान करिलेक गिया सेइक्षण ॥४॥
दस्यु सेनापति विप्र कान्दिते कान्दिते । नित्यानन्द चरणे आइल सेइमते ॥५॥

---

रक्षा करो, रक्षा करो ॥ ६२७ ॥ प्रभो ! जो प्राणी पछाड़ खाकर पृथ्वी पर गिरता है, पृथ्वी ही उसकी पुनः सहायता करती है ॥ ६२८ ॥ इसी प्रकार जो आपका अपराध करे अन्त में वह आपका स्मरण करने से ही दुःखों से पार होता है ॥ ६२६ ॥ आप सब जीवों के अपराध को क्षमा करते हो और आप ही पतित जनों के ऊपर अनुग्रह भी करते हो ॥ ६३० ॥ यद्यपि मैं ब्रह्म हत्या तथा गौ हत्याकारी हूँ प्रभो ! मुझसे बड़ा और कोई अपराधी नहीं है ॥ ६३१ ॥ जो बड़े २ घोर पातकी भी आपकी शरण लेते हैं-उनके सब बन्धन नष्ट हो जाते हैं ॥ ६३२ ॥ हे प्रभो ! जन्म से लेकर जीवों के प्राणों की आप ही रक्षा करते हो तथा आप ही अन्त में भी परित्राण करते हो ॥ ६३३ ॥ हे प्रभो ! इस संकट से आज रक्षा करो, यदि प्रभो ! मैं जीऊँगा तो मुझे अब यह शिक्षा हो गई ॥ ६३४ ॥ जीऊँ अथवा मरूँ परन्तु जन्म २ में आपही प्रभु हो और मैं आपका दास हूँ; यह मेरी आशा पूर्ण हो ॥ ६३५ ॥ कृपामय अवतार श्रीनित्यानन्दचन्द्र ने सुनकर डाकुओं का विपत्ति से उद्धार कर दिया ॥ ६३६ ॥ श्रीवृन्दावनदास ठाकुर ( ग्रन्थकार ) श्रीकृष्णचैतन्य एवं नित्यानन्दचन्द्र को जानकर अर्थात् हृदय में धारण करके उनके ही युगल चरण-कमलों की महिमा गान करते हैं ॥ ६३७ ॥

---

सब डाकुओं ने जब इस प्रकार चिन्तन किया तो उसी क्षण में सबके नेत्र खुल गये ॥ १ ॥ श्री-नित्यानन्दस्वरूप के स्मरण प्रभाव से झड़वृष्टि भी अब किसी की देह पर नहीं लगती थी ॥ २ ॥ कुछ क्षण में सब दस्युगण मार्ग के देखते ही मृत के समान हो रूक ही वहाँ से चले गये ॥ ३ ॥ सब दस्युगण उसी

सेइ महादस्यु विप्र हेनइ समये 'त्राहि' वलि बाहु तुलि दण्डवत् हये ८
आपाद मस्तक पुलकित सर्वअङ्ग निरवधि अश्रुधारा वहे, महाकम्प ९
हुङ्कार गर्जन निरवधि विप्र करे। बाह्य नाहि जाने डुवि आनन्दसागरे ॥१०॥
नित्यानन्द स्वरूपेर प्रभाव देखिया। आपना' आपनि नाचे हरषित हैया ॥११॥
"त्राहि बाप नित्यानन्द पतित पावन"। बाहु तुलि एइमत डाके घने घन ॥१२॥
देखि हइलेन सभे परम-विस्मित। "एमत दस्युर केने एमत चरित" ॥१३॥
केहो बोले 'माया वा करिया आसियाछे। कोनो पाक करिया वा हाना सेइ पाछे' ॥१४॥
केहो बोले 'नित्यानन्द पतित पावन। कृपाय वा इहार करिला भाल मन' ॥१५॥
विप्रेर अत्यन्त प्रेमविकार देखिया। जिज्ञासिल नित्यानन्द ईषत् हासिया ॥१६॥
प्रभु बोले "कह विप्र कि तोमार रीत। बड़त तोमार देखि अद्भुत-चरित ॥१७॥
कि शुनिला कि देखिला कृष्ण-अनुभव। किछु चिन्ता नाहि, अकपटे कह सब" ॥१८॥
शुनिला प्रभुर वाक्य सुकृति ब्राह्मण। कहिते ना पारे किछु, करये क्रन्दन ॥१९॥
गड़ागड़ि जाय पड़ि सकल-अङ्गने। हासे' कान्दे नाचे गाय आपना आपने ॥२०॥
सुस्थिर हइया विप्र तबे कथोक्षणे। कहिते लागिल सब प्रभु विद्यमाने ॥२१॥

---

प्रकार घर को गये तथा जाकर उसी क्षण गङ्गा में स्नान किया ॥ ४ ॥ डाकुओं का सेनापति ब्राह्मण रोता २ श्रीनित्यानन्द प्रभु के चरणों में उसी प्रकार आया ॥ ५ ॥ विश्व के नाथ श्रीनित्यानन्द प्रभु पतित जनों के ऊपर शुभ दृष्टिपात करने के लिये बैठे थे ॥ ६ ॥ चारों ओर भक्तगण हरिध्वनि कर रहे थे तथा अवधूत-मणि श्रीनित्यानन्दजी आनन्द से हुङ्कार कर रहे थे ॥ ७ ॥ उसी समय प्रधान डाकू विप्र ने भुजाएं उठाकर "रक्षा करो" यों कहकर दण्डवत् की ॥ ८ ॥ मस्तक से चरण पर्यन्त सब अङ्ग में पुलक हो रहा था व आँसुओं की धारा बह रही थी ॥ ९ ॥ ब्राह्मण भी बराबर हुङ्कार व गर्जन करने लगा उसे बाह्य ज्ञान नहीं रहा तथा वह आनन्दसागर में डूब गया ॥ १० ॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप का प्रभाव देखकर हरषित हो आप ही नाचने लगा ॥ ११ ॥ "हे पतितपावन नित्यानन्द हे बाप रक्षा करो २" बाहु उठाकर इस प्रकार बारम्बार जोर से बोलने लगा ॥ १२ ॥ उसे देखकर सब ही बड़े विस्मित हुए कारण ऐसे डाकू का ऐसा चरित्र कैसे हो गया ॥१३॥ किसी ने कहा "यह छल करके आया है, पीछे किसी प्रकार से अवश्य आक्रमण करेगा॥१४॥ किसी ने कहा नित्यानन्द प्रभु पतित पावन हैं कृपा करके इसका मन अच्छा कर दिया है ॥ १५ ॥ विप्र के शरीर में प्रेम-विकारों को अत्यन्त देखकर श्रीनित्यानन्द प्रभु ने कुछ हँसकर पूछा ॥ १६ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु ने कहा "हे विप्र ! तुम्हारी यह क्या रीति है ? तुम्हारा चरित्र तो देखने में बड़ा अद्भुत लगता है ॥ १७ ॥ कृष्ण का क्या प्रभाव देखा ? क्या सुना है ? कुछ चिन्ता मत करो, सब बात निष्कपटता से कहो ॥ १८ ॥ वह सुकृति ब्राह्मण प्रभु के वाक्यों को सुनकर कुछ कह नहीं सका केवल रोता ही रहा ॥ १९ ॥ सब आँगन में लोट लगाता तथा आप ही आप हँसता, रोता नाचता था व गाता ॥ २० ॥ तब कुछ क्षण में ब्राह्मण

"एइ नवद्वीपे प्रभु वसति आमार। नाम से ब्राह्मण'-व्याध-चण्डाल-आचार ॥२२॥
निरन्तर दुष्ट सङ्गे करि डाका चूरि। परहिंसा वइ जन्मे आर नाहि करि ॥२३॥
मोरे देखि सर्व नवद्वीप कांपे डरे। किवा पाप नाहि हय आमार शरीरे ॥२४॥
देखिया तोमार अङ्गे दिव्य अलङ्कार। ताहा हरिवारे चित्त हइल आमार ॥२५॥
एकदिन साजि बहु पदातिक गण। हरिते' आइलूँ मुञि श्रीअंगेर धन ॥२६॥
से दिन निद्राय प्रभु मोहिला सभारे। तोमार मायाय नाहि जानिलूँ तोमारे ॥२७॥
आर दिन नाना मते चण्डिका पूजिया। आइलाङ खांड़ा छुरी त्रिशूल काचिया ॥२८॥
अद्भुत महिमा देखिलाङ सेइ दिने। सब बाड़ी बेढ़ियाछे पदातिक गणे ॥२९॥
एको पदातिक येन मत्त हस्ति प्राय। आजानुलम्बित माला सभारि गलाय ॥३०॥
निरवधि हरिध्वनि सभार वदने। तुमि आछ एइ गृहे आनन्दे शयने ॥३१॥
हेन से पापिष्ठ चित्त आमा' सभाकार। तभू नाहि बुझिलाङ महिमा तोमार ॥३२॥
'कार पदातिक आसि याछे कोथा हैते'। एत भावि से दिन गेलाङ सेइमते ॥३३॥
तबे आर कथोदिने कालि आइलाङ। आसियाइ मात्र दुइ चक्षु खाइलाङ ॥३४॥
बाड़ीते प्रविष्ट हइ सब दस्युगणे। अन्ध हइ सभे पड़िलाङ नानास्थाने ॥३५॥
कांटा जोंक पोक झड़ वृष्टि शिलापाते। सभे मरि कारो शक्ति नाहिक जाइते ॥३६॥
महा-यमयातना हइल यदि भोग। तबे शेषे सभार हइल भक्ति योग ॥३७॥

सुस्थिर होकर प्रभु के सम्मुख सब प्रसंग कहने लगा ॥ २१ ॥ प्रभो ! इसी नवद्वीप में मेरा निवास है मैं नाम मात्र को ही ब्राह्मण हूँ परन्तु आचार व्याध व चाण्डालों के से हैं ॥ २२ ॥ निरन्तर दुष्टों के संग में डाका व चोरी करता हूँ इस जन्म में दूसरों की हिंसा के अतिरिक्त अन्य कार्य नहीं किया ॥ २३ ॥ मुझे देखकर सब नवद्वीपवासी डर से काँपते हैं; मेरे शरीर से ऐसा कौनसा पाप है जो न हुआ हो ॥ २४ ॥ आपके अङ्ग पर दिव्य अलंकारों को देखकर मेरे मनमें उन्हें चुराने की इच्छा हुई ॥२५॥ एक दिन बहुत से पैदल सजाकर मैं श्रीअङ्ग के धन को हरण करने के लिये आया था ॥ २६ ॥ प्रभो ! उस दिन आपने सबको निंद्रा से मोहित कर दिया सो आपकी माया के कारण आपको जान नहीं सका ॥ २७ ॥ दूसरे दिन अनेक प्रकार से चण्डी पूजा करके खड्ग, छुरी, त्रिशूलों से सुसज्जित होकर आया ॥ २८ ॥ उस दिन बड़ी अद्भुत महिमा देखी कि सब घर को घेरकर पैदल प्यादे पहरा दे रहे हैं ॥ २९ ॥ एक २ पैदल मत्तहस्ती के तुल्य था तथा सबके गले में जानुपर्यन्त लम्बी माला शोभा दे रही थी ॥ ३० ॥ सबके मुख से निरन्तर हरिध्वनि सुनाई देती थी तथा आप आनन्द से इस घर में सोते थे ॥ ३१ ॥ तब भी आपकी महिमा को नहीं समझ सका, हमारा सबका मन ऐसा पापिष्ठ है ॥ ३२ ॥ यह किसके पैदल प्यादे हैं ? कहीं से आ गये ? वह दिन रात इसी सोच-विचार में चली गई ॥ ३३ ॥ तब और कुछ दिन पीछे कल रात को आये मात्र आते ही दोनों नेत्रों को खोय बैठे ॥ ३४ ॥ सब डाकू घर में प्रविष्ट होते ही अन्धे होकर सभी अनेक स्थानों में गिर पड़े ॥ ३५ ॥ और सब लोग कांटे, जोंक, कीड़े व झड़वृष्टि और शिलापात के दुःख से मरते रहे किसी को चलने की शक्ति नहीं रही ॥ ३६ ॥ जब भयंकर यमयातना उस समय भोग हुई तब अन्त में सबके हृदय में भक्ति-

आमि सब एड़ाइलूँ ए सब यातना ए तोमार स्मरणेर कोन् वा महिमा ४०
याँहार स्मरणे खण्डे' अविद्या बन्धन। अनायासे चलियाय वैकुण्ठभुवन ॥४१॥
कहिते कहिते विप्र कान्दे उच्च-रा'य। हेन कृपा करे प्रभु अवधूतराय ॥४२॥
शुनिञा सभार हैल महाश्चर्य-ज्ञान। ब्राह्मणेर प्रति सभे करेन प्रणाम ॥४३॥
विप्र बोले "प्रभु मुञि करिलूँ विदाय। ए देह राखिते मोरे आर ना जुयाय ॥४४॥
येन मोर चित्त हैल तोमार हिंसाय। एइमोर प्रायश्चित्त-मरिमु गङ्गाय" ॥४५॥
शुनि अति अकैतव विप्रेर वचन। तुष्ट हइलेन प्रभु, सर्व भक्तगण ॥४६॥
प्रभु बोले "विप्र तुमि भाग्यवन्त बड़। जन्म जन्म कृष्णेर सेवक तुमि दृढ़ ॥४७॥
नहिले एमत कृपा करिबेन केने। ए प्रकाश अन्ये कि देखिये भृत्य विने ॥४८॥
पतित-पावन-हेतु चैतन्य गोसाञि। अवतरि आछेन इहाते अन्य नाञि ॥४९॥
शुन विप्र यतेक पातक कैला तुमि। यदि आर ना कर से सब निलूँ आमि ॥५०॥
पर हिंसा डाका चुरि सब अनाचार। छाड़ गिया सब तुमि, ना करिह आर ॥५१॥
धर्म पथे गिया तुमि लह हरिनाम। तबे तुमि अन्येरे करिबा परित्राण ॥५२॥
यत चोर दस्यु सब डाकिया आनिया। धर्म पथ सभारे लओयाओ तुमि गिया ॥५३॥
एत बलि आपन-गलार माला आनि। तुष्ट हइ ब्राह्मणेर दिलेन आपनि ॥५४॥

---

योग उदय हुआ ॥ ३७ ॥ आपकी कृपा से सब ही ने आपके चरण-कमलों का एकान्त भाव से स्मरण किया ॥ ३८ ॥ तब सबके नेत्र खुल गये, हे महाप्रभु! आप ऐसे पतित पावन हैं ॥३९॥ हम सब उस समग्र यातना से मुक्त हो गये यह आपके स्मरण की कोई बड़ी महिमा नहीं है ॥ ४० ॥ जिनके स्मरण करते ही अविद्या बन्धन नष्ट हो जाते तथा अनायास ही वैकुण्ठ लोक को चले जाते हैं ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण कहते २ ऊँचे स्वर से रोने लगा अवधूतराय श्रीनित्यानन्दजी इस प्रकार कृपा करते हैं ॥ ४२ ॥ सुनकर सबको बड़ा आश्चर्य बोध हुआ यथा सबने ब्राह्मण को प्रणाम किया ॥ ४३ ॥ विप्र ने कहा "प्रभो! मैं अब विदा होता हूँ यह देह मुझे और रखना ठीक नहीं है ॥ ४४ ॥ जो मेरा चित्त आपको हिंसा करने को हुआ तो अब गङ्गा में मरूँगा यही मेरा प्रायश्चित है ॥ ४५ ॥ ब्राह्मण के अति कपट रहित वचन सुनकर सब भक्तों सहित श्रीनित्यानन्द प्रभु सन्तुष्ट हुए ॥ ४६ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु ने कहा "हे विप्र! तुम बड़े भाग्यवान हो तथा जन्म-जन्मान्तर के दृढ़ कृष्णदास हो ॥ ४७ ॥ यदि सेवक न होते तो ऐसी कृपा क्यों होती? कारण कि दास के अतिरिक्त इस प्रकाश को क्या अन्य देख सकता है? ॥ ४८ ॥ श्रीचैतन्य प्रभु पतितों को पवित्र करने के हेतु अवतीर्ण हुए हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४९ ॥ हे विप्र सुनो! जितने पाप तुमने किये हैं यदि अब और न करो तो मैं सब ले लूँगा ॥ ५० ॥ दूसरों की हत्या, डाका, चोरी आदि दुराचारों को तुम छोड़ दो फिर न करना ॥ ५१ ॥ तुम धर्म मार्ग पर चलते हुए हरिनाम लेना; ऐसा करने से तुम दूसरों को भी परित्राण करोगे ॥ ५२ ॥ तुम जाकर जितने चोर, डाकू हैं सबको बुलाकर सबको धर्म पथ पर लाना ॥ ५३ ॥ इतना कहकर

महा-जयजय-ध्वनि हइल तखन । विप्रेर हइल सवबन्ध विमोचन ॥५५॥
काकु करे विप्र प्रभु चरणे धरिया । क्रन्दन करये अति डाकिया डाकिया ॥५६॥
"अरे प्रभु नित्यानन्द पातकि पावन । मुञि-पातकीरे देओ चरणे शरण ॥५७॥
तोमार हिंसाय से हइल मोर मति । मुञि-पापिष्ठेर कोन् लोके हैव गति" ॥५८॥
नित्यानन्द महाप्रभु-करुणासागर । पादपद्म दिला तार मस्तक उपर ॥५९॥
चरणारविन्द पाइ मस्तके प्रसाद । ब्राह्मणेर खण्डिल सकल अपराध ॥६०॥
सेइ विप्र द्वारे यत चोर-दस्युगण । धर्मपथ लइलेन चैतन्य शरण ॥६१॥
डाका चूरि परहिंसा छाड़ि अनाचार । सभेइ हइल अति साधु-व्यवहार ॥६२॥
सभेइ लयेन हरिनाम लचलच । सभे हइलेन विष्णुभक्ति योगदक्ष ॥६३॥
कृष्णप्रेमे मत्त कृष्णगान निरन्तर । नित्यानन्द प्रभु हेन करुणासागर ॥६४॥
अन्य अवतारे केहो झाट नाहि पाय । निरवधि नित्यानन्द 'चैतन्य' लओयाय ॥६५॥
ये ब्राह्मण नित्यानन्दस्वरूप ना माने । ताहारे लओयाय सेइ चोर दस्युगणे ॥६६॥
योगेश्वर-सभे वाञ्छे ये प्रेमविकार । ये अश्रु ये कम्प ये वा पुलक हुङ्कार ॥६७॥
चोर डाकाइतेरे हैल सेइ भक्ति । हेन प्रभु-नित्यानन्द स्वरूपेर शक्ति ॥६८॥
भज भज भाइ हेनप्रभु-नित्यानन्द । याहार प्रसादे पाइ प्रभु गौरचन्द्र ॥६९॥
येइ गाय नित्यानन्दस्वरूप कौतुके । से विहरे अभय परमानन्द-सुखे ॥७०॥

---

अपने गले की माला लेकर श्रीनित्यानन्द प्रभु ने सन्तुष्ट होकर स्वयं ब्राह्मण को दी ॥ ५४ ॥ उस समय ऊँचे स्वर से जय जय ध्वनि हुई ब्राह्मण के सब बन्धन नष्ट हो गये ॥५५॥ ब्राह्मण प्रभु के चरण पकड़कर कार्पण्य करने लगा तथा ऊँचे स्वर से चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा ॥ ५६ ॥ पापियों को पवित्र करने वाले हे श्री-नित्यानन्द प्रभो ! मुझ पापी को चरणों में शरण दो ॥ ५७ ॥ आपकी हत्या करने की जो मेरी मति हुई सो मेरे समान पापी की किस लोक में गति होगी ? ॥५८॥ करुणासागर श्रीनित्यानन्द प्रभु ने उसके मस्तक पर अपना चरण-कमल अर्पण किया ॥ ५९ ॥ मस्तक के ऊपर चरण-कमल के प्रसाद को पाते ही ब्राह्मण के सब अपराध नष्ट हो गये ॥ ६० ॥ उसी विप्र के द्वारा जितने चोर, डाकू थे उन सबने धर्म मार्ग ग्रहण कर श्री-चैतन्यदेव की शरण ले ली ॥६१॥ डाका, चोरी पर हिंसा आदि अनाचारों को छोड़कर सब लोग अत्यन्त साधु ( परोपकारी ) आचरण वाले हो गये ॥ ६२ ॥ सब ही नित्य लक्ष २ हरिनाम लेते तथा विष्णु भक्ति योग में चतुर हो गये ॥ ६३ ॥ कृष्ण प्रेम में मत्त होकर निरन्तर कृष्ण गान करते थे, श्रीनित्यानन्द प्रभु ऐसे करुणासागर हैं ॥ ६४ ॥ अन्य अवतारों में किसी को शीघ्र सिद्धि प्राप्ति नहीं होती, परन्तु श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीचैतन्यदेव को निरन्तर ग्रहण करवा रहे हैं ॥ ६५ ॥ जो ब्राह्मण नित्यानन्दस्वरूप को नहीं मानते उन्हें चोर दस्युगण ग्रहण करा रहे थे ॥ ६६ ॥ जो अश्रु, कम्प, पुलक, हुंकार आदि प्रेम विकारों की योगेश्वर सब इच्छा करते थे आज वही प्रेमाभक्ति चोर, डाकुओं को प्राप्त हुई है श्रीप्रभु-नित्यानन्दस्वरूप की शक्ति का ऐसा प्रभाव है ॥ ६७-६८ ॥ हे भाइयो ! ऐसे प्रभु नित्यानन्द का भजन करो भजन करो ! कारण जिसके अनुग्रह से श्रीगौरचन्द्र प्रभु की प्राप्ति हो ॥६९॥ जो श्रीनित्यानन्दस्वरूप का कौतुक से गान करेंगे वे अभय

हेनमते नित्यानन्द परम कौतुके विहरेन अभय परमानन्द सुखे ७३
तबे नित्यानन्द सब पारिषद् सङ्गे प्रति-ग्रामे ग्रामे भ्रमे' सङ्कीर्तन रङ्गे ७४
खाना-जोड़ा आर बड़गाछि दोगाछिया । गङ्गार ओ' पार कभु जायेन कुलिया ॥७५॥
विशेषे सुकृति अति बड़गाछिग्राम । नित्यानन्दस्वरूपेर विहारेर स्थान ॥७६॥
बड़गाछि ग्रामेर यतेक भाग्योदय । ताहा कभु कहिते ना पारि समुच्चय ॥७७॥
नित्यानन्दस्वरूपेर पारिषदगण । निरवधि सभेइ परमानन्द-मन ॥७८॥
कारो कोनो कर्म नाहि सङ्कीर्तन-विने । सभार गोपालभाव बाढे क्षणेक्षणे ॥७९॥
वेत्र वंशी शिङ्गा छांददड़ि गुंजाहार । ताड़ खाडु हाथे पाये नूपुर सभार ॥८०॥
निरवधि सभार शरीरे कृष्णभाव । अश्रु कम्प पुलक-यतेक अनुराग ॥८१॥
सभार सौन्दर्य येन अभिन्न-मदन । निरवधि सभेइ करेन संकीर्तन ॥८२॥
पाइया अभय स्वामी प्रभु नित्यानन्द । निरवधि कौतुके थाकेन भक्तवृन्द ॥८३॥
नित्यानन्दस्वरूपेर दासेर महिमा । शत वर्ष यदि कहि तभू नहे सीमा ॥८४॥
तथापिह नाम कहि-जानि याँर याँर । नाममात्र स्मरणेओ तरिये संसार ॥८५॥
याँर याँर सङ्गे नित्यानन्देर विहार । सभे नन्दगोष्ठी-गोप-गोपी-अवतार ॥८६॥

---

परम आनन्दमय सुख में विहार करेंगे ॥ ७० ॥ जो श्रीनित्यानन्द प्रभु के आख्यानों को सुनेंगे उनको श्री-गौरचन्द्र भगवान् अवश्य मिलेंगे ॥ ७१ ॥ डाकुओं के मोचन प्रसंग को जो मन देकर सुनेंगे वे श्रीनित्यानन्द व श्रीचैतन्य के अवश्य दर्शन करेंगे ॥ ७२ ॥ इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु विशेष कौतुक पूर्वक अभय हो परमानन्द सुख से विहार कर रहे थे ॥ ७३ ॥ तब सब पारिषदों के साथ श्रीनित्यानन्द प्रभु ने संकीर्तन के प्रेम में रंग से गाँव-गाँव में भ्रमण किया ॥ ७४ ॥ खानाजोड़ा-दोगाछिया-बड़गाछि नामक ग्रामों में गये कभी गङ्गा के पार कुलिया नगर को भी जाते थे ॥७५॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप का विहार स्थान होने के कारण बड़गाछि ग्राम विशेष रूप से अति सुकृतिशाली था ॥ ७६ ॥ बड़गाछि ग्राम का जितना भाग्योदय हुआ उसका कहने से कभी अन्त नहीं होगा ॥ ७७ ॥ नित्यानन्दस्वरूप के पार्षदवृन्द का मन निरवधि परम आनन्दमय रहता था ॥ ७८ ॥ तथा किसी का संकीर्तन के अतिरिक्त अन्य कोई कर्म नहीं था तथा सबका गोपाल भाव क्षण-क्षण में बढ़ता था ॥ ७९ ॥ बेंत, वंशी, सींग, छांदकोरी, गुंजामाला, ताड़पत्र हाथों में रहते थे व सबके चरणों में नूपुर थे ॥ ८० ॥ सबके शरीरों में कृष्णभाव निरन्तर रहता था जिससे अश्रु, कम्प, पुलक आदि जितने प्रेम लक्षण हैं—सदा बने रहते थे ॥ ८१ ॥ सबकी ऐसी है सुन्दरता जो कामदेव से अभिन्न थी तथा सभी निरन्तर संकीर्तन करते रहते थे ॥ ८२ ॥ अभयदाता स्वामी श्रीनित्यानन्द को पाकर भक्तवृन्द निरन्तर कौतुकी बने रहते थे ॥ ८३ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु के दासों की महिमा यदि सौ वर्ष तक कहें तो भी समाप्त नहीं होगी—॥ ८४ ॥ तथापि जिन-जिनके नाम को जानता हूँ उनको कहता हूँ नामों के स्मरण मात्र से ही संसार से पार हो जाओगे ॥ ८५ ॥ जिन २ के संग में श्रीनित्यानन्द का विहार होता था वे सब श्री-

नित्यानन्द स्वरूपेर निषेध लागिया । पूर्व नाम ना लिखिल विदित करिया ॥८७॥
परम पार्षद-रामदास महाशय । निरवधि ईश्वर-भावे से कथा कय' ॥८८॥
याँर वाक्य केहो झाट ना पारे बुझिते । निरवधि नित्यानन्द याँर हृदयेते ॥८९॥
सभार अधिक भावग्रस्त रामदास । तानदेहे कृष्ण आछिलेन तिन मास ॥९०॥
"श्रीदाम करिया यारे भागवते कहे । रामदासे सेइभाव जानिह निश्चये" ॥९१॥
प्रसिद्ध चैतन्यदास मुरारि पण्डित । याँर खेला महासर्प-व्याघ्रे र सहित ॥९२॥
रघुनाथ-वैद्य उपाध्याय महामति । याँर दृष्टि पाते कृष्णे हय रति मति ॥९३॥
प्रेमभक्ति-रसमय गदाधर दास । याँर दरशन-मात्र सर्व-पाप-नाश ॥९४॥
प्रेमरस-समुद्र-सुन्दरानन्द नाम । नित्यानन्दस्वरूपेर पार्षद प्रधान ॥९५॥
पण्डित कमलाकान्त-परम-उद्दाम । याँहारे दिलेन नित्यानन्द सप्तग्राम ॥९६॥
गौरीदासपण्डित-परम भाग्यवान् । काय मनो वाक्ये नित्यानन्द याँर प्राण ॥९७॥
बड़गाछि निवासी सुकृति कृष्णदास । याहार मन्दिरे नित्यानन्देर विलास ॥९८॥
पुरन्दर पण्डित-परम शान्त दान्त । नित्यानन्द स्वरूपेर वल्लभ एकान्त ॥९९॥
नित्यानन्द जीवन परमेश्वर दास । जाँहार विग्रहे नित्यानन्देर विलास ॥१००॥
धनञ्जय पण्डित-महान्त विलक्षण । याँहार हृदये नित्यानन्द अनुक्षण ॥१०१॥
प्रेमरसे महामत्त-बलरामदास । याँहार बातासे सब पाप याय नाश ॥१०२॥
यदुनाथ कविचन्द्र-प्रेमरसमय । निरवधि नित्यानन्द याँहार हृदय ॥१०३॥

---

नन्दराज की सभा के गोप-गोपियों के अवतार थे ॥ ८६ ॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप के निषेध करने से पहिले नाम विदित करके नहीं लिखे हैं ॥ ८७ ॥ महाशय रामदासजी प्रधान पार्षद थे निरन्तर ईश्वर भाव में कथा कहते रहते थे ॥ ८८ ॥ उनके वाक्यों को कोई शीघ्र समझ नहीं पाते थे तथा श्रीनित्यानन्द प्रभु उनके हृदय में निरन्तर निवास करते थे ॥ ८९ ॥ श्रीरामदासजी सबसे अधिक भावग्रस्त रहते थे उनके शरीर में तीन महीने तक कृष्णावेश रहा था ॥ ९० ॥ श्रीभागवत में श्रीदाम नाम से जो सम्बोधित हैं श्रीरामदास में निश्चय वही भाव जानो ॥ ९१ ॥ मुरारि पण्डित चैतन्यदास नाम से प्रसिद्ध हैं जो अजगर सर्प व व्याघ्रों से खेलते थे ॥ ९२ ॥ महामति रघुनाथ वैद्योपाध्याय थे जिनके दृष्टिपात से ही कृष्ण में रति व बुद्धि हो जाती थी ॥९३॥ श्रीगदाधरदासजी प्रेम भक्ति के रस से पूरित थे जिनके दर्शन मात्र से ही सब पाप नष्ट हो जाते थे ॥ ९४ ॥ सुन्दरानन्द नामक प्रेमरस के समुद्र थे वे नित्यानन्द के पार्षदों में प्रधान थे ॥ ९५ ॥ पण्डित कमलाकान्त बड़े उद्दण्ड थे, जिनको श्रीनित्यानन्दजी ने सप्तग्राम का वास दिया ॥ ९६ ॥ पण्डित गौरीदास बड़े भाग्यवान् थे शरीर मन व वाणी से श्रीनित्यानन्द ही जिनके प्राण थे ॥ ९७ ॥ बड़गाछि निवासी कृष्णदासजी बड़े सुकृती थे उन्हीं के मन्दिर में श्रीनित्यानन्द प्रभु का विलास होता था ॥ ९८ ॥ श्रीपुरन्दर पण्डित बड़े शान्त व दास थे वे श्रीनित्यानन्दस्वरूप के एकान्त प्रिय थे ॥ ९९ ॥ श्रीपरमेश्वरदासजी श्रीनित्यानन्द के जीवन ही थे जिनके शरीर में नित्यानन्द का विलास होता था ॥१००॥ श्रीधनंजय पण्डित विलक्षण महन्त थे जिनके हृदय में श्रीनित्यानन्द प्रभु क्षण-क्षण में स्फुरित होते थे ॥ १०१ ॥ श्रीबलरामदास प्रेमरस में बड़े

जगदीश पण्डित-परम ज्योतिर्धाम । सपार्षदे नित्यानन्द याँर धन प्राण ॥१०४॥
पण्डित-पुरुषोत्तम-नवद्वीपे जन्म । नित्यानन्दस्वरूपेर महा भृत्य मर्म ॥१०५॥
पूर्वे याँर घरे नित्यानन्देर वसति । याँहार प्रसादे हय नित्यानन्दे मति ॥१०६॥
राढ़े जन्म महाशय विप्र-कृष्णदास । नित्यानन्द पारिषदे याँहार विलास ॥१०७॥
प्रसिद्ध कालिया कृष्णदास त्रिभुवने । गौरचन्द्र लभ्य हय याँहार स्मरणे ॥१०८॥
सदा शिव कविराज-महाभाग्यवान् । याँर पुत्र-श्रीपुरुषोत्तमदास-नाम ॥१०९॥
बाह्य नाहि पुरुषोत्तमदासेर शरीरे । नित्यानन्दचन्द्र याँर हृदये बिहरे ॥११०॥
उद्धारनदत्त-महावैष्णव उदार । नित्यानन्द सेवाय याँहार अधिकार ॥१११॥
महेश पण्डित-अति परम महान्त । परमानन्द-उपाध्याय-वैष्णव एकान्त ॥११२॥
चतुर्भुज पण्डित नन्दन गङ्गादास । पूर्वे याँर घरे नित्यानन्देर विलास ॥११३॥
आचार्य-वैष्णवानन्द-परम-उदार । पूर्वे रघुनाथपुरी नाम ख्याति याँर ॥११४॥
प्रसिद्ध परमानन्द गुप्त महाशय । पूर्वे याँर घरे नित्यानन्देर आलय ॥११५॥
कृष्णदास देवानन्द दुइ शुद्ध मति । महान्त आचार्यचन्द्र-नित्यानन्द गति ॥११६॥
गायन माधवानन्द घोष महाशय । वासुदेव घोष-अति प्रेमरसमय ॥११७॥
महाभाग्यवन्त जीव पण्डित उदार । याँर घरे नित्यानन्दचन्द्रेर बिहार ॥११८॥
नित्यानन्द प्रिय-मनोहर, नारायण । कृष्णदास देवानन्द-एइ चारिजन ॥११९॥

---

भक्त रहते थे जिनकी पवन के स्पर्श से ही सब पाप नष्ट हो जाते थे ॥ १०२ ॥ श्रीयदुनाथ उपनाम (कविचंद्र) प्रेम रसमय थे जिनके निरन्तर हृदय में श्रीनित्यानन्द गौर स्थित रहते थे ॥ १०३ ॥ श्रीजगदीश पण्डित बड़े ज्योति के स्थान थे और पार्षदों सहित श्रीनित्यानन्द जिनके प्राणधन थे ॥ १०४ ॥ श्रीपुरुषोत्तम पण्डित का नवद्वीप में जन्म हुआ था वे श्रीनित्यानन्दस्वरूप के बड़े मर्मज्ञ दास थे ॥ १०५ ॥ पहिले जिनके घर में श्रीनित्यानन्दजी का वास हुआ तथा जिनकी कृपा से श्रीनित्यानन्दजी में बुद्धि होती है ॥ १०६ ॥ राढ़ देस-वासी कृष्णदास विप्र बड़े उदार थे श्रीनित्यानन्द पार्षदों में उनकी गिनती थी ॥ १०७ ॥ तीनों लोकों में कालिया कृष्णदास प्रसिद्ध थे जिनके स्मरण से ही श्रीगौरचन्द्र की प्राप्ति होती है ॥ १०८ ॥ सदाशिव कविराज बड़े भाग्यवान् थे जिनके पुत्र श्रीपुरुषोत्तमदास नाम के थे ॥१०९॥ श्रीनित्यानन्दचन्द्र उनके हृदय में विहार करते थे इस कारण पुरुषोत्तमदासजी के शरीर में बाह्य ज्ञान नहीं रहता था ॥११०॥ श्रीउद्धारन-दत्त बड़े उदार वैष्णव थे जिनको श्रीनित्यानन्द की सेवा करने का अधिकार प्राप्त था ॥ १११ ॥ महेश पण्डित परम महन्त थे तथा परमानन्द उपाध्याय बड़े एकनिष्ठ वैष्णव थे ॥ ११२ ॥ पण्डित चतुर्भुज के पुत्र श्रीगङ्गादास थे पहिले जिनके घर में श्रीनित्यानन्दजी ने विलास किया था ॥ ११३ ॥ श्रीवैष्णवानन्द आचार्य बड़े उदार थे पहिले रघुनाथपुरी नाम से जिनकी ख्याति थी ॥ ११४ ॥ महाशय परमानन्द गुप्त बड़े प्रसिद्ध थे जिनके घर में पहिले श्रीनित्यानन्द का निवास स्थान था ॥ ११५ ॥ श्रीकृष्णदास व श्रीदेवानन्द दोनों शुद्ध बुद्धि के थे तथा महन्त आचार्यचन्द्र के तो श्रीनित्यानन्दजी ही गति थे ॥ ११६ ॥ उदार माधवानन्द घोष गवैया थे श्रीवासुदेव घोष प्रेमपूर्ण थे तथा श्री जीव पण्डित बड़े भाग्यवान थे जिनके घर में

हिरण्य पण्डित आर द्विज कृष्णदास । याँर घरे निरवधि प्रभुर विलास ॥१२०॥
यत भृत्य नित्यानन्दचन्द्रेर सहिते । शत-वत्सरेओ ताहा ना पारि लिखिते ॥१२१॥
सहस्र-सहस्र एको सेवकेर गण । नित्यानन्द प्रसादे ताँराओ गुरु-सम ॥१२२॥
श्रीचैतन्यरसे सभे परम उद्दाम । सभार चैतन्य नित्यानन्द-धन प्राण ॥१२३॥
किछु मात्र आमि लिखिलाङ जानि याँरे । सकल विदित हैब वेदव्यास-द्वारे ॥१२४॥
सर्व शेष भृत्य तान-वृन्दावनदास । अवशेष पात्र-नारायणी-गर्भ जात ॥१२५॥
अद्यापिह वैष्णव मण्डले याँर ध्वनि । 'चैतन्येर अवशेष पात्र नारायणी' ॥१२६॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान ॥१२७॥

इति श्रीचैतन्यभागवते अन्त्यखण्डे श्रीनित्यानन्द चरित्र-वर्णनं नाम
षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

## सप्तमोऽध्याय

जय जय श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द । जय हउ यत तोमार चरणेर भृङ्ग ॥१॥
हेन मते महाप्रभु नित्यानन्दचन्द्र । सर्व-दास-सङ्गे करे कीर्तन आनन्द ॥२॥
वृन्दावन मध्ये येन करिलेन लीला । सेइमत नित्यानन्दस्वरूपेर खेला ॥३॥
अकैतव रूपे सर्व जगतेर प्रति । लओयायेन श्रीकृष्णचैतन्ये रति मति ॥४॥
पतित पावन-वाना नित्यानन्द प्रभु । ताँहार चरण बिनु ना सेविह कभु ॥५॥

---

श्रीनित्यानन्दजी का विहार होता था ॥ ११७-११८ ॥ श्रीमनोहर, श्रीनारायण, श्रीकृष्णदास, श्रीदेवानन्द ये चारों भक्त श्रीनित्यानन्दजी के अत्यन्त प्रिय थे॥११९॥ श्रीहिरण्य पण्डित और द्विज कृष्णदास वे थे जिनके घर में निरन्तर-प्रभु का विलास होता था ॥ १२० ॥ श्रीनित्यानन्दचन्द्र के साथ जितने भृत्यगण थे उनको सौ वर्ष में भी नहीं लिख पावेंगे ॥ १२१ ॥ एक २ दास के हजारों २ सेवक हैं वे भी नित्यानन्द के अनुग्रह से गुरू के समान हैं ॥ १२२ ॥ श्रीचैतन्य प्रेमरस में सभी बड़े उद्दाम हो रहे थे और प्रभु श्रीचैतन्य नित्यानन्द सभी के प्राण-धन थे ॥ १२३ ॥ मैं जिनको जानता हूँ उनके विषय में कुछ थोड़ासा लिखा है बाकी और तो श्रीवेदव्यास द्वारा विदित होगा ॥१२४॥ अवशेष पात्र नारायनी के गर्भ से उत्पन्न वृन्दावनदास ही श्रीनित्यानन्द प्रभु का सबसे न्यूनतम अन्तिम सेवक है ॥ १२५ ॥ आज पर्यन्त भी वैष्णवमण्डल में यह ध्वनि है कि चैतन्य की अवशेष पात्र नारायणी हैं ॥ १२६ ॥ श्रीवृन्दावनदास ठाकुर ( ग्रन्थकार ) श्रीकृष्ण-चैतन्य एवं नित्यानन्दचन्द्र को जानकर अर्थात् हृदय में धारण करके उनके ही युगल चरण-कमलों की महिमा गान करते हैं ॥ १२७ ॥

---

महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य व नित्यानन्द की जय हो २ तथा आपके चरण-कमलों के रसास्वादी भौंरों की जय हो ॥ १ ॥ इस प्रकार नित्यानन्द प्रभु सब सेवकों के संग कीर्तन द्वारा आनन्द की वर्षा करते थे ॥ २ ॥ जैसे वृन्दावन में लीला की थी उसी भाँति श्रीनित्यानन्दस्वरूप के सब खेल थे ॥३॥ वे निष्कपट रूप से सब जगत की रीति-मति को श्रीकृष्णचैतन्य में अर्पण करा रहे थे ॥४॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु ने पतितों को पावन पवित्र)

*जय नित्यानन्द चैतन्येर प्रियतम त्रिजगते आर केहो नाहि तोमा सम ७
आनन्दकन्द महाप्रभु प्रेम भक्तिदाता ये सेवये सेइ भक्ति पायेत सर्वथा ८
सकल जीवेर प्रभु करला प्रसाद खेमिला सकल महा महा अपराध ९
श्रीकृष्णचैतन्यदेव नित्यानन्द नाम। पृथिवीर भाग्य अवतारि अनुपाम ॥१०॥
आर कि कहिव कथा भाग्येर अवधि। श्रीचैतन्य नित्यानन्द महा गुणनिधि ॥११॥
अभिमान दुरन्त तथि ना पाइ कृष्णे रति। इहा जानि नित्यानन्दे करह भकति ॥१२॥
याहार प्रसादे पामर पाइल निस्तार। हेन प्रभु-नाम हार हउक गलार ॥१३॥
जय जय नित्यानन्द प्रेममय (रूप) धाम। स्वभावे परम शुद्ध नित्यानन्द नाम ॥१४॥
जगत-तारण हेतु याँर अवतार। ये जन ना भजे सेइ पापेर आकर ॥१५॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द एक देह। इहाते निश्चय करि कर एक नेह ॥१६॥
परमानन्दमय दुँहु मूरति रसाल। निताइ चैतन्यप्रभु श्रीरामगोपाल ॥१७॥
इहाते करए भिन्न अति बुद्धिहीन। आर ना देखिये तार विष्णु भक्ति चिह्न ॥१८॥
जय जय शची सुत आनन्द विहार। पतित पावन नाम विदित याहार ॥१९॥
निज नाम दिया जीव निस्तार करिल। हेन दयामय प्रभु भजिते नारिल ॥२०॥
काय-वाक्य-मने मोर प्रभुर शरण। मोर बड़ पतित नाहिक त्रिभुवन ॥२१॥

---

करने का बाना ले रक्खा है अतः उनके चरणों के अतिरिक्त और किसी की सेवा न करो ॥ ५ ॥ अत्यन्त मूर्ख मनुष्य महिमा नहीं जानते तथा ऊट-पटांग शब्द बोलते हैं वे पापिष्ठों की पराकाष्ठा हैं ॥६॥ श्रीचैतन्य के प्रियतम श्रीनित्यानन्दजी की जय हो तीनों लोक में अन्य कोई आपके समान नहीं है ॥७॥ प्रेमभक्ति दाता आनन्दकन्द श्रीनित्यानन्द प्रभु की जो सेवा करते हैं उन्हीं को सर्वथा भक्ति प्राप्त होती है ॥ ८ ॥ प्रभु ने सभी जीवों पर कृपा की है—उनने सभी के महान् अपराध क्षमा कर दिये हैं ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णचैतन्य व नित्यानन्द नामक प्रभु पृथ्वी के भाग्य से ही अपूर्व अवतार हुए हैं ॥ १० ॥ श्रीचैतन्यदेव श्रीनित्यानन्दजी बड़े गुणनिधि प्रभु हैं और क्या कहूँ वे तो भाग्य की सीमा ही हैं ॥ ११ ॥ दुराचारी व अभिमानियों को कृष्ण रति प्राप्त नहीं होती है यही जानकर श्रीनित्यानन्दजी के चरणों में भक्ति करो ॥१२॥ जिनकी कृपा से पामरों ( नीचों ) का भी निस्तार हो गया ऐसे प्रभु के नाम मेरे गले में हार हों ॥ १३ ॥ प्रेममय धाम श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो और नित्यानन्द नाम तो स्वाभाविक ही परम शुद्ध है ॥ १४ ॥ जगत् के उद्धार के निमित्त ही जिनका अवतार हुआ है जो मनुष्य उनको नहीं भजते हैं वे पापों की खानि हैं ॥ १५ ॥ श्रीकृष्णचैतन्य व श्रीनित्यानन्द प्रभु दोनों एक देह हैं ऐसा निश्चय करके एकसा स्नेह करो ॥ १६ ॥ दोनों ही परम आनन्दमय रसाल मूर्ति हैं तथा दोनों ही श्रीनित्यानन्द व चैतन्य प्रभु श्रीराम व श्रीकृष्ण हैं ॥ १७ ॥ इसमें जो भेद करते हैं वे अतिशय बुद्धिहीन हैं और उनको विष्णु भक्ति के चिन्ह नहीं दीखेंगे ॥ १८ ॥ प्रेमानन्द विहारकारी शची पुत्र की जय हो २ और जिनका पतित पावन नाम विदित है ॥१९॥ अपने नाम को दान देकर जीवों का निस्तार किये हैं हाय ऐसे दयामय प्रभु को नहीं भजन कर सका ॥ २० ॥ शरीर

---

* ७ से २६ पयार तक अन्य पुस्तकों में पाठाधिक है

जय जय गौरचन्द्र भुवन सुन्दर । प्रकाशह पाद मोर हृदय-भितर ॥२२॥
यत यत विहार करिला गौड़देशे । सकल प्रकाश मोर हउक विशेषे ॥२३॥
जय जय लक्ष्मीकान्त त्रिभुवन नाथ । चरणे शरण मोर हउक एकान्त ॥२४॥
आर अवतारे कहि नाना विध धर्म्म । केवल कहिल एवे प्रेम-भक्ति मर्म ॥२५॥
इहाते याहार मति नहिल आनन्द । ताहारेइ जानिह पापिष्ठ महा अन्ध ॥२६॥
सङ्गे पारिषद्गण-परम उद्दाम । सर्व नवद्वीपे भ्रमे महा ज्योतिर्धाम ॥२७॥
अलंकार मालाय पूर्णित कलेवर । कर्पूर-ताम्बूल शोभे सुरंग अधर ॥२८॥
देखि नित्यानन्द महाप्रभुर विलास । केहो सुख पाय, कारो ना जन्मे विश्वास ॥२९॥
सेइ नवद्वीपे एक आछेन ब्राह्मण । चैतन्येर सङ्गे तान पूर्व अध्ययन ॥३०॥
नित्यानन्दस्वरूपेर देखिया विलास । चित्ते किछु तान जन्मियाछे अविश्वास ॥३१॥
चैतन्यचन्द्रेते तान बड़ दृढ़-भक्ति । नित्यानन्दस्वरूपेर ना जानेन शक्ति ॥३२॥
दैवे सेइ ब्राह्मण गेलेन नीलाचले । तथाइ आछेन कथोदिन कुतूहले ॥३३॥
प्रति दिन जाय विप्र चैतन्येर स्थाने । परम विश्वास तान प्रभुर चरणे ॥३४॥
दैवे एक दिन सेइ ब्राह्मण निभृते । चित्ते इच्छा करिलेन किछु जिज्ञासिते ॥३५॥
विप्र बोले प्रभु मोर एक निवेदन । करिमु तोमार स्थाने, यदि देह मन ॥३६॥
मोरे यदि भृत्य हेन ज्ञान थाके मने । इहार कारण प्रभु कह श्रीवदने ॥३७॥

---

वाणी व मन से मैं प्रभु की शरणागति हूँ देखो मुझसे अधिक पतित तीनों लोकों में नहीं है ॥ २१ ॥ भुवन सुन्दर श्रीगौरचन्द्र की जय हो २ प्रभो ! मेरे हृदय में अपने चरण-कमलों का प्रकाश करो ॥ २२ ॥ गौड़देश में जितना विहार किया है वह सब मेरे हृदय में विशेष रूप से प्रकाशित हो ॥ २३ ॥ हे त्रिभुवननाथ लक्ष्मी-कान्त आपकी जय हो २ आपके चरणों में मुझे एकान्त शरण मिले ॥ २४ ॥ अन्य अवतारों में अनेक प्रकार के धर्म उपदेश किये थे; परन्तु इस अवतार में तो केवल प्रेम-भक्ति का ही मर्म कहा है ॥२५॥ इसमें जिसकी बुद्धि को आनन्द न हो उसे महापापी व अन्धा ही जाना ॥ २६ ॥ बड़े उद्दाम पारिषदों के साथ में बड़े ज्योतिर्धाम श्रीनित्यानन्दजी सब नवद्वीप में भ्रमण करते थे ॥२७॥ अलंकार व मालाओं से सब शरीर भरा था तथा कर्पूरयुक्त ताम्बूल से सुन्दर रँगे हुए होंठ शोभा पा रहे थे ॥२८॥ श्रीनित्यानन्द महाप्रभु के विलास को देखकर कोई सुख पाते थे व किसी को विश्वास उदय नहीं होता था ॥२९॥ उसी नवद्वीप में एक ब्राह्मण रहता था पहिले श्रीचैतन्य प्रभु का सह-पाठी था ॥३०॥ नित्यानन्दस्वरूप के विलास को देखकर उसके चित्त में कुछ अविश्वास उत्पन्न हो गया ॥ ३१ ॥ उसको श्रीचैतन्यचन्द्र में तो बड़ी दृढ़ भक्ति थी, परन्तु श्रीनि-त्यानन्दस्वरूप की शक्ति को वह नहीं जान सका ॥ ३२ ॥ दैववश वह ब्राह्मण नीलाचल को गया वहाँ कुछ दिन कुतूहल से रहे ॥ ३३ ॥ वह विप्र प्रतिदिन चैतन्य के स्थान में जाता था प्रभु के चरणों में उसका बड़ा विश्वास था ॥ ३४ ॥ दैववश एक दिन उस ब्राह्मण ने एकान्त में बैठकर कुछ पूँछने की मनमें इच्छा की ॥ ३५ ॥ विप्र ने कहा प्रभो ! मेरा एक निवेदन है यदि विचार करें तो निवेदन करूँ ? ॥ ३६ ॥ प्रभो ! यदि मेरे प्रति आपका भृत्य होने का भाव आपके मनमें है तो श्रीमुख से इसका कारण निवेदन करें ? ३७

धातु द्रव्य परशिते नाहि सन्यासीरे  सोणा रूपा मुक्ता मे सकल कलेवरे  ४०
काषाय कोपीन छाडि दिव्य पट्टवास  धरेन चन्दन माला सदाइ विलास ।।४१।।
दण्ड छाड़ि लौहदण्ड धरेन वा केने । शूद्रेर आश्रमे से थाकेन सर्व क्षणे ।।४२।।
शास्त्र-मत शुनि तान ना देखों आचार । एतेके मोहोर चित्ते सन्देह अपार ।।४३।।
'बड़लोक' बलि ताँरे बोले सर्व जने । तथापि आश्रमाचार ना करेन केने ।।४४।।
यदि मोरे 'भृत्य' हेन ज्ञान थाके मने । कि मर्म इहार, प्रभु कह श्रीवदने ।।४५।।
सुकृति ब्राह्मण प्रश्न कैल शुभ क्षणे । अमायाय प्रभु तत्त्व कहिलेन ताने ।।४६।।
शुनिञा विप्रेर वाक्य गौराङ्गसुन्दर । हासिया विप्रेर प्रति करिला उत्तर ।।४७।।
शुन विप्र यदि महा-अधिकारी हय । तबे तान गुण दोष किछु ना जन्मय ।।४८।।

तथाहि भागवते ११।२०।३६

"न मय्येकान्तभक्तानां गुणदोषोद्भवा गुणाः। साधूनां समचित्तानां बुद्धेः परमुपेयुषाम्"।।१।।

पद्म पत्रे कभू येन ना लागये जल । एइ मत नित्यानन्दस्वरूप निर्मल ।।४९।।
परमार्थे कृष्णचन्द्र ताहान शरीरे । निश्चय जानिह विप्र सर्वदा विहरे ।।५०।।
अधिकारी बइ करे ताहान आचार । दुःख पाय सेइ जन, पाप जन्मे तार ।।५१।।

---

अवधूत श्रीनित्यानन्दजी नवद्वीप में आकर किस प्रकार की लीला करते हैं मैं तो कुछ समझ नहीं पाता ? ।।३८।। उनको सब लोग सन्यास आश्रमी बतलाते हैं और वे सब समय कपूर व ताम्बूल भक्षण करते रहते हैं ।। ३९ ।। सन्यासी तो धातु द्रव्य का स्पर्श किया नहीं करते, परन्तु वे अपने सब शरीर में सोना, चाँदी, मुक्तादि धारण करते हैं ।।४०।। और गैरिक (काषाय) कोपीन छोड़कर सदा दिव्य रेशमी वस्त्र, चन्दन माला आदि विलासी सामिग्री धारण करते हैं ।। ४१ ।। तथा दण्ड छोड़कर न जाने लौहदण्ड क्यों धारण करते हैं ? और सदा ही शूद्रों के घरों में रहते हैं ।।४२।। शास्त्र में सन्यासियों के आचार सम्बन्ध में जो व्यवस्था है उसके अनुसार मैं तो उनके आचार कुछ भी नहीं देखता हूँ इसी कारण से मेरे मनमें अपार सन्देह है ।। ४३ । सब मनुष्य तो उनको "बड़े लोग हैं" यों कहकर बोलते हैं तथापि वे आश्रमोचित आचार क्यों नहीं करते ? ।। ४४ ।। यदि आप मेरे प्रति मनमें दास ज्ञान रखते हो तो प्रभो ! इसका क्या मर्म है श्रीमुख से कहें ? ।।४५।। सुकृति ब्राह्मण ने शुभ क्षण में प्रश्न किया, था प्रभु ने निष्कपट भाव से उससे तत्त्व वर्णन किया ।। ४६ । श्रीगौराङ्गसुन्दर विप्र के वाक्य सुनकर हँसे तथा उसके प्रति उत्तर दिया ।। ४७ ।। हे विप्र ! सुनो यदि श्रेष्ठ अधिकारी होय तो उनको गुण दोष नहीं लगते हैं ।। ४८ ।। जिनके रागादि दोष विशेष रूप से दूर हो गये हैं व जो लोग सबन को समान भाव से देखते हैं सुतरां जो लोग प्रकृति से परे परमेश्वर को प्राप्त हुए हैं मेरे उन एकान्त भक्तों का विधिनिषेध जनित पाप व पुण्यों के साथ सम्पर्क नहीं होता ।।१।। जैसे कमल के पत्ते में कभी जल नहीं लगता इसी प्रकार नित्यानन्दस्वरूप निर्मल हैं ।। ४९ ।। हे विप्र ! तुम यह निश्चय ही जान लो कि परमार्थतत्त्व में कृष्णचन्द्र उनके शरीर में सदा विहार करते हैं ।।५०।। अधिकारी

रुद्र विने अन्ये यदि करे विष-पान । सर्वथाय मरे सर्व पुराण प्रमाण ॥५२॥

तथाहि भागवते १० स्कन्धे ३३ अध्याये ३० श्लोके—

"नैतत्समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः । विनश्यत्याचरन्मौढ्याद्यथारुद्रोऽब्धिजं विषम्" ॥२॥

तथाहि भागवते १०।३३।२९—

"धर्मव्यतिक्रमोदृष्ट ईश्वराणाञ्च साहसम् । तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा" ॥३॥

"एतेके ये ना जानिञा निन्दे तान कर्म । निजदोषे सेइ दुख पाय जन्म जन्म ॥५३॥

गर्हितो करये यदि महा-अधिकारी । निन्दार कि दाय, ताँरे हासिलेइ मरि ॥५४॥

भागवत हइते ए सब तत्व जानि । ताहो यदि वैष्णव-गुरुर मुखे शुनि ॥५५॥

महान्तेर आचरणे हासिले ये हय । चित्तदिया शुन भागवते जेइ कय ॥५६॥

एक काले राम-कृष्ण गेलेन पढ़िते । विद्यापूर्ण करि चित्त करिला आसिते ॥५७॥

'कि दक्षिणा दिव बलिलेन गुरु प्रति । तवे पत्नी सङ्गे गुरु करिला युगति ॥५८॥

मृतपुत्र मागिलेन राम-कृष्ण-स्थाने । तवे राम-कृष्ण गेला यमेर सदने ॥५९॥

आज्ञाय शिशुर सर्वकर्म घुचाइया । यमालय हैते पुत्र दिलेन आनिया ॥६०॥

परम अद्भुत शुनि ए सब आख्यान । देवकीओ मागिलेन मृत-पुत्र-दान ॥६१॥

दैवे एकदिन राम कृष्ण सम्बोधिया । कहेन देवकी अति कातर हइया ॥६२॥

'शुनशुन रामकृष्ण योगेश्वरेश्वर । तुमि दुइ आदि नित्य शुद्ध कलेवर ॥६३॥

सर्वजगतेर पिता-तुमि-दुइ-जन । मुञि जानों तुमि-दुइ परम-कारण ॥६४॥

---

के बिना यदि उनका सा आचरण करेंगे तो वे जन दुःख पावेंगे और उनको पाप जन्मेगा ॥ ५१ ॥ रुद्र के बिना यदि अन्य कोई विषपान करेंगे तो सर्वथा मरेंगे यह सब पुराणों में प्रमाण है ॥ ५२ ॥ देहादि परतन्त्र व्यक्ति कभी मन से भी आचरण न करे, यदि मूर्खतावश रुद्र से भिन्न अन्य कोई जन समुद्र से उत्पन्न काल कूट विष का पान करे तो उसी समय निश्चय ही विनाश को प्राप्त होगा ॥ २ ॥ ईश्वरगणों का जो धर्म का व्यतिक्रम व साहस परिलक्षित होता है वह जैसे सबको भक्षण करने से अग्नि अपवित्र नहीं होता है वैसे ही तेजस्वि पुरुषों के धर्म व्यतिक्रम दोष का निमित्त नहीं होता है ॥ ३ ॥ इसी से जो न जानकर उनके कर्मों की निन्दा करते वे अपने दोष से जन्म-जन्मान्तर दुख पाते है ॥ ५३ ॥ यदि श्रेष्ठ अधिकारी गर्हित कर्म भी करे तो भी निन्दा की तो बात दूर रही उनकी हँसी करने से ही मर जायेंगे ॥५४॥ यदि ये सब बातें वैष्णव वे गुरु मुख से सुनी जाती हैं, तब सब तत्त्व भागवत से जाना जाता है॥५५॥महान्तों के आचरणों पर हँसने से जो होता है भागवत में जैसा वर्णन है, उसे चित्त देकर सुनो ॥ ५६ ॥ एक समय में रामकृष्ण पढ़ने को गये विद्या पूर्णरूप से पढ़कर आने को मन किया ॥५७॥ गुरुजी से कहा "गुरुजी क्या दक्षिणा दें" तब पत्नी के साथ में गुरु ने युक्ति की कि इनसे क्या लें ? ॥५८॥ रामकृष्ण से अपने मृतक पुत्र को माँगा, तब श्रीराम कृष्ण दोनों भाई यमराज के स्थान पर पहुँचे ॥ ५९ ॥ आज्ञा द्वारा उस शिशु के सब कर्म दूर कराकर यमलोक से लाकर गुरु पुत्र दे दिया ॥ ६० ॥ इस परम अद्भुत प्रसंग को सुनकर देवकी ने भी मरे पुत्रों का दान माँगा ॥ ६१ ॥ दैववश देवकी देवी ने रामकृष्ण को सम्बोधन करके अतिकातर होकर कहा ॥ ६२ ॥ हे योगेश्वरों के ईश्वर राम-कृष्ण सुनो तुम दोनों आदि व नित्य शुद्ध कलेवर हो ६३ तुम दोनों

जगतेर उतपत्ति स्थिति वा प्रलय। याहार अंशेर अंश हैते सर्व हय ॥६५॥
तथापिह पृथिवीते खण्डाइते भार। हइयाछ मोर पुत्ररूपे अवतार ॥६६॥
यम-घर हैते येन गुरुर नन्दन। आनिञा दक्षिणा दिला तुमि-दुइजन ॥६७॥
मोर छय पुत्र ये मरिल कंस हैते। बड़ चित्त मोर ताहा सभारे देखिते ॥६८॥
कतकाल गुरुपुत्र आछिल मरिया। ताहा येन आनि दिला शक्ति प्रकाशिया ॥६९॥
एइमत आमारेओ कर पूर्णकाम। आनि देह' मोरे मृत छय पुत्र दान ॥७०॥
शुनि जननीर वाक्य कृष्ण संकर्षण। सेइक्षणे चलिगेला वलिर भवन ॥७१॥
निज इष्टदेव देखि वलि महाराज। मग्न हइलेन प्रेमानन्द सिन्धु माझ ॥७२॥
देह गेह पुत्र वित्त सकल बान्धव। सेइक्षणे पादपद्मे आनि दिला सब ॥७३॥
लोमहर्ष अश्रुपात पुलक आनन्दे। स्तुति करे पादपद्म धरि वलि कान्दे ॥७४॥
जय जय प्रकट अनन्त सङ्कर्षण। जय जय कृष्णचन्द्र गोकुल भूषण ॥७५॥
जयसख्य गोपाचार्य्य हलधर राम। जयजय कृष्णचन्द्र भक्त मनस्काम ॥७६॥
यद्यपिह शुद्धसत्व देव-ऋषिगण। ता' सभारो दुर्लभ तोमार दरशन ॥७७॥
तथापि हेन से प्रभु ! करुणा तोमार। तमोगुण असुरेरे हओ साक्षात्कार ॥७८॥
अतएव शत्रु मित्र नाहिक तोमाते। वेदेओ कहेन, इहा देखिओ साक्षाते ॥७९॥
मारिते ये आइल लइया विषस्तन। ताहारेओ पाठाइला वैकुण्ठभवन ॥८०॥
अतएव तोमार हृदय बूझिवारे। वेदे शास्त्रे योगेश्वर सभेओ ना पारे ॥८१॥

---

सब जगत् के पिता हो तुम दोनों को मैं परम कारण जानती हूँ ॥ ६४ ॥ जगत् की उत्पत्ति स्थिति व प्रलय आदि जिनके अंश के अंश द्वारा सब कार्य होता है ॥ ६५ ॥ तथापि पृथ्वी का भार खण्डन करने के लिये मेरे पुत्र रूप से अवतीर्ण हुए हो ॥६६॥ जैसे यमलोक से गुरु का पुत्र लाकर तुम दोनों ने गुरुजी को दक्षिणा दीनी थी ॥ ६७ ॥ मेरे जो छै पुत्र कंस द्वारा मारे गये उन सबको देखने की मेरे मनमें बड़ी अभिलाषा है ॥ ६८ ॥ गुरु के पुत्र भी कितने दिन के मरे थे जैसे शक्ति प्रकाश करके वे ला दिये ॥ ६९ ॥ इसी प्रकार मेरी भी मनोकामना पूर्ण करो मेरे मरे हुए छै पुत्रों का दान दो ॥ ७० ॥ कृष्ण बलराम दोनों जननी के वाक्य सुनकर उसी क्षण वलि के भवन को गये ॥ ७१ ॥ बलि महाराज अपने इष्टदेव के दर्शन करके प्रेमानन्द सिन्धु में मग्न हो गये ॥ ७२ ॥ सब बान्धव, निज देह, गृह, पुत्र, वित्त ( धन ) आदि उसी क्षण पादपद्मों में लाकर रख दिया ॥७३॥ बलि के शरीर में रोमाञ्च, अश्रुपात व पुलक हो रहे थे और चरण-कमलों को पकड़कर प्रेमानन्द में रोते हुए बलि स्तुति करने लगा ॥ ७४ ॥ प्रकट अनन्तदेव श्रीसंकर्षन की जय हो २, गोकुल के भूषन श्रीकृष्णचन्द्र की जय-हो २ और सख्य भाव के गोपों के आचार्य हलधर श्रीबलराम की जय हो जय हो, भक्तों की मनोकामना पूर्णकारी कृष्णचन्द्र की जय हो २ ॥ ७५-७६ ॥ यद्यपि देवऋषिगण शुद्ध सत्त्वरूप होने पर भी उनको आपके दर्शन दुर्लभ हैं ॥ ७७ ॥ तथापि प्रभो ! आपकी ऐसी करुणा है कि हम तमोगुणी असुरों को भी साक्षात्कार हुए हो ॥७८॥ अतएव तुम्हारा कोई शत्रु व मित्र नहीं है वेदों में ऐसा कहा,यही देख भी रहे हैं ७९ जो स्तनों में विष लगाकर मारने को आई उसको भी वैकुण्ठ लोक भेज दिया

योगेश्वर-सब यार माया नाहि जाने । मुञि पापी असुर वा जानिब केमने ॥८२॥
एइ कृपाकर' मोरे सर्वलोक नाथ । गृह-अन्धकूपे मोर नहु आत्म-पात ॥८३॥
तोमार दुइ पादपद्म हृदये भाविया । शान्त हइ वृक्ष मूले पड़ि थाकों गिया ॥८४॥
तोमार दासेर मेले मोरे कर' दास । आर येन चित्ते मोर किछु नहे आश ॥८५॥
राम-कृष्ण-पादपद्म धरिया हृदय । एइमत स्तुति करे बलि-महाशय ॥८६॥
ब्रह्मलोक शिवलोक ये चरणोदके । पवित्र करितेछेन भागीरथी रूपे ॥८७॥
हेन पुण्य-जल बलि गोष्ठीर सहिते । पानकरे शिरे धरे भाग्योदय हैते ॥८८॥
गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र, अलंकार । पादपद्मे दिया बलि करे नमस्कार ॥८९॥
'आज्ञा कर' प्रभु मोरे शिखाओ आपने । यदि मोरे भृत्य हेन ज्ञान थाके मने ॥९०॥
ये करये प्रभु ! आज्ञा पालन तोमार । सेइ जन हय विधि-निषेधेर पार ॥९१॥
शुनिञा बलिर वाक्य प्रभु तुष्ट हैला । ये निमित्त आगमन कहिते लागिला ॥९२॥
प्रभुबोले 'शुनशुन बलि-महाशय । ये निमित्ते आइलाङ तोमार आलय ॥९३॥
आमार मा'येर छयपुत्र पापी कंसे । मारिलेक, सेइपापे सेहो मैल शेषे ॥९४॥
निरवधि सेइ पुत्र शोक स्मङरिया । कान्देन देवकी-देवी दुखित हइया ॥९५॥
तोमार निकटे आछे सेइ छय जन । ताहा निव जननीर सन्तोष कारण ॥९६॥
से सब ब्रह्मार पौत्र सिद्ध देवगण । ता सभार एत दुःख शुन ये कारण ॥९७॥

---

॥ ८० ॥ इसी से आपके हृदय को वेद-शास्त्र व योगेश्वर आदि कोई भी समझ नहीं पाते हैं ॥ ८१ ॥ योगेश्वर मात्र जिनकी माया को नहीं जानते हैं मैं पापी असुर किस प्रकार जानूँगा ॥ ८२ ॥ हे सब लोकों के स्वामी मेरे ऊपर ऐसी कृपा करो जिससे गृहरूप अन्धकूप में मेरी आत्मा का पतन न हो ॥ ८३ ॥ तथा आप दोनों के चरण-कमलों की हृदय में भावना करता हुआ मैं जाकर शान्त होकर वृक्षों की जड़ों में पड़ा रहूँ ॥ ८४ ॥ तथा अपने दासों के दल में मेरा भी नाम गणना करो मेरे मनमें और किसी बात की इच्छा नहीं है॥८५॥ श्रीराम-कृष्ण के चरण-कमलों को हृदय में धारण करके बलि महाशय ने यों स्तुति की ॥८६॥ जिनके चरणों का जल भागीरथी ( गङ्गा ) के रूप से ब्रह्मलोक, शिवलोक आदि लोकों को पवित्र कर रहा है ॥ ८७ ॥ उसी पुण्य तीर्थ (जल) को भाग्योदय होने के कारण बलि राजा सकुटुम्ब शिर पर धारण करके पान कर रहे थे ॥ ८८ ॥ बलि महाराज ने चरण-कमलों में गन्ध-फूल-धूप-आरती-वस्त्र व अलङ्कार देकर प्रणाम किया ॥ ८९ ॥ यदि अपने मनमें मुझे दास जानते हों तो प्रभो ! आज्ञा करो तथा मुझे शिक्षा दीजिये ॥ ९० ॥ हे प्रभो ! जो आपकी आज्ञा का पालन करता है वही जन विधि व निषेध से पार होता है ॥ ९१ ॥ बलि के वाक्यों को सुनकर दोनों प्रभु सन्तुष्ट हुए और जिस निमित्त गये थे वह कहा ॥ ९२ ॥ प्रभु बोले "हे बलि महाशय सुनो तुम्हारे पास जिस निमित्त आया हूँ उसका कारण सुनो ॥ ९३ ॥ मेरी माता के छै पुत्र पापी कंस ने मारे थे अन्त में वह भी उन्हीं की हत्या के पाप से मर गया ॥९४॥ श्रीदेवकी देवी उन्हीं पुत्रों के शोक से दुःखित होकर स्मरण करके निरन्तर रुदन करती हैं ॥ ९५ ॥ वे छहों जन तुम्हारे पास हैं माता के सन्तोष के लिये मैं उन्हें ले जाऊँगा ॥ ९६ ॥ वे सब सिद्ध देवगण ब्रह्मा के नाती ( पौत्र )

प्रजापति मरीचि ये ब्रह्मार नन्दन । पूर्वे तान पुत्र छिल एइ छय जन ॥९८॥
दैवे ब्रह्मा काम शरे हइयाँ मोहित । लज्जा छाड़ि कन्या प्रति करिलेन चित ॥९९॥
ताहा देखि हाँसिलेन एइ छय जन । सेइ दोषे अधःपात हैल सेइ क्षण ॥१००॥
महान्तेर कर्मेते करिला उपहास । असुर योनिते पाइलेन गर्भवास ॥१०१॥
हिरण्यकशिपु जगतेर द्रोह करे । देव-देह छाड़िया जन्मिला तार घरे ॥१०२॥
तथाओ इन्द्रेर वज्राघाते छय जन । नाना दुःख यातनाय पाइल मरण ॥१०३॥
तबे योगमाया धरि आनि आरबार । देवकीर गर्भे निञा करिला संचार ॥१०४॥
ब्रह्मारे ये हासिलेन, सेइ पाप हैते । सेहो देहे दुःख पाइलेन नाना मते ॥१०५॥
जन्म हैते अशेष प्रकार यातनाय । भागिना-तथापि मारिलेन कंस-राय ॥१०६॥
देवकी ए सब गुप्त रहस्य ना जानि । ता सभारे कान्देन आपन पुत्र मानि ॥१०७॥
सेइ छय पुत्र जननीरे दिब दान । एइ कार्य लागि आइलाङ तोमा स्थान ॥१०८॥
देवकीर स्तन पाने सेइ छय जन । शाप हैते मुक्त हइबेन सेइ क्षण ॥१०९॥
प्रभु बोले 'शुन-शुन बलि महाशय । वैष्णवेर कर्मेते हासिले हेन हय ॥११०॥
सिद्ध-सबो पाइलेन एतेक यातना । असिद्ध-जनेर दुःख कि कहिब सीमा ॥१११॥
ये दुष्कृति जन वैष्णवेर निन्दा करे । जन्म-जन्म निरवधि सेइ दुखे मरे ॥११२॥
शुन बलि ! एइ शिक्षा कराइ तोमारे । कभू जानि निन्दा हास्य कर वैष्णवेरे ॥११३॥
मोर पूजा मोर नामग्रहण ये करे । मोर भक्त निन्दे यदि तारो विघ्न धरे ॥११४॥

थे उन सबको जिस कारण इतना दुःख हुआ सो सुनो ॥ ९७ ॥ पहिले मरीचि नामक प्रजापति जो ब्रह्मा के पुत्र थे ये छहों उनके पुत्र थे ॥ ९८ ॥ दैववश ब्रह्माजी ने काम के बाणों से मोहित होकर लाज छोड़कर कन्या के प्रति चित्त किया ॥ ९९ ॥ उनको देखकर ये छहों हँस पड़े उसी क्षण उसी दोष से इनका अधःपतन हुआ ॥ १०० ॥ महानुभाव के कर्म पर उपहास किया जिससे असुर योनि में गर्भवास को प्राप्त हुए ॥१०१॥ देव देह को छोड़कर जगत् के साथ द्रोह करने वाले हिरण्यकशिपु के घर में जन्म लिया ॥ १०२ ॥ वहाँ पर इन्द्र के वज्राघात से छहों जनों ने अनेक दुःख व यातना भोगकर शरीर छोड़ा ॥ १०३ ॥ उसके पीछे पुनः और योगमाया ने पकड़कर उन्हें देवकी के गर्भ में लेकर संचार कर दिया ॥ १०४ ॥ ब्रह्मा की हँसी करने के पाप से उस देह में भी अनेक प्रकार के दुःखों को प्राप्त हुए ॥ १०५ ॥ जन्म से ही अशेष प्रकार की यातना द्वारा बहिन के पुत्र होने पर भी कंस राजा ने मार डाला ॥१०६॥ देवकी इन सब गुप्त रहस्यों को न जानकर उन सबको अपना पुत्र मानकर रोती है ॥ १०७ ॥ उन्हीं छय पुत्रों को माता को दान दूँगा इस कार्य के निमित्त मैं तुम्हारे पास आया हूँ ॥ १०८ ॥ वे छहों जन देवकी का स्तन पान करने से उसी क्षण शाप मुक्त हो जाँयगे ॥ १०९ ॥ प्रभु ने कहा हे महाशय बलि सुनो वैष्णवों के कर्मों पर हँसने से ऐसा होता है ॥ ११० ॥ सिद्ध देवगणों को इतनी यातनायें प्राप्त हुई और जो सिद्ध नहीं है उनके दुःखों की सीमा क्या कहूँ ॥ १११ ॥ जो दुष्टजन वैष्णवों की निन्दा करते हैं, वे निरन्तर उसी दुःख से जन्म २ में मरते हैं॥११२॥ हे बलिराज तुम्हें यह शिक्षा प्रदान करता हूँ तुम कभी जानकर वैष्णवों निन्दा व हँसी न करना ११३

मोर भक्त-प्रति प्रेमभक्ति करे ये । निःसंशय निःसंशय मोरे पाय से ॥११५॥

तथाहि वराहपुराणे—

"सिद्धिर्भवति वा नेति संशयोऽच्युतसेविनाम् । निःसंशयस्तु तद्भक्तपरिचर्य्यारतात्मनाम्" ॥४॥

मोर भक्त ना पूजे, मोहोरे पूजे मात्र । से दाम्भिक, नहे मोर प्रसादेर पात्र ॥११६॥

तथाहि ( श्रीहरिभक्तिसुधोदये १६।७६ )

"अभ्यर्चयित्वा गोविन्दं तदीयान्नार्चयन्ति ये । न ते विष्णुप्रसादस्य भाजनं दाम्भिका जनाः" ॥५॥

'तुमि बलि मोर प्रिय सेवक सर्वथा । अतएव तोमारे कहिलूँ गोप्य-कथा ॥११७॥

"शुनिञा प्रभुर शिक्षा बलि-महाशय । अत्यन्त आनन्दयुक्त हइला हृदय ॥११८॥

सेइक्षणे छय शिशु आज्ञा शिरे धरि । सम्मुखे दिलेन आनि पुरस्कार करि॥११९॥

तबे राम-कृष्ण प्रभु लइ छय जन । जननीरे आनिञा दिलेन सेइक्षण ॥१२०॥

मृतपुत्र देखिया देवकी सेइक्षणे । स्नेहे स्तन सभारे दिलेन हर्षमने ॥१२१॥

ईश्वरेर अवशेष स्तन करि पान । सेईक्षणे सभार हइल दिव्य-ज्ञान ॥१२२॥

दण्डवत् हइ सभे ईश्वर-चरणे । पड़िलेन साक्षाते देखिल सर्वजने १२३॥

तबे प्रभु कृपादृष्ट्ये सभारे चा'हिया । शिखाइते लागिलेन सदय हइया ॥१२४॥

"चलचल देवगण याह निज-बास । महान्तेरे आर पाछे कर'उपहास ॥१२५॥

ईश्वरेर शक्ति ब्रह्मा ईश्वर समान । मन्द कर्म करिलेओ मन्द नहे तान ॥१२६॥

ताहाने हासिया एत पाइल यातना । हेन बुद्धि नहु आर-करिह कामना ॥१२७॥

'ब्रह्मा स्थाने जाइ मागि लह अपराध । तबे सभे चित्ते पुन पाइबे प्रसाद ॥१२८॥

---

यदि जो मेरी पूजा व मेरे नामों को ग्रहण करता हो परन्तु मेरे भक्तों की निन्दा करे तो उनको भी यह विघ्न होते हैं ॥ ११४ ॥ जो मेरे भक्तों के प्रति प्रेम-भक्ति करते हैं वे ही निःसन्देह मुझे प्राप्त करते हैं ॥ ११५ ॥ ॥ अनुवाद हो चुका है ॥ जो मेरे भक्तों की पूजा नहीं करते केवल मेरी ही पूजा करते हैं वे दम्भ करने वाले मेरे अनुग्रह के पात्र नहीं होते ॥ ११६ ॥ जो लोग गोविन्द की पूजा करके गोविन्द आश्रित भक्तों की पूजा नहीं करते, वे श्रीकृष्ण के अनुग्रह के पात्र नहीं हैं; वे केवल कपटीजन हैं ॥ ५ ॥ हे बलि ! तुम मेरे सर्वथा प्रिय सेवक हो; इसी कारण मैंने तुमसे गोपनीय कथा कही है ॥ ११७ ॥ प्रभु की शिक्षा सुनकर बलि महाशय का हृदय अत्यन्त आनन्दयुक्त हो गया ॥ ११८ ॥ तथा आज्ञा को मस्तक पर धारण करके उसी क्षण छहों पुत्र पुरस्काररूप में सामने लाकर दे दिये ॥ ११९ ॥ उसके पीछे श्रीराम-कृष्ण प्रभु ने छहों शिशुओं को लाकर तत्क्षण माता को दे दिये ॥ १२० ॥ मरे पुत्रों को देखते ही उसी क्षण देवकीजी ने स्नेहपूर्वक हर्ष मन हो सबको स्तन पिलाया ॥ १२१ ॥ ईश्वर के अवशेष स्तनों को पीते ही तत्क्षण सबको दिव्य ज्ञान हो गया ॥१२२॥ छहों दण्डवत् होकर ईश्वर के चरणों में गिरे, यह सबने साक्षात् देखा ॥१२३॥ तब श्रीकृष्ण, राम सबको कृपापूर्ण दृष्टि से देखकर सदय होकर शिक्षा देने लगे ॥ १२४ ॥ हे देवगण चलो अपने निवास स्थान को जाओ फिर पीछे कहीं महान्तों की हाँसी मत करो ॥१२५॥ ब्रह्मा ईश्वर की शक्ति है और ईश्वर के समान है उनको मन्द कर्म करने पर भी मन्द नहीं होता है ॥ १२६ ॥ उनकी हँसी करने से इतनी यातना

ईश्वरेर आज्ञा शुनि सर्व देवगण। परम-आदरे आज्ञा करिया ग्रहण ॥१२९॥
पिता-माता-राम-कृष्ण-पाये नमस्करि। चलिलेन सर्वदेव गण निज-पुरी ॥१३०॥
कहिलाङ एइ विप्र भागवत कथा। नित्यानन्द-प्रति द्विधा छाड़ह सर्वथा ॥१३१॥
नित्यानन्दस्वरूप-परम अधिकारी। अल्पभाग्ये ताहाने जानिते नाहि पारि ॥१३२॥
अलौकिक चेष्टा येवा किछु देख तान। ताहातेओ आदर करिले पाइ त्राण ॥१३३॥
पतितेर त्राण लागि ताँर अवतार। ताँहा हैते सर्वजीव पाइव उद्धार ॥१३४॥
ताँहार आचार-विधि-निषेधेर पार। ताँहारे बूझिते शक्ति आछये काहार ॥१३५॥
ना बूझिया निन्दे ताँर चरित्र अगाध। पाइयाओ विष्णु भक्ति तार हय बाध ॥१३६॥
चल विप्र तुमि शीघ्र नवद्वीपे जाओ। एइ कथा लिया तुमि सभारे बुझाओ ॥१३७॥
पाछे ताँरे केहो कोनोरूपे निन्दा करे। तबे आर रक्षा तार नाहि यम-घरे ॥१३८॥
ये ताँहारे प्रीत करे, से करे आमारे। सत्य सत्य विप्र एइ कहिल तोमारे ॥१३९॥
मदिरा यवनी यदि नित्यानन्द धरे। तथापि ब्रह्मार वन्द्य कहिल तोमारे ॥१४०॥

तथाहि श्रीमुखकृतशिक्षाश्लोकः—
"गृह्णीयाद् यवनीपाणिं विशेद्वा शौण्डिकालयम्। तथापि ब्रह्मणो वन्द्यं नित्यानन्दपदाम्बुजम्" ॥६॥

शुनिञा प्रभुर वाक्य सेइ सु-ब्राह्मण। परम-आनन्दयुक्त हइलेन मन ॥१४१॥
नित्यानन्द प्रति बड़ जन्मिल विश्वास। तबे आइलेन नवद्वीप निज-वास ॥१४२॥

---

पाई है फिर ऐसी बुद्धि न हो जाय यह इच्छा रखना ॥१२७॥ तथा जाकर ब्रह्मा से अपराध की क्षमा प्रार्थना करना तभी तुम सबके मनमें प्रसन्नता होगी ॥१२८॥ सिद्ध देवगण ईश्वर की आज्ञा सुनते ही परम आदर पूर्वक से आज्ञा ग्रहण करके माता-पिता बलराम व कृष्णचन्द्र के चरणों में नमस्कार करते २ सब देववृन्द अपनी पुरी को चले गये ॥ १२९-१३० ॥ हे विप्र ! तुम्हारे आगे यह भागवत की कथा मैंने कही है इसलिये श्रीनित्यानन्द के प्रति दुविधा को सर्वथा छोड़ दो ॥१३१॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप परम (सबसे बड़े) अधिकारी हैं अल्प भाग्य वाले उन्हें नहीं जान पाते ॥१३२॥ जो कुछ उनकी अलौकिक चेष्टा देखो उस पर भी आदर करने से ही रक्षा पाओगे ॥ १३३ ॥ उनका अवतार पतितों का उद्धार करने के लिये है उन्हीं के द्वारा सब जीवों का उद्धार होगा ॥ १३४ ॥ उनके आचरण विधि निषेध पार हैं उनके जानने की किसकी सामर्थ्य है ॥ १३५ ॥ उनके अगाध चरित्रों को न जानकर भी जो निन्दा करेंगे वे विष्णु-भक्ति को पाकर भी उनकी भक्ति में बाधा होगी ॥ १३६ ॥ हे विप्र जाओ तुम शीघ्र नवद्वीप को जाओ और इस प्रसंग को सबको समझाओ ॥ १३७ ॥ यदि पीछे कोई किसी प्रकार से उनकी निन्दा करेंगे तो फिर यमलोक में भी उनकी रक्षा नहीं होगी ॥ १३८ ॥ जो उनके प्रति प्रीति करते हैं वे मेरे ही प्रति प्रीति करते हैं, हे विप्र तुमसे मैं सत्य २ कहता हूँ ॥ १३९ ॥ यदि नित्यानन्द प्रभु मदिरा व यवन कुलोत्पन्न स्त्री को भी धारण करें तब भी ब्रह्मा के वन्दनीय हैं तुमसे कहता हूँ ॥१४०॥ श्रीनित्यानन्द यवन कुलोत्पन्न स्त्री का पाणिग्रहण करें अथवा कलार के भवन में प्रवेश करें तथापि उनके चरण-कमल ब्रह्मा व वेद के वन्दनीय हैं ॥ ६ ॥ वह सज्जन ब्राह्मण प्रभु के वाक्यों को सुनकर मनमें परम आनन्द प्राप्त हुआ ॥१४१॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु में उसका बड़ा

सेइ भाग्यवन्त विप्र आसि नवद्वीपे । सर्वाग्ये आइला नित्यानन्देर समीपे ॥१४३॥
अकैतवे कहिलेन निज अपराध । प्रभुओ शुनिञा ताँरे करिला प्रसाद ॥१४४॥
हेन नित्यानन्दस्वरूपेर व्यवहार । वेद गुह्य लोक बाह्य याँहार आचार ॥१४५॥
परमार्थे नित्यानन्द-परम योगेन्द्र । याँरे कहि-आदिदेव धरणीधरेन्द्र ॥१४६॥
सहस्र वदन नित्य-शुद्ध कलेवर । चैतन्येर कृपा बिनु जानिते दुष्कर ॥१४७॥
केहो बोले नित्यानन्द येन बलराम । केहो बोले 'चैतन्येर बड़ प्रिय धाम' ॥१४८॥
केहो बोले महातेजी अंश अधिकारी । केहो बोले कोनरूप बूझिते ना पारि ॥१४९॥
किवा जीव नित्यानन्द, किवा भक्त ज्ञानी । यार येन-मत इच्छा ना बोलये केनि ॥१५०॥
येमे केने चैतन्येर नित्यानन्द नहे । तान पादपद्म मोर रहुक हृदये ॥१५१॥
से आमार प्रभु, आमि जन्म-जन्म दास । सभार चरणे मोर एइ अभिलाष ॥१५२॥
एत परिहारेओ ये पापी निन्दा करे । तबे लाथि मारों तार शिरेर उपरे ॥१५३॥
आमार प्रभुर प्रभु श्रीगौरसुन्दर । ए बड़ भरसा आमि धरिये अन्तर ॥१५४॥
हेन दिन हैब कि चैतन्य नित्यानन्द । देखिब वेष्टित चतुर्दिगे भक्तवृन्द ॥१५५॥
जय जय जय महाप्रभु गौरचन्द्र । दिलाओ निलाओ तुमि प्रभु नित्यानन्द ॥१५६॥
तथापिह एइ कृपा कर गौरहरि । नित्यानन्द-सङ्गे येन तोमा ना पासरि ॥१५७॥
यथा यथा तुमि-दुइ कर अवतार । तथा तथा दास्ये मोर हउ अधिकार ॥१५८॥

---

विश्वास उत्पन्न हो गया तब अपने निवास स्थान नवद्वीप में आये ॥ १४२ ॥ वह भाग्यवन्त ब्राह्मण नवद्वीप में आकर सबसे पहिले श्रीनित्यानन्दजी के समीप आया ॥ १४३ ॥ तथा निष्कपट रूप से उसने अपना अपराध कह दिया तथा श्रीप्रभु ने भी सुनकर उसके ऊपर अनुग्रह किया ॥ १४४ ॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप के ऐसे व्यवहार व आचरण हैं जो वेदगुह्य तथा लोक आचार से भी बाह्य हैं अर्थात् अलौकिक हैं ॥ १४५ ॥ परमार्थ में श्रीनित्यानन्द बड़े योगेन्द्र हैं जिनको आदि देव धरणीधर कहते हैं ॥ १४६ ॥ इन श्री सहस्र मुख व नित्य शुद्ध कलेवर वाले श्रीनित्यानन्द प्रभु को श्रीचैतन्यदेव की कृपा बिना जानना अति दुष्कर है॥१४७॥ कोई कहते कि श्रीनित्यानन्द श्रीबलराम के समान और कोई कहते हैं कि न जाने क्या रूप है समझ में नहीं आते ॥१४८-१४९॥ श्रीनित्यानन्द को कोई जीव कोई योगी व कोई ज्ञानी कहते हैं जिसकी जो इच्छा हो सो कहो॥१५०॥श्रीचैतन्यदेव के श्रीनित्यानन्दजी जो कुछ भी क्यों न हों तथापि उनके चरण-कमल मेरे हृदय में रहें ॥ १५१ ॥ जन्म २ में वे मेरे प्रभु व मैं उनका दास होऊँ; सबके चरणों में मेरी यही अभिलाषा है, सब से यही माँगता हूँ ॥ १५२ ॥ इतना परिहार करने,पर भी जो पापी निन्दा करेंगे तो उनके शिर पर लात मारूँगा ॥ १५३ ॥ अहो श्रीगौरसुन्दर मेरे प्रभु नित्यानन्द के प्रभु हैं सो मेरे हृदय में यह बड़ा भरोसा है ॥ १५४ ॥ अहो ऐसा दिन कब होगा कि चारों ओर से भक्तवृन्द से वेष्ठित श्रीचैतन्यदेव व श्रीनित्यानन्द प्रभु को मैं देखूँगा॥१५५॥हे गौरचन्द्र महाप्रभु आपकी जय हो २; आप ही श्रीनित्यानन्द प्रभु को मुझे अपने हाथ में देओ तथा आप ही मुझे मत दीजिये॥१५६॥तथापि हे गौर हरि ऐसी कृपा करो जिसमें श्रीनित्यानन्द के सङ्ग में मैं आपको भूल न जाऊँ ॥ १५७ ॥ जहाँ २ आप दोनों अवतार धारण करें वहाँ-वहाँ मेरा दास्य

श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान ॥१५९॥

इति श्रीचैतन्यभागवते अन्त्यखण्डे श्रीनित्यानन्द चरित्र-वर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

## अष्टमोऽध्याय

जय जय श्रीवैकुण्ठनाथ गौरचन्द्र । जय जय श्रीसेवा विग्रह नित्यानन्द ॥१॥
जय जय अद्वैत-श्रीवास-प्रिय धाम । जय गदाधर-श्रीजगदानन्द-प्राण ॥२॥
जय श्रीपरमानन्दपुरीर जीवन । जय दामोदरस्वरूपेर प्राण-धन ॥३॥
जय वक्रेश्वर पण्डितेर प्रियकारी । जय पुण्डरीक विद्यानिधि-मनोहारी ॥४॥
जय जय द्वारपाल-गोविन्देर नाथ । जीव प्रति कर प्रभु शुभ दृष्टिपात ॥५॥
हेन मते नित्यानन्द नवद्वीप पुरे । विहरेन प्रेम भक्ति-आनन्द सागरे ॥६॥
निरवधि भक्तसङ्गे करेन कीर्तन । कृष्ण-नृत्य-गीत हैल सभार भजन ॥७॥
गोप शिशुगण-सङ्गे प्रति-घरे घरे । येन क्रीड़ा करिलेन गोकुल नगरे ॥८॥
सेइ मत गोकुलेर आनन्द प्रकाशि । कीर्तन करेन नित्यानन्द सुविलासी ॥९॥
इच्छामय नित्यानन्दचन्द्र भगवान् । गौरचन्द्र देखिते हइल इच्छा तान ॥१०॥
आइ स्थाने करिलेन सन्तोषे विदाय । नीलाचले चलिलेन चैतन्य-इच्छाय ॥११॥
परम-विह्वल पारिषदगण-सङ्गे । आइलेन श्रीचैतन्य-नाम गुण रङ्गे ॥१२॥
हुङ्कार, गर्जन, नृत्य, आनन्द-क्रन्दन । निरवधि करे सब पारिषदगण ॥१३॥

---

पद में अधिकार होय ॥ १५८ । श्रीवृन्दावनदास ठाकुर श्रीकृष्णचैतन्य एवं नित्यानन्दचन्द्र को जानकर अर्थात् हृदय में धारण करके उनके युगल चरण-कमलों की महिमा गान करते हैं ॥ १५९ ॥

श्रीवैकुण्ठनाथ गौरचन्द्र की जय हो २, श्रीसेवा विग्रह नित्यानन्द प्रभु की जय हो, जय हो ॥१॥ श्रीअद्वैत व श्रीवासजी के प्रियधाम श्रीगौरसुन्दर की जय हो २, श्रीगदाधर व श्रीजगदानन्दजी के प्राण सर्वस्व प्रभु की जय हो ॥ २ ॥ श्रीपरमानन्दपुरी के जीवन की जय हो श्रीदामोदरस्वरूप के प्राणधन की जय हो ॥ ३ ॥ श्रीवक्रेश्वर पण्डित के प्रिय करने वाले प्रभु की जय हो श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि के मन हरण-कारी की जय हो ॥ ४ ॥ द्वारपाल गोविन्द के नाथ की जय हो २, हे प्रभो ! जीवों के प्रति शुभ दृष्टिपात करो ॥ ५ ॥ इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु नवद्वीपपुरी में प्रेम-भक्ति जनित आनन्दसागर में विहार करते थे ॥ ६ ॥ तथा निरन्तर भक्तों के सङ्ग कीर्तन करते थे और कृष्ण प्रेम में नृत्य-गान ही सबका भजन था ॥७॥ जिस प्रकार गोकुल नगर में ( द्वापर में ) गोप-बालकों के साथ घर-घर में क्रीड़ा की थी ॥ ८ ॥ उसी प्रकार सुविलासपरायण नित्यानन्दजी गोकुल के आनन्द को प्रकाशित करके कीर्तन करते थे ॥ ९ ॥ इच्छामय भगवान् नित्यानन्दचन्द्र को श्रीगौरचन्द्र के दर्शन करने की इच्छा हुई ॥ १० ॥ श्रीशची माता से सन्तोष से विदा होकर चैतन्यचन्द्र की इच्छा से नीलाचल को चल दिये ॥ ११ ॥ बड़ा विह्वल दशा में श्रीचैतन्यचन्द्र नाम व गुणों का वर्णन करते हुए पार्षदों के साथ आ रहे थे ॥ १२ ॥ सब पार्षदवृन्द निरन्तर हुङ्कार, गर्जन,

परानन्दे गडागड़ियाय दुइ जन   महामत्त सिंह जिनि हुँहार गर्जन   ३०
कि अद्भुत प्रीतिसे करेन दुइ जने   पूर्वे येन शुनिआछि श्रीराम लक्ष्मणे   ३१
दुइ जने श्लोक पढ़ि वर्णेन दुँहारे . दुँहारइ दुँह जाड़ हस्ते नमस्करे ।।३२।
अश्रु,कम्प,हास्य,मूर्च्छा,पुलक,वैवर्ण्य । कृष्ण भक्ति विकारेर यत आछे मर्म ।।३३।।
इहा वइ दुइ श्रीविग्रहे आर नाजि । सब करे करायेन चैतन्य गोसाजि ।।३४।।
कि अद्भुत प्रेम भक्ति हइल प्रकाश । नयन भरिया देखे ये एकान्तदास ।।३५।।
तबे कथोक्षणे प्रभु जोड़ हस्त करि । नित्यानन्द प्रति स्तुति करे गौर हरि ।।३६।।
नाम रूपे तुमि नित्यानन्द मूर्तिमन्त । श्रीवैष्णवधाम तुमि-ईश्वर अनन्त ।।३७।।
यत किछु तोमार श्रीअङ्गे अलंकार । सत्य सत्य सत्य भक्ति योग-अवतार ।।३८।।
स्वर्ण-मुक्ता-रूपा-कसा-रुद्राक्षादि रूपे । नवविधा भक्ति धरि आछ निज सुखे ।।३९।।
नीच जाति पतित अधम यत जन । तोमा हैते सभार हइल विमोचन ।।४०।।
ये भक्ति दियाछ तुमि वणिक्-सभारे । ताहा वाञ्छे सुर सिद्ध मुनि योगेश्वरे ।।४१।।
'स्वतन्त्र' करिया वेदे ये कृष्णेरे कहे । हेन कृष्ण पार तुमि करिते विक्रये ।।४२।।
तोमार महिमा जानिवार शक्ति कार । मूर्तिमन्त तुमि कृष्णरस-अवतार ।।४३।।
बाह्य नाहि जान तुमि सङ्कीर्तन सुखे । अहर्निश कृष्ण गुण तोमार श्रीमुखे ।।४४।।

---

क्षण करते थे व दोनों ही एक दूसरे के आगे दण्डवत् होकर गिर रहे थे ।। २८ ।। क्षण में ही दोनों प्रभु प्रेम से आलिंगन करते तथा एक दूसरे के कण्ठ को पकड़कर आनन्द में रोते थे ।। २९ ।। दोनों ही परम आनन्द में लोट-पोट हो रहे थे व दोनों ही बड़े मत्त सिंह की जयकारी गर्जना करते थे ।। ३० ।। दोनों कैसी अद्भुत प्रीति प्रकाशित कर रहे थे, जैसी पूर्व में राम-लक्ष्मण की प्रीति सुनी है ।।३१।। दोनों ही श्लोक पाठ करके दूसरे का यश गान करते थे और दोनों ही दूसरे को हाथ जोड़कर नमस्कार कर रहे थे ।। ३२ ।। कृष्ण भक्ति विकार के जितने मर्म हैं अश्रु, कम्प, हास्य, मूर्च्छा, पुलक, वैवर्ण्य आदि—इनके अतिरिक्त दोनों के श्रीविग्रहों में अन्य नहीं हो रहे थे, यह सब लीलाऐं श्रीचैतन्य प्रभु ही स्वयं करते तथा कराते हैं ।।३३-३४।। कैसा अद्भुत प्रेम-भक्ति का प्रकाश हुआ जो इनके एकान्तदास हैं वे ही नेत्र भरकर देखते हैं ।। ३५ ।। तब कुछ क्षण पीछे श्रीगौरहरि हाथ जोड़कर श्रीनित्यानन्द की स्तुति करने लगे ।। ३६ ।। अहो नाम व रूप से तुम मूर्तिमन्त नित्यानन्द हो तुम श्रीवैष्णवधाम अनन्तदेव ईश्वर हो ।।३७।। कुछ तुम्हारे श्रीअङ्ग में जितने अलंकार हैं मैं तीन बार सत्य २ कहता हूँ वे सब भक्तियोग के अवतार हैं ।। ३८ ।। सुवर्ण, मोती, चाँदी, काँसी,रुद्राक्षादि रूप में नव विधा भक्ति को ही अपने सुख के लिये धारण करते हो।।३९।।जितने नीच जाति पतित व अधम जन हैं, वे सब तुम्हारे द्वारा विशेष रूप से मुक्त हो गये ।।४०।।तुमने जो भक्ति सब वैश्यों को दी उसकी देवता सिद्ध मुनि व योगेश्वर भी वांछा ही करते हैं।।४१।।वेदों ने जिस कृष्ण को स्वतन्त्र(स्वाधीन) करके कहा है ऐसे कृष्ण को भी तुम्हें बेचने का अधिकार है ।।४२।। तुम्हारी महिमा को जानने की किसमें सामर्थ्य है कारण तुम मूर्तिमन्त कृष्ण रस के अवतार हो ।।४३।। संकीर्तन सुख से तुम्हें बाह्य ज्ञान नहीं है

कृष्णचन्द्र तोमार हृदये निरन्तर । तोमार विग्रह कृष्ण विलासेर घर ॥४५॥
अतएव तोमारे ये जने प्रीति करे । सत्य सत्य कभू कृष्ण ना छाड़ेन तारे ॥४६॥
तवे कथोक्षणे नित्यानन्द महाशय । वलिते लागिला अति करिया विनय ॥४७॥
प्रभु हइ तुमि ये आमारे कर स्तुति । ए तोमार वात्सल्य भक्तेर प्रति अति ॥४८॥
प्रदक्षिण कर, किवा कर नमस्कार । किवा मार, किवा राख, ये इच्छा तोमार ॥४९॥
कोन् वा वक्तव्य प्रभु आछे तोमा स्थाने । किवा नाहि देख तुमि दिव्य-दरशने ॥५०॥
मन प्राण सभार ईश्वर प्रभु तुमि । तुमि ये कराओ सेइ रूप करि आमि ॥५१॥
आपनेइ मोरे तुमि दण्ड धराइला । आपनेइ घुचाइया ए रूप करिला ॥५२॥
ताड़, खाडु, वेत्र, वंशी, शिङ्गा, छान्दडोड़ि । इहा से धरिये आमि मुनि धर्म छाड़ि ॥५३॥
आचार्यादि तोमार यतेक प्रियगण । सभारेइ दिला तप-भक्ति आचरण ।५४॥
मुनि धर्म छाड़ाइया कि कैले आमारे । व्यवहारि-जन देखि सभे हास्य करे ॥५५॥
तोमार नर्तक आमि, नाचाओ ये रूपे । सेइ रूपे नाचि आमि तोमार कौतुके ॥५६॥
कि निग्रह अनुग्रह तुमिसे प्रमाण । वृक्ष द्वारे कर तबु तोमारइ से नाम ॥५७॥
प्रभु बोले तोमार ये देहे अलंकार । नव विधा भक्ति वइ किछु नहे आर ॥५८॥
श्रवण-कीर्तन-स्मरणादि नमस्कार । एइ से तोमार सर्वकाल अलंकार ॥५९॥
नाग-विभूषण येन धरेन शङ्करे । ताहा नाहि सर्वजने बुझिवारे पारे ॥६०॥

---

तुम्हारे श्रीमुख से रात दिन कृष्ण गुन वर्णन होता है।।४४।।तुम्हारे हृदयमें निरन्तर कृष्णचन्द्र विराजमान रहते हैं तथा तुम्हारा विग्रह कृष्ण विलास का घर है।।४५।।इस कारण जो प्राणी तुम्हें प्रीति करते हैं यह सत्य है कि कृष्ण उनको कभी नहीं छोड़ते ॥ ४६ ॥ तब कुछ पीछे अति उदार नित्यानन्द प्रभु अति विनय करके कहने लगे ॥ ४७ ॥ आप प्रभु होकर जो मेरी स्तुति करते हो यह आपका भक्त के प्रति अत्यन्त वात्सल्य भाव है ॥ ४८ ॥ सो चाहे प्रदक्षिणा करो अथवा नमस्कार करो व मारो किंवा रक्षा करो जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो ॥ ४९ ॥ प्रभो आपके सम्मुख क्या कहना अवशेष है कारण कि आप दिव्य दृष्टि से क्या नहीं देख रहे हैं ॥ ५० ॥ प्रभो ! आप सब प्राणियों के मन प्राण के स्वामी हो आप जो कराते हो मैं वही उसी प्रकार करता हूँ ॥ ५१ ॥ स्वयं आपने ही मुझे दण्ड धारण कराया आपने ही मेरा पहिला रूप छिपाकर यह रूप कर दिया ॥ ५२ ॥ मुनि धर्म छोड़कर अङ्गद-वलय ( ताड़ खण्डू ) वेंत वंशी-शीग व छन्द डोरी आदि को धारण कर रहा हूँ ॥ ५३ ॥ जितने आचार्य आदि तुम्हारे प्रियगण हैं उन सबको तो तप व भक्ति का आचरण दिया ॥ ५४ ॥ परन्तु मेरा मुनि धर्म त्याग कराकर यह सब क्या कर दिया है जिसे व्यवहारी जन देखकर सब हँसी करते हैं ॥ ५५ ॥ मैं तुम्हारा नर्तक हूँ जिस प्रकार नचाते हो मैं तुम्हारे कौतुक के लिये उसी रूप में नाचता हूँ ॥ ५६ ॥ निग्रह करो अथवा अनुग्रह उसके तो आप ही प्रमाण हो जड़ वृक्ष के द्वारा भी यदि कोई कार्य साधन करो तो भी तुम्हारा ही नाम है ॥ ५७ ॥ श्रीप्रभु गौरचन्द्र ने कहा, देखो तुम्हारी देह में जो अलंकार हैं वे नवविधा भक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं ॥ ५८ ॥ श्रवण-कीर्तन-स्मरण-नमस्कार आदि यही तुम्हारे सब समय में अलंकार हैं ॥ ५९ ॥ जैसे शंकरजी सर्पों के अलंकार धारण करते हैं इस

ना बुझिया निन्दे तान चरित्र अगाध यतेक निन्दये तार हय कार्य बाध ६२

मुञित तोमार अङ्गे भक्तिरस विने अन्य नाहि देखों काहो काय वाक्य मने ६३

नन्द गोष्ठे वसि तुमि वृन्दावन सुखे । धरियाछ अलकार आपन कौतुके ।।६४।।

इहा देखि ये सुकृति चित्ते पाय सुख । से अवश्य देखिवेक कृष्णेर श्रीमुख ।।६५।।

वेत्र,वंशी,शिङ्गा, गुञ्जाहार, माल्य, गन्ध । सर्वकाल एइ रूप तोमार श्रीअङ्ग ।।६६।।

यतेक बालक देखि तोमार संहति । श्रीदाम-सुदाम-प्राय लय मोर मति ।।६७।।

वृन्दावन क्रीड़ार यतेक शिशुगण । सकल तोमार सङ्गे-लय मोर मन ।।६८।।

सेइ भाव सेइ कान्ति सेइ सर्वशक्ति । सर्व देहे देखि सेइ नन्द गोष्ठ-भक्ति ।।६९।।

एतेके ये तोमारे, तोमार सेवकेरे । प्रीति करे, सत्य सत्य से करे आमारे ।।७०।।

स्वानुभावानन्दे दुइ-मुकुन्द अनन्त । कि रूपे कहेन कथा, के जानये अन्त ।।७१।।

कथोत्क्षणे दुइ प्रभु बाह्य प्रकाशिया । बसिलेन निभृते पुष्पेर वने गिया ।।७२।।

ईश्वरे परमेश्वरे हइल कि कथा । वेदे से इहार तत्त्व जानेन सर्वथा ।।७३।।

नित्यानन्दे चैतन्ये यखने देखा हय । प्राय आर केहो नाहि-थाके से समय ।।७४।।

कि करेन आनन्द विग्रह दुइ जने । चैतन्य-इच्छाय केहो ना थाके तखने ।।७५।।

नित्यानन्दस्वरूपो प्रभुर इच्छा जानि । एकान्ते से आसिया देखेन न्यासि मणि ।।७६।।

---

बात को सब लोग समझ नहीं सकते ।। ६० ।। परमार्थ में अनन्तदेव ही महादेव के जीवन है सोई नाग के छल से सब समय अनन्तदेव को धारण करते हैं ।। ६१ ।। उनके अगाध चरित्र को न समझ कर जो निन्दा करते हैं उन निन्दकों के कार्य में उतनी ही बाधा होती है।।६२।।मैं तो शरीर वाणी व मन से तुम्हारे अङ्ग में भक्तिरस के सिवाय अन्य किसी पदार्थ को ही नहीं देखता।।६३।।तुमने वृन्दावन के सुख में नन्द व्रज में रहकर अपने कौतुक से अलंकार पहिने थे ।। ६४ ।। इसको देखकर जो सुकृतिजन मन में सुख पाते हैं वे अवश्य ही श्रीकृष्ण के मुख कमल के दर्शन पावेंगे ।। ६५ ।। वेत, वंशी, शींग, गुंजाहार, माला वं गन्धयुक्त तुम्हारा श्रीअङ्ग सदा से इसी प्रकार से है ।। ६६ ।। जितने बालक तुम्हारे साथ दृष्टिगोचर होते हैं मेरी बुद्धि उन्हें श्रीदाम-सुदाम गोपों के समान मानती है ।।६७।। वृन्दावन क्रीड़ा के जितने ग्वाल-बाल हैं तुम्हारे संग में, वर्तमान में भी वे ही सब हैं ऐसा मेरे मन में प्रतीत होता है ।। ६८ ।। कारण सबकी देह वही नन्द गोष्ठ की भक्तिपूर्ण भाव कान्ति व सब शक्ति दिखाई देती है ।।६९।। इस कारण से जो तुम्हें व तुम्हारे सेवकों को प्रीति करता है वह मुझे ही प्रीति करता है ।।७०।।श्रीमुकुन्द गौरहरि व श्रीअनन्तदेव नित्यानन्दजी अपने ही आनन्द में किस प्रकार क्या २ कथा कहते हैं उसका कौन अन्त पा सकता है ? ।। ७१ ।। कुछ क्षण पीछे दोनों प्रभु बाह्य ज्ञान प्रकाशित करके एक फूलों के बगीचे में एकान्त में जा विराजे "।। ७२ ।। ईश्वर व परमेश्वर में क्या कथा हुई इस तत्त्व को वेद ही सर्वथा जानते हैं ।। ७३ ।। जिस समय श्रीनित्यानन्द व प्रभु श्रीचैतन्यचन्द्र का परस्पर मिलन हुआ है उस समय प्रायः अन्य कोई नहीं था ।। ७४ ।। दोनों आनन्दविग्रह न जाने क्या करते हैं श्रीचैतन्यचन्द्र की इच्छा से ही उस समय कोई नहीं रहा ७५ तथा श्रीनित्यानन्द-

आपनारे येन प्रभु ना करेन व्यक्त । एइमत लुकायेन नित्यानन्दतत्त्व ॥७७॥
सुकोमल दुर्विज्ञेय ईश्वर-हृदय । वेदे शास्त्रे ब्रह्मा शिव सब एइ कय' ॥७८॥
ना जानि ना बूझि मात्र सभे गाय गाथा । लक्ष्मीरो एइ से वाक्य, अन्येर कि कथा ॥७९॥
एइमत भावरङ्गे चैतन्य गोसाञि । एक कथा ना कहेन एकजन-ठाञि ॥८०॥
हेन से तांहार रङ्ग, सभेइ मानेन । "आमार अधिक प्रीत कारो ना वासेन ॥८१॥
आमारे से कहेन सकल गोप्य-कथा । 'मुनिधर्म करि कृष्ण भजिब सर्वथा' ॥८२॥
वेत्र, वंशी, वर्हा, गुंजामाला, छाँदडोड़ि । इहा करिलेन केने मुनिधर्म छाड़ि ॥८३॥
केहो बोले "मुनिधर्म यतेक प्रकार । वृन्दावने गोपक्रीड़ा-अधिक सभार ॥८४॥
गोप-गोपी-भक्ति-सर्व तपस्यार फल । याहा वांछे ब्रह्मा-आदि-ईश्वर-सकल ॥८५॥
अति कृपा पात्र से गोकुल भक्ति पाय । ये भक्ति वन्देन प्रभु श्रीउद्धवराय ॥८६॥

तथाहि भागवते १० स्कन्धे ४७ अध्याये ६३ श्लोके—

"वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः । यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्" ॥२॥

एइमत ये वैष्णव करेन विचार । सर्वत्रेइ गौरचन्द्र करेन स्वीकार ॥८७॥
अन्योन्ये बाजायेन आनन्द इच्छाय । हेन रंगी महाप्रभु श्रीगौराङ्गराय ॥८८॥
कृष्णेर कृपाय सभे आनन्दे विह्वल । कखनो कखनो बाजे आनन्द-कन्दल ॥८९॥
इहाते ये एक ईश्वरेर पक्ष हैया । आर ईश्वरेरे निन्दे, सेइ अभागिया ॥९०॥

स्वरूप भी प्रभु की इच्छा जानकर ही सन्यासि शिरोमणि से एकान्त में ही आकर मिले ॥ ७६ ॥ जिस प्रकार प्रभु अपने को प्रकाश नहीं करते उसी प्रकार श्रीनित्यानन्द तत्त्व को भी छिपाया ॥ ७७ ॥ वेद-शास्त्र, ब्रह्मा व शिव आदि सब यही कहते हैं कि ईश्वर-हृदय अति कोमल व दुर्विज्ञेय है ॥ ७८ ॥ दूसरों की क्या बात है लक्ष्मीजी का भी यही वाक्य है उसे न कोई जानते व समझते ही है सब कोई केवल गाथा मात्र गाते हैं ॥७९॥ इस प्रकार भावरंग में श्रीचैतन्य प्रभु ने एक जन के विषय में एक ही प्रसंग नहीं कहा ॥८०॥ उनका रंग ही ऐसा है इसे सब ही मानते हैं कि मुझसे अधिक प्रीति उनकी और किसी पर नहीं है ॥ ८१ ॥ तथा मुझसे ही सब गुप्त कथायें कहते हैं सो मैं मुनि धर्म में तत्पर होकर सर्वथा कृष्ण का भजन करूँगा ॥ ८२ ॥ मुनि धर्म को छोड़कर वेत, बंशी, मयूरपिच्छ, गुंजामाला व छन्दडोरी आदि को क्यों धारण किये ॥ ८३ ॥ किसी ने कहा मुनि धर्म जितने प्रकार का है उस सबमे अधिक वृन्दावन में गोपक्रीड़ा है ॥ ८४ ॥ गोप-गोपियों की सी भक्ति होनी सब तपस्याओं का फल है जिसे ब्रह्मा आदि सभी ईश्वर वाञ्छा करते हैं ॥८५॥ जो अति कृपापात्र हैं वे ही गोकुल की भक्ति प्राप्त करते हैं उस भक्ति की वन्दना श्रीउद्धव गोस्वामी ने भी की थी ॥ ८६ ॥ जिनका ऊँचे स्वर से हरि लीला का गान तीनों लोकों को पवित्र करता है मैं नन्द के व्रज में रहने वाली उन गोपियों की चरण रेणु को बारम्बार वन्दना करता हूँ ॥ २ ॥ इस प्रकार जो वैष्णव विचार करते हैं श्रीगौरचन्द्र उसको सब जगह स्वीकार करते हैं ॥ ८७ ॥ तथा अपने आनन्द की इच्छा से परस्पर में आनन्द कलह करा देते हैं महाप्रभु श्रीगौरांगराय ऐसे प्रेमी हैं ॥ ८८ ॥ सब भक्तगण कृष्ण की कृपा से आनन्द में विह्वल रहते थे, परन्तु कभी २ आनन्द कलह हो उठता था ॥ ८९ ॥ ऐसे समय में जो

ईश्वरेर अभिन्न-सकल भक्तगण । देहर येहन बाहु अ गुलि चरण ॥९१॥

तथाहि भागवते स्कन्धे ७ अध्याये ४० श्लोके—

"यथापुमान्न स्वाङ्गेषु शिरःपाण्यादिषु क्वचित् । पारक्यबुद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्परः" ॥३॥

तथापिह सर्व-वैष्णवेर एइ कथा । सभार ईश्वर-कृष्णचैतन्य सर्वथा ॥९२॥

नियन्ता पालक स्रष्टा अविज्ञात तत्त्व । सबे मेलि एइ मात्र गायेन महत्त्व ॥९३॥

आविर्भाव हैते छेन ये सब शरीरे । ताँ सभार अनुग्रहे भक्ति-फल धरे ॥९४॥

सर्वज्ञता सर्वशक्ति दियाओ आपने । अपराधे शास्तिओ करेन भाल-मने ॥९५॥

इति मध्ये सकले विशेष दुइ प्रति । नित्यानन्द-अद्वैतेरे ना छाड़ेन स्तुति ॥९६॥

कोटि अलौकिको यदि ए दुइ करेन । तथापिह गौरचन्द्र किछु ना बोलेन ॥९७॥

एइ मत कथोलाप परानन्द करि । अवधूतचन्द्र सङ्गे गौराङ्ग श्रीहरि ॥९८॥

तबे नित्यानन्द स्थाने करिया विदाय । वासाय आइला प्रभु श्रीगौरांगराय ॥९९॥

नित्यानन्दस्वरूपो परम-हर्ष-मने । आनन्दे चलिला जगन्नाथ दरशने ॥१००॥

नित्यानन्द-चैतन्ये ये हैल दरशन । इहार श्रवणे सर्व-बन्ध-विमोचन ॥१०१॥

जगन्नाथ देखि मात्र नित्यानन्दराय । आनन्दे विह्वल हइ गड़ागड़ि जाय ॥१०२॥

आछाड़ पड़ेन प्रभु प्रस्तर-उपरे । शत जने धरिलेओ धरिते ना पारे ॥१०३॥

जगन्नाथ बलराम सुभद्रा सुदर्शन । सभा देखि नित्यानन्द करेन क्रन्दन ॥१०४॥

---

एक ईश्वर के पक्ष में होकर अन्य ईश्वर की निन्दा करें वे अभागे हैं ॥ ९० ॥ जैसे देह के अन्तर्गत बाहु अंगुलि चरण आदि हैं वैसे ही सब भक्तवृन्द भी ईश्वर से अभिन्न हैं ॥ ९१ ॥ जैसे साधारण पुरुष अपने हाथ पाँव मस्तक आदि किसी भी एक अंग को यह मेरा नहीं है दूसरे का है ऐसी विवेचना नहीं करते हैं और जो मुझे परात्पर रूप से निरूपण करते हैं वे उसी प्रकार किसी प्राणी के ऊपर व उनके दुःख सुखादि को अपने से पृथक है ऐसी परबुद्धि नहीं करते हैं ॥ ३ ॥ तथापि सब वैष्णवों का यही कहना कि सबके ईश्वर सर्वथा श्रीकृष्णचैतन्य हैं ॥९२॥ सब मिलकर केवल यही महत्त्व गाते हैं कि आपका तत्त्व अविज्ञात है आप नियन्ता पालक तथा स्रष्टा हैं ॥ ९३ ॥ तथा जिन सब भक्तों के शरीरों में आविर्भाव होते हो और उन सबके अनुग्रह से भक्तिरूप फल प्राप्त होता है ॥ ९४ ॥ अपने भक्तों को सर्वज्ञता व सब शक्ति दे रक्खी है, परन्तु अपराध होने पर दण्ड भी भली भाँति करते हो ॥ ९५ ॥ इन सबके बीच में विशेष कर केवल श्रीनित्यानन्द व श्रीअद्वैत दोनों की स्तुति करना नहीं छोड़ते ॥ ९६ ॥ यदि ये दोनों करोड़ों अलौकिक कर्म भी करें तथापि श्रीगौरचन्द्र कुछ नहीं कहते ॥ ९७ ॥ इस प्रकार कुछ क्षण पश्चात् श्रीगौरहरि ने अवधूत-चन्द्र ( नित्यानन्द ) के साथ परम आनन्द किया ॥ ९८ ॥ तब श्रीगौरांगराय प्रभु श्रीनित्यानन्दजी से विदा होकर अपने निवास स्थान को आये ॥ ९९ ॥ तथा नित्यानन्दस्वरूप भी बड़े हर्षित मन से जगन्नाथ के दर्शन के लिये आनन्द में चल दिये ॥ १०० ॥ श्रीनित्यानन्द व श्रीचैतन्य को जो परस्पर दर्शन हुए इसके सुनने से सब बन्धन नष्ट हो जाँयगे ॥ १०१ ॥ श्रीनित्यानन्दराय जगन्नाथ के दर्शन मात्र करते ही आनन्द से विह्वल होकर लोट-पोट होने लगे ॥१०२॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु पत्थरों के ऊपर पछाड़ खाकर गिरते तथा सौ मनुष्यों

सभार गलार माला ब्राह्मणे आनिञा । पुनः पुन देन सभे प्रभाव जानिञा ॥१०५॥
नित्यानन्द देखि यत जगन्नाथदास । सभार जन्मिल अति-परम-उल्लास ॥१०६॥
ये जन ना चिने, से जिज्ञासे कारो ठाँइ । सभे कहे 'एइ कृष्णचैतन्येर भाइ' ॥१०७॥
नित्यानन्दस्वरूपो सभारे करि कोले । सिञ्चिला सभार अङ्ग प्रेमानन्द-जले ॥१०८॥
तबे जगन्नाथ हेरि हर्ष सर्वगणे । आनन्दे चलिला गदाधर-दरशने ॥१०९॥
नित्यानन्द-गदाधरे ये प्रीत अन्तरे । इहा कहिबारे शक्ति ईश्वरे से धरे ॥११०॥
गदाधर भवने मोहन गोपीनाथ । आछेन येहेन नन्दकुमार साक्षात् ॥१११॥
अपने चैतन्य ताने करियाछेन कोले । अति पाषण्डीओ से विग्रह देखि भूले ॥११२॥
देखे श्रीमुरली मुख अङ्गेर भङ्गिमा । नित्यानन्द-आनन्द-अश्रुर नाहि सीमा ॥११३॥
नित्यानन्द-विजय जानिञा गदाधर । भागवत पाठ छाड़ि आइला सत्वर ॥११४॥
दुँहे मात्र देखिया दुँहार श्रीवदन । गला धरि लागिलेन करिते क्रन्दन ॥११५॥
अन्योन्ये दुइ प्रभु करे नमस्कार । अन्योन्ये दुँहे कहे महिमा दुँहार ॥११६॥
दोहो बोले 'आजि हैल लोचन निर्म्मल । दोहो बोले 'आजि हैल जनम सफल' ॥११७॥
बाह्य ज्ञान नाहि दुइ प्रभुर शरीरे । दुइ प्रभु भासे भक्ति-आनन्द-सागरे ॥११८॥
हेन से हइल प्रेमभक्तिर प्रकाश । देखि चतुर्दिगे पड़ि कान्दे सर्वदास ॥११९॥
कि अद्भुत प्रीति नित्यानन्द-गदाधरे । एकेर अप्रिय आरे सम्भाषा ना करे ॥१२०॥

---

को भी पकड़ में नहीं आते थे ॥ १०३ ॥ श्रीनित्यानन्द, जगन्नाथ बलराम सुभद्रा व सुदर्शन के दर्शन करके रुदन करने लगे ॥ १०४ ॥ उनके प्रभाव को जानकर सबके गले में मालाएं लाकर ब्राह्मण बारम्बार दे रह थे ॥ १०५ ॥ नित्यानन्द को देखकर जितने जगन्नाथजी के सेवक थे उन सबको अतिशय परमोल्लास उत्पन्न हुआ ॥ १०६ ॥ जो जन नहीं पहिचानते थे वे किसी से पूँछते थे, सब ही कह रहे थे कि ये ही श्रीकृष्ण-चैतन्य के भाई हैं ॥ १०७ ॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप भी सबको गोदी में लेकर सबके अङ्ग प्रेमानन्द जल से सींचने लगे ॥१०८॥ तब सब गणों के सहित जगन्नाथ दर्शन करके आनन्द से हर्ष मन होकर श्रीगदाधरजी के दर्शनों को गये॥१०९॥श्रीनित्यानन्द व श्रीगदाधर की परस्पर में जो आन्तरिक प्रीति है उसे कहने की शक्ति केवल ईश्वर में ही है ॥११०॥ श्रीगदाधरजी के भवन में मोहन गोपीनाथ साक्षात् नन्दकुमार ही थे॥१११॥ उनको श्रीचैतन्य ने भी स्वयं गोदी में लिया था तथा उस विग्रह को देखकर अत्यन्त पाखण्डी भी अपने को भूल जाते थे ॥११२॥ श्रीमुरलीधर के मुख व अंग की भंगिमा को देखकर श्रीनित्यानन्दजी के आनन्दाश्रुओं की सीमा नहीं रही ॥ ११३ ॥ श्रीगदाधरजी श्रीनित्यानन्द का शुभागमन जानकर भागवत पाठ छोड़कर शीघ्रता से आये ॥११४॥ दोनों एक दूसरे का श्रीमुख देखते ही परस्पर में कण्ठ पकड़ कर रोने लगे ॥ १०५ ॥ परस्पर दोनों प्रभु एक दूसरे को नमस्कार कर रहे थे और तथा एक दूसरे की महिमा वर्णन कर रहे थे॥११६॥ दोनों ने कहा आज नेत्र निर्मल हुए तथा फिर दोनों ही बोले कि आज जन्म सफल हो गया ॥ ११७ ॥ दोनों-प्रभुओं के शरीरों में बाह्य ज्ञान नहीं था तथा दोनों भक्ति के आनन्दसागर में डुबकी लगा रहे थे ॥ ११८ ॥ प्रेमभक्ति का ऐसा प्रकाश हुआ जिसे देखकर सब दास चारों ओर में रो पड़े ॥ ११९ ॥ श्रीनित्यानन्द व श्री

गदाधरदेवेर सङ्कल्प एइ रूप । नित्यानन्द निन्दकेर ना देखेन मुख ॥१२१॥
नित्यानन्दस्वरूपेरे प्रीति याँर नाञि । देखाओ ना देन तारे पण्डित गोसाञि ॥१२२॥
तबे दुइ प्रभु स्थिर हइ एक स्थाने । वसिलेन चैतन्य मंगल-संकीर्तने ॥१२३॥
तबे गदाधर देव नित्यानन्द प्रति । निमन्त्रण करिलेन 'आजि भिक्षा इथि' ॥१२४॥
नित्यानन्द गदाधर भिक्षार कारणे । एक-मान चाउल आनिआछेन यतने ॥१२५॥
अति सूक्ष्म शुक्ल देवयोग्य सर्व मते । गदाधर लागि आनिआछेन गौड़ हैते ॥१२६॥
आर एक खानि वस्त्र-रङ्गिम सुन्दर । दुइ आनि दिला गदाधरेर गोचर ॥१२७॥
गदाधर ! ए तण्डुल करिया रन्धन । श्रीगोपीनाथेरे दिया करिया भोजन ॥१२८॥
तण्डुल देखिया हासे पण्डित गोसाञि । नयनेत एमत तण्डुल देखि नाञि ॥१२९॥
ए तण्डुल गोसाञि कि वैकुण्ठे थाकिया । आनिआ आछेन गोपीनाथेर लागिया ॥१३०॥
लक्ष्मीमात्र ए तण्डुल करेन रन्धन । कृष्ण से इहार भोक्ता, तबे भक्तगण ॥१३१॥
आनन्दे तण्डुल प्रशंसेन गदाधर । वस्त्र लइ गेला गोपीनाथेर गोचर ॥१३२॥
दिव्य-रङ्ग-वस्त्र गोपीनाथेर श्रीअङ्गे । दिलेन, देखिया शोभा भासेन आनन्दे ॥१३३॥
तबे रन्धनेर कार्य करिते लागिला । आपने टोटाय शाक तुलिते चलिला ॥१३४॥
केहो बोने नाहि दैवे हइयाछे शाक । ताहा तुलि आनिआ करिला एक पाक ॥१३५॥
तेंतलि वृक्षेर यत पत्र सुकोमल । ताहा आनि वाटि तथि दिला लोण जल ॥१३६॥

गदाधर में कैसी अद्भुत प्रीति थी एक के अप्रिय से दूसरे सम्भावन ही नहीं करते थे॥ १२० ॥ श्रीगदाधरदेव का संकल्प था कि श्रीनित्यानन्दजी के निन्दक का मुख नहीं देखना ॥ १२१ ॥ जिनकी श्रीनित्यानन्द में प्रीति नहीं थी श्रीपण्डित गोस्वामी उनको दर्शन भी नहीं देते थे ॥ १२२ ॥ कुछ क्षण में दोनों प्रभु स्थिर होकर चैतन्य मंगल संकीर्तन करने को एक स्थान में बैठ गये ॥ १२३ ॥ उसके पीछे श्रीगदाधरदेव ने श्रीनित्यानन्द को निमन्त्रण दिया कि आज भिक्षा यहीं करो ॥१२४॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीगदाधर सेव्य गोपीनाथजी के भोग के लिये यत्नपूर्वक एक मन चाँवल लाये थे ॥ १२५ ॥ अत्यन्त छोटे, सफेद व सब प्रकार से देव के योग्य थे जिनको गौड़देश से गदाधरजी के निमित्त लाये हैं ॥ १२६ ॥ तथा एक सुन्दर रंगीन वस्त्र इन दोनों को लाकर गदाधर के सम्मुख रक्खे और कहा कि ॥ १२७ ॥ हे गदाधरजी इन चाँवलों को सिद्ध करके श्रीगोपीनाथ को अर्पण करके भोग लगाओ॥१२८॥तब श्री पंडित गोस्वामी चावलों को देखकर हँसे और बोले कि प्रभो ऐसे चावल तो नेत्रों से नहीं देखे हैं ॥ १२९ ॥ प्रभो इन चाँवलों को क्या वैकुण्ठ से गोपीनाथ के निमित्त लाये हो ? ॥ १३० ॥ एक मात्र लक्ष्मीजी ही इन चावलों की रसोई करती हैं तथा श्रीकृष्ण ही इनके भोक्ता हैं ॥ १३१ ॥ श्रीगदाधरजी आनन्द में चावलों की प्रशंसा कर रहे थे तथा वस्त्र लेकर श्रीगोपीनाथ के सामने गये ॥ १३२ ॥ दिव्य रंगीन वस्त्र श्रीगोपीनाथ के श्रीअंग में अर्पण किया और शोभा देखकर आनन्दविभोर हो गये ॥ १३३ ॥ तब रसोई का कार्य प्रारम्भ किया आप स्वयं उद्यान में शाग लेने को गये ॥ १३४ ॥ किसी ने बोया नहीं था जो दैववश ही शाक उपज आये थे कहीं तोड़ लाये और एक प्रकार की रसोई की ॥ १३५ ॥ इमली वृक्ष के जितने अति कोमल पत्ते थे उन्हें ले आये और

तार एक व्यञ्जन करिला अम्ल-नाम । रन्धन करिया गदाधर भाग्यवान् ॥१३७॥
गोपीनाथ-अग्रे निजा भाग लागाइला । हेन काले गौरचन्द्र आसिया मिलिला ॥१३८॥
प्रसन्न श्रीमुखे 'हरे कृष्ण कृष्ण बलि । विजय हइला गौरचन्द्र कुतूहली' ॥१३९॥
"गदाधर गदाधर" डाके गौरचन्द्र । सम्भ्रमे वन्देन गदाधर पद द्वन्द ॥१४०॥
हासिया बोलेन प्रभु "केन गदाधर । आमि कि ना हइ निमन्त्रणेर भितर ॥१४१॥
आमित तोमरा दुइ हैते भिन्न नाहि । ना दिलेओ तोमरा, बलेते आमि खाइ ॥१४२॥
नित्यानन्दद्रव्य-गोपीनाथेर प्रसाद । तोमार रन्धन-मोर इथे आछे भाग" ॥१४३॥
कृपावाक्य शुनि नित्यानन्द गदाधर । मग्न हइलेन सुख-सागर-भितर ॥१४४॥
सन्तोषे प्रसाद आनि देव-गदाधर । थुइलेन गौरचन्द्र प्रभुर गोचर ॥१४५॥
सर्व टोटा व्यापिलेक अन्नेर सुगन्धे । भक्ति करि प्रभु पुनः पुन अन्न वन्दे ॥१४६॥
प्रभु बोले "तिन भाग समान करिया । अन्न लइ तिने भुञ्जि एकत्र बसिया" ॥१४७॥
नित्यानन्दस्वरूपेर तण्डुलेर प्रीते । बसिलेन महाप्रभु भोजन करिते ॥१४८॥
दुइप्रभु भोजन करेन दुइपाशे । सन्तोषे ईश्वर अन्न-व्यञ्जन प्रशंसे' ॥१४९॥
प्रभु बोले "ए अन्नेर गन्धेओ सर्वथा । कृष्णभक्ति हय, इथे नाहिक अन्यथा ॥१५०॥
गदाधर कि तोमार मनोहर-पाक । आमित एमत कभु नाहि खाइ शाक ॥१५१॥
गदाधर कि तोमार विचित्र रन्धन । तेंतलि पातेर कर एमत व्यञ्जन ॥१५२॥

---

पीसकर लवण जल मिला दिया ॥ १३६ ॥ भाग्यवान् गदाधर ने उनको रन्धन करके अम्ल नामक व्यंजन ( शाक ) सिद्ध किया ॥ १३७ ॥ तथा श्रीगोपीनाथ के आगे ले जाकर भोग लगाया उसी समय श्रीगौरचन्द्र भी आकर मिले॥१३८॥प्रसन्न श्रीमुख से हरे कृष्ण २ कहते कुतूहली श्रीगौरचन्द्र का आगमन हुआ॥१३९॥ गौरचन्द्र ने ऊँचे स्वर से "हे गदाधर २ पुकारा उस समय शीघ्रता से आकर श्रीगदाधर ने चरणों में वन्दना की ॥ १४० ॥ हँसकर श्रीगौरचन्द्र ने कहा "क्यों गदाधर ! क्या हम निमन्त्रण में नहीं हैं ?" ॥१४१॥ मैं तो तुम दोनों से कोई दूसरा नहीं हूँ तुम नहीं दोगे तो भी मैं बल प्रकाशपूर्वक खाऊँगा ॥१४२॥ नित्यानन्दजी द्वारा लाया हुआ द्रव्य और श्रीगोपीनाथ का प्रसाद तथा तुम्हारी रसोई इसलिये मेरा भी इसमें भाग है ॥ १४३ ॥ श्रीनित्यानन्द व श्रीगदाधर दोनों ही कृपा वाक्य सुनकर सुख के सागर में मग्न हो गये ॥ १४४ ॥ श्रीगदाधरजी ने प्रसन्न होकर प्रसाद लाकर श्रीगौरचन्द्र के सामने रख दिया ॥ १४५ ॥ तथा अन्न की सुगन्धि से सब बाग भर गया श्रीप्रभु भक्तिपूर्वक बारम्बार अन्न की वन्दना करने लगे ॥ १४६ ॥ श्रीप्रभु ने कहा अन्न को तीन सम भाग करके एक जगह ही बैठकर तीनों भोजन करेंगे ॥ १४७ ॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप के तण्डुलों की प्रीति से श्रीमहाप्रभु भोजन करने को विराजे ॥ १४८ ॥ तथा श्रीनित्यानन्द व श्रीगदाधर उनके दोनों ओर भोजन करने बैठे, श्रीमहाप्रभु ने सन्तुष्ट होकर अन्न व्यंजनों की प्रशंसा की ॥ १४९ ॥ श्रीप्रभु ने कहा इस अन्न की गन्ध से ही कृष्ण-भक्ति होती है इसमें अन्यथा नहीं है ॥ १५० ॥ हे गदाधर तुम्हारी रन्धन क्रिया कैसी है ? मैंने तो ऐसा साग कभी नहीं खाया ? ॥ १५१ ॥ अरे गदाधर तुम्हारी क्या विचित्र रन्धन-क्रिया है, अहा इमली पत्तों का ऐसा विलक्षण शाप बनाया है ? ॥ १५२ ॥ जान लिया

ए-तिन-जनार प्रीति ए तिने से जाने गौरचन्द्र झाट ना कहन कारो स्थाने १५५
कथोक्षणे प्रभु सब करिया भोजन चलिलेन, पत्र लूट कैल भक्तगण १५६
ए आनन्द-भोजन ये पढ़े ये वा शुने। कृष्णभक्ति कृष्णपाय सेइ सब जने ॥१५७॥
गदाधर शुभ दृष्टि करेन याँहारे। से-इसे जानये नित्यानन्द स्वरूपेरे ॥१५८॥
नित्यानन्दस्वरूपो याँहार प्रीत मने। लओयायेन गदाधर, जाने से-इ जने ॥१५९॥
हेनमते नित्यानन्द प्रभु नीलाचले। रहिलेन गौरचन्द्र सङ्गे कुतूहले ॥१६०॥
तिनजन एकत्र थाकेन निरन्तर। श्रीकृष्णचैतन्य, नित्यानन्द, गदाधर ॥१६१॥
जगन्नाथो एकत्र देखेन तिन जने। आनन्दे विह्वल सभे मात्र सङ्कीर्तने ॥१६२॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान ॥१६३॥

इति श्रीचैतन्यभागवते अन्त्यखण्डे गदाधर-गृह-विलासवर्णनं नाम
अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

## नवमोऽध्याय

"जयजय महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य। जयजय नित्यानन्द त्रिभुवन धन्य ॥१॥
भक्तगोष्ठी सहित गौरांग जयजय। शुनिले चैतन्य कथा भक्तिलभ्य हय ॥२॥
जय जय श्रीकृष्ण चैतन्य गुणनिधि। जय जय नित्यानन्द दयार अवधि ॥३॥

---

वैकुंठ में तुम ही रसोई करते हो तो फिर अपने को छिपाते क्यों हैं ॥ १५३ ॥ इस प्रकार बड़े आनन्दपूर्वक हास-परिहास करते हुए तीनों प्रभुओं ने प्रेमरस से भोजन किया ॥ १५४ ॥ इन तीन जनों की प्रीति को ये तीनों ही जानते हैं सो श्रीगौरचन्द्र किसी से शीघ्र ही नहीं कहते ॥ १५५ ॥ कुछ समय में तीनों प्रभु भोजन करके चले हैं तब भक्तों ने महाप्रसाद की लूट मचाई ॥ १५६ ॥ इस आनन्दपूर्ण भोजन लीला को जो पाठ करेंगे व जो श्रवण करेंगे उन सब प्राणियों को कृष्णचन्द्र की भक्ति व कृष्णचन्द्र प्राप्त होंगे ॥१५७॥ जिनके ऊपर श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी शुभ-दृष्टि करते हैं केवल वे ही श्रीनित्यानन्दस्वरूप को जानते हैं॥१५८॥ और श्रीनित्यानन्दस्वरूप जिन पर मनमें प्रसन्न होते हैं उन्हीं को गदाधर ग्रहण कराते तथा वे ही जन उन्हें जान पाते हैं ॥१५९॥ इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु ने नीलाचल में कुतूहल से श्रीगौरचन्द्र के साथ निवास किया ॥ १६० ॥ श्रीकृष्णचैतन्य-नित्यानन्द व गदाधर तीनोंप्रभु निरन्तर एक ही साथ रहते थे ॥ १६१ ॥ तथा तीनों एक साथ ही जगन्नाथ दर्शन करते थे तथा सब हीं संकीर्तन जनित प्रेमानन्द में ही केवल विह्वल रहते थे॥ १६२ ॥ श्रीकृष्णचैतन्य एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र जिनके जान अर्थात् जीवन हैं वे वृन्दावदास (ग्रन्थकार) उनके चरण युगलों को अवलम्बन करके उनकी महिमा गान करते हैं ॥ १६३ ॥

"महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य की जय हो २ तथा त्रिभुवन धन्यकारी नित्यानन्द प्रभु की जय हो २ ॥१॥ भक्तगोष्ठी सहित श्रीगौरांग प्रभु की जय हो, श्रीचैतन्य कथा सुनने से भक्ति लाभ होती है ॥ २ ॥ गुणनिधि

जयजय श्रीअद्वैत-आदि भक्तगण । जय हउ तोमार लीलार श्रोतागण" ॥४॥
एवे शुन वैष्णव सभार आगमन । आचार्य गोसाञि आदि यत प्रिय-गण ॥५॥
श्रीरथयात्रार आसि हइल समय । नीलाचले भक्तगोष्ठीर हइल विजय ॥६॥
ईश्वरेर आज्ञा 'प्रति-वत्सरे वत्सरे । सभेइ आसिवा रथयात्रा देखिवारे ॥७॥
आचार्य गोसाञि अग्रे करि भक्तगण । सभे नीलाचल प्रति करिला गमन ॥८॥
चलिलेन ठाकुर पण्डित श्रीनिवास । याँहार मन्दिरे हैल चैतन्य विलास ॥९॥
चलिला आचार्यरत्न श्रीचन्द्रशेखर । देवीभावे याँर गृहे नाचिला ईश्वर ॥१०॥
चलिलेन हरिषे पण्डित-गङ्गादास । याँहार स्मरणे हय कर्मबन्ध नाश ॥११॥
पुण्डरीक विद्यानिधि चलिला आनन्दे । उच्चस्वरे याँरे स्मरि गौरचन्द्र कान्दे ॥१२॥
चलिला आनन्दे पण्डित वक्रेश्वर । ते नाचिते कीर्तनीया श्रीगौरसुन्दर ॥१३॥
चलिला प्रद्युम्न ब्रह्मचारी महाशय । साक्षात् नृसिंह याँर सने कथा कय' ॥१४॥
चलिलेन आनन्दे ठाकुर हरिदास । आर हरिदास-याँर सिन्धुकूले वास ॥१५॥
चलिलेन वासुदेवदत्त महाशय । याँर स्थाने कृष्ण हय आपने विक्रय ॥१६॥
चलिला मुकुन्ददत्त-कृष्णेर गायन । शिवानन्दसेन-आदि लइ आप्त गण ॥१७॥
चलिला गोविन्दानन्द आनन्दे विह्वल । दश-दिग हय याँर स्मरणे निर्मल ॥१८॥
चलिला गोविन्ददत्त महाहर्ष मने । मूल हैया ये कीर्तन करे प्रभु सने ॥१९॥

---

श्रीकृष्णचैतन्य की जय हो २ और दया के अवधि नित्यानन्द प्रभु की जय हो २ ॥ ३ ॥ श्रीअद्वैत आदि भक्तगणों की जय हो २ और तुम सब लीला सुनने वालों की जय हो ॥४॥ अब सब वैष्णव तथा आचार्य गुसाँई आदि जितने प्रियगण हैं उन सबका आगमन प्रसंग सुनो ॥ ५ ॥ श्रीरथयात्रा का समय आ पहुँचा अतः नीलाचल में भक्तमण्डली का आगमन हुआ ॥ ६ ॥ कारण कि श्रीप्रभु गौरचन्द्र की आज्ञा थी कि प्रत्येक वर्ष रथयात्रा दर्शन करने के लिये सब ही आया करें ॥ ७ ॥ आचार्य गोस्वामी को आगे करके सब भक्तगणों ने नीलाचल के प्रति गमन किया ॥ ८ ॥ जिनके मन्दिर में श्रीचैतन्य विलास हुआ करता था, वे पण्डित श्रीनिवास ठाकुर भी चले ॥ ९ ॥ श्रीप्रभु ने जिनके घर में देवीभाव से नृत्य किया था ऐसे श्रीचन्द्रशेखर आचार्य रत्न भी चले ॥ १० ॥ जिनके स्मरण से ही कर्म बन्धन नष्ट होता है ऐसे वे श्री पण्डित गङ्गादास भी प्रसन्न होकर चले ॥ ११ ॥ जिनको स्मरण करके श्रीगौरचन्द्र ऊँचे स्वर से रोये थे वे श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि आनन्द से चले ॥१२॥ जिनके नृत्य के समय श्रीगौरसुन्दर कीर्तनिया हुए थे वे पण्डित वक्रेश्वर भी आनन्द से चले ॥ १३ ॥ महाशय प्रद्युम्न ब्रह्मचारी चले जिनके संग में नृसिंह भगवान् साक्षात् कथा कहते थे ॥ १४ ॥ ठाकुर हरिदास व छोटे हरिदास आनन्द से चले हैं जिनका समुद्र तट पर वास था ॥१५॥ श्रीवासुदेवदत्त महाशय चले जिनके साथ स्वयं कृष्ण ( पूर्व प्रसङ्ग में ) बिक गये थे ॥ १६ ॥ श्रीशिवानन्द सेन आदि आत्मीयगणों को लेकर कृष्ण के गायक श्रीमुकुन्ददत्तजी चले ॥ १७ ॥ दशों दिशायें जिनके स्मरण करते ही निर्मल हो जाती हैं वे गोविन्दानन्द भी आनन्द में विह्वल होकर चले॥१८॥जो जड़ होकर प्रभु के सङ्ग में कीर्तन करते थे,वे श्रीगोविन्ददत्त बड़े हर्ष मन से चले। १९ आँसर देने वाले श्रीविजयदास च्

चलिलेन आँखरिया-श्रीविजयदास । 'रत्नवाहु' याँरे प्रभु करिला प्रकाश ॥२०॥
सदाशिव पण्डित चलिला शुद्ध मति । याँर घरे पूर्वे नित्यानन्देर वसति ॥२१॥
पुरुषोत्तम संजय चलिला हर्ष मने । ये प्रभुर मुख्य शिष्य पूर्व अध्ययने ॥२२॥
'हरि' बलि चलिलेन पण्डित-श्रीमान् । प्रभु-नृत्ये ये देउटि धरे सावधान ॥२३॥
नन्दन-आचार्य चलिलेन प्रीत मने । नित्यानन्द याँर गृहे आइला प्रथमे ॥२४॥
हरिषे चलिला शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी । याँर अन्न मागि खाइलेन गौरहरि ॥२५॥
अकिंचन कृष्णदास चलिला श्रीधर । याँर जलपान कैल प्रभु विश्वम्भर ॥२६॥
चलिलेन लेखक-पण्डित भगवान् । याँर देहे कृष्ण हैयाछिला अधिष्ठान ॥२७॥
गोपीनाथ पण्डित आर श्रीगर्भ पण्डित । चलिलेन दुइ कृष्णविग्रह निश्चित ॥२८॥
चलिलेन वनमाली पण्डित मङ्गल । ये देखिल सुवर्णेर श्रीहल मूषल ॥२९॥
जगदीश पण्डित हिरण्य भागवत । आनन्दे चलिला दुइ कृष्णरसे मत्त ॥३०॥
पूर्वे शिशुरूपे प्रभु ये-दुहर घरे । नवेद्य खाइल । आनि श्रीहरिवासरे ॥३१॥
चलिलेन बुद्धिमन्त खान महाशय । आजन्म चैतन्य-आज्ञा याँहार विषय ॥३२॥
हरिषे चलिला श्रीआचार्य पुरन्दर । 'बाप' बलि याँरे डाके श्रीगौरसुन्दर ॥३३॥
चलिलेन श्रीराघव पण्डित उदार । गुप्ते याँर घरे हैल चैतन्य विहार ॥३४॥
भवरोग-वैद्यसिंह चलिला मुरारि । गुप्ते याँर देहे वैसे गौराङ्ग श्रीहरि ॥३५॥
चलिलेन श्रीगरुड़ पण्डित हरिषे । नाम-बले याँरे ना लांघिल सर्प विषे ॥३६॥

---

प्रभु ने जिन्हें रत्नवाहु नाम से प्रकाश किया था ॥ २० ॥ शुद्ध बुद्धि वाले पण्डित सदाशिव चले पहिले जिनके घर में श्रीनित्यानन्द प्रभु का निवास हुआ था ॥२१॥ श्रीपुरुषोत्तम सञ्जय ने बड़े हर्ष मन से गमन किया पहिले अध्ययन काल में जो प्रभु के मुख्य शिष्य थे ॥ २२ ॥ श्रीमान् पण्डित हरि २ कहकर चले प्रभु के नृत्य काल में जो सावधान होकर मशाल धारण करते थे ॥ २३ ॥ सबसे पहिले नित्यानन्द जिनके घर में आये वे श्रीनन्दन आचार्य प्रसन्न मन से चले ॥ २४ ॥ श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारी हर्षित होकर चले जिनसे श्रीगौर हरि ने अन्न माँगकर खाया था ॥ २५ ॥ श्रीप्रभु विश्वम्भर ने ( लोह पात्र से ) जिनका जल पिया था ऐसे वे अकिंचन कृष्णदास श्रीधरजी भी चले ॥ २६ ॥ जिनके देह में कृष्ण का अधिष्ठान हुआ था ऐसे लेखक श्रीभगवान् पण्डित चले ॥ २७ ॥ जो दो निश्चित रूप से श्रीकृष्ण विग्रह ही थे, ऐसे श्री पण्डित गोपीनाथ व श्री पण्डित श्रीगर्भ चले ॥ २८ ॥ जिनने पहिले सोने के हल मूषल देखे थे, ऐसे मङ्गलस्वरूप पण्डित वनमाली चले ॥ २९ ॥ जगदीश पण्डित व हिरण्य भागवत दोनों कृष्णरस में मत्त होकर आनन्द में चल दिये॥३०॥पूर्व में इन दोनों के घर में श्रीप्रभु ने शिशुरूप से एकादशी के दिन नैवेद्य खाया था ॥३१॥ जन्म से श्रीचैतन्य की आज्ञा को मानना ही जिनका एक मात्र विषय है, वे महाशय बुद्धिमन्त खान भी चले ॥ ३२ ॥ पिता कहकर जिनसे श्रीगौरसुन्दर बोलते थे, वे श्रीआचार्य पुरन्दर हर्ष से चले ॥३३॥ श्रीनित्यानन्द जी के कथनानुसार जिनके घर में गुप्तरूप से श्रीचैतन्य विहार हुआ वे उदार श्रीराघव पण्डित चले ॥३४॥ भवरोग के वैद्यसिंह श्रीमुरारि गुप्त चले जिनके देह में श्रीगौरहरि गुप्त रूप से विराजते थे ॥ ३५ ॥ जिनके

चलिलेन गोपीनाथसिंह महाशय । 'अक्रूर' करिया याँरे गौरचन्द्र कय ॥३७॥
प्रभुर परम प्रिय श्रीराम पण्डित । चलिलेन नारायण पण्डित-सहित ॥३८॥
आइ-दरशने श्रीपण्डित-दामोदर । आसि छिला, आइ देखि चलिला सत्वर ॥३९॥
अनन्त चैतन्य-भक्त-कत जानि नाम । सबे चलिलेन इइ आनन्देर धाम ॥४०॥
आइ-स्थाने भक्ति करि विदाय करिया । चलिला अद्वैतसिंह भक्तगोष्ठी लैया ॥४१॥
ये-ये द्रव्ये जानेन प्रभुर पूर्व प्रीत । सब लैला सबे प्रभुर भिक्षार निमित्त ॥४२॥
सर्व पथे संकीर्तन-आनन्द करिते । आइलेन पवित्र करिया सर्व पथे ॥४३॥
उल्लासे ये हरिध्वनि करे भक्तगण । शुनिञा पवित्र हय त्रिभुवन-जन ॥४४॥
पत्नी-पुत्र-दास-दासी गणेर सहिते । आइलेन परानन्दे चैतन्य देखिते ॥४५॥
ये-स्थाने रहेन आसि सबे वासाकरि । सेइ स्थान हय येन श्रीवैकुण्ठपुरी ॥४६॥
शुन शुन आरे भाइ ! मङ्गल-आख्यान । जाँहा गाय महाप्रभु शेष भगवान् ॥४७॥
एइ मत रङ्गे महापुरुष सकल । सकल-मङ्गले आइलेन नीलाचल ॥४८॥
कमलपुरेते ध्वज-प्रासाद देखिया । पड़िलेन कान्दि सबे दण्डवत् हैया ॥४९॥
प्रभुओ जानिञा भक्तगोष्ठीर विजय । आगु बाढ़िबारे चित्त कैला इच्छामय ॥५०॥
अद्वैतेरे प्रति अति प्रीतियुक्त हैया । अग्रे महाप्रसाद दिलेन पाठाइया ॥५१॥
कि अद्भुत प्रीतिसे ताहार नाहि अन्त । प्रसाद चलये याँरे कटक पर्यन्त ॥५२॥

प्रभाव से सर्प का विष नहीं चढ़ा वे श्रीगरुड़ पण्डित प्रसन्नता पूर्वक चले ॥ ३६ ॥ "अक्रूर" कहकर जिनको श्रीगौरचन्द्र सम्बोधन करते थे, वे बड़े उदार गोपीनाथसिंह चले ॥३७॥ प्रभु के परम प्रिय श्रीराम पण्डित पण्डित नारायण को साथ लेकर चले ॥३८॥ श्रीशची माता के दर्शन करने के लिये जो श्रीदामोदर पण्डित आये थे वे माताजी के दर्शन करके शीघ्र चल दिये ॥ ३९ ॥ चैतन्य के भक्त अनन्त हैं कितनों के नाम लूँ सभी आनन्दधाम होकर चल दिये ॥४०॥ श्रीअद्वैताचार्यजी श्रीशची माता के चरणों में भक्तिपूर्वक प्रणाम करके विदा हो सिंह समान आगे-आगे भक्त-मंडली लेकर चले ॥ ४१ ॥ जिस-जिस द्रव्य में प्रभु की प्रीति थी उन सबको पहिले से ही जानते थे इस कारण सभी प्रिय वस्तु प्रभु की भिक्षा के निमित्त से साथ में ले ली ॥ ४२ ॥ संकीर्तन आनन्द से सम्पूर्ण सब मार्ग को पवित्र करते हुए आये ॥ ४३ ॥ भक्तगण उल्लास में जो हरिध्वनि करते हैं उसे सुनकर तीनों लोकों के प्राणी पवित्र हो जाते हैं ॥४४॥ स्त्री-पुत्र-दास-दासीगणों के सहित भक्तवृन्द परम आनन्द से श्रीगौरचन्द्र के दर्शनों के लिये आये ॥ ४५ ॥ निवासस्थान का निश्चय करके जिस स्थान पर आकर सब ठहरे वही स्थान श्रीवैकुण्ठपुरी ही बन जाता था ॥ ४६ ॥ हे भाइयो मंगल प्रसंगों को सुनो जिन्हें आदिदेव शेष भगवान् गान करते हैं ॥ ४७ ॥ इस प्रकार सब महापुरुष सब प्रकार से कुशलपूर्वक नीलाचल आ गये ॥ ४८ ॥ कमलपुर में ही ध्वजा व मन्दिर को देखकर सब भक्त रोते-रोते दण्डवत् होकर गिर पड़े ॥ ४९ ॥ इच्छामय श्रीगौरचन्द्र ने भी भक्तमण्डली का शुभागमन जानकर आगे बढ़ने को चित्त किया ॥ ५० ॥ श्रीअद्वैत के प्रति अत्यन्त प्रीतियुक्त होकर आगे ही महाप्रसाद भेज दिया ॥ ५१ ॥ अहो क्या अद्भुत प्रीति थी जिसका अन्त नहीं था देखो जिनके लिये कटकपर्यन्त प्रसाद पहुँचाया।

"शयने आछिलूँ क्षीरसागर भितरे । निद्रा भङ्ग हैल मोर नाढ़ार हुङ्कारे ॥५३॥
अद्वैत निमित्त मोर एइ अवतार" । एइ मत महाप्रभु बोले बार-बार ॥५४॥
एतेके ईश्वर तुल्य यतेक महान्त । अद्वैतसिंहेरे भक्ति करेन एकान्त ॥५५॥
'आइला अद्वैत' शुनि श्रीवैकुण्ठ पति । आगु बढ़िलेन प्रिय गोष्ठीर संहति ॥५६॥
नित्यानन्द गदाधर श्रीपुरी गोसाञि । चलिलेन आनन्दे काहारो वाह्य नाञि ॥५७॥
सार्वभौम जगदानन्द काशी मिश्र वर । दामोदरस्वरूप श्रीपण्डित शङ्कर ॥५८॥
काशीश्वर पण्डित आचार्य-भगवान् । श्रीप्रद्युम्न मिश्र-प्रेमभक्तिर प्रधान ॥५९॥
पात्र-श्रीपरमानन्दराय रामानन्द । चैतन्येर द्वारपाल-सुकृति गोविन्द ॥६०॥
ब्रह्मानन्दभारती श्रीरूप सनातन । रघुनाथ वैद्य शिवानन्द नारायण ॥६१॥
अद्वैतेरे ज्येष्ठपुत्र श्रीअच्युतानन्द । वाणीनाथ श्रीशिखि माहाति भक्तवृन्द ॥६२॥
अनन्त चैतन्य भृत्य, कत जानि नाम । कि छोट कि बड़ सभे करिला पयान ॥६३॥
परानन्दे सभे चलिलेन प्रभु सङ्गे । वाह्य दृष्टि वाह्य ज्ञान नाहि कारो अंगे ॥६४॥
श्रीअद्वैतसिंहो सर्व-वैष्णव-सहिते । आसिया मिलिला प्रभु आठारो नालाते ॥६५॥
प्रभुओ आइला नरेन्द्रेरे आगुयान । दुइ गोष्ठी देखा देखि हैल विद्यमान ॥६६॥
दूरे देखि दुइ गोष्ठी अन्योऽन्ये सव । दण्डवत हइ सब पड़िला वैष्णव ॥६७॥
दूरे अद्वैतेरे देखि श्रीवैकुण्ठनाथ । अश्रु मुखे करिते लागिला दण्डपात ॥६८॥
श्रीअद्वैतो दूरे देखि निज प्राणनाथ । पुनः पुन करिते लागिला दण्डपात ॥६९॥

---

॥ ५२ ॥ मैं क्षीरसागर में सो रहा था वहाँ मेरी नींद नाढ़ा ( बूढ़े ) की हुङ्कारों से भंग हो गई ॥ ५३ ॥ मेरा यह अवतार श्रीअद्वैत के निमित्त ही हुआ है इस प्रकार महाप्रभु बारम्बार कहते थे ॥ ५४ ॥ इसी से जितने ईश्वर तुल्य महापुरुष हैं वे अद्वैतसिंह में एकान्त भक्ति करते हैं ॥५५॥ श्रीअद्वैत आये हैं ऐसे श्री-वैकुण्ठपति गौरचन्द्र सुनकर प्रिय भक्तमण्डली के सहित आगे लेने को बढ़े ॥ ५६ ॥ तथा श्रीनित्यानन्द श्री-श्रीगदाधर व श्रीपरमानन्दपुरी आनन्द में चले जा रहे थे, किसी को वाह्य ज्ञान नहीं था ॥ ५७ ॥ सार्वभौम भट्टाचार्य, जगदानन्द, काशी मिश्रवर, स्वरूप-दामोदर, श्रीशंकर पण्डित, पण्डित काशीश्वर, भगवान आचार्य, प्रेमभक्ति में प्रधान श्रीप्रद्युम्न मिश्र, श्रीपरमानन्द पात्र, रायरामानन्द, चैतन्य के सुकृति द्वारपाल गोविन्द, ब्रह्मानन्द भारती, श्रीरूप, श्रीसनातन, रघुनाथ वैद्य, शिवानन्दसेन, नारायण, अद्वैत के ज्येष्ठ पुत्र श्रीअच्युतानन्द, वाणीनाथ, श्रीशिखिमाहाति आदि जितने भक्तवृन्द थे ॥ ५८ से ६२ ॥ श्रीचैतन्य के दास तो अनन्त हैं कितनेक नामों को जानें ! क्या छोटे क्या बड़े सभी ने गमन किया ॥ ६३ ॥ सब भक्तवृन्द श्रीगौरचन्द्र के सङ्ग में परम आनन्द से चले जा रहे थे और किसी के अङ्ग में वाह्यदृष्टि व वाह्य ज्ञान नहीं था ॥ ६४ ॥ सब वैष्णवों सहित श्रीअद्वैतसिंह भी अठारह नाला पर प्रभु से आकर मिले ॥६५॥ श्रीगौरचन्द्र भी नरेन्द्र सरोवर से आगे आये सोई दोनों मण्डलियों की सम्मुख देखादेखी हुई ॥ ६६ ॥ दूर ही से परस्पर दोनों मण्डलियाँ देखते ही, सब वैष्णव दण्डवत् होकर पृथ्वी पर गिर पड़े ॥६७॥ श्रीवैकुण्ठनाथ गौरचन्द्र

अश्रु, कम्प, स्वेद, मूर्च्छा, पुलक, हुङ्कार। दण्डवत् बइ किछु नाहि देखि आर ॥७०॥
दुइगोष्ठी दण्डपात केवा कारे करे। समेइ चैतन्य रसे विह्वल अन्तरे ॥७१॥
किवा छोट, किवा बड़, ज्ञानी वा अज्ञानी। दण्डवत् करि सभे करे हरिध्वनि ॥७२॥
ईश्वरो करेन भक्तसङ्गे दण्डवत। अद्वैतादि-प्रभुओ करेन सेइ मत ॥७३॥
एइ मत दण्डवत् करिते-करिते। दुइ गोष्ठी एकत्र मिलिला भाल मते ॥७४॥
एखाने ये हइल आनन्द-दरशन। उच्च हरिध्वनि, उच्च आनन्द-क्रन्दन ॥७५॥
मनुष्ये कि पारे इहा करिते वर्णन। सबे वेदव्यास, आर सहस्र वदन ॥७६॥
अद्वैत देखिया प्रभु करिलेन कोले। सिंचिलेन अङ्ग तान प्रेमानन्द-जले ॥७७॥
श्लोक पढ़ि अद्वैत करेन नमस्कार। हइलेन अद्वैत आनन्द-अवतार ॥७८॥
यत सज्जा करि छिला प्रभु पूजिवारे। सब पासरिलेन, किछुइ नाहि स्फुरे ॥७९॥
आनन्दे अद्वैतसिंह करेन हुङ्कार। 'आनिलूँ आनिलूँ' बलि डाके बारबार ॥८०॥
हेनसे हइल अति-उच्च-हरिध्वनि। कोन् लोक पूर्ण नहे, हेनत ना जानि ॥८१॥
वैष्णवेर किदाय, अज्ञान यत जन। ताराओ बोलये 'हरि' करये क्रन्दन ॥८२॥
सर्व भक्तगोष्ठी अन्योन्ये गला धरि। आनन्दे क्रन्दन करे बोले 'हरि-हरि' ॥८३॥
अद्वैतेरे सभे करिलेन नमस्कार। याँहार निमित्त श्रीचैतन्य-अवतार ॥८४॥

---

दूर से ही श्रीअद्वैत को देखकर अश्रु मुख होकर दण्डवत् कर रहे थे ॥ ६८ ॥ श्रीअद्वैत भी दूर से अपने प्राणनाथ को देखते ही बारम्बार दण्डवत् होकर प्रणाम करने लगे ॥६९॥ अश्रु, कम्प, स्वेद, मूर्च्छा, पुलक, हुङ्कार के सहित दण्डवत् प्रणामों के बिना अन्य कुछ नहीं दृष्टिगोचर हो रहा था ॥ ७० ॥ दोनों गोष्ठियों में कौन किसको दण्डवत् करता था मालूम नहीं; केवल निरन्तर में सब ही चैतन्य प्रेमरस में विह्वल थे ॥ ७१ ॥ क्या छोटे क्या बड़े-ज्ञानी अथवा अज्ञानी, सभी ही दण्डवत् करके हरिध्वनि कर रहे थे ॥ ७२ ॥ भक्तों के सहित ईश्वर श्रीगौरचन्द्र भी दण्डवत् कर रहे थे, उसी प्रकार श्रीअद्वैतप्रभु भी कर रहे थे ॥ ७३ ॥ इस प्रकार दोनों गोष्ठी दण्डवत् करते २ अच्छी तरह एक साथ मिल गई ॥ ७४ ॥ तब उस स्थान में उच्च हरिध्वनि व ऊँचे स्वर से आनन्दक्रन्दन रूप जो आनन्द के दर्शन हुए उसे क्या मनुष्य वर्णन कर सकता है ? केवल वेदव्यास वे सहस्र वदन ( शेष ही ) वर्णन कर सकते हैं ॥ ७५-७६ ॥ श्रीगौरचन्द्र ने श्रीअद्वैत को देखकर गोदी में ले लिया और उनके अङ्ग को प्रेमानन्द जल से सिंचन करने लगे ॥७७॥ "नमो ब्रह्मण्य देवाय" इस श्लोक का पाठ करके अद्वैत नमस्कार कर रहे थे तथा वे अद्वैत आनन्द के अवतार रूप हो गये ॥ ७८ ॥ जितनी सामिग्री प्रभु की पूजा के निमित्त इकट्ठी की थी सो सब भूल गये कुछ भी स्फूर्ति नहीं होती थी ॥ ७९ ॥ अद्वैतसिंह आनन्द से हुङ्कार कर रहे थे और " लाया हूँ २ " कहकर बारम्बार चिल्ला रहे थे ॥ ८० ॥ ऐसी अत्यन्त ऊँचे स्वर से हरिध्वनि हुई जिससे कोई लोक व्याप्त होने से बचा हो ऐसा जान नहीं पड़ता ॥८१॥ वैष्णवों की तो बात ही क्या है जितने अज्ञानी जन थे, वे भी हरि २ कहकर क्रन्दन कर रहे थे ॥ ८२ ॥ सब भक्तमण्डली परस्पर कंठों को पकड़कर हरि २ बोलकर आनन्द से रो रहे थे ॥८३॥ जिनके निमित्त श्रीचैतन्य का अवतार हुआ उन श्रीअद्वैतजी को सब ही नमस्कार कर रहे थे ॥ ८४ ॥

महा-उच्च ध्वनि करि हरि सङ्कीर्तन । दुइगोष्ठी करिते लागिला ततृक्षण ॥८५॥
कोथा केवा नाचे कोन् दिगे केवा गाय । केवा कोन् दिगे पड़ि गड़ागड़ि याय ॥८६॥
प्रभु देखि सभे हैला आनन्दे विह्वल । प्रभुओ नाचेन माझे सकल मंगल ॥८७॥
नित्यानन्द अद्वैत करिया कोला कोलि । नाचे दुइ मत्तसिंह हइ कुतूहली ॥८८॥
सर्व-वैष्णवेरे प्रभु धरि जने-जने । आलिंगन करेन परम-प्रीत-मने ॥८९॥
भक्त नाथ भक्त-वश भक्तेर जीवन । भक्त-गला धरि प्रभु करेन क्रन्दन ॥९०॥
जगन्नाथ देवेर आज्ञाय सेइक्षण । सहस्र-सहस्र माला आइल चन्दन ॥९१॥
आज्ञा माला देखि हर्षे श्रीगौराङ्गराय । अग्रे दिला श्रीअद्वैतसिंहेर गलाय ॥९२॥
सर्व-वैष्णवेरे प्रभु श्रीहस्ते आपने । परिपूर्ण करिलेन मालाय चन्दने ॥९३॥
देखिया प्रभुर कृपा सर्व भक्तगण । वाहु तुलि उच्च स्वरे करेन क्रन्दन ॥९४॥
सभेइ मागेन वर श्रीचरण धरि । 'जन्मे-जन्मे येन प्रभु ! तोमा' ना पासरि ॥९५॥
कि मनुष्य पशु-पक्षी घरे जन्मि यथा । तोमार चरण येन देखिये सर्वथा ॥९६॥
एइ वर देह प्रभु करुणासागर । पादपद्म धरि कान्दे सर्व अनुचर ॥९७॥
वैष्णव गृहिणी यत पतिव्रतागण । दूरे थाकि प्रभु देखि करेन क्रन्दन ॥९८॥
ताँ सभार प्रेमधारे अन्त नाहि पाइ । सभेइ वैष्णवी शक्ति, भेद किछु नाइ ॥९९॥
'ज्ञान भक्तियोगे सभे पतिर समान' । कहिया आछेन श्रीचैतन्य भगवान् ॥१००॥

---

ऊँचे स्वर से दोनों गोष्ठियाँ आनन्द से हरि सङ्कीर्तन करने लगीं ॥ ८५ ॥ कोई कहीं नाच रहा था तो कोई किसी ओर गा रहा था तो कोई कहीं गिरकर लोट-पोट ही हो रहा था ॥८६॥ प्रभु के दर्शन करके सब लोग आनन्द में विह्वल हो रहे थे तथा सकल मंगल निदान महाप्रभु भी सबके बीच में नाच रहे थे ॥ ८७ ॥ श्रीनित्यानन्दजी व श्रीअद्वैत परस्पर आलिंगन करके दोनों मत्तसिंह की भाँति कुतूहलयुक्त होकर नाच रहे थे ॥ ८८ ॥ श्रीगौरचन्द्र ने प्रत्येक वैष्णव को पकड़-पकड़ कर परम प्रसन्न मन से आलिङ्गन किया ॥८९॥ भक्तनाथ भक्ताधीन भक्तजीवन श्रीगौरचन्द्र भक्तों के कंठों को पकड़कर रो रहे थे ॥९०॥ उसी क्षण में जगन्नाथदेव की आज्ञा से हजारों-हजारों मालाएं व चन्दन वहाँ आ गया ॥९१॥ श्रीगौराङ्गराय ने आज्ञा मालाओं को देखकर हर्ष से पहिले श्रीअद्वैतजी के गले में माला दी ॥ ९२ ॥ श्रीगौरचन्द्र ने अपने ही हस्त-कमलों से सब वैष्णवों को माला व चन्दन से परिपूर्ण किया ॥ ९३ ॥ सब भक्तवृन्द प्रभु की कृपा देखकर भुजाओं को उठा-उठाकर क्रन्दन करने लगे ॥ ९४ ॥ सभी ने श्रीचरणों को पकड़कर यह वर माँगा कि जिसमें हे प्रभो ! जन्म-जन्म में हम तुमको न भूल जावें ॥ ९५ ॥ क्या मनुष्य क्या पशु व पक्षिओं के घरों में जहाँ भी जन्म हो ऐसी कृपा करो जिसमें सर्वथा तुम्हारे चरणों के दर्शन होते रहें ॥ ९६ ॥ हे करुणासागर प्रभो यही वर दो सभी सेवक यह कहते जाते थे और चरण पकड़कर रो रहे थे ॥ ९७ ॥ वैष्णवों की जितनी पतिव्रता गृहिणियाँ थीं वे दूर से प्रभु के दर्शन करके रो रही थीं ॥ ९८ ॥ उन सब की प्रेमधारा का अन्त नहीं होता था कारण कि सब ही तो वैष्णवी शक्ति उनमें कुछ भेद नहीं था ॥ ९९ ॥ श्रीचैतन्य भगवान् ने पहिले ही कहा था कि वे ज्ञान व भक्तियोग में सब अपने पतियों के समान ही थीं ॥१००॥ इस प्रकार संकीर्तन नृत्य गीत

एइ मत नृत्य गीत वाद्य संकीर्तने । आइसेन चलिया समेइ प्रभु-सने ॥१०१॥
हेनसे हइल प्रेमभक्तिर प्रकाश । हेन नाहि यार देखि ना हय उल्लास॥१०२॥
आठारो नालाय हैते दश दण्ड हैले । महाप्रभु आइलेन नरेन्द्रेर कूले ॥१०३॥
हेन काले राम-कृष्ण श्रीयात्रा गोविन्द । जलकेलि करिवारे आइला नरेन्द्र ॥१०४॥
हरिध्वनि नृत्य गीत मृदङ्ग काहाल । शंख भेरी जय ढाक बाजये विशाल ॥१०५॥
सहस्र-सहस्र छत्र पताका चामर । चतुर्दिगे शोभा करे परम सुन्दर ॥१०६॥
महाजय जय शब्द महा-हरिध्वनि । इहा वइ आर कोन शब्द नाहि शुनि ॥१०७॥
राम-कृष्ण श्रीगोविन्द महा कुतूहले । उत्तरिला आसि सभे नरेन्द्रेर जले ॥१०८॥
जगन्नाथ गोष्ठी श्रीचैतन्य गोष्ठीसने । मिशाइला तानाओ भुलिला सङ्कीर्तने ॥१०९॥
दुइ गोष्ठी एक हइ कि हैल आनन्द । कि वैकुण्ठ सुख आसि हैल मूर्तिमन्त ॥११०॥
चतुर्दिगे लोकेर आनन्दे अन्त नाजि । सब करेन करायेन चैतन्य गोसाञि ॥१११॥
राम-कृष्ण श्रीगोविन्द उठिला नौकाय । चतुर्दिगे भक्तगण चामर दुलाय ॥११२॥
राम-कृष्ण श्रीगोविन्द नौकाय् विजय । देखिया सन्तोष श्रीगौराङ्ग महाशय ॥११३॥
प्रभुओ सकल भक्त लइ कुतूहले । झाँप दिया पड़िलेन नरेन्द्रेर जले ॥११४॥
शुन भाइ ! श्रीकृष्णचैतन्य अवतार । ये रूपे नरेन्द्र जले करिला विहार ॥११५॥
पूर्वे यमुनाय येन शिशुगण मेलि । मण्डली हइया करिलेन जलकेलि ॥११६॥
सेइ रूपे सकल वैष्णवगण मेलि । परस्पर करे धरि हइला मण्डली ॥११७॥

व बाजे के साथ सब भक्तवृन्द श्रीगौरचन्द्र के सङ्ग में चलकर आये ॥ १०१ ॥ प्रेम-भक्ति का ऐसा प्रकाश हुआ कि ऐसा कोई नहीं था, जिसे देखकर उल्लास न होता हो ॥ १०२ ॥ श्रीमहाप्रभु अठारह नाला से दश घड़ी में नरेन्द्र सरोवर के तट पर आकर पहुँचे ॥ १०३ ॥ उसी समय में राम-कृष्ण व गोविन्द चन्दन यात्रा के दिन जलकेलि करने के लिये नरेन्द्र सरोवर पर आये थे ॥ १०४ ॥ हरिध्वनि, नृत्य, गीत, मृदङ्ग, ढक, भेरी, विजय-घंट आदि विशाल बाजे बज रहे थे ॥१०५॥ सहस्र २ छत्र चँवर पताका चारों ओर को बड़ी सुन्दर शोभा दे रहे थे ॥ १०६ ॥ ऊँचे स्वर से महा जय-जय शब्द व हरिध्वनि के अतिरिक्त अन्य कोई शब्द सुनने में नहीं आता था ॥ १०७ ॥ श्रीराम-कृष्ण व श्रीगोविन्द बड़े कुतूहल से आकर सब ही नरेन्द्र सरोवर के जल में उतरे हुए थे ॥ १०८ ॥ जगन्नाथ की गोष्ठी श्रीचैतन्य भक्त गोष्ठी के साथ मिल गई और वे भी सङ्कीर्तन में सब भूल गये॥१०९॥दोनों मंडलियों के एकत्र होने से क्या अपूर्व आनन्द हुआ मानो वैकुण्ठ सुख मूर्तिमन्त होकर हो विराज रहा है॥११०॥ चारों ओर में लोगों के आनन्द का अन्त नहीं है यह सब श्रीचैतन्यप्रभु करते हैं व कराते हैं ॥ १११ ॥ श्रीरामकृष्ण व श्रीगोविन्ददेव नौका में विराजमान हुए और चारों ओर, भक्तवृन्द चँवर ढो रहे थे ॥ ११२ ॥ महाशय श्रीगौराङ्ग, देवरामकृष्ण व श्रीगोविन्द को नौका में विराजमान देखकर बड़े सन्तुष्ट हुए॥ ११३ ॥ सब भक्तों को लेकर श्रीगौरचन्द्र भी कुतूहलपूर्वक झँप देकर नरेन्द्रसरोवर के जल में पड़े हैं॥११४॥हे भाइयो सुनो प्रभु ने श्रीकृष्णचैतन्यावतार में जिस प्रकार नरेन्द्र के जल में विहार किया था ॥ ११५ ॥ जैसे पहिले यमुना में शिशुओंके साथ मण्डली बनाकर जल

गौड़देशे जलकेलि आछे 'कया' नामे । सेइ जलक्रीड़ा आरम्भिलेन प्रथमे ॥११८॥
'कया कया' बलि करतालि देन जले । जले वाद्य वाजायेन वैष्णव मण्डले ॥११९॥
गोकुलेर शिशुभाव हइल सभार । प्रभुओ हइला गोकुलेन्द्र-अवतार ॥१२०॥
वाह्य नाहि कारो, सभे आनन्दे विह्वल । निर्भये ईश्वर देहे सभे देन जल ॥१२१॥
अद्वैत चैतन्य दुँहे जल-फेला फेलि । प्रथमे लागिला दुँहे महा कुतूहली ॥१२२॥
अद्वैत हारेन क्षणे, क्षणे वा ईश्वर । निर्घात नयने जल देन परस्पर ॥१२३॥
नित्यानन्द गदाधर श्रीपुरी गोसाञि । तिन प्रभु जलयुद्ध, कारो हारि नाञि ॥१२४॥
दत्ते गुप्ते जलयुद्ध लागे बार-बार । परम-आनन्दे दुँहे करेन हुङ्कार ॥१२५॥
दुइ सखा-विद्यानिधि स्वरूप दामोदर । हासिया आनन्दे जल देन परस्पर ॥१२६॥
श्रीवास श्रीराम हरिदास वक्रेश्वर । गङ्गादास गोपीनाथ श्रीचन्द्रशेखर ॥१२७॥
एइ मत अन्योन्ये सभे देन जल । चैतन्य-आनन्दे सभे हइला विह्वल ॥१२८॥
श्रीगोविन्द-राम-कृष्ण-विजय नौकाय । लक्ष-लक्ष लोक जले आनन्दे बेड़ाय ॥१२९॥
सेइ जले विषयी सन्यासी ब्रह्मचारी । सभेइ आनन्दे भासे जलक्रीड़ा करि ॥१३०॥
हेनसे चैतन्य माया, से स्थाने आसिते । कारो शक्ति नाहि, केहो ना पाय देखिते ॥१३१॥
अल्प भाग्ये चैतन्यगोष्ठी नाहि पाइ । केवल भक्तिर वश चैतन्य गोसाञि ॥१३२॥
भक्ति बिना केवल विद्याय तपस्याय । किछुइ ना हय, सबे दुखमात्र पाय ॥१३३॥

---

क्रीड़ा की थी ॥ ११६ ॥ उसी प्रकार सब वैष्णव मिलकर परस्पर में हाथ पकड़कर मण्डली बनाये थे ॥ ११७ ॥ गौड़ देश में कया नाम की जलकेलि होती है पहिले वही जलक्रीड़ा आरम्भ की ॥ ११८ ॥ "कया-कया" कहकर जल में ताली बजा रहे थे तथा वैष्णवगण जल में बाजे बजाते थे ॥ ११९ ॥ तथा सबको नये ब्रज के ग्वालबालों का भाव उदय हुआ व गौर भी कृष्ण के अवतार के भाव में मग्न हुए॥१२०॥ किसी को वाह्य ज्ञान नहीं था सब प्रेमानन्द में विह्वल होकर निर्भय रूप से गौरचन्द्र के शरीर पर जल डाल रहे थे ॥ १२१ ॥ पहिले श्रीअद्वैत व श्रीचैतन्य में जल फेंका फेंकी होने लगी दोनों ही महा कुतूहली थे ॥ १२२ ॥ क्षण में अद्वैत हार जाते व दूसरे ही क्षण में श्रीगौरचन्द्र हारते थे परस्पर में घात करके नेत्रों में जल मारते थे ॥ १२३ ॥ श्रीनित्यानन्द श्रीगदाधर व श्रीपरमानन्द गुँसाई तीनों जल युद्ध कर रहे थे परन्तु कोई हारता नहीं था ॥ १२४ ॥ श्रीमुकुन्ददत्त श्रीमुरारीगुप्त में बार-बार जल युद्ध होता था तथा बड़े आनन्द से दोनों हुङ्कार कर रहे थे ॥ १२५ ॥ श्रीविद्यानिधि, व श्रीस्वरूपदामोदर दोनों सखा परस्पर हँसते हुए आनन्द से जल मार रहे थे ॥ १२६ ॥ श्रीवास, श्रीराम, हरिदास, वक्रेश्वर, गङ्गादास, गोपीनाथ व चन्द्रशेखर आदि परस्पर एक दूसरे में सब ही जल मार रहे थे, सब श्रीचैतन्यचन्द्र के प्रेमानन्द में विह्वल हो रहे थे ॥१२७-१२८॥ श्रीगोविन्द व रामकृष्ण नौका में विराज रहे थे सोई लाखों २ लोग आनन्द से जल में भ्रमण कर रहे थे ॥१२९॥ उसी जल में विषयी, सन्यासी व ब्रह्मचारी सब ही जलक्रीड़ा करते हुए आनन्द मे विभोर हो रहे थे ॥ १३० ॥ उसी स्थान पर आते ही सब उस "कया" खेल में लग जाते थे—श्रीचैतन्यदेव की एसी माया है, उस माया को समझने ( देखने ) की किसी में शक्ति नहीं है १३१ अल्प भाग्य से

साक्षात देखह एइ सेइ नीलाचले एतेक चैतन्य सङ्कीर्त्तन कुतूहल ॥१३४॥
यत महा महा नाम सन्यासि सकल देखितेओ भाग्य कारा नहिल केवल ॥१३५॥
आरो बोले 'चैतन्य वेदान्त पाठ छाड़ि। कि कार्य्ये वा करेन कीर्त्तन-हुड़ाहुड़ि ॥१३६॥
सर्वदाइ प्राणायाम-एइसे यति धर्म। नाचिव काँदिव-एकि सन्यासीर कर्म ॥१३७॥
ताहाते ये सब उत्तम न्यासिगण। तारा बोले 'श्रीकृष्णचैतन्य महाजन' ॥१३८॥
केहो बोले 'ज्ञानी', केहो बोले 'बड़भक्त'। प्रशंसेन सभे, केहो ना जानेन तत्त्व ॥१३९॥
हेन मते जलक्रीड़ा रंग कुतूहले। करेन ईश्वर संगे वैष्णव सकले ॥१४०॥
पूर्वे येन जलकेलि हैल द्वारकाय। सेइ सब भक्त लइ श्रीचैतन्यराय ॥१४१॥
ये प्रसाद पाइलेन जाह्नवी यमुना। नरेन्द्र जलेरो हैल सेइ भाग्यसीमा ॥१४२॥
ए सब लीलार कभु नाहि परिच्छेद। 'आविर्भाव' 'तिरोभाव' मात्र कहे वेद ॥१४३॥
ए सकल लीला जीव-उद्धार-कारणे। कर्मबन्ध छिण्डे यार स्मरण पठने ॥१४४॥
तबे प्रभु जलक्रीड़ा सम्पूर्ण करिया। जगन्नाथ देखिते चलिला सभा लैया ॥१४५॥
जगन्नाथ देखि प्रभु सर्व भक्तगण। लागिला करिते सभे आनन्द क्रन्दन ॥१४६॥
जगन्नाथ देखि प्रभु हयेन विह्वल। आनन्दधाराय अङ्ग तितिल सकल ॥१४७॥
अद्वैतादि-भक्तगोष्ठी देखेन सन्तोषे। केवल आनन्दसिन्धु मध्ये सभे भासे ॥१४८॥
दुइ दिगे सचल निश्चल जगन्नाथ। देखि-देखि भक्तगोष्ठी हय दण्डपात ॥१४९॥

---

श्रीचैतन्यचन्द्र गोष्ठी प्राप्त नहीं होती है अहो श्रीचैतन्य प्रभु तो केवल भक्ति के ही वश में हैं ॥ १३२॥ भक्ति के बिना केवल विद्या व तपस्या द्वारा कुछ नहीं होता है; केवल मात्र दुख ही प्राप्त होता है॥ १३३॥ यह साक्षात् में देखलो ! उसी नीलाचल में इतने जोर से श्रीचैतन्य संकीर्तन का कोलाहल हुआ, उसे जितने बड़े २ नामधारी सन्यासी थे किसी के भाग्य देखने भर के भी नहीं हुए॥ १३४-१३५॥ और यह कहते थे कि देखो चैतन्य वेदान्त पाठ करना छोड़कर होड़ाहोड़ी कीर्तन क्यों करते हैं ? इसका क्या तात्पर्य ? ॥१३६॥ सदा प्राणायाम करना यही यति का धर्म है। नाचना, रोना यह क्या सन्यासियों का कर्म है ?॥ १३७॥ उनमें जो उत्तम सन्यासी थे वे कहते थे कि श्रीकृष्णचैतन्य महापुरुष हैं॥ १३८॥ कोई ज्ञानी कहता तो कोई बड़ा भक्त बतलाता था—सब ही प्रशंसा करते थे परन्तु तत्त्व कोई नहीं जानता था॥ १३९॥ इस प्रकार प्रभु के साथ सब वैष्णव जलक्रीड़ा का रंग कुतूहल पूर्वक कर रहे थे॥ १४०॥ पूर्व में जिस प्रकार द्वारिका में जलकेलि हुई थी उन्हीं सब भक्तों को लेकर श्रीचैतन्यराय सब कर रहे थे॥ १४१॥ जो कृपा गंगा व यमुना को प्राप्त हुई नरेन्द्र सरोवर की भी वही भाग्यसीमा हुई॥ १४२॥ इस ( प्रभु ) लीला का कभी आदि अन्त नहीं है; केवल आविर्भाव-तिरोभाव होता है यह वेद कहते हैं॥ १४३॥ यह सब लीला केवल जीवों के उद्धार के कारण होती हैं, जिनके स्मरण व पाठ करने से कर्म बन्धन नष्ट होता है॥ १४४॥ उसके पीछे तब श्रीगौरचन्द्र जलक्रीड़ा समाप्त करके सबके साथ जगन्नाथ के दर्शन के लिये चले ॥ १४५॥ तथा श्रीजगन्नाथ दर्शन करके श्रीगौरचन्द्र व भक्तवृन्द आनन्द में क्रन्दन करने लगे ॥ १४६॥ जगन्नाथ दर्शन करके गौरचन्द्र विह्वल हो रहे थे तथा आनन्दधारा से सब अङ्ग भीग गया॥ १४७॥ श्रीअद्वैत आदि सब

वैष्णव तुलसी गङ्गा प्रसादेर भक्ति तिंहोमे जानेन, अन्य ना धरे से शक्ति ॥१५२॥
वैष्णवेर भक्ति एइ देखिला साक्षात् गृहाश्रमि वैष्णवेरे करे दण्डपात ॥१५३॥
सन्यासग्रहण कैल हेन कर्म तार । पिता आसि पुत्रेरे करये नमस्कार ॥१५४॥
अतएव न्यासाश्रम सभार वन्दित । सन्यासी सन्यासी नमस्कार से विहित ॥१५५॥
तथापि आश्रमधर्म छाड़ि वैष्णवेरे । शिक्षागुरु श्रीकृष्ण आपने नमस्करे ॥१५६॥
तुलसीर भक्ति एवे शुनमन दिया । ये रूपे कैलेन लीला तुलसी लइया ॥१५७॥
एक क्षुद्र-भाण्डे दिव्य मृत्तिका पूरिया । तुलसी देखेन सेइ घट आरोपिया ॥१५८॥
प्रभु बोले "मुञि तुलसीरे ना देखिले । भाल नाहि बासों येन मत्स्य बिने जले ॥१५९॥
जबे चले संख्या-नाम करिया ग्रहण । तुलसी लइया अग्रे चले एकजन ॥१६०॥
पथेओ चलेन प्रभु तुलसी देखिया । वहये आनन्द धारा सर्वाङ्ग बाहिया ॥१६१॥
संख्या-नाम लइते ये स्थाने प्रभु वैसे । तथाइ थोयेन तुलसीरे प्रभु पाशे ॥१६२॥
तुलसीरे देखेन, लयेन संख्या-नाम । ए भक्तियोगेर तत्त्व के बुझिबे आन ॥१६३॥
पुन सेइ संख्या-नाम सम्पूर्ण करिया । चलेन ईश्वर अग्रे तुलसी देखिया ॥१६४॥

---

भक्तमण्डली सन्तोष पूर्वक दर्शन कर रहे थे—सब लोग केवल आनन्द समुद्र में डूब रहे थे ॥ १४८ ॥ सचल (गौर) व अचल दोनों जगन्नाथों को देख-देखकर भक्तमण्डली दण्डवत् प्रणाम कर रही थी ॥ १४९ ॥ काशी मिश्र ने श्रीजगन्नाथ के गले की मालाएं लाकर सबके अंग विभूषित किये ॥ १५० ॥ श्रीगौरचन्द्र ने डरते २ भक्तिपूर्वक वन्दना करके माला ग्रहण की क्योंकि सन्यास वेशधारी नारायण शिक्षा गुरु हैं ॥ १५१ ॥ वैष्णव, तुलसी, गंगा व प्रसाद की महिमा भक्ति को वे ही जानते हैं वह शक्ति अन्य में नहीं है ॥ १५२ ॥ वैष्णवों में भक्ति को ता साक्षात् देख लो कि गृहस्थी जन वैष्णवों को भी दण्डवत् कर रहे थे ॥ १५३ ॥ सन्यास ग्रहण करने पर उनका ऐसा कर्म हो जाता है कि उसमें पिता आकर पुत्र को नमस्कार करता है ॥ १५४ ॥ अतएव सन्यास आश्रम सबके लिये वन्दनीय है तथा सन्यासी को नमस्कार करना विहित है ॥ १५५ ॥ तथापि शिक्षा गुरु श्रीकृष्ण (गौरचन्द्र) आश्रम धर्म छोड़कर वैष्णवों के लिये स्वयं नमस्कार करते थे ॥ १५६ ॥ अब तुलसी की भक्ति को मन देकर सुनो जिस प्रकार तुलसी को लेकर लीला की थी ॥ १५७ ॥ एक छोटे पात्र में दिव्य मृत्तिका भरकर उसी घट में आरोपण करके तुलसी के दर्शन करते थे ॥ १५८ ॥ गौरचन्द्र ने कहा जैसे जल के बिना मछली वैसे ही मुझे तुलसी के दर्शन बिना अच्छा नहीं लगता ॥ १५९ ॥ जब संख्यापूर्वक नाम ग्रहण करते हुए चलते थे तब एक जन आगे २ तुलसी लेकर चलता था ॥ १६० ॥ श्रीगौरचन्द्र मार्ग में भी तुलसी के दर्शन करते २ चलते थे तथा आनन्दाश्रुधारा सब अंग बहकर पृथ्वी पर गिरती थी ॥ १६१ ॥ श्रीगौरचन्द्र संख्यापूर्वक हरिनाम जप करते २ जिस स्थान में बैठ जाते थे वहीं प्रभु के पास ही तुलसी रख देते थे ॥ १६२ ॥ संख्यापूर्वक नाम लेते समय तुलसी के दर्शन करना इस भक्तियोग के तत्त्व को कौन समझे ॥ १६३ ॥ उन संख्या नामों को सम्पूर्ण करके फिर भी

शिक्षागुरु नारायण ये करायेन शिक्षा । इहा ये मानये, से-इजन पाय रक्षा ॥१६५॥
जगन्नाथ देखि, जगन्नाथ नमस्करि । वासाय चलिला गोष्ठीसङ्गे गौरहरि ॥१६६॥
ये भक्तेर येन-रूप चित्तेर वासना । सेइरूप सिद्धकरे सभार कामना ॥१६७॥
पुत्र प्राय करि सभा' राखिलेन काछे । निरवधि भक्त-सबो थाके प्रभु-पाछे ॥१६८॥
यतेक वैष्णव-गौड़देशे नीलाचले । एकत्र थाकेन सभे कृष्ण कुतूहले ॥१६९॥
श्वेतद्वीप निवासीओ ए सब वैष्णव । चैतन्य प्रसादे लोक देखिलेक सब ॥१७०॥
श्रीमुखे अद्वैतचन्द्र बार बार कहे । "ए सब वैष्णव-देवतारो दृश्य नहे ॥१७१॥
क्रन्दन करिया कहे चैतन्य-चरणे । "वैष्णव देखिल प्रभु तोमार कारणे" ॥१७२॥
ए सब वैष्णव अवतारे अवतारि । प्रभु अवतरे इहा-सभा' अग्रे करि ॥१७३॥
ये रूपे प्रद्युम्न अनिरुद्ध सङ्कर्षण । ये रूपे लक्ष्मण भरत शत्रुघन ॥१७४॥
ताहान ये रूपे प्रभु सङ्गे अवतरे । वैष्णवेरे सेइ रूपे प्रभु आज्ञा करे ॥१७५॥
अतएव वैष्णवेर जन्म-मृत्यु नाइ । सङ्गे आइसेन सङ्गे जायेन तथाइ ॥१७६॥
कर्मबन्ध-जन्म वैष्णवेर कभु नहे । पद्म पुराणे ते इहा व्यक्त करि कहे ॥१७७॥

तथाहि पाद्मोत्तरखण्डे २४५ अध्याये ५७ व ५८ श्लोके—

"यथा सौमित्रि-भरतौ यथा सङ्कर्षणादयः । तथा तेनैव जायन्ते मर्त्यलोकं यदृच्छया ॥१॥
पुनस्तेनैव यास्यन्ति तद्विष्णोः शाश्वतं पदम् । न कर्मबन्धनं जन्म वैष्णवानां च विद्यते" ॥२॥

हेन मते ईश्वरेर सङ्गे भक्तगण । प्रेमपूर्ण हइया थाकेन सर्वक्षण ॥१७८॥

---

गौरचन्द्र तुलसी के दर्शन करते २ ही चलते थे ॥ १६४ ॥ शिक्षागुरु नारायण ( गौर ) ने जो शिक्षा की थी, उसे जो मानते हैं वे ही जन रक्षा पावेंगे ॥ १६५ ॥ भक्तों के साथ श्रीगौरहरि जगन्नाथ के दर्शन व नमस्कार करके वास स्थान को चले गये ॥ १६६ ॥ जिन भक्तों के मन में जिस प्रकार की वासना थी, उन सबकी मनोकामनाओं को वे उसी प्रकार सिद्ध करते हैं ॥ १६७ ॥ सबको पुत्र तुल्य करके समीप में रखते थे और सब भक्त भी निरन्तर प्रभु के पीछे २ ही रहते थे ॥१६८॥ गौड़देश व नीलाचलवासी जितने वैष्णव हैं सब कृष्ण ( गौर ) के कुतूहल से एक जगह में रहते हैं ॥१६९॥ यह सब वैष्णव श्वेतद्वीप निवासी होने पर भी उन्हें श्रीचैतन्य के अनुग्रह से सबने दर्शन किये॥१७०॥ श्रीअद्वैतचन्द्र ने श्रीमुख से बार २ कहा कि देखो ये वैष्णव देवताओं को,दृश्य नहीं होते ॥ १७१ ॥ और रोकर चैतन्य के चरणों में कहा कि प्रभो ! आपके निमित्त से इन वैष्णवों के दर्शन हुए ॥१७२॥ यह सब वैष्णव अवतार के समय अवतीर्ण होते हैं, इन सबों को आगे करके प्रभु अवतीर्ण होते हैं॥१७३॥ जिस प्रकार संकर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध कृष्णावतार में तथा जिस प्रकार लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, रामावतार में संग थे, उसी तरह अब प्रभु के संग में ये सब अवतीर्ण हुए हैं. वैष्णव भी उसी प्रकार प्रभु की आज्ञा का पालन करते थे ॥१७४-१७५॥ अतएव वैष्णवों का जन्म मृत्यु नहीं होता, वे प्रभु के संग आते हैं तथा प्रभु के ही संग जाते हैं ॥ १७६ ॥ कर्म सम्बन्ध जनित जन्म वैष्णवों का कभी नहीं होता यह पद्मपुराण में स्पष्ट करके कहा है ॥ १७७ ॥ जिस प्रकार सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण व भरत तथा जिस प्रकार संकर्षणादि हैं उसी प्रकार वैष्णववृन्द भी उसी भगवान के सहित यदृच्छा क्रम से मृत्युलोक में जन्म लेते हैं और भगवान के सहित उस शाश्वत ( नित्य ) स्थान में गमन करते हैं सोई वैष्णवों के कर्म

भक्ति करि जे शुनये ए सब आख्यान । भक्तसङ्गे तारे मिले कृष्ण भगवान् ॥१७६॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावनदास तच्छु पदयुगे गान ॥१८०॥

इति श्रीचैतन्यभागवते अन्त्यखण्डे जलक्रीड़ादिवर्णनं नाम
नवमोऽध्यायः ॥६॥

## दशमोऽध्याय

जय जय श्रीकृष्णचैतन्य रमाकान्त । जय सर्व-वैष्णवेर वल्लभ एकान्त ॥१॥
जय जय कृपामय श्रीवैकुण्ठनाथ । जीव प्रति कर प्रभु शुभ दृष्टिपात ॥२॥
हेन मते भक्तगोष्ठी ईश्वरेर सङ्गे । थाकिला परमानन्दे सङ्कीर्तन रङ्गे ॥३॥
ये द्रव्ये प्रभुर प्रीत पूर्व शिशुकाले । सकल जानेन ताहा वैष्णव मण्डले ॥४॥
सेइ सब द्रव्य सभे प्रेमयुक्त हैया । आनिजा आछेन प्रभुर भिक्षार लागिया ॥५॥
सेइ सब द्रव्य प्रीते करिया रन्धन । ईश्वरेर आसिया करेन निमन्त्रण ॥६॥
ये दिने ये भक्त गृहे हय निमन्त्रण । तथाई परम प्रीते करेन भोजन ॥७॥
श्रीलक्ष्मीर अंश यत वैष्णव गृहिणी । कि विचित्र रन्धन करेन, नाहि जानि ॥८॥
निरवधि सभार नयने प्रेमधार । कृष्णनामे परिपूर्ण श्रीमुख सभार ॥९॥
पूर्व ईश्वरेर प्रीति ये सब व्यञ्जने । नवद्वीपे श्रीवैष्णवी सभे ताहा जाने ॥१०॥
प्रेमयोगे सेइ मत करेन रन्धन । प्रभुओ परम प्रेमे करेन भोजन ॥११॥

---

सम्बन्ध जनित जन्म नहीं हैं ॥१-२॥ इसी कारण भक्तवृन्द श्रीमहाप्रभु के साथ सब समय प्रेम से पूर्ण होकर रहते थे॥१७८॥श्रद्धा व भक्तिपूर्वक जो इन सब प्रसंगों को सुनेंगे उनको भक्तों सहित कृष्ण-अभिन्न गौर भगवान् अवश्य मिलेंगे॥१७६॥श्रीकृष्णचैतन्य एवं नित्यानन्दचन्द्र जिनके जान अर्थात् जीवन हैं ऐसे श्रीवृन्दावनदास ठाकुर ( ग्रन्थकार ) उनके चरण-कमल युगलों को अवलम्बन करके उनकी महिमा को गान करते हैं ॥ १८०.॥

---

लक्ष्मीकान्त श्रीकृष्णचैतन्य की जय हो जय हो, सब वैष्णवों के एक मात्र स्वामी की जय हो॥१॥ कृपामय श्रीवैकुण्ठनाथ की जय हो रे, हे प्रभो सब जीवों के प्रति शुभ दृष्टिपात करो ॥ २ ॥ इस प्रकार श्रीगौरचन्द्र के साथ परमानन्दमय संकीर्तन रङ्ग में भक्तमण्डली रहती थी ॥ ३ ॥ पहिले शिशुकाल में श्रीप्रभु की जिस-जिस द्रव्य में प्रीति थी उसको सब वैष्णववृन्द जानते थे ॥ ४ ॥ सब भक्त प्रेमपूर्वक उन्हीं सब द्रव्यों को प्रभु की भिक्षा के निमित्त लाये थे ॥ ५ ॥ अतः पुरी में आने पर प्रसन्नता से उन्हीं द्रव्यों की रसोई करके ईश्वर का निमन्त्रण करते थे ॥ ६ ॥ जिस दिन जिस भक्त के घर में निमन्त्रण होता उसी स्थान में बड़ी प्रीति से भोजन करते थे॥७॥जितनी वैष्णवों की गृहिणी थीं वे सब श्रीलक्ष्मी के अंश से उत्पन्न हैं, सो न जाने कैसी विचित्र रसोई करती थीं ? ॥ ८ ॥ सबके नेत्रों से प्रेमधारा बहती थी निरवधि सबके श्रीमुख कमल कृष्ण नाम से परिपूर्ण थे ॥ ६ ॥ पहिले नवद्वीप में श्रीप्रभु गौरचन्द्र की जिन २ व्यंजनों में प्रीति थी उसको सब श्रीवैष्णवी जानती थीं॥ १० ॥ अत प्रेम के सहित उसी प्रकार की रसोई करती थीं

एक दिन श्रीअद्वैतसिंह महामति । प्रभुरे बलिला 'आजि भिक्षा मोर इथि' ॥१२॥
मुष्ट्येक तण्डुल प्रभु रान्धिब आपने । हस्त मोर सत्य हउ तोमार भक्षणे ॥१३॥
प्रभु बोले ये जन तोमार अन्न खाय । कृष्ण भक्ति कृष्ण सेइ पाय सर्वथाय ॥१४॥
आचार्य-तोमार अन्न आमार जीवन । तुमि खाओयाइले हय कृष्णेर भोजन ॥१५॥
तुमि ये नैवेद्य कर करिया रन्धन । मागियाओ खाइते आमार तथि मन ॥१६॥
शुनिञा प्रभुर भक्तवत्सलता-वाणी । कि आनन्दे अद्वैत भासेन नाहि जानि ॥१७॥
परम सन्तोषे तबे बासाय आइला । प्रभुर भिक्षार सज करिते लागिला ॥१८॥
लक्ष्मी-अंशे जन्म-अद्वैतेर पतिव्रता । लागिला करिते कार्य हइ हरषिता ॥१९॥
प्रभुर प्रीतेर द्रव्य गौड़देश हैते । यत आनिञाछेन सब लागिलेन दिते ॥२०॥
रन्धने बसिला श्रीअद्वैत महाशय । चैतन्यचन्द्रेरे करि हृदये विजय ॥२१॥
पतिव्रता व्यञ्जनेर परिपाटि करे । यतेक प्रकार करे येन चित्ते स्फुरे ॥२२॥
'शाके ईश्वरेर बड़ प्रीति' इहा जानि । नाना शाक दिलेन-प्रकार दश आनि ॥२३॥
आचार्य रान्धेन, पतिव्रता कर्म करे । दुइजन भासे येन आनन्दसागरे ॥२४॥
अद्वैत बोलेन शुन कृष्णदासेर माता । तोमारे कहिये आमि एक मनः कथा ॥२५॥
यत किछु करियाछि ए सब सम्भार । कोनरूपे इहा प्रभु करेन स्वीकार ॥२६॥
यदि आसिबेन सन्यासीर गोष्ठी लैया । किछु ना खाइब तबे, जानि आमि इहा ॥२७॥
वेष्टित यत यत महान्त सन्यासी । सभेइ प्रभुर सङ्गे भिक्षा करेन आसि ॥२८॥

तथा श्रीप्रभु गौरचन्द्र भी बड़ी प्रीति से भोजन करते थे ॥ ११ ॥ एक दिन महामति श्रीअद्वैतसिंह ने प्रभु से कहा कि आज मेरे यहाँ भिक्षा करें ॥१२॥ हे प्रभो एक मुष्टि तण्डुल में स्वयं रन्धन करूँगा सो आपके भक्षण करने पर मेरे हाथ सफल होंगे ॥ १३ ॥ श्रीप्रभु ने कहा "जो मनुष्य तुम्हारा अन्न खावेगा वे ही सर्वथा कृष्ण भक्ति व कृष्णचन्द्र प्राप्त होगा ॥ १४ ॥ हे आचार्यजी तुम्हारा ही अन्न मेरा जीवन है तुम्हारे भोजन कराने पर ही कृष्ण का भोजन होता है ॥ १५ ॥ तुम जो रन्धन करके नैवेद्य करो तो उसे तो माँगकर भी खाने के लिये मेरा मन चलता है ॥१६॥ श्रीप्रभु की भक्तवत्सलता वाणी सुनकर न जाने अद्वैत प्रभु किस आनन्द सिन्धु में डूब गये ॥ १७ ॥ तब परम सन्तुष्ट होकर निवास स्थान पर आये और प्रभु की भिक्षा के निमित्त सामिग्री सजाने लगे ॥ १८ ॥ लक्ष्मी अंश से प्रकटित श्रीअद्वैत की पतिव्रता स्त्री हर्षित होकर कार्य करने लगीं ॥ १९ ॥ गौड़देश से प्रभु की जितनी प्रीति वस्तु संग लाई थीं उन्हें देने लगीं ॥ २० ॥ तथा बड़े उदार अद्वैत प्रभु श्रीचैतन्यचन्द्र को हृदय में आवाहन करके रसोई बनाने को विराजे ॥ २१ ॥ पतिव्रता सीतादेवी के चित्त में जैसे २ स्फूर्ति होती उतने ही प्रकार के व्यंजनों की रचना कर रहे थे ॥ २२ ॥ शाकों में श्रीगौरहरि की बड़ी प्रीति है, यह जानकर दसों प्रकार के अनेक शाक लाकर दिये॥२३॥ श्रीआचार्य रसोई सिद्ध करते और पतिव्रता ऊपर का कर्म करती थी, दोनों मानो आनन्दसागर में डूब गये ॥२४॥ श्रीअद्वैत बोले "कृष्णदास की माता सुनो, तुमसे मैं अपने मन की एक बात कहूँ" ॥ २५ ॥ देखो जो कुछ सामिग्री बनाई है इन्हें प्रभु कैसा पसन्द करते हैं देखें ॥ २६ ॥ यदि वे सन्यासियों की मण्डली लेकर आये तो कुछ

सभेइ प्रभुरे करेन परम अपेक्षा । प्रभु सङ्गे सभे आसि प्रीते करेन भिक्षा ॥२६॥
अद्वैत चिन्तेन मने हेन पाक हय । एकेश्वर प्रभु आसि करेन विजय ॥३०॥
तवे इहा सब मुञि पारों खाओयाइते । ए कामना मोर सिद्ध हय कोनमते ॥३१॥
एइ मत मने चिन्ते अद्वैत-आचार्य । रन्धन करेन मने भावि सेइ कार्य ॥३२॥
ईश्वरो करिया संख्या नामेर ग्रहण । मध्याह्नादि क्रिया करिवारे हैल मन ॥३३॥
जे सब सन्यासी प्रभु संगे भिक्षा करे । ताँरा-सबो चलिला मध्याह्न करिवारे ॥३४॥
हेन काले महाझड़ वृष्टि आचम्बिते । आरम्भिला देवराज अद्वैतेर हिते ॥३५॥
शिलावृष्टि चतुर्दिगे वाजे झन् झना । असंभव वातास, वृष्टिर नाहि सीमा ॥३६॥
सर्वदिग अन्धकार हइल धूलाय । वासाते याइते केहो पथ नाहि पाय ॥३७॥
हेन झड़ वहे, केहो स्थिर हैते नारे । केहो नाहि जाने कोथा लैया जाय कारे ॥३८॥
सबे यथा श्रीअद्वैत करेन रन्धन । तथा मात्र हय अल्प झड़ वरिषण ॥३६॥
यत न्यासी भिक्षा करे प्रभुर संहति । उद्देशो नाहिक कारो केवा गेला कति ॥४०॥
एथा श्रीअद्वैतसिंह करिया रन्धन । उपस्करि थुइलेन श्रीअन्न व्यञ्जन ॥४१॥
घृत, दधि, दुग्ध, सर, नवनी, पिष्टक । नाना मत शर्करा, सन्देश, कदलक ॥४२॥
सभार उपरे दिया तुलसी मञ्जरी । ध्याने बसिलेन आनिवारे गौर हरि ॥४३॥
एकेश्वर प्रभु आइसेन येन-मते । एइ मत मने ध्यान करेन अद्वैते ॥४४॥

---

नहीं खावेंगे यह मैं निश्चयपूर्वक जानता हूँ ॥ २७ ॥ जितने श्रेष्ठ महानुभाव सन्यासी हैं, वे सब ही प्रभु के सङ्ग आकर भिक्षा करते हैं ॥ २८ ॥ सब ही प्रभु का विशेष सम्मान करते हैं तथा सभी प्रभु के साथ आकर प्रीतिपूर्वक भिक्षा करते हैं ॥ २६ ॥ श्री अद्वैत मन ही मन चिन्तवन कर रहे हैं कि इस रसोई को तो प्रभु अकेले ही आकर पावें ॥ ३० ॥ तभी इन सब पदार्थों को मैं उन्हें भोजन करा सकूँ मेरी यह मनोकामना कैसे पूरी हो ॥ ३१ ॥ श्री अद्वैत आचार्य इस प्रकार मन में चिन्ता कर रहे और मन में जो आता वही रंधन करते जाते थे ॥ ३२ ॥ श्री प्रभु ने भी संख्या युक्त नाम ग्रहण करके मध्याह्नादि क्रिया करने के लिए मन किया ॥ ३३ ॥ जो सब सन्यासी वृन्द श्रीप्रभु के साथ भिक्षा किया करते थे वे सब मध्याह्न कृत्य करने को चले गये ॥ ३४ ॥ उसी समय में देवराज इन्द्र ने श्री अद्वैत का हित करने के लिए अकस्मात् प्रबल पवन के साथ वर्षा आरम्भ करदी ॥ ३५ ॥ चारों ओर शिला वृष्टि के सहित मेघ गर्जन व पवन के साथ वृष्टि की सीमा नहीं रही ॥ ३६ ॥ तथा सब दिशाओं में आँधी की धूल द्वारा अन्धकार छा गया, अपने २ स्थान को जाने के लिये भी मार्ग नहीं मिलता था ॥३७॥ ऐसा प्रबल झड़(आंधि) चलता था कि कोई स्थिर नहीं रह पाता था कोई नहीं जानता कि किसे कहाँ ले जाय ?॥३८॥केवल जहाँ श्रीअद्वैत रसोई करते थे वहीं अल्प पवन बहता था व वृष्टि थोड़ी होती थी ॥३६॥ जो सन्यासी प्रभु के साथ भिक्षा करते थे उनको यह भी भान नहीं रहा कि कौन कहाँ चले गये ॥ ४० ॥ यहाँ पर श्रीअद्वैतसिंह ने रसोई करके श्री-अन्न तथा व्यंजन भोग लगाकर ( उपस्कार पूर्वक ) रख दिये ॥४१ ॥ घी-दधि-दूध-शरबत-नवनीत-पीठा अनेक प्रकार के खांड के पदार्थ, सन्देश व केला आदि सब पदार्थों के ऊपर तुलसी मंजरी देकर श्रीगौरहरि

सत्य गौरचन्द्र अद्वैतेर इच्छामय । एकेश्वर महाप्रभु हइला विजय ॥४५॥
"हरेकृष्ण हरेकृष्ण" बलि प्रेमसुखे । प्रत्यक्ष हइल आसि अद्वैत-सम्मुखे ॥४६॥
सम्भ्रमे अद्वैत पादपद्मे नमस्करि । आसन दिलेन, बसिलेन गौरहरि ॥४७॥
भिन्न सङ्ग केहो नाहि, ईश्वर केवल । देखिया अद्वैत हैला आनन्दे विह्वल ॥४८॥
हरिषे करेन पत्नी सहिते सेवन । पादप्रक्षालन देहे' चन्दन 'व्यजन ॥४९॥
बसिलेन महाप्रभु आनन्दे भोजने । अद्वैत करेन परिवेषण आपने ॥५०॥
यतेक व्यंजन देन अद्वैत सन्तोषे । प्रभुओ करेन परिग्रह प्रेमरसे ॥५१॥
यतेक व्यंजन प्रभु भोजन करेन । समाकार किछु किछु अवश्य एड़ेन ॥५२॥
अद्वैतेर प्रति प्रभु बोलेन हासिया । "केने एड़ि व्यञ्जन, जानह तुमि इहा ॥५३॥
यतेक व्यञ्जन खाइ, चाहि जानिबार । अतएव किछु किछु एड़िये समार" ॥५४॥
हासिया बोलेन प्रभु "शुनह आचार्य । कोथाय शिखिला तुमि ए रन्धन-कार्य ॥५५॥
आमि त एमत कभु नाहि खाइ शाक । सकलि विचित्र-यत करियाछ पाक ॥५६॥
यत देन श्रीअद्वैत, प्रभु सब खाय । भक्त वाञ्छा कल्पतरु श्रीगौराङ्गराय ॥५७॥
दधि, दुग्ध, घृत, सर, सन्देश अपार । यत देन, प्रभु सब करेन स्वीकार ॥५८॥
भोजन करेन श्रीचैतन्य भगवान् । अद्वैतसिंहेर करि पूर्ण मनस्काम ॥५९॥
परिपूर्ण हैल यदि प्रभुर भोजन । तखने अद्वैत करे इन्द्रेर स्तवन ॥६०॥

---

को बुलाने के लिये ध्यान में बैठ गये ॥ ४२-४३ ॥ जिस भाँति श्रीगौरचन्द्र अकेले में आवें श्रीअद्वैत प्रभु मन में ऐसा ध्यान कर रहे थे ॥ ४४ ॥ श्रीगौरचन्द्र सत्य ही श्रीअद्वैत के इच्छामय में हैं अतः श्रीमहाप्रभु ने अकेले ही आगमन किया ॥ ४५ ॥ प्रेम सुख में "हरे कृष्ण हरे कृष्ण" कहते हुए श्रीअद्वैत के सन्मुख आकर प्रत्यक्ष हो गये ॥ ४६ ॥ श्रीअद्वैत प्रभु ने शीघ्रता से चरण-कमलों में नमस्कार करके आसन दिया तथा श्रीगौरहरि उस पर विराज गये ॥ ४७ ॥ कोई अन्य संग में नहीं हैं, केवल ईश्वर को देखते ही श्रीअद्वैत प्रेमानन्द में विह्वल हो गये ॥ ४८ ॥ हर्ष से पत्नी सहित सेवा करने लगे—चरणों को जल से प्रक्षालन करके चन्दन लगाया तथा व्यजन से पवन करने लगे ॥ ४९ ॥ श्रीमहाप्रभु आनन्द से भोजन करने बैठे तथा स्वयं अद्वैत प्रभु परिवेषण (परोसाई) करने लगे ॥५०॥ श्रीअद्वैत प्रभु ने प्रसन्नता से जितने व्यंजन दिये उन्हें श्रीप्रभु ने प्रेमपूर्वक अङ्गीकार कर लिया ॥ ५१ ॥ श्रीप्रभु गौरचन्द्र ने जितने व्यंजनों का भोजन किया है सब में से कुछ-कुछ अवश्य छोड़ दिया ॥ ५२ ॥ श्रीप्रभु ने श्रीअद्वैत के प्रति हँसकर कहा कि क्या तुम जानते हो मैं व्यंजन क्यों छोड़ रहा हूँ ? ॥ ५३ ॥ जितने व्यंजन खा रहा हूँ उनको जानने की खोज में सब में से कुछ कुछ छोड़ रहा हूँ ॥ ५४ ॥ श्रीप्रभु ने हँसकर पूछा कि हे आचार्य जी सुनो तुमने यह रसोई करना कहाँ से सीखा ? ॥ ५५ ॥ मैंने तो इस प्रकार के साग कभी नहीं खाये अहो जितने प्रकार की रसोई की है सब ही अति विचित्र है ॥ ५६ ॥ श्रीअद्वैत प्रभु जितना देते थे प्रभु श्रीगौरचन्द्र सब खा जाते थे क्योंकि महाप्रभु श्रीगौराङ्गराय भक्तवाञ्छापूर्णकारी कल्पवृक्ष हैं ॥ ५७ ॥ दही, दूध, घी, शीरबत व सन्देश आदि पदार्थों को श्रीअद्वैत जितना अधिक भी देते थे श्रीगौरचन्द्र सब स्वीकार कर लेते थे ॥ ५८ ॥ अद्वैतसिंह की मनो-

"आजि इन्द्र जानिलूँ तोमार अनुभव । आजि जानिलाङ तुमि निश्चय वैष्णव' ।।६१।।
आजि हैते तोमारे दिबाङ पुष्पजल । आजि इन्द्र तुमि मोरे किनिला केवल" ।।६२।।
प्रभु बोले "आजि त इन्द्रेरे बड़ स्तुति ! कि हेतु इहार कह देखि मोर प्रति" ।।६३।।
अद्वैत बोलेन "तुमि करह भोजन । कि कार्य तोमार इहा करिया श्रवण" ।।६४।।
प्रभु बोले "आर केने लुकाओ आचार्य । यत झड़ वृष्टि-सब तोमारि से कार्य ।।६५।।
झड़ेर समय नहे, तबे अकस्मात् । महाझड़ महावृष्टि महाशिलापात ।।६६।।
तुमि इच्छा करिया से ए सब उत्पात । कराइया आछ, ताहा बूझिल साक्षात् ।।६७।।
ये लागि इन्द्रेर द्वारे कराइला इहा । ताहो कहि एइ आमि विदित करिया ।।६८।।
'सन्यासीर सङ्गे आमि करिले भोजन । किछुना खाइब आमि' ए तोमार मन ।।६९।।
एकेश्वर आइले से आमारे सकल । खाओयाइया निज इच्छा करिबा सुफल ।।७०।।
अतएव ए सकल उत्पात सृजिया । निषेधिला न्यासिगण मने आज्ञा दिया ।।७१।।
इन्द्र आज्ञाकारी, ए तोमार कोन् शक्ति । भाग्य से इन्द्रेर ये तोमारे करे भक्ति ।।७२।।
कृष्ण ना करेन यार सङ्कल्प अन्यथा । ये करिते पारे कृष्ण-साक्षात् सर्वथा ।।७३।।
कृष्णचन्द्र यार वाक्य करेन पालन । कि अद्भुत तारे एइ जड़ वरिषण ।।७४।।
यम काल मृत्यु जार आज्ञा शिरे धरे । नारदादि वाञ्छे योगेश्वर-मुनिश्वरे ।।७५।।
ये-तोमा'-स्मरणे सर्वबन्ध विमोचन । कि विचित्र तारे एइ झड़ वरिषण ।।७६।।

कामनापूर्ण करने के लिये श्रीचैतन्य भगवान् ने उनकी इच्छानुसार भोजन किया ॥ ५९ ॥ जब प्रभु का भोजन परिपूर्ण हो गया तब श्रीअद्वैत ने इन्द्र की स्तुति की ॥ ६० ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे अनुभव को आज मैंने जाना और यह भी आज जाना कि तुम निश्चय ही वैष्णव हो ॥ ६१ ॥ हे इन्द्र आज से मैं तुम्हें फूल व जल प्रदान किया करूँगा आज तुमने मुझे केवल मोल ले लिया ॥ ६२ ॥ श्रीप्रभु बोले "आज तो इन्द्र की बड़ी स्तुति करते हो ! क्या कारण है, मुझसे भी तो कहो" ॥ ६३ ॥ श्रीअद्वैत ने कहा आप तो भोजन करो, इसे सुनकर आप क्या करेंगे ?" ॥ ६४ ॥ श्रीप्रभु ने कहा—"आचार्य अब क्यों छिपाते हो जितनी यह झड़वृष्टि है सब तुम्हारा ही कार्य है ॥ ६५ ॥ झड़ का समय न होने पर भी अकस्मात् भयंकर पवन वृष्टि व शिलापात हुआ ॥ ६६ ॥ तुम्हीं ने इच्छा करके यह सब उत्पात कराया है, उसे साक्षात् समझ लिया ॥६७॥ तथा जिस निमित्त से इन्द्र के द्वारा यह सब करवाया है उसे भी मैं खोलकर कहता हूँ ॥ ६८ ॥ जो मैं सन्यासियों के संग भोजन करूँगा तो मैं कुछ नहीं खाऊँगा यह बात तुम्हारे मन में थी ॥ ६९ ॥ केवल प्रभु ही अकेले आवें तो सब पदार्थों को खिलाकर अपनी इच्छा सफल करूँ ॥ ७० ॥ अतएव यह सब उत्पात सृजन करके मन में आज्ञा देकर सन्यासियों को निषेध कर दिया ॥ ७१ ॥ इन्द्र आज्ञाकारी हो इसमें से तुम्हारी कोई विशेष शक्ति प्रयोग नहीं है इन्द्र का तो अहोभाग्य है जो तुम्हारी भक्ति करता है ॥ ७२ ॥ जिसके संकल्प को कृष्णचन्द्र अन्यथा नहीं करते जो कृष्ण को सर्वथा साक्षात् प्रगट कर सकते हैं तथा कृष्णचन्द्र जिसका वाक्य पालन करते हैं उसके लिये ऐसी वृष्टि व झड़ क्या अद्भुत हैं अर्थात् कुछ नहीं ॥ ७३-७४ ॥ जिसकी आज्ञा को यमराज काल व मृत्यु मस्तक पर धारण करते हैं तथा नारद आदि योगे

तोमा' जाने हेन जन के आछे संसारे । तुमि कृपा करिले से भक्तिफल धरे ॥७७॥
अद्वैत बोलेन "तुमि सेवक वत्सल । काय मनो वाक्ये आमि धरि एइबल ॥७८॥
सर्वकाल सिंह आमि तोर भक्तिबले । एइ वर 'मोरे ना छाड़िबा कोनो काले' ॥७९॥
एइमत दुइप्रभु वाको वाक्य-रसे । भोजन सम्पूर्ण हैल आनन्द विशेषे ॥८०॥
अद्वैतेर श्रीमुखेर ए सकल कथा । सत्य सत्य सत्य इथे नाहिक अन्यथा ॥८१॥
शुनिले ए सब कथा यार प्रीत नय । से अधम अद्वैतेर अदृश्य निश्चय ॥८२॥
हरि-शङ्करेर येन प्रीत सत्य कथा । अबुध प्राकृत गणे ना बुझे सर्वथा ॥८३॥
एकेर अप्रीते हय दोंहार अप्रीत । हरि-हरे येन-तेन चैतन्य-अद्वैत ॥८४॥
निरवधि अद्वैत ए सब कथा कय । जगतेर त्राण लागि कृपालु हृदय ॥८५॥
अद्वैतेर वाक्य बुझिवार शक्ति यार । जानिह ईश्वर सङ्गे भेद नाहि तार ॥८६॥
भक्ति करि ये शुनये ए सब आख्यान । कृष्णे भक्ति हय तार सर्वत्र कल्याण ॥८७॥
अद्वैतसिंहेर करि पूर्ण मनस्काम । वासाय चलिला श्रीचैतन्य भगवान् ॥८८॥
एइ मत श्रीवासादि-भक्तगण-घरे । भिक्षा करि सभारेइ पूर्ण काम करे ॥८९॥
सर्वगोष्ठी लइ निरवधि सङ्कीर्तने । नाचायेन नाचेन आपने अनुक्षणे ॥९०॥
दामोदर पण्डित आइरे देखिवारे । गियाछिला, आइ देखि आइला सत्वरे ॥९१॥
दामोदर देखि प्रभु आनिला निभृते । आइर वृत्तान्त लागिलेन जिज्ञासिते ॥९२॥

---

श्वर व मुनीश्वर जिसकी वाँछा करते हैं तथा जो तुम्हारा स्मरण करते हैं उनके बन्धन छूट जाते हैं, ऐसे तुम को भक्तवृष्टि करना क्या विचित्र है ॥ ७५-७६ ॥ तुम को जान सके संसार में ऐसे कौन २ जन हैं ? तुम्हारी कृपा करने से ही भक्तिफल धारण करती है ॥ ७७ ॥ श्रीअद्वैत प्रभु ने कहा "आप भक्तवत्सल हो मैं शरीर मन वाणी में यही बल धारण किये हुए हूँ ॥७८॥ केवल आपकी भक्ति पर मैं सब समय सिंह बना रहता-आप तो मुझे यही वर प्रदान करो कि किसी काल में मुझे छोड़ न दोगे ॥ ७९ ॥ इस प्रकार उक्ति प्रत्युक्ति रस के विशेष आनन्द से दोनों प्रभुओं का भोजन करना समाप्त हुआ ॥ ८० ॥ श्रीअद्वैत के श्रीमुख का यह सब प्रसङ्ग सर्वथा सत्य हैं २, इसमें अन्यथा नहीं है ॥ ८१ ॥ इन सब कथाओं को सुनकर जिसे प्रसन्नता नहीं होती कि वह अधम श्रीअद्वैत का अदृश्य है अर्थात् उस पर उनकी दृष्टि न होगी-यह निश्चय है ॥ ८२ ॥ जिस प्रकार हरि व शंकर की प्रीति की कथा सत्य है उसे मूर्ख संसारी जन सर्वथा नहीं समझते ॥८३॥ एक की अप्रसन्नता से दोनों की अप्रसन्नता होती है जैसे हरि-हर हैं वैसे ही चैतन्य-अद्वैत हैं॥८४॥ जगत् की रक्षा के लिये कृपालु हृदय श्रीअद्वैत निरन्तर इन सब प्रसंगों को कहते रहते हैं ॥ ८५ ॥ श्रीअद्वैत के वाक्यों को समझने की जिसमें शक्ति है समझ लो उसमें और ईश्वर में भेद नहीं है ॥ ८६ ॥ भक्तिपूर्वक जो इन सब प्रसंगों को सुनेंगे उन्हें कृष्ण में भक्ति होगी व सब जगह कल्याण होगा ॥ ८७ ॥ श्रीचैतन्य भगवान् श्रीअद्वैतसिंह की मनोकामना पूरी करके अपने निवास स्थान को चले गये ॥८८॥ इस प्रकार श्रीवास आदि सभी भक्तों में भिक्षा करके सबकी ही कामना पूर्ण की ॥ ८९ ॥ सब भक्तमण्डली को लेकर सतत सङ्कीर्तन में स्वयं अनुक्षण नाचते व भक्तों को नचाते थे ॥ ९० ॥ श्रीदामोदर पण्डित शची माता के दर्शनों

प्रभु बोले 'तुमि ये आछिला तान काछे। सत्य कह आइर कि विष्णु-भक्ति आछे' ॥९३॥
परम तपस्वी निरपेक्ष दामोदर। शुनि क्रोधे लागिलेन करिते उत्तर ॥९४॥
कि बलिला गोसाञि आइर भक्ति आछे। इहाओ जिज्ञास प्रभु तुमि कोन काजे ॥९५॥
आइर प्रसादे से तोमार विष्णु-भक्ति। यत किछु तोमार, सकल ताँर शक्ति ॥९६॥
यतेक तोमार विष्णु-भक्तिर उदय। आइर प्रसादे सब जानिह निश्चय ॥९७॥
अश्रु, कम्प, स्वेद, मूर्च्छा, पुलक, हुङ्कार। यतेक आछये विष्णु-भक्तिर विकार ॥९८॥
क्षणेको आइर देहे नाहिक विराम। निरवधि श्रीवदने सबे कृष्ण नाम ॥९९॥
आइरो भक्तिर कथा जिज्ञास गोसाञि। 'विष्णुभक्ति' यारे बोले, सेइ-देख आइ ॥१००॥
मूर्तिमती भक्ति आइ-कहिल तोमारे। जानिञाओ माया करि जिज्ञास आमारे ॥१०१॥
प्राकृत शब्देओ येवा बलिबेक आइ। आइ-शब्द प्रभावे ताहार दुख नाइ ॥१०२॥
दामोदर मुखे शुनि आइर महिमा। गौरचन्द्र प्रभुर आनन्दे नाहि सीमा ॥१०३॥
दामोदर पण्डितेरे धरि प्रेम रसे। पुनः पुन आलिङ्गन करेन सन्तोषे ॥१०४॥
आजि दामोदर तुमि आमारे किनिला। मनेर वृत्तान्त मुञ आमार कहिला ॥१०५॥
यत किछु विष्णु-भक्ति सम्पति आमार। आइर प्रसादे सब-द्विधा नाहि आर ॥१०६॥
ताहान इच्छाय मुञि आछों पृथिवीते। तान ऋण आमि कभू ना पारि शुधिते ॥१०७॥
आइ-स्थाने बद्ध आमि, शुन दामोदर। आइरे देखिते आमि आछि निरन्तर ॥१०८॥

---

के लिये गये थे तो माता के दर्शन करके शीघ्र चले आये ॥ ९१ ॥ श्रीप्रभु दामोदर को देखकर एकान्त में बुलाकर शची माता का वृत्तान्त पूछा ॥ ९२ ॥ श्रीप्रभु बोले "तुम जो उनके पास रहे थे सत्य कहो क्या शची माता में विष्णु भक्ति है" ॥ ९३ ॥ बड़े तपस्वी व निरपेक्ष दामोदर पण्डित सुनकर क्रोध से उत्तर देने लगे ॥ ९४ ॥ प्रभो क्या कहते हो ? माता के भक्ति है ? यह पूछने का तुम्हें क्या काम ॥ ९५ ॥ माता की कृपा से ही तुम में विष्णु-भक्ति है और जो कुछ तुम्हारा है सब उन्हीं की शक्ति से है ॥ ९६ ॥ तुम में विष्णु-भक्ति का जितना उदय हुआ है यह सब माता के अनुग्रह से ही हुआ है-यह निश्चय जानो ॥ ९७ ॥ अश्रु, कम्प, स्वेद, मूर्च्छा, पुलक, हुङ्कार आदि जितने विष्णु-भक्ति के विकार हैं उनका माता के देह में एकक्षण को भी विराम प्राप्त नहीं होता है और निरन्तर श्रीमुख से केवल कृष्ण नाम उच्चारण करती हैं ॥९८-९९ ॥ हे गुसाँई ! शची माता की जो भक्ति कथा पूछते हो तो देखो जिसे विष्णु-भक्ति कहते हैं शची माता वही हैं ॥ १०० ॥ मैं तुम से कहता हूँ कि शची माता मूर्तिमती भक्ति हैं जानते हुए भी माया करके तुम मुझ से पूछते हो ॥ १०१ ॥ प्राकृत शब्दों में भी जो कोई "आइ" कहे उनको भी आइ शब्द के प्रभाव से दुख नहीं रहेगा ॥१०२॥ श्रीदामोदर के मुख से शची माता की महिमा सुनकर प्रभु श्रीगौरचन्द्र के आनन्द की सीमा नहीं रही ॥ १०३ ॥ सन्तुष्ट होकर प्रेमरस में दामोदर पण्डित को पकड़कर बारम्बार आलिङ्गन किया ॥ १०४ ॥ हे दामोदर ! आज तुमने मुझे मोल ले लिया मेरे मन की सब बात कह दी ॥ १०५ ॥ जो कुछ विष्णुभक्ति रूप सम्पत्ति मुझ में है वह सब माता के अनुग्रह से ही है-इसमें दूसरी बात नहीं है॥१०६। उन्हीं की इच्छा से ही मैं पृथ्वी पर हूँ मैं उनके ऋण का कभी शोधन नहीं कर सकूँगा॥१०७॥ हे दामोदर !

आइ-स्थाने बद्ध आमि, शुन दामोदर । आइरे देखिते आमि आछि निरन्तर" ॥१०८॥
दामोदर पण्डितेरे प्रभु कृपाकरि । भक्तगोष्ठी सङ्गे वसिलेन गौरहरि ॥१०९॥
आइरो ये भक्ति आछे जिज्ञासे' ईश्वरे । से केवल शिक्षा करायेन जगतेरे ॥११०॥
बान्धवेर 'वार्ता येन जिज्ञासे' बान्धवे । 'कह बन्धु-सब कि कुशले आछे मने ॥१११॥
कुशल-शब्देर अर्थ व्यक्त करिवारे । 'भक्ति आछे' करि वार्ता लयेन समारे ॥११२॥
भक्तियोग थाके, तबे सकल कुशल । भक्ति विने राजा हइले ओ अमङ्गल ॥११३॥
धन जन भोग जार आछये सकल । भक्ति नाहि, तार हय सर्व अमङ्गल ॥११४॥
अद्य-खाद्य नाहि यार-दरिद्रेर अन्त । विष्णुभक्ति थाकिले, से-इसे धनवन्त ॥११५॥
भिक्षा-निर्मंत्रण-छले प्रभु सभा' स्थाने । व्यक्त करि इहा कहियाछेन आपने ११६॥
भिक्षा निर्मंत्रणे प्रभु बोलेन हासिया । "चल तुमि आगे लक्षेश्वर हओ गिया ॥११७॥
तथा भिक्षा आमार, ये हय लक्षेश्वर" । शुनिञा ब्राह्मण सब चिन्तित अन्तर ॥११८॥
विप्रगण स्तुति करि बोलेन गोसाञि । लक्षेर कि दाय, सहस्रे को कारो नाञि ॥११९॥
तुमि ना करिले भिक्षा गार्हस्थ्य आमार । एखनेइ पुड़िया हउक् छारखार" ॥१२०॥
प्रभु बोले "जान' 'लक्षेश्वर' बलिकारे । प्रतिदिन लक्ष-नाम ये ग्रहण करे ॥१२१
से जनेर नाम आमि बलि 'लक्षेश्वर' । तथा भिक्षा आमार, ना याइ अन्य घर" ॥१२२॥
शुनिञा प्रभुर कृपावाक्य विप्रगणे । चिन्ता छाड़ि महानन्द हैला मने मने ॥१२३॥

---

सुनो मैं माता के स्थान में बँधा हुआ हूँ मैं निरन्तर माता के दर्शन के निमित्त ( वहाँ ) रहता हूँ ॥ १०८ ॥ श्रीप्रभु गौरहरि दामोदर पण्डित पर कृपा करके भक्तमण्डली के साथ बैठ गये ॥ १०९ ॥ ईश्वर ने जो पूछी कि माता में भक्ति है क्या; यह केवल जगत् को शिक्षा कराने लिये है ॥ ११० ॥ जैसे बान्धवों की बात को बान्धव पूछते हैं कहो बन्धु ! सब कुशल तो हो ॥ १११ ॥ कुशल शब्द के अर्थ को स्पष्ट करने के निमित्त माता को भक्ति है ? इस वार्त्ता से सब कुशल समाचार पूछे थे ॥ ११२ ॥ यदि भक्तियोग हो तो सब कुशल है भक्ति विहीन राजा होने पर भी कुशल नहीं है ॥ ११३ ॥ जिसको धन-जन भोग व यश आदि सब कुछ है पर भक्तियोग नहीं है तो उसका सब प्रकार अमङ्गल है ॥ ११४॥ तथा जिसे आज के लिये भी खाने को नहीं है दरिद्रता का अन्त ही है तो भी उसके शरीर में विष्णु-भक्ति होने पर धनवान है ॥ ११५ ॥ स्वयं महाप्रभु ने भिक्षा-निमन्त्रण के छल से यह सिद्धान्त स्पष्ट करके सब से कह दिया ॥ ११६ ॥ श्रीप्रभु भोजन निमन्त्रण के समय हँसकर कहते कि तुम पहिले लखपती तो बनो ॥ ११७ ॥ जो लखपती होगा मेरा भोजन उसी के यहाँ होगा, यों सुनकर सब ब्राह्मण भी मन में चिन्तित हुए ॥ ११८ ॥ ब्राह्मण स्तुति करके बोले "प्रभो ! लाख की तो कहा बात किसी के पास एक सहस्र भी नहीं हैं" ॥ ११९ ॥ आपके भोजन नहीं करने पर हमारा गृहस्थाश्रम इसी क्षण में दग्ध होकर छार-खार ( नष्ट-भ्रष्ट ) हो जाय ॥ १२० ॥ श्रीप्रभु ने कहा "तुम जानते हो लक्षेश्वर किसे कहते हैं, जो नित्य प्रति एक लक्ष हरिनाम ग्रहण करता है उसे लखपती कहते हैं॥ १२१ ॥ उन्हीं को मैं "लक्षेश्वर" कहता हूँ वहीं मेरी भिक्षा होगी दूसरों के घर में नहीं जाना ॥ १२२ ॥ ब्राह्मणों ने प्रभु के कृपापूर्ण वाक्य सुनकर चिन्ता त्याग दी मन में बड़े आनन्दित हुए १२३ ।

लक्ष नाम लैब प्रभु तुमि कर भिक्षा । महाभाग्य एमत कराओ तुमि शिक्षा ॥१२४॥
प्रति दिन लक्ष नाम सर्व विप्रगणे । लयेन चैतन्यचन्द्र भिक्षार कारणे ॥१२५॥
हेन मते भक्तियोग लओयाय ईश्वरे । वैकुण्ठनायक भक्तिसागरे विहरे ॥१२६॥
भक्ति लओयाइते श्रीचैतन्य-अवतार । भक्ति विना जिज्ञासा ना करे प्रभु आर ॥१२७॥
प्रभु बोले 'ये जनेर कृष्णभक्ति आछे' । कुशल मङ्गल तार नित्य थाके काछे ॥१२८॥
यार मुखे भक्तिर महत्त्व नाहि कथा । तार मुख गौरचन्द्र ना देखे सर्वथा ॥१२९॥
निज गुरु श्रीकेशव भारतीय स्थाने । 'भक्ति-ज्ञान' दुइ जिज्ञासिला एक दिने ॥१३०॥
प्रभु बोले ज्ञान भक्ति दुइते के बड़ । बिचारिया गोसाजि कहत करि दढ़ ॥१३१॥
कथोक्षणे भारती विचार करि मने । कहिते लागिला गौरसुन्दरेर स्थाने ॥१३२॥
भारती बोलेन 'मने विचारिल तत्त्व । सभा हैते बड़ देखि भक्तिर महत्त्व' ॥१३३॥
प्रभु बोले 'ज्ञान हैते भक्ति बड़ केने । 'ज्ञान बड़' करिया से कहे न्यासिगणे' ॥१३४॥
भारती बोलेन ताँरा ना बुझे विचार । महाजन पथे से गमन सभाकार ॥१३५॥
वेदे शास्त्रे महाजन पथ से लओयाय । ताहा छाड़ि अबुध ये अन्य पथे याय ॥१३६॥
ब्रह्मा शिव नारद प्रह्लाद व्यास शुक । सनकादि नन्द युधिष्ठिर-पञ्च रूप ॥१३७॥
प्रियव्रत पृथु ध्रुव अक्रूर उद्धव । 'महाजन' हेन नाम यत आछे सब ॥१३८॥
भक्ति से मागेन सभे ईश्वर चरणे । ज्ञान बड़ हैले, भक्तिमागे कि कारणे ॥१३९॥

हे प्रभो ! लाख नाम ग्रहण करेंगे आप भिक्षा करिये हमारे अहोभाग्य ! आप इस प्रकार शिक्षा कर रहे है ॥१२४॥ श्रीचैतन्यचन्द्र को भिक्षा कराने के निमित्त से सब विप्रगण प्रति दिन लक्ष २ नाम लेने लगे॥१२५॥ इस प्रकार वैकुण्ठनाथ श्रीगौरहरि भक्तियोग का ग्रहण कराते हुए भक्ति-सागर में विहार करते थे ॥ १२६ ॥ श्रीचैतन्यदेव का अवतार भक्ति ग्रहण कराने के लिये ही हुआ इस कारण भक्ति के अतिरिक्त प्रभु और कुछ भी जिज्ञासा नहीं करते थे ॥ १२७ ॥ श्रीप्रभु कहते थे कि जिसकी कृष्णचन्द्र में भक्ति है सब कुशल व मङ्गल नित्य उसके पास रहते हैं ॥ १२८ ॥ जिसके मुख में भक्ति के महत्त्वपूर्ण प्रसंग नहीं होते उसका मुख श्रीगौरचन्द्र देखते ही नहीं रहैं ॥ १२९ ॥ एक दिन अपने गुरु केशवभारती से भक्ति व ज्ञान दोनों का प्रश्न किया था ॥१३०॥ श्रीप्रभु ने पूछा "हे गुरुदेव ! ज्ञान व भक्ति दोनों में कौन बड़ा है सो विचार करके दृढ़ता से कहिये ॥ १३१ ॥ कुछ क्षण में श्रीभारती जी ने मन में विचार कर श्रीगौरसुन्दर से कहना प्रारम्भ किया ॥ १३२ ॥ श्रीभारती जी ने कहा "मन में तत्त्व को विचार लिया है भक्ति का महत्त्व ही सब से बड़ा है यही देख पड़ता है" ॥ १३३ ॥ श्रीप्रभु ने पूछा कि भक्ति ज्ञान से कैसे बड़ी है ? सन्यासीगण तो ज्ञान को बड़ा कहते हैं ॥ १३४ ॥ श्रीभारती जी ने उत्तर दिया वे लोग समझ कर विचार नहीं करते हैं देखो महाजनों के मार्ग पर ही सर्व साधारण चलते हैं ॥ १३५ ॥ वेद व शास्त्र भी महाजनों का मार्ग ही ग्रहण करते हैं उसे छोड़कर जो अन्य मार्ग से जाते हैं वे बुद्धिमान नहीं हैं ॥ १३६ ॥ ब्रह्मा-शिव-नारद-प्रह्लाद-व्यास-शुक चारों सनकादिक-युधिष्ठिर आदि पंच पाण्डव-प्रियव्रत-पृथु-ध्रुव-अक्रूर-उद्धव आदि जिन सबका महाजन नाम है, ये सब भगवत् चरणों में भक्ति ही माँगते हैं यदि ज्ञान बड़ा है ना तो भक्ति क्या माँगते

बिनि विचारिया कि ये सब महाजन। मुक्ति छाड़ि भक्ति केने माँगे अनुक्षण ॥१४०॥
सभार वचन एइ पुराणे प्रमाण। कि वर मागिला ब्रह्मा ईश्वरेर स्थान ॥१४१॥
तथाहि भागवते १० स्कन्धे १४ अध्याये ३० श्लोकेः-

"तदस्तु मे नाथ सभूरिभागो भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम्।
येनाहमेकोपि भवज्जनानां भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम्" ॥१॥

किबा ब्रह्म जन्म किबा हउ यथा तथा। दास हइ येन तोमा सेविये सर्वथा ॥१४२॥
एइ मत यत महाजन सम्प्रदाय। सभेइ सकल छाड़ि भक्तिमात्र चाय ॥१४३॥

तथाहि श्रीविष्णुपुराणे (१।२०।१८)

"नाथ योनिसहस्रे षु येषु येषु व्रजाम्यहम्। तेषु तेष्वच्युता भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि" ॥२॥
"स्वकर्मफलनिर्दिष्टां यां यां योनिंव्रजाम्यहम्। तस्यां तस्यां हृषीकेश त्वयि भक्तिर्दृढ़ास्तु मे"॥३॥

तथाहि भागवते (१०।४७।६७)

"कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया। मङ्गलाचरितैर्दानैर्रतिर्नः कृष्ण ईश्वरे" ॥४॥

'अतएव सर्व मते भक्ति से प्रधान। महाजन पथ सर्वशास्त्रेर प्रमाण' ॥१४४॥

तथाहि (महाभारते। वनपर्वणि ३१३।११७)

"तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्था" ॥५॥

'भक्ति बड़' शुनि प्रभु भारतीर मुखे। 'हरि' बलि गर्जिते लागिला प्रेमसुखे ॥१४५॥
प्रभु बोले आमि कथोदिन पृथिवीते। थाकिलाङ, एइ सत्य कहिल तोमाते ॥१४६॥

---

॥ १३८ से १३९ ॥ ये महाजन क्या सब के सब बिना विचारे ही मुक्ति को छोड़कर अनुक्षण भक्ति माँगते ऐसा क्यों ? ॥ १४० ॥ पुराणों में प्रमाण स्वरूप सबका वचन मौजूद है, ब्रह्मा ने भगवान् से वर माँगा था ॥ १४१ ॥ हे नाथ मेरा ऐसा महा सौभाग्य उदय हो जिसके बल से मैं इस ब्रह्मा के जन्म में अथवा पशु-पक्षी प्रभृति जिस किसी जन्म में हो आपके अनुगतजनों के बीच में एक जन होकर आपके चरण-कमलों की सेवा प्राप्त हो ॥ १ ॥ इस ब्रह्म जन्म में हो किंवा जिस किसी जन्म में हो ऐसी कृपा करो जिसमें मैं दास होकर सर्वथा आपकी सेवा करूँ ॥ १४२ ॥ इस प्रकार जितने भी उत्तम महापुरुषगण है वे मुक्ति आदि सब कुछ छोड़कर केवल भक्ति ही चाहे हैं ॥ १४३ ॥ प्रह्लाद ने कहा "हे नाथ मैं चाहे हजारों २ योनियों में जहाँ कहीं भी जाऊँ, हे अच्युत ! उन २ योनियों में सर्वदा ही तुम्हारे चरण-कमलो में मेरी अटूट भक्ति बनी रहे-ऐसी कृपा करो ॥२॥ मैं अपने कर्मफल नियन्त्रित से चाहे जिस योनि में जाऊँ हे हृषीकेश ! मेरी उस २ योनि में आपके चरणों में दृढ़ भक्ति हो ॥ ३ ॥ ईश्वरेच्छा से अपने कर्मों के अनुसार जिस किसी योनि में मैं कहीं भी भ्रमण करूँ किन्तु मङ्गल आचरण व दानादि साधनों के फलस्वरूप मेरी उस ईश्वर कृष्ण में अनुराग हो ॥ ४ ॥ अतएव सब शास्त्रों का प्रमाण व महाजनों का मार्ग होने से सब प्रकार से भक्ति ही प्रधान हैं ॥ १४४ ॥ तर्क तो प्रतिष्ठा रहित है अर्थात् स्थिर नहीं है तथा वेद की श्रुतियाँ भी विभिन्न हैं,ऐसा ऋषि भी नहीं है जिसका मत पृथक न हो और धर्म का तत्त्व गिरिगुहा की तरह दुर्गम प्रदेश में अवस्थित हैं इस कारण से महाजन ( भगवद्भक्त ) जिस मार्ग से गये हैं, वही मार्ग है, उसी मार्ग में चलना ही उचित है क्योंकि सीधा मार्ग ही वही है ॥ ५ ॥ श्रीप्रभु ने श्रीकेशव भारती जी के मुख से भक्ति बड़ी है यह वचन सुनते ही हरि हरि कहकर प्रेम नन्द सुख म गर्जन करने लगे १४५ प्रभु ने

यदि तुमि 'ज्ञान बड़' बलिते आमारे । प्रवेशितों आजि तबे समुद्र भितरे ॥१४७॥
सन्तोषे धरेन प्रभु गुरुर चरणे । गुरुओ प्रभुरे नमस्करे प्रीत मने ॥१४८॥
प्रभु बोले 'यार मुखे नाहि भक्ति कथा । तप शिखा-सूत्र-त्याग तार सब वृथा' ॥१४९॥
भक्ति बिना प्रभुर जिज्ञासा नाहि आर । भक्तिरसमय श्रीचैतन्य अवतार ॥१५०॥
रात्रि दिन एको ना जानेन भक्तगण । सर्वदा करेन नृत्य कीर्त्तन गर्जन ॥१५१॥
एक दिन अद्वैत सकल भक्त प्रति । बलिलेन परानन्दे मत्त हइ अति ॥१५२॥
शुन भाइ-सब एक कर समवाय । मुख भरि गाइ आजि श्रीचैतन्यराय ॥१५३॥
आजि आर कोन अवतार गाओया नाञि । सर्व-अवतारमय-चैतन्य गोसाञि ॥१५४॥
जे प्रभु करिल सर्व जगत उद्धार । आमा सभा लागिये प्रभुर अवतार ॥१५५॥
सर्वत्र आमरा याँर प्रसादे पूजित । संकीर्त्तन हेन धन ये कैल विदित ॥१५६॥
नाचि आमि, तोमरा चैतन्य यश गाओ । सिंह हइ बोल, पाछे मने भय पाओ ॥१५७॥
प्रभुसे आपना लुकायेन निरन्तर । क्रुद्ध पाछे हयेन सभार एइ डर ॥१५८॥
तथापि अद्वैत वाक्य अलंघ्य सभार । गाइते लागिला श्रीचैतन्य-अवतार ॥१५९॥
नाचेन अद्वैतसिंह आनन्दे विह्वल । चतुर्दिगे गाय सभे चैतन्य मङ्गल ॥१६०॥
नव-अवतारेर शुनिञा नाम यश । सकल वैष्णव हैल आनन्दे विवश ॥१६१॥
आपने अद्वैत चैतन्येर गीत करि । बोलाइया नाचे प्रभु जगत निस्तारि ॥१६२॥

---

कहा अब तो मैं पृथ्वी पर रहूँगा आपसे मैं यह सत्य कहता हूँ।।१४६।।यदि आपने मुझ से 'ज्ञान बड़ा है' कहा होता कि मैं तो आज ही समुद्र में प्रवेश कर जाता।।१४७।श्रीप्रभु ने सन्तुष्ट होकर गुरुजी के चरण पकड़े तथा उनने भी प्रसन्न मन से नमस्कार किया ॥ १४८ ॥ श्रीप्रभु ने कहा "जिसके मुख भक्ति कथा नहीं है उसका तप व शिखा सूत्र त्यागरूप सन्यास सब वृथा है ॥ १४९ ॥ भक्ति के बिना प्रभु की और किसी वस्तु की जिज्ञासा नहीं है श्रीचैतन्य अवतार तो भक्तिरसमय ही है ॥१५०॥ भक्तवृन्द को रात दिन का भान नहीं था सब समय नृत्य कीर्तन व गर्जन ही करते रहते थे ॥ १५१ ॥ एक दिन श्रीअद्वैत प्रभु ने परम आनन्द में मत्त होकर सब भक्तों के प्रति कहा॥ १५२ ॥ हे भाइयो सुनो एक गायक-समाज करो जिसमें आज मुख-भर कर श्रीचैतन्यराय के नाम गुण का गान करें ॥ १५३ ॥ आज अन्य किसी अवतार का यश गान नहीं करेंगे, क्योंकि श्रीचैतन्य महाप्रभु तो सब अवतारों के अवतारी हैं ॥ १५४ ॥ जिस प्रभु ने सब जगत् का उद्धार कर दिया तथा हम सब के लिये ही जिनका अवतार हुआ है ॥ १५५ ॥ जिनके अनुग्रह से ही हम लोग सब जगह पूजित हैं तथा जिनने संकीर्तन ऐसा धन प्रगट किया है ॥ १५६ ॥ सिंह विक्रम से कहता हूँ मैं तो नाचूँगा तुम लोग चैतन्य यशों का गान करो कहीं पीछे मन में भय मत पाना ॥ १५७ ॥ प्रभु तो अपने को निरन्तर लुकाते हैं इसलिये कहीं पीछे क्रुद्ध होंय यही सबको डर था ॥१५८॥ तथापि श्रीअद्वैतजी के वाक्य सबके लिये उल्लंघ्य हैं अतः श्रीचैतन्य अवतार के चरित्रों को गान करने लगे ॥ १५९ ॥ आनन्द में विह्वल होकर श्रीअद्वैतसिंह नाचते थे तथा भक्तवृन्द चारों ओर चैतन्य मङ्गल गा रहे थे ॥१६०॥ नवीन अवतार के नाम व यश को सुनकर सब वैष्णव प्रेमानन्द में विवश हो गये १६१ स्वयं श्रीअद्वैत प्रभु

"श्रीचैतन्य नारायण करुणासागर। दीन-दुःखितेर बन्धु मोरे दयाकर' ॥१६३॥
अद्वैतसिंहेर श्रीमुखेर एइ पद। इहार कीर्तने बाढ़े सकल सम्पद ॥१६४॥
केहो बोले "जय जय श्रीशचीनन्दन"। केहो बोले "जय गौरचन्द्र नारायण ॥१६५॥
जय सङ्कीर्तन प्रिय श्रीगौरगोपाल। जय भक्तजन प्रिय पाषण्डीर काल" ॥१६६॥
नाचेन अद्वैतसिंह-परम-उद्दाम। सबे एक श्रीचैतन्य-गुण-कर्म-नाम ॥१६७॥

* श्रीरागः *

पुलके रचित गाय, सुखे गड़ागड़ि याय, देखरे चैतन्य अवतारा।
वैकुण्ठनायक हरि, द्विजरूपे अवतरि, संकीर्तने करेन विहारा ॥
कनक जिनिआ कान्ति, श्रीविग्रह शोभेरे, आजानुलम्बित माला साजेरे।
सन्यासीर रूपे, आपनरसे विह्वल, ना जानि केमन सुखे नाचेरे ॥
जय जय श्रीगौर, सुन्दर करुणासिन्धु, जय जय वृन्दावन रायारे।
जय जय सम्प्रति, नवद्वीप-पुरन्दर, चरण-कमल देह छायारे ॥१॥

एइ सब कीर्तन करेन भक्तगण। नाचेन अद्वैत भावि चैतन्यचरण ॥१६८॥
नब अवतारेर नूतन यशशुनि। उल्लासे वैष्णव सब करे जय ध्वनि ॥१६९॥
कि अद्भुत हइल से कीर्तन-आनन्द। सबे ताहा वर्णिते जानेन नित्यानन्द ॥१७०॥
प्रेम-उद्दाम शुनि कीर्तनेर ध्वनि। श्रीविजय आसिया हइला न्यासिमणि ॥१७१॥

---

श्रीचैतन्य के यश भरे गीत रचना करके जगत के निस्तार के लिये भक्तों से बुलवाकर नाच रहे थे ॥ १६२ ॥ हे करुणासागर नारायण श्रीचैतन्य प्रभो ! हे दीन दुखितों के बन्धु मेरे ऊपर दया करो ॥ १६३ ॥ अद्वैतसिंह के श्रीमुख का यह पद है इसका कीर्तन करने से सब सम्पत्ति बढ़ती हैं ॥१६४॥ कोई कहते "श्रीशचीनन्दन की जय हो २" और कोई कहते "श्रीगौरचन्द्रनारायण की जय हो" ॥ १६५ ॥ संकीर्तन प्रिय श्रीगौरगोपाल की जय हो २ और भक्तजनों के प्यारे तथा पाखण्डियों के कालरूप प्रभु की जय हो॥१६६॥श्रीअद्वैतसिंह बड़ा उद्दाम नृत्य करते थे तथा अन्य सभी एक मात्र श्रीचैतन्य के गुण-कर्म-नाम गा रहे थे ॥१६७॥ वैकुण्ठनायक हरि ब्राह्मण के रूप में अवतीर्ण होकर संकीर्तन विहार करते हैं शरीर पुलक से मानो विरचित है तथा सुख से लोट-पोट होते हैं, हे भाइयो देखो श्रीचैतन्य का ऐसा अवतार हुआ है । कनक कान्ति को पराजयकारी श्रीविग्रह शोभा दे रहा है, जानुपर्यन्त लम्बी मालाओं से सजे हुए सन्यासीरूप में अपने ही रस मे विह्वल होकर न जाने कैसे सुख से नाचते हैं। करुणासिन्धु श्रीगौरसुन्दर की जय हो २ तथा श्रीवृन्दावनधाम के राजा की जय हो वर्त्तमान में नवद्वीप के पुरन्दर की जय हो २, हे प्रभो ! चरण-कमल की छाया प्रदान करो ॥ १ ॥ भक्तवृन्द इन सब पदों का कीर्तन कर रहे थे तथा श्रीअद्वैत प्रभु चैतन्यचन्द्र के चरणों की भावना करके नाचते थे ॥ १६८ ॥ नवीन अवतार के नवीन यश को सुनकर वैष्णववृन्द प्रसन्न हो जय २ ध्वनि कर रहे थे ॥ १६९ ॥ कीर्तन से कैसा अद्भुत आनन्द हुआ इसे केवल नित्यानन्द ही कर सकते हैं ॥ १७० ॥ परम उद्दाम कीर्तन की ध्वनि सुनकर सन्यासियों में शिरोमणि श्रीगौर ही वहाँ

प्रभु देखि भक्त सब अधिक उल्लासे । गायेन, अद्वैत नृत्य करेन हरिषे ॥१७२॥
आनन्दे प्रभुरे केहो नाहि करे भय । साक्षाते गायेन सबे चैतन्य विजय ॥१७३॥
निरवधि दास्य भावे प्रभुर विहार । 'मुञि कृष्णदास' वइ ना बोलये आर ॥१७४॥
हेन कारो शक्ति नाहि सम्मुखे ताहाने । 'ईश्वर' करिया बहिर्वेक 'दास' विने ॥१७५॥
तथापिह सबे अद्वैतेर बलभरि । गायेन निर्भय हैया चैतन्य श्रीहरि ॥१७६॥
क्षणेक थाकिया प्रभु आत्म स्तुति शुनि । लज्जायेन पाइते लागिला न्यासिमणि ॥१७७॥
सभा शिखाइते शिक्षागुरु भगवान् । बासाय चलिला शुनि आपन कीर्तन ॥१७८॥
तथापि काहारो चित्ते ना जन्मिल भय । विशेषे गायेन आगे चैतन्य विजय ॥१७९॥
आनन्दे काहारो बाह्य नाहिक शरीरे । सभे देखे-प्रभु आछे कीर्तन भितरे ॥१८०॥
मत्त प्राय सभेइ चैतन्य-यश गाय । सुखे शुने सुकृति, दुष्कृति दुःख पाय ॥१८१॥
श्रीचैतन्य-यशे प्रीत ना हय याहार । ब्रह्मचर्य-सन्यासे वाकि कार्य ताहार ॥१८२॥
एइ मत परानन्द सुखे भक्तगण । सर्वकाल करेन श्रीहरि सङ्कीर्तन ॥१८३॥
ए सब आनन्द क्रीड़ा पढ़िले शुनिले । ए सब गोष्ठीके आसियाओ सेहो मिले ॥१८४॥
नृत्य गीत करि सभे महा भक्तगण । आइलेन प्रभुरे करिते दर्शन ॥१८५॥
श्रीचैतन्य प्रभु निज कीर्तन शुनिया । सभारे देखाइ भय आछेन शुइया ॥१८६॥
सुकृति गोविन्द जानाइलेन प्रभुरे । 'वैष्णव-सकल आसियाछेन दुयारे' ॥१८७॥

॥ १७१ ॥ श्रीप्रभु को देखकर सभी भक्त अधिक उल्लास में गाते व श्रीअद्वैत नाचने लगे ॥ १७२ ॥ प्रेमानन्द में किसी ने प्रभु का भय नहीं किया उलटा उनके साक्षात् में ही श्रीचैतन्य का प्राकट्य गान करने लगे ॥ १७३ ॥ श्रीप्रभु का निज विहार निरन्तर दास्यभाव में होता था "मैं कृष्णदास हूँ" इनके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहते थे ॥ १७४ ॥ ऐसी किसी की सामर्थ्य नहीं थी कि उनके सामने ही दास के अतिरिक्त "ईश्वर" करके सम्बोधन करे ॥ १७५ ॥ तथापि सब भक्तवृन्द श्रीअद्वैतजी के बल पर निर्भय होकर श्रीचैतन्यहरि का यश गा रहे थे ॥ १७६ ॥ सन्यासियों के शिरोमणि श्रीप्रभु एक क्षण खड़े होकर अपनी स्तुति को सुनकर मानों लज्जा पाने लगे ॥ १७७ ॥ अपना कीर्तन सुनकर शिक्षागुरु भगवान् सबको शिक्षा देने के निमित्त अपने निवास स्थान को चले गये ॥ १७८ ॥ तथापि किसी के मन में भय उत्पन्न नहीं हुआ बरञ्च और भी विशेष रूप से "चैतन्य विजय" गान करने लगे ॥ १७९ ॥ आनन्द में किसी के शरीर में बाह्य ज्ञान नहीं था सभी देख रहे थे कि श्रीप्रभु कीर्तन में विराजमान् हैं ॥१८०॥ सब ही मत्त होकर चैतन्य यश गान कर रहे थे सुकृति जन तो सुनकर सुख पा रहे थे तथा दुष्कृति पापी दुःख पा रहे थे ॥१८१॥ श्रीचैतन्य यश में जिसकी प्रीति न हो उसका ब्रह्मचर्य व सन्यास से क्या कार्य सिद्ध होगा ? ॥ १८२ ॥ इस प्रकार सब भक्तवृन्द परम आनन्द सुख में सब समय श्रीहरिनाम संकीर्तन करते रहते थे ॥१८३॥ जो इन सब आनन्द-लीलाओं को पढ़ें व सुनेंगे वे भी इन सब मण्डलियों में आकर मिल जाँयगे ॥१८४॥ सब प्रधान भक्तवृन्द नृत्य गान के पश्चात् श्रीप्रभु के दर्शन करने आये ॥ १८५ ॥ श्रीचैतन्यप्रभु अपना नाम एवं यशपूर्ण कीर्तन सुनकर सबको भय दिखाने के लिये आकर सो रहे हुए थे १८६ सुकृति गोविन्द ( द्वारपाल ) ने श्रीप्रभु

गोविन्देरे आज्ञा हैल सभारे आनिते । शयने आछेन, ना चाहेन कारो भिते ॥१८८॥
भययुक्त हइया सकल भक्तगण । चिन्तिते लागिला गौरचन्द्रेर चरण ॥१८९॥
क्षणेके उठिला प्रभु श्रीभक्तवत्सल । बलिते लागिला 'अये वैष्णव-सकल ॥१९०॥
अये अये श्रीनिवास पण्डित उदार । आजि तुमि सब कि करिला अवतार ॥१९१॥
छाड़िया कृष्णेर नाम, कृष्णेर कीर्तन । कि गाइला आमारे त बुझाइ एखन ॥१९२॥
महावक्ता श्रीनिवास बोलेन 'गोसाञि । जीवेर स्वतन्त्र शक्ति मूले किछु नाञि ॥१९३॥
येन करायेन येन बोलायेन ईश्वरे । सेइ आजि बलिलाङ, कहिल तोमारे ॥१९४॥
प्रभु बोले 'तुमि सब हइया पण्डित । लुकाय ये, तारे केने करह विदित' ॥१९५॥
शुनिञा प्रभुर वाक्य पण्डित-श्रीवासे । हस्ते सूर्य आच्छादिया मने मने हासे ॥१९६॥
प्रभु बोले 'कि सङ्केत कैला हस्त दिया । तोमार सङ्केत तुमि कहत भाङ्गिया' ॥१९७॥
श्रीवास बोलेन हस्ते सूर्य ढाकिलाङ । तोमारे विदित करि एइ कहिलाङ ॥१९८॥
हस्ते कि कखनो पारि सूर्य आच्छादिते । सेइ मत असम्भव तोमा लुकाइते ॥१९९॥
सूर्य यदि हस्ते वा हयेन आच्छादित । तबु तुमि लुकाइते नार कदाचित् ॥२००॥
तुमिओ कि लुकाइबा पृथिवी भितरे । ये नारिल लुकाइते क्षीरोदसागरे ॥२०१॥
हिमगिरि सेतुबन्ध पृथिवी पर्यन्त । तोमार निर्मल यशे पूरिल दिगन्त ॥२०२॥
आब्रह्माण्ड पूर्ण हैल तोमार कीर्तने । कत जन दण्ड तुमि करिबा केमने ॥२०३॥
सर्व काल भक्त जय बाढ़ाय ईश्वरे । हेन काले अद्भुत हैल आसि द्वारे ॥२०४॥

को बताया कि प्रभो ! द्वार पर सब वैष्णव आये हुये हैं ॥ १८७ ॥ सबको ले आने की गोविन्द को आज्ञा देकर आप सो रहे तथा किसी की ओर को नहीं देखते ॥ १८८ ॥ तब सब भक्तवृन्द भयभीत होकर श्रीगौर-चन्द्र के चरणों का चिन्तन करने लगे ॥ १८९ ॥ श्रीभक्तवत्सल प्रभु एक क्षण में ही उठ बैठे और कहने लगे हे वैष्णवों सुनो ॥ १९० ॥ हे उदार श्रीवास पण्डित ! आज तुम सबने किस अवतार का कीर्तन किया ? ॥ १९१॥ तथा कृष्ण नाम व कीर्तन को छोड़कर क्या गान किया ? मुझे तो अब समझाओ ॥ १९२ ॥ महावक्ता श्रीनिवास ने कहा प्रभो ! मूल में जीवों की स्वतन्त्र शक्ति तो कुछ है नहीं ॥ १९३ ॥ जिसे ईश्वर ने आज कीर्तन व गान कराया उसे ही आज कहता हूँ—आप से स्पष्ट कह रहा हूँ ॥ १९४ ॥ श्रीप्रभु ने कहा "तुम सब तो पण्डित हो जो गुप्त रहना चाहे उसको क्यों प्रगट करते हो ? ॥१९५॥ श्रीवास पण्डित श्रीप्रभु के वाक्य सुनकर हाथ से सूर्य को आच्छादन करके मन २ हँसने लगे ॥ १९६ ॥ प्रभु ने कहा "हाथ देखकर क्या संकेत करते हो अपने संकेत को स्पष्ट करके कहो ? ॥ १९७ ॥ श्रीवास ने कहा "मैंने हाथ से सूर्य ढका था आप से स्पष्ट करके यही कहता हूँ ॥१९८॥ क्या कभी हाथ से सूर्य आच्छादित हो सकता ? प्रभो उसी प्रकार आपको गुप्त रखना भी असम्भव है॥ १९९ ॥ सूर्य यदि हाथ से आच्छादित भी हो जाय तथापि आप कभी नहीं छिप सकते ॥ २०० ॥ जब क्षीरोदसागर में ही न छिप सके, तो पृथ्वी पर कैसे छिप सकोगे ॥ २०१ ॥ हिमाचल पर्वत से सेतुबन्ध पर्यन्त सब पृथ्वी को व्याप्त करके आपका निर्मल यश सब दिशाओं में भर गया है २०२ आपके कीर्तन से सब ब्रह्माण्ड पूर्ण हो गया है आप कितने जनों को क्या २ दण्ड

सहस्र सहस्र जन ना जानि कोथार । जगन्नाथ देखि आइल प्रभु देखिबार ॥२०५॥
केहो वा त्रिपुरा केहो चाटि-ग्रामवासी । श्रीहट्टिया लोक केहो केहो बङ्गदेशी ॥२०६॥
सहस्र सहस्र लोक करेन कीर्तन । श्रीचैतन्य-अवतार करिया वर्णन ॥२०७॥
जय जय श्रीकृष्णचैतन्य बनमाली । जय जय निज भक्तिरस कुतूहली ॥२०८॥
जय जय परम सन्यासि रूपधारी । जय जय सङ्कीर्तन रसिक मुरारी ॥२०९॥
जय जय द्विजराज वैकुण्ठ विहारी । जय जय जय जगतेर उपकारी ॥२१०॥
जय कृष्णचैतन्य श्रीशचीरनन्दन । एइमत गाय नाचे शत-संख्य जन ॥२११॥
श्रीवास बोलेन "प्रभु एबे कि करिबा । सकल संसार गाय, कोथा लुकाइबा ॥२१२॥
मुञि कि शिखाइयाछों ए सब लोकेरे । एइमत गाय प्रभु सकल संसारे ॥२१३॥
अदृश्य अव्यक्त तुमि हइयाओ नाथ । करुणाये हइयाछ जीवेर साक्षात् ॥२१४॥
लुकाओ आपने तुमि, प्रकाश आपने । यारे अनुग्रह कर जाने से-इ जने" ॥२१५॥
प्रभु बोले "तुमि निज शक्ति प्रकाशिया । बोलाह लोकेर मुखे, जानिलाङ इहा ॥२१६॥
तोमारे हारिल मुञि शुनह पंडित । जानिलाङ-तुमि सर्वशक्ति समन्वित" ॥२१७॥
सर्वकाल प्रभु बाढ़ायेन भक्त जय । ए तान स्वभाव-वेदे भागवते कय' ॥२१८॥
हास्यमुखे सब-वैष्णवेरे गौरराय । विदाय दिलेन, सबे चलिला वासाय ॥२१९॥
हेन से चैतन्य देव श्रीभक्तवत्सल । इहाने से कृष्ण करि गायेन सकल ॥२२०॥

होंगे ? ॥२०३॥ ईश्वर सदा ही भक्तों की जय कराते हैं । उस समय भी द्वार पर अद्भुत बात हुई ॥२०४॥ न जाने कहाँ से हजारों २ जन जगन्नाथ दर्शन करके श्रीप्रभु गौरचन्द्र के दर्शनों के लिये द्वार पर आये ॥२०५॥ कोई त्रिपुरा से कोई चट्टग्राम से कोई २ श्रीहट्ट (सिलहट) से कोई पूर्व-बंग से आयकर ॥२०६॥ श्रीचैतन्यचन्द्र अवतार का यश वर्णन करके सहस्र २ लोग कीर्तन कर रहे थे ॥ २०७ ॥ वनमाली श्रीकृष्ण-चैतन्य की जय हो जय हो, अपने भक्तिरस द्वारा कुतूहल करने वाले प्रभु की जय हो २ ॥ २०८ ॥ परम सन्यासी रूप धारण करने वाले श्रीप्रभु की जय हो २, सङ्कीर्तन रसिक श्रीमुरारी की जय हो २ ॥ २०९ ॥ वैकुण्ठविहारी द्विजराज की जय हो २, जगत् का कल्याण करने वाले प्रभु की जय हो ३॥२१०॥ श्रीशचीनन्दन कृष्णचैतन्य की जय हो इस प्रकार असंख्यों जन गान व नृत्य कर रहे थे ॥ २११ ॥ श्रीवास ने कहा "प्रभो ! अब क्या करोगे ? देखो सब संसार आपके यश को गा रहा है अब कहाँ छिपोगे ॥ २१२ ॥ इन सब लोगों को क्या मैंने ही सिखा दिया है ? प्रभो ! सब संसारवासी इसी प्रकार गान करते हैं ॥२१३॥ हे स्वामी तुम अदृश्य व अव्यक्त होकर भी करुणा करके ही जीवों के आगे प्रगट होते हो ॥ २१४ ॥ प्रभो तुम स्वयं ही गुप्त हो जाते हो तथा स्वयं ही प्रकाशित होते हो जिसके ऊपर आप अनुग्रह करते हो वे ही जन जान पाते हैं ॥ २१५ ॥ श्रीप्रभु ने कहा "तुम अपनी शक्ति प्रकाश करके लोगों के मुख से कहलवा रहे हो मैंने यह समझ लिया है ॥ २१६ ॥ श्रीवास पण्डित सुनो ! मैं तुम से हार गया और समझ लिया कि तुम में सब शक्ति है ॥ २१७ ॥ प्रभु सदा ही भक्त की जय कराते हैं यही उनका स्वभाव है वेद तथा भागवत भी यही कहते हैं २१८ श्रीगौरराय ने हास्य-मुख से सब वैष्णव को विदा दी तब सब वैष्णव अपने २ डेरों

नित्यानन्द अद्वैतादि यतेक प्रधान । सभे बोले "श्रीकृष्णचैतन्य भगवान्" ॥२२१॥
ए सकल ईश्वरेर वचन लंघिया । अन्येरे ये बोले 'कृष्ण' से-इ अभागिया ॥२२२॥
शेषशायी लक्ष्मीकान्त श्रीवत्सलाञ्छन । कौस्तुभ भूषण आर गरुड़ वाहन ॥२२३॥
ए सब कृष्णेर चिह्न जानिह निश्चय । गङ्गा आर कारो पादपद्मे ना जन्म लय ॥२२४॥
श्रीचैतन्त बिने इहा अन्ये ना सम्भवे । एइ कहे वेदे शास्त्रे सकल वैष्णवे ॥२२५॥
सर्व वैष्णवेर वाक्य ये आदरे लय । सेइ सब जने पाय सर्वत्र विजय ॥२२६॥
हेन मते महाप्रभु श्रीगौरसुन्दर । भक्तगोष्ठी सङ्गे विहरेन निरन्तर ॥२२७॥
प्रभु बेढ़ि भक्तगण वसेन सकल । चौदिगे शोभये येन चन्द्रेर मण्डल ॥२२८॥
मध्ये श्रीवैकुण्ठनाथ न्यासि चूड़ामणि । निरवधि कृष्ण कथा करि हरिध्वनि ॥२२९॥
हेनइ समये दुइमहा भाग्यवान् । हइलेन आसिया प्रभुर विद्यमान ॥२३०॥
शाकर-मल्लिक आर रूप-दुइ भाइ । दुइप्रति कृपादृष्ट्ये चाहिला गोसाञि ॥२३१॥
दूरे थाकि दुइ भाइ दण्डवत करि । काकुर्वाद करेन दशने तृण धरि ॥२३२॥
"जय जय महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य । याँहार कृपाय हैल सर्वलोक धन्य ॥२३३॥
जय दीनवत्सल जगत हितकारी । जय जय परम-सन्यासि-रूपधारी ॥२३४॥
जय जय सङ्कीर्तन विनोद अनन्त । जय जय जय सर्व-आदि-मध्य-अन्त ॥२३५॥
आपने हइया श्रीवैष्णव अवतार । भक्ति दिया उद्धारिला सकल संसार ॥२३६॥

---

को चले दिये ॥ २१९ ॥ भक्तवत्सल श्रीचैतन्यदेव ऐसे हैं, सभी उनको कृष्ण करके गान करते हैं ॥ २२० ॥ श्रीनित्यानन्द श्रीअद्वैत आदि जितने प्रधान भक्त थे वे सब कहते थे कि श्रीकृष्णचैतन्य भगवान् हैं ॥२२१॥ इन सब प्रभुओं के वचनों को उल्लंघन करके जो अन्य किसी को कृष्ण कहते हैं वे अभागे हैं ॥ २२२ ॥ शेष शय्या पर शयन लक्ष्मी के पति, श्रीवत्स का चिह्न धारण, कौस्तुभमणि भूषण और गरुड़वाहन यह सब चिन्ह श्रीकृष्ण के हैं निश्चय पूर्वक जान लो तथा गङ्गाजी अन्य किसी के चरण कमल से उत्पन्न नहीं होती हैं-श्रीचैतन्य के बिना ये सब बातें दूसरे में सम्भव नहीं हैं इसको वेद-शास्त्र सब वैष्णव कहते हैं ॥ २२३ से २२५ ॥ इस प्रकार वैष्णवों के वाक्यों को जो आदर से ग्रहण करता है उसकी सब जगह विजय होती है ॥ २२६ ॥ इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर महाप्रभु निरन्तर भक्तगोष्ठी के सङ्ग विहार करते थे ॥ २२७ ॥ प्रभु को घेरकर सब भक्तवृन्द बैठे थे मानो चारों ओर चन्द्रमण्डल शोभा दे रहा था ॥ २२८ ॥ तथा सन्यासियों में मुकुटमणि श्रीवैकुण्ठनाथ बीच में बैठकर निरन्तर कृष्ण कथा व हरिध्वनि करते थे ॥ २२९ ॥ उस समय दो महा भाग्यवान् पुरुष प्रभु के सम्मुख आकर उपस्थित हुए ॥२३०॥ तब श्रीगौरप्रभु ने उन शाकर-मल्लिक और रूप दोनों भ्राताओं के प्रति कृपादृष्टि से देखा ॥ २३१ ॥ दोनों भाई दूर से दण्डवत् कर रहे थे तथा दाँतों में तिनुका लेकर काकुती कार्पण्य प्रदर्शन कर रहे थे ॥ २३२ ॥ जिनकी कृपा से सब लोक धन्य हो गया है ऐसे श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की जय हो २॥२३३॥जगत् हितकारी व दीनवत्सल की जय हो, परम सन्यासी-रूपधारी प्रभु की जय हो जय हो ॥२३४॥ संकीर्तन विनोदी अनन्तस्वरूप प्रभु की जय हो सब के आदि मध्य अन्त में वर्तमान प्रभु की जय हो २ २३५ स्वयं श्रीवैष्णवरूप में अवतीर्ण होकर सब संसार

तबे प्रभु मोरे ना उद्धार कोन काजे। मुञि किना हइ प्रभु संसारेर माझे ॥२३७॥
आजन्म विषय भोग हइया मोहित। ना भजिलूँ तोमार चरण-निज हित ॥२३८॥
तोमार भक्तेर सङ्गे गोष्ठी ना करिलूँ। तोमार कीर्तन ना करिलूँ ना शुनिलूँ ॥२३९॥
राज पात्र करि मोरे बञ्चना करिला। तबे मोरे मनुष्य जनम केने दिला ॥२४०॥
ये मनुष्य जन्म लागि देवे काम्य करे। हेन जन्म दियाओ वञ्चिला प्रभु मोरे ॥२४१॥
एबे एइ कृपा कर अभाया हइया। वृक्ष मूले पड़ि थाकों तोर नाम लैया ॥२४२॥
ये तोमार प्रियभक्त लओयाय तोमारे। अवशेष पात्र येन हइ तार घरे ॥२४३॥
एइमत रूप सनातन-दुइ भाइ। स्तुति करे शुने प्रभु चैतन्यगोसाञि ॥२४४॥
कृपादृष्ट्ये प्रभु दुइ-भाइ रे चाहिया। बलिते लागिला अति सदय हइया ॥२४५॥
प्रभु बोले "भाग्यवन्त तुमि-दुइजन। बाहिर हइला छिण्डि संसार बन्धन ॥२४६॥
विषय बन्धने बद्ध सकल संसार। से बन्धन हैते तुमि- दुइ हैला पार ॥२४७॥
प्रेम भक्ति वांछा यदि करह एखने। तबे धरि पड़ एइ अद्वैत चरणे ॥२४८॥
भक्तिर भाण्डारी श्रीअद्वैत महाशय। अद्वैतेर कृपाये से कृष्णभक्ति हय" ॥२४९॥
शुनिञा प्रभुर आज्ञा दुइ महाजने। दण्डवत् पड़िलेन अद्वैत चरणे ॥२५०॥
"जय जय श्रीअद्वैत पतितपावन। मुइ-दुइ-पतितेरे करह मोचन" ॥२५१॥
प्रभु बोले "शुन शुन आचार्य गोसाञि। कलियुगे एमत विरक्त झाट नाञि ॥२५२॥

---

को प्रेम-भक्ति देकर आपने उद्धार किया है ॥२३६॥ तब हे प्रभो ! हमें उद्धार क्यों नहीं करते ? क्या प्रभो ! हम संसार में नहीं हैं ? ॥ २३७ ॥ जन्म से ही विषय भोग में मोहित होकर स्वार्थवश आपके चरणों को नहीं भजा ॥ २३८ ॥ कभी आपकी भक्तमण्डली का संग नहीं किया न आपका कीर्त्तन ही किया व सुना ॥ २३९ ॥ राजमन्त्री करके हमारी वंचना कर दी तो हमको मनुष्य जन्म ही क्यों दिया था ॥ २४० ॥ जिस मनुष्य जन्म के लिये देवता भी कामना करते हैं, ऐसा जन्म देकर भी प्रभो ! हमें आपने बिसार दिया ? ॥ २४१ ॥ अब माया को छोड़कर ऐसी कृपा करो जिससे आपका नाम लेते हुए वृक्ष के नीचे पड़े रहें ॥२४२॥ जो आपके प्रियभक्त आपका नाम यश कीर्तन कर रहे हैं, ऐसी कृपा हो जाय जिसमें हम उनके घर झूठन रखने के पात्र हो सकें ॥ २४३ ॥ इस प्रकार रूप-सनातन दोनों भाई स्तुति कर रहे थे तथा श्रीचैतन्यचन्द्र प्रभु सुन रहे थे ॥ २४४ ॥ श्रीप्रभु ने कृपादृष्टि से दोनों भाइयों को देखा और अत्यन्त सदय होकर बोले ॥ २४५ ॥ श्रीगौर प्रभु ने कहा "तुम दोनों पुरुष बड़े भाग्यवन्त हो जो संसार बन्धन को तोड़कर बाहिर हो गये" ॥ २४६ ॥ सब संसार विषय की रस्सी में बँध रहा है तुम दोनों तो इस बन्धन से पार हो गये हो ॥ २४७ ॥ यदि इस समय प्रेम-भक्ति की वाँछा करते हो तो इन श्री अद्वैत के चरणों को पकड़कर चरणों में लोटो ॥ २४८ ॥ उदार शिरोमणि श्रीअद्वैत प्रभु ही भक्ति के भाण्डारी हैं इन्हीं की कृपा से कृष्ण-भक्ति होती है ॥ २४९ ॥ दोनों महापुरुष प्रभु की आज्ञा सुनकर श्रीअद्वैत प्रभु चरणों में दण्डवत् होकर गिर पड़े ॥ २५० ॥ पतितपावन श्री अद्वैत प्रभु की जय हो जय हो, हे प्रभो ! हम दोनों पतितों को मुक्त करो ॥२५१॥ श्रीप्रभु गौरचन्द्र ने कहा "हे आचार्य प्रभु ! सुनो कलियुग में ऐसे वैराग्यवान् पुरुष शीघ्र नहीं प्राप्त होंगे

ये भकत ये वस्तु-यार येन अवतार । वैष्णव वैष्णवी-यार अंशे जन्म यार ॥२७०॥
यार येन-मत पूजा, यार ये महत्त्व । चैतन्य प्रभु से सब करिलेन व्यक्त ॥२७१॥
एक दिन प्रभु वसि आछे सुप्रकाशे । अद्वैत-श्रीवास-आदि भकत चारि-पाशे ॥२७२॥
श्रीनिवास पण्डितेरे ईश्वर आपने । आचार्येर वार्ता जिज्ञासेन तान स्थाने ॥२७३॥
प्रभु कहे "श्रीनिवास कहत आमारे । कि रूप वैष्णव तुमि वास अद्वैतेरे" ॥२७४॥
मने भावि वलिला श्रीवास महाशय । "शुक वा प्रह्लाद येन मोर चित्ते लय"॥२७५॥
अद्वैतेर उपमा प्रह्लाद-शुक येन । शुनि प्रभु क्रोधे श्रीवासेरे मारिलेन ॥२७६॥
पिता येन पुत्रे सिखाइते स्नेहे मारे । एइमत एक चड़ हैल श्रीवासेरे ॥२७७॥
"कि वलिलि कि वलिलि पण्डित श्रीवास । मोहोर नाढ़ारे कह शुक वा प्रह्लाद ॥२७८॥
ये शुकेरे 'मुक्त' तुमि बोल सर्वमते । कालिर बालक शुक नाढ़ार आगेते ॥२७९॥
एतवड़ वाक्य मोर नाढ़ारे वलिलि । आजि वड़ श्रीवासिया मोरे दुःख दिलि" ॥२८०॥
एतवलि क्रोधे हस्ते दीपयष्टि लैया । श्रीवासेरे मारिवारे यान खेदाड़िया ॥२८१॥
सम्भ्रमे उठिया श्रीअद्वैत महाशय । धरिला प्रभुर हस्ते करिया विनय ॥२८२॥
बालकेरे बाप शिखाइबा कृपा-मने । के आछे तोमार क्रोधपात्र त्रिभुवने ॥२८३॥
आचार्येर वाक्ये प्रभु क्रोध करि दूर । आवेशे कहेन तान महिमा प्रचुर ॥२८४॥

उदार कीर्ति व भक्ति महिमा है उदार श्रीचैतन्यचन्द्र ने सबको प्रचार कर दिया ॥२६७॥ नित्यानन्दतत्त्व व अद्वैततत्त्व तथा अति प्रिय भक्तमण्डली का महत्त्व श्रीचैतन्यप्रभु ने सब प्रकार से प्रकाश किया वे ही प्रभु अब उन सब से प्रसन्न होकर कहने लगे ॥२६८-२६९॥जो भक्त जो वस्तु (तत्त्व) है जो जिसका अवतार हुआ है जितने वैष्णव व वैष्णवी मात्र थे, जो जिसके अंश जन्मे थे तथा जिसकी जिस प्रकार पूजा होती है व जिसका जो महत्त्व है वह सब श्रीचैतन्य प्रभु ने सब स्पष्ट कर दिया ॥ २७०-२७१ ॥ एक दिन गौरचन्द्र सुन्दर प्रकाश में बैठे थे तथा श्रीअद्वैत श्रीवास आदि भक्त चारों ओर बैठे थे ॥ २७२ ॥ स्वयं श्रीप्रभु गौर-चन्द्र ने श्रीनिवास पण्डित को श्रीअद्वैताचार्य की बात पूछी ॥२७३॥ श्रीप्रभु ने कहा हे श्रीवास मुझ से तो कहा तुम अद्वैत को कैसा वैष्णव समझते हो ? ॥ २७४ ॥ परम उदार श्रीवास ने मन में विचार करके कहा मेरे मन में ऐसा जान पड़ता है जैसे शुक अथवा प्रह्लाद हैं ॥ २७५ ॥ श्रीअद्वैत को शुक व प्रह्लाद से उपमा सुनकर श्रीप्रभु ने क्रोध में श्रीवास को मारा ॥ २७६ ॥ जिस प्रकार से शिक्षा देने के लिये पिता स्नेह से पुत्र को मारता है उसी प्रकार श्रीवास को एक चाँटा मारा ॥ २७७ ॥ क्या कहा, क्या कहा श्रीवास पण्डित ! मेरे नाढ़ा ( बूढ़े ) अद्वैत को शुक व प्रह्लाद कहते हो ॥ २७८ ॥ जिस शुकदेव को तुम सब प्रकार से मुक्त कहते हो वह नाढ़ा के आगे कल का बालक है॥२७९॥मेरे अद्वैताचार्य के प्रति ऐसा बड़ा वाक्य कहा ? अरे श्रीवासिया ! आज मुझे तैंने विशेष दुःख दिया॥२८०॥ऐसा कहकर क्रोध से हाथ में दीपयष्टि (मशाल छड़ी) लेकर ताड़ना के लिये श्रीवास को खदेड़ा ॥ २८१ ॥ श्रीअद्वैत महाशय ने अति शीघ्रता से उठकर विनय करते हुए प्रभु के हाथ पकड़ लिये ॥२८२॥ प्रभो ! बालकों को कृपायुक्त मन से शिक्षा दो तीनों लोकों में तुम्हारे क्रोध का पात्र कौन है ? ॥२८३॥ श्रीप्रभु ने आचार्य के वाक्यों से क्रोध दूर करके आवेश में उनकी

प्रभु बोले "तोहोर बालक शिशु तोर। एतेके सकल क्रोध दूरे गेल मोर ॥२८५॥
मोर नाढ़ा जानिबारे आछे हेनजन। ये मोहोरे आनिलेक भाङ्गिया शयन" ॥२८६॥
प्रभु बोले "अये श्रीनिवास महाशय। मोहोर नाढ़ारे एइ तोमार बिनय ॥२८७॥
शुक-आदि करि सब बालक उहार। नाढ़ार पाछे से जन्म जानिह सभार ॥२८८॥
अद्वैतेर लागि मोर एइ अवतार। मोर कर्णे बाजे आसि नाढ़ार हुङ्कार ॥२८९॥
शयने आछिलुँ मुत्रि क्षीरोद सागरे। जागाइ आनिल मोरे नाढ़ार हुङ्कारे" ॥२९०॥
श्रीवासेर अद्वैतेर प्रति बड़ प्रीत। प्रभु वाक्य शुनि हैला अति हरषित ॥२९१॥
महाभये कम्प हइ बोले श्रीनिवास। "अपराध करिलुँ, क्षमह मोरे नाथ ॥२९२॥
तोमार अद्वैततत्त्व जानह तुमि से। तुमि जानाइले से जानये अन्य दासे ॥२९३॥
आजि मोर महाभाग्य सकल मङ्गल। शिखाइया आमारे आपने कैला फल ॥२९४॥
एखने से ठाकुराली बलिये तोमार। आजि बड़ मने बल बाढ़िल आमार ॥२९५॥
एइमोर मनेर संकल्प आजि हैते। मदिरा यवनी यदि धरये अद्वैते ॥२९६॥
तथापि करिब भक्ति अद्वैतेर प्रति। कहिलुँ तोमारे प्रभु सत्य करि अति ॥२९७॥
तुष्ट हइलेन प्रभु श्रीवास-वचने। पूर्वप्राय आनन्दे वसिला तिन जने ॥२९८॥
परम-रहस्य ए सकल पुण्य कथा। इहार श्रवणे कृष्ण पाइये सर्वथा ॥२९९॥
यार येन प्रभाव, याहार येन भक्ति। येबा आगे, येबा पाछे, यार येन शक्ति ॥३००॥

---

प्रचुर महिमा का प्रकाश किया ॥२८४॥ श्रीप्रभु गौरचन्द्र ने कहा तुम्हारे लिये यह बालक व शिशु की तरह स्नेह के आस्पद हैं, इसी से मेरा सब क्रोध दूर चला गया ॥ २८५ ॥ जो मेरी नींद को भंग कराकर मुझे ले आया ऐसे मेरे नाढ़ा को जान सके ऐसा कौन जन है ? ॥ २८६ ॥ प्रभु बोले "हे श्रीनिवास महाशय ! मेरे अद्वैत के प्रति तुम्हारी विरुद्ध नीति है" ॥ २८७ ॥ शुकदेव आदि सब उनके बालक हैं तथा सब का जन्म नाढ़ा ( अद्वैत ) से पीछे हुआ है ॥ २८८ ॥ श्रीअद्वैत के निमित्त ही मेरा यह अवतार हुआ है अद्वैत की हुङ्कार मेरे कानों में जाकर लगी ॥ २८९ ॥ मैं तो क्षीरोदसागर में सो रहा था अद्वैत की हुङ्कार ही मुझे वहाँ से जगाय लाई ॥ २९० ॥ श्रीवास की अद्वैत के प्रति बड़ी प्रीति थी सो प्रभु के वाक्यों को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए ॥ २९१ ॥ बड़े भय से कम्पित होकर श्रीवास ने कहा नाथ ! अपराधी हो गया-मुझे क्षमा करो ॥ २९२ ॥ आप अद्वैत का तत्त्व आप ही जानते हो अथवा आपके प्रबोध कराने से अन्य दास जानते हैं ॥ २९३ ॥ आज मेरा बड़ा भाग्य व सब मंगल उदय हुआ है जो आपने मुझे शिक्षा देकर प्रतिफल प्रदान किया ॥ २९४ ॥ इस समय आप ही की प्रभुता कहेंगे आज मेरे मन में विशेष बल बढ़ा है ॥२९५॥ प्रभो ! आज से मेरे मन का यह संकल्प है कि श्रीअद्वैत प्रभु यदि मदिरा व यवनी स्त्री को भी धारण करें तथापि उनके प्रति मैं भक्ति करूँगा आपके सम्मुख अत्यन्त सत्य करके कहता हूँ ॥ २९६-२९७ ॥ प्रभु श्रीगौरचन्द्र श्रीवास के वचन सुनकर बड़े सन्तुष्ट हुए और पहिले की ही तरह तीनों आनन्दपूर्वक बैठ गये ॥ २९८ ॥ परम रहस्यमय इन सब पवित्र कथाओं के सुनने से सर्वथा कृष्णचन्द्र प्राप्त होंगे ॥ २९९ ॥ जिसका जैसा प्रभाव व जिसकी जैसी भक्ति थी जो आगे अथवा पीछे हुए तथा जिसकी जैसी शक्ति थी इन सबके ज्ञाता

सभार सर्वज्ञ एक प्रभु गौरराय । आरे जाने, ये ताहाने भजे अमायाय ॥३०१॥
विष्णुतत्त्व येन अविज्ञात वेदवाणी । एइमत वैष्णवेरो तत्त्व नाहि जानि ॥३०२॥
सिद्ध वैष्णवेर अति विषम व्यभार । ना बूझि निन्दिया मरे सकल संसार ॥३०३॥
सिद्ध वैष्णवेर येन विषम व्यभार । साक्षाते देखह भागवत-कथा-सार ॥३०४॥
वैष्णव प्रधान भृगु ब्रह्मार नन्दन । अहर्निश मने भावे याँर श्रीचरण ॥३०५॥
से प्रभुर वक्षे करिलेन पदाघात । तथापि वैष्णव श्रेष्ठ देखह साक्षात ॥३०६॥
प्रसङ्गे शुनह भागवतेर आख्यान । ये निमित्त भृगु करिलेन हेन काम ॥३०७॥
पूर्वे सरस्वती तीरे महा- ऋषिगण । आरम्भिला महायज्ञ पुराण श्रवण ॥३०८॥
सभे शास्त्रकर्ता सभे महातपोधन । अन्योन्ये लागिल ब्रह्म-विचार-कथन ॥३०९॥
'ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर-तिनजन-माझे । के प्रधान' विचारेन मुनिर समाजे ॥३१०॥
केहो बोले 'ब्रह्मा बड़' केहो 'महेश्वर' । केहो बोले 'विष्णु बड़ सभार उपर' ॥३११॥
पुराणेइ नानामत करेन कथन । 'शिव बड़' कोथाओ, कोथाओ 'नारायण' ॥३१२॥
तबे सब ऋषिगण मिलिया भृगुरे । आदरिला ए प्रमाण तत्त्व जानिबारे ॥३१३॥
"ब्रह्मार मानसपुत्र तुमि महाशय । सर्वमते तुमि ज्येष्ठ श्रेष्ठ तत्त्वमय ॥३१४॥
तुमि इहा जान गिया करिया विचार । सन्देह खण्डाह आसि आमरा-सभार ॥३१५॥
तुमिये कहिबा सेइ सभार प्रमाण" । शुनि भृगु चलिलेन आगे ब्रह्मा-स्थान ॥३१६॥

---

एक श्रीगौरचन्द्र हैं और जो उनको निष्कपट भाव से भजते हैं वे ही जानते हैं ॥ ३००-३०१ ॥ जिस प्रकार विष्णुतत्त्व वेदवाणी द्वारा भी अविज्ञात है उसी प्रकार वैष्णवों के तत्त्व को भी नहीं जान पाते हैं ॥३०२॥ सिद्ध वैष्णवों के व्यवहार अत्यन्त विषम हैं बिना समझे ही निन्दा करके सब संसार मर रहा है ॥ ३०३ ॥ सिद्ध वैष्णवों का जैसा विषम व्यवहार होता है वह भागवत में कथा के सार रूप में देख लो ॥ ३०४ ॥ ब्रह्मा के पुत्र भृगु ऋषि वैष्णवों में प्रधान थे रात दिन जिन प्रभु के श्रीचरण-कमलों की मन में भावना करते थे ॥ ३०५ ॥ उन्हीं प्रभु के वक्षस्थल में लात मारी तो भी वे वैष्णवों में स्पष्ट ही श्रेष्ठ हैं ॥ ३०६ ॥ इस प्रसङ्ग में भागवत का आख्यान सुनो जिस कारण भृगु ने ऐसा काम किया ॥ ३०७ ॥ पहिले सरस्वती नदी के तट पर महर्षियों ने पुराण श्रवण करने के लिये महायज्ञ आरम्भ किया था ॥ ३०८ ॥ सभी शास्त्रों के रचयिता व बड़े तपस्वी थे सो एक दूसरे से ब्रह्म विचार पर कथोपकथन करने लगे ॥ ३०९ ॥ मुनियों के समाज में इस पर विचार होने लगा कि ब्रह्मा, विष्णु व महेश्वर इन तीनों में कौन प्रधान है ॥३१०॥ किसी ने कहा ब्रह्मा बड़े हैं किसी ने कहा महेश्वर बड़े हैं तथा और किसी ने कहा कि सबके ऊपर विष्णु बड़े हैं ॥ ३११ ॥ तथा पुराणों में भी अनेक प्रकार से कथन किया है, किसी पुराण में शिवजी बड़े हैं, किसी में ब्रह्मा व किसी में नारायण बड़े हैं कहा गया ॥ ३१२ ॥ तब सब ऋषियों ने मिलकर इसके प्रमाण व तत्त्व जानने के लिये भृगु का आदर किया॥३१३॥महाशय भृगु तुम ब्रह्मा के मानस पुत्र हो अतः सब प्रकार से हम में तुम बड़े व श्रेष्ठ हो तथा तत्त्वविज्ञ हो ॥३१४॥ अतः तुम ही जाकर विचारपूर्वक इसका निश्चय करके आकर हम सबके सन्देह का खण्डन करो ॥ ३१५ तुम जो कुछ कहोगे वही सबको प्रमाण

ब्रह्मार सभाय गिया भृगु मुनिवर । दम्भ करि रहिलेन ब्रह्मार गोचर ॥३१७॥
पुत्र देखि ब्रह्मा बड़ सन्तोष हइला । सकल कुशल जिज्ञासिबारे लागिला ॥३१८॥
सत्त्व परीक्षिते भृगु ब्रह्मार नन्दन । श्रद्धा करि ना शुनेन बापेर बचन ॥३१९॥
स्तुति कि वा विनय गौरव नमस्कार । किछु ना करेन पिता-पुत्र-व्यवहार ॥३२०॥
देखिया पुत्रेर अनादर व्यवहार । क्रोधे ब्रह्मा हइलेन अग्नि-अवतार ॥३२१॥
भस्म करिबेन हेन क्रोधे मग्न हैला । देखिया पितार मूर्ति भृगु पलाइला ॥३२२॥
सभे बुझाइलेन ब्रह्मार पाये धरि । "पुत्रेर कि गोसाञि एमत क्रोध करि" ॥३२३॥
तबे पुत्र स्नेहे ब्रह्मा क्रोध पासरिला । जल पाइ येन अग्नि सुसाम्य हइला ॥३२४॥
तबे भृगु ब्रह्मारे बुझिया भालमते । कैलासे आइला महेश्वर परीक्षिते ॥३२५॥
भृगु देखि महेश्वर आनन्दित हैया । उठिला पार्वतीसङ्गे आदर करिया ॥३२६॥
ज्येष्ठ-भाइ-गौरवे आपने त्रिलोचन । प्रेम योगे उठिला करिते आलिङ्गन ॥३२७॥
भृगु बोले 'महेश परश नाहि कर' । यतेक पाषण्ड वेश सब तुमि धर ॥३२८॥
भूत-प्रेत पिशाच-अस्पृश्य यत आछे । हेन सब पाषण्ड राखह तुमि काछे ॥३२९॥
यतेक उत्पथ से तोमार व्यवहार । भस्मास्थि धारण कोन् शास्त्रेर आचार ॥३३०॥
तोमार परशे स्नान करिते जुयाय । दूरे थाक दूरे थाक अये भूतराय" ॥३३१॥
परीक्षा निमित्ते भृगु बोलेन कौतुके । कभू शिवनिन्दा नाहि भृगुर श्रीमुखे ॥३३२॥

---

मान्य होगा, यह सुनकर भृगु ने पहिले ब्रह्मा के स्थान को गमन किया॥३१६॥मुनिवर भृगुजी ब्रह्मा की सभा में जाकर दम्भ करके ब्रह्मा के सम्मुख बैठ गये ॥ ३१७ ॥ पुत्र को देखकर ब्रह्मा बड़े प्रसन्न हुए और सब प्रकार के कुशल समाचार पूछने लगे ॥ ३१८ ॥ ब्रह्मा के पुत्र भृगुजी ने सत्त्वगुण परीक्षा के विचार से पिताजी के वचनों को श्रद्धा करके नहीं सुना ॥३१९॥ पिता के लिये पुत्रोचित व्यवहार स्वरूप स्तुति-विनय, गौरव नमस्कार आदि कुछ नहीं किया ॥३२०॥पुत्र के अनादररूप व्यवहार को देखकर क्रोध से ब्रह्मा अग्नि स्वरूप हो गये॥३२१॥ क्रोध में ऐसे मग्न हो गये मानो भस्म कर देंगे, पिताजी की ऐसी मूर्ति देखकर भृगुजी वहाँ से भाग कर चल दिये ॥ ३२२ ॥ तब सब ने ब्रह्मा के चरण पकड़कर समझाया कि प्रभो ! पुत्र के ऊपर इतना क्रोध नहीं करना चाहिये ॥ ३२३॥ तब ब्रह्माजी पुत्र स्नेह से क्रोध को भूल गये, जैसे जल को प्राप्त होने पर अग्नि शीतल हो जाय ॥ ३२४ ॥ तब भृगुजी ब्रह्मा को भली भाँति समझकर फिर शिवजी की परीक्षा करने के लिये कैलाश में आये ॥ ३२५ ॥ भृगु को देखते ही आदर करके आनन्दित मन से पार्वती के संग शिवजी उठ खड़े हुए ॥ ३२६ ॥ बड़े भाई का गौरव बढ़ाने के लिये स्वयं त्रिलोचन (शिव) प्रेमयोग से आलिंगन करने के निमित्त उठे ॥३२७॥ भृगु ने कहा अरे हो महेश स्पर्श मत करना कारण जितने पाखंड वेश हैं तुम सबको धारण किये हुए हो ॥ ३२८ ॥ भूत, प्रेत, पिशाचरूप जितने अस्पृश्य हैं उन सब पाखण्डियों को तुम अपने समीप रखते हो ॥ ३२९ ॥ जितने प्रकार के शास्त्र विमुख मार्ग हैं उन में विचरना ही तुम्हारा कार्य है देखो भस्म अस्थि धारण करना किस शास्त्र का आचार है ? ॥ ३३० ॥ तुम्हारे स्पर्श करने से स्नान करना पड़ेगा साईं अरे भूतराज दूर रहो, दूर रहो ३३१ भृगु ने परीक्षा के निमित्त से

भृगुवाक्ये महाक्रोध हैला त्रिलोचन । त्रिशूल तुलिया लइलेन सेइक्षण ॥३३३॥
ज्येष्ठ भाइ-धर्म पासरिलेन शङ्कर । हइलेन येहेन संहार मूर्ति धर ॥३३४॥
शूल तुलिलेन शिव भृगुरे मारिते । आथे व्यथे देवी आसि धरिलेन हाथे ॥३३५॥
चरणे धरिया बुझायेन महेश्वरी । "ज्येष्ठ भाइरे कि प्रभु एत क्रोध करि" ॥३३६॥
देवीवाक्ये लज्जा पाइ रहिला शङ्कर । भृगु ओ चलिला श्रीवैकुण्ठ-कृष्णघर ॥३३७॥
श्रीरत्नखट्टाय प्रभु आछेन शयने । लक्ष्मी सेवा करिते आछेन श्रीचरणे ॥३३८॥
हेनइ समये भृगु आसि अलक्षिते । पदाघात करिलेन प्रभुर वक्षेते ॥३३९॥
भृगु देखि महाप्रभु सम्भ्रमे उठिया । नमस्करिलेन प्रभु महाप्रीत हैया ॥३४०॥
लक्ष्मीर सहिते प्रभु भृगुर चरण । सन्तोषे करिते लागिलेन प्रक्षालन ॥३४१॥
बसिते दिलेन आनि उत्तम आसन । श्रीहस्ते ताहान अङ्गे लेपेन चन्दन ॥३४२॥
अपराधि प्राय येन हइया आपने । अपराध मागिया लयेन तान स्थाने ॥३४३॥
तोमार शुभ-विजय आमि ना जानिञा । अपराध करियाछि, क्षम मोरे इहा ॥३४४॥
एइये तोमार पादोदक पुण्य जल । तीर्थेरे करये तीर्थ हेन सुनिर्मल ॥३४५॥
यतेक ब्रह्माण्ड वैसे आमार देहेते । यत लोकपाल सब आमार सहिते ॥३४६॥
पादोदक दिया आजि करिला पवित्र । अक्षय हइया रहु तोमार चरित्र ॥३४७॥
एइये तोमार श्रीचरण चिह्न धूलि । वक्षे राखिलाङ आमि हइ कुतूहली ॥३४८॥
लक्ष्मी सङ्गे निजवक्षे दिल आमि स्थान । वेदे येन 'श्रीवत्स लाञ्छन' बोले नाम॥३४९॥

ही कौतुक में ऐसे शब्द कहे पहिले भृगु के श्रीमुख से कभी शिव निन्दा नहीं सुनी थी ॥ ३३२ ॥ भृगु के वाक्यों से त्रिलोचन शिवजी को बड़ा क्रोध हुआ तथा उसी क्षण त्रिशूल उठाय लिया ॥ ३३३ ॥ शङ्कर बड़े भाई के धर्म को भूलकर संहार मूर्ति रूप हो गये ॥ ३३४ ॥ शिव ने भृगु के मारने को शूल उठा लिया जैसे तैसे करके देवी ने हाथ पकड़-कर रोका ॥ ३३५ ॥ देवी ने चरण पकड़ कर समझाया कि प्रभो ! बड़े भाई के ऊपर ऐसा क्रोध करते हैं ? ॥ ३३६ ॥ शङ्करजी देवी के वाक्यों से लज्जित होकर बैठ गये और भृगु-ऋषि श्रीकृष्णचन्द्र के निवास स्थान श्रीवैकुण्ठ को चल दिये ॥ ३३७ ॥ रत्न सिंहासन पर प्रभु सो रहे थे तथा लक्ष्मीजी श्रीचरण-कमलों की सेवा कर रही थीं ॥३३८॥ ऐसे समय में भृगु ने अलक्षित रूप से पहुँच कर श्रीविष्णु के वक्षस्थल में लात मारी ॥ ३३९ ॥ भृगु को देखते ही भगवान् बड़ी शीघ्रता से उठे तथा बड़े प्रसन्न होकर नमस्कार किया ॥ ३४० ॥ लक्ष्मी के सहित विष्णु ने सन्तुष्ट होकर भृगु के चरणों को प्रक्षालन किया ॥ ३४१ ॥ और बैठने को उत्तम आसन लाकर दिया तथा श्रीहस्तों से उनके अङ्ग में चन्दन लेप किया ॥ ३४२ ॥ स्वयं अपराधी तुल्य होकर उन से अपराध की क्षमा माँगने लगे ॥३४३॥ मैंने आपके शुभ आगमन को न जानकर अपराध किया है अतः मेरे इस अपराध को क्षमा करो ॥ ३४४ ॥ यह तुम्हारा जो पादोदक रूप पवित्र जल है वह ऐसा सुनिर्मल है कि यह तीर्थों को भी तीर्थ ( कृतार्थ ) कर देता है ॥ ३४५ ॥ मेरे शरीर में जितने ब्रह्माण्ड हैं और मुझ सहित जितने लोकपाल हैं उन्हें आज चरणामृत देकर पवित्र कर दिया यह चरित्र अक्षय होकर रहेगा ३४६-३४७ यह जो आपके चरण चिन्ह की धूलि है उसे

शुनिआ प्रभुर वाक्य, विनय-व्यभार । काम-क्रोध-लोभ-मोह-सकलेर पार ॥३५०॥
देखि महा ऋषि पाइलेन चमत्कार । लज्जित हइया माथा ना तोलेन आर ॥३५१॥
येहा करिलेन से ताहान कर्म नय । आवेशेर कर्म इहा जानिह निश्चय ॥३५२॥
वाह्य पाइ प्रीति श्रद्धा देखिते देखिते । भक्तिरसे पूर्ण हइ लागिला नाचिते ॥३५३॥
हास्य, कम्प, घर्म्म, मूर्च्छा, पुलक, हुङ्कार । भक्तिरसे मग्न हैला ब्रह्मार कुमार ॥३५४॥
"सभार ईश्वर कृष्ण, सभार जीवन" । एइ सत्य बलि नाचे ब्रह्मार नन्दन ॥३५५॥
देखिया कृष्णेर शान्त-विनय-व्यभार । विप्रभक्ति ये कोथाओ ना सम्भवे आर ॥३५६॥
भक्ति जड़ हैला, वाक्य ना आइसे वदने । आनन्दाश्रुधारा मात्र बहे श्रीनयने ॥३५७॥
सर्वभावे ईश्वरेर देह समर्पिया । पुन सभामध्ये भृगु मिलिला आसिया ॥३५८॥
भृगु देखि सभे हैला आनन्द अपार । "कह भृगु कार केन देखिले व्यभार ॥३५९॥
तुमि येइ कह, येइ सभार प्रमाण" । तबे सब कहिलेन भृगु भगवान ॥३६०॥
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर तिनेर व्यभार । सकल कहिया एइ कहिलेन सार ॥३६१॥
"सर्वश्रेष्ठ-श्रीवैकुण्ठनाथ नारायण । सत्य सत्य सत्य एइ बलिल वचन ॥३६२॥
सभार ईश्वर कृष्ण-जनक सभारे । ब्रह्मा-शिवो करेन याँहार अधिकार ॥३६३॥
कर्ता हर्ता रक्षिता सभार नारायण । निःसन्देह भज गिया ताँहार चरण ॥३६४॥
धर्म्म ज्ञान पुण्य कीर्ति ऐश्वर्य विरक्ति । आत्म-श्रेष्ठ मध्यम याँहार यत शक्ति ॥३६५॥

---

कुतूहल पूर्वक मैं आज से अपने वक्षस्थल पर नित्य धारण करूँगा ॥ ३४८ ॥ मैंने अपने वक्षस्थल में लक्ष्मी सहित स्थान दे दिया जिसे वेद में श्रीवत्सलाञ्छन नाम से कहेंगे ॥ ३४९ ॥ विष्णु के वाक्यों को सुनकर तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह से परे विनय व्यवहार को देखकर महर्षि भृगु चमत्कार को प्राप्त हुए और लज्जित होकर फिर मस्तक नहीं उठाया ॥ ३५०-३५१ ॥ जो कुछ किया वह तो उनका कर्म नहीं था यह तो केवल आवेश का कर्म था यही निश्चयपूर्वक जानो ॥ ३५२ ॥ भृगुजी बाह्य ज्ञान प्राप्त होने पर प्रीति व श्रद्धा को देखकर भक्तिरस में पूर्ण होकर नाचने लगे ॥ ३५३ ॥ ब्रह्मा के पुत्र हास्य, कम्प, प्रस्वेद, मूर्च्छा, पुलक, हुंकार आदि भक्तिरस के लक्षणों से मग्न हो गये ॥ ३५४ ॥ तथा सब के ईश्वर कृष्ण हैं व सब के जीवन हैं यह सत्य है, भृगुजी इस प्रकार कहकर नाचने लगे ॥ ३५५ ॥ भृगुजी कृष्ण का शान्त विनय व्यवहार रूप विप्र भक्ति को देखकर जो और किसी में सम्भव नहीं है उस भक्ति से जड़ हो गये तथा मुख से वचन नहीं आते थे नेत्रों से केवल आनन्दाश्रु धारा बह रही थी ॥ ३५६-३५७ ॥ भृगुजी सब प्रकार से ईश्वर के चरणों में देह को समर्पण करके फिर सभा में पहुँचे ॥३५८॥ भृगुजी को देखकर सब लोग अपार आनन्द को प्राप्त हुए और बोले भृगुजी कहो किसका कैसा व्यवहार देखा ॥ ३५९ ॥ तुम जो कहोगे वह सब को मान्य व प्रमाण होगा तब पीछे से भगवान् भृगु ने सब कह सुनाया ॥३६०॥ ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर तीनों के सब व्यवहार को कहकर पीछे से यह सार रूप कहा कि ॥ ३६१ ॥ श्रीवैकुण्ठनाथ नारायण ही सब से श्रेष्ठ हैं यह सत्य है २, बस यही वचन कहे ॥ ३६२ ॥ कृष्णचन्द्र ही सब के ईश्वर हैं व सब के पिता हैं और ब्रह्मा व शिव भी जिनके अधिकार को मानते हैं॥३६३॥सब के कर्त्ता-हर्त्ता तथा पालक नारायण हैं

सकल कृष्णेर, इहा जानिह निश्चय । अतएव गाओ भज' कृष्णेर विजय" ।।२६६।।
सेइ प्रभु श्रीकृष्ण-चैतन्य भगवान् । कीर्तन विहारे हइयाछेन विद्यमान ।।२६७।।
भृगुर वचन शुनि सब ऋषिगण । निःसन्देह हैला-'सर्वश्रेष्ठ नारायण ।।२६८।।
भृगुरे पूजिया बोले सब ऋषिगण । "संशय छिण्डिया तुमि भाल कैला मन" ।२६९।।
कृष्णभक्ति सभे लइलेन दृढ-मने । भक्तरूपे ब्रह्मा-शिवो पूजेन यतने ।।२७०।।
सिद्ध वैष्णवेर येन विषम व्यभार । कहिलाङ् इहा बुझिबारे शक्तिकार ।।२७१।।
परीक्षिते कर्म किना छिल किछु आर । तार लागि करिलेन चरण प्रहार ।।२७२।।
सृष्टि कर्ता भृगुदेव याँर अनुग्रहे । कि साहसे चरण दिलेन से हृदये ।।२७३।।
अबोध अगम्य अधिकारीर व्यभार । इहा बइ सिद्धान्त ना देखि किछु आर ।।२७४।।
मूले कृष्ण प्रवेशिया भृगु हृदयेत । कराइला, भक्तिर महिमा प्रकाशिते ।।२७५।।
ज्ञान पूर्व भृगुर ए कर्म कभू नय । कृष्ण बाढ़ायेन अधिकारी-भक्त-जय ।।२७६।।
विरञ्चि शङ्कर बाढ़ाइते कृष्ण जय । भृगुरे हइला क्रुद्ध देखाइया भय ।।२७७।।
भक्त-सब येन गाय नित्य कृष्ण जय । कृष्ण बाढ़ायेन भक्तजय अतिशय ।।२७८।।
अधिकारि वैष्णवेर ना बुझि व्यभार । ये जन निन्दये, तार-नाहिक निस्तार ।।२७९।।

अतः निःसन्देह उन्हीं के ही चरणों को भजो ।। २६४ ।। धर्म, ज्ञान, पुण्य, कीर्ति, ऐश्वर्य, विरक्ति आत्मा की श्रेष्ठता व मध्यम रूप जिसमें जितनी शक्ति है, वह सब कृष्ण की हैं ऐसा निश्चय जानो, अतएव कृष्ण के ही चरित्रों का गान व भजन करो ।।२६५-२६६।। वे ही श्रीकृष्ण प्रभु निश्चय भगवान् चैतन्यरूप से विहार करने के लिये विद्यमान हुए हैं ।। २६७ ।। भृगु के वचन सुनकर सब ऋषिगण सन्देह रहित हो गये और निश्चित समझ लिया कि नारायण ही सब में श्रेष्ठ हैं ।। २६८ ।। भृगु का पूजन करके सब ऋषियों ने कहा तुमने हमारा संशय दूर करके स्वच्छ मन कर दिया ।। २६९ ।। सब मुनियों ने दृढ़ मन से कृष्ण-भक्ति को ग्रहण कर लिया व यत्नपूर्वक भक्तरूप में ब्रह्मा व शिव को भी पूजने लगे ।। २७० ।। सिद्ध वैष्णवों के विषम व्यवहार का वर्णन किया है इसे समझने की और किस में सामर्थ्य है ? ।।२७१।। क्या परीक्षा करने के लिये कुछ कर्म समझ में नहीं आया तभी उसके लिये चरण प्रहार किया था ।। २७२ ।। भृगुदेव ने सृष्टि-कर्त्ता के अनुग्रह से ही ऐसा किया था और किसका साहस है जो उन ( भगवान् ) के हृदय पर चरण प्रहार करे ।।२७३।। अधिकारियों के व्यवहार बुद्धि से परे व अगम्य होते हैं-इसके अतिरिक्त और कुछ भी सिद्धान्त समझ में नहीं आता ।। २७४ ।। वास्तव में कृष्णचन्द्र ने ही भृगु के हृदय में प्रवेश करके भक्ति की महिमा प्रकाश करने के लिये ही ऐसा कराया था ।। २७५ ।। यह कर्म भृगु का ज्ञानपूर्वक कभी नहीं है, केवल कृष्ण ने ही अधिकारी भक्त की जय को बढ़ावा दिया था ।। २७६ ।। तथा ब्रह्मा व शिव भी कृष्ण की जय बढ़ाने के निमित्त भृगु को भय दिखाते हुए क्रोधित हुए थे ।। २७७ ।। जिस प्रकार भक्त नित्य कृष्ण की जय जय कार गाते हैं, वैसे ही कृष्णचन्द्र भी अतिशय रूप से भक्तों की जय को बढ़ाते हैं ।। २७८ ।। अतः अधिकारी वैष्णवों के व्यवहार को बिना समझे जो निन्दा करते हैं उनका निस्तार नहीं होता ।। २७९ ।।

अधम जनेर ये आचार येन धर्म । अधिकारि वैष्णवेओ करे सेइ कर्म ॥३८०॥
कृष्ण-कृपाये से इहा जानिवारे पारे । ए सब सङ्कटे केहो मरे केहो तरे' ॥३८१॥
सबे इथे देखि एक महा प्रतिकार । सभारे करिब स्तुति विनय-व्यभार ॥३८२॥
अज्ञ हइ लइबेक कृष्णेर शरण । सावधाने शुनिबेक महान्त बचन ॥३८३॥
तबे कृष्ण तारे देन हेन दिव्य-मति । सर्वत्र निस्तार पाय, ना ठेकये कति ॥३८४॥
भक्ति करि ये शुने चैतन्य-अवतार । सेइ सब जन सुखे पाइब निस्तार ॥३८५॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावन दास तछु पदयुगे गान ॥३८६॥

इति श्रीचैतन्यभागवते अन्त्यखण्डे अद्वैतमहिमादिवर्णनं नाम
दशमोऽध्यायः ॥१०॥

## एकादशोऽध्यायः

जय जय गौरचन्द्र श्रीवत्स लाञ्छन । जय शचीगर्भरत्न धर्म सनातन ॥१॥
जय सङ्कीर्तन प्रिय श्रीगौरगोपाल । जय शिष्ट जन प्रिय जय दुष्ट काल ॥२॥
भक्तगोष्ठी सहित गौराङ्ग जय जय । शुनिले चैतन्य कथा भक्ति लभ्य हय ॥३॥
हेन मते वैकुण्ठ नायक न्यासिरूपे । विहरेन भक्तगोष्ठी लइया कौतुके ॥४॥
एक दिन वसिया आछेन प्रभु सुखे । हेन काले श्रीअद्वैत आइला सम्मुखे ॥५॥
वसिलेन अद्वैत प्रभुरे नमस्करि । हासि अद्वैतेरे जिज्ञासेन गौर हरि ॥६॥
सन्तोषे बोलेन प्रभु 'कहत आचार्य । कोथा हैते आइला, करिला कोन् कार्य' ॥७॥

---

अधमजनों के जैसे आचार धर्म हैं, अधिकारी वैष्णव भी उसी प्रकार कर्म करते हैं ॥३८०॥ परन्तु इन कर्मों को कृष्ण की कृपा से ही जान पाते हैं ऐसे संकट में कोई मर जाते है तो कोई तर जाते हैं ॥ ३८१ ॥ इन सब में एक श्रेष्ठ प्रतिकार दृष्टिगोचर होता है कि सब भक्तों के चरणों में विनयपूर्वक सत्य व्यवहार से स्तुति करें ॥ ३८२ ॥ अज्ञ बन कर कृष्ण की शरण ग्रहण करे और सावधानी से महानुभावों के वचनों को सुने ॥ ३८३ ॥ तब कृष्णचन्द्र उसको ऐसी दिव्य मति देते हैं, जिससे सब जगह उसका निस्तार होता है तथा कहीं भी ठोकर नहीं खाता ॥ ३८४ ॥ जो भक्ति करके श्रीचैतन्यचन्द्र अवतार की कथा सुनेंगे वे सब लोग सुखपूर्वक निस्तार को प्राप्त होंगे ॥ ३८५ ॥ श्रीवृन्दावनदास( ग्रन्थकार ) श्रीकृष्णचैतन्य एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र को जानकर हृदय में धारण करके उनके चरण युगलों की महिमा गान करता है ॥३८६॥

सुन्दर श्रीवत्स चिन्हधारी गौरचन्द्र की जय हो, धर्म सनातन व शची गर्भ सागरोत्पन्न रत्न रूप प्रभु की जय हो ॥ १ ॥ संकीर्तन प्रिय श्रीगौरगोपाल प्रभु की जय हो, साधुजनों के प्यारे व दुष्टों के कालरूप प्रभु की जय हो ॥ २ ॥ भक्तगोष्ठी सहित श्रीगौराङ्ग प्रभु की जय हो श्रीचैतन्य कथा सुनने से भक्ति लाभ होती है ॥ ३ ॥ इस प्रकार न्यासीरूप में वैकुण्ठनायक (गौर) भक्तमण्डली को लेकर कौतुक से विहार करते हैं ॥४॥ एक दिन श्रीप्रभु गौरचन्द्र प्रेमसुख से बैठे हुए थे, ऐसे समय में श्रीअद्वैत प्रभु सामने आये ॥ ५ ॥ तथा श्रीअद्वैत श्रीगौरचन्द्र को नमस्कार करके बैठ गये तब हँसकर श्रीगौरहरि ने श्रीअद्वैत से पूछा ॥ ६ ॥ सन्तुष्ट

अद्वैत बोलेन 'देखिलाङ जगन्नाथ । तबे आइलाङ एइ तोमार साक्षात्' ॥८॥
प्रभु बोले "जगन्नाथ श्रीमुख देखिया । तबे आर कि करिला कह देखि ताहा" ॥९॥
अद्वैत बोलेन 'आगे देखि जगन्नाथ । तबे करिलाङ प्रदक्षिण पाँच सात' ॥१०॥
'प्रदक्षिण' शुनि प्रभु हासिते लागिला । हासि बोले प्रभु 'तुमि हारिला हारिला' ॥११॥
आचार्य बोलेन "कि सामग्री हारिबारे । लक्षण देखाच, तबे जिनिह आमारे" ॥१२॥
प्रभु बोले "सामग्री शुनह हारिबार । तुमि ये करिला प्रदक्षिण व्यवहार ॥१३॥
यत-क्षण तुमि पृष्ठ दिगेरे चलिला । तत-क्षण तोमार ये दर्शन नहिला ॥१४॥
आमि यत-क्षण धरि देखि जगन्नाथ । आमार लोचन आर ना जाय कोथात ॥१५॥
कि दक्षिणे किबा बामे किबा प्रदक्षिणे । आर नाहि देखों जगन्नाथ-मुख बिने" ॥१६॥
करजोड़ करि बोले आचार्य गोसाञि । ए-रूपे सकल हारि तोमार से ठाञि ॥१७॥
ए कथार अधिकारी आर त्रिभुवने । सत्य कहिलाङ एइ नाहि तोमा' बिने ॥१८॥
तुमि से इहार प्रभु एक अधिकारी । ए कथाय तोमारे से मात्र आमि हारि ॥१९॥
शुनिञा हासेन सर्व वैष्णवमण्डल । 'हरि' बलि उठिल मङ्गल कोलाहल ॥२०॥
एइमत प्रभुर विचित्र सर्वकथा । अद्वैतेर अति प्रीत करेन सर्वथा ॥२१॥
एक दिन गदाधरदेव प्रभु स्थाने । कहिलेन पूर्व मन्त्र दीक्षार कारणे ॥२२॥
"इष्टमन्त्र आमि ये कहिलूँ कारो प्रति । सेइ हैते आमार ना स्फुरे भाल मति ॥२३॥
सेइ मन्त्र तुमि मोरे कह पुनर्बार । तबे मन-प्रसन्नता हइब आमार ॥२४॥

होकर श्रीप्रभु ने पूछा "श्री आचार्य कहो कहाँ से आये हो क्या काम कर आये ? ॥ ७ ॥ सुनकर श्रीअद्वैत कहा जगन्नाथ के दर्शन करके पीछे अब तुम्हारा साक्षात करने को आया हूँ ॥ ८ ॥ श्रीप्रभु ने पुनः पूछा कि जगन्नाथ का श्रीमुख दर्शन करने उपरान्त क्या किया ? सो कहो ॥ ९ ॥ श्रीअद्वैतजी ने कहा पहिले जगन्नाथ दर्शन किये तब पीछे पाँच-सात प्रदक्षिणा की ॥ १० ॥ प्रदक्षिणा की सुनकर श्रीप्रभु गौरचन्द्र हँसने लगे तथा हँसते २ बोले "तुम हार गये हार गये" ॥ ११ ॥ श्रीअद्वैताचार्य ने कहा "हारने की क्या बात है ? लक्षण दिखाओ तब मुझे जीत लेना" ॥१२॥ श्रीप्रभु ने कहा हारने की बात सुनो ! तुमने जो प्रदक्षिणा का उपयोग किया ॥ १३ ॥ उसमें जितने तुम पीछे को चले उतने समय तक तुम्हें दर्शन नहीं हुए ॥ १४ ॥ मैं जितने समय तक जगन्नाथ के दर्शन करता हूँ उस समय में मेरे नेत्र अन्यत्र नहीं देखते ॥ १५ ॥ तथा क्या दाईं और क्या बाईं और क्या प्रदक्षिणा में मैं जगन्नाथ के मुख देखे बिना नहीं रहता ॥ १६ ॥ श्रीअद्वैताचार्य ने हाथ जोड़कर कहा प्रभो ! इस प्रकार आप से सब हार जाँयगे ॥ १७ ॥ इस बात का अधिकारी तो तीनों लोकों में आपके अतिरिक्त कोई नहीं है, मैं यह सत्य २ कहता हूँ ॥ १८ ॥ प्रभो इसके अधिकारी तो एक मात्र आप ही हैं, केवल इस बात में मैं आप से हार गया ॥१९॥ सुनकर सब वैष्णव हँस पडे और हरि २ ध्वनि के साथ मङ्गल कोलाहल हो उठा है॥२०॥ इस प्रकार प्रभु को सभी कथा विचित्र हैं आप अद्वैत के प्रति सर्वथा अत्यन्त प्रीति करते थे ॥ २१ ॥ एक दिन गदाधर प्रभु ने श्रीगौरचन्द्र से पहिली मन्त्र दीक्षा का कारण कहा ॥२२॥ मैंने अन्य किसी के प्रति जो इष्ट मन्त्र कह दिया है उसी कारण से मुझ में

प्रभु बोले "तोमार ये उपदेष्टा आछे। सावधान-तथा अपराध हय पाछे ॥२५॥
मंत्रेर कि दाय प्राणो आमार तोमार। उपदेष्टा थाकिते ना हय व्यवहार" ॥२६॥
गदाधर बोले "तिंहो ना आछेन एथा। तान परिवर्तेर तुमि कराह सर्वथा" ॥२७॥
प्रभु बोले "तोमार ये गुरु विद्यानिधि। अनायासे ताहाने आनितेछेन विधि" ॥२८॥
सर्वज्ञेर चूड़ामणि-जानेन सकल। "गदाधर विद्यानिधि आइला उत्कल ॥२९॥
एथाइ देखिवा दिन-दशेर भितरे। आइसेन केवल आमारे देखिवारे ॥३०॥
निरवधि विद्यानिधि हय मोर मने। बूझिलाङ तुमि आकर्षिया आन ताने" ॥३१॥
एइमत प्रभु प्रिय-गदाधर-सङ्गे। तान मुखे भागवत शुनि थाके रङ्गे ॥३२॥
गदाधर पढ़ेन सम्मुखे भागवत। शुनिञा प्रकाशे प्रभु कृष्णभाव यत ॥३३॥
प्रह्लाद चरित्र आर ध्रुवेर चरित्र। शतावृत्ति करिया शुनेन सावहित ॥३४॥
आर कार्ये प्रभुर नाहिक अवसर। नाम गुण बोलेन शुनेन निरन्तर ॥३५॥
भागवत-पाठ गदाधरेर विषय। दामोदर स्वरूपेर कीर्तन विषय ॥३६॥
एकेश्वर दामोदर स्वरूप गुण गाय। विह्वल हइया नाचे श्रीगौराङ्ग राय ॥३७॥
अश्रु, कम्प, हास्य, मूर्च्छा, पुलक, हुङ्कार। यत किछु आछे प्रेम भक्तिर विकार ॥३८॥
मूर्तिमन्त सभे थाके ईश्वरेर स्थाने। नाचेन चैतन्य चन्द्र इँहा-सभा'-सने ॥३९॥
दामोदर स्वरूपेर उच्चसङ्कीर्तन। शुनिले ना थाके वाह्य नाचे सेइक्षण ॥४०॥

उसमें बुद्धि स्फुरन नहीं होता है ॥ २३ ॥ अतः उस मन्त्र को आप मुझ से पुनर्वार कहो तब ही मेरे मनमें प्रसन्नता होगी ॥ २४ ॥ श्रीप्रभु ने कहा तुम्हारे उपदेष्टा गुरु तो हैं देखो सावधान रहना ऐसा करने से पीछे अपराध होगा ॥ २५ ॥ मन्त्र की तो क्या बात है मेरे प्राण भी तुम्हारे ही हैं, परन्तु उपदेष्टा के रहने पर ऐसा व्यवहार नहीं होता है॥२६॥श्रीगदाधरजी ने कहा वे भी यहाँ नहीं हैं, अतः उनके बदले आप ही सर्वथा उपदेश करो ॥२७॥ श्रीप्रभु ने कहा तुम्हारे जो पुण्डरीक विद्यानिधि गुरु हैं उनको विधि (भावी) अनायास ही ला रही है ॥ २८ ॥ सर्वज्ञों में शिरोमणि सब जानते थे अतः बोले हे गदाधर ! विद्यानिधिजी उत्कल देश में आ गये हैं ॥ २९ ॥ उनको दश दिन के भीतर यहीं देखोगे केवल मेरे दर्शन के लिये ही आ रहे हैं ॥३०॥ मेरे मन में निरन्तर विद्यानिधि से मिलने की इच्छा होती थी इसलिये ज्ञान पड़ता है तुमने उन्हें आकर्षण किया है॥३१॥इस प्रकार श्रीप्रभु प्रिय गदाधर के साथ उनके मुख से भागवत सुनते हुए आनन्दपूर्वक रहते थे ॥ ३२ ॥ श्रीगदाधरजी भागवत पाठ करते थे तथा श्रीप्रभु सुनकर उसमें जितना कृष्ण-भाव का रस होता उसे कहते जाते थे ॥ ३३ ॥ श्रीप्रह्लाद चरित्र व श्रीध्रुव चरित्र को सौ-सौ बार आवृत्ति कराकर एकाग्र मन से सुनते थे ॥ ३४ ॥ तथा अन्य कार्य के लिये श्रीप्रभु को अवसर ही नहीं था निरन्तर ही कृष्ण नाम व यश का कहते व सुनते थे ॥ ३५ ॥ श्रीगदाधरजी का विषय भागवत पाठ करना था तथा श्रीस्वरूप दामोदर का विषय कीर्तन करना था ॥ ३६ ॥ अकेले श्रीदामोदरस्वरूपजी गुण-गान करते तथा श्रीगौराङ्ग प्रभु विह्वल होकर नाचते थे ॥ ३७ ॥ अश्रु, कम्प, हास्य, मूर्च्छा, पुलक, हुङ्कार आदि जो कुछ प्रेम-भक्ति के विकार होते हैं, वे सब मूर्तिमन्त होकर श्रीगौरचन्द्र के शरीर में रहते थे मानो प्रभु सबके साथ ही नाचते थे ॥३८-३९॥

सन्यासि-पार्षद् यत ईश्वरेर हय । दामोदरस्वरूप-समान केहो नय ।।४१।।
यत प्रीत ईश्वरेर पुरी गोसाञिरे । दामोदरस्वरूपेरे तत प्रीत करे ।।४२।।
दामोदरस्वरूप-सङ्गीत रसमय । याँर ध्वनि श्रवणे प्रभुर नृत्य हय ।।४३।।
अलक्षित रूप-केहो चिनिते ना पारे । कापटिर रूप येन बुलेन नगरे ।।४४।।
कीर्तन करिते येन तुम्बुरु नारद । एका प्रभु नाचायेन-कि आर सम्पद ।।४५।।
सन्यासीर मध्ये ईश्वरेर प्रिय पात्र । आर नाहि, एक पुरी गोसञि से मात्र ।।४६।।
दामोदरस्वरूप परमानन्द पुरी । सन्यासि-पार्षदे एइ दुइ अधिकारी ।४७।।
निरवधि निकटे थाकेन दुइजन । प्रभुर सन्यासे करे दण्डेर ग्रहण ।।४८।।
पुरी ध्यान पर, दामोदरेर कीर्तन । न्यासि-रूपे न्यासि-देहे बाहु दुइजन ।।४९।।
अहर्निश गौरचन्द्र संकीर्तन रङ्गे । विहरेन दामोदर स्वरूपेर सङ्गे ।।५०।।
कि शयने कि भोजने किवा पर्य्यटने । दामोदर प्रभु ना छाड़ेन कोनक्षणे ।।५१।।
पूर्वाश्रमे पुरुषोत्तमाचार्य नाम तान । प्रिय सखा पुण्डरीक विद्यानिधि-नाम ।।५२।।
पथे चलितेओ प्रभु दामोदर-गाने । नाचेन विह्वल हैया, पथ नाहि जाने ।।५३।।
एकेश्वर दामोदरस्वरूप-संहति । प्रभु से आनन्दे पड़े, ना जानेन कति ।।५४।।
किबा जल, किवा स्थल, किवा वन डाल । किछु ना जानेन प्रभु, गर्जेन विशाल ।।५५।।
एकेश्वर दामोदर कीर्तन करेन । प्रभुरेओ वने डाले पड़िते धरेन ।।५६।।

---

श्रीदामोदरस्वरूप का उच्च संकीर्तन सुनकर वाह्य ज्ञान नहीं रहता था और उसी क्षण नाचने लगते थे।।४०।। श्रीमहाप्रभु के और जितने सन्यासी पार्षद थे उनमें श्रीदामोदरस्वरूप के समान कोई नहीं था।। ४१ ।। ईश्वर श्रीगौरचन्द्र की जितनी प्रीति परमानन्दपुरी के ऊपर थी उतनी ही श्रीदामोदरस्वरूप पर भी थी ।।४२।। श्रीदामोदरस्वरूप संगीत की रसमय मूर्ति थे जिनकी ध्वनि के सुनते ही श्री प्रभु का नृत्य होने लगता था ।।४३।।तथा अलक्षित रूप होने से कोई नहीं पहिचानता था वे कपट वेश करके नगर में भ्रमण करते थे।।४४।। तुम्बुरु अथवा नारदजी की तरह कीर्तन करते थे तथा अकेले ही प्रभु को नचाते थे,उससे उनको सम्पत्ति क्या चाहिये था ? ।।४५।। सन्यासियों में श्रीगौरचन्द्र का प्रिय पात्र दूसरा नहीं था, एक मात्र पुरी गुसाँई थे।।४६।। श्रीदामोदरस्वरूप व श्रीपरमानन्दपुरी केवल यही दो सन्यासी पार्षदों में अधिकारी भक्त थे ।। ४७ ।। दोनों जन निरन्तर समीप में रहते थे प्रभु के सन्यास लेने पर उन दोनों ने उनका दण्ड ग्रहण किया था।।४८।।श्रीपुरी ध्यान परायण थे तथा श्रीदामोदर प्रसिद्ध कीर्तनियाँ थे सन्यासी रूप में महाप्रभु के सन्यासी-देह की दोनों जन भुजा रूप ही थे ।। ४६ ।। श्रीप्रभु गौरचन्द्र दिन रात संकीर्तन रंग से श्रीदामोदरस्वरूप के साथ विहार करते थे।।५०।।क्या शयन,क्या भोजन,क्या पर्यटन किसी क्षण में श्रीदामोदर श्रीप्रभु को छोड़ते नहीं थे।।५१।। गृहस्थाश्रम में उनका नाम पुरुषोत्तम आचार्य था तथा वे पुण्डरीक विद्यानिधि के प्रिय सखा थे मार्ग चलने में भी श्रीदामोदर के गान पर प्रभु विह्वल होकर नाचने लगते और मार्ग का भान नहीं रहता था।।५२-५३।। अकेले श्रीदामोदरस्वरूप के साथ श्रीमहाप्रभु ऐसे आनन्द मग्न हो जाते थे कि फिर किधर जाना है या नहीं इसका ध्यान नहीं रहता था ।। ५४ ।। चाहे जल हो, थल हो अथवा वन व शाखा हो उन्हें कुछ भी ज्ञान

दामोदरस्वरूपेर भाग्येर ये सीमा । दामोदरस्वरूप से ताहार उपमा ।।५७।।
एक दिन महाप्रभु आविष्ट हइया । पड़िला कूपेर माझे आछाड़ खाइया ।।५८।।
देखिया अद्वैत-आदि सम्मोह पाइया । क्रन्दन करेन सभे शिरे हाथ दिया ।।५९।।
किछु ना जानेन प्रभु प्रेम-भक्ति रसे । बालकेर प्राय येन कूपे पड़ि भासे ।।६०।।
सेइक्षणे कूप हैल नवनीत मय । प्रभुर श्रीअङ्गे किछु क्षत नाहि हय ।।६१।।
ए कोन् अद्भुत याँर भक्तिर प्रभावे । वैष्णव नाचिते अङ्गे कन्टक ना लागे ।।६२।।
तबे अद्वैतादि मेलि सब भक्त गणे । तुलिलेन प्रभुरे धरिया कथोक्षणे ।।६३।।
पड़िला ये कूपे प्रभु ताहा नाहि जाने । 'कि बोल कि कथा' प्रभु जिज्ञासे आपने ।।६४।।
बाह्य ना जानेन प्रभु प्रेमभक्ति रसे । असर्वज्ञ प्राय प्रभु सभारे जिज्ञासे ।।६५।।
श्रीमुखेर शुनि अति अमृत-वचन । आनन्दे भासेन अद्वैतादि भक्तगण ।।६६।।
एइ मत भक्तिरसे ईश्वर विहरे । विद्यानिधि आइलेन जानिला अन्तरे ।।६७।।
चित्ते मात्र करिते ईश्वर सेइक्षणे । विद्यानिधि आसिया दिलेन दरशने ।।६८।।
विद्यानिधि देखि प्रभु हासिते लागिला । 'बाप आइला बाप आइला' बलिते लागिला।।६९।।
प्रेमनिधि प्रेमे हैया आनन्दे विह्वल । पूर्ण हैल हृदयेर सकल मङ्गल ।।७०।।
श्रीभक्तवत्सल गौरचन्द्र नारायण । प्रेमनिधि वक्षे करि करेन क्रन्दन ।।७१।।
सकल वैष्णववृन्द कान्दि चारि भिते । वैकुण्ठस्वरूप सुख मिलिला साक्षाते ।।७२।।

---

नहीं रहता-केवल गर्जते ही खूब जोर में थे ।। ५५ ।। श्रीदामोदर अकेले कीर्तन करते तथा श्रीप्रभु को वन व शाखाओं में गिरते तो पकड़ लेते थे ।। ५६ ।। श्रीदामोदरस्वरूप के भाग्य की यह सीमा है उनकी उपमा वही दामोदरस्वरूप ही हैं ।। ५७ ।। एक दिन महाप्रभु भावाविष्ट होकर पछाड़ खाकर एक कुए में गिर पड़े ।। ५८ ।। अद्वैत आदि भक्त देखते ही मोह को प्राप्त होकर मस्तक पर हाथ मारकर सब रोने लगे ।। ५९ ।। श्रीप्रभु को प्रेमभक्ति रस से कुछ ज्ञान नहीं पड़ा तथा कुए में गिरकर बालक की तरह भासने लगे ।। ६० ।। कूआ तत्क्षण लौनी (घी) के तुल्य कोमल हो गया अतः श्रीप्रभु के श्रीअङ्ग में कुछ भी क्षत (घाव) नहीं हुआ ।। ६१ ।। यह कौन अद्भुत बात है ? देखो जिसकी भक्ति के प्रभाव से वैष्णवों के नाचते समय अङ्ग में काँटे नहीं लगते ।। ६२ ।। तब श्रीअद्वैत आदि सब भक्तवृन्दों ने मिलकर कुछ क्षण में श्रीप्रभु को पकड़ कर उठा लिया ।। ६३ ।। कुए में गिर पड़े यह श्रीप्रभु को उसका ज्ञान नहीं है अतः आप पूछते थे कि क्या बात है-बताओ ? ।। ६४ ।। श्रीप्रभु को प्रेम-भक्ति रस में बाह्य ज्ञान नहीं रहता और अज्ञान की भाँति सबसे पूछते ही थे ।।६५।। श्रीमुख के अत्यन्त अमृतमय वचन सुनकर श्रीअद्वैतादि भक्तवृन्द आनन्द सागर में डूब जाते थे ।।६६।। श्रीप्रभु इस प्रकार भक्तिरस में विहार कर रहे थे तथा विद्यानिधि आ गये यह मन में जान गये ।।६७।। श्रीमहाप्रभु के मन में विचार मात्र करते ही उसी क्षण श्रीविद्यानिधि ने आकर दर्शन दिये।।६८।। श्रीप्रभु विद्यानिधि को देखकर हँसे और "बाप आये २" कहने लगे ।। ६९ ।। श्रीप्रेमनिधि ( विद्यानिधि ) भी प्रेमानन्द में विह्वल हो रहे थे तथा हृदय के सब मङ्गल पूर्ण हो गये ।। ७० ।। श्रीभक्तवत्सल नारायण

ईश्वर सहिते यत आछे भक्तगण । प्रेमनिधि प्रति प्रेम बाढ़े अनुक्षण ॥७३॥
दामोदरस्वरूप ताहान पूर्व सखा । चैतन्येर अग्रे दुइजने हैल देखा ॥७४॥
दुइ जने चाहेन दुँहार पदधूलि । दुँहे धराधरि ठेलाठेलि फेलाफेलि ॥७५॥
केहो कारे ना पारेन, दुँहे महाबली । करायेन हासेन गौराङ्ग कुतूहली ॥७६॥
तबे बाह्य पाइ प्रभु विद्यानिधि-प्रति । 'कथोदिन नीलाचले तुमि कर स्थिति' । ७७॥
शुनि प्रेमनिधि महासन्तोष हइला । भाग्य हेन मानि प्रभु-निकटे रहिला ॥७८॥
गदाधर देवो इष्ट मन्त्र पुनर्बार । प्रेमनिधि स्थाने प्रेमे कैलेन स्वीकार ॥७९॥
आर कि कहिब प्रेमनिधिर महिमा । याँर शिष्य गदाधर एइ प्रेम सीमा ॥८०॥
याँर कीर्ति बाखाने अद्वैत श्रीनिवास । याँर कीर्ति बोलेन मुरारि हरिदास ॥८१॥
हेन नाहि वैष्णव ये ताने ना बाखाने । पुण्डरीको सर्वभक्त काय-वाक्य-मने ॥८२॥
अहंकार तान देहे नाहि तिलमात्र । ना बुझि कि अद्भुत चैतन्य कृपापात्र ॥८३॥
ये रूप कृष्णेर प्रियपात्र विद्यानिधि । गदाधर-श्रीमुखेर कथा किछु लिखि ॥८४॥
विद्यानिधि राखि प्रभु आपन निकटे । वासा दिला यमेश्वरे-समुद्रेर तटे ॥८५॥
नीलाचले रहिया देखेन जगन्नाथ । दामोदरस्वरूपेर बड़ प्रेम पात्र ॥८६॥
दुइ जने जगन्नाथ देखे एक सङ्गे । अन्योन्ये थाकेन कृष्णरस कथा रङ्गे ॥८७॥

---

गौरचन्द्र ने प्रेमनिधि को वक्षस्थल से लगाकर क्रन्दन किया ॥ ७१ ॥ सब वैष्णव भी चारों ओर रोने लगे–वैकुण्ठ का सुख साक्षात् मिल रहा था ॥ ७२ ॥ श्रीमहाप्रभु के साथ जितने भक्तवृन्द थे उन्हें प्रेमनिधि के प्रति अनुक्षण प्रेम बढ़ रहा था ॥ ७३ ॥ दामोदरस्वरूप उनके पहिले के सखा थे श्रीचैतन्यदेव के आगे ही दोनों की भेंट हुई थी ॥ ७४ ॥ दोनों ही एक दूसरे की पदधूलि लेना चाहते थे इस कारण दोनों में पकड़ा-पकड़ि ठेलाठेलि फेंकाफेंकि हुई ॥ ७५ ॥ कोई किसी को पकड़ नहीं पाता कारण दोनों ही बड़े वली थे, कुतूहली गौराङ्ग ऐसा कुतूहल कराकर हँस रहे थे ॥ ७६ ॥ उसके पीछे श्रीप्रभु गौरचन्द्र ने बाह्य ज्ञान पाकर श्रीविद्यानिधि से कहा कि तुम कुछ दिन नीलाचल वास करो ॥ ७७ ॥ श्रीप्रेमनिधि सुनकर बड़े सन्तुष्ट हुए और अहोभाग्य मानकर श्रीप्रभु गौरचन्द्र के निकट रहने लगे ॥ ७८ ॥ श्रीगदाधरदेव ने श्रीप्रेमनिधि से पुनर्वार इष्ट मन्त्र को प्रेम से स्वीकार किया ॥ ७९ ॥ प्रेमनिधि की महिमा और क्या कहें ? देखो गदाधर जिनके शिष्य हैं, यही प्रेम की सीमा है ॥ ८० ॥ जिसकी कीर्ति की श्रीअद्वैत व श्रीनिवास व्याख्या करते थे तथा श्रीमुरारी गुप्त व श्रीहरिदास जिनकी कीर्ति का वर्णन करते थे ॥ ८१ ॥ ऐसा कोई वैष्णव नहीं था जो उनकी प्रशंसा न करता हो और पुण्डरीक विद्यानिधि भी शरीर-वाणी मन से सब भक्तों की सेवा करते थे ॥ ८२ ॥ तथा उनके देह में तिलमात्र भी अहंकार नहीं था और जान नहीं पड़ते थे कि श्रीचैतन्यदेव के कितने विलक्षण कृपापात्र थे ॥ ८३ ॥ श्रीविद्यानिधिजी श्रीगौरकृष्ण के प्रिय पात्र थे, यह कथा श्रीगदाधरजी के मुख से जो सुनी है उसमें से कुछ लिखता हूँ ॥ ८४ ॥ श्रीगौर प्रभु ने श्रीविद्यानिधि को अपने पास समुद्र के तट पर यमेश्वर नामक स्थान में ठहरने को स्थान दिया॥८५॥ विद्यानिधि नीलाचल में रहकर जगन्नाथ-दर्शन करते थे आप दामोदरस्वरूप के बड़े प्रेमपात्र थे॥८६॥दोनों एक साथ जगन्नाथ-दर्शन करते और

यात्रा आसि वाजिल 'ओढन-षष्ठी' नाम । नया-वस्त्र परे जगन्नाथ भगवान् ॥८८॥
से दिन माणडुया-वस्त्र परेन ईश्वरे । तान येइ इच्छा सेइ मत दासे करे ॥८९॥
श्रीगौरसुन्दरो लइ सर्व भक्तगण । आइला देखिते यात्रा श्रीवस्त्र-ओढन ॥९०॥
मृदङ्ग, मुहरि, शङ्ख, दुन्दुभि, काहाल । ढाक, दगड़, काढा, बाजये विशाल ॥९१॥
सेइ दिने नाना वस्त्र परेन अनन्त । षष्ठी हैते लागि रहे मकर-पर्यन्त ॥९२॥
वस्त्र लागि हइते लागिल रात्रि शेषे । भक्तगोष्ठीमह प्रभु देखि प्रेमे भासे ॥९३॥
आपनेइ उपासक, उपास्य आपने । के बुझे ताहान मन, तान कृपा विने ॥९४॥
रसमय दासरूपे वसि योगासने । न्यासिरूपे भक्तियोग करे अनुक्षणे ॥९५॥
पट्ट-नेत-शुक्ल पीत नीलनाना वर्णे । दिव्य वस्त्र देन, मुक्ता रचित सुवर्णे ॥९६॥
वस्त्र लागि हैल देन पुष्प-अलङ्कार । पुष्पेर कङ्कण श्रीकिरीट पुष्पहार ॥९७॥
गन्ध पुष्प धूप दीप षोड़शोपचारे । पूजा करि भोग दिला विविध प्रकारे ॥९८॥
तबे प्रभु यात्रा देखि सब गोष्ठीसङ्गे । आइला वासाय प्रेमानन्द सुख रङ्गे ॥९९॥
वासाय विदाय दिला वैष्णवसभेरे । विरले रहिला निजानन्दे एकेश्वरे ॥१००॥
यार ये वासाय सभे करिला गमन । विद्यानिधि दामोदर सङ्गे अनुक्षण ॥१०१॥
अन्योन्ये दुहाँर यतेक मनः कथा । निष्कपटे दुँहे कहे दुँहारे सर्वथा ॥१०२॥
माणडुया- वसन ये धरिला जगन्नाथ । सन्देह जन्मिला विद्यानिधिर इहात ॥१०३॥

---

परस्पर श्रीकृष्ण प्रेमरस की कथाओं के रङ्ग में रहते थे ॥ ८७ ॥ ओढ़न षष्ठी नामक यात्रा जब आकर उपस्थित हुई उस दिन श्रीजगन्नाथ भगवान् नये वस्त्र धारण करने लगे॥ ८८ ॥ श्रीजगन्नाथ उस दिन मांड दिये हुए वस्त्र पहिनते थे अतः जैसी उनकी इच्छा हो दास भी उसी प्रकार करते हैं ॥ ८९ ॥ सब भक्तों को लेकर श्रीगौरसुन्दर श्री शीत वस्त्र ओढ़ने के दिन की यात्रा के दर्शनों को गये॥९०॥मृदङ्ग, मुँहचङ्ग, शंख, दुँदुभि, नगाड़े, काहाल, दगड़, ढप व काढ़ा नाम के विशाल बाजे बज रहे थे ॥ ९१ ॥ श्रीअनन्तदेव उस दिन अनेक प्रकार के वस्त्र पहिनते हैं, यह उत्सव अगहन शुक्ला षष्ठी से माघ पूर्णिमा पर्यन्त रहता है ॥ ९२ ॥ अतः वस्त्र पहिराते २ रात्रि शेष होने लगी सो भक्तगोष्ठी सहित श्रीप्रभु गौरचन्द्र देखकर प्रेम में डूब गये ॥९३॥ स्वयं आप ही उपास्यदेव हैं और आप ही उपासक हैं अहो आपकी कृपा के बिना आपके मन को कौन समझ सकता है ? ॥ ९४ ॥ आप ही रसमय दारुरूप से योगापीठ पर विराजते थे और आप ही सन्यासी रूप से अनुक्षण भक्तियोग का आचरण करते थे ॥ ९५ ॥ मोती व सुवर्ण से रचित रेशमी व मखमल के दिव्य वस्त्र सफेद, पीत व नील आदि नाना वर्ण के पहिन रहे थे ॥ ९६ ॥ वस्त्र संलग्न होने पर फूलों के अलंकार कंकण किरीट, मुकुट व पुष्पहार पहिराये ॥ ९७ ॥ तथा गन्ध, फूल, धूप, दीप आदि षोड़शोपचार से पूजा करके विविध प्रकार के भोग दिये गये ॥ ९८ ॥ तब श्रीप्रभु सब मण्डली सहित यात्रा दर्शन करके प्रेमानन्द सुख-रङ्ग से निवास स्थान को आये ॥ ९९ ॥ श्रीप्रभु गौरचन्द्र ने सब वैष्णवों को अपने २ स्थान के लिये बिदा दी और आप एकान्त में अपने आनन्द में रहे ॥ ॥ १०० ॥ अपने २ निवास स्थान को सब ने गमन किया तथा दामोदरस्वरूप व विद्यानिधि तो प्रत्येक क्षण सग ही रहते थे १०१ दोनों को जितनी मन की

जिज्ञासिला दामोदर स्वरूपेर स्थान "मराडेर कापड़ ईश्वरेरे देन केने ॥१०४॥
ए देशे तश्रुति स्मृति सकल प्रचुरे । तबे केने बिना धौत मराड़ वस्त्र परे ?" ॥१०५॥
दामोदर स्वरूप कहेन "शुन कथा । देशा चारे इथे दोष ना लयेन एथा ॥१०६॥
श्रुति स्मृति ये जाने, से ना करे सर्वथा । ए यात्राय एइमत सर्वकाल एथा ॥१०७॥
ईश्वरेर इच्छा यदि ना थाके अन्तरे । तबे देख राजा केने निषेध ना करे ॥१०८॥
विद्यानिधि बोले "भाल, करुक ईश्वरे । ईश्वरेर ये कर्म्म, सेवके केने करे ॥१०९॥
पूजा-पाराड़ा पशुपाल पड़िछा वेहारा । अपवित्र-वस्त्र केने धरे वा इहारा ॥११०॥
जगन्नाथ-ईश्वर, सम्भवे' सब ताने । तान आचरण कि करिब सर्वजने ॥१११॥
मराडवस्त्र-स्पर्शे हस्त धुइले से शुद्धि । इहा वा ना करे केने हइया सुबुद्धि ॥११२॥
राजपात्र अबुध ये इहा ना विचारे' । राजाओ माराडुया-वस्त्र देन निज शिरे" ॥११३॥
दामोदर स्वरूप बोलेन "शुन भाइ । हेन बुझि ओढ़न-यात्राय दोष नाइ ॥११४॥
परब्रह्म-जगन्नाथरूप-अवतार । विधि वा निषेध एथा ना करे विचार" ॥११५॥
विद्यानिधि बोले "भाइ शुन एक कथा । परंब्रह्म-जगन्नाथ विग्रह सर्वथा ॥११६॥
ताने दोष नाहि विधि निषेध लंघिले । ए-गुलाओ ब्रह्म हैल थाकि नीलाचले ॥११७॥
इहाराओ छाड़िलेक लोक व्यवहार । सभेइ हइल ब्रह्मरूप-अवतार" ॥११८॥
एत बलि सर्व पथे हासिया हासिया । जायेन येहेन हास्यावेश युक्त हैया ॥११९॥

---

थीं वे दोनों ही सर्वथा निष्कपटरूप से परस्पर में कहते थे ॥ १०२ ॥ जगन्नाथ ने जो मांड़युक्त वस्त्र धारण किये इसमें श्रीविद्यानिधि को सन्देह उत्पन्न हुआ ॥ १०३ ॥ अतः श्रीदामोदरस्वरूप से पूछा कि मांड़युक्त वस्त्र भगवान् को क्यों देते हैं ? ॥ १०४ ॥ इस देश में तो श्रुति व स्मृति का विशेष प्रचार है तब बिना धुले माँड़युक्त वस्त्र क्यों पहिराते हैं ? ॥ १०५ ॥ श्रीदामोदरस्वरूप ने कहा "बात सुनो ! इसमें यहाँ के देशाचार से दोष नहीं लेते हैं ॥ १०६ ॥ जो श्रुति स्मृति जानते हैं वे सर्वथा ऐसा नहीं करते हैं, परन्तु यहाँ तो इस यात्रा में सदा से इसी प्रकार होता है ॥ १०७ ॥ यदि भीतर में ईश्वर की इच्छा नहीं रहती तो देखो राजा निषेध क्यों नहीं करता ? ॥ १०८ ॥ श्रीविद्यानिधि ने कहा अच्छा ईश्वर तो जो करें परन्तु ईश्वर का जो कर्म है उसको सेवक क्यों करते हैं ? ॥ १०९ ॥ पुजारी, पण्डा, वेश-रचियता, तत्त्वावधायक ( महापात्र ) वेहारा ( जलादि वहनकारी ) ये लोग अपवित्र वस्त्र क्यों पहिरते हैं ? ॥ ११० ॥ देखो जगन्नाथ तो ईश्वर हैं उनको सब सम्भव है, परन्तु अन्य सब लोग उनके आचरण क्यों करते है ? ॥ १११ ॥ मराडवस्त्र के स्पर्श करने से हाथ धोने पर शुद्धि होती है, न जाने सुबुद्धि होकर ऐसा क्यों करते हैं ? ॥ ११२ ॥ जो राजपात्र हैं वे भी मूर्ख हैं, विचार नहीं करते ? देखो राजा भी माराडयुक्त वस्त्र अपने शिर पर दिये हुए हैं ॥ ११३ ॥ श्रीदामोदरस्वरूप ने कहा "अरे ओ भाई ! सुनो यों समझ में आती है कि ओदनयात्रा में इसका दोष नहीं है ॥११४॥ देखो जगन्नाथ रूप में परंब्रह्म ही अवतीर्ण है अतः यहाँ विधि-निषेध का विचार नहीं है॥११५॥ श्रीविद्यानिधि ने कहा दामोदर एक बात सुनो देखो जगन्नाथ विग्रह तो सर्वथा परमब्रह्म है।॥११६॥जगन्नाथ जी को विधिनिषेध के उल्लंघन करने से दोष नहीं है,क्या नीलाचल में रहने से यह सब भी ब्रह्म हो गये हैं

दुइ सखा हाथा हाथि करिया हासेन । जगन्नाथ दासेरेओ आचार दोषेन ॥१२०॥
सभे ना जानेन सर्व दासेर स्वभाव । कृष्ण से जानेन यार यत अनुराग ॥१२१॥
भ्रमो करायेन कृष्ण आपन-दासेरे । भ्रमच्छेदो करे पाछे सदय अन्तरे ॥१२२॥
भ्रम कराइला विद्यानिधिरे आपने । भ्रमच्छेद-कृपाओ शुनिबा एइक्षणे ॥१२३॥
एइमत रंगे ढङ्गे दुइ प्रियसखा । चलिलेन कृष्णकार्ये यार यथा वासा ॥१२४॥
भिक्षा करि आइलेन गौराङ्गेर स्थाने । प्रभु स्थाने आसि सभे थाकिला शयने ॥१२५॥
सकल जानेन प्रभु चैतन्य गोसाञि । जगन्नाथ- रूपे स्वप्ने गेला तान ठाञि ॥१२६॥
स्वपने देखेन विद्यानिधि महाशय । जगन्नाथ आसि हैला सम्मुखे विजय ॥१२७॥
क्रोधरूप जगन्नाथ-विद्यानिधि देखे । आपने धरिया तान चड़ायेन मुखे ॥१२८॥
दुइ भाइ मेलि चड़ मारे दुइ गाले । हेन दढ़ चड़ ये अङ्गुलि गाले फूले ॥१२९॥
दुःख पाइ विद्यानिधि 'कृष्ण रक्ष' बोले । 'अपराध क्षम' बलि पड़े पदतले ॥१३०॥
"कोन् अपराधे मोरे मारह गोसाञि" । प्रभु बोले "तोर अपराधेर अन्त नाञि ॥१३१॥
मोर जाति, मोर सेवकेर जाति नाञि । सकल जानिला तुमि रहि एइ ठाञि ॥१३२॥
तबे केने रहियाछ जातिनाशा-स्थाने । जाति राखि चल तुमि आपन-भवने ॥१३३॥
आमि ये करिया आछि यात्रार निर्बन्ध । ताहातेओ भाव अनाचारेर सम्बन्ध ॥१३४॥

---

॥ ११७ ॥ सो इन्होंने भी लोक व्यवहार छोड़ दिये व सब ही ब्रह्मरूप के अवतार हो गये ॥११८॥ ऐसे कहते हुए सब मार्ग हँसते २ परम हास्य आवेश में युक्त होकर जा रहे थे ॥ ११९ ॥ दोनों सखा हाथ में हाथ देकर हँस रहे थे और जगन्नाथ के सेवकों के आचारों में दोषारोपण करते जाते थे ॥१२०॥ सब दासों के स्वभाव को सब ही नहीं जानते, जितना अनुराग है उसे तो कृष्ण ही जानते हैं ॥ १२१ ॥ श्रीकृष्णचैतन्य ( कृष्ण ) अपने दास में भ्रम करा देते हैं और पीछे से सदय हृदय हो भ्रम को छेदन भी कर देते हैं ॥१२२॥ आप ही ने विद्यानिधि को भी भ्रम कराया और अब भ्रमछेदनकारी कृपा की बात सुनो ॥१२३॥ इस प्रकार रङ्ग, ढङ्ग से दोनों प्रिय सखा कृष्ण कार्य के निमित्त जहाँ जिसका निवास था वहाँ के लिये चल दिये ॥ १२४ ॥ सो भिक्षा करके श्रीगौरचन्द्र के स्थान में आये तथा उनके पास आकर सो गये ॥ १२५ ॥ श्रीचैतन्य सब जानते थे सो स्वप्न में जगन्नाथ रूप से उनके पास गये ॥१२६॥ बड़े उदार श्रीविद्यानिधि महाशय ने स्वप्न में देखा कि जगन्नाथ बलराम दोनों आकर सामने उपस्थित हुए हैं ॥ १२७ ॥ विद्यानिधि ने जगन्नाथ को क्रोधरूप में दर्शन किये और जगन्नाथ पकड़ कर उनके मुख पर थप्पड़ मारने लगे ॥ १२८ ॥ जगन्नाथ व बलराम दोनो भाई मिलकर दोनों गालों पर थप्पड़ मारते हैं और ऐसे दृढ़ थप्पड़ मारे हैं कि दोनों गालों में अँगली फूल आई ॥ १२९ ॥ अतः दुःखी होकर विद्यानिधि ने कहा "हे कृष्ण रक्षा करो और अपराध क्षमा करो इस प्रकार कहकर चरणों में गिर पड़े ॥ १३० ॥ तथा बोले प्रभो मुझे किस अपराध पर मारते हो तब जगन्नाथ ने कहा तेरे अपराध का तो अन्त ही नहीं है ॥ १३१ ॥ देख मेरी और मेरे सेवकों की तो कुछ जाति नहीं है इस जगह रहकर तुम सब कुछ जान गये हो ॥ १३२ ॥ तब तुम जाति नाश करने वाले स्थान में क्यों रहते हो ? जाति रक्षा के लिये तुम अपने घर चले जाओ । १३३ । मैंने इस यात्रा का जो निर्बन्ध किया है, उसमें

आमारे करिया ब्रह्म, सेवक निन्दिया। माण्डुया कापड़-स्थाने दोषदृष्टि दिया ॥१३५॥
स्वप्ने विद्यानिधि महाभय पाइ मने। क्रन्दन करेन शिर धरि श्रीचरणे ॥१३६॥
"सर्व अपराध प्रभु क्षम' पापिष्ठेरे। घाटिलूँ घाटिलूँ प्रभु बलिलुँ तोमारे ॥१३७॥
जे मुखे हासिलुँ प्रभु तोर सेवकेरे। से मुखेर शास्ति प्रभु भाल हैला मोरे ॥१३८॥
भाल दिन हैल मोर आजि सुप्रभात। मुख-कपोलेर भाग्ये बाजिल श्रीहाथ ॥१३९॥
प्रभु बोले तोरे अनुग्रहेर लागिया। तोमारे करिलूँ शास्ति सेवक देखिया" ॥१४०॥
स्वप्ने प्रेमनिधि प्रति प्रेम दृष्टि करि। देउले आइला दुइ भाइ-राम हरि ॥१४१॥
स्वप्न देखि विद्यानिधि जागिया उठिला। गाले चड़ सब देखि हासिते लागिला ॥१४२॥
श्रीहस्तेर चड़े सब फुलियाछे गाल। देखि प्रेमनिधि बोले "बड़ भाल भाल ॥१४३॥
येन कैलूँ अपराध, तार शास्ति पाइलुँ। भालइ करिला प्रभु अल्पे एड़ाइलुँ" ॥१४४॥
देख देख एइ विद्यानिधिर महिमा। सेवकेरे दया यत, तार एइ सीमा ॥१४५॥
पुत्र ये प्रद्युम्न-ताहारेओ हेन मते। चड़ नाहि मारेन ना फेलान श्रीहाथे ॥१४६॥
जानकी-रुक्मिणी-सत्यभामा-आदियत। ईश्वर ईश्वरी आर आछे कत कत ॥१४७॥
साक्षातेई मारे यार अपराध हय। स्वप्नेर प्रसाद शास्ति दृश्य कभु नय ॥१४८॥
स्वप्ने दण्ड पाय, किवा प्रसाद से हय। जागिले पुरुष सेइ दुइ किछु नय ॥१४९॥
शास्ति वा प्रसाद प्रभु स्वप्ने यारे करे। से यदि साक्षात लोके देखे फल धरे ॥१५०॥

---

भी अनाचार का सम्बन्ध तुमने मन में किया है ॥१३४॥ सेवकों की निन्दा करके मुझे ब्रह्म कहा और माण्ड-युक्त वस्त्रों में दोषारोपण किया ॥१३५॥ स्वप्न में इस प्रकार श्रीविद्यानिधिजी मन में बड़ा भय पाकर श्रीचरणों में मस्तक को धरकर रोने लगे ॥१३६॥ प्रभो ! इस पापी के सब अपराध को क्षमा करो, हे प्रभो आप के आगे कहता हूँ मैं अपराधी हूँ, अपराधी हूँ ॥ १३७ ॥ प्रभो जिस मुख से मैं आपके सेवकों के प्रति हँसा था मेरे उस मुख को उत्तम दण्ड दिया ॥ १३८ ॥ मेरे लिये आज के दिन सुप्रभात हुआ जो मेरे मुख व कपोलों पर भाग्य से श्रीहस्त कमल का स्पर्श हुआ ॥ १३९ ॥ प्रभु ने कहा "तुम्हारे ऊपर अनुग्रह के निमित्त ही सेवक देखकर दण्ड दिया है ॥ १४० ॥ स्वप्न में प्रेमनिधि के प्रति कृपादृष्टि करके राम व हरि दोनों भाई मन्दिर में चले गये ॥ १४१ ॥ स्वप्न देखकर विद्यानिधि जग पड़े और गालों में थप्पड़ों के चिन्ह देखकर हँसने लगे ॥ १४२ ॥ श्रीहस्त के थप्पड़ों से सब गाल फूल रहे थे यह देखकर प्रेमनिधि बोले "बड़ा अच्छा हुआ" ॥ १४३ ॥ जैसा अपराध किया था उसका दण्ड भी पा लिया, प्रभो अच्छा किया थोड़े में ही अपराध दूर कर दिया ॥ १४४ ॥ विद्यानिधि की महिमा को देखो, अहो सेवकों के ऊपर जितनी दया है उसकी यही सीमा है ॥ १४५ ॥ अपने पुत्र प्रद्युम्न को भी इसी प्रकार अपने हाथ से न थप्पड़ मारे और न प्रेरणा ही की ॥ १४६ ॥ जानकी, रुक्मिणी, सत्यभामा आदि लेकर जितने ईश्वर व ईश्वरी हैं सो जिनका अपराध होता है उन्हें साक्षात् दण्ड देते थे परन्तु स्वप्न का अनुग्रह व दण्ड कभी दृश्य नहीं हुआ था॥१४७-१४८॥ स्वप्न में चाहे दण्ड मिले अथवा अर्थ लाभ हो, परन्तु जागने पर दोनों से कुछ नहीं रहते॥ १४९॥ प्रभु जिनको स्वप्न में दण्ड व अनुग्रह करते हैं यदि वह साक्षात् लोगों के दृष्टिगोचर होकर फल धारण करे तो

तारे बड़ भाग्यवान् नाहिक संसारे। स्वप्नेहो ना कहे किछु अभक्त जनेरे ॥१५१॥
साक्षाते ये एइ सब बुझह विचारे। एइ ये यवनगणे निन्दा हिंसा करे ॥१५२॥
ताहाराओ स्वप्ने अनुभव मात्र चाहे। निन्दा हिंसा करे देखि स्वप्न नाहि पाये ॥१५३॥
यवनेर कि दाय, ये ब्राह्मण सज्जन। तारा यत अपराध करे अनुक्षण ॥१५४॥
अपराध हैले दुइ लोके दुःख पाय। स्वप्नेहो अभक्त पापिष्ठेरे ना शिखाय ॥१५५॥
स्वप्ने प्रत्यादेश प्रभु करेन जाहारे। सेइ महाभाग्य हेन माने आपनारे ॥१५६॥
साक्षाते आपने स्वप्ने मारिल ताहारे। ए प्रसाद सबे देखे श्रीप्रेमनिधिरे ॥१५७॥
तबे पुण्डरीक देव उठिला प्रभाते। दुइ गाल फुलियाछे देखे दुइ-हाथे ॥१५८॥
प्रति दिन दामोदरस्वरूप आसिया। जगन्नाथ देखे दोंहे एक सङ्ग हैया ॥१५९॥
प्रत्यह आइसे स्वरूप से दिन आइला। आसिया ताहाके किछु कहिते लागिला ॥१६०॥
सकाले आइस जगन्नाथ दरशने। आजि शय्या हैते नाहि उठ कि कारणे ॥१६१॥
विद्यानिधि बोले भाइ एथाय आइस। कहिब सकल कथा, क्षणिक बइस ॥१६२॥
दामोदर आसि देखे-तान दुइ गाल। फुलियाछे चड़ चिह्न देखेन विशाल ॥१६३॥
दामोदरस्वरूप जिज्ञासे एकि कथा। केने गाल फुलियाछे किबा पाइला व्यथा ॥१६४॥
हासिया बोलेन विद्यानिधि महाशय। शुन भाइ कालि गेल यतेक संशय ॥१६५॥
माड़ुया वस्त्रेरे ये करिलुँ अवज्ञान। तार शास्ति गाले एइ देख विद्यमान ॥१६६॥
आजि स्वप्ने आसि जगन्नाथ बलराम। दुइ-दण्ड चड़ायेन-नाहिक विश्राम ॥१६७॥
'मोर परिधान वस्त्र करिलि निन्दन'। एत बलि गाले चड़ायेन दुइ जन ॥१६८॥

संसार में उससे बड़ा भाग्यवान् नहीं है कारण कि दुष्टजनों से प्रभु स्वप्न में भी कुछ नहीं कहते॥१५०-१५१॥ साक्षात् में इन सब बातों को विचारकर समझ लेओ कि जो यवनगण निन्दा व हिंसा करते हैं वे भी स्वप्न में मात्र अनुभव चाहते हैं और निन्दा-हिंसा करते हैं तथापि स्वप्न में भी शास्ति नहीं पाते॥१५२-१५३॥यवनों की तो क्या ख्याल, जो ब्राह्मण सज्जन हैं वे भी प्रत्येक क्षण में जितने अपराध करते हैं ॥१५४॥ सो अपराध करने पर दोनों लोकों में दुःख तो पाते हैं परन्तु प्रभु अभक्त पापियों को स्वप्न में भी शिक्षा नहीं देते॥१५५॥ प्रभु जिनको स्वप्न में प्रत्यादेश ( प्रत्याख्यान ) करते हैं वे अपने को बड़ा भाग्यशाली मानते हैं ॥ १५६ ॥ प्रभु ने स्वप्न में श्रीप्रेमनिधि को मारा इस अनुग्रह को सब लोगों ने साक्षात देखा ॥ १५७ ॥ तब प्रभात में श्रीपुण्डरीकदेव उठे और देखा कि दोनों हाथ के थप्पड़ों से गाल फूल रहे हैं ॥ १५८ ॥ प्रति दिन दामोदर-स्वरूप आते थे एवं दोनों एक साथ जगन्नाथ दर्शन करते थे॥१५९॥श्रीस्वरूप प्रतिदिन जैसे आते थे उसी तरह उस दिन भी आये और आकर उनसे कुछ कहने लगे ॥ १६० ॥ भाई जगन्नाथ दर्शन के लिये शीघ्र आओ, क्या कारण है जो आज शय्या से उठे नहीं ॥ १६१ ॥ तब विद्यानिधि ने कहा "अरे भाई यहाँ आओ एक क्षण बैठो सब प्रसंग कहूँगा" ॥१६२॥ दामोदर ने आकर देखा कि दोनों कपोल फूल रहे हैं और थप्पड़ों के चिन्ह विशाल देख पड़ते हैं ॥ १६३ ॥ दामोदरस्वरूप ने जिज्ञासा की कि यह क्या बात है गाल कैसे फूल गये क्या कोई व्यथा ( बीमारी ) हो गई है ॥ १६४ ॥ श्रीविद्यानिधि महाशय ने हँसकर कहा सुनो भाई कल समस्त संशय दूर हुआ ॥ १६५ ॥ माँड़ी वस्त्रों की जो अवज्ञा की थी उसका दण्ड यह कपोलों पर विद्यमान देख लो ॥१६६॥ आज स्वप्न में जगन्नाथ बलराम ने आकर दो घड़ी तक थप्पड़ मारे हैं और विश्राम नहीं

गाले बाजियाछे यत अंगुलेर अंगुरि । भाल मते उत्तरो करिते नाहि पारि ॥१६९॥
लज्जाय काहारेओ सम्भाषा नाहि करि । गाल भाल हइले से बाहिर हैते पारि ॥१७०॥
एत कथा अन्यत्र कहिले योग्य नहे । बड़ भाग्य हेन भाइ मानिल हृदये ॥१७१॥
भाल शास्ति पाइलुँ अपराध अनुरूपे । ए नहिले पड़िताङ महा-अन्ध कूपे ॥१७२॥
विद्यानिधि प्रति देखि स्नेहेर उदय । आनन्दे भासेन दामोदर महाशय ॥ १७३ ॥
सखार सम्पदे हय सखार उल्लास । दुइ जने हासेन परमानन्द हास ॥१७४॥
दामोदरस्वरूप बोलेन शुन भाइ । ए मत अद्भुत दण्ड देखि शुनि नाइ ॥१७५॥
स्वप्ने आसि शास्ति करे आपने साक्षाते । आर शुनि नाहि, सबे देखिलूँ तोमाते ॥१७६॥
हेन मते दुइ सखा भासेन सन्तोषे । रात्रि दिन ना जानेन कृष्ण कथा रसे ॥१७७॥
हेन पुण्डरीक विद्यानिधिर प्रभाव । इहाने से गौरचन्द्र प्रभु बोले 'बाप' ॥१७८॥
पाद स्पर्श भये ना करेन गङ्गा स्नान । सबे गङ्गा देखेन, करेन जल पान ॥१७९॥
ए भक्तेर नाम लइ श्रीगौरसुन्दर । 'पुण्डरीक बाप बलि' कान्देन विस्तर ॥१८०॥
पुण्डरीक विद्यानिधि चरित्र शुनिले । अवश्य ताहारे कृष्ण पादपद्म मिले ॥१८१॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान ॥१८२॥

इति श्रीचैतन्यभागवते अन्त्यखण्डे श्रीपुण्डरीकविद्यानिधिचरित्रवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥११॥

* समाप्तश्चायम् अन्त्यखण्डः *

* इति श्रीमद्वृन्दावनदासविरचितं श्रीचैतन्यभागवतं सम्पूर्णम् *

लिया ॥ १६७ ॥ मेरे पहरने के वस्त्रों की निन्दा करते हो यों कहकर दोनों भाई थप्पड़ मारने लगे ॥ १६८ ॥ जितनी अँगुलियों में अँगूठी थी वे सब कपोलों पर लगीं, परन्तु अच्छी प्रकार से पूछने भी नहीं पाया॥१६९॥ लज्जावश किसी से सम्भाषण नहीं करता हूँ गाल अच्छे होने पर बाहिर निकलूँगा ॥१७०॥ भाई यह कथा अन्य से तो कहने योग्य नहीं है मैं तो अपने हृदय में अहोभाग्य मानता हूँ ॥ १७१ ॥ अपराध के अनुरूप अच्छा दण्ड मिला है, यदि दण्ड न होता तो मैं महा अन्धकूप में गिर जाता ॥ १७२ ॥ विद्यानिधि के प्रति प्रभुस्नेह का उदय देखकर परम उदार दामोदर आनन्द में विभोर हो गये ॥ १७३ ॥ कारण कि मित्र की सम्पत्ति को देखकर मित्र को उल्लास होता है अंतः दोनों परम आनन्दमय हास्य में हँस रहे थे ॥ १७४ ॥ श्रीदामोदरस्वरूप ने कहा "हे भाई सुनो, ऐसा अद्भुत दण्ड तो न देखा न सुना ॥१७५॥ स्वयं आकर स्वप्न में साक्षात् प्रभु दण्ड करें अन्य जगह तो नहीं सुना केवल तुम्हारे अङ्ग में देख रहा हूँ" ॥१७६॥ इस प्रकार पुण्डरीक विद्यानिधि व दामोदरस्वरूप दोनों सखा सन्तुष्ट होकर कृष्णचन्द्र की कथारूपी रस में डूबे रहते थे तथा दिन रात्रि का अनुसंधान नहीं होता था ॥ १७७ ॥ पुण्डरीक विद्यानिधि का ऐसा प्रभाव है और इसी कारण श्रीप्रभु गौरचन्द्र ने उनको "बाप" कहकर सम्बोधन किया था ॥ १७८ ॥ चरण छुवाने के भय से गङ्गा में स्नान नहीं करते थे केवल गङ्गा के दर्शन व गङ्गाजलपान करते थे॥१७९॥श्रीगौरसुन्दर इस भक्त के नाम को लेकर पुण्डरीक बाप ऐसा कहकर विशेषरूप से रोते थे ॥१८०॥ पुण्डरीक विद्यानिधि का चरित्र जो सुनेंगे उनको कृष्णचन्द्र के चरण-कमल अवश्य मिलेंगे ॥ १८१ ॥ श्रीवृन्दावनदास ठाकुर ( ग्रन्थकार ) श्रीकृष्णचैतन्य एवं नित्यानन्दचन्द्र को जानकर अर्थात् हृदय में धारणकरके उनके चरण-कमल युगलों की महिमा गान करते हैं ॥ १८२ ॥

( अनुवादकर्त्ता—पाण्डेय रामलालजी )

## ❀ श्री श्रीनित्यानन्दाष्टकम् ❀

शरच्चन्द्रभ्रान्ति स्फुरदमलकान्ति गजगतिं, हरिप्रेमोन्मत्तं धृतपरमसत्त्वं स्मितमुखम् ।
सदाघूर्णन्नेत्रं करकलितवेत्रं कलिभिदं, भजे नित्यानन्दं भजनतरुकन्दं निरवधि ॥ १ ॥
रसानामागारं स्वजनगणसर्व्वस्वमतुलं, तदीयैकप्राणप्रतिमवसुधाजान्हवापतिम् ।
सदा प्रेमोन्मादं परमविदितं मन्दमनसां, भजे नित्यानन्दं भजनतरुकन्दं निरवधि ॥ २ ॥
शची-सूनुप्रेष्ठं निखिलजगदिष्टं सुखमयं, कलौ मज्जज्जीवोद्धरणकरुणोद्दामकरुणम् ।
हरेराख्यानाद्वा भवजलधिगर्व्वोन्नतिहरं, भजे नित्यानन्दं भजनतरुकन्दं निरवधि ॥ ३ ॥
अये भ्रातर्नृणां कलिकलुषिणां किन्नु भविता, तथा प्रायश्चित्तं रचय यदनायासत इमे ।
व्रजन्ति त्वामित्थं सह भगवता मन्त्रयति यो, भजे नित्यानन्दं भजनतरुकन्दं निरवधि ॥ ४ ॥
यथेष्टं रे भ्रातः ! कुरु हरि हरि ध्वानमनिशं,ततो वः संसाराम्बुधितरणदायो मयि लगेत् ।
इदं बाहुस्फोटैरटति रटयन् यः प्रतिगृहं, भजे नित्यानन्दं भजनतरुकन्दं निरवधि ॥ ५ ॥
बलात्संसाराम्भोनिधि-हरणकुम्भोद्भवमहो, सतां श्रेयः सिन्धून्नतिकुमुदबन्धुं समुदितम् ।
खलश्रेणीस्फूर्ज्जत्तिमिरहरसूर्य्यप्रभमहं, भजे नित्यानन्दं भजनतरुकन्दं निरवधि ॥ ६ ॥

---

जिनका मनोहर श्रीमुखमण्डल शरत्कालीन चन्द्रमा की अत्यधिक शोभा को तिरस्कार करता है, जिनकी परम सुविमल अङ्ग कान्ति अत्यन्त मनोहर रूप से शोभायमान है, जो मत्त मातङ्ग की भाँति मृदु मन्थर गति से गमन करते हैं, जो श्रीकृष्ण प्रेम में निरन्तर उन्मत्त हैं, जिनका श्रीअङ्ग विशुद्ध सत्वमय है, जिनका मुख कमल निरन्तर मन्दहास्य से शोभित है, जिनके नयन युगल निरन्तर चञ्चलायमान हैं,जिनके श्रीहस्त में मनोहर व्रज भाव पोषक (श्रीबलराम के गोचारण रस का पोषक) वेत्र शोभायमान है,उन कलिकल्मष ध्वंस-कारी श्रीकृष्ण भक्ति कल्पतरु के मूलरूप श्रीनित्यानन्द प्रभु का मैं सर्व्वदा भजन करता हूँ ॥१॥ रससागर, निज जनगण के सर्वस्व, अतुलनीय, तदीयैक्य प्राण प्रतिम श्रीवसुधा और श्रीजान्हवादेवी के पति,निरन्तर प्रेमोन्मत्त, मन्द मानस वालों के परम ज्ञाता, भजन वृक्ष के बीजांकुर ( मूलरूप ) श्रीनित्यानन्द प्रभु का मैं सर्वदा भजन करता हूँ ॥ २ ॥ शचीनन्दन गौरहरि के प्रिय, निखिल जगत् के इष्ट, कलिकाल में सुखपूर्वक निमग्न जीवों के उद्धार के लिये महाकारुण्य विस्तारकारी करुणासागर, हरिनाम ग्रहण के द्वारा भवसागर के उन्नत अभिमान को विध्वंसित करने वाले, भजन वृक्ष के बीजांकुर ( मूलरूप ) श्रीनित्यानन्द प्रभु का मैं सर्वदा भजन करता हूँ ॥ ३ ॥ "हे भाई ! निरन्तर हरि-हरि इस ध्वनि का यथेष्ट उच्चारण कर, तुम्हारा संसारसागर का तरणदाय ( उद्धार का भार ) हमने ले लिया है" इस प्रकार जो घर-घर में जाकर भुजा स्फालनों के द्वारा कहा करते हैं,भजन वृक्ष के बीजांकुर उन श्रीनित्यानन्द प्रभुका मैं सर्वदा भजन करता हूँ॥४॥ "अरे भैया, कलि कलुषित मनुष्यों की क्या गति होगी ? ऐसा प्रायश्चित्त बताइये जो कि यह सब अनायास ही तुम्हें प्राप्त कर सकें" इस प्रकार जो भगवान् श्रीगौरहरि के साथ मन्त्रणा करते हैं, भजन वृक्ष के मूलरूप उन श्रीनित्यानन्द प्रभु का मैं सर्वदा भजन करता हूँ॥ ५ ॥ अहो ! संसार सागर का बलात्

नटन्तं गायन्तं हरिमनुवदन्तं पथि पथि, व्रजन्तं पश्यन्तं स्वमपि नदयन्तं जनगणम् ।
प्रकुर्वन्तं सन्तं सकरुणदृगन्तं प्रकलनाद्, भजे नित्यानन्दं भजनतरुकन्दं निरवधि ॥ ७ ॥
सुबिभ्राणं भ्रातुः करसरसिजं कोमलतरं, मिथो वक्त्रालोकोच्छलितपरमानन्दहृदयम् ।
भ्रमन्तं माधुर्यैरहह मदयन्तं पुरजनान्, भजे नित्यानन्दं भजनतरुकन्दं निरवधि ॥ ८ ॥
रसानामाधारं रसिकवरसद्वैष्णवधनं, रसागारं सारं पतिततति तारं स्मरणतः ।
परं नित्यानन्दाष्टकमिदमपूर्वं पठति य, स्तदंघ्रिद्वन्द्वाब्जं स्फुरतु नितरां तस्य हृदयं ॥ ९ ॥

इति श्रीमद्वृन्दावनदासठक्कुरविरचितं
श्री श्रीनित्यानन्दाष्टकं सम्पूर्णम् ।

---

पान करने में अगस्त्य ऋषि रूप, साधुओं के कल्याण समुद्र के उन्नतिकारक परम वर्द्धमान कुमुदबन्धु चन्द्रमारूप, खल श्रेणियों के विस्फुञ्जित अन्धकार पटल का नाश करने में सूर्य्य की भाँति प्रभाधारी, भजन वृक्ष के मूलरूप० ॥ ६ ॥ नृत्य परायण, गानशील, हरिहरि बोलते हुए पथ में गमन करने वाले, अपने को देखने वाले जनगण को नचाने वाले, दर्शन मात्र से करुणा दृगञ्चल द्वारा सब को परम सज्जन बनाने वाले, भजन वृक्ष के मूलरूप० ॥७॥ भ्राता श्रीगौरहरि के अत्यधिक कोमल कर-कमल को धारण करने वाले, परस्पर मुखावलोकन से उच्छलायमान परमानन्दित हृदय वाले, निज माधुर्य्य से पुरजनों को उन्मादित करते हुए भ्रमण करने वाले, भजन वृक्ष के मूलरूप०॥८॥ रसों के भण्डार, श्रेष्ठरूप रसिक सद्वैष्णवों के परम धनरूप, रसों के सार सागर, श्रवणमात्र से पतित जन समूह का उद्धार करने वाले, श्रेष्ठ इस नित्यानन्द प्रभु के अष्टक का जो पाठ करेगा उसके हृदय में निरन्तर उन प्रभु के युगल चरण कमल स्फूर्त्ति होवें ॥ ९ ॥

(अनुवादक)

प्रकाशक—**कृष्णदास.**

अनर्पितचरीं चिरात्
करुणयावतीर्णः कलौ
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां
स्वभक्तिश्रियम् ।
हरिः पुरटसुन्दरद्युति-
कदम्बसन्दीपितः
सदा हृदयकन्दरे
स्फुरतु वः शचीनन्दनः ॥
(श्रीश्रीरूपगोस्वामिप्रभुः) ।

स्वदयितनिजभावं
यो विभाव्य स्वभावात्
सुमधुरमवतीर्णो
भक्तरूपेण लोभात् ।
जयति कनकधामा
कृष्णचैतन्यनामा
हरिरिह यतिवेशः
श्रीशचीसूनुरेषः ॥
(श्रीश्रीसनातनगोस्वामिप्रभुः)

❀ श्री श्रीगुरुगौराभ्यां समर्पितमस्तु ❀